रवीन्द्र-अङ्क

# विशाल भारत

जनवरी, १९४२

# VISHAL BHARAT

JANUARY, 1942

## विषय-सूची

[ माघ, १९९८ : : जनवरी १९४२ ]

## विषय-सूची

## विषय-सूची

# भारत की अद्वितीय स्त्री-रोग चिकित्सका

०५९.८/३८

# श्रीमती चमेली देवी

'आप चिकित्सा चन्द्रोदय' के संसार प्रसिद्ध लेखक

## बाबू हरिदासजी की

सुयोग्य पुत्री, वृद्ध पिताके पास रहकर, अनुभव और अभ्यास करनेवाली हैं। इसीसे आप चिकित्सा जैसे ज़िम्मेदारीके कामकी सच्ची अधिकारिणी है। वैद्य-विद्या केवल पुस्तकें पढ़नेसे ही नहीं आती, किसी बूढ़े और तजुर्बेकार वैद्यके पास रहकर अभ्यास करनेसे आती है।

बाबू हरिदासजी ने आपकी सेवा, मधुर भाषण और वैद्य-विद्यामें निपुणता देखकर आपको अपने फर्मको मुख्य संचालिका, सत्वाधिकारिणी और स्त्री-रोगोंकी चिकित्सका नियत किया है। आपको इस फर्मके सब अधिकार हैं। बाबूजी कहते हैं, मैंने अनेकोंको वैद्य-विद्या पढ़ाई, पर अभ्यास एक मात्र

## चमेली देवी

को ही कराया है, चमेली देवीको ही अपने अनमोल गुप्ततम नुस्खे बताये हैं, जो चमेली देवीके पास हैं वह किसी ग्रन्थमें नहीं है। इसीसे आप कष्टसाध्य और डाक्टर-वैद्योंके असाध्य कहकर त्यागे हुए रोगियोंको भी बात की बातमें आराम कर देती हैं।

### बहिन-बेटियों को सलाह

अगर आपको कोई गुप्त रोग है, जैसे प्रदर-रोग, बन्ध्यारोग, मासिक-धर्मकी ख़राबी वग़ैरह तो आप नीचेके पतेपर चिट्ठी लिखिये—विश्वास रखें, आपके पत्र श्रीमती चमेली देवी ही देखेंगी, और वह ख़ुद अपने हाथसे जवाब देंगी, आपकी सारी बातें गुप्त रहेंगी।

## श्रीमती चमेली देवी,

संचालिका—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

तिरंगा चित्र



सादे चित्र अनेक

ताज़ा, अच्छा बिस्कुट बच्चोंके लिए स्वास्थ्यकर ।
स्वादिष्ट लिलि बिस्कुट
भूख बढ़ाता है ।
"MALTO"
Lily's
"MALTO"
BISCUITS
लिलि बिस्कुट
आबालवृद्ध सभीका प्रिय खाद्य है ।
सबेरे और शामको चायके साथ ।
लिलि बिस्कुट परम तृप्तिकर है ।
थिन अरारोट
क्रीम क्रैकर
पेटिट ब्यूर
डाइजेस्टिव
क्रीम सैंडविच
बोस्टन क्रीम
इत्यादि ।
LILY BISCUIT CO. CALCUTTA & BOMBAY
लिलि बिस्कुट कम्पनी, कलकत्ता और बम्बई ।

सावधान !!
सर्दी और खांसी
अथवा छाती की
किसी भी बीमारी के लिये
लोकप्रिय
सिरोलिन
'रोश'
सेवन करने का यही समय है

❁

# कीर्ति पिक्चर्स

मातृ-प्रेम की भावना
को रुपहरी पर्दे पर लाकर
अपने प्रथम चित्र का
मंगलाचरण करती है

* * *

# माता

## मदर इंडियाके सर्जक

**दिग्दर्शक—गुंजाल**

जगतकी परम वंदनीय
विभूतिको अञ्जलि
अर्पण करते हैं

**कथानक—श्री मोहनलाल दवे**

**—कलाकार—**

**शोभनासमर्थ, चन्द्रकान्त,**
**मुबारक, भूदो अडवानी,**
**मोती आदि......**

* * *

**शीघ्र ही आ रहा है**
**प्रतीक्षा कीजिए**

* * *

पी० बी० झवेरी प्रोडक्शन

❁

# आपकी ख़िदमत में

# शीघ्र ही हाज़िर होगा—

* * *

: दिग्दर्शक :

**के० एम० मुल्तानी**

: कथा-संवाद-गीत :

**कमाल अमरोही**

: भूमिका :

❁ रूपरानी नसीम ❁ पृथ्वीराज

❁ मुबारक ❁ रतनबाई

❁ मिर्ज़ा मुशर्रफ

——:❁:——

❁ आदि ख्याति-प्राप्त

❁ महान कलाकार

एक नायाब चित्र—

जो भारतीय फिल्म-उद्योग में मनोरंजन का नूतन प्रभात उदय कर आपके हृदयों को अपनी ज्योति से आलोकित कर देगा।

❁ ❁ ❁

कुशल कलाकारों को लेकर सुन्दर और जगमगाता—

ताजमहल पिक्चर्स-कृत—

# उजाला

प्रेक्षकोंको उल्लासका प्रकाश देनेवाला चित्रपट
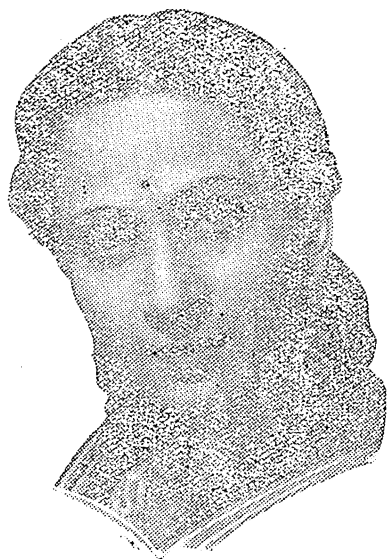
# काश मैं रानी होती

प्रत्येक नव-वधू यह स्वप्न देख सकती है

—***—

और अब

—: अत्रे पिक्चर्स कृत :—

# राजा  रानी

—: में :—

उसकी विजय और द्वन्द्व कहानी देखिये

नाट्यकार :—आचार्य अत्रे

दिग्दर्शक :—

नजमुल हसन नक़वी

हिन्दी-संवाद-लेखक :—

पंडित आनन्दकुमार

संगीत :—खान मस्ताना

डिस्ट्रीब्यूटर्स :—

पिअरलेस पिक्चर्स, बम्बई ४

भूमिका :—

बनमाला, मज़हर खान, त्रिलोक कपूर, सुनलिनी देवी, माया देवी नवीन याज्ञिक, डेविड, बेबी विमल और गोविन्द।

शीघ्र ही आपके प्रिय सिनेमा-गृहमें दिखाया जायगा।

३०
२३
५८
१
३९

०९
५४

३४
५०
८७

६
७
९
३

६
५

५
३
३

२

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता ] रवीन्द्रनाथ ठाकुर [ चित्रकार—श्री सुधीर खास्तगीर

अस्त हो गया है तप-तप कर प्राची, वह रवि तेरा।
विश्व बिलखता है जप-जपकर, कहाँ गया रवि मेरा!

— मैथिलीशरण गुप्त

Novelty in Fashions



M. B. SIRKAR & SONS
SON AND GRANDSONS OF LATE B. SIRKAR
PHONE B.B. 1761
Manufacturing Jewellers
GRAM BRILLIANTS
DEALERS IN GUINEA (SOVEREIGN) GOLD ONLY
124, 124-1 BOWBAZAR ST (BOWBAZR-AMHERST ST JUNCT)
— CALCUTTA —

# विशाल भारत

" सत्यम् शिवम् सुन्दरम् "

" नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः "

भाग २९, अंक १ ] पूस, १९९८ : : जनवरी, १९४२ [ पूर्णांक १६९


## गुरुदेवका सबसे बड़ा काम

### पूज्य बापूजीका संदेश

गुरुदेवने बहुत
किया लेकिन सबसे
बड़ा काम उनका यह
था कि उन्होंने हिंदुस्तान
को बीसों कदम ऊंचे
चढ़ाया.

सेवाग्राम मो. क. गांधी
१२-१-४२

# सार्वभौम रवीन्द्रनाथ

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन

आपने दीर्घजीवनके ८० वर्ष पूर्ण करके महाकवि और महापुरुष रवीन्द्रनाथने हमारे निकटसे विदा ले ली है। दुःख हमें चाहे जितना भी अधिक क्यों न हो, हम यह नहीं कह सकते कि वे काफ़ी दिन हमारे बीच नहीं रहे, अथवा उन्होंने हमें काफ़ी कुछ दान नहीं किया। तब भी दीर्घकाल तक चिन्ता और साधना द्वारा उन्होंने हमें इतना अधिक दिया है कि उनके चले जानेपर हम अपनेको नितांत निःसहाय अनुभव करते हैं। केवल हम ही नहीं, संपूर्ण विश्वका साहित्य-रसिक समाज इस शून्यताका बोध कर रहा है।

यह बात सत्य है कि एक दिन उन्हें ज़रूर विदा लेनी ही पड़ती, और उसका समय भी हो गया था। यह बात भी बहुत सच है कि मनुष्य जब तक हमारे पाससे दूर नहीं जाता, तब तक उसके मूल्यको संपूर्ण भावसे हम उपलब्ध भी नहीं कर पाते। सूर्य-चंद्रका आकार गोल है—यह बात दूर होनेसे ही हम समझ पाते हैं। पृथ्वी भी तो वैसी ही गोल है, किन्तु निकट होनेके कारण हम उसकी बंधुरता ही देख पाते हैं, उसके वर्तुलाकारको समझ नहीं पाते। इसीलिए जब तक मनुष्य हमारे बीच जीवित रहता है, तब तक हम उसके दोषों और त्रुटियोंको ही देख पाते हैं, उसके जीवनकी समग्रताको ठीक पकड़ नहीं पाते। कमसे कम आज तो हम रवीन्द्रनाथके जीवनकी संपूर्णताको पूर्ण रूपसे उपलब्ध कर सकते हैं।

उनके अभावकी जो यह तीव्रता है, वह आलोचना करने या कहकर बतलानेकी वस्तु तो नहीं है। कारण, ३४ वर्ष तक उनके साथ रहनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था; किन्तु इसीलिए उनकी वाणीको दूसरोंकी अपेक्षा मैं अधिक अच्छी तरह समझ सका हूँ—ऐसा दावा भी नहीं किया जा सकता। उसके लिए जितनी योग्यताकी आवश्यकता है, वह मुझमें नहीं भी हो सकती है। श्रीकृष्ण जिस समय अपने योग्य शिष्य अर्जुनको गीताकी वाणी सुना रहे थे, उस समय और भी तो चार श्रोता थे; किन्तु वे तो उस वाणीका मर्म कुछ भी समझ नहीं पाए। वे रथमें जुते हुए चार घोड़े थे। पृथ्वीमें इन अश्वश्रोताओंका अभाव नहीं है और अधिकांश समय यही श्रोतागण 'क्या ख़ूब' की झड़ी लगाकर अपने मतवादोंकी हेषा-ध्वनिसे आसमान सिरपर उठा लेते हैं। यदि वे चार अश्व जीवित होते और आजके मनुष्यके समान क़लम चला पाते, तो देखा जाता कि पत्र-पत्रिकाओंमें रवीन्द्रनाथके संबंधमें उन्हींकी अगणित रचनाएँ स्थान पा रही हैं।

भली प्रकार काटे हुए हीरेके सुन्दर खंडके जिस प्रकार अनेक पार्श्व और पहलू होते हैं, उसी प्रकार बहुमुखी प्रतिभाके नाना मुखोंकी भी गणना नहीं की जा सकती। गंभीरता और बहुमुखता दोनोंकी ही दृष्टिसे रवीन्द्रनाथका जीवन एकदम अतुलनीय था। इसीलिए उनकी उपयुक्त जीवनी लिखना दुःसाध्य ही नहीं, एकबारगी असाध्य कार्य है। मिस्टर एल्महर्स्ट गुरुदेवके एक अंगरेज़ अनुरागी भक्त हैं। उनके अनुरागकी बात चलनेपर इतना कहना काफ़ी होगा कि गुरुदेवकी श्रीनिकेतन-संस्था प्रारंभसे लेकर आज तक प्रायः अकेले उन्हींके दानके सहारे चल रही है; आज तक उसके लिए उन्होंने लाखों रुपए दिए हैं। गुरुदेवकी एक अच्छी-सी जीवनी लिखनेकी उनकी एकांत इच्छा थी, इसीलिए प्रायः ६ वर्षों तक वे गुरुदेवके बराबर साथ रहकर उनकी वक्तृताएँ और सभी बातें ठीक-ठीक नोट करते रहे। दिनपर दिन उनका विस्मय बढ़ता ही चला गया। ६ वर्षके अन्तमें एक दिन एक अत्यन्त गंभीर विषयपर गुरुदेवकी सुगंभीर आलोचना सुनकर उन्होंने क़लम रख दी और कहा—'गुरुदेव, तुम्हारी जीवनी लिखना मेरे लिए असंभव है।'

मैं उनके साथ ३४ वर्ष रहा हूँ; मैं भी ठीक यही बोध करता हूँ। कहते समय यही सोचता रह जाता हूँ कि क्या कहूँ, कहाँ उसका प्रारंभ करूँ और किस जगह अंत! गुरुदेवकी मूल रचनाएँ सभी तो बँगलामें हैं, तब भी बँगला-साहित्य-पाठक यही कहते हैं कि गुरुदेवको भलीभाँति समझ नहीं पाए। अवश्य ही यह बात सच है कि इस प्रकारकी महाप्रतिभा द्वारा सृष्टलोकमें बिना साधनाके

हम क्योंकर प्रवेश पा सकेंगे। जितने मनोयोग द्वारा हम सुबहका अख़बार पढ़ते हैं, उतने मनोयोगको लेकर गुरुदेवके साहित्यको पढ़ना असंभव है। तिनका उखाड़नेके समय जितनी ताक़त लगती है, उतनी ताक़तके द्वारा महादेवका धनुष नहीं उठाया जा सकता।

बंगाली होनेपर भी मेरा जन्म युक्तप्रान्तमें हुआ था। बचपनमें बँगला-साहित्यके साथ मेरा परिचय नहीं था। विशेष करके अत्यंत बाल्य-कालसे ही मैं साधु-संतोंके पीछे-पीछे फिरता रहा हूँ। उस समय कबीर-दादू आदि संतोंकी वाणीसे ही मन-प्राण भरपूर थे। फिर भी १९-२० वर्षकी अवस्थामें एक दिन एक रवीन्द्र-भक्तसे जब पहली बार एक कविता सुनी, तब लगा कि जिस वाणीके साथ मेरा आंतरिक परिचय है, ठीक उसी जातिकी यह भी कविता है; इसलिए सुनते ही उसके साथ मेरा एकदम निविड़ परिचय हो गया। मुझे वह कविता तनिक भी विजातीय नहीं मालूम पड़ी और यह भी हुआ कि जो कुछ संत-वाणी इतने दिन मेरे निकट अस्पष्ट थी, वह भी रवीन्द्र-नाथके काव्यके सहारे दिन-दिन सुस्पष्ट होने लगी, उसका मर्म प्रकाशित होने लगा। अर्थात् मध्य-युगके संतोंके प्रकाशमें मैंने रवीन्द्रनाथको पहचाना और रवीन्द्रनाथके प्रकाशमें मध्य-युगके उन 'अटपटी वाणी'-वाले संतोंको।

आप लोगोंने मुझे रवीन्द्रनाथ और मध्य-युगीन सन्तोंकी वाणीके विषयमें लिखनेका आदेश दिया है। किन्तु इस विषयपर मैं अभी कुछ कह न पाऊँगा। उसे लेकर विश्वभारतीके अन्तर्गत मेरा अन्वेषण (रिसर्च) कार्य चल रहा है, इसलिए वह सब इस समय प्रकाश नहीं किया जा सकता; और इस विषयपर सहसा मोटी तौरपरसे कुछ कहनेमें विपद भी है—लोग सहज ही उसे ग़लत भी समझ सकते हैं। रवीन्द्रनाथ सन्तोंके साहित्यसे क़तई परिचित नहीं थे। मैंने जिस समय सन्त-साहित्यसे उन्हें कभी-कभी परिचित कराना शुरू किया, उस समय उनका 'गीतांजलि'का युग समाप्त हो रहा था। उन्होंने अपने महत्त्व और सार्वभौमिक दृष्टिसे सन्त-साहित्यके अनेक गम्भीर एवं निगूढ़ रहस्योंको उद्घाटित कर दिया।

वेदपूर्व युग और वैदिक साहित्यके समयसे लेकर भारतवर्षमें जो सहस्रों वर्षव्यापिनी साधना चली है, उसमें सब कालके साधकों और भक्तोंने केवल एक ही साधना की है, इसीलिए एक युगके संतकी वाणीका अन्य युगके संतकी वाणीके साथ आश्चर्यजनक साम्य है। रवीन्द्रनाथकी वाणीमें भी ऐसा ही साम्य हम देख पाते हैं। इनमें जो भी वास्तविक साधक हैं, उनमें प्रत्येकका दूसरेके साथ एक न एक प्रकारका योग बराबर है, अथच कोई किसीके निकट ऋणी नहीं है। कारण, भारतीय साधनाके जो अधीश्वर हैं, उन्होंने भारतीय साधनाके महासत्यको उन भक्तोंके मुखसे युगोचित रूपमें बारबार उद्घोषित और प्रकाशित कराया है। इसीलिए उनकी साधनामें तत्तत् युगोंके अनुरूप वाणी भी हमें सुननेको मिलती है और साथ ही उसकी अखंड धारामें एक विलक्षण ऐक्य भी अविच्छिन्न भावसे देखने मिलता है।

शायद मैंने ही पहले इन मध्य-युगीन संतोंके साथ रवीन्द्रनाथके साम्यकी बात कही थी; किन्तु जब इसके बाद सुना कि सबोंने इसे लेकर रवीन्द्रनाथको कबीर प्रभृतिके निकट ऋणी कहना शुरू कर दिया है, तब मैं विस्मयसे अवाक् हो रहा। कारण, सन्त-साहित्यके साथ उनका यत्सामान्य परिचय मेरे ही द्वारा हुआ था और मैं जानता हूँ कि इस परिचयके पूर्व ही उन्होंने अपनी वे रचनाएँ लिख डाली थीं। जिस तरह समुद्रसे एकाध बाल्टी जल कमकर देनेपर भी उसका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, उसी तरह रवीन्द्रनाथके विराट साहित्यमें से कबीर प्रभृतिसे साम्य रखनेवाला अल्पांश निकाल देनेपर भी उसमें कुछ इतर-विशेष नहीं घटित होता और न उसके वैचित्र्यमें कमी ही होती है। सुदीर्घ काल तक उनके निकट उनकी बातचीत अथवा वक्तृता सुनकर मैंने देखा कि अपनी स्फूर्तिका एक शतांश भी उन्होंने काव्यमें प्रकाशित नहीं किया है। इसलिए जो यह सब न जानते हुए ऋणकी बात चलाते हैं, उनका क्या प्रतिवाद किया जाय, सोच ही नहीं पाता; सविस्मय अवाक् होकर रह जाता हूँ। तब भी जब देशके ज़िम्मेवार व्यक्तियोंके मुखसे ऐसी कोई बात सुनता हूँ, तो देशके दुर्भाग्यका स्मरण करके सिर नीचा हो जाता है।

रवीन्द्रनाथके साहित्यको लेकर जो आलोचना हुई है, उसे हम नाना युगों अथवा स्तरोंमें विभाजित पाते हैं, और प्रत्येक युगका उस सम्बन्धमें एक निजी मतामत भी देखते हैं। पहला युग था नितान्त अवज्ञाका, अर्थात् विचारकोंने मत दिया कि यह काव्य निरर्थक भावोंकी निरर्थक और दुर्बोध्य अभिव्यंजनासे अधिक कुछ नहीं है।

इसीलिए यह सब केवल पहेली और गोरखधन्धा ही है। इसके बाद जब देखा गया कि एक दल उनके साहित्यको बराबर श्रेष्ठ कहकर स्वीकार कर रहा है, तब उन्होंने ख़ूब उच्च स्वरसे यह घोषित करना शुरू किया कि रवीन्द्रनाथका साहित्य एकबारगी अशास्त्रीय और अभारतीय है; वह केवल विलायतकी वस्तु है, जिसे हमारे देशका परिधान पहनाकर, छलसे भारतीय कहकर, चलाया जा रहा है। भारतीय काव्य-साधनाके साथ उसका पग-पगपर आघात है। यह हुआ दूसरा स्तर। इसके पश्चात् उनके विराट साहित्य-सागरका एक अत्यन्त सामान्य अंश (गीतांजलि) जिस समय अंगरेज़ीमें अनूदित हुआ, उस समय सम्पूर्ण यूरोपका चित्त उसके मर्मस्पर्शी सौन्दर्यसे अभिभूत हो गया। उन्होंने अपने देशका सबसे महान् पुरस्कार कविको अर्पित करते हुए कहा कि रवीन्द्रनाथके काव्य द्वारा यह पुरस्कार गौरवान्वित हुआ। उन्होंने माना कि यह वस्तु उनके लिए सम्पूर्ण भावसे नवीन और अपूर्व थी। तब देशवासी यह देखकर कुछ अप्रतिभ, कुछ चकित और कुछ क्रुद्ध हुए। कठिन शासन रखनेवाली सास जब अपनी बहूको बाहरके परिचयसे अलग रखनेकी चेष्टा करनेपर भी बाहरके किसी व्यक्तिके मुँहसे उसकी प्रशंसा सुनती है, तब प्रशंसा सुनकर उसके क्रोध और खीझकी ही वृद्धि होती है। अब हमारे देशमें भी आलोचनाके इस तृतीय युगमें विचारकोंमें यही क्षोभ देखा गया। किसी-किसीने यहाँ तक भी कह डाला कि रवीन्द्रनाथ आख़िर कितनी अंगरेज़ी जानते हैं; ऐण्ड्रूज़ साहबके द्वारा ही उन्होंने 'गीतांजलि' लिखवा ली है। इससे सबसे अधिक दुःख स्वयं मि० ऐण्ड्रूज़को हुआ था, क्योंकि उनके हृदयमें गुरुदेवके प्रति भक्तिकी सीमा नहीं थी। यह बात सुनकर उन्होंने कानोंमें अंगुली देकर कहा था— 'छिः-छिः, मनुष्य इतनी नीच बात भी बोल सकता है!'

इस प्रसंगमें ऐण्ड्रूज़ साहबने एक बड़ी सुन्दर कहानी कही थी। ऐण्ड्रूज़ साहबके ही शब्दोंमें मैं उसका यहाँ उल्लेख करता हूँ—"गीतांजलि लिखकर जब गुरुदेवने मुझे सुनाई, तब मैंने देखा कि वह सब प्रकारसे परिपूर्ण और निर्दोष रचना बन पड़ी है। वह सम्पूर्ण रचना एक ऐसे अपूर्व छन्दोमय गद्यमें लिखी गई थी, जिसका कुछ स्वाद मैंने उपनिषदोंकी भाषामें पाया था; किन्तु हमारे अंगरेज़ी साहित्यके निकट यह गद्य-छन्द सर्वथा अभिनव वस्तु था। गुरुदेवने मुझसे कहा कि अंगरेज़ी भाषाकी दृष्टिसे और अंगरेज़के नाते मैं उसमें, जहाँ ज़रूरत हो, सुधार कर दूँ। रचना इतनी निर्दोष थी कि उसमें कहीं सुधारकी गुंजाइश ही नहीं थी। पूरी पुस्तकमें सिर्फ़ पाँच स्थानोंमें मुझे ऐसा लगा कि परिचित और प्रचलित शब्दोंकी जगह पाँच अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग हुआ है। ये पाँच स्थान मैंने ससंभ्रम उन्हें बता दिए, और गुरुदेवने अपने सहज औदार्यको लेकर तत्काल उन स्थानोंमें सुझाए हुए प्रचलित शब्द रख भी दिए। किन्तु जब इंग्लैण्डमें वे वहाँके सर्वश्रेष्ठ साहित्यिकों—ईट्स, रोथेन्स्टीन, एज़रा-पौण्ड आदि—के बीच 'गीतांजलि' पढ़कर सुना रहे थे, तब उन लोगोंने सुनकर और मुग्ध होकर एक बात कही थी। उन्होंने कहा कि आपकी यह रचना सब प्रकारसे परिपूर्ण है; किन्तु केवल पाँच ही स्थानोंमें ऐसा लगता है, मानो इसकी स्वाभाविक लय और छन्दोमय प्रवाह खंडित हुए हैं। कहनेकी ज़रूरत नहीं कि ये पाँच स्थान वही थे, जहाँ मेरे सुझावके अनुसार गुरुदेवने परिवर्तन कर दिया था। गुरुदेवने मुझे लज्जित न करके वहाँ इतना ही कहा कि पहले मैंने अन्य पाँच शब्द व्यवहार किए थे; किन्तु उन्हें आपकी भाषामें उतने प्रचलित न समझकर फिर बदल दिये; वे शायद ये हैं। शब्दोंको सुनते ही सब कह उठे—वाह, ठीक ये ही शब्द हैं, जो यहाँ एकबारगी उपयुक्त होते हैं! इनसे रचना परिपूर्ण हो जाती है।'

अवश्य ही यह कहानी सबकी जानी हुई नहीं है। उस समय स्टैफ़र्ड ब्रुक्सने कहा था—'आपकी चिन्ता तो हमारे लिए अभिनव वस्तु है ही; किन्तु यह अंगरेज़ी आपने कहाँसे पाई? अवश्य ही यह हमारे देशकी अंगरेज़ी नहीं है, अथच यह तो एकदम अपूर्व वस्तु है!' यह बात जब देशवासियोंने सुनी, तो वे चकित और चमत्कृत हुए। तब उन्हें पहली बार मालूम हुआ कि रवीन्द्रनाथका काव्य पश्चिमके लिए भी एकबारगी नई चीज़ है; वह वहाँसे आमदनी की हुई वस्तु नहीं है।

यहाँसे चतुर्थ युग शुरू हुआ। कुछ काल अभिभूत होकर लोगोंने देखा कि यह तो विदेशमें हमारे देशका एक अश्रुतपूर्व सम्मान हुआ है। हठात् हमारे यहाँ भी प्रशंसा और प्रतिष्ठाकी जैसे बाढ़ आ गई।

सबने तरह-तरहसे प्रमाणित करना शुरू किया कि रवीन्द्रनाथमें सब कुछ हमारे ही देशका है। वैष्णवोंने कहा, यह सब वैष्णवोंका माधुर्य है। सन्तोंके अनुयायी कह उठे, यह उनका अपना रहस्यवाद है। शैवोंने कहा कि शैव-सिद्धान्तकी ही वाणी रवीन्द्रनाथकी क़लमसे प्रतिध्वनित हुई है। इस तरह प्रशंसाका एक विराट विभ्रम खड़ा हो गया। सबने अपना-अपना दावा प्रस्तुत करके वही एक बात उपस्थापित करनी शुरू की कि भाव-भाषा आदि सबकी दृष्टिसे रवीन्द्रनाथ नितान्त भारतीय हैं। वंगदेशके गोरांग मतवालोंने तो रवीन्द्रनाथकी कविताको गोरांग मतकी अपनी सम्पत्ति कहकर सिद्ध करनेके लिए एक नया ग्रन्थ ही लिख डाला !

किन्तु पतेकी बात यह है कि गुरुदेव सार्वभौम हैं। किसी दल-विशेषके निकट वे ऋणी नहीं हैं। अपनी सार्वभौमिकताके द्वारा उन्होंने दलोंको अन्यान्य दलोंके साथ युक्त किया है। इसीलिए साहित्यिकोंने ख़याल किया कि वे साहित्यिक हैं; दार्शनिकोंने सोचा कि वे दार्शनिक हैं ; ऐतिहासिकोंने उन्हें ऐतिहासिक और राजनीतिकोंने राजनीतिक माना। ग्राम-गीतोंके संग्राहकोंने उन्हें ग्राम-गीतोंका ही दरदी समझा, समाज-सुधारकोंने उन्हें समाज-सुधारक समझा। जो रूसके साम्यवादके पोषक हैं, वे रवीन्द्रनाथको साम्यवादी और सोवियत-पक्षीय समझते रहे। चित्रकार अवनीन्द्रनाथ उन्हें अपना गुरु मानते थे। वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसुने उन्हें अपना आलोकदाता अंतरंग बंधु कहा है। आइन्स्टाइन, रोमाँ रोलाँ प्रभृति साधकोंके दलने उन्हें अपने आंतरका अनुकूल मनुष्य कहकर अभिहित किया। संगीतके क्षेत्रमें भी गायकोंने उन्हें अपना प्रेरक समझा। 'इसलिए अपने शारदोत्सव' में चित्रित ठाकुर दादाके समान वे 'सब दलोंके आदमी' (सकल दलेर मानुष) हैं।

हमारे समान अयोग्य लोगोंके बीच भी विधाताने ८० वर्षसे भी अधिक काल तक जो उन्हें बचा रखा और हमारे हाथों नाना दुःख, आघात, अपमान पाकर भी वे जो निरंतर हमारे भीतर प्रेम और सेवाकी धारा बहाते रहे, इसके लिए एक बार विधाताको प्रणाम करता हूँ और एक बार उन परलोकगत रवीन्द्रनाथको प्रणाम करता हूँ। आज हमारा केवल शोक प्रकाश करनेका ही दिन नहीं है, आज दिन है क्षमा प्रार्थनाका। आज हम मन-वाणी-कायासे यह कह सकें कि हे महागुरु, हमारी अयोग्यताका पार नहीं ; अपराधोंका अंत नहीं। तुम यदि अपने महत्त्व-गुण द्वारा हमें क्षमा न करोगे, तो हमारी अन्य गति नहीं।

शान्तिनिकेतन ( बंगाल ) ]

# रवीन्द्रनाथकी अजर-अमरता

रवीन्द्रनाथकी प्रशंसामें पोथे लिखे जायँ और उनकी असंख्य वर्षगाँठें मनाई जायँ, क्योंकि उन्होंने हमें नया जन्म और नया आनन्द दिया है। हमने अपने पुराने ऋषियोंके रूपमें जो कुछ खो दिया था, वह हमें रवीन्द्रनाथके रूपमें पुनः मिल गया। प्रत्येक सत्य और सुन्दर चीज़को उन्होंने एक अमर मूर्तिका रूप दे दिया है। उनका प्रबल मानस जीवनका स्पष्ट चित्र हमारे आगे रख देता है। उनके मानसमें जो भी कटुता है, वह जैसे अपने ही अनुभवोंका शरबत पीती रहती है। उनकी कल्पनाओंमें भी शिशु खेलता और सौन्दर्यमयी नारी मुस्कराती है। फल और फूल, निर्झर और मेघ, धूप और इन्द्रधनुष अपनी सीधी-सादी भाषामें उनसे बातें करते हैं, और वे उन सबको जानते हैं उनकी गन्ध, रूप और स्पर्शसे ! पर यह कोई नहीं बतला सकता कि प्रकृतिका इतना व्यापक रूप उनके हृदय-दर्पणमें कैसे प्रतिबिम्बित हो सका ?

जो लोग रवीन्द्रनाथसे किसी-न-किसी रूपमें परिचित थे, वे उन्हें उनके संगीत और विचारोंमें सदा जीवित पाते हैं। पर जिनके हृदयोंमें उनके लिए कुछ भी नहीं था, रवीन्द्रनाथके महाप्रयाणसे उनके हृदयोंमें भी एक अपनत्वका स्रोत फूट निकला है। जो लोग उनकी ओरसे उदासीन रहे हैं या जिनकी उनके बारेमें कोई धारणा नहीं रही है, उनके हृदयोंपर भी उनकी महत्ताकी छाप पड़ी है। इस परिवर्त्तनका कारण क्या है ? यह सब उनकी उस अजर-अमर आत्माका प्रभाव है, जो अब उनके शरीर-रूपी सीमा-बन्धनोंसे मुक्त हो गई है। उनकी निःसीमताके इस एकमात्र बन्धनसे मुक्त हो जाने और उनके व्यापक जीवनकी वास्तविकतामें मिल जानेसे ही हम उनकी महत्ताको भलीभाँति समझ सके हैं।

—सी० चन्द्रशेखरन

'इण्डियन पी० ई० एन०']

# भारत-दूत रवीन्द्रनाथ

श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

श्री रवीन्द्रनाथका व्यक्तित्व नानामुखी था। उनकी प्रतिभा और कार्यावली दोनों नाना क्षेत्रोंमें प्रकाशित हुई थीं। भावप्रवणता और ज्ञाननिष्ठा, स्वाजात्यबोध और विश्वमानविकता, शांति और संग्राम प्रभृति धर्म और कर्म, जो आपाताद्दष्टिसे परस्पर-विरोधी समझे जायेंगे, इन सबोंने उनके चित्त और चरित्रमें एक अपूर्व और अनन्य साधारण सामंजस्य प्राप्त किया था। सुदक्ष मणिकारके अपने हाथोंसे कटे हुए भाखर हीरकखंडके न्याय, उनके व्यक्तित्वके औज्ज्वल्यने नाना भूमिसे अपनेको प्रकाशित किया था। जिस किसी ओरसे इसे देखा जाय, इसकी दीप्ति तथा वर्ण-वैचित्र्य दर्शकोंको मोहित कर देंगे। रवीन्द्रनाथ थे कवि, वे थे औपन्यासिक, वे थे नाट्यकार तथा नाट्य-कलाके प्रयोजक। वे संगीत और सुरके शिल्पी थे। कलाविद् तथा कृतकर्मा रूपकार भी थे। आध्यात्मिक अनुभूतिका आभास उनकी काव्य-रचनाओंमें सुपरिस्फुट है, और इसके साथ ही साथ वास्तविक जीवनमें दूरदृष्टि-सम्पन्न और चिन्ताशील कर्म-चेष्टा तथा सामाजिक और मानसिक जगत्‌में सुधार और संस्कार भी वे दिखा गए हैं। रसानुभूतिमय अन्तर्दृष्टि एवं वैज्ञानिक अवलोकन और विचार-शक्ति, इन दोनोंका ऐसा अनोखा सम्मेलन मानव-संस्कृतिके इतिहासमें नितान्त विरल है। इस विचारसे सत्यद्रष्टा और चिन्तानेता रवीन्द्रनाथको प्लातोन्, अरिस्तोतल, पतंजलि, लेओनार्दो-दा-विञ्चि और ग्योटे प्रभृति महामानवोंके समश्रेणिक कहना उचित होगा। साहित्यके क्षेत्रमें रवीन्द्र-रचनावलीको जगत्‌की दस या बारह प्रधान या श्रेष्ठ ग्रन्थावलियों अथवा महाकवियोंकी रचनावलियोंमें अन्यतम मानना पड़ेगा। बहुरसज्ञ और दर्शनशील समालोचक रवीन्द्रनाथके व्यक्तित्व तथा उनके साहित्यिक और अन्य नानाविध प्रकाशकी गंभीर और व्यापक आलोचना चिरकालके लिए करेंगे। रवीन्द्रनाथ अपनी कृतियोंके रूपमें एक विराट साहित्य-रत्न-भांडार चिरंतन कालके लिए हमें दे गए हैं; और उस साहित्यको तथा जीवनकी विचित्र कार्यावलीको लेकर एक क्रम-प्रवर्धमान 'रवीन्द्र-साहित्य' गठित होता रहेगा, जिसका प्रारंभ बँगला, अंग्रेजी, हिन्दी और अन्यान्य भाषाओंमें इस समय दीख पड़ता है।

रवीन्द्रनाथके व्यक्तिगत महत्त्वने अपनी भारतीय जातिको धन्य किया है। उनके बारेमें समझुच यह कहा जा सकता है—'कुलं पवित्रं जननी च कृतार्था'। रवीन्द्रनाथके व्यक्तित्व-गौरवसे हमारी मातृभूमि भारतवर्ष विश्व-मानव-सभामें कितनी उन्नत और गौरवान्वित हुई है, इसकी व्याख्या और निर्णय करना कठिन होगा। भारतके बाहर विभिन्न देशोंमें इस विषयमें थोड़ी-सी अभिज्ञताको प्राप्त करनेका मौका जिन्हें मिला है, वे जानते हैं कि रवीन्द्रनाथके लेखोंको पढ़कर पृथिवीके नाना देशोंके लोगोंके चित्तमें भारतकी संस्कृतिके ऊपर और साथ ही साथ भारतवासियोंके ऊपर कितनी गहरी श्रद्धा और सहानुभूति जाग्रत हुई है। रवीन्द्रनाथका व्यक्तित्व समग्र भारतवर्षके लिए एक अनमोल संपद् थी। इस संपद्‌के विषयमें अनेक सहृदय विदेशी व्यक्ति सचेतन भी थे; पर हम लोगोंमें से सब कोई शायद इसके मूल्यकी जाँच नहीं कर सकते थे। अमेरिकाके एक विख्यात लेखक विल् ड्यूरंट (Will Durant) ने किसी समय रवीन्द्रनाथको अपनी एक पुस्तक भेजी थी। उस पुस्तकमें उन्होंने अपने हाथसे रवीन्द्रनाथके नामपर समर्पणमें लिख दिया था—"You are the reason why India should be free." अर्थात्—'तुम ही भारतके लिए स्वतन्त्र होनेका प्रधान कारण या दावा हो।'

रवीन्द्रनाथके साथ सन् १९२७में मालय-उपद्वीप, यवद्वीप, बलिद्वीप और श्यामदेश (थाई भूमि) के भ्रमण करनेका दुर्लभ सौभाग्य मुझे मिला था। उस वक्त बलिद्वीपके रेसिडेंट या प्रधान डच् राजपुरुष (मैजिस्ट्रेट) श्रीयुक्त कारोन महोदयने मुझे कहा था—'आप लोग रवीन्द्रनाथजीके साथ रहते हैं, ज़रा ध्यान रखियेगा कि उनके स्वास्थ्यकी कुछ भी हानि न हो। आप लोगोंपर विशेषरूपसे गुरु भार है, क्योंकि रवीन्द्रनाथ न केवल आप लोगोंके देशके हैं, बल्कि वे समग्र मानव-जातिके लिए हैं।' कोई बीस

बरस पहले छात्रावस्थामें फ्रांसमें रहते समय एक महाराष्ट्रीय मित्रने कहा था—"He has been the greatest ambassador any country could have—he has been the greatest ambassador of India, whose services have rendered her high and great among nations."—अर्थात् 'रवीन्द्रनाथसे बढ़कर राजदूत पृथिवीके किसी देशको मिल नहीं सकता। भारतवर्षके लिए इनसे महान् दूत कभी नहीं हुआ। इनके कार्योंसे विश्वकी कुल जातियोंमें भारतका स्थान ऊँचा और महत्त्वपूर्ण हुआ है।'

यह निहायत सच्ची बात है। विश्वजनोंकी सभामें जहाँ इंग्लैण्ड और अमेरिकाकी शक्ति और ऐश्वर्यके कारण अंग्रेज़ों और अमेरिकनोंको सम्मान-सत्कार मिलता है; वहाँ विजित, पराधीन, घरवासी होते हुए भी परवासी भारतीयोंने सम्मानके आसनको प्राप्त किया है, ऐसा बहुशः देखा गया है। भारतवासियोंको जन-साधारणकी ओरसे श्रद्धा और सम्मान ज़रूर मिले हैं; पर शायद राष्ट्रनैतिक जलसोंमें या मामलोंमें भारतके लिए जगह नहीं है। परंतु बहुत-से स्थानोंपर भारतवासियोंको जनगणके हृदयसे स्वतः-उत्सारित प्रीति और सम्मान मिला है। इसका कारण यह है कि अपने काव्य, उपन्यास, ज्ञान तथा चिन्तासे भरे हुए प्रबंधों द्वारा, अपनी गीति-कविता और नाटकोंकी मानविकता और उनके आनुषंगिक रहस्य-बोधके अपूर्व सौन्दर्यके माध्यम द्वारा यूरोप, एशिया, अमेरिका, अफ्रीका और आस्ट्रेलेशिया इन पाँच महादेशोंकी विभिन्न जातियोंके मानवोंके चित्तके बीच रवीन्द्रनाथने अपना सिंहासन बना लिया। भारतके सनातन आदर्श और आकांक्षाने उनकी रचनाओंमें अपनी मूर्तिको नए तौरसे प्रकट किया है और विश्वके मानवगण भी उसी मूर्तिमें अपने-अपने हृदयोंकी आकांक्षाओंको देख सके हैं। इसीलिए रवीन्द्रनाथके ऊपर, उनकी भारतीय साधनाके आदर्शके ऊपर, उनकी जातिके ऊपर विभिन्न देशोंके मनुष्योंके मनमें इतनी प्रीति और अनुकंपा दिखाई देती है।

मैंने अपने जीवनमें विदेश-भ्रमण करते समय छोटी-बड़ी बहुत-सी घटनाओंमें से इस प्रत्यक्ष ज्ञानको प्राप्त किया है कि रवीन्द्रनाथसे मेरा समजातित्व है, इस कारण मैं रवीन्द्रनाथ ही के अपने देशका मनुष्य हूँ; इसलिए बाहरके देशोंके लोगोंमें मेरा आदर कितना ही बढ़ गया था। छात्रावस्थामें यूरोपमें ठहरनेके समय सन् १९२२ में जैसा देखा, सन् १९३८ में, जब मैं तीसरी बार यूरोप गया, तब भी वैसा ही देखा—रवीन्द्रनाथपर यूरोपके लोगोंकी श्रद्धा कम तो नहीं हुई, बल्कि बढ़ती ही जाती थी। अब भी यूरोपके सब देशोंमें लोग उनकी किताबें पढ़कर आनन्द—आध्यात्मिक तथा मानसिक आनन्द—लाभ कर रहे हैं; शक्ति और शान्तिको प्राप्त कर रहे हैं। केवल फ़ैशनकी लहरके सरपर सवार होकर दो रोज़ या दो सालके लिए यूरोप, अमेरिका, चीन, जापान इत्यादि देशोंके अधिवासियोंके चित्तको जय करनेके बाद रवीन्द्रनाथने फिर चिरकालके लिए उनसे विदा नहीं ले ली, अभी तक लोगोंने उन्हें मनके निराले कोनेमें श्रद्धाके सिंहासनपर बिठा रखा है। और आज अपनोंमें उनको नहीं पाकर, व्यक्तिगत रूपसे उनके सान्निध्यमें नहीं आ सके, इस दुःखसे उनके स्वदेश-वासी किसीसे जब मिलते हैं, तब उस नगण्य स्वदेशवासीके सहारे उनके प्रति अपने मनकी श्रद्धाका निवेदन करना चाहते हैं। इस सम्बन्धमें यहाँ मैं सन् १९२२ की अपनी एक क्षुद्र अभिज्ञताका ज़िक्र करूँगा, जिससे साबित होगा कि हमारे भारतके सम्मान-वर्धन करनेवाले रवीन्द्रनाथ कितने बड़े राजदूत बनकर देश-देशान्तरमें भ्रमण कर गए हैं। देश-देशान्तरमें उन्होंने भारतकी प्रतिनिधि-वाणी फैलाई है।

सन् १९२२ के मई-जून-जुलाई महीनोंमें मैंने इटली और ग्रीस देशोंकी सैर की थी। जुलाईमें इटलीके वेनिस नगरके ग्रीक राजदूतकी कचहरीमें जाकर ग्रीस देशमें उतरने और भ्रमण करनेकी अनुमतिके लिए हाज़िर होऊँगा, यह मैंने ठीक कर लिया था। अंग्रेज़ सरकारकी तरफ़से जो पासपोर्ट ( परिचय-पत्र ) मेरे पास था, लंदनसे निकलनेके पहले ही मैंने उसपर लन्दनके ब्रिटिश परराष्ट्र-विभागके दफ़्तरसे छाप लगवा ली थी कि महामहिम ब्रिटिश सरकारने मुझे ग्रीसमें सैर करनेकी आज्ञा दे दी है। इस आज्ञा-सूचक छापके नहीं रहनेसे जिस देशमें जानेकी इच्छा होगी, उस देशकी सरकार अपने यहाँ भ्रमणकी अनुमति नहीं देगी। यथानिर्दिष्ट शुल्क देकर ग्रीक राजदूतके दफ़्तरसे मुझे अपने पासपोर्टपर यह छाप लगवानी थी कि मैं बिना रुकावटके ग्रीसकी सैर कर सकूँगा। इस छापके बिना मुझे वहाँ उतरने ही नहीं

नायक' रवीन्द्रनाथ, 'संगीत-नायक' रवीन्द्रनाथ, 'चित्रकार' रवीन्द्रनाथ, 'कर्मी' और 'शिक्षाव्रत' रवीन्द्रनाथ, 'भारत-भास्कर' रवीन्द्रनाथ, 'भारतकी मेघध्वनि और सूर्यरश्मि' रवीन्द्रनाथ—इत्यादि रवीन्द्रनाथके व्यक्तित्वके बहुविध परिचय हैं। उनके कृतित्वने अपने देश, समाज और युगको उज्वल कर दिया है। पर इन परिचयोंमें 'भारत-राज-दूत' रवीन्द्रनाथका अवदान और कृतित्व कुछ कम नहीं है।

रवीन्द्रनाथ अपनी रचनाओंमें,—अपने काव्य, गान, गानके सुर, चित्र, नाटक, उपन्यास और प्रबन्ध इत्यादिमें,—अपनी 'विश्वभारती' और 'श्रीनिकेतन' में चिरंजीव हो रहेंगे; पर अपने जीवन-कालमें साहित्यमय कृतित्वके साथ अपने जीते-जागते व्यक्तित्वमें उन्होंने भारत तथा भारतवासियोंको जिस प्रकारकी मर्यादा और गौरव दिया है, उनके तिरोधानके बाद भारत और भारतवासी उससे बहुशः वंचित हो गए हैं। रवीन्द्रनाथकी मृत्युको हम कभी केवल व्यावहारिक मुनाफ़े और नुक़सानके हिसाबसे न देखें, वरंच रवीन्द्रके अस्तमित होनेके साथ भारतका गौरव कितना म्लान हुआ है, इसे सोचकर ऐसे दुर्भाग्यके गुरुत्वको समग्र भारतीय जातिकी ओरसे हम लोग कुछ न कुछ उपलब्ध कर सकें।

१६, हिन्दुस्तान पार्क, बालीगंज ]

---

# मेरे चित्र और उनका अर्थ

ध्वनिकी भाषा अनन्तके मौन-जगत्का एक क्षुद्रतम बिन्दु-मात्र है। विश्वकी अमर भाषा तो उसके इंगित द्वारा ही व्यक्त होती है। वह सदा चित्रों और नृत्यकी भाषामें ही बोलता है। विश्वकी प्रत्येक चीज़ रेखाओं और रंगोंकी मौन भाषामें यह प्रकट करती है कि वह उत्पत्तिका तार्किक परिणाम अथवा उपयोगकी एक वस्तु भर ही नहीं है; वरन् अपने-आपमें वह बेजोड़ और अपने अस्तित्वके निगूढ़ रहस्यकी वाहिका है।

किन्तु इस विश्वमें असंख्य ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें हम जानते ज़रूर हैं; पर इस तथ्यको स्वीकार नहीं करते कि उनका अपना एक अस्तित्व है—भले ही वह हानिकर हो या लाभदायक। मेरे लिए यही पर्याप्त है कि एक फूलका अस्तित्व एक फूलके रूपमें है; किन्तु मेरी सिगरेटका मेरे ऊपर अपना अस्तित्व स्वीकार करानेका इससे अधिक और कोई दावा नहीं है कि वह मेरी धूम्रपानकी आदतके लिए थोड़ी-सी उपयोगी है।

दूसरी ऐसी चीज़ें हैं, जिनके रूपमें एक तरहका चरित्र अथवा ताल (लय) है, जो हमसे उनका अस्तित्व स्वीकार कराता है। सृष्टिकी व्यापक पुस्तकमें वे रंगीन पेंसिलसे लिखे हुए वाक्य हैं, जिनकी ओरसे हम आँख नहीं मूँद सकते। वे बरबस हमें संबोधित करके मानो कहते हैं—'देखो, यह हम हैं!' और हमारा मस्तिष्क बिना यह पूछे कि 'तुम यहाँ क्यों हो?' उनके अस्तित्वके सामने नत-मस्तक हो जाता है।

चित्रमें चित्रकार असंदिग्ध यथार्थताकी भाषा लिखता है, और हम केवल इसीसे सन्तुष्ट हो जाते हैं कि हम उसे देखते हैं। भले ही यह किसी सुन्दरीका चित्रांकन न होकर एक मामूली गदहेका ही हो या किसी ऐसी चीज़का, जो अपनी कलापूर्ण विशेषताके सिवा प्रकृतिके किसी सत्यांशका दावेदार न हो।

अक्सर लोग मुझसे मेरे चित्रोंके अर्थ पूछा करते हैं। पर मैं अपने चित्रोंकी ही तरह चुप बना रहता हूँ। उन्हें समझाना मेरा काम नहीं है; यह उन्हींका काम है कि वे अपना अर्थ स्वयं व्यक्त करें। उनमें उनकी अपनी प्रतिकृतिसे कोई विपर्यय नहीं है। यदि वह प्रतिकृति अपने साथ उनका पूर्ण मूल्य और महत्व लिए हुए है, तो वे क़ायम रहते हैं; अन्यथा वैज्ञानिक सत्य या नैतिक औचित्यके बावजूद वे तिरस्कृत होकर भुला दिए जाते हैं।

मास्को, १५ सितम्बर, १९३० ]

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

# गुरुदेव और गांधी

श्री जे० रामचन्द्रन

रवीन्द्रनाथ और गांधी—ये दो नाम हैं, जो आजके भारतवर्षसे संसारके एक कोनेसे दूसरे कोने तक गूँजते हैं और पुनः प्रतिध्वनित होते हैं। अब एक तीसरा नाम भी है—नेहरूजीका। संसारके अनेक देशोंमें और भारतवर्षके करोड़ों लोगोंके मनोंमें इस पीढ़ीके ये तीन भारतवासी इस प्राचीन तथा साथ ही तरुण देशकी भावना और प्रयासके सर्वोत्तम और सर्वोच्च प्रतिनिधिके रूपमें नज़र आते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक जगह लोगोंने उनके व्यक्तित्व, उनके कार्यों और कारनामोंकी तुलना की है। रवीन्द्रनाथ और गांधीका इस प्रकारका तुलनात्मक विश्लेषण अत्यन्त कठिन और कभी-कभी निरर्थक है। आसानीसे उनकी तुलना नहीं की जा सकती। वे भिन्न-भिन्न नमूनोंको प्रकट करते हैं। सिन्धु और गंगाके समान उनके जीवन भिन्न दिशाओंमें चलते हैं—यद्यपि मनुष्यके लिए उन्होंने समान कीमती भेंट प्रदान की है। आम और सन्तरेके पेड़ोंकी जड़ोंका एक ही भूमिमें होना सम्भव है; पर दोनोंके फल भिन्न होते हैं। मज़ेदार आम और मीठे सन्तरेकी तुलना करना न केवल कठिन ही है, वरन् अनुचित भी है। पर तो भी एक व्यापक दृष्टिसे उनकी तुलना की जा सकती है। इस प्रकारकी तुलना यह निर्णय करनेके लिए नहीं होगी कि सन्तरेकी अपेक्षा आम अच्छा होता है या आमकी अपेक्षा सन्तरा। इस तुलनाका अभिप्राय यह प्रकट करना होगा कि खानेमें आम कैसा मज़ेदार होता है और सन्तरा किस प्रकार स्वादिष्ट होता है। उनकी तुलना दलबन्दीकी तुलना नहीं होगी और न वह सम्भव है। बस, गांधी और रवीन्द्रकी तुलना भी अगाध श्रद्धा और भक्तिके पूर्वपृष्ठमें ही की जा सकती है। इस प्रकारके तुलनात्मक अध्ययनमें हम यह नहीं मालूम करेंगे कि कौन किससे बड़ा था, वरन् यह कि एककी महत्ता दूसरेके लिए कितनी बहुमूल्य और शक्तिवर्धक थी। वास्तविक महान पुरुषोंमें कभी संघर्ष नहीं होता। वे एक दूसरेको अधिक महान बताते हैं। छोटे आदमी ही फ़ज़ूलकी तुलनाओं और विवादोंका शोरोगुल मचाते हैं।

उपर्युक्त भावनासे ही इस अध्ययनका प्रयास किया जाता है।

महाकवि और कलाकारकी प्रतिभा-प्राप्त रवीन्द्रने भारत-भूमिसे वह शक्ति ग्रहण की थी, जिसने उन्हें भारतकी सांस्कृतिक जाग्रति (Renaissance) का सर्वमान्य नेता बना दिया था।

बुद्ध और ईसाके-से उच्चतम कोटिके नैतिक क्रान्तिकारीकी प्रतिभाके कारण गांधीने उसी भूमिसे उस पोषणको ग्रहण किया, जिसने उनको भारतवर्षके सामाजिक और राजनीतिक उद्धारका एकछत्र नेता बनाया है।

जिस प्रकार रवीन्द्रकी सांस्कृतिक राष्ट्रीयताने संकीर्ण बन्धनोंको तोड़कर विशाल अन्तर्राष्ट्रीय तथा सम्पूर्ण मानव-समाजको गले लगाया, उसी प्रकार गांधीकी राजनीतिक राष्ट्रीयतामें मानव-समाजके उद्धारका एक संदेश निहित है। जिस कारण कवि और कलाकारने सम्पूर्ण मानव-समाजको अखंड और आत्मीय माना, उसी कारण सन्त और नेताने भी मानव-समाजको उसी भाँति अपनाया। दोनोंने भिन्न मार्गोंसे मानव-समाजके जीवनको प्राणवत और क्रान्तिवत किया है। जिस शक्तिने दोनोंका जो रूप दिया, वह एक ही थी। वह शक्ति भारतीय संस्कृति और भारतकी अमर आत्माकी भावना थी। वह भावना और शक्ति भिन्न, पर महान व्यक्तियों द्वारा प्रस्फुटित हुई। यद्यपि भावना और शक्ति एक ही रही, और भावना तथा शक्तिके एक होनेपर भी उनके फल भिन्न थे, भिन्न क्षेत्रोंमें थे और थे भिन्न ढंगसे।

भारतकी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता, जिसको रवीन्द्रनाथने रूप दिया, जिसका उन्होंने पथ-प्रदर्शन किया और नेतृत्व किया, स्वतंत्र और विशाल भारतके लिए वह अपरिहार्य थी और है। जब तक भारतवर्ष अपनी सांस्कृतिक आत्माके स्रोतोंको दुबारा खोजकर नहीं निकालता और उनमें प्रतिष्ठापित शक्ति और सौन्दर्यको ग्रहण नहीं करता, तब तक उसका राजनीतिक और सामाजिक पुनर्संगठन बालूकी नींवपर बने मकानके समान होगा। यदि भारतकी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रताके भवनको चट्टानके आधारपर अवलम्बित होना है, तो उस प्रासादको भारतकी सांस्कृतिक देन और विकासपर खड़ा करना होगा। राष्ट्रों या लोगोंके किसी भी आख़िरी विश्लेषणमें एकमात्र अन्तिम अन्तर उनकी संस्कृतियोंका माना जाता है। इसी कारण बोल्शेविक प्रजासत्तावादके साम्यकरणके

स्टीमरोलरको भी सोवियट संघमें शामिल होनेवाले प्रजातंत्रोंकी सांस्कृतिक स्वतंत्रताकी गारन्टी करनी पड़ी। किसी राष्ट्रकी सांस्कृतिक स्वतंत्रताके विनाशके मानी हैं उस राष्ट्रकी निश्चित मौत।

सांस्कृतिक विरोधी राष्ट्रीयताकी भित्तिपर असत्य और कपटपूर्ण राजनीतिक राष्ट्रीयताके निर्माण करनेके प्रयाससे क्या हम भारतवर्षमें अवगत नहीं हैं? हमारी वर्तमान राजनीतिक राष्ट्रीयताकी आधी कमज़ोरीका स्रोत इस झूठे सांस्कृतिक आधारमें है। हम विदेशी भाषामें बोलते, लिखते और गाते हैं, विदेशोंके रीति-रिवाजोंकी हम नक़ल करते हैं, अपने साहित्य और इतिहासके बारेमें कुछ न जानते हुए उनके साहित्य और इतिहासका अध्ययन करते हैं, उनके विचारोंमें ही सोचते हैं और फिर कल्पना करते हैं कि हम राजनीतिक दृष्टिसे स्वतंत्र हो सकते हैं! इससे बढ़कर और कोई भ्रम और पाश नहीं हो सकता। वास्तविक और कारगर राजनीतिक कार्योंकी शक्तिका स्रोत राजनीतिसे सर्वथा अलग ही होना चाहिए—राजनीतिसे नितान्त अलगसे शक्ति आनी चाहिए। वह शक्ति हमें राष्ट्रकी आत्मा और उसके दिमाग़से मिलनी चाहिए। सब राष्ट्रोंके इतिहासमें यही बात हुई है। यदि फ्रान्सकी क्रान्तिकी शक्ति जनताकी भूख और उसके उत्पीड़नसे प्राप्त हुई थी, तो वह समान रूपसे फ़रासीसी कवियों, लेखकों और विचारकोंकी जाग्रति और स्फूर्तिसे भी उत्पन्न हुई थी, जिन्होंने फ़रासीसी स्त्रियों और पुरुषोंकी आत्माओंको हिला दिया था। क्रान्तिका बाह्य रूप उसके आन्तरिक रूपसे ही आता है। सांस्कृतिक क्रान्तिसे ही राजनीतिक क्रान्ति सम्भव है। इसीलिए तो हमें वाल्टेयर और रूसोको उतना ही आवश्यक और प्राणदाता समझना चाहिए, जितना कि दाँतों (Danton) और रौबिस्पियरको। आयरलैण्डमें राजनीतिक क्रान्तिको उसकी सांस्कृति क्रान्तिसे स्फूर्ति मिली, और जार्ज रसेल*, डब्लू बी० ईट्स, सिंज और अन्य इसलिए उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितने कि डी वेलेरा, ग्रिफ़िथ और कालिंस। भारतवर्षमें रवीन्द्रनाथ उतने ही महत्त्वपूर्ण और प्राणदाता हैं, जितने कि गांधी या नेहरू। केवल गांधीका नैतिक आदर्शवाद और केवल रवीन्द्रका सांस्कृतिक आदर्शवाद दोनों मिलकर ही भारतवर्षकी महत्ता और स्वतंत्रताका निर्माण करेंगे। रवीन्द्रसे हमें दृष्टि, समझ और गहराई प्राप्त होती है और गांधीसे प्रगति, शौर्य और सफलता। हम उनमेंसे किसीके बिना कैसे कर्त्तव्य पालन कर सकते हैं?

अब दो शब्द उनके व्यक्तित्वके बारेमें लिखने हैं। साधारण धारणा यह है कि रवीन्द्रमें पाश्चात्यका पुट अधिक था और गांधीमें पौर्वात्यका पुट अधिक है। दोषरहित और ढीली पोशाकमें उन्हें देखकर, उनके आधुनिक विचारोंको सुनकर और उनके ढंगोंको देखकर हर कोई यह भूल कर सकता है कि उनपर अपेक्षाकृत पश्चिमका अधिक प्रभाव था। पर उनको पूर्णतया पूर्वी मालूम करनेके लिए उन्हें बस तनिक कुरेदनेकी आवश्यकता थी। वे सोलहो आने हिन्दुस्तानी थे। बचपनसे ही उनका मन भारतकी देनसे ओतप्रोत था। इसके यह मानी नहीं कि वे एक संकीर्ण राष्ट्रवादी थे, वरन यह कि उनके सम्पूर्ण जीवन-स्रोत भीतरी तहमें पूर्वी स्रोत ही थे। इसके विपरीत गांधीको लँगोटी पहने और आश्रमके कठोर वातावरणमें तितुद्ध जीवन बिताते देखकर कोई यह भूल कर सकता है कि वे सौ फ़ी-सदी पूर्वी हैं और उन्होंने पाश्चात्य प्रवृत्तिको निकाल बाहर किया है। पर अगर आप गांधीजीका अध्ययन करें, तो आपको मालूम होगा कि उनमें पाश्चात्य सामग्री बहुत है। उनकी घड़ी उनकी अभिन्न साथिन है। उनके जीवनकी समय-नियमितता पाश्चात्य विचार है। उनके संगठन और आन्दोलनके ढंग पाश्चात्य नमूने हैं। सामूहिक मानवी उत्थान और अहिंसाका उनका विचार और सो भी व्यावहारिक राष्ट्रीय अस्त्रके रूपमें, उनके समाज-सुधार-सम्बन्धी विचार, उनका स्त्रियोंके सम्बन्धमें विचार—ये सब पाश्चात्य संस्कृतिके उच्चतम विचारोंसे ओतप्रोत हैं। गांधी और रवीन्द्र पूर्व और पश्चिमके सुन्दर और उच्च मिलनका प्रतिनिधित्व करते हैं; पर दोनोंमें रवीन्द्र अपेक्षाकृत अधिक पूर्वी थे।

परमात्मा करे, गंगा और सिन्धुके समान वे भारतकी आध्यात्मिक देनके हिमालयसे सर्वदा बहते रहें, अबाध रूपसे भारतीय मनुष्यतामें प्राणोंका संचार करते रहें और सार्वभौम मनुष्यके महासागरमें उसको अन्य सब राष्ट्रोंके साथ समान और शानदार बन्धुत्वकी ओर खींचते रहें।

* जो ए० ई० के नामसे प्रसिद्ध हैं। 'विशाल भारत' के अंगरेज़ी पढ़े पाठकोंसे हमारा आग्रह है कि वे ए० ई० की अन्य पुस्तकें नहीं, तो उनकी 'National Being' ज़रूर पढ़ें। —सम्पादक

# रवीन्द्रनाथ और आधुनिक हिन्दी-साहित्य

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

आधुनिक हिन्दी-साहित्यने रवीन्द्रनाथसे क्या प्रेरणा पाई है, यह बात नाप-तौलकर ठीक-ठीक बता देना संभव नहीं है। प्रवर्द्धमान आधुनिक हिन्दी-साहित्यने इतने स्थानोंसे अपना पोषक खाद्य संग्रह किया है और कर रहा है कि सबका हिसाब लगाना संभव हो ही नहीं सकता। जीवित जन्तुकी मांस-पेशियों और रक्त-कणोंमें किस खाद्यने कब क्या वस्तु दान की है, इसका हिसाब कौन बता सकता है ! ऐसे साहित्यिक लेख हमने पढ़े हैं, जिनमें एक-एक पंक्तियाँ उद्धृत करके इस कविके ऊपर उस कविका प्रभाव सिद्ध किया गया है ; पर यह नितान्त ऊपरी विवेचना है। पंक्तियोंका एक-जैसा दिख जाना प्रभावका द्योतक नहीं है। प्रभाव भीतरी होता है। वह आत्मा और मनको प्रेरणा देता है। वेश-भूषाके अनुकरणको प्रभाव कहना ग़लती है। रवीन्द्रनाथकी तीन दर्जनसे अधिक पुस्तकें हिन्दीमें अनूदित हुई हैं। किसी-किसीके अनुवादमें एकाधिक अनुवादकोंने प्रयत्न किया है। 'चित्रांगदा'के तीन अनुवाद हमारे जाने हुए हैं। 'गीतांजलि'के भी कई अनुवाद हो चुके हैं। कुछ अनुवाद मूल बँगलासे हुए हैं और कुछ उसके अँगरेज़ी अनुवादसे। 'स्मरण'के भी एकाधिक अनुवाद हुए हैं। अब भी अनुवाद ज़ारी हैं और कई बार एक-एक कविताके कई-कई अनुवाद प्रकाशित होते रहे हैं। पर सब मिलाकर ये अनुवाद इस बातके प्रमाण नहीं हैं कि हिन्दीके आधुनिक साहित्यको इनसे प्रेरणा मिली है। यद्यपि इतना निर्विवाद है कि हिन्दीके साहित्यिक इससे प्रभावित हुए हैं। और साहित्यिकोंका प्रभावित होना ही साहित्यके प्रभावित होनेका मूल है।

'गीतांजलि'में जो मरमी भाव है, जिसे पश्चिममें मिस्टिसिज़्म कहा गया था और उसीके तौलपर हिन्दीमें उसके लिए 'रहस्यवाद' शब्द चला दिया गया, उसने हिन्दीके कवियोंको बहुत प्रभावित किया था। कितने ही नौसिखुओंने क़लम सँभाली। फिर एक ऐसा भी जमाना गया है, जब छायावादके नामपर ऐसी कविताएँ लिखी गई हैं, जो नितान्त उथले विचारोंकी उपज थीं और जिनके लिखनेवालोंमें से बहुतेरे अनुभवहीन व्यक्ति थे। इन कविताओंको लेकर हिन्दीमें काफ़ी आन्दोलन चला। पक्ष और विपक्षमें नाना प्रकारके तर्कजाल उपस्थित किए गए। कभी-कभी इन असंबद्ध उथले विचारोंके समर्थक अपने पक्षके समर्थनके लिए रवीन्द्रनाथका नाम लेते थे और कभी-कभी तो कवितामें अस्पष्टताको एक आवश्यक गुण कहकर भी विज्ञापित किया गया था। इस सिलसिलेमें भी रवीन्द्रनाथका नाम बराबर याद किया जाता रहा और कभी-कभी तो उनके लिखे हुए प्रबंधोंसे उद्धरण भी दिए जाते रहे, जिनसे यह साबित होता था कि वे अस्पष्टताके पक्षपाती हैं। मैंने इस प्रकारके जो दो-एक उद्धरण देखे हैं, उनमें यह नहीं बताया गया है कि वे किस पुस्तक या निबंधसे लिए गए हैं, इसलिए यह मेरे लिए कठिन ही है कि उनकी वास्तविकताकी जाँच कर सकूँ। परन्तु मैं जानता हूँ कि रवीन्द्रनाथकी एकाध कविताओंमें इस तरहकी बात आई है, जिसे उनकी काव्य-धारासे अपरिचित व्यक्तिको संदेह हो सकता है कि उनमें अस्पष्टताकी प्रशंसा की गई है। सही बात यह है कि प्रत्येक आध्यात्मिक साधककी भाँति रवीन्द्रनाथने भी एक ऐसी अवस्थाको स्वीकार किया है, जो वाणीके अतीत है। काव्यका अदना विद्यार्थी भी जानता है कि अनादिकालसे सहृदय लोग एक ऐसी वस्तुका अस्तित्व स्वीकार करते आये हैं, जो वक्ता, शब्दानुशासन, अर्थ और व्याख्याके परे हैं।

तो प्रकृत बात यह है कि रवीन्द्रनाथके नाम और काव्य तथा अन्य लेखोंने एक जमानेमें हिन्दी-साहित्यके तर्क-युद्धको काफ़ी सजग और गर्म बना रखा था, और कौन कह सकता है कि इन सबका सम्मिलित फल साहित्यके नवीन वेगको और अधिक गतिमान नहीं बना दिया है ? हिन्दीमें एक महत्त्वपूर्ण किन्तु कमज़ोर साहित्य छायावादकी प्रतिक्रियाके फलस्वरूप व्यंग्यात्मक साहित्यके रूपमें बना है। महत्त्वपूर्ण इसलिए कि इसने साहित्यिकोंमें आत्मचेतनाका भाव ज़रूर जगाया है और कमज़ोर इसलिए कि इसमें एक भी ऐसी कृति नहीं है, जो दस-बीस वर्ष तक भी जी सके।

ज्योंही अधकचरे और अनुभवहीन मौसमी कवियोंका आवरण हटा त्योंही कुछ स्वस्थमना और वास्तविक कवियोंका प्रादुर्भाव हुआ। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्माने नवीन साहित्यको प्राणवान और गतिशील बनाया। इनमें शायद सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ही ऐसे थे, जिनपर रवीन्द्रनाथका प्रत्यक्ष प्रभाव बहुत आरम्भिक अवस्थामें ही पड़ा था। वे बंगालमें ही पैदा हुए थे और बंगाली वायुमण्डलके प्रत्येक उपादानसे रस निचोड़ सके थे। शुरूमें 'निराला' विद्रोही कवि थे। उनकी सबसे बड़ी देन उनका उत्कट विद्रोह है, जिसने नई पौधके कवियोंको पुरानी रूढ़ियोंके प्रति विद्रोही बना दिया और पुराने ढर्रेके कवियोंको झकझोर दिया। 'निराला'की प्रारम्भिक कविताओंमें इसीलिए झकझोर देनेवाला तत्व ही प्रधान है, और यही कारण है कि व्यंग्यात्मक साहित्यका एक बहुत बड़ा हिस्सा सीधे 'निराला'को जवाब देनेकी चेष्टामें लिखा गया है। सुमित्रानन्दन पन्त भी विद्रोही कवि थे। उन्होंने केवल काव्यके वक्तव्य-विषयकी ही आलोचना नहीं की, व्याकरण और छन्द तकको चुनौती दी। परन्तु पन्त शुरूसे ही रचनात्मक अधिक थे। उनका विद्रोही रूप गौण था। रवीन्द्रनाथका प्रभाव इनपर भी था; यद्यपि न तो निराला ही और न पन्त ही हू-ब-हू वही हैं, जो रवीन्द्रनाथ थे। पन्तने रवीन्द्रनाथको ठीक-ठीक समझनेकी कोशिश की। उन्होंने बँगला और हिन्दी भाषाकी प्रवृत्तिका सूक्ष्म विवेचना किया और बड़ी अद्भुत सफलताके साथ हिन्दी-छन्दोंकी प्रकृतिको पहचान लिया। पन्तने प्रथम बार निर्भीकतापूर्वक घोषणा की, न तो वर्णिक वृत्त ही और न संस्कृत और बँगलाके अनुकरणपर लिखे हुए अतुकान्त पद्य ही हिन्दीकी प्रकृतिसे सामंजस्य बनाए रख सकते हैं। निस्सन्देह पन्तके निष्कर्ष चरम और निर्भ्रान्त नहीं थे; पर वे अधिकांशमें ठीक और युक्तियुक्त थे। जो लोग बँगला-छन्दोंके अनुकरणपर हिन्दीमें छन्दः संस्कार करनेपर तुले हुए थे, उनका प्रभाव जाता रहा। यह बहुत बड़ा कार्य था। जब आधुनिक कविताका स्वरूप स्थिर हो जायगा, तो भावी समालोचक पन्तके इस महान् कार्यकी अधिक न्यायपूर्वक प्रशंसा कर सकेगा। परन्तु यह भुलाया नहीं जा सकता कि उक्त कार्यको सूक्ष्मतापूर्वक निबाहते समय पन्तके सामने रवीन्द्र-साहित्य और तत्प्रभावित हिन्दीके साहित्यिक थे। 'निराला'ने बादमें चलकर रवीन्द्रनाथके छन्दोंके आधारपर 'गीतिका'में सात, बारह, सोलह आदि मात्राओंके गान लिखे; परन्तु ये गान और छन्द हिन्दीमें अभी तक लोकप्रिय नहीं हो सके हैं। किन्तु प्रसादजी केवल विद्रोही कवि नहीं थे। उनकी समस्त काव्य-साधनाके पीछे उनका अध्ययन है, इसीलिए वे बुद्धिवृत्तिक या intellectual अधिक हैं। उनके नाटक 'अजातशत्रु'में रवीन्द्रनाथकी 'नटीकी पूजा'का प्रभाव स्पष्ट है; पर जहाँ तक उनकी कविताओंका सवाल है, वे अधिक मौलिक हैं। रवीन्द्रनाथकी प्रतिभामें यद्यपि बौद्धिकता कम नहीं है; परन्तु उसके अन्यान्य अंगोंने उसे बहुत उचित सामंजस्यमें रख दिया है। प्रसादजीके अन्यान्य उपादान अपेक्षाकृत कम वज़नदार थे, इसलिए उनकी बुद्धिवृत्ति सबपर हावी हो गई है। फिर भी प्रसादजीपर रवीन्द्रनाथका अप्रत्यक्ष प्रभाव था। शायद 'गीतांजलि'के पुरस्कृत होनेके बाद ही उन्होंने अपने विषय और भाषामें परिवर्तन किया था।

परन्तु रवीन्द्रनाथकी मर्म-भावनाका ठीक-ठीक प्रतिरूप महादेवीकी कविताओंसे मिलता है, यद्यपि मेरे लिए यह कह सकना कठिन ही है कि महादेवी वर्माने रवीन्द्रनाथसे कितनी प्रेरणा पाई थी। कविकी मृत्युके बाद महादेवी-जीने एक कविता लिखी थी, जो 'वीणा'में प्रकाशित हुई थी। मेरा यह दावा नहीं है कि रवीन्द्रनाथके सम्बन्धमें जितने कवियोंने श्रद्धांजलि रूपमें-कविताएँ लिखी हैं, उन्हें मैंने देख लिया है, और इसीलिए 'सर्वोत्तम' जैसा विशेषण तो मैं नहीं दे सकता; परन्तु मेरा अनुमान है कि महादेवीजीवाली कविता बेजोड़ थी। मन और प्राणपर बहुत गहरा चिह्न हुए बिना इस प्रकारकी कविता लिखी ही नहीं जा सकती। असलमें जिसे रहस्यवाद कहकर 'गीतांजलि'के समालोचकोंने प्रशंसा की है, वह भाव हिन्दीके कवियोंमें सिर्फ़ महादेवीकी कविताओंमें ही पाया जाता है। आत्मार्पणकी व्यग्र व्याकुलता, किसीके पदचापके प्रति उत्कर्ण उत्सुकता और एकान्त तन्मयताकी दृष्टिसे महादेवीकी कविताएँ 'गीतांजलि'की जातिकी ही हैं।

'गीतांजलि'के अंगरेज़ी अनुवादने हिन्दीमें उस सुकुमार गद्य-शैलीको जन्म दिया है, जिसे नाट्य-काव्य कहा जाता है। बाबू रायकृष्णदासकी 'साधना' पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे सावधान पंडितसे भी प्रशंसा प्राप्त कर सकी है।

नए-नए लेखक अब भी गद्य-काव्य लिखते जा रहे हैं। मैंने दिनेशनन्दिनी चोरड्याकी लिखी हुई ऐसी रचनाएँ देखी हैं, जो यद्यपि 'गीतांजलि'की तरह आध्यात्मिक ऊँचाई पर ले जानेवाली तो नहीं हैं, पर सरस ज़रूर हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुरने एक प्रबन्ध लिखा था—काव्यकी उपेक्षिताएँ। इस प्रबन्धने मैथिलीशरण गुप्त जैसे लोक-प्रिय और उत्कृष्ट कविको प्रेरणा दी है, और इस प्रेरणाने न केवल हिन्दी-भाषाको 'साकेत'-जैसा काव्य उत्पन्न करके गौरवान्वित किया है, बल्कि समूचे भारतीय साहित्यको भी महिमान्वित बनाया है। रवीन्द्रनाथकी प्रतिभाने हिन्दी-साहित्यको और कुछ न भी दिया होता और केवल मैथिलीशरण गुप्तको यह काव्य लिखनेके लिए ही प्रेरित किया होता, तब भी हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें उसका स्थान चिर-स्मरणीय बना रहता। 'साकेत' हिन्दीके उत्तम काव्योंमें से एक है।

कबीरकी सौ कविताओंका जो अंगरेज़ी-अनुवाद रवीन्द्रनाथने किया था, उसने हिन्दी-साहित्यके इतिहासको नवीन चिन्तन सामग्री ही नहीं दी, समस्त हिन्दी-भाषी जनताको दृप्त और तेजस्वी बना दिया। मिश्र-बन्धुओंके 'हिन्दी-नवरत्न'के प्रथम संस्करणमें कबीरको कोई भी स्थान नहीं मिला था। रवीन्द्रनाथने कबीरका जब आदर किया, तो द्वितीय संस्करणमें कबीरको भी एक रत्न माना गया। नौकी संख्या दुरुस्त रखनेके लिए भूषण और मतिरामको 'त्रिपाठी-बन्धु' कहकर काम चला लिया गया। परन्तु एक दल ऐसा भी निकला, जो नई पौधके युवकोंको रवीन्द्रनाथकी 'बँगलाके प्रत्येक ताल-सुरपर नाचते' देख क्षुब्ध हो उठा था। बाबू श्यामसुन्दरदासने ऐसे युवकोंको गौरवबोध करानेके लिए ही ज़रा कड़े शब्दोंमें रवीन्द्रनाथकी ख़बर ली है! 'बँगलामें वर्तमान कवीन्द्र रवीन्द्रको भी कबीरका ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। अपने रहस्यवादका बीज उन्होंने कबीरमें पाया, परन्तु उनमें पाश्चात्य भड़कीली पालिश भी है। भारतीय रहस्यवादको उन्होंने पाश्चात्य ढंगसे सजाया है। इसीसे यूरोपमें उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई है।' इस अवतरणमें लेखकका उद्देश्य चाहे जो भी रहा हो, इसकी बातें ठीक नहीं हैं। वस्तुतः रवीन्द्रनाथ इतनी हिन्दी नहीं जानते थे कि मूलमें कबीरके भावोंको पढ़ सकें। आचार्य क्षितिमोहन सेनके अनुवादोंके आधारपर ही उन्होंने अपना अनुवाद किया था और उसके पहले वे कबीरसे नाम-मात्रको ही परिचित थे। 'कथा' नामक अपने काव्यमें उन्होंने 'कबीर' पर एक कविता लिखी है, और सूरदास और तुलसीदासपर भी कविताएँ लिखी हैं; परन्तु इन सबको उन्होंने नाभादासके 'भक्तमाल' के आधारपर लिखी थी। 'भक्तमाल' भी उन्होंने मूल रूपमें नहीं देखा था। आजसे सैकड़ों वर्ष पहले नाभादासके 'भक्तमाल' और उसकी प्रियादासवाली टीकाका बँगला-अनुवाद किसी कृष्णदास (लालदास?) नामक महात्माने किया था। कविने उसी अनुवादको देखा था। कबीरका प्रत्यक्ष परिचय तो उन्हें बहुत बादमें हुआ और उसके बहुत पहले उन्हें वह चीज़ प्राप्त थी, जिसे 'रहस्यवाद' कहा जाता है। जो हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीरके अनुवादका जो अन्तर-राष्ट्रीय सम्मान हुआ, उसने हिन्दीके साहित्यिकोंके चित्तकी लघुता-ग्रन्थिको शिथिलबन्ध बना दिया।

रवीन्द्रनाथके महिमाशाली व्यक्तित्वने हिन्दीके साहित्यको दबा नहीं दिया, बल्कि उसके निर्माताओंमें आत्म-गौरव और आत्म-चेतनाका भाव जाग्रत कर दिया। हिन्दी आज भारतवर्षकी उन्नत भाषाओंमें गिनी जाती है, एक दिन आयगा—जो बहुत दूर नहीं है—जब वह संसारकी उन्नत भाषाओंमें गिनी जायगी, उस दिनका आलोचक यह निश्चय ही लक्ष्य करेगा कि इस साहित्यके आदि-निर्माताओंको दृप्त और साहसी बनानेमें रवीन्द्रनाथकी प्रतिभाका जबर्दस्त हाथ है।
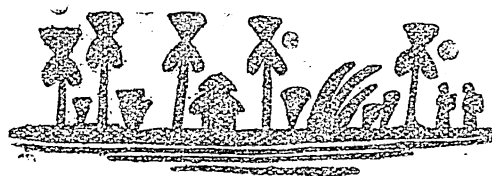
# गुरुदेव और हिन्दी

बनारसीदास चतुर्वेदी

कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके विषयमें अधिकारपूर्वक कुछ भी लिखना मेरी शक्तिके बाहरका काम है। न तो मुझे उनके निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो उनके व्यक्तित्वपर कुछ प्रकाश डाल सकूँ और न मैं बँगला-भाषा ही भलीभाँति जानता हूँ, जो उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओंके विषयमें कोई बात कह सकूँ। उनके शिक्षा-सम्बन्धी प्रयोगोंके बारेमें—उदाहरणार्थ शान्तिनिकेतनपर—शिक्षा-विशेषज्ञ ही लिख सकते हैं और उनके ग्राम-संगठन-विषयक कार्य (श्रीनिकेतन) पर सम्मति प्रकट करना उस विषयके जानकारोंके लिए ही उचित होगा। गुरुदेवकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी, और उन्होंने इतने विभिन्न क्षेत्रोंमें कार्य किया था कि उनके व्यक्तित्व तथा कार्यपर यथोचित प्रकाश डालनेके लिए अनेक विद्वानोंकी आवश्यकता होगी।

केवल एक विषय ऐसा है, जिसपर शायद एकाध बात मैं कह सकूँ, और वह है 'गुरुदेव और हिन्दी', यद्यपि इस विषयपर भी बन्धुवर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी मुझसे कहीं अधिक योग्यता तथा अधिकारपूर्वक लिख सकते हैं।

प्रारम्भमें ही यह कहनेकी ज़रूरत है कि गुरुदेव शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे ही हिन्दी-ग्रन्थों, लेखों या कविताओंको पढ़ते थे, हिन्दी-प्रचारका प्रश्न उनके लिए गौण ही था। उन्होंने अनेक बार इस बातको दुहराया था—'आप लोग अपने साहित्यको ऐसा सर्वांगीण तथा उच्चकोटिका बनाइए कि उसे पढ़नेके लिए अन्य भाषा-भाषियोंके हृदयमें उत्साह उत्पन्न हो।'

गुरुदेव पूर्ण स्वाधीनताके प्रबल पक्षपाती थे। किसी प्रकारकी ज़ोर-ज़बरदस्ती उनके स्वभावके सर्वथा विपरीत थी। क़ानूनी लाठीके भरोसे हिन्दी-प्रचारका समर्थन वे कदापि न करते। साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रमें संख्याका उनके लिए कोई महत्त्व नहीं था।

हम लोग हिन्दीवाले इस बातपर प्रायः अभिमान किया करते हैं कि हमारी भाषाके बोलनेवालोंकी संख्या पन्द्रह करोड़ है। गुरुदेवने एक बार कहा था :—

"Do not rest contented with the accidental advantage of your numbers. Attract people by creating great creative literature."

अर्थात्—'आप लोग इस बातसे सन्तुष्ट न बने रहें कि हमारी भाषा हिन्दीके बोलनेवाले इतने ज़्यादा हैं। हिन्दीवालोंका यह लाभ (संख्याका अधिक होना) आकस्मिक ही है। उत्तमतर यही होगा कि आप लोग उच्चकोटिके साहित्यकी सृष्टि करके अन्य भाषा-भाषियोंको अपनी ओर आकर्षित करें।'

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

हम लोगोंको, जो हिन्दी-साहित्यिक हैं और साथ ही अपनी मातृभाषाको राष्ट्रभाषाके पदपर आसीन देखना चाहते हैं, गुरुदेवके इन शब्दोंपर ध्यान देना चाहिए। कोई भी स्वाभिमानी प्रान्तीय भाषा-भाषी Linguistic Imperialism (भाषा-सम्बन्धी साम्राज्यवाद) को सहन नहीं कर सकता। खेद है कि हम लोग इस विषयमें कभी-कभी बड़ी असावधानी कर बैठते हैं।

गुरुदेव हिन्दीका प्रचार चाहते थे और ख़ूब चाहते थे; पर उनका ढंग दूसरा ही था। उन्हें आचार्य क्षितिमोहन सेनकी कार्य-पद्धति पसन्द थी, अर्थात् हिन्दीमें जो कुछ सर्वोत्तम है, उसे भारतके प्रान्तीय भाषा-भाषियोंके सम्मुख

रखना। यही नहीं, गुरुदेवने तो कबीरके एक सौ पद्योंका हिन्दी-अनुवाद करके उनकी कीर्तिको विश्वव्यापी बना दिया था। सुना है कि गुरुदेवकी उक्त पुस्तकके कई अनुवाद यूरोपमें भी हुए हैं।

गुरुदेव हिन्दीके शुभचिन्तक थे। श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला तथा अन्य हिन्दी-लेखकोंको उन्होंने न जाने कितने परामर्श हिन्दी-ग्रंथोंके लिखने-लिखानेके लिए दिए थे। शान्तिनिकेतनमें हिन्दी-भवन बनवानेके लिए वे बहुत उत्सुक थे और उससे भी अधिक चिन्तित थे वे इस बातके लिए कि हिन्दी-भवन ठोस साहित्यिक कार्य करे।

ईंट-पत्थर-चूनेमें अविश्वास

गुरुदेव ईंट-पत्थर-चूनेमें धन व्यय कर देनेके विरोधी थे, और हिन्दी-भवनके कार्यकर्त्ताओंसे उन्होंने कई बार कहा भी था कि भवन कच्चा ही बनाया जाय और जो रुपया बचे, उसे साहित्य-निर्माणपर व्यय किया जाय। गुरुदेवकी इच्छा थी कि विवेकशील हिन्दी-विद्वानोंका एक समूह हिन्दी-भवनमें कार्य करे। खेद है कि आश्रमके संचालक तथा भवनके निर्माता गुरुदेवके इस आदेशका अभी तक पालन नहीं कर सके। साधनोंकी कमी ही इसका मुख्य कारण है।

हिन्दी-लेखकोंसे मिलनेके लिए उत्सुक

गुरुदेव हिन्दी-लेखकोंसे मिलनेके लिए सर्वदा उत्सुक रहते थे। अनेक हिन्दी लेखकों तथा कवियोंको गुरुदेवकी सेवामें ले जानेका सौभाग्य इन पंक्तियोंके लेखकको प्राप्त हुआ था; पर मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नहीं आता, जब कि उन्होंने हिन्दी-साहित्य-सेवियोंको वक्त देनेमें किसी प्रकारका संकोच किया हो। वे चाहे कितने ही व्यस्त क्यों न रहे हों, भले ही दिन भरके हारे-थके हों; पर वे सदैव हर्षपूर्वक समय देते रहे।

श्रीयुत प्रेमचन्दजीसे मिलनेके लिए वे विशेष रूपसे उत्सुक थे और कई बार शान्तिनिकेतनसे प्रेमचन्दजीको निमंत्रण भी दिया गया था; पर दुर्भाग्यवश प्रेमचन्दजी कभी वहाँ पहुँच ही नहीं सके!

एक बार मैंने गुरुदेवकी सेवामें निवेदन किया—'मैंने बहुत बार प्रयत्न किया कि किसी तरह प्रेमचन्दजीको शान्तिनिकेतन लाऊँ; पर मैं असफल ही रहा। वे इतने अधिक संकोचशील हैं।'

इसपर गुरुदेव मुस्कराते हुए बोले :—

"Please don't forget that I too am very shy by nature, though I have had to travel all over the world."

अर्थात्—'कृपया यह न भूलिए कि मैं भी स्वभावतः बहुत संकोचशील हूँ, गो मुझे तमाम दुनियाकी यात्रा करनी पड़ी है।'

पारस्परिक सहयोगकी भावना

जब श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार तथा उनकी पार्टी शान्तिनिकेतन गई थी, उस समय गुरुदेवने ४०-४५ मिनट तक बड़े आनन्दपूर्वक हम सबके साथ साहित्यिक विषयोंपर वार्तालाप किया था। इस बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने कहा था :—

"We hardly know one another. We don't know one another's mentality. We don't come in close contact. We have real separation. This ignorance breeds prejudices and it is at the root of provincialism, which is rampant everywhere. This idea of provincialism is silly and mischievous. It has, as I have said, its origin in ignorance about one another. We don't know you. You are as if aliens for us. We must be familiar with each other."

अर्थात्—'हम लोग एक दूसरेको बहुत ही कम जानते हैं। हम एक दूसरेकी मनोवृत्तिको नहीं समझते, निकट सम्पर्कमें नहीं आते और वस्तुतः एक दूसरेसे अलग रहते हैं। इस अज्ञानसे असत्य धारणाएँ उत्पन्न होती हैं और वे ही सर्वव्यापी प्रान्तीयताके मूलमें हैं। प्रान्तीयताकी यह भावना मूर्खतापूर्ण ही नहीं, धूर्ततापूर्ण भी है। जैसा कि मैंने कहा है, इसकी जड़ अज्ञानमें है। हम आपको नहीं जानते, मानो आप हमारे लिए विदेशी हों! हमें एक दूसरेसे परिचित होना चाहिए।'

इससे भी कई वर्ष पूर्व जब श्री माखनलाल चतुर्वेदी तथा श्री जैनेन्द्रजी गुरुदेवके दर्शनार्थ शान्तिनिकेतन गए थे, उन्होंने कहा था :—

"I am anxious to come in touch with Hindi speaking people. We are doing here what little we can for the spread of culture. We want Hindi-speaking people to come here, share our experience and give us the benefit of their experience..."

अर्थात्—'मैं हिन्दी-भाषी लोगोंके निकट सम्पर्कमें आनेके लिए उत्सुक हूँ। यहाँ हम लोग संस्कृति-प्रचारके लिए जितना भी कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दी-भाषी लोग यहाँ आयँ, हमारे अनुभवमें हिस्सा
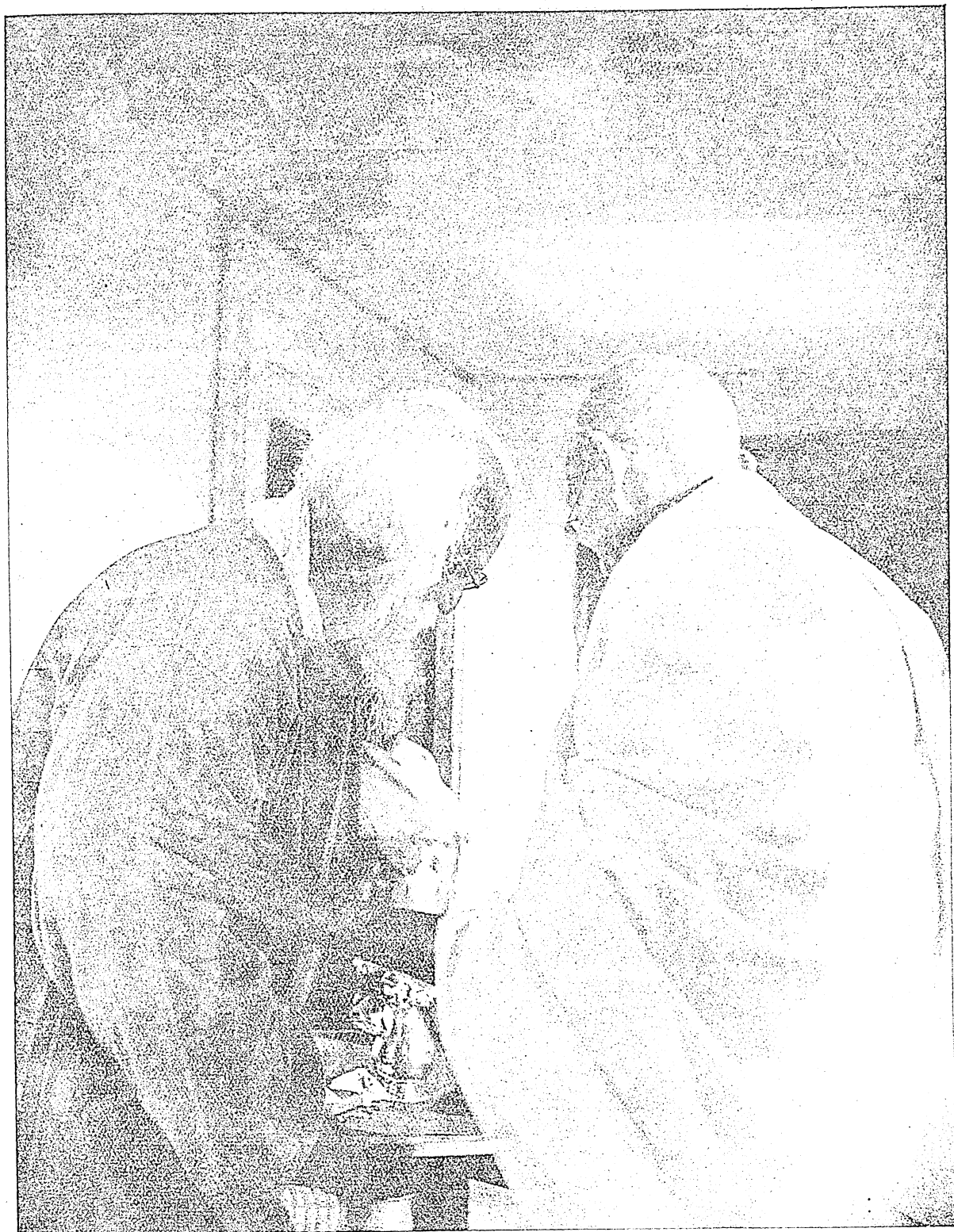
फोटो : श्री नवीन गांधी (कापीराइट) ] **गुरुदेव और बापू** [ 'विश्वभारती' के सौजन्यसे
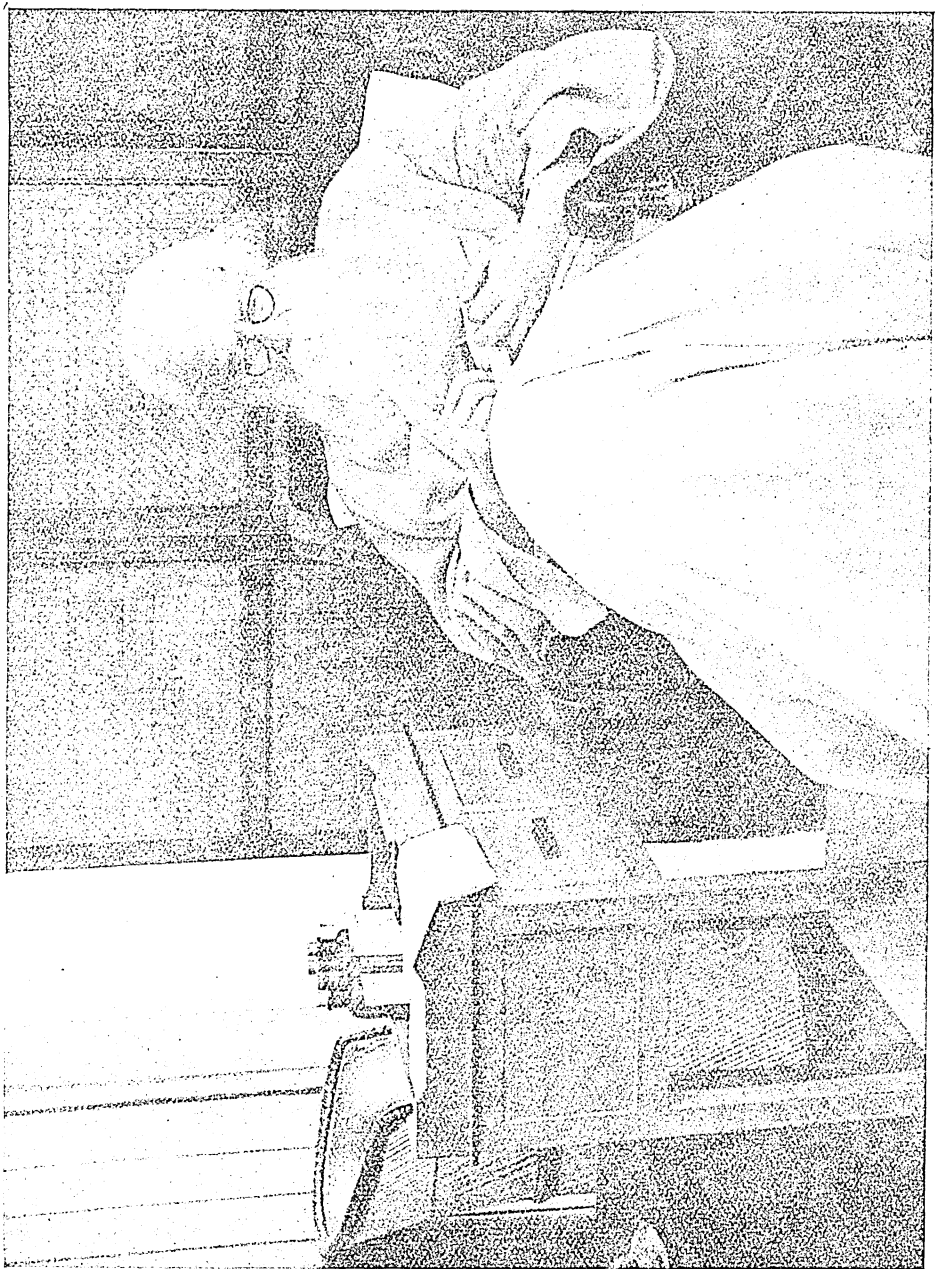
फोटो : श्री नवीन गांधी ( कापीराइट ) ]  अपने अध्ययन-कक्षमें गुरुदेव  [ 'विश्वभारती' के सौजन्यसे

बँटायँ और अपने अनुभवसे हमें लाभान्वित करें।'

जब मैंने निवेदन किया कि हिन्दी लेखकों तथा कवियोंको तो शान्तिनिकेतनको तीर्थ समझकर यहाँ आना चाहिए, तो गुरुदेव उक्त पार्टीसे तुरन्त ही बोले :—

"We want the Hindi poets and writers to come here not merely as pilgrims to a place of pilgrimage but I wish them to come and stay with us. I wish to make Hindi a living language in the Ashram. I intend to make Shantiniketan a centre of cultures of all Indian cultures. We want to have easy communication and free intercourse among all Indian languages and Asiatic cultures."

अर्थात्—'हम लोग यह चाहते हैं कि हिन्दी कवि और लेखक यहाँ पधारकर हमारे साथ रहें, न कि सिर्फ़ तीर्थ-यात्राके ख़यालसे यहाँ आवें। मैं हिन्दीको आश्रममें एक सजीव भाषा बनाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि शान्तिनिकेतन समस्त भारतीय संस्कृतियोंका एक केन्द्र बने। मेरी अभिलाषा है कि शान्तिनिकेतनमें समस्त भारतीय भाषाओं और एशियाकी संस्कृतियोंके बीच सरलतापूर्वक पारस्परिक सहयोग तथा आदान-प्रदान हो।'

हिन्दी-गद्यका लचीलापन

गुरुदेव हिन्दी-भाषाके लचीलेपनपर—उसके लोचपर—मुग्ध थे, और उन्होंने कई बार 'आँखकी किरकिरी ('चोखेर बाली'के हिन्दी-अनुवाद ) की भाषाकी प्रशंसा की थी। वे सरल तथा सजीव भाषाके पक्षपाती थे। कृत्रिम अथवा अलंकारमय हिन्दी-कविताएँ उन्हें पसन्द नहीं आती थीं। एक बार उन्होंने कहा था—"कुछ भी क्यों न हो,'विहारी-सतसई' जैसे ग्रन्थ मेरे लिए रुचिकर सिद्ध नहीं हुए, विशेषतः किसी-किसी दोहेके चार-चार पाँच-पाँच अर्थोंके विषयमें वाद-विवाद मुझे कुछ जँचा नहीं।"

कविवरका हिन्दी-भाषाका ज्ञान

कविवर हिन्दी भलीभाँति पढ़ और समझ लेते थे, यद्यपि उन्होंने उसका विधिवत् अध्ययन नहीं किया था। पर हिन्दी बोलनेमें उन्हें सदा संकोच होता था। उन्हें बराबर यह आशंका बनी रहती थी कि हिन्दी-सम्भाषणमें उनसे त्रुटियाँ होंगी और किसी भी भाषाको अशुद्ध बोलनेमें उनकी अन्तरात्मा हिचकती थी; वैसे कामचलाऊ हिन्दी वे आवश्यकता पड़नेपर बोल भी लेते थे। उन्होंने एक बार मज़ाकमें कहा था—'जब पचास वर्ष पहले मेरी उत्कट अभिलाषा हिन्दी पढ़नेकी हुई थी, बनारसीदासका जन्म ही नहीं हुआ था।' 'विशाल भारत' के प्रथम अंकमें प्रकाशित श्री रामदास गौड़के प्रेमचन्दजी-विषयक लेखको उन्होंने बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ा था और उसका ज़िक्र भी एक बार किया था। सुना है कि शब्द-सागरके संक्षिप्त संस्करणको उन्होंने बड़े परिश्रमपूर्वक पढ़ा था और अनेक स्थलोंपर निशान भी लगा दिए थे।



मेरी मूर्खता

बोलचालकी बँगला न सीखनेके कारण मैं गुरुदेवसे अंगरेज़ीमें ही बोलता था। इसपर एक दिन उन्होंने ख़ासी डाट बतलाई। उन्होंने कहा—'अंगरेज़ीमें मुझसे क्यों बातचीत करते हो? जब मैं हिन्दी सीखना चाहूँ, तो मुझसे हिन्दी बोला करो; नहीं तो बँगला सीखकर बँगलामें बातचीत किया करो। मैं तुम्हें बँगला पढ़ाऊँगा।'

खेद है कि गुरुदेवसे बँगला पढ़नेका सौभाग्य मुझे दो-तीन दिनसे अधिक प्राप्त न हो सका, क्योंकि महात्माजीके आदेशानुसार मुझे बम्बई चला आना पड़ा। बम्बईसे मैंने गुरुदेवकी सेवामें एक चिट्ठी बँगलामें ही लिख भेजा। उसके उत्तरमें गुरुदेवने लिखा था :—

'आपनार बाँगला चिठिखानि सुन्दर हइयाछे—दुइ एकटि जा भूल आछे ताहा यत्सामान्य......।'

गुरुदेवकी स्मरण-शक्ति

गुरुदेव जब आगरे पधारे थे, तब कविवर श्री सत्य-नारायणने उनकी अभ्यर्थनाके लिए 'रवीन्द्र-वन्दना' नामक एक कविता लिखी थी। उसमें एक जगह ये पंक्तियाँ आई थीं :—

'रवि इन्द्र मिले दोउ एक जहँ
तउ अचरज कैसे अहै?
यह हिन्दी प्यारी चातकी तव रस कौं तरसत रहै।'

इसके कई वर्ष बाद जब मुझे शान्तिनिकेतन जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ और मैंने गुरुदेवको सत्यनारायणजीके स्वर्गवासका समाचार सुनाया, तो उन्होंने कहा—"वह कवि तो अभी युवक ही थे। अपनी सुन्दर कवितामें 'रवि'-'इन्द्र' वे किस चतुरताके साथ लाए थे, इसका मुझे अब भी स्मरण है। उनकी मृत्युकी बात सुनकर दुःखित हूँ।"

गुरुदेवकी आकांक्षा

जब शान्तिनिकेतनमें हिन्दी-भवनके उद्घाटनका समय

निकट आ रहा था, तो गुरुदेवको बहुत उत्साह था, और उन्होंने बन्धुवर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा कुछ आदेश भी भिजवाया था। वे इस बातके लिए अत्यन्त चिन्तित थे कि कहीं हिन्दी-भवन ईंट-पत्थर तक ही परिमित न रह जाय। वे इसे एक सजीव संस्थाके रूपमें देखना चाहते थे। गुरुदेव भरतपुरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें सम्मिलित हुए थे, और उस समय उन्होंने मुझे आज्ञा दी थी कि मैं उपस्थित जनतासे शान्तिनिकेतनके हिन्दी-पुस्तकालयको पुस्तकें भिजवानेकी प्रार्थना करूँ। उस समय मैं संकोचवश उनकी आज्ञाका पालन नहीं कर सका; पर 'विशाल भारत'में पहुँचनेपर दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ द्वारा यह कार्य मैंने करा दिया था। लज्जाके साथ मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि श्री ऐण्ड्रूज़की प्रार्थनापर एकाध प्रकाशको छोड़कर और किसीने ध्यान ही नहीं दिया।

१९२८ से १९३७ तक शान्तिनिकेतनके हिन्दी-पुस्तकालयमें जो हिन्दी-पुस्तकें पहुँची थीं, उनमें से अधिकांश श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय द्वारा संचालित 'विशाल भारत' की थीं। हमारे हिन्दी-प्रकाशकोंमें इतनी दूरदर्शिता या उदारता कहाँ? चीन और इटली देशके निवासियोंने अवश्य ही शान्तिनिकेतनको सहस्रों रुपयोंके ग्रन्थ भेंट किए हैं।

### हिन्दी-भवनके प्रति हमारा कर्तव्य

ऋषिवर एमर्सनने एक जगह लिखा है—'इससे अधिक नीचतापूर्ण बात और क्या हो सकती है कि हम दूसरोंके हाथों उपकार ग्रहण तो करें, पर स्वयं प्रत्युपकार कुछ भी न करें?'

हिन्दी-प्रकाशकोंने गुरुदेवके ग्रन्थोंसे न्यायतः अथवा अन्यायतः (बिना अनुमतिके अनुवाद प्रकाशित करते जाना और क़ानूनकी आड़में नैतिकताको धता बताते रहना यदि अन्याय नहीं तो क्या है?) हज़ारों रुपयोंका लाभ उठाया है, यद्यपि शान्तिनिकेतनको उन्होंने एक फूटी कौड़ी भी नहीं दी। और हिन्दी जनताको गुरुदेवके ग्रंथोंसे जो स्फूर्ति मिली है, उसका तो कहना ही क्या है!

क्या हम गुरुदेवके इस ऋणको चुकानेका कुछ प्रयत्न करेंगे? हमारी समझमें इसे, आंशिक रूपमें ही सही, चुकानेका एक सर्वोत्तम तरीक़ा यही है कि हम गुरुदेवकी प्रिय संस्थाओंको—विश्वभारती तथा श्रीनिकेतनको—भरपूर सहायता दें। और कुछ नहीं, तो हिन्दी-भवनकी तो समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति करें। यह तो परमार्थका ही नहीं, स्वार्थका भी सवाल है।

गुरुदेवके हृदयमें श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदीकी विद्वता तथा साहित्यिक विवेकके प्रति सम्मानका भाव था और शान्तिनिकेतनके हिन्दी-शिक्षक श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला तो उनके आश्रमके पुराने छात्र ही हैं। हम लोगोंका कर्तव्य है कि इन दोनों बन्धुओंके कार्यमें पूरी-पूरी मदद दें। अपने स्वर्गवासके कुछ दिन पूर्व दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ने हिन्दी-भवनके लिए जो अपील निकाली थी, उसमें विस्तारपूर्वक इस विषयपर लिखा गया था।

सौभाग्यसे हिन्दीके अनन्य शुभचिन्तक और उसके प्राचीन साहित्यके अद्वितीय प्रचारक आचार्य क्षितिमोहन सेन इस समय भी शान्तिनिकेतनमें विद्यमान हैं। उनके संरक्षणमें हिन्दी-भवनको जीती-जागती संस्था बनाना कठिन न होगा।

### अन्तिम बात

अन्तमें मुझे यही कहना है कि हम हिन्दीवालोंके सामने केवल एक ही उपाय है—हम विनम्रतापूर्वक सबके सेवक बनें। जो भाषा भारतमें सर्वोच्च स्थान ग्रहण करना चाहती हो, उसके बोलनेवालोंको सबसे अधिक उदार बनना होगा। कोरमकोर संख्याके बल-बूतेपर या क़ानूनी लाठीके ज़ोरसे अथवा राजनीतिक परिस्थितिसे लाभ उठाकर हम भाषा-सम्बन्धी साम्राज्यवादकी स्थापना भले ही कर लें; पर हिन्दी-भाषाके प्रति प्रेमका विस्तार कदापि नहीं कर सकते। उसके लिए तो गुरुदेव कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरका बतलाया हुआ उपाय ही ठीक होगा, अर्थात् हिन्दी-साहित्यकी सर्वांगीण उन्नति करना और अन्य भाषाओंके साथ उसका भरपूर पारस्परिक सहयोग स्थापित करना। नान्यः पन्थः विद्यते।

टीकमगढ़]
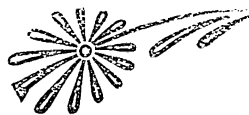
# गुरुदेवकी श्राद्ध-तिथि और गांधीजी

श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी

महात्मा गांधीके पास जब कोई विदेशी यात्री मिलने आया नहीं कि गांधीजी झट उससे पूछ बैठते हैं, 'क्या आपने शान्तिनिकेतन देखा ?' कुछ वर्ष पहले जापानके महाकवि योने नागुची गांधीजीसे मिलने आए थे। गांधीजीने उनसे पूछा, 'क्या आपने शान्तिनिकेतन देखा और गुरुदेवसे मिले ? शान्तिनिकेतन भारतवर्ष है, वहाँ भारतवर्षका दर्शन होता है। जिसने शान्तिनिकेतन नहीं देखा, वह भारतवर्ष नहीं देख सका—ऐसा कहूँ, तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी।' गांधीजी प्रायः ऐसा ही यात्रियोंसे कहा करते हैं और यात्रियोंको प्रोत्साहित करके शान्तिनिकेतन जानेका आग्रह करते हैं।

गांधीजी शान्तिनिकेतनको अपना ही घर समझते हैं। उसकी तरक्कीमें वे अपनी तरक्की देखते हैं। उसके आर्थिक बोझोंको वे अपना ही आर्थिक बोझ मानते हैं। शान्तिनिकेतन उनके लिए तीर्थ-यात्राके समान है। वे शान्तिनिकेतनको बहुत प्यार करते हैं, क्योंकि वह एक ईमानदार आत्माकी कृति है। राष्ट्रकी सम्पत्ति है। गुरुदेवके जीवनके सर्वोत्तम रत्नोंसे भरी निधि है। शान्तिनिकेतनकी वृद्धि रुक नहीं सकती, क्योंकि वहाँ गुरुदेवकी आत्मा निवास करती है। प्रत्येक मनुष्यकी उनके प्रति जो अपार श्रद्धा है, वह गुरुदेवकी आत्माको ऊपर रखेगी।

'गुरुदेव अपनी प्रियतम कृति विश्वभारतीके लिए ज़िन्दा रहते थे। वे चाहते थे वह ख़ूब फूले-फले, विकसे। अब वह ज़िम्मेदारी हम लोगोंके कन्धोंपर आ गई है।'— गांधीजीने गम्भीर होकर उनकी मृत्युकी ख़बर सुनकर कहा था।

गुरुदेवकी बीमारीका समाचार गांधीजी बराबर तारसे मँगाते रहते थे। उनकी बीमारीसे वे काफ़ी चिन्तित रहते थे। रह-रहकर रथी बाबूको तार देते थे। अचानक ७ अगस्तको तार मिला कि गुरुदेव नहीं रहे ! गांधीजीको बहुत धक्का लगा, क्योंकि गत साल वे चार्लीको खो चुके थे, अब गुरुदेवको। शामकी प्रार्थनामें गांधीजीने शोकातुर होकर जो कुछ कहा, उसका सारांश मैं यहाँ दे रहा हूँ—

"गुरुदेव सम्पूर्ण देशके अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त व्यक्ति थे। वे सच्चे रूपमें राष्ट्रीयतासे ओतप्रोत थे। उनकी सम्पूर्ण कृतियाँ सर्वत्रव्यापी हैं, वे सार्वभौम हैं। गुरुदेवकी सबसे श्रेष्ठ देन उनकी विश्वभारती है। उनकी कृतियोंमें भारतीय सांस्कृतिक चीज़ोंकी झलक है। गुरुदेवकी मृत्युसे देशकी बड़ी गहरी क्षति हुई है। वे भारतीय संस्कृति और दर्शन-शास्त्रके बड़े विद्वान पंडित थे। गुरुदेव भारतके सांस्कृतिक आदर्शके प्रधान पुजारी थे और कवि,

श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी

दार्शनिक, द्रष्टा, उपन्यासकार, चित्रकार, नाटककार, कहानी-लेखक, आलोचक, चित्रकार, शिक्षा-विशेषज्ञ और भारतीय आदर्शोंकी सजीव मूर्ति थे। वे अपनी हर चीज़में पारंगत पंडित थे। गुरुदेवने भारत और दुनियाको बहुत कुछ दिया है। वैसे तो उनका सारा परिवार ही भारतकी सेवा करता आ रहा है; पर वे सबसे आगे बढ़ गए थे।

"दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ने किसी अंगरेज़को अपना गुरु नहीं बनाया; पर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको अपना गुरु बनाया। यही मेरे लिए बड़ी चीज़ है। वह गुरुदेवमें ओतप्रोत रहता

था। उनकी बातें गद्‌गद् कंठसे सुनाता था। वही मुझे गुरुदेवके निकट-सम्पर्कमें लाया।

“गुरुदेव केवल विश्वकवि ही नहीं थे, बल्कि मानव-प्रेमी भी थे। उनके सामने अमीर-ग़रीब सब बराबर थे। मैं जानता हूँ,

वे मानवताके सच्चे पुजारी थे। उनकी मानवता सारे संसारमें फैली हुई है। उनकी कविताको इसीलिए मैंने आश्रम-भजनावलीमें रखा है। वे सबसे प्रेम करते थे; उनके निकट सब बराबर थे। उन्होंने भारतको बहुत आगे बढ़ाया। अन्य देशोंमें इसका मस्तक ऊँचा किया। गुरुदेव हिन्दुस्तानकी सेवाके मार्फत सारे जगतकी सेवा करते थे। सेवा करते ही करते वे चले गए। उनका देह ही यहाँसे गया है। उनकी आत्मा तो अजर-अमर है, जैसे हम सबकी है, जिसे हम रोज़ गीतामें पढ़ते हैं। न कोई मरता है, न जन्मता है। पर ऐसे अवसरोंपर शोक उत्पन्न हो जाता है। गुरुदेव तो विशेष अर्थमें ज़िन्दा रहेंगे। उनकी प्रवृत्तियाँ जैसी व्यापक हैं और प्रायः सभी ऐसी पारमार्थिक हैं, जिसकी मार्फत वे अमर रहेंगे।"

१७ अगस्त, '४१ को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी श्राद्ध-तिथि थी। उस दिन आश्रममें पूरे दिन उपवास रखा गया। गांधीजीने भी उस दिन व्रत रखा था। आश्रममें शान्त वातावरण छाया हुआ था। श्राद्ध-तिथिके एक दिन पहले गांधीजीने जनताके नाम अपने हाथोंसे हिन्दीमें निम्न-सन्देश लिखा था, (जिसकी प्रतिलिपि पिछले दो पृष्ठोंपर दी गई हैं ) :—

> ता० १७ इतवार ( रविवार )के दिन जगद्विख्यात सद्गत गुरुदेव रवीन्द्रनाथकी श्राद्ध-तिथि है। उस दिन जो लोग धार्मिक क्रियामें विश्वास रखते हैं, वे पूर्ण या अपूर्ण उपवास करेंगे। प्रार्थना व्यक्तिगत करें या सामुदायिक या दोनों।
>
> जनताको याद होगा कि दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़के देहान्तको एक वर्षसे अधिक हो चुका। उनके स्मरणके लिए ५,००,००० रु०की माँग की गई थी। दीनबन्धु, गुरुदेवके पट्ट शिष्य थे और शान्ति-निकेतनमें ही रहते थे। वे शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतनके ख़र्चके लिए चन्दा भी इकट्ठा करते थे, इसलिए ये ५,००,००० रुपया शान्तिनिकेतनके लिए ख़र्च करने हैं। अब तो गुरुदेव तो नहीं रहे, अतः ५,००,००० रुपयाकी यह माँग उनके स्मरणमें भी आ जाती है। दीनबन्धु-चन्देमें एक लाखसे भी कम पैसे आए हैं। मेरा अभिप्राय है कि दोनों गुरु-शिष्यकी प्रवृत्ति ग़रीबोंके लिए थी, इसलिए इस चन्देमें ग़रीबोंके पैसे भी होने चाहिए। इस दृष्टिसे कल स्वयंसेवक और स्वयंसेविकाएँ थैलियाँ लेकर निकलेंगी। आशा करता हूँ कि इस कार्यमें धनिक तो भरसक देंगे ही और सब भी कमसे कम एक-एक पैसा तो देंगे। यह माँग हिन्दू, मुसलमान इत्यादि सभी धर्मियोंसे की जाती है।
>
> —मो० क० गांधी।

गांधीजी मज़दूर हैं, इसलिए उस दिन उन्होंने एक घंटे तक सूत कातकर स्मारकमें चन्दा दिया। आश्रमके सब भाई-बहनोंने सूत कातकर पैसे जमा किए। एक सज्जनने गांधीजीके सूतको ६) रुपयेमें ख़रीद लिया। वह ६) रुपया ऐण्ड्रूज़-स्मारकमें जमा हुआ। सेवाग्रामके किसानोंने भी कुछ रुपया जमा करके दिया।

काश, गुरुदेव और दीनबन्धुके स्मरणके लिए हम गांधीजीके सन्देशको शीघ्र ही पूरा करके उनकी चिन्ता दूर कर सकें। अपनी-अपनी श्रद्धांजलि सबको शीघ्र चढ़ा देनी चाहिए। इन दो महान आत्माओंने अपना जीवन मानव-हितके लिए संसारको अर्पण कर दिया था, तब क्या हम ५ लाख रुपएसे भी गए-बीते निकलेंगे? इस तुच्छ भेंटको हमें एक दिनमें पूरा कर देना चाहिए। जितने अधिक दिन बीतते जायँगे, उतना हमारे सिरपर बोझ बढ़ता जायगा। दुनियाके सामने हम सिर ऊँचा नहीं कर सकते। भारतमाँकी आँखोंसे आँसू टपकते रहेंगे। हम निर्लज्जताके कारण मुँह नहीं खोल सकते। क्या हम इन दो महान आत्माओंकी यादगारको भुला सकेंगे? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, और अपना मस्तक ऊँचा रखनेके लिए यह ज़रूरी है कि अड़तीस करोड़की आबादीसे कम-से-कम एक-एक पैसा यानी अड़तीस करोड़ पैसे इकट्ठे होकर शान्तिनिकेतन पहुँचे।

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा ]

# गुरुदेव-सम्बन्धी बापूसे भेंट

श्रीराम शर्मा

गुरुदेव और बापू जैसी विभूतियाँ संसारमें हज़ार-दो-हज़ार वर्षोंमें एक बार ही आती हैं ; पर ऐसी दो विभूतियोंके एक साथ एक ही देशमें होनेके अनेक कारण हो सकते हैं। कदाचित् उनमें से एक यह हो कि इतने बड़े
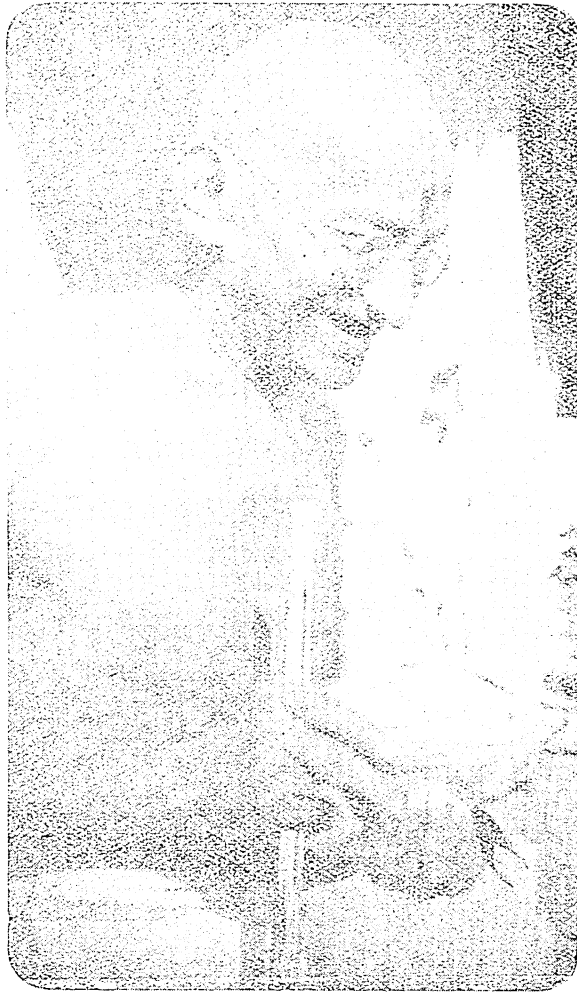
देशमें, जहाँ भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंका सुन्दर समन्वय हुआ है, और जहाँसे दुखी और पीड़ित मानव - समाजको आत्माकी शान्ति और कल्याणके लिए सन्देश मिले हैं, वहाँ, वर्तमान कालमें ऐसे दो महापुरुषोंकी आवश्यकता थी, जो पराधीनताके पाशमें बँधे, दलित, पीड़ित, अपमानित, भूखे और अपने ही देसमें वेगाने बने करोड़ों व्यक्तियोंको अपनी छिपी शक्तिका अनुभव करायँ और संसारको बतायँ कि विश्वकी नई व्यवस्था ख़ूनकी नदियाँ बहाने, अन्य राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता छीनने और कमज़ोरोंको बिलखाकर मरवानेमें नहीं है ; और न पराधीन देश कोरे अस्त्रों और शस्त्रोंसे ही गुलामीकी ज़ंजीरें काट सकते हैं, वरन् अपनी वास्तविक शक्ति—आत्मिक शक्ति—से अपने ध्येयके लिए हँसी - खुशी अपना सर्वस्व निछावर करनेकी भावनासे ही वे आततायीका मुक़ाबिला कर सकते हैं।

यों तो गुरुदेव और बापूका घनिष्ट सम्बन्ध था। वे एक दूसरेके पूरक थे ; फिर भी कुछ बातें ऐसी थीं, जिनका बापूसे पूछना आवश्यक था और इसीलिए गत २१ नवम्बरको सेवाग्राममें बापूसे पन्द्रह मिनटकी भेंट गुरुदेवके सम्बन्धमें की। समय नियत करानेका तात्पर्य यह था कि वे पन्द्रह मिनट गुरुदेव-सम्बन्धी भेंटके लिए ही बापू दें, और इस प्रकार भेंट (Interview) के लिए उन दिनों समय देना बड़ा ही कठिन था। कांग्रेसके नेताओंका जमघटा था, देशी रियासतोंके कार्यकर्ताओंकी भीड़ थी और फिर रचनात्मक कार्यकी गुत्थियोंका सुलझाना और बाहरसे आए लोगोंकी बातोंको सुनने और व्यवस्था देनेके लिए भी समय की कमी थी ; पर बापूने दोपहरके भोजनके बाद पन्द्रह मिनट देनेकी कृपा की। कमरेमें उस समय श्रीमती प्रभावती (श्रीमती जयप्रकाशनारायण)के अतिरिक्त और कोई न था। दाएँ हाथकी ओर दीवारपर टँगा सिगनल 'जल्दी करो', 'सूक्ष्मसे बातें करो' और 'चले जाओ' (Be quick, be brief and be gone) कुछ हिलता-सा मालूम होता था, मानो समयकी उपयोगिताके लिए सावधान कर रहा था। इन पंक्तियोंका लेखक यों तो प्रतिदिन ही उस नोटिसको देखता था ; पर फिर भी एकदम उस दिन उस नोटिसको देखकर उसके मुहसे निकल पड़ा—

'बापूजी, मैं पन्द्रह मिनटसे अधिक नहीं लूँगा। मैंने अपने प्रश्न लिख लिए हैं। पन्द्रह मिनटसे कममें ही बातें कर लूँगा।'

बापू—(मुस्कराकर) यह तो मैं जानता हूँ। हाँ, शुरू करो।

प्रश्न—आपका गुरुदेवसे सम्बन्ध कबसे था ?

उत्तर—प्रत्यक्ष सम्बन्ध सन् १९१५ से था।

प्र०—सन् १९१९-२० में जब आप सत्याग्रह प्रारम्भ

करनेवाले थे, तब गुरुदेवने आपके चर्खा-आन्दोलनका विरोध किया था। क्या बादमें वे चर्खे या खद्दरके क़ायल हो गए थे ?

उ०—बराबर विरोध रहा ; पर बादमें बहुत कम हो गया। कहते हैं कि बादको वे मान गए कि बात तो ऐसी है कि ग़रीबोंके लिए चर्खा बहुत ज़रूरी है। फिर तो उन्होंने चर्खा-गीत भी लिखा।

प्र०—अपनी अस्सीवीं वर्षगाँठपर उन्होंने 'सभ्यताका संकट' ( Crisis of Civilization ) जो वक्तव्य दिया था, उसके ये अवतरण 'किसी न किसी दिन भाग्यचक्र अंगरेज़ोंको अपने भारतीय साम्राज्यके छोड़नेपर मजबूर करेगा। पर किस प्रकारके भारतको वे अपने पीछे छोड़ जायँगे ? बस, नग्न उत्पीड़न और क्लेशको ! एकाधिक शताब्दी की उनकी शासन-धारा जब सूख जायगी, तब वे अपने पीछे ग़िलाज़त और गन्दगीके ढेरको छोड़ जायँगे। एक समय मेरा विश्वास था कि यूरोपके हृदयसे सभ्यताके सोते प्रस्फुटित होंगे—यूरोपसे संसार सभ्य होगा। पर आज जब मैं दुनियासे विदा होनेवाला हूँ, मेरा वह विश्वास नितान्त ही दिवालिया हो गया है।' भारतमें ब्रिटिश-शासनके लिए एक ऋषिके दिए आपके समान नहीं है ?

उ०—हाँ, है तो सही। बात तो ऐसी ही है।

प्र०—उनके उठ जानेसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंमें आपको कोई कठिनाई होगी ? यदि होगी, तो किस प्रकारकी ?

उ०—बड़ी कठिनाई है। उनसे मुझे बल मिलता था। उनके सम्बन्धसे जब मुझे बल मिलता था, तब उसकी कमीसे कठिनाई तो होगी ही।

प्र०—उनकी बातोंका विदेशोंमें जो इतना प्रभाव था, वह क्या उनकी कवित्व-शक्तिके कारण था ?

उ०—कोरी कवितासे उनका प्रभाव न था। उनकी कविताके बारेमें मैं राय नहीं दे सकता। पर उनके प्रभावके लिए उनकी कविता कुछ कारण थी। पर कवियोंकी श्रेणीमें वे सर्वश्रेष्ठ थे। साथ ही इतने ऊँचे कवि होनेपर भी उनका जीवन बहुत उच्च था।

प्र०—भारतीय इतिहासमें उनका स्थान क्या है ?

उ०—ऋषिका स्थान है और उनका हमारे इतिहासमें उच्च स्थान रहेगा।

प्र०—भारतवर्षके लिए उनकी सबसे बड़ी देन क्या है ?

उ०—सबसे बड़ी देन क्या है—कहना कठिन है ; वे देन ही देन थे। मोरकी पूँछका कौन-सा भाग अधिक सुन्दर है—यह बताना कठिन है।

प्र०—उनके साहित्यिक जीवनसे हम क्या सीख सकते हैं ?

उ०—इस प्रश्नके उत्तर देनेके लिए मैं योग्य नहीं। उनके साहित्यका मैं लाचारीके कारण अध्ययन नहीं कर सका।

उनके स्मारककी रूप-रेखा क्या हो, अपने इस अन्तिम प्रश्नका उत्तर नहीं चाहूँगा, क्योंकि आपने इस विषयमें विश्वभारतीकी रक्षा और संचालनके बारेमें पहले स्पष्ट ही कर दिया है।

बापू—हाँ, ठीक ही है। इस बातको मैं स्पष्ट कर चुका हूँ।

भेंट करनेके बाद गुरुदेव और बापूकी देनका स्मरण करता हुआ मैं अपने कमरेमें चला आया।

## रवीन्द्रनाथ ठाकुरका वंश-परिचय

ठाकुर-परिवार बंगाली ब्राह्मणोंकी 'राढ़ी' शाखा और 'शांडिल्य' गोत्रके वन्द्योपाध्याय हैं। कुल-शास्त्रके अनुसार ठाकुर-परिवार मूलतः पठिभोगके 'कुसारी' वंशका है। इतिहासज्ञोंके कथनानुसार भट्टनारायण पहला 'कुसारी' थे, उनके पुत्र दीना कुसारीसे ही इस वंशकी नींव पड़ी माननी चाहिए। उनके लड़के जगन्नाथ कुसारीका विवाह मूल 'पिराली' वंशके जैसोर-निवासी गौरीशुकदेवकी कन्यासे हुआ। इसके बाद पुरुषोत्तम हुए, जिनको मूलतः ठाकुर-परिवारका पिता माना जाना चाहिए। उनके वंशमें छठे पंचानन हुए, जो १६९० ई० में जैसोर छोड़कर गोविन्दपुर नामक गाँवमें आ बसे, जहाँ कि इस समयका फोर्ट विलियम क़िला है। मोहल्लेके लोग उन्हें 'ठाकुर महाशय' कहकर पुकारते थे, इसीलिए उनका नाम 'पंचानन ठाकुर' पड़ गया। इस जातिके नामके साथ 'ठाकुर' शब्द लगाए जानेका यही इतिहास है। इसी शब्दको अंगरेज़ीमें 'टैगोर' ( Tagore ) लिखा जाता है।

# रवीन्द्रके साथ इंग्लैण्डमें

स्वर्गीय दीनबन्धु सी० एफ़० ऐण्ड्रूज़

[ आजसे कई वर्ष पूर्व स्वर्गीय सी० एफ़० ऐण्ड्रूज़ साहबने कवीन्द्रके विषयमें 'माडर्न रिव्यू' में दो लेख लिखे थे--उनमें से एक तो था 'An Evening with Rabindra' ( 'रवीन्द्रके साथ एक संध्या' : 'माडर्न रिव्यू' अगस्त, १९१२ ) और दूसरा था 'With Rabindra in England' ( 'रवीन्द्रके साथ इंग्लैण्डमें' : 'माडर्न रिव्यू' जनवरी, १९१३ )। ऐण्ड्रूज़ साहबके ये लेख कई दृष्टियोंसे आज भी ताज़े हैं। उनमें उन्होंने कवीन्द्रके साथ अपनी प्रथम भेंटका वर्णन किया है। यहाँ हम उन दोनों लेखोंको थोड़ी-सी काट-छाँटके साथ प्रकाशित कर रहे हैं। ऐण्ड्रूज़ साहबके ये लेख आजसे २८-२९ वर्ष पूर्व लिखे गए थे। इसलिए जो अंश हमें अप्रासंगिक जान पड़े, उन्हें हमने निकाल दिया है। इन लेखोंसे पाठकोंको इस बातका पता चलेगा कि दीनबन्धु गुरुदेवके कितने भक्त थे, और किस तरह उनके प्रति उन्होंने अपना आत्म-समर्पण किया था। —सं० ]

( १ )

रवीन्द्र लंदनमें हैं! यह समाचार मुझे केम्ब्रिजमें भारतीय विद्यार्थियोंकी एक सभामें मिला। इसके पूर्व मैंने सुन रखा था कि उन्होंने अपनी विलायत-यात्रा स्थगित कर दी है। इसलिए उनके आगमनके इस शुभ-समाचार पर मुझे सहसा विश्वास नहीं हुआ। परन्तु अब प्रश्न यह था कि उनसे भेंट कैसे हो? मैं कई बार कलकत्ते अवश्य गया था; परन्तु हमेशा ही वक्त इतना थोड़ा रहा कि उनके दर्शन करनेका अवसर मुझे नहीं मिला। उनकी रचनाओंके जितने भी अंगरेज़ी अनुवाद मुझे प्राप्त हो सके, उन सबको मैंने पढ़ लिया था, साथ ही उनके भक्तों और प्रशंसकोंसे उनके विषयमें बहुत कुछ सुन भी चुका था। अतएव उनसे मिलने और दर्शन करनेकी इच्छा और भी उत्कट हो उठी थी।

लंदनमें जाकर मैं सीधा अपने मित्र डब्ल्यू० डब्ल्यू० पियर्सन ( Mr. W. W. Pearson ) के यहाँ पहुँचा। उनके कमरेमें मैंने पैर रखा ही था कि मुझे देखकर वे बोले—"क्या तुम्हें पता है, रवीन्द्र लंदनमें हैं! और वे 'दि वेल आफ़ हेल्थ' ( 'स्वास्थ्य-कुंज' ) हैम्सटेडमें ठहरे हैं। मैं आज संध्याको उनसे मिलने जा रहा हूँ।" निवास-स्थानका नाम ही मेरे लिए शुभ-शकुनका सूचक था। मैंने उनसे पूछा—"क्या आप मेरे लिए भी उनसे मिलनेका कुछ प्रबन्ध कर सकेंगे?" मि० पियर्सनने वायदा किया कि "ज़रूर।"

दूसरे दिन मैं नेशनल लिबरल क्लबमें दिल्लीके सुप्रसिद्ध नागरिक लाला सुल्तानसिंहसे मिलने गया। वहाँ
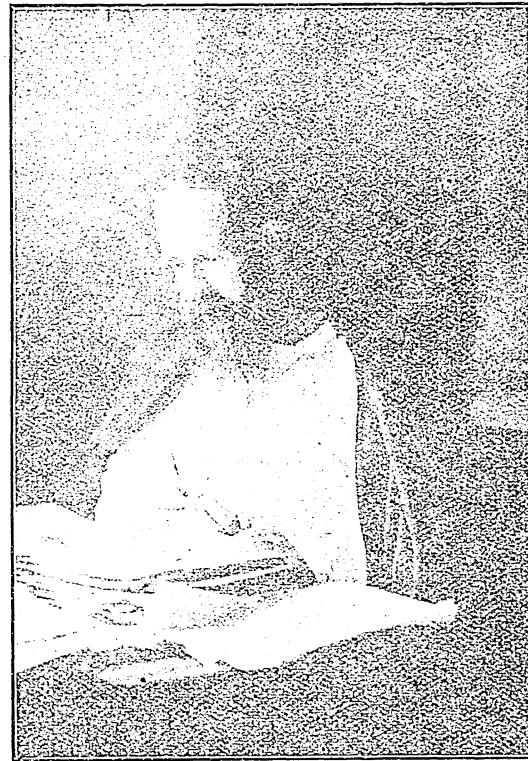
C. F. Andrews.

अचानक ही एच० डब्ल्यू० नेविनसन* से भेंट हो गई। पहले तो वे मुझे पहचान ही नहीं सके। बादमें बोले—

* मि० नेविनसन दुनियाके एक मशहूर पत्रकार थे। हाल ही में आपका स्वर्गवास हो गया है। —सम्पादक

"आप कुछ दुबले नज़र आते हैं।" मि० नेविनसन दिल्लीमें मेरे यहाँ ठहर चुके थे। इधर-उधरकी बातचीत होनेके उपरान्त कहने लगे—"कभी मेरे घर आइये। मैं हैम्सटेडमें रहता हूँ।" उनकी यह बात सुनकर मैंने कहा—"क्या आपको पता है कि आपके पड़ोसमें ही श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ठहरे हैं?" उन्होंने जवाब दिया—"पता ही नहीं है, बल्कि अगले रविवारकी रात्रिको आयरलैंडके सुप्रसिद्ध कवि डब्ल्यू० ईट्स उनकी कविताओंके अँगरेज़ी अनुवादका पाठ भी करेंगे ; और यह दरबार प्रसिद्ध चित्रकार राथेन्सटीनके यहाँ लग रहा है। उन्होंने मुझे भी सुननेके लिए बुलाया है। अच्छा हो, यदि तुम भी चलो। जल्दी आकर वहीं भोजन करना। फिर हम दोनों वहाँसे एक साथ चलेंगे। समझे, ज़रूर आना।" मैं तो चलनेके लिए सिरके बल तैयार बैठा था! इसलिए निमन्त्रण स्वीकार करनेके लिए मि० नेविनसनको अधिक आग्रह नहीं करना पड़ा। उसके बाद जब घर पहुँचा, तो मुझे एक और खुशख़बरी मिली। मि० पियर्सनने लिख भेजा था कि यदि शनिवारको तीसरे पहर आ सको, तो रवि बाबूसे भेंट हो सकती है। मेरे हर्षका अब क्या पूछना था! एक तो मि० नेविनसनका निमन्त्रण पाकर ही मैं बहुत खुश था और अब भेंटका यह दूसरा इन्तज़ाम भी हो गया!

शनिवारको जब मैं कवीन्द्रसे मिलनेकी इच्छासे उनके निवास-स्थानपर पहुँचा, तो उस समय वे कहीं बाहर गए हुए थे। नौकरने बताया कि वे अक्सर मैदानमें घूमने निकल जाते हैं। जहाँ वे ठहरे थे, वह जगह एक अत्यन्त रमणीक पहाड़ी स्थानके किनारे थी और सचमुच ही स्वास्थ्य-कुंज थी! मैंने कुछ देर तक तो उनकी प्रतीक्षा की; परन्तु जब वे लौटते नज़र नहीं आए, तो वहीं नज़दीक ही अपने एक मित्रके यहाँ ठहरने चला गया।

इतवारको मि० नेविसनके यहाँ भोजनकी बात तै हो चुकी थी, इसलिए उनके यहाँ पहुँच गया। उस समय इंग्लैण्डमें मज़दूर-आन्दोलनका ज़ोर था और एक नए इंग्लैण्डका जन्म हो रहा था। इस विषयमें मि० नेविनसनको मैंने सदाकी भाँति ही उत्साहपूर्वक वार्तालाप करते पाया। आन्दोलनके प्रति उनके हृदयमें एक ख़ासी लगन थी। साथ ही भारतवर्षमें क्या हो रहा है, यह जाननेके लिए भी वे बड़े उत्सुक थे। भारतसे उन्हें हार्दिक प्रेम है। वे उन व्यक्तियोंमें से एक हैं—और ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या काफ़ी है—जिन्होंने भारतवर्षको अपना हृदय सौंप रखा है।

भोजनके बाद हम लोग मि० राथेन्सटीनके घर पहुँचे और अपने आनेकी ख़बर भेजी। उसके एक क्षण भर बाद ही कमरेमें होकर तेज़ीसे किसीके आनेकी आहट सुनाई दी। एक लम्बे-छरहरे बदनका सुन्दर व्यक्ति द्रुत वेगसे मेरी ओर बढ़ रहा था। उस भव्य मूर्तिको—जिसके दर्शन अब तक मैंने चित्रोंमें ही किये थे—देखकर मैं तुरन्त पहचान गया कि ये स्वयं रवीन्द्र ही हैं। जिस कविने अपनी काव्य-प्रतिभासे स्वदेशका मस्तक ऊँचा किया है, उसके चरणोंमें झुककर मैं प्रणाम करना चाहता था। परन्तु उसके पूर्व ही मुझसे हाथ मिलाकर वे बोले—"ओह, मि० ऐण्ड्रूज़, मैं आपसे मिलनेके लिए कितना इच्छुक था! बस, कुछ पूछिए नहीं, कितना इच्छुक था! कल जब मैंने सुना कि आप यहाँ आए और मैं नहीं था, तो मेरी अजब हालत हो गई। समझमें नहीं आया कि क्या करूँ। रह-रहकर यही जीमें आता था कि दौड़कर आपके निवास-स्थानपर जाऊँ और आपको बताऊँ कि आप जब यहाँ आए, तब मैं बाहर चला गया, इसका मुझे कितना दुःख है! मैं अपने एक अँगरेज़ मित्रके यहाँ जाकर बँगला संगीतका अभ्यास करनेमें लग गया। मेरे इन मित्रको भारतसे बहुत प्रेम है। वहाँ मुझे इस बातका कुछ पता ही नहीं लगा कि समय कितना बीत गया है!"

मैंने उनसे कहा—"आप विश्वास रखिए, आपके न मिल सकनेके कारण मुझे तनिक भी असुविधा नहीं हुई।" फिर हम लोग देशकी चर्चा करने लगे। मैंने उनसे कहा कि वह दिन शीघ्र आनेवाला है, जब संसारके प्रमुख राष्ट्रोंमें भारतकी गणना होगी। मेरी यह बात सुनकर उनका सम्पूर्ण मुखमंडल उत्साहसे उद्दीप्त हो उठा और नेत्रोंमें किसी एक अज्ञात लोककी ज्योति फूट पड़ी। उनके मानस-पटलपर अमिट अक्षरोंमें मानो 'स्वदेश' शब्द अंकित था। उनको यहाँ किसी बातका कष्ट नहीं था। सम्पूर्ण अँगरेज़ी साहित्य-जगत् उनके आतिथ्यमें लगा हुआ था। पश्चिमके आकाशमें एक नवीन नक्षत्रका उदय हुआ है, लंदनके साहित्यिकोंसे यह बात छिपी नहीं थी। कविके

शुभागमनका समाचार पाते ही सभीने उनके स्वागतमें अपने हृदय बिछा दिए थे। यह सब होते हुए भी स्वदेशसे बिछुड़े हुए व्यक्तिके मनकी विरह-वेदना मानो कविके हृदयमें मौजूद थी।

धीरे-धीरे रात्रिका अंचल फैला, और साहित्य तथा कला-क्षेत्रके अनेक गण्यमान्य व्यक्ति उनसे मिलनेके लिए आने लगे। कवि डब्ल्यू० बी० ईट्स मेरे पहुँचनेके पहले ही वहाँ उपस्थित थे। उनके हाथमें कवीन्द्रकी कविताओंकी एक पाण्डुलिपि थी। उसीमें से वे कविता-पाठकी तैयारी कर रहे थे। उन्होंने हम लोगोंको बताया कि यह पाण्डुलिपि अभी थोड़े दिन हुए कवीन्द्रने मेरे पास भेजी थी। इसे मैं अहर्निश अपने पास रखता हूँ, और छन्दोंके भीतर विचारोंका जो अलौकिक सौन्दर्य निहित है, उसका निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ। रवीन्द्रकी कविताओंमें जो धार्मिक भावना है, पश्चिमके किसी ग्रंथसे यदि उसकी तुलना की जा सकती है, तो वह टामस ए० कैम्पिस (Thomas A. Kempis) रचित 'De Imitation' है। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओंमें प्रकृतिके विराट सौन्दर्यकी वह अनुभूति मौजूद है, जो अँगरेज़ी-साहित्यमें नवीन जाग्रति-कालके कवियोंमें—कीट्स, शेली, वर्ड्सवर्थ आदिमें ही दीख पड़ती है। उनकी यह अनुभूति पूर्ण-रूपसे नवीन और मौलिक है। उसमें जन्म और मृत्यु, गृहस्थी और शिशु तथा ईश्वर-भक्तिके आधारभूत विचारोंकी अद्भुत विवेचना देखनेको मिलती है।

रात जब कुछ और भीगी, तो मि० ईट्सने रवीन्द्रकी कविताओंका पाठ प्रारम्भ किया। मुझे प्रत्येक कविता संध्याकालीन स्तुतिके समान पुनीत जान पड़ी। स्वयं कविता-पाठके विषयमें तो कहना ही क्या ! मि० ईट्सके पढ़नेका ढंग बहुत ही सुन्दर और निर्दोष था। एक कवि अपने एक कवि-बन्धुके हृदयको खोलकर रख रहा था। रह-रहकर मि० ईट्स कविताके किसी मार्मिक स्थलपर रुक जाते और श्रोताओंको उसकी ख़ूबी समझाने लगते—अथवा जब कोई जटिल और रहस्यपूर्ण बात सामने आ जाती, तो उसकी व्याख्या करने लगते। उन्होंने निम्न-लिखित पंक्तियोंका पाठ किया :—

"I have loved life so much,
Why should I not love death
even more ?"

और उनके शुद्ध सात्विक भावकी प्रशंसा करने लगे। उसके बाद जहाँ कविने मृत्युकी क्षणिक वेदनाकी तुलना शिशुके उस समयके रोदनसे की है, जब कि माता उसे एक

कवीन्द्र रवीन्द्र और साधु ऐण्ड्रूज़

रिक्त स्तनसे अलग करके दूसरे भरे स्तनसे लगाती है, विषमताकी पूर्ण उपमा ही मौजूद थी।*

* मूल कविताकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

... ... जीवन आमार
एत भालबासी बले हयेछे प्रत्यय
मृत्युरे एमनि भालो बासिब निश्चय।
स्तन हते तूले निले काँदे शिशु डरे,
मुहूर्त्ते आश्वास पाय गिये स्तनान्तरे॥
—'नैवेद्य'

कविता-पाठ समाप्त होनेके उपरान्त सभी उपस्थित जन मुग्ध होकर रवि बाबूकी प्रशंसा करने लगे और उन्हें घेरकर खड़े हो गए। कवीन्द्रके मनमें संकोच अवश्य विद्यमान था, फिर भी उपस्थित विद्वानोंकी सहृदयताका प्रकृत परिचय पाकर वे गद्गद हो रहे थे।

इसके बाद कविताओंका जो दूसरा पाठ प्रारम्भ हुआ, वह तो पहलेसे भी अधिक सुन्दर था। प्रत्येक कवितामें बंगालके मनोरम प्राकृतिक दृश्य—पावस-ऋतु, सघन मेघ, फेनिल समुद्र, शुभ्र तुषारावृत पर्वत, शस्य श्यामल भूमि,

शांतिनिकेतनके हिन्दी-भवनका शिलान्यास करते हुए
साधु ऐण्ड्रूज़

पद्म-पुष्पोंसे सुशोभित-पुष्करिणी, क्रीड़ामग्न ग्रामीण बालक, गाँवकी हाट, तीर्थ-यात्रियोंके दल और मंदिर—ये सभी दृश्य सुमधुर संगीतके रूपमें मूर्त्तिमान होकर एक-एक करके नेत्रोंके सम्मुख उपस्थित हो उठे। उधर तो कविता-पाठ हो रहा था और इधर श्रोताओंके मन - मानसमें भावोंकी हिलोर उठ रही थी। मेरे लिए तो अश्रुओंका रोकना कठिन हो गया। परन्तु साथ ही यह देखकर मेरा हृदय आनन्दसे उच्छ्वसित हो उठा कि अन्ततः मेरे देशवासी भारतवर्षकी प्रतिभाके समक्ष, जो कि उसके एक सर्वश्रेष्ठ कविके रूपमें प्रकट हो रही थी, अपना सिर झुका रहे थे। अर्द्धरात्रिके क़रीब सभा विसर्जित हुई, और हम सब लोग अपने-अपने घर वापस आए।

कविताओंका अनुवाद स्वयं कवीन्द्रने किया था और उनका अंगरेज़ी शब्दोंका चयन इतना मधुर और लावण्यपूर्ण था कि एक श्रोताने मुझसे कहा—"मैं तो मूल बँगलामें भी इससे अधिक सुन्दर और निर्दोष रचनाकी कल्पना नहीं कर सकता।" कवीन्द्र अँगरेज़ी भाषाके बन्धनको जानते हैं, इसलिए अपने विचारोंको छन्दोंमें प्रकट न करके उन्होंने सुन्दर और सौष्ठवयुक्त गद्यकी रचना की थी।

( २ )

कवीन्द्रसे यह मेरी प्रथम भेंट थी। ऊपर मैं उसका उल्लेख कर चुका हूँ। इस अवसरपर मि० ईट्सने जो कविताएँ पढ़कर सुनाईं, वे अधिकांशमें 'गीतांजलि'की थीं। यह पुस्तक अब प्रकाशित हो गई है, और मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि भूमिका मि० ईट्सकी ही लिखी हुई है। कविता-पाठवाले दिन हम लोगोंके सामने उन्होंने जो विचार प्रकट किए थे, भूमिकामें प्रायः उनका ही समादेश था। दो-एक मुख्य बातें मुझे अब भी याद हैं। एक तो उन्होंने कहा कि रवि बाबूकी कवितामें उपमा तथा अलंकारोंकी छटा ख़ूब देखनेको मिलती है, जो कि पूर्वकी विशेषता है। फिर उनका यह भी कथन था कि कवीन्द्रकी कवितामें वही स्पिरिट मौजूद है, जो यूरोपके साहित्यिक इतिहासमें नवीन जाग्रति-कालके कवियोंमें दीख पड़ती है। वैराग्य-साधन द्वारा आत्माको निर्विकार करनेके बजाय जीवनकी पूर्णतामें आनन्द लेना कविको अधिक प्रिय है। ईसाई संत एस० बर्नर्ड जब आल्प्स पर्वतको पार कर रहे थे, तो उन्होंने प्रकृतिके मनोरम दृश्यकी ओरसे अपने नेत्र इसलिए मूँद लिए थे कि उससे उनकी आत्मा कहीं भटक न जाय। कवीन्द्रमें यह बात नहीं। वे सच्चे सौन्दर्योपासक हैं। उदाहरण-स्वरूप उन्होंने निम्न-लिखित पंक्तियाँ पढ़कर सुनाईं :—

In one salutation to thee, my God, let all my senses spread out and touch this world at thy feet.

( एकटि नमस्कारे, प्रभु,
एकटि नमस्कारे

सकल देह लुटिये पड़ुक्
तोमार ए संसारे। )

विषय-वर्णनकी सादगीकी प्रशंसा करते हुए वे पढ़ते गए :—

Like a rain cloud at July hung low with its burden of unshed showers, let all my mind bend down at thy door in one salutation to thee.

( घन श्रावण-मेघेर मतो
रसेर भारे नम्र नत
एकटि नमस्कारे, प्रभु,
एकटि नमस्कारे
समस्त मन पड़िया थाक्
तव भवन-द्वारे। )

कविने किस तरह एक कुशल चित्रकारकी भाँति अपनी निपुण तूलिकासे प्रकृतिका सजीव चित्रण किया है, इसका वर्णन करते हुए उन्होंने फिर अन्तिम पंक्तियाँ पढ़ीं, जो कि उपमा-अलंकारको दृष्टिसे और भी अधिक सुन्दर और सम्पूर्ण बनी हैं :—

L t all my songs gather together their diverse strains into a single current and flow to a sea of silence in one salutation to thee.

( नाना सुरेर आकुलधारा
मिलिये दिये आत्महारा
एकटि नमस्कारे, प्रभु,
एकटि नमस्कारे
समस्त गान समाप्त होक्
नीरव पारावारे। )

Like a flock of home-sick cranes flying night and day back to their mountain nests let all my life take its voyage to its eternal home in one salutation to thee.

( हंस जेमन मानसयात्री
तेमनि सारा दिवसरात्रि
एकटि नमस्कारे, प्रभु,
एकटि नमस्कारे
समस्त प्राण उड़े चलुक्
महामरण-पारे। )

इसमें सन्देह नहीं कि मि० ईट्स कवीन्द्रके बड़े भक्त हैं। वे खुले हृदयसे उनके काव्यकी प्रशंसा कर रहे थे। फिर भी मुझे यह कहना पड़ेगा कि वे उनके महत्त्वके असली रहस्यको नहीं समझ सके। जिसे वे पूर्वकी विशेषता कहते थे, उससे वे आवश्यकतासे अधिक प्रभावित जान पड़ते थे। परन्तु जिन्होंने केवल पुस्तकोंकी सहायतासे ही पूर्वको देखा और समझा है, उनके लिए इस तरहकी चर्चा ख़तरेसे भरी है। असली बात तो यह है कि कवीन्द्र सार्वजनीन हैं। भारत अथवा एशियाके होकर भी वे उसी प्रकार सार्वदेशीय हैं, जिस प्रकार शेक्सपियर अथवा यहूदी पैग़म्बर। इसके अलावा नवीन जाग्रति-कालकी स्पिरिट अथवा मूल प्रवृत्तियोंके साथ कवीन्द्रकी रचनाओंकी तुलना मुझे कुछ जँची नहीं। उससे तो सार-वस्तु ही हम खो बैठते हैं। यूरोपमें १४ वीं शताब्दीसे लेकर सोलहवीं
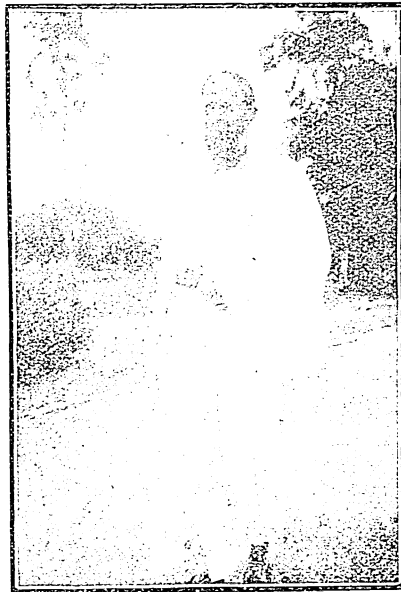
शान्तिनिकेतनमें साधु ऐण्ड्रूज़

शताब्दीके बीच जो कलाकार उत्पन्न हुए, वे—थोड़े या बहुत, कुछ भी सही—कोरमकोर मूर्तिपूजक थे। नैतिक पवित्रताका कुछ भी ख़याल न करके उन्होंने सौन्दर्यके बाह्य आवरणकी ही अधिक उपासना की। परन्तु रवीन्द्र तो शुद्ध आत्मावाले उन कविर्मनीषियोंमें से हैं, जिनका ईश्वरसे सान्निध्य है। अपनी इस आत्मिक शुद्धिके द्वारा ही प्रकृतिको वे आनन्द-रूपमें देखते हैं। इस आत्मिक शुद्धिकी प्राप्ति विषय-भोगोंका परित्याग करनेसे ही होती है। नवीन जाग्रति-कालके कलाकारोंने ज्ञानका संचय तो किया (और इतना किया कि वह उनके लिए ज़हर हो उठा)

परन्तु भोगोंके परित्याग करनेकी कोई चेष्टा उन्होंने नहीं की।

फिर भी मि० ईट्सकी एक बातसे मैं सहमत हूँ। कवीन्द्रको अपने लिए किसी दुभाषिए अथवा टीकाकारकी आवश्यकता नहीं। वे आप अपने सर्वश्रेष्ठ टीकाकार हैं। उनकी रचनाएँ पाठकके मनपर अपना सीधा प्रभाव डालती हैं।

उस रात हम लोग जिस कमरेमें बैठे थे, उसकी खिड़कियोंमें होकर नीचे लंदन महानगरीके असंख्य जलते हुए दीपक दिखाई पड़ रहे थे। संसारकी इस सर्वश्रेष्ठ नगरीके 'विराट हृदय' का भीषण प्रकम्पन और उसका कोलाहल मानो हमें सुनाई दे रहा था। मि० ईट्स कविता-पाठमें मग्न थे। इधर मैं खिड़कीके निकट, ग्रीष्मकी लम्बी गोधूलि-वेलामें मंत्रमुग्ध-सा बैठा काव्य-रसका पान कर रहा था। नीचे दूर—काफ़ी दूर—मनुष्य आकुल भावसे इधरसे उधर जाते नज़र आ रहे थे। कुछ धन संचय और भोग-विलासके पीछे पागल थे और कुछ दुःख और चिन्ताओंसे जर्जरित हो रहे थे। कुछ तो श्रीमानोंकी तरह बढ़िया कपड़े पहने थे और कुछ बेचारे दरिद्रताकी साक्षात् मूर्ति बने हुए थे। कैसा अशान्त और विषम जीवन था! परन्तु यहाँ ऊपरके एक कमरेमें एक मानव-हृदय संसारकी दुखी और मृत्यु-पीड़ित आत्माओंको साहस और मुक्तिका संदेश दे रहा था—एक ऐसा पवित्र संदेश, जो ईश्वरकी परम सत्ताका परिचायक था। कवीन्द्र और अँगरेज़ लोगोंके बीच सहस्रों मीलकी दूरीका अन्तर था; असंख्य युगोंकी परम्परा और जलवायुकी घोर विषमताका प्रभेद भी उनमें बहुत काफ़ी था। फिर भी मानव-हृदय तो सर्वत्र एक है। कवीन्द्रका संदेश अँगरेज़ोंके लिए भी उतना ही सत्य है, जितना भारतवासियोंके लिए। अँगरेज़ोंको भी वह उतना ही आकृष्ट करेगा, जितना कि प्रेम और स्नेहके द्वारा उसने भारतवासियोंको किया है। मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ—मेरा हृदय इस बातकी गवाही देता है—कि उनके संदेशमें यह शक्ति मौजूद है। उसका कारण स्पष्ट है। उनका संदेश बहुत सीधा, पवित्र और सार्वजनीन है। जब तक कविता-पाठ चलता रहा, मैं इसी प्रकारके विचारोंमें निमग्न बैठा हुआ कविताका आनन्द लेता रहा। उसके बाद अर्द्धरात्रिके लगभग उठकर घर आया।

मैं बहुत प्रफुल्लित था। सचमुच अपनी ख़ुशीका मैं वर्णन नहीं कर सकता। रवीन्द्रके काव्यकी नई शराबने मुझे मदहोश बना दिया था। अब तक मैंने यत्र-तत्र थोड़ी-सी कविताएँ पढ़ी थीं; परन्तु आज तो जी भरकर उनका असली रस-पान किया था।

मि० नेविनसनके साथ मैं धीरे-धीरे घरकी तरफ़ लौट रहा था। मेरे मुँहसे बात बहुत कम निकलती थी। मैं अब भी आश्चर्य और आनन्दसे अवाक् था और रात्रिकी उस निस्तब्धतामें अकेले रहकर मुझपर जिस जादूका असर हुआ था, उसपर विचार करना चाहता था। मि० नेविनसन तो अपने घर गए और मैं एकाकी मैदानमें होकर आगे बढ़ने लगा। रात्रि मेघ-रहित थी और आकाशमें भारतीय वातावरणकी कुछ ऐसी झलक थी कि उसे देखकर मेरा मन सहसा वहाँ दौड़ गया। झिलमिलाते हुए तारे मूक-मग्न-भावसे मेरी ओर देख रहे थे, मानो वे मुझसे कुछ कहने और मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट करनेके लिए उत्सुक हों। तब उस एकान्त स्थलमें सहसा मेरे ध्यानमें आया कि यह कैसा जादू है! विश्व-मानवके हृदयकी एकता—अखिल मानव-जातिकी आत्माका एक होना—यह सचमुच कितनी अद्भुत और अलौकिक बात है! काग़ज़पर लिखते समय ये दो शब्द बड़े खोखले जान पड़ते हैं; परन्तु उस दिन कवीन्द्रने यह प्रकट कर दिया कि वे खोखले या निर्जीव नहीं हैं, बल्कि उनमें ज्वलन्त सत्यकी छाप मौजूद है। मेरे हृदयके समस्त सोते हुए भाव जाग्रत हो उठे थे, मानो किसीने उन्हें मंथित कर दिया हो। इसकी स्मृतिको ताज़ा रखने तथा उसपर विचार करनेके लिए मुझे एकान्तकी आवश्यकता थी।

उसके बाद मुझे बराबर कवीन्द्रके समाचार मिलते रहे। किस तरह लंदनके साहित्य-सेवी उनका महान सत्कार कर रहे थे, किस तरह उनके सम्मानमें जगह-जगह दावतें दी जा रही थीं, किस तरह सार्वजनिक सभाओंमें—जहाँ स्वयं उन्हें भी उपस्थित होना पड़ता था—उनकी कविताएँ पढ़ी गईं—ये सब ख़बरें मुझे बराबर मिलती रहती थीं।

उनको इस प्रकार समादृत होते देख मैं ख़ुशीसे फूला नहीं समा रहा था। अपने स्वदेश—भारतवर्ष—को वे जो गौरव प्रदान कर रहे थे, उसका स्मरण करके मैं बार-बार प्रफुल्लित हो उठा। परन्तु साथ ही मुझे कुछ चिन्ता

भी हुई। उस दिन मैंने जो कुछ देखा, उससे मुझे यह समझनेमें देर नहीं लगी कि कवीन्द्र-जैसे एकान्तप्रिय व्यक्ति दुनियाकी इस दिखावटी प्रशंसासे अवश्य ही ऊब रहे होंगे और उनके शरीर और मनपर भी अनावश्यक ज़ोर पड़ रहा होगा—जब कि इंगलैण्ड वे स्वास्थ्य-लाभके लिए आए थे।

इसलिए उनको देखे बिना मेरा जी न माना। उनसे मिलनेके लिए मैंने ख़ास तौरसे लन्दनकी यात्रा की। मेरा अनुमान ठीक था। वे कुछ अस्वस्थ और थके हुए नज़र आ रहे थे, और मुझे देखते ही कहने लगे—"मैं अब अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैं यहाँसे जाना चाहता हूँ। मैं शीघ्र एकान्त चाहता हूँ। अकेलेमें रहनेका मैं इतना अभ्यस्त हूँ कि यह सब मुझसे सहन नहीं होता। लोग मुझपर बड़े कृपालु हैं; परन्तु इस विज्ञापनसे मेरे भीतर जो कुछ है—वह सब मानो शुष्क हुआ जा रहा है। मैं एकान्त चाहता हूँ। जहाँ कोई न हो, वहाँ जाकर मैं शान्तिपूर्वक रहना चाहता हूँ।"

मैंने उनसे कहा—"मेरे एक मित्र हैं। वे एक छोटे-से सुन्दर गाँवमें रहते हैं। सभ्यताके कुप्रभावसे यह गाँव अब भी बचा हुआ है। यह बड़े नगर अथवा रेलवे स्टेशनसे काफ़ी दूर है। आप मेरे साथ चलकर वहाँ रहें। मेरे मित्रके कई बच्चे हैं। वे आपका हार्दिक स्वागत करेंगे और गाँववाले भी आपको देखकर बहुत प्रसन्न होंगे।"

मेरा प्रस्ताव सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"मैं ज़रूर चलूँगा और अगस्तके महीने भर वहीं रहूँगा।"

इसके थोड़े दिनों बाद ही मैं फिर लन्दन पहुँचा और उनके साथ गाँवके लिए चल दिया। साथमें उनकी पुत्र-वधू भी थीं। उन दिनों बैंककी छुट्टियाँ हो रही थीं। स्टेशनपर बड़ी भीड़ थी। अपने साथियोंके लिए मैं बड़ी मुश्किलसे बैठनेको जगह कर सका। रास्ते भर रवीन्द्र नेत्रोंको बन्द किये ध्यान-निमग्न बैठे रहे। एक दूसरी जगह हमें फिर ट्रेन बदलनी पड़ी। वहाँ भी भीड़से वैसा ही मुक़ाबला करना पड़ा। अन्तमें हम लोग उतरे। मेरे मित्र पहलेसे ही स्टेशनपर मौजूद थे। मूसलधार पानी बरस रहा था और अगले कई दिनों तक तूफ़ान आते रहे। प्रिन्सपल रुद्र और उनकी पुत्री यहाँ पहलेसे ठहरे हुए थे। उन्होंने सच्चे भारतीय ढंगसे कविका स्वागत किया। कवीन्द्र शीघ्र ही उन लोगोंमें—जहाँ हम ठहरे थे—घरकी तरह रहने लगे। उनके जो बच्चे थे, उनके साथ तो वे बहुत प्रसन्न रहते थे; और बच्चे भी उनसे ख़ूब हिल-मिल गये थे—मानो पुराने दोस्त हों। वहाँ एक और छोटा बालक था। वह मेरा धर्मपुत्र था। उसको तो कवीन्द्र विशेष स्नेह करने लगे थे। वह भी उनसे इतना हिल गया था कि पहले वह उनकी गोदमें जाता और बादमें मेरे पास आता। बालक आश्चर्यपूर्ण मुद्रासे पहले तो रवीन्द्रके मुखमंडलकी ओर देखता रहता और फिर हाथसे उनकी दाढ़ी पकड़कर खींचता और मुस्करा उठता। इस प्रकार दोनों ही कवि और बालक एक दूसरेके साथ खेलते हुए कभी ऊबते नहीं थे।

कवीन्द्रने अपनी बँगला पोशाक वहाँ भी नहीं छोड़ी थी। गाँववालोंके लिए वह नई चीज़ थी। पहले तो उस पोशाकको देखकर वे बड़ा आश्चर्य करते रहे; परन्तु धीरे-धीरे उनका यह अजनबीपन दूर हो चला। कवीन्द्रसे वे ख़ूब परिचित हो गए। जब कभी वे बाहर घूमने निकलते, तो ग्रामवासी उनका स्वागत करते और उनसे बातें करने लगते। कवीन्द्र उनके घर जाते। ग्राम पाठशाला और गिरजेमें भी अक्सर जाते। इस प्रकार कुछ दिनोंके लिए वे स्थानीय जीवनका एक अंग बन गए। जब कभी मौसम अच्छा होता, तो वे खेतों और मैदानोंमें घूमने निकल जाते। घूमना उन्हें बहुत प्रिय था। वहाँ पहुँचनेपर पहले दिनसे ही उनमें ताज़गी आती गई। देहातके शान्त वातावरणमें नगरका सारा कोलाहल और धूल-धक्कड़ वे भूल गए।

मेरे लिए तो यह एक स्वर्ण-अवसर था—एक ऐसा अवसर जब कि उनके प्रति मेरी श्रद्धा और भक्ति बराबर बढ़ती गई। यह विषय मेरे लिए इतना पवित्र है कि उसकी चर्चा भी मैं नहीं कर सकता। उन दिनों भारतके हृदयको मैं अच्छी तरह समझ सका। रात्रिके समय जब हम ब्यालू कर चुकते और सब बच्चे विश्रामके लिए चले जाते, तब कवीन्द्र अपने बँगला गीत हमें गाकर सुनाते। उन गीतोंका विषय वे हमें पहलेसे ही समझा देते। उस समाजमें हम सभी लोग 'भारत-प्रेमी' थे। मेरे मित्र तो अपनी बीमारीके कारण ही भारत जाते-जाते रुक गए थे। हम लोग भारतकी चर्चा करते और कविसे मनोनुकूल

प्रश्न भी पूछते। कवीन्द्र अपने बोलपुरके स्कूलकी सबसे अधिक चर्चा करते और सदैव वहाँके विद्यार्थियोंकी याद किया करते। उनका ख़याल उन्हें सबसे पहले होता। कभी-कभी रातको वे हम लोगोंके साथ खेलने भी बैठ जाते, और उस समय पार्टीमें जो बालक होते, उनकी तरह ही वे सब हँसते थे। प्रातःकालका समय वे एकान्तमें व्यतीत करते थे। कलेवेके समय बाहर निकलते।

इस प्रकार दिन शीघ्रतासे बीतते गए। इस बीचमें ही मुझे अपना लेक्चर देनेके लिए केम्ब्रिज जाना पड़ा। मैं यह आशा लेकर गया था कि लौटकर फिर भेंट होगी; परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मौसम सहसा बदल गया। पानीकी झड़ी लग गई और शीत-ऋतुकी तरहकी कड़ी सर्दी पड़ने लगी। गाँव समुद्रकी सतहसे काफ़ी ऊँचा था और वहाँ हमेशा तेज़ हवाएँ चलती रहती थीं। इस तरहका मौसम कवीन्द्रकी प्रकृतिके अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ, और डाक्टरने उनको दक्षिणके किसी प्रान्तमें जानेकी सलाह दी। इसलिए वह जगह उन्होंने छोड़ दी। उसके बाद उन्हें फिर लंदन जानेके लिए मजबूर होना पड़ा।

कवीन्द्र जितने दिनों इंग्लैंडमें रहे, बराबर मि० राथेन्सटीनके स्टूडियो (चित्रशाला) में जाते थे; क्योंकि मि० राथेन्सटीन उनकी एक तस्वीर बना रहे थे। 'गीतांजलि'के अँगरेज़ी संस्करणमें मि० राथेन्सटीनका बनाया हुआ एक बहुत सुन्दर पेंन्सिल-स्केच दिया गया है। पुस्तक भी उनको समर्पित की गई है, जिसके कि वे सर्वथा योग्य हैं। पुस्तकको प्रकाशित करनेकी बात सबसे पहले उन्होंने ही सुझाई थी, और इस कार्यमें उन्होंने बड़ी सहायता भी पहुँचाई। इतना ही नहीं, भारत और उसके सर्वश्रेष्ठ कविके प्रति उन्होंने कई प्रकारसे अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट की है। उन्होंने कविका एक और चित्र बनाया है, जिसमें वे तीर्थ-यात्रियोंकी एक मंडलीके साथ दिखाए गए हैं। वे उस मंडलीके नेता हैं। चित्र वास्तवमें बहुत ही सुन्दर बना है और इस समय जो बड़ा चित्र वे बना रहे हैं, वह भी अत्यन्त कोमल और भावपूर्ण है। चित्रकी प्रत्येक रेखामें कलाकारकी आत्मा मौजूद है। मि० राथेन्सटीनने मुझसे कहा कि चित्र यदि अच्छा बना, तो इसकी एक कापी कलकत्ता-निवासियोंको भेंट करनेका विचार है। चित्र जब क़रीब-क़रीब तैयार हो चुका, तो मैंने उसको देखा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मि० राथेन्सटीनको उसमें पूर्ण सफलता मिली है। आलेख्य विषयको बहुत सादगीसे प्रकट किया गया है। रंगोंकी कोई चमक-दमक नहीं। पृष्ठभूमि हल्के दो रंगकी है। किसी तरहकी सजावट या रेखाओंका अनावश्यक प्रदर्शन वहाँ नहीं। कवि ध्यान-मग्न बैठे हैं और शरीरपर गेरुए रंगका परिधान है, जो कि उनके दोनों कंधोंपर ख़ूबसूरतीसे पड़ा हुआ है। उनके नेत्र एक स्थिर और दूर दृष्टिसे किसी अज्ञात लोककी ओर देख रहे हैं। दोनों हाथ सम्पुटित मुद्रामें सामने रखे हैं। मैं सितम्बर तथा अक्टूबरके शुरूके महीनेमें कई बार लंदन गया, और वहाँ जाकर कवीन्द्रके साथ मि० राथेन्सटीनके स्टूडियोमें जाता। मि० राथेन्सटीन तो उनकी तस्वीर बनानेमें लग जाते, और मैं चुपचाप बैठा देखा करता कि कुशल चित्रकारके हाथोंसे किस तरह धीरे-धीरे चित्र तैयार हो रहा है। काम करते समय मि० राथेन्सटीन अक्सर अपनी भारत-यात्राका वर्णन सुनाने लगते। भारतसे वे बहुत प्रभावित थे, और जब वे वहाँ गए, तभी कवीन्द्रसे उनका प्रथम परिचय हुआ था।

परिचयमें कुछ ऐसी आत्माएँ हैं, जो भारत जाकर तुरन्त ही वहाँके निवासियोंसे एक प्रकारकी आत्मीयता अनुभव करने लगते हैं—मानो उस देशके साथ उनका पूर्वजन्मका कोई सम्बन्ध है। यह सचमुच बड़ी विलक्षण बात है। इसका कारण क्या है, यह अब तक स्पष्टतः मेरी समझमें नहीं आया। परन्तु यह है बिलकुल सच। इसे ही प्रथम मिलनमें प्रेम होना कहते हैं। मिस्टर निवेदिता उन आत्माओंमें से एक हैं। दूसरे मि० राथेन्सटीन हैं। भारतवासी भी इस प्रेम-भावनाको समझते हैं और उसका प्रतिदान शीघ्र ही करते हैं। प्रेमके बदलेमें प्रेम अवश्य मिलता है। अचेतन मस्तिष्कके कौन-से प्रदेशमें स्नेहका यह दीपक छिपा रखा रहता है और अवसर मिलनेपर क्षण भरमें प्रज्वलित हो उठता है, इस रहस्यको मैं अब तक भी नहीं समझ सका हूँ। मनोविज्ञानवेत्ता सम्भवतः इस विषयमें हमारी कुछ सहायता कर सकें। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आत्मीयताकी यह भावना भारत और यूरोपके बीच कहीं न कहीं छिपी हुई एकताकी सूचक है। अतीतके किसी प्रागैतिहासिक कालमें इन दोनों देशोंके पूर्वज अवश्य ही एक रहे होंगे, तभी तो आज हम इतना शीघ्र एक दूसरेको अपना समझने लगते हैं।

लन्दनमें श्री विलियम राथेन्स्टीनके यहाँ रवीन्द्रनाथ (सन् १६१२ ई०)। कविकी दाहिनी ओर श्री राथेन्स्टीन बैठे हैं।
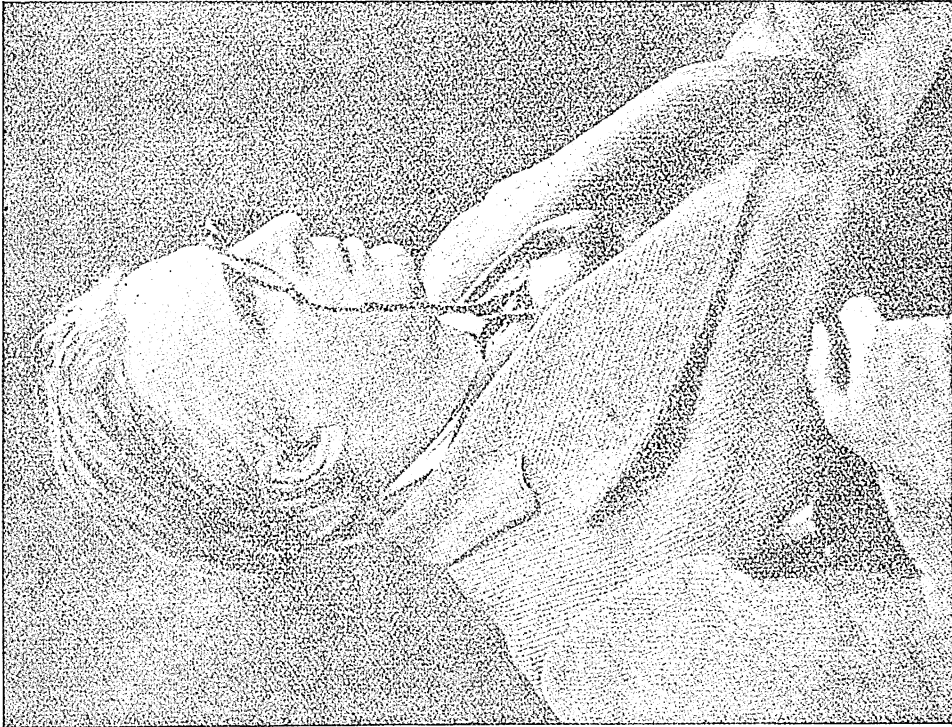
श्री विलियम बटलर यीट्स, जिन्होंने लन्दनमें रवीन्द्रनाथकी कविताओंका पाठ किया था आप ही ने अंगरेजी 'गीतांजलि' की भूमिका लिखी है।

श्री द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरके साथ रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।

इंग्लैण्डमें मेरी छुट्टियाँ शीघ्र समाप्त हो रही थीं। अक्टूबरके मध्य तक मुझे मारसलीज़ पहुँचना था। इसलिए आख़ीरके दिनोंमें कवीन्द्रके निकट रहनेके उद्देशसे मैंने श्रीमती गुप्ता एवं अपने मित्र मेजर सिनहाके यहाँ ठहरनेका इन्तज़ाम किया। मैं श्रीमती गुप्ताका अतिथि था। उन्होंने मुझसे कहा—"आप इसे अपना ही घर समझिए। बिना किसी संकोचके आप यहाँ कभी भी आ-जा सकते हैं।" मैंने भी वैसा ही किया। जब भी थोड़ा अवकाश मिलता, मैं केम्ब्रिजसे लंदनके लिए चल पड़ता और सुबह श्रीमती गुप्ताके मकानपर आवाज़ लगाता। उस समय 'गीतांजलि'के प्रूफ़ प्रेससे आ रहे थे। कवीन्द्रके साथ मैं उन्हें आदिसे अन्त तक दो दफ़े देखता था। इस काममें कई दिन लग गए। सुबह हम लोग प्रूफ़ देखते और तीसरे पहर फिर मि० राथेन्सटीनके मकानपर जाकर मिलते। उसके बाद रातकी गाड़ीसे मैं फिर केम्ब्रिज वापस चला जाता।

आख़ीरके इन दिनोंमें कवीन्द्रने मुझे अपने जीवन तथा अपने देशके साहित्यके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें सुनाईं। उनसे मैंने जो कुछ सुना और स्वयं अपनी आँखसे जो कुछ देखा, उससे मैं यह और भी अच्छी तरह समझ गया कि मि० ईट्सकी 'पुनर्जीवनके युग' वाली बात कितनी अधूरी थी! इसमें सन्देह नहीं कि कवीन्द्र मानव-जीवनकी बहुमुखी धाराओंमें मधुर काव्य-रसका अनुभव करते रहे हैं। जिस प्रकार सूर्य-रश्मियोंकी क्रीड़ासे वे मुग्ध होते थे, उसी प्रकार मानव-जीवनकी चमक-दमक और उसकी विचित्रताएँ भी उन्हें असीम आनन्द प्रदान करती थीं। इस दृष्टिसे वे भारतके युग-प्रवर्त्तक कवि अवश्य हैं। उनकी नवीन शक्तियोंने चकाचौंध पैदा कर दी है। परन्तु इसके सिवा वे कुछ और भी हैं। जिस प्रकार शेक्सपियर और मिल्टन यूरोपके पुनर्जीवन-कालके प्रतिनिधि होकर भी सार्वजनीन हैं, उसी प्रकार कवीन्द्र अपने ढंगके सार्वजनीन कवि हैं—किसी एक विशेष युग या देशके नहीं।

अपनी बुद्धिके अनुसार जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, सार्वजनीनताके निकट पहुँचनेका कवीन्द्रका एक ही तरीक़ा है। शेक्सपियर कई रास्तोंसे वहाँ पहुँचता है; परन्तु कवीन्द्रका एक ही मार्ग है—और वह है सादगी और सरलताका मार्ग। वहाँ आडम्बर नहीं। मानव-हृदयके सरलसे सरल भाव, तरुण और भोले-भाले व्यक्तियोंका बालकों-जैसा हृदय, नित्यप्रतिके गार्हस्थ्य सुख और दुःख और ईश्वरसे मिलनेकी आत्माकी पवित्रसे पवित्र और सरल कामनाएँ—ये सब चीज़ें हैं, जिन्हें लेकर कवीन्द्र अपने संगीतके द्वारा सार्वजनीन एकताको प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। 'गीतांजलि'में मुझे उनकी इसी सारल्य-जनित एकताके दर्शन होते हैं। और एकताका यह सदेश भारतके लिए ही नहीं, इंग्लैण्डके लिए भी है—वर्तमान युगके लिए ही नहीं, आनेवाले अनेक युगोंके लिए भी। यह तो सार्वजनीन युगकी आत्मा बोल रही है, किसी विशेष युगकी नहीं।

अन्तमें वह दिन भी आ गया, जब हमें एक दूसरेसे विदा होना था। लोगोंसे मिलने-जुलने, दौड़-धूप करने और यात्राके कारण मैं बहुत ही थका-माँदा हो रहा था; परन्तु उस दिन जो थोड़े-से घंटे मैंने उनके साथ व्यतीत किए, उनकी स्मृति कभी क्षीण नहीं होगी। सुबह हम लोग पुस्तकके प्रूफ़ आदि देखते रहे। उसके बाद मुझे इण्डिया-आफ़िसमें कुछ लोगोंसे मिलने जाना था। वहाँसे लौटकर हम फिर तीसरे पहर मि० राथेन्सटीनके घर पहुँचे। वहाँ श्री ब्रजेन्द्रनाथ सील भी थे। उनकी उपस्थितिसे मेरे लिए वह दिन और भी आनन्दमय बन गया। बहुत दिनोंसे मैं उनसे मिलनेके लिए इच्छुक था। उनकी प्रकांड विद्वत्ताके कारण मैं सदैव ही दूरसे उनका भक्त रहा हूँ। आज उनके दर्शन करनेका सौभाग्य भी मुझे मिल गया। तीसरा पहर भी बीत चला। हम लोग खिड़कीके समीप बैठे हुए थे, जहाँसे लन्दन महानगरीकी चक्रव्यूहमयी सड़कोंपर छाया हुआ धुआँ हमें दिखाई पड़ रहा था। इधर-उधर कुछ गिरजाघरोंके शिखर भी कुहासेको भेदकर अपना मस्तक ऊपर उठा रहे थे। नगरके बीचकी विशाल अट्टालिकाएँ दूरके धुँधलेपनमें विलीन-सी हो रही थीं। परन्तु हम सब लोगोंके मन भारतमें थे, और अतीत एवं वर्तमानकी चर्चा करते हुए भविष्यकी ओर दृष्टि लगाए हुए थे। मैं कवीन्द्रसे आग्रह कर रहा था कि आप जब भारत पहुँचें, तो मुझसे होमर तथा ग्रीक भाषाके अन्य प्राचीन काव्य पढ़ें। साथ ही मैं भी आपसे बँगला भाषा अवश्य पढ़ूँगा, ताकि मूलमें आपकी कविताओंका रसास्वादन कर सकूँ। मेरी कुछ ऐसी धारणा थी कि होमर तथा ग्रीसके प्रसिद्ध नाटककारोंकी रचनाएँ कवीन्द्रको
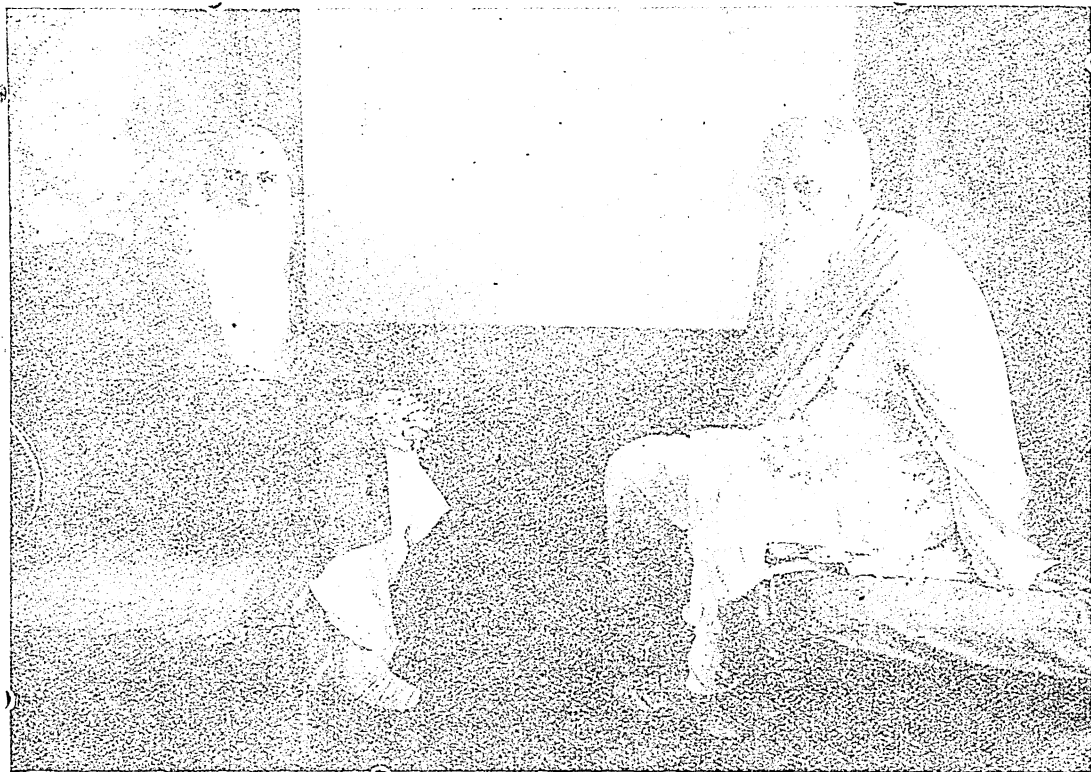
श्री राथेन्सटीनके यहाँ आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ सील और कवीन्द्र रवीन्द्र ।

पसंद आयँगी, क्योंकि उनमें बहुत-कुछ आर्योंके विचारोंकी झलक मौजूद है ।

कवीन्द्र तीन सप्ताहके भीतर ही अमेरिका पहुँचनेका विचार कर रहे थे, और मुझे भी दिल्ली पहुँचना था । हम लोग एक दूसरेसे अलग हो रहे थे । दस हज़ार मीलसे भी अधिक दूरीका अंतर हमारे और उनके बीचमें पड़ने जा रहा था । परन्तु वर्तमान समयमें यातायातके साधन इतने सुलभ हो गये हैं कि हम लोग इस प्रकार बात करते रहे, मानो इच्छा करनेपर कभी भी मिल सकते हैं । मि० राथन्सटिनके साथ हम लोगोंने चाय पी । बालकोंने भीतर आते ही कवीन्द्रका अभिवादन किया । वे अब घरके ही आदमी हो गए थे, और बालक विशेष रूपसे उन्हें प्रेम करते थे । समय बड़े आनन्दसे बीता । हम लोग ख़ूब हँसते रहे । उसके बाद कुछ हार्दिक बातें हुई और मेरे चलनेका समय आ गया । मुझे केम्ब्रिज पहुँचना था । हमने बार-बार एक-दूसरेसे विदा माँगी । उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया—तुम्हें कभी भूलूँगा नहीं । मैं तो संकोचसे ज़मीनमें गड़ गया और दिन भरकी जितनी भी थकान और परेशानी थी, वह इस ख़ुशीके कारण दूर हो गई कि कवीन्द्र-रवीन्द्रने मुझे अपना मित्र मान लिया है ।
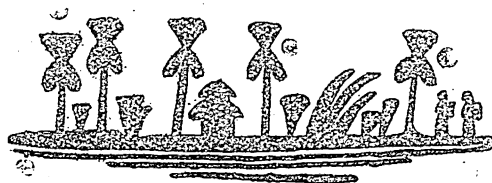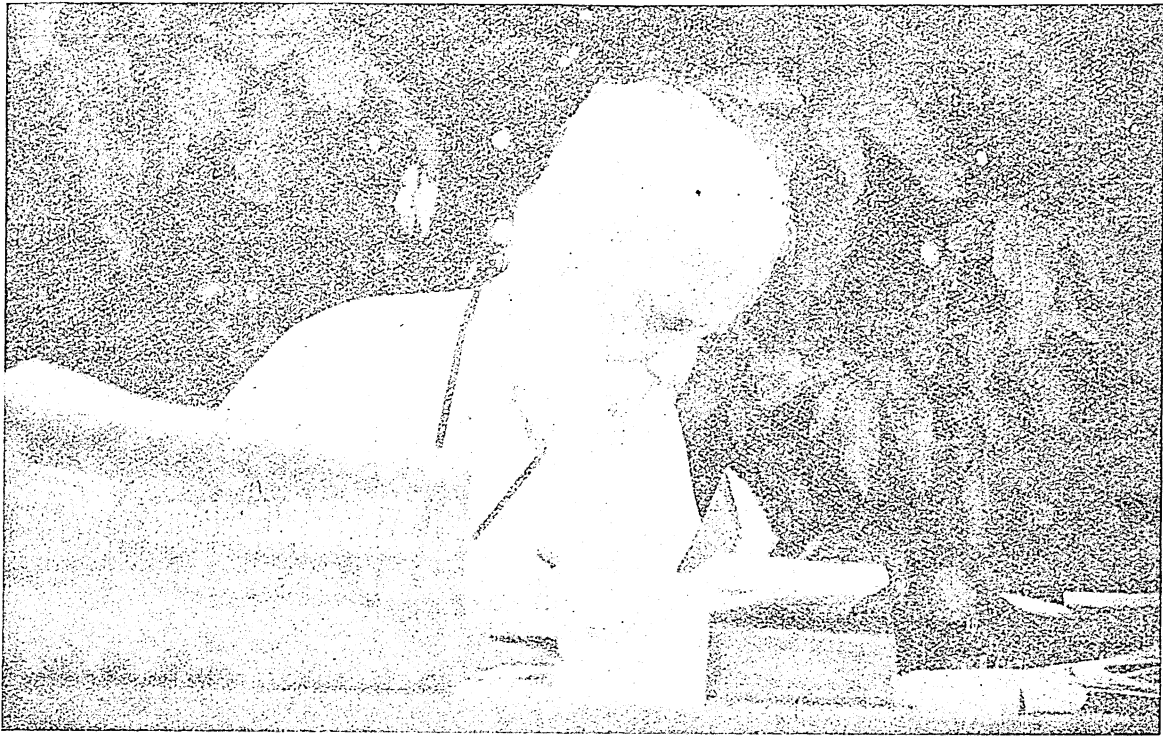
# ठाकुर, अपने दोमंज़िलेसे कब उतरोगे ?

श्री गुरुदयाल मलिक

अभी कुछ दिन हुए मैं उस कमरेमें, जहाँ गुरुदेव रहा करते थे, गया था। उनकी ख़ाली कुर्सी देखकर मेरा दिल भर आया। उसको शान्त करनेके लिए मैं उनकी कुर्सीके पास बैठ गया और उस मंत्रपर—जो उनको बहुत प्रिय था—'शान्तं शिवं अद्वैतं'—ध्यान करने लगा।

एकाएक उनके एक पुराने गीतकी एक पंक्ति मेरे कानोंमें गूँज उठी, जिसका अर्थ है—'हे भगवान, जब मैं अपना प्रणाम तेरे चरणोंके पास रखनेके लिए आता हूँ, तो मेरे अहंकारके कारण वह प्रणाम तेरे चरणों तक नहीं पहुँचता।' मैं हैरान हो गया कि हठात् यह गीत मुझे क्यों याद पड़ा ? जो भी हो, एक बात तो मैंने अच्छी तरहसे समझ ली कि अगर मेरी प्रार्थना या प्रणाम प्रभुके चरणोंको नहीं पहुँच पाता, तो उसका कारण सिर्फ़ मेरा अपना अहंकार ही है।

जब इस ज्ञानने मुझे बहुत अशान्त कर दिया, तब मैंने अपने दिलमें कहा—यह ख़ूब रही, मैं आया था शान्तिके लिए; पर यहाँ तो बात उल्टी ही हुई। मैं तो अशान्तिसे और भी तड़प रहा हूँ। क्या ऐसा ही होता है कि जब कभी एक साधारण मनुष्य किसी महान व्यक्तिके समीप जाता है, तो उसके मनकी लहरें उठ-उठकर उछलने लगती हैं और उसको अस्थिर कर देती हैं ? क्या ईसाके शब्दोंका यही मतलब था कि मैं जगतमें शान्ति लेकर नहीं आया हूँ, बल्कि एक तलवार लेकर आया हूँ; अथवा जैसा कि एक उर्दू-कविने कहा है—

"तू मुझे सिरफ़ अमन ओ अमान ही में ना नज़र आया;
वल्कि चलती हुई तलवारमें भी तू मुझे नज़र आया।"

फिर तो अशान्तिसे मैं इतना घबरा गया कि मुझे ऐसा मालूम होने लगा जैसे अभी दम निकला जाता है। इसलिए मैं गुरुदेवके कमरेसे बाहर निकल आया और आकाशके तारोंकी तरफ़ ताकता-ताकता अपनी कुटियाको लौट पड़ा। लेकिन गुरुदेवके मकानसे कुछ ही क़दम दूर पहुँचा होऊँगा कि मालूम नहीं, कहाँसे मेरे कानोंमें ये शब्द सुनाई देने लगे—"अब तो तुम दोमंज़िलेसे नीचे उतर

आओ।" मुझे फिर आश्चर्य हुआ कि यह शब्द कौन कह रहा था, और ये मुझे क्यों सुनाए जा रहे थे ? मैं ज़मीनपर रहनेवाला ; मैं दोमंजिलेपर कब रहता हूँ कि नीचे उतर आऊँ ? फिर मैं उन शब्दोंको मनमें दोहरा हुआ आगे चल दिया।

रात आई। आश्रमके सब निवासी सो गए थे। मैं अकेला जाग रहा था, क्योंकि चाँदनी ऐसी सुन्दर थी कि
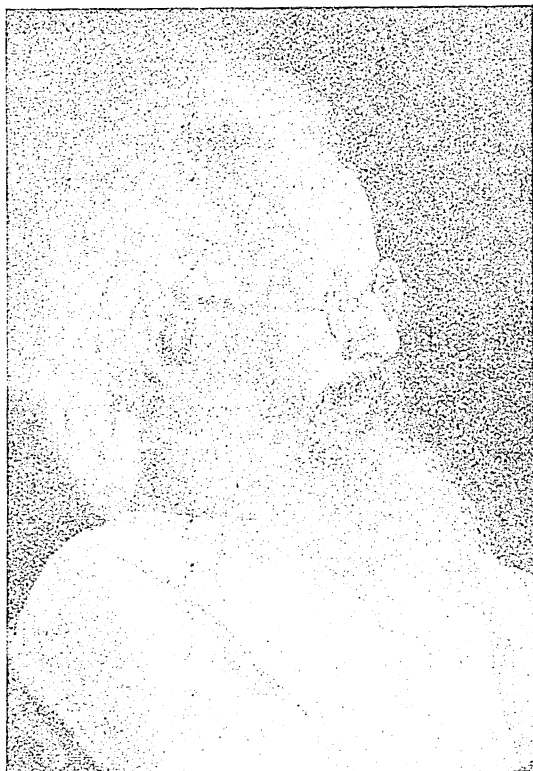
श्री गुरुदयाल मलिक

उसने मेरी आँखोंसे नींद चुरा ली, जैसे कि ऊपर लिखे हुए शब्दोंने—जो मैंने गुरुदेवके घरसे वापस आते हुए सुने थे—एक बार फिर मेरे मनकी शान्ति चुरा ली थी। आख़िर इन शब्दोंका मतलब क्या है ?—मैंने अपने-आपसे एक बार और पूछा। विचार करते-करते गुरुदेवके जीवनका एक वाक़या मुझे याद आया। बहुत वर्ष पहले वे पद्मा नदीके किनारे सिलैहदामें अपनी ज़मींदारीपर रहा करते थे। एक बार कुछ दिनोंके लिए एक वैष्णव स्त्री, जिसको वहाँके लोग पागल करके जानते थे, उनके दोमंज़िले मकानके सामने आकर थोड़े समयके लिए हर रोज़ खड़ी होती थी और बग़ैर कुछ कहे-सुने वापस चली जाती थी। एक दिन जब वह ऐसे ही आकर खड़ी हुई, तब गुरुदेव अपने कमरेकी, जो दोमजिलेपर था, एक खिड़कीके पास खड़े थे। उनको देखकर उस वैष्णवीने कहा—"ठाकुर, अपने दोमंज़िलेसे तुम कब नीचे उतरोगे ?" मालूम नहीं गुरुदेवको क्या हुआ, ये शब्द सुनकर वे नीचे उतर आए और फिर उसको प्रणामकर बड़े आदर और प्रेमसे उसके चरणोंके समीप बैठ गये। वैष्णवी उनकी तरफ़ कुछ समय तक ताकती रही और फिर वापस चली गई। उस दिनके बाद जब कभी उस वैष्णवीकी इच्छा होती, वह गुरुदेवसे मिलने, चाहे दिन हो या रात, उनके दोमंज़िलेपर चली जाती थी ; क्योंकि गुरुदेवने अपने घरके दरवानको हुक्म दे दिया था कि जब कभी वह वैष्णवी वहाँ आवे, उसको बग़ैर किसी रोक-टोकके उनके कमरेमें जानेका रास्ता दे दे।

उस वैष्णवीसे गुरुदेवकी क्या-क्या बातें हुईं, उसे कौन जाने ; मगर मेरा अपना विश्वास है कि वैष्णवीके उस परिचयका प्रभाव सिर्फ़ उनके जीवनपर ही नहीं, बल्कि उनकी कविताओं और गीतोंपर भी बहुत हुआ। मैं तो कभी-कभी यह भी ख़याल करता हूँ कि उस समय तक गुरुदेव साहित्यके मन्दिरमें ही पूजा किया करते थे। उनकी कृतियोंमें तब प्रकृतिके सौन्दर्यकी प्रशंसा रहती या वे अपनी आत्माके अन्दर परमात्माका परस पाकर जो आनन्द पाया करते थे, उसका ही ज़िक्र होता था। लेकिन उस वैष्णवीसे मिलनेके बाद वे अपने-आपको साधारण स्तरके लोगोंके समान न सिर्फ़ समझने ही लगे, बल्कि उनके दुःखों और सुखों तथा आदर्शों और आशाओंको अपने गीतों, कहानियों और उपन्यासोंमें ज़्यादा व्यक्त करने लगे—मानो उस वैष्णवीसे मिलनेके पहले गुरुदेव एक पर्वतकी ऊँची चोटीपर अकेले रहा करते थे और जगत्‌को उस ऊँची चोटीके दृष्टिकोणसे देखा करते थे। अब वे समतलपर उतर आए और अपने-आपको तथा अन्य सब प्राणियोंको एक ही अनन्त जीवनकी लहरमें बहते हुए समझने लगे। धर्मके, जातिके, ज्ञानके सब भेद-भाव मिट गए। जैसे उनकी आत्मा प्रेमसे मत्त होकर गाने लगी—

"तेरो प्रेम-भेद मिटावे, परस्परके सम्बन्ध बनावे।
आपसमें सबको मिलावे, करे एक वरण॥"
"यह जो सूर्यकी किरण, तेरे प्रेमका आवरण।"

क्या इस जीवनकी समानताके सत्य या सन्देशमें गुरुदेवने अपने साहित्य या कलाकी परिपूर्णता नहीं पाई ?

लेकिन हम सभीने अपना कोई-न-कोई स्थूल या सूक्ष्म महल या क़िला बना रखा है, जिसमें हम अपना बहुत-सा समय विचार करते हुए काटते हैं। हमें अपने-आपको अहंकारकी ऊँची अटारीपर बैठा हुआ और बाक़ी सभीको नीचे चलता हुआ देखनेमें कुछ विशेष मज़ा आता है। यही तो कारण है कि हमारा एक दूसरेसे मेल-मिलाप नहीं होता—अमीरका ग़रीबसे, विद्वानका निरक्षरसे, एक धर्मवालोंका दूसरे धर्मवालोंसे, सफ़ेद रंगवालोंका काले रंगवालोंसे। प्रत्येक व्यक्तिका जीवन एक टापूके समान हो गया है। वह है तो समुद्रमें, किन्तु और टापुओंसे अलग है और एक टापूसे दूसरे टापूको जानेके लिए कोई पक्का पुल नहीं बाँधता।

जब कुछ अपना मतलब होता है, तब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे सम्बन्ध बढ़ाता है और उस मतलबके पूरा हो जानेपर सम्बन्ध तोड़ देता है। हम भूल जाते हैं कि स्वार्थके सम्बन्धके परे एक ऐसा निष्काम प्रेमका सम्बन्ध है, जहाँ मनुष्यके बनाए हुए सब क़िस्मके भेद दूर हो जाते हैं। उस प्रेम-जगत्‌में तो प्रभु भी अपना प्रभुत्व छोड़ देते हैं। उस प्रेम-नदीके तीरपर मीरा सिर्फ़ अपने कृष्णको ही नहीं पाती, बल्कि अपनी और सखियोंको भी सच्चे रूपमें पाती है, पहचानती है और प्रेम करती है।

कौन जाने, वह वैष्णवी, जिसको सिलैहदाके आस-पासके लोग पगली कहा करते थे, एक सच्ची, प्रेमकी पुजारिन थी, जो यह नहीं सह सकती थी कि उन लोगोंका मालिक—यानी ज़मींदार—उनसे इतना दूर रहे कि कभी उनसे मिले-जुले भी नहीं, सिर्फ़ अपने दोमंज़िलेसे उनकी तरफ़ एक दफ़ा दिनमें देख लिया करे। वे लोग अपने ज़मींदारकी सेवा किया करते थे, पर उस सेवाका फल तो केवल चावलकी एक मुट्ठीमें पाकर तृप्त नहीं हो सकते थे। उनकी आत्माएँ भूखी थीं प्रेमकी—वह प्रेम, जिसके परसमें ऐसा जादू है कि माँ जो सवेरेसे लेकर रात तक अपने बच्चोंकी सेवा करती है, उसकी सारी थकावटको दूर कर देती है। कौन जानता है कि उस समय बीज-रूपमें गुरुदेवके मनके आकाशमें श्रीनिकेतनके स्थापन करनेका ख़याल पहले-पहल उड़ने लगा हो। क्या यही कारण था कि पिछले कई सालोंसे जब कभी कोई शान्तिनिकेतन देखने आता और गुरुदेवसे मिलने जाता, तो वे उससे विशेष करके श्रीनिकेतन देखनेका अनुरोध करते और कहते—"मेरे जीवनकी सच्ची चेष्टाएँ और आदर्श कितनी दूर तक सफल हुए हैं, उसका अन्दाज़ तुमको वहीं मिलेगा।" गुरुदेवका जीवन, जैसे उनका

"उनकी खाली कुर्सी देखकर मेरा दिल भर आया।"

साहित्य और उनकी कला, जीवन-रूपी समुद्रमें जो जुदा-जुदा टापू हैं, उनमें पुल बाँधनेका साधन बना; इसीलिए विश्व-भारतीमें उन्होंने पूर्व और पश्चिमके बीचमें एक पुल बाँध दिया। शान्तिनिकेतनमें उन्होंने आत्मा और परमात्माके बीच पुल बाँधा और श्रीनिकेतनमें शहर और गाँवके बीच। और अपने गीतोंमें उन्होंने रूप और अरूप, ससीम और असीमके बीचमें एक पुल बाँध दिया।

शान्तिनिकेतन (बंगाल) ]

# रवीन्द्रनाथका राजनीतिक स्वरूप

श्री दामोदर विश्वनाथ गोखले

'भारतवर्षको स्वतन्त्रता क्यों देनी चाहिए, यह बात सिद्ध करनेके लिए लम्बे-चौड़े ऊहापोहकी आवश्यकता नहीं है, वरन भूमण्डलमें भारतीय संस्कृतिके सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधिके रूपमें प्रतिष्ठित रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी ओर संकेत कर देना ही पर्याप्त है।' ये उद्गार एक अमेरिकन यात्रीके हैं। उसके कथनका अभिप्राय यह है कि रवीन्द्रनाथका काव्य, उनकी नवयुगोचित विचार-सरणि तथा उनका विश्व-कुटुम्बी दर्शन इतने उच्च हैं कि जिस राष्ट्रमें ऐसे नरपुंगव जन्म लेते हैं, उसका पराधीन रहना दुर्भाग्यकी बात है। स्वयं रवीन्द्रनाथकी विचार-सरणि भी ऐसी ही थी। वे भी कहते थे कि भारत-सदृश प्राचीन, पराक्रमी और संस्कृति-सम्पन्न देशका किसीकी भी अधीनतामें रहना अत्यन्त मर्मभेदी है। रवीन्द्रनाथकी राजनीति किस पद्धतिकी थी, उनके राजनीतिक दर्शनका क्या स्वरूप था, राष्ट्रके सम्बन्धमें उनकी क्या धारणा थी तथा उनकी राजनीतिके सम्बन्धमें विचारशील लोगोंका क्या मत था, यह इससे स्पष्ट है।

### राजनीतिकी बालघुटी

रवीन्द्रनाथका जन्म सन् १८६१ में हुआ। १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्धका प्रतिनाद उनके वातावरणमें उन्हीं दिनों उठा था। उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर यद्यपि धर्म-सुधारकके रूपमें प्रसिद्ध थे, तथापि उनकी राजनीति सर्वात्मना राष्ट्रीय ही थी। वे 'ब्रिटिश-इण्डिया एसोसिएशन'के एक मुख्य कार्यवाहक थे। इस संस्थाको बंगालके तात्कालिक गवर्नर सर रिचार्ड टैंपलने 'अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें सरकारपर आलोचनाकी वृष्टि करनेवाली तथा स्वतन्त्र विचारोंकी संस्था' कहा था। पुणेकी सार्वजनिक सभाकी यह जैसे बंगाली आवृत्ति थी। महर्षि देवेन्द्रनाथके राजनीतिक दृष्टिकोणके सम्बन्धमें केवल एक बात लिखना पर्याप्त होगा। अरविन्द घोषके मातामह श्री राजनारायण बसुने अपने आत्म-चरित्रमें देवेन्द्र बाबूके विषयमें लिखा है—'यूरोपियनोंसे सम्बन्ध रखना उन्हें तिरस्कार्य लगता था। उनका मत था कि भारतीय राजनीतिकी दृष्टिसे भारतीयों तथा यूरोपियन शासकोंमें इतना विसंवाद है कि दोनोंमें मैत्री जड़मूलसे अशक्य है। महर्षि देवेन्द्रनाथको यूरोपियनोंकी स्तुति भी रुचती न थी।' ऐसे राजनीतिक विचारवाले पिताने रवीन्द्रनाथको उनकी राजनीतिक शिक्षाकी बालघुटी स्वतः पिलाई थी, यह ध्यानमें रखनेकी बात है।

### वैदेशिक स्तुति विषतुल्य

'नोबेल-पुरस्कार' मिलनेपर रवीन्द्रनाथके अभिनन्दनार्थ अनेक साहित्यिक बोलपुर गए। रवीन्द्रनाथने प्रकट रूपमें उनकी जो भर्त्सना की थी, उसका निदान उनके पिताजीकी उक्त प्रकारकी शिक्षा ही थी। कविके उस कालके शब्द कैसे अर्थपूर्ण और तेजस्वी थे, ज़रा देखिये—'आप सब महानुभाव आज यहाँ क्यों पधारे हैं? आज तक तो आपकी बुद्धिमें यह नहीं आया कि मैंने आपके अभिनन्दनके योग्य कोई कार्य किया है? आज ही मैंने ऐसा क्या नया काम कर डाला, जो आप मुझे इस सम्मानका भाजन मानकर यहाँ एकत्र हुए? यह प्रतिष्ठा मेरी किंवा मेरे काव्यकी नहीं। विदेशियोंने मेरा आदर किया। आपके चित्तपर उसीका प्रभाव हुआ, सो इसमें यश तो विदेशियोंका है। आपके औदार्यके लिए मैं आपका आभारी हूँ; पर आप मुझे क्षमा कीजिए, मैं आपके तुल्य विदेशियोंकी उज्ज्वल स्तुतिकी मदिरा पीकर अपनेको धन्य माननेको तैयार नहीं।' रवीन्द्रनाथकी मनोभूमि कैसी थी, यह उनके इन शब्दोंसे ही लक्षित होता है।

### जनताके कल्याणकी चिन्ता

विदेशियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी भावना उनके मनमें बाल्यकालसे ही दृढ़मूल थी, वैसे स्वदेशवासियोंके प्रति उनका प्रेम भी उत्कट था। उदाहरणार्थ सन् १८८२-८३ में, जब कि वे अपनी ज़मींदारीकी व्यवस्था करते थे, अपने एक पत्रमें उन्होंने जो उद्गार प्रकट किए थे, उनसे ज्ञात होता है कि दीन कृषकोंके प्रति उनके विचार कैसे थे? उन्होंने लिखा था—'समाजवादियोंका साम्यका ध्येय कब पूर्ण होगा, यह तो किसे विदित; पर यदि वह पूर्ण न हुआ, तो ईश्वर निर्दय सिद्ध होगा तथा लोगोंका दुर्भाग्य होगा। यदि जगत्में दुःख और दारिद्र्य रहने ही हैं, तो भले रहें; पर इस दुःखके भारको हल्का करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको यत्किंचित् भी सेवाका अवसर मिले, तो फिर उनका जूझना सुगम हो जायगा।' दीनोंके लिए उनकी आत्मा कैसी विकल हो उठती थी, यह इससे स्पष्ट

है। ज़मींदारके रूपमें स्वयं उन्होंने लोगोंके प्रति सदा सद्व्यवहार ही किया और जब उनकी कुछ चली नहीं, तो हारकर उन्होंने ज़मींदारीकी व्यवस्थासे निवृत्ति पा ली।

### तिलकके आन्दोलनका प्रतिनाद

लोकमान्य तिलकके गोरक्षणका आन्दोलन शुरू करनेपर रवीन्द्रनाथने गोवध-निषेधका आन्दोलन प्रारम्भ किया। १८९८ में लोकमान्यपर मुकदमा चला, तब रवीन्द्रनाथने अपने मासिक 'भारती' में सरकारके रवैयेकी तीव्र निन्दा की थी। इस मुकदमेमें तिलककी सहायतार्थ जो धन एकत्र हुआ था, उसमें उनका बहुत बड़ा हाथ था। सरकारने जब राजद्रोहकी नई धारा ( १२४-ए ) जारी की, तो उन्होंने उसके विरुद्ध बंगालमें प्रबल आन्दोलन किया। उनकी 'कण्ठरोध' कविता उनकी इसी समयकी मानसिक स्थितिकी निदर्शिका है। जब कलकत्तेमें प्लेग फैला, तो उन्होंने कहा—'यदि सरकार चाहती है कि पुणेके ख़ूनकी पुनरावृत्ति न हो, तो उसे अपनी दिशा बदलनी होगी।' १९०२ में उनकी 'कथा' प्रकाशित हुई, जिसमें मराठोंके शौर्यका हृदयग्राही वर्णन है। १९०४ में बंगालमें जो 'शिवाजी-उत्सव' प्रारम्भ हुआ, उसमें भी रवीन्द्रनाथका बड़ा हाथ था। ऐसे ही एक उत्सवपर लिखी गई उनकी 'शिवाजी-उत्सव' कविता काफ़ी प्रसिद्ध है। इसके अनन्तर १९१७ में कलकत्तेमें हुए कांग्रेसके अधिवेशनमें लोकमान्य तिलकके समर्थनमें उन्होंने डा० ऐनी बेसेण्टके राष्ट्रपति बनाए जानेपर काफ़ी ज़ोर दिया। स्वयं वे इस कांग्रेसके स्वागताध्यक्ष बनाए गए; पर पीछे विरोधी दलोंमें सन्धि होनेपर स्वागताध्यक्ष पहलेवाले ही रहे, और उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया। इसी अधिवेशनमें उन्होंने 'हिन्दुस्थानकी प्रार्थना' नामक अपनी एक नई कविता पढ़ी। दूसरे दिन उनका 'पोस्ट आफ़िस' नाटक खेला गया। इस खेलमें लोकमान्य तिलक, ऐनी बेसेण्ट, महामना मालवीयजी तथा लोकमान्यके साथ आई महाराष्ट्रीय मण्डली उपस्थित थी। लोकमान्यके प्रति उनके हृदयमें गहरा आदर था।

### वंग-भंगका आन्दोलन

कांग्रेसके द्वितीय अधिवेशनसे उनका सम्बन्ध कांग्रेससे हुआ। दादाभाई नौरोजी इस अधिवेशनके अध्यक्ष थे। रवीन्द्रनाथने इस अवसरपर 'आमरा मिलेछि मायेर डाके' (हम माँकी पुकार सुनकर एकत्र हुए हैं) कविता पढ़ी। १९०२ में लार्ड कर्ज़नने भारतीयोंपर असत्यवादिताका आरोप लगाया। रवीन्द्रनाथने उन्हें करारा उत्तर दिया था। अपने 'वंग-दर्शन'में उन्होंने हरबर्ट स्पेन्सरके प्रमाण देकर तथा बोअरोंके विरुद्ध अँगरेज़ोंने कैसा मिथ्या प्रचार किया था, इसके उदाहरण देकर सिद्ध किया था कि अँगरेज़ कितने झूठे हैं। १९०३ में प्रकाशित 'राजकुटुम्ब', 'घुसो-घुसी', 'धर्मबोधेर दृष्टान्त' आदि कृतियोंमें उन्होंने प्रतिपादित किया है कि मनुष्यको अन्यायका सामना करते हुए थप्पड़का उत्तर घूँसेसे देना चाहिए। १९०४ में उन्होंने अपना प्रसिद्ध निबन्ध 'स्वदेशी समाज' प्रकाशित करवाया। सुप्रसिद्ध देशभक्त ब्रह्मबान्धव उपाध्याय तथा रवीन्द्रनाथकी तात्कालिक राजनीतिक गतिविधिकी आसानीसे कल्पना की जा सकती है। स्वदेशी वस्तुओंको प्रोत्साहन देनेके लिए ७ अगस्त, १९०५ को हुई खुली सभामें रवीन्द्रनाथने अपना 'बहिष्कार' शीर्षक निबन्ध पढ़ा। उनका 'अवस्था ओ व्यवस्था' निबन्ध भी अपने राजनीतिक महत्वके कारण काफ़ी ख्याति प्राप्त कर चुका है। उनकी कला उन दिनों पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी थी। उनकी जैसी देशाभिमानवाली कविताएँ फिर देखने-सुननेको मिलेंगी या नहीं, इसमें शंका होती है। राष्ट्रीय शिक्षाका सूत्रपात उन्हींने किया। सर बैम्फील्ड फुलरका विरोधकर उन्होंने सुरेन्द्रनाथका पक्ष लिया था। उस समय उनकी क्रियाशील कल्पनाशक्ति प्रकाश-रूपसे व्यक्त होती थी। बंगालमें आतंकवादियोंके सशस्त्र आन्दोलनके प्रारम्भ होनेपर उन्होंने राष्ट्रीय कार्योंसे अपना हाथ खींच लिया, तथापि 'अरबिन्दो, रबीन्द्रेर लाहो नमस्कार' में उनके अन्तःकरणकी पुकार स्पष्ट दीख पड़ती है। इसी कारण सरकारका रोष उनपर भी कम नहीं रहा। यद्यपि उन्होंने राजनीतिक आन्दोलनोंमें सक्रिय भाग लेना छोड़ दिया था, तथापि सरकारने १९१२ में आज्ञा निकाली कि सरकारी नौकर अपने बालक बोलपुरकी संस्थामें न प्रविष्ट करायँ।

### रक्षा-बन्धनकी योजना

बंगालमें, और पीछेसे सारे भारतमें, राजनीतिक दृष्टिसे रक्षा-बन्धनका उपयोग करनेकी योजना सर्वतः रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी है। 'विभाजित बंगाल एक है, सब भाई-भाई हैं'—यह राखी भेजनेका संदेश था। १६ अक्टूबर, १९०५ को वंग-भंगकी 'बरसी' होनेके कारण बंगालमें हड़-

ताल थी। 'अरांधन' होनेसे उस दिन लोगोंने उपवास किया था। शामको एक विशाल सार्वजनिक सभा हुई। 'बाँगालेर माटी, बाँगालेर जल' रवीन्द्रनाथकी यह कविता सबने गाई और पीछे सबने परस्पर राखी बाँधकर इस राष्ट्रीय आन्दोलनकी दीक्षा ली। अन्तमें 'बिधिर बन्धन काटबे तुमी, एमनी शक्तिमान्' (ईश्वरने जिस बन्धन द्वारा हमें एक किया है, उस बन्धनको काटनेकी तुममें शक्ति है ?) शीर्षक प्रश्नमय पद्य सहस्रों कण्ठोंसे निकला। रवीन्द्रको वह दिन धन्य लगा। सरकारसे अधिकाधिक असहयोग करनेके लिए रक्षा-बन्धनकी प्रथा पुनः सर्वत्र चालू करनेके उद्देश्यसे यह योजना उन्होंने इसी समय प्रस्तुत की। बाबू विपिनचन्द्र पालने 'इण्डियन नेशनलिज़्म' पुस्तकमें स्पष्ट लिखा है कि यह सब योजना रवीन्द्रनाथकी थी।

'सर'-उपाधिका त्याग

१९२० के पश्चात् गांधीजीने असहयोगका जो आन्दोलन आरम्भ किया, वह रवीन्द्रनाथको बहुत पसन्द आया। स्वदेशी वस्तुओंको प्रोत्साहन और विदेशीके बहिष्कार और उनके साथ ही सरकारसे असहयोग, यह कार्यक्रम सच पूछा जाय, तो रवीन्द्रनाथने ही पहले-पहल आत्मसात् किया था। गांधीजी और रवीन्द्रनाथका परस्पर जो प्रीति और आदर-भाव था, वह दोनोंके मिलनके वर्णनोंसे पाठकोंको मालूम ही है। खादी और चरखा रवीन्द्रनाथको कितने पसन्द थे, इसमें शंका है। उनके शान्तिनिकेतनमें भी गांधीजीके आश्रमके अनुसार सब विषयोंमें स्वावलम्बन नहीं है। वहाँ केवल एक दिन 'गांधी-दिन' मनाया जाता है, जिस दिन सब विद्यार्थी गांधीजीके आश्रमवासियोंके समान रहते हैं। पर यह छोटी-सी बात बाद कर दें, तो मुख्य वस्तु—असहयोग—के विषयमें दोनों एकमत थे। १९१९ में जलियाँवाला बागके नृशंस नर-संहार तथा उसके बादके अत्याचारोंके कारण उनको ऐसी ग्लानि हुई कि उन्होंने अपनी 'सर' की उपाधि भी सरकारको लौटा दी। उस अवसरपर लिखा उनका पत्र भारतके राजनीतिक इतिहासमें चिर-स्मरणीय रहेगा। उसके दो एक वाक्य रवीन्द्रनाथकी उत्कट देशभक्तिके परिचायक हैं। ३० मई, १९१९ को वाइसरायको लिखे पत्रमें उन्होंने लिखा था—'भीतिग्रस्त होनेके कारण जिनके अन्तःकरण मूक हो गए हैं, ऐसे अपने संख्यातीत देशबान्धवोंने सरकारके कृत्योंका जो विरोध किया है, वह मैं अपने मुखसे प्रकट कर रहा हूँ, और इसका परिणाम भोगनेके लिए भी सन्नद्ध हूँ। इस दशामें सम्मान-सूचक उपाधि-धारण करना जैसे हमारी लज्जाकी पराकाष्ठा है। मेरे देशबन्धु सरल हैं, इसीसे वे सरकारके अत्याचारोंकी मार सह रहे हैं। अपने उन देशबन्धुओंके कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर खड़ा रह सकूँ, इस हेतु मैं अपनी यह उपाधि लौटा रहा हूँ !' पत्रका इतना अंश भी कोई पढ़े, तो उसे उनकी देशभक्ति और देशाभिमानका यथार्थ ज्ञान हो जायगा। इसके पीछे १९४१ पर्यन्त उन्होंने अनेक पत्र प्रकाशित किए ; पर यह पत्र उन सबका मुकुटमणि है। गत बीस वर्षोंकी उनकी राजनीति ताज़ी और प्रसिद्ध है। अतः उसकी स्मृति कराना निरवकाश है।

रवीन्द्र और अरविन्द

२९ मई, १९२९को रवीन्द्रनाथने ऋषि अरविन्दसे भेंट की। वंग-भंगके आन्दोलन-कालकी अरविन्द घोषकी महनीयता उनकी देखी हुई थी। बीस वर्ष पीछे पुनः भेंट होनेके पश्चात् रवीन्द्रनाथने 'मार्डन रिव्यू' में उनके सम्बन्धमें अपना मत दिया था। उसमें वे लिखते हैं—'उनको आत्म-दर्शन हो गया है। पूर्वकालीन ऋषियोंके सदृश वे बोलते हैं। मैंने उनसे कहा—आप अपनी दैवी वाणी उच्चारिए, भारत उससे गौरवान्वित होगा। अनेक वर्ष पूर्व मैंने कविता की थी। उसमें लिखा था—अरविन्द, तुम्हें रवीन्द्रका नमस्कार। आज उससे भी शतगुणित उच्च वातावरणमें मैं पुनः लिखता हूँ—अरविन्द ऋषि, इस रवीन्द्रका प्रणाम स्वीकार करो।' इन दोनों ऋषियोंकी अन्तःकरणगत भावना शब्द-रूपसे प्रकट हो, तो क्या कम चमत्कार होगा ?

राजनीतिक सिद्धान्त

रवीन्द्रनाथने तेईस वर्षकी अवस्थामें एक निबन्ध लिखा था। उसका एक वाक्य है—'आन्दोलन करना चाहिए ; पर उसका मुख अँगरेज़ोंकी ओर नहीं, अपने लोगोंकी ओर होना चाहिए। और जब लोगोंमें नागरिक स्वतन्त्रताकी तृषा उत्पन्न हुई, ऐसा प्रतीत होता है, तब अँगरेज़ोंके अत्याचारसे एक भी भारतीयको छुड़ाओ। अँगरेज़ ईश्वरी इच्छासे यहाँ आए हैं, यह बात ही चित्तसे निकाल देनी चाहिए। एक भी विजय प्राप्त करो। अत्याचारके विरुद्ध प्राप्त की गई एक भी विजयकी प्रतिष्ठा महान है।' उस समय और उस उमरमें ऐसे उद्गारोंसे
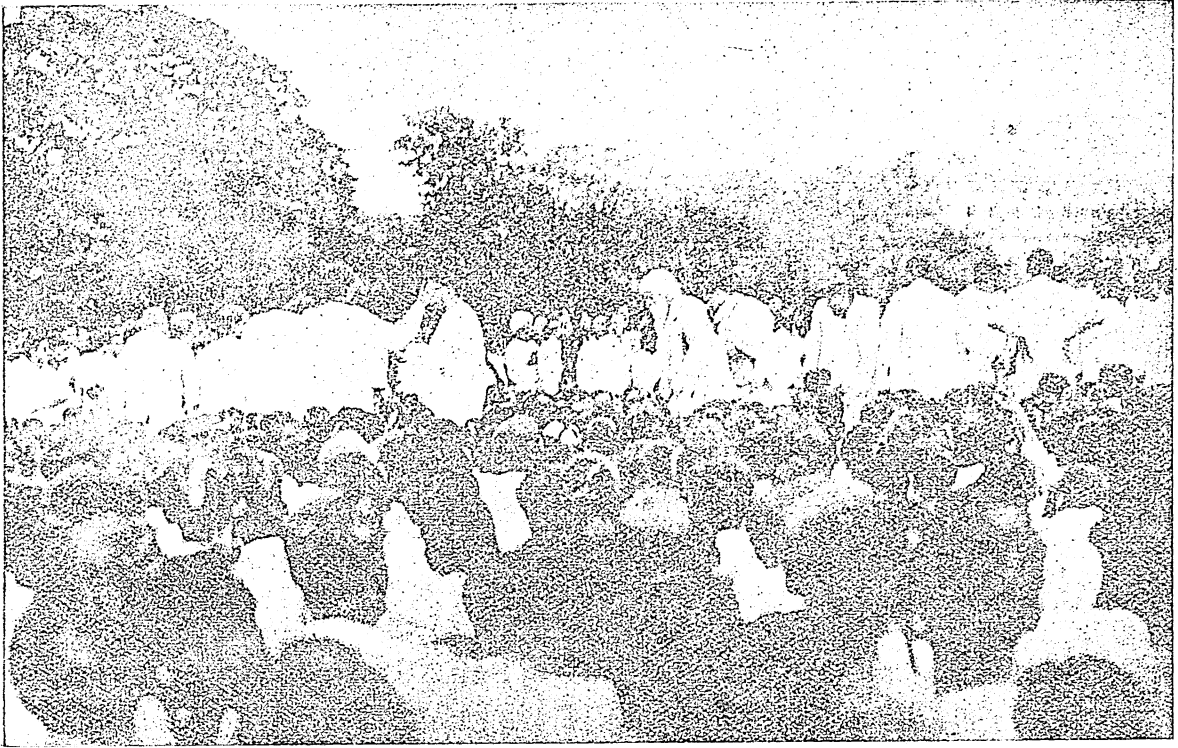
रवीन्द्रनाथ एक विराट सावजनिक सभामें भाषण देने जा रहे हैं ।

उनकी राजनीतिक मनःस्थितिका स्पष्ट आभास हो जाता है। उनके काव्योंमें यद्यपि पुष्कल क्रान्ति हो गई, पर उनकी राजनीतिक मनःस्थिति वही रही। उन्होंने जो अनेक वक्तव्य प्रकाशित किए हैं और अभी हाल ही में मिस रैथबोनके पत्रका जो उत्तर दिया था, उससे उनके अन्तः-करणकी एक झाँकी हमें मिल जाती है।

देशभक्तिसे ओतप्रोत उनके अन्तःकरणकी भावना काव्यके रूपमें आज हमारे समक्ष है। राजनीतिके आन्दो-लनोंमें प्रत्यक्ष रूपसे यद्यपि वे नहीं पड़े; पर साहित्यिक, तत्त्ववेत्ता तथा विश्व-कुटुम्बवादी संस्कृतिके पुजारी साधुको वह शोभाता भी तो नहीं। कारण, ऐसे व्यक्ति सब कालोंमें और सब देशोंमें इस तरहके आन्दोलनोंसे ऊपर ही उठे होते हैं। उनकी वाणी राष्ट्रके लिए स्फूर्तिका स्रोत है। रवीन्द्रनाथकी कविता-सरिता इस विषयसे छलाछल भरी है। निःसंशय स्वर्गमें 'भारतके भाग्यविधाता' से वे प्रार्थना करते होंगे कि 'भारतको स्वतन्त्र होनेकी क्षमता दो!'

(मराठी 'केसरी' से) अनु०—रणजितराय आयुर्वेदालंकार

# अशेष दान

**रवीन्द्रनाथ ठाकुर**

किया है तुमने मुझे अशेष, तुम्हारी लीला यह भगवान।
रिक्त कर-कर यह भंगुर पात्र, सदा करते नवजीवन दान॥
लिए करमें यह नन्हीं वेणु, बजाते तुम गिरि-सरि-तट घूम।
बहे जिससे नित नूतन तान, भरा ऐसा कुछ इसमें प्राण॥

तुम्हारा पाकर अमृत-स्पर्श, पुलकता उर हो सीमाहीन।
फूट पड़ती वाणी से सतत, अनिर्वचनीय मनोरम तान॥
इसी नन्हीं मुट्ठीमें मुझे, दिए हैं तुमने निशिदिन दान।
गए हैं देते युग-युग बीत, यहाँ रहता है फिर भी स्थान॥

अनुवादक—श्री सुधीन्द्र, एम० ए०

एकाङ्की नाटक

# अन्तरिक्षमें रवीन्द्रनाथ

श्री 'वनफूल'

[ अन्तरिक्षमें ग्रीक देवी एथेना खड़ी हुई है। चारों ओर विशाल महाशून्य है। छोटे-बड़े अनेक तारे चमक रहे हैं। दाहिनी ओर एक नीहारिका वाष्पीय देह विस्तार करके असीम शून्यमें विलीन हो गई है। पिगेसस नक्षत्रमण्डलीमें एक धूमकेतु दिखाई पड़ रहा है। निकट और दूर उल्कापात हो रहा है। एथेनाके पाँवोंके बहुत नीचे पृथिवी-गृह है। एथेना मानवी होती तो नहीं देख पाती, लेकिन देवी होनेके कारण सौरमण्डलकी बारहो राशियोंको साफ़-साफ़ देख रही है। वह देख रही है कि मकर-राशिमें पूर्णिमाका चन्द्र, मीन-राशिमें प्रवालके रंगका मंगल, वृष-राशिमें प्रदीप्त बृहस्पति, नीलकान्त शनि, सिंह-राशिमें द्युतिमान शुक्र और कर्क-राशिमें ज्योतिष्मान सूर्य देदीप्यमान हो रहा है। सूर्य एक नक्षत्र-सा मालूम हो रहा है। देहहीन राहु कन्या-राशिका तथा कबन्ध केतुने मीन-राशिका आश्रय ग्रहण कर रखा है। पृथिवीके कुछ हिस्सेमें घनी काली मसि-रेखाकी तरह श्रावणकी पुञ्जीभूत मेघमाला है। उसमें विसरणशील बिजलीकी कौंध दिखाई पड़ रही है। एथेना भौहें चढ़ाकर पृथिवीकी ओर निहार रही है। चिरन्तन क्रन्दनकी-सी अवरुद्ध आवाज़ महाशून्यमें फैल रही है। ]

- १ -

एथेना ( स्वागत )—ग्रीसकी याद आती है, याद आती है एथेन्सकी, याद आती है एथेन्सके एरिओगोरसकी। ( कुछ देर तक चुप रहकर ) एथेन्सवासी क्या अब भी पैनथेनियाका उत्सव मानते हैं? क्या आज भी मैं उनके लिए सत्य हूँ?

( सहसा महाशून्यमें उड़ते हुए विहंगमोंके परोंके फड़फड़ानेका शब्द सुनाई पड़ता है। क्षणभरके बाद एक विशाल मोरकी पीठपर सवार दिव्यकान्ति हेरादेवी आविर्भूत होती हैं और एथेनाको देखकर मोरको रोक लेती है। )

हेरा—कुछ सुना है, एथेना?

एथेना—क्या?

हेरा—मेरी सौतोंमें से अभी एक भी नहीं मरी है।

एथेना—आकाश-देवता जिऊसकी पत्नियाँ तो अमर हैं। पर क्यों, क्या हुआ?

हेरा—वे सभी एक साथ स्वामीके पास आई हैं।

एथेना—एक साथके मानी?

हेरा—आल-औलादके साथ, होरी-मोरियोंको लेकर थेमिस, चैरिटियोको लेकर यूरिनम, पासिफोनको लेकर डेमेटर, म्यूजोंको लेकर नेमोसाइन, ऐफ्रोडाइटको लेकर डाओनी, यहाँ तक कि लेटो भी—जिसे मैं सबसे अधिक घृणा करती हूँ—आई है ऐपोलो और आर्टेमिसको लेकर।

एथेना—क्यों, आख़िर मामला क्या है?

हेरा—पृथिवीमें फिर युद्ध छिड़ गया है।

एथेना—युद्ध? एकिलिस, हेक्टर, ऐजक्स, पैरिस, आगमेमनन्—ये तो बहुत पहले ही मर चुके हैं, भला अब वहाँ लड़ेगा कौन?

हेरा—पृथिवी उर्वरा है, वहाँ नए वीरोंका फिर जन्म हुआ है।

एथेना—यह असम्भव है।

हेरा—असम्भव नहीं है एथेना! सुना है, वहाँ ऐसे वीर जन्मे हैं, जो जल, थल और आकाश सर्वत्र लड़ रहे हैं। आकाश-देवता जिऊस और जल-देवता पोसिडनका प्रभुत्व अब लुप्त हुआ चाहता है। हेडिसका राज्य भी अन्तिम साँसें ले रहा है। मनुष्यने पातालमें भी अपना प्रताप फैला दिया है।

एथेना—तब तो उन्होंने फिर जन्म लिया है। पुराने वीर ही नया नाम रखकर नवीनताका दावा कर रहे हैं। (सहसा आश्चर्य और आह्लादसे) मुझे फिर जानेकी इच्छा हो रही है।

हेरा—कहाँ?

एथेना—ग्रीसमें। तुम लोगोंने मुझे वाणी-विद्या-दायिनी बनाया है; लेकिन जिस दिन जिऊसका वक्ष विदीर्ण करके मैं पैदा हुई थी, उस दिन मेरे कण्ठसे युद्धकी हुंकार उठ रही थी। ट्रायकी लड़ाईकी बात क्या तुम्हें याद नहीं है?

हेरा—सब कुछ याद है, उसके पहलेकी सोनेके सेबकी कहानी भी याद है। (हँसकर) अच्छा, अब मैं चलती हूँ।

एथेना—कहाँ ?

हेरा—दूर, बहुत दूर—इस जालके बाहर।

एथेना—(विस्मयके साथ) जालके बाहर! इसके मानी ?

हेरा—मेरी सौतें ख़बर लाई हैं कि पृथिवीके वीरदर्पसे केवल मर्त्यलोकमें ही नहीं, स्वर्गमें भी भीषण विपत्ति आना ही चाहती है। अगर जिऊस शीघ्र ही इसका कोई प्रतिकार नहीं करते हैं, तो फिर कुछ नहीं रह जायगा।

एथेना—जिऊस क्या कर रहे हैं ? क्या ऐफ्रोडाइटको मर्त्यलोकमें भेज रहे हैं ?

हेरा—मर्त्यलोकका जो वीर सबसे भीषण है, सुना जाता है, वह नारी-मोह-मुक्त है। इसलिए किसी सुन्दरीको उसके पास भेजनेका कोई फल न होगा।

एथेना—तब तो सचमुच ही चिन्ताकी बात है। फिर जिऊस आख़िर क्या कर रहे हैं ?

हेरा—लेटोकी सलाहसे उन्होंने एक विचित्र काम किया है !

एथेना—विचित्र काम ! क्या ?

हेरा—पृथिवीके बड़े-बड़े कवियोंको आमंत्रित करके इसके प्रति विधानके लिए एक सभाका आयोजन किया है।

एथेना—कवियोंको ?

हेरा—हाँ, केवल मृत कवियोंको, जीवितोंको नहीं। औपन्यासिकों, वक्ताओं, चित्रकारों और भास्करोंको भी नहीं बुलाया है। जिन्होंने केवल छन्दमें काव्य लिखा है, उन्हींकी यहाँ सभा होगी।

एथेना—क्यों, औपन्यासिक, वक्ता, चित्रकार और भास्कर क्यों नहीं बुलाए गए हैं ? भास्कर आदि भी तो एक हिसाबसे कवि ही हैं ?

हेरा (श्लेषके साथ)—तुम्हारा और लेटोका हिसाब एक नहीं है। लेटोने कहा है, छान्दिक कवियोंकी सभा की जाय, अतएव वही होगी। तुम्हारी या मेरी बात नहीं चलेगी। तुम अब कुछ कहने मत जाना, अन्यथा मेरी ही तरह अपमानित होओगी। बहुत दिनोंके बाद लेटोको पाकर जिऊस पागल हो गए मालूम होते हैं।

एथेना—परन्तु सब कवियोंको जिऊस एक साथ कैसे पाएँगे ? कौन किस लोकमें विचरण कर रहा है, यह किसे मालूम है ?

हेरा—इसीसे तो जाल फैलाया जा रहा है।

एथेना—तुम्हारी बात मैं ठीक-ठीक समझ नहीं सकी।

हेरा—सारे आकाशमें प्रकाशका एक जाल बिछाया जायगा और उसके बाहर होगा स्वर्गीय संगीत। कविगण गान सुनकर वहाँ आयँगे और उस जालमें फँस जायँगे।

एथेना—लेकिन गान गाएगा कौन ?

हेरा—म्यूजें और आर्टेमिस।

एथेना—आर्टेमिस मानी डायना ?

हेरा—हाँ-हाँ, डायना ! क्या उसका यह ग्रीक नाम तुम्हें पसन्द नहीं आ रहा है ? क्या तुम्हें मिनर्वा कहकर पुकारना होगा ? मुझे जब कोई जूना कहता है, तो शरीरमें जैसे आग-सी लग जाती है।

एथेना—तुम भाग क्यों रही हो ?

हेरा—तब फिर क्या सौतोंका कृतित्व खड़ी होकर अपनी आँखोंसे देखूँ ! चलो, तुम भी मेरे साथ चलो।

एथेना—पर तुम जो कह रही हो कि सारे आकाशमें जाल बिछाया जायगा, फिर जाऊँ कहाँ ?

हेरा—जाल कितना भी बड़ा क्यों न हो, आख़िर तो उसकी सीमा है। परन्तु आकाश असीम है। चलो, हम जालके बाहर चलकर खड़ी हों।

एथेना—क्यों ?

हेरा—हम सब कुछ बिगाड़ देंगी। जिऊस आकाशके सम्राट हैं, लेकिन मैं भी आकाशकी सम्राज्ञी हूँ। हम दोनोंकी आज्ञाके बिना किसी भी विषयका अन्तिम फ़ैसला नहीं हो सकता।

एथेना—पर इसके लिए बाहर जानेकी कौन-सी ज़रूरत है ?

हेरा—उन म्यजोंपर मेरा विश्वास नहीं है। वे साइरेन हैं, वे मायाविनी हैं। हो सकता है कि वे अचानक मुझे मोह लें, हो सकता है कि मैं उनसे सहमत हो जाऊँ।

एथेना—तो सहमत हो जानेमें नुक़सान ही क्या है ? अगर दुनियापर विपत्ति आई है, तो ग्रीसपर भी आई होगी। क्या ग्रीसके प्रति तुम्हें तनिक भी स्नेह नहीं है ?

हेरा—ग्रीसके प्रति ? नहीं, तनिक भी नहीं। क्या ग्रीसने किसी दिन मुझे ठीक-ठीक समझा था ? वे कहीं तख़्ते खड़े करके मेरी पूजा करते थे, कहीं कुन्दे और कहीं खंभेसे। मुझे कुछ-कुछ समझा था भास्कर पलिक्लिटसने, वह भी सम्पूर्ण रूपसे नहीं। (क्षोभके साथ) जब मेरे पतिने ही मुझे नहीं समझा, तो दूसरे क्या

समझेंगे ? चलो चलें, वे अभी आ जायँगी।

एथेना—मैं नहीं जाऊँगी।

हेरा—अच्छा, तो तुम यहीं रहो, मैं चलती हूँ।

( हेराका इशारा पाते ही मोर पंख फैलाकर उड़ जाता है। एथेना कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रहती है। )

- २ -

एथेना ( स्वगत )—लड़ाई हो रही है। क्यों? क्या हेलेनने फिर जन्म लिया है? नहीं, चुप रहनेसे अब काम नहीं चलेगा। हेराकी मति-गति अच्छी नहीं है। जिऊसको सावधान कर देना चाहिए।

( एथेना अन्तर्धान हो जाती है। क्षणभर बाद विस्तृत आकाशमें स्वर्णके सूक्ष्म धागे-सी असंख्य प्रकाश-रेखाएँ फैलती दिखाई पड़ती हैं और देखते-देखते एक विशाल ज्योतिर्मय जाल-सा अँधेरे महाशून्यमें दिग्‌दिगन्तमें फैल जाता है। जालके बाहर रूपवती म्यूजें डायनाके साथ एक-एक करके आविर्भूत होती हैं। प्रत्येकके हाथमें एक 'लायर' है। प्रत्येकके अंगमें स्वस्थ ग्रीक सौंदर्य है। प्रत्येकने सीधी-सादी ग्रीक पोशाक पहन रखी है। धीरे-धीरे उन्होंने मधुर कण्ठसे संगीत शुरू किया। क्रमशः सारा अन्तरिक्ष एकदम गंभीर और मधुर स्वरकी झंकारोंसे परिपूर्ण हो उठा। कुछ देर बाद ज़रा दूरीपर कई छायामूर्तियाँ अस्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ती हैं। निकट आने पर मालूम होता है कि वे पाँच हैं। दो आगे बढ़ आती हैं और तीन ज़रा पीछे रह जाती हैं। उनके चेहरे कैसे थे, यह नहीं मालूम हो सका। घने कुहासेने मानो प्रत्येकको ढँक-सा लिया है और कुहासेके आवरणके भीतरसे एक अपूर्व द्युति-सी निकल रही है। )

प्रथम छायामूर्त्ति—महाशून्यमें ज्योतिर्मय यह कैसा अपूर्व प्रकाश है?

द्वितीय छायामूर्त्ति—जो देवताओंके जन्म और शक्ति-दाता हैं, जो हिरण्यगर्भके जनक हैं, उन्हींकी यह नवीन-लीला है।

प्रथम छायामूर्त्ति—आप कौन हैं?

द्वितीय छायामूर्त्ति—मैं? मैं भी उसीके प्रकाशका एक अंशमात्र हूँ।

प्रथम छायामूर्त्ति—क्या आपका विस्तृत परिचय पा सकता हूँ?

द्वितीय छायामूर्त्ति—मेरे परिचय अगणित हैं। आपको अपना कौन-सा परिचय दूँ? और अपने बारेमें कुछ बतानेसे फ़ायदा भी क्या?

प्रथम छायामूर्त्ति—आप अवश्य ही मर्त्यलोक-वासी हैं।

द्वितीय छायामूर्त्ति—था, मर्त्यलोकमें श्वेताश्वेतर तक उपनिषद भी लिखा था, वही मेरा वहाँका परिचय है। ( स्वगत ) मालूम नहीं, वह ग्रंथ अब भी प्राप्य है या नहीं?

प्रथम छायामूर्त्ति—तो आप उपनिषदके ऋषि हैं? कृपया मेरा नमस्कार ग्रहण कीजिए।

द्वितीय छायामूर्त्ति ( नमस्कार ग्रहण करनेके बाद )—आप कौन हैं?

प्रथम छायामूर्त्ति—मैं द्वैपायन हूँ, कोई-कोई मुझे वेद-व्यास भी कहते हैं।

( द्वितीय छायामूर्त्तिइस परिचयसे विशेष विचलित नहीं हुई। मालूम हुआ, मानो दोनों एक-दूसरेको पहचान नहीं सकीं। वह चुपचाप आकाशकी ओर देखने लगी और कुछ दूर हट गई। तृतीय छायामूर्त्ति प्रथमके निकट आ गई। )

तृतीय छायामूर्त्ति—कैसा अपूर्व संगीत है! इस संगीतके स्वरको जाननेकी साधनामें मैंने किसी समय दिन-रात एक किया था; लेकिन कुछ भी नहीं कर सका, कुछ भी नहीं हुआ।

प्रथम छायामूर्त्ति—आप कौन हैं?

तृतीय छायामूर्त्ति—मुझे मर्त्यलोकवाले होमर कहकर पुकारते हैं।

( प्रथम छायामूर्त्ति पहचान नहीं सकी। )

वेदव्यास—यथार्थमें अपूर्व संगीत है। हम सम्भवतः किन्नरलोकके नज़दीक आ गए मालूम होते हैं।

उपनिषदके ऋषि (स्वगत)—

नीलः पतंगो हरि तो लोहिताक्षस्तड़िद्‌गर्भ ऋतवः समुद्राः
अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वाः।

होमर—कैसा अपूर्व स्वर है!

वेदव्यास—केवल स्वर ही नहीं, आकाश-पटपर फैली प्रकाश-रेखाओंसे रचा गया वह जाल भी तो अपूर्व है!

होमर—मैं अन्धा हूँ, इसलिए मुझे तो जाल-वाल कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है।

( असहायकी तरह वे तीनों धीरे-धीरे हट जाती हैं और चतुर्थ छायामूर्त्ति आगे आती है। )

चतुर्थ छायामूर्त्ति—कैसा अनुपम दृश्य है, कैसा सुमधुर संगीत है! विरही श्रीरामचन्द्रके दुःख-मोचनकी

इच्छासे पम्पा-तीरपर वसंत-वर्णनके प्रसंगमें सौन्दर्य और संगीतकी जो अवतारणा की थी, वही याद आ रही है। परन्तु आज मैं यह क्या देख रहा हूँ, यह क्या सुन रहा हूँ, यह तो कल्पनातीत है!

वेदव्यास—पम्पा-तीरपर! तो क्या आप आर्यावर्त्त-निवासी हैं?

चतुर्थ छायामूर्त्ति (गर्वके साथ)—हाँ, निश्चय ही शिवजीका धनुष तोड़नेवाले श्रीरामचन्द्रके पद-रेणुसे पवित्र आर्यावर्त्त ही मेरा मर्त्यवास था।

वेदव्यास—आपका परिचय पानेकी लालसा हो रही है। मैं भी भारतवर्षीय ही हूँ।

चतुर्थ छायामूर्त्ति—मर्त्यलोकमें मैं 'रत्नाकर' नामसे परिचित था।

वेदव्यास—कविगुरु वाल्मीकि! (झुककर सादर नमस्कार करते हैं।)

वाल्मीकि (प्रतिनमस्कार करनेके बाद)—मेरे लिए यह गुरुभार वहन करना सम्भव नहीं है। श्रीरामचन्द्रकी महिमा-कीर्त्तनका सुअवसर पाकर एक दिन धन्य हुआ था। वही मेरा परम सौभाग्य है, और कुछ कामना अब मेरी नहीं है। आप कौन हैं?

वेदव्यास—मैं आपका परवर्त्ती हूँ, मेरा नाम द्वैपायन है। क्या पम्पासर आपको अब भी याद है?

वाल्मीकि क्यों नहीं याद रहेगा; उसके तीरपर उस कर्णिकार, सिन्धुवार, मातुलुंग, कोविदार पुष्पकी शोभा, उसके जलमें मधुकर-भूषित कमलदल, पास ही में मोर-मोरनीका नृत्य, पपीहेका करुण कण्ठस्वर, वह अंकोट, कुरुण्ट, चुर्णक वृक्षराजि और वह श्यामकान्ति ऋष्यमूक पर्वत—इन्हें क्या कभी मैं भूल सकता हूँ! (कुछ रुककर) पर आकाशमें वह कैसी छवि है, वे सुन्दरियाँ कौन हैं! इस अपूर्व संगीतका कारण क्या है?

उपनिषदका ऋषि (स्वागत)—

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।

होमर (ध्यानसे म्यूज़ोंका संगीत सुनते हुए)—हेक्सामिटर, इसी सुरको व्यक्त करना असम्भव है। नहीं, मैं नहीं कर सका था इसे।

(पंचम छायामूर्ति नज़दीक आती है।)

पंचम छायामूर्त्ति—कैसा मनोहर चित्र है, कैसी स्वर्गीय ऐक्यतान है! गंधमादन-वनकी अधिष्ठात्री देवी तो सूर्यकान्तमणि-निर्मित पात्रमें कल्पतरुका आसव पान करके भी इस अभिनव सृष्टिकी कल्पना नहीं कर सकेगी। किस कलाकारकी सृष्टि है यह?

(किसीने उत्तर नहीं दिया। वेदव्यास पीछेकी ओर देखते हैं और निकट आ जाते हैं।)

वेदव्यास—क्या आप भारतभूमिसे आ रहे हैं?

पंचम छायामूर्त्ति—बहुत दिनोंसे आया हूँ। इसी बीचमें मैं कब कहाँ पैदा हुआ था, यह पण्डितोंके तर्क-वितर्कका विषय हो गया है।

वेदव्यास—ऐसी बात है, पण्डित लोग आपके सम्बन्धमें भ्रान्त नहीं हुए हैं? तब आप आधुनिक हैं! क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ?

पंचम छायामूर्त्ति—कालिदास देवशर्म्मणः।

वेदव्यास—भारतभूमिके किस हिस्सेमें आप थे?

कालिदास—उज्जयिनीमें, विक्रमादित्यकी नवरत्न सभाका मैं भी एक कवि था।

(वेदव्यासने शायद कालिदासको अर्वाचीन समझकर ही और कुछ बातचीत नहीं की। वाल्मीकि, होमर और उपनिषदके ऋषि इसी बीच दूर हटकर अकले घूम रहे थे। वेदव्यास भी वैसा ही करने लगे। कालिदास अकेले खड़े रह गए।)

कालिदास—ये दिव्यांगनाएँ कौन हैं? गंधर्वकन्या, किन्नरी, देवबाला या मानवी? गज़बका रूप है, और इनका कण्ठस्वर तो आश्चर्य-चकित कर देता है।

- ३ -

(देखते-देखते वे भी दूर हट गए। इसके ठीक बाद ही और तीन कवि आए। इनके चारों ओर भी कुहासेका आवरण था; लेकिन वे औरोंसे अधिक साफ़ होनेके कारण पहचाने जा सकते थे। श्यामल रंग और छरहरे शरीरको देखकर वर्जिलको; लम्बा मुँह, भारी जबड़े, बाहर निकला हुआ मोटा होंठ, कुछ सामनेकी ओर झुका हुआ शरीर, तोतेकी-सी तीखी नाक, घने काले केश, छँटी हुई दाढ़ी, गंभीर किन्तु उतरा हुआ चेहरा और शान्त चालको देखकर दाँतेको और 'कालर' देखकर शेक्सपियरको पहचानते देर नहीं लगती। शेक्सपियर तिरछी नज़रसे वर्जिल और दाँतेको बारी-बारीसे देखते हैं। पर दाँते गहरी उदासीनताके कारण किसीको भी और कुछ भी नहीं देखते थे। वर्जिल अवाक् होकर आकाशकी ओर ताक रहे थे।)

वर्जिल—बाई थिओक्रिटस, यह तो...

(वे बात पूरी नहीं कर सके और चुप होकर आकाशकी

ओर ताकते रहे। दाँतेने अब तक किसीकी ओर नज़र नहीं डाली। इस उच्छ्वासोक्तिको सुनकर उनकी ओर देखा और भौंहें सिकोड़ लीं।)

शेक्सपियर ( नाटकीय ढंगसे वर्जिलका अभिवादन करके )—आप जैसे सुरसिक व्यक्तिका परिचय पानेका सौभाग्य क्या मुझे प्राप्त होगा ?

वर्जिल—मेरा परिचय ? मैं एक केल्ट किसानका लड़का हूँ, इतालीके बाहर मान्टुआमें मेरा जन्म हुआ था।

( दाँतेकी भौंहें और भी सिकुड़ जाती हैं।)

शेक्सपियर—किसानका लड़का ? इससे क्या हुआ ? ग्रीन कहता है—मैं क़साईका पुत्र हूँ। (गर्वके साथ) पर इस बातका ऐतिहासिक प्रमाण है कि मेरे पिताके पास कोट आफ़ आर्म्स थे। यह जानकर मुझे आनन्द हुआ कि आप किसकी संतान हैं; परन्तु आपका ज़रा और विस्तृत परिचय पानेका कौतूहल मैं संवरण नहीं कर सकता।

वर्जिल (हँसकर)—मैं देहाती आदमी हूँ, इसलिए पिताके परिचयसे ही अपना परिचय दिया करता हूँ। ( कुछ देर तक चुप रहकर ) मेरे पिता किसान थे सही, लेकिन हम लोगोंकी हालत ख़राब नहीं थी। खेतीके अलावा हमारे पास ख़ासा बड़ा जंगल था। हम लोग मधुमक्खी भी पालते थे। पिताने मुझे पढ़नेके लिए पहले क्रिमानो भेजा और उसके बाद मिलान।

शेक्सपियर (विस्मयका अभिनय करके)—अच्छा, तो मुझे एक बड़े विद्वान व्यक्तिसे परिचित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

वर्जिल—लेकिन विद्वानकी हैसियतसे मैं कभी भी प्रसिद्ध नहीं हुआ। जो थोड़ी-सी ख्याति है, वह केवल कविके रूपमें ही।

(शेक्सपियर नाटकीय ढंगसे अभिनय करके फिर अभिवादन करता है। दाँतेकी भौंहें और भी सिकुड़ जाती हैं।)

शेक्सपियर—अच्छा, तो आप कवि हैं। इससे बढ़कर मनुष्यका परिचय और क्या हो सकता है ?

वर्जिल (संकोचके साथ)—मैं मामूली ग्रामीण कवि हूँ, मेरा 'एक्लोग्स'—

दाँते (बीच ही में)—क्या कहा—'एक्लोग्स ?'

वर्जिल—हाँ, 'एक्लोग्स' नामक मेरा एक कविता-संग्रह है। असेनियस पोलियोने उसकी प्रशंसा की थी।

दाँते—'जर्जिक्स' और 'ऐनिड' क्या आप ही की लिखी हुई हैं ?

वर्जिल—हाँ, उन दोनोंको मैंने बादमें लिखा था। 'जर्जिक्स' तो आक्टेवियसको सन्तुष्ट करनेके लिए और 'ऐनिड' आगस्टसकी फर्माइशसे लिखना पड़ा था; किन्तु—

दाँते (फिर बात काटकर)—तो आप वर्जिल हैं ?

वर्जिल (ज़रा आँखें मिचमिचाकर)—हाँ, और आप ? आपने मुझे तो ठीक—

(दाँते सहसा घुटने टेककर वर्जिलको अभिवादन करते हैं। शेक्सपियर ज़रा सहमकर कुछ पीछे हट जाते हैं।)

दाँते—आप तो मेरे आदर्श हैं। आप ही की कृपासे संसारके जटिल जंगलमें मैंने अपना रास्ता ढूँढ़ निकाला है। मेरी 'कमेडिया'के आप ही प्रथम पथ-प्रदर्शक हैं, 'बियात्रिच'के पास आप ही ने मेरा पथ-प्रदर्शन किया है।

वर्जिल—मैंने ! नहीं, मुझे तो ऐसा कुछ भी याद नहीं आ रहा है।

दाँते (खड़े होकर)—मनुष्य वर्जिलको तो मैंने देखा है; केवल देखा ही नहीं है, उसकी पूजा भी की है।

(शेक्सपियर कुछ दूर खड़े होकर पैनी नज़रसे दोनोंको देखते हैं। अचानक कोई बात याद आ जानेके कारण वे आगे बढ़ आते हैं।)

शेक्सपियर—अगर आप अनुमति दें तो—अच्छा रहने दीजिए—आप लोगोंके वार्तालापमें मैं बाधा नहीं डालूँगा।

वर्जिल—क्या है, कहिए ?

शेक्सपियर—आपने क्या जूलियस सीज़रको देखा था ?

वर्जिल—अवश्य देखा था। जब उनका वध किया गया, उस समय मैं रोममें अलंकार और दर्शन-शास्त्रका अध्ययन कर रहा था।

शेक्सपियर—पर ज़रा यह तो बताइए कि वास्तवमें वह आदमी कैसा था ?

वर्जिल—ट्रायम्विरेटके और सब आदमी जैसे थे, उसी तरहका वह भी था। बाहरसे तो हितैषी जननायक और भीतरसे अहंकारी, सत्ताकांक्षी, स्वार्थी।

शेक्सपियर—ऐसी बात है !

वर्जिल—पर यकायक आपको उसकी बात कैसे याद आ गई ?

शेक्सपियर—शेक्सपियर नामक एक नाटयकारने उसे एक महान नायक बनाकर एक नाटक लिखा है। आपको देखकर अचानक वह बात याद आ गई।

दांते (वर्जिलसे)—पर आप यहाँ क्यों आए हैं?

वर्जिल—संगीतके आकर्षणसे खिंचा चला आया। और तुम?

दांते—मैं? मैं तो सिर्फ़ घूम ही रहा हूँ। दुनियामें तो जीवनके अन्तिम काल तक इसके-उसके दरवाज़ेपर घूमता रहा; किन्तु मरनेपर भी शान्ति नहीं मिली। प्रेतकी तरह यहाँ महाशून्यमें भी चक्कर काट रहा हूँ। यहाँ क्यों आया हूँ, मालूम नहीं; हो सकता है, मैं भी संगीतके मोहसे ही खिंचा चला आया हूँ; हो सकता है...

वर्जिल (बात काटकर)—पर तुम इतने उद्‌भ्रान्त क्यों हो?

दांते—दुनियामें बहुत कुछ पाया है। (सहसा सजग होकर) जानते हैं, अगर रैवेनाके नागरिकोंने बाधा न डाली होती, तो क़ब्रसे उखाड़कर वे मेरे अस्थि-पंजर तक को जला देते।

वर्जिल (स्नेह-भरे शान्त स्वरमें)—मर्त्यलोककी बात भूल जाओ। चलो, गान सुनोगे, आओ।

(वर्जिल और उनका अनुगमन करते हुए दांते दूर चले जाते हैं। शेक्सपियर कमरपर हाथ रखकर आकाशका दृश्य देखने लगते हैं।)

शेक्सपियर—कैसा चमत्कार है? अगर सुविधा होती, तो...इस बार...?

(अंधकारमें टटोलते हुए मिल्टनका प्रवेश)

मिल्टन (स्वागत)—

A little onward lend thy guiding hand
To those dark steps, a little farther on.*

शेक्सपियर—कौन हैं आप?

मिल्टन—आप कौन हैं, पब्लिक आफ़िसर?

शेक्सपियर—नहीं, यहाँ पब्लिक ही कहाँ, जो पब्लिक आफ़िसर होंगे।

मिल्टन—क्या यह गाज़ाका कारागार (Prison in Gaza) नहीं है?

शेक्सपियर—यहाँ कारागार भी नहीं है, मदिरागृह (tavern) भी नहीं है। एक मदिरागृहको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान हो गया, कहीं कुछ भी तो नहीं है।

मिल्टन (गान सुनकर)—मालूम होता था, शायद गाज़ाके कारागारके आसपास कोई उत्सव हो रहा है। सेमसन एगोनिस्टस (Samson Agonistes) की जो कल्पना की थी, शायद उसीने वास्तविक रूप धारण किया है। तब क्या इस जगह अशान्ति है।

शेक्सपियर—क्या है, यह मैं ठीक-ठीक नहीं जानता।

मिल्टन—आप भी क्या मेरी ही तरह अंधे हैं?

शेक्सपियर—अंधा तो नहीं हूँ, लेकिन देखता हूँ कि अंधा होनेसे अच्छा होता। तब इस तरहकी कल्पना और वास्तविकताकी खींचातानीमें नहीं पड़ना पड़ता। आँखके कारण यह कठिनाई है कि देखता हूँ कुछ और, मालूम होता है कुछ और ही।

मिल्टन—क्या देख रहे हैं आप?

शेक्सपियर—देखता हूँ, अँधेरेके महाशून्यमें ग्रह-नक्षत्र चमक रहे हैं। कुछ रूपवती युवतियाँ गान गा रही हैं और उनके सामने फैला हुआ है प्रकाशका एक विशाल जाल। मालूम होता है, मानो बहुत-सी बिजलियाँ अचानक एक ही साथ प्रकट होकर स्थिर हो गई हैं।

मिल्टन (आग्रहके साथ)—प्रकाश! प्रकाशका जाल!

शेक्सपियर—हाँ।

मिल्टन—आप कैसा समझते हैं?

शेक्सपियर—पहले ही समझा था, अगर मौक़ा मिलता तो अपने 'मिडसमर नाइट्स ड्रीम' में यह दृश्य दे देता।

मिल्टन—'मिडसमर नाइट्स ड्रीम'! आप कौन हैं?

शेक्सपियर—विलियम शेक्सपियर।

मिल्टन—शेक्सपियर! (दोनों हाथ फैलाकर) कहाँ, आप कहाँ हैं?

शेक्सपियर—यहाँ; क्यों?

(उनके कुछ निकट आते ही मिल्टनने आवेगसे उनका आलिंगन कर लिया।)

शेक्सपियर (स्वागत)—ओहो, अगर यह मेरी किटन होते!

मिल्टन—आपसे इस प्रकार मुलाक़ात होगी, इस आशाकी कल्पना मैंने कभी नहीं की थी। क्या आप

---

* हे पथ-प्रदर्शक, अँधेरेमें क़दम बढ़ानेवालेको ज़रा अपने हाथका सहारा देकर थोड़ा और आगे बढ़ा दो।

जानते हैं, साहित्य-जगत्‌में मेरा प्रथम प्रवेश आपके 'सेकेण्ड पोलिवो एडिशन' से ही हुआ ?

शेक्सपियर—मेरे नाटकोंके एडिशन होते हैं ? बेन जानसन कहा करता था...

(अचानक उत्तेजित होकर गेटेने प्रवेश किया और इनकी उपस्थितिको बिल्कुल अग्राह्य करके लुब्ध दृष्टिसे म्यूजोंकी ओर देखने लगे।)

शेक्सपियर (स्वागत)—आदमी रसिक जान पड़ता है।

गेटे (अपने-आप)—ग्रेट चेन, कैथरिन, फ्रेडरिक, ब्रुफ़, लारोचे, स्टीन, वूलपियास, मेरियेन ! (कुछ देर तक देखकर) नहीं, ये वे नहीं हैं।

(शेक्सपियर गेटेके पास बढ़ आते हैं। मिल्टन तन्मय होकर खड़े रहते हैं। उनके होंठ स्पन्दित होने लगते हैं, मानो वे मन ही मन कुछ पाठ कर रहे हैं।)

गेटे (गरदन घुमाकर)—मुझे कह रहे हैं ?

शेक्सपियर—हाँ।

गेटे—कहिए, क्या ?

शेक्सपियर—आपने अभी जिन मीठे नामोंका उच्चारण किया था, क्या वे इन सुन्दरियोंके नाम हैं ? उनके सम्बन्धमें मुझे भी कुछ कौतुहल हुआ है।

गेटे—मैंने जिनका नाम लिया था, वे मर्त्यलोकवासिनी मेरी प्रेमिकाएँ थीं।

शेक्सपियर—इतनी !

गेटे—आपने प्राणिशास्त्र पढ़ा है ?

शेक्सपियर—नहीं।

गेटे—पढकर आपको अचरज नहीं होता। आपका निवास कहाँ था ?

शेक्सपियर—इंग्लैण्डमें।

गेटे—इंग्लैण्डमें, इसीलिए। यदि जर्मनीमें होता, तो आप इतने विस्मित नहीं होते। (थोड़ी देर रुककर) हाँ, इंग्लैण्डमें एक आदमी था, जिसे अचरज नहीं होता।

शेक्सपियर—वह कौन था ?

गेटे—विलियम शेक्सपियर।

शेक्सपियर—अच्छा।

(गेटे म्यूजोंकी ओर देखते हुए दूर चले जाते हैं।)

शेक्सपियर—चलिए, मिस्टर..., लेकिन हाँ, मैंने तो अभी तक आपका नाम भी नहीं पूछा।

मिल्टन—जान मिल्टन।

शेक्सपियर—चलिए मिस्टर मिल्टन, कुछ आगे बढ़ें। यह क्या, आप लँगड़ा क्यों रहे हैं ?

मिल्टन—मुझे गँठियाकी शिकायत है।

(दोनों चले जाते हैं।)

- ३ -

(गाते हुए विद्यापति प्रवेश करते हैं।)

विद्यापति—कत चतुरानन मरि मरि यावत
न तुये आदि अवसाना।
तोहे जनमि पुन तोहे समावत
सागर-लहरी समाना॥

(विपरीत दिशासे चण्डीदास प्रवेश करते हैं।)

चण्डीदास—कौन है, विद्यापति क्या ?

विद्यापति (विस्मयसे)—चण्डीदास !

चण्डीदास—सबार उपरे मानुष सत्य ताहार उपरे नाइ।

विद्यापति—इसका अर्थ ?

चण्डीदास—इस देवलोकमें भी तुम्हें देखकर जितना आनन्द हुआ, उतना और किसी बातसे नहीं हुआ भाई—यहाँ तक कि उन देवियोंको देखकर भी नहीं हुआ।

विद्यापति—तो चलो, हम भी तमाशा देखें।

चण्डीदास—हाँ, अवश्य देखना होगा।

(दोनों चले जाते हैं। बातचीत करते हुए शेली और कीट्स प्रवेश करते हैं। शेली अपने लम्बे बिखरे हुए केशोंमें अंगुलियाँ डालकर उन्हें और भी अविन्यस्त कर देते हैं।)

कीट्स—क्या सच है ?

शेली—हाँ, सच है। एरियल डूब गई। मैं अन्दर चला गया। तुम्हारी कविताओंकी पुस्तक मेरी जेबमें थी। उसके उपरान्त कुछ दिनोंके बाद जब उतराया, तो बायरन, ले हण्ट, ट्रेलनीने समुद्रके तीरपर चिता रचकर मेरे शवको सुरासे भिगोकर जला दिया।

कीट्स—जला दिया तुम्हें ?

शेली—हाँ, जला दिया।

कीट्स—लेकिन देखता हूँ, तुम तो बिलकुल उसी तरह हो।

शेली (ज़रा हँसकर)—वे पागल हैं, इसीलिए मुझे जलानेकी चेष्टा की थी। आगसे भी कहीं दाह होता है ? (कीट्सकी ठोढ़ी पकड़कर) ऐडोनिस कभी मरता है ? (सहसा) हाँ, तुमने एक बात सुनी है ? प्रमिथ्यूज़ फिर बन्दी

हो गया है, गिद्ध उसकी अँतड़ियाँ नोच-नोचकर खा रहे हैं।

कीट्स—ऐसी बात है !

शेली—हाँ, इसी बातको सुनकर तो मैं जिऊसकी तलाशमें जा रहा था।

कीट्स—क्यों, जिऊसके पास किस लिए ?

शेली—इस बार जिऊसने उसे क़ैद नहीं किया है, किया है मैमनने। 'प्रमिथ्यूज़ कैन नेवर बी बाउण्ड' (प्रमिथ्यूज़को कभी बन्दी नहीं किया जा सकता है) इस शीर्षकसे एक कविता लिखनेकी बात सोच रहा हूँ।

कीट्स—लेकिन क्या यहाँ छापाख़ाना है ?

शेली—इसीलिए तो जिऊसके पास जा रहा था। उन्हें एक सुन्दर पक्षी पैदा करनेके लिए कहूँगा। सोनेकी तरह उसके परोंके रंग होंगे। मूँगेके रंगकी चोंच, नील-कान्तमणिकी-सी आँखें और अरफिऊसकी वंशी-सा उसका कण्ठ-स्वर होगा। वही चिड़िया आकाशमें उड़-उड़कर मेरी कविता संसार भरमें गाती रहेगी।

कीट्स (उत्साहित होकर)—चीज़ तो बहुत अच्छी होगी; क्या कहा जिऊसने ?

शेली—जिऊसके पास अभी पहुँचा कहाँ ? इनका गान सुनकर इधर चला आया। ये हैं कौन, ज़रा बताओ तो ?

कीट्स—मालूम नहीं। मालूम होता है, मानो एक नए ढंगका ग्रीसियन अर्न आकाश-पटपर जीवित हो उठा है।

शेली—ठीक कहा, चलो थोड़ा आगे बढ़कर आरामसे देखें।

( दोनों चले जाते हैं। वृद्ध उमर खय्याम प्रवेश करते हैं। उनकी चाल, दृष्टि, मुक्त हास्य आदिसे यह बात मालूम हो जाती है कि वे पक्के विलासप्रिय हैं। आकाशकी ओर देखकर वे सहास्य भौंहें सिकोड़ लेते हैं। एक-एक करके वे सुन्दरियोंका निरीक्षण करते हैं और फिर सहसा दृष्टि फेर लेते हैं। )

उमर ख़य्याम—केवल कुछ रंगीन प्याले ! शराब कहाँ है ?

( वे सिर हिलाते हैं और अपनी सफ़ेद दाढ़ीपर एक बार हाथ फेरते हैं। फिर धीरे-धीरे चले जाते हैं। क्षण भरके बाद नीचा मुँह किए चिन्तायुक्त चेहरा लिए काला कोट और पीले रंगकी पतलून पहने एक व्यक्ति प्रवेश करता है। प्रशस्त शुभ्र उन्नत ललाट, लाल घुँघराले लम्बे बाल, रोम-लेश-हीन खिला हुआ मुखमंडल, सुवर्ण-सी लोहिताभ मुखश्री, तेज चमकीली आँखें, दृढ़ताके साथ सटे हुए कुछ टेढ़े होंठ। चाल-ढालसे यह विक्टर ह्यूगो मालूम होते हैं। )

ह्यूगो—रोबेस्पियर ! रोबेस्पियरका मत ही क्या ठीक है ? (कुछ देर तक विचार करनेके बाद) विद्रोह ! ध्वंस कर देना ही क्या सबसे अच्छी बात है ? लेकिन यह क्या...!

- ४ -

( सहसा म्यूज़ोंकी संगीत-ध्वनि रुक जाती है। एक दूरागत गंभीर वज्रनिर्घोष क्रमशः स्पष्टसे स्पष्टतर होने लगता है। देखते-देखते एक विशाल गरुड़-वाहित स्वर्ण-सिंहासन ऊपरसे उतरता है। सिंहासनपर सौम्यमूर्त्ति वज्रपाणि आकाश-देवता जिऊस विराजमान हैं। उनके साथ हो थेमिस, यूरिनम, डेमेटर, पार्सिफ़ोन, नेमोसाइन, लेटो, ऐपोलो, डिओनी, ऐफ्रोडाइट और एथेना भी उपस्थित होती हैं। ऐपोलोके हाथमें लारेलका एक मुकुट है। म्यूज़ें और डायना भी आकर जिऊसके सिंहासनके दोनों ओर खड़ी हो जाती हैं। इस आकस्मिक परिवर्त्तनसे आए हुए कविगण आश्चर्य-चकित होकर आवाक्-से हो एक ओर अलग खड़े हो जाते हैं। होमर और मिल्टनको कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। संगीत बन्द हो जानेके कारण दोनों बेचैन-से हो जाते हैं। )

जिऊस—हे श्रेष्ठ कविगण, आज एक विशेष कारणसे आप लोगोंको यहाँ एकत्रित किया गया है। दुनियामें भीषण सामूहिक विपत्ति उपस्थित हुई है। क्रुद्ध मानव-गण नृशंस हिंसासे फिर सभ्यताको नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। जल, थल और आकाश कहीं भी शान्ति नहीं है। आप लोग कवि हैं, भविष्यत्द्रष्टा हैं, नियामक हैं; आप लोग ही मानव-समाजके सच्चे नेता हैं। आप लोग एक सभा करके इसके प्रतिविधानकी चेष्टा कीजिए। इस युद्धको बन्द करना देवताओंकी सामर्थ्यके बाहरकी बात है, क्योंकि देवताओंके प्रति मानवोंमें अब तनिक भी विश्वास नहीं रह गया है। सुन्दरी-श्रेष्ठा ऐपोलो-जननी लेटोका मत है कि आपकी सहायताके बिना इस समरानलको बुझाना असम्भव है। श्रीयुक्ता लेटोकी राय है कि स्वस्थ-अस्वस्थ सभी तरहके मानव अब भी आप लोगोंके वंशमें हैं। मेरा सानुनय अनुरोध है कि आप लोग इस विषयमें प्रयत्न करें। अब इस सभाका सभापति चुन लिया जाय। इस सभाका सभापति-पद कौन सुशोभित करे ? एथेना, तुम्हारी क्या राय है ?

एथेना—होमर।

नेमोसाइन—होमरको इस सभाका सभापति चुनना हमारे लिए उचित नहीं होगा। सभी कहेंगे, हमने पक्षपात किया है। मैं वाल्मीकिका नाम पेश करती हूँ।

थेमिस—मेरी रायमें इस सभामें वाल्मीकिसे योग्यतर व्यक्ति हैं उपनिषद्के ऋषि। वे ही भारतीय सभ्यताके प्रतिनिधि हैं।

युरिनम—मैं वेदव्यासका नाम रखती हूँ।

ऐफ्रोडाइट—मैं महाकवि कालिदासको पसन्द करती हूँ। वह नर-नारीके दुःख-सुखके कवि हैं।

डेमेटर—पर संसारका दुःख-सुख और संसारकी सभ्यता तो निर्भर करती है किसानोंपर; अतएव जर्जिक्सके कवि वर्जिलका नाम मैं सभापति-पदके लिए पेश करती हूँ।

प्रथम म्यूज—चण्डीदास भी ग्रामीण कवि हैं। उनकी मधुमय पदावलीसे पत्थर भी द्रवित हो जाता है। वे चाहें तो सहज ही में इस झगड़ेको बन्द करा सकते हैं। इसलिए इस सभाका नेतृत्व वे ही करें।

द्वितीय म्यूज—विद्यापति उनसे किस बातमें कम हैं?

पार्सिफ़ोन—आप एक बातमें ग़लती कर रही हैं—केवल मधुर कण्ठ होनेसे ही काम नहीं चलेगा। आज संसार नरक बन गया है, प्रायश्चित्त करके उसे स्वर्गीय सुषमा प्रदान करनी होगी। कमेडियाके कवि दाँतेके अलावा यह काम और किसीसे नहीं हो सकता। वे केवल कवि ही नहीं हैं, योद्धा भी हैं। युद्धका उन्हें अनुभव भी काफ़ी है।

छठी म्यूज—जीवन-दर्शनके महाकवि उमर ख़य्यामका मैं अभिवादन करती हूँ। वे ही यह भार अपने ऊपर लें।

तीसरी म्यूज—स्वर्ग-नरक, स्वप्न-वास्तव, अनेक प्रकारके मानवके अनेक प्रकारके दुःख-सुख, आशा-आशंकाको बहुत दिनोंसे जिन्होंने रंगमंचपर मूर्तिमान किया है, उसी शेक्सपियरके रहते क्या और किसीका सभापति होना युक्तियुक्त है?

चौथी म्यूज—गम्भीर उदात्त स्वरसे स्वर्ग, मर्त्य, पातालमें जिन्होंने स्वच्छन्द होकर विचरण किया है, जिन्होंने कभी किसी अन्यायका समर्थन नहीं किया, जिनका नैतिक आदर्श आलिम्पसकी तरह ऋजु और समुन्नत है, उन्हीं महाकवि मिल्टनसे मैं इस सभाका सभापति-पद विभूषित करनेका अनुरोध करती हूँ।

क्लेओ—लेकिन मैं कवि, नाट्यकार और दार्शनिक गेटेको चुनना चाहती हूँ। उनकी नाट्य-प्रतिभा युगान्तकारी है। उनकी गीति-कविता अमृत बरसानेवाली है। उनका दर्शन चिरन्तन सत्यकी खोज करनेवाला है। वे केवल भाव-विलासी ही नहीं हैं, कौतूहली वैज्ञानिक भी हैं। कृषि-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, रसायन, पदार्थ-विज्ञान, खनिज-विज्ञान आदिकी आजीवन साधना उन्होंने की है। अनेक देशोंका भ्रमण भी वे कर चुके हैं। स्वयं युद्ध-क्षेत्रमें जाकर युद्ध भी उन्होंने किया है। ड्यूकके सहचरकी हैसियतसे राज्य-शासन भी किया है। उनसे योग्य व्यक्ति इस सभामें और कौन है?

पाँचवी म्यूज—लेकिन इस युद्धका कारण है वृद्ध कुचक्रियोंकी स्वार्थान्धता। हमारा आदर्श है यौवन, प्रेम और मुक्ति; और उस आदर्शके ध्वजाधारी हैं महाकवि शेली। शेलीके अलावा इस आदर्शका प्रचार कौन कर सकता है, यह मैं नहीं जानती।

डायना—कीट्स।

छठवीं म्यूज़ (व्यंग्यके साथ)—क्यों, क्या एण्डिमियनके कवि होनेके कारण?

सातवीं म्यूज—मैं आह्वान करती हूँ उस उन्नत ललाट, प्रतिभा-प्रदीप्त, फ्रांसीसी महाकवि विक्टर ह्यूगोका। वे केवल श्रेष्ठ नाट्यकार, श्रेष्ठ कवि और श्रेष्ठ औपन्यासिक ही नहीं हैं, वे दीन-दरिद्रोंके मित्र, स्वतन्त्रता-मन्त्रके उद्गाता तथा फ्रांसीसी राज्यक्रान्तिके कवि हैं।

छठवीं म्यूज—उनके मतका कोई ठिकाना नहीं। पहले तो वे राजाके समर्थक थे।

जिऊस (आदेशके ढंगसे)—इतना तर्क-वितर्क मत करो इराटो।

(छठवीं म्यूज चुप हो जाती है।)

जिऊस (कवियोंसे)—आप लोगोंमें से अगर कोई कुछ कहना चाहें, तो कह सकते हैं।

उपनिषद्के ऋषि—जो अद्वितीय प्रच्छन्नाभिप्राय, परम पुरुष नाना शक्तियोंके सहयोगसे नाना विषयोंकी सृष्टि करते हैं, एकमात्र वे ही इस झगड़ेको निपटा सकते हैं। उस परम पुरुषसे प्रेरणा प्राप्त करना साधनापर निर्भर करता है। सभा करके यह काम नहीं किया जा सकता।

जिऊस (विस्मयसे)—यह आपने कैसे जाना?

उपनिषदके ऋषि (दृढ़ताके साथ)—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम ।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

जिऊस—आप लोगोंमें से और कोई कुछ बोलना चाहते हैं ?

होमर—मैं यह ज़िम्मेवारी लेनेमें असमर्थ हूँ। इस सम्बन्धमें अपना वक्तव्य मैंने अपने काव्यमें दे दिया है, उससे अधिक मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता। मर्त्यलोक-वासियोंने मुझे अन्धा बना दिया था। अब उनके सम्पर्कमें जाने तककी मुझे रंचमात्र भी इच्छा नहीं है।

वाल्मीकि—मर्त्यलोककी जो स्मृति मेरे हृदयमें काँटेकी तरह चुभी हुई है, वह भी कुछ सुखदायक नहीं है।

जिऊस—क्यों, आपके साथ वहाँ क्या हुआ था ?

वाल्मीकि—अपनी सीताको मैंने स्वयं श्री रामचन्द्रके हाथमें सौंप दिया था, उसपर भी वह चिर-दुखिया ही रही और उसे पाताल-प्रदेश तक करना पड़ा। मर्त्यलोकके मामलेमें फिर लिप्त होनेका अनुरोध कृपाकर मुझसे न करें।

वेदव्यास—कविगुरु वाल्मीकि जिस दायित्वको नहीं लेना चाहते, मैं उसे किस बूतेपर लूँ ? आप लोग मुझे क्षमा करें।

जिऊस—और कालिदास ?

कालिदास (कातरतासे)—दीपकका तेल जल जानेपर जिस तरह बत्ती-भर शेष रह जानेके कारण उषःकालीन दीप-शिखा निर्वाणोन्मुख हो जाती है, आज मेरी भी वही दशा है। अन्धकार दूर करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

वर्जिल—मुझमें भी नहीं है। इसके अलावा मेरा विश्वास है, मनुष्य हमेशा दुनियामें मार-काट करते रहेंगे। इस शोर-गुलसे दूर ही रहना अच्छा है।

जिऊस—आपकी ऐसी धारणा क्यों हुई, कवि ?

वर्जिल—अपनी जानकारी और अनुभवसे।

जिऊस—चण्डीदास, आप ?

चण्डीदास—प्रेमी-प्रेमिकाके कलहोंके अलावा अन्य प्रकारके कलहोंका समाधान करना मैं नहीं जानता।

विद्यापति—राजा शिवसिंह और लछिमादेवी अगर जीवित होते, तो उनकी सहायतासे शायद मैं कुछ करनेकी चेष्टा करता। पर उनकी अनुपस्थितिमें तो मर्त्यलोकके मामलेमें मैं कुछ भी करनेमें असमर्थ हूँ।

दाँते—मर्त्यलोकके मामलोंका मुझे ख़ूब अनुभव है। घिबेलाइन लोगोंकी ओरसे गुयेल्फ़ लोगोंके विरुद्ध लड़कर पोप अष्टम बनीफिसका कुछ परिचय प्राप्त किया था। बियांची और नेरी लोगोंको भी मैं पहचानता हूँ। निर्वासनके समय परोपजीवीकी तरह संकोचके साथ लार्ड आफ़् वेरोनाके मकानमें रहा हूँ। गुइडो नोवेलकी नौकरी भी मैंने कुछ दिनों तक की है। अपने 'डी-मनार्किया' ग्रन्थमें मैंने राष्ट्र-संघका आभास दिया था। सुना है, उसे कार्डिनल नोलगेटने जला दिया है। इसके बाद अब आप मुझसे किस बातकी आशा रखते हैं ? मेरे जीवनके आदर्शका मर्त्यलोकमें कोई मूल्य ही नहीं है।

शेक्सपियर—मर्त्यलोकके रंगमंचपर उसका मूल्य है। आदर्शवादी ब्रूटस, आदर्शवादी हैमलेट स्वयं मरे थे, यह सही है ; लेकिन नाटक ख़ूब जमा था। पर अब मेरा वह दल तितर-बितर हो गया है। अब नाटक जमानेमें असमर्थ हूँ।

उमर ख़य्याम—मेरी भी वही हालत है। वह साक़ी, वह शराब, वह बुलबुल, वह मधुशाला, कुछ भी तो नहीं हैं अब। होटल, रेडियो और सिनेमाके इस युगमें मेरी क़द्र नहीं है।

जिऊस—महाकवि मिल्टन ?

मिल्टन—मर्त्यलोकमें मेरे जीवनका अधिक समय कविता लिखनेमें नहीं बीता था, बल्कि क्रामवेलकी चिट्ठियोंका लैटिन अनुवाद करनेमें और धर्म तथा राजनीतिपर पुस्तिकाएँ लिखनेमें। (हँसकर) पर यह सुख भी अधिक दिनों तक नहीं रहा। प्रोटेक्टोरेटके बाद रेस्टोरेशन आया, हाथोंमें हथकड़ियाँ पड़ीं और जुर्माना भी देना पड़ा। ( सहसा उद्दीप्त होकर) जहाँ विवाहिता स्त्री भाग जाती है, लड़की बापको कष्ट देती है, स्वाधीन मत व्यक्त करनेके लिए 'एरिओपैजेटिका' लिखनी पड़ती है ; वहाँ—

Which way I flee is Hell, myself an Hell
And in the lowest deep a lower deep
Still threatening to devour me opens wide.

( फिर अभिभूत होकर रुक जाते हैं। )

गेटे—अच्छा, तो मुझे अब जानेकी आज्ञा हो ?

जिऊस इस विषयमें कुछ कह जाइए।

गेटे (जमुहाई-अँगड़ाई लेकर)—मैं दार्शनिक स्पनोज़ाका शिष्य हूँ। मैं प्रकृतिका उपासक हूँ। प्रकृति मनुष्यको जिस ओर ले जा रही है, उसमें बाधा डालनेकी

इच्छा और सामर्थ्य मुझमें नहीं है। (शेलीको दिखाकर) ये तरुण हैं, शायद कुछ...

शेली...मैं वर्त्तमानमें वास नहीं करता हूँ, मेरा वास है भविष्यमें। जो तूफ़ानी हवा सूखे-पीले पत्तोंको विनाशकी ओर उड़ाकर ले जा रही है, वही तूफ़ानी हवा अपने साथ ही साथ नवीन सृष्टिका बीज भी बोती जाती है। युद्धको लेकर माथापच्ची करनेकी कोई ज़रूरत ही नहीं है, भविष्यमें सब ठीक हो जायगा।

जिऊस (कीट्ससे)—क्या आप भी उस मर्त्यलोकके लिए कुछ नहीं करेंगे, जिसको किसी दिन आप बहुत अधिक प्यार करते थे ?

कीट्स—'ब्लैकवुड' पत्रिका क्या अब भी मर्त्यलोकमें है ?

जिऊस—हाँ, है।

कीट्स—तब मैं मर्त्यलोकके साथ कुछ भी सम्पर्क नहीं रखना चाहता। मैं दूरसे ही उसके स्वप्नमें निमग्न रहूँगा।

ह्यूगो—वही अच्छा है। मैंने उनकी स्वतंत्रताके लिए क्या नहीं किया ? नाटक, उपन्यास, काव्य, भाषण, कुछ भी तो बाक़ी नहीं रखा ; लेकिन उससे क्या कुछ हुआ है ? मेरे एक जीवनी-लेखकने लिखा है—'फ्रांसीसी क्रान्तिके सम्बन्धमें मेरा उच्छ्वास नाटकीय उच्छ्वास मात्र है !' उन सब मामलोंमें पड़नेकी अब मेरी इच्छा नहीं।

जिऊस—अगर आप लोग सभी असहमत होते हैं, तो मुझे अपनी राजसत्ताको काममें लाना होगा। (ऐपोलोसे) ऐपोलो, तुम जिसे चाहो, सभापति निर्वाचित करो और उसीको मुकुट पहना दो।

( मोरके पंखोंके फड़फड़ानेकी आवाज़ सुनाई पड़ती है। तूफ़ानकी तरह हेरादेवी अकस्मात् प्रवेश करती हैं। )

जिऊस ऐपोलो, सभापति बना लो इनमें से किसीको।

हेरा—नहीं, वह नहीं बनायगा। मैं आकाशकी सम्राज्ञी हूँ, मेरे आदेशके बिना ऐपोलो कुछ भी नहीं कर सकता।

जिऊस—अच्छी बात है, तब तुम्हीं आदेश दो।

हेरा—नहीं दूँगी, इनमें से एक भी मुझे पसन्द नहीं है।

जिऊस—एक भी नहीं ?

हेरा (ज़ोरसे)—नहीं, नहीं ; एक भी नहीं। सार्वजनीन उदार दृष्टि इनमें से किसीमें भी नहीं है। एकमें है, जानती हूँ ; लेकिन वह...

( सहसा चारों दिशाएँ इन्द्रधनुषके रंगसे उद्भासित हो जाती हैं। सप्ताश्व-वाहित हिरण्मय अरुण-रथपर आरूढ़ रवीन्द्रनाथ प्रवेश करते हैं। सभी श्रद्धाके साथ खड़े हो जाते हैं। ऐपोलो एकटक कुछ देर तक देखते रह जाते हैं। उसके बाद निडर होकर अग्रसर होते हैं और रवीन्द्रनाथके मस्तकपर लारेलका मुकुट पहना देते हैं। हेरा खड़ी-खड़ी मुग्ध विस्मयसे देखती रहती है। )

रवीन्द्रनाथ (विस्मयसे)—यह क्या, यहाँ भी सभा है क्या ?

( चारों ओर दृष्टि घुमाकर निरीक्षण करते हैं। इसके बाद सहसा इतने कवियोंको एकत्रित देखकर विस्मय-विमूढ़ हो खड़े रहते हैं और क्षणभरमें अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें सचेत होकर अभिजात-सुलभ श्रद्धासे सबको प्रणाम करते हैं। )

'शनिवारेर चिठि' से ] [अनु०—महादेवप्रसाद साहा

---

# भारतको गुरुदेवकी देन

''गुरुदेवके स्वर्गवाससे हम सबपर—जो उनकी सार्वभौम प्रतिभा और महान व्यक्तित्वकी छायामें बड़े हुए हैं और उनकी सांस्कृतिक परम्परामें आबद्ध हैं—निराशा और अन्धकार छा गया है ! आज भारतका वह महान नक्षत्र—जो वर्त्तमान और भूतकालके प्रच्छन्न बुद्धि-बलके सामंजस्यसे न केवल इस देशको, बल्कि समस्त संसारको प्रकाशमय किए हुए था—अस्त हो गया है और हमारे हृदयोंको सूना कर गया है। फिर भी उनकी वाणी हमारे कानोंमें गूँज रही है और अभी हालके उनके वक्तव्योंमें जो ज्वलंत संदेश है, वह हमारा मार्ग-प्रदर्शन करेगा। प्राचीन भारतके महान ऋषियोंकी तरह वे भी हमें अनश्वर थाती सौंप गए हैं और इसीलिए आज उनके स्वर्गवासके समय हम बड़े गर्व और कृतज्ञता तथा प्रेम और श्रद्धाके साथ उनके महान जीवन और कृतित्वका स्मरण करते हैं। उनकी इस बहुमूल्य थातीको हम लोग सुरक्षित रखेंगे और उनके आदर्शोंके प्रतीक शांतिनिकेतन तथा विश्वभारतीकी उन्नतिमें सहायता करना प्रत्येक भारतीय अपना कर्त्तव्य समझेगा।''

देहरादून सेंट्रल जेल ; ८ अगस्त, १९४१ ] —जवाहरलाल नेहरू

# गुरुदेवके संस्मरण

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद

प्रायः ३७-३८ वर्ष हुए होंगे, जब मुझे पहले-पहल कवीन्द्र रविन्द्रके दर्शन हुए थे। उन दिनों मैं कलकत्तेके प्रेसिडेन्सी कालेजमें विद्यार्थी था। कालेजकी यूनियनकी ओरसे एक स्टीमर-पार्टीकी आयोजना की गई और उसमें कालेजके प्रोफ़ेसर और विद्यार्थियोंके अतिरिक्त कतिपय गण्य-मान्य बाहरके सज्जन भी आमंत्रित किए गए थे। उनमें कवीन्द्र भी थे, और वे प्रायः ४-५ घंटों तक हम सबके बीच उस स्टीमरपर रहे। कालेजके विद्यार्थी उनकी कविताएँ बहुत पढ़ा करते थे, और मैं भी सुना करता था। उनमें दो विचारोंके लोग थे। कुछ तो उनकी कवितापर इतने मुग्ध थे कि वे उनको सबसे बड़ा कवि मानते थे। कुछ उनकी कविताकी फब्तियाँ उड़ाया करते थे, और मुझे आज भी स्मरण है कि आपसमें कभी-कभी बहुत गर्मागर्म बहस हुआ करती थी। ऐसे एक प्रसिद्ध और बड़े कविको अपने बीचमें पाकर हम विद्यार्थीगण अपनेको बहुत भाग्यशाली मानने लगे। विद्यार्थी तथा दूसरे सब लोगोंने कवीन्द्रसे आग्रह किया कि वे संगीत सुनावें। उन्होंने अपने सहज स्वभावसे इस आग्रहको मान लिया। यद्यपि आज मुझे याद नहीं है कि कौन-सा गीत उन्होंने गाया; पर अभी भी वह सुरीली आवाज़ भूलती नहीं है। हम लोगोंने उनसे कई गीत सुने।

उन दिनोंका एक दूसरा संस्मरण और है। बंगालमें स्वदेशीकी धूम थी। कवीन्द्रने "समाज" नामक अपना लेख एक सार्वजनिक सभामें पढ़ा था। उसके बाद तो वह पुस्तकाकार छप गया और शायद उसके कई संस्करण भी हो गए होंगे। जब वह पहलें-पहल पढ़ा गया था, उसने बड़ी खलबली मचा दी थी, और मुझे याद है कि एक बड़ी सभामें कवीन्द्रने उसे अपनी सुरीली और भरी आवाज़से स्वयं पढ़कर सुनाया था और हमारे दिलपर उसका बड़ा असर पड़ा था।

इस प्रकार यद्यपि दूरसे उनके दर्शनोंका सौभाग्य मुझे बहुत दिन पहले अपने विद्यार्थी-जीवनमें ही मिला था; पर निकट साक्षात बहुत दिनोंके बाद यरवदा-जेलमें गांधीजीके अनशन समाप्त करनेके समय हुआ। ब्रिटिश प्रधान-मंत्री श्री मैकडोनल्डने साम्प्रदायिक फ़ैसला ( Communal Decision ) देकर केवल हिन्दुओं और मुसलमानोंमें ही बराबरके लिए फूटको स्थायी रूप देनेका प्रबन्ध नहीं किया—अगर वह फ़ैसला पूराका पूरा रह जाता, तो हिन्दुओंमें भी सवर्ण और अवर्णके बीच एक बड़ी खाई हमेशाके लिए क़ायम हो जाती। गांधीजीने कहा था कि वे उस फ़ैसलेको अपनी जान देकर भी तुड़वायँगे। उसी भीषण प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिए उन्होंने अनशन किया था। जब हरिजन लोगोंके साथ समझौता हो गया, तब उन्होंने अनशन तोड़ा। गुरुदेव अनशनकी ख़बर सुन चिन्तित होकर यरवदा पहुँचे, और उनके यरवदा पहुँचते ही ख़बर आ गई कि मि० मैकडोनल्डने समझौता स्वीकार कर लिया और अब गांधीजीको अनशन जारी रखनेकी आवश्यकता नहीं है। गुरुदेवने अपने हाथोंसे ही नारंगीका रस देकर उस उपवासको समाप्त कराया था और रस देनेके पहले एक मर्मस्पर्शी प्रार्थना भी की थी। उस जेलख़ानेके भीतरके दृश्यको उन दिनोंके लोगोंने बहुत भव्य शब्दोंमें दिखलाया है और स्वयं उन्होंने भी उसका वर्णन लिखा है।

उसी अवसरपर पूनामें एक बड़ी सभा हुई, जिसमें गुरुदेव पधारे थे। सभामें भीड़ बहुत बड़ी थी। उस भीड़में गुरुदेवको बहुत कष्ट हुआ, और मैं देखता था कि उनके चेहरेपर उस प्रेम-भरे, पर नासमझ प्रदर्शनका असर बहुत पड़ रहा था। वहाँपर मैंने देखा कि अब उनकी अवस्था ऐसी नहीं रही कि वे बहुत बड़ी भीड़में जाकर भाषण दे सकें।

वैसा ही दृश्य कई वर्षोंके बाद मैंने पटना स्टेशनपर देखा, जब वे एक बार पटना आए। वहाँ भी उनके स्वागतके लिए बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी और डब्बेमें से उनको सुरक्षित उतारना कठिन हो गया था। भीड़ लगानेवालोंमें मैं भी एक था। बड़ी मुश्किलसे लोगोंकी कृपासे मैं डब्बे तक पहुँचाया गया और उनको सुरक्षित वहाँसे लाकर मोटरमें बिठा सका।

पटनेकी इस यात्रामें उन्होंने शांतिनिकेतनके लिए चन्दा जमा किया और इसके लिए वहाँ नृत्य-कलाका एक अभूतपूर्व प्रदर्शन भी किया। मुझसे बहुत देर तक शांतिनिकेतन-सम्बन्धी बातें भी एकान्तमें हुईं।

उस समय शान्तिनिकेतन-सम्बन्धी आर्थिक चिन्तामें वे थे, और उसे दूर करनेके लिए ही वे शान्तिनिकेतनके बालक-बालिकाओंके साथ निकले थे। मैं उनको रंगमंचपर कुर्सीपर बैठे देखता था और बीच-बीचमें उनकी सुरीली आवाज़ सुनता था। कभी-कभी वे खुलकर कुछ गा दिया करते थे। जो असर उसका दिलपर पड़ता था, वह तो पड़ता ही था ; पर मैं बराबर दूसरे सोचमें पड़ा था। हमारा सौभाग्य है—मैं सोचता था—कि आज भी हमारे बीचमें ईश्वरकी दयासे एक विश्व-कवि मौजूद है, जिसने अपनी वाणीसे अपनेको ही नहीं, इस देशकी कीर्तिको भी अमर बना दिया है। कलाकी सेवाके लिए उसका रंगमंचपर आना स्वाभाविक और उत्साहवर्धक है ; पर क्या उसको अपनी प्यारी संस्थाके लिए, जिसके निमित्त उसने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, इस प्रकार रंग-मंचपर आकर अपनी वृद्धावस्थामें इतना कष्ट उठाना देशके लिए शोभाकी बात है ? क्या यह देश इस योग्य है कि ऐसा महान व्यक्ति इसकी सेवा करे ? मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं वहाँसे दिल्ली गया, जहाँ गांधीजी उन दिनों ठहरे हुए थे। मैंने उनसे ये बातें कहीं, और कुछ दिनोंके बाद जब हम वहाँ ही थे, गुरुदेव अपने दलबलके साथ वहाँ भी उसी निमित्त पहुँचे। गांधीजीने उनके वहाँ आनेका समाचार सुनकर और उनकी यात्राका उद्देश्य जानकर पहलेसे ही मित्रोंसे बातें शुरू कर दी थीं, और उनके वहाँ पहुँचनेपर उस समयकी उनकी आर्थिक चिन्ता दूर हो गई।

यद्यपि मैं दूरसे ही उनकी पूजा किया करता था, उनकी कृपा मुझपर न जाने क्यों और कैसे बनी रहती थी। उन्होंने मुझे शांतिनिकेतन आनेके लिए विशेष रूपसे आज्ञा दी, और मैं वहाँ दो तीन दिनों तक जाकर रहा भी। वे दिन मेरे लिए चिरस्मरणीय हैं, क्योंकि मैंने उन संस्थाओंको केवल अच्छी तरहसे देखा ही नहीं, बल्कि वहाँकी सब बातोंके अध्ययनका सुअवसर भी मुझे मिला। आज भी जब वे इस संसारमें नहीं रहे, मैं अपनेसे वही प्रश्न पूछता हूँ, जो मैंने पटनेमें थियेटरमें बैठे-बैठे और उनकी कला देखते-देखते पूछा था—क्या इस देशके लिए ऐसे महान व्यक्तिकी एक महान कीर्तिको स्थायी रूपसे क़ायम रखना कोई इतनी बड़ी और कठिन समस्या है ? क्या जिस संस्थाके लिए रवीन्द्रने सर्वस्व त्याग दिया, उसको देश उन्नत और उचित स्मारक-रूप देकर हमेशाके लिए क़ायम नहीं रखेगा ? आज स्मारकके रूपके सम्बन्धमें चर्चा चल रही है, और किसीने हवड़ा-पुलपर उनकी मूर्ति रखनेका प्रस्ताव भी समाचारपत्रोंमें उपस्थित कर दिया है। यह प्रस्ताव मेरे सामने भीड़में पड़े गुरुदेवके पूना-सभा और पटना स्टेशनपरके चित्रको ला देता है। क्या इस प्रकारका स्मारक उनके योग्य है ? मैं तो मानता हूँ कि उनकी कृतियोंने उनको और इस देशको चिरकालके लिए अमर बना दिया है ; तो भी उनकी कृतियोंका स्थूल स्वरूप हम उनके द्वारा शांतिनिकेतनमें स्थापित संस्थाओंमें ही देख सकते हैं, और उनको ही पुष्ट और दृढ़ बनाना—उनको ही अर्थ-चिन्तासे मुक्त करना—सबसे सुन्दर और सबसे योग्य स्मारक होगा। इसके लिए जो प्रयत्न हो रहा है, वह स्तुत्य है और मुझे विश्वास है कि देश इस प्रकारसे इस ऋषि-ऋणसे अपने-आपको कुछ हद तक मुक्त कर सकेगा।

वर्धा।

---

# सभ्यता और संस्कृतिकी रक्षामें पश्चिमकी विफलता

[ लंदनकी टैगोर-सोसाइटीको दिया गया संदेश। ]

"मानवकी उस सभ्यता और संस्कृतिको—जिनके निर्माणमें शताब्दियाँ लगी हैं—सुरक्षित रख सकनेमें पश्चिमवाले जिस बुरी तरह असफल हुए हैं, वह मेरे मस्तिष्कपर भीषण विभीषिकाके रूपमें सवार है। मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि इस विफलताका कारण है उसकी राष्ट्रीय मामलोंमें नैतिक मूल्योंकी उपेक्षा और यह विश्वास कि सब कुछ भौतिक घटनावलीपर ही निर्भर करता है। इस राक्षसी विश्वासका प्रथम प्रयोग हुआ मंचूकोमें, और जिन लोगोंने विशुद्ध नैतिक बलको ही अपनी शक्ति मान रखा था, वे ही दुर्भाग्यवश आज इसके शिकार हो रहे हैं। यह प्रतिहिंसा दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक नृशंस रूप धारण करती जा रही है।"

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

# गुरुदेव : हमारे राष्ट्रीय सभापति

श्रीमती सोफिया वाडिया

यूनानके सुविख्यात राजनीतिज्ञ और प्रखर वक्ता पेरिक्लीज़का श्मशान-यात्राके समयका व्याख्यान बहुत प्रख्यात है। पेरिक्लीज़ने अपने उक्त भाषणमें श्रोताओंको दो भागोंमें विभक्त किया है। एक वे जो दिवंगत व्यक्तिके कीर्तिशाली जीवन-कार्योंसे परिचित होते हैं और दूसरे वे जो अस्तंगत महापुरुषकी प्रतापी कृतियों, सिद्धियों और उपलब्धियोंसे परिचित नहीं होते। क्या इस स्मृति-सभामें कोई ऐसा व्यक्ति उपस्थित है, जो कवि-सार्वभौम गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कीर्ति-कथाओं, उनकी राष्ट्रभक्ति और तेजोदीप्त कृतियोंसे परिचित न हो ?

मुझसे पहले दो वक्ताओंने कवि, राजनीतिज्ञ और सन्तके रूपमें गुरुदेवके जीवनकी मुख्य विशेषताओंके विषयमें अच्छा प्रकाश डाला है। फिर भी कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो पेरिक्लीज़की प्रभावशालिनी वाणीमें, गुरुदेवके महाप्रयाणपर, उस महान देशभक्त और उदात्त कविकी यशोगाथा न गाना चाहे। मेरे पूर्व वक्ताने एक बातकी ओर हम सबका ध्यान आकृष्ट किया है, जिसे हमारे हृदय और मन भली प्रकार स्वीकार करते हैं। वह यह है कि यद्यपि हम शोक मना रहे हैं और यद्यपि हमारी चेतना वेदनाके वेगसे काँप रही है, तो भी एक दृष्टिसे हम प्रसन्नता अनुभव कर सकते हैं। और हाँ, एक प्रकारसे यह ठीक भी है कि हम अवसाद और प्रसादको साथ-साथ ही अनुभव करें ; क्योंकि कविवर रवीन्द्रनाथजी अब अमर-आत्माओंकी संगतिमें जा विराजे हैं। अब वे सदाके लिए सब लोगोंके हो गए हैं। अब वे केवल अपने लिए नहीं रहे ; उनका सम्बन्ध अब केवल अपने विख्यात परिवार तक ही सीमित नहीं है, जिसे उन्होंने अपनी प्रभासे आलोकित किया था। वे अपने प्यारे प्रान्त बंगाल तक ही सीमित नहीं हैं, जिसकी मधुर और संगीतमयी भाषाको उन्होंने सुसमृद्ध बनाया है। न उनका सम्बन्ध हमारी मातृभूमि आर्यावर्त तक ही सीमित रहा है, जिसकी ओरसे वे समस्त संसारके सरस्वती-दूत बने रहे। हममें से केवल वे लोग ही अश्रुपात करें, जो उस यशोज्ज्वल और उदात्त जीवनसे प्रेरणा प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं, जो उस वदान्य गुरुदेवकी उच्च शिक्षाओं और आदर्शोंको हृदयंगम करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते। पर क्या यहाँपर कोई ऐसा अभागा, मानसिक दारिद्रयसे अभिभूत और स्वार्थी मनवाला व्यक्ति उपस्थित है, जो उनकी शिक्षाओंसे कोई भी सन्देश नहीं प्राप्त कर सकता हो, उनके आदर्शोंसे कोई भी स्फूर्ति नहीं प्राप्त कर सकता हो ? यदि यहाँपर ऐसा कोई व्यक्ति उपस्थित हो, तो ज़रूर ही उसे अश्रुपात करके शोक करना चाहिए। अपने विषयमें हम सम्पूर्ण कृतज्ञताके साथ कह सकते हैं कि आओ, हम सब अपने महनीय कविऋषिके, महान् देशभक्तके, सन्देशोंसे स्फूर्ति और शक्ति पाकर अपनी-अपनी रीतिसे भारतमाताकी सेवा करनेका व्रत लें और इस प्रकार मातृभूमिकी सेवा द्वारा समस्त विश्वकी सेवाका संकल्प धारण करें, जैसा कि गुरुदेवने अपने सुदीर्घ और पवित्र जीवनमें किया है।

× × ×

आपमें से बहुतोंने अन्तर्राष्ट्रीय लेखक-संघ (P. E. N. Association) के विषयमें कुछ सुना होगा। देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरोंके लेखकों—साहित्य-विधायकों—का यह एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ है, जो सांस्कृतिक बन्धनोंसे आबद्ध है और प्रादेशिक सीमाओंसे ऊपर उठा हुआ है। हम लोगोंने अन्तर्राष्ट्रीय लेखक-संघका एक अखिल भारतीय केन्द्र भी स्थापित किया हुआ है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर उसके राष्ट्रीय सभापति थे। आपमें से जो लोग ऊपर कथित बातसे परिचित हैं, वे आशा रखेंगे कि मैं गुरुदेवके विषयमें—जो कवि, निबन्ध-लेखक और उपन्यासकार थे—विशेषरूपसे कुछ कहूँ ; क्योंकि उन एकमें इन त्रिविध साहित्यिक उपलब्धियोंका एकीकरण था। हमारे साहित्यकार-संघके तीनों अक्षरों ( P. E. N.—P=Poets, Playwrights ; E=Editors, Essayists ; N=Novelists ) की सब ख़ूबियाँ उन एकमें उपलब्ध होती थीं, तथापि सौजन्य-पूजक उस कविवरेण्यके इस स्वरूपके विषयमें मैं कुछ नहीं कहूँगी। मैं तो उनके एक विशिष्ट स्वरूपकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया चाहती हूँ, जिसपर मेरे पूर्व वक्ताने विशेष-रूपसे ज़ोर दिया है। क्योंकि गुरुदेवका वह स्वरूप ही उनके सुदीर्घ जीवनकी उच्चतम उपलब्धि है और उसके कारण ही उनका साहित्यिक कृति-सौन्दर्य अधिकाधिक उदात्त,

समृद्ध और समुज्ज्वल हो पाया है। वह है कवीन्द्रकी देशभक्ति। वह ऐसी देशभक्ति है, जो एक राजनीतिज्ञकी, एक सामाजिक सेवककी, एक अर्थशास्त्रीकी और एक कला-स्वामी (आर्टिस्ट) की देशभक्तिसे ऊँची है। उनका देश-प्रेम वह संकीर्ण देश-प्रेम, वह जड़ राष्ट्र-प्रेम नहीं था, जो मूढ़तापूर्वक कहता है—"My country whether right or wrong." मातृभूमिके प्रति गुरुदेवका ऐसा उदात्त प्रेम था, जो कहता था—"मेरा देश किसी देशको हानि न पहुँचाय। मेरे देशवासी अपने अन्य मानव-बन्धुओंको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचायँ।" यह थी कवीन्द्रकी राष्ट्रभक्तिकी विशेषता।

× × ×

कवि-सार्वभौम गुरुदेव द्वारा विश्वको जो अनेक मूल्यवान् उपहार प्रदान किए गए हैं, उनमें उनका यह उपहार सबसे अधिक मूल्यवान् है। उन्होंने हमको अच्छी प्रकार समझाकर बताया कि पाश्चात्य संसारकी समस्त शक्ति धनके अधीन है और उनके युद्ध उन्हींका आत्म-विनाश करनेवाले हैं। समस्त पश्चिमी राष्ट्र कवीन्द्रके शब्द-माधुर्यसे प्रभावित होकर उनसे प्रेम करने लगे। उनके संगीतकी लय-माधुरीसे वे मुग्ध बन गए; परन्तु उन्होंने उनके विचारोंके प्रति अभद्रताके साथ अपना नकारात्मक माथा हिला दिया। वे कहने लगे कि ये विचार अक्रियात्मक हैं—अव्यवहार्य हैं। सन् १९१७ में प्रकाशित उनकी 'जातीयता' (Nationalism) नामक पुस्तकको आप ध्यानपूर्वक पढ़िए। इसमें उनके उन व्याख्यानोंका संचय है, जो उन्होंने जापान और अमेरिकामें दिए थे। उन्हें पढ़कर आप समझ सकेंगे कि गुरुदेव किस प्रकारके सन्देशवाहक थे। वे एक राजनीतिक संदेशवाहक थे, जिनकी भविष्यवाणियाँ हम देख रहे हैं कि आज भली प्रकार सत्य सिद्ध हुई दिखाई दे रही हैं। उनके राजनीतिक संदेशका प्रधान स्वर क्या था? उनकी राष्ट्रभक्तिका संगीत क्या था? मानवताके शरीरके किसी एक भी अंगको हानि पहुँचाकर इस विश्वमें कोई भी समूह, कोई भी राष्ट्र, कोई भी सम्प्रदाय और कोई भी जाति सुमेलपूर्वक शान्तिके साथ स्वस्थ नहीं रह सकती। यह परिणाम राष्ट्रीयताका नहीं है कि आज पश्चिमी राष्ट्र उच्छृंखल और उन्मादी हो उठे हैं, और सारे संसारमें एक महान आतंक फैला हुआ है। राष्ट्रीयताका यह फल नहीं है कि आज हम सर्वत्र घृणा, तिरस्कार, अपमान और विनाशका ताण्डव-नृत्य निहार रहे हैं। यह सब अन्तर्राष्ट्रीयताका अभिशाप है। गुरुदेव वास्तवमें विश्व-बन्धुतावादी थे। उन्होंने अपनी प्रभावोत्पादक वाणीमें उद्घोषित किया कि संसार एक है और मानवता अविभाज्य है।

कवीन्द्रका संगीत बन्धुताका संगीत था—विश्व-बन्धुताका महासंगीत था। उनकी बन्धुता एकांगी—पक्षपातपूर्ण—नहीं थी, अपितु आध्यात्मिक बन्धुता थी, जो विश्व-प्रकृतिकी विविधताका सम्मान करती है। उन्होंने नानाके अन्दर एकत्वका दर्शन किया था और उस नानाके मूल्यांकनमें कुछ अल्पमूल्यता नहीं आँकी थी। उनकी दृष्टि एक दार्शनिककी दृष्टि थी, जिसे उन्होंने केवल शब्दों तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु व्यवहारमें चरितार्थ करके भी बताया था। वे अपने साथियों और मित्रोंसे स्नेह रखते थे, इस कारण उनका भारतवर्षके प्रति कुछ कम प्रेम नहीं था। अपने प्रेममें उन्होंने अपनी मातृभूमिकी उपेक्षा नहीं की, क्योंकि वे विश्वके नागरिक थे। उन्होंने अपनी जन्मभूमिकी बहुत सेवा की है। वे उससे अधिकाधिक प्रेम करते रहे, क्योंकि उसके द्वारा वे मानव-जातिकी अधिक अच्छी सेवा कर सकते थे। उन्होंने अपने प्रान्त बंगालकी भी उपेक्षा नहीं की, क्योंकि वे देशप्रेमी थे। उन्होंने अपनी जन्म-भाषा—मातृभाषा—को अपने विचारोंका माध्यम बनाया, जिससे भारतकी सभी भाषाएँ तथा संसारकी भाषाएँ उससे समृद्ध बन सकें। वे इस बातसे अनुधावित (नीयमान) नहीं हुए कि भारतकी बहुविध भाषाएँ उसकी उन्नति और प्रगतिमें बाधा-रूप हैं। हमारी सभी भाषाएँ, उत्तरमें पंजाबीसे लेकर दक्षिणमें मलयालम तक, हमारा पैतृक उत्तराधिकार-स्वरूप हैं। मातृभूमिके प्रत्येक देशभक्त पुत्रका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह अपने प्रान्तकी भाषा ही व्यवहार करनेका आग्रह रखे, क्योंकि इसी प्रकार वह अपने मातृ देशकी और विश्वकी अधिक अच्छी सेवा कर सकता है। क्या गुरुदेवने यह कार्य गौरवके साथ नहीं निभाया? बताइए, कवीन्द्रके सिवाय ऐसा कौन है, जिसने मातृभाषामें अपनी रचनाएँ रचकर भारतको तथा विश्वको इस प्रकार गौरवान्वित किया हो?

× × ×

शान्तिनिकेतनमें प्रति वर्ष मनाई जानेवाली कविकी वर्ष गाँठके उत्सवका एक दृश्य।
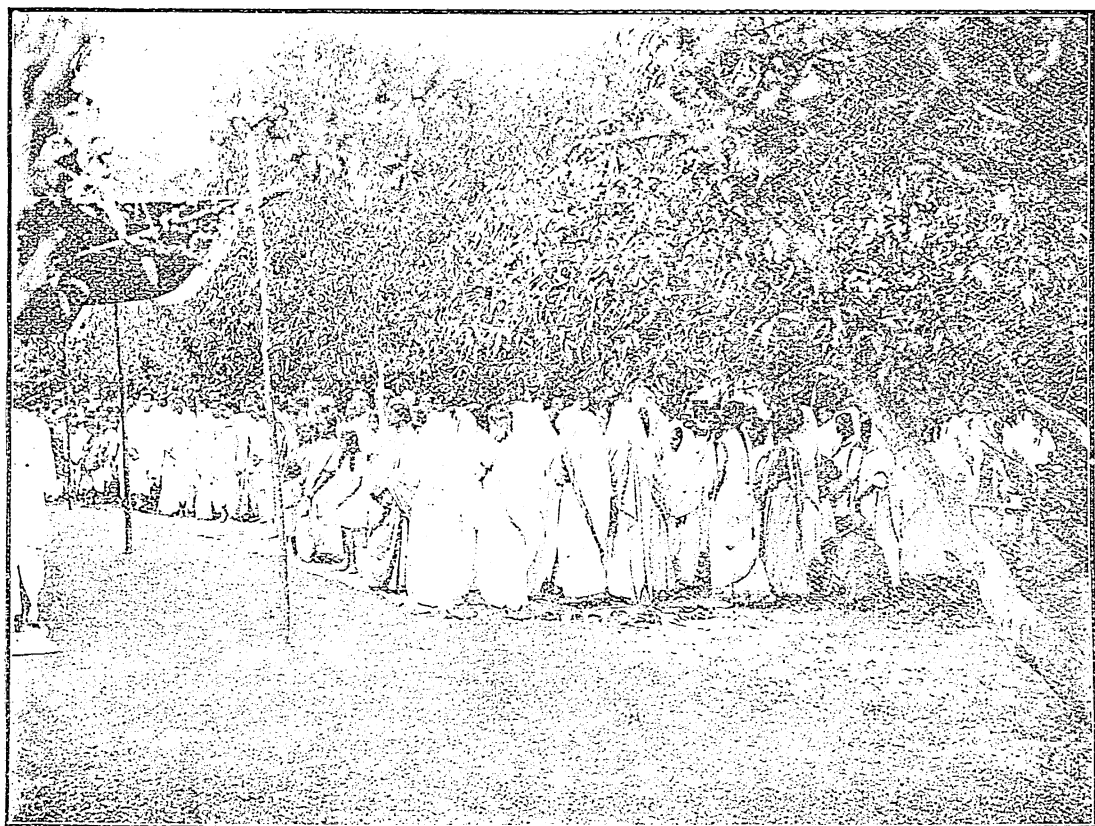
शान्तिनिकेतनमें प्रति वर्ष मनाए जानेवाले 'वर्षा-मगल' उत्सवका एक दृश्य।
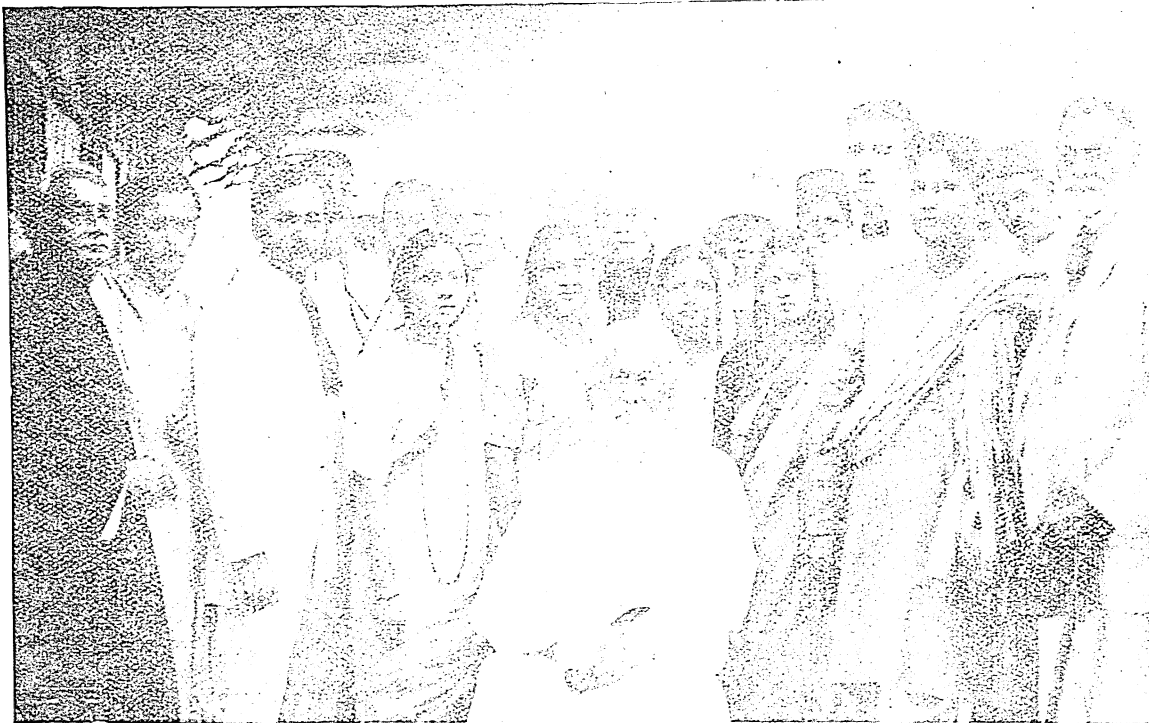
चीन-यात्राके लिए रवाना होनेसे पूर्व लिया गया गुरुदेवका एक चित्र ।

रवीन्द्रनाथकी ईरान-यात्राके समय तेहरानमें लिया गया एक चित्र ।

इस प्रकार हम आते हैं उनकी देशभक्तिसे कविताकी ओर, कार्योंसे शब्दोंकी ओर तथा शब्दोंसे विचारोंकी ओर। या यों कहिए कि हम कर्मयोगी गुरुदेवसे संन्यासी गुरुदेवकी ओर आते हैं। समस्त मानव-जाति किस अनुबन्धसे आबद्ध है? विचार—उदात्त विचार—ही आत्माके साम्राज्यको जोड़े हुए हैं। संग्राम-प्रिय सम्प्रदायों (समूहों)को कौन एकत्र किए हुए है? अशुद्ध विचार ही उनके ऐक्यके कारण हैं। यदि अर्द्धसत्य असत्यकी अपेक्षा अधिक ख़राब है, तो अशुद्ध विचार निरी जड़ता—मूर्खता—से कहीं अधिक भयंकर हैं। गुरुदेवने बँगला भाषामें लिखा हो या आँग्ल भाषामें, उन्होंने कविताएँ लिखी हों या निबन्ध लिखे हों, वे सदा उदात्त विचार ही प्रकट करते रहे हैं। वे शान्तिके परम उपासक थे। उनमें आत्माभिव्यक्ति—आत्मप्रकटीकरण—की सामर्थ्य कुछ कम नहीं थी; पर साथ ही वे प्रकटीकरणके क्षेत्रमें संयत रहना भी ख़ूब जानते थे। मेरे पूर्व व्याख्याताने अभी हाल ही में हम सबका ध्यान आकृष्ट किया है कि वाणी और लेखनीका संयम सीखो! गुरुदेव सौन्दर्यके पुजारी थे। उनमें उदात्त गुणोंकी कमी नहीं थी, जिनकी बदौलत वे एक महान सुधारक बनकर मानव-जातिके कलंकोंको धोनेके लिए समर्थ हो पाए थे। हमारे सामने उनका कीर्तिशाली दृष्टान्त उपस्थित है, जिसका हम अनुसरण कर सकते हैं।

हम सभी कवि नहीं बन सकते। हम सभी गायक, चित्रशिल्पी, कलास्वामी, नाट्यकार, वक्ता और लेखनीके धनी नहीं बन सकते; पर फिर भी हम अपनेको मानवताकी सेवाके लायक बना सकते हैं तथा अपनी अन्तरात्माकी आवाज़को सुनना सीख सकते हैं। इस अन्तिम विचारके साथ मैं उस महनीय गुरुदेवके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा-पुष्पांजलि अर्पित करती हूँ।

मैं आपको बता चुकी हूँ कि वे अन्तर्राष्ट्रीय लेखक-संघकी भारतीय शाखाके अध्यक्ष थे। सन् १९३३ में जब इस भारतीय शाखाकी स्थापना की गई, तब मैंने उसकी एक कार्यवाहिकाके रूपमें उनसे इसके सभापतिपदको स्वीकार करनेके लिए प्रार्थना की। उस समय गुरुदेवने इसका सभापति-पद स्वीकार करके हमारे इस आन्दोलनको आशीर्वाद दिया। उसके बाद सन् १९३४ में जब हमने लेखक-संघका मासिक मुखपत्र—(इण्डियनपेन=Indian P. E. N.) निकालना प्रारम्भ किया, तब भी गुरुदेवने अपने संदेश द्वारा हमको विशेषरूपसे प्रोत्साहन प्रदान किया। उनके उस छोटे, परन्तु अर्थ-गम्भीर संदेशका व्यावहारिक महत्व विशेष है। संदेश मैं आपके सामने पढ़ जाती हूँ, क्योंकि उसमें एक सबक़ निहित है, जो हम भारतवासियों तथा समस्त विश्वके नागरिकोंके लिए समान रूपसे उपयोगी है—

> "I wish all success to this venture and hope that it will quickly lead to the creation of other centres throughout the country, where literary men will meet in an atmosphere of mutual understanding and goodwill, and raise the voice of the spirit above all confused din of warring "schools" and coteries that mars the harmony of the world of letters."

'पारस्परिक सौहार्द और सदाशयता', 'अन्तरात्माकी आवाज़', 'टकराती हुई हवाई विचार-श्रेणियोंका कोलाहल और संकुचित सम्प्रदायोंकी मताग्रहतासे ऊपर उठना',—इन वाक्योंमें उनका संदेश भरा पड़ा है। यह केवल शब्दोंका ही संदेश नहीं, अपितु जीवनका भी संदेश है। क्या यह ऐसा संदेश नहीं है, जिसकी इस समय हमको नितान्त आवश्यकता है? गुरुदेवने अपनी अन्तरात्मामें प्रभुकी वाणीको सुना था तथा उसको हृदयंगम किया था। हम सब भी वैसा कर सकते हैं। हम उस कविऋषिकी वन्दना करते हैं, उनका समादर करते हैं। परन्तु क्या हम केवल हाथ जोड़कर और ऊँचा जयघोष करके ही ऐसा करेंगे? आओ, हम गम्भीरतापूर्वक एकमन और एकप्राण होकर प्रार्थना करें—

> "हे गुरुदेव, हमारी बन्दिनी भारतमाताके सत्कवि, यह सब कुछ समझते हुए भी कि अपने विचारोंको पवित्र करना, अपने शब्दोंको उदात्त बनाना अति दुष्कर है, हम आपके आदर्शों, आपकी आशाओं और आपकी सिद्धियोंके साथ एकता साधनेकी प्रतिज्ञा लेते हैं। अपने संकल्पित कर्त्तव्योंको हम आत्म-बलिदानकी भद्र-भावनासे ही निबाहनेकी शपथ लेते हैं, जिससे हम अपनेको आपके सान्निध्यमें रहनेके लायक सिद्ध कर सकें और अपनी मातृभूमिकी सेवा कर सकें—जिस प्रकार आपने उसकी सेवा की है। ऐसी साधनाके द्वारा मनुष्य-जातिकी अधिक अच्छी सेवा करके अपने मानव-बान्धवोंसे अधिक प्रेम कर सकें!"*

* बंगलोरमें दिए गए भाषणसे।

# रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी

गत ७ अगस्तकी शामको घरसे निकला, तो क्या देखता हूँ कि अख़बार-फ़रोश चिल्ला-चिल्लाकर ज़मीमा बेच रहे हैं—'...डाक्टर टैगोर चल बसे!...आज दोपहरके बारह बजकर तेरह मिनटपर...डाक्टर टैगोर...!' अपने कानोंको झुठलाता हुआ मैं तेज़ीसे पैर उठाने लगा। मेओ अस्पतालसे जो सड़क नीले गुम्बदकी तरफ़ जाती है, उसपर पहुँचकर मैं रुक गया। पास ही एक ताँगा आ खड़ा हुआ, जिसकी पिछली सीटपर बैठे हुए एक साहब ताज़ा ज़मीमा पढ़ रहे थे। मैंने ज़मीमा नहीं ख़रीदा था। पर कानोंके अलावा आँखोंको भी झुठलाना और मुश्किलमें डाल रहा था। फिर अगली सुबह अख़बार उठाया, तो दिलपर जैसे ग़मकी एक भारी-सी सिल आ पड़ी।

विश्व-कविके शब्द मेरे मनकी गहराइयोंमें गूँज उठते हैं—'पुण्य हो या पाप, आदर हो या अपमान, हर हालतमें, ओ मा, मैं तेरी गोदमें जन्म लूँ, बार-बार जन्म लूँ।' भौगोलिक सीमाओंको परे धकेलकर वे मानवीय समानता और भ्रातृ-भावके समर्थक बन गए थे। वतनकी गुलामी भी उन्हें सदा याद रहती थी। और सच तो यह है कि महान साहित्यसे कहीं बढ़कर उनका कारनामा है स्वदेश प्यार और उसके उद्धारकी सक्रिय चेष्टा! आत्माकी स्वतंत्रताका गान छेड़ते हुए उन्होंने बारबार स्वदेशके अपमान और ग़रीबीसे छुटकारा पानेका सन्देश दिया था।

कहते हैं कि मृत्युसे कुछ दिन पहले ही विश्व-कविपर बेहोशी छा गई थी। मृत्युसे पहले आख़िरी रातको बारह बजे उनकी साँस कठिनाईसे चलने लगी। सबने जान लिया कि वे दो ही चार घंटोंके मेहमान हैं। पर मृत्युको कौन रोक सकता है? कविके सपुत्रके नाम मैंने इस दुखद अवसरपर जो पत्र लिखा, उसमें लिखा—'...मुझे तो विश्वास नहीं होता कि गुरुदेव इस संसारसे चल बसे हैं। मुझे तो वे अब भी जगन्नाथपुरीमें सागरकी ओर मुँह किए उड़ीसाके गवर्मेंट-हाउसकी छतपर बैठे नज़र आ रहे हैं, जहाँ मैं आख़िरी बार उनसे मिला था। मैंने उनका ध्यान खींचते हुए कहा था—सागरकी लहरें देवदासियोंकी तरह नाच रही हैं। तब उनके होंठोंपर कोमल मुस्कान नाच उठी थी। यह मुस्कान उनकी प्रतिभाका निचोड़ थी और वह मेरी स्मृतिमें अपने पूरे भाव और उद्देश्यके साथ सदा ज़िन्दा रहेगी—सदा थिरकती रहेगी।'

### विनोद-प्रिय रवीन्द्रनाथ

स्वर्गीय विश्व-कविके साथ सदा यों लगाता था, जैसे ताज़ा पहाड़ी शहद प्राप्त हो रहा है। जमकर उनके समीप रहनेका तो कभी प्रश्न ही न उठा। शुरू ही से मैं एक ख़ानाबदोशके रूपमें उनसे मिलता रहा हूँ। हर बार मैंने इस शहदको उनके स्नेहमें बसा हुआ पाया है। उनके साथ हर नया अनुभव और अवलोकन मनपर एक नया चित्र अंकित कर देता था। इसी तरह हमारी आपबीती एक चित्रशालाका रूप धारण करती चली जाती है। हर आपबीती विचारोंको आमंत्रण देती होती है। और विचारोंका प्रत्येक आमंत्रण इस शहदके बग़ैर अधूरा ही रहता है। वे बोलते तो उनके शब्द खिलौने-से मालूम होते। उनसे हिलते-मिलते देर न लगी। कभी-कभी बातचीत करते समय उनकी आँखें बन्द हो जाती थीं, तब ऐसा लगता, मानो ग़ोताख़ोरने मोतीकी तलाशमें डुबकी लगा ली है। फिर जब वे आँखें खोलते, तब उनमें आध्यात्मिकताका प्रकाशपुंज प्रस्फुटित हो उठता।

एक बार उन्होंने एक मज़ेदार घटना सुनाई थी—'दक्षिण-अफ़्रीकासे लौटकर गांधीजी शान्तिनिकेतन पधारे थे। उन दिनों उन्होंने दूध पीना छोड़ रखा था। किसी तरह उन्हें यह वहम हो गया था कि दूधमें किसी क़दर ज़हर मिला रहता है। एक दिन वे मेरे पास बैठे थे। मेरे लिए दूध आया, तो मैंने कहा—लीजिए, आप भी एक प्याली। गांधीजी मुस्कराकर बोले—इसमें तो ज़हर है! मैंने कहा—सच तो है, ज़हर तो इसमें है ही; पर यह ज़हर इतना कम है कि आधी शताब्दीकी आयुमें यह मुझे आधा भी नहीं मार पाया।'

एक बार यह घटना मैंने अपने गाँवमें एक किसानको सुनाई। वह बेचारा इसे समझ ही न सका। फिर जब मैंने कविसे इसका ज़िक्र किया, तब वे बोले—'तुम नहीं हारे, यह मेरी हार है। गांधीजीसे बाज़ी ले जानेके बावजूद मैं एक किसानके सम्मुख चारों खाने चित्त गिर पड़ा हूँ।'

कविकी विनोद-प्रियता धीरे-धीरे बहनेवाली नदीकी तरह थी। एक बार कोई राजकुमारी उनका दर्शन करने आई। मालूम होता था कि अजन्ताकी किसी गुफ़ासे कोई तस्वीर कविके पास आ निकली है। कविके बाल अभी सफ़ेद नहीं हुए थे। राजकुमारी बोली—'आप बहुत सुन्दर हैं।' कविको यों लगा, जैसे पास ही कहीं घुँघरू बज उठे हों। उन्होंने राजकुमारीकी बात सुनी-अनसुनी कर दी। तब उसने अपनी बात दोहराई। इस बार कविने बड़े ध्यानसे राजकुमारीके रूपका अवलोकन किया और कहा—'राजकुमारी भी तो सुन्दर है।' इस घटनाकी तसदीक ज़रूरी थी। मैंने ख़ुद कविसे पूछा, तो वे मुस्कराने लगे और बोले—'मैंने ज़रूर यह बात कह दी होगी।' मैंने कहा—पर मुझे तो यह बात यों ही बनाई हुई मालूम हुई थी। वे मुस्कराकर बोले—'कह जो दिया, मेरे जीवनकी ऐसी बीसियों बातें और भी सुननेको मिलेंगी...आख़िर मैं भी आदमी ही हूँ।'

कविता बड़ी चीज़ है, दर्शनशास्त्र भी और आध्यात्मिकता भी; पर कोमल हास्यरसके प्रस्फुटनमें हमें जीवनकी प्रतिभा मिल जाती है। एक बार किसी नवाबी घरानेके एक सदस्यने कविको देखकर कहा—'वल्लाह! क्या नूरानी चेहरा है!' कविके सेक्रेटरीने जब इस वाक्यका अनुवाद करके उन्हें सुनाया, तो कवि मुस्करा कर बोले—'कौन जाने इनकी क्या सम्मति होती, यदि इन्होंने मुझे मेरे यौवनमें देखा होता!' वह साहब फिर कुछ न बोले। यह कोई ज़रूरी तो नहीं है कि यौवनमें कविका चेहरा ज़्यादा नूरानी होगा। उनके सफ़ेद बाल जैसे उनके नूरानी चेहरेके सहायक बन गए थे।

कुछ वर्ष पहले विश्वभारतीने 'चयनिका' नामसे कविकी श्रेष्ठ कविताओंका एक संग्रह प्रकाशित किया था। इस संग्रहका फ़ैसला वोट लेकर किया गया था। वोट देनेवाले सज्जनोंमें कविके बड़े-बड़े प्रशंसक भी शामिल थे। पर यह संग्रह कविको बहुत पसन्द न आया, क्योंकि इसमें कई ऐसी कविताएँ शामिल होनेसे रह गईं, जो कविको बहुत पसन्द थीं। उन्होंने ख़ुद एक संग्रह तैयार किया—'संचयिता'। जब विश्वभारतीने इसे प्रकाशित किया, तो कविके मित्रोंने कहा कि इसमें कुछ ऐसी कविताएँ भी शामिल कर ली गई हैं, जो हम लोगोंकी रायमें इतनी बढ़िया नहीं हैं। एक साहब तो बहुत ख़फ़ा भी हुए। एक कविताकी ख़ूबियाँ समझनेके लिए वे स्वयं कविके पास पहुँचे। कविने उनसे कहा—'ये सब। बातें मैं नहीं जानता आप सर राधाकृष्णनसे मिलिए। अपनी कविता मैं ख़ुद भी शायद इतनी नहीं समझता। मेरी कविताके दर्शनशास्त्र पर उन्होंने एक बड़ी-सी पुस्तक ही लिख डाली है।'

सन् १९३४ में ख़ान अब्दुलग़फ़ारख़ाँका लड़का शान्तिनिकेतनमें श्री नन्दलाल बोससे चित्रकलाकी शिक्षा पाने आया था। एक दिन कविने उससे कहा—'ख़ान, ज़रा देखूँ तुम्हारा हाथ।' और बड़े ध्यानसे कवि उस युवकका हाथ देखते रहे; फिर बोले—'यह हाथ तूलिका उठानेके लिए तो नहीं बना है ख़ान!' पठान युवक बोला—'जनाब, मैं ऐसी तस्वीर बनाऊँगा, जिसे देखकर हर पठान बच्चा अपनी बन्दूक सँभाल लेगा।' कविने उसकी बात सुनकर उसे सीनेसे लगा लिया।

कविके जीवनकी ये छोटी-छोटी बातें उनके मनोभावोंकी अच्छी परिचायिका हैं। कलाकी दृष्टिसे कविकी विनोद-प्रियता बहुत श्रेष्ठ थी। सच तो यह है कि हास्यरसके बिना जीवनकी तस्वीर अधूरी ही रहती है। हँसीकी लहरें तो जीवन-सागरमें उठनी ही चाहिएँ। कोई ग़म इन्हें सदाके लिए निढाल क्यों कर दे? कोमल विनोद हास्यकी लहरोंको उभारता रहता है। धन्य है वह व्यक्तित्व, जिसे मानवीय चरित्रकी यह प्रतिभा प्राप्त हुई हो।

सन् १९३६ का ज़िक्र है। कवि लाहौर आए थे। एक बंगालिन उनके लिए अपने प्रान्तके एक पकवानकी प्लेट लेकर आई। कवि पकवानसे आनेवाली ख़ुशबूकी ओर आकर्षित हुए और उसकी प्रशंसामें उन्होंने कुछ कहा भी। वह स्त्री बोली—'महाराज, अब कुछ मुँहमें डालिये।' कविने झट जवाब दिया—'यह प्रशंसा तभी तक है, जब तक मैं इसे खा नहीं लेता...।' वह स्त्री हँसे बिना न रह सकी। वह यह समझ गई कि जब कवि यह पकवान खा लेंगे, तो उन्हें इतना आनन्द आयगा कि फिर इस बारेमें मुँहसे कुछ भी कहना बेकार होगा।

विनोदकी ऐसी ही झाँकियाँ उस रत्न-कणिकाकी तरह, जिसके हर कोनेसे किरण फूट पड़े, जीवनके कच्चे मसालेमें भी एक नई आत्मा जगा देती हैं। पर हर ज़िन्दा विनोद एक मौलिकता माँगता है—मौलिकता ही नहीं, एक सृजन-शक्ति भी। रवीन्द्रनाथ, जो सृजनके मूर्तिमान रूप नज़र आते थे, विनोदमें मौलिकताके पूरे-पूरे हामी थे।

पिछली बार जब मैंने कविके जन्मदिनकी ख़ुशीमें जगन्नाथपुरीके गवर्मेन्ट-हाउसमें उनकी एक बड़ी तस्वीर उन्हें भेंट की, तो वे उसे देखते ही बोल उठे—'यह क्या कर डाला! मैं तो इसमें कोई हिटलर या मुसोलिनी नज़र आता हूँ।' यह बात उन्होंने अपनी रौबदार आँखोंको देखते हुए कही थी। इस तस्वीरकी एक कहानी है। ख़ुद अपने कैमरेसे मैंने यह तस्वीर तैयार की थी। बात यों हुई, एक दिन मैं शान्तिनिकेतनमें कविको अपने लिए हुए फोटो दिखा रहा था। उन्हें एक संथाल कन्याकी तस्वीर बहुत पसन्द आई। मैंने कहा कि वे चाहें तो यह तस्वीर अपने पास रख लें। उनकी रायमें यह कन्या धरतीकी बेटी थी, क्योंकि उसने अपनी लजीली आँखें धरतीकी तरफ़ झुका रखी थीं और ऐसा मालूम होता था कि उसकी लाज खेतोंकी लाज थी, जो धानकी तरह उग आई थी। मैंने जब अगली सुबह उनका एक फोटो लेनेकी आज्ञा माँगी, तो वे बोले—'अपना कैमरा लेते आना, पर मुझे कमरेसे बाहर निकलनेके लिए न कहना। यहीं अपना काम कर लेना।' मैंने यह शर्त्त मान ली। निश्चित समयपर जब मैं वहाँ पहुँचा, तो पता चला कि कविके एक अँगरेज़ मित्र उनसे मिलनेके लिए आए हुए हैं। उनसे मेरा परिचय कराते हुए कविने मेरी शौकिया फ़ोटोग्राफ़ीका ज़िक्र छेड़ दिया। फिर मुझसे बोले—'एक फोटो इनका भी लेना।' मैंने ख़ुश होकर कहा—'इससे न चूकूँगा।' फिर मैंने कविके मित्रसे कहा—'मैं तो बल्कि यह चाहता हूँ कि आपका फोटो कविके साथ लिया जाय।' उन्होंने मेरी बात मान ली। कविने चुप्पी साध ली। मैंने बात बढ़ाई—'पर मैं चाहता हूँ, फोटो बाहर धूपमें लिया जाय, काठचम्पाके पेड़के समीप।' इतनेमें मैंने देखा कि नौकर बाहर कुर्सियाँ लगा रहे हैं। कविने घूरकर उधर देखा और कहा—'मालूम होता है, सत्यार्थीने षड्यन्त्र रच रखा है मुझे बाहर ले जानेके लिए।' और फिर कोमल मुस्कानके साथ बोले—'पर बाहर फोटो लिया जायगा ज़रूर...।' काठचम्पाके क़रीब लिए गए इसी फोटोके एक भागको एनलार्ज कराकर उनका यह बड़ा फ़ोटो तैयार किया गया था।

रवीन्द्रनाथ ठाकुरको देखकर अक्सर ऐसा लगता था, मानो बर्फ़से ढँके हुए हिमालय पर्वतको देख रहा हूँ। उनके सफ़ेद बालोंकी ओर ताकते हुए मेरे शरीरका एक-एक अणु-परमाणु जाग उठता था, और फिर जब आँखें उनकी आँखोंकी ओर या होंठोंके कोनोंकी ओर उठतीं, तो ऐसा जान पड़ता, मानो कहानी-सी सुनाती हुई एक सरल मुस्कान लहरा रही है, जो एक अचूक आशीर्वाद-सा दे रही है। पहाड़ोंपर सूर्यके चढ़ने और डूबनेका दृश्य कितना शान्तिपूर्ण होता है! जब भीतरसे यह आवाज़ आती है कि अब हमारी स्वतन्त्रतामें कोई विघ्न नहीं पड़ सकता, क्योंकि दुनिया बहुत विशाल है, तो विश्व-कविकी आँखें, जो सदा सूर्यकी पहली और आख़िरी किरणोंका आलिंगन करनेके लिए ललचाई रहती थीं, यह सन्देश देती-सी नज़र आती थीं—जीवन तो बहुत विशाल है, प्रेम भी और सौन्दर्य भी; पर इनका आनन्द तभी मिलता है, जब आदमी स्वतन्त्र हो जाता है!

एक दिन मैंने हँसते-हँसते कहा—'मैं तो एक प्रकारका मज़दूर लेखक हूँ, गुरुदेव!'

'तो क्या बुरा है?—वे बोले—'प्रत्युत सत्य तो यह है कि आगे चलकर मज़दूर लेखक ही देशकी बागडोर सँभालेंगे। धरतीकी जीती-जागती कविता, जिसकी खोजमें तुम्हें गाँव-गाँव, घरों और खेतोंमें जाना पड़ता है, हमारी बहुमूल्य सम्पत्ति है। एक समय था, जब स्वयं मैंने भी बंगालके कुछ पुराने लोकगीत संग्रह किए थे। जीवन और साहित्यकी सिंचाईमें ये गान बहुत सहायता देंगे। तुमने यह कार्य अपने हाथमें लिया है, तो बीच ही में न छोड़ देना।'

'इसे हाथमें न लिया होता, तो शान्तिनिकेतनमें जमकर रह पाता।'

'पर प्रेम और सौन्दर्यके संयोगसे तो मानव जहाँ चाहे नवीन शान्तिनिकेतनकी नींव रख सकता है।'

उस समय मुझे वह घटना याद आई, जब (जैसा कि मैंने कविके एक मित्रसे सुना था) यूरोपमें किसीने कविसे पूछा था कि हिन्दुस्तानमें कोई और बड़ा कवि भी है, तो विश्व-कविने जवाब दिया था—'कवि तो स्वयं मैं भी

इतना बड़ा नहीं हूँ। हाँ, कवियोंका हमारे देशमें अकाल नहीं है।...चरखा कातती हुई स्त्रियाँ भी कुछ-न-कुछ गाती रहती हैं। किसानोंके गीत अलग हैं। हमारे माँझियोंके करुण 'भटियाली' गान और बाउलोंके मर्मी गान भी कुछ कम महत्त्व नहीं रखते। इन सब गीतोंमें हमारी कविताका जीवित रक्त बहता रहता है।'

और वह घटना तो मुझे कभी न भूलेगी, जब मैंने कविको बताया था कि मैंने अपनी पुत्रीका नाम कविता रखा है। उन्होंने हँसकर कहा था—'कवि होनेसे कविताका पिता होना कुछ कम तो नहीं है!' मैंने झेंपकर जवाब दिया था—'अब इस जन्ममें तो मैं कवि बननेसे रहा।' झट मेरी बात काटकर उन्होंने कहा था—'कविता स्वयं अपने पिताको एक दिन कवि बना देगी।'

### सृजनशील कलाकार

कलाके मातहत होनेकी बजाय रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कलाको अपने मातहत कर लिया था। उनकी बहुत-सी कहानियोंमें बंगाली ग्रामोंकी मुँह बोलती तस्वीरें मिलेंगी। धरतीके बेटोंके दावेको उन्होंने अपना बना लिया था। बार-बार धरतीको बिलकुल क़रीबसे देखकर उन्होंने यह सृजनशील शक्ति प्राप्त की थी। धरतीमाताकी पुकार उन्होंने कभी अनसुनी नहीं की। प्रकृतिकी खुली गोदमें साँस लेना अंत तक उनके जीवनका आदर्श बना रहा। बढ़ती हुई दुर्बलता या बुढ़ापेने उनकी ग्रहणशीलताको ज़रा भी कमज़ोर नहीं किया था। साहित्यके सम्बन्धमें उनके मनमें सदा नए विचार पैदा होते थे। प्रगतिशील लेखक-संघके नाम दिए गए उनके संदेशसे भी यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है। उसमें उन्होंने कहा—'मैंने भूल की, जो जीवनसे हटकर क्षेत्र ढूँढ़ा। जीवन और साहित्यका चोली-दामनका साथ है। इन दोनोंको अलग न होना चाहिए।' साहित्यके नए दृष्टिकोणकी जीवनमें बहुत बड़ी आवश्यकता है, इस विचारका अभिनन्दन करते हुए उन्हें विशेष आनन्द मिलता था।

प्रो० हुमायूँ कबीरने लिखा है—'अभी वह समय नहीं आया, जब हम रवीन्द्रनाथकी प्रतिभा और उनके कार्योंकी वन्दना कर सकें। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि हम जिस बंगालमें रहते हैं, वह रवीन्द्रनाथका बनाया हुआ बंगाल है। बंगाल जो सोचता है, जिस भाषामें सोचता है और जिन विचारोंको पेश करता है, वे सबके सब रवीन्द्रनाथके दिए हुए हैं। हमारा देश नदियोंका देश है, जिसे शताब्दियोंसे दो बड़ी नदियाँ उपजाऊ बनाती आ रही हैं। एक लिहाज़से रवीन्द्रनाथ भी बहुत बड़ी नदी ही थे, जिसने बंगालकी मानसिक और सांस्कृतिक धरतीको उपजाऊ बनाया। किसी अकेले आदमीको यह गौरव कम नसीब होता है कि वह एक प्रान्तकी भाषाको विश्व-साहित्यकी भाषा बना दे। मेरे विचारमें दाँतेसे अधिक रवीन्द्रनाथको इस दिशामें सफलता मिली है। रवीन्द्रनाथको उन कठिनाइयोंका मुक़ाबला करना पड़ा, जो दाँतेके सामने न आई थीं। पर इसके बावजूद रवीन्द्रनाथने बँगला-साहित्यको उसकी वर्त्तमान रूप-रेखा प्रदान की...। आज इस बातकी ओर संकेत किया जाता है कि उनका सम्बन्ध सम्पन्न वर्गसे था; पर वे सम्पन्न वर्गके अनुरागी नहीं थे। इसमें हैरान होनेकी कौन-सी बात है? उनके लिए स्थान और जन्म केवल आकस्मिक घटनाएँ थीं। उनका वैभवशाली कुलसे सम्बन्ध रखना एक लिहाज़से सौभाग्य था, क्योंकि इस तरह उनके लिए मध्यकालीन और प्राचीन हिन्दुस्तानकी परम्पराओंको अपने अन्दर सोख लेना आसान हो गया। जिस ज़मानेमें रवीन्द्रनाथका जन्म हुआ, उस ज़मानेमें दूसरे वर्गोंके लोगोंके लिए ऐसा करना कठिन था। रवीन्द्रनाथने ऐसे ज़मानेमें जन्म लिया, जब हिन्दुस्तानमें उथल-पुथलकी अवस्था थी और नए विचार पैदा हो रहे थे। यूरोपकी सभ्यता अपना असर दिखा रही थी। इस ज़मानेमें हर तरफ़ वह शोर-गुल मौजूद था, जिसका सम्बन्ध क्रान्तिकारी परिवर्त्तनोंसे होता है। उनकी आँखोंके सामने हिन्दुस्तानी जीवन दो अलग-अलग भागोंमें बँट रहा था, और ये दोनों भाग अक्सर एक दूसरेसे टक्कर लेते रहते थे। एक ओर वे लोग थे, जिन्होंने पश्चिमकी हर वस्तुको क़बूल कर लिया था। दूसरी ओर वे लोग थे जिनका पश्चिमसे कोई सम्बन्ध न था। रवीन्द्रनाथके परिवारने पश्चिमकी चुनौतीको क़बूल किया और किसी भय और आशंकाके बिना हिन्दुस्तानी जीवनके लिए कुछ यूरोपीय क़ीमतें स्वीकार कर लीं। परिस्थितियोंके इस मेलने रवीन्द्रनाथकी मानसिक ग्रहणशीलताके लिए राह निकाली...।'

पर शुरू ही से बंगालमें एक ऐसा दल मौजूद रहा है, जो रवीन्द्रनाथके साहित्यिक प्रयासोंको संदेहकी दृष्टिसे

देखता रहा है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस दलमें जब-तब ऐसे लोग भी नज़र आ जाते थे, जिनकी शिक्षा पश्चिमी ढंगपर हुई थी। इस सिलसिलेमें श्री मजूमदारकी बात मुझे कभी न भूलेगी। वे एम० ए० पास कर चुके थे। एक बार उनके सोनेके कमरेमें रवीन्द्रनाथका फ़ोटो देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। अक्सर वे कहा करते थे—'रवीन्द्रनाथने बुरी तरह प्राचीन संगीतका नाक-मुँह तोड़ डाला है!' फिर जब उस फ़ोटोका भेद खुल गया, तो वे झेंपकर बोले—'रवीन्द्रनाथका यह फ़ोटो पहले मेरे ड्राइंग-रूम (बैठक) में टँगा था। चलता-चलता यह मेरे सोनेके कमरेमें आ पहुँचा है। जल्द ही मैं इसे यहाँसे भी हटवा दूँगा।' मैंने हँसकर कहा—'मजूमदारजी, दीवारसे आप कविकी तस्वीर हटवा सकते हैं; पर मालूम होता है, यह तस्वीर आपके दिलमें भी घर कर चुकी है। इसे आप ख़ुद भी नहीं हटा सकेंगे।' यह बात नहीं है कि रवीन्द्रनाथने भारतके प्राचीन संगीतका अभ्यास न किया था; पर अपने गीतोंमें उन्होंने एक नए संगीतको जन्म दिया था। पूर्वी और पश्चिमी स्वरोंका यह संयोग हिन्दुस्तानी संगीतके इतिहासमें एक प्रगतिशील अध्याय बन चुका है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरके स्वरचित छन्द, जो उनकी कविताओंमें विशेष स्थान रखते थे, पुराने ढर्रेके लोगोंकी आँखोंमें काँटोंकी तरह खटकते रहे हैं। उनके गीतोंकी अपरिचित चाल-ढाल भी पुराने लोगोंको खटकती रही है।

कविने एक बार बताया था कि जब कोई नया गीत जन्म लेने लगता है, वे झट अपने भतीजे दीनेन्द्रनाथ[१]को बुला भेजते हैं, और वे अपनी संगीत-विद्यापर इतना अधिकार रखते हैं कि चाहे कोई गीत जाने-पहचाने रास्ते पर चलता हो, चाहे नए अपरिचित रास्तेपर, वे उसे सुनकर झट स्वर-लिपिमें बाँध लेते हैं। कई बार तो यों भी हुआ कि आधी रातके समय कविकी आँख खुल गई, कोई भाव पैदा हुआ, कोई नया स्वर जाग उठा और गीत बाहर आने लगा। उस समय दिनेन्द्रनाथको बुला भेजना ज़रूरी हो जाता था, क्योंकि उनका ख़याल था कि गीतोंके नए स्वर बहुत छलिया होते हैं और एक बार हाथसे निकल जानेपर फिर उनका क़ाबूमें आना मुश्किल हो जाता है। कविके नए गीतोंका स्वागत करनेके लिए—चाहे वे दिनमें पैदा हों, चाहे रातमें—दिनेन्द्रनाथ सदा तैयार रहते थे। रवीन्द्रनाथके गीतोंके सम्बन्धमें श्री रामानन्द चट्टोपाध्यायने लिखा है कि कुल मिलाकर उनकी संख्या दो हज़ारसे भी ऊपर पहुँच जाती है।[२]

कविता और संगीतके अलावा नाटक और नृत्य-कलाके क्षेत्रमें भी कविकी सृजनशील शक्ति आगे बढ़ती रही थी। 'चित्रांगदा' उनका सफल और प्रशंसनीय नाटक है। अपने नाटकोंके अभिनयमें वे ख़ुद भी किसी-न-किसी पात्रका रूप धारणकर मंचपर आ जाते थे। इनमें कविने कितने ही स्वरचित नृत्य भी पेश किए हैं। इधर बुढ़ापेमें वे शान्तिनिकेतनके विद्यार्थियोंको नृत्यके नए सृजनमें यद्यपि शारीरिक मदद नहीं दे पाते थे; पर उनकी उपस्थिति उनके लिए सजीव प्रेरणा और प्रोत्साहन बन जाती थी। किसी नर्त्तकीको हाथ या आँखके किसी संकेतसे या कोई कहानी-सी सुनाती हुई मुस्कानके साथ वे किसी नए नृत्यका पथ दिखा देते थे। एक बार एक दर्शकने रवीन्द्रनाथ-स्कूलकी नृत्य-कला देखकर लिखा था:—

'सन् १९३६ के उत्तरार्द्धमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी नाटक-मण्डली लेकर कलकत्ता आए। जिस हालमें अभिनय हुआ, वह खचाखच भर हुआ था। यूनिवर्सिटी और कालेजोंके प्रोफ़ेसर, पत्रोंके सम्पादक, लेखक, फ़िल्म-कम्पनियोंके विख्यात अभिनेता और अभिनेत्रियाँ, राज-नीतिक और सामाजिक सभाओंके सदस्य सब अपनी-अपनी शानके साथ जमा थे और परदेकी ओर इस तरह देख रहे थे, जैसे हरएककी आत्मा उसके पीछे छिपी हुई हो। घण्टी बजी और परदा उठा। सामने एक दीवार-सी थी, जिसके आगे छः युवक और दूसरी तरफ़ छः युवतियाँ सितार लिए बैठे थे। दोनों तरफ़के चेहरे तारोंकी तरह चमक रहे थे। बीचमें एक कन्या थी, जिसका रंग गर्मियोंकी शामकी तरह साँवला था। इस पृष्ठभूमिमें रंगमंचके सामने एक कोचपर एशियाका महाकवि, जिसकी आत्मा सृष्टिके एक-एक परमाणुसे वार्तालाप कर रही थी,

१. श्री दिनेन्द्रनाथ शान्तिनिकेतनमें संगीत-भवनके प्रिंसिपल थे। कुछ वर्ष हुए आपकी मृत्यु हो गई। —ले०

२. 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' (ग्यारहवाँ संस्करण) के सम्पादकने शुबार्टको संसारका सबसे बड़ा गीत-लेखक माना है, यद्यपि उनके गीत ६०० से ऊपर नहीं हैं। —ले०

पीले रेशमी वस्त्र पहने बैठा था। संगीतके बारीक तारकी तरह लहराई हुई एक लहर कविके सिरके बालों, चेहरेकी झुर्रियों, दाढ़ीकी झालर और रेशमी चोग़ेकी सलवटोंमें होती हुई पैरों तक आ पहुँची थी। ढोलक बोली—गड़-गड़-तार। सितार बोले—दर-दर-दा दर-दर-दा। साँवली कन्याने हल्की-सी साँस ली। मालूम हुआ जैसे किसी जल-परीने किसी जल-पात्रके पास सिसकी भरी हो। कविके मुँहसे प्रार्थनाके बोल निकले। जवान आवाज़, बुढ़ापेकी पवित्रता और गम्भीरताकी लय जो उठी, तो झट पृष्ठभूमिके गंगा-जमुनी रूपमें घुल-मिलकर वायुमण्डलमें तैरने लगी। यह आवाज़ जिस उतार-चढ़ावपर चल रही थी, उसमें न कोई गत थी और न उसपर कोई वाद्ययन्त्र ही बज सकता था। फिर भी वह संगीत था। एक ओरसे नीले, पीले, लाल और सुनहले रंगोंको उड़ाती हुई एक सुन्दर युवती नाचती हुई निकल आई। कुछ ही क्षणों बाद ऐसा मालूम हुआ, मानो वह नाच नहीं रही है, बल्कि कविके गानने मानवीय रूप धारण कर लिया है। कहनेको ये इतनी चीज़ें थीं; पर सचाई एक थी—रवीन्द्रनाथ ठाकुर।'[3]

गोर्कीने अपनी डायरीमें लिखा है, जब मैं टालस्टायसे एण्टन चेख़वकी 'दोशेशका' कहानीका ज़िक्र कर रहा था, तो उन्होंने कहा—'यह एक फीतेके समान है, जिसे किसी कुँवारी लड़कीने काढ़ा हो। पहले ज़मानेमें इस किस्मकी लड़कियाँ मौजूद थीं। वे अपने जीवन और यौवनके सुन्दर सपने किसी रंगीन चित्रके रूपमें फीतेपर काढ़ देती थीं।' यह बात बहुत हद तक रवीन्द्रनाथके पात्रोंपर भी ठीक उतरती है।

एक बार मैंने कविको बताया कि उनका कोई उपन्यास या कहानी पढ़नेसे बहुत पहले 'गीतांजलि'का उर्दू अनुवाद मेरे हाथ लग गया था; पर उनकी ओर मेरा आकर्षण उनकी कहानी 'काबुलीवाला' पढ़नेके बाद शुरू हुआ। उन्होंने पूछा—'काबुलीवाला भी उर्दूमें पढ़ी थी?' मैंने कहा—'नहीं, अंगरेज़ीमें।' वे बोले—'गीतांजलिका उर्दू-अनुवाद तो बहुत शुष्क हो गया होगा। कविता अनुवादकी चोट नहीं सह सकती, गद्य सह जाता है।' 'अपनी कहानियोंमें आपको कौन-सी बहुत पसन्द है, गुरुदेव?' 'यह कठिन प्रश्न है।... "हार-जीत" मुझे काफ़ी अच्छी लगती है। यह मेरे जीवन-दर्शनका निचोड़ है। जीवन शान्त वायुमण्डलमें उदास स्वर बज उठते हैं।...आनन्द कितना भी क्यों न हो, ये उदास स्वर तो बजेंगे ही।'

'हार-जीत' है तो कहानी; पर उसमें कविताकी ख़ूब भी पैदा हो गई है। ऐसी ही कोई कहानी पढ़कर एक समालोचकने यह राय दी थी—'आदर्श कहानी वही हो सकती है, जो उस अशरफ़ीके समान हो, जो साँचेकी एक ही दाबमें तैयार हो जाती है। उसकी टंकार कभी खोटी नहीं होती, क्योंकि उसकी तैयारीमें खरी धातु बरती जाती है।' अमरपुरके राजा उदयनारायणका राजकवि शेखर, जिसने राजकुमारी अपराजिताको कभी देखा नहीं था, राज-सभामें रोज़ कविता पढ़ते समय अपनी आवाज़ इतनी ऊँची ले जाता था कि रनवासमें बैठी अपराजिता भी उसे सुनकर उसके भाव समझ सके। वह राजकुमारीके सुन्दर टख़नोंके सपने देखने लगता था, जिनपर पहने हुए नूपुर पग-पगपर कोई मधुर राग अलापते रहते थे। इन्हीं नूपुरोंकी तालपर वह अपनी कविता सुनाया करता था। फिर एक दिन बाहरसे कोई कवि शेखरसे प्रतियोगिता करनेके लिए आ पहुँचा। भरी सभामें दोनों कवि राजाके सामने अपनी-अपनी रचनाएँ सुनानेको उपस्थित हुए। शेखरकी सीधी-सादी कविता पिण्डासकी चटपटी कविताके सामने फीकी-सी पड़ गई, और वह हार मानकर घरकी ओर चल दिया। घर पहुँचकर उसने अपनी कविताकी पाण्डुलिपियाँ जला डालीं और शहदमें किसी पेड़का ज़हरीला रस मिलाकर पी गया। इसी समय राजकुमारी अपराजिता राज-सभामें आ पहुँचती है। वह कहती है कि हार पिण्डारककी हुई, राजकवि शेखरकी नहीं। पर राजकुमारीके ये शब्द शेखरकी मृत्युको नहीं रोक सके। शायद अपराजिता कभी कविके रूबरू नहीं हुई। यही कहानीकी निजी विशेषता है।

'अदबी दुनिया'के भूतपूर्व सम्पादक श्री मनसूर अहमद साहबने अपने एक लेखमें लिखा है—'रवीन्द्रनाथका सबसे बड़ा कारनामा न उनके गीत हैं, न नाटक; बल्कि उनकी कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ संगीत और सख़्त हक़ीक़तपर स्थित नहीं, बल्कि उनमें मानवीय जीवनकी हक़ीक़तोंके स्वर रोमान्सके साथ मिलाए गए हैं, और जहाँ रवीन्द्रनाथने हद दर्जेकी उदासीनता भी दिखलाई है,

३. 'हिन्दुस्तान' (उर्दू साप्ताहिक), लखनऊ; १७ अगस्त, १९४१

वहाँ भी स्वाभाविकताका आँचल उनके हाथसे छूटा नहीं।...रवीन्द्रनाथ एक जादूगर हैं, जो अपनी लेखनीके मन्त्रसे प्रत्येक निर्जीव वस्तुको भी ज़िन्दा कर देते हैं। ख़ामोश वायुमण्डल उनके इशारोंपर एक साज़के तारोंकी तरह थिरकने लगता है। सुनसान और वीरान खँडहर सदियोंकी कहानियाँ सुनाने लगते हैं और उनके ज़र्रे-ज़र्रेमें एक दिल धड़कता हुआ दिखाई देता है।'

चित्रलिपिका एक नया स्रष्टा

कविकी आयु सत्तर सालकी थी, जब उनकी बहु-मुखी सृजनशील शक्तियोंने चित्रकलाका रुख़ इख़्तियार किया। सन् १९३० में जब वे अपनी ग्यारहवीं यूरोप-यात्राके दौरानमें पहली बार रूस गए, उनके चित्र मास्को-प्रदर्शनीमें रखे गए। इसके अलावा बर्लिन, पैरिस और न्यूयार्ककी प्रदर्शनियोंमें भी कविके प्रशंसकोंने उनकी नई योग्यताको शौकसे देखा। किसीने इन चित्रोंको कविता और चित्रकलाका संयोग बतलाया, तो किसीने इन्हें 'बेमानी चीज़ें' कहनेके बावजूद इनकी निजी विशेषताको स्वीकार किया। जिस व्यक्तिने कभी यह लिखा था—'ओ शर्मीले विचार, मुझसे डर मत, मैं कवि हूँ!' वही अपने विचारोंके रंग और रूपसे भी हमारा परिचय कराने लगा। किसी-किसी चित्रमें यह रूप बहुत भयानक हो जाता है और कहीं-कहीं इसे महान प्रतिभाकी बालोचित निष्कर्षहीनता कहनेको जी चाहता है। यह चित्रकला अपनी क़िस्म आप है—पूर्व और पश्चिम दोनोंकी परम्पराओंमें बँधी हुई चित्रकलासे दूरकी चीज़। या शायद ये सब चित्र शोषणके उसूलपर टिकी हुई सभ्यतापर कसा हुआ एक ज़बरदस्त व्यंग्य होंगे। एक बार कविने कहा था—'मैं कहाँका चित्रकार हूँ! यों ही अपना शौक पूरा कर लेता हूँ।'

एक दिन मैं सुबह-सवेरे उनके पास गया। वे अपने एक चित्रको आख़िरी 'टच' दे रहे थे। मैं बड़े ध्यानसे वह चित्र देखने लगा। वे बोले—'कुछ पता चला, यह क्या चित्र है?' मैं कुछ जवाब न दे पाया। वे फिर बोले—'मैं पहले ही जानता था, मैं कोई चित्रकार नहीं हूँ, यह तो यों ही खेल-सा है।' उस दिनकी प्रतीक्षा करता हुआ जब ये चित्र अपने पूरे अर्थ और उद्देश्यके साथ मेरे रूबरू उजागर हो जायँगे, मैं लौट आया।

एक दिन कुछ लोग कला-भवनके चित्र देख रहे थे। उन्होंने कई चित्रोंके सम्बन्धमें श्री नन्दलाल बोससे सवाल करने शुरू कर दिए। वे नई हिन्दुस्तानी चित्रकलाके कारनामोंका सम्मान करनेको तैयार थे; पर उसे ठीक-ठीक समझ न सकते थे। अभी नन्द बाबू अपनी बात समझा ही रहे थे कि यात्रियोंमें से एक सज्जनने कविकी बनाई हुई एक तस्वीरकी ओर उँगलीसे इशारा करके कहा—'और नहीं तो इस चित्रके सम्बन्धमें ही कुछ समझा दीजिए।' इसके जवाबमें नन्द बाबूने कहा—'यह बात तो स्वयं कविसे पूछी जा सकती है।' पर उस यात्रीने ज़िद की—'कमसे कम इस चित्रका शीर्षक ही बता दीजिए।' 'मुझे इसका शीर्षक मालूम नहीं',—नन्द बाबूने मुस्कराकर कहा—'शीर्षकके बारेमें कुछ जानता होता, तो सब कुछ बता देता।'

विश्व-कविकी आत्मा कैमरेकी अति-प्रभावशील (Super-sensitive) फ़िल्मकी तरह थी। आजसे बाईस वर्ष पहले जब अमृतसरमें मार्शल-ला की हुकूमतने ज़ुल्म ढाया था, तो कविकी आत्मापर जलियाँवाले बाग़के पीड़ितोंका हू-बहू फ़ोटो खिंच गया था, और उन्होंने प्रतिवाद करते हुए ३० मई, १९१९ को हिन्दुस्तानके तत्कालीन वाय-सरायके नाम पत्र लिखकर अपना 'सर' का ख़िताब लौटा दिया था। अभी-अभी जब ब्रिटिश पार्लमेंटकी एक सदस्या कुमारी रैथबोनने स्वतन्त्रता-प्रिय हिन्दोस्तानियोंपर ग़द्दारीका इल्ज़ाम लगाया था, तो हिन्दुस्तानके इस वयोवृद्ध कविने रोग-शय्यासे ही उन्हें वह जवाब दिया, जो रहती दुनिया तक हमारे देशके इतिहासमें ज़िन्दा और अमर रहेगा। इसे पढ़कर निस्सन्देह कुमारी रैथबोनको अपना बयान ऐसे फ़ुट-पाथके रूपमें नज़र आने लगा होगा, जिसकी बजरी उखड़ गई हो। रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक महान कलाविद ही नहीं थे, उनका व्यक्तित्व आज़ाद हिन्दुस्तानकी एक बड़ी दलील बन गया था। जैसा कि यूरोपके एक बड़े आदमीने उन्हें सम्बोधन करते हुए कहा था—'हिन्दुस्तानमें आपका अस्तित्व उसकी स्वतन्त्रताके अधिकारकी दलील है!' उनकी मृत्यु ग़रीब हिन्दुस्तानके लिए एक बहुत बड़ा सदमा है।
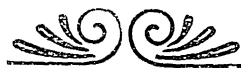
# वह अमिट चित्र !

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

सन् १९३५ की बात है। मैं अपने किसी सम्बन्धीके विवाहमें शरीक होने लाहौर गई हुई थी। एक दिन बड़े कुतूहल और अह्लादके साथ सुना कि गुरुदेव लाहौर आ रहे हैं। उन दिनों साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे लाहौरका वातावरण विशेष अनुकूल एवं कलापूर्ण नहीं था। पर जब गुरुदेव वहाँ पधारे, तो जैसे श्रद्धा और प्रेमका अर्घ्य लिए अपने मँहगे मेहमानके स्वागतके लिए लाहौर-वासियोंकी भीड़का एक अपार समुद्र-सा उमड़ पड़ा। स्वयं गुरुदेव भी इससे कम प्रभावित नहीं हुए !

वह दृश्य मुझे आज भी वैसे ही याद है, जैसे कोई कलकी घटना हो। चौबुर्जीकी ओर ताँगों, मोटरों और स्त्री-पुरुषोंकी जो एक महानदी-सी उस दिन बह चली थी, अन्तर्दृगोंके आगेसे जैसे आज भी वही बह रही है। किन्तु मैं केवल गुरुदेवके आगमनपर निकले इस विराट जुलूसको देखकर ही तृप्त और सन्तुष्ट नहीं हुई, निकटसे उनके दर्शन करने और हो सके तो उनसे कुछ बातचीत करनेकी स्वाभाविक लालसा और लोभका भी संवरण न कर सकी। दो दिन मुझे उनकी प्रभात-प्रार्थनामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कल्पना और स्वप्नोंसे रंगीन वे दो सुनहले दिन कितने सुखद और स्फूर्तिदायक थे ! प्रार्थनाके समय जब मेघ-गम्भीर घोषमें कविके मधुर कण्ठसे—

*सत्यं शिवं सुन्दरम् !*

*असतोमा सद्गमय: तमसोमा ज्योतिर्गमय:*

का पुनीत उच्चारण होता था, तो जैसे सारा वातावरण एक अमर संगीतकी प्रतिध्वनिसे गूँज उठता था और अन्तरात्माके तार झंकृत हो उठते थे ! चिरपरिचित स्वरमें वह सुधामय संगीत जैसे आज भी कानोंमें गूँज रहा है।

प्रार्थनाके बाद गुरुदेव 'गीतांजलि' (अंगरेज़ी-अनुवाद) में से कुछ पद अपने कवित्वपूर्ण धीर-गम्भीर स्वरसे सुनाते, जिनका एक सज्जन बादमें हिन्दी-अनुवाद करते। न मालूम कितने अपलक नयन लुब्ध दृष्टिसे गुरुदेवकी सौम्य-मूर्त्तिकी ओर लगे थे और एकत्रित जन-समूहकी आत्माएँ उनके अधरोंसे झड़नेवाले फूलोंका सौरभ अपने-आपमें भर लेनेकी अनवरत चेष्टा कर रही थीं। उस संगीतमय मोहक प्रभातका दृश्य आज भी बरबस आँखोंके सामने आ जाता है।

* * *

दूसरे दिन प्रार्थनाके बाद हम लोगोंने गुरुदेवसे बातचीत करनेके लिए कुछ समय माँगा। उन्होंने उसी समय हमें अपने निजी कमरेमें बुला लिया। जब हम लोग उनके कमरेमें पहुँचे, तब वे एक आराम-कुर्सीपर आधे लेटे थे। प्राचीन कालके तपोवृद्ध ऋषियों-से उस महान व्यक्तिके भव्य एवं प्रभावपूर्ण स्वरूपको देखकर भला किसका साहस होता कि उनसे कुछ कहे-पूछे ! हृदयसे जिज्ञासा-वृत्तिके बजाय उस वातावरणमें श्रद्धा ही अधिक पैदा होती थी। अत: हम लोग मन्त्रमुग्ध-से दीवारके सहारे खड़े होकर उनकी मनोहर मूर्त्तिको निहारने लगे। इसमें से दो-एक व्यक्ति अपनी ऑटोग्राफ़-बुक (हस्ताक्षर-पंजिका) में गुरुदेवके हस्ताक्षर लेकर पीछे हट गए।

इसी समय देखती हूँ, बहन शान्ता साहसकर आगे बढ़ी और गुरुदेवके चरणोंके पास सिर नवाकर बैठ गई। उन्होंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसके सिरपर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया और उसका ललाट चूम लिया। शान्ताने पूछा—'कलाको हम कैसे अपने जीवनमें ला सकते हैं।'

गुरुदेवके होंठ हिले; मर्मर-ध्वनिसे विस्फुरित कुछ शब्द उनसे निकले, जिन्हें मैं स्पष्ट सुन नहीं पाई। मैं तो केवल शान्ताके साहस और उसकी अगाध श्रद्धा तथा वात्सल्यके उस महास्रोतके सरल स्निग्ध प्रवाहसे ही इतनी प्लावित हो उठी थी कि आँखोंके सामने कान अपना व्यापार जैसे भूल-से गए थे। बाहर आनेपर हम सबने शान्ताको घेर लिया और पूछा कि गुरुदेवने उसके प्रश्नके उत्तरमें क्या कहा था ? उसने बतलाया कि गुरुदेवने कहा था—'अपने घरोंके भीतर प्रतिदिनकी कलापूर्ण दिन

चर्यासे ; पुनः पास-पड़ोसकी और देशकी हज़ारों-लाखों बहनोंमें सुशिक्षा एवं जाग्रतिके प्रसारका व्रत लेनेसे ही हम अपने जीवनको कलामय बना सकते हैं।'

मैंने गुरुदेवके अत्यंत निकट खड़े होकर कहा—'आपके छोटे-छोटे गद्यगीत मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।' और जब उन्होंने बड़े स्नेहके साथ पूछा—'कौन-से ?'—तो मेरी दृष्टि न जाने कहाँ थी और मन कहाँ कि मैं कुछ भी उत्तर न दे सकी।

लौटते समय भाई चन्द्रगुप्तजीने मेरी इसी अन्यमनस्कताको लक्ष्य करके ज़रा क्षुब्ध होकर पूछा—'तब आप क्या सोच रही थीं ?'

'कुछ भी नहीं।'—मैंने यों ही कह दिया।

अपनी इस भूलपर मैं स्वयं भी कम लज्जित और क्षुब्ध न थी ; पर चन्द्रगुप्तजीको मैं कैसे समझाती कि उन अमर क्षणोंमें मैं किस लोकमें थी ?

× × ×

कल-कारख़ानोंके धुएँसे पूरित और भव्य अट्टालिकाओंके तले कुचलती मानवताके वीभत्स दृश्य दिखाकर कलकत्ता-प्रवासके दो-तीन वर्षोंने जैसे मेरी आँखें खोल दी थीं और अज्ञातमें एक शुद्ध, स्वस्थ एवं शान्त वातावरणकी आकुल प्यास जाग्रत हो उठी थी। कलकत्तेकी घनी बस्तीसे दूर ४-५ मील इधर-उधर भटक आनेपर भी वह कभी बुझती नहीं थी—बल्कि और बढ़ती ही जाती थी। आख़िर हम लोगोंने शान्तिनिकेतन जानेका तय किया।

शान्तिनिकेतन पहुँचकर हृदयने जैसे अपनी खोई निधि पा ली। न मालूम कितने वर्षों बाद मैंने उस रात ज्योत्सनासे प्लावित पिछली पहरमें शान्तिनिकेतनके विश्रामगृहकी छतपर खड़े-खड़े अपनी आकुल आँखोंसे अधीर तृषितकी भाँति प्रकृतिकी सुषमा-श्रीका मधुपान किया था ! न मालूम कितने युगों बाद मैंने उस दिन प्रभात-वेलामें मुक्त तरु-शिखाओंपर एकत्रित सहस्र पक्षियोंके प्राणमय संगीतमें अपने-आपको खो दिया था ! और मोपाई नदीके पास लाल मिट्टीमें बच्चोंके साथ उल्लसित हो खेलते-खेलते जैसे फिर अपने शैशवमें जा पहुँची थी ! असंख्य अँधेरे गढ़ोंमें गिरनेवाले जीवनके शत-सहस्र क्षणोंमें से जिस प्रकार कोई एक क्षण नक्षत्रकी भाँति सहसा उद्दीप्त होकर सारे जीवनको आलोकित कर जाता है, शान्तिनिकेतन-यात्राका यह एक क्षण भी मेरे जीवनमें वैसा ही जगमगा रहा है।

उस एक ही दिनमें मैंने न जाने कितनी पावन धाराओंमें ग़ोता लगाया—कितनी विचार-सरणियोंको अपने मानस-जगत्‌में जागरित होते पाया ! अरुणोदयकी प्रथम किरणोंके साथ आरम्भ होनेवाला आश्रमका प्रारंभिक गान सुनकर और छायादार वृक्षों-निकुंजों तले होनेवाले मौलिक ढंगके शिक्षणको देखकर उस दिन ऐसा लगा कि मैं एक नई दुनियामें आ पहुँची हूँ—ऐसी दुनियामें, जिसने न तो पूर्वके सांस्कृतिक आदर्शोंका बहिष्कार ही किया है और न पश्चिमके विकास-कर्मकी उपेक्षा की है। दोनोंका ऐसा सुन्दर और कवित्वपूर्व सामंजस्य क्या और कहीं मिलेगा ? कला-भवन, पुस्तकालय, संगीत-भवन, कलापूर्ण प्रस्तर-मूर्त्तियाँ, श्रीनिकेतनका कृतित्व और अबाध स्वच्छन्दताके साथ खेलने-कूदनेवाले छोटे-छोटे बच्चोंको देखकर ऐसा मालूम हुआ, जैसे कविकी बहुमुखी प्रतिभा, उनकी कल्पना और स्वप्नोंकी दुनिया इस कलापूर्ण वातावरणमें एकबारगी मुखर उठी हो ![१]

दिन भर घूम-घामकर शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतनके आन्तरिक एवं बाह्य रूपोंका अवलोकन-निरीक्षण करनेके बाद संध्या होते-होते हम लोगोंने अपने आपको कला और जीवन-वाहिनी इन धाराओंके आदि-स्रोत गुरुदेवके निकट पाया। सूर्यास्तकी रक्तिम रश्मियोंसे आलोकित, पलाशके लाल-लाल फूलोंसे सुशोभित और मधुर सुरभि लुटानेवाले पुष्पोंसे सुबासित उनकी मिट्टीकी साधारण-सी कुटिया जैसे स्वयं मुँह बोल रही थी कि वह क्या है ? उसके भूरे कलेवरको चारों ओरसे आच्छादित किए नीलाकाश जैसे उसके भाग्यपर मुग्ध हो धीरे-धीरे मुस्करा रहा था। और उस कुटियाकी सारी शोभा सिमटकर एक कुर्सीपर गुरुदेवका रूप धारणकर आसीन थी। रजत-केशराशिके हिम-किरीट-से सुसज्जित उनका विशाल उन्नत सिर और नैसर्गिक तेजसे दिपदिपाता उनका सुखमंडल जैसे जीवनकी मूक विवशता और जीर्णताको चुनौती दे रहे थे। कोमल स्निग्ध स्वरमें महाकवि बोले –'मेरे लिए ये सामनेके पेड़, पक्षी, आकाश ही क्या कम है ? इस पलाशपर नित्य कई

१. हिन्दी-भवनका निर्माण तब तक नहीं हुआ था, इसीलिए यहाँ उसका नामोल्लेख नहीं किया गया है। —लेखिका

मैनाएँ आती रहती हैं। एक लँगड़ी मैना भी है, जो आज नहीं आई...।'

उस समय सम्पूर्ण देहमें चिर आनन्दसे जो पुलक भर आया था, उसे मेरी मूक वाणी क्या कहती ?[२] कविके रोम-रोमसे, उनकी प्रत्येक बातसे, शान्तिनिकेतनकी चप्पा-चप्पा ज़मीनसे जैसे उनकी वाणी मुखरित हो रही थी। नहीं जानती, स्वर्ग कहाँ है और उसकी सुख-शांति कैसी होगी ; पर क्या वह कविके इस भू-स्वर्गसे भी बढ़कर है? जिसका हर पेड़ कविताका मूक प्रतीक है, जिसका हर पक्षी मधुर संगीतका मस्त संदेशवाहक है, उस शान्तिनिकेतनको क्या कहूँ ?

प्रातःकाल बहुत सबेरे वृक्षों और झाड़ियोंसे संकुल भूमिपर वायु-सेवनके लिए जाते समय एक ओरसे आनेवाली किसी अत्यन्त मधुर वाद्य-यन्त्रकी-सी आवाज़ सुनकर मैंने विस्मयपूर्वक जब उधर देखा, तो ऐसा जान पड़ा, मानो कोई वृक्षोंमें छिपा हुआ संगीतज्ञ आलाप ले रहा है। किन्तु बहुत खोज करनेके बाद मैंने देखा कि वह संगीतज्ञ है देवदारके झुरमुटमें से गानेवाला एक पक्षी ! न मालूम ऐसे कितने पक्षियोंने शान्तिनिकेतनके उस कवित्वमय वातावरणको संगीतमय बना रखा था।

× × ×

उस दिन कलकत्तेमें सर्वधर्म-सम्मेलनकी धूम थी। गुरुदेवके भाषणकी सूचना पास और दूरसे इतने अधिक श्रोताओंको खींच लाई थी कि यूनिवर्सिटी हाल खचाखच भर गया। ज़रा देरसे पहुँचनेके कारण मुझे काफ़ी पीछे स्थान मिला, जहाँसे सामने ठीक-ठीक दिखाई नहीं पड़ता था। किन्तु ज्योंही गुरुदेवका भाषण आरम्भ हुआ, सब मन्त्रमुग्ध होकर सुनने लगे। लाउड-स्पीकरमें से आनेवाली उनकी आवाज़से ऐसा भ्रम होता था, मानो वह किसी मानवकी आवाज़ नहीं है। मैं मानो कोई स्वप्न देख रही थी और न मालूम कब और कैसे मैं उस कोलाहलमें से खिंचती हुई आगे निकल आई !

वह दृश्य कितना भव्य था ! संसारके सभी प्रमुख देशोंके आध्यात्मिक सन्देश-वाहकोंके बीच जगमगाते हुए आसनपर बैठे शुभ्र-स्वच्छ खादीकी सादी पोशाक और पीतवर्ण उत्तरीय धारण किए धवल केश-राशि-युक्त देदीप्यमान मुख-मण्डलवाले गुरुदेवको देखकर आदि-गुरु वाल्मीकि अथवा कुल-गुरु वशिष्ठकी याद हो आती थी। सभी श्रोताओंके कान उनकी सुधामयी वाणी और नेत्र उनकी प्रतिभा-प्रदीप्त मुखश्रीका पान करनेमें संलग्न थे। मैं भी कोई एक घंटे तक आँखें मूँदे उस पुनीत स्वरको हृदयंगम करनेकी अपनी उत्कट लालसाको पूर्ण करती रही। उनका भाषण कितना कवितामय था, उसके एक-एक शब्दसे कितनी प्रेरणा और प्रभाव झलक रहा था, यह सुननेवाले ही जानते होंगे। लोगोंपर उनके भाषणका क्या असर हुआ, यह कहना तो आसान नहीं है ; पर उसे सुनकर मुझे रोमाँ रोलाँकी निम्न पंक्तियोंका स्मरण हो आया :—

"A spark darting from another soul is enough to transmit the Promethean fire to the waiting soul."

—अर्थात् किसी आत्मामें रचनात्मक कार्यके लिए आग जगानेको दूसरी आत्मासे आनेवाली एक चिनगारी ही काफ़ी है !

भाषण समाप्त हो गया। लोग अपने-अपने घर चल दिए। मैं दुबारा उनके दर्शन करनेके ख़यालसे ज़रा रुक गई। कुछ ही क्षण बाद जब मैंने देखा कि वे झुकी हुई कमरसे एक आदमीका सहारा लेकर मोटरकी ओर जा रहे हैं, तो एक अज्ञात वेदना एवं आशंकासे रोमांच हो आया !

× × ×

गृहस्थीके दैनिक कार्यक्रममें व्यस्त, अपने कमरेमें से इधर-उधर जाते हुए, जब कभी मैं दीवारपर टँगे गुरुदेव द्वारा आलेखित उस रेखा-चित्रके पास जा खड़ी होती हूँ, तो उसके नेत्रोंका भाव जैसे मेरे जीवन-चक्रको क्षणभरके लिए थाम लेता है ! मैं जैसे अपनी सारी सुध-बुध भूलकर निश्चल खड़ी-खड़ी निर्निमेष दृष्टिसे उसे देखने लगती हूँ। परन्तु उस गहन भावमें निहित महोदधिके हृत्तलसे प्रतिपल उठनेवाले करुण संगीत, धराके हरित तृणोंसे लेकर सुदूर किसी नक्षत्र-लोकसे भी परे छाई हुई अविरल शान्ति,

२. इस अवसरपर गुरुदेवसे एक घंटे तक जो बातचीत हुई, उसका विस्तृत विवरण पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीने अपने मार्च, १९३६ के 'विशाल भारत' में प्रकाशित लेखमें दिया है। इसलिए पुनरावृत्तिके खयालसे उसे जान-बूझकर यहाँ नहीं दिया गया। —लेखिका

अशेष सौन्दर्य, ऋतु-ऋतुके प्रतिपल तथा विश्वके अणु-अणुसे स्पन्दित अनन्त प्रेम और वैराग्य-रंजित उस सैकतको स्पर्श करने तककी क्षमता मुझ क्षुद्रमें कहाँ? ऐसा जान पड़ता है, मानो प्रकृति-माताने इन निगूढ़ आनन्दमय रहस्योंके उद्‌घाटनका वरदान केवल अपने वरद पुत्रोंको ही प्रदान किया है!

विश्वकवि आज नहीं रहे; पर ऐसा लगता है, मानो युग-युगसे पाली हुई मानवकी चिर-व्यथा, चिर-आनन्द और चिर-सौन्दर्यकी चिर-पिपासाको भारत-भूमिपर जन्मे इस कविकी वाणी सिंचित करती चली आई है। हृदयके शत-शत खण्डकर आज और भी सरल-सहज रूपमें सम्पूर्ण मानवताके प्रतिनिधि बन रवीन्द्रनाथने उस महान् शक्तिके प्रति अपनी अमर वाणीमें आत्म-निवेदन किया है। यह उनकी अखण्ड साधनाका ही परिणाम है कि विश्वके असंख्य प्राणी किसी अँधेरे कोनेमें पड़े-पड़े भी आज नवजीवनका आलोक जलानेमें सफल हुए हैं और न मालूम कब तक उसे जलाते रहेंगे! उस चरम सुसंस्कृत मानवके विकसित रूपका जो स्थान मानवताके मन्दिरके जिस सिंहासनपर आसीन है, शब्दोंके आवरणसे उस निष्ठामें कहीं तनिक भी इधर-उधर हो जाय, इस आशयसे किंचित कथन भी अपेक्षित नहीं है।

जब कभी मैं दरिद्रकी निधिकी भाँति उस सौन्दर्य-पुंज कविके पार्थिव अवशेष—चित्र—को अपनी झोलीमें लेकर बार-बार सतृष्ण नेत्रोंसे निहारती हूँ, तो उसके मधुर स्वरको स्मरणकर गौरवान्वित हो कह उठती हूँ:—

"गाए आमार पुलक लागे,
चोखे घनाय घोर।" (गीतांजलि)

५१६०, कनाट सर्कस, नई दिल्ली ]

# प्रश्न

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बाप श्मशानसे घर लौटा।

सात वर्षका लड़का—उघाड़े बदन, गलेमें सोनेका तावीज—अकेला गलीवाले जँगलेके पास खड़ा था।

क्या सोच रहा था, उसे खुद नहीं मालूम।

सवेरेकी घाम सामनेवाले नीमकी फुनगीपर दिखाई देने लगी;

अमिया बेचनेवाला, गलीमें आवाज़ देता हुआ निकल गया।

बापने आकर लल्लाको गोदमें लिया; लल्लाने पूछा—"मा कहाँ है?"

बापने ऊपरकी ओर सिर उठाकर कहा—"भगवानके पास।"

× × ×

रातको, शोक-सन्तप्त बाप, सोते-सोते क्षण-क्षणमें रोने लगा—आँखोंमें आनेवाले आँसू छातीकी छातीमें ही घुमड़-घुमड़कर रह गए।

दरवाज़ेपर टिमटिमाती हुई लालटेन है, दीवारपर छिपकलीका जोड़ा।

सामने खुली छत है; मालूम नहीं, कबसे लल्ला वहाँ आकर खड़ा है।

चारों तरफ़ बत्ती-बुझे मकान मानो दैत्यपुरीके पहरेदार-से खड़े-खड़े सो रहे हैं।

लल्ला उघड़े-बदन खड़ा-खड़ा ऊपर आकाशकी ओर एकटक देख रहा है।

उसका भटका हुआ मन किसीसे पूछ रहा है—"भगवानके पास जानेका रास्ता किधर है?"

आकाश उसका कोई जवाब नहीं देता;

सिर्फ़ तारोंमें गूँगे अन्धकारके आँसू चमक रहे हैं।

अनु०—धन्यकुमार

# रवीन्द्रनाथके उपन्यास

श्री कपिलदेवसिंह, बी० ए०

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्वके एक प्रमुख उपन्यास लेखक थे। बँगलामें ही क्या आज भारतीय साहित्यमें भी उनकी टक्करका कोई औपन्यासिक नहीं है। बँगलामें अगर उनसे कोई होड़ लेनेवाला था, तो वे थे शरच्चन्द्र ; मगर शरच्चन्द्रके उपन्यास एकरस हैं और रवीन्द्रनाथके वैचित्र्यपूर्ण। शरत्के उपन्यास-कौशल तथा उपन्यास-स्वरूपकी झलक रवीन्द्रके 'योगायोग' एवं 'चार अध्याय'में देखनेको मिलती है। 'योगायोग'में यदि हम शरत्की-सी पारिवारिक वेदनाके मंथनका करुण छाया-चित्र देखते हैं, तो 'चार अध्याय'में उनकी-सी क्रान्ति-प्रिय रहस्योन्मुखी प्रवृत्तिकी मनोरम झाँकी पाते हैं। शरत्में व्यापकता अधिक है और रवीन्द्रमें तार्किकता ; पर रवीन्द्र अपनेको शरत्की मनोवृत्तिमें रख सकते हैं—शरत् नहीं। अस्तु, बँगला-साहित्यमें रवीन्द्रनाथका उपन्यास-लेखककी दृष्टिसे भी एकच्छत्र राज्य था। मराठी और गुजराती साहित्यके प्रसिद्ध एवं प्रतिनिधि औपन्यासिक भी उनकी प्रभाके समक्ष नहीं टिक सकते। हिन्दी-साहित्यके औपन्यासिकोंको तो रवीन्द्रनाथके उपन्यासोंसे काफ़ी प्रेरणा मिली है। कितने ही विदेशी उपन्यासोंमें—जैसे अंगरेज़ लेखक एल्डस हक्सलेके 'क्रोम येलो' उपन्यासमें—रवीन्द्रनाथकी स्पष्ट छाप-सी प्रतीत होती है। फ्रेंच लेखक रोमाँ रोलाँने तो अपने-आपको उनके उपन्यासोंका भक्त माना है। इन सभी बातोंपर विचार करनेपर हमें यह बहुत खलता है कि रवि बाबूके उपन्यासोंका काल-क्रमबद्ध संक्षिप्त परिचय अभी तक हिन्दी-संसारके सामने नहीं रखा गया, जब कि हिन्दीवाले स्वयं उनके इतने ऋणी हैं!

रवीन्द्रनाथका पहला उपन्यास है 'करुणा', जो 'भारती' में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था ; लेकिन वह पुस्तकाकार कभी नहीं छपा। उनका दूसरा उपन्यास है 'बो ठाकुरानीर हाट', जिसका हिन्दीमें 'विचित्र वधू-रहस्य' के नामसे अनुवाद हो चुका है।

'बो ठाकुरानीर हाट'

कथावस्तु—उदयादित्य, उसकी पत्नी सुरमा तथा उसकी बहन विभा अपने पिता प्रतापादित्यके विरुद्ध आवाज़ उठाना चाहते हैं। युवराज किसी तरह राजाके कोपानलसे वसन्तरायके प्राणकी रक्षा करता है। राजा रामचन्द्रराय—विभाका पति—अपनी मूर्खतावश प्रतापादित्यसे प्राणदण्डकी आज्ञा पाता है ; मगर उदयादित्यके कौशलसे वह भी बच निकलता है। सुरमा रुक्मिणी (खल नायिका) के षड्यंत्रोंका शिकार बन तड़पकर जान दे देती है। इधर युवराज कारागारमें पिंजरबद्ध पक्षीकी भाँति छटपटाता है। सीताराम किसी प्रकार उसे मुक्त कराता है। वह वसन्तरायके साथ रायगढ़ चला जाता है ; परन्तु फिर वहाँसे पकड़कर मँगाया जाता है। अन्तमें युवराज उत्तराधिकार त्यागकर तथा विभा परित्यक्ता होकर काशीवासी हो जाते हैं।

इसमें रवि बाबूने बंकिम बाबूके कौशलको अपनाया है, क्योंकि उन दिनों वे उनकी प्रतिभासे प्रभावित दीखते हैं। कर्तव्य एवं प्रेमको चित्रित करनेवाला यह एक कल्पना-रंजित अर्द्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। इसके कथोपकथनमें मनोवैज्ञानिकताका सफल चित्रण हुआ है। उदाहरणार्थ सीताराम जब युवराजके दोषको छिपानेका प्रयत्न करता है, तब वह जल्दबाज़ीमें उसे ही स्वीकार कर लेता है। इसमें मानव-प्रकृति (अन्तः) तथा मानवेतर प्रकृति (बाह्य) का रम्य तादात्म्य दिखलाया गया है—जैसे पचीसवें परिच्छेदमें विभाकी विरहजन्य मनोदशाकी मीमांसाका वर्णन। इसे एक उत्कृष्ट दुःखान्तिका कह सकते हैं। उपन्यास-लेखकको किसीकी भी मृत्युसे संकोच नहीं है और न उसे झूठी सहानुभूतिवश अन्ततोगत्वा विभाका पति-मिलन देखना ही अभीष्ट है।

राजपूतानेके इतिहासकी पुनरावृत्ति बंगालकी कोमल भूमिपर इस विचारसे की गई है कि पाठक मुग़ल-कालीन भारतका करुण एवं मार्मिक दिग्दर्शन करते हुए अपनी प्राचीन गौरव-गाथाको हृदयंगम करनेकी चेष्टा करें, जिसके फलस्वरूप हिन्दू संस्कृतिकी रक्षा हुई। (तुलना—भीमसिंहका जयसिंहके लिए राज्य त्याग और और उसका आदर्श।)

'राजर्षि'

रवीन्द्रनाथका तीसरा उपन्यास है 'राजर्षि'। यह और 'मुकुट' नामक कहानी बालोपयोगी हैं। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है राजा गोविन्द माणिक्य हासीकी मृत्युसे संतप्त होकर अपने राज्यमें पशुबलि बन्द करा देता है। पुरोहित रघुपति इस आज्ञाका विरोध करता है और नक्षत्रराय—राजाका भाई—एवं जयसिंहके द्वारा राजाकी हत्या कराना चाहता है। जयसिंह अपना बलिदान कर देता है। नक्षत्रराय राजाके प्रिय पात्र ध्रुवको देवीपर चढ़ाना चाहता है; पर राजा रघुपति तथा नक्षत्ररायको ठीक मौक़ेपर पकड़ लेता है और उन्हें निर्वासन-दण्ड देता है। ये दोनों राज्यसे बाहर जाकर शुजाके साथ षड्यन्त्र रचते हैं और राजा गोविन्द माणिक्यको राजगद्दीसे उतार देते हैं। आगे चलकर रघुपति पश्चात्ताप करता है और बिल्वन द्वारा परामर्श पाकर राजा आराकानसे अपने राज्यको लौट आता है तथा शुजाका नाम अमर कर देता है।

इसमें भी बंकिमकी परिपाटीका अनुकरण है। प्राकृतिक वर्णनकी पटुताकी पराकाष्ठा द्वारा कथा-रसका द्रवीकरण ( dilutation ) होता है। खड्गसिंह और पीताम्बरके उपयोगसे कथा-विस्तारकी प्रयत्नशीलता लक्षित होती है। नाटकीय गति लानेके लिए उपन्यासकार आकाश-भाषित या नियति-पात्रके स्थानपर कहीं-कहीं ध्रुवका प्रयोग करता है—जैसे बिल्वन जब राजाको कर्तव्य-पालनार्थ नक्षत्ररायका स्वहस्तसे बध करनेके लिए उकसाता है, तब ध्रुव खेलते-खेलते कह उठता है—'छिः ऐसी बात नहीं कीजिए' आदि।

औरंगज़ेब तथा उसके दूसरे भाइयोंकी लड़ाईके समयकी एक झलक इस पुस्तकमें मिलती है। प्रताप-सिंह तथा शक्तसिंहके भ्रातृ-द्वेषका एक युगके बाद बंगालके सामन्तोंपर प्रभाव और जीव-हत्या-विरोधी आन्दोलनके पुनरुत्थानका प्रयत्न—इन दोनों विषयोंका आभास देना ही इस उपन्यासका लक्ष्य है। अपने 'बलिदान' शीर्षक नाटकमें रवि बाबूने इसे एक विकसित कलात्मक स्वरूप प्रदान किया है, जो दर्शनीय है।

'चोखेर बाली'

'चोखेर बाली' उनका चौथा उपन्यास है। वास्तवमें इसीसे उनकी वैयक्तिक उपन्यास-कलाका विकास आरम्भ होता है। इसका हिन्दी-अनुवाद 'आँखकी किरकिरी'के नामसे हुआ है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—महेन्द्र अपनी शादी विनोदिनीसे न करके आशासे करता है; मगर परिस्थितिमें पड़कर वह विनोदिनीको प्यार करने लगता है। उस प्रेम-व्यापारमें उसकी मा अनजान रूपसे सहायक होती है तथा उसका मित्र बिहारी इसका विरोध करता है। किन्तु विनोदिनी बिहारीसे प्रेम करने लगती है। बिहारी उससे विवाह करनेको प्रस्तुत हो जाता है; पर विनोदिनी सँभल जाती है। परिणाम-स्वरूप महेन्द्र चारों ओरसे लड़-झगड़कर निराश हो जाता है और आशासे पुनः मिलनेको चल पड़ता है।

उपन्यासकार इसमें पूर्वाभासका स्थल-स्थलपर उल्लेख करता है। उदाहरणार्थं द्वितीय परिच्छेदमें वधू-निरीक्षणके समय महेन्द्र आशाके कण्ठ-स्वरमें करुणाका उद्रेक पाता है तथा आगे चलकर अपनी मासे कहता है—'कुटुम्बको सुख न हो, पर मुझे दुःख न होगा।' पर जैसा कि हम पीछे देखते हैं, आशा और कुटुम्बको काफ़ी दुःख उठाना पड़ा। इस उपन्यासमें संतुलन-योजनाका भी उचित ध्यान रखा गया है, जैसे यदि विनोदिनी राजलक्ष्मी—महेन्द्रकी मा—के साथ पहले-पहल कलकत्तेमें आती है और कलहका कारण बनकर अपने गाँवको विदा होती है, तो पुनः वह महेन्द्र द्वारा कलकत्ता वापस लाई जाती है। कथानकके अन्तमें रवि बाबूने कवि-न्याय (Poetic justice) के कौशलको भी अपनाया है—जैसे प्रयागमें भी जब महेन्द्र विनोदिनीके प्रेमको नहीं प्राप्त कर सका और अनायास ही बिहारीका वहाँपर आगमन हो गया, तब उपन्यासकारने उपन्यासको दुःखान्त न करनेके विचारसे महेन्द्रकी चित्त-शुद्धिकी ओर ध्यान देकर उसके हृदयको विनोदिनीकी ओरसे मोड़ लेता है और बिहारीकी शादी भी विधवा विनोदिनीसे नहीं होने देता है, और इस तरह हिन्दू-परम्पराकी रक्षा करता है।

इस पुस्तकमें स्त्री-मनोविज्ञानका सफल विन्यास हुआ है। माताका स्नेह, उसका अपनी पुत्रवधूसे द्वेष तथा अन्ततः अपनी ग़लतीपर पश्चात्ताप करना इत्यादि जैसी मनोवृत्तियोंका इसमें सुन्दर संचरण पाया जाता है। इसमें प्रेमके प्रत्येक अंग-प्रत्यंगका विश्लेषण किया गया है। परकीया प्रेमकी तीव्रता, शरीरके मिलनकी आकुलता, उसके निरोध-स्वरूप यौवनका वैपरीत्य ( Sex-perversion)—

जैसे, महेन्द्रका विनोदिनीका पैर दबाना—स्त्रीका पुरुषत्वके प्रति आत्म-समर्पण और उसकी दुर्बलताके प्रति अपमानका यथेष्ट प्रदर्शन प्रभृति प्रेम-शास्त्रके अन्तर्गत सत्यको उपन्यास-लेखकने सुगमतापूर्वक प्रत्यक्ष कर दिखाया है। सूत्र-रूपमें इसका तात्पर्य है, आँखें फाड़-फाड़कर देखनेसे बहुधा उनमें किरकिरी पड़ जाती है; पर आँसूके चल पड़नेपर वह सहज ही निकल भी जाती है।

'नौका डूबी'

रवि बाबूका पाँचवा उपन्यास है 'नौका डूबी'। इसका हिन्दी-अनुवाद 'आश्चर्य घटना' नामसे हो चुका है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—रमेश हेमनलिनीको प्यार करता है; किन्तु रमेशके पिता ब्रजमोहन बाबू उसकी शादी किसी दूसरी लड़कीसे कर देते हैं। संयोगवश विवाहके दूसरे ही दिन घर लौटते समय वह लड़की नावके साथ डूब जाती है और उसकी जगह कमला नामकी एक दूसरी लड़की उसके हाथ लगती है। कमला रमेशको अपना पति समझती है; पर वह उसे पर-पत्नी ही समझता है। इधर रमेशका हेमसे फिर मेल-जोल बढ़ता है। उसका पड़ोसी अक्षय हेमके पिता अन्नदा बाबूसे उसके विवाहकी सारी कथा कह देता है। फलतः रमेशको वहाँसे हट जाना पड़ता है। इधर रमेश कमलाको बहुत दिनों तक भ्रममें न रख सका। परिस्थितिवश कमलाको अपने पति नलिनाक्षका पता लग जाता है। रमेश हेमके भाई योगेन्द्रसे सभी बातें साफ़-साफ़ कहता है। अन्ततोगत्वा नलिनाक्ष और कमला मिल जाते हैं; मगर हेम और रमेश वियुक्त ही रहते हैं।

औत्सुक्यकी एकता ( Unity of interest ) क़ायम रखनेके लिए उपन्यास-लेखक दो समानान्तर कथाओंकी सृष्टि करता है, ताकि एककी घटनाओंको जाननेके समय दूसरेकी घटनाओंको जाननेका कौतूहल बना रहे। उदाहरणार्थ रमेशकी कथा और पीछे चलकर नलिनाक्षकी कथाका सृजन। चूँकि यह उपन्यास घटना-प्रधान है, अतएव ऐसा करना उचित है। परन्तु कार्यकी एकता ( Unity of action ) पर भी रवि बाबूका ध्यान है, जिससे दोनों कथा-स्रोतोंमें व्याघात न उत्पन्न होकर दोनों आपसमें मिलकर अर्थात् प्रासंगिक न रहकर आधिकारिक बन जाते हैं। इससे कथाका प्रधान प्रवाह शिथिल न रहकर प्रबलतर हो जाता है। इसमें उपसंहार (Prologue) न देकर एवं उसकी ओर पूर्व ही संकेत करके उन्होंने यद्यपि प्रभावकी एकता ( Unity of impression ) पर ध्यान नहीं दिया है; पर इससे पाठकोंकी जिज्ञासा-प्रवृत्तिका शमन न होकर उन्हें सोचनेका अधिक अवसर मिला है।

इस उपन्यासकी विशेषता है वासना-रहित दो विरोधी यौनवालोंकी मित्रता—यानी 'प्लेटोनिक' बन्धुत्वकी सुगमताकी ओर संकेत करते हुए उपन्यासकारने प्रवृत्ति-मार्गमें विलासकी प्रचुर सामग्रियोंके रहते हुए भी निवृत्ति-मार्गका अवलम्बन कराकर चरित्रोंमें चरित्र-बलकी पुष्टि की है। उसने नियंत्रित एवं संयमयुक्त सहज सरल कोमल जीवनका वाद-विवाद, हास-परिहास तथा सुख-दुःखके बीच विकास दिखाकर उसके माहात्म्यकी श्रेष्ठताको प्रतिपादित किया है। रमेश, नलिनाक्ष, हेम, कमला, क्षेमंकरी, अन्नदा, चक्रवर्ती तथा विपिन सभीके सभी अपूर्व हैं।

शरत् बाबूके 'गृहदाह' में भी हम इसी क्षुब्ध वातावरणका—ब्राह्म-समाजमें हिन्दू परिवारका प्रवेश—एक चित्र पाते हैं, यद्यपि दोनोंकी अभिव्यक्तिकी परिपाटी भिन्न है—जैसे शरत् यदि अन्तर्द्वन्द्वोंकी झाँकी मात्र दिखाते हैं, तो रवीन्द्र उनका सूक्ष्म विश्लेषण भी करते हैं।

'गोरा'

रवि बाबूका छठा उपन्यास है 'गोरा', जिसका हिन्दी-अनुवाद 'गौरमोहन' नामसे हुआ है। इसकी कथावस्तु है—विनयका परिचय परेश बाबूके परिवारसे दुर्घटनावश हुआ; पर गौरमोहनका उसके पिताके कृष्णदयाल बाबू ज़रिये। विनय ललिताकी ओर आकृष्ट हुआ और सुचरित्रा (सुशीला) गौरमोहनकी ओर। विनयने शशिमुखी ( गौरमोहनके भाई महिमकी पुत्री ) से विवाह न करके ललिताको पत्नी बनाया। सुचरित्राने उधर हरान बाबूको ठुकरा दिया। गौरमोहनने देश तथा जाति-सेवाका व्रत लिया था। जेलसे उचित प्रसाद लेकर लौटनेपर उसने हिन्दू-धर्मानुसार प्रायश्चित्त करना निश्चित किया। उसके शिष्य अविनाशने उस तरफ़ काफ़ी रुचि दिखलाई तथा शशिमुखीसे विवाह करना भी स्वीकार किया। दूसरी ओर हरिमोहिनी ( सुचरित्राकी मौसी ) ने सुचरित्राको चिन्तित पाकर उसकी शादी कैलाशसे करनी चाही; पर न कर सकी। इतनेमें गौरमोहनको अपने जन्मका वृत्तान्त मालूम हुआ। वह परेश बाबूसे मिलने गया और वहीं

उसने सुचरित्राके साथ परेश बाबूको प्रणाम किया, तदुपरान्त घर आकर अपनी मा आनन्दमयीसे आशीर्वाद लिया।

गौरमोहन पाठकोंसे तब परिचित होता है, जब उसे सतीश विनयके कमरेके फोटोमें देखता है। मगर जब विनयको ललितासे प्रेम हो जाता है, तब गौरमोहन कथानकसे ग़ायब हो जाता है—मात्र इसलिए कि वह विनयको शशिमुखीसे शादी करनेके लिए बाध्य न कर सके। जब ललिता तथा विनयका परिणय पक्का हो जाता है, तब गौरमोहन उन लोगोंके बीच फिर अचानक आ पहुँचता है। इधर जब गौरमोहन जेल जाता है, तब उधर हरिमोहिनी सुचरित्राके पास पहुँच जाती है और उसपर अपना प्रभाव जमाती है। मगर गौरमोहनके लौट आनेपर जब वह पुनः गौरमोहनसे प्रभावित होती है, तब तक कथानकमें कैलासका प्रवेश हो जाता है। लेकिन इससे कुछ नहीं होता। गौरमोहनके आगे सुचरित्रा नत रहती है। अन्तमें कृष्णदयाल तथा आनन्दमयीकी बातचीतसे पाठकोंको गोराके जन्मके विषयमें पूर्वसे ही कुछ-कुछ सन्देह होने लगा था, अब पक्का हो जाता है। अब सब जानते हैं कि गोरा उन दोनोंका पुत्र नहीं है। यह सब काम इतनी सफ़ाईसे होता है कि पाठक ज़रा भी नहीं ताड़ सकता है, इसमें भी उपन्यासकारका नैपुण्य है। पहले तो वह प्रेममें बढ़ावा देता है तथा विरोधी उपकरणको दूर हटाता है, फिर वह प्रेमसे डिगानेका प्रयत्न करता है और प्रश्रयार्थ विरोधी उपकरणको ला उपस्थित करता है; लेकिन अन्तमें प्रीतिकी जीतके पुरस्कार-स्वरूप प्रणयको परिणयमें परिवर्तित कर देता है। 'कौशलको छिपाना ही कला है' की उक्तिके अनुसार इस उपन्यासमें यह छिपानेकी क्रिया ही रवि बाबूका चातुर्य है।

इस उपन्यासके पात्रोंका चरित्र-चित्रण बड़ा ही स्वाभाविक और हृदयग्राही है। नायक गौरमोहन एक व्यावहारिक आदर्शवादी ठोस नवयुवक है। वह सिद्धान्त-वादी ही नहीं, वरन् एक सक्रिय लोक-सेवक है। उसके आदर्शकी रक्षा तब हुई, जब वह एक ग़रीब मुसलमान ख़ानसामेकी क्षतिपूर्त्तिके लिए एक टमटमवाले बाबूको पकड़ने तथा दण्ड देनेके लिए दौड़ता है तथा न्यायका पक्ष लेकर जब वह अपमानित लड़कोंके लिए जेल जाता है। वह हिन्दू-धर्मकी संकीर्णतासे 'रहस्योद्घाटन' (Untying the knot) के समय बहुत ऊँचा उठ जाता है। विनय गौरमोहनका अनुसरणकारी एक अन्यतम अभिन्न मित्र है। विनय विनय है। वह मानसिक अन्तर्द्वन्द्वोंका शिकार रहता है; पर श्रद्धा उसपर बराबर विजय प्राप्त करती है। फलतः उसका हीन परिज्ञान (Inferiority complex) मंद रहता है। उसके चरित्रका अवतरण गोराके चरित्रको पूर्णतः विकसित करनेके लिए ही हुआ है। सुचरित्रा अपने नामको सार्थक करनेवाली एक संयमी, निर्भीक, आज्ञाकारी एवं विदुषी लड़की है। उसके तर्क बड़े ही स्पष्ट एवं मार्मिक होते हैं। वह जिज्ञासु है और जिज्ञासा ही उसके जीवनका प्राण है। ललिता एक चंचल, गर्वीली, उदार एवं स्पष्टवादी लड़की है। उसका नारीत्व स्त्री-सुलभ धर्मोंसे ओत प्रोत है। वह सांसारिक संघर्षोंसे लोहा लेती है और अपने पुरुषोचित गुणोंसे विरोधी शक्तियोंको—जैसे हरान बाबू तथा बरदा-सुन्दरी (अपनी माँ) को—छिन्न-भिन्न कर देती है। परेश बाबू सुरेन्द्र बाबूके 'पथेर आलो'के ज्ञान बाबूकी प्रतिमूर्ति है। पुस्तकके सारे चरित्रोंको उन्हींसे आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती है। उनका शान्त एवं सौम्य व्यक्तित्व सबको मोह लेता है। उनसे बंगाल ही नहीं, सारा भारतवर्ष गौरवान्वित है। सतीशका बाल्य-सुलभ चापल्य परिवारके मनोरंजनकी सामग्री है। लावण्य-सुधीरका जोड़ा तथा लीलाका पठन-पाठन भी मधुर है।

ब्राह्म-समाजकी संकीर्णताको हिन्दू-धर्मकी उदारतामें अन्तर्लीन कर देना ही प्रस्तुत पुस्तकका मुख्य ध्येय मालूम होता है। 'नौका डूबी' में जिस समस्याको छुआ गया था, उसे यहाँ सुलझाया गया है। शुरू-शुरूमें कथनो-पकथनमें बातचीतकी भाषाका रवि बाबूने यहीं प्रयोग किया है।

### 'घरे बाहिरे'

रवि बाबूका सातवाँ उपन्यास है 'घरे बाहिरे'। हिन्दीमें इसका अनुवाद 'घर और बाहर' नामसे प्रकाशित हुआ है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—निखिलेश अपनी पत्नी विमलाको घरकी संकुचित सीमासे निकालकर बाहरके विस्तृत संसारसे परिचित कराना चाहता था। इतनेमें उसके मित्र संदीपका—जो स्वदेशी-प्रचार-आन्दोलनका मुखिया था—उसके यहाँ आना हुआ। विमला उसकी शक्ति तथा प्रतिभापर मुग्ध हो गई। धीरे-धीरे संदीप
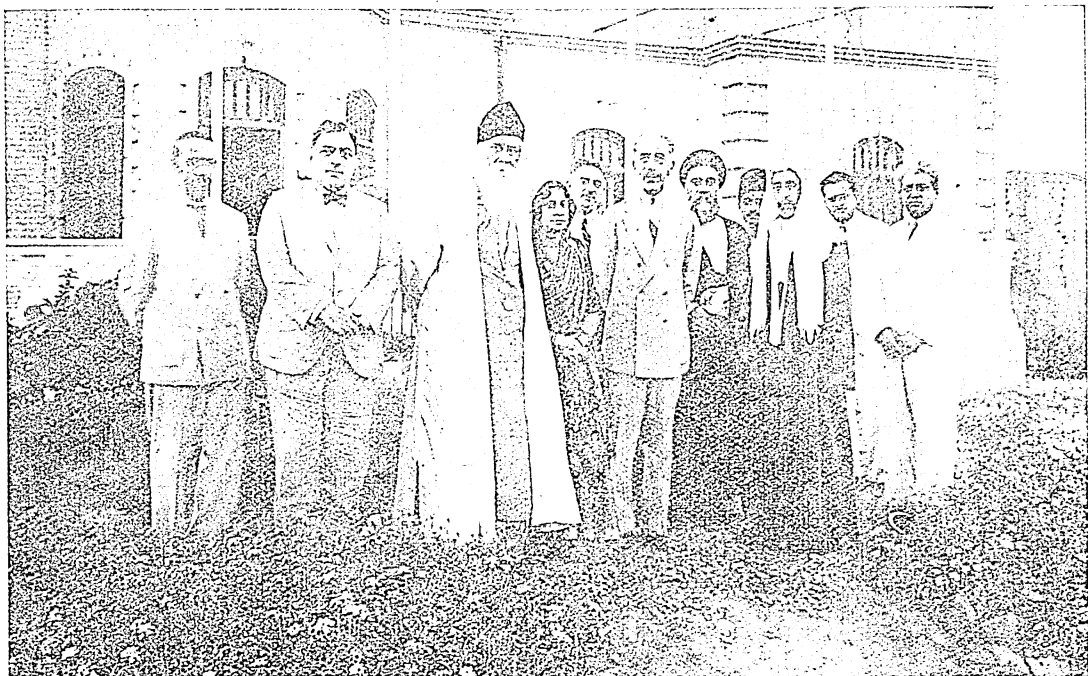
बग़दादमें श्री जाफ़रपाशा और शाह फैज़लके साथ लिया हुआ कविका चित्र
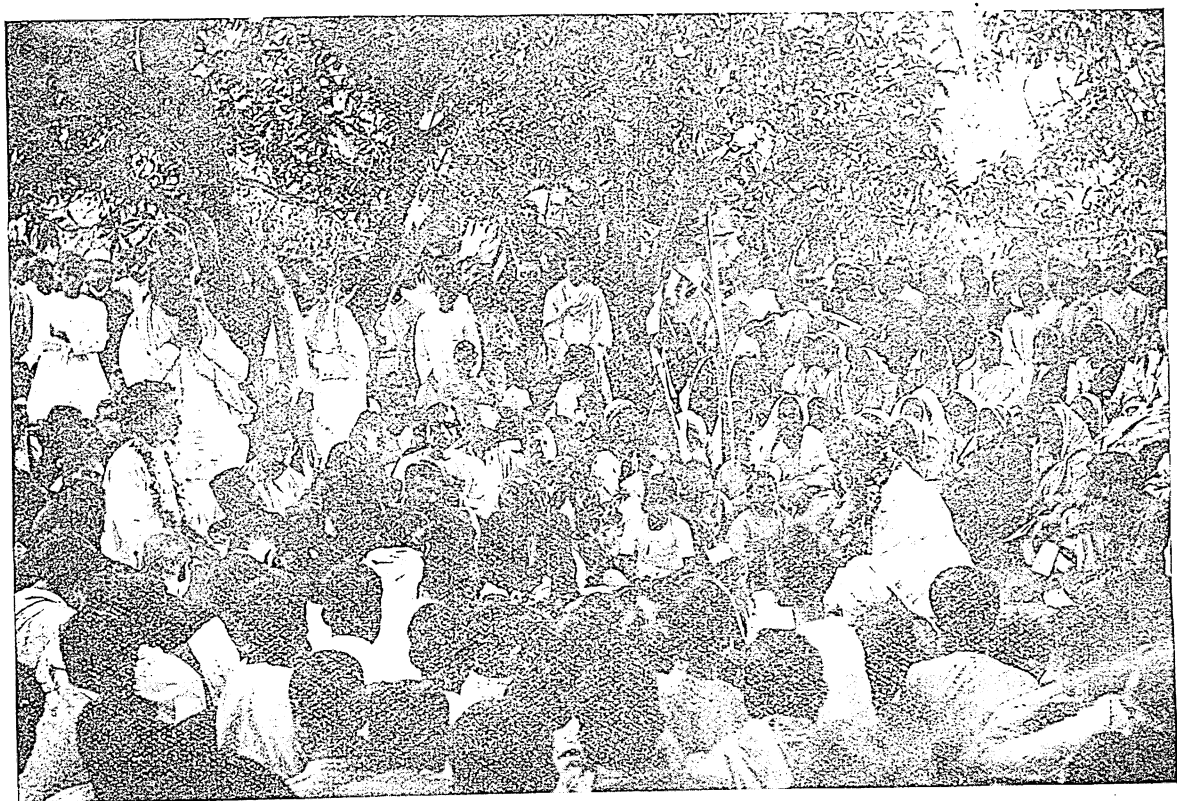
'नोबेल-पुरस्कार' मिलनेपर शान्तिनिकेतनमें स्व० जगदीशचन्द्र वसुकी अध्यक्षतामें की गई कविकी अभ्यर्थनाका एक दृश्य।
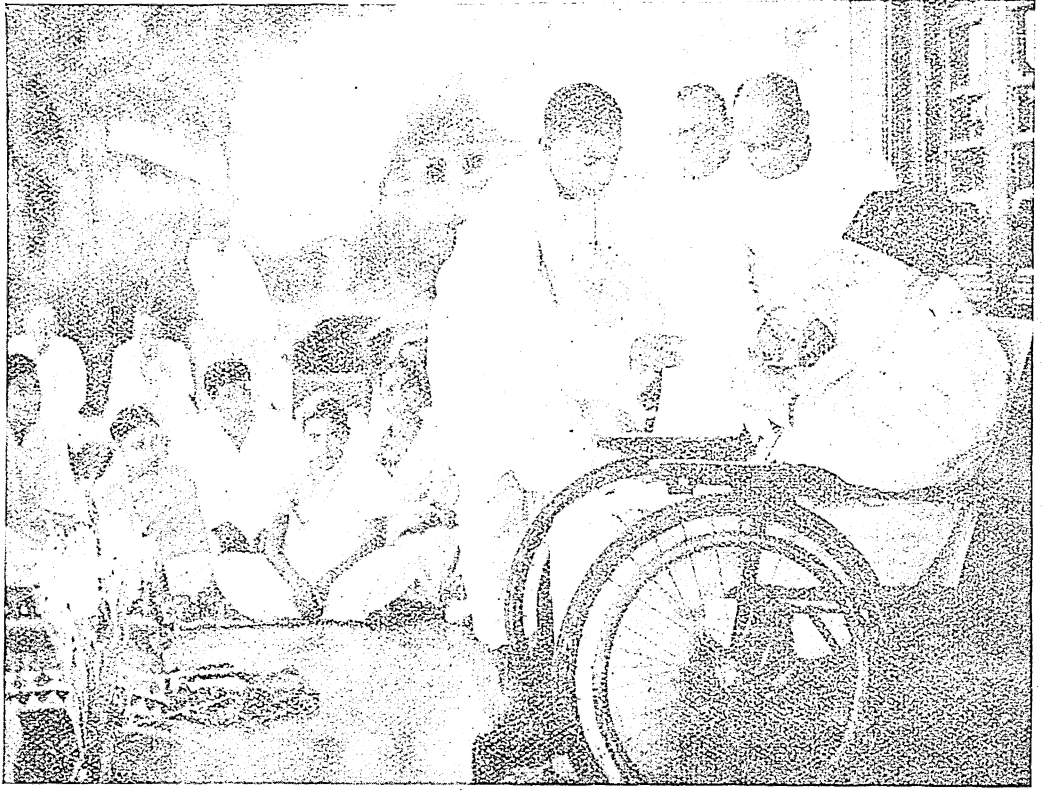
त्रिपुरा-नरेशकी ओरसे कविको 'भारत-भास्कर' की उपाधिसे सम्मानित किया जा रहा है

रवीन्द्रनाथका अन्तिम दर्शन ( ७ अगस्त, १९४१ )।

उसे अपने वशमें करने लगा। किन्तु मँझली रानी इसे भाँप गई। चन्द्रनाथ बाबूने निखिलको उसकी ओरसे सावधान रहनेका आदेश दिया। फिर भी निखिलने विमलाको हतोत्साह नहीं किया। इधर विमलाकी प्रशंसा करके संदीपने उसके ज़रिए स्वदेशी-प्रचारमें जान डालनेका प्रयत्न किया। विमलाने ६ हज़ार रुपये चुराकर संदीपकी सहायता की; पर संदीपके शिष्य अमूल्यने उन रुपयोंको लेना अच्छा नहीं समझा। इसी बीच चोरी खुल गई; पर निखिलने उसे दबा देना चाहा। संदीपको कलकत्ते चला जाना पड़ा। अन्तमें सांप्रदायिक दंगेमें, जिसे उन लोगोंने सुलगा रखा था, निखिलको भारी चोट आई और अमूल्य मारा गया।

आत्म-कथाओंके संग्रह द्वारा उपन्यासकी वस्तुका निर्वाह होता है। तर्कपूर्ण वार्तालापोंके बीच पात्रोंके चरित्रोंकी झाँकी परोक्ष रूपसे रवि बाबू दिखाते हैं। जहाँपर वे चरित्रोंके मनस्तत्वकी स्पष्ट मीमांसा नहीं कर पाते हैं—क्योंकि यह उनका अभीष्ट नहीं है, वे प्रत्येक चरित्रके व्यक्तित्वको रहस्यपूर्ण रखना चाहते हैं—वहींपर वे अन्तर और बाह्यकी बिम्ब-प्रतिबिम्ब झलक उहात्मक पद्धतिपर दिखलाते हैं। यथा—विमला जब अपने घरमें आप चोरीके अभियोगमें फँसना चाहती है, तब उसे ऐसा लगता है मानो समस्त तारागण उसकी कालिमासे डर-से रहे हों। वे सह-संयोग (Co-incidence) के संकेत द्वारा भी भीतर-बाहरके तादात्म्यको कभी-कभी अभिव्यंजित करते हैं। उदाहरणके लिए हम उसी दृश्यको ले सकते हैं। जिस समय विमलाका मन घूम-फिरकर चोरीकी ही घटनाके चारों ओर चक्कर काट रहा है, उसी समय यन्त्र-चालित ग्रामोफ़ोन बजने लगता है और दाई आकर उसकी सूचना देती है।

निखिल एक आदर्शवादी युवक है। परिस्थितिके अनुरोधसे उसे प्रयत्न-विस्तार तथा प्रयत्न-लाघवपर ध्यान देना पड़ता है। उसके सारे प्रयोग असफल सिद्ध होते हैं; पर वह अपनेको परमात्माके भरोसे छोड़ देता है और यही उसे अन्त तक बल प्रदान करता है। संदीप गौरमोहनका दूसरा पर्त्त है। उसका प्रेम समाज-भावमें घुला-मिला है। उसके कर्मक्षेत्रको विमलाका प्रवेश हलचलमय बना देता है। उसकी लालसा, ईर्ष्या एवं स्पर्द्धाके वशीभूत होनेपर और भी उग्र हो जाती है। उदाहरणतः अमूल्य और विमलाके एकनिष्ठ संभाषणको वह सन्देहकी दृष्टिसे देखता है और अन्तमें कलह खड़ाकर भाग जाता है। उसे हम एकदम कपटी भी नहीं कह सकते, क्योंकि उसकी देश-सेवाका मार्ग ही ध्वंसात्मक है। उपन्यास-शास्त्रकी दृष्टिसे उसे खल नायक कहा जा सकता है। विमला एक खुशामद-पसन्द स्त्री है; पर उसे अपने पतिमें भक्ति है। अन्तर्द्वन्द्वोंमें पड़ी-पड़ी जब वह ऊब उठती है और जब संदीपका प्रभाव उसपर से घट जाता है, तब उसकी नारी निखर उठती है। पंचू कर्मक्लान्त-शोषित जीवनका प्रतीक है। नारी अपने प्रांगणकी इन्द्राणी है। बाह्य संसारके कटु अनुभवोंकी उसे आवश्यकता है अथवा नहीं—इसी समस्याको हल करनेका यहाँ केवल यत्नभर किया गया है।

## 'योगायोग'

रवि बाबूका आठवाँ उपन्यास है 'योगायोग', जिसका हिन्दी-अनुवाद 'कुमुदिनी' नामसे पहले धारावाहिक रूपसे 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुआ और फिर 'विशाल भारत'-कार्यालय द्वारा ही पुस्तकाकार निकला। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—घोषाल और चट्टोपाध्याय वंशमें शुरूसे ही खटपट चली आ रही थी। दोनों आपसमें लड़-झगड़कर मटियामेट हो रहे थे कि घोषाल-वंशका नक्षत्र मधुसूदनकी उन्नतिसे चमक उठा। राजा मधुसूदनने चट्टोपाध्याय-वंशसे लड़की ली। विप्रदासकी बहन कुमुदिनी उससे ब्याही गई। उसने कुमुदपर तरह-तरहके अत्याचार किए। उसने उसके भाईको, जो उसका कर्ज़दार था, जली-कटी सुनाई तथा श्यामा-सुन्दरीको अपनी प्रेमिका बनाया। नवीन तथा मोतीकी माने कुमुदसे हमदर्दी दिखाई। किसी तरह वह अपने भाईके यहाँ चली गई और गड़बड़ी सुनकर भी लौटनेको राज़ी न हुई; पर जब उसे मालूम हुआ कि वह शीघ्र ही एक पुत्रकी मा होने जा रही है, तब उसे सब कुछ सहनेके लिए अपनी ससुराल आना ही पड़ा।

इस उपन्यासमें रवि बाबूकी कला थिरक उठी है। उपन्यासका आरम्भ अविनाश घोषाल—मधुसूदनका पुत्र—की बत्तीसवीं जन्म-तिथिसे होता है। किन्तु आरम्भके पूर्वका आरम्भ एक रम्य उक्तिसे होता है—संध्या समय जो दीप जलाए जाते हैं, उनके 'जलाने' की तैयारी सुबहसे ही होती है। इस प्रकार उपन्यासकारने विस्मृतिके गर्भमें छिपी हुई भूतकालीन कठोर कहानीका मर्मभेदी उद्घाटन ऐसे

समारोहके अवसरपर किया है। वह करुणा (Pathos) की तीव्रताको व्यापक बनानेकी चेष्टा चेतन मन (Conscious) को अर्द्धचेतन मन (Sub-conscious) से टकराकर करता है—जैसे, प्रथम समागमकी रात्रिमें जिस समय कुमुद दुःखके उधेड़-बुनमें लगी हुई थी, उसी समय उसे सड़कपर एक मतवालेका गाना और एक पिल्लेका आर्तनाद सुन पड़ा तथा जिस समय विप्रदास गम्भीर चिन्तामें निमग्न थे, उसी समय एक अख़बार बार-बार हवाके मर्मोछ्वाससे फड़फड़ा उठा। कहानीका परिवर्तन-स्थल (Turning point) कुमुदिनीका गर्भ-धारण है, जिसका पूर्वाभास मधुसूदनके इस विचारमें मिलता है कि उसे संतानवती मा बना दिया जाय। वह उपन्यासमें श्यामासुन्दरीका एक अपशकुनके रूपमें प्रवेश करता है और उससे काम निकालकर उसे फिर जहाँका तहाँ छोड़ आता है। मधुसूदनको क्षुद्र, रुक्ष और कठोर बनाकर वह उसके समनान्तर कुमुदको करुण, महान एवं संवेदनाशील बनाता है।

इस पुस्तकका शीर्षक सार्थक है। पृष्ठ ११ की यह पंक्ति कि 'जहाँ कार्य-कारणका योगायोग नहीं है, वहाँ तर्क नहीं किया जा सकता' सारे कथानकमें 'बीज-विन्दु' रूपसे परिव्याप्त हैं। कुमुद विवाहके पूर्व तथा पश्चात् ईश्वरमें भक्ति रखती थी और अपने पतिको ईश्वरका रूप समझती थी। उसके इस विश्वासमें तर्ककी क़तई गुंजाइश नहीं थी, इसीसे वह ईश्वरके भरोसे—'मेरे तो गिरधरगोपाल दूसरो न कोई'—जीवन-यापन कर रही थी। गर्भवती होनेपर—जब तक कि वह नहीं जानती थी कि वह गर्भवती है—उस विश्वासमें उसे विद्रोहात्मक रूपसे अश्रद्धा हो गई। पर अन्तमें जब वह जान गई कि वह गर्भवती है, उसका पुनर्विश्वास सजग हो उठा और वह उसी ओर ढुल पड़ी। कहनेका आशय यह है कि उसने कार्य-कारणके योगायोगपर भी विचार नहीं किया, जिसके फल-स्वरूप पारिवारिक चित्रपटपर उमड़ते-घुमड़ते वेदना-सिक्त रंगोंको रवि ठाकुरने अपनी तरल तूलिकामें भरकर अपने करुण कोमल स्पर्शसे छूकर कुमुदिनीको सहज सजीव कर दिया। इस पुस्तकका पहला नाम था 'तीन पुरुष' और बादमें 'योगायोग' रखा गया।

'शेषेर कविता'

रवि बाबूका नवाँ उपन्यास है 'शेषेर कविता'। जहाँ तक मुझे मालूम है, हिन्दीमें अभी इसका अनुवाद नहीं हुआ है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—अमितकी शीलांग पर्वतपर दुर्घटनावश लावण्यसे भेंट होती है। प्रथम दर्शनमें ही प्रेम उत्पन्न होता है। योगमाया दोनोंके प्रणयको परिणयके सूत्रमें पिरोना चाहती है। अमित भावी जीवनका रंजित एवं नित्य नूतन रंगीन स्वप्न देखता है। लावण्यके शुष्क हृदयमें धीरे-धीरे रसवंती संचरित होती है। इतनेमें एक दिन अमितकी बहन सिसी और उसकी सखि केतकी उनके मध्य आ टपकती हैं। लावण्य (वन्या) अमित (मिता) को केतकीसे विवाहकर उसे सुखी बनानेकी राय देती है। अमितकी केतकीसे तथा लावण्यकी शोभनलाल—उसके एक पूर्व परिचित बाल्य बन्धु—से शादी हो जाती है।

कथाका आरम्भ आदिसे न करके मध्यसे किया जाता है। उपन्यास लिखनेके व्याजसे रवि बाबू अपनी कविताकी कलापूर्ण निरुपद्रव हास्यात्मक—व्यक्तिगत—आलोचना करते हैं। गद्य-पद्य अर्थात् चम्पूका माधुर्य प्रदान करते हुए कथानकका रागात्मक विकास होता है। अन्तमें अज्ञात आनन्दकी आश्चर्यानुभूतिकी बड़ी ही निपुणताके साथ निष्पत्ति होती है। असादृश्य घटना-विधानपर ध्यान रखा गया है। साथ ही साथ इस उपन्यासकी पृष्ठभूमि (back ground) भी बड़ी ही रमणीक बनाई गई है। इसकी शैली व्यंग्यात्मक और चुभती हुई है। इससे उनकी कलामें निरन्तर गत्यात्मक परिवर्तन हुआ है।

यह उपन्यास विलायत प्रत्यागत आधुनिक बंगाली युवककी अर्द्ध-रोमांचकारी मनोवृत्तिका तथा अंगरेज़ी सभ्यतासे अनुप्राणित बंगीय नवयुवतियोंके असम्वेदनशील, डाँवाडोल तथा उच्छृंखल जीवनका अच्छा परिचायक है। उपन्यास-लेखकने वैष्णव-प्रेमकी आत्मामें प्रवेश करनेका प्रयास करते हुए प्रतिदिनके मान, विरह, पत्र-प्रेषण, अभिसार तथा मिलनकी कल्पना द्वारा नवीन युवक-युवतियोंके प्रेममें वैचित्र्य एवं स्थायित्व लानेका उपक्रम किया है। यह उपन्यास भाव-प्रधान होते हुए भी चरित्र-प्रधान ही है, क्योंकि वातावरण और घटनाके वर्गीकरणकी सीमान्त-रेखा सरस्वती नदी हो गई है।

अमित एक निरुद्देश्य एवं निर्विकार नवयुवक है। निवारण चक्रवर्तीके नामसे वह कविता करता है और

अपना नाम गुप्त रखता है। लावण्य एक शुष्क, रहस्यमय तथा उद्वेगहीन युवती है। सिसी, लिसी और केटी स्वेच्छाचारी गर्वीली रमणियाँ हैं। इनकी ठसकके सामने लावण्य झुक जाती है। शोभनलाल, यतिशंकर आदि विचित्र किन्तु मनोवैज्ञानिक चरित्र हैं। जिस तरहके रंगीन वातावरणमें लावण्य तथा अमितका आकस्मिक साक्षात्कार होता है, उसी तरहकी रम्य एवं भव्य प्रकृति-स्थलीमें दोनोंका अचानक विछोह भी हो जाता है। उद्दीपन विभावके पूर्व रंगस्थलीपर आलम्बन विभाव (नायक-नायिका) को स्थापित करके चरित्रोंके असामंजस्य पूर्ण बौद्धिक प्रत्युत भावुक प्रेमका प्रसार होता है, जो क्रमशः आकर्षणका केन्द्र बन जाता है। देखिए, मिता और बन्याका प्रेम-सम्भाषण, जब कि दोनों कुंजमें भावी-जीवन अर्थात् मधु-रात्रिके लिए कार्यक्रम बना रहे हैं। हाव-भाव-विलासमय जीवनकी उत्कण्ठाका इस पुस्तकमें यदि आग्रह है, तो उसका तिरोभाव भी है।

'दुइ बोन'

रवि बाबूका दसवाँ उपन्यास है 'दुइ बोन'। इसका भी हिन्दी-अनुवाद शायद नहीं हुआ है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—शशांक अपनी साली उर्म्मिमालासे प्रेम करता है ; मगर चूँकि वह नीरदकी वाग्दत्ता है, अतएव वह व्यवसायमें लगा रहकर उसे भूलना चाहता है। नीरदके विलायत चले जानेपर तथा अपनी बड़ी बहन शर्म्मिलाके बीमार पड़ जानेपर उर्म्मी शशांककी देख-भाल करती है, फलतः सुषुप्त प्रेम जाग्रत होता है। जब नीरद विलायतसे लौटनेकी ख़बर नहीं देता है, तब साली-जीजा विवाह कर लेना चाहते हैं ; किन्तु बीचमें ही शर्म्मिला चंगी हो जाती है। इधर शशांकका व्यापार गिर जाता है, जिससे शर्म्मिलाको बड़ा दुःख होता है ; फिर भी वह दोनोंकी शादी कर देना अच्छा समझती है। इतनेमें न मालूम क्यों उर्म्मिमाला विलायत चली जाती है।

कथाका निर्वाह 'घरे बाहरे' की परिपाटीपर आश्रित है। लेकिन आत्म-कथाओंका संग्रह नहीं करके उपन्यासकार यहाँ चरित्र-चित्रोंका संग्रह करता है। जब शशांक और उर्म्मिमालाका आपसमें मेल-जोल बढ़ाना रवि ठाकुरका अभीष्ट होता है, तब वे उधर नीरदको विलायत भेज देते हैं और इधर शर्म्मिलाको बीमार कर देते हैं। वासनाको और भी उकसानेके लिए वे नीरदकी चिट्ठीसे काम लेते हैं। व्यवसायके घटने-बढ़नेपर ही चूँकि शशांकका शर्म्मिलाके प्रति प्रेमका उतार-चढ़ाव निर्भर है, अतः शर्म्मिलाके अच्छे होनेपर शशांक फिर उसका ऋणी हो जाता है और उससे लिपटा रहता है। उत्तेजनाको अवकाश देनेके लिए वे इन लोगोंको नेपाल जानेसे रोकते हैं एवं उर्म्मिलाको उसके काकाके पास जाने देते हैं। पराकाष्ठाके बाद पराकाष्ठा देकर वे कथानककी समाप्ति करते हैं।

शशांक यदि बाह्यद्रष्टा है, तो उसकी पत्नी शर्म्मिला अन्तर्द्रष्टा है। नीरद यदि अन्तर्द्रष्टा है, तो उर्म्मिमाला बाह्यद्रष्टा है। इस वैपरीत्यके परिणाम-स्वरूप इन लोगोंका गठबन्धन असफल रहता है। किन्तु शर्म्मिला अपनी अपरिग्रहशील मंगलमयी बरसाती करुणा-धारासे उर्म्मिमालाकी शृंगारिक वासन्तिकताको ढँककर, गृहस्थीमें पुनः आनन्दकी मन्दाकिनी बहाती हुई उसे सागराभिमुख ठेल देती है।

भाषाकी दृष्टिसे सरलता, सुगमता तथा मसृणतामें यह पुस्तक अद्वितीय है। इसे उपन्यास न कहकर एक बृहद् गल्प कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी।

'चार अध्याय'

रवि बाबूका ग्यारहवाँ उपन्यास है 'चार अध्याय', जिसका हिन्दी-अनुवाद इसी नामसे प्रकाशित हुआ है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—एला अतीन्द्रको अपने दलमें शामिल करती है। चन्द्रनाथ बाबू—दलके मुखिया—एला और अतीन्द्रको साथ रहने देना चाहते हैं। मगर वे दोनोंके प्रेमको एक निश्चित सीमासे आगे नहीं बढ़ने देते, जिसके चलते दोनों एक दूसरेसे सम्बन्ध-सूत्रमें बँध जानेके हेतु व्याकुल तो होते हैं ; पर विवाह न करनेके लिए वचनबद्ध होनेके कारण ऐसा नहीं कर सकते। अतीन्द्र भाग जाता है, मगर ऐला उसका पीछा नहीं छोड़ती। अतीन्द्र लौटता है ; पर देशभक्तिके फालतू जोशमें वह किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा रह जाता है, जब कि एलाकी कामना उसके सामने नग्न हो जाती है।

उपन्यासका आरम्भ भूमिकासे होता है, जिसके पूर्व रवि बाबू 'आभास' लिखते हैं। क्रान्तिकारी वायुमंडलमें दो प्राणियोंके बीच प्रेमके उद्रेकको उपन्यासकार अपनी कलाकी विशिष्ट प्रणालीके सहारे बड़े ही मार्मिक ढंगसे व्यक्त करता है। इसे दिखानेके लिए उसने प्रभविष्णुवाद

( impressivism ) के उस नैपुण्यसे काम लिया है, जिसके पीछे देशकी विद्यमान समस्या तथा आदर्शके घात-प्रतिघातका महान सत्य छिपा हुआ है।

एला जन्मसे ही विद्रोही है। चन्द्रनाथ बाबूका सहारा पाकर वह क्रान्तिकारी हो उठती है। देश-सेवाके मार्गमें वह प्रेमको अड़चन नहीं समझती ; परन्तु वचनका मूल्य भी उसकी दृष्टिमें कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। फलतः कर्त्तव्य और प्रेमकी उलझनमें वह पड़ी हुई भीतर ही भीतर क्षुब्ध एवं धधकती रहती है और कभी-कभी उबल भी पड़ती है। अतीन्द्र—अन्तु—एलाके रूप, गुण, विद्या-बुद्धिपर मुग्ध होकर त्याग और तपस्याका जीवन ग्रहण करना चाहता है। उसकी देशभक्ति एलाके प्रेमकी स्निग्ध छायामें पलती है। उसकी वासना जब आवेगशील हो जाती है, तब उसकी कर्तव्याकर्तव्यकी भावना लुप्त हो जाती है ; पर एला उसे बराबर सचेत करती रहती है। उसके त्यागके आगे एलाको झुकना पड़ता है ; किन्तु अपने वचनकी आनपर वह दृढ़ रहता है। इन दोनों चरित्रोंको 'शेषेर कविता' के लावण्य और अमितका स्वप्निल एवं तन्द्रिल नहीं, प्रत्युत उग्र जाग्रत रूप समझना चाहिए। चन्द्रनाथ बाबूमें साजिश तथा नेतागीरीके सारे गुण मौजूद हैं। वे निर्दय तो नहीं, पर सिद्धान्तके अनुरोधसे निर्मम अवश्य हैं। वे आगसे खेलते हैं ; मगर उसे बुझा देना अपनी नज़रमें भीरुताका लक्षण समझते हैं। वे हर जगह आँधीके सदृश जा धमकते हैं। सचमुच उनमें स्वदेशी-आन्दोलनकी सजीवता मूर्त हो उठी है। 'घरे बाइरे' के चन्द्रनाथ बाबूसे 'चार अध्याय' के चन्द्रनाथमें आकाश-पातालका अन्तर है। दोनों ही अपनेमें पूर्ण हैं। इस उपन्यासकी शैलीमें 'दुइ बोन'की शैलीकी छाप दीख पड़ती है।

इसके बाद रवीन्द्रनाथने एक और उपन्यास लिखा था, जो उनका बारहवाँ उपन्यास है। वह 'लेबोरेटरी' के नामसे गत वर्ष 'आनन्दबाज़ार-पत्रिका'के पूजा अंकमें निकला है। वह पुस्तकाकार अभी तक नहीं छपा है। कुछ लोग इसे उपन्यास न कहकर एक बड़ी कहानी मानते हैं ; किन्तु इससे कोई मौलिक भेद नहीं पड़ता। इस तरह ठाकुरने दर्जनों उपन्यास लिखकर विपुल यश प्राप्त किया। किन्तु जहाँ तक मेरा ध्यान है, अभी तक बँगला-साहित्यमें उनके उपन्यासोंपर कोई प्रामाणिक क्या साधारण आलोचना ग्रन्थ भी प्राप्य नहीं है, जब कि शरत् बाबूके उपन्यासोंपर कई आलोचनात्मक ग्रन्थ निकल चुके हैं।

ऊपरकी पंक्तियोंमें मैंने संक्षेपमें स्व० रवीन्द्रनाथके उपन्यासोंका विहंगावलोकन भर किया है, जो सर्वथा एकांगी और अपूर्ण है। आशा है, हिन्दीके विद्वानोंमें से कोई अधिकारपूर्वक इस विषयपर विशेष प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे, ताकि हिन्दी-संसार रवि बाबूके उपन्यासोंसे अधिक परिचित हो सके।

सहरी, पो० बाढ़ (पटना) ]

---

# एक दिन

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

याद आती है उस दुपहरियाकी। क्षण-क्षणमें वर्षाकी धारा जब थकने लगती है, तो हवाके झोंके आकर फिर उसे उन्मत्त कर देते हैं। घरमें अँधेरा है, काममें मन नहीं लगता। बाजा हाथमें लिए वर्षाका गीत मल्लार-सुरमें गाने लगा।

पासके घरसे एक बार वह सिर्फ द्वार तक आई। फिर लौट गई। फिर एक बार बाहर आकर खड़ी हो गई। उसके बाद धीरे-धीरे वह भीतर जाकर बैठ गई। उसके हाथमें सीनेका काम था, सिर झुकाकर सीने लगी। उसके बाद सीना छोड़कर खिड़कीके बाहर धुँधले पेड़ोंकी ओर देखती रही।

वर्षा थमने लगी, गीत भी थम गया। वह उठकर बाल बाँधने चली गई। बस इतनी ही सी बात है, और कुछ नहीं। वर्षा, गीत, फ़ुरसत और अँधेरेसे लिपटी हुई वही एक दुपरिया। इतिहासमें राजा-बादशाह और युद्ध-विग्रहकी कहानियाँ बड़ी सस्ती हैं—मारी-मारी फिरती हैं। पर उस दुपहरियाकी एक छोटी-सी बातका टुकड़ा दुर्लभ रत्नकी तरह कालकी डिब्बीमें दुबका ही रह गया—सिर्फ दो ही आदमी उसे जानते हैं। अनु०—धन्यकुमार जैन

# रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

"तोमार कीर्तिर चेये तुमि जे महत,
ताइ तव जीवनेर रथ
पश्चाते फेलिया जाय कीर्तिरे तोमार
बारंबार ।"

अर्थात्—"स्व-यशसे भी बढ़कर तुम महत्
अतः तव जीवन-रथ गतिवान्,
दौड़ता जाता बारंबार
छोड़ पीछे तव सुयश महान् ।"

"Thy voice is on the rolling air;
I hear thee where the waters run;
Thou standest in the rising sun,
And in the setting thou art fair.
What art thou then? I cannot guess;
But though I seem in star and flower
To feel thee some diffusive power.
I do not therefore love thee less;
My love involves the love before;
My love is vaster passion now;
Though mix'd with God and Nature thou,
I seem to love thee more and more.
Far off thou art, but ever nigh;
I have thee still, and I rejoice;
I labour, circled with thy voice;
I shall not lose thee though I die."

—Tennyson.

अर्थात्—तेरी ध्वनि घूमती है वायुके झकोरों बीच,
गूँजती है जलकी मनोज्ञ कल-कलमें।
सूर्यके उदयमें अवस्थित तुझे हूँ पाता,
सुन्दर परम दीखता तू अस्ताचल में।
क्या है तू—बताऊँ कैसे! समझ न पाता मैं ही,
व्याप्त तेरी शक्ति तारकों में पुष्प-दल में।
होती अनुभूति तेरी योंही, तो भी तेरे प्रति
पड़ता न रंच बल मेरे प्रेम - बल में ॥
दिन-दिन तेरे प्रति प्रेम बढ़ता ही गया,
आज वह बना मेरा आत्मानन्द ही महान।
यद्यपि पुरुष औ' प्रकृतिमें समाया है तू,
मेरा अनुराग उत्तरोत्तर है वर्द्धमान।
दूर रहकर भी तू मेरे है समीप, सदा
युक्त तुझसे हूँ, मैं हूँ कैसा सुखी भाग्यवान।
आवृत हो तेरी ध्वनिसे मैं कर्म-रत बना,
होगा न वियोग यदि प्राण भी करें प्रयाण ॥

शाक संवत् १७८३, बंगला सन् १२६८ के २५ वैशाखके दिन रवीन्द्रनाथ ठाकुरका अपने कलकत्तेके जोड़ासाँकोवाले पैतृक भवनमें जन्म हुआ था। अभी शक संवत् १८६३, बँगला सन् १३४८ के २२ श्रावणको उन्होंने देह-त्याग किया। उनका यह दीर्घ जीवन मानव-जातिके परम सौभाग्यका विषय है। सच पूछा जाय तो किसी मनुष्यका जीवन अगर दीर्घ ही हो, तो केवल इसी कारण उसे मूल्यवान नहीं माना जा सकता। योगवाशिष्ठ ग्रन्थमें लिखा है :—

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृग पक्षिणः।
स जीवति मनो यस्य मननेन हि जीवति ॥

अर्थात्—जीते तो पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी काफ़ी हैं, किन्तु वास्तवमें जीना उसीका सत्य है, जिसका मन मनन द्वारा जीता रहता है।

मनन और आनन्दानुभूति तथा साहित्य और कार्योंमें उनका जीवनव्यापी प्रकाश लोकोत्तर विराट पुरुष रवीन्द्रनाथके व्यक्तित्वका अंश मात्र है। उनके साथ यद्यपि मेरा परिचय काफ़ी दीर्घकालका है, तथापि मैं यह अहंकार नहीं करता कि मैंने उन्हें ख़ूब अच्छी तरह पहचाना और समझा है। जो ख़ुद यह नहीं जानता, वह इस सम्बन्धमें दूसरोंको कैसे कोई ज्ञान दे सकता है? इस लेखमें उनके विविध कार्योंका केवल सामान्य परिचय भर ही दूँगा; यद्यपि उनका विराट व्यक्तित्व उनके कार्योंका समष्टि रूप नहीं है। उनका व्यक्तित्व उन सब कार्योंके ऊपर उठी हुई एक अखण्ड सत्ता है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए।

रवीन्द्रनाथ काफ़ी लम्बे अर्से तक केवल जीवित ही नहीं रहे हैं, बल्कि उन्होंने लोकोत्तर प्रतिभा और असाधारण कार्यशक्ति द्वारा मनुष्योंको आनन्द दिया है एवं नाना प्रकारसे मनुष्योंका कल्याण किया है। उनके अन्य कार्योंको अगर छोड़ भी दिया जाय, ९ वर्षकी आयुमें उन्होंने शेक्सपियरके 'मैकबैथ' नाटकका जो अनुवाद दिया था, उसे भी अगर छोड़ दिया जाय, तब भी उन्होंने लगातार कोई ६७-६८ वर्षसे भी अधिक काल तक बराबर लिखा है। उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह अनुमानतः मुद्रित

रूपमें बड़े रायल अठपेजी साइज़के १७-१८ हज़ार पृष्ठ हैं।

यद्यपि रवीन्द्रनाथका श्रेष्ठ परिचय कवि-परिचय ही है, तथापि उन्होंने काव्यको छोड़कर अन्य प्रकारकी पुस्तकें भी काफ़ी संख्यामें लिखी हैं। उनके कवित्वका उन्मेष प्रायः ७० वर्ष पूर्व हुआ था—जिसे उनका शैशव भी कहा जा सकता है। पद्यमें उन्होंने जो अनेक कविताएँ और काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं, उनके अतिरिक्त उन्होंने गद्य-कविताएँ और गद्य-काव्य भी काफ़ी संख्यामें लिखे हैं। उनके उपन्यास, नाटक और कहानियाँ सब कुछ काव्य ही तो हैं।

काव्यके अतिरिक्त उन्होंने धर्म, अध्यात्मतत्त्व, समाज, राष्ट्रनीति, इतिहास, भाषातत्व, व्याकरण, दर्शन, ग्रन्थ-समालोचना, विदेश-भ्रमण प्रभृति विषयोंपर जितने लेख लिखे हैं अथवा भाषण दिए हैं, उन सबका थोड़े समयमें नाम गिनना भी आसान नहीं है। इनके अतिरिक्त उनकी पत्रावली है, व्यंग्य-विद्रूप-कौतुक-परिहासात्मक लेख हैं, विनोदपूर्ण नाट्य हैं, गीति-नाट्य और नृत्य-नाट्य और 'पंचभूतकी डायरी' नामक पुस्तक है, जिसे किस श्रेणीमें रखा जाय, यह तय करना बड़ा कठिन है। जिस तरह उन्होंने वयस्क, प्रौढ़ और वृद्ध लोगोंके लिए चीज़ें लिखी हैं, उसी तरह छोटे लड़के-लड़कियोंके लिए भी कहानियों, कविताओं और उपन्यासोंके अतिरिक्त वर्ण-परिचयकी पुस्तक तक लिखी है। सच बात तो यह है कि उन्होंने जो पुस्तकें लिखी हैं, कहानियाँ कही हैं, गान रचे और गाए हैं, चित्र आँके हैं, अभिनय किया है और अन्य कई तरहके कार्योंसे छोटे लड़के-लड़कियोंको उन्होंने जो आनन्द दिया है और भविष्यमें भी देनेका उपाय कर गए हैं, वैसा और किसीने नहीं किया। उन्हें आनन्दके साथ ही साथ शिक्षा देनेके उद्देश्यसे उन्होंने शान्तिनिकेतनमें विद्यालय स्थापित किया। इस विद्यालयकी प्रारम्भिक अवस्थामें उन्होंने उनके लिए कितने ही नए ढंगके खेल निकाले और उनके साथ स्वयं भी खेलोंमें शरीक हुए। हाँ, वैज्ञानिकोंने उनसे उन्हींके बारेमें यह शिकायत ज़रूर की थी कि उन्होंने विज्ञान-सम्बन्धी कोई चीज़ क्यों नहीं लिखी? चार वर्ष पूर्व 'विश्व-परिचय' लिखकर उन्होंने उनके क्षोभको भी दूर कर दिया है। इन सबके अलावा उनकी अपनी लिखी हुई अँगरेज़ीकी भी कितनी पुस्तकें हैं, जो उनकी बँगला-पुस्तकोंका अनुवाद नहीं हैं। उनकी बँगलाकी अनेक पुस्तकोंका अनुवाद संसारकी जितनी पाश्चात्य और प्राच्य भाषाओंमें हुआ है, भारतके अन्य किसी लेखकके ग्रन्थोंका नहीं; अन्य किसी देशके किसी आधुनिक लेखकके ग्रन्थोंका हुआ है, यह मैं नहीं जानता। उनकी कुछ पुस्तकोंका जर्मन अनुवाद इतना अधिक बिका है कि यदि मार्ककी दर गिरी न होती, तो उन्हें अपने जर्मन प्रकाशकोंसे लाखों ही रुपया मिला होता और विश्वभारतीके लिए उन्हें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

यूरोपके कितने ही प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा लिखी हुई पत्रावलियाँ हैं। जहाँ तक हमारी जानकारी है, उनमें से किसीकी भी पत्रावली साहित्यिक उत्कर्ष और वैचित्र्यमें रवीन्द्रनाथकी पत्रावलीका अतिक्रम नहीं करती। उनका लिखा हुआ एक पोस्टकार्ड तक साहित्य-रसाप्लुत होता था।

पाश्चात्य देशोंमें कवि और दार्शनिक दोनों पृथक श्रेणियोंके लोग समझे जाते हैं। भारतके प्राचीन साहित्यमें एक ही मनुष्यको कवि और दार्शनिकके रूपमें—यहाँ तक कि वैज्ञानिक और कविके रूपमें—देखा जाता है। रवीन्द्रनाथकी प्रतिभा द्वारा साहित्यकी उसी प्राचीन धाराकी रक्षा हुई है। सन् १९२५ ई० में उन्हें प्रथम भारतीय दर्शन-कांग्रेसका सभापति निर्वाचितकर तथा बादमें विलायतमें हिवर्ट-व्याख्यानमाला देनेके लिए आमन्त्रितकर उनका दार्शनिकत्व प्रकाश-रूपमें स्वीकृत किया गया।

उन्होंने अनेक मासिक पत्रोंके सम्पादक और संवाद-दाताका कार्य काफ़ी लम्बे अर्से तक असाधारण प्रतिभा और दक्षताके साथ किया और आगे चलकर प्रसिद्ध होनेवाले कितने ही लेखकोंके लेखोंमें संशोधन करके उन्हें साहित्यिक कृतित्व-लाभ करनेमें समर्थ बनाया।

उनकी बहुमुखी प्रतिभाकी प्रशंसा बिल्कुल अनावश्यक है। टेनिसनने विक्टर ह्यूगोके सम्बन्धमें कहा था :—

"Victor in Drama, Victor in Romance,
Cloud-weaver of phantasmal hopes and fears,"
"Lord of human tears," "Child-lover,"
"Weird Titan by thy winter weight of years
as yet unbroken."

हम रवीन्द्रनाको इन्हीं सब तथा और भी अनेक विशेषणोंसे भूषितकर सत्य-विजय-श्री-मंडित कहकर अनुभव कर सकते हैं।

उन्होंने किसी महाकाव्यकी रचना नहीं की है। साधारणतया सब देशोंमें किसी प्रसिद्ध राजवंश, किसी

महायुद्ध, किसी बड़े राजा-महाराजा या साम्राटको लेकर महाकाव्य लिखनेकी रीति प्रचलित है। किन्तु राजतन्त्र और राजा-महाराजा सम्राट आदिका युग अब चला गया और युद्ध एक घृणय विभीषिकाके रूपमें हमारे सामने खड़ा है। पृथ्वीके अधिकांश जीव-जन्तुओंका युग जिस प्रकार इस समय और दूसरा नहीं है, उसी प्रकार महा-काव्यका युग भी अब बीत चुका है। रवीन्द्रनाथकी कवि प्रतिभा गीत-कवितामें ही विशेष रूपसे भासित हुई है। अपनी 'क्षणिका' कवितामें उन्होंने यह रहस्य इस प्रकार प्रकट किया है :—

"आमि नाब्ब महाकाव्य
संरचने
छिल मने,—
ठेकूल कखन तोमार काँकन-
किङ्किणीते
कल्पनाटि गेल फाटि'
हाजार गीते।
महाकाव्य सेइ अभाव्य
दुर्घटनाय
पायेर काछे छड़िये आछे
कणाय क्णाय।
आमि नाब्ब कहाकाव्य
संरचने
छिले मने।
हाय रे कोथा युद्धकथा
हैल गत
स्वप्न मत।
पुराण-चित्र वीर-चरित्र
अष्ट सर्ग
कैल खण्ड तोमार चण्ड
नयन खड्ग।
रैल मात्र दिवारात्र
प्रेमेर प्रलाप,
दिलेम फेले भावी केले
कीर्त्ति कलाप।
हाय रे कोथा युद्धकथा
हैल गत
स्वप्न मत।"

अर्थात्—थी महाकाव्य रचनेकी मेरे मनमें।
तव कंकण-किंकिणिसे सहसा टकरा कर
फट पड़ी कल्पना शत-सहस्र गायनमें।
उस दुर्घटनासे महाकाव्य कण-कण हो
चरणोंके आगे बिखर पड़ा है क्षणमें।
थी महाकाव्य रचनेकी मेरे मनमें।
हा! कहाँ गई वह युद्ध-कथा सपने-सी!
वे सर्ग वीरता-चरित चित्र पौराणिक
तव नयन-खड्गने खण्ड-खण्ड कर डाला।
रह गई हाथमें बस केवल जपनेको
दिन-रात प्रेमके ही प्रलापकी माला।
फिर तो मैंने भी भावीकी गोदीमें
निःसंशय होकर कीर्ति-कलाप उछाला।
हा! कहाँ गई वह युद्ध-कथा सपने-सी!

उनके गान और गीत-रचना उनकी प्रतिभा और शक्तिकी एक और दिशा है। धर्म, देशभक्ति, प्रेम आदि नाना विषयोंके उन्होंने दो हज़ार और उनसे भी बहुत अधिक गान रचे हैं और उन्हें स्वर दिया है। पाश्चात्य महादेशके लोगोंने ६०० गानोंके रचयिता शुबार्टको संसारके सबसे अधिक गानोंके रचयिताके रूपमें माना है। रवीन्द्रनाथने उससे प्रायः चौगुने गान रचे हैं। युवावस्थामें उनका गला भी बड़ा चित्तहारी, चमत्कारक और विस्मयकर था। चलते मानीमें वे उस्ताद नहीं थे—यद्यपि उनकी शिक्षा उस्तादी गानोंमें ही हुई थी, और उस्तादी वे समझते भी ख़ूब थे। गानोंकी कथा-सृष्टि, स्वर-सृष्टि और कथा तथा स्वरकी सहायतासे कण्ठ द्वारा होनेवाली अत्यन्त विचित्र ध्वनि-रूप-सृष्टि—इस त्रिविध कृतित्वके समावेशके रूपमें उन्हें इस देशका अद्वितीय संगीत-स्रष्टा कहना पड़ेगा।

इममें से बहुत-से लोग केवल आँखोंसे दिखनेवाले रूप ही देखते हैं; किन्तु रवीन्द्रनाथने अधिकतर श्रवणगोचर रूप भी देखा है। उन्होंने अपने गानों द्वारा बंगालको विशेष उन्नत किया है। उनके अनेक गानोंमें भगवद्भक्ति और देश-प्रेमका अपूर्व सम्मिश्रण देखा जाता है। यथा निम्नलिखित गीतांशमें:—

"पतन-अभ्युदय-बन्धुर पन्था युग-युग धावित यात्री।
हे चिर सारथि, तव रथचक्रे मुखरित पथ दिनरात्रि।
दारुण विप्लव माझे तव शंखध्वनि वाजे,

संकटदुःखत्राता !
जनगणदुःखत्रायक जय हे, भारत-भाग्य-विधाता !"

अर्थात्—पतन-अभ्युदय उच्चावच पथ युग-युग धावित यात्री
चिर सारथि! तव रथ-चक्रोंमें मुखरित पथ दिन-रात्रि
विप्लवमें भी प्यारा　　बजता शंख तुम्हारा
संकट-दुःख-त्राता !
जनगण-दुःख-त्रायक जय हे, भारत-भाग्य-विधाता !

वे स्वयं सुनिपुण अभिनेता थे और थे अभिनयके सुदक्ष शिक्षक। कविता सुनाने और कहानी, लेख, नाटक तथा उपन्यास पढ़ने आदिमें वे बड़े सुदक्ष थे। साधारण बातचीत तकमें वे बड़े सुरसिक थे। उनकी साधारण बातचीत भी साहित्यिक और सुरसाल होती थी। भाव और विचार-व्यंजक, बहुविध सुरुचिपूर्ण, कलापूर्ण एवं मनोज्ञ नृत्यके वे स्रष्टा और शिक्षक थे। जब तक उनकी शारीरिक सामर्थ्य रही, वे स्वयं भी नृत्य-निपुण बने रहे।

प्रायः ७० वर्षकी आयुमें उनकी प्रतिभाकी एक और नई दिशा प्रकट हुई। वह है उनका चित्रांकन। उनके चित्र पूर्व या पश्चिमकी किसी भी श्रेणीमें नहीं आते। कारण, किसीसे उन्होंने उन्हें बनाना नहीं सीखा। वे उनके अपने ही हैं। उनकी चित्रावलीसे साधारणतया कोई बात प्रकट होती हो या न होती हो, या वह सर्वसाधारणकी समझ या उपयोगमें आती हो या न आती हो, फिर भी विदेश और इस देशके समझदार लोगोंने इसके असाधारण गुण स्वीकार किए हैं। बंगालकी आधुनिक चित्रकालको जो अनुप्राणना रवीन्द्रनाथसे मिली है, उसके सम्बन्धमें श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने कहा है—"बंगालके कवि ( अर्थात् रवीन्द्रनाथ ) ने आर्टका सूत्रपात किया और बंगालके आर्टिस्ट ( अर्थात् अवनीन्द्रनाथ ) ने उसी सूत्रको पकड़कर कितने ही दिन तक अलेके काम किया।"

बँगला भाषा और साहित्यके लिए उन्होंने जो-कुछ किया है, किसी भी अन्य लेखकने नहीं किया। उनका लिखा हुआ बँगलाका साहित्य प्रान्त और देशकी सीमाओंको लाँघकर दुनियाके दरबारमें पहुँचा है। उसमें सार्वदेशिकताका भाव और विचारधारा तो प्रवाहित हुए ही हैं, पर एकान्त बंगाल या भारतके भाव और विचारधारा भी उसमें हैं। अगर कोई विदेशी केवल उनके लेखोंको पढ़नेके लिए ही बँगला सीखे, तब भी उनका परिश्रम सार्थक हुआ समझना चाहिए।

बंग-भंगके बाद स्वदेशी-आन्दोलनके दिनोंमें उन्होंने राजनीतिक क्षेत्रमें एक कार्यकर्त्ताके रूपमें पदार्पण किया। जब दमनने ज़ोर पकड़ा, तो उन्होंने प्रकट रूपमें उसका प्रतिवाद किया। किन्तु राजनीतिक क्षेत्रमें कार्यकर्त्ताके रूपमें वे अधिक दिन तक रहे नहीं; पर उसके अन्यतम नेता वे बराबर बने रहे और इस साल भी मृत्युसे कुछ दिन पहले तक रहे। जलियाँवाला बाग़के हत्याकाण्डका सबसे पहले विरोध उन्होंने ही किया और उसके असली विरोधके रूपमें अपनी 'सर'की उपाधि भी त्याग दी! उनके सभापतित्वमें जिन सब सभाओंका आयोजन हुआ है, उनसे कई दिन पहले भी वे कई सभाओंके सभापति हो चुके थे। हाल ही में मौक़ा आनेपर उन्होंने जो वक्तव्य दिए हैं, उन्होंने भी सभी देशभक्तोंको अनुप्राणित और उत्साहित किया है।

राष्ट्रकी अवस्था-विशेषमें कर देना या न देना प्रजाजनोंका अधिकार है, स्वेच्छापूर्वक बन्दी होना और बन्धन स्वीकार करना तथा उसका गौरव और आनन्द भोगनेकी बात उन्होंने पहले १९०९ ई०में लिखे 'प्रायश्चित्त' नामक नाटकमें और फिर १९२९ ई० में लिखे 'परित्राण' नामक नाटकमें धनंजय वैरागीके मुँहसे कहलाई है। 'मुक्तधारा' नाटकमें भी धनंजय वैरागीने इसी तरहकी बातें कही हैं। 'प्रायश्चित्त' नाटक कई वर्ष पहले निकले उनके उपन्यास 'बहू ठकुरानीकी हाट' के कथानकको लेकर रचा गया है। इस नाटकके प्रकाशित होनेकी तारीख़ है ३१ वैशाख, सन् १३१६ ( बँगला साल )।

'प्रायश्चित्त' नाटकमें से कुछ अंशोंका भाषान्तर यहाँ दिया जा रहा है:—

नैपथ्यमें धनंजय वैरागी और माधवपुरकी प्रजा (रैयत) का एक दल।

तृतीय प्रजा—बाबा, हम लोग राजाके पास जाकर क्या कहेंगे?

धनंजय—बोलेंगे कि हम लगान (ख़ज़ाना) नहीं देंगे।

तृ० प्र०—अगर वह पूछें, क्यों नहीं दोगे?

ध०—कहेंगे, घरके बाल-बच्चोंको भूखों मारकर अगर तुम्हें रुपये देंगे, तो हमारे देवता (ठाकुर) कष्ट पायँगे। जिस अन्नसे प्राणकी रक्षा होती है, उसी अन्नसे देवताको भोग लगता है; वे प्राणोंके देवता जो हैं! इसके बाद घरमें जब कुछ बच रहेगा, तब वह तुम्हें देंगे—किन्तु देवताको चकमा देकर तुमको लगान नहीं दे सकते।

चतुर्थ प्रजा—बाबा, राजा यह बात सुनेगा नहीं।

ध०—फिर भी उसे सुननी ही पड़ेगी। क्या राजा होनेके कारण वह इतना अभागा है कि भगवान उसे सच बात भी नहीं सुनने देंगे ? अरे, ज़ोर देकर उसे सुनाकर ही आऊँगा।

पंचम प्रजा—पर बाबा, उसका ज़ोर हम लोगोंसे कहीं अधिक है—इसलिए जीत तो उसीकी होगी।

ध०—दूर हट वे बन्दर, यही है समझनेकी तेरी बुद्धि। क्या तू समझता है कि जो हार जाता है, उसमें शक्ति ही नहीं होती ? उसकी शक्ति तो ऐसी है कि एकबारगी वैकुण्ठ तक पहुँच सकती है।

छठीं प्रजा—किन्तु ठाकुर, पहले तो हम लोग दूर थे, अतः बच निकले थे ; पर अगर राजा (ज़मींदार) के दरवाज़ेपर जा पहुँचे और वहाँ कोई गड़बड़ हुई, तो फिर भागनेका रास्ता भी नहीं रह जायगा।

ध०—देख पँचकौड़ी, इस तरह लीपापोती करनेसे कोई लाभ नहीं। जो कुछ भी होना है, उसे होने दे, नहीं तो कुछ भी अन्तिम रूपसे नहीं हो सकेगा। अन्तिम जो कुछ होगा, उसीसे शान्ति होगी।

इसी नाटकके एक और अंकके एक दृश्यसे यहाँ कुछ और उद्धृत किया जाता है :—

प्रतापादित्य—देख वैरागी, तू इस तरहका पागलपन करके मुझे भुलावेमें नहीं डाल सकता। इस समय कामकी बात होनी चाहिए। माधवपुरका प्रायः दो सालका लगान बाक़ी है—बोल, देगा या नहीं ?

ध०—नहीं महाराज, नहीं देंगे।

प्र०—नहीं दोगे ! इतनी हिमाक़त ?

ध०—जो आपका नहीं, वह आपको नहीं दे सकते।

प्र०—हमारा नहीं है !

ध०—हम लोगोंकी भूखका अन्न आपका नहीं है। जिन्होंने हमें जीवन दिया है, यह अन्न तो उन्हींका है। बतलाइए, यह हम आपको कैसे दे दें ?

प्र०—तू ही रैयतको लगान देनेसे रोकता है ?

ध०—हाँ महाराज, मैं ही तो रोकता हूँ। वे तो मूर्ख हैं, कुछ समझते नहीं – प्यादेके डरसे वे सब कुछ दे देना चाहते हैं। मैं ही उनसे कहता हूँ कि अरे, ऐसा काम मत करो—जान उसके लिए दो, जिसने तुम्हें जीवन दिया है—अपने राजाको अपनी हत्याका अपराधी मत बनाओ।

धनंजय वैरागीने जिस समय कहा कि रैयतको लगान देनेसे वही रोकता है, तो प्रतापादित्यने क्रुद्ध होकर कहा—'देख धनंजय, तेरे भाग्यमें दुःख बदा है।' इसका धनंजय द्वारा यथायोग्य उत्तर दिये जानेके बादः—

प्रतापादित्य—देख वैरागी, न तेरे घर है, न चूल्हा ; किन्तु ये सब लोग गृहस्थी हैं। इनको तू क्यों विपत्तिमें घसीटना चाहता है ? (रैयतसे) देखो बेटा, मैं कहता हूँ कि तुम सब माधवपुर लौट जाओ। (धनंजयसे) और वैरागी तू यहीं रहेगा। (धनंजय बंदी हो गया)।

आग लगानेसे कारागार भस्मसात हो जाता है और धनंजय वैरागी बाहर आता है।

धनंजय—जय हो महाराज, आप तो मुझे छोड़ना ही नहीं चाहते थे ; किन्तु न मालूम कहाँसे आग मेरी छुट्टीका परवाना लेकर हाज़िर हो गई ! पर आपसे बिना कहे, मैं जा कैसे सकता था ? इसीलिए आपका हुक्म पाने चला आया।

प्रतापादित्य—कैसे कटे तुम्हारे दिन ?

ध०—सुखसे कटे—कोई चिन्ता नहीं थी। यह सब प्रभुका ही आँख-मिचौनीका खेल है। उसने सोचा होगा कि कारागारमें बन्द होनेके कारण मैं उसे पा नहीं सकूँगा। किन्तु उसे पकड़ लिया, ख़ूब कसकर पकड़ लिया और ख़ूब ही हँसा और गाया। ख़ूब आनन्दसे कटे हैं मेरे ये दिन—अपने साथके क़ैदियोंको मैं याद रखूँगा।

*गाना*

(उरे) शिकल, तोमाय कोले करे दिये छि झंकार,
(तुमि) आनन्दे भाइ रेखे छिले भेंगे अहंकार।
तोमाय निये क'रे खेला सुखे दुःखे काटल बेला,
अंग बेड़ि' दिले बेड़ि बिना दामेर अलंकार !
तोमार परे करिने रोष दोष थाके त आमारि दोष,
भय यदि रय आपन मने तोमाय देखि भयंकर !
अंधकारे सारा राति छिले आमार साथेर साथी,
सेइ दयाटि स्मर तोमाय करि नमस्कार।

अर्थात्—जंजीर ! तुम्हें गोदीमें ले, झंकारें दी हैं बार-बार।
सानन्द मुझे रक्खा तुमने कर चूर-चूर मम अहंकार।
तुमको ले करके मैं खेला,
यों कटी दुःख-सुखकी बेला,
बेड़ी ने अंग किया शोभित
तुम बिना दाम के अलंकार !

तुम पर न किया है कभी रोष,
मैं था दोषी यदि रहा दोष,
अपने मनमें भय हो तो तुम
लख पड़तीं भयदायक अपार !
तमसावृत रजनीमें सारी
तुम सदा संगिनी थीं प्यारी,
कर याद तुम्हारी वही दया
करता हूँ तुमको नमस्कार ॥

प्रताप०—क्या बोलते हो वैरागी, कारागारमें तुम इतने सुखी क्यों थे ?

ध०—महाराज, जैसा आनन्द आपको अपने राज्यमें है, वैसा ही मुझे कारागारमें था। अभाव वहाँ किस बातका ? जो भगवान आपको सुख दे सकता है, क्या वह मुझे सुख नहीं दे सकता ?

अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन ब्राह्म-समाजके जाति-विरोधी आन्दोलनके अन्तर्गत ही है। यह प्रेरणा आजसे तीस वर्ष पहले रचित 'गीतांजलि'के अन्तर्गत एक कविताके प्रारम्भमें इस प्रकार स्पष्ट रूपसे प्रकट हुई है :—

"हे मोर दुर्भागा देश, जादेर करेछ अपमान,
अपमाने होते हबे ताहादेर सबार समान।
मानुषेर अधिकारे वंचित करेछ जारे,
सम्मुखे दाँड़ाये रेखे तबू कोले दाउ नाइ स्थान
अपमाने होते हबे ताहादेर सबार समान।"

अर्थात्—मम देश अभागे ! दिया सदा
तुमने जिनको अपमान - दान,
अपमान - क्षेत्रमें तुमको भी
होना होगा उनके समान।
मानवता के अधिकारों से
जिनको वंचित रक्खा तुमने
सम्मुख वे खड़े रहे तो भी
उनको न गोदमें दिया स्थान।
अपमान - क्षेत्रमें तुमको भी
होना होगा उनके समान।

इसी 'गीतांजलि'के अंगरेज़ी अनुवाद द्वारा उन्होंने विश्व-साहित्यिक-वांछित 'नोबेल-प्राइज़' पाया था। वे अंगरेज़ीके इतने बड़े लेखक थे और अंगरेज़ी लेखोंके लिए १७-१८ वर्षकी आयुमें ही उन्होंने अपने प्रसिद्ध अध्यापक हेनरी मर्लीकी प्रशंसा प्राप्त की थी। फिर भी अन्त तक अपने अंगरेज़ी लेखोंकी क्षमताके सम्बन्धमें वे संदिग्ध ही रहे। कैसी अलौकिक थी उनकी नम्रता !

दीन-दरिद्र तथा निरक्षर लोगोंके प्रति उनका प्रेम, श्रद्धा, समवेदना, करुणा आदि जो उनकी रचनाओंमें है, उस सबका संक्षेपमें भी उल्लेख करना कठिन है। इस सम्बन्धमें 'गीतांजलि' में लिखा है :—

"जेथाय थाके सबार अधम दीनेर हते दीन
सेइ खाने जे चरण तोमार राजे
सबार पिछे सबार नीचे,
सब हारादेर माझे।"

अर्थात्—अधमाधम अति दीन जहाँ
शोभित चरण तुम्हारे वहाँ—
सबसे अन्तिम सबसे नीच
सर्वस्वापहृतों के बीच।

और भी :—

"तिनि गेछेन जेथाय माटि भेंगे
करछे चाषा चाष ;
पाथर भेंगे काटछे जेथाय पथ,
खाटछे बारो मास।"

अर्थात्—मट्टी गोड़ गए वे जहाँ
खेती करते कृषक वहाँ
पत्थर काट जहाँ पथ रचते
बारहमास परिश्रम करते।

पिछले फाल्गुनके "प्रवासी" में प्रकाशित उनकी अन्यतम श्रेष्ठ कविता 'एकतान' में लिखा है :—

"चाषी खेते चालाइछे हल,
ताँति ब'से ताँत बोने जेल-फेले जाल,
बहुदूर प्रसारित एदेर विचित्र कर्मभार,
तारि परे भर दिए चलिते छे समस्त संसार।"

अर्थात्—

हल कृषक चलाते खेतों पर,
करघेपर बुनते तन्तुवाय औ' जाल डालते हैं धीवर,
बहुदूर प्रसारित अति विचित्र इन लोगोंका है कर्म-भार,
उसके बलपर ही चलता है सारी दुनियाका कारबार।

साधारण लोगोंके सम्बन्धमें उनकी इस तरहकी बातें केवल पुस्तकों तक ही सीमित नहीं हैं। देशमें अस्पृश्यता-निवारण आदिकी लम्बी-चौड़ी पुकार मचनेके बहुत पहलेसे ही उनके परिवार और शान्तिनिकेतनमें अछूत रसोइए

और नौकर अबाध रूपसे नियुक्त होते आ रहे हैं।

जिन सब स्त्रियोंको समाज पतिता कहता है ( किन्तु दुश्चरित्र पुरुषको पतित नहीं कहता ), उनके प्रति कविकी करुणाका अन्त नहीं। इसका परिचय उनकी "चतुरंग" पुस्तकमें 'ननिबाला' की कहानीमें मिलता है और मिलता है "काहिनी" ग्रन्थकी 'पतिता' कवितामें तथा "चैताली" की 'करुण' व 'सती' कविताओंमें। इस तरहके और भी कई दृष्टान्त हैं।

राष्ट्रशक्तिकी सहायता और परिचालना करने तथा निरपेक्ष भावसे देशकी—विशेषकर गाँवोंकी—हित-साधनाके कार्य करनेका प्रयोजन और पद्धति उन्होंने असहयोग-आन्दोलनके बहुत पहले ही बतलाई थी और अपनी ज़मींदारी तथा सुरूल नामक स्थानमें उसीके अनुसार कार्य भी किया था। सरकारी रिपोर्ट तकमें उनकी ज़मींदारीकी व्यवस्थाकी प्रशंसा छपी है। रैयत-प्रजाके वे बहुत प्रिय थे। इस सम्बन्धमें यहाँ हम एक सत्य घटना लिखेंगे। एक बार एक अंगरेज़ मजिस्ट्रेट उनके साथ उनकी ज़मींदारी देखने गए। उसकी सवारीकी व्यवस्थाका भार गाँवके जिन लोगोंपर था, वे सिर्फ़ एक पालकी लेकर हाज़िर हुए। उनकी धारणा थी कि उनके राजाके साथ जो भी कोई जाता है, वह नीचे ( पैदल ) ही चलता है, भले ही वह अंगरेज़ मजिस्ट्रेट क्यों न हो! रवीन्द्रनाथके बहुत कहने-सुननेपर उन्होंने मजिस्ट्रेटके लिए एक घोड़ा ला दिया!

पवनामें हुई प्रसिद्ध प्रादेशिक कान्फ्रेंसके वे सभापति थे। इस सभामें उन्होंने पहले-पहल सभापतिका भाषण बँगलामें लिख और पढ़कर जो दृष्टान्त उपस्थित किया, उससे उन्होंने सभाके सामने अपनी कार्य-पद्धति उपस्थित की। इसके बाद भी अपनी अनेक वक्तृताओं एवं लेखोंमें उन्होंने यही बात कही है। विश्वभारतीका एक प्रधान विभाग है श्रीनिकेतनका ग्रामोद्धार-विभाग। कृषि, ग्राम्य स्वास्थ्य, ग्रामीण उद्योग-धन्धे, गाँवके किसानोंके लिए आवश्यक मूलधनकी व्यवस्था आदि सब काम यह विभाग करता है।

उन्होंने असहयोग-आन्दोलनका और छात्रोंके स्कूल-कालेज छोड़ देनेका कभी भी समर्थन नहीं किया।

अन्तर्राष्ट्रीयता नामसे अभिहित उनके विश्व-मानव-प्रेमका आभास उनकी बहुत पहले की कई रचनाओंमें मिलता है; किन्तु सबसे स्पष्ट रूपसे इसका आभास मिलता है 'प्रवासी' की पहली संख्याके लिए ४१ वर्ष पूर्व लिखी गई उनकी उस कवितामें, जिसका आरम्भ इस प्रकार है:—

"सब ठाँइ मोर घर आछे, आमि
सेइ घर मरि खुँजिया;
देशे-देशे मोर देश आछे, आमि
सेइ देश लब जूझिया।"

अर्थात्—ठौर ठौर है गेह हमारा,
खोज मरे हम किन्तु वही घर;
देश-देशमें देश हमारा,
वही देश लेंगे हम लड़कर।

उन्होंने अपने 'नेशनलिज़्म' नामक अँगरेज़ी ग्रन्थमें उस राष्ट्रीयताको गर्हित कहा था, जो विदेश या विजातिका धन हड़प करना और उसपर प्रभुत्व जमाना चाहे। इसके अन्तर्गत सभी साम्राज्यवाद आते हैं और नात्सीवाद हाल ही का सबसे निकृष्ट दृष्टान्त है। पर-राष्ट्रद्रोह न करते हुए जो राष्ट्रीयता स्वदेशका कल्याण चाहती है, उसका उन्होंने अपनी कहानियों, काव्यों, भाषणों, गानों तथा कार्योंमें बहुत दिनोंसे समर्थन किया है और उसे अनुप्राणित किया है। इसीलिए उन्होंने लगभग ४० वर्ष पूर्व लिखे गए 'नैवेद्य' ग्रन्थमें प्रार्थना की थी :—

"चित्त जेथा भयशून्य उच्च जेथा शिर,
ज्ञान जेथा मुक्त, जेथा गृहेर प्राचीर
आपन प्राङ्गणतले दिवस शर्वरी
वसुधारे राखे नाइ खण्ड क्षुद्र करि,
जेथा वाक्य हृदयेर उत्समुख हते
उच्छ्वसिया उठे, जेथा निर्वारित स्रोते
देशे-देशे दिशे-दिशे कर्मधारा धाय
अजस्र सहस्रविध चरितार्थताय
जेथा तुच्छ आचारेर मरुवालुराशि
विचारेर स्रोतःपथ फेले नाइ ग्रासि,
पौरुषेरे करेनि शतधा; नित्य जेथा
तुमि सर्व कर्म चिन्ता आनन्देर नेता,—
निज हस्ते निर्दय आघात करि पितः,
भारतेरे सेइ स्वर्गे करो जागरित।"

अर्थात्—

चित्त जहाँ भयशून्य, जहाँ रहता उन्नत सिर,
ज्ञान जहाँ उन्मुक्त, जहाँ गृह - प्राचीरें घिर

तुलीं नहीं दिन-रात स्व-प्रांगण में रखनेपर
वसुधा को छोटे टुकड़ों में काट-छाँटकर,
जहाँ वाक्य उच्छ्वसित सदा उर-उत्स-विनिर्गत,
जहाँ अबाध प्रवाह कर्म-धारा का सन्तत
चरितार्थता अजस्र सहस्रों विधि से ले नित
देश-देश औ' दिशा-दिशामें होता धावित,
जहाँ तुच्छ आचार - मरुस्थल मुँह फैलाकर
ग्रास विचारोंके प्रवाह-पथका न सका कर,
पौरुषको शतशः विदीर्ण कर; नित्य जहाँपर
सर्व कर्म चिन्ता सुखके तुम हो नेतावर,—
कर निर्दय आघात पिता! निज करसे, निद्रित
भारतको तुम उसी स्वर्ग में कर दो जाग्रत।

वे भारतको उसी स्वर्गके रूपमें जागरित देखनेका आनन्द उपभोग करके नहीं जा सके, यह बात मैं कभी भी भूल नहीं सकूँगा।

बाहरी राजनीतिक बन्धनसे मुक्ति पाना निश्चय ही उनकी स्वाधीनताके आदर्शके अन्तर्गत है; किन्तु उसकी अस्थि-मज्जा है सामाजिक और आन्तरिक सब तरहकी दासतासे मुक्ति पाना। देशकी पूर्ण स्वाधीनता वे सर्वान्तःकरणसे चाहते थे। भारतके प्रति ब्रिटेनके जो जो व्यवहार निन्दनीय हैं, उन्होंने उनकी तीव्र निन्दा की है; पर साथ ही उन्होंने इंग्लैण्ड और अंगरेज़ोंके गुणोंको भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है।

इसी तरह पाश्चात्य देशोंकी राजनीति और अर्थ-नीतिकी निन्दनीय बातोंकी भी उन्होंने निन्दा की है; किन्तु उनके विज्ञान, जिज्ञासुपन, लोक-सेवा, संस्कृति और मनुष्यत्वको सम्मान देनेके वे यथायोग्य गुणग्राही भी थे। पाश्चात्य देशोंसे वे सदा अच्छी बातें ग्रहण करनेको तैयार रहते थे—भिक्षुकी तरह नहीं, बल्कि मित्रकी तरह—किन्तु वे यह भी कहते थे कि भारत भी पश्चिमको कुछ दे सकता है। पाश्चात्य 'सभ्यता' के सम्बन्धमें उनके गत प्रथम वैशाखके अभिभाषण 'सभ्यताका संकट' में कही गई अन्तिम उक्ति बहुत ही वेदनापूर्ण है; किन्तु उसमें भी उन्होंने मानवताके भविष्यके सम्बन्धमें निराशापूर्ण बात नहीं कही है। उसमें उन्होंने कहा है:—

"भाग्यचक्रके परिवर्त्तनसे किसी-न-किसी दिन अंगरेज़ोंको इस भारतीय साम्राज्यको छोड़कर जाना ही होगा; किन्तु वे किस भारतको अपने पीछे यहाँ छोड़ जाएँगे—क्या लक्ष्मीहीन दरिद्र भारतको? एकाधिक शताब्दीकी उनकी शासन-धारा जब सूख जायगी, तब क्या उसकी विस्तीर्ण पंकशय्या उनकी गहन असफलताको वहन कर सकेगी? अपने जीवनके प्रथम आरम्भमें मैंने पूरे मनसे विश्वास किया था कि यूरोपकी सम्पद पाश्चात्य सभ्यताकी ही देन है और आज अपने विदाके दिन मेरा वह विश्वास एक-बारगी दिवालिया हो गया है। आज मैं आशा करता हूँ कि मेरी इस दारिद्रय-लांछित कुटीमें परित्राणकर्त्ताका जन्मदिन आ रहा है। मैं इसकी अपेक्षा करता हूँ कि वह इसी पूर्व दिशासे अपने साथ सभ्यताकी दैववाणी लिए आयगा और मनुष्यको उसके चरम आश्वासनका संदेश सुनायगा। आज मैं उस पारकी यात्रा करने चला हूँ—पिछले घाटपर क्या देख आया हूँ, क्या रख आया हूँ, इतिहासका कैसा अकिंचित्कर उच्छिष्ट सभ्यता-अभिमानका परिकीर्ण भग्नस्तूप! किन्तु मनुष्यके प्रति विश्वास खो देना पाप है, अतः उस विश्वासकी मैं अन्तिम समय तक रक्षा करूँगा। मैं आशा करता हूँ कि जब महाप्रलयके बाद आकाश वैराग्यके मेघोंसे मुक्त होगा, इसी सूर्योदयकी पूर्व दिशासे इतिहासका एक निर्मल आत्म-प्रकाश प्रकट होगा और एक दिन अपराजित मनुष्य अपनी महत् मर्यादाको पुनः प्राप्त करनेके पथपर अपनी जय-यात्राके अभियानके लिए सब विघ्न-बाधाओंका अतिक्रमणकर अग्रसर होगा। मनुष्यत्वके अन्तहीन और प्रतिकारहीन पराभावको ही उसकी चरम सीमा कहना, मैं अपराध समझता हूँ।

यह बात मैं आज कहे जाता हूँ कि प्रबल प्रतापशालीकी भी क्षमता, मदमत्तता और आत्म-निर्भरता निरापद नहीं, इसीके प्रमाणित होनेका दिन आज सम्मुख आ उपस्थित हुआ है। निश्चय ही यह सत्य प्रमाणित होगा:—

अधर्मेनैधते तवात् ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥"

विदेशी-विद्वेष और साम्प्रदायिकतासे वे बहुत ऊपर उठे हुए थे। उनका यही उदार-भाव उनकी अनेक रचनाओंमें प्रकाश-रूपसे प्रकट है। उनकी 'भारत-तीर्थ' कवितामें तो यह सुविदित है। उसके दो पद हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"केह नाहि जाने कार आह्वाने
कत मानुषेर धारा

दुर्वार स्रोते एल कोथा हते
समुद्रेय होल हारा।
हेथाय आर्य, हेथा अनार्य
हेथाय द्राविड़, चीन—
शक हून-दल पाठान मोगल
एक देहे होलो तीन।
पश्चिमे आजि खुलियाछे द्वार,
सेथा हते सबे आने उपहार,
दिबे आर निबे, मिलाबे मिलिबे
जाबे ना फिरे,
एइ भारतेर महा - मानवेर
सागर-तीरे।

* * *

एसो हे आर्य एसो अनार्य
हिन्दू मुसलमान।
एसो एसो आज तुमि इंगराज,
एसो एसो खृष्टान।
एसो ब्राह्मण, शुचि करि' मन
धारो हात सबाकार,
एसो हे पतित, होक अपनीत
सब अपमान-भार।
मार अभिषेके एसो एसो त्वरा।
मंगलघट हय नि जे भरा,
सबार परशे पवित्र - करा
तीर्थ नीरे।
आजि भारतेर महा - मानवेर
सागर-तीरे।"

अर्थात्—

यह नहीं जानता है कोई—कब किसका आवाहन पाकर,
किस दिशि-विदिशासे उमड़ - उमड़,
कितने अदम्य स्रोतोंमें पड़
कितनी मानव-सरिता-धारा खो गई उदधिमें आ-आकर।
इस ठौर आर्य, इस थल अनार्य, इस ठौर द्रविड़ औ'
यहाँ चीन—
शक हूण मुग़ल, इस थल पठान, सब एक देहमें हुए लीन।
खुल गया आज पाश्चात्य-द्वार,
ला रहे सभी प्रेमोपहार,
जाएँगे लौट न, दे लेकर, अपनाएँगे अपने होकर,
भारतके महामानवोंके विस्तृत विशाल सागर - तटपर।

* * *

आओ हे आर्य, अनार्य तथा आओ हे हिन्दू-मुसलमान!
आओ-आओ अँगरेज़ आज, आओ-आओ हे किरस्तान!
आओ ब्राह्मण, कर मन पवित्र, कर गहो सभीके तुम उदार!
आओ हे पतित, तुम्हारा भी हो जाय दूर अपमान-भार।
आ करो मातृ - अभिषेक त्वार।
मंगल-घट अब तक नहीं भरा—
उस तीर्थ-नीरसे जो पवित्र हो जाय स्पर्श सबका पाकर।
भारतके महामानवोंके विस्तृत विशाल सागर तटपर।

वे चीन, जापान, जावा, बाली और हिन्द-महासागरके अन्यान्य द्वीपपुंज आदिके साथ भारतके प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धको पुनः स्थापित करनेकी चेष्टा मन, वचन और कार्योंसे कर गए हैं।

अनेक वर्ष पूर्व उन्होंने शान्तिनिकेतनमें जिस ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापना की थी, वही आगे चलकर विश्वभारतीके रूपमें परिणत हो गया। इसका आदर्श भारतवर्षके प्राचीन आश्रम-समूहके आदर्शकी भित्तिपर आधारित है। यहाँ शिक्षा-लाभ बड़े आनन्दपूर्वक होगा; अध्यापक और छात्र-गण सरल, निरलस, विलासिता-विहीन जीवन-यापन करेंगे, ताकि अध्यापकोंका प्रभाव विद्यार्थियोंपर और विद्यार्थियोंका प्रभाव अध्यापकोंपर पड़ेगा; वे सभी ऋतुओंमें प्रकृतिके प्रभावका अनुभव करेंगे; भारत और अन्य सभी देशोंके ज्ञान और भावोंके अनेक प्रवाह यहाँ अबाध गतिसे प्रवाहित होंगे; सभी श्रद्धावान और पवित्र होकर एक और असीमके ही चरणोंमें सिर नवायँगे; यहाँकी शिक्षा कोरी पंडितों द्वारा प्रस्तुत की हुई ही न होगी, बल्कि आत्म-निर्भरशील उपार्जकों द्वारा प्रस्तुत होगी; केवल विशुद्ध ज्ञानकी चर्चा यहाँ नहीं होगी, साथमें संगीत-चित्रकला आदि ललित-कलाओंका अनुशीलन भी होगा और वस्त्र बुनना, लकड़ीका काम आदि और कृषि-शिक्षा भी दी जायगी और ग्रामोंकी सफ़ाई, स्वास्थ्य तथा सौन्दर्यकी शिक्षा भी दी जायगी, जिससे ग्रामोंको आनन्द और सौन्दर्यका आगार बनानेकी चेष्टा की जायगी; अध्यापक और विद्यार्थी केवल ज्ञाता और जिज्ञासु ही नहीं होंगे, बल्कि कर्मी और स्रष्टा होंगे; विद्यार्थी व्यष्टि और समष्टि भावसे यथासंभव स्व-शासक

होंगे ;—संक्षेपमें विश्वभारतीके उद्देश्य यही हैं।

यहाँ छात्र-छात्राएँ यद्यपि रहते पृथक-पृथक हैं ; पर पढ़ते एक साथ हैं। भारतवर्षके प्रधान धर्मोंकी संस्कृतिका अनुशीलन यहाँ होता है ; साथ ही चीन, तिब्बत आदि विदेशोंकी संस्कृतियोंका अनुशीलन भी वैसे ही होता है। छात्र-छात्राओंके लिए कई प्रकारके व्यायाम और खेलोंकी यहाँ व्यवस्था है और है ग्राम-सेवाका सुयोग भी।

सन् १९२४ ई० में विश्वभारतीका अन्यतम अंग रवीन्द्रनाथका "शिक्षासत्र" नामक शिक्षा-प्रतिष्ठान स्थापित किया गया। इसका एक प्रधान मंत्र है—'शुरूसे ही शिशु लकड़ीके काम और घरेलू उद्योग-धन्धोंके विद्यार्थीके रूपमें शिक्षासत्रमें प्रवेश करेंगे। शिल्पशालामें वे शिक्षित-उत्पादक और सम्भाव्य-स्रष्टाके रूपमें दक्षता प्राप्त करेंगे और अपने ही हाथों इन दोनोंकी स्वाधीनता लाभ करेंगे, फिर वे घरों तथा उनके लिए आवश्यक सामान तैयार करेंगे व घर-गृहस्थी चलानेमें सहायक होंगे ; फिर उनके अधिवासीके रूपमें अपने चित्तका प्रसार करेंगे और शिक्षासत्र-रूपी एक छोटी पुरीके नागरिकोंके अधिकार भी प्राप्त करेंगे।'

विश्वभारतकी बुलेटिन नं० ९ में शिक्षासत्रके समुदयका वृत्तान्त है। उससे मालूम होता है कि वहाँ गृहकार्यों और तरह-तरहकी दस्तकारियोंसे ही विज्ञान और अन्यान्य विषयोंकी शिक्षा देनेकी व्यवस्था है। छोटे बच्चोंको और अपेक्षाकृत बड़े लड़के-लड़कियोंको क्या-क्या दस्तकारियाँ सिखाई जायँ, इसकी तालिका है। सूत कातना, कपड़ा बुनना, बढ़ईका काम आदि उसीके अन्तगत हैं। लिखने-पढ़नेकी व्यवस्था भी ज़रूर है। शिक्षासत्रके सम्बन्धमें जो महानुभाव विस्तृत विवरण जानना चाहें, वे विश्वभारतीके बुलेटिन नं० ९ और २१ देखें। विश्वभारतीके इन दोनों बुलेटिनोंमें इस शिक्षासत्रकी स्थापना क्यों की गई है, वह और उसकी मूलगत शिक्षा-नीति और शिक्षा-प्रणालीका जो उल्लेख है, उससे शिक्षातत्त्व-सम्बन्धी गम्भीर अन्तर्दृष्टि एवं शिशु-स्वभाव, बाल-स्वभाव और मानव-मन-सम्बन्धी गम्भीर ज्ञानका परिचय मिलता है। इतना सब कुछ होते हुए भी इस तरहकी संस्थाने देशके लोगों और नेताओंकी दृष्टि अपनी ओर क्यों आकर्षित नहीं की और क्यों इसके आदर्शका अनेक स्थानोंपर अनुसरण नहीं किया गया, यही चिन्ताका विषय है। यह बात मैंने अपने अनुमानसे ही लिखी है।

इसके पीछे कोई राजनीतिक प्रचेष्टा और आन्दोलन तथा किसी बड़े राजनीतिज्ञके नामका प्रभाव नहीं है ; यह भी नहीं कहा जा सकता कि शिक्षासत्रकी शिक्षा देनेपर ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त होगा और देश स्वाधीन होगा। महात्मा गांधीकी वर्धा-योजनामें उक्त सुविधाएँ हैं—जैसे उनके चरखा तथा खादी-प्रचारकी समर्थक अर्थनैतिक युक्तिके साथ चरखा और खादीसे देश स्वाधीन होगा, यह राजनीतिक उक्ति भी है!

विश्वभारतीमें छात्र-छात्राएँ क्यों गीत-वाद्य, नृत्य और अभिनय करते हैं और वहाँ क्यों इन सबके सिखानेकी व्यवस्था की गई है, इस सम्बन्धमें बहुतोंकी धारणा स्पष्ट नहीं है। इस विषयमें कविने चीनके अन्यतम प्रधान नेता महामान्य ताई चि ताओको एक पत्रमें लिखा था :—

> Tonight we shall present before you another aspect of our ideal where we seek to express our inner self through song and dance. Wisdom, you will agree, is the pursuit of completeness; it is in blending life's diverse work with the joy of living. We must never allow our enjoyment to gather wrong associations by detachment from educational life; in Santiniketan, therefore, we provide our own entertainment, and we consider it a part of education to collaborate in perfecting beauty. We believe in the discipline of a regulated existence to make our entertainment richly creative.
>
> In this we are following the ancient wisdom of China and India; the *Tau*, or the True Path, was the golden road uniting arduous service with music and merriment. Thus in the hardest hours of trial you have never lost the dower of spiritual gaiety which has refreshed your manhood and attended upon your great flowerings of civilisation. Song and laughter and dance have marched along with rare loveliness of Art for centuries of China's history. In India Sarasvati sits on her lotus throne, the goddess of Learning and also of Music, with the Golden Lyre—the *Veena*—on her lap. In both countries, the arcanca of light have fallen on divinity of human achievements. And that is Wisdom.

दैहिक आत्म-रक्षाके सम्बन्धमें हमारे देशके लड़के-लड़की और परोक्ष रूपसे अधिक वयस्क जिससे अन्य किसी भी देशके लोगोंके समकक्ष हों, उस ओर भी रवीन्द्रनाथकी दृष्टि थी। वे ख़ुद भी बचपनमें तथा किशोरावस्थामें अपने घरके पहलवानोंसे कुश्ती लड़ा करते थे। विश्वभारतीमें लड़के-लड़कियोंको जापानी जुजुत्सु सिखानेके लिए उन्होंने जापानके एक बहुत अच्छे जुजुत्सु-विशारदको बुलाया था। उससे बहुत-से लड़के-लड़कियोंने जुजुत्सुका काफ़ी ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अध्यापकोंमें से भी दो-एकने—जैसे स्वर्गीय गौरगोपाल

घोषने—अच्छा जुजुत्सु सीख लिया था। हमने कविको इस बातपर दुःख प्रकट करते हुए सुना था कि विश्वभारतीके बाहरके लोग जापानके इस इतने बड़े जुजुत्सु-विशारदसे आत्म-रक्षाके अनेक उपाय सीखनेका आग्रह क्यों नहीं दिखाते !

छात्र-छात्राओंको कविके सामने लाठी चलाने, छुरेसे आत्म-रक्षा करने तथा घूँसेबाज़ीसे लड़ने आदिके कौशल दिखाते हुए हमने देखा है। शान्तिनिकेतन ही उनकी इस तरहकी शिक्षाका स्थान रहा है। हमने विश्वभारतीके कई छात्रोंको सरकसके कठिनसे कठिन व्यायाम और दुःसाहसिक काम करते भी देखा है। शान्तिनिकेतनके फुटबालके खिलाड़ी मुफ़स्सिलके अन्यतम श्रेष्ठ खिलाड़ी समझे जाते हैं। श्रीनिकेतनके वार्षिक खेलोंमें तरह-तरहकी दौड़ और तीरसे निशाना लगाने आदिकी प्रतियोगिताएँ होती रहती हैं।

पहले-पहल कवि शान्तिनिकेतनके छात्रोंके रहनेके कमरोंमें जाकर बातचीत करते थे; इसके अलावा पासके खुले मैदान या किसी स्वाभाविक कुंजमें भी जाकर बातचीत करते थे। वहाँसे लौटते हुए कभी-कभी लड़के उनसे दौड़की होड़ भी लगाते थे। यह बात कोई ३०-३५ वर्ष पहलेकी है। दौड़में वे हमेशा ही विजयी होते थे। उस समय वे बलिष्ट एवं कर्मिष्ठ पुरुष थे और बोलपुरसे शान्तिनिकेतन पैदल ही आते-जाते थे।

छात्रोंमें उन्होंने स्वशासनकी भावना पैदा की। उनका नायक और अधिनायक उन्हींमें से चुनने और उनके दोष-त्रुटियोंपर विचार करनेके लिए उन्हींमें से विचारक चुननेकी प्रथा उन्होंने ही चलाई। परीक्षाके समय छात्र-छात्राओंकी निगरानीके लिए किसीको न रखकर उन्हींकी सत्यता और आत्म-सम्मानपर निर्भर करनेकी प्रथाको भी उन्होंने ही जन्म दिया।

भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें प्रकृतिके रूप-परिवर्त्तनको लक्ष्य करके उनके प्रभावके अनुभवके सम्बन्धमें सबको जागरित करनेके लिए कविने ऋतु-उत्सवोंको प्रचालित किया—जैसे वर्षा-मंगल, शारदोत्सव, बसन्तोत्सव आदि।

दुखीकी सेवा और रोगियोंकी सेवा-सुश्रूषाका उन्होंने केवल ज़बानी ही प्रचार नहीं किया, बल्कि अमली तौरपर भी किया।

उनको 'गुरुदेव' कहकर सम्बोधित करना ब्रह्म-बान्धव उपाध्यायने शुरू किया और शतीशचंन्द्र रायने उसका प्रचार किया।

विद्यालयके छात्रोंमें से प्रत्येकको रोज़ १५ मिनट तक ध्यान करने और सुबह-शाम सम्मिलित रूपसे स्तव-गान द्वारा उपासना करनेकी प्रथा रवीन्द्रनाथने अपने विद्यालयमें प्रचलित की।

बँगलाके माध्यमसे सर्वसाधारणमें ज्ञान-विस्तार करनेके लिए कवि 'लोकशिक्षा-संसद' स्थापित कर गए हैं। इसके लिए कई एक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इसकी संभाव्यता अशेष है।

कवि विश्वभारतीके प्रतिष्ठाता केवल इसीलिए नहीं हैं कि इसका आदर्श और परिकल्पना उनकी है अथवा उन्होंने इसके लिए यथासाध्य रुपए दिए हैं, रुपए संग्रह किए हैं, मकान आदि बनवाया है; बल्कि इसलिए कि उन्होंने अन्त तक इसके लिए परिश्रम किया है; इसके क्लर्क तकका काम किया है; स्वयं छात्र-छात्राओंके क्लासोंमें असाधारण निपुणता और धैर्यके साथ पढ़ाया है, कुछ दिन पहले तक उनके सामने स्वयं अपनी कविताओंकी व्याख्या करते रहे हैं, उन्हें गान, अभिनय और नृत्य सिखाया है, उनकी सभाओंका सभापतित्व किया है, कथा-कहानियाँ सुनाकर उनका मनोरंजन किया है, उनके साथ खेले-कूदे हैं, मन्दिरोंमें उपासना और भाषणों द्वारा उन्हें अनुप्राणना दी है; उनकी स्वर्गीया सहधर्मिणीने उसकी आरम्भिक स्थितिमें अपने सब गहने उतारकर दे दिए और कितने ही दिनों तक यहाँके अध्यापकों और छात्रोंको स्वयं अपने हाथसे भोजन बनाकर आदरपूर्वक खिलाया है। देह और मनके अलौकिक सौन्दर्यके अधिकारी कविको और कोई व्यसन तो था ही नहीं, पान-तम्बाकू तकका अभ्यास न होनेसे वे वास्तवमें सभीके आदर्श 'गुरुदेव' थे।

कविने १२ बार पृथ्वीके विविध देशोंकी यात्रा करके भारतवासियोंके साथ अन्य देशोंके लोगोंका सम्बन्ध स्थापित करने और उसे आगे बढ़ानेकी चेष्टा की। वे थे संसारके जाति-समूहके अन्यतम अन्तर-बन्धन-सूत्र एवं विश्व-शान्तिके लिए प्रयत्नशील। सब लोग उन्हें कविके रूपमें ही जानते हैं; पर वे कितने बड़े पण्डित थे और कितनी तरहकी किताबें उन्होंने पढ़ी थीं, उसे लोग नहीं जानते। अगर उनके कवित्वकी ख्याति न होती, तो उनके

पाण्डित्यकी ख्याति हुई होती। बँगला और संस्कृतके अतिरिक्त उन्होंने जिन कितने ही विषयोंकी अंगरेज़ी पुस्तकें पढ़ी थीं, उनकी एक तालिका यहाँ दी जाती है :—

Farming; philology; history; medicine; astrophysics; geology; bio-chemistry; entomology; co-operative banking; sericulture; indoor decorations; production of hides, manures, sugarcane and oil; pottery; weaving looms; lacquer work; tractors; village ecnoomics; recipes for cooking; lighting; drainage; calligraphy; plant-grafting; meteorology; synthetic dyes; parlour-games; Egyptology; road-making; incubators; wood-blocks; elocution; stall-feeding; jiu-jitsu; printing; etc.

इस सबके सिवा साहित्यके नामसे साधारणत: जो समझा जाता है, वह तो वे अवश्य ही पढ़ते थे। सन् १९२६ के अक्टूबरमें जब वे वियेनामें बीमार थे, तब उन्हें लेटे-लेटे कितनी पुस्तकें पढ़ते देखा है, हम नहीं कह सकते। ऊपर उनके पढ़े हुए नाना विषयोंकी जो अंगरेज़ी तालिका दी गई है, उसमें चिकित्सा-विद्या भी एक है। होमियोपैथीकी भी बड़ी-बड़ी किताबोंका उन्होंने नियमानुसार अध्ययन किया था। बायोकेमिक चिकित्सा-प्रणालीकी भी उन्हें ख़ासी अच्छी जानकारी थी। कभी-कभी वे हँसीमें कहा करते थे—"मैं फ़ीस नहीं लेता, इसीलिए मेरी प्रशंसा और प्रचार नहीं हुआ।"

ऊपर दी हुई अंगरेज़ी तालिकामें पाक-विद्या और सुन्दर हस्ताक्षर ( Calligraply ) का भी उल्लेख है। वे तरह-तरहके भोजन तैयार करनेकी परीक्षा करते और विभिन्न प्रकारके खाद्योंके गुणागुणकी भी जाँच करते। एक समय नीमका पत्ता भी उनका प्रधान खाद्य था। चीनीकी अपेक्षा गुड़को वे बराबर पसन्द करते रहे हैं। वे भातका माड़ फेंक देना अच्छा नहीं समझते थे। एक समय वे अरण्डीके तेलका मौन दिलाकर रोटी खाते थे। उनके हाथकी अत्यन्त सुन्दर बँगला और अँगरेज़ी लिखावटकी बात कौन बंगाली नहीं जानता ?

प्राय: २३ वर्ष पूर्व मैं शान्तिनिकेतनमें काफ़ी समय तक रहा करता था और उनके घरके सामने ही एक घरमें रहता था। बीचमें एक मैदान था। उस समय वे इतने परिश्रमी थे कि अपने सोनेके समयसे पहले एक दिन भी मैंने उनके लिखने-पढ़नेके कमरेकी रोशनी गुल होते नहीं देखी। प्रात:काल जब मैं टहलने जाता, तो देखता कि या तो वे बरामदेमें बैठे उपासना कर रहे हैं या उपासना समाप्तकर लिखने-पढ़नेके काममें लग गए हैं। उस समय दोपहरके भोजनके बाद मैंने उन्हें कभी भी सोते या लेटते नहीं देखा। गर्मीमें मैंने न तो कभी किसीको पंखेसे उनपर हवा करते देखा और न उन्हें स्वयं कभी अपने हाथसे पंखा झलते देखा। उस समय शान्तिनिकेतनमें बिजलीकी रोशनी और पंखे नहीं थे। इसके कई वर्ष बाद भी मैं उनकी श्रमशीलतासे विस्मित हुआ हूँ। बादमें अवस्था बढ़ने और स्वास्थ्य बिगड़ जानेके कारण वे यद्यपि वैसे परिश्रमी नहीं रह गए थे, तथापि अनेक युवकोंकी अपेक्षा वे तब भी अधिक परिश्रम करते थे। अभी उस दिन भी गांधीजीने उनपर दोपहरको विश्राम करनेके लिए ज़ोर दिया था। उनकी असामान्य बुद्धि और प्रतिभाका परिचय उनके जीवनके अन्तिम दिनों तक भी मिलता रहा है।

ऋषियोंमें आध्यात्मिक सत्य देखनेकी शक्ति थी, ऐसा हमने पढ़ा है, रवीन्द्रनाथमें भी वह थी। इसका परिचय हमें उनके बहुत-से धर्मोपदेशों, कविताओं और संगीत आदिमें मिलता है। विलासी वे नहीं थे, बराबर कष्ट-साधक भी वे नहीं रहे—यद्यपि कभी-कभी वे अपने आहारके सम्बन्धमें बड़ी कठोर व्यवस्था करते थे। जीवनसे उनका बड़ा अनुराग था। उन्होंने कहा है :—

"मरिते चाहि ना आमि सुन्दर भुवने,
मानवेर माझे आमि बाँचिबारे चाइ।"

अर्थात्—

इस परम सुन्दर भुवनमें चाहता मरना नहीं मैं ;
मानवोंके बीच रहकर चाहता जीना यहीं मैं।

किन्तु मृत्युको भी वे माताके वरदहस्तके समान स्नेहमय और निर्भर-योग्य मानते थे। इसीलिए मृत्युके सम्बन्धमें उन्होंने कहा है :—

"से जे मातृपाणि,
स्तन हते स्तनान्तरे लइतेछे टानि,
स्तन हते तुले निले शिशु काँदे डरे,
मुहूर्त्ते आश्वास पाय गिये स्तनान्तरे।"

अर्थात् - वह दयाका हाथ माँका
एक स्तनसे खींच हमको दूसरे स्तनसे लगाता।
छूटता जब स्तन बिलखता और डरता शिशु बिचारा,
दूसरे स्तनसे लगा मुँह वह तुरत आश्वास पाता॥

इहलोक और परलोक विश्व-जननीके दो स्तन हैं।

हिन्दी-भवनके उद्घाटनसे पूर्व पं० जवाहरलाल नेहरू और गुरुदेव बातचीत कर रहे हैं।
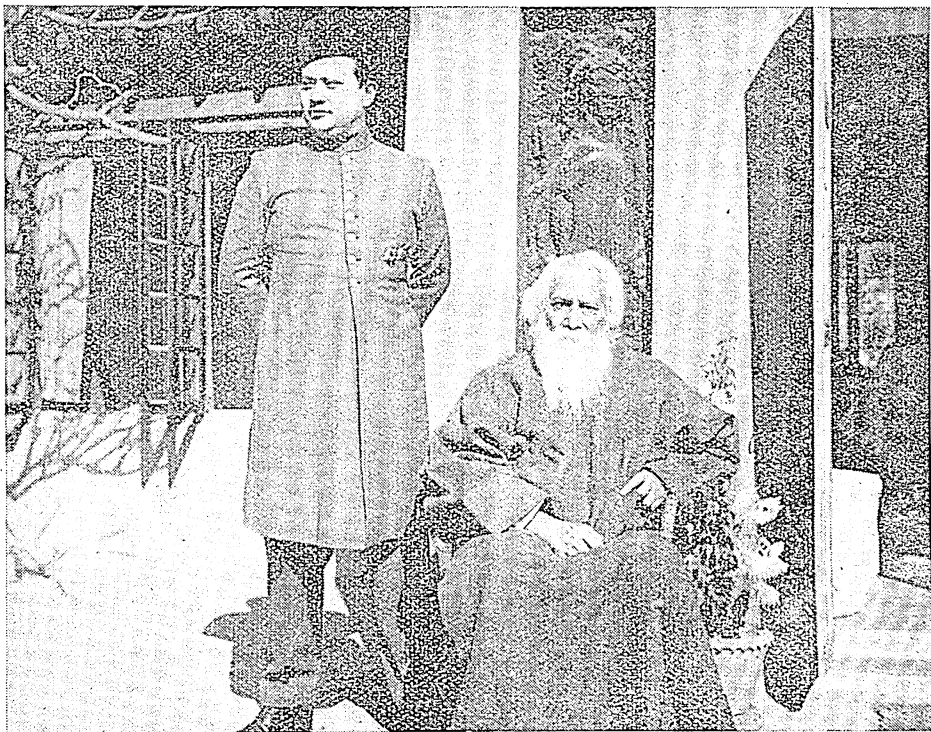
शान्तिनिकेतनमें त्रिपुराके वर्त्तमान महाराजा माणिक्य बहादुर और रवीन्द्रनाथ ( सन् १९३४ ई० )।

'उत्तरायण'—जहाँ कविने अपने जीवनके कई वर्ष व्यतीत किए ।
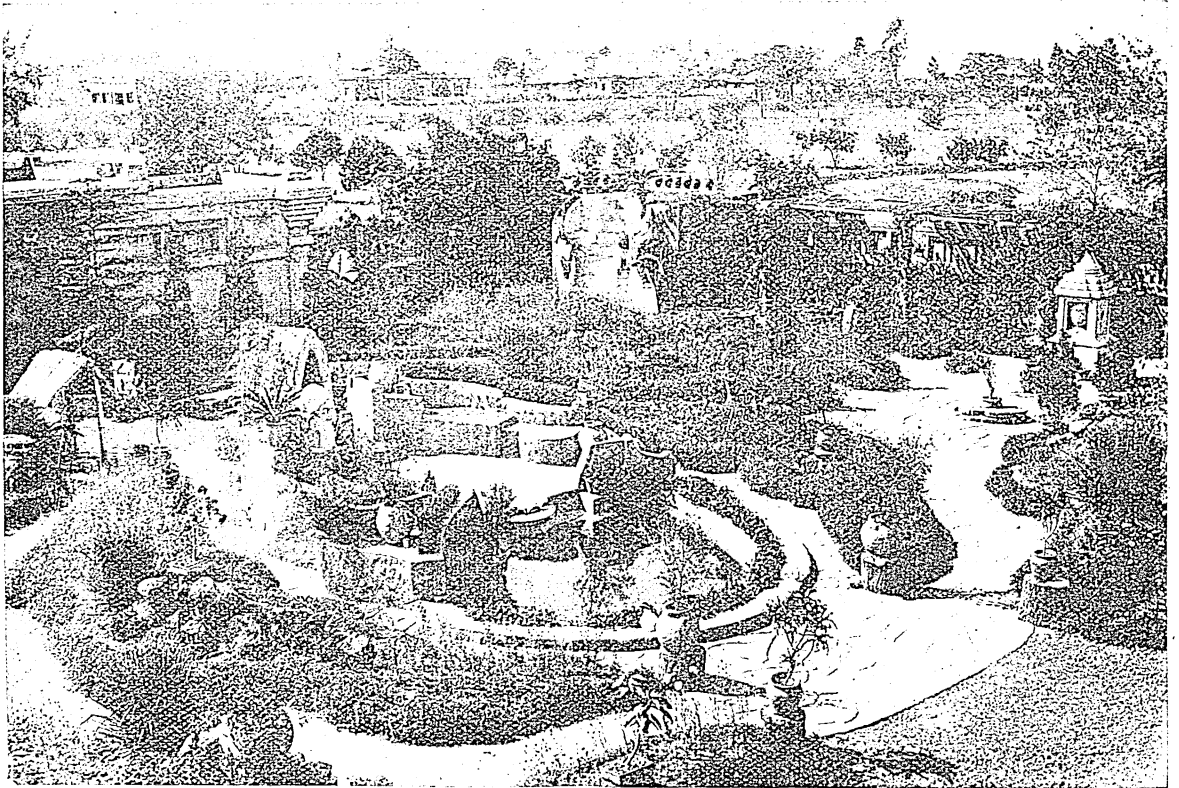
उत्तरायणका उद्यान—जिसकी सुरभि, कुसुम-श्री और वातासने कविको प्रेरणा एवं स्फूर्ण प्रदानकी ।

मृत्यु-रूपी हाथसे मनुष्यको उठाकर इहलोक-रूपी स्तन पान करानेके बाद वह परलोक-रूपी अन्य स्तन पान कराती है।

मैं कविको साधकके रूपमें जानता था। पर उनकी साधनाका पथ वैराग्य नहीं था। उन्होंने लिखा है:—

"वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय।
असंख्य बन्धन माझे महानन्दमय
लभिब मुक्तिर स्वाद। एइ वसुधा
मृत्तिकार पात्रखानि भरि बारंवार
तोमार अमृत ढालि दिबे अविरत
नाना वर्णगन्धमय। प्रदीपेर मतो
समस्त संसार मोर लक्ष वर्तिकाय
ज्वालाये तुलिबे आलो तोमारि शिखाय
तोमार मन्दिर माझे।
इन्द्रियेर द्वार
रुद्ध करि योगासन, से नहे आमार।
जा किछु आनन्द आछे दृश्ये गन्धे गाने
तोमार आनन्द र'बे तार माझखाने
मोह मोर मुक्ति रूपे उठिबे ज्वलिया
प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिबे फलिया।"

अर्थात्—मुक्ति जो कि वैराग्य-साध्य हो
ऐसी मुक्ति नहीं मैं लूँगा।
महानन्दमय स्वाद मुक्तिका
अगणित बन्धन बीच लहूँगा।
वसुधा की मिट्टी का प्याला
बारंबार पूर्ण हो छल-छल
अमृत तुम्हारा ढालेगा नित
नाना वर्ण-गन्धमय अविरल।
दीपक-सा संसार निखिल यह
लक्ष वर्तिका मेरी, देगा—
जला तुम्हारी दिव्य शिखासे,
तव मन्दिर आलोक करेगा।
योगासन औ' इन्द्रिय-निग्रह—
मेरा काम कदापि नहीं यह।
दृश्यगन्धगायन - सुख में नित
तव आनन्द रहेगा मिश्रित।
मुक्ति - रूप में मोह बलेगा,
भक्ति - रूप में प्रेम फलेगा।

कविके दिलमें नारी-जातिके प्रति—और विशेषकर बंगालकी नारी-जातिके प्रति—कितना अधिक दर्द था, यह कहा नहीं जा सकता। उनके लिए उन्होंने जो कुछ किया और जो कुछ करना चाहते थे, उसे संक्षेपमें कहना कठिन है। उनकी इच्छा केवल स्त्रियोंकी शिक्षाके लिए एक विज्ञान-सम्मत शिक्षालय खोलनेकी थी; किन्तु अर्थाभावके कारण ऐसा नहीं हो सका। विश्वभारतीकी आर्थिक कठिनाइयोंसे जब वे बहुत उद्विग्न हो उठते थे, तब मैंने उन्हें यह कहते सुना है कि और सब कुछ उठाकर वे केवल कला-भवन, संगीत-भवन और स्त्रियोंकी शिक्षा-व्यवस्था-सहित श्रीभवनको ही रखेंगे।

स्त्रियोंके सम्बन्धमें उनका आदर्श क्या था? उनकी बहुत-सी कविताओं, उपन्यासों और छोटी कहानियोंमें इस प्रश्नका उत्तर है। इस प्रसंगमें साधारणतया 'चित्रांगदा'की निम्न-लिखित पंक्तियोंका उल्लेख किया जा सकता है:—

"आमि चित्रांगदा।
देवी नहि, नहि आमि सामान्य रमणी।
पूजा करि राखिबे माथाय, से-उ आमि
नइ; अवहेला करि पुषिया राखिबे
पिछे, से-उ आमि नहि। यदि पार्श्वे राख
मोरे संकटेर पथे, दुरूह चिन्तार
यदि अंश दाउ, यदि अनुमति कर
कठिन व्रतेर तव सहाय हइते,
यदि सुखे-दुःखे मोरे कर सहचरी,
आमार पाइबे तबे परिचय।"

अर्थात्—
मैं हूँ चित्रांगदा, नहीं मैं देवी कोई,
और नहीं हूँ मैं कदापि साधारण रमणी।
ऐसी भी मैं नहीं कि पूजो सिरपर रखकर;
ऐसी भी नहीं, पालतू कर लो अपनी।
यदि रखो तुम साथ मुझे संकटके पथमें,
यदि दो मुझको अंश स्व-चिन्ताका दुरूह अति,
दो दुस्तर व्रतमें सहाय होनेकी अनुमति,
यदि सुख-दुखमें मुझे सहचरी कर लो सम्प्रति,
यदि इतना कर सको, तभी पाओगे निश्चय—
कैसी हूँ, क्या हूँ, यथार्थतः इसका परिचय।

"महुया" की 'सबला' कवितामें हम दूसरे ही स्वरकी झंकार पाते हैं। इस ग्रन्थकी 'नाम्नी' कवितावलीमें १७

भिन्न-भिन्न प्रकारकी नारियोंका चित्रण है। "आरोग्य" ग्रन्थकी 'नारी तुमि धन्या' कवितामें साधारण गृहस्थके घरोंकी अन्तःपुरियोंके महत् बहुरूपोंकी वन्दना कविने की है। अपनी सहधर्मिणीके स्वर्गवासके बाद कविने 'स्मरण' शीर्षक कविताएँ लिखी थीं; किन्तु उनमें उनके दाम्पत्य और पारिवारिक जीवनके किसी तथ्यका संधान नहीं मिलता, और न वह उनके और किसी ग्रन्थमें ही मिलता है। अपनी बातमें भी वे इस विषयमें प्रायः मौन ही रहते थे। जुलाई, १९४० के 'विशाल भारत' में प्रकाशित श्रीमती हेमलता देवीके 'संसारी रवीन्द्रनाथ' लेखमें इस विषयपर कुछ प्रकाश अवश्य डाला गया है। उससे हम देख सकते हैं कि अपनी सहधर्मिणीके प्रति कविका प्रेम कितना गहरा था। उसमें कविके सन्तान-स्नेह और नौकरोंके प्रति सदय व्यवहार आदिका भी उल्लेख है। जो कविको समझना चाहते हैं, उनके लिए इस लेखका पढ़ना निहायत ज़रूरी है। उसमें से कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

"विद्यालयकी स्थापनाके बाद छात्रोंके बीच रहनेके विचारसे कवि शान्तिनिकेतनके वर्तमान लइब्रेरी-भवनके एक कमरेमें बहुत दिनों तक रहे थे और छात्रोंके साथ ही बैठकर एक ही खाना खाते थे।

"कवि-पत्नी स्वभावसे बहुत ज़्यादा साज-शृंगारकी शौकीन न थीं। वे गहना भी बहुत साधारण पहनती थीं। बड़े घरकी बहू थीं, फिर भी साधारण वेशमें रहना ही उन्हें भाता था। इसके अलावा कविकी उन्नत रुचिके प्रभावने उन्हें और भी सीधा-सादा बना दिया था।

"कविके जन्मदिनपर कविको पहनानेके लिए कवि-पत्नीने एक बार बड़ी श्रद्धासे सोनेके बटन गढ़ाये थे। उन्हें देखकर कविने कहा—'छिः छिः, पुरुष भी कहीं सोना पहनते हैं—यह बड़ी लज्जाकी बात है।'

"कवि-पत्नी पाक-शास्त्रमें बड़ी निपुण थीं।

"नये-नये तरीक़ोंसे भोजन बनानेके आविष्कारका शौक कविमें भी कुछ कम न था। जान पड़ता है, पत्नीके पाक-कौशलने उनके इस शौकको और भी अधिक बढ़ा दिया था। बहुत बार तो वे रसोईके समय मोढ़ेपर बैठे-बैठे नये तरीक़ेसे भोजन बनानेका अपनी पत्नीको आदेश देते रहते थे। आदेश देकर ही वे चुप न बैठते, बल्कि नया मसाला देकर नई प्रणालीसे पत्नीको भोजन बनाना भी सिखाते। कभी-कभी उन्हें चिढ़ानेके ख़यालसे गर्वके साथ वे कहते—'देखा, तुम्हारा ही काम और तुम्हींको मैंने कैसा सिखा दिया?' वे ज़रा ग़ुस्सेसे कहतीं—'तुमसे कौन जीत सकता है? तुम सब विषयोंके आचार्य जो ठहरे!'

"कवि खानेको लेकर बड़ा गोलमाल किया करते। कभी-कभी तो इतना थोड़ा खाते कि घरवाले चिन्तित हो उठते। कविको इसकी ज़रा भी परवाह न थी कि कोई क्या कहता है—वे अपनी इच्छानुसार काम करते। जन्मसे ही स्वस्थ होने और जवानीका जोश होनेके कारण शरीर यह सब अत्याचार सह लेता। घरके लोग चिन्ता किया करते कि कल्पना-जगत्में रहनेवाले कवि स्वल्पाहारसे अपने शरीरको नष्ट कर रहे हैं। कवि शरीरके उपयोगी खाद्यको न खोजकर मनके उपयोगी खाद्यको ढूँढ़ लेते हैं, यह बात उस समय स्पष्टरूपसे किसीकी समझमें नहीं आती थी। घरके लोग, जिनका उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य होता था, ऐसे झक्की आदमीको लेकर सदा उद्विग्न हो उठते थे।

"नौकर-चाकर ख़ुश मनसे सहज रूपमें कविके सामने ही ऐसी बातें कहते; पर कवि उनसे बुरा नहीं मानते। डरकर नौकर काम करेंगे, इसे वे कभी पसन्द नहीं करते।

"उसी समयकी एक और भी उल्लेख-योग्य घटना है। उनकी कन्या ससुराल जानेवाली थी। कविने उसे अत्यन्त साधारण साज-शृंगारके साथ वहाँ भेजा। सम्बन्धियोंने यह देखकर कहा था—'इस प्रकार साधारण ढंगसे लड़कीको ससुराल भेजते देख लज्जा आती है।' कविने उत्तर दिया था—'इस वेशमें कन्या हमारा स्नेह सम्मान यदि नहीं पाती है, तो वैसे सम्मानकी कोई ज़रूरत नहीं। वेश-भूषा जिस सम्मानकी योग्यताका प्रमाण हो, उस सम्मानको न पाना ही श्रेयस्कर है।'

"कविका संतान-स्नेह भी अपरिमेय है। पिता होकर भी उन्होंने अपनी प्रथम संतानका मातृ-स्नेहसे धात्री-रूपमें पालन किया था। बात यह थी कि उनकी पत्नीकी उम्र उस समय कम ही थी, इसीसे कविको यह भरोसा नहीं होता था कि नवजात शिशुकी देख-भाल ठीक ढंगसे हो सकेगी। शिशुको दूध पिलाना, कपड़े पहनना, उसका बिछौना ठीक करना—यह सब काम कवि स्वयं करते।"

श्रीमती हेमलता देवीने इसके बाद कवि द्वारा पत्नीके

प्रति की गई सेवाका जो पवित्र चित्र खींचा है, रवीन्द्रनाथ यदि महापुरुष न भी होते, तो उसीके लिए वे जगज्जनके चिर-आराध्य हो जाते।

"शिक्षाव्रती कवि जिस समय आदर्श-शिक्षालयके संगठनमें प्रवृत्त थे, उस समय कविकी सहधर्मिणी उनके इस कार्यमें सहकर्मिणी हुई थीं। छात्रोंके लिए जलपान तैयार करनेका भार उन्होंने अपने ऊपर लिया था। छात्रोंसे उनका स्नेह शुरूसे था। विद्यालयके आरम्भका अभी एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ था कि कवि-पत्नीका स्वर्गवास हो गया। कविके संसारको तोड़-फोड़कर वे असमयमें ही चल बसीं। मृत्यु-शय्यापर कविने अपने हाथसे उनकी जैसी सेवा-शुश्रूषा की थी, उसकी छाप परिवारके हरएक व्यक्तिके मनपर आज भी ज्योंकी त्यों बनी हुई है। प्रायः दो महीने तक वे बीमार रहीं। भाड़ेकी नर्सोंपर पत्नीकी सेवा-शुश्रूषाका भार उन्होंने एक दिनके लिए भी नहीं छोड़ा।

"स्वामीकी सेवा पाना कितना बड़ा सौभाग्य है, इसे साध्वी नारी ही समझ सकती है। अपनी पत्नीके अन्तिम कालमें कविका प्रेम उनके प्रति बहुत बढ़ गया था। उस समय बिजलीका पंखा भारतमें नहीं आया था। कवि हाथमें पंखा लेकर दिन-दिन भर और रात-रात भर पत्नीको हवा करते और एक क्षणके लिए भी पंखेको न छोड़ते।"

कवि अन्यान्य विषयोंमें जिस प्रकार असाधारण थे, उसी प्रकार अत्यधिक शोक भी उनको हुआ और उसे उसी असाधारण धैर्य तथा संयमके साथ सहन किया। पत्नीके महाप्रयाणपर उन्हें जो मर्मान्तक वेदना हुई थी, उसका उनके 'स्मरण' ग्रन्थकी प्रथम कवितामें इस प्रकार वर्णन है :—

"आजि मोरं काछे प्रभात तोमार
कर गो आड़ाल कर'।
ए खेला ए मेला ए आलो ए गीत
हाजि हेथा ह'ते ह'र ;
प्रभात-जगत हते मोरे छिंड़ि'
करुण आँधारे लह मोरे घिरि',
उदास हियारे तुलिया बाँधुक
तव स्नेह बाहु डोर।"

अर्थात्—आज मेरे पाससे निज प्रातको
ओट में अपनी करो तुम।
खेल, मेला, गीत, औ' आलोक यह
आज इस थल से हरो तुम।
प्रात-जग से फेर मुझको,
करुण तमसे घेर मुझको,
खिन्न मेरा उर उठा निज बाहुके
स्नेह - बन्धन में धरो तुम।

इहलोक और परलोकके बीचमें व्यवधान होनेपर भी यह दम्पति अभिन्नात्मा हो गए थे। अपनी स्वर्गगता पत्नीको संबोधित करके कविने कहा है :—

"आमार जीवने तुमि बाँच उगो बाँच।
तोमार कामना मोर चित्त दिये जाच।
जेन आमि बुझि मने
अतिशय संगोपने
तुमि आजि मोर माझे आमि हये आछ।
आमारि जीवने तुमि बाँच उगो बाँच।"

अर्थात्—

मेरे जीवनमें तुम जीवित रहो, रहो चिर - जीवित।
करो कामना - यांचा मेरे उरके ही द्वारा नित॥
रहूँ समझता अपने मनमें
मानो अतिशय संगोपनमें
आज विराज रहीं तुम मुझमें 'मैं' बनकर मेरे हित।
मेरे जीवन में तुम जीवित रहो, रहो चिर - जीवित॥

मेरी आकांक्षा थी कि कविके सामने ही मेरी मृत्यु हो। रवीन्द्र-विहीन जगत्की कल्पना मैंने कभी भी नहीं की थी। यह मैंने कभी सोचा भी नहीं कि रवीन्द्र-विहीन जगत् भी मुझे देखना पड़ेगा। आँख-कान जिससे भी कहिए, यह विश्वास नहीं होता कि वे नहीं रहे। अभी भी ऐसा मालूम होता है कि शान्तिनिकेतन जाते ही फिर उनकी वृद्धावस्थाका वह शुचि-शुभ्र-सुन्दर रूप देख सकूँगा, जिसके भीतर उनके अन्तरकी अनुपम श्री छिटक रही हो। "क्रन्दन ध्वनिछे पथहारा पवने" (यद्यपि पथहारा पवनमें क्रन्दन-ध्वनि है), फिर भी बुद्धि कह रही है कि वे अभी हैं! उनकी कामना थी :—

"ए आमिर आवरण सहजे स्खलित हये जाक,
चैतन्येर शुभ्रज्योति
भेद करि' कुहेलिका
सत्येर अमृत रूप करुक प्रकाश।

सर्व मानुषेर माझे
एक चिर मानवेर आनन्दकिरण
चित्ते मोर होक विकीरित।
संसारेर क्षुब्धतार स्तब्ध उर्ध्वलोके
नित्येर जे शान्तिरूप ताइ जेन देखे जेते पारि,
जीवनेर जटिल जा बहु निरर्थक,
मिथ्यार वाहन जाहा समाजेर कृत्रिम मूल्येइ,
ताइ निये कांगालेर अशान्त जनता
दूरे ठेले दिये
ए जन्मेर सत्य अर्थ स्पष्ट चोखे जेने जाइ जेन
सीमा तार पेरवार आगे।"

अर्थात्—

यह 'मैं' का आवरण स्खलित सहज ही हो;
शुभ्र ज्योति चैतन्यकी, भेदकर कुहेलिका
सत्यका अमृत-रूप कर दे प्रकट भव्य।
सब मानवोंके बीच एक चिर-मानवकी
आनन्द-किरण मेरे चित्तमें विकीरित हो।
जगतकी क्षुब्धताका स्तब्ध ऊर्ध्वलोकमें जो
शान्ति-रूप नित्यका है देख उसे जा सकूँ मैं;
जीवनका जो कुछ है जटिल औ' अर्थहीन;
कृत्रिम समाज-मूल्य पा जो टिका मिथ्यापर,
उसे लेके कंगालोंकी शान्तिहीन जनताको
दूर हटा, सत्य अर्थ इस जन्मका समस्त,
आँखों निज देख जाऊँ सीमा लाँघनेके पूर्व।

"ए जन्मेर सत्य अर्थ" (इस जन्मका सत्य अर्थ) वे जान गये हैं। विश्वजनोंको इतना कुछ देकर भी वे तृप्त नहीं हुए। वे और कुछ भी देना चाहते थे—निश्चय ही वे बहुत कुछ दे भी गए हैं, यदि हममें उसे ग्रहण करनेकी योग्यता हो और हम उसे ग्रहण करनेका ढंग जानते हों—

"आमि किछु दिते चाइ, ता ना होले जीवने जीवने
मिल हबे कि करिया, आसि ना निश्चित पदक्षेपे,
भय हय रिक्त पात्र बुझि, बुझि तार रसस्वाद
हारायेछे पूर्व परिचय, बुझि आदाने-प्रदाने
र'बे ना सम्मान, ताइ आशंकार ए दूरत्व ह'ते
ए निष्ठुर निःसंगता माझे तोमादेर डेके बलि,—
जे जीवनलक्ष्मी मोरे साजायेछे नव-नव साजे
तार साथे विच्छेदेर दिने निभाये उत्सवदीप
दारिद्र्येर लांछनार घटाबे ना कभू असम्मान,
अलंकार खुले नेबे, एके एके वर्ण सज्जाहीन उत्तरीये
ढेके दिबे, ललाटे आँकिबे शुभ्र तिलकेर रेखा;
तोमराउ जोग दियो जीवनेर पूर्ण घट निये
से अन्तिम कनुष्ठाने, हयतो शुनिबे दूर हते
दिगन्तरे परपारे शुभ शंखध्वनि॥"

अर्थात्—

चाहता हूँ देना कुछ, दूँ न यदि कैसे फिर
जीवनसे जीवनका साम्य हो सकेगा स्थिर;
आया न मैं निश्चित कदम रख-रखकर,
रिक्त पात्र देखकर लगता मुझे है डर,
उसके रसोंका स्वाद खो चुका है, मेरे जान,—
पूर्व परिचय निज; रहेगा नहीं सम्मान
लेन-देनमें ही; अतः आशंकाकी दूरीपर
निष्ठुर निःसंगतामें कहता पुकारकर—
जिस जीवन-लक्ष्मीने मुझको,
नव-नव साजोंसे सजा दिया
उससे वियोग जिस दिन होगा,
उस दिन उत्सवका बुझा दिया—
वह घटित करेगी नहीं कभी
दारिद्र्य-लांछना-असम्मान;
लेगी उतार सब अलंकार,
देगी पट वर्णविहीन तान,
देगी ललाट पर शुभ्र तिलक।
उस अन्तिम अनुष्ठान में आ—
तुम सब भी देना योगदान
जीवन का परिपूरित घट ला;
सम्भवतः सुन पाओगे तुम,
अत्यन्त दूर से भी निश्चय,
गुंजित दिगन्त के अपर पार
शुभ शंख-ध्वनि मुदमंगलमय।

यही "शुभ शंखध्वनि" सुननेकी मैं आशा रखता हूँ—यह तो आकाश-वातासमें नहीं मिलनेकी। ध्वनि सुनकर कविके—

"के बले गो सेइ प्रभाते नेइ आमि?"

अर्थात्—कहता है यह कौन उस प्रभात में मैं नहीं? इस प्रश्नका उत्तर दृढ़विश्वासके साथ दे सकूँगा—"सकल प्रभातेइ कवि तुमि आछ" (कवि, तुम सभी प्रभातोंमें हो);

"सकल खेलाय क' रबे एइ आमि।
नतून नामे डाकबे मोरे,
बाँधबे नतून बाहुर डोरे,
आसबो जाबो चिरदिनेर सेइ आमि।"

अर्थात्—खेलता रहेगा सभी खेलोंमें यही 'मैं' तो।
नाम नया फिर से लहूँगा मैं,
नव भुज - डोरमें बँधूँगा मैं,
आऊँगा जाऊँगा चिरकाल का वही मैं तो।

दिव्यधामवासियोंके बीचमें कविके शुभागमनके उत्सव-कलरवसे मिश्रित उसी शंखध्वनिको सुनकर ही उनकी बातोंका अर्थ भी हृदयंगम होगा। तब इस समयकी यह बात नहीं कहनी होगी कि--

"क्रन्दन ध्वनिछे पथहारा पवने।"

अर्थात्—पथ भूले हुए पवनमें क्रन्दन-ध्वनि गूँज रही है।

[ इस लेखके बंगला पद्योंका हिन्दी पद्यानुवाद 'विशाल भारत'के सुपरिचित लेखक श्री श्यामसुन्दर खत्रीने किया है। —सं० ]

---

# गुरुदेव

श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'

आर्य्य-संस्कृति के प्रतीक तुम
युग के संचित ज्ञान ;
भागीरथ की अमर - तपस्या
गौतम के निर्वाण।

वीणावादिनि की स्वरलहरी
बाल्मीकि के छंद ;
उदित अमानिशि में भारत की
तुम राका के चंद।

मौन-मुग्ध सचराचर, विस्मित
पथ के दावेदार ;
पूरब का रवि पूरब में ही
अस्त हुआ इस बार।

सब कहते हैं हाय तुम्हारा
आज हुआ अवसान ;
डूब गया है साथ तुम्हारे
भारत का अभिमान।

पराधीन - जीवन की आशा
मृतके जीवन-प्राण ;
एक तुम्हारे बल पर
चलते थे हम सीना तान।

डगमग पग, कम्पित कर
वाणी मूक त्रस्त असहाय ;
तमसावृत पथ पर न सूझता
कोई आज उपाय।

रण की विभीषिका से विह्वल
जब जग आठों याम ;
बना रहे थे तब तुम अपना
शान्तिनिकेतन-धाम।

खींचातानी के इस युगमें
खूब निभाई टेक ;
जितनी जीभ प्रश्न उतने ही
उत्तर तुम थे एक।

जग - जलनिधि में भूले
माझीके प्रकाश-स्तम्भ ;
कल जो युग आनेवाला है
तुम उसके आरम्भ।

बालारुणके स्वर्ण - राग - सा
दीप्त तुम्हारा वेश ;
युग - युग तक देगा मानवको
चिर - नवीन संदेश।

भ्रान्ति भरे जगके जीवन में
फैली आज अशान्ति ;
क्या न उसे फिर दे पाएगा
शान्तिनिकेतन शान्ति ?

# रवीन्द्रनाथ और ग्राम-संगठनका आदर्श

श्री विश्वनाथ चट्टोपाध्याय

रवीन्द्रनाथको हम लोग जगद्वरेण्य कविके ही रूपमें जानते हैं। किन्तु वे एक स्रष्टा भी थे, संस्कारक और कर्मी भी थे, इसे बहुत कम लोग जानते हैं। रवीन्द्रनाथकी कवि-प्रतिभाकी प्रेरणा और प्रसरण बंगालके ठेठ ग्रामोंमें ही है। इन ठेठ ग्रामोंमें कविने सिर्फ़ विभिन्न प्रकारके प्राकृतिक सौन्दर्यका ही उपभोग नहीं किया था, बल्कि ग्रामीण जन-समाजकी दैनिक जीवन-प्रणालीसे भी पूर्णतः परिचित होनेका उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ था। ग्रामोंके अभाव-अभियोग और दरिद्रताने उनके मनको विशेष रूपसे प्रभावित किया था। ग्रामवासियोंके लिए उन्होंने अपने अन्तरतममें गम्भीर वेदनाका अनुभव किया था। उन्होंने अपनी विविध रचनाओंमें ग्रामीण जीवनकी कितनी ही हृदयस्पर्शी बातें व्यक्त की हैं। ये रचनाएँ केवल कविकी कल्पना-प्रसूत ही नहीं हैं, बल्कि उनके वास्तविक जीवनका सच्चा रूप हैं।

कविकी उम्र जब तीस वर्षकी थी, तो उन्होंने स्वेच्छासे ज़मींदारीका काम अपने हाथमें लिया। उस समय किसी प्रकारके विचारके वशीभूत होकर उन्होंने इस कामको अपने हाथमें नहीं लिया था। इस कामके दायित्व और महत्वको वे भलीभाँति समझते थे। जिन दरिद्र ग्रामवासियोंके अभाव और ग़रीबीने उनके मनको इतने दिनों तक प्रभावित किया था, ज़मींदारीका काम सँभालनेपर भी वे उनकी बातोंको नहीं भूल सके। सर्वप्रथम कवि ग्रामीण जीवनसे यहीं परिचित हुए और विभिन्न प्रकारकी ग्रामीण समस्याओंके समाधानमें लग गए। उनके ग्राम-संगठन-जीवनका यह सर्वप्रथम आभास था। यहीं वे इस बातको अच्छी तरह समझ सके कि हमारे देशवासी कितने निरुपाय, असहाय और दुर्बल हैं; कितने निरक्षर और कुसंस्कारोंसे भरे हुए हैं। ग्रामोंके सारे दुःखोंकी जड़ शिक्षा और सहयोगिताका अभाव है, इस बातको उन्होंने अच्छी तरह अनुभव किया था।

जिससे प्रकृत शिक्षा द्वारा सच्चे कर्मी और देशसेवक पैदा हो सकें, उसी आदर्शको ध्यानमें रखकर सन् १९०१ में कविने शान्तिनिकेतनमें श्रीनिकेतन-आश्रमकी स्थापना की। ग्रामीण जनताकी शिक्षाका अभाव, उसकी प्राणहीनता और निरुत्साह कविके मनको अत्यधिक दुःखी करते रहे। उन्होंने इस बातको अनुभव किया कि सिर्फ़ बाहरकी लिखा-पढ़ी ही हम लोगोंकी शिक्षाके लिए यथेष्ट नहीं है। जिससे मनुष्यके प्रति मनुष्यका सहज सम्बन्ध, प्रीति, सेवा और सम्मान-बोध जाग्रत हो; जिससे मनुष्यके दुःख-कष्टमें, अभाव-अभियोगमें, विपद-आपदमें हम लोग आत्मोत्सर्ग कर सकें; जिससे हम लोगोंके अन्तरकी कोमल वृत्तियाँ पूर्णरूपसे विकसित हो सकें, वही शिक्षा हम लोगोंकी वास्तविक शिक्षा है। असलमें हम लोगोंको उसी शिक्षाकी ज़रूरत है। हम लोग दूसरेका मुखापेक्षी न होकर आत्म-निर्भरशील बन सकें, यही उनकी शिक्षाका मूलमन्त्र था। प्रकृत शिक्षाके आदर्शके बारेमें कविने कहा था :—

छात्रोंका छात्रोंके प्रति और गुरुजनोंके प्रति व्यवहारकी नियम-रक्षा; जिससे सामाजिकताकी मनोवृत्तिका विकास हो, इस प्रकारके कार्योंका प्रचलन; आपद-कर्मकी अभिज्ञता और पड़ोसीके प्रति सभी प्रकारकी अनुकूल तत्परता; स्वदेशके सभी विषयोंका ज्ञान और उसके प्रति कर्त्तव्य-बोधका उद्रेक; दूसरी जातियोंके प्रति प्रेम-भाव और उनके विषयमें चिन्तन; वाक्य और कर्ममें न्यायपरताकी विकास-साधना; सभ्य समाजमें लोक-हितके लिए जो अनुष्ठान प्रचलित हैं और जो नवीन चेष्टासे प्रचलित हो रहे हैं, उनके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त करना—ये सब हम लोगोंकी शिक्षाके अंग हैं। संक्षेपमें, मन, हृदय और व्यवहारमें जिससे छात्र मनुष्यत्वके सभी विभागोंमें पूर्ण सत्य हो सकें, यही शिक्षाका उद्देश है। अपने पड़ोसियोंको सब प्रकारसे समर्थ और स्वशासनके योग्य बनानेपर ही सभी देशोंके स्वराजकी भित्ति स्थापित है, छात्रोंको हाथों और लेखनीसे यही समझाना होगा। ('विश्वभारती लोक-संवाद')

इसी आदर्शको हर गाँवमें रूप देनेके लिए ही सन् १९२२ में उन्होंने श्रीनिकेतनमें ग्राम-संगठन-विभागकी स्थापना की। निर्जीव ग्रामोंके बीच जिससे प्राणका संचार हो; जिससे ग्रामवासी आत्म-निर्भरशील बनें, सचेष्ट और

कर्मठ हों ; जिससे ग्रामोंमें कृषि, शिल्प, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि सब प्रकारके जन-हितकर कार्योंका विस्तार हो— इन्हीं उद्देशोंको लेकर श्रीनिकेतनके ग्राम-संगठन-केन्द्रकी स्थापना हुई।

अब हम ग्राम-संगठनके विषयमें रवीन्द्रनाथके विभिन्न विचारोंका उल्लेख करेंगे। हमारे देशकी अवस्थाके सम्बन्धमें आलोचना करते हुए कविने कहा था :—

अन्न नहीं है, स्वास्थ्य नहीं है, आनन्द नहीं है, कोई भरोसा नहीं है, आपसकी सहयोगिता भी नहीं है ; आघात उपस्थित होनेपर हम सिर नीचा कर लेते हैं, मृत्यु उपस्थित होनेपर हम निश्चेष्ट होकर मरते हैं, अविचार उपस्थित होनेपर हम अपने ही भविष्यको दोषी ठहराते हैं और आत्मीयजनोंपर विपत्ति आ पड़नेपर दैवके भरोसे उन्हें छोड़कर हम बैठ जाते हैं। (पबना-प्रादेशिक सम्मेलनके सभापति-पदसे दिया गया भाषण।)

उन्हीं बातोंका कविने अपनी प्रसिद्ध कविता 'एबार फिराओ मोरे' में उल्लेख करते हुए कहा है :—

ओइ-जे दाँड़ाये नतशिर<br>
मूक सबे,—म्लान मुखे लेखा शुधु शत शताब्दीर<br>
वेदनार करुण काहिनी ; स्कन्धे जत चापे भार—<br>
बहि चले मन्दगति, जतक्षण थाके प्राण तार—<br>
तारपरे सन्तानेर दिये जाय बंश-बंश धरि,<br>
नाहि भर्त्से अदृष्टेरे, नाहि निन्दे देवतारे स्मरि,<br>
मानवेर नाहि देय दोष, नाहि जाने अभिमान,<br>
शुधु दुटि अन्न खुँटि कोनमते कष्टक्लिष्ट प्राण<br>
रेखे देय बाँचाइया। से-अन्न जखन केह काड़े,<br>
से प्राणे आघात देय गर्व्वान्ध निष्ठुर अत्याचारे,<br>
नाहि जाने कार द्वारे दाँड़ाइबे बिचारेर आशे,<br>
दारिद्र्येर भगवाने बारेक डाकिया दीर्घश्वासे<br>
मरे से नीरवे।

देश-हितके लिए किए जानेवाले कार्योंकी सम्भावना और उनके महत्वके विषयमें कविने कहा है :—

देश-हितका अनुष्ठान कितना बड़ा है और कितनी ही दिशाओंमें उसकी अगणित शाखा-प्रशाखाएँ फैली हुई हैं, यह बात हमें किसी सामयिक आक्षेपसे भूल नहीं जानी चाहिए। भारतवर्ष-जैसे अनेक विचित्रताओंसे भरे और विवादग्रस्त देशमें उसकी समस्याएँ बिलकुल दुरूह हैं। ईश्वरने हम लोगोंपर एक ऐसे बड़े कार्यका भार सौंपा है, हम लोग मानव-समाजके इतने बड़े एक प्रकाण्ड जटिल जालकी हज़ारों गाँठोंको छोड़नेके आदेशको लेकर आए हैं कि उसके माहात्म्यको एक मुहूर्त्तके लिए भी भूलकर हमें किसी प्रकारकी चंचलता नहीं प्रकट करनी चाहिए। (राजा-प्रजा—'पथ ओ पाथेय')

स्वायत्त-शासन और स्वदेश-सेवाके प्रसंगमें कविने देश-सेवकोंको लक्ष्य करके कहा :—

स्वदेश-हित-साधनका अधिकार कोई हम लोगोंसे छीन नहीं सकता—वह ईश्वर-प्रदत्त है। स्वायत्त-शासन तो चिर-दिनके लिए ही हम लोगोंका स्वायत्त है। (समूह—'देशनायक')

हम परवासी हैं। देशमें जन्म लेनेसे ही वह देश अपना नहीं होता। जब तक हम देशको नहीं पहचानते जब तक हम अपनी शक्तिसे उसपर विजय नहीं प्राप्त करते, तब तक वह देश अपना नहीं है। हमने इस देशपर विजय नहीं प्राप्त की। देशमें अनेक जड़-पदार्थ हैं, हम उन्हींके पड़ोसी हैं। देश जैसे इन सब वस्तुपिण्डोंका नहीं है, उसी प्रकार वह हम लोगोंका भी नहीं है। यह जड़तत्व है—इसीको मोह कहते हैं। जो मोहाभिभूत है, वही चिर-प्रवासी है। वह यह नहीं जानता कि वह कहाँ है। वह यह नहीं जानता कि उसका सच्चा सम्बन्ध किसके साथ है। बाहरी सहायता द्वारा अपनी सच्ची वस्तु कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती। हमारे देशको दूसरा कोई हमें नहीं दे सकता, अपने समस्त धन-मन-प्राणसे देशको जिस समय हम अपना कहकर जान सकेंगे, उसी समय देश हमारा स्वदेश होगा। (१९३२ में श्रीनिकेतनके वार्षिकोत्सवपर हुए भाषणसे)

हम लोगोंके देशकी चरित्रगत दुर्बलताके सम्बन्धमें और जिन कारणोंसे हम लोगोंकी जन-हितकर चेष्टाएँ व्यर्थ होती हैं, उनके विषयमें कविने कहा है :—

हम आज पृथिवीकी रणभूमिमें कौन-सा अस्त्र लेकर आ खड़े हुए हैं? केवल वक्तृता और आवेदन? कौन-सा ज़िरह-बख़्तर पहनकर हम आत्म-रक्षा करना चाहते हैं? केवल छद्मवेश? पर ऐसा करनेसे कितने दिनों तक काम चलेगा और उसका फल क्या होगा?

एक बार हमें अकपट चित्त और सरल भावसे इस

बातको स्वीकार करनेमें क्या दोष है कि अभी भी हम लोगोंमें चरित्र-बल पैदा नहीं हुआ है ? हम दलबन्दी, ईर्ष्या और क्षुद्रताके शिकार हैं। हम एकत्र नहीं हो सकते, हम परस्पर विश्वास नहीं करते और आप लोगोंमें से किसीका नेतृत्व हम स्वीकार करना नहीं चाहते। हम लोगोंके बहुत बड़े अनुष्ठान भी पानीके बुलबुलेकी तरह नष्ट हो जाते हैं। आरम्भमें काम ख़ूब तेज़ीसे उन्नत हो उठता है, दो दिन बाद ही वह पहले विच्छिन्न, बादमें विकृत और उसके बाद निर्जीव हो जाता है। जितनी देर त्याग स्वीकार करनेका समय नहीं आता, उतनी देर खेलमें लगे बालकके समान हम एक उद्योगको लेकर उन्मत्त हो उठते हैं, उसके बाद किंचित त्यागका समय आ उपस्थित होनेपर हम तरह-तरहके बहाने बनाकर अपने-अपने घरोंकी ओर चल देते हैं। किसी कारणवश यदि हमारे आत्माभिमानपर ज़रा भी ठेस लगे, तो उस उद्देशका क्या महत्व है, इसका हमें ज्ञान ही नहीं रह जाता। जिस तरह भी हो, कामके शुरू करते न करते नाम होना चाहिए। विज्ञापन, रिपोर्ट, धूमधाम और ख्यातिके यथेष्ट परिमाणमें होनेपर ही हमें ऐसी परिपूर्ण परितृप्ति अनुभव होती है कि उसके बाद हमारे स्वभावमें निद्रालस आने लगता है ; फिर हमें धैर्यसाध्य, श्रमसाध्य और निष्ठासाध्य कार्योंको करनेकी इच्छा ही नहीं होती। ऐसी दुर्बल परिणतिके अत्यन्त जीर्ण चरित्रको लेकर हम लोग किस साहससे बाहर आ खड़े हुए हैं, यही विस्मय और चिन्ताका विषय है। ( राजा-प्रजा—'इंगारेज ओ भारतवासी' )

एक जगह और उन्होंने कहा था :—

हमने बहुतोंका आह्वान किया, बहुतोंको इकट्ठा किया, जनताका विस्तार देखकर हम आनन्दित भी हुए ; किन्तु हमने ऐसा कोई कार्य-क्षेत्र प्रस्तुत नहीं किया, जिससे उद्‌बोधित शक्तिको सभी सार्थक कर सकें। हम सिर्फ़ लोगोंका उत्साह ही उत्साह बढ़ानेमें लगे रहे, उन्हें कोई काम नहीं दिया। मनुष्यके मनके लिए ऐसा अस्वास्थ्यकर कार्य दूसरा नहीं। सोचा था, उत्साहसे मनुष्यको निर्भीक बनाना और निर्भीक हो जानेपर मनुष्य कर्मकी विघ्न-बाधाओंको लाँघनेमें कुण्ठित नहीं होता। किन्तु इस प्रकार लाँघनेकी उत्तेजना ही तो कर्म-साधनका प्रधान अंग नहीं है—स्थिर बुद्धिके साथ विचारोंकी शक्ति, संयत होकर संगठित होनेकी शक्ति, उससे कहीं बड़ी है। ( राजा-प्रजा—'पथ ओ पाथेय' )

पहले कांग्रेस और प्रान्तीय सभाओंमें अंगरेज़ी भाषामें भाषण देनेका प्रचलन था। इस प्रकार विदेशी भाषा और विदेशी भारापन्न सभा-समितियाँ कभी भी देशके प्राणको स्पर्श नहीं कर सकती थीं। इसीको लक्ष्य करके कविने एक बार कहा था :—

मान लो, यदि हमने प्रान्तीय कान्फरेंसोंको यथार्थमें देशकी मन्त्रणाके कार्योंमें नियुक्त किया होता, तो हम क्या करते ? ऐसा होनेपर हम विलायती ढाँचेकी एक सभा न बनाकर देशी क़िस्मका एक बहुत बड़ा मेला करते। वहाँ यात्रा, गान, आमोद-आह्लादके लिए देशके लोग दूर-दूरसे एकत्र होते। वहाँ देशी सामग्री और पैदावारकी प्रदर्शिनी होती। वहाँ गुणी कत्थकों, कीर्तन करनेवाले गायकों और यात्रियोंको पुरस्कार दिया जाता। वहाँ मैजिक-लालटेन आदिकी सहायतासे जन-साधारणको स्वास्थ्यके बारेमें सारी बातें साफ़-साफ़ बतला दी जातीं और हम लोगोंको जो कुछ भी बातें कहनी-सुननी होतीं, जो कुछ भी सुख-दुःखके परामर्श करने होते, उनकी भद्राभद्र एकत्र होकर सरल बँगला-भाषामें आलोचना करते। (समूह—'स्वदेशी समाज')

देशकी इसी प्रकारकी समस्याओंके समाधानके लिए हमारे देशवासियोंका क्या कर्त्तव्य होना चाहिए, इस विषयमें कविका मतामत यों है :—

हम लोगोंके अभिमान करने, कलह करने और दूसरोंका मुँह ताकनेका अब समय नहीं है। जो कुछ भी हम कर सकते हैं, उसीको करनेके लिए हम लोगोंको कमर कसनी होगी। चेष्टा करने ही से सब समय जो सफलता प्राप्त होती है, वह नहीं भी प्राप्त हो सकती है ; किन्तु हम लोगोंको अपनेमें कापुरुषोंकी निष्फलता नहीं आने देनी चाहिए—चेष्टा नहीं करनेसे जो असफलता मिलती है, वह पाप है, कलंक है। (समूह—'देशनायक')

कोई उपाय नहीं है, इतनी बड़ी झूठी बात हम लोगोंको नहीं बोलनी चाहिए। बाहरसे देखनेपर ऐसा जान पड़ता है कि हम लोग कुछ परिमाणमें अभी बचे हुए हैं। अगर थोड़ी-सी आग राखके नीचे दबी पड़ी

हो, तो उसे भी जाग्रत किया जा सकता है। (१९३५में श्रीनिकेतनके वार्षिकोत्सवपर दिया गया भाषण।)

हमें मिथ्या भय दूर करना होगा। जैसे भी हो, खड़ा होनेके लिए पाँवके नीचे ज़मीन है, इस विश्वासको दृढ़ करेंगे, यही हम लोगोंका व्रत है। यहाँ मैं उसी व्रतकी घोषणा करने आया हूँ। बाहरसे उपकार करनेके लिए मैं नहीं आया और न दया दिखाकर कुछ दान करनेके लिए ही आया हूँ। जो प्राणस्रोत अपनी पुरातन खादको फेंककर दूर हट गया है, बाधाओंको दूर करके उसे वापस लाना होगा। हम लोगोंको यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि जो लोग स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते, देवता भी उनकी सहायता नहीं करते। 'देवाः दुर्बलघातकाः'। (१९३२ में श्रीनिकेतनमें दिया गया भाषण।)

अतएव ईश्वर करे, हम आज भय, क्रोध, आकस्मिक विपत्ति और दुर्बल चित्तके कारण आत्म-विस्मृत होकर अपने-आपको व दूसरोंको भूल जानेके लिए केवल कितने ही व्यर्थ वाक्योंकी धूल उड़ाकर अपने चारों ओरके आविल आकाशको और भी अस्वच्छ न कर दें। तीव्र वाक्योंके प्रयोग द्वारा चंचलता बढ़ जाती है। भयके द्वारा सत्यको किसी प्रकारसे दबा देनेकी प्रवृत्ति पैदा होती है। अतएव आजके दिन हृदयावेगके प्रकट करनेकी उत्तेजनाको रोककर यथासम्भव शान्त भावसे यदि हम वर्तमान घटनापर विचार नहीं करते, सत्यकी खोज और उसका प्रचार नहीं करते, तो हम लोगोंकी आलोचना सिर्फ़ व्यर्थ ही नहीं होगी, बल्कि उससे अनिष्ट भी होगा। (राजा-प्रजा—'पथ ओ पाथेय')

हम यथासम्भव विलायती चीज़ोंका व्यवहार न करके देशी शिल्पकी रक्षा और उन्नतिमें प्राणपणसे चेष्टा करेंगे, इसके विरुद्ध मैं कुछ कहूँगा, ऐसी आशंका आपको नहीं होनी चाहिए। बहुत दिन पहले मैंने जब लिखा था :—

निज हाते शाक अन्न तुले दाओ पाते, ताइ जेन रुचे,
मोटा वस्त्र बुने दाओ यदि निज हाते, ताहे लजा घुचे !

तब लार्ड कर्ज़नपर हम लोगोंके क्रोध करनेका कोई कारण ही नहीं था। और बहुत दिन पहले जब स्वदेशी-भाण्डार स्थापित करके देशी चीज़ोंके प्रचारकी कोशिश की गई थी, तब समयकी प्रतिकूलताके विरुद्ध ही हमें खड़ा होना पड़ा था। ('पथ ओ पाथेय')

विदेशमें बहुत अधिक परिमाणमें धन चला जा रहा है। अभी सब धनका जाना रोकनेकी शक्ति हम लोगोंके हाथमें नहीं है ; किन्तु जो कुछ धन बचाया जा सकता है, यदि हम किसी प्रकार उसके बचानेमें शिथि-

श्रीनिकेतनके उत्सवमें शामिल होनेके लिए रवीन्द्रनाथका आगमन (१७ भाद्र, १३४५ बंगाब्द)।

लता करें, तो वह अपराध अक्षम्य होगा। देशमें उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंका हम स्वयं व्यवहार करेंगे, यह व्रत सभी लोगोंको ग्रहण करना होगा। देशको अपना समझनेकी यह एक उत्तम साधना है। (१९३२ में श्रीनिकेतनमें दिया गया भाषण।)

जहाँ जिस चीज़का अभाव है, उसे पूरा करनेके लिए हम लोगोंको जाना होगा ; अन्न, स्वास्थ्य और

शिक्षा-वितरणके लिए हम लोगोंको ठेठ ग्रामीण क्षेत्रोंमें अपने जीवनको उत्सर्ग करना होगा ; हम लोगोंको अपने स्वार्थ और स्वच्छन्दताको बिलकुल भुला देना होगा।

देशके ज़मींदारोंका कर्त्तव्य है कि वे शोषण-नीतिका अनुसरण न करके प्रजाका मंगल और कल्याण करें। इस प्रसंगमें कविने एक बार कहा था :—

देशके ज़मींदारोंसे हमारा यही निवेदन है कि यदि वे बंगालके ग्रामोंमें प्राण-संचारके लिए उद्योग नहीं करेंगे, तो यह कार्य कभी भी पूरा नहीं होगा। ग्रामोंके सचेत होकर अपनी शक्ति स्वयं अनुभव करनेपर ज़मींदारोंके अधिकार और स्वार्थ नष्ट होंगे, यह आशंका हो सकती है—किन्तु एक पक्षको दुर्बल बनाकर सिर्फ़ अपनी स्वेच्छाचारी शक्तिको ही बाधाहीन करते रहना और डाइनामाइटको ऊपरकी जेबमें लिए फिरना एक ही बात है। एक दिन प्रलयका अस्त्र विमुख होकर धारण करनेवालेका ही वध करता है। (पबना-प्रांतीय सम्मिलनीके सभापति-पदसे दिया गया भाषण।)

देशमें जब सफलताके दिन दिखाई पड़ने लगे, तब कविने देशवासियोंसे प्रसन्नतापूर्वक तैयार रहनेके लिए आह्वान करते हुए कहा था :—

मंगलसे परिपूर्ण उस विचित्र सफलताका दिन बहुत दिनोंकी प्रतीक्षाके बाद आज भारतवर्षमें दिखाई पड़ा है, इस बातको निश्चित समझकर हमें प्रसन्नतापूर्वक तैयार होना चाहिए। किस लिए? घर छोड़कर मैदानमें उतरनेके लिए, ज़मीन जोतनेके लिए, बीज बोनेके लिए, उसके बाद सोनेकी फ़स्लमें जब लक्ष्मीका आविर्भाव होगा, तब उसी लक्ष्मीको घर लाकर नित्योत्सवकी प्रतिष्ठा करनेके लिए। (राजाप्रजा—'समस्या')

तुममें से जो कर सके और जहाँ कहीं भी कर सके, एक-एक गाँवकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेकर वहीं जाकर रहो। गाँवोंको व्यवस्थित करो। शिक्षा दो, कृषि-शिल्प व गाँवोंमें व्यवहार की जानेवाली सामग्रीके सम्बन्धमें नई रुचि पैदा करो ; गाँववालोंके रहनेका स्थान जिसमें साफ़-सुथरा, स्वास्थ्यप्रद व सुन्दर रहे, उनमें उसी उत्साहका संचार करो ; और जिसमें इकट्ठा होकर गाँवके सभी कार्योंको वे स्वयं सम्पन्न कर सकें, उनमें इसी प्रकारकी भावना पैदा करो। इस कार्यके बदलेमें तुम कोई आशा न करो। यही नहीं, गाँववालोंकी ओरसे कृतज्ञताके बदलेमें तुम्हें बाधा और अविश्वास भी स्वीकार करना होगा। इसमें कोई उत्तेजना नहीं है, कोई विरोध नहीं है, कोई घोषणा नहीं है ; बल्कि केवल धैर्य, प्रेम और एकनिष्ठ तपस्या है। मनमें केवल एक यही ध्येय होना चाहिए कि देशमें जो सबसे अधिक दुखी हैं, उनके दुःखमें भाग लेकर उसे दूर करनेमें हम अपना सारा जीवन लगा देंगे। (पबना-प्रान्तीय सम्मिलनीके सभापतिका भाषण।)

देश-सेवाके कार्यमें अपना जीवन खपा देनेमें कार्यकर्त्ताको कितनी कठोर तपस्या और त्याग स्वीकार करके आगे बढ़ना होगा, उसके आदर्शके सम्बन्धमें कविने कहा है :—

क्षुद्रतारे दिया बलिदान
बर्ज्जिते हइबे दुरे जीवनेर सर्व्व असम्मान,
सम्मुखे दाँड़ाते हबे उन्नत मस्तक उच्चे तुलि
जे-मस्तके भय लेखे नाइ लेखा, दासत्वेर धुलि
आँके नाइ कलंक-तिलक। ताहारे अन्तरे राखि
जीवनकण्टक पथे जेते हबे नीरबे एकाकी,
सुखे दुःखे धैर्य्य धरि बिरले मुछिया अश्रु-आँखि,
प्रतिदिवसेर कर्म्मे प्रतिदिन निरलस थाकि
सुखी करि सर्व्वजने। ('एवार फिराओ मोरे')

ग्राम-संगठनकी सारी समस्याओं और उद्देश्योंको ध्यानमें रखकर कविने श्रीनिकेतनमें ग्राम-संगठन-विभागकी स्थापना की। इस प्रकारकी सर्वांगीण उन्नतिमूलक ग्राम-संगठन-संस्था भारतवर्षमें दूसरी नहीं। आजकल ग्राम-संगठनका नया युग उपस्थित हुआ है। देशमें जिस समय ग्राम-संगठनकी कोई सुसम्बद्ध कार्य-प्रणाली नहीं बन पाई थी, उस समय रवीन्द्रनाथने अपनी ज़मींदारीका काम करते हुए ग्राम-संगठनके महत्वको महसूस किया और फिर बादमें उन्होंने अपने ग्राम-संगठनके आदर्शको मूर्त्त रूप देनेके लिए श्रीनिकेतनमें रचनात्मक कार्यका प्रयत्न शुरू किया।

देवरिया (गोरखपुर)]

# विश्वात्माका एक वैतालिक

श्री दादा धर्माधिकारी

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ अपने पार्थिव शरीरको त्यागकर विश्वात्माके साथ तन्मय हो गए। मांस और रक्तके चोलेमें रहते हुए भी उनकी महान आत्मा परमात्मासे समरस हो चुकी थी। ऐसे महापुरुषोंके लिए मृत्यु नवजीवन और व्यापक जीवनका समारम्भ है। हम अल्पात्मा, अल्पप्राण, हैं। इसलिए हमें उनके विछोहपर दुर्द्धर शोक होता है। परन्तु विवेकके बिना आश्वासन कहाँ है? श्रुतिमाताका प्रेममय आदेश है:—

वायुर निलम मृतमभेदं भस्मान्तँ शरीरं।
ॐ क्रतो स्मर कृतँ स्मर क्रतो स्मर कृतँ स्मर॥

अर्थात्—'यह शरीर तो पंचतत्त्वोंका बना है, वह फिरसे पंचतत्त्वोंमें मिल जायगा। हे जीव, तू तो करनीका स्मरण कर।'

हम भी गुरुदेवकी विभूतिका स्मरण करें। उनका विभूतिमत्व उनके व्यक्तित्वसे कहीं महान और व्यापक है। उनकी प्रतिभा उनके जीवनसे भी भव्य और अद्भुतरम्य है। कविश्रेष्ठ रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी प्रतिभामें गौरीशंकरकी धवल उत्तुंगता है, महासागरकी प्रशान्त गम्भीरता है और नन्दनवनकी दिव्य तथा अकृत्रिम सुन्दरता है।

मैज़िनीने कहा है—'Where there is no vision, the people perish.' अर्थात्—'जहाँ दिव्यदृष्टि नहीं होती, वहाँ जनताका नाश होता है।' साधारण मनुष्य अल्प दृष्टिवाला होता है। परन्तु कवि दूरदर्शी होता है। दूरदर्शिताका अर्थ है दृष्टिकी विशालता, भव्यता और उच्चता। इसीलिए कविको 'क्रान्तदर्शी' भी कहते हैं। रवीन्द्रनाथ इस युगके एक महान क्रान्तदर्शी कवि थे।

एक बार हम लोग काका साहबके साथ 'उत्तरायण'में गुरुदेवके दर्शनोंके लिए गए। 'उत्तरायण' के सामने जो छोटा-सा चबूतरा है, उसपर चम्पेका एक छोटा-सा पेड़ है। उस पेड़के नीचे चम्पेके फूल अस्तव्यस्त बिखरे हुए थे। परन्तु पेड़के नीचे फूलोंके बीचमें ज़रा-सा भी कूड़ा-कचरा नहीं था। सारी ज़मीन बिलकुल स्वच्छ थी। स्पष्ट था कि उस अस्तव्यस्ततामें भी योजना और व्यवस्था थी।

रवि ठाकुरकी कलाकी यही विशेषता है। उसमें सौंदर्य तो है; लेकिन कृत्रिम शृंगार नहीं है। स्वाभाविकता तो है; लेकिन उद्देश्य-हीनता नहीं है। उनसे किसीने पूछा—'आप कविता कैसे कर लेते हैं?' जवाब मिला—'मुझे क्या पता? भावनाओंका उद्रेक होते ही आँखें छलक उठती हैं, आँसू ढलने लगते हैं; उसी प्रकार जब हृदय भर आता है, तो कविता निकल पड़ती है।' बाइबिलमें कहा है—'Out of the fullness of the heart the mouth speaketh.' (हृदय जब भावोंसे लबालब हो जाता है, तो हठात् मुँह मुखरित हो उठता है।) यथार्थ कलाका यही लक्षण है। आप शान्तिनिकेतन जाइए, तो वहाँ कोई बाग़-बग़ीचा नहीं पाइएगा। वहाँ तो बड़े-बड़े विशाल वृक्षोंका सुन्दर समूह है। लेकिन बीहड़ जंगल भी नहीं है। न वाटिका है, न अरण्य है। वह तो एक सुन्दर-सा उपवन है। वहाँ स्वाभाविकता भी है और कला भी। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरकी उपासना-भूमि, शान्तिनिकेतन और विश्वभारतीके विद्यार्थियोंकी पाठशाला तथा नन्द बाबूकी कलाशाला—यही उपवन है। सत्यं, शिवं और सुन्दरंकी त्रिविध आराधना यहीं अखण्ड होती रहती है। विश्वकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी सहज-सुन्दर प्रतिभाका क्या यह उपवन प्रतीक नहीं है? इसीलिए हम कहते हैं कि रवीन्द्रनाथ एक व्यक्ति भी थे, एक संस्था भी थे और एक दिव्य कल्पना भी। लेकिन इन सबसे बढ़कर वे मनुष्यताके निःस्पृह वैतालिक और जागरूक पहरेदार थे। आधुनिक भारतकी दूसरी महान विभूति गांधीजीने उन्हें इन्हीं उपाधियोंसे गौरवान्वित किया था—'The Bard of Shantiniketan, The Great Sentinal.' वे विश्व-मानवके भक्त थे। इसीलिए मार्गदर्शक भी थे।

उपनिषदोंमें कहा है:—

'सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः।'

अर्थात्—'सूर्य जनताका नेत्र है।' मराठीमें भी एक बड़ी अर्थपूर्ण कहावत है—'जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि।' समाज-जीवनका कोई क्षेत्र, कोई स्तर, कविकी दृष्टिसे ओझल नहीं रहता। रवि ठाकुर तो 'कवि' भी थे और 'रवि' भी। इसलिए उन्होंने आधुनिक भारतकी जनताके नेत्रका काम किया। यह नेत्र भी कोई मामूली आँख नहीं थे। भगवद्गीतामें भगवानने अर्जुनसे कहा—'दिव्यं ददामि ते चक्षुः।' विश्व-रूपके दर्शनके लिए अर्जुनको दिव्यचक्षुकी ज़रूरत हुई। पतित, पद्दलित और हताश भारतको 'दिव्यचक्षु'की आवश्यकता थी। परमात्माने कहा—'दिव्यं ददामि ते चक्षुः।' और कवीन्द्रको भेज दिया। 'दिव्यचक्षु' ने अल्प भारतको वृहत् भारत और विशाल भारतके दर्शन कराए और विश्व-मानवकी उपासनाका क्षेत्र दृष्टिगोचर करा दिया।

पथ-प्रदर्शक कविवर निर्भय वैतालिक थे। विद्यापति कविने अपनी 'पुरुष-परीक्षा'में वैतालिकका वर्णन इन शब्दोंमें किया है :—

शूरान्नियोधयति बोधयति प्रमत्तान।
कौरस्यं विमोचयति का-पुरुषान् वयोभिः॥

भारतमाताके एकनिष्ठ वैतालिक रवीन्द्र भी ऐसे ही थे। वे वीरोंको प्रोत्साहित करते थे, प्रमत्तोंको शिक्षा देते थे और कापुरुषोंकी कुत्साका निवारण करते थे। भारतके अत्याचारी शासकोंने जब-जब अन्याय और अत्याचार किए, तब-तब रवीन्द्रनाथने ललकार-ललकारकर उनकी भर्त्सना की और अपने देश-भाइयोंको वीर-कर्मके लिए प्रोत्साहित किया।

कविवर और गांधीजीकी प्रतिभा और दृष्टिकोणमें विरोध-सा प्रतीत होता है; परन्तु यह विरोध वास्तविक नहीं है, विरोधाभास है। इन दोनोंकी भूमिकाएँ ही भिन्न हैं, इसलिए उनकी प्रतिपादन-पद्धतियाँ और कार्य-प्रणालियाँ भी भिन्न हैं। लेकिन भेदके मानी विरोध नहीं हैं। एक ही सिद्धान्तके भिन्न पहलुओंपर ज़ोर देनेके कारण दोनोंके प्रतिपादन और आचरणमें भेद हो गया। कविकी प्रतिभा विधायक होती है, सर्वतोभद्र होती है। वह तो तत्त्वका गायक और प्रचारक होता है। श्रवण और संकीर्तन उसके साधन हैं। इसलिए कवि सत्यके साथ सहयोगपर, ईश्वरके साथ सायुज्यतापर अधिक ज़ोर देता है। साधकका आधार कर्मयोगपर होता है। वह अनात्मासे प्राप्त होनेवाले सुखोंका त्याग करना चाहता है; क्योंकि वे सुख-बन्धनोत्पादक होते हैं। वह असत्यसे, पापसे, असहयोग करनेपर ज़ोर देता है।

गांधी और रवीन्द्रनाथकी ये विशेषताएँ १९२१-२२ में उन दोनोंके बीच जो मधुर संवाद हुआ, उसमें विषद हुई हैं। कवि कहता है—'जो सुन्दर है, वह सत्य और शिव भी होना ही चाहिए। जिसका चित्त शुद्ध है, उसे असत्य और अभद्रतामें सुन्दरताके दर्शन हो ही कैसे सकते हैं?' गांधी कहता है, 'मंगलता और सत्यमें सुन्दरता देखनेके लिए विशेष दृष्टिकी आवश्यकता है। वह दृष्टि असत्य और अन्यायके प्रतिकार तथा सत्य और न्यायके नैष्ठिक अनुष्ठानसे ही प्राप्त होती है। इसलिए साधनाका मूल सिद्धान्त यही होना चाहिए कि जो सत्य है, वह असुन्दर और अशिव हो ही नहीं सकता।' एक कहता है, 'सत्य ही शिव और सुन्दर है।' दूसरा कहता है, 'सुन्दर ही सत्य और शिव है।' बात एक ही है। एक कहता है—'ऐ मेरी जीभ, तू नारायणाख्य पीयूषका निरन्तर पान कर।' दूसरा कहता है—'स्तोत्राणि सर्वा गिरः।' सिर्फ़ कहनेके ढंगका फ़र्क़ है, मतलब एक ही है।

इसीलिए जिस विश्वात्माके दर्शन लोकमान्य तिलकने जनतात्माके रूपमें किए, जिसकी उपासना गांधी दरिद्र-नारायणकी परिचर्याके द्वारा अखण्ड कर रहे हैं, उसीका स्तवन और संकीर्त्तन कविवर गुरुदेवने अपनी रचनाओं और संस्थाओं द्वारा किया। मानवताके वैतालिकने उसे 'मानुषेर नारायण' या नर-नारायण कहा। भारतीय राष्ट्र-कवि श्री व्यासदेवने 'नारायणं नमस्कृत्य, नरं चैव नरोत्तमम्' कहकर 'नारायण'के बाद 'नर'का अभिवादन किया है। तिलक और गांधीकी तरह गुरुदेवने भी जनता और जनार्दनका अभेद मानकर नरके रूपमें ही नारायणकी आराधना की है। इसीलिए तो गुरुदेवने कहा है कि परमात्माका पादपीठ वहाँ है, जहाँ नीचसे नीच और पतित-से-पतित लोग रहते हैं। 'ईश्वरका दर्शन करना चाहो, तो वहाँ जाओ, जहाँ मिट्टी खोद-खोदकर कृषक खेती कर रहा है और पत्थर फोड़-फोड़कर रास्ता बनानेवाला बारहों मास खप रहा है। उसके दोनों हाथ कीचड़से सने हुए हैं।' अपमानित और शोषित जनताके रूपमें विराजमान नारायणकी स्तुति कविने कभी

क्षुब्ध होकर, तो कभी गद्‌गद् होकर अपनी पावन, प्रसाद-मयी वाणीसे की है।

उनका राष्ट्र-धर्म भी इसी मानव-भक्तिका एक आवश्यक अंग था। उन्होंने आधुनिक स्थूल राष्ट्रवादको धिक्कारते हुए भारतवासियोंसे कहा—'संसार एक ऐसे राष्ट्रकी प्रतीक्षा कर रहा है, जो अपने-आपसे परमात्माको अधिक प्रेम करे।' उन्होंने एक व्यापक और विशाल भारतीय राष्ट्रकी कल्पना देशके सामने उपस्थित की—एक ऐसा भारतीय राष्ट्र, जो विश्वकी प्रतिकृति होगा। इसी कल्पनाका परिपाक उनकी 'विश्वभारती'में हुआ। यह पवित्र भारतभूमि हमारे लिए यज्ञ और उपासनाकी भूमि है। मानवताके इस महान यज्ञमें शामिल होनेके लिए कविवरने मानव-मात्रका आवाहन किया और अपने पुण्यश्लोक पूर्वजोंका हवाला देते हुए कहा—'हमारे पूर्वजोंने अवश्य ऐसी एक शुभ्र धवल दरी बिछाई थी, जिसपर बैठनेके लिए उन्होंने सौजन्य और बन्धुतासे सारे संसारको निमन्त्रित किया था।'

रवि ठाकुरकी सहज-सुन्दर, चतुरस्त्र, विश्वव्यापी और विश्वतोमुखी प्रतिभाका कहाँ तक बखान करें ! वे जिस ऊँचाई तक पहुँचते थे, उसकी तरफ़ आँख उठाकर देखते ही साधारण मनुष्योंको गश आने लगता है। छुटपनसे ही उन्हें उच्च स्तरपर विचरनेका बड़ा शौक था। उनकी उर्द्धगामी आत्मा विशाल क्षितिजमें ही संचार कर सकती थी। अपनी बाल्यावस्थामें उन्हें घरकी सबसे ऊपरवाली छतपर चढ़नेमें बड़ा मज़ा आता था। वे कहते थे—'उस छतपर चढ़ना मानो मनुष्योंके घने निवासस्थानोंसे ऊपर उठनेके समान था। जब मैं उस छतपर चढ़ता, तो नीचे फैले हुए कलकत्ता शहरपर मेरा मन अकड़कर चहलकदमी करता।' यह तो बालक रवीन्द्रकी मनोवृत्ति थी। मानवोपासक राष्ट्रवीर कविवर गुरुदेवकी प्रतिभा मानो गौरीशंकरके शिखरपर आरूढ़ होकर अनन्त क्षितिजमें विहार करती थी। लांगफेलोके शब्दोंमें :—

Thus alone can we attain,
To those turrets where the eye,
Sees the world as one vast plain,
And one boundless reach of the sky.

भारत-भास्कर तेजस्वी परन्तु शीतल रवि ठाकुरको प्रणाम। 'नमः परमर्षिभ्यो, नमः परमर्षिभ्यः।'

बजाजवाड़ी, वर्धा ]

---

# बाँसुरी

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बाँसुरीको वाणी चिरकालकी वाणी है,—शिवकी जटासे गंगाकी धारा—परिचित पृथ्वीकी छातीपर से बहती ही चली जा रही है; मानो अमरावतीका शिशु उतर आया हो मर्त्यलोककी धूलमें, स्वर्गका खेल खेलने।

सड़कके किनारे खड़ा-खड़ा बाँसुरी सुनता हूँ, तो मन न जाने कैसा करने लगता है, कुछ समझमें नहीं आता। परिचित सुख-दुःखके साथ उस व्यथाका मिलान करता हूँ, तो मिलता नहीं। देखता हूँ—परिचित हँसीसे वह कहीं उज्ज्वल है, परिचित आँसुओंसे कहीं गम्भीर है।

और मालूम होता रहता है—परिचित सत्य नहीं है, अपरिचित ही सत्य है। मन ऐसा ऊटपटांग सोचता कैसे है? शब्दोंमें इसका कोई जवाब नहीं।

आज तड़के ही उठकर सुना,—नौबतकी बाँसुरी बज रही है—किसीका व्याह है।

व्याहकी इस पहले दिनकी तानके साथ रोज़मर्राकी तान मिलती कहाँ है? छिपी हुई अतृप्ति, गहरी निराशा; निरादर, अपमान, अवसाद; तुच्छ कामनाकी कृपणता, नीरसताका भद्दा कलह, क्षमा-हीन क्षुद्रताका संघात, अभ्यस्त जीवन-यात्राकी धूलि-लिप्त दरिद्रता,—बाँसुरीकी देववाणीमें इन सब बातोंका आभास कहाँ है?

गीतके स्वरने संसारके ऊपरसे इन परिचित बातोंका परदा एक झटकेमें फाड़ फेंका है।

चिरकालकी वर-वधूकी शुभदृष्टि ( वरेच्छा ) किस चुनरीके सलज्ज घूँघटके नीचे हो रही है,—यह बात तो बाँसुरीकी तान ही से प्रकट हो गई।

जब यहाँका माला-परिवर्तनका गीत बाँसुरीमें बज उठा, तो यहाँकी इस वधूकी ओर निहारकर देखा—उसके गलेमें सोनेका हार है, पैरोंमें छड़े हैं, मानो वह क्रन्दनके सरोवरमें आनन्दके खिले हुए कमलपर खड़ी है।

स्वर-लहरीके भीतरसे वह इस संसारकी नहीं मालूम होती। वही परिचित घरकी लड़की अब अपरिचित घरकी बहूके रूपमें दिखाई देने लगी है।

बाँसुरीने कहा—यही सत्य है।

अनु०—धन्यकुमार जैन

# एक कुत्ता और एक मैना

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

आजसे कोई तीन-चार वर्ष पहले गुरुदेवके मनमें आया कि शान्तिनिकेतनको छोड़कर कहीं अन्यत्र जायँ। स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं था। शायद इसलिए, या पता नहीं क्यों, तै पाया कि वे श्रीनिकेतनके पुराने तिमंज़िले मकानमें कुछ दिन रहें। शायद मौजमें आकर ही उन्होंने यह निर्णय किया था। वे सबसे ऊपरके तल्लेमें रहते थे। उन दिनों उस तक पहुँचनेके लिए लोहेकी चक्करदार सीढ़ियाँ थीं, और वृद्ध और क्षीणवपु रवीन्द्रनाथके लिए उसपर चढ़ सकना असम्भव था। फिर भी बड़ी कठिनाईसे उन्हें वहाँ ले जाया जा सका।

उन दिनों छुट्टियाँ थीं। आश्रमके अधिकांश लोग बाहर चले गए थे। एक दिन हमने सपरिवार उनके 'दर्शन' की ठानी। 'दर्शन'को मैं जो यहाँ विशेषरूपसे दर्शनीय बनाकर लिख रहा हूँ, उसका कारण यह है कि गुरुदेवके पास जब कभी मैं जाता था, तो प्रायः वे यह कहकर मुस्करा देते थे कि 'दर्शनार्थी हैं क्या ?' शुरू-शुरूमें मैं उनसे ऐसी बँगलामें बात करता था, जो वस्तुतः हिन्दी-मुहाविरोंका अनुवाद हुआ करती थी। किसी बाहरके अतिथिको जब मैं उनके पास ले जाता था, तो कहा करता था—'एक भद्र लोक आपनार दर्शनेर जन्य ऐसे छेन।' यह बात हिन्दीमें जितनी प्रचलित है, उतनी बँगलामें नहीं। इसलिए गुरुदेव ज़रा मुस्करा देते थे। बादमें मुझे मालूम हुआ कि मेरी यह भाषा बहुत अधिक पुस्तकीय है, और गुरुदेवने उस 'दर्शन' शब्दको पकड़ लिया था। इसलिए जब कभी मैं असमयमें पहुँच जाता था, तो वे हँसकर पूछते थे—'दर्शनार्थी लेकर आए हो क्या ?' यहाँ यह दुखके साथ कह देना चाहता हूँ कि अपने देशके दर्शनार्थियोंमें कितने ही इतने प्रगल्भ होते थे कि समय-असमय, स्थान-अस्थान, अवस्था-अनवस्थाकी एकदम परवा नहीं करते थे और रोकते रहनेपर भी हल पड़ते थे। ऐसे 'दर्शनार्थियों' से गुरुदेव कुछ भीत-भीत-से रहते थे। सो मैं मय बाल-बच्चोंके एक दिन श्रीनिकेतन जा पहुँचा। कई दिनोंसे उन्हें देखा नहीं था।

गुरुदेव वहाँ बड़े आनन्दमें थे। अकेले रहते थे। भीड़-भाड़ उतनी नहीं होती थी, जितनी शान्तिनिकेतनमें। जब हम लोग ऊपर गए, तो गुरुदेव बाहर एक कुर्सीपर चुपचाप बैठे अस्तगामी सूर्यकी ओर ध्यान-स्तिमित नयनोंसे देख रहे थे। हम लोगोंको देखकर मुस्कराए, बच्चोंसे ज़रा छेड़-छाड़ की, कुशल-प्रश्न पूछे और फिर चुप हो रहे। ठीक उसी समय उनका कुत्ता धीरे-धीरे ऊपर आया और उनके पैरोंके पास खड़ा होकर पूँछ हिलाने लगा। गुरुदेवने उसकी पीठपर हाथ फेरा। वह आँखें मूँदकर अपने रोम-रोमसे उस स्नेह-रसका अनुभव करने लगा। गुरुदेवने हम लोगोंकी ओर देखकर कहा—'देखा तुमने, ये आ गए। कैसे इन्हें मालूम हुआ कि मैं यहाँ हूँ, आश्चर्य है। और देखो, कितनी परितृप्ति इनके चेहरेपर दिखाई दे रही है !'

हम लोग उस कुत्तेके आनन्दको देखने लगे। किसीने नहीं दिखाई थी, किसीने उसे यह नहीं बताया था कि उस कुत्तेको राह उसके स्नेह-दाता यहाँसे दो मील दूर हैं और फिर भी वह पहुँच गया ! इसी कुत्तेको लक्ष्य करके उन्होंने आरोग्यमें इस भावकी एक कविता लिखी थी—"प्रतिदिन प्रातःकाल यह भक्त कुत्ता स्तब्ध होकर आसनके पास तब तक बैठा रहता है, जब तक अपने हाथोंके स्पर्शसे मैं इसका संग नहीं स्वीकार करता। इतनी-सी स्वीकृति पाकर ही उसके अंग-अंगमें आनन्दका प्रवाह बह उठता है। इस वाक्यहीन प्राणि-लोकमें सिर्फ़ यही एक जीव अच्छा बुरा सबको भेदकर सम्पूर्ण 'मनुष्य'को देख सका है ; उस आनन्दको देख सका है, जिसे प्राण दिया जा सकता है, जिसमें अहैतुक प्रेम ढाल दिया जा सकता है, जिसकी चेतना असीम चैतन्य लोकमें राह दिखा सकती है। जब मैं इस मूक हृदयका प्राणपण आत्मनिवेदन देखता हूँ, जिसमें वह अपनी दीनता बताता रहता है, तब मैं यह सोच ही नहीं पाता कि उसने अपने सहज बोधसे मानव-स्वरूपमें कौन-सा मूल्य आविष्कार किया है ; इसकी भाषाहीन दृष्टिकी करुण व्याकुलता जो कुछ

समझती है, उसे समझा नहीं पाती, और मुझे इस सृष्टिमें मनुष्यका सच्चा परिचय समझा देती है!" इस प्रकार कविकी मर्मभेदी दृष्टिने इस भाषाहीन प्राणीकी करुण दृष्टिके भीतर उस विशाल मानव-सत्यको देखा है, जो मनुष्य मनुष्यके अन्दर भी नहीं देख पाता!

मैं जब यह कविता पढ़ता हूँ, तब मेरे सामने श्रीनिकेतनके तितल्लेपर की वह घटना प्रत्यक्ष-सी हो जाती है। वह आँख मूँदकर अपरिसीम आनन्द, वह 'मूक हृदयका प्राणपण आत्मनिवेदन' मूर्तिमान हो जाता है। उस दिन मेरे लिए वह एक छोटी-सी घटना थी, आज वह विश्वकी अनेक महिमाशाली घटनाओंकी श्रेणीमें बैठ गई है। एक आश्चर्यकी बात और इस प्रसंगमें उल्लेख की जा सकती है। जब गुरुदेवका चिताभस्म कलकत्तेसे आश्रममें लाया गया, उस समय भी न जाने किस सहज बोधके बलपर वह कुत्ता आश्रमके द्वार तक आया और चिताभस्मके साथ अन्यान्य आश्रमवासियोंके साथ शान्त-गम्भीर भावसे उत्तरायण तक गया! आचार्य क्षितिमोहन सेन सबके आगे थे। उन्होंने मुझे बताया है कि वह चिता-भस्मके कलशके पास थोड़ी देर चुपचाप बैठा भी रहा था!

कुछ और पहलेकी एक घटना याद आ रही है। उन दिनों मैं शान्तिनिकेतनमें नया ही आया था। गुरुदेवसे अभी उतना धृष्ट नहीं हो पाया था। गुरुदेव उन दिनों सुबह अपने बग़ीचेमें टहलनेके लिए निकला करते थे। मैं एक दिन उनके साथ हो गया था। मेरे साथ एक और पुराने अध्यापक थे, और सही बात तो यह है कि उन्होंने ही मुझे भी साथ ले लिया था। गुरुदेव एक-एक फूल-पत्तेको ध्यानसे देखते हुए अपने बग़ीचेमें टहल रहे थे और उक्त अध्यापक महाशयसे बातें करते जा रहे थे। मैं चुपचाप सुनता जा रहा था। गुरुदेवने बातचीतके सिलसिलेमें एक बार कहा—'अच्छा साहब, आश्रमके कौए क्या हो गए? उनकी आवाज़ सुनाई ही नहीं देती?' न तो मेरे साथी उन अध्यापक महाशयको यह ख़बर थी और न मुझे ही। बादमें मैंने लक्ष्य किया कि सचमुच कई दिनों तक आश्रममें कौए नहीं दीख रहे हैं। मैंने तब तक कौओंको सर्वव्यापक पक्षी ही समझ रखा था। अचानक उस दिन मालूम हुआ कि ये भले आदमी भी कभी-कभी प्रवासको चले जाते हैं या चले जानेको बाध्य होते हैं। एक लेखकने कौओंकी आधुनिक साहित्यिकोंसे उपमा दी है, क्योंकि इनका मोटो है—'मिस्चीफ़ फ़ार मिस्चिफ़्स सेक' (शरारतके लिए ही शरारत)। तो क्या कौओंका प्रवास भी किसी शरारतके उद्देश्यसे ही था? प्रायः एक सप्ताहके बाद बहुत कौए दिखाई दिए।

एक दूसरी बार मैं सबेरे गुरुदेवके पास उपस्थित था। उस समय एक लँगड़ी मैना फुदक रही थी। गुरुदेवने कहा—'देखते हो, यह यूथभ्रष्ट है। रोज़ फुदकती है, ठीक यहीं आकर। मुझे इसकी चालमें एक करुण भाव दिखाई देता है।' गुरुदेवने अगर कह न दिया होता, तो मुझे उसका करुण भाव एकदम नहीं दीखता। मेरा अनुभव था कि मैना करुण भाव दिखानेवाला पक्षी है ही नहीं। वह दूसरोंपर अनुकम्पा ही दिखाया करती है। तीन-चार वर्षसे मैं एक नए मकानमें रहने लगा हूँ। मकानके निर्माताओंने दीवारोंमें चारों ओर एक-एक सूराख़ छोड़ रखा है—यह कोई आधुनिक वैज्ञानिक ख़तरेका समाधान होगा। सो एक-एक मैना-दम्पती नियमित भावसे प्रतिवर्ष यहाँ आकर गृहस्थी जमाया करते हैं। तिनके और चिथड़ोंका अम्बार लगा देते हैं। भलेमानस गोबरके टुकड़े तक ले आना नहीं भूलते। हैरान होकर हम सूराख़ोंमें ईंटें भर देते हैं; परन्तु वे ख़ाली बची जगहका ही उपयोग कर लेते हैं। पति-पत्नी जब कोई एक तिनका लेकर सूराखमें रखते हैं, तो उनके भाव देखने लायक होते हैं। पत्नी देवीका तो क्या कहना! एक तिनका ले आईं, तो फिर एक पैरपर खड़ी होकर ज़रा पंखोंको फटकार दिया, चोंचको अपने ही परोंसे साफ़ कर लिया और नाना प्रकारकी मधुर और विजयोद्घोषी वाणीमें गान शुरू कर दिया! हम लोगोंकी तो उन्हें कोई परवा ही नहीं रहती। अचानक इसी समय अगर पति देवता भी कोई काग़ज़का या गोबरका टुकड़ा लेकर उपस्थित हुए, तब तो क्या कहना! दोनोंके नाच-गान और आनन्द-नृत्यसे सारा मकान मुखरित हो उठता है। इसके बाद ही पत्नी देवी ज़रा हम लोगोंकी ओर मुख़ातिब होकर लापरवाही भरी अदासे कुछ बोल देती हैं। पति देवता भी मानो मुस्कराकर हमारी ओर देखते, कुछ रिमार्क करते और मुँह फेर लेते हैं। पक्षियोंकी भाषा तो मैं नहीं जानता; पर मेरा निश्चित विश्वास है कि उनमें कुछ इस तरहकी बातें हो जाया करती हैं:—

पत्नी—ये लोग यहाँ कैसे आ गए जी !

पति—उँह, बेचारे आ गए हैं, तो रह जाने दो। क्या कर लेंगे !

पत्नी—लेकिन फिर भी इनको इतना तो ख़याल होना चाहिए कि यह हमारा प्राइवेट घर है !

पति—आदमी जो हैं, इतनी अक़ल कहाँ !

पत्नी—जाने भी दो।

पति—और क्या !

सो इस प्रकारकी मैना कभी करुण हो सकती है, यह मेरा विश्वास ही नहीं था। गुरुदेवकी बातपर मैंने ध्यानसे देखा, तो मालूम हुआ कि सचमुच ही उसके मुखपर एक करुण भाव है। शायद यह विधुर पति था, जो पिछली स्वयंवर-सभाके युद्धमें आहत और परास्त हो गया था। या विधवा पत्नी है, जो पिछले बिड़ालके आक्रमणके समय पतिको खोकर, युद्धमें ईषत् चोट खाकर एकान्त-विहार कर रही है। हाय, क्यों इसकी ऐसी दशा है ! शायद इसी मैनाको लक्ष्य करके गुरुदेवने बादमें एक कविता लिखी थी, जिसके कुछ अंशका सार इस प्रकार है :—

"उस मैनाको क्या हो गया है, यही सोचता हूँ। क्यों वह दलसे अलग होकर अकेली रहती है? पहले दिन देखा था सेमरके पेड़के नीचे मेरे बग़ीचेमें, जान पड़ा जैसे एक पैरसे लँगड़ा रही हो। इसके बाद उसे रोज़ सबेरे देखता हूँ—संगीहीन होकर कीड़ोंका शिकार करती फिरती है। चढ़ आती है बरामदेमें। नाच-नाचकर चहलक़दमी किया करती है, मुझसे ज़रा भी नहीं डरती। क्यों है ऐसी दशा इसकी? समाजके किस दण्डपर उसे निर्वासन मिला है, दलके किस अविचारपर उसने मान किया है? कुछ ही दूरीपर और मैनाएँ बक-झक कर रही हैं, घासपर उछल-कूद रही हैं, उड़ती फिरती हैं शिरीष वृक्षकी शाखाओंपर, इस बेचारीको ऐसा कुछ भी शौक़ नहीं है। इसके जीवनमें कहाँ गाँठ पड़ी है, यही सोच रहा हूँ। सबेरेकी धूपमें मानो सहज मनसे आहार चुगती हुई झड़े हुए पत्तोंपर कूदती फिरती है सारा दिन। किसीके ऊपर इसका कुछ अभियोग है, यह बात बिल्कुल नहीं जान पड़ती। इसकी चालमें वैराग्यका गर्व भी तो नहीं हैं, दो आग-सी जलती आँखें भी तो नहीं दिखतीं।" इत्यादि।

जब मैं इस कविताको पढ़ता हूँ, तो उस मैनाकी करुण मूर्ति अत्यन्त साफ़ होकर सामने आ जाती है। कैसे मैंने उसे देखकर भी नहीं देखा और किस प्रकार कविकी आँखें इस विचारके मर्मस्थल तक पहुँच गईं, सोचता हूँ, तो हैरान हो रहता हूँ। एक दिन वह मैना उड़ गई। सायंकाल कविने उसे नहीं देखा। 'जब वह अकेली जाया करती है उस डालके कोनेमें ; जब झींगुर अंधकारमें झनकारता रहता है ; जब हवामें बाँसके पत्ते झरझराते रहते हैं, पेड़ोंकी फाँकसे पुकारा करता है नींद तोड़नेवाला संध्यातारा !' कितना करुण है उसका ग़ायब हो जाना !

शान्तिनिकेतन (बंगाल) ]

# एक चितवन

### श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गाड़ीपर चढ़ते समय ज़रा-सा मुँह फेरकर वह मुझे अपनी अन्तिम चितवन दे गई है।

इतने बड़े संसारमें उतनी-सी चीज़को मैं रखूँ कहाँ ?

दंड-पल-मुहूर्त रात और दिन जहाँ पैर न पड़ते हों, ऐसी ज़रा-सी जगह कहाँ मिले ?

बादलोंके सुनहले रंग जिस संध्यामें विलीन हो जाते हैं, यह चितवन क्या उसी संध्यामें बिला जायगी ?

नागकेशरकी सुनहली रेणु जिस मेहसे धुल जाती है, यह भी क्या उसी मेहसे धुल जायगी ?

संसारकी हज़ारों चीज़ोंके बीच बिखेरे रहनेसे यह रहेगी क्यों ?—हज़ारों बातोंके जंजालमें, हज़ारों वेदनाओंके ढेरमें ?

उसका वह क्षण-भरका दान संसारके और-सबको पीछे छोड़कर मेरे ही हाथमें आ पहुँचा है। इसे मैं गीतमें गूँथकर रखूँगा, छन्दमें बाँधकर ; मैं इसे रखूँगा सौन्दर्यकी अमरावतीमें।

पृथ्वीपर राजाका प्रताप और धनीका सौन्दर्य मरनेके लिए ही हुआ है। पर आँखोंके आँसूमें क्या वह अमृत नहीं है, जो एक पल-भरकी चितवनको चिरकाल तक जीवित रख सके ?

गीतके सुरने कहा—"अच्छा, मुझे दो। मैं राजाके प्रतापको नहीं छूता, धनीके ऐश्वर्यको भी नहीं ; बल्कि ये छोटी-छोटी चीज़ें ही मेरे लिए चिरकालका धन हैं ; उन्हींसे मैं असीमके गलेका हार गूँथा करता हूँ।"

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता ]

रवीन्द्रनाथका महाप्रयाण

[ चित्रकार—श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

सम्मुखे शान्ति पारावार, भासाओ तरणी हे कर्णधार ।

—रवीन्द्रनाथ
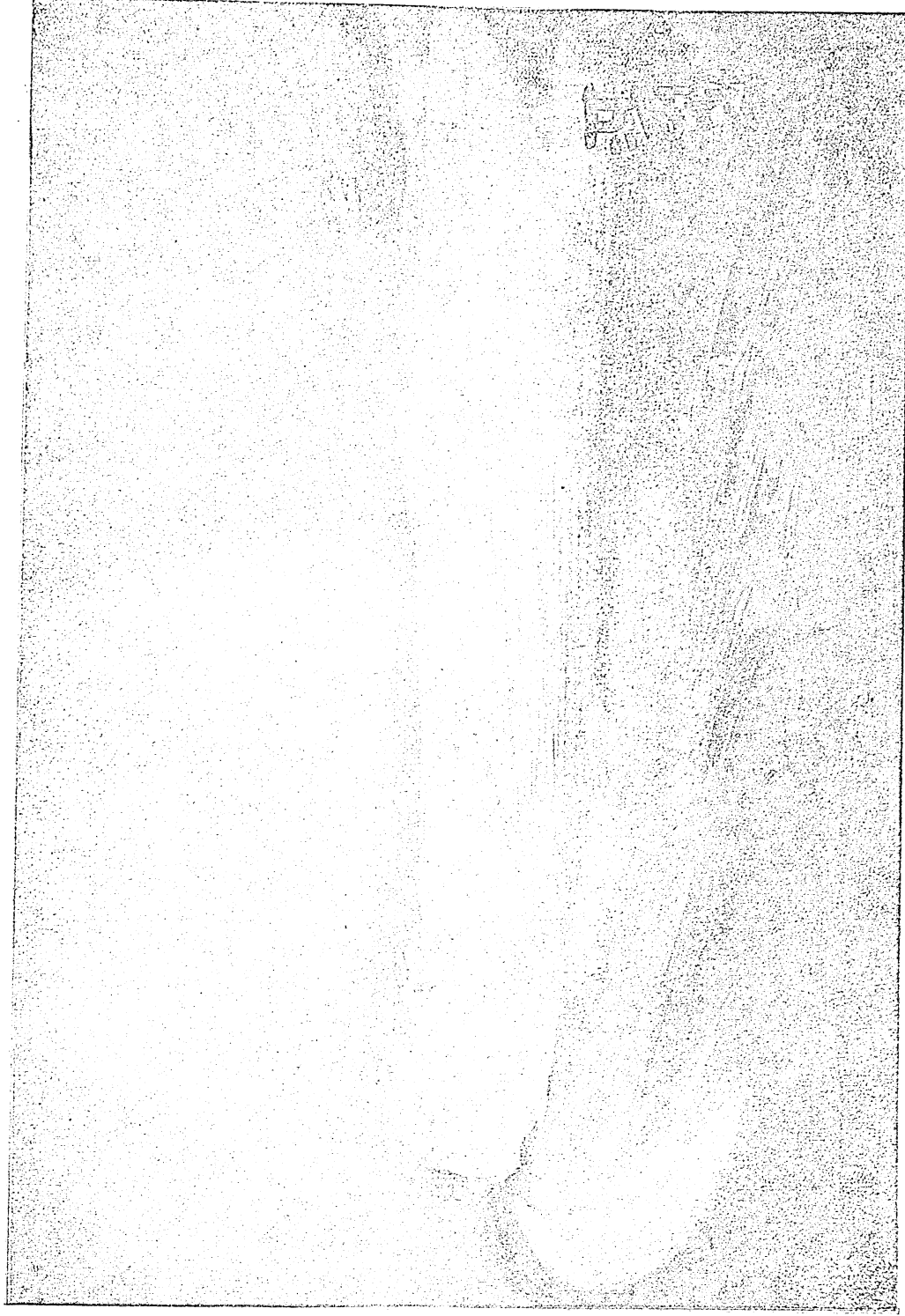
# अमर कलाकार रवीन्द्रनाथ

श्री अमरनाथ झा

रवि बाबूके प्रथम दर्शन मुझे सन् १९१४ में हुए थे, जब मैं प्रयागमें कालेजमें पढ़ता था। तब वे नोबेल-पुरस्कार पा चुके थे। उनकी कुछ रचनाएँ मैंने बँगलामें पढ़ी थीं। आज भी—सत्ताईस वर्ष बाद—मुझे उनकी वह प्रकाशमय सुन्दर मूर्त्ति भूली नहीं है। इस बीचमें उनके और भी कई बार दर्शन हुए—दूरसे, सामीप्यमें, सभाओंमें, जोड़ासाँको-भवनके एकान्तमें, कलकत्तेमें और प्रयागमें। उनकी कृपा, उनका औदार्य, उनके हृदयकी विशालता, उनकी आकर्षण-शक्ति मैं कब भूल सकता हूँ? उनके कई निमंत्रण भेजनेपर भी मैं शान्तिनिकेतन न जा सका, इसका मुझे आजन्म खेद रहेगा।

हम जब उनके जीवनपर विचार करते हैं, तो हमको आश्चर्य होता है उनकी कृतियोंपर, हमें गौरव होता है इन कृतियोंकी विलक्षणतापर। उनके जीवनके जिस अंशपर भी हम ध्यान दें, हमें विश्वास है, उनकी कीर्त्ति केवल समसामयिक होकर नहीं रह जायगी। उनकी कीर्त्ति किसपर निर्भर करती है? उनका जीवन, उनका व्यक्तित्व, बहुत ही शिक्षाप्रद है। लक्ष्मीके प्रियपात्र, संसारके सभी सुखोंके साधन रहते हुए भी रवि बाबू सरस्वतीके सच्चे उपासक थे। मैं तो नहीं जानता कि किसी युगमें भी कलाकी ऐसी सम्पूर्ण साधाना किसी औरने की, जैसी कि रवि बाबूने। मैं उनको श्रेष्ठ कलाकारके रूपमें श्रद्धांजलि भेंट करता हूँ।

कलाके किस अंगकी उनसे पुष्टि नहीं हुई? गीति-काव्यमें उनका स्थान बहुत ऊँचा है। शब्द-विन्यास, भावुकता, छन्दोंपर आधिपत्य, छन्दोंके निर्माण, लालित्य, जिस दृष्टिसे भी हम देखें, इन पद्योंकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। उपन्यास और आख्यायिकामें चरित्र-चित्रण और कथाकी रोचकता उत्तम हैं।

नाटकोंमें भी उन्हें बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। उनके निबन्धोंमें उच्च आदर्शोंका समावेश है, विषयोंका क्षेत्र विशाल है, गद्य-शैली चित्ताकर्षक है। साहित्यसे आगे बढ़कर संगीत-कलामें उन्होंने एक बिल्कुल ही नई रीतिका आविष्कार किया, जिसमें शास्त्रोंकी दुर्गमता और शास्त्रोक्त सिद्धान्तोंकी जटिलतासे बचते हुए उनका बराबर यह यत्न रहा कि संगीत जन-प्रिय और श्रवण-मधुर हो। नृत्य और नाट्कलामें भी वे बड़े कुशल थे। वृद्धावस्थामें उन्होंने चित्रकलामें काफ़ी ख्याति प्राप्त की। अंगरेज़ी और बँगला दोनोंमें उनके अक्षर बड़े ही सुन्दर थे।

कला सर्वमान्य नहीं होती। इस युगमें कला धनियों अथवा आलसियोंकी वस्तु समझी जाती है। यह बहुधा कहा जाता है कि व्यथित संसार संगीत, साहित्य और चित्रकलासे सन्तुष्ट नहीं रह सकता है। ऐसे विचारवाले भी रवि बाबूका आदर करते हैं, क्योंकि उन्होंने और भी कई ऐसे काम किए, जिनसे उनके उद्योग और उनकी कार्यकुशलताका पर्याप्त परिचय मिलता है। शान्तिनिकेतन, श्रीनिकेतन और विश्वभारतीकी स्थापना कोई कर्मयोगी ही कर सकता था। इन संस्थाओंपर रवि बाबूके व्यक्तित्वकी छाप है। ये संस्थाएँ ही आपकी अमर कीर्त्तियाँ हैं। इन संस्थाओंकी शिक्षा-प्रणाली, पाठ्यक्रम, रहनेके नियम तथा समस्त वातावरण रवि बाबूके उच्च आदर्शोंका ही फल हैं। इनकी सहायता करना, इनकी उन्नतिमें सहायक होना हम सबका कर्त्तव्य है।

हम उनके यह वाक्य स्मरण रखेंगे :—

"There are other factors of life which are visitors that come and go. Art is the quest that comes and remains. The others may be important, but art is inevitable."

अर्थात्—जीवनके अनेक पहलू आगन्तुकोंकी तरह आते और चले जाते हैं; किन्तु कला एक ऐसा अतिथि है, जो आकर फिर कहीं नहीं जाता। अन्यान्य आगन्तुक पहलू महत्वपूर्ण हो सकते हैं; किन्तु कला तो अपरि-हार्य है।

विश्वविद्यालय, प्रयाग ]

# चिरयुवा और चिरजीवी रवीन्द्रनाथ

श्री इलाचन्द्र जोशी

रवीन्द्रनाथकी तुलनाका प्रश्न उठते ही मेरी मानसिक आँखोंके आगे मेरे शैशव-कालसे चिर-परिचित हिमालयका चित्र खड़ा हो जाता है। उनके व्यक्तित्वका वही उन्नत और उत्तुंग रूप, वही विराट् और विस्तृत प्रसार, वही शुभ्र-समुज्ज्वल, अमल-धवल, निष्कलुष विभास, अनेक संघर्ष-विघर्षोंके बीच वही अचल और अटल स्थिरता, धीरता और गाम्भीर्य! केवल बाह्य साम्य ही नहीं, हिमालयसे रवीन्द्रनाथके व्यक्तित्वकी भीतरी समता भी पूर्ण मात्रामें पाई जाती है। हिमालयका कठिन हिम-प्रस्तर-मण्डित रूप प्रकाश्यतः अत्यन्त कठोर और, कालिदासके कथनानुसार, अपनेसे नीची सतहकी पृथ्वीके रात-दिनके सुख-दुःखमय जीवनकी तुच्छताके प्रति त्र्यम्बक महादेवकी तरह अट्टहास करता हुआ-सा जान पड़ता है। पर वास्तवमें उसके भीतर इतनी करुणा और तरलता आबद्ध रहती है कि गंगा, यमुना आदि महासरिताओंकी जो पुण्यधाराएँ भारतकी समतल भूमिको सुजला, सुफला और शस्यश्यामला बनाती हुई अनन्त जीवन प्रदान करती हैं, उनकी उत्पत्ति हिमालयके उसी कठिन हृदयके पिघलनेसे हुई है। रवीन्द्रनाथने भी अपने हृदयके निपीड़नसे साहित्यको अमृतमय संजीवन-रस प्रदान किया है। उन्होंने 'जीवन-देवता' शीर्षक कवितामें स्वयं लिखा है :—

> "दुःख सुखेर लक्ष धाराय
> पात्र भरिया दियेछि तोमाय,
> निठुर पीड़ने निङाड़ि वक्ष दलित द्राक्षासम।"

अर्थात्—"मैंने अपने हृदयको निष्ठुर पीड़नसे द्राक्षाके समान निचोड़-निचोड़कर सुख-दुःखकी लाखों धाराओंसे पात्र भर-भरकर तुम्हें प्रदान किया है।"

भूतत्त्ववेत्ताओंका कहना है कि आदिम कालमें मिट्टीकी तहपर तह जमते चले जानेसे हिमालयके तुंग गिरि-शृंगोंका निर्माण हुआ है। उन विभिन्न युगोंकी मिट्टीकी राशिके साथ ही विभिन्न प्रकारके रत्न भी उस महान गिरिराजिके भीतर संचित होते चले गए। केवल इतना ही नहीं, लाखों वर्ष पहलेके जो विचित्र प्राणी आज धरातलसे लुप्त हैं, उनके कंकाल मिट्टीकी उन तहोंके बीचमें दबकर चिरकालके लिए अपना चिह्न छोड़ गए हैं। आज वे हिमालयके तत्त्वोंके साथ एकरूप होकर पत्थरके रूपमें परिणत हो गए, पर पाषाण अवस्थामें भी उनके चिह्न स्पष्ट और सुनिश्चित रूपमें वर्तमान हैं। उसी प्रकार रवीन्द्रनाथके विराट् और गहन व्यक्तित्वका निर्माण भी अनेक युगोंके प्लावनोंसे संचित संस्कृतियोंके विभिन्न स्तरोंके जमते रहनेसे हुआ है, और आदि युगसे लेकर आधुनिक युग तककी उन विविध संस्कृतियोंके विचित्र रत्नोंका अनन्त भण्डार उनके अवचेतन मनके अतलमें निहित रहा है, जिनका उपयोग उनका सचेत मन आश्चर्यजनक प्रेरणाके क्षणोंमें समय-समयपर करता रहा है। और विभिन्न युगोंके प्राणियोंके जो अवशिष्ट चिह्न उनके हिमालयोपम व्यक्तित्वके विविध स्तरोंके बीचमें उनके अन्तस्तत्त्वोंके साथ घुल-मिलकर एकरूप हो गए हैं, उनके 'जीवन-देवता'ने उन्हें खोद-खोदकर इस सफ़ाईसे बाहर निकाला है कि एक भी fossil (प्रस्तरीभूत कंकाल) का कोई भाग कहीं टूटने नहीं पाया है। अन्तर केवल यह है कि हिमालयके कंकाल-पाषाण सदाके लिए निष्प्राण हैं, पर रवीन्द्रनाथके अन्तस्तरोंके बीचमें दबे हुए fossils उनके प्राणोंका संजीवन रस पाकर आश्चर्यजनक रूपसे जी उठे हैं। प्रसंगवश हिमालयसे रवीन्द्रनाथके व्यक्तित्वकी एक और चरम तुलना करनेका लोभ मैं सँभाल नहीं पाता। वह तुलना कालिदासकी सुझाई हुई है। 'कुमारसम्भव'के प्रथम श्लोकमें हिमालयका परिचय देते हुए कालिदासने लिखा है :—

> "पूर्वापरौ तोयनिधीऽवगाह्य
> स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।"

—'हिमालय अपने पूर्व और पश्चिम दोनों छोरोंके समुद्रमें निमग्न होते हुए पृथ्वीके मानदण्डके समान स्थित जान पड़ता है।' उसी प्रकार रवीन्द्रनाथ भी प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति-समुद्रोंमें मज्जन करते हुए दोनोंमें सामंजस्य लानेका पूर्ण प्रयत्न करते रहे और अपने

जीवन-कालमें उन दोनोंके मानदण्ड-स्वरूप स्थित रहे।

जिस प्रकार रवीन्द्रनाथकी साहित्य-रचना बहुमुखी रही है—कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना, दर्शन-तत्त्व, इतिहास, भौतिक विज्ञान, जीवशास्त्र, ज्योतिष आदि विभिन्न विषयोंपर उन्होंने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं—उसी प्रकार अपने जीवनमें भी उन्होंने सत्यके विविध पहलुओंको निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों रूपोंसे अपनानेकी दीर्घ साधना की। उनके जीवनका यह सिद्धान्त था कि "भूमैव सुखं नाल्पे सुखमस्ति।"—समग्रतामें ही पूर्ण सुख है, जीवनको खण्ड-खण्ड रूपसे विभाजित करनेमें कोई सुख नहीं है :—

"सहे ना सहे ना आर जीवनेरे खण्ड-खण्ड करि'
दण्डे दण्डे क्षय
× × ×
जे पथे अनन्त लोक चलियाछे भीषण नीरवे
से पथ प्रान्तेर—
एक पार्श्वे राखो मोरे निरखिबो विराट् स्वरूप
युगयुगान्तेर।"

—'जीवनको दण्ड-दण्डमें ( पल-पलमें ) खण्ड-खण्ड करके क्षय होने देना अब अधिक सहन नहीं होता। × × × जिस पथमें अनन्त जन-समुदाय भीषण नीरवताके साथ चला जा रहा है, उसके पास लाकर मुझे खड़ा करो, ताकि मैं युगयुगान्तरका विराट रूप देख सकूँ।'

कविकी इस भूमा, विराट अथवा समग्रताके साथ घनिष्ठ परिचय प्राप्त करनेकी मूलमनोवृत्तिने उन्हें जो बहुमुखी प्रतिभा प्रदान की, उसके फलस्वरूप उनकी लेखनीसे नाना वैचित्र्यपूर्ण उद्गार समय-समयपर निकलते रहे हैं, जिसका उप-परिणाम यह हुआ है कि उनके विभिन्न भावों अथवा विचारोंमें कहीं-कहीं विचित्र विरोधाभास-सा पाया जाता है। पर यदि व्यापक और गहरे दृष्टिकोणसे देखा जाय, तो मालूम होगा कि वे सब विरोधाभास सामंजस्यके एक वृहत् सूत्रमें बँधे हुए हैं। उदाहरणके लिए, कहीं-कहीं वे एकान्त रहस्यवादी मालूम होते हैं और 'तू तथा मैं' के संकीर्ण घेरेके भीतर आबद्ध जान पड़ते हैं, और कहीं विराट् विश्वके रात-दिनके सुख-दुःखपूर्ण जीवन-संघर्ष और कर्म-कोलाहलको मुक्त हृदयसे अपनानेके लिए अत्यन्त व्याकुल मालूम होते हैं। पर वास्तविक तथ्य यह है कि अपनी एकान्त साधनाके क्षणोंमें भी कभी जीवनकी कठोर-वास्तविकताको उन्होंने नहीं भुलाया है, और अपने देवतासे बार-बार यही प्रार्थना की है कि वह उनके संकीर्ण 'अहम्' को विश्वके विराट् 'अहम्'के साथ एकरूपमें मिलानेमें उनकी सहायता करे। उदाहरण-स्वरूप हम यहाँपर 'गीतांजलि'के कुछ पदोंका अनुवाद देना चाहते हैं (पाठकोंको मालूम होगा कि उनकी 'गीतांजलि' उनके रहस्यवादी काव्य-संग्रहोंमें सर्वप्रधान है ):—

"जहाँ सबसे अधम और दीनसे भी दीनजनोंका निवास है वहीं तुम्हारे चरण विराजते हैं—सबके पीछे, सबके नीचे, 'सर्वहारा'* ( अर्थात् जो अपना सब कुछ खो चुके हैं ) लोगोंके बीचमें।

"जहाँ तुम संगीहीनजनोंके संगी ( कामरेड ) बनकर सबके पीछे, सबके नीचे, सर्वहारा लोगोंके बीचमें रहते हो, वहाँ मेरा हृदय ( अपने झूठे उच्चासनसे ) उतरकर नीचे क्यों नहीं आ पाता !"

* * *

"भजन-पूजन, साधन-आराधना सब पड़े रहने दे ! अरे अभागे ! तू देवालयके कोनेमें बैठकर किवाड़ बन्द करके क्यों बैठा है ?

"तू अपने मनके अन्धकारमें स्वयं छिपकर एकान्त भावसे किसका ध्यान कर रहा है ? ज़रा आँखें खोलकर देख, तेरा देवता मन्दिरमें नहीं है। देवता वहाँ गया हुआ है, जहाँ किसान मिट्टी खोदकर खेती कर रहा है, जहाँ मंजूर पत्थरोंको तोड़कर रास्ता तैयार करनेमें व्यस्त है। तुझे मालूम होना चाहिए कि तेरे भगवान् धूप और पानीमें सबके साथ हैं; उनके दोनों हाथोंमें मिट्टी लगी हुई है। उन्हींके समान अपने पवित्र वस्त्रोंको छोड़कर धूलके बीचमें चला आ।

"मुक्ति ? अरे मूर्ख ! तू मुक्ति कहाँ पावेगा ? भगवान स्वयं सृष्टिका बन्धन पहनकर सबके निकट बँधे हुए हैं। इसलिए अपना ध्यान-भजन छोड़, फूलोंकी डलिया अलग हटा दे, अपने कपड़ोंको धूलि-धूसरित होने दे। कर्मयोगमें भगवानके साथ एक होकर एड़ी-चोटीका पसीना एक कर !"

यह घोर प्रगतिशील उक्ति उस कवि की है, जिसके संबंधमें हिन्दी-जनताके एक बहुत बड़े भागमें यह महाभ्रम फैला हुआ है कि वह एक पूर्ण अहंभावापन्न, पूँजीवादी,

---

* यह शब्द हमारे वर्तमान प्रगतिवादी साहित्य-समाजमें बहुत चल पड़ा है, पर इसके जन्मदाता रवीन्द्रनाथ ही हैं। —ले०

रोमान्टिक और रहस्यवादी कवि था—इसके सिवा और कुछ नहीं था। यह भ्रम इसलिए फैला हुआ है कि हमारे अधिक-संख्यक साहित्यिकोंको रवीन्द्रकी पूर्ण रचनाओंको मननपूर्वक पढ़नेकी न तो सुविधा प्राप्त हो सकी है, न उतना धैर्य ही उनमें रहा है। अँगरेज़ीमें रवीन्द्र-नाथकी जो कविताएँ अनुवादित हुई हैं, वे पहले तो अति स्वल्प हैं, तिसपर प्रायः सभी एक ही तरह की हैं। इसलिए उनके माध्यमसे रवीन्द्रनाथके समान विराट् लेखककी भावधाराओंसे परिचित होनेकी कल्पना अत्यन्त हास्यास्पद है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि रवीन्द्रनाथकी कुल रचनाएँ रायल साइज़के प्रायः सत्रह हज़ार पृष्ठोंमें भी पूरी तरहसे नहीं समा सकतीं। ऐसी हालतमें उनका पूर्ण अध्ययन कर पाना कोई साधारण बात नहीं है और पूर्ण अध्ययनके बिना उनकी भावधारापर कोई मन्तव्य प्रकट करना अत्यन्त अनधिकार चेष्टा होगी—इस बातसे सभी सहमत होंगे।

ऊपर कविके कुछ पद्योंका जो अनुवाद दिया गया है, उनसे पाठकोंको पता लग जायगा कि कठोर वास्तविक जीवनकी मिट्टीसे हाथ धोकर ऐकान्तिक रहस्योपासना रवीन्द्रनाथके स्वभावके बिलकुल प्रतिकूल थी। उनकी जीवनव्यापी साधनाका उद्देश्य था—आत्मगत जीवनको विश्व-जीवनकी रात-दिनकी कठोर संघर्षमयी अनुभूतिके साथ एकरूपमें मिलाकर महाजीवनका अनुभव प्राप्त करना और उसे सर्वकल्याणकारी रूप देना। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने सौन्दर्यके माध्यमसे जीवनको देखा और सौन्दर्यकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म सुकुमारताका जैसा प्रदर्शन उन्होंने किया, वैसा संसारके कुछ बिरले ही कवि कर पाए हैं। शेलीने बुद्धिग्राह्य सौन्दर्य (Intellectual beauty) के अतीन्द्रिय रूपको अपनी तीव्र अन्तरानुभूतिकी 'एक्स'-किरणों द्वारा स्तर-प्रति-स्तर देखनेमें कमाल हासिल किया था। रवीन्द्रनाथकी अन्तरानुभूति इस सम्बन्धमें कुछ कम मार्मिक और सूक्ष्म नहीं थी, यह बात निश्चित रूपसे कही जा सकती है। उनकी एक नहीं, बीसियों कविताएँ इस सम्बन्धमें दृष्टान्त-स्वरूप पेश की जा सकती हैं, और दो-एक विशेष कविताओंका उल्लेख करना कविके प्रति घोर अन्याय करना होगा। इसके अतिरिक्त यह बात विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है कि शेलीकी सौन्दर्यानुभूति मार्मिक होनेपर भी उसकी अभिव्यंजना वैसी स्वच्छ और तरल नहीं थी, जैसी रवीन्द्रनाथकी। पर सबसे बड़ा अन्तर पूर्वोक्त दो कवियोंमें यह था कि शेली अतीन्द्रिय सौन्दर्यकी साधनाको ही जीवनका प्रधान लक्ष्य मानता था; पर रवीन्द्रनाथ सौन्दर्योपासनाकी केवल यह उपयोगिता मानते थे कि उसके द्वारा प्रतिदिनके सुख-दुःखमय जीवनकी तुच्छता महिमान्वित हो सके और कठोर, वास्तविक जीवनकी कर्तव्यानुभूति उतनी कड़वी न लगे, जितनी कि वह वास्तवमें है। सबसे बड़ी विशेषता रवीन्द्रनाथमें यह थी (जो कि शेलीकी श्रेणीके कवियोंमें नामको भी नहीं पाई जाती) कि जहाँ एक ओर वे सौन्दर्यके माध्यम द्वारा जीवनको देखते थे, वहाँ जीवनके कठोर माध्यमसे सौन्दर्यकी उपयोगिताकी परख करते थे। शेली गेटेकी तरह ही जीवनके कठिन कर्तव्य और कर्म-साधनासे भागता था, पर रवीन्द्रनाथ प्रतिक्षण कर्तव्य-कर्मके भारको कठोरतम रूपमें स्वीकार करनेके लिए आन्तरिक हृदयसे उत्सुक रहते थे। उनमें यह एक ऐसी विशिष्टता थी कि उसके सम्बन्धमें जितना ही सोचता हूँ उतना ही विस्मित, पुलकित और हर्ष-गद्गद हो उठता हूँ। रोमान्टिक प्रतिभामें संसारके किसी भी युगके किसी भी कविसे एक तिल कम न होनेपर भी जीवनकी रात-दिनकी हीनता और तुच्छता, दुःख और दारिद्रय, लज्जा और ग्लानि, क्षुधा और तृष्णा, संघर्ष और संग्रामके प्रति किसी भी हालतमें तनिक भी उदासीन न रहनेवाला यह महान् मानववादी कवि विधाताकी एक आश्चर्यमयी विभूतिके रूपमें हम लोगोंके बीचमें स्थित था, यह बात माननी ही पड़ेगी।

हमारा आश्चर्य इस बातसे और अधिक बढ़ता है, जब हम देखते हैं कि रवीन्द्रनाथकी प्रगतिशील मनोवृत्ति अधेड़ अथवा वृद्धावस्थामें (जब कि रोमान्सकी भावना स्वभावतः क्षीण होने लगती है) विकास-प्राप्त नहीं हुई, बल्कि यह मनोभावना उनके भीतर इस क़दर जन्मजात थी कि परिपूर्ण यौवनावस्थामें, जब कि वे 'प्रणय-मदिरा', 'चुम्बन' और 'आलिंगन' का 'मोह' स्वभावतः नहीं त्याग पाते थे, बीच-बीचमें स्वप्नसे जाग पड़ते थे और आकाश-कुसुमके वनमें स्वप्न-चयन करना छोड़कर पृथ्वीकी कठिन मिट्टीके बीचमें, मनुष्यके दिन-रातके सुख-दुःखमय जीवनके मध्यमें सम्मिलित होनेके लिए उत्कंठित हो उठते थे। 'मरीचिका' शीर्षक उनकी जिस कविताका अनुवाद नीचे दिया जाता है, वह तब लिखी गई थी, जब रवीन्द्रनाथकी अवस्था बीस वर्षसे कुछ ही अधिक थी :—

"हे सखि, अब कुसुम-शयन छोड़कर नीचे चली आओ। तुम्हारे कोमल चरण अब कठोर मिट्टीके संसर्गमें आवें। एकान्तमें बैठकर अब कब तक आकाश कुसुमोंके वनमें स्वप्नोंको बीनती रहोगी? देखो, सामनेसे भयंकर तूफ़ान उठकर चला आ रहा है, जो तुम्हारे स्वप्न-राज्यको आँसुओंकी खर धारासे बहा देगा। तुम्हारी इस एकान्त स्वार्थपूर्ण सुख-लिप्साको देवताके विद्युतकी अभिशापमयी निर्धूम अग्निशिखा वज्रदाहसे दग्ध कर डालेगी।

"चलो दोनों बाहर निकलकर वहाँ जावें, जहाँ मानव-समाज रात-दिनके जीवन-संग्राममें पिस रहा है। सबके हास्य और रुदनके समभागी बनकर संसारकी संशयपूर्ण रात्रिमें निःशंक होकर रहें। हम दोनोंके स्वार्थगत सुखकी मरीचिका वास-योग्य नहीं है। वहाँ सब समय इस संशयसे जी शंकित रहता है कि न जाने कब वह शून्यमें विलीन हो जावेगी।"

चित्रा-छायाकी मनोमोहिनी मायाने रवीन्द्रनाथको बार-बार रिझाया है और बार-बार उन्हें जीवन-पथसे भुलाकर भरमानेका पूरा प्रयत्न किया है; पर उस अतीन्द्रिय सौन्दर्यच्छायाकी ऐन्द्रजालिक अलकोंमें उलझते रहनेपर भी कवीन्द्रने अदम्य इच्छा-शक्तिके प्रयोगसे अपनेको सुलझाते रहनेमें आश्चर्यजनक सफलता पाई है। यह अन्तर्द्वन्द्व उनके प्रथम यौवनमें लिखित प्रारंभिक कविताओंमें अत्यन्त मार्मिकताके साथ व्यक्त हुआ पाया जाता है। 'भैरवी गान' शीर्षक एक सुन्दर कविता कविने प्रायः पचपन वर्ष पहले लिखी थी। इस रूपकात्मक कवितामें यह भाव व्यक्त हुआ है कि एक ओर अलस सुखावेशमयी मोहमाया कविको अपने एकान्त नीड़के अहंगत जीवनकी ओर खींचती है, दूसरी ओर महामानव-जीवनका आह्वान उसे विपुल संघर्ष-विघर्षमय कर्मक्षेत्रमें कूद पड़नेके लिए विकल करता है। कवि कठोर कर्म-जीवनकी यात्राके लिए ज्यों ही घरसे बाहर निकला है, त्योंही छायामयी मायाके इन्द्रजालने करुण-कोमल अलापमें मधुर वेदनापूर्ण भैरवी रागिनी सुनाना आरम्भ कर दिया। उसे सुनते ही कविके प्राणोंमें एक व्याकुल पुलक-सिहरन उत्पन्न हो गई, जिससे उसके मनमें फिरसे अपने उसी छायामय स्वप्न-राज्यको लौट चलनेकी इच्छा उत्पन्न हुई, जहाँ:—

"छायाते वसिया सारा दिनमान,
तरु-मर्मर पवने,
सेइ मुकुल-आकुल बकुल-कुंज-भवने
सेइ कुहु-कुहरित विरह-रोदन
थेके-थेके पशे श्रवणे।"

—'दिनभर मन्द-मन्द पवनसे दोलित मर्मरित तरुओंके नीचेकी छायामें बैठे रहनेकी इच्छा होती है, और मुकुलोंसे आकुल बकुल-कुंज-भवनमें कोकिलके कुहू-कुहू रवसे कुहरित विरह-रोदन रह-रहकर कानोंमें प्रवेश करता रहता है।'

कवि अपने मानस-राज्यकी उस मायाविनी गायिकासे व्याकुल प्रार्थना करते हुए कहता है—"विषाद शान्त शोभामें बैठी हुई तुम जो उदास-मूर्ति हो, तुम इस नव-प्रभातमें भैरवी मत गाओ, और मेरे समान तरुण-हृदय पथिकके प्राणोंको फिरसे घरकी ओर न खींचो। जिसे तुमने विपुल संघर्षमय क्षेत्रकी यात्रा करनेके उद्देश्यसे एक बार घरसे विदा कर दिया है, उसे अश्रु-सजल भैरवी गाकर फिर स्वप्नराज्यकी ओर मोड़नेकी चेष्टा न करो। मेरे कठिन यात्रा-मार्गको पहले ही प्रभातमें अपने नयन-वाष्पके कुहरेसे मत छा दो! यदि तुम्हें भैरवी-तानमें रोना ही है, तो उन लोगोंके पास जाकर रोओ, जो उठना चाहते हैं, पर उठ नहीं सकते। वे लोग ललित लताका बन्धन तोड़नेमें असमर्थ हैं। जीवनके वास्तविक पथसे वे परिचित हैं, पर ऐसे अकर्मण्य हो गए हैं कि फिर भी एक किनारेपर पड़े-पड़े केवल विलाप करते रहते हैं। वे लोग केवल अलस रागिनी गाकर मधुर वेदनाकी विह्वलतामें मग्न रहना चाहते हैं। दिन-रात उसी अलस-रोदनके प्रवाहमें बहते रहनेमें ही उन्हें सुख मिलता है। अपने ही गानकी वेदनासे गलकर वे अपने-आपको भुलावेमें रखना चाहते हैं। कोमल भावना-रूपी शयनमें जीवन-यापन करके वे निद्राके झूलेमें झूलते रहते हैं। इस प्रकारके जीवनसे तो निष्ठुर आघातपूर्ण, तीव्र ज्वालामय जीवन कहीं अच्छा है। मैं आजीवन पाषाणके समान कठोर सत्यके पथपर चलना पसन्द करूँगा। वह मार्ग यदि मुझे मृत्युकी ओर ढकेले लिए जाय, तो उस मरणमें भी सुख है!"

इस प्रकार कविके अन्तरमें छायाकी माया और कर्तव्यकी प्रेरणाके द्वन्द्वमें अन्तमें कर्तव्यकी प्रेरणाकी ही विजय हुई है। चौबीस-पचीस वर्षकी उम्रमें जीवनकी कठोर वास्तविकताके सत्यको अपनानेके लिए जिस कविने इतनी मार्मिक व्याकुलता प्रदर्शित की है, उसके सम्बन्धमें यदि हम यह सोचें कि वह कोरा छायावादी अथवा निपट

रहस्यवादी अथवा 'अकर्मण्य प्रतिक्रियावादी' था, तो इससे अधिक अन्याय उसके प्रति और कुछ नहीं हो सकता।

रवीन्द्रनाथका सबसे बड़ा दोष यह बताया जाता है कि वह प्रिन्स द्वारकानाथ ठाकुरके पोते थे, और अँगरेज़ी मुहावरेके अनुसार, चाँदीका चम्मच मुँहमें लिए पैदा हुए थे। इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्तिके जीवन-निर्माणमें पारिवारिक परिस्थितियोंका बहुत-कुछ हाथ होता है; पर यह बात विशेष रूपसे ध्यानमें रखनी होगी कि जन्मगत संस्कार विशेष प्रबल होनेसे बाह्य परिस्थितियोंका अधिक महत्त्व नहीं रह जाता—आधुनिक विज्ञान भी अब धीरे-धीरे इस तथ्यको स्वीकार करने लगा है। रवीन्द्रनाथके व्यक्तित्व, जीवन और साहित्यका अध्ययन करनेसे वर्तमान लेखकके मनमें यह विश्वास बद्धमूल हो गया है कि यदि रवीन्द्रनाथका जन्म किसी अत्यन्त दीन-हीन परिवारमें भी हुआ होता, तो उनके भीतरके आभिजात्यकी सहज सुरुचिशीलता, शान्त संयम और सुदृढ़ चारित्रिक बलमें किसी प्रकारकी कमी न आई होती—ठीक जिस प्रकार एक धनी परिवारमें उत्पन्न होनेपर भी उनका प्रत्येक अणु-परमाणु दीन-हीन, दलित, पतित, वंचित, शोषित और 'सर्वहारा' लोगोंके प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं, बल्कि एकात्मीयताके भावसे ओतप्रोत रहा है। यह अत्यन्त आश्चर्यकी ही बात है, सन्देह नहीं, कि धनी परिवारमें जन्म लेनेपर भी पूँजीपतियोंके प्रति जैसे कठोर और मार्मिक व्यंग्य उन्होंने अपनी सैकड़ों रचनाओंमें किए हैं, वैसा कोई भी रूसी प्रोलेटेरियन लेखक नहीं कर पाया। रवीन्द्रनाथ सच्चे सांस्कृतिक अर्थमें प्रगतिशील तो थे ही (यह बात उनके विरोधियोंने भी स्वीकार की है), साथ ही कट्टर साम्यवादी—मार्क्सियन—अर्थमें भी वे घोर प्रगतिवादी थे। आश्चर्य है कि इतने बड़े प्रत्यक्ष और Concrete सत्यको एक विशेष श्रेणीके साहित्यिक क्यों भुला गए! इसका प्रधान कारण संभवतः यह रहा है कि रवीन्द्रनाथके विराट् प्रतिभा-सागरमें प्रगतिकी लहरें सब समय हिल्लोलित होते रहनेपर भी उनके ऊपरका स्वप्निल फेन ही पूर्वोक्त श्रेणीके पाठकोंकी दृष्टिमें अधिक आया है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि रवीन्द्रनाथ आरम्भसे ही प्रगतिशील थे—उस समयसे, जब कि मार्क्सियन सिद्धान्तोंसे अधिकांश यूरोपवासी भी भलीभाँति परिचित नहीं थे। तब उन्नीसवीं शताब्दीके अँगरेज़ कवियोंका रोमान्टिसिज़्म समस्त वंग-साहित्यको अपनी जूठनकी बाढ़में बहाए लिए जा रहा था। कवियोंके व्यक्तिगत प्रेमसे सम्बन्धित विचित्र छायावादी वेदनाओंका गान विधवा-विलापकी तरह नाना छन्दों, तालों और लयोंमें गाया जा रहा था। ऐसे युगमें रवीन्द्रनाथका जन्म हुआ। रवीन्द्रनाथने युगकी उस भावधाराको अवश्य अपनाया; पर साथ ही गलित और संकीर्ण वातावरणसे ऊपर उठाकर उसे ऐसा विस्तृत, व्यापक, महत् और सुन्दर रूप दिया, जो शेली-प्रमुख अँगरेज़ रोमान्टिक कवियोंके आदर्शसे बहुत ऊँचा था। किन्तु अपने उस उच्च आदर्शात्मक रोमान्टिक स्वप्नलोककी उड़ानसे भी कविको स्वयं सन्तोष नहीं हुआ। वह शीघ्र ही समझ गया कि रोमान्टिक साधना चाहे कैसी ही सत्य-शिव-सुन्दर-मूलक क्यों न हो, वह व्यक्तिकी एकान्त स्वार्थमयी साधना है। इसलिए उसके भीतर वह प्रचण्ड अन्तर्द्वन्द्व चलने लगा, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, और वह अपनी समस्त कल्पनात्मक तथा क्रियात्मक चेष्टाओंको जनताके सामूहिक कल्याणके उद्देश्यसे नियोजित करनेके लिए व्याकुल हो उठा।

जिस युगमें रवीन्द्रनाथ उत्पन्न हुए, उसकी भावधारापर यदि हम विचार करें, तो उनकी प्रगतिशीलता अत्यन्त विस्मयकर मालूम होती है। वर्तमान युगमें प्रगतिशीलता एक फैशनमें परिणत हो गई है, जिसके फलस्वरूप एक हीनसे हीन और घोर अहंवादी तथा स्वार्थ-परायण लेखक भी शोषित अथवा 'सर्वहारा' श्रेणीके व्यक्तियोंकी हित-कामनाका ढोंग रचकर और उस 'सार्वजनीन हित' की आड़में अपनी घोर व्यक्तिवादी मनोवृत्तियोंके फफोले फोड़कर 'उच्चकोटि' के लेखकोंमें अपना नाम दर्ज़ करानेमें समर्थ है—क्योंकि फ़ीस बहुत सस्ती है। पर रवीन्द्रनाथके समान विराट् प्रतिभाशाली कविको युगसे कुछ लेना नहीं था, बल्कि युगसे विद्रोह करके एक ऐसी नई भावधाराका आनयन करना था, जिसे युगके ठेकेदार प्रगति नहीं, बल्कि विकृति समझते थे। रवीन्द्रनाथने अपनी सच्ची अन्तरानुभूतिसे प्रगतिशीलता प्राप्त की थी, जो उनके कवि-हृदयकी वेदनाके साथ एकाकार हो गई थी। बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि उनकी वह प्रगतिशील अनुभूति जन्मजात थी, जिसे व्यक्त किए बिना उनकी आत्माको

तनिक भी चैन नहीं मिल रहा था। यही कारण था कि मार्क्सियन सिद्धान्तोंके प्रचारके बहुत पहले उन्होंने अपने निम्न उद्‌गार प्रकट किए थे :—

"संसारके सब लोग प्रतिक्षण शत-शत कर्मोंमें हैं, पर तू निर्द्वन्द्व और पलातक बालकके समान दोपहरके स्निग्ध, अलस वातावरणमें शीतल, मन्द, सुगन्ध समीरणके मृदु-मृदु दोलनसे पुलक-सिहरनका अनुभव करता हुआ एकाकी वंशी बजानेमें तल्लीन है !

"अरे अभागे ! तू उठ, खड़ा हो ! देख, आज संसारमें कहाँ-कहाँ आग लगी हुई है ! जग-जनको जगानेके लिए आज किसका शंख बज उठा है, सुन ! समस्त शून्यतल न जाने किसके क्रन्दन-स्वरसे गूँज रहा है। न जाने किस काल-कोठरीके भीतर बद्ध रहकर पृथ्वीके अनाथ नर-नारी सहायता माँग रहे हैं ! स्फीत अपमान अक्षमोंके वक्षोंसे रक्तशोषण करके लक्ष मुखोंसे पान कर रहा है। स्वार्थोद्धत अन्याय वेदनाका परिहास करनेपर तुला हुआ है। जितने भी संकुचित और भीत क्रीतदास इस धरातलपर हैं, वे सब आत्मरक्षाके लिए अपनेको छिपा रहे हैं।

"वह देखो, वे सब असंख्य नर-नारी मौन भावसे सिर झुकाए खड़े हैं। उनके म्लान मुखोंमें शत-शत शताब्दियोंके पीड़नकी करुण कहानी लिखी हुई है। उनके कन्धोंपर जितना भी भार पड़ता जाता है, उसे बिना किसी शिकायतके तब तक चुपचाप ढोते चले जाते हैं, जब तक उनके शरीरोंमें प्राणोंका क्षीण आभास भी वर्तमान रहता है। जब प्राण त्यागनेका समय आता है, तो वे पुश्त-पुश्तोंके लिए अपनी सन्तानको पशुओंके ढोने योग्य वह भार सौंप जाते हैं। न तो वे अपने भाग्यको कोसते हैं, न देवताको और न मनुष्यको इसके लिए दोषी ठहराते हैं। ऐसी जड़ताको प्राप्त हो गए हैं वे। केवल अन्नके दो कौर पाकर अपने क्लिष्ट प्राणोंको भरसक जीवित रखना ही उनके जीवनका एकमात्र उद्देश्य है। जब कोई गर्वान्ध व्यक्ति या समाज उतना-सा भी अन्न उनसे छीनकर अपने निष्ठुर अत्याचार द्वारा उनके प्राणोंमें निर्मम आघात करता है, तो वे यह नहीं जानते कि इस महा अन्यायके विचारके लिए किसके दरवाज़ेपर जा खड़े हों ! केवल एक बार दीर्घश्वाससे दरिद्रके भगवानको पुकारकर वे निःशब्द मृत्युके ग्रास बन जाते हैं।

"इन सब मूढ़, म्लान, मौन मुखोंमें भाषाका संचार करना होगा, ताकि वे इस प्रचण्ड अन्यायका विरोध कर सकें ; इन सब शुष्क, श्रान्त और भग्न हृदयोंमें आशाकी वाणी ध्वनित करनी होगी। उनसे पुकार-पुकारकर कहना होगा—'तुम सब लोग एकत्रित होकर एक बार अपना सिर निर्भय ऊँचा करो।* यह जान लो कि तुमलोग जिन अन्यायियोंके भयसे भीत हो, वे तुमसे भी अधिक कायर हैं। जिस क्षण तुम सब मिलकर जाग उठोगे उसी क्षण वे भाग खड़े होंगे, और आवारा कुत्तोंके समान दुबककर रह जावेंगे। ऐसे अत्याचारियोंके सहायक न तो देवता हैं और न कोई और। बाहरसे चाहे वे कैसी ही कूद-फाँद क्यों न मचावें, पर भीतरसे वे स्वयं अपनी हीनतासे भलीभाँति परिचित हैं।'

"हे कवि, तुम आज जागो, और यदि तुम्हारे भीतर वास्तवमें प्राणोंका कोई चिह्न वर्तमान है, तो आज उसे मुक्त हृदयसे दान करो। संसार आज घोर कष्टमय है। असहाय, दलित मानव आज परम व्यथासे पीड़ित है। दरिद्रता और शून्यता उसे जकड़े हैं। चारों ओर घोर अन्धकारमय वातावरण उसे घेरे है। उसे अन्न चाहिए, प्रकाश चाहिए, प्राण चाहिए और मुक्त वायु चाहिए ; बल चाहिए, स्वास्थ्य चाहिए, आनन्दकी भावनासे उज्ज्वल परमायु चाहिए और चाहिए साहससे विस्तार-प्राप्त वक्षपट। हे कवि, इस परम दीनताके बीचमें एक बार विश्वासकी स्वर्गीय छवि लाकर स्थापित करो।"

यह कविता रवीन्द्रनाथने सन् १८९० के लगभग लिखी थी, जब भारतमें मार्क्सके नामसे भी शायद ही कोई परिचित रहा हो। इससे स्पष्ट है कि शोषित और दलित समाजके उत्थान और संगठनकी मनोवृत्ति केवल मार्क्सवादियों तक ही सीमित नहीं रही है ; जिस किसी भी व्यक्तिका हृदय महान्, उदार और अनुभूतिशील होगा, वह निश्चय ही दलितोंकी वेदनाको अपनी वेदना समझेगा— राजनीतिक अथवा साहित्यिक प्रोपेगेण्डाके लिए नहीं, बल्कि आन्तरिक सहृदयताकी प्रेरणासे। रवीन्द्रनाथका प्रगतिशील साहित्य केवल इसीलिए उच्चकोटिकी कलात्मकतासे ओतप्रोत है कि उसमें उनकी सच्ची, आन्तरिक वेदना अत्यन्त मार्मिकताके साथ व्यक्त हुई है। आजकल

हिन्दीमें जो तथाकथित प्रगतिशील कविताएँ, कहानियाँ, नाटक आदि रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं, उनमें सहृदयताका अंश इतना कम रहता है और युगके फ़ैशनका पालिश इतना अधिक कि किसी भी समझदारको वे धोखा नहीं दे सकतीं। उन रचनाओंमें चीत्कार अधिक पाया जाता है और अन्तरानुभूति नहींके बराबर रहती है, जिसके फलस्वरूप उनकी कलाकी कृत्रिम पन्नी बहुत चमकनेपर भी अपना पोल-प्रकाश स्वयं कर बैठती है।

रवीन्द्रनाथकी प्रगतिशील रचनाएँ विश्व-साहित्यके गौरवकी चीज़ केवल इसी कारण हो पाई हैं कि उन्होंने टाल्सटायकी तरह वर्षों किसानों और मजूरोंके बीचमें रहकर उनकी वेदनाको परिपूर्ण रूपसे आत्मगत कर परिपाक करनेके बाद तब अपने मर्मोद्गार प्रकट किए हैं। दलितों और शोषितोंकी वेदनाकी अनुभूति उन्हें अपनी आजन्म साधनाके फलस्वरूप प्राप्त हुई है। उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया कि मौज आई, तो 'आकुल अन्तर' पर कविता लिखने लगे और जी चाहा, तो 'विकल विश्व'पर फ़ैशनेबुल उद्गार प्रकट करने बैठ गए।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि भावोंके ललित क्रोड़में पुलक-सिहरनका अनुभव करते रहनेमें ही जीवनकी सार्थकता समझनेवाले व्यक्तियोंका घोर विरोध रवीन्द्रनाथने किया है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सुकुमार भाव-जनित पुलक-सिहरनका अनुभव उन्होंने स्वयं कभी नहीं किया। उन्होंने अवश्य उसका अनुभव किया, और केवल अनुभव ही नहीं किया, उसे कलित कविताका रूप भी दिया। पर अपनी उस आत्मगत पुलकानुभूतिको विश्वजनीन अनुभूतिका महत् रूप देनेसे वे कभी नहीं चूके। व्यक्तिगत सुखकी अनुभूतिकी संकीर्ण चहार-दीवारीको अधिकाधिक विस्तार प्रदान करके उसे सामूहिक कल्याणकी मंगलमय भावनामें परिणत करते रहना रवीन्द्रनाथकी एक महान् विशेषता थी। हमारे छायावादी कवियोंने मूलतः रवीन्द्रनाथसे प्रेरणा प्राप्त की है, इस निर्विवाद सत्यके सम्बन्धमें किसीको कोई प्रमाण देनेकी आवश्यकता न होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। पर उस प्रेरणाका जैसा दुरुपयोग हमारे अधिकांश कवियोंने किया, वह अकथनीय है। उन्होंने चिर-श्यामल और विराट् रवीन्द्र-काव्य-वनसे कोमल कुसुमोंको बीन-बीनकर मसलना शुरू किया और उनके मसलनेके बाद जो इत्र तैयार हुआ, उसमें अपने अहंभावकी झूठी वेदनाका 'ह्वाइट आयल' (White oil) मिलाकर बाज़ारमें बेचने लगे। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ कवियोंने 'ह्वाइट आयल' न मिलाकर भरसक विशुद्ध इत्रका व्यवसाय किया; पर इत्र आख़िर इत्र ही है, उसकी गन्ध कभी स्थायी नहीं रह सकती। रवीन्द्र-काननके सदाबहार जीवित कुसुमोंकी हरदम-ताज़ा सुगन्धिसे उसकी तुलना किसी भी हालतमें नहीं की जा सकती। पर विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य बात यह है कि हमारे कवियोंने रवीन्द्र-काव्यके विराट् वनसे बीने भी तो केवल ललित कुसुम! उस महावनमें केवल ड्राइंग-रूमकी सजावटको बढ़ानेवाले सुन्दर फूल ही नहीं थे, जीवन-दान करनेवाले फलोंकी भी भरमार थी। हमारे छायावादी कवियोंको यह न सूझा कि उन अमृत-फलोंको तोड़कर हिन्दी-साहित्यके अस्वस्थ और भूखे प्राणोंमें संजीवन-रसका संचार करें। रवीन्द्रके ललित कुसुमोंकी सार्थकता इस बातपर रही है कि वे प्राणपोषी फलोंके रूपमें परिणत होते गए; पर हमारे छायावादियोंने जो इत्र तैयार किया था, उसकी गन्ध उड़कर न जाने कहाँ विलीन हो गई!

रवीन्द्रनाथकी प्रगतिशील कविताओंकी सूची इतनी लम्बी है कि उनका उद्धरण देते रहनेसे इस लेखका कलेवर अपरिमित रूपसे बढ़ जायगा। केवल कविताओंमें ही नहीं, उनकी अनेक छोटी कहानियों, नाटकों तथा उपन्यासोंमें दलितवर्गीय जनताका मर्मोद्गार ध्वनित हुआ है। पीड़ित मानवताकी वेदनाके सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूपको भी आश्चर्यजनक सुकुमार अनुभूतिसे पाठकोंके आगे रखनेमें रवीन्द्रनाथने जो कमाल हासिल किया था, वह वास्तवमें अपूर्व था। अपनी छोटी कहानियोंमें उन्होंने मजूरों, किसानों और हरिजनों, दीन-हीन, समाज-प्रताड़ित, पतित और शोषित श्रेणीके व्यक्तियोंका जैसा मार्मिक चित्रण किया है, समाजके ढोंगी और पोपपंथी नेताओं, अकर्मण्य मध्यवित्तों और सर्वभक्षक पूँजीपतियोंका जैसा घोर यथार्थ-वादी, निर्मम विश्लेषणात्मक और तीक्ष्ण व्यंगपूर्ण ख़ाका खींचा है, वह कलाकी दृष्टिसे भी संसार-साहित्यमें अपना जोड़ नहीं रखता। केवल गद्य-गल्पोंमें ही नहीं, पद्यात्मक कहानियोंमें भी रवीन्द्रकी यह विशेषता अभिनव सुन्दरताके साथ व्यक्त हुई है। उनकी 'दुइ बिघा जमि' (दो बीघा ज़मीन) शीर्षक पद्य-कथा जैसी मर्मच्छेदी करुणासे पूर्ण

है, वैसे ही ( एक बूर्जुआ ज़मींदारके प्रति ) तीखे, सान लगे हुए सूक्ष्म व्यंगके भावसे भी झलझलाती हुई-सी लगती है। अत्यन्त सुरुचिपूर्ण किन्तु मार्मिक और निर्मम व्यंगकी कलामें रवीन्द्रनाथ वाल्तेयरसे बहुत आगे बढ़े हुए थे। वाल्तेयरके व्यंगमें कटु विद्वेष और कुरुचिपूर्ण अहंभाव-जनित दम्भ वर्तमान रहता था ; पर रवीन्द्रनाथका व्यंग जैसा ही सुरुचिपूर्ण और संयत होता था, वैसा ही अन्तर्भेदी भी। उनका व्यंग हृदयको अधिक प्रभावित इसलिए करता है कि उसकी उत्पत्ति लेखकके अहंभावसे न होकर मानवताकी सहज प्रेरणा और सामूहिक कल्याणकी भावनासे हुई है, और साथ ही उसकी विशेषताका दूसरा प्रधान कारण लेखकका आन्तरिक सहृदयतापूर्ण कला-कौशल भी है। 'पलातका' नामक काव्य-कथा-संग्रहमें बूर्जुआ-समाजके जिन घोर यथार्थवादी चित्रोंका प्रदर्शन कविने किया है, उनमें भी उसकी आश्चर्यमयी तूलिकाके व्यंग तथा करुणापूर्ण सूक्ष्म स्पर्शोंका ऐसा सुन्दर समन्वय पाया जाता है कि पढ़कर एक विकल पुलकके भावसे हृदय सिहर-सिहर उठता है। इसी संग्रहकी 'फाँकी' (धोखेबाज़ी) शीर्षक कहानीमें यह दिखाया गया है कि जब एक ज़मींदारके लड़केकी तेईस-वर्षीया रुग्णा स्त्री बिनू जब हवाबदलीके उद्देश्यसे अपने पतिके साथ जीवनमें प्रथम बार रेलकी यात्रा करती है, तो बीचमें एक स्टेशनमें गाड़ी बदलनेके उद्देश्यसे उन लोगोंको कुछ देरके लिए ठहरना पड़ता है। इस बीच एक अत्याचार-पीड़ित मजूरकी स्त्रीसे बिनूकी बातें होती हैं। बिनूका विरोधी संस्कार-विहीन नारी-हृदय उस दुःखिनी स्त्रीकी जीवन-कथा सुनकर सहज करुणाके भावसे ओतप्रोत हो उठता है। जब गाड़ीका समय हो आता है, तो बिनू अपने पतिसे यह प्रार्थना करती है कि मजूरकी उस दुःखिनी स्त्रीकी लड़कीका विवाह होनेवाला है, जिसमें उसकी आर्थिक सहायता करनी चाहिए। उसका बूर्जुआ संस्काराच्छन्न पति अत्यन्त उदासीनता, बल्कि घृणाके साथ उसकी बातें सुनता है ; पर बिनू अपनी बातपर अड़ी रहती है। इधर गाड़ी छूटनेका समय हो आता है। अपना पिण्ड छुड़ानेके लिए वह तरह-तरहके बहाने ढूँढ़ता है। कहता है कि उसके पास सौ रुपएका नोट है, वह जल्दबाज़ीमें अभी तुड़ाया नहीं जा सकता। पर पत्नी कहती है कि निश्चय ही कोशिश करनेसे स्टेशनमें तुड़ाया जा सकेगा, और जब तक कमसे कम पचीस रुपए उक्त स्त्रीको न दिए जायँ, तब तक वह गाड़ीपर नहीं चढ़ेगी। कोई उपाय न देखकर पत्नीको वचन देकर पति मजूरकी स्त्रीको एक एकान्त स्थानमें अपने साथ ले जाता है और उसे डाँट बताते हुए कहता है—'मैं ख़ूब जानता हूँ कि तुम रास्तेमें चलते-फिरते मुसाफ़िरोंको ठगनेका पेशा करती हो। ऐसी बदमाशी फिर करोगी, तो तुम्हें और तुम्हारे पतिको नौकरीसे हटा दूँगा।' यह कहकर केवल दो रुपया उसे थमाकर विदा कर देता है। इधर बिनूके पास जाकर वह कहता है कि उसने उसे पचीस रुपए दे दिये। बिनूकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। इस घटनाके केवल दो ही मास बाद बिनूकी मृत्यु हो गई। इस बार जब पति महाशय पत्नीसे सदाके लिए विदा होकर घरकी ओर लौटते हुए फिर उसी स्टेशनपर गाड़ी बदलनेके लिए उतरे, तो अपनी पत्नीकी अन्तिम प्रार्थनाकी स्मृति उनके मर्मको रह-रहकर दग्ध करने लगी। जिन पचीस रुपयोंके लिए उन्होंने अपनी स्त्रीको धोखा दिया था, उसके बदले आज वह पचीस हज़ार ख़र्च कर सकते हैं—यदि उसे फिरसे जीवित लोकमें ला सकें। पर आज यदि वह अब उस मजूरकी स्त्रीको एक लाख रुपया भी प्रदान करें, तो जो धोखेबाज़ी उन्होंने स्त्रीकी जीवितावस्थामें की थी, उस पापका क्षालन कैसे होगा? फिर भी उन्होंने यत्किंचित प्रायश्चित्त करनेके उद्देश्यसे उसी मजूरकी स्त्रीको बहुत ढूँढ़ा, पर कोई पता न लगा। वे दोनों शायद उस स्थानको छोड़कर विषम कष्टसे कहीं चले गए थे।

जो कथानक हमने यहाँ दिया है, उससे कविकी अपूर्व रहस्यमयी तूलिका द्वारा अंकित अतलस्पर्शी करुणा और मर्मघाती व्यंगका आभास एक सहस्रांश भी नहीं दिया जा सकता। इसी प्रकारके अनेक चित्र रवीन्द्रनाथने अपनी नाना रचनाओंमें—गद्यमें तथा पद्यमें—दिए हैं।

रवीन्द्रनाथको जो लोग आकाशी उड़ान भरनेवाला कोरा रहस्यवादी या छायावादी कवि समझते हैं, उन्हें निश्चित रूपसे यह बात जान लेनी चाहिए कि रवीन्द्रनाथने कभी, किसी भी हालतमें शून्यसे अपना सम्बन्ध न जोड़कर मानवके रात-दिनके सुख-दुःखोंसे पूर्ण वास्तविक जीवनकी कठोर मिट्टीसे नाता जोड़ा है। उनकी जिन कविताओंसे हवाई उड़ानका भ्रम होता है, यदि गहरी दृष्टिसे देखा जाय, तो मालूम होगा कि उनका भी केन्द्र ठोस धरातलमें ही है। उनकी 'स्वर्ग हइते विदाय'

( स्वर्गसे विदाई )-शीर्षक अनुपम-सुन्दर कविता उनके जीवनकी मूलगत भावनाधाराका प्रतीक है। कविता बहुत लम्बी है, और सारी कविता आदिसे अन्त तक अनुवाद करने योग्य है। पर स्थानाभावसे हमें लोभ सँभालना पड़ रहा है। इस रूपकात्मक कवितामें कवि स्वर्गके देवताओं और देवियोंको लक्ष्य करके कहता है—"सौ लाख वर्षों तक तुम लोगोंके बीचमें मैंने निवास किया है, पर अब मैं पृथ्वीपर उतरने जा रहा हूँ। मैंने आशा की थी कि अपनी अन्तिम विदाईके समय तुम लोगोंकी आँखोंमें लेशमात्र अश्रुरेखा देख जाऊँगा। पर देखता हूँ कि तुम लोगोंकी शोकहीन और हृदयहीन सुख-स्वर्गभूमि मेरे प्रति एकदम उदासीन है। वहाँ किसी भी कारणसे अश्रुओंके लिए कोई स्थान नहीं है। तुम्हारे रास-रंगमें कभी एक पलके लिए भी तनिक-सी बाधा नहीं पड़ती। तुम लोगोंका यह स्वर्ग तुम्हींको मुबारक हो। मैं ऐसे स्वर्गसे बाज़ आया। जहाँ दुःख, करुणा और समवेदनाके लिए कोई स्थान नहीं है; जहाँ दीन-दुःखियोंकी कोई पूछ नहीं है। मेरी मातृभूमि जो मर्त्यलोक है, वहाँ यह बात नहीं है। वह समस्त क्षुद्र-क्षीण, दीन-हीन और पापी-तापी जनोंको उत्सुक आलिंगनसे अपने कोमल वक्षमें बाँधनेके लिए सब समय आतुर रहती है और अपनी स्नेहमयी धूलिके स्पर्शसे व्यथित प्राणोंमें पुलकका संचार करती है। तुम्हारे स्वर्गमें अमृतकी वर्षा होती रहे, पर हमारी मर्त्यभूमिमें अनन्त सुख-दुःखसे मिश्रित प्रेमधाराका अविरल प्रवाह जारी रहे, और अश्रुजलसे हमारे भूतलके अनेक छोटे-छोटे स्वर्गखण्ड सदा हरे-भरे बने रहें—यही प्रार्थना है।

"हे मेरी दीना-हीना, दुःखकातर जननी मर्त्यभूमि! आज फिर बहुत दिन बाद मेरा हृदय तेरे लिए रो उठा है। यह स्वर्गलोक अलस कल्पनाकी छायाछविके समान न जाने कहाँ विलीन हो गया है। मैं जानता हूँ कि ज्यों ही मैं तेरे प्रांगणमें प्रवेश करूँगा, त्यों ही तू दोनों बाँहोंसे मुझे जकड़ लेगी, और अपने दुःख-सुख और भयसे पूर्ण प्रेम-जगत्में, अपने पुत्रों और कन्याओंके बीचमें चिर-परिचितके समान मेरा स्वागत करेगी।"

इस कवितासे कविकी यह अन्तर्वेदना ध्वनित होती है कि अपने जन्मगत वातावरणके फलस्वरूप उसमें बुद्धि-विलासके स्वर्गीय छायालोकमें निरन्तर उड़ान भरते हुए एक अलस सुखमय अनुभूति प्राप्त करते रहनेकी जो प्रवृत्ति वर्तमान थी, उसके प्रति उसके सच्चे कवि-हृदयका विरोध जाग पड़ा और पृथ्वीके कठोर जीवनकी यथार्थताके बीचमें रहकर समस्त दीन-दुःखीजनोंके साथ एकात्म अनुभूति प्राप्त करनेमें ही जीवनकी सार्थकता है—यह महासत्य उद्घाटित हो गया। 'वसुन्धरा', 'धरित्री' आदि अनेक कविताओंमें पृथ्वीकी कठिन वास्तविकतासे पूर्ण मिट्टीके प्रति कविकी यही ममता व्यक्त हुई है।

हमारे छायावादी कवियोंकी असफलताके प्रधान कारणोंमें से एक यह है कि मिट्टीके स्पर्शसे उन्होंने सदा बच-बचकर चलनेकी चेष्टा की है। अभी हालमें मेरे एक मित्रने एक पत्रमें प्रकाशित मेरे एक दूसरे मित्रके लेखका एक अंश पढ़कर सुनाया, जो इस प्रकार था—"मैंने कविताको एक अत्यन्त पवित्र अनुभूतिके रूपमें समझा है। अपने काव्य-जीवनके प्रभातमें तो मैं स्नानकर कविता लिखने बैठता था। आज जब मैं कविता लिखने बैठता हूँ, तो जैसे पूजाकी पवित्रता मेरी लेखनीकी नोंकपर आ बैठती है। सम्भवतः यही कारण है कि मैं भौतिक शृंगारकी कोई कविता नहीं लिख सका, या जीवनकी उन बातोंपर प्रकाश नहीं डाल सका, जो पार्थिव जीवनके क्रोड़में अपनी दैनिक गतिसे घटित होती रहती हैं।" मेरा यह विश्वास है कि कविताको जीवनके प्रतिदिनके संघर्ष-विघर्ष और सुख-दुःखपूर्ण घटना-चक्रकी सतहसे बहुत ऊपरकी चीज़ समझनेकी यह मनोवृत्ति केवल हमारे पूर्वोक्त कवि मित्रकी ही नहीं, बल्कि प्रायः सभी छायावादी कवियोंकी रही है। कविताकी अत्यधिक 'पवित्रता'के सम्बन्धमें हमारे महान् कवियोंकी यह जो धारणा है, उससे रवीन्द्रनाथकी धारणा कितनी भिन्न है, इसके प्रमाणमें उनकी वही उक्ति फिरसे दुहराई जा सकती है, जो उन्होंने अपने आराध्यदेवके सम्बन्धमें कही है—"अन्धकारमें तू एकान्त ध्यानमें लीन होकर किसकी गुप्त आराधना कर रहा है? आँख खोल और देख, तेरे देवता मन्दिरके भीतर नहीं हैं। वे धूप और पानीमें किसानों और मजूरोंके साथ बारहों महीने खट रहे हैं। उनके दोनों हाथोंमें धूल और मिट्टी लगी हुई है। इसलिए :—

तोरि मतन शुचि वसन छाड़ि'
आयरे धूलार परे!

उन्हींके समान अपने 'पवित्र' वस्त्रोंको त्यागकर धूलिके बीचमें चला आ।"

रवीन्द्रनाथने सदा जीवनकी धूलिको सिर-माथे रखा है, और पाप और गन्दगीसे बच-बचकर चलने और झूठे आभिजात्यकी मर्यादा-रक्षाका ध्यान रखनेकी नीति उन्होंने कभी नहीं बरती है—उनके कविके सच्चे आभिजात्यका यही प्रमाण है। पाप और पतनसे बच-बचकर चलनेका उपदेश देनेवाली जातिको लक्ष्य करके उन्होंने कहा है :—

"पुण्ये-पापे, सुखे-दुःखे, पतने - उत्थाने
मानुष हइते दाओ तोमार सन्ताने।"

—'अपनी सन्तानको पुण्य-पाप, सुख दुःख, पतन और उत्थान—दोनोंके संघात-विघात द्वारा मनुष्य बनने दो।' पाप और पतनके बिना महत् जीवनका निर्माण कभी नहीं हो सकता, यह उनकी धारणा थी। पवित्र और सुकुमार भावोंके ललित क्रोड़में आँख मूँदकर छायामय स्वप्न देखते रहनेवाले कवियोंके वे प्रारम्भसे ही विरोधी थे, इस बातका उल्लेख इस लेखमें पहले किया जा चुका है। अपनी 'दीक्षा' शीर्षक कविता ('नैवेद्य' में संगृहीत) में उन्होंने अपने जीवन-देवतासे यह प्रार्थना की है—"मैं आज जीवनके आघात और संघातके बीचमें आकर खड़ा हुआ हूँ। मैंने अपने अलंकार उतारकर फेंक दिए हैं। मुझे अपने हाथसे अमोघ अस्त्रोंसे सुसज्जित करो। हे मेरे रणगुरु! मुझे अस्त्र-विद्यामें दीक्षित करो! मुझे कठिन कर्तव्य भार सौंपकर और दुःसह कठोर वेदनाका बरदान देकर नए वीरके वेशमें सम्मानित करो। मुझे सफल चेष्टाओं और निष्फल प्रयासोंसे धन्य करो। ललित भावोंके क्रोड़में मुझे मग्न न करके कर्मक्षेत्रमें मुझे सक्षम और स्वाधीन बनाओ।"

रवीन्द्रनाथ कला और जीवनमें सुकुमारताके आचार्य रहे हैं, सन्देह नहीं ; पर अपनी उस कमनीयताको उन्होंने कभी मर्यादा-लंघन करने नहीं दिया है। उनकी यह आन्तरिक प्रार्थना थी कि—

'क्षमा जेथा क्षीण दुर्बलता
हे रुद्र, निष्ठुर जेन हते पारि तथा।
× × × जेन रसनाय मम
सत्यवाक्य झलि' उठे खरखड्गसम।
अन्याय जे करे आर अन्याय जे सहे
तव घृणा जेन तारे तृणसम दहे॥"

—'क्षमा जहाँ क्षीण दुर्बलताके कारण व्यक्त होती है, हे रुद्र, वहाँ मुझे निष्ठुर बननेकी शक्ति प्रदान करना। मेरी ज़बानमें सत्य वाक्य तीखी तलवारकी तरह झलझला उठे। जो व्यक्ति अन्याय करता है और जो क्षीणप्राण व्यक्ति उस अन्यायको सहता है, उन दोनों श्रेणोके व्यक्तियोंको तुम्हारी घृणा शुष्क तृणके समान दग्ध करे—यही मेरी प्रार्थना है।'

बहुत-से लोगोंकी यह धारणा है कि उपनिषत्-कालीन प्राचीन भारतने जिस ब्रह्म ज्ञानकी शिक्षा दी थी, रवीनन्द्रनाथ केवल उसीके आचार्य रहे हैं, और उसी प्राचीन संस्कृतिका प्रचार उन्होंने अपनी विभिन्न रचनाओं और नाना कर्म-चेष्टाओं द्वारा किया है। इस छोटे-से लेखमें इस महाभ्रान्तिको दूर करनेकी चेष्टा निष्फल होगी, यह मैं जानता हूँ। फिर भी यह निर्देशित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि चिर-नवीनकी खोज ही जिस कविके जीवनका प्रधान ध्येय था, उसपर यह दोष आरोपित करना कि वह जीवन-भर किसी कला और संस्कृतिका अनुचर बना रहा, वास्तवमें हम लोगोंकी महान् अज्ञताका परिचायक है। रवीन्द्रनाथने अपनी सैकड़ों कविताओंमें 'नूतन'के स्वागतका राग अलापा है। 'नूतन' का उन्होंने केवल आवाहन ही नहीं किया है, बल्कि अपने जीवनकी साधनामें अपनी प्रत्येक कर्मचेष्टामें उसे अपनाया भी है। हम यहाँपर केवल दो-तीन स्थलोंके उद्धरण देंगे। 'बलाका' में संगृहीत 'सबुजेर अभियान' शीर्षक कवितामें कवि कहता है :—

"अरे नवीन, ओ मेरे अधकचरे, अरे अबोध, तू आ, और अधमरे खुर्राटोंपर आघात करके उन्हें फिरसे जीवित कर। आज रक्त-आलोकके मदसे मत्त प्रभातमें तुझसे कोई कुछ भी कहे, तू परवा न कर और सब तर्क-वितर्कोंको चुटकियोंमें उड़ाकर तू अपने पुच्छको नचा!

"ये जो बड़े सयाने लोग हैं, वे ऐसे अन्धे हो गए हैं कि बाहरकी ओर देखना ही नहीं चाहते। उन्हें पता नहीं है कि ज्वारके वेगने भयंकर बाढ़ उनके दरवाज़े तक आ पहुँची है। वे मिट्टीमें पाँव रखकर चलना नहीं चाहते। ऊँचे बाँसोंकी मचानोंके ऊपर (अर्थात् ताड़के झाड़पर) अचल आसन जमाए वे निश्चिंत होकर बैठे हैं।

"शृंखला-देवीकी यह जो पूजावेदी है, वह क्या चिरकालके लिए खड़ी रहेगी? मेरे पागल! प्रमत्त! तू

दरवाज़ा तोड़कर भीतर चला आ, तूफ़ानी डंका बजाकर विजय-पताका फहराते हुए, अपने अट्टहाससे सारे वातावरणको फाड़ डाल !........मैं जानता हूँ कि तुझे बहुत-सी विपत्तियों और आघातोंका सामना करना पड़ेगा। यही जानकर तो मेरे प्राणोंमें हर्ष उछल रहा है।........ तू चिरयुवा और चिरजीवी है। जीर्णजराको झाड़कर तू अनन्त प्राणको सारे संसारमें बिखेर दे।"

'वर्ष-शेष'-शीर्षक कवितामें कवि नववर्षका आह्वान करते हुए कहता है—

"आज आनन्द और आतंक, क्रन्दन और उल्लासके गर्जनके साथ, मत्त हाहाकारके स्वरमें उन्मादिनी काल-वैशाखी* अपने चरणोंमें झंझा (तूफ़ान) का मंजीर बाँधकर नृत्य करे। उसके प्रति छन्दसे, प्रति तालसे और प्रति लयसे पुरातन वर्षका समस्त निष्फल संचय, धूल और तिनकोंके समान उड़-उड़कर बिखर जाय।

"हे दुर्दमनीय! हे निश्चित! हे निष्ठुर नूतन! हे सहज सबल! जिस प्रकार जीर्ण पुष्पदलोंको चारों ओर ध्वंस-भ्रंश करके † फल प्रकट होता है, पुराने पर्णपुटोंको छिन्न-भिन्न करके अपूर्व आकारमें विदीर्ण करता है, उसी प्रकार तुम प्रबलताके साथ परिपूर्ण रूपसे विकसित हुए हो; मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

"हे कुमार! अपने इन्द्रधनुषकी प्रत्यंचाको झनन-झनन, रनन-रनन शब्दसे पूर्ण प्रवेगसे खींचो, ताकि वह सुतीव्र स्वनन (शब्द) हमारे वक्ष-पंजरोंको भेदकर मर्ममें कम्पित हो उठे। हे किशोर! अपनी उदार जयभेरीको उठाकर उन्मादक स्वरमें उसे बजाओ और सबको पुकारो। हम लोग उस महा आह्वानको सुनकर उठ खड़े होंगे, अपने घरोंके बद्ध वातावरणसे बाहर निकल आवेंगे और अपने प्राणोंकी बलि देंगे।

"फिर पीछेकी ओर भूलकर भी हम न देखेंगे, न बन्धनकी परवा करेंगे न किसीके क्रन्दनकी; न देशकी परवा करेंगे, न कालकी; न तर्क करेंगे, न विचार; केवल उन्मुक्त बन्धनहीन पथिकोंकी तरह आगेकी ओर बढ़े चलेंगे। एक मुहूर्त्तमें हम मृत्युकी फेनिल उन्मत्ततासे पूर्ण रसको कण्ठ तक भरकर पान करेंगे, और साथ ही अपने आज तकके खिन्न, जीर्ण-शीर्ण जीवनके लाखों धिक्कारों और अवमाननाओंको तिलांजलि देंगे!"

इसी कविताके एक दूसरे स्थानमें कवि 'उन्मत्त नवीन' का स्वागत करते हुए कहता है—

"इस बार तुम वसन्तके अलस आवेशमय तरंगोंमें नाचते हुए और नवकुसुमोंकी कलियोंको चूमते हुए नहीं आए; इस बार मर्मरित कूजन और गुंजनके साथ तुम्हारा आगमन नहीं हुआ। तुम धन्य हो, धन्य हो! इस बार तुम अपने विकट रथचक्रोंको घर्घर शब्दसे मुखरित करते हुए विजयी वीरके समान गर्वित और निःशंकित होकर आए हो। अपने वज्रमन्त्रसे तुमने जिस नववाणीकी घोषणा की है, उसे मैं समझा भी हूँ और नहीं भी समझा हूँ। तुम्हारी जय हो, जय हो!"

हमारे कवियोंमें नव जागरणके अग्रदूत पंतजीने भी 'जीर्ण-पुरातन' के ध्वंस-भ्रंश होनेकी कामना की है। उनकी यह कामना अत्यन्त सुन्दर और स्तुत्य है, सन्देह नहीं; पर रवीन्द्रकी कामना और उनकी कामनामें यह अन्तर है कि रवीन्द्रने पुरातनके ध्वंसके लिए जिस नूतनका आह्वान किया है, उसका सम्बन्ध उस प्रचण्ड क्रान्तिकारी, रुद्ररूपी, वज्रघोषी आँधीसे है, जिसका भीषण प्रवेग वास्तवमें दुर्दमनीय, विराट् और विश्वव्यापी है; पर पन्तजीने अपनी सहज सुकुमार प्रवृत्तिके अनुसार सदियोंसे जड़ता-प्राप्त कठोर पुरातनके विनाशके लिए पुकारा भी तो अपनेसे भी अधिक सुकुमार प्राणी कोकिलको! उन्होंने यह नहीं सोचा कि कोकिल बेचारा अपने कूजनसे जो 'पावक-कण' बरसावेगा, वे या तो अपने-आप पुरातनके पत्थरके समान कड़े चमड़ेके ऊपर गिरकर बुझ जावेंगे, या वृद्ध पुरातन स्वयं उन्हें आसानीसे बुझा देगा। उस जीर्ण पुरातनपर जब तक रवीन्द्रनाथकी कालवैशाखी वज्रवर्षा नहीं करेगी, तब तक कोई फल नहीं होगा, यह निश्चित है। इस तथ्यसे हम केवल यह निर्देशित करना चाहते हैं कि रवीन्द्रनाथ जहाँ सुकुमारतामें हमारे छायावादी कवियोंसे कई गुना अधिक सजल, सुकोमल और सरस रहे हैं, वहाँ साथ ही कठोर और स्वस्थ पौरुषमें उनके आगे शायद ही संसारका कोई दूसरा कवि ठहर सके। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सुकुमारता और पौरुषके दो विभिन्न युग रवीन्द्रनाथके जीवनमें नहीं रहे हैं, बल्कि प्रारम्भसे ही उन दोनों प्रवृत्तियोंका विकास समानान्तर रेखाओंमें साथ-साथ हुआ

---

* वैशाखके महीनेकी भयंकर आँधी।

† जीर्ण पुष्पदल यथा ध्वंस-भ्रंश करि चतुर्दिके बाहिराय फल।

है। इसका कारण यह रहा है कि रवीन्द्रनाथने कभी सत्यकी आराधना एकांगीण रूपसे नहीं की है—सत्यके विभिन्न पहलुओंको पूर्णताके साथ अपनानेके लिए वे सदा तत्पर रहे हैं और उन सबको सामंजस्यके सूत्रमें बाँधनेका महत् प्रयास उन्होंने किया है। हमने जिस प्रकार वर्तमान लेखमें कविकी एक विशेष कोटिकी ही कविताएँ अधिकतर उद्धृत की हैं, उसी प्रकार यदि कोई दूसरा लेखक उनकी दूसरी कोटिकी कविताएँ—सहज, सुकुमार भाव-समन्वित छायावादी कविताएँ—उद्धृत करे, तो पाठकोंके मनमें कविके सम्बन्धमें कुछ दूसरी ही धारणा उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। इसी कारण एक बार रवीन्द्रनाथने कहा था—"मैं जब एक बार एक तरहकी बात कहता हूँ और दूसरी बार दूसरी तरहकी, तो लोग मुझे आत्म-खण्डनके लिए दोषी ठहराते हैं; पर वे यह नहीं समझना चाहते कि सत्यके कितने विभिन्न पहलू हैं।" इसके अतिरिक्त, यदि रवीन्द्रनाथकी सुकुमार छायावादी कविताओंको भी हम गहरी अन्तर्दृष्टिसे देखें, तो मालूम होगा कि उनकी सुकुमारताके अन्तरालमें भी स्वस्थ सबलता और सार्वजनीन कल्याणकी भावना निहित है।

रवीन्द्रनाथके विचारोंकी तथाकथित 'परस्पर-विरोधिता' का उल्लेख करते हुए एक और महत्त्वपूर्ण बातकी ओर मैं पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। वह यह कि 'चिर-नूतन' को सदा मुक्त हृदयसे अपनानेके लिए तैयार रहनेपर भी रवीन्द्रनाथ यह भली-भाँति जानते थे कि उस 'चिर-नवीन' का मूलबीज कहीं बाहरसे नहीं आता, बल्कि वह 'चिर-पुरातन' के ही भीतर निहित रहता है और वहींसे विकास-प्राप्त होता है। अपनी 'जीवन-देवता'-शीर्षक कवितामें वे लिखते हैं:—

"एखन कि शेष हयेछे प्राणेश, जा किछु आछिलो मोर?
जत शोभा, जत गान, जत प्राण, जागरण, घूमघोर?
शिथिल हयेछे बाहु-बन्धन?
मदिरा-विहीन मम चुम्बन?
जीवन-कुंजे अभिसार-निशा आजि कि हयेछे भोर?
भेङे दाओ तवे आजिकार सभा
आनो नवरूप, आनो नवशोभा,
नूतन करिया लहो आरबार चिर-पुरातन मोरे।
नूतन विवाहे बाँधिवे आमाय नवीन जीवन-डोरे॥"

—'हे मेरे प्राणेश! आज क्या मेरे जीवनका सब-कुछ समाप्त हो चला है?—जितनी शोभा थी, जितना गान था, जितनी प्राण-शक्ति थी, जागरण और निद्राकी जो रात्रियाँ थीं, वे सब निःशेष हो गईं? मेरा बाहुबन्धन क्या आज शिथिल हो गया है? मेरा चुम्बन क्या आज मादकता-रहित हो चला है? मेरे जीवन-कुंजकी अभिसार-निशा क्या आज नव-प्रभातके प्रकाशमें विलीन हो गई है? अच्छी बात है, तब आजकी सभा भंग कर दो और फिरसे नया रूप और नई शोभा लाकर मुझे अलंकृत करो। मुझ चिर-पुरातनको फिर एक बार नए रूपमें ग्रहण करो और नये जीवन डोरसे उसे नये विवाहके बन्धनमें बाँध लो!"

इस रूपकसे स्पष्ट ही यह भाव ध्वनित होता है कि कवि युग-युगकी प्रगतिको सरल-रेखान्वित नहीं, बल्कि वृत्तानुक्रमिक (Cyclic) मानता है। इसलिए वह जब नवीनको पूर्ण हर्षोल्लासके साथ अपनाने जा रहा है, तो यह बात नहीं भूला है कि चिर-पुरातन ही नवीनतम वेशमें उसके सामने प्रकट हुआ है। एक दूसरी कवितामें कविने लिखा है कि "नूतनेर माझे तुमि पुरातन से कथा जे भूले जाइ!"—हम लोग अपने अज्ञानवश यह महत्त्वपूर्ण बात भूल जाते हैं कि 'नूतन' के बीचमें सदा 'चिर-पुरातन' निवास करता है।

यह बात यथाशक्ति वर्तमान लेखमें प्रमाणित की जा चुकी है कि 'चिर-पुरातन' के मूलकेन्द्रको पकड़े रहनेपर भी किसी नूतन और प्रगतिशील भावको अपनानेके लिए रवीन्द्र सदा-सर्वदा पूर्ण प्राणशक्तिसे तैयार रहे हैं। अपने जीवनमें वे प्रत्येक क्षेत्रके प्रगतिशील आन्दोलनके अग्रणी रहे हैं। शरच्चन्द्रने अपने उपन्यासोंमें पतिता नारियोंके जीवनको मानवताके प्रकाशमें लाकर उसे महिमान्वित करनेके प्रयासमें कैसी सफलता पाई है, यह बात किसी साहित्य-प्रेमीसे छिपी नहीं है। पर पाठकोंको यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि इस प्रगतिशील भावधाराके अग्रदूत भी रवीन्द्रनाथ ही रहे हैं। अपनी 'पतिता' शीर्षक सुप्रसिद्ध और दीर्घ कवितामें उन्होंने पतिताके अन्तरके मानवत्वका जो जयगान गाया है, वह संसार-साहित्यकी एक अपूर्व चीज़ है। 'सती' शीर्षक कवितामें तो उन्होंने उग्रसे उग्र प्रगतिवादियोंके भी कान कतर डाले हैं। इस कविताका अनुवाद यहाँपर देनेका लोभ मैं नहीं त्याग पाता हूँ:—

"सतीलोकमें न जाने कितनी ऐसी पतिव्रताएँ वास करती हैं, जिनकी कथाएँ पुराणोंमें उज्ज्वल रूपसे वर्तमान हैं। उनके अतिरिक्त और भी लाखों अज्ञातनामिनी, ख्यातिहीना, कीर्तिहीना सतियाँ वर्तमान रही हैं। उनमें से कोई राजमहलोंमें रहती थीं, कोई पर्णकुटियोंमें; कोई पतिका प्रेम पाकर सुखी थीं और कोई अनादर तथा अवज्ञामें अपना जीवन बिताती थीं। (निष्काम) प्रेमकी धारा बहाकर और अपना नाम मिटाकर वे मौन भावसे मर्त्यलोकसे सतीलोकमें प्रवेश करती रही हैं।

"उन्हीं सतियोंके बीचमें पतिता-रमणियाँ भी हैं, जो मर्त्यमें कलंकिनी समझी जाती हैं, पर स्वर्गमें सती-शिरोमणियोंके रूपमें विराज रही हैं। उन्हें देखकर सती-गर्वसे गर्विणी स्त्रियाँ लज्जासे सिर झुका लेती हैं। उनकी वार्ता तुम लोग क्या समझोगे? केवल अन्तर्यामी ही उनके सतीत्वकी गाथासे परिचित हैं।"

यह कविता प्रायः पैंतालीस वर्ष पहले लिखी गई थी। इसके प्रकाशित होनेपर कट्टर पतिव्रतावादियोंमें बड़ा तहलका मच गया था। पर जिस कविकी अपने जीवन-देवतासे यह प्रार्थना रही है कि "मेरी ज़बानमें सत्य कथन तीखी तलवारकी तरह चमक उठे," वह कट्टर, पतिव्रतावादी, जड़ और वृद्ध-समाजके भयसे भीत नहीं हो सकता था। किन्तु इस एक कवितासे यह समझनेकी भूल नहीं करनी चाहिए कि रवीन्द्रनाथ उच्छृंखलतावादी थे। स्त्री पुरुषके पारस्परिक प्रेमकी सचाईपर उन्होंने जितना महत्व आरोपित किया है, उतना शायद ही किसी दूसरेने किया हो। पर वे चाहते थे कि वह सचाई आन्तरिक हो और दोनों ओरसे रहे, और नारीपर बलपूर्वक सतीत्वका सामाजिक बन्धन आरोपित न किया जाय। आदर्श और कवित्वमय 'स्वर्गीय' प्रेमकी अनुभूति रवीन्द्रनाथके भीतर वर्तमान नहीं थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर इस कारण उन्होंने पार्थिव प्रेमकी अवज्ञा कभी नहीं की। बल्कि उन कवियोंके साथ उनका सदा विरोध रहा, जो स्त्री-पुरुषके प्रेमको केवल देवलोककी चीज़ समझते थे। अपनी 'वैष्णव-कविता'-शीर्षक कवितामें उन्होंने वैष्णव कवियों द्वारा वर्णित राधा-कृष्णके प्रेमकी विशुद्ध आध्यात्मिक अभिव्यक्तिके प्रति विद्रोहकी भावना प्रकट करते हुए यह प्रश्न किया है कि "क्या उस (वैष्णव) संगीत-रसकी 'स्वर्गीय' धारा इस दीन मर्त्यलोकके निवासी नर-नारियोंकी प्रतिदिन और प्रतिरात्रिकी तप्त प्रेम-तृष्णाका निवारण नहीं कर सकती?" यदि ऐसा है, तो कविकी दृष्टिमें उसका कोई मूल्य नहीं है। रवीन्द्रनाथ कट्टर मानववादी थे। देवत्वका पाठ पढ़ानेवालोंके वे जितने विरोधी थे, उतने ही विरोधी वे 'पशुओंसे प्रेम कला सीखने'की शिक्षा देनेवालोंके भी थे।

यह लेख मैंने विशेष रूपसे अपने प्रगतिशील मित्रोंका ध्यान आकर्षित करनेके उद्देश्यसे लिखा है। मेरे कुछ मित्रोंने मुझसे यह प्रश्न किया है कि सच्ची प्रगतिशीलताके सम्बन्धमें मेरा आदर्श क्या है? उनके आगे मैं प्रगतिशील रवीन्द्रनाथका उदाहरण पेश करना चाहता हूँ। हिन्दीके वर्तमान प्रगतिवादी साहित्यिकोंका जो विरोध मैंने किया है, वह इसलिए नहीं कि मैं नवीन और प्रगतिशील भावधाराका प्रतिपक्षी और घिसी कला और संस्कृतिका अनुचर हूँ। मेरा विरोध केवल इस बातको लेकर रहा है कि अपने यहाँके अधिकांश प्रगतिपंथी लेखकों तथा कवियोंमें मैंने 'मानवता' की पोशाकमें केवल अहंभावका पोपलापन पाया है—नूतनको केवल युगके फ़ैशनके लिए अथवा अपने गुट अथवा व्यक्तित्वके प्रचारके लिए अपनानेकी प्रवृत्ति पाई है। यही कारण है कि न हमारे प्रगतिपंथी कवियोंकी कवितामें कोई कला है, न उनकी दूसरे प्रकारकी रचनाओंमें कोई प्राणशक्ति। ऐसा कहते हुए मुझे बहुत दुःख हो रहा है, क्योंकि मैं आन्तरिक हृदयसे यह चाहता हूँ कि हिन्दीका प्रगतिशील साहित्य चमके और एक स्वस्थ, सबल और सुन्दर नया आदर्श जनताके आगे रखनेमें समर्थ हो। मुझे यह आशा भी है कि वह दिन निकट है, जब प्रगतिका आन्दोलन एक सच्चा और समुन्नत आदर्श हिन्दी-जगत्के सम्मुख रखनेमें सफल होगा, क्योंकि दो-चार व्यक्ति ऐसे वर्तमान हैं, जो आन्तरिक सहृदयता और सच्ची लगनसे इस ओर पाँव बढ़ा रहे हैं। पर अभी इस क्षेत्रमें ऐसे साहित्यिक पंचम-स्तम्भियोंकी भरमार है, जिनका उद्देश्य केवल घर फूँककर तमाशा देखने और अपनी अहम्मन्यताकी पूर्ति करनेका है। रवीन्द्रनाथकी प्रगतिशीलता उनकी आजन्म साधनाका फल थी, जग-जनके सामूहिक कल्याणकी वेदनाको उन्होंने अपनी सच्ची अन्तरानुभूतिसे प्राप्त किया था, इसी कारण उनकी प्रगतिशीलता प्राणशक्तिसे ओतप्रोत है और उनकी कला सजीव और मार्मिक सत्यके स्पन्दनसे प्रतिपल फड़कती रहती है। रवीन्द्रनाथने 'अशेष' कर्मलोककी चिर-जाग्रत देवीसे यह प्रश्न

किया है :—

"रक्त दिये की लिखिबो ? प्राण दिये की शिखिबो ?
की करिबो काज ?"

—'मुझे आज्ञा दो कि अपने रक्तसे मुझे क्या लिखना होगा, और अपने प्राण देकर मुझे क्या सीखना होगा ?'

वास्तवमें उन्होंने जो-कुछ लिखा अपने रक्तसे ही लिखा, और जो कुछ सीखा अपने प्राणोंके निष्ठुर पीड़न द्वारा ही सीखा। हमारे साहित्यिकोंको यह बात सदा ध्यानमें रखनी होगी कि साहित्य साधनाके समान कठोर साधना दूसरी कोई नहीं है, और ड्राइंग-रूमोंके वार्तालापोंसे युगकी प्रगतिके सम्बन्धमें दो-चार छुटपुट बातें सीखकर साहित्य-क्षेत्रमें कूद फाँद मचानेसे कोई भी व्यक्ति सच्चा साहित्यिक नहीं बन सकता।

३५५ ए०, कर्नलगंज, प्रयाग ]

---

# हे सम्राट कवे !

श्री जगदीश मिश्र, काव्यतीर्थ

हे सम्राट कवे !
महाप्रतिभ, आलोक-विच्छुरित,
कृत भूगोल - खगोल - चमत्कृत !
तुम दिग्-बन्ध-विहीन,
हे चिर-चारु नवीन !
कर्म - सूत्र-रचना - सुविधायक,
जागरूक तुम जन-अधिनायक,
प्रणत शिरः - सम्मान्य,
भाग्य-लभ्य, हे धन्य, वदान्य !
यह लीला का उपसंहार—
संवृत कर - सहस्र - संभार,
अस्तंगत द्युतिमान !
महामहिम हे रवे !
हे सम्राट कवे !

हे देवदूत !
जाति - वर्ग - प्रतिबन्ध क्षुद्रतर,
भ्रातृ-भावका बीज उप्तकर—
देव - निदेश प्रमाण
महामानवताका निर्माण !

किन्तु हाय !
वन्य - बर्बर पशुताका ग्रास
देख सकते क्यों कर यह नाश ?
यह महाभिनिष्क्रमण तुम्हारा
कुछ अवशिष्ट दिव्य मधुधारा
दें अन्तिम वरदान,
मानवता म्रियमाण !

महामिलन यह ओह !
निर्झरका असीम - सम्मेलन,
विरह-प्रेमका चिर - आलिंगन !
मिट्टीका परिधान—
क्षुद्र व्यवधान !
चिर-याचित यह पर्व तुम्हारा,
यह दुःस्वप्न - विबोध
काल पर क्रोध,—
हमारा मोह !
महामिलन यह ओह !

हे अमर !
कोटि - कोटि हृदयोंमें संस्थित,
वह विशाल व्यक्तित्व-मूर्त्ति स्मित ;
जीवनमय संगीत,
ध्वनित अद्यावधि परम पुनीत !
फिर हम देख-देख, सुन-सुनकर
कातर बनें महान पर्व पर !
तब, कैसा यह मोह ?
अश्रु-विलुलित ये आर्द्र नयन ?
हमारे मनका आश्वासन !
हे अमर !

# रवीन्द्र-काव्यकी भूमिका

श्री गोपाल हालदार, एम० ए०

रवीन्द्रनाथका कवि-जीवन दीर्घ और विचित्र है। क़रीब साठ सालसे भी अधिक समयसे कविने ऐसी कविताएँ लिखी हैं, जो स्मरणीय हैं और कविताके दृष्टिकोणसे मूल्यवान हैं। 'भानुसिंह ठाकुरकी पदावली' या 'कड़ि और कोमल'से लेकर पिछले वैशाख महीने तक कविकी जो सृष्टिधारा प्रवाहित होती रही है, उसमें कवि-कल्पनाकी अशेष विचित्रता है। शायद संसारकी किसी विशेष कवि-प्रतिभाने इतना दीर्घ जीवन नहीं पाया है, और किसी भी कवि-कल्पनाने ऐसी नित्य नवायमान विचित्रताका परिचय नहीं दिया। इसका एक कारण निश्चित रूपसे कवि स्वयं हैं। उनकी जैसी प्राणशक्ति और सृष्टिशक्ति अन्यत्र दुर्लभ है। दूसरा कारण है कविका काल। रवीन्द्रनाथका कवि-जीवन जिस युगका गवाह है, मानव-इतिहासमें ऐसा जटिल, विचित्र और विस्मयप्रद युग कभी नहीं आया है। इसीलिए पहलेके दीर्घायु कवि भी ऐसी विचित्र कीर्ति अपने पीछे नहीं छोड़ गए हैं।

रवीन्द्रनाथका कवि-जीवन इस दीर्घ विचित्र युगकी अन्तर्लिपि है—ऐसा कथन अवश्य ही अनेक रसिक व्यक्तियोंको भला नहीं लगेगा; लेकिन है यह सत्य। रवीन्द्रनाथ अपने युगके मानव हैं। उनकी समसामयिक साधारण जनता भी उनकी तरह यह दावा नहीं कर सकती है, क्योंकि युगके लक्षण उसमें इतने साफ़ नहीं दिखाई पड़ते हैं। वे भी युगकी उस विचित्र गतिके सम्बन्धमें इतने सचेत नहीं हैं। केवल विशाल प्रतिभामें ही यह प्रकाश-शक्ति और सवेदन-शक्ति है। अतएव युग-प्रतिभाका गौरव उन्हींको मिलना चाहिए।

लेकिन पिछले साठ वर्षोंसे मानव-इतिहासमें जो घटनाएँ घटती रही हैं, वे केवल एक ही युगका परिणाम नहीं हैं—वे युगान्तर हैं। इस कथनको लोग चर्वित-चर्वण समझ सकते हैं; लेकिन यही कथन ८१ वर्षकी अवस्थामें पिछले वैशाखके उषःकालमें कविके आर्त्त-कण्ठके तीव्र भाषणमें प्रतिध्वनित हुआ है—कालान्तर हो रहा है। युगके जिस सत्यको लेकर साठ साल पहले कवि-जीवनकी यात्राका प्रारम्भ हुआ था, उस सत्यका दिवाला निकल गया है। उसकी पूँजीका जो अंश अब भी ख़त्म नहीं हुआ है, वह युगान्तर है। मानव स्वभावके प्रति कविकी आन्तरिक श्रद्धा है, वह किसी ख़ास युगकी सम्पत्ति नहीं है, वह मानव-इतिहासका आशीर्वाद है।

जिन दिनों रवीन्द्रनाथकी साहित्यिक जीवन-यात्रा शुरू हुई, पश्चिमी सभ्यता अपने असीम ऐश्वर्यके दिन देख रही थी। उस सभ्यताका वाहन उस समय तक एकमात्र अंगरेज़ ही थे। उस सभ्यताका प्रधान लक्षण है गणतांत्रिक उदार दृष्टिकोण और राष्ट्रीयता, और उसकी मर्मवाणी है व्यक्तिकी महिमाका बोध। अंगरेज़ोंके हाथसे उन दिनों इस दानको ग्रहण करनेके लिए हममें उत्साहकी सीमा नहीं थी। एक ओर तो अंगरेज़ोंने अपनी राज-महिमा और उद्योग-धंधोंकी महिमासे हमपर विजय पाई थी और दूसरी ओर उनकी मानस-सम्पदा—उनका साहित्य और उन्नीसवीं सदी तक विज्ञानमें अग्रगति, शेक्सपियरसे स्विनबर्न, न्यूटनसे चार्ल्स डारविन-हक्सले और हरबर्ट स्पेन्सर तक अंगरेज़ोंकी कीर्त्तिने हमारे सामने नवीन जगत्का द्वार खोल दिया था। और सबसे बड़ी बात यह है कि जो नवागत विचारधारा हमपर विजय पा रही थी, उसे हमारी पुरानी विचारधाराने रोका नहीं, बल्कि उसीमें उसे अपनी तृप्ति मिली। इसका कारण यह है कि भिन्न-भिन्न जातियों तथा विचित्र घटनाओंके घात-प्रतिघातसे भारतीय कृषि-सभ्यता और साधारणतः भारतीय जीवनमें एक ही प्रकारसे कई विचारोंको पुष्टि मिली, जिसके परिणाम-स्वरूप संघर्ष शुरू होनेके पहले ही भारतवासियोंने पश्चिमी विचारोंको ग्रहण कर लिया। भारतवासियोंकी एक विशेषता है उनकी शिथिल सहनशीलता, जिसका साम्य पाश्चात्य उदार नीतिसे साफ़-साफ़ दिखाई पड़ता है। उनकी दूसरी विशेषता है व्यक्तिकी आध्यात्मिक स्वतंत्रता, और पश्चिमी व्यक्तिगत स्वतंत्रताका भी यही अंतिम लक्ष्य है। तीसरा लक्षण है हिन्दुओंकी समाज-चेतना, जो पाश्चात्य राष्ट्रीयताके प्रभावसे
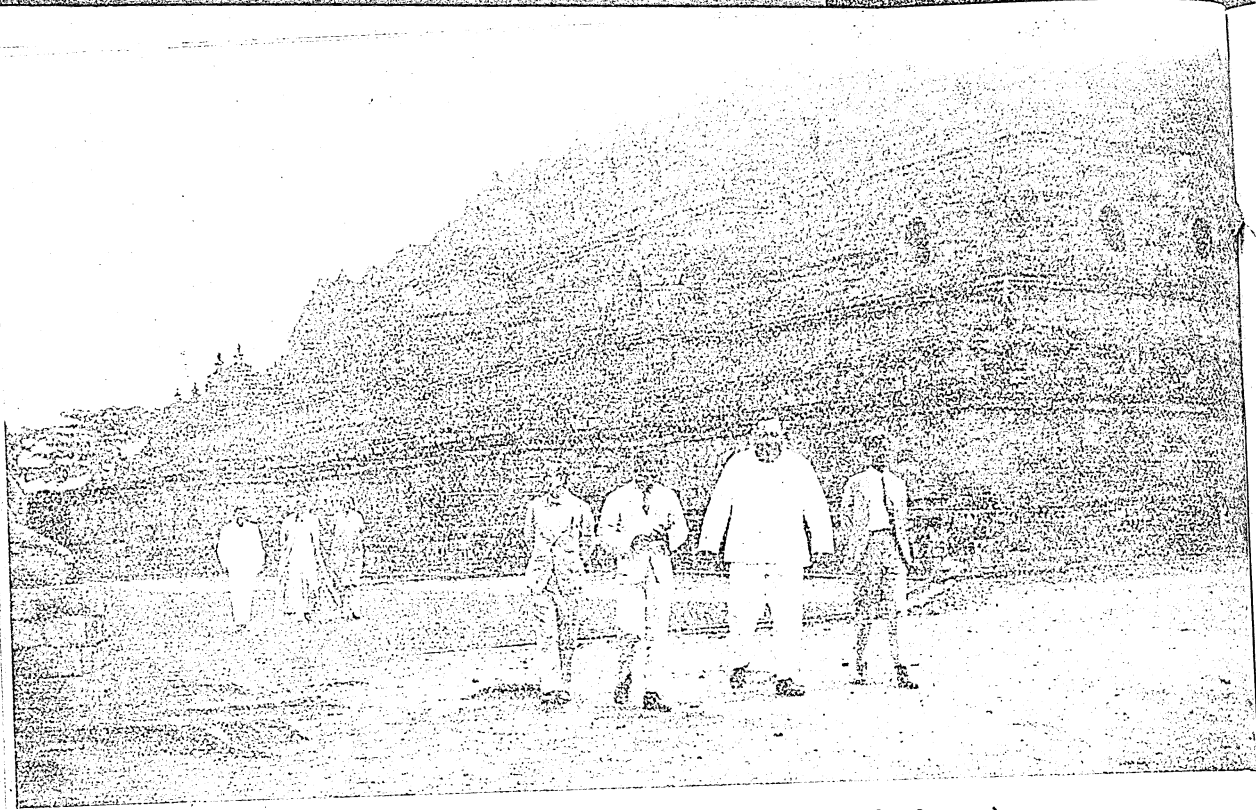
जावाद्वीपमें वर-बुदूर मन्दिरकी परिक्रमा करते हुए रवीन्द्रनाथ ( अन्य साथियोंके साथ )।
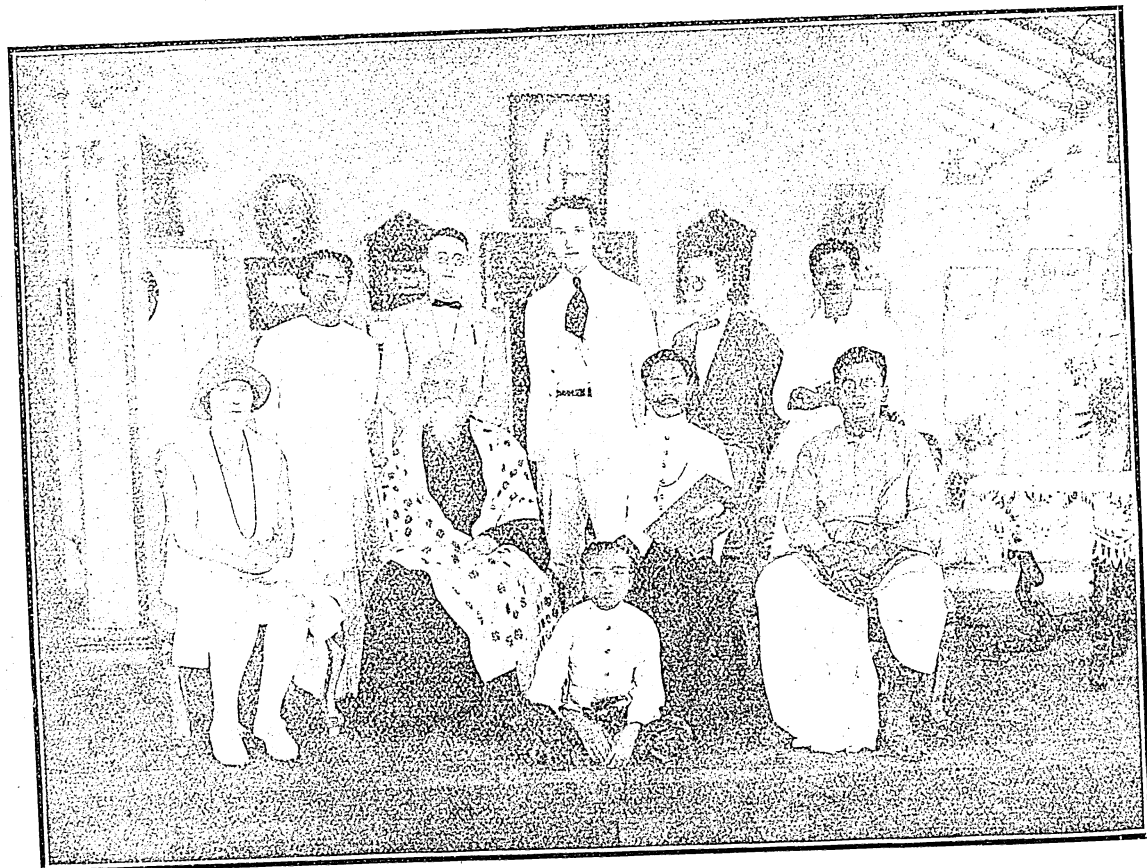
पूर्वी द्वीप-समूहकी यात्राके समय लिया गया रवीन्द्रनाथका एक चित्र।

सहज ही हिन्दू-राष्ट्रीयतामें रूपान्तरित होकर उसने हमें बिल्कुल पागल बना दिया।

यही रवीन्द्रनाथके कवि-जीवनकी भूमिका और भारतवर्षमें उन्नीसवीं सदीका परिपाक-युग है। परन्तु पृष्ठ-भूमि ही किसीके जीवनका सब कुछ नहीं है; अग्र-भूमिका, स्वभूमिका—अर्थात् विशेष जीवनका विशेष वातावरण—और निजी जीवनकी घटनावलीके भाव-सम्पदका निज स्वरूप-दान भी है। रवीन्द्रनाथ इस दृष्टिसे भी विशेष सौभाग्यशाली थे। किसी भी देशके किसी भी मनीषीका जन्म शायद इतने विशाल पारिवारिक सौभाग्यको लेकर नहीं हुआ था। पश्चिमी विचारकी सम्पदा उस समय उनके परिवारको जिस चिरन्तन समाज-मुक्ति (Non-conformist) और अध्यात्मवादी विद्रोह (Puritanic Revolution) की ओर ले जा रही थी, उसका उन्होंने सहज ही उपर्युक्त भारतीय साधनाके साथ नवीन व्यक्ति-स्वातंत्र्य, हिन्दू-राष्ट्रीयता तथा उदार दृष्टिकोणके साथ सहयोग स्थापित कर दिया। उस युगके इस विकासशील कविको किसी भी प्रकारके बाधा-विरोधका सामना नहीं करना पड़ा, वह अपने पथपर निरन्तर अबाध रूपसे आगे बढ़ता गया।

यही निजी पथ गुरुदेवकी निजी सम्पदा है, यही उनकी स्वभूमिका है। केवल पृष्ठभूमि और अग्रभूमिसे कवि नहीं बनते हैं, न इससे कविता ही होती है। घटना-चक्रमें जहाँ इन धाराओंका समन्वय होता है, वहीं कवि-मानस सम्पूर्ण हो सकता है—कविकी सृष्टि भी सीमाहीन और बाधाहीन होती है। सौभाग्यकी बात है कि उनकी निजी सम्पदा उपर्युक्त समन्वयके लिए मूल्यवान थी। उनका निजीपन है विशेषरूपसे गीतिधर्मी (Lyrical), और गीतिधर्मी प्रत्येक प्रतिभाकी प्रधान काव्यवस्तु है व्यक्ति-मानस और व्यक्तिगत अनुभूति। इसीलिए व्यक्ति-स्वातंत्र्यके इस युगमें यह कवि-कल्पना केवल व्यक्ति-सत्ताकी महिमासे ही मंजुरित हो उठी। व्यक्ति-महिमाका ऐसा गान और किसीने नहीं गाया है—अपने युगकी इस मर्मवाणीको इस प्रकारसे अखण्ड वाणीका रूप किसीने भी प्रदान नहीं किया है। रवीन्द्रनाथके कवि-जीवनका यही प्रधान स्वर है। वे व्यक्ति-सत्ताके कवि हैं, व्यक्ति-स्वातंत्र्य-युगके प्रधान उद्गाता हैं। यह सम्भव हुआ था उनकी निजी प्रतिभा, परिस्थिति और सनातनिक विचारधाराकी समन्वयपूर्ण सम्पूर्णताके कारण।

इस बातको अप्रमाणित करनेके लायक अनेक प्रमाण हैं कि क्या रवीन्द्रनाथ केवल व्यक्ति-स्वातंत्र्यके कवि हैं? जिन्होंने 'स्वदेशी-समाज' से एक सहयोगपूर्ण समाजका स्वप्न देखा, सोवियत् देशकी सामूहिक साधनाको देखकर जो मुग्ध होकर लौटे, क्या वे केवल व्यक्ति-स्वातंत्र्यके ही कवि हैं? यह तर्क बिल्कुल ठीक है। व्यक्ति-स्वातंत्र्यके समर्थक भी समाजको उड़ा नहीं देना चाहते। जान स्टुअर्ट मिल और हरबर्ट स्पेन्सरने भी समाजकी माँगको अस्वीकृत नहीं किया है। उस प्रकारका निरंकुश व्यक्ति-स्वातंत्र्य तो केवल पागलोंके दिमागमें है। दूसरोंके विचार या दृष्टिकोणके सम्बन्धमें केवल पागल ही तटस्थ रहता है। रवीन्द्रनाथ जैसे महामनीषी जीवनके सामाजिक वातावरणके सम्बन्धमें सचेत नहीं होंगे, यह सर्वथा असम्भव है; लेकिन उनके अनुभूति-लोकमें यह वास्तविक सामाजिक बोध सत्य नहीं हुआ है—क्योंकि कविता अनुभूति-लोकका ही वाङ्मय रूप है। युग-धर्म, वातावरण और निजी प्रतिभाके प्रबल मिलनसे व्यक्ति-महिमा रवीन्द्रनाथके कवि-मानसमें वास्तव हो गई है, इसमें सन्देह नहीं।

लेकिन बाहरके इस सामाजिक बोधको कवि-मानस यदि बिल्कुल रोकना चाहता, तो उसकी बुद्धि और अनुभूतिमें संघर्ष हो जाता तथा कविकी प्रतिभा भी कहीं न कहीं आहत और बाधा-प्राप्त होती। उनकी प्रतिभाने इस सामाजिक बोधका भी व्यक्ति-स्वातन्त्र्यसे एक आश्चर्यजनक उपायसे समन्वय कर डाला है। व्यक्तिका जीवन आत्म-निष्ठ होता है; परन्तु व्यक्ति-जीवन खण्डजीवन है, स्व-सम्पूर्ण (Self-contained) नहीं। यथार्थमें वह समाज-जीवनका कण मात्र है। अनुसंधान करनेसे मालूम होता है कि व्यक्तिको आधार नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि वह एक ओर तो असंख्य अणु-परमाणुओंके तूफ़ानसे आन्दोलित एक वस्तु है और दूसरी ओर समाजकी तुलनामें व्यक्ति असम्पूर्ण है—वह केवल एक परमाणु मात्र है। इसीलिए व्यक्ति-चेतना (Ego) वास्तवमें उस वृहत् समाज-सत्य (Social selp) को अस्वीकार नहीं कर सकता, अपनेको भी वह केवल खण्ड-असम्पूर्ण ही समझता रहता है। इधर उसकी समाज-चेतना भी उसे अपनी सम्पूर्णता—विशाल वास्तविकता—की ओर खींचकर ले जाना चाहती है। इस प्रकारके संकट—व्यक्ति-सत्ता और समाज-चेतनाके द्वन्द्व—में व्यक्ति-स्वातंत्र्यवादी चित्त किसी एक अखण्डतामें

अपना आश्रय ढूँढ़ता है। तब व्यक्ति-सत्ताका समाज नहीं मालूम होता है, मालूम होता है किसी विशाल सत्ता (Immanent Personality) का समाज, और वही समझा जाता है चराचरव्याप्त, निकट और दूर, 'तदन्तिके तद्दूरे' और 'अनोरणीयान महतो महीयान!' समाज-बोधको भुलावा देने (Evade) का यही महान् कौशल है। जिस व्यक्ति-सत्ताकी पुष्टि विशेष रूपसे आध्यात्मिक वातावरण द्वारा होती है, उसके लिए इस प्रकार अध्यात्म-साधक या छायावादी हो जाना अनिवार्य है, क्योंकि समाज-चेतना सामूहिक और बृहत्तर गोष्ठीका प्रभाव व्यक्तिके वास्तविक और मानस-जीवनपर अंकित कर देती है और किसी एक विशाल अखण्डकी गोदमें आश्रय नहीं लेनेसे व्यक्ति उस समाज-बोधको तृप्त नहीं कर सकता। यही रवीन्द्रनाथके छायावादकी प्रारम्भिक बात है। अपनी मनस्वितासे वे सामाजिक सामूहिक बोध द्वारा जिस अनुपातमें अनुप्राणित होते गए, उसी अनुपातमें वे अध्यात्म अखण्ड-बोध—विश्व-बोध—की ओर अग्रसर होते गए। यही रवीन्द्रनाथकी दूसरी निजस्वता है, यही उनका आध्यात्मिक समग्रता-बोध या रहस्यवाद है। व्यक्ति-स्वातंत्र्यके युगमें यही श्रेष्ठ आदर्शवादका स्वाभाविक परिणाम और आश्रय-स्थल है।

लेकिन उनके बीसवीं सदीमें पहुँचते-पहुँचते संसारसे व्यक्ति-स्वातंत्र्यके युगका लोप होने लगा और इसके साथ ही साथ उस युगका उदारवाद, मानवता, उसके सौन्दर्य और माधुर्यका भी लोप होने लगा। कविके संवेदनशील मानसमें उसकी गंभीर प्रतिक्रिया शुरू हुई बोअर-युद्धके समयसे। कविने 'स्वार्थे-स्वार्थे बेधे जे संघात'को भलीभाँति समझा है। १९१४ ई० के दौरानमें कविने स्पष्टरूपसे मानवकी अखण्डता और पूर्ववर्त्ती युगकी राष्ट्रीयताकी असम्पूर्णताको समझा। उस बृहत् रक्त-स्नानके बीचसे पूर्ववर्त्ती युगके अवसानकी घोषणा हुई और यूरोपमें आडम्बरके साथ इसका घात-प्रतिघात होता रहा। उसी समयके पराजित-पद्दलित जर्मनीमें अध्यात्मवादी और अन्तर्जातीयतावादी रवीन्द्रनाथकी विशाल संवर्द्धना हुई। यह जर्मनीका 'श्मशान वैराग्य' का मुहूर्त्त था। यूरोपकी विजयी जातियोंमें इसके लिए कोई स्थान नहीं था। इसलिए उस शापग्रस्त युगमें ही उसका समग्र असामंजस्य लेकर आगेके बीस वर्षों तक चारों ओर दुनियाकी तबाहीका सामान मुहय्या होता रहा और आज उसीके परिणाम-स्वरूप यह महान ध्वंस-यज्ञ शुरू हुआ है।

इसलिए साठ सालके बाद रवीन्द्रनाथने देखा कि उनका वह युग अब नहीं है, वह उदारता अब नहीं है, वह मानवता अब नहीं है। कवि इस बातको नहीं जानते थे, ऐसी बात नहीं है। उन्होंने यह भलीभाँति समझ लिया था कि आज कालान्तर हो रहा है। इस युगमें कविका मानस स्वभावतः ऐश्वर्यवान होता है—चेतना और प्रकाशमें वही अग्रणी होता है, और इसीलिए नवीन युगके नवीन स्वरको पकड़नेके लिए वे बारम्बार अग्रसर हुए हैं। 'बलाका' में इस प्रचण्ड प्रवाहने सभ्यताके आँचलको पकड़ना चाहा है। 'महुआ' में दुःसाहसी मानव-प्राणको उन्होंने अभिनन्दित किया है। अब भी वे कहते हैं:—

"तबे ताइ होक
फुत्कारे निबाये दाओ अतीतेर अन्तिम आलोक,
चाहिबना क्षमा तव, करिबना दुर्बल मिनति,
परुष मरुर पथे होक् मोर अन्तहीन गति
अवज्ञा करिया पिपासारे,
दलिया चरण-तले क्रूर बालुकारे।"
(२१ जनवरी, १९४०)

लेकिन रवीन्द्रनाथ जानते हैं, यह उनके आजन्म कवि-कल्पनाकी विरोधी वस्तु है:—

"ए पाड़ातेजन्म मोर तबू आमि जन्म रोमाण्टिक।"

युग-संध्याको कवि अतिक्रम कर रहे हैं, फिर भी यथार्थमें हैं वे युग-मध्याह्नके व्यक्ति-स्वातंत्र्यके ही कवि, युग-संध्याके नहीं। स्मरणीय केवल यह है कि शायद युग-संध्यामें कविका जन्म नहीं होता, जन्म होता है कार्य-कर्त्ताओंका। लेकिन जिस दिन भी भविष्यके नवीन युगका जन्म होगा, नई पीढ़ीके कवियोंको रवीन्द्रनाथका दिया हुआ पाथेय लेकर अग्रसर होना होगा, क्योंकि नवीन युग सदा प्राचीन युगके दानका ही ग्रास करके फलता-फूलता है। नवीन कवि व्यक्ति-स्वातंत्र्यका अतिक्रमकर जिस मानव-महासमाजका महासंगीत गायगा, उस दिन भी उसके गानको एक ओर प्रेरणा-प्रदान करेंगे रवीन्द्रनाथके व्यक्ति-स्वातंत्र्य-सम्बन्धी स्तव—पहलेके युगोंके शेक्सपियर और कालिदास आदिका दान—और दूसरी ओर प्रेरणा-प्रदान करेगा नवीन युगका वास्तविक विश्व-बोध।

# रवीन्द्रनाथके ग्रन्थ
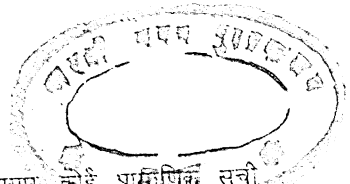
[ कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ-प्रणीत बँगला और अंगरेज़ीके समस्त ग्रन्थोंकी काल-क्रमानुसार कोई प्रामाणिक सूची अभी तक किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा तैयार या प्रकाशित नहीं हुई है। उनके समस्त ग्रन्थोंकी सूची तैयार करना आसान भी नहीं है। कारण, उनकी रचनाएँ देश-विदेशके अनेक पत्रोंमें प्रकाशित हुई हैं, जिन्हें बादमें किसी न किसी ग्रन्थमें स्थान दिया गया है। पर इन सब ग्रन्थोंके नाम तथा प्रकाशन-काल आदि इस समय उपलब्ध नहीं हैं। इस दिशामें बंगीय साहित्य-परिषदने अन्वेषण-कार्य शुरू किया है। प्रस्तुत सूचीमें कवीन्द्रके सन् १८७८ से १९१६ तकके जिन प्रकाशित ग्रन्थोंका उल्लेख हुआ है, उनके विवरणका संकलन परिषदके उत्साही कार्यकर्त्ता तथा 'प्रवासी'के सहकारी सम्पादक श्रीयुत ब्रजेन्द्रनाथ बंद्योपाध्यायने तथा १९१७ से १९४१ तकके ग्रन्थोंके विवरणका संकलन विश्वभारती-ग्रन्थागारके उपाध्यक्ष श्रीयुत पुलिनविहारी सेनने किया है। इस सूचीमें उनकी मौलिक रचनाओंका ही उल्लेख किया गया है, उनके द्वारा सम्पादित पुस्तकों ( जैसे 'पदरत्नावली' तथा 'संस्कृत-प्रवेश' आदि ) को नहीं गिना गया है।

रवीन्द्रनाथके ग्रन्थोंकी काल-क्रमानुसार सूची तैयार करनेमें सबसे प्रधान कठिनाई उपस्थित होती है उनके अनेक ग्रन्थोंका प्रकाशन-काल निर्धारित करनेमें। उनके कुछ ग्रन्थोंपर तो प्रकाशन-काल छपा है ( जो इस सूचीमें दे दिया गया है ); पर कुछपर नहीं छपा है। जिन ग्रन्थोंके आगे कोष्ठकमें प्रकाशन-काल अंगरेज़ी तारीखमें दिया गया है, वह 'कलकत्ता-गज़ट'के परिशिष्टके रूपमें प्रकाशित बंगाल-लाइब्रेरीकी सूचीसे लिया गया है। यह खेदका विषय है कि इस सूचीमें रवीन्द्रनाथके कई ग्रन्थोंका (जैसे 'आत्मशक्ति', 'विद्यासागर-चरित', 'गान', 'इंग्राजि श्रुतिशिक्षा', 'इंग्राजि-पाठ' तथा 'चयनिका' आदिका) उल्लेख नहीं है। हो सकता है, कुछ पुस्तकोंके इलाहाबादसे प्रकाशित होनेके कारण उन्हें बंगाल-लाइब्रेरीकी सूचीमें शामिल नहीं किया गया हो। रवीन्द्रनाथकी जिन पुस्तकोंके हिन्दीमें उल्था हो चुका है, उन्हें पृथक रूपसे दिया जा रहा है। —सम्पादक ]

१८७८

(१) कवि-काहिनी। संवत् १९३५। पृष्ठ ५३। [५ नवम्बर, १८७८]

१८८०

(२) वन-फूल। १२८६ बंगाब्द। पृ० ९३। [९ मार्च]

१८८१

(३) वाल्मीकि-प्रतिभा। फाल्गुन, १८०२ शकाब्दा। पृ० १३।

(४) भग्न-हृदय। १८०३ शकाब्द। पृ० १९६१। [२३ जून, १८८१]

(५) रुद्रचण्ड। १८०३ शकाब्द। पृ० ५३। [२५ जून, १८८१]

(६) यूरोप-प्रवासीर पत्र। शकाब्द १८०३। पृ० २५६। [२५ अक्टूबर, १८८१]

१८८२

(७) संध्या-संगीत। सन् १२८८। पृ० ५ + १३२ + ३ उपहार। [ ५ जुलाई, १८८२ ]

(८) काल-मृगया। अगहन, १२८९ बं०। पृ० ३८। [५ दिसम्बर, १८८२]

१८८३

(९) बौ-ठाकुरानीर हाट। पौष, १८०४ शकाब्द। पृ० ३१३। [११ जनवरी, १८८३]

(१०) प्रभात-संगीत। वैशाख, १८०५ शकाब्द। पृ० १२०। [११ मई, १८८३]

(११) विविध प्रसंग। भाद्र, १८०५ शक०। पृ० १४९। [११ सितम्बर, १८८३]

१८८४

(१२) छबि ओ गान। फाल्गुन, १८०५ शक०। पृ० १०४। [२३ फरवरी, १८८४]

(१३) प्रकृतिर प्रतिशोध। १२९१ बंगाब्द। पृ० ८१। [२९ अप्रैल, १८८४]

(१४) नलिनी। १२९१ बं०। पृ० ३६। [१० मई]

(१५) शैशव-संगीत। १२९१ बं०। पृ० १४९। [२९ मई, १८८४]

(१६) भानुसिंह ठाकुरेर पदावलि । १२९१ बंगाब्द । पृ० ६० । [१ जुलाई, १८८४]

१८८५

(१७) राममोहन राय । पृ० ३४ । [१८ मार्च]

(१८) आलोचना । पृ० १३३ । [१५ अप्रैल, १८८५]

(१९) रविच्छाया । वैशाख, १२९२ बंगाब्द । पृ० १७१ । [२ जून, १८८५]

१८८६

(२०) कड़ि ओ कोमल । १२९३ बंगाब्द । पृ० २६९ । [१७ नवम्बर, १८८६]

१८८७

(२१) राजर्षि । १२९३ बं० । पृ० २४२ । [११ फरवरी]

(२२) चिठि-पत्र । सन् १८८७ । पृ० ६९ । [२ जुलाई]

१८८८

(२३) समालोचना । १२९४ बंगाब्द । पृ० १६७ । [मार्च, १८८८]

(२४) मायार खेला । अगहन, १८१० शक० । पृ० ७० । [२२ दिसम्बर, १८८८]

१८८९

(२५) राजा ओ रानी । २५ श्रावण, १२९६ बं० । पृ० १४९ । [९ अगस्त, १८८९]

१८९०

(२६) विसर्जन । २ ज्येष्ठ, १२९७ बंगाब्द । पृ० १६२ । [१५ मई, १८९०]

(२७) मंत्रि-अभिषेक । २ ज्येष्ठ, १२९७ । पृ० २४ ।

(२८) मानसी । १० पौष, १२९७ बंगाब्द । पृ० २२४ । [२४ दिसम्बर, १८९०]

१८९१

(२९) यूरोप-यात्रीर डायारि (प्रथम खण्ड) । वैशाख, १२९८ बंगाब्द । पृ० ७८ । [५ मई, १८९१]

१८९२

(३०) चित्रांगदा । २८ भाद्रपद, १२९९ बंगाब्द । पृ० ४१ । [१३ मई, १८९२] (१३०१ बंगाब्दके श्रावणमें प्रकाशित 'चित्रांगदा' के द्वितीय संस्करणके साथ 'विदाय-अभिशाप'-शीर्षक रचना भी पहले-पहल प्रकाशित हुई ।)

(३१) गोड़ाय गलद् । ३१ भाद्रपद, १२९९ बंगाब्द । पृ० १३६ । [१५ सितम्बर, १८९२]

१८९३

(३२) गानेर बहि ओ वाल्मीकि-प्रतिभा । ८ वैशाख, १८१५ शक० । पृ० ४०७ । [ २० अप्रैल ]

(३३) यूरोप-यात्रीर डायारि ( द्वितीय खण्ड ) । ८ आश्विन, १३०० बंगाब्द । पृ० ९७ । [२३ सितम्बर]

१८९४

(३४) सोनार तरी । १३०० बंगाब्द । पृ० २०९ । [२ जनवरी, १८९४]

(३५) छोट गल्प । १५ फाल्गुन, १३०० बंगाब्द । पृ० १८९ । [२६ फरवरी, १८९४]

(३६) विचित्र गल्प (प्रथम भाग) । १३०१ बंगाब्द । पृ० १११ । [५ अक्टूबर, १८९४]

(३७) विचित्र गल्प (द्वितीय भाग) । १३०१ बंगाब्द । पृ० १११ । [५ अक्टूबर, १८९४]

(३८) कथा-चतुष्टय । १३०१ बंगाब्द । पृ० १३० । [ ५ अक्टूबर, १८९४ ]

१८९५

(३९) छेलेभुलानो छड़ा । ( यह १३०१ बंगाब्दमें 'साहित्य-परिषद्-पत्रिका'के माघ-अंकमें प्रकाशित 'छेले भुलानो छड़ा' नामक निबन्धका पुनर्मुद्रण है ।)

(४०) गल्प-दशक । १३०२ बंगाब्द । पृ० २२० । [ ३० अगस्त, १८९५ ]

१८९६

(४१) नदी । २२ माघ, १३०२ बंगाब्द । पृ० ३४ । [ ४ फरवरी, १८९६ ]

(४२) चित्रा । फाल्गुन, १३०२ बंगाब्द । पृ० १५१ । [ ११ मार्च, १८९६ ]

(४३) संस्कृत शिक्षा ( प्रथम भाग ) । पृ० ४२ । [ ८ अगस्त, १८९६ ]

(४४) संस्कृत-शिक्षा ( द्वितीय भाग ) । पृ० ३४ । [ ८ अगस्त, १८९६ ]

(४५) काव्य-ग्रन्थावली । १५ आश्विन, १३०३ बं० । पृ० ४७६ । [ ३० सितम्बर, १८९६ ] ( श्री सत्यप्रसाद गंगोपाध्याय द्वारा प्रकाशित इस 'काव्य-ग्रन्थावली'में 'मालिनी' और 'चैतालि' पहले-पहल प्रकाशित हुईं । )

१८९७

(४६) बैकुण्ठेर खाता । चैत्र, १३०३ बंगाब्द । पृ० ५५ । [ ५ अप्रैल, १८९७ ]

(४७) पंचभूत। १३०४ बंगाब्द। पृ० १९५। [ १२ मई, १८९७ ]

१८९९

(४८) कणिका। ४ अगहन, १३०६ बंगाब्द। पृ० ४५। [ १९ नवम्बर, १८९९ ]

१९००

(४९) कथा। १ माघ, १३०६ बंगाब्द। पृ० ११०। [ १४ जनवरी, १९०० ]

(५०) ब्रह्मोपनिषद। ७ माघ, १३०६ बंगाब्द। पृ० २४।

(५१) काहिनी। फाल्गुन, १३०६ बं०। पृ० १६४। [ १२ मार्च, १९०० ]

(५२) कल्पना। २३ वैशाख, १३०७ बं०। पृ० ११४। [ ५ मई, १९०० ]

(५३) क्षणिका। पृ० २२५। [ २६ जुलाई, १९०० ]

(५४) गल्पगुच्छ (प्रथम खण्ड)। १ आश्विन, १३०७ बं०। पृ० ४४८। [ ११ अक्टूबर, १९०० ]

१९०१

(५५) गल्प। १३०७ बं०। पृ० ४४९-९२९। [४ मार्च]

(५६) ब्रह्ममन्त्र। ८ माघ, १३०७ बं०। पृ० २३।

(५७) नैवेद्य। आषाढ़, १३०८ बं०। पृ० २००। [ ४ जुलाई, १९०१ ]

(५८) औपनिषद ब्रह्म। श्रावण, १३०८ बं०। पृ० ४२।

(५९) बाङ्ला क्रियापदेर तालिका। १३०८ बंगाब्द। पृ० २६।

१९०३

(६०) चोखेर बालि। १३०९ बं०। पृ० ३३८। [ ५ अप्रैल, १९०३ ]

(६१) काव्य-ग्रन्थ (मोहितचन्द्र सेन-सम्पादित)। सन् १९०३-४। ('स्मरण' और 'शिशु' पहले-पहल 'काव्य-ग्रन्थ'के छठे और सातवें भागमें प्रकाशित हुए।)

(६२) कर्मफल। १३१० बं०। पृ० ९२। [ २२ दिसम्बर, १९०३ ]

१९०४

(६३) इंगराजि-सोपान (प्रथम खण्ड)। पृ० ६५। [ ७ मई, १९०४ ] (बादमें 'इंगराजि-सोपान'की 'उपक्रमणिका' (पृ० २४) स्वतन्त्र पुस्तिकाके आकारमें 'इंगराजि-श्रुतिशिक्षा' नामसे प्रकाशित हुई। 'इंगराजि-सोपान' (प्रथम खण्ड) के तीसरे संस्करण (१२ पौष, १३२० बं०) में 'विशेष द्रष्टव्य' नामक हिस्सेमें लिखा है, '...प्रथम संस्करणमें इस ग्रन्थके प्रारम्भमें जो अंश जोड़ दिया गया था, वह 'इंगराजि-श्रुतिशिक्षा'के नामसे परिवर्द्धित आकारमें स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित हुआ है।)

(६४) स्वदेशी-समाज। पृ० ३०। [ ३१ जुलाई]

(६५) रवीन्द्र-ग्रन्थावली ('हितवादी'का उपहार)। १३११ बं०। पृ० १२९०। २९ अगस्त, १९०४ ] ('हितवादी'-कार्यालयसे प्रकाशित 'रवीन्द्र-ग्रन्थावली'के 'रंगचित्र' नामक अंशमें 'चिरकुमार-सभा' (बादमें 'प्रजापतिर निर्व्बन्ध' और 'चिरकुमार-सभा' नामसे पुस्तकाकार रूपमें) पहले-पहल प्रकाशित हुई।

१९०५

(६६) आत्मशक्ति। १३१२ बं०। पृ० १७४। (यह बंगाब्द १३१२ के आश्विनमें पहले-पहल प्रकाशित हुई। 'बंग-दर्शन' आश्विन १३१२ बं० में विज्ञापन देखिए।)

(६७) स्वदेश। १३१२ बं०। पृ० १४५। [ २७ सितम्बर, १९०५ ] (यह 'संकल्प' और 'स्वदेश' दो भागोंमें विभक्त है। 'स्वदेश'में रवीन्द्रनाथकी 'शिवाजी-उत्सव' कविताको स्थान दिया गया था। यह पहले भादों, १३११ बंगाब्दमें शिवाजी उत्सवके उपलक्षमें सखाराम गणेश देउस्कर-प्रणीत 'शिवाजीर दीक्षा' नामक निबन्धके साथ पुस्तकाकार प्रकाशित हुई थी।)

(६८) बाउल। पृ० ३२। [ ३० सितम्बर, १९०५ ]

(६९) विजया-सम्मिलन। पृ० ८। [ २५ दिसम्बर ]

१९०६

(७०) भारतवर्ष। १३१२ बं०। पृ० १५४। [२५ फरवरी]

(७१) राजभक्ति। पृ० १०। (इस पुस्तिकाकी बिना पुट्ठे (टाइटिल) की एक प्रति मिली है। पहले-पहल यह निबन्धाकारमें रवीन्द्रनाथ-सम्पादित 'भाण्डार'में माघ, १३१२ बंगाब्दमें प्रकाशित हुई थी। पुस्तिका इसी निबन्धका हूबहू पुनर्मुद्रण है।)

(७२) देश-नायक। पृ० १६। [१८ मई, १९०६]

(७३) इंगराजि-सोपान (द्वितीय खण्ड)। पृ० ८२। [ १५ जून, १९०६ ]

(७४) खेया। १८ आषाढ़, १३१३ बं०। पृ० १७४। [ १० अगस्त, १९०६ ]

(७५) नौकाडुबि। १३१३ बं०। पृ० ४०२। बसुमती-संस्करण। [ २ सितम्बर, १९०६ ] (मालूम होता

है कि 'नौकाडुबि' पहले-पहल १३१३ बंगाब्द (१९०६ ई०) के श्रावणमें मजुमदार-लाइब्रेरी द्वारा प्रकाशित हुई थी। १३१३ बंगाब्दके भादोंके 'बंगदर्शन'में प्रकाशित मजुमदार-लाइबेरीके विज्ञापनमें लिखा है—'नई किताब। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, 'नौकाडुबि, उपन्यास सजिल्द। डाकमहसूलके साथ मूल्य २।)।' लेकिन बंगाल-लाइब्रेरीकी पुस्तक-सूचीसे मालूम होता है कि उसी सालके २ सितम्बरको 'बसुमति' के मालिक श्री उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्यायने 'नौकाडुबि' प्रकाशित की। शायद एक ही सालमें इसके दो स्वतन्त्र संस्करण प्रकाशित हुए थे।)

१९०७

(७६) विचित्र प्रबन्ध। वैशाख, १३१४ बं०। पृ० ३२०। [ १६ अप्रैल, १९०७ ]

(७७) चारित्र-पूजा। पृ० १०४। [ २८ मई ]

(७८) प्राचीन साहित्य। पृ० ८७। [ १३ जुलाई]

(७९) लोकसाहित्य। पृ० ८७। [ २६ जुलाई ]

(८०) आधुनिक साहित्य। पृ० १६०। [१० अक्टूबर]

(८१) साहित्य। पृ० १६३। [ ११ अक्टूबर ]

(८२) हास्य-कौतुक। पृ० ८५। [ १० दिसम्बर ]

(८३) व्यंग-कौतुक। पृ० ९९। [ २८ दिसम्बर ]

१९०८

(८४) प्रजापतिर निर्ब्बन्ध। पृ० २८९। [२६ फरवरी]

(८५) सभापतिर अभिभाषण—पबना सम्मिलनी। १३१४ बं०। पृ० ५०। [११ अप्रैल, १९०८]

(८६) प्रहसन। पृ० १४०। [१६ अप्रैल, १९०८]

(८७) पथ ओ पाथेय। पृ० २१। ज्येष्ठ, १३१५ बं०।

(८८) राजा-प्रजा। पृ० १६२। [३० जून, १९०८ ]

(८९) समूह। पृ० १२१। [२५ जुलाई, १९०८ ]

(९०) स्वदेश। पृ० ११९। [१२ अगस्त, १९०८]

(९१) समाज। पृ० १५८। [७ सितम्बर, ९०८ ]

(९२) कथा ओ काहिनी। पृ० १५१। [१० सितम्बर]

(९३) गान। पृ० ४१६। योगीन्द्रनाथ सरकार द्वारा प्रकाशित। [ २० सितम्बर, १९०८ ]

(९४) शारदोत्सव। पृ० १६७। [ २० सितम्बर ]

(९५) शिक्षा। पृ० १४२। [१७ नवम्बर, १९०८]

(९६) मुकुट। पृ० ६०। [ ३१ दिसम्बर, १९०८ ]

१९०९

(९७) ब्रह्मसंगीत। पृ० ७। [२० जनवरी, १९०९]

(९८) शान्तिनिकेतन ( प्रथम भाग )। पृ० ८९। [ २४ जनवरी, १९०९ ]

(९९) धर्म। पृ० १९४। [ २५ जनवरी, १९०९ ]

(१००) शब्दतत्त्व। पृ० १२०। [२ फरवरी, १९०९]

(१०१) शान्तिनिकेतन २ य भाग। पृ० ९० [ २४ फरवरी, १९०९ ]

(१०२) शान्तिनिकेतन ३ य भाग। पृ० ८२। [५ मार्च]

(१०३) शान्तिनिकेतन ४ र्थ भाग। पृ० ८५। [१२ मार्च, १९०९ ]

(१०४) शान्तिनिकेतन ५म भाग। पृ० ७५। [१५अप्रैल]

(१०५) शान्तिनिकेतन ६ष्ठ भाग। पृ० ९८। [१५अप्रैल]

(१०६) शान्तिनिकेतन ७म भाग। पृ० ९८। [२ जून]

(१०७) शान्तिनिकेतन ८म भाग। पृ० १४१। [१५ जून]

(१०८) चयनिका। १९०९। पृ० ४५९।

(१०९) गान। १९०९। पृ० ४०६। ( सन् १९१४में दो भागोंमें विभक्त होकर कुछ कविताएँ प्रकाशित हुईं। पहले खंडका नाम 'गान' और दूसरे खण्डका 'धर्म-संगीत' हुआ।)

(११०) इंगराजि-पाठ। पृ० ४२। [ १० सितम्बर

(१११) छुटिर पड़ा। पृ० ११४। [ १२ अक्टूबर ]

(११२) प्रायश्चित्त। पृ० ११६। [ १५ अक्टूबर ]

(११३) विद्यासागर-चरित। पृ० ४८। (१३०२ और १३०५ बं० में १३ श्रावणको मनाए गए श्राद्ध-वासरमें पठित। यह किस सालमें प्रकाशित हुआ, इसका ठीक-ठीक पता नहीं लग सका। १९०७ ई० में यह 'चारित्र-पूजा' नामक पुस्तकमें जोड़ दिया गया। शायद १९०९ ई० में इण्डियन पब्लिशिंग-हाउसने इसे पहले-पहल पुस्तकाकार प्रकाशित किया। मूल्य चार आना।)

(११४) शिशु। पृ० १६१। १९०९।

(११५) इंगराजि-श्रुतिशिक्षा। पृ० ३०। १९०९।

१९१०

(११६) राजा। पृ० १२८। [६ जनवरी, १९१०]

(११७) ब्रह्मसंगीत। ११ माघ, ८० ब्रह्मसंवत। पृ० ७। [ १६ जनवरी, १९१० ]

(११८) शान्तिनिकेतन ९म भाग। पृ० १११। [ २५ जनवरी, १९१० ]

(११९) शान्तिनिकेतन १०म भाग। पृ० १०३। [ २९ जनवरी, १९१० ]

(१२०) गोरा (प्रथम और द्वितीय खण्ड)। पृ० ५९७। [१ फरवरी ] [३ अप्रेल १९०९ ई० में 'गोरा' आंशिक रूपसे (पृ० १७०) 'प्रवासी' से पुनर्मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ था। अगले साल पूरी किताब दो भागोंमें प्रकाशित हुई। ]

(१२१) गीतांजलि। ३१ श्रावण, १३१७ बं०। पृ० १७८। [ ५ सितम्बर, १९१० ]

(१२२) शान्तिनिकेतन, ११ श भाग। पृ० ११४। [ ८ अक्टूबर, १९१० ]

१९११

(१२३) शान्तिनिकेतन १२श भाग। पृ० १०७। [ २४ जनवरी, १९११ ]

(१२४) शान्तिनिकेतन १३श भाग। पृ० ११९। [ १० मई, १९११ ]

(१२५) आटटि गल्प। पृ० १३६। [ २० नवम्बर]

१९१२

(१२६) डाकघर। पृ० ५६। [ १६ जनवरी, १९१२]

(१२७) धर्मशिक्षा। १३१८ बं०। पृ० १४। [ १७ जनवरी, १९१२ ]

(१२८) धर्मेर अधिकार। पृ० ४३। [२८ फरवरी]

(१२९) गल्प चारिटि। पृ० १२०। [१८ मार्च]

(१३०) मालिनी। पृ० ४९। [ २३ मार्च, १९१२]

(१३१) चैतालि। पृ० ६६। [ २३ मार्च, १९१२ ]

(१३२) विदाय-अभिशाप। पृ० २०। [१० मई]

(१३३) पाठ-संचय। १३१९ बं०। पृ० १९९। [ २० मई, १९१२ ]

(१३४) जीवन-स्मृति। १३१९ बं०। पृ० १९५। [ २५ जुलाई, १९१२ ]

(१३५) छिन्नपत्र। १३१९ बं०। पृ० २३३। [ २८ जुलाई ]

(१३६) अचलायतन। पृ० १३८। [ २ अगस्त]

१९१४

(१३७) स्मरण। पृ० ३४। [ २५ मई, १९१४ ]

(१३८) उत्सर्ग। १ वैशाख, १३२१ बं०। पृ० ११६। [ २८ मई, १९१४ ]

(१३९) गीतिमाल्य। पृ० १३४। [२ जुलाई, १९१४]

(१४०) गान। पृ० १६८। [ २३ सितम्बर, १९१४ ]

(१४१) गीतालि। सन् १९१४। पृ० ११७।

(१४२) गीतांजलि। १८ नवम्बर, १९१४।

(१४३) धर्मसंगीत। पृ० २०१। [२७ दिसम्बर]

१९१५

(१४४) शान्तिनिकेतन १४श भाग। पृ० ११७।

(१४५) विचित्र-पाठ। पृ० ९२।

(१४६) काव्य-ग्रन्थ। सन् १९१५-१६। ( इण्डियन प्रेस द्वारा प्रकाशित।)

१९१६

(१४७) शान्तिनिकेतन १५श भाग। पृ० ९४।

(१४८) शान्तिनिकेतन १६श भाग। पृ० ८०।

(१४९) शान्तिनिकेतन १७श भाग। पृ० ९८।

(१५०) फाल्गुनी। पृ० ८४।

(१५१) घरे-बाइरे। पृ० २९४।

(१५२) संचय। पृ० १२६।

(१५३) परिचय। पृ० १७१।

(१५४) बलाका। वैशाख, १३२३ बं०। पृ० ११८।

(१५५) चतुरंग। पृ० १२३।

(१५६) गल्पसप्तक। पृ० २०४। ( इसके मुखपृष्ठ पर प्रकाशन-काल नहीं छपा है। १३२३ बंगाब्दके आश्विन महीनेके 'प्रवासी' में प्रकाशित इण्डियन पब्लिशिंग-हाउसके विज्ञापनमें लिखा है :—'गल्पसप्तक' पूजाके पहले प्रकाशित होगा।)

१९१७

(१५७) कर्त्तार इच्छाय कर्म। पृ० २० [२२ अगस्त]

(१५८) अनुवाद-चर्चा [ बँगलासे अंगरेज़ी ] १३२४ बं०। पृ० १४०।

१९१८

(१५९) गुरु। फाल्गुन, १३२४ बं०। पृ० ५१।

(१६०) पलातका। अक्टूबर, १९१८। पृ० ८८।

१९१९

(१६१) जापान-यात्री। श्रावण, १३२६ बं०। पृ० ११९। [ २१ जुलाई ]

१९२०

(१६२) पयला नम्बर। वैशाख, १३२७ बं०। पृ० ७१। [ ५ अप्रैल ]

(१६३) अरूप रतन। माघ, १३२६ बं०। पृ० ७३ [ १४ जून ]

१९२१

(१६४) शिक्षार मिलन। १३२८ बं०। पृ० २३। [ १४ अगस्त ]

(१६५) ऋणशोध (शारदोत्सव)। पृ० ९६। [२ अक्टूबर]

(१६६) सत्येर आह्वान।

१९२२

(१६७) मुक्तधारा। वैशाख, १३२९ बं०। पृ० १३६। [ २८ जून ]

(१६८) वर्षा-मंगल। श्रावण, १३२९ बं०। पृ० १५।

(१६९) लिपिका। पृ० १८२। [ १७ अगस्त ]

(१७०) शिशु भोलानाथ। पृ० ८६। [१५ सितम्बर]

१९२३

(१७१) वसन्त। फाल्गुन, १३२९ बं०। पृ० ३२। [ ३ अक्टूबर ]

१९२५

(१७२) पूरबी। श्रावण, १३३२ बं०। पृ० २५४।

(१७३) वर्षा-मंगल। श्रावण, १३३२ बं०। पृ० १२।

(१७४) शेष वर्षण। भाद्रपद, १३३२ बं०। पृ० १६।

(१७५) गृह-प्रवेश। आश्विन, १३३२ बं०। पृ० १०२। [ १२ अक्टूबर ]

(१७६) संकलन। ९ अगस्त, १९२५। पृ० ३८५।

१९२६

(१७७) आचार्येर अभिभाषण (विश्वभारती वार्षिक परिषत्)। ९ पौष। पृ० ९। [ १८ फरवरी ]

(१७८) प्रवाहिणी। अगहन, १३३२ बं०। पृ० १८०। [५ मार्च]

(१७९) चिरकुमार-सभा (नाटक)। फाल्गुन, १३३२ बं०। पृ० २२०। [१२ अप्रैल]

(१८०) शोध-बोध। पृ० ७८। [१९ जून]

(१८१) नटीर पूजा। १३३३ बं०। पृ० ८२। [१५ सितम्बर]

(१८२) ऋतु-उत्सव। १३३३ बं०। पृ० २१६। [२९ सितम्बर]

(१८३) रक्तकरवी। १३३३ बं०। पृ० १०३। [२७ दिसम्बर]

(१८४) लेखन। पृ० ३३। [ ७ नवम्बर ]

१९२७

(१८५) ऋतुरंग। २२ अगहन, १३३४ बं०। पृ० ४२+४४। (एक ही दिन दो आकारोंमें प्रकाशित।)

१९२८

(१८६) पल्लिप्रकृति। पृ० ८। [फरवरी, १९२८]

(१८७) शेष रक्षा। जुलाई, १९२८। पृ० १३३। [२५ सितम्बर]

१९२९

(१८८) समवाय-नीति। (बर्दवान-विभागीय समवाय सम्मेलनके प्रथम अधिवेशनका अभिभाषण।) २७ माघ। पृ० १३।

(१८९) यात्री। ज्येष्ठ, १३३६ बं०। पृ० ३१५। [२० सितम्बर]

(१९०) परित्राण। ज्येष्ठ, १३३६ बं०। पृ० १४१। [२४ सितम्बर]

(१९१) योगायोग। आषाढ़, १३३६ बं०। पृ० ४७१। [२८ सितम्बर]

१९३०

(१९२) तपती। भाद्रपद, १३३६ बं०। पृ० १८५+३ परिशिष्ट+९२ स्वरलिपि। [२९ जनवरी] (यह स्वरलिपिको छोड़कर भी प्रकाशित हुई थी।)

(१९३) शेषेर कविता। भाद्रपद, १३३६ बं०। पृ० २३२। [३१ जनवरी]

(१९४) इंगराजि सहज शिक्षा, १म भाग। पौष, १३३६ बं०। पृ० ४८।

(१९५) इंगराजि सहज शिक्षा, २य भाग। चैत्र, १३३६ बं०। पृ० ५८।

(१९६) सहज पाठ, १म भाग। वैशाख १३३७ बं०। पृ० ५३। [१० मई]

(१९७) सहज पाठ, २य भाग। वैशाख १३३७ बं०। पृ० ५१। [१० मई]

(१९८) पाठ-प्रचय, २य—४र्थ भाग। चैत्र, १३३६ बं०। [२६ मई]

(१९९) महुया। आश्विन, १३३६ बं०। पृ० १७५। [५ जून]

(२००) भानुसिंहेर पत्रावली। चैत्र, १३३६ बं०। पृ० १५८। [२ अगस्त]

१९३१

(२०१) नवीन। ३० फाल्गुन, १३३७ बं०। पृ० २८। [१० मार्च]

(२०२) राशियार चिठि । वैशाख, १३३८ बं० । पृ० २१८ । [२२ जून]

(२०३) गीतोत्सव । २८ भाद्रपद, १३३८ बं० । पृ० २१ [१८ सितम्बर]

(२०४) संचयिता । पौष, १३३८ बं० । [३० दिसम्बर]

(२०५) प्रतिभाषण। ११ पौष, १३३८ बं० । पृ० २१ ।

(२०६) शाप-मोचन । पृ० २७ । १५ पौष, १३३८बं० ।

१९३२

(२०७) वन-वाणी । आश्विन, १३३८ बं० । पृ० १६३ । [२ जनवरी]

(२०८) गीतवितान, १म खण्ड । आश्विन, १३३८ बं० । पृ० ३६४ । [१० जनवरी]

(२०९) गीतावितान, २य खण्ड । आश्विन, १३३८ बं० । पृ० ३६५-६६१ । [१० जनवरी]

(२१०) देशेर काज । ६ फरवरी । पृ० ५ । [२० मार्च]

(२११) कालेर यात्रा । भाद्रपद, १३३९ बं० । पृ० ३९ ।

(२१२) गीतवितान, ३य खण्ड । श्रावण, १३३९ बं० । पृ० ६७१-८६४ । [५ सितम्बर]

(२१३) ४ ठा आश्विन । पृ० ७ । [२० सितम्बर]

(२१४) महात्माजीर शेष व्रत । पृ० ८ । [२३ सितम्बर]

(२१५) परिशेष । भाद्रपद, १३३९ बं० । पृ० १६२ । [२६ नवम्बर]

(२१६) पुनश्च । आश्विन, १३३९ बं० । पृ० १२३ । [३० नवम्बर]

१९३३

(२१७) विश्वविद्यालयेर रूप । पृ० ३० । [ जनवरी ]

(२१८) दुइ बोन । फाल्गुन, १३३९ बं० । पृ० ९२ । [३० मार्च]

(२१९) शिक्षार विकिरण । पृ० २१ । [९ जून]

(२२०) मानुषेर धर्म । १९३३ । पृ० ११९ । [५ जुलाई]

(२२१) चण्डालिका । भाद्रपद, १३४० बं० । पृ० ४५ । [४ अक्टूबर]

(२२२) तासेर देश । भाद्रपद, १३४० बं० । पृ० ६९ । [४ अक्तूबर]

(२२३) विचित्रिता । श्रावण, १३४० बं० । पृ० ६० । [४ अक्तूबर]

(२२४) भारतपथिक राममोहन । पृ० ९ । [२९-३१ दिसम्बर ]

१९३४

(२२५) बांशरी । अगहन, १३४० बं० । पृ० १३० । [२५ जनवरी ]

(२२६) मालंच । चैत्र, १३४० बं० । पृ० ११२ । [३ अप्रैल]

(२२७) श्रीभवन सम्बन्धे आमार आदर्श । श्रावण, १३४१ बं० । पृ० ६ ।

(२२८) श्रावण गाथा । श्रावण, १३४१ बं० । पृ० २२ । [११ अगस्त]

(२२९) चार अध्याय । अगहन, १३४१ बं० । पृ० १३८ । [२२ दिसम्बर]

१९३५

(२३०) शेष सप्तक । २५ वैशाख, १३४२ बं० । पृ० १७० । [८ मई]

(२३१) सुर ओ संगति । पृ० १०२ । [१ अगस्त] (धूर्जटी मुखोपाध्यायके साथ हुआ पत्रालाप ।)

१९३६

(२३२) वीथिका । भाद्रपद, १३४३ बं० । पृ०२३२ । [ १९ सितम्बर ]

(२३३) शिक्षार स्वांगीकरण । पृ० ३९ । [फरवरी]

(२३४) नृत्यनाट्य चित्रांगदा ( स्वरलिपिके साथ ) । वैशाख, १३४३ बं० । पृ० १०९ । [११ मार्च]

(२३५) प्रान्तिनी । पौष, १३४३ बं० । पृ० ४५ ।

(२३६) पत्रपुट । २५ वैशाख, १३४३ बं० । पृ० ६४ । [५ मई]

(२३७) छन्द । आषाढ़, १३४३ बं० । पृ० २३९ । [१० जुलाई]

(२३८) जापाने-पारस्ये । श्रावण, १३४३ बं० । पृ० २०४ । [२० अगस्त] ( 'जापान-यात्री' पुस्तक इसीमें सम्मिलित है । )

(२३९) श्यामली । भाद्रपद, १३४३ बं० । पृ० ७७ । [१५ सितम्बर]

(२४०) साहित्येर पथे । आश्विन, १३४३ बं० । पृ० १७४ । [२८ सितम्बर]

(२४१) पाश्चात्य भ्रमण । आश्विन, १३४३ बं० । पृ० १३७ । [२ अक्टूबर] । (इसमें 'युरोप-प्रवासीर-पत्र' परिवर्तित आकारमें तथा 'यूरोप-यात्रीर डायारि' पुनर्मुद्रित हुई है ।)

१९३७

(२४२) खापछाड़ा। माघ, १३४३ बं०। पृ० १४४। [२० फरवरी]

(२४३) कालान्तर। वैशाख, १३४३ बं०। पृ० २४९। [२७ मई]

(२४४) से। वैशाख, १३४४ बं०। पृ० १४८। [१५ जुलाई]

(२४५) छड़ार छवि। आश्विन, १३४४ बं०। पृ० ९२। [५ अक्टूबर]

(२४६) विश्व-परिचय। आश्विन, १३४४ बं०। पृ० ९५। [८ अक्टूबर]

१९३८

(२४७) प्रान्तिक। पौष, १३४४ बं०। पृ० ३३। [८ फरवरी]

(२४८) चण्डालिका (नृत्यनाट्य)। फाल्गुन, १३४४ बं०। पृ० ३१।

(२४९) पत्रधारा। १३४५ बं०। पृ० ३४९+१५८+१४८। ('छिन्नपत्र', 'भानुसिंहेर पत्रावली' तथा 'पथ ओ पथेर प्रान्ते'का एकत्र मुद्रण।)

(२५०) पथे ओ पथेर प्रान्ते। ज्येष्ठ, १३४५ बं०। पृ० १४८। [३१ जुलाई]

(२५१) सेंजुति। भाद्रपद, १३४५ बं०। पृ० ६२। [१० सितम्बर]

(२५२) अभिभाषण (श्रीनिकेतन-शिल्प-भाण्डारके उद्घाटन-उत्सवपर दिया गया भाषण)। २२ अगहन, १३४५ बं०। पृ० ८।

१९३९

(२५३) आकाश-प्रदीप। वैशाख, १३४५ बं०। पृ० ७०। [४ मई]

(२५४) प्रहासिनी। पौष, १३४५ बं०। पृ० ६५।

(२५५) नृत्यनाट्य चण्डालिका (स्वरलिपिके साथ)। चैत्र, १३४५ बं०। पृ० ११०। [१५ मई]

(२५६) बाँगला-भाषा-परिचय। पृ० १८०। [३० मई]

(२५७) पथेर संचय। भाद्रपद, १३४६ बं०। पृ० ८६।

(२५८) महाजाति-सदन (उद्घाटन-उत्सवपर दिया गया भाषण)। पृ० ४। [१९ अगस्त]

(२५९) विद्यासागर-स्मृति-मंदिर-प्रवेश-उत्सवपर कविगुरु रवीन्द्रनाथकी वाणी। ३० अगहन, १३४६ बं०। पृ० ५।

(२६०) रवीन्द्र-रचनावली, (१म खण्ड)। आश्विन, १३४६ बं०। पृ० ६४५। [२४ अक्टूबर]

(२६१) श्यामा। भाद्रपद, १३४६ बं०। पृ० ९२। [१० नवम्बर]

(२६२) अन्तर्देवता। ७ पौष, १३४६ बं०। पृ० १३।

(२६३) प्रसाद। पृ० १३। [२० दिसम्बर]

१९४०

(२६४) रवीन्द्र रचनावली (२य खण्ड)। पौष, १३४६ बं०। पृ० ६६४।

(२६५) रवीन्द्र-रचनावली (३य खण्ड)। २५ वैशाख, १३४७ बं०। पृ० ६५२।

(२६६) नवजातक। वैशाख, १३४७ बं०। पृ० ९६।

(२६७) सानाइ। आषाढ़, १३४७ बं०। पृ० १०६।

(२६८) रवीन्द्र रचनावली (४र्थ खण्ड)। श्रावण, १३४७ बं०। पृ० ५६७।

(२६९) चित्रलिपि। सितम्बर, १९४०। प्लेट १८+१९।

(२७०) छेलेबेला। भाद्रपद, १३४७ बं०। पृ० ८७।

(२७१) रवीन्द्र-रचनावली (अचलित संग्रह)। आश्विन, १३४७ बं०। पृ० ५५२।

(२७२) रवीन्द्र-रचनावली (५म खण्ड)। अगहन, १३४७ बं०। पृ० ५७१।

(२७३) तिन संगी। पौष, १३४७ बं०। पृ० १५१।

(२७४) रोगशय्याय। पौष, १३४७ बं०। पृ० ४७।

(२७५) आरोग्य। ७ पौष, १३४७ बं०। पृ० ६।

१९४१

(२७६) रवीन्द्र-रचनावली (६ष्ठ खण्ड)। फाल्गुन, १३४७ बं०। पृ० ६७४।

(२७७) आरोग्य। फाल्गुन, १३४७ बं०। पृ० ३९।

(२७८) जन्मदिने। १ वैशाख, १३४८ बं०। पृ० ४५।

(२७९) सभ्यतार संकट। १ वैशाख, १३४८ बं०। पृ० १०।

(२८०) गल्पसल्प। वैशाख, १३४८ बं०। पृ० ८४।

(२८१) आश्रमेर रूप ओ विकास। आषाढ़, १३४८ बं०। पृ० १४।

(२८२) रवीन्द्र-रचनावली (७ म खण्ड)। आषाढ़, १३४८ बं०। पृ० ५६३।

कविके हिन्दीमें अनूदित ग्रन्थ

अचलायतन। मेरा बचपन। आश्चर्य घटना। रवीन्द्र-

कविता-कानन । आँखकी किरकिरी । नटीकी पूजा । ईदका चाँद । रवीन्द्र-कथा-कुंज । कलरव । राजारानी । कुमुदिनी । राजर्षि । गल्पगुच्छ ( चार भाग ) । राजा और प्रजा । गीतांजलि । रूसकी चिट्ठी । गोरा । विचित्र वधू-रहस्य । घर और बाहर । विचित्र-प्रबन्ध । चार अध्याय । व्यंग्य-कौतुक । चिरकुमार-सभा । शिक्षा कैसी हो ? चित्रांगदा । षोड़शी । जीवन-स्मृति । समाज । डाकघर । विश्व-परिचय । प्राचीन साहित्य । स्वदेश । माली । साहित्य । मुकुट । हास्य-कौतुक । मुक्तधारा ।

## रवीन्द्रनाथके अंगरेज़ी ग्रन्थ

1912

GITANJALI (Song Offerings): A Collection of Prose Translations Made by the Author From the Original Bengali with an Introduction by W. B. Yeats. London Printed at the Chiswick Press For The India Society 1912, pp. 64. Pub. by Macmillan & Co., London in March 1913.

1913

THE GARDENER: Poems tr. by the author, pp. 150.

THE CRESCENT MOON: Child-poems tr. by the author. Illustrated.

CHITRA: A drama tr. by the author from *Chitrangada.*

GLIMPSES OF BENGAL LIFE: Short stories tr. by Rajani Ranjan Sen. G. A. Natesan and Co., Madras, June 1913, pp. 240.

1914

THE KING OF THE DARK CHAMBER: A drama tr. by Kshitish Chandra Sen, I. C. S., from *Raja.*

THE POST OFFICE: A drama try by the Devabrata Mukherji from *Dakghar,* with a preface by W. B. Yeats. First printed at the Cuala Press, Dundrum 1914. Macmillan & Co., March 1914.

SADHANA: The Realisation of Life: Lectures delivered at the Harvard University, U. S. A., in 1912-13. Macmillan & Co., Ltd. 1920.

ONE HUNDRED POEMS OF KABIR: Tr. by Rabindranath Tagore. Introduction by Evelyn Underhill. Pub. by the India Society. London 1914. Macmillan & Co., [Feb. 1915.]

1915

THE MAHARANI OF ARAKAN: A romantic comedy in one Act, adapted by George Calderon, from the Bengali short story *Daliya* by Rabindranath Tagore. With a character-sketch of Robindranath Tagore compiled by Kedarnath Das Gupta. Illust. Pub. by Francis Griffiths, London.

1916

FRUIT GATHERING: Poems trans. The Macmillan Company, N. Y. 1913. pp. 123.

HUNGRY STONES & OTHER STORIES.

STRAY BIRDS: [Epigrams.] The Macmillan Company, N. Y. 1916, pp. 91. Illustrated by Willy Pogany.

1917

THE CYCLE OF SPRING: a drama tr. from *Phalguni.*

MY REMINISCENCES: Tr. by Surendra Nath Tagore from *Jiban Smriti.* The Macmillan Co., N. Y. [April, 1917] pp 273.

SACRIFICE AND OTHER PLAYS.

PERSONALITY: Lectures delivered in America (1916). The Macmillan Co., N. Y. 1917, pp. 220.

NATIONALISM: Lectures delivered in Japan and the U. S. A. The Macmillan Co., N. Y.

SELECTED PASSAGES FOR BENGALI TRANSLATION: [From English into Bengali]

1918

GITANJALI AND FRUIT-GATHERING: With illustrations by Nandalal Bose. Surendranath Kar, Abanindranath Tagore and Nobendranath Tagore. The Macmillan Co., N. Y. pp. 221.

LOVER'S GIFT AND CROSSING: The Macmillan Company, N. Y. January 1918, pp. 158.

MASHI AND OTHER STORIES: By Sir Rabindranath Tagore. Macmillan and Co., Ltd., London. 1918.

STORIES FROM TAGORE: The Macmillan Co., N. Y.

THE PARROT'S TRAINING: a staire on educational methods. Tr. by the author. Thacker Spink and Co., Calcutta. 1918. With 8 drawings by Abanindranath Tagore. pp. 7.

AT THE CROSS ROADS: pp. 12. [10 July]

THE FUGITIVE: [Poetical Musings of the author on various topics in prose.] Santiniketan. pp. 91. [10 Dec.]

1919

THE CENTRE OF INDIAN CULTURE: Essay. Pub. by the Socy. for the Promotion of National Education, Adyar, Madras.

THE HOME AND THE WORLD: A Novel tr. by Surendranath Tagore from *Ghare-Baire.*

MOTHER'S PRAYER: pp. 6. [10 July]

THE TRIAL OF THE HORSE: pp. 7 [14 Aug.]

1921

GREATER INDIA: Essays. Tr. by Surendranath Tagore. S. Ganesan, Madras.

THE WRECK: A novel tr. from *Nauka Dubi.* Macmillan and Co., Ld., London, 1921. pp. 414.

POEMS FROM TAGORE: Introduction by C. F. Andrews. Macmillan and Co., Calcutta, pp 117.

GLIMPSES OF BENGAL: Selected from the Letters of Sir Rabindranath Tagore 1885 to 1895. Tr. By Surendranath Tagore from *Chhinna Patra.* pp. 166.

THOUGHT RELICS: The Macmillan Co., N. Y. 1921. pp. 112.

THE FUGITIVE: Poems. The Macmillan Co., N. Y. 1922.

CREATIVE UNITY: Essays and Lectures.

1924

LETTERS FROM ABROAD: Ganesan, Madras.

GORA: A novel trans. from *Gora* by W. W. Pearson.

THE CURSE AT FAREWELL: a drama, translation of *Bidaya-abhisap* in verse by Edward Thompson. pp. 64.

1925

TALKS IN CHINA: Lectures delivered in China in April and May, 1924. Visva-Bharati, pp. 157.

RABINDRANATH TAGORE: Poems tr. by Edward Thompson in verse. Ernest Benn Ltd., London. (The Augustan Books of Modern Poetry), pp. 31.

RED OLENDERS: A drama tr. from *Rakta-Karabi.*

BROKEN TIES AND OTHER STORIES.

1926

THE MEANING OF ART: Dacca University Bulletin No. XII. Oxford University Press. pp. 16.

1928

FIREFLIES: Decorations by Boris Artzybasheff. The Macmillan Co., N. Y. pp. 274.

LETTERS TO A FRIEND: Ed. with two Introductory Essays by C. F. Andrews. Revised edn. of *Letters from Abroad* 1924. George Allen and Unwin Ltd.

THE TAGORE BIRTHDAY BOOK: Selected from the English Works of Rabindranath Tagore. Ed. by C. F. Andrews. Illust. Macmillan and Co., Ltd., London, 1928.

LECTURES AND ADDRESSES: Ed. by Prof Anthony X. Soares of Baroda College.

A POET'S SCHOOL: Visva-Bharati Bulletin No. 9. December, 1928, pp. 39.

1929

THOUGHTS FROM TAGORE: Ed. by C. F. Andrews. With 4 Portraits.

ON ORIENTAL CULTURE AND JAPAN'S MISSION: A Lecture delivered to the Members of the Indo-Japanese Association, at the Industrial Club, Tokyo, May 15, 1929.

1930

THE RELIGION OF MAN: The Hibbert Lectures for 1930. Septr. 1930. pp. 239.

1931

THE CHILD: A prose-poem. George Allen and Unwin Ltd.

1932

THE GOLDEN BOAT: Poems tr. by Bhabani Bhattacharya. G. Allen and Unwin Ltd. pp. 121.

MAHATMAJI AND THE DEPRESSED HUMANITY: Visva-Bharati.

1934

MY IDEALS WITH REGARD TO THE SREE-BHAVANA: Santiniketan, July 1934, pp. 6.

1935

EAST AND WEST: Two open letters on international problems by Gilbert Murray and Rabindranath Tagore.

TWENTY-SIX SONGS OF TAGORE: Noted by Arnold A. Bake with an introduction by Arnold A. Bake and Philippe Stern, together with a literal trans. from the original Poems and the free trans. of the same by Rabindranath Tagore. Paris 1935, pp. 130.

1936

AN ADDRESS: At a Conference held in Calcutta on the 15 July, 1936 to discuss the the Communal Award. pp. 6.

COLLECTED POEMS AND PLAYS OF RABINDRANATH TAGORE: Macmillan and Co., Ltd., London. 1936, pp. 578.

1937

MAN: A lecture. Andhra University Series No. 16.

CHINA AND INDIA: pp. 6 [14 April]

SRI RAMKRISHNA CENTENARY: Parliament of Religions: Address by Rabindranath Tagore. Town Hall, Calcutta 3rd March, 1937, pp. 9.

1940

MY BOYHOOD DAYS: An Autobiographical Sketch. Tr. from Bengali by Miss Marjorie Sykes, pp. 54.

1941

CRISIS IN CIVILIZATION.

# ड्रेसडनमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

सन् १९२६ में राष्ट्र-संघ (League of Nations) ने मुझे उसके कार्यों—जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-संघ (International Labour Organisation) भी शामिल है—की प्रत्यक्ष रूपसे वैयक्तिक जानकारी हासिल करने और उसकी असेम्बली तथा कौंसिलकी बैठकोंमें शामिल होनेके लिए जेनेवा आमंत्रित किया। सितम्बर, १९२६में जितने दिनों जेनेवा ठहरनेकी मैंने आवश्यकता समझी, वहाँ ठहरकर मैं बर्लिनके लिए चल पड़ा।

जेनेवासे बर्लिन पहुँचनेमें कोई २२ घण्टे लगते हैं। जेनेवासे मैं उस दिन सुबह लगभग ११ बजे रवाना हुआ और बर्लिन दूसरे दिन ९ बजे सुबह पहुँचा। जिस दिन मैं बर्लिन पहुँचा, शनिवार था, और रवीन्द्रनाथ ठाकुर—जो उन दिनों जर्मनीके विविध नगरोंका अपने भाषणोंके सिलसिलेमें दौरा कर रहे थे—उस दिन वहाँ नहीं थे। अगले सोमवारको चूँकि ड्रेसडनमें उनका भाषण, कविता-पाठ और उनके नाटक 'डाकघर' (के जर्मन-अनुवाद) का अभिनय होनेवाला था, सुबहकी गाड़ीसे ही मैं रवीन्द्रनाथकी पुत्र-वधू श्रीमती प्रतिमा ठाकुर और श्री अरविन्दमोहन बसुके साथ ड्रेसडनके लिए चल पड़ा। वहाँ हम लोग कोई १ बजे दोपहरको पहुँचे और सीधे उस होटलमें नहीं गए, जहाँ रवीन्द्रनाथ ठहरे हुए थे। शामको उनका भाषण होनेवाला था और उसीके बाद उनके उल्लिखित नाटकका अभिनय; अतः हमने पहले नगर देख लेनेका निश्चय किया। यह एक पुराना नगर और सेक्सनीकी राजधानी है, जो एल्ब नदीकी सुहावनी तराईमें बसा है। यह नदीके दोनों ओर बसा है। यातायातके लिए दोनों हिस्से कई पुलोंसे जुड़े हैं, जिनमें एल्बर्ट-पुल वास्तु-विद्याका एक उत्कृष्ट नमूना है। अपनी गृह-निर्माण-कला, कला-कृतियोंके अनुपम संग्रहों, कला-प्रियता और शिक्षा, सार्वजनिक पार्क, बाग़ आदि और एल्ब नदीके किनारेके सुन्दर विहार-स्थलके कारण ड्रेसडन एक सुखद और आकर्षक नगर रहा है।

रेल्वे स्टेशनके रेस्तोराँमें भोजन करके हम ड्रेसडनके प्रसिद्ध अजायबघरका विश्वविख्यात चित्र-संग्रह देखने गए। जब हम प्रवेश-द्वारके निकट पहुँचे ही थे, तो अचानक एक फ़ोटोग्राफ़र अपना केमरा लिए हुए आया और हम लोगोंसे नम्रतापूर्वक कुछ क्षण अपने सामने खड़े होनेका अनुरोध किया। मैंने उससे कहा कि मैं टैगोर नहीं, उन्हींका एक देशवासी हूँ—हालाँकि हमारे साथ जो महिला हैं, वे उनकी पुत्र वधू हैं। पर उसने एक न सुनी और हमारा फ़ोटो खींच ही लिया—शायद इसलिए कि हमारे साथ मनोमोहक साड़ी पहने एक भद्र हिन्दू महिला थीं। मैंने उससे कहा कि फ़ोटोकी एक कापी वह मेरे बर्लिनके पतेपर बिल-सहित भेज दे, जो उसने कभी नहीं भेजी।

इटलीको छोड़कर समूचे यूरोपमें यह चित्र-संग्रह अपनी शानका अनोखा है। १९२६ में इसमें कुल २४०० चित्र थे, जिनमें से अधिकांश इटालियन और फ़्लेमिश कलाकारोंके थे। राफ़ेलका 'सिस्टिन मैडोना' (Sistine Madonna) चित्र इस संग्रहकी जान समझा जाता है। यह अकेला चित्र एक पृथक कमरेमें रखा है—मानो किसी मंदिरमें कोई मूर्त्ति रखी हो—और इसे देखनेवालोंकी सदा भीड़ लगी रहती है। चित्रोंमें से अधिकांश विशुद्ध कलाकी दृष्टिसे ही वहाँ संग्रहीत हैं, यद्यपि बहुत-से संग्रहकी शोभा बढ़ानेवाले हैं। अन्य अनुपम कला-कृतियोंमें से तितियनकी 'ट्रिब्यूट मनी' (Tribute Money), करेजियोंकी 'मैगडेलेन' (Magdelene) और 'दा नोते' (Da Notte) विशेष उल्लेखनीय हैं। बड़े आकारके फ़्लेमिश चित्रोंमें भारी-भरकम नग्न स्त्रियोंका चित्रण मुझे रुचा नहीं। यह बात मैं कोरे पवित्रतावादीकी दृष्टिसे नहीं कह रहा हूँ, उन मोटी नग्न आकृतियोंमें कलाका कुछ भी आभास नहीं था। चूँकि श्रीमती रथीन्द्रनाथ ठाकुर स्वयं एक कुशल कलाकार हैं, उन्होंने कई बार कुछ अनूठी कला-कृतियोंकी ओर मेरा ध्यान दिलाया। जब हम चित्र-संग्रहके कमरोंमें से चित्र देखते हुए गुज़र रहे थे, तो एक जर्मन महिलाने

मुझे सम्बोधित करके अंगरेज़ीमें कहा—'क्या आप मुझे चंद मिनट आपसे बातें करनेकी आज्ञा देंगे ?' मैंने तुरन्त उत्तर दिया—'हाँ, आप शौकसे बातें कीजिए ; मगर मैं रवीन्द्रनाथ ठाकुर नहीं, उन्हींका एक देशवासी हूँ। मेरे साथ जो हिन्दू महिला हैं, वे टैगोरकी पुत्र-वधू और एक कुशल कलाकार हैं।' इसपर वह अपनी साथिनोंकी ओर देखकर बोलीं—'मेरा भी यही ख़याल था ; मगर इन्होंने ज़िद की कि नहीं, यही टैगोर हैं !' जिसने कभी भी टैगोरको देखा है, वह कदापि भ्रमवश किसी दूसरेको टैगोर नहीं समझ सकता। जिन लोगोंने कभी उन्हें या उनके चित्रोंको नहीं देखा था, उन्होंने मेरी लम्बी सफ़ेद दाढ़ी देखकर वेनिस स्टेशनपर, राष्ट्र-संघ-असेम्बलीकी पहली बैठक (सितम्बर, १९२६) में, फिर दो बार ड्रेसडनमें और एक बार रेलमें प्रागसे वियेना आते समय—जब कि मैं रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ ही यात्रा कर रहा था, पर अस्वस्थ होनेके कारण वे अपने डिब्बेमें विश्राम कर रहे थे—मुझे ही रवीन्द्रनाथ समझ लिया ! इस भ्रमका एक प्रधान कारण यह है कि लोगोंने उन दिनों यह पढ़ा या सुना था कि कवि यूरोपका भ्रमण कर रहे हैं। अतः मुझे कभी इस देश या स्थानमें और कभी किसी दूसरेमें देखकर लोगोंको उन्हींका आभास होता था। इन्हीं ग़लतियोंके कारण बर्लिनमें एक बार कविने मुझसे कहा था कि दूसरे दिन उन्हें पासके जिस ग्राममें भाषण देने जाना है, उसमें उनके बदले मैं चला जाऊँ और उनका लिखित भाषण पढ़ दूँ !

चित्र-संग्रह देखनेके बाद हम ड्रेसडनका नयनाभिराम प्रासाद देखने गए। किन्तु हमें बहुत देर हो चुकी थी, अतः वहाँ पहुँचनेपर वह बंद मिला। पर उसका एक हिस्सा तब भी खुला था, जिसका नाम था 'ग्रीन वॉल्ट' ( Green vault )। इसमें बहुमूल्य पत्थरों, मोतियों तथा अन्य दुर्लभ चीज़ों और सोने, चाँदी तथा हाथीदाँतके सामानका संग्रह था। इनकी देख-रेख करनेवालेने हमें कुछ ऐसे बहुमूल्य रत्न बतलाए, जो भारतसे वहाँ गए थे। किन्तु जिस भारतने यूरोपके अनेक देशों और नगरोंको सुसम्पन्न बनाया है, वह स्वयं आज दरिद्र है ! समयाभावके कारण मैं सार्वजनिक पुस्तकालय, गिरजे और वे कारख़ाने आदि न देख सका, जिनके लिए ड्रेसडन प्रसिद्ध हैं। हाँ, मैंने उस समय वहाँ होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय चित्र-प्रदर्शिनीको ज़रूर देखा। इसमें अमरीका और यूरोपके लगभग सभी देशोंके कलाकारोंने अपनी चीज़ें भेजी थीं। जापानने उसमें भाग लिया था या नहीं, मुझे याद नहीं ; पर भारत उसमें शामिल नहीं था। चित्र काफ़ी संख्यामें थे और मेरे-जैसे एक पुराने ज़मानेके आदमीके लिए—जो कला-पारखी या उसका आलोचक होनेका दम नहीं भर सकता—तो वे ज़रूरतसे ज़्यादा आधुनिक थे। यद्यपि मुझे और श्रीमती रवीन्द्रनाथ ठाकुरको बहुत-से चित्र अच्छे लगे ; किन्तु मैं नहीं समझ सका कि उनमें से अधिकांशमें किस वास्तविक या काल्पनिक पदार्थ या विचारकी अभिव्यक्ति है ? मैं तो बस यही जान पाया कि उनके रंगोंका चुनाव बड़ा भव्य था।

उसी विस्तृत अहातेमें बाग़वानी और फूलोंकी भी एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी थी। उसमें कई ऐतिहासिक बाग़ोंके माडेल ( प्रत्याकृतियाँ ) थे, जिनमें एक भारतका भी था—यह मुझे याद नहीं रहा कि वह भारतके किस बाग़का था। कुछ माडेल ऐसे भी थे, जिनके द्वारा बतलाया गया था कि बाग़ कैसे लगाने चाहिएँ ? और फूलोंका तो यह हाल था, मानो रंगोंका एक ढेर-सा लग गया हो। इस प्रदर्शिनीसे कविके होटल तक हम लोग ट्राममें गए। ट्राममें भीड़ काफ़ी थी और बहुतोंको सिर्फ़ खड़े होने-भरकी जगह मिल सकी थी। पर ज्यों ही मैं ट्राममें सवार हुआ, बहुत-से युवक और युवतियाँ मुझ-जैसे बुड्ढेको खड़ा देखकर मेरे लिए अपना स्थान छोड़कर उठ खड़े हुए। एक अपरिचित विदेशीके प्रति उनकी यह नम्रता एवं भद्रता निश्चय ही उनके सुसंस्कृत होनेकी परिचायक है।

- २ -

उस दिन जिस हालमें कविका भाषण होनेवाला था, नियत समयसे कुछ मिनट पहले हम लोग वहाँ पहुँचे। इसमें ३-४ हज़ार लोगोंके बैठनेकी जगह थी। बैठनेका कोई भी स्थान ख़ाली नहीं रह गया था। बादमें आनेवाले कई आदमी खड़े थे। श्रोताओंमें स्त्रियोंकी संख्या भी काफ़ी थी। कई स्त्री-पुरुष तो कवि जो कुछ अंगरेज़ीमें कहते थे, भलीभाँति समझ लेते थे ; किन्तु अधिकांशने उनके भाषणका वह जर्मन अनुवाद ही समझा, जो बर्लिन-विश्वविद्यालयके हिन्दी-अध्यापक डा० ताराचन्द राय प्रवाहपूर्ण और कर्ण-मधुर भाषामें करते जाते थे।

कवि अपने भाषणका एक-एक वाक्यांश अंगरेज़ीमें कहते, जिसका उसी समय पंडित ताराचन्द—जो एक पंजाबी सज्जन हैं—जर्मनमें उल्था करते जाते। इस अवसरपर पत्रोंके कई रिपोर्टर भी मौजूद थे, जिनमें से अधिकांश महिलाएँ थीं। एक महिला-रिपोर्टर भाषणके अक्षरशः नोट ले रही थी। भाषणके बाद कविने अपनी कई अंगरेज़ी और बँगला कविताएँ पढ़ीं। उनके भाषण और कविता-पाठके बीचमें कई बार करतल-ध्वनि हुई। उनकी कविताओंको—विशेषकर 'दि क्रेसेन्ट मून' (The Crescent Moon) की कुछ कविताओंको लोगोंने इतना पसन्द किया कि कविको अपने निश्चयसे कई कविताएँ अधिक सुनानी पड़ीं। 'दि क्रेसेन्ट मून' की "मानहानि"-शीर्षक कविता, जिसका सारांश नीचे दिया जा रहा है, तो उन्हें तीन नहीं तो कमसे कम दो बार ज़रूर ही सुनानी पड़ी थी :—

"तुम्हारी आँखोंमें ये आँसू क्यों हैं, मेरे लाल ?

वे कितने बुरे हैं, जो तुम्हें सदा अकारण धमकाया करते हैं ?

क्या वे इसलिए तुम्हें गंदा कहते हैं कि लिखते समय तुमने अपनी अँगुलियों और चेहरेपर स्याही लगा ली है।

पर छिः! क्या वे पूर्णचन्द्रको भी गंदा कहनेका साहस कर सकेंगे, क्योंकि उसने अपने चेहरेपर स्याही पोत ली है ?

वे छोटी-छोटी बातोंके लिए भी तुम्हें दोष दिया करते हैं, मेरे लाल! अकारण ही वे तुम्हें बुरा-भला कहनेको उद्यत रहते हैं।

क्या वे इसलिए तुम्हें गंदा कहते हैं कि खेलते समय तुमने अपने कपड़े फाड़ लिए ?

पर छिः! वे पतझड़के उस प्रातःकालको क्या कहेंगे, जो छिन्न-विछिन्न बादलोंके बीचसे मुस्कराता है ?

मेरे लाल, तुम उनकी कही-सुनी बातोंकी कुछ भी परवा मत किया करो।

वे ख्वामख्वा तुम्हारी शरारतोंको बढ़ा-चढ़ाकर बतलाते हैं।

सभी जानते हैं कि तुम मीठी चीज़ोंको बेहद पसन्द करते हो—क्या इसीलिए वे तुम्हें लोभी कहते हैं ?

पर छिः! तब वे हम सबको क्या कहेंगे, जो तुम्हें बेहद प्यार करते हैं ?"

– ३ –

कविका भाषण और कविता-पाठ समाप्त होनेके बाद बड़ी कठिनाईसे भीड़में से हम लोग हालसे बाहर निकल पाए। बाहर आकर हमने देखा कि सड़ककी पटरियों (फ़ुटपाथ) पर इतनी अधिक भीड़ है कि बड़ी मुश्किलसे कवि और उनके साथी सड़कके किनारे खड़ी मोटरों तक पहुँच पाए। मोटरोंपर सवार होकर जब हमलोग धीमे-धीमे थियेटरकी ओर चले, तो देखा कि सड़कोंके दोनों ओर कविके दर्शनोंके अभिलाषियोंकी ज़बर्दस्त भीड़ जमा है। जब गाड़ियाँ थियेटरके सामने जाकर रुकीं, तो सड़क और पटरियोंपर इतनी अधिक भीड़ थी कि कविको भीड़में से निकलकर उसके प्रवेश-द्वार तक पहुँचनेमें कुछ देर लगी। थियेटरके भीतर तो कहीं तिल रखनेकी भी जगह नहीं थी। अभिनयके लिए जो पात्र चुने गए थे, वे नाटकके विषयसे एकदम अपरिचित-से थे; किन्तु इसके बावजूद उनका काम काफ़ी संतोषप्रद रहा। कइयोंकी पोशाक बड़ी विचित्र थी। पर यह मैं कोई छिद्रान्वेषणकी भावनासे नहीं कह रहा—न मुझे ऐसा कहना ही चाहिए—क्योंकि जर्मनोंके लिए बंगालकी ज़नानी और मर्दानी पोशाकें स्वभावतया अपरिचित हैं। बल्कि मुझे तो थियेटरके संचालकोंको धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने मोड़लके लिए ताल-पत्रेका छाता, सुधाके लिए बंगाली आभूषण और ग्वालिनके लिए दही बेचनेकी बाँसकी चुपरी (टोकरी) जुगाड़ कर ली। अमल नामके अस्वस्थ लड़केका अभिनय एक अभिनेत्रीने किया। अमलके साथ खेलने आनेवाले सब लड़कोंका अभिनय भी अभिनेत्रियोंने ही किया। प्रागके चेक और जर्मन थियेटरोंमें भी इन लड़कोंका अभिनय अभिनेत्रियोंने ही किया। कविके पूछनेपर इसका कारण यह बतलाया गया कि जर्मनी और चेकोस्लोवाकियामें ऐसे अभिनयके लिए लड़के नहीं मिल सके! अमलकी आयुके बच्चोंके लिए कविकी भावनाओं एवं विचारोंमें पैठ सकना कठिन था। बंगाल या उसके बाहर रहनेवाले प्रवासी बंगालियोंकी बात दूसरी है। कई बंगाली लड़कोंने अमलका अभिनय पूर्ण रूपसे किया है। मुझे नहीं मालूम, 'डाकघर' भी भारतमें कहीं ग़ैर-बंगालियों द्वारा खेला गया है या नहीं।

जब अभिनय समाप्त हो गया, तो थियेटरके संचालक या मालिकने कविको मानपत्र पढ़कर भेंट किया और श्रोताओंने भी हर्षध्वनि द्वारा उनका अभिवादन किया।

– ४ –

जिस होटलमें कवि ठहरे थे, सुबहसे शाम तक अपरिचित लोग उनकी रचनाओंका जर्मन-अनुवाद करके

लाते और वे उसपर शान्ति और धैर्यपूर्वक हस्ताक्षर करते रहते। होटलके नौकर और नौकरानियाँ भी इस अवसर पर अपने कर्त्तव्य-पालनमें किसीसे पीछे नहीं थे। वे इतने सुसंस्कृत थे कि बड़े आदरसे कविके हस्ताक्षरोंके लिए एकके बाद दूसरी पुस्तक लेकर आते थे। अपनेसे बिलकुल अपरिचित लोगोंके ढेर से विज़िटिंग-कार्डोंपर भी उन्हें हस्ताक्षर करने पड़ते थे। अतः एक दिन मैंने उनसे कहा कि यदि आप अपने हस्ताक्षर करनेकी कुछ फ़ीस रख लेते, तो इससे काफ़ी धन कमा सकते थे। इसके उत्तरमें वे केवल मुस्करा दिए और बोले कि व्यवसाय-बुद्धि तो उनमें है ही नहीं; इसीलिए वे लक्ष्मीकी कृपा प्राप्त करनेमें विफल रहे हैं।

पर केवल हस्ताक्षर करानेवाले ही उनके पीछे नहीं पड़े रहते थे; सभी तरहके कलाकार भी उनकी कृपाके अभिलाषी थे। एक चित्र-शिल्पीकी हठधर्मीके आगे उन्हें हार माननी पड़ी, जो उनका पेंसिल या खड़ियासे रेखा-चित्र तैयार करनेके लिए उन्हें केवल १५ मिनट अपने सामने बिठाए रखना चाहता था। शिल्पीका पहला प्रयास बेकार गया और दूसरी बार भी वह विफल ही रहा। पर कविने उसे तीसरा मौक़ा और दिया। जब शिल्पीने रेखा-चित्र समाप्त कर लिया, तो कविने कहा—'क्या यह माइकेल मधुसूदनदत्तका चित्र नहीं मालूम होता?' और यह कहकर चित्रपर—जो रवीन्द्रनाथकी अपेक्षा मधुसूदन-दत्तका ही अधिक मालूम होता था—हस्ताक्षर कर दिए। पाठक इस बातपर आश्चर्य कर सकते हैं कि क्या कविके प्रश्नका मंशा यह था कि वे किसी भी चित्रको अपना चित्र मान सकते हैं, बशर्ते कि वह किसी कविका हो!

- ५ -

ड्रेसडनसे कवि वापस बर्लिन चले आए। उनके साथ इन पंक्तियोंके लेखकके अलावा उनकी पुत्र-वधू, श्री प्रशान्त महलानबीस (सपत्नीक), प्रो० ताराचन्द राय और श्री पी० सी० लाल भी थे। गाड़ीमें श्रीमती महलानबीस (रानीदेवी)ने कविकी चाकलेटसे ख़ातिर की, जिन्हें उन्होंने बाल-सुलभ आनन्दके साथ खाया। मुझे भी अपना हिस्सा मिला। इस रेल-यात्राके दौरानमें कविने सुख-दुःखकी पचासों ऐसी बातें कहीं, जिन्हें लिपिबद्ध करके स्थायित्व दिया जाना चाहिए था; पर खेद है कि मैंने उस समयकी बातोंके नोट नहीं लिए। यदि मैं अपनी स्मृतिको टटोलकर उन बातोंके सारांशका अनुवाद यहाँ देनेका यत्न करूँ, तो शायद उनका सौरभ पाठकों तक नहीं पहुँच पायगा। फिर भी कविकी दो बातोंका यहाँ उल्लेख करनेका मैं साहस कर रहा हूँ। कविने कहा था कि 'वंदेमातरम्'-गानके 'सुजलां सुफलां शस्यश्यामलाम्' विशेषण सभी ऋतुओंमें बंगाल या भारतके किसी भी अन्य भागपर इतने उपयुक्त रूपमें लागू नहीं हो सकते, जितने कि यूरोपके कई भागोंपर हो सकते हैं। मैंने तो यूरोपके कुछ ही भाग देखे थे; पर उनके ज्ञानके आधारपर मैं यह कह सकता हूँ कि कविकी यह बात मुझे बिल्कुल ठीक जँची। हमें प्रकृतिके उन लाड़ले स्थानोंके लोगोंसे प्रतियोगिता करनी है। यह कार्य कितना ही कठिन क्यों न हो, पर सर्वथा निराशापूर्ण नहीं है।

दूसरी बात जो कविने हमें सुनाई थी, वह यह थी कि यूरोपके एक प्रतिष्ठित सम्पादकने—जो उनके मित्र थे—उनसे कहा था कि यूरोपका जन-साधारण भारतीय समस्याओं और वहाँकी बातोंसे एकदम अनभिज्ञ है। इसलिए यदि वे कोई ऐसा विश्वस्त और सुयोग्य भारतीय लेखक बतला सकें, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिको मद्देनज़र रखकर भारतकी समस्याओं और सामयिक घटनाओंपर प्रकाश डाल सके, तो उसके लेख सहर्ष छपेंगे और यूरोपीय पाठक आसानीसे भारतकी वस्तुस्थिति समझ सकेंगे।
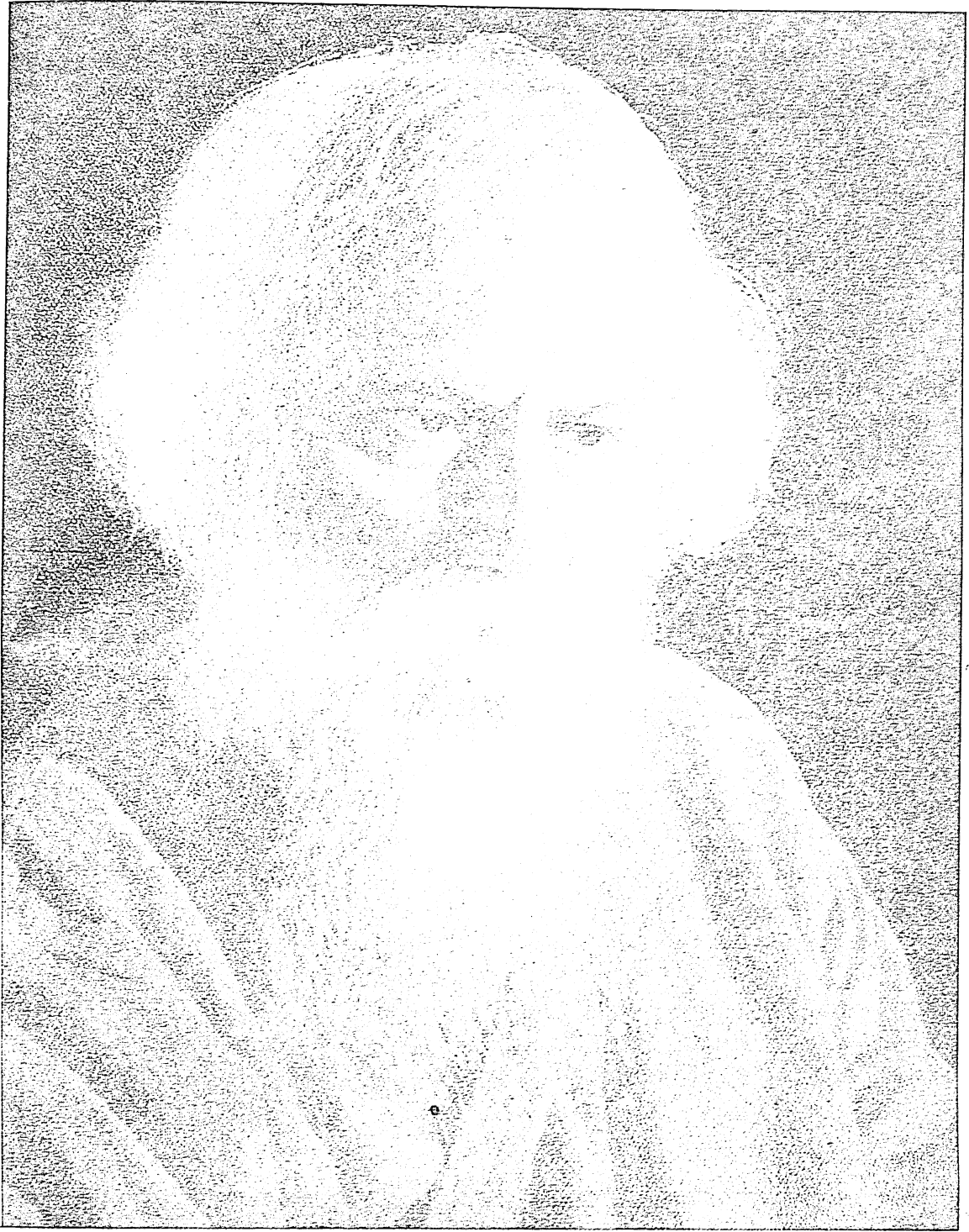
कविगुरु रवीन्द्रनाथ
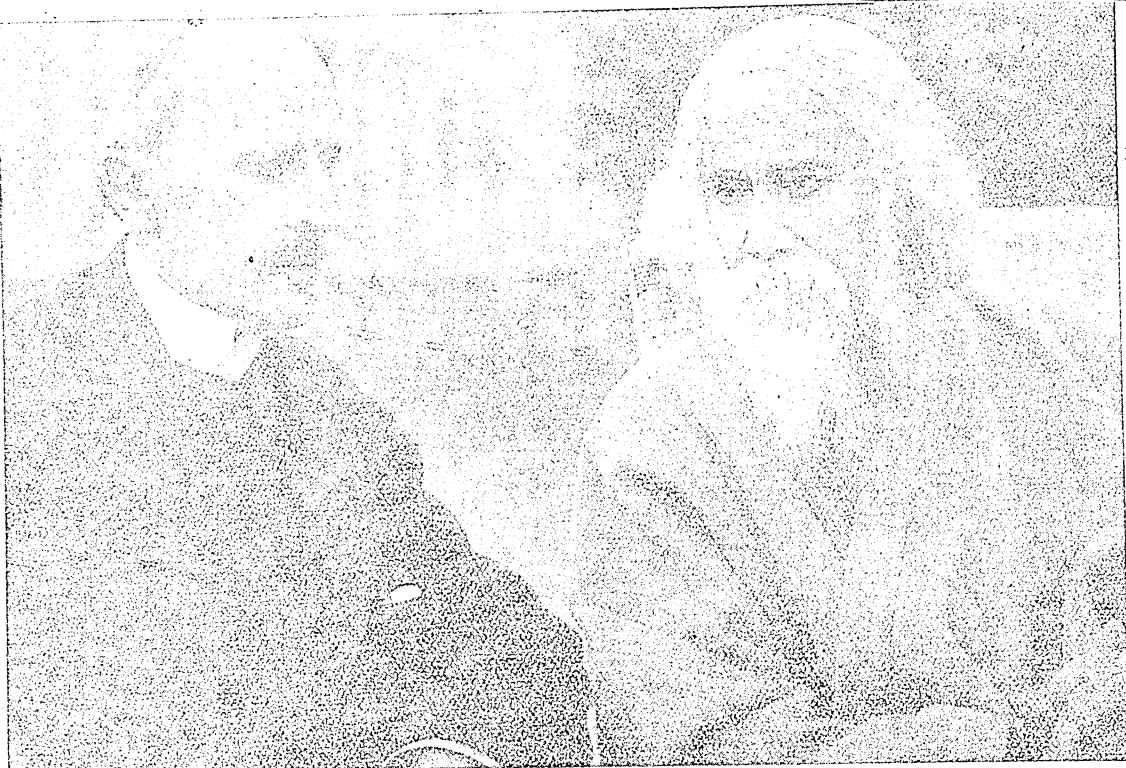
अपनी फ्रांस-यात्राके समय रोमाँ रोलांसे बातचीत करते हुए रवीन्द्रनाथ ।

ड्रेसडनमें ( बाईं ओरसे ) प्रो० विंटरनिटज़, श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय, रवीन्द्रनाथ और प्रो० लेज़नी ।

# रवीन्द्रनाथकी जन्मपत्री

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

स्व० कविवर रवीन्द्रनाथकी जन्मकुण्डली एक छोटी-सी नोटबुकमें संग्रहीत है। इस नोटबुकमें उनके कुलके अन्यान्य व्यक्तियोंकी जन्मकुण्डलियाँ भी दी हुई हैं। कुण्डलियाँ बहुत संक्षिप्त हैं और उनमें मोटी-मोटी ज्ञातव्य बातें ही दी हुई हैं। रवीन्द्रनाथका जन्मपत्र उक्त संग्रहके अनुसार निम्नलिखित होगा। इस प्रसंगमें इतना और निवेदन कर देना उचित है कि कई अंगरेज़ी अख़बारोंमें जो उनकी जन्मपत्री छपी है, वह इस प्रामाणिक जन्मपत्रीसे कुछ भिन्न है।

संवत् १९१८, शकाब्द १७८३, सौर वैशाख, कृष्ण पक्ष, सोमवार, त्रयोदशी तिथि, रेवती नक्षत्र, मीन राशि और मीन लग्नमें उनका जन्म हुआ। सूर्योदयसे इष्टकाल ५३।००।००। अंगरेज़ी मतसे सन् १८६१ ई०, ७ मई (आधीरातके बाद होनेके कारण), मंगलवार, २ बजकर ३८ मिनट ३७ सेकेंडपर प्रातःकाल जन्म हुआ।

जन्मकुण्डली
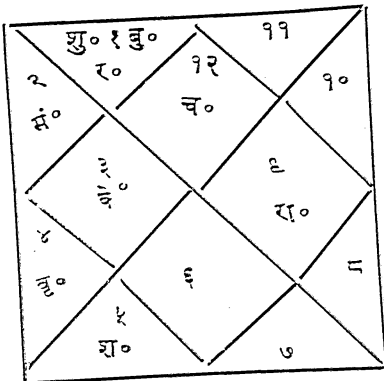
संग्रहमें शुक्रदशाका भोग्य वर्षादि १४।३।११।३९ दिया हुआ है। स्पष्ट ही यह अष्टोत्तरी दशा है, क्योंकि रेवती नक्षत्र इसी दशाके अनुसार शुक्रके अधीन है। विंशोत्तरी मतसे बुधकी दशा होगी। इसीपर से अनुपात करनेसे विंशोत्तरी मतसे बुधकी दशाका भोग्य मोटी तौरपर ११ वर्ष ६ महीने २२ दिन होंगे। इस प्रकार विंशोत्तरी दशाका चक्र इस प्रकार होगा :—

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| बुधकी दशा | ७ मई, | १८६१ से | २८ नव० | १८७२ तक |
| केतु | ,, २९ नवं० | १८७२ से | २८ ,, | १८७९ ,, |
| शुक्र | ,, ,, ,, | १८७९ ,, | ,, ,, | १८९९ ,, |
| सूर्य | ,, ,, ,, | १८९९ ,, | ,, ,, | १९०५ ,, |
| चंद्रमा | ,, ,, ,, | १९०५ ,, | ,, ,, | १९१५ ,, |
| मंगल | ,, ,, ,, | १९१५ ,, | ,, ,, | १९२२ ,, |
| राहु | ,, ,, ,, | १९२२ ,, | ,, ,, | १९४० ,, |
| बृहस्पति | ,, ,, ,, | १९४० ,, | ,, ,, | १९५६ ,, |

सन् १९४१ ई० में उनका देहान्त हो गया।

इसमें कुछ मनोरंजक योगोंकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दिलानेके लिए यहाँ उनके जीवनकी दो-एक प्रधान घटनाओंका उल्लेख किया जा रहा है। चन्द्रमाकी दशा १९०५ से १९१५ ई० तक रहती है। यह काल उनके जीवनमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। इसके विषयमें विचार करनेके पूर्व कुछ और महत्त्वपूर्ण घटनाओंकी चर्चा कर ली जाय।

विवाह—९ दिसम्बर, १८८३ ई०—शुक्रकी महादशामें सूर्यकी अन्तर्दशा। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि चन्द्रमा लग्नस्थ होकर कलत्र भावको पूर्ण दृष्टिसे देख रहा है, इसलिए विवाह-योग वस्तुतः शुक्रकी दशामें चन्द्रमाके अन्तरमें पड़ना चाहिए, अर्थात् १८८४ ई० के मार्च महीनेमें शुरू होना चाहिए। परन्तु यहाँ तीन महीना पहले ही हो गया है। यह ध्यान रखना चाहिए कि दशाकी गणनामें मोटी तौरपर २४ घंटेको १७ वर्ष मानकर हिसाब किया गया है, इसलिए जन्मकालमें अगर एक मिनटकी भी देर हो, तो क़रीब-क़रीब १ सप्ताहका अन्तर पड़ सकता है। हमने हिसाब लगाकर देखा है कि रवीन्द्रनाथकी जन्मकुण्डलीमें सभी योग कुछ देरसे आते हैं। क्या जन्मकालके लिखनेमें ५-१० मिनटकी ग़लती हुई है?

पत्नी-मृत्यु—नवम्बर, १९०२—सूर्यकी महादशामें शनिकी अन्तर्दशा।

'गीतांजलि'की रचना—१९१० ई०—चन्द्रमाकी महादशामें बृहस्पतिकी अन्तर्दशा।

**द्वितीय यूरोप-यात्रा**—२७ मई, १९१२ ई०—चन्द्रमाकी महादशामें बुधकी अन्तर्दशा।

**'गीतांजलि'का प्रथम प्रकाशन**—नवम्बर, १९१२ ई०—चन्द्रमाकी महादशामें बुधकी अन्तर्दशा।

**नोबेल-पुरस्कार**—१३ नवम्बर, १९१३ ई०—चन्द्रमाकी महादशामें शुक्रकी अन्तर्दशा।

यहाँ विचारणीय और ध्यान देने योग्य बात यह है कि कविकी जन्मपत्रीमें चन्द्रमा, बृहस्पति और शुक्र बहुत ही उत्तम ग्रह हैं। बृहस्पति उच्चका होकर लग्नेश है और चन्द्रमाके साथ उसका विनिमय योग है। शुक्र और मंगलका भी ऐसा ही विनिमय योग है; पर वह अच्छा नहीं है। बृहस्पति विद्या-स्थानमें है। प्रथम योग बहुत ही महत्वका है। इस योगका फल निस्सन्देह बहुत ऊँचे दर्जेका कवि, विद्वान् तथा कीर्त्तिशाली होना है। मैं ज्योतिषके फलित भागको अन्ध-भावसे नहीं देखता और मानता; परन्तु यह योग ऐसा ठीक उतरा है कि यह मेरे-जैसे संशयालुको भी आश्चर्य-चकित करता है। मुझे मानना चाहिए कि यह योग पूरी तौरपर घटा है। एक और मार्केकी बात है बुधादित्य योग। शुक्र इस योगको और भी महत्त्वपूर्ण बना देता है। धन-स्थानमें बुध और सूर्यका योग बहुत फलप्रद बताया गया है। यह लक्ष्य करनेकी बात है कि 'गीतांजलि'की रचनाका आरम्भ चन्द्रमाकी दशा और बृहस्पतिकी अन्तर्दशामें हुआ है, उसका प्रकाशन चन्द्रमाकी दशा और बुधकी अन्तर्दशामें हुआ है और उसका पुरस्कृत होना चन्द्रमाकी दशा और शुक्रकी अन्तर्दशामें हुआ है। ये तीनों ही योग अद्भुत भावसे घटे हैं।

मृत्यु—बृहस्पतिकी दशा और उसीकी अन्तर्दशामें क्यों हुई, यह ज्योतिषियोंके लिए विचारणीय प्रश्न है। मेरी समझमें यह समय बहुत ही उत्तम योगका था। रवीन्द्रनाथने अपनी कविताओंमें मृत्युको बहुत ही उत्तम प्राप्तव्य बताया है। क्या फलित ज्योतिषने उनकी फिलासफीको स्वीकार कर लिया है? यहाँ भी यह ध्यान देने योग्य है कि शनिकी महादशा १९४० के नवम्बरमें समाप्त हुई। क्या गणनामें भूल होनेके कारण यही दशा १९४१ तक चलती रही?*

---

* हिन्दीके प्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम खानखाना (रहीम) ने एक पुस्तक लिखी है, 'खेट कौतुकम्'। इसमें मौजी रहीमने नाना प्रकारकी भाषाओंकी खिचड़ीमें ज्योतिषके महत्त्वपूर्ण योगोंकी चर्चा की है। इन भाषाओंमें अरबी है; फ़ारसी है, संस्कृत है और हिन्दी है। एक योग बड़े आश्चर्यजनक ढंगसे रवीन्द्रनाथकी जन्मपत्रीमें घटा है। रहीम कहते हैं कि यदि बृहस्पति (मुश्तरी) कर्क राशिमें हो या धनु राशिमें हो और शुक्र (चश्मखोरा) प्रथम (मेष) या दसवीं (मकर) राशिमें हो, तो ज्योतिषीको कुछ पढ़ने-लिखनेकी ज़रूरत नहीं, बालक निस्सन्देह बादशाही करेगा! [रवीन्द्रनाथकी कुण्डलीमें बृहस्पति कर्कमें है और शुक्र मेष राशिमें।]—

'यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमाने
यदा चश्मखोरा ज़र्मी वाऽऽसमाने।
तदा ज्योतिषी क्या पढ़े क्या लिखेगा
हुआ बालका बादशाही करेगा!'

—लेखक

---

# आदर्श ग्राम

"मैं यह कहना चाहता हूँ कि हमें सारे देशके बारेमें सोचनेकी ज़रूरत नहीं है। मैं सारे देशकी जिम्मेवारी नहीं ले सकता। मैं तो सिर्फ़ एक या दो छोटे-छोटे गाँवोंको ही वश करना चाहता हूँ। हमें ग्रामवासियोंके मनमें प्रवेश पाना है। उनके साथ काम करनेकी ताक़त हासिल करनी है। यह कोई आसान काम नहीं है, बड़ा मुश्किल काम है। उसके लिए कठोर आत्म-संयमकी ज़रूरत होगी। अगर मैं एक या दो ही गाँवोंको अज्ञान और दुर्बलताके बन्धनोंसे मुक्त कर सका, तो छोटे-से पैमानेपर सारे भारतके लिए आदर्शका निर्माण होगा। हमारा उद्देश्य होना चाहिए इन थोड़े-से गाँवोंको सम्पूर्ण स्वातंत्र्य देना। सब ग्रामवासियोंके लिए शिक्षा सुलभ होगी, आनन्दकी वायु गाँवके वायुमंडलमें चलती होगी, संगीत और भजनकी आवाज़ गूँजती होगी, जैसा कि पुराने ज़मानेमें होता था। इस आदर्शको थोड़े-से ही गाँवोंमें कार्यान्वित कीजिए, तो भी मैं कहूँगा कि ये थोड़े-से गाँव मेरा भारतवर्ष हैं। जब ऐसा होगा, तभी हिन्दुस्तान दरअसल हमारा होगा।"

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

# रवीन्द्रनाथके जीवनकी झाँकी

### सन् १८६१-१८७६ : पहले १५ वर्ष

रवीन्द्रनाथका जन्म ६, द्वारकानाथ ठाकुर लेन, कलकत्तामें सोमवार, ७ मई, १८६१ ( २५ वैशाख, १२६८ बंगाब्द, शक संवत् १७८३) को रातके २॥ और ३ बजेके बीचमें हुआ था। वे अपने माता-पिता (श्रीमती शारदा देवी और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर—१८२४-१८७५) की चौदहवीं सन्तान—और नवें पुत्र—थे। उनका लालन-पालन बड़े लाड़-प्यारसे किया गया।

सन् १८६३ में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरने बोलपुरमें २० बीघा ज़मीन ख़रीदी। यहीं आगे चलकर कविने शान्तिनिकेतन और विश्व-भारतीकी स्थापना की।

छठे वर्षमें बालक रवीन्द्रनाथको प्रारम्भिक शिक्षाके लिए 'ओरियंटल सेमिनरी' में और बादमें एक नार्मल स्कूलमें भर्ती कराया गया। कुछ समय बाद आपको और आपके बड़े भाई श्री सोमेन्द्रनाथ और भतीजे सत्यप्रसाद गंगोपाध्यायको घर ही पर पढ़ानेके लिए अध्यापक रखे गए। ये उन्हें संस्कृत, बँगला, अंगरेज़ी और व्याकरणके अलावा भौतिक विज्ञान, प्रारम्भिक रेखागणित, अंकगणित, इतिहास, भूगोल, मनोविज्ञान, शरीर-विज्ञान आदि विषय भी पढ़ाते थे और चित्रकला, संगीत तथा मल्लविद्या आदिका भी अभ्यास कराते थे। १८६८ में उन्होंने अपनी पहली कविता लिखनेका सफल प्रयत्न किया। इसी वर्ष आप बंगाल-एकेडेमीमें दाख़िल हुए; किन्तु पढ़नेमें मन न लगनेके कारण शीघ्र ही आपने इसे छोड़ भी दिया। इसी वर्ष पहली बार आप अपने पिताके साथ शान्तिनिकेतन गए।

६ फरवरी, १८७३ ( २५ माघ, १२७९ बंगाब्द ) को, जब कि आपकी अवस्था ११ वर्ष १० महीनेकी थी, उपनयन-संस्कारके लिए आप बोलपुरसे कलकत्ता आए। इसी समय आपने अपना सर्वप्रथम नाटक 'पृथ्वीराज-

रवीन्द्रनाथ (आयु ९ वर्ष) श्री सौमेन्द्रनाथ और श्री सत्यप्रसाद (बैठे हुए) के साथ।

पराजय' लिखा। ( खेद है कि इस नाटककी पाण्डु-लिपि अब अप्राप्य है।) इसके बाद आप कुछ समय तक शान्तिनिकेतनमें रहनेके बाद अपने पिताके साथ उत्तर-भारतकी यात्रा की। एक मास तक आप अमृतसरमें और ४ मास तक डलहौज़ीमें रहे। इस यात्रामें भी आप अपने पितासे संस्कृत, व्याकरण, अंगरेज़ी और ज्योतिषके नियमित पाठ लेते रहते थे। यात्रासे वापस आनेपर १८७४ में आप सेंट जेवियर्स स्कूलमें दाख़िल हुए।

### प्रारम्भिक साहित्यिक रचनाएँ

इस समय रवीन्द्रनाथने जो कविताएँ लिखीं, उनमें से 'अभिलाषा'-शीर्षक कविता 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' ( नवंबर-

रवीन्द्रनाथ (१४ वर्षकी आयुमें)।

दिसम्बर, १८७४ ) में बिना उनके नामके प्रकाशित हुई। उसके साथ केवल कविका इतना ही परिचय था कि 'यह एक १२ वर्षके बालकका प्रयास है।' ८ मार्च, १८७५ को—जब कि रवीन्द्रनाथकी आयु १३ वर्ष १० महीनेकी थी—आपकी माता श्रीमती शारदा देवीका वैकुण्ठवास हो गया।

रवीन्द्रनाथके नामसे पहली कविता २५ फरवरी, १८७५ की 'अमृतबाज़ार-पत्रिका' ( जो उन दिनों अंगरेज़ी-बँगलामें निकलती थी) में छपी, जो उन्होंने ११ फरवरी १८७५ को हुए 'हिन्दू-मेला' में पढ़ी थी।* घरपर अध्यापकों द्वारा उनकी संस्कृत, काव्य, नाटक ( कुमार-सम्भवम् और शकुन्तला ) तथा अंगरेज़ी साहित्य (मुख्यतया शेक्सपियरके ग्रन्थों) का अध्ययन बाक़ायदा चलता रहा। इसी वर्ष आपने शेक्सपियरके 'मैकबैथ'का बँगलामें पद्या-नुवाद किया, जो बँगला मासिक 'भारती' (१८८०-८१) में प्रकाशित हुआ। एक राष्ट्रीय नाटकके लिए उन्होंने बहुत सुन्दर गीत भी इसी समय लिखा था। [ उनके पाँचवें भाई ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुर ( १८४८-१९२५ )ने भी 'सरोजिनी' नामक नाटिका लिखी थी। ] इस वर्ष उन्होंने 'वनफूल' नामक एक खण्डकाव्य आठ पर्वोंमें लिखा, जो १८७६ में श्रीकृष्णदास-सम्पादित 'ज्ञानांकुर' नामक बँगला मासिकमें निकला। वैष्णव-पदावलीके ढंगपर उन्होंने कई गीत भी लिखे, जो 'भानुसिंह ठाकुर'के कल्पित नामसे प्रकाशित हुए। इसी वर्ष आप दूसरी बार अपने पिताके साथ हिमालय-प्रदेशके भ्रमणको गए।

### सन् १८७७-१८८९ : १६ से २८ वर्ष तक

यात्रासे कलकत्ता लौटनेके कुछ ही समय बाद आपने अपने भाई श्री ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुर-लिखित एक नाटकमें, जो जोड़ासाँकोके उनके अपने घरमें ही ख़ानगी तौरपर खेला गया था, 'आलिक बाबू'का अभिनय किया। किन्तु यह आपका सर्वप्रथम अभिनय नहीं था। इससे पूर्व भी आपने अपने भाईके लिखे हुए एक गीति-नाट्यमें—जिसके बहुत-से गीत आपने भी बनाए थे—अभिनय किया था। यह नाटक सन् १८८० में 'मानमयी' नामसे प्रकाशित हुआ।

* कलकत्तेके तत्कालीन अंगरेज़ी दैनिक 'दि इंडियन डेली न्यूज़' ने अपने १५ फरवरी, १८७५ के अंकमें इस मेलेकी कार्यवाही छापते हुए लिखा था—"बाबू देवेन्द्रनाथ ठाकुरके १५ वर्षीय सुन्दर सुपुत्र बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भारतपर बनाई हुई अपनी एक कविता—जो उन्हें कण्ठस्थ थी—सुनाई। उनके सुरीले कण्ठस्वरने श्रोताओंको मंत्रमुग्ध कर दिया।" पाठकोंकी जानकारीके लिए हम बतला देना चाहते हैं कि इस समय रवीन्द्रनाथकी अवस्था १३ वर्ष और ९ महीनेकी ही थी, १५ वर्षकी नहीं। —सम्पादक

इन दिनों आप नई बँगला मासिक पत्रिका 'भारती' (जो आपके सबसे बड़े भाई श्री द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा सन् १८७७ में आरम्भ की गई थी और वे ही उसके सम्पादक थे) में बराबर 'भानुसिंह'के नामसे कविताएँ, निबन्ध तथा आलोचनाएँ (जिनमें माइकेल मधुसूदनदत्तके 'मेघनाद-बध' काव्यकी आलोचना विशेष उल्लेखनीय है) आदि लिखा करते थे। इस समय लिखी गई आपकी अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं :—'भिखारिणी' (एक बड़ी कहानी); 'करुणा' (एक अपूर्ण उपन्यास); 'कवि - काहिनी' (एक लम्बी कविता); 'कविता-पुस्तक' (बंकिम बाबूकी कविताओंकी समीक्षा और कुछ अंगरेज़ी प्रबन्ध (यथा English Manners, The Anglo-Saxons and Anglo-Saxon Literature और Beatrice and Dante)। इसी वर्ष जो हिन्दू-मेला हुआ, उसमें आपने भयंकर अकालके बाद लार्ड लिटनकी दिल्ली-दरबार (१८७७) में राजा-महाराजाओं तथा जनता द्वारा की गई प्रशंसा और भारत तथा इंग्लैण्डके कथित 'स्वर्ण-सम्बन्ध-सूत्र'की भारी भर्त्सना करते हुए एक बड़ी मर्मस्पर्शी कविता पढ़ी, जो बादमें १८८३ में छपे आपके बड़े भाई श्री ज्योतिन्द्र-नाथके 'स्वप्नमयी' नाटकमें प्रकाशित हुई।

इसके बाद आप अपने दूसरे बड़े भाई श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुरके पास—जो भारतीय सिविल-सर्विसके सबसे पहले भारतीय सदस्य तथा उस समय अहमदाबादमें ज़िला-जज थे—पढ़ने और रहनेके लिए भेज दिए गए। इसी वर्ष आपकी कविताओंका पहला संग्रह 'कवि-काहिनी'के नामसे प्रकाशित हुआ। २० सितम्बर, १८७८ को आप श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुर और उनके परिवारके साथ इंग्लैण्ड गए। ब्राइटनमें आप श्रीमती सत्येन्द्रनाथ ठाकुरकी देख-रेखमें रहकर उनके बच्चों—सुरेन्द्रनाथ और इन्दिरा (जिसका विवाह बादमें बंगालके प्रमुख साहित्यिक श्री प्रमथ चौधुरीसे हुआ)—के साथ वहींके स्कूलमें पढ़ने लगे। कुछ समय बाद आप श्री तारकनाथ पालितके साथ लन्दन चले आए और यूनिवर्सिटी-कालेजमें भर्ती हो गए। यहाँ आप प्रो० हेनरी मार्ले (लार्ड मार्लेके छोटे भाई) की अधीनतामें अंगरेज़ी-साहित्यका अध्ययन करने लगे। पहले कुछ महीने आप रीजेंट पार्कके सामने अपने लैटिन अध्यापकके साथ रहे और बादमें प्रो० बार्कर तथा डा० स्काटके साथ रहने लगे। पढ़ाईके साथ-साथ आप यूरोपीय संगीत-विद्या भी सीखते थे और समय मिलनेपर अक्सर ब्रिटिश म्यूज़ियम (अजायबघर) तथा पार्लमेंटके

ब्राइटनमें विद्यार्थी रवीन्द्रनाथ (आयु १७ वर्ष)।

हाउस आफ़ कामन्सकी बैठकोंमें भी जाया करते थे। ग्लेडस्टन और ब्राइटके भाषण आपने इसी समय सुने थे। इसी समय आपने अपनी प्रसिद्ध कविता 'भग्न तरी' लिखी। 'भग्न हृदय' नामक नाटक आपने यहीं लिखा था, जो १८८१ में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। यहाँसे कई मार्मिक कविताओं और खोजपूर्ण निबन्धोंके अलावा आपने अंगरेज़ों और इंग्लैण्ड-सम्बन्धी अपने विचार पत्रोंके रूपमें

लिखे, जो 'यूरोप-प्रवासीर पत्र'-शीर्षकसे 'भारती'में आलोचनात्मक पाद-टिप्पणियों-सहित प्रकाशित हुए।

सर्वप्रथम सार्वजनिक भाषण : अन्य रचनाएँ

सन् १८८० में आप भारत लौटे और 'वाल्मीकि-प्रतिभा' तथा 'काल-मृगया' नामक दो गीति-नाट्य लिखे। पहलेमें (फरवरी, १८८१) आपने वाल्मीकिका और दूसरेमें (२३ दिसम्बर, १८८२) अन्ध बाउका अभिनय किया। इन दोनोंका अभिनय जोड़ासाँकोके उनके अपने भवनमें ही हुआ, जिसमें कलकत्तेके अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक

लन्दनमें विद्यार्थी रवीन्द्रनाथ (आयु १९ वर्ष)।

(स्व० बंकिमचन्द्र और गुरुदास वन्द्योपाध्याय आदि) और उनके कुटुम्ब-परिजनवाले एकत्रित थे। इसी वर्ष आपने 'भारती'में अंगरेज़ों द्वारा चीनमें होनेवाले व्यवसायकी 'चीने मरणेर व्यवसाय'-शीर्षक लेख लिखकर बड़ी आलोचना की। मई, १८८१ में कलकत्ता मेडिकल कालेजके लेक्चर-थियेटरमें 'संगीत और भावना' विषयपर आपका सर्वप्रथम सार्वजनिक भाषण हुआ, जिसमें आपने मौखिक संगीतका प्रदर्शन भी किया। इस भाषणसे विद्वत्समाजपर आपके कला-कृतीत्व और प्रतिभा तथा ज्ञान-गाम्भीर्यका अच्छा असर पड़ा।

मई, १८८१ में आप अपने भानजे श्री सत्यप्रसाद गांगुली और उनके एक मित्र श्री आशुतोष चौधुरी (जो बादमें कलकत्ता हाईकोर्टके विचारपति हुए) के साथ क़ानून पढ़ने दूसरी बार इंग्लैण्ड जानेके लिए रवाना हुए। पर मार्गमें ही इरादा बदल जानेसे आप मदराससे वापस आ गए और अपने पिताके पास मसूरी चले गए। वहाँसे कलकत्ता लौटनेपर आपने 'भारती'में धारावाहिक रूपसे अपना नया उपन्यास 'बौ ठाकुरानीर हाट' प्रकाशित कराना आरम्भ किया। १८८२ में आपका मुक्तक छन्दोंमें लिखा हुआ 'रुद्रचन्द्र' नामक ऐतिहासिक गीति-नाट्य और 'सांध्य-संगीत' नामक कविता-संग्रह प्रकाशित हुए। इनसे स्व० बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय इतने प्रसन्न एवं प्रभावित हुए कि श्री रमेशचन्द्र दत्त (१८४८-१९०९) के यहाँ हुई सभामें उन्हें जो हार पहनाया गया, वह अपने गलेमें से उतारकर उन्होंने रवीन्द्रनाथको पहना दिया।

कुछ समय तक आप अपने बड़े भाई श्री ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुरके साथ चन्द्रनगरमें रहे, जहाँ आपने कई कविताएँ और गीत लिखें। वहाँसे लौटकर आप १० सदर स्ट्रीट (चौरंगीमें इंडिय म्यूज़ियमके पास), कलकत्तेमें रहने लगे। इस समय आपकी प्रतिभा विशेष विकासोन्मुख हुई। 'निर्भरेर स्वप्न-भंग'-शीर्षक कविता—जो आपके नवीन कविता-संग्रह 'प्रभात-संगीत' (१८८३) की आत्मा है—आपने यहीं लिखी थी। इस समय आपने श्री राजेन्द्रलाल मित्रकी सहायतासे बँगला-साहित्य-परिषद्की स्थापनाका प्रयास किया; पर कई कारणोंसे सफलता नहीं मिली। २३ मार्च, १८८३ को सावित्री-पुस्तकालयके पाँचवें वार्षिकोत्सवके अवसरपर आपने एक विचारपूर्ण निबन्ध पढ़ा, जिसमें उस समयकी सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक प्रवृत्तियोंकी कठोर आलोचना की। इसके बाद कुछ दिनोंके लिए आप श्री सत्येन्द्रनाथके साथ बम्बईके निकट कारपारमें समुद्र-तट-प्रवास करने चले गए। वहाँसे कलकत्ता लौटनेपर ९ दिसम्बर, १८८३ को, जब आपकी अवस्था २२ वर्षकी थी, जैसोरके श्री बेनीराय चौधुरीकी सुपुत्री श्रीमती मृणालिनी देवीके साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। इस वर्ष आपका गीति-नाट्य 'प्रकृतिर प्रतिशोध' प्रकाशित हुआ, जिसका अंगरेज़ीमें 'संन्यासी' नामसे अनुवाद हुआ है। 'छवि और गान' नामसे आपके रेखा-चित्र और गीत इस समय 'भारती'म प्रका-

शित हुए। २० मई, १८८४ को आपकी भाभी (श्री ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुरकी पत्नी) की मृत्यु हो गई, जिससे आपको बहुत सदमा पहुँचा। इनका आपपर अपार स्नेह था, और आप उन्हें बहुत मानते थे। इसी वर्ष आपका 'कड़ि ओ कोमल' नामक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ। इस समय आपने शेली, श्रीमती ब्राउनिंग, अर्नेस्ट मेयर्स, आब्रे द वेरे, विक्टर ह्यूगो आदि यूरोपीय कवियोंकी अनेक रचनाओंका अनुवाद भी किया। २६ अगस्त, १८८४ को आपने सावित्री-पुस्तकालयके वार्षिकोत्सवके अवसर-पर 'हाते कलमे'-शीर्षक एक निबन्ध पढ़ा, जिसमें उस समयके राजनीतिक आन्दोलनकी व्यर्थता और उसके उपकरणोंकी खरी आलो-चना की गई है। अक्टूबर, १८८४ में आप आदि-ब्रह्म-समाजके मन्त्री नियुक्त हुए। इसी समय आपका स्व० बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायसे हिन्दुत्वके आदर्शोंपर विवाद छिड़ गया। उन्होंने 'नवजीवन' और 'प्रचार' में इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट किए और रवीन्द्रनाथने 'भारती' में उनकी आलोचना की।

अप्रैल, १८८५ में श्रीमती सत्येन्द्रनाथने बालक-बालिकाओंके लिए 'बालक' नामका एक मासिक पत्र निकालना शुरू किया, जिसका सम्पादन-संचालन पूर्णतया आप ही के सुपुर्द किया गया। 'बालक'के लिए आपने 'राजर्षि' नामका एक उपन्यास लिखा, जो १८८७ में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। इसी समय आपने 'मुकुट' नामकी एक बड़ी कहानी भी लिखी, जो १९०८ में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। धनाभावके कारण 'बालक' अधिक दिन नहीं चल सका और कुछ समय बाद उसे 'भारती' में सम्मिलित कर दिया गया। इस वर्ष आपने राममोहन रायपर एक पुस्तिका लिखी और कई लेख, पत्र, हास्यरसात्मक रेखा-चित्र तथा निबन्ध आदिकी भी रचना की। श्रीषचन्द्र मजूमदारके सहयोगसे आपने 'वैष्णव-पदावली' का सम्पादन किया। इसी वर्ष उनके एक मित्रने उनका प्रथम कविता-संग्रह 'रवि छाया' प्रकाशित किया। इसी समय उनके विविध विषयोंपर लिखे गए आलोचनात्मक निबन्धोंका संग्रह 'आलोचना' नामसे और उनकी १३ से १६ वर्ष तककी कविताका संग्रह 'शैशव-संगीत' नामसे प्रकाशित हुए। यह संग्रह उन्होंने अपनी भाभी श्रीमती ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुरको समर्पित किया।

इसी समय आपके पिता बाँदरा (बम्बई) में अस्वस्थ थे; अतः आप उनकी सेवा-सुश्रूषाके लिए उनके पास जाकर रहने लगे। कुछ समय बाद आप अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुरके पास शोलापुर चले गए। यहीं २२ फरवरी, १८८६ को आपकी पहली सन्तान श्रीमती माधुरीलता (जिसे बचपनमें आप बेला भी कहते थे) का जन्म हुआ। इसी समय 'बंगवासी' (जो उन दिनों साप्ताहिक था) में ब्रह्म-समाजके आदर्शों एवं सिद्धान्तोंपर आक्षेप करते

'वाल्मीकि-प्रतिभा' में वाल्मीकिके रूपमें रवीन्द्रनाथ (आयु २० वर्ष)।

हुए कई लेख प्रकाशित हुए, जिनका जवाब आपने 'संजीवनी' नामके बँगला साप्ताहिकमें दिया। आपके कलकत्ता लौटनेके कुछ ही समय बाद (दिसंबर, १८८६) यहाँ अखिल भारतीय कांग्रेसका दूसरा अधिवेशन हुआ, जिसमें आपने 'आमरा मिलेछि मायेर डाके'-शीर्षक राष्ट्रीय कविता प्रारंभिक गानके रूपमें पढ़ी। जनताने इसे बहुत पसन्द किया।

खारवार (बम्बई) समुद्र-तट-प्रवासी रवीन्द्रनाथ (आयु २२वर्ष)

सन् १८८७ में सामाजिक विषयोंपर लिखे गए आपके पत्रोंका संग्रह 'चिठि-पत्र' नामसे और आलोचनात्मक प्रबन्ध 'समालोचना' नामसे प्रकाशित हुए। इससे कुछ ही मास पहले श्री आशुतोष चौधरीने 'कड़ि ओ कोमल' नामका आपका कविता-संग्रह प्रकाशित किया था। कुछ समय नासिकमें अपने भाई श्री सत्येन्द्रनाथके पास रहकर आप गाज़ीपुर चले गए। 'मानसी' नामसे छपे संग्रहकी बहुत-सी कविताएँ आपने वहीं लिखीं। फिर आप कलकत्ता लौट आए और अपने पिताके साथ रहने लगे। यहाँ आपने भारतीय विज्ञान-संघ (The Indian Association for the Cultivation of Science) में 'हिन्दू-विवाह' पर एक निबन्ध पढ़ा; जिसपर बड़ा वाद-विवाद चला। कई विद्वानों (विशेषतः महामहोपाध्याय श्री महेशचन्द्र न्यायरत्न) ने आपके विचारोंका समर्थन किया। यहाँसे कुछ दिनोंके लिए आप अपनी पत्नी, लड़की और चचेरे भाई बालेन्द्रनाथ ठाकुरके साथ अपनी ज़मींदारी शिलाईदह चले गए और वहाँसे फिर गाज़ीपुर। वहाँ आपने बहुत-सी कविताएँ और गीत लिखे। आपने अपनी बड़ी बहन श्रीमती स्वर्णकुमारी देवी द्वारा स्थापित 'सखी-समिति' नामक महिलाओंके एक क्लब द्वारा खेले जानेके लिए 'मायार खेला' नामक एक गीति-नाट्य लिखा। २७ नवंबर, १८८८ को आपके बड़े लड़के रथीन्द्रनाथका जन्म हुआ। इसी वर्ष आपने अपने 'राजा ओ रानी'—जो सन् १८८९ में छपा और जिसे आपने अपने सबसे बड़े भाई श्री द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरको समर्पित किया—नाटकमें राजा विक्रमका अभिनय किया। इसके बाद आप शाहज़ादपुर चले गए, जहाँ आपने 'विसर्जन' नामका एक दूसरा नाटक लिखा, जो आपने अपने भतीजे श्री सुरेन्द्रनाथ ठाकुरको समर्पित किया है। यह १८९० में प्रकाशित हुआ।

### सन् १८९० से १९०५ : २९ से ४४ वर्ष तक

अपने २९ वें वर्षके आरम्भमें आप शान्तिनिकेतन चले गए और वहाँ रहकर संस्कृत-काव्योंका पारायण करने लगे। कालिदासके 'मेघदूत'को पढ़कर आपको भी 'मेघदूत'-शीर्षक कविता लिखनेकी प्रेरणा हुई। आपकी यह कविता बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। यहीं ३१ जनवरी, १८९० को आपकी दूसरी कन्या श्रीमती रेणुकाका जन्म हुआ। २२ अगस्त, १८९० को आप अपने बड़े भाई

श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुर और मित्र श्री लोकेन पालितके साथ इंग्लैण्ड गए। वहाँसे इटली और फ्रांसकी यात्रा करते हुए आप ४ नवंबर, १८९० को भारत लौट आए। लौटनेपर आपको ज़मींदारीके कामकी देख भालकी ज़िम्मेदारी सौंपी गई, जिसके कारण आपको अपना स्थायी आवास शिलाईदहमें बनाना पड़ा। यहाँसे नावमें सवार होकर आप प्रायः ज़मींदारीके गाँवों—पतिसार, शिलाईदह, कुष्टिया, पबना, कुमारखालि और कटक (बलिया) आदि—को देखने जाया करते थे। आपने ज़मींदारीकी व्यवस्था इतनी दक्षता एवं दूरदर्शिताके साथ की कि सरकारी रिपोर्टों तकमें आपके कार्यकी प्रशंसा की गई। दिसंबर, १८९० में कलकत्तेमें हुए अखिल भारतीय कांग्रेसके छठे अधिवेशनमें आप शरीक हुए और प्रारंभिक गानके रूपमें वंदेमातरम् गाया। टाउन-हालमें कांग्रेसके उस अधिवेशनके अध्यक्ष श्री फ़ीरोज़शाह मेहताका जो सार्वजनिक स्वागत किया गया, उस आयोजनमें आपका मुख्य हाथ था।

सन् १८९१ में आपने अपने भतीजे श्री सुधीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ मिलकर 'साधना' नामक साहित्य-प्रधान मासिक पत्रिकाका प्रकाशन आरंभ किया। इसमें आप बराबर कविताएँ, कहानियाँ, राजनीतिक एवं साहित्यिक लेखक तथा आलोचनाएँ लिखा करते थे। कहते हैं कि लगभग आधेसे ज़्यादा पत्रका कलेवर आपको ही रँगना पड़ता था। इसी समय आपने 'यूरोप-यात्रीर डायारि' नामसे अपनी यूरोप-यात्राका विवरण धारावाही रूपसे प्रकाशित करना शुरू किया। श्री कमलकृष्ण भट्टाचार्यके सहयोगसे आपने बँगला साप्ताहिक 'हितवादी' का प्रकाशन आरंभ किया और उसमें कई कहानियाँ तथा निबंध लिखे। आपकी प्रसिद्ध कहानी 'पोस्टमास्टर' इन्हीं दिनों इसमें निकली थी। शान्तिनिकेतनके प्रार्थना-हालके उद्घाटन-उत्सवमें शरीक होने आप वहाँ चले गए और कुछ दिन वहीं रहे। यहीं १२ जनवरी, १८९२ को आपकी सबसे छोटी कन्या मीरा देवीका जन्म हुआ। अपना प्रसिद्ध गीति-नाट्य 'चित्रांगदा' आपने यहीं लिखा, जो १८९२ में प्रकाशित हुआ। यह आपने अपने भतीजे विख्यात् चित्रकार श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरको समर्पित किया है,

कविकी पत्नी श्रीमती मृणालिनी देवी।

जिन्होंने इसके चित्र बनाए हैं। यही नहीं, इसके अधिकांश गीतोंकी स्वर-लिपि तैयार करनेमें भी आपको श्री अवनीन्द्र-नाथ ठाकुरसे बहुमूल्य सहायता मिली है। घण्टों बैठकर वे इसराज बजाया करते और आप उसपर अपने गीतोंकी स्वर-लिपिको जाँचा करते।

इसके बाद फिर आप अपनी ज़मींदारीका काम देखने शिलाईदह चले गए। इसी समय उत्तरी बंगालके ग्रामोंका दौराकर आपने गाँवोंकी ग़रीब, विनीत एवं पारिवारिक प्रेमपरिपूर्ण रैयतके दैनिक जीवनकी जानकारी हासिल की। फिर स्टीमरसे कटकमें अपनी ज़मींदारीका काम देखने चले गए, जहाँसे 'साहित्य' ( बँगला मासिक ) में प्रकाशित श्री चन्द्रनाथ बसुके पथ्य-विषयक कई लेखोंका उत्तर 'साधना' में छपवाया। इसी समय आपने 'स्त्री मजूर', 'कर्मेर उमीदआर' तथा 'गोड़ाय गलद्' ( हास्य-रसका नाटक ) आदि लिखे। १८९३ में 'गानेर बइ' नामसे आपके ३५२ गीतोंका संग्रह प्रकाशित हुआ। १८९४ में 'सोनार तरी' ( कविता-संग्रह ) और 'विचित्र गल्प' ( कहानी-संग्रह ) ग्रन्थ प्रकाशित हुए।

'साधना' में आपने शिक्षा और लय-तत्व (Nihility) आदिपर कई विचारपूर्ण निबन्ध लिखे। हिन्दू प्रगतिगामियोंको लक्ष्य करके लिखी गई आपकी 'हिंग-तिंग-छाट'-शीर्षक व्यंग्यात्मक कविता और नाटोर-शिक्षा-कांफ्रेंसमें दिया गया भाषण 'शिक्षार हेर-फेर' इसी समय प्रकाशित हुए। इसमें आपने इस बातपर ज़ोर दिया कि शिक्षाका माध्यम बँगला ही होना चाहिए। इसी समय आपने संस्कृत, हिन्दी और बँगलाके तुलनात्मक शाब्दिक महत्वपर एक विचारपूर्ण निबन्ध लिखा। 'साधना' में आपकी प्रसिद्ध कहानी 'काबुलीवाला' इन्हीं दिनों निकली और उसीके बाद उसमें धारावाहिक रूपसे 'पंचतत्वेर डायारि' शीर्षकसे एक लेखमाला प्रकाशित होने लगी, जिसमें आपने जीवन, साहित्य और कलापर विवेचनात्मक दृष्टिसे विचार किया है। इस वर्ष आप कटक, पुरी, बलिया, भुवनेश्वर ( जहाँ आपने खण्डगिरि और उदयागिरिकी भी यात्रा की) आदिका पर्यटन किया और फिर शिलाईदह लौट आए। इन्हीं दिनों आपने 'बिदाय अभिशाप' लिखा और चित्रकलाका भी सामान्य अभ्यास किया।

इन्दिरा देवी और सुरेन्द्रनाथके साथ रवीन्द्रनाथ (आयु २५ वर्ष।)

अक्टूबर, १८९३ में कलकत्तेके चैतन्य-पुस्तकालयके वार्षिकोत्सवपर आपने 'इंगारेज ओ भारतवासी'-शीर्षक अपना एक विचारपूर्ण राजनीतिक निबन्ध पढ़ा। इसके तीन मास बाद ही आपने 'साधना' में 'इंगारेजेर आतंक'-शीर्षक एक निबन्ध लिखा, जिसमें अन्यान्य बातोंके साथ मुस्लिम-एकताके महत्वके प्रति कांग्रेसको जागरूक रहनेकी चेतावनी दी थी। लोकमान्य तिलक द्वारा चलाए गए गो-रक्षा-आन्दोलनका आपने बंगालमें ख़ूब प्रचार किया। इसी समय आपने 'सुविचारेर अधिकार'-शीषक अपना

ज़ोरदार निबन्ध और 'चित्रा' कविता-संग्रहकी अधिकांश कविताएँ (जिनमें से 'उर्वशी' विशेष प्रसिद्ध है) लिखीं।

इस समय आपके जीवनमें कल्पना और स्वप्नके संसारसे फिर यथार्थताके संसारमें लौटनेकी प्रबल आकांक्षा जाग्रत हुई, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी 'एबार फिराओ मोरे'-शीर्षक कवितामें बड़े सुन्दर ढंगसे हुई है। 'साधना' में आपने श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके 'राजसिंह' उपन्यासकी विस्तृत आलोचना की और सामाजिक, साहित्यिक तथा राजनीतिक विषयोंपर अनेक गवेषणापूर्ण लेख लिखे। आपने बंगालके लोकगीतों और लोरियोंपर भी प्रकाश डाला तथा भारतीयोंके हीन-भावपर 'साधना' में बड़ा विक्षोभ प्रकट किया। आपकी साहित्यिक साधना एवं सेवाओंको देखकर बंगीय साहित्य-परिषदने आपको अपना संस्थापक-उपसभापति निर्वाचित किया। इन दिनों भारतीयोंके प्रति बढ़ते हुए अंगरेज़ोंके दुर्व्यवहार पर आपने 'मेघ ओ रुद्र' (कहानी) तथा 'अपमानेर प्रतिकार' (निबन्ध) में बड़ा विक्षोभ प्रकट किया है।

नवम्बर, १८९४ में आपके सबसे छोटे लड़के समीन्द्रनाथ ठाकुरका जन्म हुआ। दूसरे वर्ष कई कारणोंसे 'साधना' का प्रकाशन बन्द हो गया, और आप अपने भतीजों (श्री बालेन्द्रनाथ और श्री सुन्द्रनाथ ठाकुर) के साथ कलकत्तेमें रहकर उनके व्यवसाय (कलकत्तेमें उन दिनों उनका एक स्वदेशी स्टोर था और कुष्टियामें पाटकी आढ़त) में हाथ बँटाने लगे। इसी वर्ष आपकी 'क्षुधित पाषाण' के नामसे संग्रहीत कहानियाँ और 'छेलेभुलानो छड़ा' के नामसे संग्रहीत लोरियाँ 'साहित्य-परिषद-पत्रिका' में प्रकाशित हुईं। 'आबदारेर आइन', 'जीवनदेवता', 'चैतालि', 'मालिनी' (गीति-नाट्य) आदि रचनाएँ भी इसी समय लिखी गई हैं। इस वर्ष कलकत्तेमें हुई कांग्रेसके अवसरपर आपने अपना प्रसिद्ध गीत 'अयि भुवन मन-मोहिनी' गाया। 'कल्पना' की कविताएँ, 'वैकुण्ठेर कथा', 'ईश्वरचन्द्र विद्यासागर' (निबन्ध), 'गांधारीर आवेदन', 'सती', 'नरकवास' और 'लक्ष्मीर परीक्षा' आदि रचनाएँ आपने इन्हीं दिनों प्रकाशित करवाईं।

अस्वस्थ होनेके कारण आप १८९७ में स्वास्थ्य-सुधारके लिए शिमला चले गए थे। वहाँसे लौटनेपर १८९८ में आपको 'भारती' का सम्पादन-भार सौंपा गया। लोकमान्य तिलककी गिरफ़्तारी और उनके साथ हुए दुर्व्यवहारके विरुद्ध बंगालमें जो प्रतिक्रिया हुई, उसमें आपके लेखोंका काफ़ी प्रभाव काम करता था। तिलककी सफ़ाईके लिए जो सहायता-समिति बनी थी, उसके लिए अर्थ-संग्रह करनेमें आपने सक्रिय सहयोग दिया था। नए 'राजद्रोह-बिल' की आलोचना करते हुए आपने कलकत्तेकी एक सार्वजनिक सभामें 'कण्ठरोध'-शीर्षक एक निबन्ध पढ़ा था। इन दिनों भारतके अनेक भागोंमें प्लेग फैल
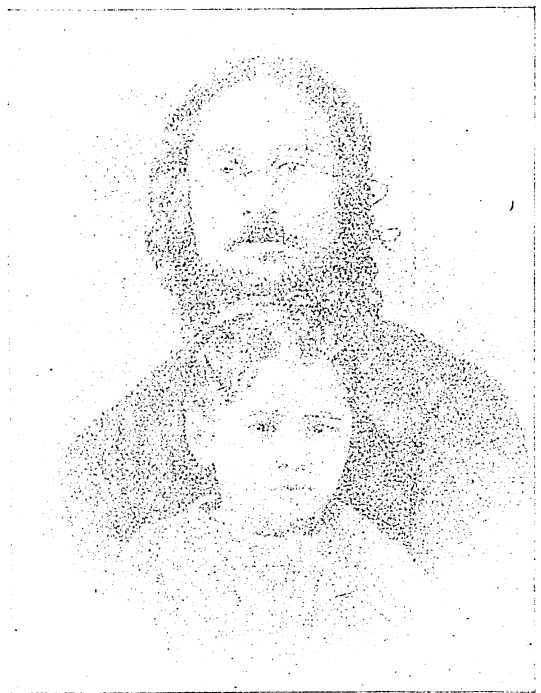
रवीन्द्रनाथ (आयु २८ वर्ष) अपनी पहली पुत्री श्रीमती माधुरीलता देवी (बेला) के साथ।

रहा था, जिसके पीड़ितोंकी सहायताके कार्यमें आपने दिल खोलकर हाथ बँटाया। सार्वजनिक जीवनके विशेष सम्पर्कमें रहनेके कारण तथा वंग-भंगके विरुद्ध होनेवाले आन्दोलनके वातावरणका आपपर इतना असर पड़ा कि आपने अधिकारियोंकी दमन, उत्तरदायित्वशून्य और शोषण-प्रधान नीतिकी कई निबन्धों और भाषणोंमें कटु आलोचना की। 'कोट ओ चपकन', 'मुखोपाध्याय ओ वंद्योपाध्याय', 'राजटीका' आदि उनकी रचनाएँ इसी कालकी हैं। सन् १८९९ में 'कणिका' नामसे उनके गद्य-काव्योंका एक संग्रह प्रकाशित हुआ। सन् १९०० में

'कथा' नामसे आपने राजपूतों, मराठों और सिक्खोंकी वीर-गाथाओंका एक संग्रह प्रकाशित करवाया। दूसरे वर्ष आपकी 'काहिनी', 'कल्पना', 'क्षणिका', 'चिरकुमार-सभा' आदि रचनाएँ प्रकाशित हुईं। कहते हैं कि 'चिरकुमार-सभा' आपने दो दिनोंमें रात-रात भर जगकर और केवल दूध-फलादिपर रहकर शिलाईदहमें लिखी और उसकी पाण्डुलिपि लेकर स्वयं कलकत्ता आए। उसे प्रकाशनार्थ देकर जब आप अपने जोड़ासाँकोवाले मकानकी सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, तो दुर्बलताके कारण बेहोश होकर गिर पड़े।
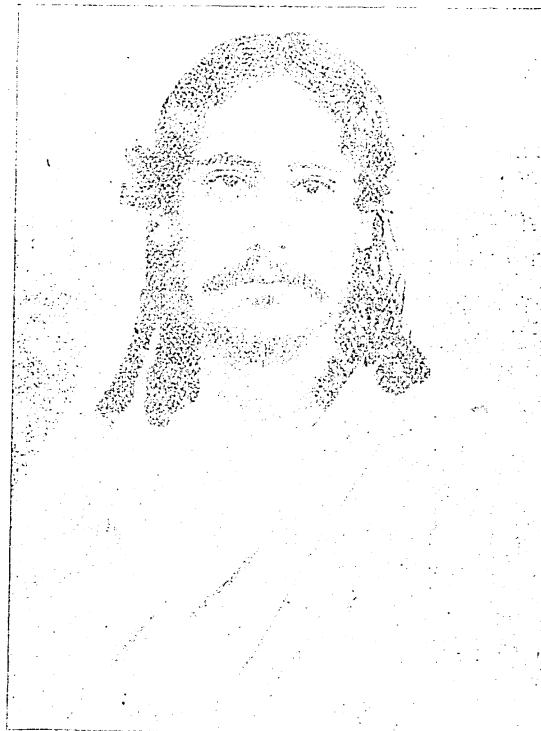
रवीन्द्रनाथ (३० वर्षकी आयुमें)।

सन् १९०१ में आपने स्व० बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके 'बंगदर्शन' पत्रको पुनः प्रकाशित किया और उसका सम्पादन-भार ग्रहण किया। इन दिनों दक्षिण-अफ्रीका—ख़ासकर बोअर-युद्ध—में अंगरेज़ोंने जिस साम्राज्यवादी संकीर्णताका परिचय दिया था, उसके विरुद्ध आपने कई ज़ोरदार लेख लिखे। 'नैवेद्य'की कविताएँ आपने इसी समय लिखीं। इसकी कुछ कविताएँ आपने अपने पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरको पढ़कर सुनाईं, जिनसे प्रभावित होकर उन्होंने न केवल आपको आशीर्वाद ही दिया, बल्कि उनके प्रकाशनके निमित्त एक 'थैली' भी प्रदान की। इन्हीं दिनों आप श्री ब्रह्मबान्धव उपाध्यायके सम्पर्कमें आए और संस्कृतियोंके विकास एवं समन्वयपर कई विचारोत्तेजक निबन्ध 'बंगदर्शन' में लिखे। 'चोखेर बाली' (जिसका हिन्दी-अनुवाद 'आँखकी किरकिरी' नामसे बादमें प्रकाशित हुआ) नामक उपन्यास इन्हीं दिनों 'बंगदर्शन'में धारावाहिक रूपसे छपना आरम्भ हुआ।

इस वर्षकी सबसे उल्लेखनीय घटना, जिसने आपके जीवनके प्रवाहको एकदम बदल दिया, यह है कि आपने अपनी ज़मींदारीके कामसे एकदम छुट्टी ले ली और सपरिवार शान्तिनिकेतनमें जाकर रहने लगे। यहीं अपने पिताकी स्वीकृतिसे आपने २२ दिसम्बर, १९०१ को 'बोलपुर-ब्रह्मचर्याश्रम' नामक प्राचीन पद्धतिके विद्यालयकी स्थापना की। यहाँ आप स्वयं विद्यार्थियोंके साथ रहते, उन्हींके साथ खाते-पीते, खेलते-कूदते, उन्हें पढ़ाते और कहानियाँ सुनाते। परिवारसे आपको अपनी गुज़र-बसरके लिए जो कुछ मिलता, वह सब आप इसीमें लगा देते; पर इसका धनाभाव दूर न हुआ। इसपर आपको अपना पुस्तकालय, पत्नीके जेवर और पुरीका अपना सुन्दर भवन आदि बेच देने पड़े। इन्हीं दिनों श्री ब्रह्मबान्धव उपाध्यायने आश्रमके काममें आपका हाथ बँटानेका निश्चय किया, जिससे आपका बोझ कुछ हल्का हुआ और आप 'बंग-दर्शन'के सम्पादनमें विशेष समय देने लगे। लार्ड कर्ज़न द्वारा कलकत्ता-विश्वविद्यालयके उपाधि-वितरणोत्सवपर दिए गए भाषणके दौरानमें पूर्वी लोगोंपर किए गए आक्षेपों एवं बोअरोंके विरुद्ध ब्रिटेन द्वारा किए जानेवाले मिथ्या प्रोपेगेण्डाका आपने 'बंगदर्शन'में मुँहतोड़ जवाब दिया।

नवम्बर, १९०२ में आपकी पत्नीकी बीमारीने आपको विशेष परेशान रखा। बहुत प्रयत्न करनेपर भी उनकी प्राण-रक्षा न हो सकी और २३ नवम्बर (७ अगहन, १३०९ बं०) को उनका वैकुण्ठवास हो गया। बाल-बच्चोंके साथ आप शान्तिनिकेतन लौट गए। इन दिनों पत्नी-वियोगसे विह्वल अवस्थामें आपने जो मार्मिक कविताएँ लिखी हैं, वे बादमें 'स्मरण' नामसे प्रकाशित हुईं। कुछ ही दिनों बाद आपकी छोटी कन्या रेणुका बहुत बीमार हुई, जिसे इलाजके लिए पहले आप कलकत्ता लाए, फिर अलमोड़ा ले गए और वहाँसे फिर कलकत्ता लाए। 'शिशु' नामक कविता आपने इसी समय लिखी। मई,

१९०३ में रेणुकाका देहान्त हो गया। 'नौका डुबि', 'धर्म-प्रचार' तथा 'धर्मबोधेर दृष्टान्त' आदि रचनाएँ आपने इसी वर्ष लिखीं।

फरवरी, १९०४ में कई कारणोंसे मजबूर होकर आपको आश्रम शान्तिनिकेतनसे हटाकर शिलाईदह ले जाना पड़ा। इसी वर्ष प्रो० मोहितचन्द्र सेन अध्यापक होकर आपके आश्रममें आ गए, जिनके प्रयत्नसे 'काव्यग्रन्थ' नामसे आपकी कविताएँ ९ खण्डोंमें प्रकाशित हुईं। इन दिनों आपके कई राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक निबन्ध प्रकाशित हुए, जिनमें 'स्वदेशी समाज' विशेष उल्लेखनीय है। ग़रीबोंकी दरिद्रता और सम्पन्न लोगोंकी फ़ज़ूल-ख़र्चीसे प्रभावित होकर आपने ग्राम-उद्योगोंके पुनर्जीवनके लिए आवाज़ उठाई। कलकत्तेमें मनाए जानेवाले 'शिवाजी-स्मृति-उत्सव' में आपने प्रमुख भाग लिया और 'शिवाजी-उत्सव' नामक कविता पढ़ी। इसी समय आपने 'इंगराजि-सोपान' तथा कई अन्य विषयोंकी पाठ्य-पुस्तकें लिखीं। आपने 'हितवादी'के संचालकोंको २०००) रु० लेकर अपनी समस्त कहानियों, कविताओं, ६ नाटकों, ३ उपन्यासों और कई साहित्यिक निबन्धोंके प्रकाशनका स्वत्वाधिकार दे दिया।

१९ जनवरी, १९०५ (६ माघ, १३११ बं०) को आपके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरका वैकुण्ठवास हो गया। इसी वर्ष आप कलकत्तेसे प्रकाशित 'भाण्डार' नामके नवीन बँगला मासिकके सम्पादक नियुक्त हुए। त्रिपुरा-साहित्य-सम्मिलनीमें आपने इस वर्ष 'देशी राज्य'-शीर्षक एक निबन्ध पढ़ा और ब्रिटेनकी शोषण-नीतिके विरुद्ध 'राजा-प्रजा'-शीर्षक एक ज़ोरदार निबन्ध 'भाण्डार'में प्रकाशित कराया। ७ अगस्त, १९०५ को कर्ज़न द्वारा की गई बंग-भंगकी घोषणाके विरुद्ध जो ब्रिटिश मालके बहिष्कारका आन्दोलन शुरू हुआ, उसमें आपने क्रियात्मक रूपसे भाग लिया। कलकत्ते और अपनी ज़मींदारीके कई स्थानोंमें आपने कताई-बुनाईके केन्द्र खुलवाए और 'अवस्था ओ व्यवसाय' नामसे एक खोजपूर्ण निबन्ध लिखा, जो बँगला और अंगरेज़ीके कई पत्रोंमें प्रकाशित हुआ।
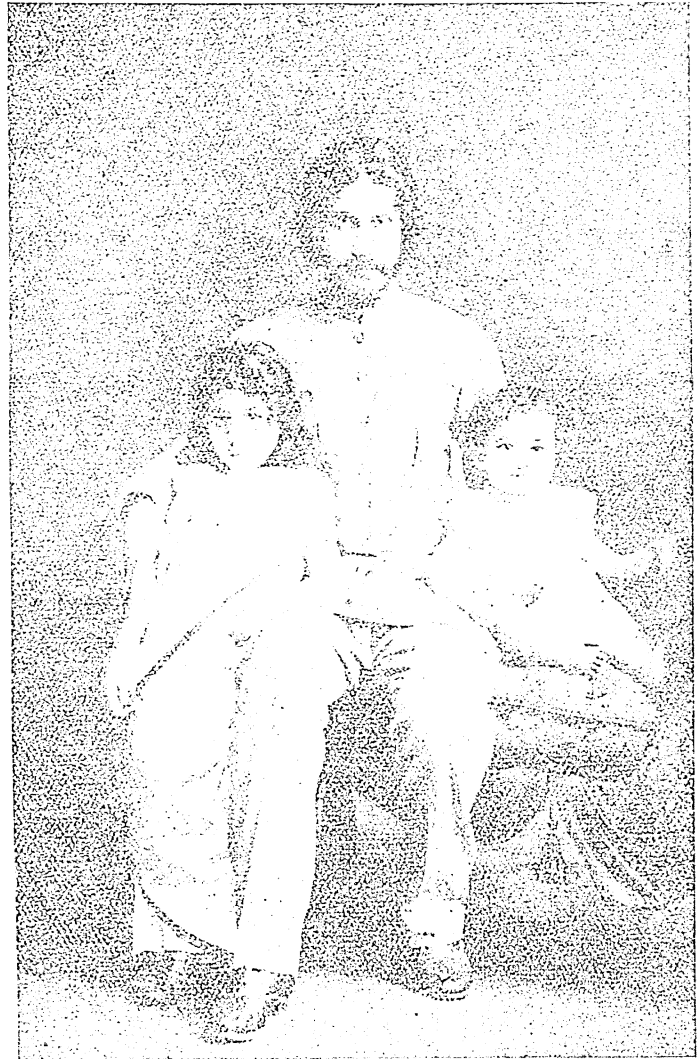
अपनी पुत्री बेला और पुत्र श्री रथीन्द्रनाथके साथ रवीन्द्रनाथ (आयु ३०वर्ष)।

१६ अक्टूबर, १९०५ को बंग-भंगके विरुद्ध बंगालकी

एकता प्रकट करनेके लिए प्रान्त-भरमें 'रक्षा-बन्धन'का उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया गया। इस अवसरपर आपने 'राखी' नामकी सुन्दर कविता लिखी, जो एक वृहत् जुलूस द्वारा गाई गई। मद्रास कांग्रेसके प्रधान श्री आनन्दमोहन वसुकी अध्यक्षतामें शामको एक विराट सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें आपने अध्यक्षके भाषणका अनुवाद किया और सभा-समाप्तिपर जो जुलूस निकला, उसमें आप 'बिधिर बन्धन काटबे तुमि एमनी शक्तिमान !' गाते हुए सबके आगे चल रहे थे। इन दिनों राजनीतिक आन्दोलनोंमें छात्रों द्वारा अधिक भाग लिए जानेसे बंगाल-सरकार बौखला उठी और उसने एक सर्कूलर जारी किया कि कोई भी छात्र राजनीतिक सभाओंमें भाग न ले और न 'वन्देमातरम्' ही गाय। इसके विरुद्ध होनेवाली अनेक सार्वजनिक सभाओंमें आपने ज़ोरदार भाषण दिए। इसी समय आपने राष्ट्रीय शिक्षापर भी ज़ोर दिया। दिसम्बर १९०५ में जब स्व० जार्ज पंचम वेल्सके राजकुमारकी हैसियतसे भारत आए (और कांग्रेसने उनके स्वागतका प्रस्ताव पास किया), तब आपने 'राजभक्ति'-शीर्षक एक आलोचनात्मक निबन्ध लिखा था।

'साधना'-सम्पादक श्री रवीन्द्रनाथ (आयु ५७ वर्ष)।

### सन् १९०६-१९१८ : ४५ से ५७ वर्ष तक

मार्च, १९०६ के 'भाण्डार' में आपने पूर्वी बंगालके नए प्रान्तके लेफ़्टिनेंट-गवर्नरकी दमन-नीति और पुलिसके अत्याचारोंकी कड़े शब्दोंमें निन्दा की। इसी वर्ष आपने अपने सबसे बड़े लड़के श्री रथीन्द्रनाथको कृषि - विद्या सीखनेके लिए अमरीका भेजा। इस वर्ष बंगीय साहित्य-सम्मिलनी और प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलनके आप अध्यक्ष बनाए गए। इन दिनों बंगालके नरम और गरम राजनीतिक दलोंमें चलनेवाले वाद-विवादमें भी आपने भाग लिया और श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीको निर्विवाद रूपसे बंगालका 'देशनायक' स्वीकार किए जानेकी सर्वसाधारणसे अपील की। कलकत्तेमें संस्थापित जातीय

शिक्षा-समितिके अनुरोधपर आपने 'शिक्षा-समस्या' और 'ताते किम्'-शीर्षक दो निबन्धोंमें राष्ट्रीय शिक्षाकी रूप-रेखा प्रस्तुत की और इस विषयपर कई जगह भाषण भी दिए।

राष्ट्रीय आन्दोलनकी प्रवृत्ति और बढ़ती हुई दल-बन्दीसे ऊबकर आपने फिर शान्तिनिकेतनके शान्त वातावरणकी शरण ली और वहींसे 'प्रवासी' में (जिसका सम्पादन उन दिनों श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय इलाहाबादसे करते थे) 'व्याधि ओ ताहार प्रतिकार'-शीर्षक निबन्ध-माला लिखी। इसमें आपने अपने मतानुसार राजनीतिक मनोवृत्तिके परिवर्त्तन और आन्तरिक शुद्धिपर ज़ोर दिया। इन्हीं दिनों 'वन्दे-मातरम्' नामक राष्ट्रीय दैनिक पत्रमें राजद्रोहात्मक लेख लिखनेके कारण श्री अरविन्द घोषको सज़ा हुई, जिसपर आपने 'अरविन्दो, रवीन्द्रेर लाहो नमस्कार'-शीर्षक अपनी प्रसिद्ध कविता लिखी।

नवम्बर १९०७ से आपने 'प्रवासी'में धारावाहिक रूपसे अपना 'गोरा' उपन्यास छपवाना आरम्भ किया। दिसम्बर, १९०७ में सूरत-कांग्रेसमें हुए झगड़ेके बाद जनवरी, १९०८ में पबनामें जो प्रान्तीय राजनीतिक कांफ्रेंस हुई, उसके आप अध्यक्ष बनाए गए। इसमें दिए गए अपने भाषणमें आपने हिन्दू-मुस्लिम-एकता, ग्राम-सुधार तथा ग्रामीणोंकी शिक्षा और सफ़ाई आदिपर ज़ोर डाला। २५ मई, १९०८ को आपने चैतन्य-पुस्तकालयके वार्षिकोत्सवके अध्यक्ष-पदसे जो भाषण दिया, उसमें बंगालकी सर्वप्रथम बम-दुर्घटना और मानिकतल्लामें पाई गई बम-फैक्टरीसे होनेवाली प्रतिक्रियापर विद्वत्तापूर्वक प्रकाश डाला और जनतासे अपील की कि वह सरकारी दमन-नीतिसे अधीर एवं उत्तेजित न हो। 'सदुपाय' और 'पूर्व ओ
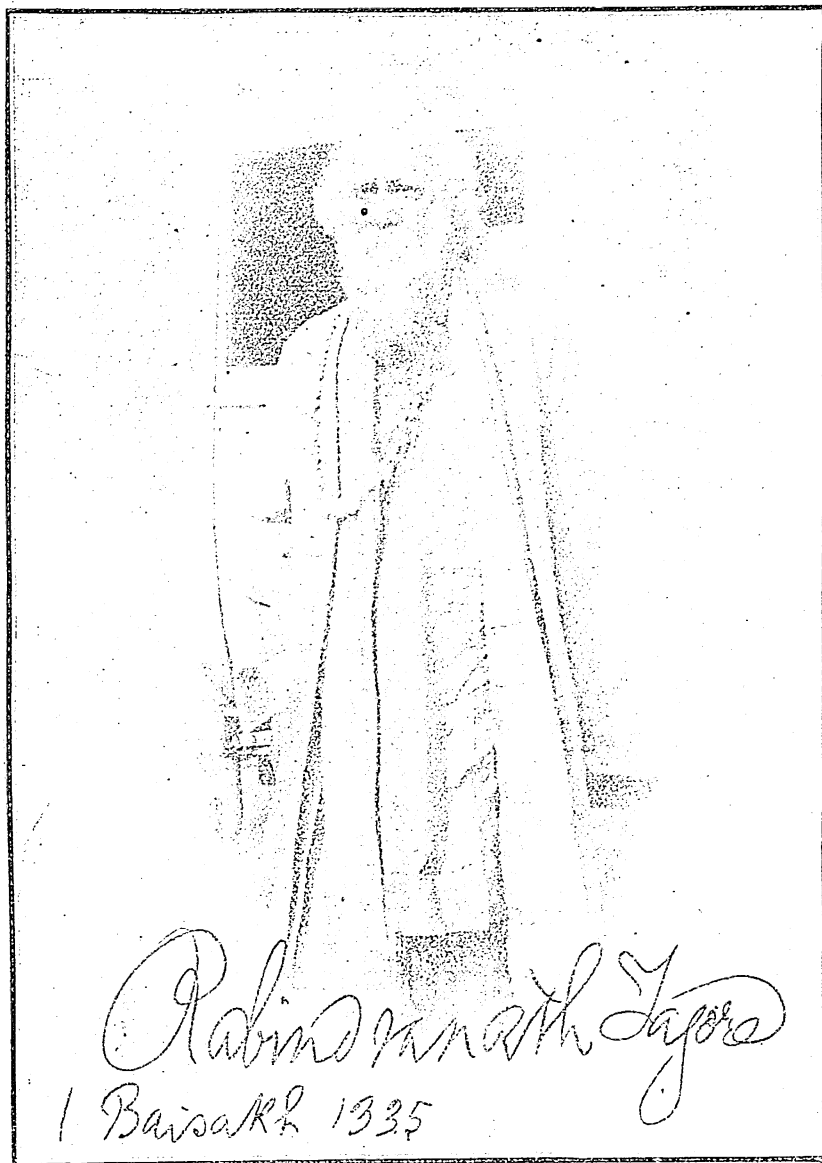
श्री रवीन्द्रनाथ—६७ वीं वर्षगाँठके अवसरपर लिया गया चित्र।

पश्चिम'-शीर्षक निबन्धोंमें आपने क्रमशः हिन्दू-मुस्लिम-एकता और भारतीय संस्कृतिकी महत्तापर अच्छा प्रकाश डाला है।

सन् १९०८ में आपका प्रसिद्ध नाटक 'शारदोत्सव' प्रकाशित हुआ। शान्तिनिकेतनमें यह खेला भी गया, जिसमें आपने संन्यासीका अभिनय किया। 'बंगभाषार लेखक' ( निबन्ध ), 'प्रायश्चित्त' ( नाटक ), 'गीतांजलि' ( गद्य-गीत ), 'तपोवन' ( निबन्ध ), विश्वबोध' (निबन्ध), 'राजा' ( नाटक ) आदि आपकी रचनाओं और कुछ कहानियों तथा कविताओंका अंगरेज़ी-अनुवाद इन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ ( देखिए, 'माडर्न रिव्यू' फरवरी, १९१० और मई-सितम्बर, १९११ )। जनवरी, १९१० में आपने अपने पुत्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरका विवाह प्रतिमा देवी नामकी एक बाल-विधवासे किया और अपना 'गोरा' उपन्यास उन्हींको समर्पित किया।

७ मई, १९११ को शान्तिनिकेतनमें आपकी ५० वीं वर्षगाँठ बड़े समारोहके साथ मनाई गई और 'राजा' नामके आपके नाटकका अभिनय भी हुआ। इसमें भी आपने ठाकुरदाका अभिनय बड़े कौशलके साथ किया। इसके बाद आप फिर शिलाईदह जाकर रहने लगे और वहीं 'जीवन-स्मृति' ( अपने संस्मरण ) तथा 'अचलायतन' ( नाटक ) लिखे। बादमें आप कलकत्ता चले आए और 'तत्वबोधिनी पत्रिका' ( जिसके आप सम्पादक थे), 'प्रवासी' तथा 'भारती' आदिमें बराबर लिखते रहे। इन्हीं दिनों आपने 'धर्मेर अर्थ'-शीर्षक एक विचारपूर्ण निबन्ध और कांग्रेसके २६ वें अधिवेशनपर गाया गया 'जनगण-मन-अधिनायक जय हे भारत भाग्य-विधाता'-शीर्षक राष्ट्रीय गीत लिखा।

२८ जनवरी, १९१२ को बंगीय साहित्य-परिषद्की ओरसे कलकत्तेके टाउन-हालमें आपको ५० वर्ष पूरे करनेके उपलक्षमें एक मानपत्र भेंट किया गया। आपने बँगला-साहित्यमें शोध-कार्य किए जानेके लिए एक कोषकी स्थापना की। जात-पाँतके विरुद्ध आपने साधारण ब्रह्म-समाजमें 'आत्म-परिचय'-शीर्षक एक निबन्ध पढ़ा। दूसरा उल्लेखनीय निबन्ध आपने ओवर्टन-हालमें पढ़ा 'भारतवर्षेर इतिहासेर धारा', जिसमें बड़ी योग्यतासे बतलाया गया कि भारतका मिशन विविध जातियों एवं सम्प्रदायोंको एकताके सूत्रमें बाँधना है। इन दिनों एक मज़ेदार बात यह हुई कि पूर्वी बंगाल तथा आसामकी सरकारने आपके राजनीतिक कार्योंमें भाग लेनेसे बिगड़कर एक सर्कूलर निकाला, जिसमें सरकारी कर्मचारियोंके बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षाके लिए शान्ति-निकेतनको अनुपयुक्त बतलाया गया। लगभग इसी समय प्रसिद्ध अमरीकन वकील श्री माइरन एच० फेल्पसने शान्ति-निकेतनकी शिक्षा-पद्धतिका निरीक्षणकर उसे मानव-मूल्योंकी परिवर्तित भावनाओंके सर्वथा अनुकूल बतलाया। इससे आपकी और शान्तिनिकेतनकी ख्याति एवं लोक-प्रियता विशेष बढ़ गई।

### लन्दन व अमरीका-यात्रा : नोबेल-पुरस्कार

पर कविको इससे सन्तोष नहीं हुआ। अपने रक्तसे सींचे हुए शान्तिनिकेतन-रूपी नवीन शिक्षणके पौधेपर हुए आघातने कविको विचलित कर दिया और पाश्चात्य संसारको अपनी शिक्षा-पद्धतिकी जानकारी कराने और डेनमार्ककी सहयोगात्मक शिक्षण-पद्धतिका अध्ययन करनेके लिए आपने यूरोप-यात्रा करनेका निश्चय किया।

१६ जून, १९१२ को आप लन्दन पहुँचे। सबसे पहले आप अपने पुराने मित्र प्रसिद्ध अंगरेज चित्रकार श्री विलियम राटेन्स्टाइनसे मिले, जिनसे आप भारतमें श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके घरपर मिल चुके थे। राटेन्स्टा-इन आपके कुछ गद्य-पद्योंके अंगरेज़ी अनुवादसे बेहद प्रभावित हुए और उन्हें यीट्स, स्टापफर्ड तथा ब्रेडले आदि प्रसिद्ध अंगरेज़ी साहित्यकारोंके पास अवलोकनार्थ भेजा। उन लोगोंने आपकी रचनाएँ ख़ूब पसन्द कीं। राटेन्स्टाइनने एक दिन अपने घरपर कुछ प्रमुख अंगरेज़ कवियों, संपादकों और आलोचकोंको आमंत्रित किया, जिनके सामने प्रसिद्ध अंगरेज़ी कवि विलियम बटलर यीट्सने रवीन्द्रनाथकी कुछ कविताओंका अनुवाद पढ़कर सुनाया, जिनको श्रोताओंने बहुत पसन्द किया। सी० एफ० ऐण्ड्रूज, हेनरी नेविन्सन, ईवलिन अंडरहिल, मे सिंक्लेयर, चार्ल्स ट्रेवलिन, एलाइस मेनैल आदि लोगोंसे यहीं आपका साक्षात्कार हुआ। फिर तो अंगरेज़ी-साहित्य-समाजमें आपकी रचनाओंका इतना अधिक प्रचार हुआ कि हर दूसरे-तीसरे दिन आपकी किन्हीं कविताओंका पाठ या किसी नाटकका अभिनय अवश्य होता।

२७ अक्टूबर, १९१२ को आप न्यूयार्क पहुँचे। यहाँ आपने कई गिरजों और विशिष्ट सभाओंमें अध्यात्मवाद, भारतीयों एवं भारतीय समस्याओं तथा अपने साहित्यपर
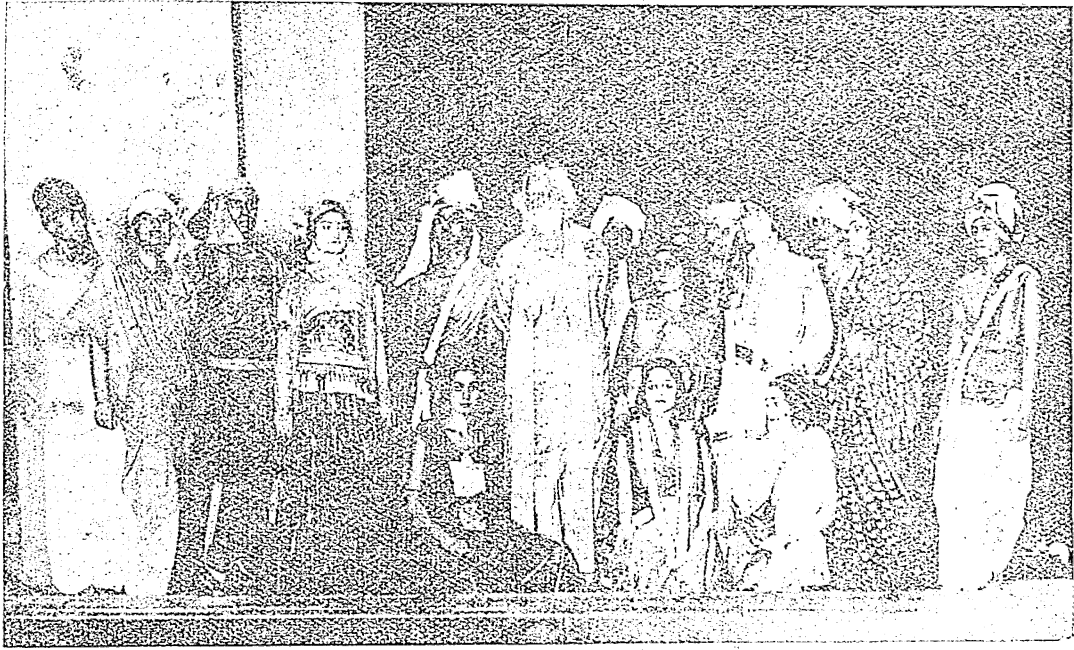
लंकामें अभिनीत 'शापमोचन' में कवि और शान्तिनिकेतनके अन्य कलाकार ( १२ मई, १९३४ )।

भाषण दिए और निबन्ध पढ़े। अरबना (इलिनोयस) में आप जब तक रहे, साहित्यिक उत्सव-से होते रहे। इसके बाद आप चिकागो गए, जहाँ आपकी जर्मन दार्शनिक रुडोल्फ यूकेन तथा अन्य कई लोगोंसे भेंट हुई। इन्हीं दिनों आपने अपने कुछ चुने हुए गीतोंके अंगरेज़ी अनुवादको 'गीतांजलि' नामसे प्रकाशित करवाया। बोस्टन, न्यूयार्क तथा हारवर्ड-विश्वविद्यालयमें आपने भारतीय संस्कृति, जाति-विज्ञान, प्राचीन दर्शन आदि अनेक विषयोंपर भाषण दिए। मैकमिलन कम्पनी द्वारा इन्हीं दिनों आपकी 'क्रेसेन्टमून', 'गार्डनर' और 'चित्रा' रचनाएँ अंगरेज़ीमें प्रकाशित हुईं।

जून, १९१३ में आप अमरीकाका दौरा करके लन्दन लौट आए। कैक्स्टन-हालमें आपने भारतीय दर्शन, धर्म तथा संस्कृतिपर कई भाषण दिए। ६ अक्टूबरको आप कलकत्ता लौट आए और इसके कुछ ही दिनों बाद (१३ नवंबर, १९१३ को) 'गीतांजलि' पर आपको नोबेल-पुरस्कार मिलनेका समाचार भारत पहुँचा! इसने आपकी कीर्तिको चार चाँद लगा दिए और चारों ओरसे आपको बधाइयाँ दी जाने लगीं। २६ दिसंबरको आपको कलकत्ता-विश्वविद्यालयने 'डाक्टर आफ़् लिटरेचर' की उपाधिसे सम्मानित किया।

शान्तिनिकेतनसे लगभग ३ मील दूर सुरूल नामक गाँवमें सितंबर १९१२ में आपने 'नीलकुठि' और बहुत-सी ज़मीन ख़रीदी थी। अब उसमें वैज्ञानिक पद्धतिसे शोध-कार्य करनेके लिए एक प्रयोगशाला स्थापित हो चुकी थी। प्रथम आषाढ़, १३२१ बंगाब्द (अप्रैल, १९१४) को उसका गृह-प्रवेश-उत्सव मनाया गया। इस अवसरपर श्री ऐण्ड्रूज़ और डब्लू० डब्लू० पियर्सन भी उपस्थित थे, जो कविके शब्दोंमें 'दक्षिण-अफ्रीकामें हमारी लड़ाई लड़कर' शान्तिनिकेतन लौटे थे।

८ मई, १९१४ से प्रसिद्ध साहित्यिक श्री प्रमथ चौधुरीने 'सबुजपत्र' नामक एक बँगला मासिकका प्रकाशन आरंभ किया, जिसमें आप नियमित रूपसे कविताएँ, कहानियाँ व निबन्धादि लिखने लगे। इन दिनों आपका स्वास्थ्य विशेष अच्छा नहीं था, जिसे सुधारनेके लिए आप रामगढ़ (अल्मोड़ा) चले गए। वहाँसे शान्तिनिकेतन लौटनेपर आपकी बस्तानी नामके एक अरबी कविसे भेंट हुई, जिसने आपकी कई कविताओंका अंगरेज़ीसे अरबीमें अनुवाद किया था। इन दिनों आपकी रचनाओंका यूरोपकी अन्य भाषाओंमें भी अनुवाद हुआ। इस समय

आपके लिखे हुए 'स्त्रीर पत्र' और 'मृणालेर पत्र' की साहित्यिक क्षेत्रमें बड़ी चर्चा रही। इनमें युगोंसे दबी नारीके सिर उठानेसे दकियानूसी लोगोंमें जो व्यर्थ आशंकाएँ और भय उत्पन्न हो गया था, उसको आपने बड़ी ख़ूबीसे व्यक्त किया था। इन चीज़ोंकी 'नारायण' आदि पत्रोंमें बड़ी कड़ी आलोचनाएँ की गईं, जिनके उत्तरमें आपने 'सबुज पत्र'में 'वास्तव' और 'लोकहित' शीर्षक दो निबन्ध लिखे।

NOBEL PRIZE FOR INDIAN POET.

STOCKHOLM, Nov. 13.—The Nobel prize for literature for 1913 has been awarded to the Indian poet Rabindranath Tagore.—Reuter.

Mr. Tagore who is fifty-two years old, is a Bengal poet, beloved and almost worshipped in his own country. He is one of those rare authors
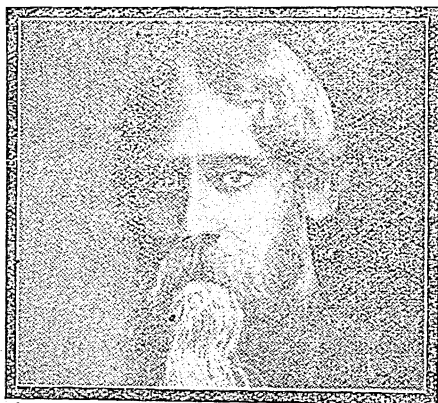
RABINDRANATH TAGORE.

who have produced fine literature in two languages. After a few delicate lyrics in English periodicals he gave us "Gitanjali," or "Song Offerings," and later "The Garden," both volumes being translations into rhythmic English prose of his own poems in Bengali.

कवीन्द्र रवीन्द्रको मिले नोबेल-पुरस्कारका लंदनके 'टाइम्स'में छपा संवाद (१४ नवम्बर, १९१३)।

यूरोपमें महायुद्ध छिड़ जानेपर आपने ५ अगस्त, १९१४ को शान्तिनिकेतनमें एक सभाकर 'मा मा हिम्सी' शीर्षक एक निबन्ध पढ़ा, जिसमें मानवकी मौलिक एकता तथा भ्रातृ-भावपर बड़े सुन्दर ढंगसे प्रकाश डाला गया है। इसके बाद आप सुरूलमें जाकर रहने लगे, जहाँ ४६ दिनोंमें आपने 'गीतालि' की १०८ कविताएँ लिखीं। ये कविताएँ आपने अपने पौत्र श्री दिनेन्द्रनाथ ठाकुरको कण्ठस्थ करा दीं, जिसे आप अपनी 'गीति-रचनाओंका कोष' कहते थे। 'भाई फोंटा', 'शेषेर रात्रि' और 'बलाका'की प्रसिद्ध कविता आपने इन्हीं दिनों लिखी थी।

गांधीजीसे मुलाकात और जापान-यात्रा

साधु ऐण्ड्रूज़के अनुरोधपर आपने गांधीजी द्वारा ट्रांसवालमें आरम्भ किए गए फोनिक्स स्कूलके छात्रों और कार्यकर्ताओंको शान्तिनिकेतन आनेका निमन्त्रण दिया। इस वर्ष वे सब यहाँ पहुँच गए। इन्हीं दिनों पूर्वी बंगालके बाढ़-पीड़ित पाट उगानेवालोंकी सहायताके लिए शान्तिनिकेतनके छात्रों और कार्यकर्ताओंने अपने भोजनमें आटे और खाँडका प्रयोग छोड़ दिया और इस प्रकार जो पैसा बचा, वह पीड़ितोंकी सहायताके लिए भेजा गया। २२ फरवरीको महात्माजी माता कस्तूरबाके साथ फोनिक्स स्कूलके छात्रोंको देखने शान्तिनिकेतन आए; पर आप श्री गोपालकृष्ण गोखलेके निधनके कारण पूना चले जानेसे उनसे मिल नहीं सके। किन्तु आपके अनुरोधपर ६ मार्चको गांधीजी फिर शान्तिनिकेतन आए और कविसे पहले-पहल मिले। उनके स्वागतमें कविके नए नाटक 'फाल्गुनी'का अभिनय हुआ। गांधीजी १० मार्च तक यहीं रहे और शान्तिनिकेतनके विविध कार्योंको बड़ी

'अन्ध बाउल' के रूपमें रवीन्द्रनाथ (१९१६ ई०)।

आलोचनात्मक दृष्टिसे देखा। जानेसे पूर्व गांधीजीने गुरुदेवसे शान्तिनिकेतनके छात्रोंको स्वावलम्बनकी ऐसी शिक्षा देनेका प्रयोग करनेका अनुरोध किया, जिससे कि वे बिना नौकरों, रसोइयों या भंगियोंके भी अपना काम चला सकें।*

२० मार्च, १९१५ को बंगालके गवर्नर लार्ड कारमाइकल शान्ति-निकेत पधारे और वहाँकी कार्य-पद्धति देखकर अपना सन्तोष प्रकट किया। इन्हीं दिनों आपकी 'चतुरंग' संग्रहकी कविताएँ और 'घरे-बाइरे' उपन्यास धारावाहिक रूपसे 'सबुज पत्रमें प्रकाशित हुए। ३ जून, १९१५ को आपको 'सर' की उपाधिसे विभूषित किया गया। इसी मास ऐण्ड्रूज़ और पियर्सन प्रवासी भारतीयोंके कष्टोंकी जाँच करने फिजी-द्वीपके लिए रवाना हुए। इसी वर्ष आपने 'घरे-बाइरे' तथा 'बलाका'का शेषांश लिखा और 'छात्र-शासन' तथा 'शिक्षार बाहन'-शीर्षक निबन्ध प्रकाशित करवाए। इन्हीं दिनों इंडियन प्रेस, प्रयाग और मैकमिलन कम्पनी द्वारा आपके दो कहानी-संग्रह अंगरेज़ीमें प्रकाशित हुए।

जयसिंहकी भूमिकामें रवीन्द्रनाथ (१९१६ ई०)।

३ मई, १९१६ को आप सर्वश्री ऐण्ड्रूज़, पियर्सन और मुकुल देके साथ जापानके लिए रवाना हुए। पहले दिन आपका जापानके प्रेस-एसोसिएशनने स्वागत किया और दूसरे दिन काउण्ट ओकुमाने सार्वजनिक रूपसे आपका जापानीमें भाषण देते हुए स्वागत किया, जिसका उत्तर आपने बँगलामें दिया और कुछ बँगला-कविताओंका पाठ भी किया। जापानमें आप प्रसिद्ध चित्रकार हाराके अतिथि हुए, जिन्हें आपने बादमें मैकमिलन कम्पनी द्वारा प्रकाशित 'स्ट्रे बर्ड्स' समर्पित भी की। जापानमें आपका सबसे

---

* यह प्रयोग कुछ दिनों बाद व्यावहारिक कठिनायोंके कारण बन्द कर दिया गया। किन्तु १० मार्चको प्रतिवर्ष शान्ति-निकेतनमें 'गांधी-दिवस' मनाया जाता है, जब कि सब आश्रमवासी अपना सारा काम स्वयं करते हैं और नौकर, रसोइए तथा भंगी आदि छुट्टीपर रहते हैं। —सम्पादक

बोलपुरसे कलकत्ता आते समय रुग्ण रवीन्द्रनाथ ।

उल्लेखनीय भाषण वह हुआ, जिसमें आपने चीनके प्रति बरती जानेवाली जापानकी साम्राज्यवादी नीतिकी कटु आलोचना की। तोक्यो और कियोजिजिकू विश्व-विद्यालयमें आपने 'जापानको भारतका सन्देश' तथा 'जापानकी अन्तर्भावना' पर बड़े ही मार्मिक भाषण दिए। इससे आप अधिकारियोंकी आँखोंमें बुरी तरह खटकने लगे। इसी समय आपको वैंकुवर (कनाडा) से वहाँ आनेके लिए निमन्त्रण मिला ; किन्तु आपने यह कहकर उसे ठुकरा दिया कि ब्रिटेन द्वारा कनाडाके प्रवासी भारतीयोंके साथ जो भेद-भावपूर्ण व्यवहार होता है, उसके विरोध-स्वरूप आप वहाँ नहीं जायँगे।

१८ सितम्बर, १९१६ को आप सीटेल ( वाशिंगटन ) पहुँचे और पौंडलाइस्यूम नामकी एक भाषण-संस्थाके साथ अमरीकाका भाषण-भ्रमण करनेका कार्यक्रम निश्चित किया। पोर्टलैण्ड, सानफ्रांसिस्को, लास एंजेलेस, कोलम्बिया, न्यूयार्क, सेंट बारबरा, पासाडेना, साल्टलेक सिटी, चिकागो, आयोवा, मिलवाकी, लुई विले, डेटरायट, क्लीवलैण्ड, फिलेडेलफिया, बोस्टन, येल (विश्वविद्यालय), कोलोरोडो आदिमें आपके साहित्य, शिक्षा, राष्ट्रीयता, संस्कृति एवं राजनीतिपर कई प्रभावपूर्ण भाषण हुए। इनमें से कई स्थानोंपर आपने अपनी कविताएँ भी पढ़ीं और आपके कई नाटक भी खेले गए। अमरीकाकी एशिया-विरोधी नीति और उसकी राष्ट्रीयताकी आलोचना करते हुए आपने जो भाषण दिए, उनकी कई अमरीकन क्षेत्रोंमें बड़ी कड़ी विवेचना हुई। हिन्दुस्तान-ग़दर-पार्टीके नेता श्री रामचन्द्रने तो एक अमरीकन पत्रमें आपके विरुद्ध यह लिखा कि आप भाषणोंमें ब्रिटेनकी आलोचना करते हैं और वैसे उसकी दी हुई 'सर'की उपाधिको अपने नामके साथ चिपकाए फिरते हैं! यह भी अफ़वाह उड़ी कि पार्टीके लोग आपकी हत्या करनेकी फिराकमें हैं। पर कविने इसे कोई महत्त्व न दिया और शुभैषियों द्वारा प्रस्तावित पुलिस-संरक्षण स्वीकार करनेसे भी इन्कार कर दिया।

१७ मार्च, १९१७ को आप कलकत्ता लौट आए

कविकी सुपुत्री श्रीमती माधुरीलता (बेला) देवी।
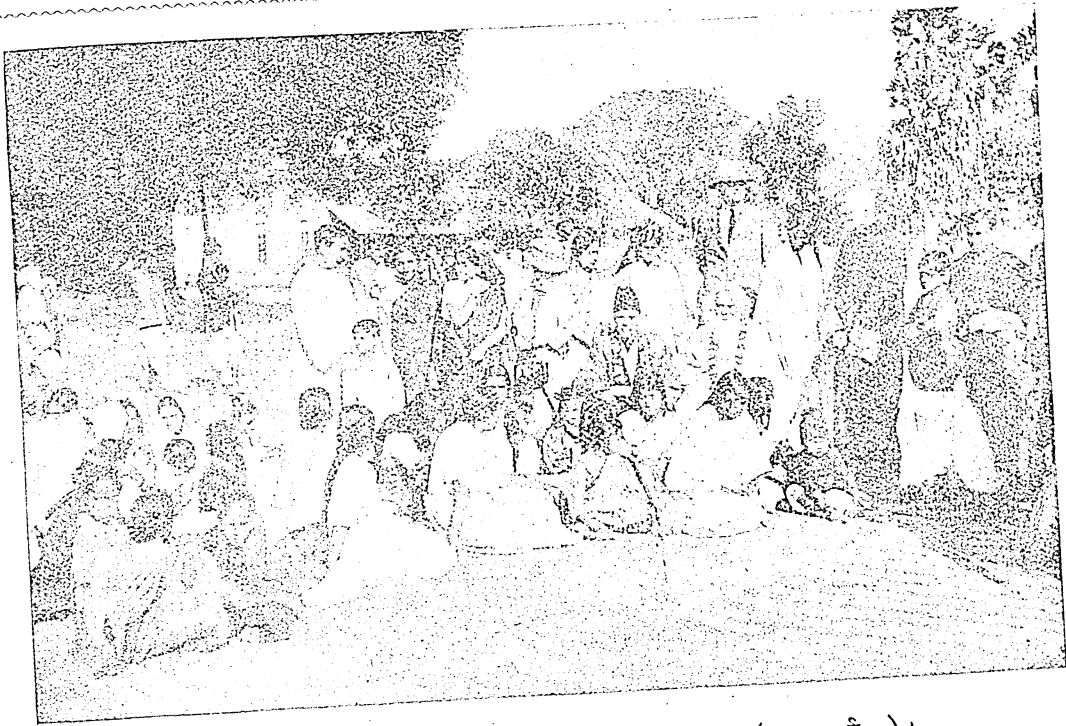
सुरूलमें श्री एल्महर्स्ट और सुरेन्द्रनाथ ठाकुरके साथ रवीन्द्रनाथ ( १९२४ ई० )।

इन दिनों यहाँ कई साहित्यिक संस्थाएँ और क्लब खुल चुके थे और काफ़ी साहित्य-चर्चा होने लगी थी। आपने आते ही 'सबुज पत्र'में 'भाषार कथा'-शीर्षक एक लेख लिखा, जिसमें श्री प्रमथ चौधुरीकी शैलीका समर्थन करते इस बातपर ज़ोर दिया कि साहित्य-रचना बोल-चालकी बँगलामें ही होनी चाहिए। 'तपस्विनी', 'पयला नम्बर', 'कर्त्तार इच्छाय कर्म', 'संगीतेर मुक्ति', 'देश, देश नन्दित करि मन्द्रित तव भेरी' आदि रचनाएँ आपने इन्हीं दिनों लिखीं। इन्हीं दिनों बंगालके राजनीतिक कार्यकर्ताओंके साथ होनेवाली ज़्यादती और श्रीमती एनी बेसेण्टकी गिरफ़्तारी एवं नज़रबन्दीके ख़िलाफ़ आपने ज़ोरोंसे आवाज़ उठाई और कांग्रेस-कार्यमें प्रमुख भाग लिया। दिसम्बर, १९१७ में हुए कांग्रेस-अधिवेशनपर आपने एक राष्ट्रीय कविता पढ़ी और कई प्रमुख नेताओंकी उपस्थितिमें आपका 'डाकघर' नाटक खेला गया, जिसमें आपने स्वयं ठाकुरदा का अभिनय किया। इसी वर्ष शाहाबादमें हुए साम्प्रदायिक दंगेपर आपने 'छोटो ओ बड़ो'-शीर्षक निबन्ध लिखा तथा सरकारकी शिक्षा-नीतिकी आलोचना करते हुए 'तोता काहिनी'। 'छन्द'पर भी आपने एक विचारपूर्ण निबन्ध लिखा और इसी समय 'पलातका'-संग्रहकी अधिकांश कविताएँ भी।

९ मई, १९१८ को बंगाल-गवर्नरके प्राइवेट-सेक्रेटरीने ऐण्ड्रूज़को लिखा कि रवीन्द्रनाथका अमरीकन क्रान्तिकारियोंसे सम्बन्ध है और अमरीकाके दौरेके लिए उन्हें जर्मनीसे रुपया मिला था, इसीलिए उन्होंने वहाँ काफ़ी ब्रिटेन विरोधी प्रचार किया। इसी समय आपने सुना कि पियर्सनको—जो आपके साथ होनोलूलू होकर अमरीकासे भारत लौटते समय कुछ कार्यवश जापानमें रुक गए थे—ब्रिटिश सरकारके कहनेपर जापान-सरकारने ब्रिटेन-विरोधी प्रचारके लिए निर्वासित कर दिया है। इससे आपके हृदयको बड़ी ठेस लगी। इसी कारण आपने लोकमान्य तिलक द्वारा यूरोपका भारतीय संस्कृतिके प्रचारके लिए दौरा करनेके लिए दिए गए ५००००) रु० भी स्वीकार नहीं किए और अमरीकाकी यात्राका जो विचार था, वह भी छोड़ दिया। आप शान्तिनिकेतन लौट गए और वहीं मुख्यतया शिक्षण कार्य ही करते रहे।

### सन् १९१९-३५ : ५८ से ७४ वर्ष

जनवरी, १९१९ में आपने दक्षिण-भारतका दौरा

अपने अग्रजके प्रपौत्रके साथ रवीन्द्रनाथ ( १९३८ ई० )।

किया और मद्रास, पीठापुरम्, बंगलोर, मैसूर, ऊटी, कोयम्बटूर, पालघाट, त्रिचनापल्ली, सलेम, श्रृंगापट्टम, कुम्बकोणम्, तंजोर आदिमें शिक्षा और संस्कृति-सम्बन्धी कई भाषण दिए। इसी वर्ष रौलेट-क़ानूनके विरुद्ध गांधीजी द्वारा आरम्भ किए गए सत्याग्रह-आन्दोलनके सम्बन्धमें आपने गांधीजीको एक पत्र लिखकर यह आशंका प्रकट की कि इसके काबूसे बाहर हो जानेका भय है। इस कुछ ही दिन बाद अमृतसरका बदनाम जलियाँवालाबाग़-हत्याकांड हुआ और पंजाबमें मार्शल-ला की घोषणा हुई। इसके विरुद्ध आपने २७ मईको कलकत्तेमें एक विराट सार्वजनिक सभा करने और स्वयं उसकी अध्यक्षता करनेकी घोषणा की; पर सरकारी प्रतिबन्धके कारण सभा न हो सकी। इसपर आपने ३० मईको जलियाँवालाबाग़-काण्डकी निन्दा करते हुए वाइसरायको एक पत्र लिखकर उसके विरोध-स्वरूप अपनी 'सर' की उपाधि लौटा दी। इन्हीं दिनों आपने 'शान्तिनिकेतन-पत्रिका' नामसे एक नया बँगला मासिक शुरू किया और उसमें 'लिपिका' नामसे प्रकाशित रेखाचित्र लिखने शुरू किए।

३ जुलाई, १९१९ को भारतके प्राचीन साहित्यके अध्ययनके लिए शान्तिनिकेतनमें 'विद्या-भवन'की स्थापना की गई और श्री विधुशेखर भट्टाचार्य इसके अध्यक्ष बनाए गए। इन दिनों आपने कई कविताएँ व निबन्ध लिखे और 'शारदोत्सव'का 'ऋणशोध'के रूपमें रूपान्तर किया, जो शान्तिनिकेतनमें खेला भी गया। फरवरी, १९२० में बंगालके गवर्नर सर रोनाल्डशे शान्तिनिकेतन देखने गए, जिनके स्वागतमें वहाँ 'राजा' नाटक 'अरूपरत्न'के परिवर्तित रूपमें खेला गया। इसी वर्ष गांधीजीके निमन्त्रणपर आप गुजरात-साहित्य-सम्मेलनमें सम्मिलित हुए और कुछ दिन साबरमती-आश्रममें भी रहे। आप भावनगर, लिम्बड़ी, अहमदाबाद, बम्बई तथा सूरत आदि होते हुए मई, १९२० में कलकत्ता लौट आए।

११ मई, १९२० को आपने फिर यूरोप-यात्रा की। मार्गमें जहाज़पर आपकी श्री आग़ाख़ाँसे मुलाक़ात हो गई, और उन्होंने हाफ़िज़से आपको सूफ़ी-मतके बहुत-से सिद्धान्त और आदर्श पढ़कर सुनाए। इसी समय आपकी अलवर

पीकिंग (चीन) में विश्राम करते हुए रवीन्द्रनाथ।
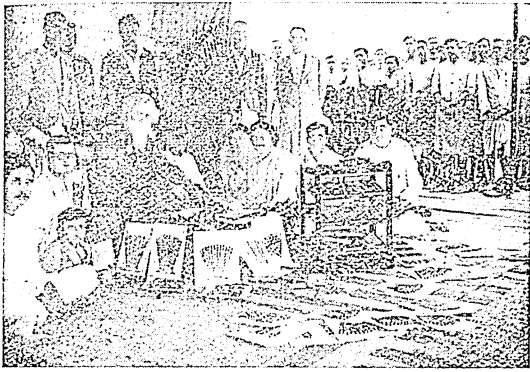
बम्बईमें रवीन्द्रनाथके चित्रोंकी प्रदर्शिनी।

और जामनगर नरेशोंसे मुलाक़ात हुई। जहाज़पर ही आपने शान्तिनिकेतनमें दिए गए कुछ प्रवचनोंका अंगरेज़ीमें अनुवाद किया, जो बादमें 'थाट रेलिक्स' (Thought Relics) नामसे प्रकाशित हुए। लन्दन पहुँचनेपर पहले-पहल आपकी जार्ज बर्नार्ड शा और प्रसिद्ध रूसी दार्शनिक एवं चित्रकार निकोलस रोरिकसे भेंट हुई। यहीं आप पूरे तीन वर्ष बाद श्री पियर्सनसे मिले। आक्सफोर्डमें आपकी अरबकी प्रसिद्धि-वाले कर्नल लारेंससे भेंट हुई, जिन्होंने आपसे कहा कि मैंने अरबोंसे जो वादे किए थे, उनमें से एक भी ब्रिटिश सरकारने पूरा नहीं किया; इसलिए अब मैं उन्हें मुँह भी नहीं दिखा सकता। केंब्रिज होकर आप लन्दन लौट आए और वहाँ पंजाबके हत्या-काण्डके सम्बन्धमें भारत-मन्त्री (मांटेग्यू) और भारत-उपमन्त्री (लार्ड सिंह) से मिले। आपने जनरल डायरको उसके अमानुषिक अपराधपर दण्ड देनेका भी मांटेग्यूसे अनुरोध किया। ब्रिस्टलमें आप श्री राममोहन रायकी समाधि देखने गए। इसके बाद आप फ्रांस चले गए, जहाँ आपकी सिल्वाँलेवी और द-ब्रनसे भेंट हुई और आपने उत्तरी फ्रांसका रण-क्षेत्र भी देखा। पेरिसमें आपकी फ्रांसकी प्रसिद्ध कवियित्री काँते-द-नोएले (Comtesee de Noailles) से भेंट हुई, जिन्होंने आपको बतलाया कि जब युद्धकी घोषणा हुई, तो वे फ्रांसके प्रधान-मन्त्री श्री क्लिमेंस्यूके पास थीं। तब उनके हृदयोंको इतनी गहरी ठेस लगी कि दोनोंने मानसिक स्वस्थता प्राप्त करनेको 'गीतांजलि' का फ्रेंच अनुवाद निकालकर उसमें से कई पद पढ़े। हालैण्ड और बेल्जियम होते हुए आप पियर्सनके साथ अमरीका पहुँचे। पहले आपने जब श्री जे० बी० पौण्डको लिखा कि आप अमरीका आना चाहते हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि चूँकि अमरीकाका लोकमत इस समय आपके विरुद्ध है, अतः अभी मैं आपके भाषणोंका कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता। इसपर आपने कहा कि कुछ भी हो, पश्चिमको पूर्वका सन्देश सुनाए बिना मैं भारत नहीं लौट सकता, और अमरीका चल दिए।

सितम्बर, १९२० में मौलाना शौकतअलीके साथ गांधीजी शान्तिनिकेतन पहुँचे, जब कि असहयोग-आन्दोलन ज़ोरोंपर था। अधिकारियोंने निश्चय किया कि इस वर्ष वे शान्तिनिकेतनके छात्रोंको मैट्रिककी परीक्षामें नहीं बिठायँगे और सुरूलमें उनसे ग्राम-सुधारका काम करायँगे। न्यूयार्कमें एक पत्र-प्रतिनिधिसे भेंट करते हुए रवीन्द्रनाथने असहयोगका औचित्य बतलाते हुए कहा कि

'फाल्गुनी'में रवीन्द्रनाथ (१९१६ ई०)।

सुरूलमें सपरिवार रवीन्द्रनाथ ( १९१४ ई० )। गोदमें दौहित्र श्री नीतिन्द्रनाथ हैं।

पशु-बलसे आत्म-बल प्रबल है। ब्रुकलिन संगीत-विद्यालयमें आपके 'पश्चिमको पूर्वका सन्देश' तथा 'बंगालके रहस्यवादी कवि' विषयोंपर बड़े ही प्रभावपूर्ण भाषण हुए। यहाँ आपने विश्वभारतीके लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करनेका भी यत्न किया; पर पग-पगपर आपको बाधाओंका सामना करना पड़ा। कारण, आपके विरुद्ध कुछ अंगरेज़ प्रचारकोंने यह प्रचार कर रखा था कि आप जर्मन-पक्षीय और ब्रिटेन-विरोधी हैं। चिकागो और हैक्स होते हुए आप यूरोप लौट गए। लन्दनमें आपका 'पूर्व और पश्चिमके सामंजस्य'पर एक बड़ा ही प्रभावोत्पादक भाषण हुआ। १७ अप्रैलको आप पेरिसमें श्री रोमाँ रोलाँसे मिले। यहाँ आपके कई भाषण हुए। पैरिसके प्रसिद्ध भारतीय जौहरी श्री श्रीधर राणाने अपना सुन्दर पुस्तकालय विश्वभारतीके लिए आपको भेंट कर दिया। फ्रांससे आप स्ट्रासबरो, जिनिवा, लूसेर्न, ज़्यूरिच, बेसल, हाम्बुर्ग तथा कोपेनहेगेन होते हुए स्वीडेन पहुँचे। आपकी ६१ वीं वर्षगाँठ जर्मनीमें ही मनाई गई। स्वीडेनमें आपका जो सम्मान हुआ, वैसा शायद ही किसी विदेशीका हुआ हो। वहाँके प्रधान पादरी और बादशाहके साथ आपने भोजन भी किया। इसके बाद आप जर्मनी लौट गए। वहाँके कई स्थानोंमें भ्रमण करने और भाषण देनेके बाद आप जुलाई, १९२१में भारत लौट आए।

जब आप भारत लौटे, तो असहयोग-आन्दोलनका बड़ा ज़ोर था। आपपर भी चारों ओरसे उसमें शामिल होनेके लिए दबाव डाला जाने लगा; किन्तु आप राज़ी न हुए। आपने अपना मत 'शिक्षार मिलन' शीर्षक निबन्धमें प्रकट किया, जिसका उत्तर बँगलाके प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायने 'शिक्षार विरोध'-शीर्षक निबन्धमें दिया। कविने इसका प्रत्युत्तर 'सत्येर आह्वान' नामक निबन्धमें दिया। आपने असहयोगको राजनीतिक दृष्टिसे एकदम बेकार और अव्यावहारिक बतलाया। इसका जवाब गांधीजीने अपने 'यंग इंडिया' में दिया। सितम्बर १९२१ में अपने जोड़ासाँकोके भवनमें आपकी ऐण्ड्रूज़ और गांधीजीसे भेंट हुई। इसी वर्ष पियर्सन शान्तिनिकेतन लौटे और श्री एल० के० एल्महर्स्ट अपनी पत्नीकी ओरसे सुरूलमें होनेवाले ग्राम-सुधारके कार्यके लिए ५००००) रु० की वार्षिक सहायताके साथ शान्तिनिकेतन पहुँचे। १० नवम्बरको प्रो० सिल्वाँलेवी शान्तिनिकेतन आए और उन्होंने तिब्बत तथा चीनकी शिक्षा तथा साहित्यकी खोजके लिए अनुरोध किया।

२२ दिसम्बर, १९२१ को श्री ब्रजेन्द्रनाथ सीलकी अध्यक्षतामें विश्वभारतीका उद्‌घाटन-समारोह हुआ। कविने अपनी समस्त बँगला-पुस्तकोंका स्वत्वाधिकार, पुस्तकालय, ज़मीन-ज़ायदाद, नोबेल-पुरस्कारका रुपया आदि सब कुछ विश्वभारतीको दान कर दिया। जनवरी, १९२२ में आपने 'मुक्तधारा' नामक नाटक लिखा। ६ फरवरी, १९२२ को विश्वभारतीके ग्राम-सुधार-विभागका 'श्रीनिकेतन' नामसे उद्‌घाटन हुआ। मार्चमें गांधीजीके गिरफ़्तार होने और ६ वर्षकी सख़्त सज़ा पानेके कारण आपकी ६२ वीं वर्षगाँठ बड़े शान्त और सीधे-सादे ढंगसे मनाई गई। जुलाई, १९२३ में कलकत्तेमें 'विश्वभारती-सम्मिलनी' मनाई गई, जब कि आपने उसके उद्देश्यों एवं आदर्शोंपर प्रकाश डाला। लुगानोमें हुई अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं स्वतंत्रता-परिषदमें आप भी शामिल हुए थे। इस अवसरपर डा० कालिदास नागके प्रयत्नसे एक 'टैगोर-सन्ध्या' मनाई गई, जिसमें आपके अभिवादन और साहित्य-चर्चामें श्री रोमाँ रोलाँ, पालय हेर्यस, जार्ज डुहेमेल, प्रो० फोरेल, बरट्रेण्ड रसैल और जोन हेनेस होम्स आदिने भाग लिया। सितम्बरमें आपने पूनामें 'भारतीय पुनर्जागरण' पर एक मार्मिक भाषण दिया, जिसमें भारतीय विश्वविद्यालयोंसे अपील की कि वे इसका सन्देश प्रत्येक घर तक पहुँचानेका प्रयत्न करें।

दक्षिण-भारतकी दौरा करते और कई जगह भाषण देते हुए आप कोई ३ मास बाद शान्तिनिकेतन लौटे। इसी समय बंगालके तत्कालीन गवर्नर लार्ड लिटन शान्तिनिकेतन देखने गए। इसी वर्ष आपने 'शिशु भोलानाथ' कविता लिखी और अप्रैल, १९२३ में 'विश्वभारती' नामक अंगरेज़ी त्रैमासिक पत्रिका निकालनी शुरू की। इसी वर्ष सर रतन टाटा द्वारा दिए गए २५,०००) रु० से शान्तिनिकेतनमें 'रत्नकुठी' नामसे अतिथि-गृह बनना आरम्भ हुआ। 'रक्त करबी' और 'रथयात्रा' नाटक तथा कई निबंध (जिनमें हिन्दू-मुस्लिम-एकतापर लिखा गया निबन्ध भी शामिल है) आपने इसी समय लिखे और कलकत्तेमें अभिनीत 'विसर्जन' में बूढ़े होनेपर भी आपने युवा जयसिंहका अभिनय बड़ी ख़ूबीके साथ किया। विश्वभारती और शान्तिनिकेतनमें एक अस्पताल खोलनेके लिए अर्थ-संग्रह करनेके विचारसे आपने दक्षिण-पश्चिम भारतका दौरा किया और लौटकर कलकत्ता-विश्वविद्यालयमें साहित्यपर कई मौखिक भाषण दिए।

२१ मार्च, १९२४ को चीनी विश्वविद्यालय-भाषण-संघके अध्यक्ष श्री ल्यांगची-चाओके निमंत्रणपर आप शान्तिनिकेतनके आचार्य क्षितिमोहन सेन, श्री नन्दलाल बसु, डा० कालिदास नाग और एल० के० एल्महर्स्टके साथ चीनके लिए रवाना हुए। रंगून, पेनांग, कूला लुम्पुर और सिंगापुर होते हुए—जहाँ आपका अपूर्व स्वागत हुआ—१२ अप्रैलको शंघाई पहुँचे। यहाँ आपने
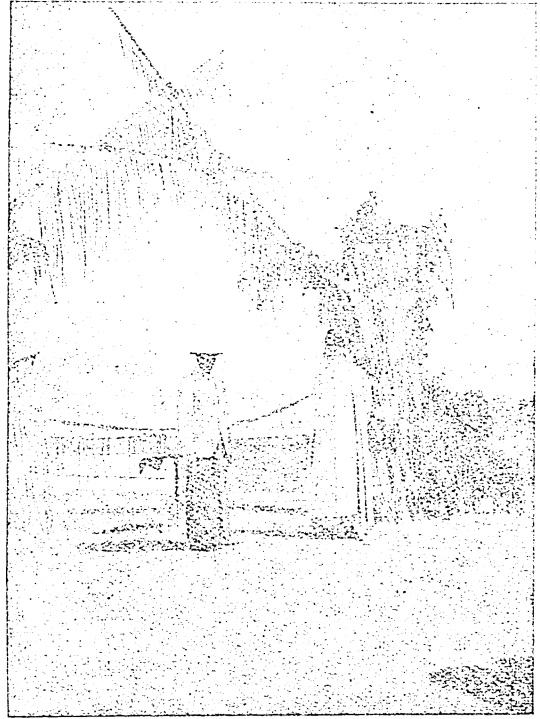
मंकूनगरोमें रवीन्द्रनाथ द्वारा एक सड़कका उद्‌घाटन।

बतलाया कि भारत और चीनका प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्ध है और दोनोंमें निःस्वार्थ मानव-प्रेम है। जापानियोंकी एक सभामें बोलते हुए आपने जापानकी साम्राज्य-लिप्साकी कठोर शब्दोंमें निन्दा की और यह इच्छा प्रकट की कि एशिया जल्दीसे जल्दी पश्चिमकी राष्ट्रीयता और अर्थनीतिसे मुक्त हो। २३ अप्रैलको आप पिकिंग पहुँचे। वहाँ राष्ट्रीय विश्वविद्यालयमें चीनी नौजवान-आन्दोलनके प्राण डा० हू-शि (जो आजकल वाशिंगटनमें चीनके राजदूत हैं) ने आपका स्वागत किया। पहले चीनके विद्यार्थियोंको आपकी पाश्चात्य सभ्यताकी

आलोचना अच्छी न लगी, क्योंकि वे लोग उसके आदी हो चुके थे ; पर बादमें आपके भाषणोंसे वे विशेष प्रभावित हुए और अपनी संस्कृतिपर उन्हें गर्व हो चला। चीनके विविध स्थानोंमें सांस्कृतिक भाषण देनेके बाद आप २९ मई, १९२४ को जापान पहुँचे। यहाँ आपकी भारतके प्रसिद्ध निर्वासित क्रान्तिकारी श्री रासबिहारी बसुसे भेंट हुई, जिन्होंने बड़े स्नेह और आदरके साथ कविकी सेवा की। जापानियोंके देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, कला तथा साहित्य-प्रेमसे आप बड़े प्रभावित हुए ; पर आपने कहा कि जब जापान एक राष्ट्रके रूपमें अन्य राष्ट्रोंसे व्यवहार करता है, तो वह

श्रीनिकेतनके एक उत्सवमें रवीन्द्रनाथ।

इन गुणोंको भुलाकर उसी धोखा-धड़ी, क्रूरता और निर्दयतासे काम लेता है, जिसके पश्चिमी राष्ट्र आदी हैं। जापानके कई स्थानोंमें भाषण देकर आप २१ जुलाई, १९२४ को भारत लौट आए।

अगस्त, १९२४ में लार्ड लिटनने ढाकामें हुई एक घटनाके सम्बन्धमें पुलिसकी कार्यवाहीकी प्रशंसा की और बंगाली स्त्रियोंको बहुत बुरा-भला कहा। कविपर चारों ओरसे दबाव डाला जाने लगा कि वे गवर्नरके इन निराधार आक्षेपोंका खण्डन करायँ और उनसे मिलें। इसपर आपने गवर्नरको सूचित किया कि वे अपने कथनकी सचाईको प्रमाणित करें। गवर्नर और आपके पत्र-व्यवहारके प्रकाशनके बावजूद जनतामें इसके विरुद्ध आन्दोलन होता रहा।

१९ सितंबर, १९२४ को आप श्री एल्महर्स्टके साथ दक्षिण-अमरीकाके लिए रवाना हुए। पर मार्गमें ही आप बीमार हो गए, अतः आप मादाम विक्टोरिया ओकाम्पोके मेहमान होकर सेन इसाडोर (आर्जेन्टीना) में ही विश्राम करने लगे। 'पूरबी' की अधिकांश कविताएँ आपने यहीं लिखी थीं। जनवरी, १९२५ में आप इटली गए और वहाँसे फिर शान्तिनिकेतन लौटे, जहाँ आपकी ६५ वीं वर्षगाँठ मनाई गई। १६ जून, १९२५ को देशबंधु चित्तरंजनदासके निधनपर आपने एक मार्मिक कविता लिखी। इन्हीं दिनों आपने चरखा और विवाहपर दो निबन्ध लिखकर अपने विचार प्रकट किए। कलकत्तेमें हुए 'चिरकुमार-सभा' के अभिनयको देखकर आपने 'कर्मफल' शीर्षक कहानीको 'शोध-बोध' नामसे नाटकका रूप दिया। आपकी 'शेष रक्षा', 'गोड़ाय गलद्', 'गृह-प्रवेश', 'शेषेर रात्रि' आदि रचनाएँ इसी समयकी हैं। आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्ररायने एक सार्वजनिक भाषणमें आपकी चर्खा-आन्दोलनसे दूर रहनेके कारण आलोचना की। इसपर आपने 'स्वराज्य-साधन'-शीर्षक निबन्धमें उसका उत्तर देते हुए लिखा कि चर्खेसे स्वराज्य हासिल नहीं किया जा सकता। इस वर्ष कई इतालियन विद्वान् कविसे मिलने और शान्तिनिकेतन देखने आए।

फरवरी, १९२५ में ढाका-विश्वविद्यालय तथा वहाँकी कई सार्वजनिक संस्थाओंने आपको मानपत्र भेंट किए। इसी समय पोरबंदर-नरेशने कला-भवनकी सहायतार्थ कुछ रुपया भेजा। इन्हीं दिनों पहले-पहल 'नटीर पूजा' नामक कविके नए नाटकका अभिनय हुआ। १२ मई, १९२६ को आप अपने आठवें यूरोप-भ्रमणके लिए रवाना हुए। ३१ मईको आपके रोम पहुँचनेपर मुसोलिनीने आपका स्वागत किया और कहा कि इतालियनमें अनूदित आपकी सब रचनाएँ मैंने पढ़ी हैं। ११ जूनको आपकी इटलीके बादशाह और महारानीसे भेंट हुई। रोम-विश्वविद्यालय तथा कई अन्य इतालियन संस्थाओंने आपका स्वागत किया और कई जगह आपके भाषण हुए। यहाँसे आप स्वीज़रलैण्ड होते हुए फ्रांस गए। इटलीमें हुए आपके भाषणोंकी जो रिपोर्टें यूरोपीय पत्रोंमें निकलीं, उनकी अपूर्णता एवं असम्बद्धताके कारण लोगोंने आपपर

फासिस्ट-पक्षीय होनेका आरोप किया और कहा कि आपने मुसोलिनीकी बड़ी प्रशंसा की है। ज़्यूरिचमें आपकी मुलाक़ात प्रसिद्ध इतालियन विद्वान प्रो० साल्वोदोरीसे हुई, जिन्हें मुसोलिनीने फाशिज़्म-विरोधी प्रचारके अभियोगमें निर्वासित करा दिया था। उन्होंने आपको फ़ासिज़्मका इतिवृत्त और मुसोलिनी द्वारा किए गए नृशंस अत्याचारोंका परिचय कराया। इसपर आपने 'मान्चेस्टर गार्जियन' में एक पत्र प्रकाशित करवाया, जिसमें मुसोलिनीके काले कारनामों और फ़ासिज़्मका खुल्लमखुल्ला विरोध किया गया। अगस्तमें आप इंग्लैण्ड आए और वहाँ अपने पुराने मित्रोंसे मिलनेके बाद नार्वेके लिए रवाना हो गए। स्टाकहोल्ममें आपकी नेन्सन, स्वेन हेडिन, ब्जोर्नसन तथा बोजेर और कोपेनहेगेनमें हाफडिंग तथा जार्ज ब्राण्ड्स आदिसे भेंट हुई। वहाँसे आप बर्लिन लौटे, जहाँ आप प्रेसिडेंट हिन्डेनबर्गसे मिले। भारतीय दर्शन और संस्कृतिपर हुए आपके भाषणोंको जर्मनोंने बहुत पसन्द किया। यहाँसे ड्रेसडन और कोलोन होते हुए आप चेकोस्लोवाकिया चले गए, जहाँ साहित्य, संगीत, दर्शन तथा संस्कृतिपर आपके कई प्रभावोत्पादक भाषण हुए। चेक-सरकारने आपकी यात्राके लिए एक हवाई-जहाज़ तैनात कर दिया। इस देशकी वन-श्री देखकर आप इतने मुग्ध और प्रभावित हुए कि यहीं 'वनवाणी' नामक एक कविता लिखी। यहाँसे आप आस्ट्रिया, हंगेरी, रूमानिया, बुल्गारिया तथा यूनान होते हुए मिस्र पहुँचे। मिस्रके स्वर्गीय बादशाह फ़ुआदसे आपकी भेंट हुई, जिन्होंने विश्वभारती-पुस्तकालयके लिए बहुत सी प्राचीन अरबी पुस्तकें प्रदान कीं। इसी यात्रामें आपने 'लेखन'-संग्रहकी अधिकांश कविताएँ लिखीं। भारत लौटनेपर हावड़ा स्टेशनपर आपका कलकत्तेके मेयर स्व० जे० एम० सेनगुप्त तथा अन्य प्रतिष्ठित नागरिकोंने सार्वजनिक रूपसे स्वागत किया।

दिसंबर, १९२६ में, जब आप भारत लौटे ही थे, स्वामी श्रद्धानन्दजीकी हत्याके समाचारसे आपको बड़ा क्षोभ हुआ और शान्तिनिकेतनमें छात्रों तथा कार्यकर्त्ताओंकी सभामें बोलते हुए आपने उनपर हुए कायरतापूर्ण आक्रमणकी बड़ी निन्दा की। इन्हीं दिनों बंगाल-सरकार द्वारा पकड़े गए नौजवानोंको अनिश्चित काल तक नज़रबन्द रखने तथा बिना पर्याप्त कारणके कई बँगला-पुस्तकोंके ज़ब्त करनेके विरुद्ध जो आन्दोलन हो रहा था, आपने न केवल उसका समर्थन ही किया, बल्कि सरकारकी इस दायित्व-शून्यताके विरुद्ध स्वयं भी आवाज़ उठाई। 'नटराज' नामका नृत्य-नाट्य आपने इन्हीं दिनों लिखा, जिसके चित्र नन्द बाबूने विशेष परिश्रमके साथ बनाए। इन्हीं दिनों आपने 'विचित्रा' में एक लंबी कविता लिखी और 'तिन पुरुष' नामक एक उपन्यास भी; जो बादमें 'योगायोग' नामसे प्रकाशित हुआ।

पिकिंगमें मिस लिनके साथ रवीन्द्रनाथ (१९२४ ई०)।

१२ जुलाई, १९२७ को आपने श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या और श्री करके साथ मलाया, जावा, बाली, स्याम (अब थाइलैण्ड) आदिकी यात्रा की। वहाँ आपने कई भाषण दिए। लौटकर आपने अपनी कविता 'विजयलक्ष्मी'का अंगरेज़ीमें अनुवाद किया तथा 'साहित्यमें नवत्व', 'साहित्य-धर्म', 'सागरिका' (जो बादमें 'महुया' नामसे प्रकाशित हुआ) आदि चीज़ें लिखीं। 'नटराज'को आपने 'ऋतुरंग' नामसे दुबारा लिखा। इन्हीं दिनों बंगालके नए-पुराने

साहित्यिकोंमें छिड़े वाद-विवादमें आपने भी भाग लिया और अति नवीन भावनाओंको साहित्यमें ज़बर्दस्ती ठूँसनेका विरोध करते हुए दोनों दलोंको समझा-बुझा दिया। ७ मई, १९२८ को आपकी ६७ वीं वर्षगाँठ मनाई गई, जब आपको आपके ग्रन्थोंके साथ तोला गया और उन्हें स्थानीय पुस्तकालयोंमें वितरित कर दिया गया।

१२ मई, १९२८को आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालमें हिबर्ट-व्याख्यान देनेके लिए आप रवाना हुए ; किन्तु मद्रासमें ही बीमार पड़ जानेके कारण आप विश्राम करनेके लिए अडयारमें श्रीमती एनी बेसेंटके मेहमानके रूपमें रहने लगे।

उत्तरायणमें श्री रवीन्द्रनाथ (१९३३ ई०)।

कुछ समय वहाँ आराम करके आप श्री अरविंद घोषके दर्शन करने पांडीचेरी गए। वहाँसे श्री ब्रजेन्द्रनाथ सील—जो उन दिनों मैसूर-विश्वविद्यालयके वाइस-चांसलर थे—के पास होते हुए आप कलकत्ता लौट आए।

२६ फरवरी, १९२९ को आप कनाडाकी राष्ट्रीय शिक्षा-परिषदके त्रैवार्षिक उत्सवमें शामिल होनेके लिए रवाना हुए। बैंकोवर, हारवर्ड, कोलम्बिया, कैलीफोर्निया, डेटरायट और लास-एंजेलेसमें भाषण देते हुए आप २० अप्रैलको जापान पहुँचे। वहाँ जापानके सांस्कृतिक महत्व एवं कर्त्तव्यपर आपके कई महत्त्वपूर्ण भाषण हुए। ५ जुलाईको आप कलकत्ता लौट आए। यहाँ आकर आपने 'रवीन्द्र-परिचय-सभा'के तत्वावधानमें 'साहित्येर स्वरूप' और 'साहित्येर विचार'-शीर्षक दो विचारोत्तेजक निबन्ध पढ़े। इसी समय आपका 'राजा ओ रानी' नामक नाटक 'तासी' नामसे परिवर्तित रूपमें खेला गया, जिसमें बूढ़े कविने युवा विक्रमका अभिनय बड़ी ख़ूबीके साथ किया। इसी वर्ष जुजुत्सूके आचार्य प्रो० ताकागाकी शान्तिनिकेतन आए और जुजुत्सूका प्रदर्शन किया। कविने उसे बहुत पसन्द किया और प्रो० ताकागाकीका स्वागत करते हुए यह इच्छा प्रकट की कि बंगालका प्रत्येक युवक और युवती आत्मरक्षाके लिए इसे अवश्य सीखे। महाराजा गायक-वाड़के निमन्त्रणपर आप बड़ौदा गए और वहाँके विश्व-विद्यालयमें कई भाषण दिए। १० फरवरीको सुरूलमें बंगालके गवर्नरकी अध्यक्षतामें सहयोग-समितियोंकी एक कान्फ्रेंस हुई। इसमें उन्होंने श्रीनिकेतनको ५०००) रु०का एकमुश्त दान और १०००) रु० वार्षिक सहायताकी घोषणा की।

२ मार्च, १९३० को आप अपनी ११ वीं यूरोप-यात्राके लिए रवाना हुए। मार्सेल्समें आपकी चेकोस्लोवाकियाके प्रेसिडेंट मसारिकसे भेंट हुई। पेरिसमें आपने अपने चित्रोंकी एक प्रदर्शिनी आयोजितकर अपने परिचितोंको आश्चर्य-चकित कर दिया। यहीं आपकी ६९ वीं वर्षगाँठ मनाई गई। जब आप लन्दन पहुँचे, तो भारतमें गांधीजीका नमक-सत्याग्रह छिड़ चुका था, लोगोंकी पकड़-धकड़ शुरू हो गई थी ; शोलापुरमें मार्शल-लाकी घोषणा होने तथा वाइसराय द्वारा प्रचारित आर्डिनेंसोंसे चारों ओर अशान्ति फैल रही थी। इन सबपर विचार-विनिमय करनेके लिए आप भारत-मन्त्रीसे मिले। क्वेकर्सकी वार्षिक बैठकमें आपने भारतमें ब्रिटिश नीतिकी जो कड़ी आलोचना की, उससे कई उद्दण्ड गोरे श्रोता गरम हो उठे और शोर मचा-कर उनके भाषणमें गड़बड़ी करने लगे। इसपर आपने और भी तीव्र स्वरमें कहा—'आप एक क्षणके लिए अपने आपको हमारी स्थितिमें महसूस कीजिए और ज़रा आप ही के अमरीकन भाई-बन्धुओं द्वारा अपना रक्त-दान देकर ली गई आज़ादीका स्मरण कीजिए।' यहाँसे आप आक्स-फोर्ड, मान्चेस्टर, बर्मिंघम, डार्लिंगटन और टोटेनसे होते हुए जर्मनी चले गए। १२ जुलाई, १९३० को आप 'राइख़टाग' ( जर्मन पार्लमेण्ट ) के सदस्यों और आइ-न्स्टीनसे मिले। गैलेरी मौलेरमें आपने अपने चित्रोंकी प्रदर्शिनी की और फिर ड्रेसडन, म्यूनिख़, ओबरे मर्गो तथा डेन्मार्क होते हुए आप जिनिवा आए और वहाँसे रूसके लिए चल पड़े।

११ सितम्बर, १९३० को आप मास्को पहुँचे। यह

तथा रूसके अन्य नगरोंमें आपका कई साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओंने अपूर्व स्वागत किया। आपके कई भाषण हुए, अपनी कई रचनाएँ आपने पढ़कर सुनाईं। रूसके प्रसिद्ध लेखकोंके नाटकोंके अभिनय भी आपने देखे। सोवियत् रूसके शिक्षालयों, फैक्टरियों, मज़दूर-आवासों, केन्द्रीय आजायबघर, गृह-उद्योग-केन्द्र, क्रान्तिकी प्रदर्शिनी आदि देखकर आप इतने प्रभावित हुए कि आपने अपने मित्रोंको इनकी प्रशंसामें कई पत्र लिखे, जो बादमें 'राशियार चिठि' नामसे पुस्तकाकार-रूपमें प्रकाशित हुए। २४ सितम्बरको ट्रेड यूनियनके केन्द्रीय भवनमें सार्वजनिक रूपसे आपका स्वागत किया गया, जिसमें रूसके राष्ट्रकवि श्री शिंगालीने आपके अभिनन्दनमें एक कविता पढ़ी। गाल्पेरिनने आपकी ३ कविताओंका रूसी अनुवाद बढ़कर सुनाया और प्रसिद्ध रूसी अभिनेता सिमोनोफ़की देख-रेखमें 'डाकघर' के रूसी रूपान्तरका अभिनय किया गया।

रूससे जर्मनी होते हुए आप २५ नवम्बरको अमरीका पहुँचे। लन्दनके 'स्पेक्टेटर' में एक पत्र छपवाकर आपने गांधीजी द्वारा गोलमेज़-कांफ्रेंसमें शामिल न होनेका विरोध किया। बाल्टीमोरमें आपके सम्मानमें एक बड़ा भोज दिया गया। १ दिसम्बरको न्यूयार्कके कार्नेगी-हालमें प्रेसिडेण्ट हूवरने आपका स्वागत किया। भाई-सम्प्रदायकी एक सभामें आपने 'फ़ारसके अन्तिम फरिश्ते' पर एक अध्ययनपूर्ण भाषण दिया। यहीं आपने रूथ सेंट डेनिस नामकी एक प्रसिद्ध नर्त्तकीकी सेवाएँ स्वीकार कीं और आपके कविता-पाठके साथ होनेवाले उसके नृत्योंसे जो आय हुई, वह आपने न्यूयार्कके बेकारोंकी सहायताके लिए दे दी। यहाँसे लंदन होते हुए—जहाँ 'स्पेक्टेटर' के सम्पादकने आपके सम्मानमें एक भोज दिया—आप कलकत्ता लौट आए। साम्प्रदायिक निर्णयके सम्बन्धमें आपसे गोलमेज़-कान्फ्रेंसमें पंच बनानेको कहा गया, जिसे आपने स्वीकार नहीं किया।

भारत लौटनेपर आपने 'नवीन' नामका एक और नृत्य-नाट्य लिखा, जो पहले शान्तिनिकेतन और बादमें कलकत्तेमें खेला गया। आपकी ७०वीं वर्षगाँठके अवसरपर रूससे मित्रोंको लिखी गई चिट्ठियाँ 'राशियार चिठि' नामसे प्रकाशित हुईं। इसे आलोचकोंने 'मानव-इतिहासका एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठ' कहा है। १६ मई, १९३१ को कलकत्तेमें आपकी जयन्ती बड़े समारोहके साथ मनाई गई। इसी वर्ष आपने बक्सा-नज़रबन्द-कैम्पके वासियोंको बधाई देते हुए एक भावपूर्ण कविता लिख भेजी, जो सेंसर द्वारा लौटा दी गई। सितम्बरमें उत्तरी बंगालमें आई भयंकर बाढ़के पीड़ितोंकी सहायतार्थ आपका 'शिशुतीर्थ' नाटक खेला गया। इसीके पश्चात् संस्कृत-कालेजकी ओरसे आपको 'कवि सार्वभौम' की उपाधिसे विभूषित किया गया। इधर आपका स्वास्थ्य ज़रा बिगड़ चला था, जिसे सुधारनेके लिए आप दार्जिलिंग जानेका उपक्रम कर ही रहे थे कि हिजली-नज़रबन्द-कैम्पमें दो बंगाली नौजवानोंके गोलीका शिकार होनेकी सूचना मिली। इससे कविका मन विचलित हो उठा, और उन्होंने इसके विरुद्ध होनेवाले आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया। आक्टर-लोनी-स्मारकके पास इसका विरोध करनेके लिए जो विराट सार्वजनिक सभा हुई, उसके अध्यक्ष-पदसे बोलते हुए आपने अरक्षित नज़रबन्दोंपर हुई इस बर्बरताकी खुले शब्दोंमें निन्दा की। इन्हीं दिनों आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्र रायने अहमदा-बाद और बम्बईकी मिलोंके कपड़ोंपर निर्भर न कर बंगालके प्रयोगके लिए यहीं कपड़ा बनानेका आन्दोलन शुरू किया। आपने भी इसमें पूर्ण सहयोग दिया। गांधीजीकी गिर-फ़्तारी और भारतमें ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा होनेवाले दमनके विरुद्ध आपने ब्रिटेनके प्रधान-मंत्रीको तार भी दिया। २६ जनवरी, १९३२ को मनाए गए स्वाधीनता-दिवसपर आपने ब्रिटिश सरकारकी नीतिकी कटु आलोचना करते हुए एक विस्तृत वक्तव्य निकाला, जिसे सरकारने पूरा पत्रोंमें प्रकाशित नहीं होने दिया। अपने खरदाके नदी-तटवाले भवनमें रहकर आपने कई कविताएँ और निबन्ध लिखे। फरवरीमें श्री मुकुल देके प्रयत्नसे कलकत्ता आर्ट स्कूलमें आपके चित्रोंकी प्रदर्शिनी हुई।

११ अप्रैल, १९३२ को आप श्री केदारनाथ चट्टो-पाध्याय और श्री अमिय चक्रवर्तीके साथ हवाई-जहाज़ द्वारा ईरानके रज़ाशाह पहलवीका निमंत्रण पाकर वहाँके लिए रवाना हुए। बुशायर और शीराज़में आपका सार्वजनिक रूपसे शाही स्वागत हुआ। वहीं आप हाफ़िज़की समाधि देखने गए। इसके बाद आप इस्पहान, तेहरान आदि होते हुए बग़दाद (ईराक) गए, जहाँके बादशाहने आपका हृदयसे स्वागत किया। वहाँसे आप ३ जून, १९३२ को भारत लौटे। यहाँ कलकत्ता-विश्वविद्यालयने

आपका स्वागत किया और अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। 'लीडर'-सम्पादकके अनुरोधपर आपने साम्प्रदायिक निर्णयपर मत देते हुए साम्प्रदायिक भेद-भाव मिटाकर संयुक्त रूपसे कार्य करनेपर ज़ोर दिया। 'पुनश्च', 'परिशेष' और 'कालेर यात्रा' शीर्षक रचनाएँ आपने इसी समय लिखीं। २० सितम्बर, १९३२ को साम्प्रदायिक निर्णयके विरुद्ध गांधीजीके आमरण अनशनका समाचार सुनकर आपको हार्दिक क्षोभ हुआ और आप उसे भंग करानेके लिए गांधीजीको देखने पूना गए। यहाँसे आपने ब्रिटेनके प्रधान-मंत्री श्री रैमज़े मैकडोनल्डको तार दिया कि वे गांधीजीका अनुरोध (जो एक समझौतेके रूपमें था) स्वीकार कर लें। प्रधान-मंत्रीके ऐसा कर लेनेपर गांधीजीने अपना अनशन भंग कर दिया। हरिजनोंके मंदिर-प्रवेशके सम्बन्धमें आपने ज़मोरिनको एक पत्र भी लिखा।

२ दिसम्बर, १९३२ को आपने शान्तिनिकेतनमें महामना मालवीयजीका स्वागत किया। दूसरे वर्ष आपने 'शाप-मोचन'-शीर्षक नृत्य-नाट्य और कई निबन्ध (भाषण) लिखे। एक वक्तव्य निकालकर आपने प्रेसिडेंट पटेल द्वारा भारतके विरुद्ध होनेवाले झूठे प्रचारका भण्डाफोड़ करनेके आयोजनका समर्थन किया। गांधीजीके दुबारा भूख-हड़ताल करनेकी संभावनापर आपने उन्हें तार देकर ऐसा न करनेका अनुरोध किया। बंगाल-गवर्नरसे नज़र-बन्दोंको छोड़नेकी इस वर्ष जो अपील की गई, उसपर सबसे पहले आपने ही हस्ताक्षर किए। इन्हीं दिनों अण्डमानमें कालेपानीके जो क़ैदी भूख-हड़ताल कर रहे थे, उन्हें आपने उसे तोड़ देनेके लिए तार भेजा। इसी समय कलकत्तेमें आपका नाटक 'ताशेर देश' खेला गया। 'चाण्डालिका' की कई कविताएँ और 'छन्द'-शीर्षक निबन्ध आपने कलकत्तेके साहित्यिकोंकी उपस्थितिमें पढ़े। इसी समय 'विचित्रा'की कविताएँ प्रकाशित हुईं। इस संग्रहको आपने श्री नन्दबाबूको उनकी वर्षगाँठके उपलक्ष्यमें भेंट किया। नवम्बर १९३३ में आप शान्तिनिकेतनके कला-कारोंके साथ बम्बई गए, जहाँ 'टैगोर-नाट्य-सप्ताह' मनाया गया। वहाँ शान्तिनिकेतनके छात्र-छात्राओंने 'शापमोचन' और 'ताशेर देश'का अभिनय किया, जिसमें कविने स्वयं भाग लिया। यहीं आपके तथा कला-भवनके अन्य चित्र-कारोंके चित्रोंकी एक प्रदर्शिनी भी हुई। बम्बई, वाल्टेयर तथा हैदराबाद (दक्षिण) में भाषण देते हुए आप कलकत्ता लौटे। इस वर्ष आपके 'बाँसुरी' (नृत्य-नाट्य) और 'दुइ बोन' (उपन्यास) ग्रन्थ प्रकाशित हुए।

३ जनवरी, १९३४ को भारत-कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू शान्तिनिकेतन देखने आईं। इसके कुछ ही समय बाद बिहारका भयंकर भूकम्प आया, जिसके पीड़ितोंकी सहायताके लिए सभी राष्ट्रोंसे अपील करते हुए आपने श्री ऐण्ड्रूज़को इंग्लैण्ड तार दिया। इन्हीं दिनों बंगालमें गांधी-विरोधी आन्दोलन आरम्भ हुआ, जिसकी आपने ज़ोरदार शब्दोंमें निन्दा की। मई १९३४ में आप शान्तिनिकेतनके कलाकारोंको लेकर लंका गए, जहाँ आपके कई भाषण और नृत्य-नाट्योंके अभिनय हुए। इसी वर्ष आपके 'चार अध्याय' और 'म्लेच्छ' उपन्यास प्रकाशित हुए।

६ फरवरी, १९३५ को बंगाल-गवर्नर शान्तिनिकेतन देखने गए। उनकी सुरक्षाके लिए पुलिसका ज़रूरतसे ज़्यादा प्रबन्ध देखकर कविको बड़ा दुःख हुआ, और उन्होंने शान्तिनिकेतनके सब छात्र-छात्राओंको श्रीनिकेतन भेज दिया। गवर्नर महोदयने जब शान्तिनिकेतन-आश्रमका निरीक्षण किया, तो वह एकदम सूना था। इसी वर्ष काशी-विश्वविद्यालयने आपको 'डाक्टर आफ़ लिटरेचर' की उपाधिसे विभूषित किया। छात्र-सम्मेलनके अध्यक्ष होकर इसी वर्ष आप लाहौर गए, जहाँ आप सिक्ख सन्तों और विद्वानोंसे मिलकर बहुत प्रभावित हुए। ७ मईको शान्तिनिकेतनमें आपकी ७५ वीं वर्षगाँठ बड़े समारोहके साथ मनाई गई, जिसके बाद आपने श्यामली नामकी एक कच्चे घरवाली कुटियामें प्रवेश किया। इस वर्ष पूजाके अवसरपर आपका नाटक 'शारदोत्सव' खेला गया, जिसमें आपने संन्यासीका अभिनय किया। इन्हीं दिनों जापानके प्रसिद्ध कवि योने नागूची शान्तिनिकेतन देखने आए और कविको अपनी बहुत-सी कविताएँ सुनाईं तथा स्वयं भी उनकी बहुत-सी रचनाएँ सुनीं। पाठकोंको स्मरण होगा कि बादमें इन्हींसे पत्र-व्यवहारके रूपमें कविका जापानकी साम्राज्यवादी नीतिको लेकर ख़ासा वाद-विवाद चला, जिसमें आपने चीनपर हुए जापानके आक्रमणकी कड़े शब्दोंमें निन्दा की।

### १९३६-४१ : ७५ से ८१ वर्ष तक

फरवरी, १९३६ में बंगालमें 'शिक्षा-सप्ताह' मनाया गया, जिसमें शिक्षा और साहित्यपर आपके कई भाषण
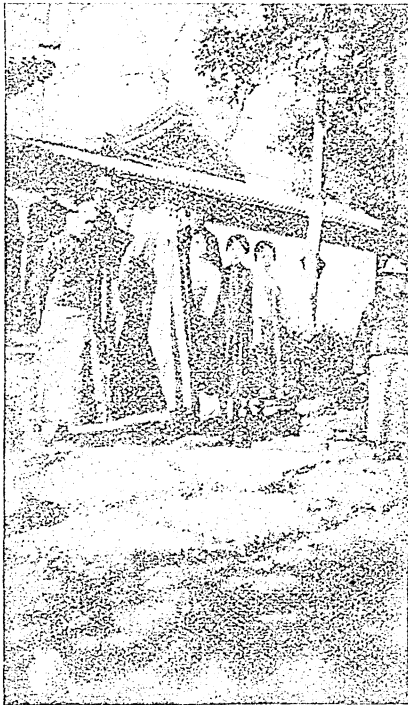
पिकिंगके क्रेसेण्ट मून क्लबमें रवीन्द्रनाथ (१९२४ ई०)।

हुए तथा कई नाटक भी खेले गए। इन्हीं दिनों विश्व-भारतीके लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करनेको आप शान्तिनिकेतनके कलाकारोंके साथ पटना, प्रयाग तथा दिल्ली आदि गए। उन दिनों गांधीजी दिल्लीमें ही थे। उन्हें आपका इस वृद्धावस्थामें नृत्य और संगीतके अभिनय द्वारा विश्वभारतीके लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करना रुचा नहीं। उनके आदेशपर उन्हींके एक भक्तने आपको ६० हज़ार रुपए भेंट किए, जिन्हें लेकर आप शान्तिनिकेतन लौट आए। इसी अवसरपर दिल्ली-म्यूनिसिपैलिटीने आपको एक अभिनन्दन-पत्र भेंट करनेका निश्चय किया, जिसे सरकारने अस्वीकार कर दिया। इसपर जनताकी ओरसे एक सार्वजनिक सभा करके आपको मानपत्र भेंट किया गया। यहाँसे मेरठ होते हुए—जहाँ म्युनिसिपैलिटी और ज़िला-बोर्डकी ओरसे आपको मानपत्र भेंट किए गए—आप कलकत्ता पहुँचे और साम्प्रदायिक निर्णयके विरुद्ध हुई एक सार्वजनिक सभाका नेतृत्व किया। इसके विरुद्ध हिन्दुओंकी ओरसे ब्रिटेनके प्रधान-मन्त्रीको दिए गए प्रार्थना-पत्रपर आपने भी हस्ताक्षर किए। इसी वर्ष ढाका-विश्वविद्यालयने भी आपको 'डाक्टर आफ़् लिटरेचर'की उपाधिसे सम्मानित किया। पूजाके अवसर पर कलकत्तेमें आपका नया नाटक 'परिशोध' खेला गया। इस वर्ष मनाई गई श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायकी ६० वीं वर्षगाँठपर आप भी उपस्थित हुए और उन्हें एक मानपत्र भेंट किया।

१७ फरवरी, १९३७ को आपने कलकत्ता-विश्व-विद्यालयमें दीक्षान्त भाषण दिया और कई साहित्यिक तथा सामाजिक सभा-सम्मेलनोंमें भी अध्यक्ष-पदसे बड़े मार्मिक भाषण दिए। १४ अप्रैलको चीन और भारतके सांस्कृतिक सम्बन्धको चिरस्थायी बनाने तथा शान्ति-निकेतनमें चीनी साहित्य एवं संस्कृतिके अध्ययनका केन्द्र स्थापित करनेके विचारसे आपने वहाँ 'चीना भवन' क़ायम किया। इन्हीं दिनों स्वास्थ्य-सुधारके लिए आप अल्मोड़ा गए, जहाँ 'विश्व-परिचय'की रचना की। आन्ध्रके भारती तीर्थने आपको इसी वर्ष 'कविसम्राट'की उपाधिसे विभूषित किया। इसी वर्ष आपने 'वर्षा-मंगल' नाटक लिखा, जो कलकत्ता और शान्तिनिकेतनमें खेला गया; और 'प्रान्तिक' की कविताएँ भी लिखीं। मार्च १९३८ में उस्मानिया-विश्वविद्यालयने आपको 'डाक्टर आफ़् लिटरेचर'की उपाधिसे सम्मानित किया। कलकत्तेमें इस वर्ष आपका 'चाण्डालिका' नाटक खेला गया, जिसमें आप दर्शक-रूपमें शामिल हुए। 'बँगला-भाषा-परिचय', 'सेंजुति'की कविताएँ तथा 'मुक्तिर उपाय' नाटक आपने

रवीन्द्रनाथके जन्मोत्सवका मांगल्य द्रव्य।

इसी वर्ष लिखे। वाइसरायकी पत्नी और पुत्री इस वर्ष शान्तिनिकेतन देखने आईं।

३१ जनवरी, १९३९ को पं० जवाहरलाल नेहरूने हिन्दीकी विशेष उन्नति, प्रचार एवं अध्ययनके लिए शान्तिनिकेतनमें 'हिन्दी-भवन'का उद्‌घाटन किया। इसी वर्ष राष्ट्रपति सुभाष बाबू भी दो बार शान्तिनिकेतन पधारे। उड़ीसाकी कांग्रेस-सरकारके निमन्त्रणपर आप ७ मईको पुरी गए, जहाँ आपकी ७९ वीं वर्षगाँठ बड़े समारोहके साथ मनाई। इसी वर्ष सुभाष बाबूके निसन्त्रणपर आपने कलकत्तेके 'महाजाति-सदन'का शिलान्यास किया।

फरवरी, १९४० में गांधीजी शान्तिनिकेतन आए। इस वर्ष कविने कई प्रदर्शिनियों और भवनोंका उद्‌घाटन किया। १४ अप्रैलको कविकी ८० वीं वर्षगाँठ बड़े सादे और शान्त रूपसे शान्तिनिकेतनमें मनाई गई। ७ अगस्तको भारतके चीफ़-जस्टिस सर मारिस ग्वेयरकी अध्यक्षतामें एक विशेष दीक्षा-समारोह हुआ, जिसमें आक्सफोर्ड-विश्व-विद्यालयकी ओरसे कविको 'डाक्टर आफ् लैटर्स'की उपाधिसे विभूषित किया गया। १९ सितम्बरको स्वास्थ्य-सुधारके लिए आप कलिम्पौंग चले गए; पर वहाँ स्वास्थ्य सुधरनेके बजाय और बिगड़ गया, जिसके परिणाम-स्वरूप इलाजके लिए आप कलकत्ता लाए गए। यहाँ डा० विधानचंद्र राय तथा कई अन्य प्रसिद्ध डाक्टरोंके इलाजसे आप कुछ ठीक हुए और फिर विश्राम करने शान्तिनिकेतन चले गए। ९ दिसंबर, १९४० को चीनके परीक्षा-विभागके अध्यक्ष ताइ-ची ताओने आपसे भेंट की। अस्वस्थ होनेके कारण आपने रोग-शय्यापर लेटे ही लेटे उनसे विचार-विनिमय किया। आपकी 'नवजातक', 'सानाई', 'छेलेबेला', 'तिन संगी', 'रोगशय्या' और 'आरोग्य' आदि रचनाएँ इसी वर्ष प्रकाशित हुईं।

१४ अप्रैल, १९१४ को आपकी ८१वीं वर्षगाँठ मनाई गई। अस्वस्थताके कारण आपकी वर्षगाँठका उत्सव बहुत ही संक्षिप्त और सादगीपूर्ण रहा। इस अवसरपर दिया गया आपका संदेश 'सभ्यतार संकट' नामसे प्रकाशित हुआ है। कविके इस संदेशने देश-भरमें उनके प्रति लोगोंकी आस्था और प्रेम बढ़ा दिया। इस संदेशमें सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि जिस पाश्चात्य सभ्यताके वातावरणमें आप पले और पढ़े थे और जिसकी ख़ूबियोंके आप क़ायल थे, उसकी विफलता और कुरूपता आपने प्रत्यक्ष देखी और अंगरेज़ोंकी सदाशयतामें से आपका विश्वास उठ गया! इसी वर्ष त्रिपुराके महाराजने आपको 'भारत-भास्कर' की उपाधिसे सम्मानित किया। इस वर्ष आपकी 'गल्प-शल्प' और 'जन्मदिने' पुस्तकें तथा 'छेलेबेला' का अँगरेज़ी-अनुवाद (My Boyhood Days) प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष ब्रिटिश पार्लमेण्टकी सदस्या कुमारी इलेनर रैथबोनके भारतीयोंके नाम प्रकाशित खुले पत्रका आपने मुँहतोड़ जवाब दिया। जूनके अंतसे आपका स्वास्थ्य—जो गत वर्ष सितंबरसे ही बिगड़ रहा था—और ख़राब हो चला और बंगालके प्रमुख डाक्टरोंकी देख-रेखमें आपका इलाज होने लगा। कोई विशेष लाभ न होनेपर २५ जुलाईको आप कलकत्ता लाए गए, जहाँ ३० जुलाईको आपका आपरेशन हुआ। इस अस्वस्थताके समय भी आपने दो-एक कविताएँ लिखीं और इससे कुछ सप्ताह पूर्व दो-एक कहानियाँ भी। आपरेशनके बादसे आपकी स्थिति बराबर बिगड़ती गई, और ७ अगस्त (२२ श्रावण; १३४८ बं०) को दिनके १२ बजकर ७ मिनटपर आपका वैकुण्ठवास हो गया। (संकलित)

"मुझे विश्वास है कि मैं बार-बार भारतमें ही जन्म लूँगा, क्योंकि इसकी ग़रीबी, दुःख और व्याधिग्रस्तताके बावजूद मैं भारतको ही सर्वोपरि प्रेम करता हूँ।"

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
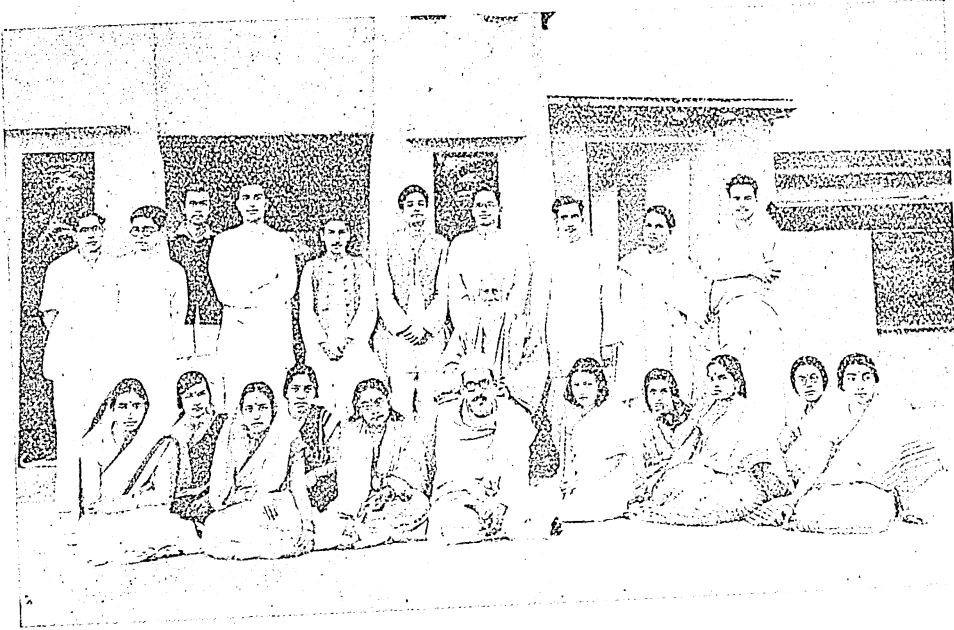
हिन्दी-भवन ( शान्तिनिकेतन ) के उद्‌घाटनके समय लिया गया वहाँके अध्यापकों
एवं छात्र-छात्राओंका समूह-चित्र । बीचमें गुरुदेव बैठे हैं ।
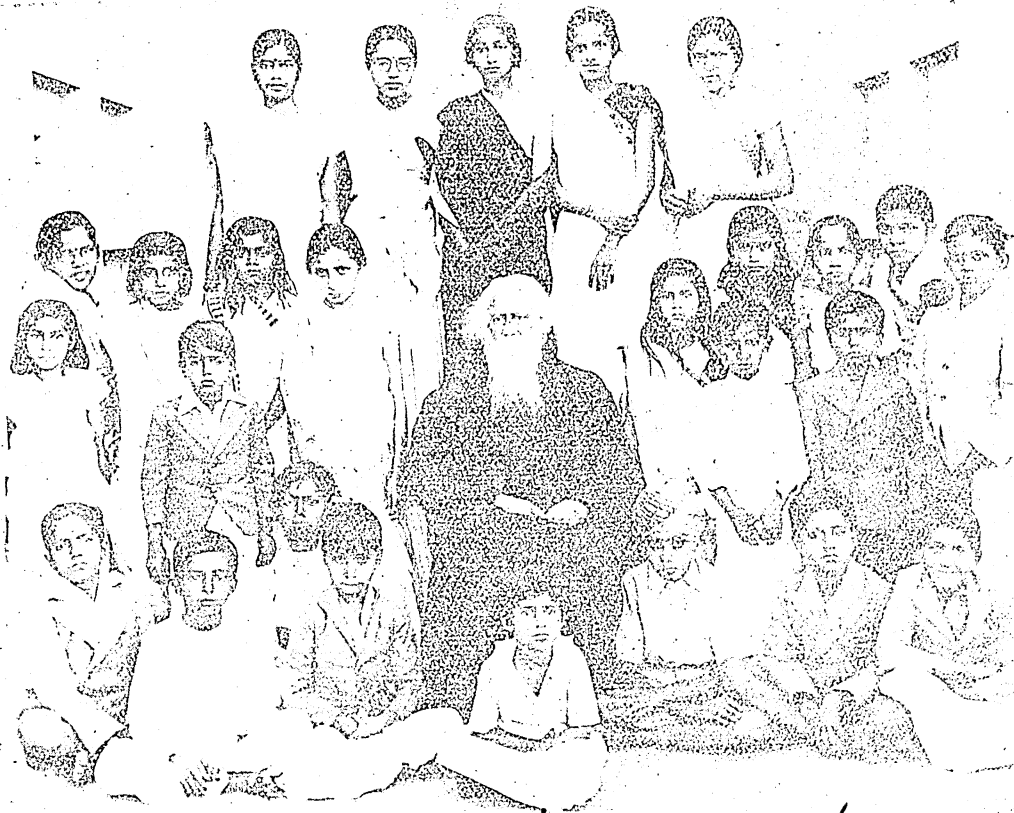
गुरुदेवके साथ हिन्दी-भवनके छात्र-छात्राओंका एक दूसरा चित्र ।

शान्तिनिकेतनकी छात्राओं द्वारा अभिनीत रवीन्द्रनाथके एक नृत्य-नाट्यका दृश्य ।
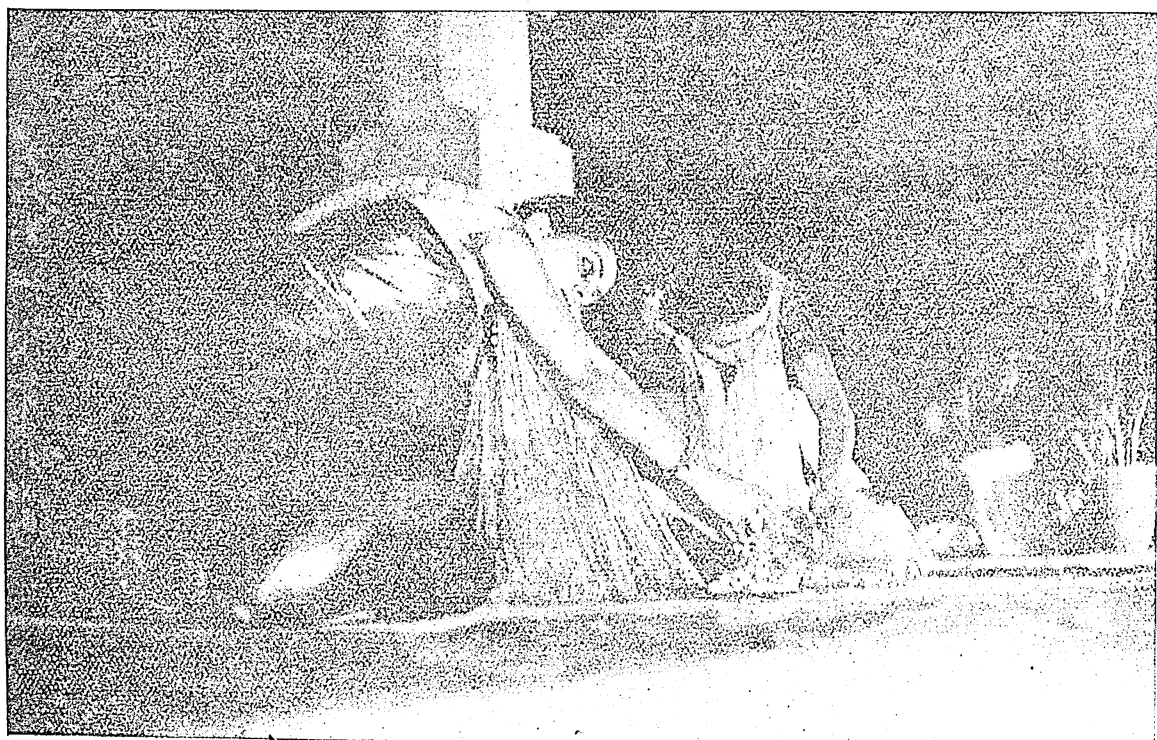
नृत्य-नाट्यकी एक कष्टसाध्य भूमिकाका दृश्य ।

# रवीन्द्रनाथका आश्रय

महामहोपाध्याय श्री विधुशेखर शास्त्री

सँगाब्द १३११ की बात है। तब मैं काशीमें छब्बीस वर्षका संस्कृतका एक साधारण विद्यार्थी था। वहाँ मैंने सात साल काटे थे। दिन-रात संस्कृत पढ़ता, संस्कृत लिखता, संस्कृतमें सभा-समिति करता और मासिक पत्रिका निकालता। काशीकी संस्कृत-आलोचनाके आसपासकी अवस्था और आबहवामें संस्कृतसे भिन्न और कुछ है, इसे जाननेकी मुझे ज़रा भी इच्छा न होती। इसी समय काशीमें एक अद्वितीय नैयायिक महामहोपाध्याय बंगाली पंडित भी रहते थे। एक दिन रवीन्द्रनाथके सम्बन्धमें बात छिड़नेपर उन्होंने कहा था—"रवि ठाकुर अच्छा लिखते हैं; किन्तु दाशुरायके समान नहीं।" मेरे समान टोलके साधारण छात्रोंका रवीन्द्रनाथके लिखनेके विषयमें उस समय क्या भाव था, इसीसे समझा जा सकता है।

उस समय काशीमें सुप्रसिद्ध वाग्मिनी एनी बेसेन्टके उद्यम और उत्साहसे थियोसफिकल सोसाइटीका बहुत अधिक प्रभाव था। मेरे कईएक मित्र उससे सम्बद्ध थे। उन लोगोंके साथ कभी-कभी मैं भी वहाँ जाया करता था। उसका आफ़िस एक बग़ीचेके परिष्कार-परिच्छन्न भवनमें था और उसमें बहुत सुन्दर एक पाठागार था। उसे देखकर मेरे मनमें होता, यदि मैं इसी तरहके एक बाग़वाले मकानमें रहकर पाठागारमें पढ़नेकी सुविधा पाता, तो कितना अच्छा होता! अन्तर्यामी विश्वनाथने मेरे अन्तरकी इस प्रार्थनाको सुन लिया था। वे मेरे अगोचरमें ही उसकी व्यवस्था करने लगे थे।

रथी और संतोष कलकत्ता-विश्वविद्यालयकी प्रवेशिका परीक्षामें उत्तीर्ण हुए थे। अब वे उच्चतर पाठ पढ़ेंगे। उन लोगोंको संस्कृत पढ़ानेके लिए एक आदमीकी ज़रूरत थी। उस समय शान्तिनिकेतन-आश्रममें स्व० मोहित बाबू थे, और हम लोगोंके पूजनीय श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ सान्याल दादा आश्रमकी सारी व्यवस्थाका पर्यवेक्षण करते थे। भूपेन दादा मुझे जानते थे। सभी लोगोंसे परामर्श करके यहाँ आ जानेको एक पत्र लिख भेजा। गर्मियोंकी छुट्टियोंके बाद ही मेरे यहाँ आनेकी बात तय थी; किन्तु ऐसा न हो सका। माघ महीनेमें मेरा यहाँ आना निश्चित हुआ।

शान्तिनिकेतनके सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं जानता था। गुरुदेवको तब रवि ठाकुरसे भिन्न मैं कुछ नहीं समझता था। वे ठाकुर-परिवारकी संतान और कवि हैं, इसके अतिरिक्त उनके प्रति सम्मान और श्रद्धा करनेका मेरे लिए तब कोई भी कारण न था। काशीसे किस उद्देश्यसे मैं शान्तिनिकेतन आनेके लिए उद्यत हुआ था, कह नहीं सकता। भविष्यमें वहाँ मेरा अच्छा-बुरा क्या होगा, यह बात मेरे ध्यानमें ही नहीं आई थी। वहाँ आनेके पहले तो रुपये-पैसेकी बात ज़रा भी मेरे मनमें नहीं उठी थी। कारण, पैसा पैदा न करनेसे सांसारिक काम नहीं चलेगा, उस समय मेरी मानसिक अवस्था ऐसी नहीं थी। मेरे पिता जीवित थे, और मेरे बड़े भाईने संसारका सारा भार अपने ऊपर ले लिया था। मैंने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया था, इसीसे परिवारवालोंमें से किसीको मुझसे पैसा पानेकी आशा भी नहीं थी। जो कुछ भी हो, मेरी दक्षिणा ३०) मासिक स्थिर हुई थी।

फिर उस समय शान्तिनिकेतनकी किस चीज़ने मुझे काशीसे आनेके लिए आकर्षित किया था? संस्कृत-आलोचनाके इतने बड़े क्षेत्रका परित्याग करके क्यों मैं यहाँ आया था? किसी एक निर्जन-निरुपद्रव वाटिका-भवनमें पुस्तकालयके बीच पढ़ने-लिखनेकी आकांक्षा अत्यधिक थी, इसे मैं पहले ही कह चुका हूँ। जब मैंने सुना कि शान्तिनिकेतन एक लम्बे-चौड़े मैदानके बीच एक बग़ीचेमें स्थित है, वहाँ एक पुस्तकालय भी है और उसमें संस्कृतकी अनेक पुस्तकें हैं, तब मेरे यहाँ आनेकी बात तय पा गई। मेरे किसी-किसी निष्ठावान बन्धुने कहा—'रवि ठाकुरके संसर्गमें आकर तुम ब्राह्म होने जा रहे हो।' किसी-किसीने कहा—'जाओ, रवि बाबू बड़े आदमी हैं, उनके साथ रहनेसे तुम्हारा भला होगा।' जो कुछ भी हो, मैं यहाँ आनेके लिए तैयारी करने लगा।

११ या १२ माघको दोपहरमें बनारस-कैन्टोनमेन्टसे बोलपुर तकका टिकट कटाकर २॥ बजे मोग़लसराय स्टेशनपर उतरा। यहाँ गाड़ी बदलकर मुझे पंजाब मेलसे जाना था। यहाँ मेरी मुलाक़ात एक भद्र बंगाली सज्जनसे हुई। उन्होंने कहा—'पाँच-छः दिन हुए कि महर्षिका स्वर्गवास हो गया है।' मैं जल्दीसे अपनी गाड़ीमें जा बैठा। रातके १०॥ बजे गाड़ी मोकामा स्टेशन पहुँची। यहीं मैं उतर पड़ा। यहाँसे मुझे लूप-लाइनकी गाड़ीसे जाना था। गाड़ी बदलकर मैं सो गया। जितनी देर नींद नहीं आई, मैं शान्तिनिकेतनकी नाना रूप कल्पना-छवि आँकने लगा।

सबेरा हुआ। सांई स्टेशनपर आ पहुँचा था। उधरसे यह मेरी नई ही यात्रा थी, इससे ई० आई० आर० का एक टाइम-टेबिल साथ ले लिया था। उसीको देख-देखकर बोलपुर स्टेशनके आनेकी राह देखता रहा। अहमदपुर आ पहुँचा। इसके बाद ही बोलपुर है। उस समय इन दोनोंके बीच दूसरे दो स्टेशन नहीं थे। कोपाई नदीका पुल पार करके रेल-लाइन एक गम्भीर गड्ढेसे होकर गुज़री। यह जगह चारों ओरसे ऊँची है, इसीलिए रेल-लाइनको समतल ज़मीनपर बिछानेके लिए यहाँकी मिट्टीको खोदकर लाइनके दोनों ओर फेंक दिया गया है। एक तो स्वभावतः यह स्थान अत्यन्त ऊँचा है और फिर उसके ऊपर बहुत ज़्यादा मिट्टी फेंकनेसे रेल-लाइनके दोनों ओर छोटे-मोटे पहाड़-से दिखाई पड़ते थे। बहुत दिनोंसे वर्षाके जलकी धारसे मिट्टीके धुल जानेसे इस कृत्रिम पहाड़की कटानोंने अति विचित्र आकार धारण कर लिया था। देखनेमें ये बड़ी ही अच्छी मालूम पड़ती थीं। रेलगाड़ी जब इसी रास्तेसे चली, तब मनमें यह विचार उठा कि यदि शान्तिनिकेतन कहीं इसीके नज़दीक हो, तो मैं यहीं घूमनेके लिए आया करूँगा। इसमें कोई कमी न होगी। इसके बाद बोलपुर आया। मैं गाड़ीसे उतर पड़ा।

बाहर आकर देखा, बहुत-सी बैलगाड़ियाँ खड़ी हैं। उस समय साधारण आदमी शान्तिनिकेतनको उतना नहीं जानते थे। भुवनडांगार काच-बांगला नामसे ही वे विशेष परिचित थे। मेरे शान्तिनिकेतन कहनेपर पहले तो गाड़ीवान समझ ही नहीं सके। जो भी हो, चार आनेमें एक गाड़ी करके मैं शान्तिनिकेतनके लिए रवाना हुआ। कुछ दूर उत्तरकी ओर आनेके बाद गाड़ी भुवनडांगा ग्रामके बीचसे होकर एक बड़े बाँधके दक्षिण ओर आ उपस्थित हुई। यह बाँध उस समय और भी लम्बा-चौड़ा था। उसके पश्चिम दिशामें ताड़-वृक्षोंकी एक बहुत घनी और विस्तृत श्रेणी थी। प्रथम दर्शनमें ही मुझे यह कितनी सुन्दर दिखाई पड़ती थी, कह नहीं सकता। उस समय बाँधमें बहुत ज़्यादा पानी रहता था। शान्तिनिकेतनकी पद्मा और चित्रा नामक दो छोटी-छोटी नावें इसीमें थीं। इनमें से एक दीनू बाबूकी थी। इसी नौकाका डाँड़ खींचकर, पाल लगाकर एक दिन कितने ही खेल खेले गए थे। कालक्रमसे बाँधकी अवस्था ख़राब हो जानेपर कुछ दिन हुए इसका पुनः संस्कार किया गया है। बाँधके किनारे बैलगाड़ी खड़ी कराकर मैं हाथ-मुँह धोने लगा। यहींसे मैं देख सका कि शान्तिनिकेतनके शाल-वृक्षोंकी श्रेणी दिखाई पड़ रही है।

बैलगाड़ीमें मैं फिर जा बैठा। देखते ही देखते वह धीरे-धीरे आदि-कुटीरके निकट आ उपस्थित हुई। मैं बैलगाड़ीसे उतर पड़ा। लड़कोंके रहनेके लिए ये घर ही आश्रममें सबसे पहले तैयार किए गए थे, इसीसे इनको यह नाम दिया गया है। इनकी दीवारें मिट्टीकी थीं और ये रानीगंज-टाइलसे छाए हुए थे। मकानसे लगे हुए दक्षिण और उत्तरमें एक-एक पतले बराम्दे थे। उस समय छात्रोंके लिए एकमात्र यही घर था। उस समय उसके उत्तर-पूर्वमें एक पेड़के नीचे एक बहुत बड़ा कुआँ था। इसीके नज़दीक ईशान कोणपर एक छोटी-सी झोंपड़ी थी, जिसका चिह्न आज भी देखा जाता है। इसके पश्चिमवाली कोठरीमें दीनू बाबू रहते थे। बीचकी कोठरी शिक्षकोंके बैठने-उठनेके लिए थी और पूरबवाली कोठरीमें कौन रहता था, याद नहीं। महर्षिके श्राद्धके लिए दीनू बाबू कलकत्ता चले गए थे, इसीलिए उन्हींकी कोठरीमें मुझे रहनेके लिए स्थान मिला।

पहली बार देखनेमें ही आश्रम मुझे अच्छा लगा। धीरे-धीरे उसके चारों ओर घूम-फिरकर मैं वहाँका सारा दृश्य देखने लगा। आश्रम शाल और ताड़ वृक्षोंकी श्रेणीसे परिवेष्ठित एक बग़ीचेके बीचमें था। मेरे मकानके नज़दीक ही विशाल अतिथि-भवन था। यह एक दोतल्ला मकान था। उसके सामने लाल कंकड़ोंसे ढँका एक चौड़ा रास्ता था। इसके दोनों किनारोंपर बड़े-बड़े आमलक

वृक्षोंकी पंक्तियाँ थीं। उसके बाद एक बहुत बड़ा फाटक था। उसके ऊपर सुनहले अक्षरोंमें लिखा हुआ था—"ॐ तत् सत् ब्रह्म। एकमेवाद्वितीयम्।" उसके पास ही पूरबकी ओर मन्दिर था, जिसकी सभी दीवारें शीशेकी थीं, और कोई आवरण नहीं था। फ़र्श संगमरमरसे बँधा था। सामने पूरबकी ओर एक बहुत अच्छा बराम्दा था, वहाँ सब कुछ परिष्कार-परिच्छन्न और निर्जन-नीरव था। मन्दिरके सामने दक्षिणकी ओर एक छोटी-सी फुलवारी थी, जिसमें छोटी-छोटी वेदियाँ बनाकर उनमें अनेक प्रकारके फूल लगाए गए थे। इन वेदियोंपर बहुत अच्छी-अच्छी बातें लिखी हुई थीं। मन्दिरके प्रकाण्ड तोरणपर "सर्वे वेदा यत्पद-मामनन्ति" आदि उपनिषदके श्लोक सोनेके पानीसे बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखे हुए थे। आश्रमके बहुत-से स्थानोंमें ही उपनिषदके वाक्य लिखे या उत्कीर्ण थे। वह मन्दिर मुझे बहुत अच्छा लगा था। मन्दिरके भीतर पश्चिम ओर आचार्यका आसन था। उसकी दोनों बगलोंमें और सामने धर्मग्रन्थ रखनेके लिए संगमरमरकी छोटी-छोटी चौकियाँ थीं। पूरबकी ओर संगीत करनेवालोंके आसन और बाजे थे। उत्तर और दक्षिणमें पूरब-पश्चिमकी ओर उपासकोंके लिए कार्पेटके आसन थे। प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल नियमित रूपसे धूप-धूना जलाकर और काँसेका घंटा बजाकर उपासना होती थी, भले ही वहाँ कोई आय या न आय। यही मन्दिरके प्रतिष्ठाता महर्षि देवेन्द्रनाथकी व्यवस्था थी। यह देखकर मेरा मन भर आया।

यहाँसे थोड़ी दूरपर वायव्य दिशाकी ओर महर्षिका साधना-स्थल था। दो सप्तपर्णी वृक्षोंके नीचेकी वेदियोंमें से एक संगमरमरकी थी। इसीके ठीक ऊपर एक पत्थरके टुकड़ेपर "वह मेरी आत्माका सुख है, मनका आनन्द है, आत्माकी शान्ति है," आदि कितने ही वाक्य खुदे हुए थे। इन दो सप्तपर्णी वृक्षोंकी एक प्रधान डालपर लिखा हुआ देखा—"सत्यात्मप्राणाराम"। वेदीके सामने कुछ दूरीपर संगमरमरके एक टुकड़ेपर लिखा हुआ था—"ॐ शान्तं शिवमद्वैतम्"। उस समय यह स्थान लता-पत्तोंसे ख़ूब आच्छादित था। दोनों सप्तपर्णी वृक्षोंके ऊपरी हिस्सेको एक मालती लताने ढँक रखा था। ये सब मुझे क्रमशः अधिकाधिक आकर्षित करने लगे।

मैं पुस्तकालय देखने गया। उस समय वह बिलकुल छोटा था। वर्तमान पुस्तकालयके बीचके सामनेवाले बराम्देसे जो एक बड़ा घर दिखाई पड़ता है, वही उस समय आश्रमका पुस्तकालय था। यद्यपि उसमें पुस्तकोंकी संख्या अधिक नहीं थी; फिर भी जो थीं, चुनी-चुनी पुस्तकें थीं। वहाँ अँगरेज़ीकी सारी पुस्तकें गुरुदेवकी थीं और संस्कृतकी सारी पुस्तकें आदि ब्राह्मसमाजकी। आदि ब्राह्मसमाजके पुस्तकालयमें बहुत-सी पुस्तकें संगृहीत थीं। वेद, वेदान्त, उपनिषद, तन्त्र आदि अनेक विषयोंकी पुस्तकें इस संग्रहमें थीं। स्वर्गीय रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदीके अनुरोधके बाद ये पुस्तकें बंगीय साहित्य-परिषदको दान की गई थीं। आदि-ब्राह्मसमाजके पुस्तकालयमें उस समयकी मुद्रित बहुत-सी संस्कृतकी पुस्तकें थीं। बंगाल एशियाटिक सोसाइटीसे प्रकाशित समस्त संस्कृत-ग्रंथ इस संग्रहमें वर्तमान थे। जिन ग्रंथोंको मैंने नहीं देखा था, उन्हें देखकर मेरा मन उत्साह और आनन्दसे भर उठा। काशीमें मेरा मन जो-कुछ चाहता था, वह सब उसे यहाँ मिल गया। इसके अतिरिक्त इसके चारों ओरके प्राकृतिक सौन्दर्यके बारेमें तो मैं कुछ कहूँगा ही नहीं। जिधर देखता, उधर ही मेरी आँखें आबद्ध हो जातीं। केवल देखने ही देखनेसे आशा दूर नहीं होती।

आश्रममें छोटी-छोटी उम्रके सिर्फ़ बीस-पचीस छात्र थे। आश्रम उस समय ब्रह्मचर्याश्रमके नामसे प्रसिद्ध था। लड़के ब्रह्मचारी थे। जहाँ तक संभव था, वे व्रत पालन करते। वे बड़े सवेरे स्तोत्रपाठ करके बिस्तरेसे उठते, थोड़ा व्यायाम करते, स्नान-संध्या करते और सब एकत्र होकर स्तोत्रपाठ करते। वे आतप और निरामिष आहार करते, जूते और छातेका व्यवहार न करते और अपना काम अपने हाथसे करते। वे अपने शिक्षकोंके आज्ञानुवर्ती थे। संयम और विनयमें वे अभ्यस्त थे और थे अतिथि-परिचर्यामें उत्साही। अध्ययन करनेके समय वे एक लम्बा गेरुआ कुर्त्ता पहनते। पेड़के नीचे अध्यापकको प्रणाम करके झाड़ू देते और पैर पोंछ अपने-अपने आसनोंपर बैठकर आनन्दसे पढ़ते-लिखते। वे आनन्दसे खेलते-कूदते। मैंने पहले किसी दिन भी ब्रह्मचर्य पालन नहीं किया था। इन लड़कोंको देखकर ब्रह्मचर्य-पालनकी मेरे मनमें इच्छा उत्पन्न हुई।

इसी प्रकार देखते-सुनते कई दिन गुज़र गए। मेरा कोई कार्यक्रम उस समय तक भी निश्चित नहीं हो सका था। कारण, रवीन्द्रनाथ तब तक कलकत्तेसे वापस नहीं

लौटे थे। मुझे मालूम हुआ था कि वे स्वयं सब कुछ निश्चित कर देंगे। इसी बीच एक दिन सुना गया कि वे रातमें आ रहे हैं और दूसरे दिन सबेरे मेरी उनसे मुलाक़ात होगी। दीनू बाबू, अजित बाबू और सत्य बाबू (गुरुदेवके मझले जामाता) आदिके साथ उसी रातको ही उनसे मेरी मुलाक़ात हुई।

सुप्रभात हुआ। ब्रह्मचारियोंका नियमित कार्य चल रहा था। थोड़ा दिन चढ़ आया था। रवीन्द्रनाथ आदि-कुटीरके सामने आ खड़े हुए। उनके साथ दो-एक अध्यापक भी थे, जिनके नाम मुझे याद नहीं। एक आदमीने आकर मुझसे कहा कि गुरुदेव तुम्हें बुला रहे हैं। मैं जल्दीसे उनके यहाँ पहुँचा। दूरसे ही देखा, वे चहलक़दमी कर रहे हैं। कैसी उज्ज्वल मूर्त्ति थी! पितृ-श्राद्धके उपलक्ष्यमें उन्होंने मुण्डन कराया था, इससे उनका चेहरा और भी चमक रहा था। उन्होंने सफ़ेद पशमीनेका एक आपादलम्बित चोग़ा पहन रखा था। वहाँ पहुँचकर मैंने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने भी नमस्कार किया। प्रथम दर्शनमें ही वे मुझे इतने अच्छे मालूम पड़े कि मैं उन्हें प्यार करने लगा, और मुझे लगा कि उन्होंने भी मुझे स्नेह-भरी निगाहसे देखा है। बादमें यह सोचकर मेरे मनमें भावना उठी कि जिसे संस्कृतमें 'तारामैत्रक' कहा जाता है, वही हम लोगोंको हुआ था। एक आदमीकी आँखोंकी पुतलियोंके साथ दूसरे व्यक्तिकी आँखोंकी पुतलियोंके मिलनेपर जो प्रेम उत्पन्न होता है, उसीका नाम 'तारामैत्रक' है। हम लोगोंमें बातें होने लगीं। जान पड़ा, पहली बातचीतमें ही हम लोगोंकी मैत्री हो गई। काव्य-सम्बन्धी क्या बातें हुई थीं, इस समय याद नहीं। मगर हाँ, एक बात याद है। बातचीत करते समय मैंने उन्हें निम्नलिखित श्लोक सुनाया था :—

जानकीहरणं कर्त्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारादासश्च रावणश्च यदि क्षमः ॥*

इसे सुनकर वे ख़ूब ख़ुश हुए थे।

उनके कलकत्तेसे वापस आनेपर आश्रमके प्रत्येक स्थान और कार्यमें मैं उनकी सत्ता अनुभव करने लगा। उस समयके शिक्षकोंमें से प्रत्येकमें साहित्य-आलोचनाका अनुराग, आकांक्षा और उत्साहका परिचय अति स्पष्ट रूपसे मुझे मिलने लगा। उस समय आश्रममें बहुत थोड़े-से ही लड़के थे। रवीन्द्रनाथसे लगाकर सभी लोगोंके वे ही संबल थे। उन्हीं लोगोंके साथ सभी लोगोंका समय कटता।

क्रमशः मेरा काम-काज स्थिर हो गया। मेरा पहला काम था रथी और सन्तोषको संस्कृत पढ़ाना। इसके अलावा विद्यालयके छोटे-छोटे ब्रह्मचारियोंको भी थोड़ी-थोड़ी संस्कृत पढ़ानेका भार मेरे ऊपर दिया गया। मैंने देखा कि मेरे आनेके पूर्व ही रथी और सन्तोषने अपने आप ही अश्वघोषका 'बुद्धचरित' पढ़ना आरम्भ कर दिया है। इसके साथ ही वे उसका बँगलामें अनुवाद भी कर रहे हैं। उनके सामने थे मूल संस्कृत-ग्रन्थ और काउवेल साहब द्वारा किया हुआ अंगरेज़ी-अनुवाद। वे रवीन्द्रनाथके उपदेशसे ऐसा करते थे। जहाँ तक सम्भव हो, उन्हें स्वयं मूल ग्रन्थका अर्थ करना पड़ेगा। इसमें वे कुछ दूर तक अग्रसर भी हुए थे। ब्रह्मचर्याश्रमके सभी छात्रोंने संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया था। जिसमें वे सहज ही संस्कृत सीख सकें, रवीन्द्रनाथने स्वयं इस प्रकारकी 'संस्कृत-सोपान' नामक एक पुस्तक नूतन प्रणालीमें लिखी थी। 'बंगीय शब्दकोश'के प्रणेता बन्धुवर श्रीयुक्त हरिचरण वन्द्योपाध्यायने उसीके आधारपर 'संस्कृत-प्रवेश' नामसे कई खण्डोंमें पुस्तकें लिखी थीं। मैंने देखा कि लड़कोंको वही पुस्तक पढ़ाई जाती है। मैं उन्हें इसी पुस्तकसे 'काकः कृष्णः'से आरम्भ करके संस्कृत पढ़ाने लगा। रथी और सन्तोषको मैंने सबसे पहले 'उत्तरचरित' पढ़ाना शुरू किया। उस समय वे भी ब्रह्मचारी ही थे। वे नंगे पाँव रहते, नियम-संयम पालन करते, दण्ड धारण करते और जूते-छातेका व्यवहार न करते। पढ़ाते समय

---

* यह श्लोक राजशेखरका बनाया हुआ है और यह 'सूक्ति-मुक्तावली' में पाया जाता है। इसके दो अर्थ हैं। पहला अर्थ है—रघुवंश अर्थात् रघुकुलमें रहते हुए जानकी-हरण अर्थात् सीता-हरण करनेमें यदि कोई समर्थ है, तो वह है रावण। दूसरा अर्थ है—रघुवंश अर्थात् कालिदास-कृत प्रसिद्ध 'रघुवंश' काव्यके रहते जानकी-हरण अर्थात् इस नामसे प्रसिद्ध (एवं 'रघुवंश' के समान सुन्दर) काव्य लिखनेमें यदि कोई समर्थ है, तो वह है कवि कुमारदास। इनका लिखा 'जानकी-हरण' काव्य है। —ले०
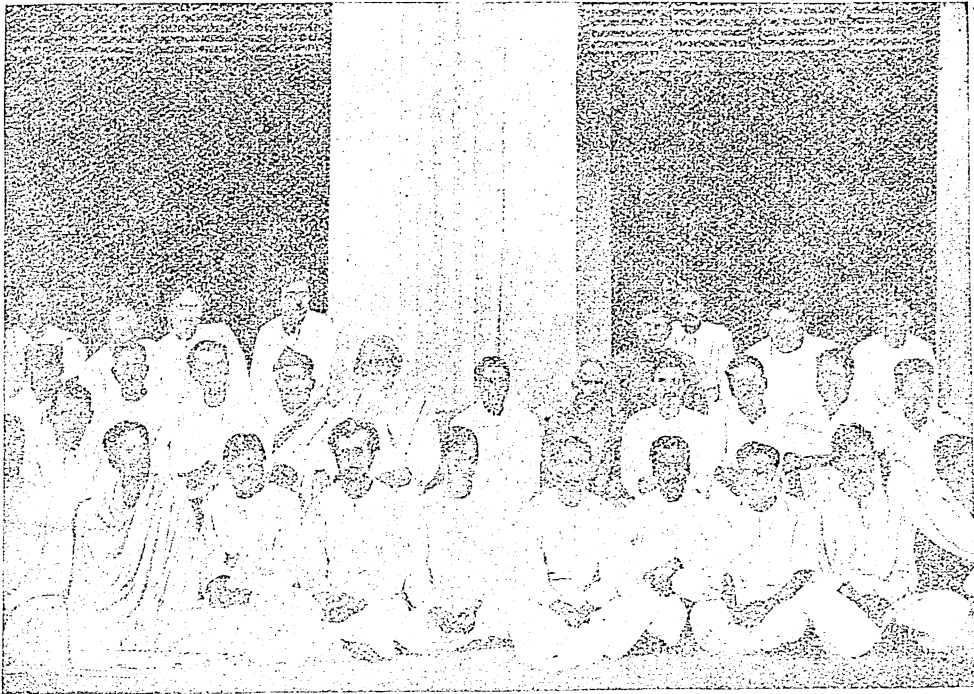
शान्तिनिकेतनके अध्यापकवर्गके साथ रवीन्द्रनाथ (१९२७ ई०)

उपाध्यायके प्रति उन लोगोंमें जैसी श्रद्धा, सम्भ्रम, विनय और संयम मैंने देखा था, वैसा अन्यत्र कहीं देखनेमें नहीं आया। मेरा काम बहुत थोड़ा था। इसलिए मेरे पास काफ़ी समय था। पुस्तकालयमें संस्कृतकी पुस्तकें भी प्रचुर संख्यामें थीं। ब्रह्मचारियोंके साथ ब्रह्मचर्य पालन करते हुए मैंने भी नये सिरेसे पढ़ना-लिखना आरम्भ कर दिया। मुझे मालूम है कि वे मुझसे ज़्यादा नहीं पढ़ते थे।

रवीन्द्रनाथकी कथा-वार्ता और आलाप-आलोचनाके कारण मैं क्रमशः उनकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित होता गया। कुछ ही दिन बीते होंगे कि उन्होंने रथी और सन्तोषको लक्ष्य करके मुझसे कहा—"देखिए, बौद्ध-युगका कोई अच्छा इतिहास नहीं है। आपके दोनों छात्रोंको इसका उद्धार करना होगा; किन्तु पालिके ज्ञानके बिना यह संभव न होगा। अतएव आप स्वयं पालि पढ़ें और अपने दोनों छात्रोंको पढ़ायँ।" यह कैसा अपूर्व आदेश था, कैसा अपूर्व उपदेश था! उस समय मैं पुस्तकालयकी अनादृत संस्कृत-पुस्तकोंको झाड़-पोंछ और सजा-सुजूकर उनसे परिचय प्राप्त करनेमें लग गया था। पढ़ने-लिखनेकी सुविधाके ख़यालसे पुस्तकालयके पास ही एक छोटी-सी कोठरीमें मैंने अपने पढ़ने और सोनेका इन्तजाम कर लिया था। इसमें किसीको आपत्ति भी नहीं थी और उस समय उतने कड़े नियम भी नहीं थे। उस समय मैं पुस्तकालयका एक अंग-सा हो गया था। जहाँ उसे हटाया जाता था, वहीं मैं सरक जाता था। एक बार उसे पुराने अस्पतालमें ले जाया गया। मैं भी उसीमें जाकर रहने लगा। ख़ैर, रवीन्द्र-नाथकी बात सुनकर मेरा उत्साह बहुत बढ़ गया। किन्तु मज़ेकी बात तो यह थी कि तब मैं पालिका एक अक्षर भी नहीं जानता था। काशी छोड़नेके पूर्व एक दिन मैंने हिन्दू-कालेजके पुस्तकालयमें रोमन लिपिमें छपी एक पालि-पुस्तक एक-आध मिनटके लिए देखी थी। उसे मैं कुछ भी समझ नहीं सका था—यहाँ तक कि पुस्तकका नाम भी नहीं। रोमन लिपिमें पालिका पढ़ना तब मेरे लिए असंभव था।

मैंने उत्साहमें उनका आदेश तो शिरोधार्य कर लिया; किन्तु चिन्ता इस बातकी हुई कि सिर्फ़ मुझे ही नहीं पढ़नी पड़ेगी, बल्कि छात्रोंको भी पढ़ानी पड़ेगी। यह कैसे होगा? इसमें कौन मेरी सहायता करेगा? यही सोचते हुए मैंने

पुस्तकालयमें जाकर देखा, पालिकी दो पुस्तकें हैं। यह यह बात गुरुदेवने मुझसे नहीं कही थी। एक थी फ्रैंक फार्टर (Fank Farter) की 'हैण्ड बुक आफ़ पालि' (Hand Book of Pali) और दूसरी चाइल्डर्स (Childers) की 'पालि-इंग्लिश डिक्शनरी' (Pali English Dictionary)। दोनोंको बाहर निकाला। दोनों पुस्तकोंके कितने ही पन्नोंको उलट-पलटकर देखा कि रवीन्द्रनाथने उनपर कहीं-कहीं नोट लिख रखा है। कोई पाठक उसे आज भी देख सकता है। मैं तो उसे देखकर आश्चर्य-चकित रह गया। बातोंके प्रसंगमें इसका ज़िक्र आनेपर वे हँस पड़े थे। भाषातत्त्वकी आलोचनाके लिए उन्हें वैसा करना पड़ा था। पालिकी आलोचनाके लिए जिन पुस्तकोंकी आवश्यकता थी, उन्हें मँगानेके लिए उन्होंने आज्ञा दी थी—यद्यपि आश्रमकी आर्थिक अवस्था उस समय अच्छी नहीं थी। प्रधानतः मेरे लिए मँगाई गई पुस्तकें ही आश्रमके पालि-पुस्तक-संग्रहमें संगृहीत हैं। उन्होंने केवल मुझे ही पढ़ने-लिखनेकी इस प्रकारकी सुविधा नहीं दे रखी थी, बल्कि प्रत्येक अध्यापकको, जिनकी जिस विषयके अध्ययनकी इच्छा थी, उन्हें उस विषयमें इसी प्रकारकी सुविधा मिली थी। कोई इस सुविधासे लाभ उठा सके थे, कोई नहीं, यह दूसरी बात है। प्रत्येक अध्यापक किसी एक विषयकी विशेष रूपसे आलोचना करेंगे, उन्हें ऐसा करना ही पड़ेगा, यही उनकी इच्छा थी। एक बार उन्होंने सोचा, बिना संस्कृत जाने बँगलाका अच्छा ज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिए जो शिक्षक बँगला पढ़ाते थे, उन्हें संस्कृत पढ़नेके लिए उन्होंने बाध्य किया था। अनिच्छापूर्वक उन्हें 'लघुकौमुदी' हाथमें लेनी पड़ी थी। शिक्षकोंको पढ़ने-लिखनेकी सुविधा प्रदान करनेमें वे कभी कुण्ठित नहीं हुए—चाहे धनका कितना ही अभाव क्यों न हो। मेरे प्रति तो उनकी करुणाकी कोई सीमा ही न थी। उन्हींके आदेश, निर्देश और उपदेशसे मैं अध्ययन करता चला आया हूँ। इससे मेरी आकांक्षा बढ़ती ही चली गई। एक बार मेरे मनमें यह भावना उत्पन्न हुई कि पारसियोंकी धर्म-भाषा अवस्ता कैसी है, उसे देखूँगा। उस समय मैं अस्वस्थ होकर हज़ारीबाग़में था। गुरुदेवको यह बात मैंने लिख भेजी। मेरे पत्रके जानेमें विलम्ब हो सकता था; पर उत्तर आनेमें एक दिनकी भी देर नहीं हो सकती। देखा कि मेरे पत्रके उत्तरके साथ १००) रुपएका नोट आ पहुँचा। मैं मुग्ध हो गया। उससे मैंने कितनी ही किताबें मोल लीं।

शान्तिनिकेतन मैं माघ मासमें आया था। फाल्गुनमें मैंने प्रवेशिका-परीक्षा दी थी। परीक्षा-फलके निकलनेपर मालूम हुआ कि मैं उत्तीर्ण नहीं हो सका। अंगरेज़ीमें मैं फेल था। मैं अपने कमरेमें बैठा था। प्रातःकाल गुरुदेवने आकर कहा—"महाशय, यह बहुत अच्छा हुआ है। आप फेल हो गए हैं, यह सुनकर मैं ख़ूब ख़ुश हूँ। पास करनेके बाद आप किसी कालेजमें चले जाते। वह सब जाने दीजिए। अबसे अच्छी तरह पढ़ना-लिखना शुरू कीजिए।"

अब मेरी बुद्धि ठिकाने आई। वे मुझे जब जैसा आदेश, निर्देश और उपदेश देते, जहाँ तक संभव होता, मैं उसे पालन करनेकी चेष्टा करता। मैं उनका महत्व पद-पदपर अनुभव करने लगा। पहले जाकर मैं उन्हें नमस्कार करता, पर यह अधिक दिन नहीं चला। उनके सामने सिर अपने-आप नत हो चला। फिर मैंने उन्हें प्रणाम करना शुरू किया, उनके पैरोंकी धूलि सिरपर चढ़ाने लगा, उनका अभिवादन करना आरम्भ किया और उसके बाद अन्तमें साष्टांग प्रणाम करके अपनेको धन्य समझा।

पहले-पहल मैं रवि ठाकुरके पास आया था। कुछ ही दिनोंके बाद किसीके 'रवि ठाकुर' कहनेपर मेरे कानोंको धक्का-सा लगता था। मैंने 'कवि' और 'रवि बाबू' भी कहकर उनका उल्लेख किया था; किन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते गए, मनकी गति भी परिवर्त्तित होती गई। फिर उन्हें 'गुरुदेव' कहकर मैंने पुकारना आरम्भ किया।

आश्रमके उत्तरमें रवीन्द्रनाथ और दक्षिणमें द्विजेन्द्रनाथ रहते थे। यह सोचकर मेरे मनमें भावना उठने लगी कि मैं हिमालय और विन्ध्याके बीच वास कर रहा हूँ। इस आर्यावर्त्तके बीच संस्कृतिका जो उद्भव है, वह अनन्य साधारण है।

क्रमशः आश्रमका आकार-प्रकार बढ़ गया। विश्व-भारतीकी स्थापना हुई। गुरुदेव मूलतः इसके द्वारा विश्वविद्यालय स्थापित नहीं करना चाहते थे, वह तो इसका बाह्य रूप था। वे विशेष रूपसे इसके द्वारा विश्वके साथ भारतका सम्पर्क स्थापित करना चाहते थे। मैंने जब "यत्र विश्वं भवत्येक नीड़म्"—वेद-वाक्य उनके निकट उपस्थित किया था, तो वे कितने आनन्दित हुए

थे। उन्हींकी इच्छा और आदेशसे विश्वभारतीके वार्षिकोत्सवपर उसके संकल्प-वाक्योंके साथ इसका भी पाठ किया जाता है। यदि कोई उपहास करना चाहे, तो करे; किन्तु मैं तो यही कहूँगा कि गुरुदेवने विश्वभारतीका समग्र पृथिवीके साथ ऐसा सम्पर्क स्थापित किया था, जिससे जान पड़ता कि मैं शान्तिनिकेतनमें नहीं हूँ, बल्कि समस्त पृथिवीमें वास करता हूँ। जाति-धर्म-देशका कोई विचार न करके जगतके सभी लोगोंके साथ हम लोगोंका सम्बन्ध था। सभीके साथ हम लोगोंकी मैत्री थी। संसारमें वास्तवमें जो मनीषी, ज्ञानी और विश्व-हितैषी थे, उनके साथ गुरुदेवने भाव-विनिमयका जो सम्बन्ध स्थापित किया था, सारे आश्रमवासियोंको उसके फलका उपभोग कराया था। विदेशोंके सुप्रतिष्ठित अध्यापकोंको निमंत्रितकर आश्रममें बुलानेका मुख्य उद्देश्य यही था कि उनके संसर्गसे पूर्व-पश्चिमकी संकीर्णता दूर होगी और सत्य तथा उदार सम्बन्ध प्रतिष्ठित होगा। रुपया देकर विश्वविद्यालयकी स्थापना की जा सकती है, विश्वभारतीकी नहीं। मुझे तो ऐसा लगता है कि प्रधानतः अपनी महिमासे उन्होंने विश्वभारतीके लिए जैसा अनुष्ठान किया था, बहुत ज़्यादा धन ख़र्च करके भी दूसरोंके लिए वैसा करना सम्भव न था।

यह कविकी कल्पना ही नहीं है। उनकी कल्पनाने वास्तविक मूर्त्तिका रूप धारण किया है। विश्वभारतीके—शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतनके—मकान, वहाँ आनेवाले पत्रों आदिकी बात छोड़ देनेपर भी यदि उसके भीतरी रहस्य और भावनाकी उपलब्धिकी कोई चेष्टा करे, तो वह विस्मित हुए बिना न रहेगा कि उनका कैसा विचार था और किस प्रकार उसने ऐसा रूप धारण किया था। कैसे यह सम्भव हो सका था! मैं जब सोचता हूँ, तो मुग्ध हो जाता हूँ। इसके साथ ही जब मुझे अपनी बात याद आती है, तो सोचता हूँ, कैसा मेरा सौभाग्य था! मैंने उनका आश्रय पाया था! वे मुझे कितना प्यार करते थे! प्यार करते हुए उन्होंने मुझे कितनी दिशाओंमें कितना कुछ दिया है! अपनी क्षुद्रता और अयोग्यतासे उसका मैं नाममात्र ही ले सका हूँ। किन्तु मैं जितना कुछ भी अल्प ले सका, वह मेरे लिए अल्प न था। उन्होंने मुझे ऐसा कुछ दिया है, जिसे पाकर मैं समग्र दिनके काम-काजके समाप्त होनेपर रातमें वेणुकुंजके सभी दरवाज़ों और खिड़कियोंको खोलकर सोनेके समय सोचता, मैं राजाके महलमें हूँ, मैं राजाके समान खाता हूँ, राजाके समान पहनता हूँ और राजाकी तरह सोता हूँ। हो सकता है कि आख़िरी बात ठीक न हो। कारण, राजा इस प्रकार निश्चिन्त मनसे आनन्दपूर्वक कम ही सो सकते हैं। मैं सोचा करता, उन्होंने विद्या-भवनके एक कोनेमें मुझे जो एक आसन दे रखा है, वह मेरा राजसिंहासन है और मैं उसका राजा हूँ। मुझे यदि उनका आश्रय न मिला होता, तो मेरे जीवनकी गति किसी दूसरी ही दिशामें होती, और अब मैं दिव्यदृष्टिसे देखता हूँ, मेरे जीवनकी वह गति मेरे लिए कल्याणप्रद न होती।

मैं इसी प्रकारके सुख-सागरमें बहता चला जा रहा था। किन्तु विधातासे यह सहा न गया—जैसे मेरे पीछे शैतान छिद्रान्वेषण कर रहा था। कैसा दैव-दुर्विपाक था! अदृष्टका कैसा परिहास था! आकाश निर्मल था। सहसा उसके एक कोनेमें न जाने कहाँसे एक टुकड़े काले मेघकी रेखा दिखाई पड़ी। तूफ़ान उठा। कुछ-कुछ उलट-पुलट हो गया। एक अघट घटना घटी, और वह घटी मेरे ही द्वारा। इससे गुरुदेवके हृदयपर एक ज़बरदस्त चोट पहुँची। किन्तु उनके प्रतिहत होनेसे मेरी ही छातीका पंजर टूट गया। आज भी मैं नहीं सोच सकता कि ऐसा होना किस प्रकार सम्भव हुआ। वे लोकोत्तर थे, उन्होंने उस आघातको अनायास ही छोड़ फेंका था। उनकी क्षमाका परिचय पाते मुझे देर न लगी। मेरे प्रति वे इसी प्रकार स्थायी रूपसे दयावान थे। किन्तु आज उसी बातकी स्मृति मेरे हृदयके प्रत्येक मर्मको खण्ड-खण्ड किए डालती है! हाय! कैसे मैंने ऐसा किया था! जो कुछ भी हो, इस विषयमें उन्होंने भविष्यवाणी की थी। यदि वह भविष्यवाणी सफल हो, तभी मुझे सान्त्वना मिलेगी, अन्यथा उसका दुःख मुझे आजन्म रहेगा।

उन्होंने मुझे आदेश और उपदेश दिया था, मुझपर अनुशासन किया था तथा मुझे ज्ञान-दान दिया था, वे मेरे गुरु थे। उन्होंने मुझे आश्रय दिया था और मेरी रक्षा की थी, वे मेरे पिता थे। उन्होंने मुझे स्नेह, आदर और प्यार दिया था, वे मेरे बन्धु थे। वे मेरे क्या नहीं थे?

# आह टैगोर !

**श्री कैलाश वर्मा 'शायक़'**

आह ऐ टैगोर ! ऐ सरमाअए[१] कौनो मकाँ[२] ;
आह ऐ रूहे ग़ेना[३], रूहे अदब[४], रूहे जहाँ ।
आह ऐ फ़ख़्रे-वतन, फ़ख़्रे-ज़मीं, फ़ख़्रे-ज़माँ ;
वुलवुले हिन्दोस्ताँ, ऐ तूतिये शक्कर फ़ेशाँ[६] ।
क़ाविले ताज़ीम[७] तेरी ज़िन्दगी थी किस क़दर ;
तुझसे मेहरो-माह[८]में ताविन्दगी[९]थी किस क़दर ।

तू गया क्या शायरे शीरीं ज़वाँ जाता रहा ;
तू गया क्या नाज़िमे[१०] रंगीं बयाँ[११] जाता रहा ।
तू गया क्या ज़िन्दगीका राज़दाँ[१२] जाता रहा ;
यानी हुस्नो-इश्क़का इक तर्जुमाँ जाता रहा ।
फ़िलसफ़ेको वंदिशे अलफ़ाज़में लाएगा कौन ?
गुत्थियाँ उसकी जो उलझी हैं वह सुलझाएगा कौन ?

ख़्वाब किल्के-गुलफ़ेशाँ[१३]की गुलफ़ेशानी हो गई ;
महफ़िले शेरो[१४]अदब गोया कहानी हो गई ।
दम ज़दनमें[१५] खत्म सब जादूवयानी हो गई ;
मुन्तशिर[१६] तेरी किताबे-ज़िन्दगानी हो गई ।
अब कहाँसे तुझको अपने दरमियाँ पाएँगे हम ?
अब कहाँसे मिस्ल तेरा ढूँढ़कर लाएँगे हम ?

वज्दमें[१७] आकर रवाँ जब तूने खामा[१८]कर दिया ;
नज़्म लिख दी या रक़म[१९] कोई डेरामा कर दिया ।
अपनी हस्तीका भी पूरा कारनामा कर दिया ;
मरज़िये खल्लाक़से[२०] तवदील जामा कर दिया ।
डूबकर खुरशेद यह तनवीर[२१] सामाँ हो गया ;
नक़श धीमा पड़के तेरा और ताबाँ[२२] हो गया ।

तूने क़ायम की एक ऐसी दर्स - गाहे बेनज़ीर ;
मानते हैं तेरा लोहा आज तक बरना ओ पीर[२३] ।
सादगीमें भी तजम्मुल[२४]की थी शाने दिल-पिज़ीर[२५] ।
अब भी तेरे दामे[२६] रंगो-बूकी है दुनिया असीर[२७] ।
मायले खूँ नाबा[२८] रैज़ी चश्म[२९]तर है किस क़दर ;
तेरे मरनेकी खबर वहशत असर है किस क़दर ?

सूरते खुरशेद आज़म नूर बरसाता था तू ;
आस्माने - दिलके तारे तोड़कर लाता था तू ।
होश हो जाते थे गुम जब होशमें आता था तू ;
वज्दके आलममें यक तस्वीर बन जाता था तू ।
कम न थी कुछ चश्म-नूरानी[३०] चिरागे तूरसे[३१] ;
अब भी हर ज़र्रेमें ताबानी[३२] है तेरे नूरसे ।

तूही यक नग़्मा था, तूही खुशनवा[३३] यक साज़ था ;
साज़के पर्देमें तू ही ज़मज़मा परदाज़[३४] था ।
हुस्नके मरकज़की[३५] जानिब[३६]मायले परवाज़[३७]था ;
राज़ तेरी ज़िन्दगीकी, तू सरापा[३८] राज़ था ।
शौक़ नज़्ज़ारा है दिलमें और तू रूपोश[३९] है ;
एक तस्वीरे - खयाली ज़ीनते[४०] आग़ोश है ।

आईना सामानियोंसे दिल तेरा खुद्दार[४१] था ;
जाँ-सिपारी[४२]तुझमें थी, तू पैकरे[४३] ईसार[४४] था ।
वाक़िफ़े राज़े-हक़ीक़त,[४५] हासिले-इसरार[४६] था ;
आदमीके रूपमें ईश्वरका तू औतार था ।
दाद तेरी पाक हस्तीकी अजल[४७] भी दे गई ;
तुझको दुनियासे सर-आँखोंपर विठाकर ले गई ।

---

(१) पूँजी, (२) दीन और दुनिया, (३) राग, (४) साहित्य, (५) संसार, (६) मधुर वाणी, (७) आदरणीय, (८) सूर्य-चाँद, (९) चमक, (१०) वर्णनात्मक कविता लिखनेवाला, (११) मधुर वर्णन-शैली, (१२) रहस्य जाननेवाला, (१३) पुष्प विखेरनेवाली लेखनी, (१४) कविता, (१५) क्षण भरमें, (१६) छिन्न-भिन्न, (१७) आत्म-विस्मृतिकी दशा, (१८) लेखनी, (१९) लिखना, (२०) ईश्वरकी इच्छानुसार, (२१) प्रकाश, (२२) प्रकाशमय, (२३) युवक एवं वृद्ध, (२४) सजावट, (२५) हृदयहारिणी, (२६) जाल, (२७) क़ैदी, (२८) खून वहानेवाली, (२९) आँसुओंसे भरे नेत्र, (३०) प्रकाशवान नेत्र, (३१) एक पर्वतका नाम जहाँ हज़रत मूसाने ईश्वरीय प्रकाश देखा था, (३२) चमक, (३३) मधुर वाणीवाला वाजा, (३४) राग गानेवाला, (३५) केन्द्र, (३६) ओर, (३७) उड़नेवाला, (३८) नख-शिख, (३९) छिपा हुआ (४०) सजानेवाला, (४१) स्वाभिमान, (४२) जीवन निछावर करना, (४३) शरीर, (४४) बलिदान, (४५) वास्तविकताके भेदसे परिचित, (४६) रहस्यका परिणाम, (४७) मृत्यु ।

# रवीन्द्रनाथकी छः कविताएँ

[ हमने यह चेष्टा की कि विश्वकवि रवीन्द्रनाथकी चुनी हुई छः कविताएँ 'विशाल भारत' के पाठकोंको पेश की जायँ ; पर छः कविताओंका चुनाव करना उतना ही कठिन हो गया, जितना कि बहुमूल्य रत्नोंसे भरे कोषमेंसे बढ़िया छः रत्नोंका चुनाव करना। हमने आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन और पं० हज़ारीप्रसाद द्विवेदीसे इस चुनावमें सहायता ली ; पर उन्होंने भी यही उत्तर दिया कि यह कहना कठिन है कि गुरुदेवकी कौन-सी छः कविताएँ सर्वश्रेष्ठ हैं। फिर भी हमारे अनुरोधसे श्रद्धेय आचार्यजीने (१) भारत-तीर्थ, (२) न्यायदण्ड, (३) जेदिन चैतन्य मोर मुक्ति पेल और (४) अपमान शीर्षक कविताएँ हमारे लिए चुन दीं।

पाठकोंकी जानकारीके लिए हम रवीन्द्रनाथकी सर्वप्रथम कविता 'अभिलाष' भी दे रहे हैं। अगहन, १७९६ शकाब्द ( नवम्बर-दिसम्बर, १८७४ ई० ) में 'तत्वबोधिनी पत्रिका' के पृष्ठ १४८-१५० पर 'अभिलाष'-शीर्षक एक कविता प्रकाशित हुई। इसपर लेखकके नामकी जगह लिखा था—'एक १२ वर्षके बालक द्वारा रचित।' यह कविता जब रवीन्द्रनाथ ठाकुरको दिखाई गई, तब उन्होंने यह स्वीकार किया कि यही उनकी पहली कविता है। इसे उन्होंने १२ वर्षकी आयुमें ही लिखा था ; किन्तु जब यह प्रकाशित हुई, तब उनकी अवस्था १३ वर्ष ७ मासकी थी। रवीन्द्रनाथके जीवन-इतिहासमें इस कविताको उनकी अन्य सब रचनाओंसे ऊपर स्थान दिया गया है।

'अभिसार' शीर्षक कविता स्वयं हमें बहुत पसन्द है। यद्यपि यह कविता श्री श्यामसुन्दरजीके पद्यानुवाद-सहित मार्च, १९३४ के 'विशाल भारत' में निकल चुकी है ; पर वह इतनी अच्छी है और उसका पद्यानुवाद इतना सुन्दर है कि उसमें मूल कविताका आनन्द आता है। उस कविताको हम दुबारा दे रहे हैं, ताकि 'विशाल भारत' के नए पाठक उसका रसास्वादन कर सकें। निम्नांकित कविताओंका पद्यानुवाद 'विशाल भारत' के सुपरिचित श्री श्यामसुन्दर खत्रीने किया है। —सम्पादक ]

## (१) अभिलाष

| - १ - | - १ - |
|---|---|
| जन मनो मुग्ध कर उच्च अभिलाष ! | उच्चाभिलाष ! जन-मन-विमुग्धकर हो तुम |
| तोमार बन्धुर पथ अनन्त अपार। | तव राह अशेष - अपार उतरती-चढ़ती। |
| अतिक्रम करा जाय जत पान्थशाला, | की जायँ पान्थशालाएँ जितनी भी तय, |
| तत जेन अग्रसर हते इच्छा हय। | आगे बढ़नेकी उतनी इच्छा बढ़ती। |
| - २ - | - २ - |
| तोमार बाशरि स्वरे विमोहित मन— | तव वंशी-स्वरसे मुग्ध-प्राण हो मानव, |
| मानवेरा, ऐ स्वर लक्ष्य करि हाय, | उस मंजुल स्वरके हाय ! लक्ष्य पर केवल, |
| जत अग्रसर हय ततइ जेमन | जितना ही बढ़ते जाते हैं, उतना ही |
| कोथाय बाजिछे ताहा बुझिते ना पारे। | यह समझ न पाते—वंशी बजती किस थल। |

\- ३ -

चलिल मानव देख विमोहित हये,
पर्व्वतेर अत्युन्नत शिखर लंघिया,
तुच्छ करि सागरेर तरंग भीषण,
मरुर पथेर क्लेश सहि अनायासे।

\- ४ -

हिम क्षेत्र, जन-शून्य कानन, प्रान्तर,
चलिल सकल बाधा करि अतिक्रम।
कोथाय जे लक्ष्यस्थान खुँजिया ना पाय
बुझिते ना पारे कोथा बाजिछे बाशरि।

\- ५ -

ऐ देख छुटियाछे आर एक दल,
लोकारण्य पथ माझे सुख्याति किनिते;
रक्ष क्षेत्रे मृत्युर विकट मूर्त्ति माझे,
शमनेर द्वार सम कामनेर मुखे।

\- ६ -

ऐ देख पुस्तकेर प्राचीर माझारे
दिन रात्रि आर स्वास्थ्य करितेछे व्यय।
पहुँछिते तोमार ओ द्वारेर सम्मुखे
लेखनीरे करियाछे सोपान समान।

\- ७ -

कोथाय तोमार अन्त रे दुरभिलाष
'स्वर्ण अट्टालिका माझे?' ता नय ता नय।
'सुवर्ण खनिर माझे अन्त कि तोमार?'
ता नय, यमेर द्वारे अन्त आछे तव।

\- ८ -

तोमार पथेर माझे, दुष्ट अभिलाष,
छुटियाछे, मानवेरा सन्तोष लभिते।
नाहि जाने तारा इहा नाहि जाने तारा।
तोमार पथेर माझे सन्तोष थाके ना।

\- ९ -

नाहि जाने तारा हाय नाहि जाने तारा
दरिद्र कुटीर माझे विराजे सन्तोष।
निरजन तपोवने विराजे सन्तोष।
पवित्र धर्म्मेर द्वारे सन्तोष आसन।

\- ३ -

चल पड़े देख लो मानव मोहित होकर,
गिरिके उन्नत शिखरोंका कर उल्लंघन,
कर तुच्छ सागरों की भीषण लहरों को,
सहकर मरु-पथके क्लेशोंको निर्भय मन।

\- ४ -

हिम-क्षेत्र, विजन वन, बीहड़ कानन प्रान्तर,
कर अतिक्रमण बाधाएँ बढ़ता जाता।
पर गन्तव्य-स्थल कहीं न ढूँढ़े मिलता,
किस थल वंशी बजती—यह समझ न पाता।

\- ५ -

वह लखो, एक दल-मानव दौड़ पड़ा है,
सुख्याति लोक-वन-पथमें क्रय करनेको;
राक्षसी क्षेत्रमें मृत्यु - मूर्तिमें भीषण
यम-द्वार-सदृश इच्छाका मुँह भरनेको।

\- ६ -

वह लखो, बैठ ग्रन्थोंकी प्रचीरोंमें
कुछ अन्य रात-दिन स्वास्थ्य किया करते व्यय।
सोपान बना ली है लेखनी उन्होंने
तव द्वार तलक हो पहुँच—यही है आशय।

\- ७ -

रे दुरभिलाष! है अन्त तुम्हारा किस थल?
'क्या स्वर्ण-सौधमें?' नहीं, सत्य यह क्योंकर?
'क्या सोनेकी खानोंमें?' यह भी मिथ्या
है अन्त तुम्हारा यमके दरवाज़े पर।

\- ८ -

अभिलाष! दुष्ट! तव पथमें दौड़ पड़े हैं
सन्तोष प्राप्त करनेको जगके मानव।
वे नहीं जानते, नहीं जानते हैं वे,
सन्तोष नहीं रहता कदापि पथ में तव!

\- ९ -

वे नहीं जानते, हाय! उन्हें न विदित है।
दीनोंकी कुटियों में सन्तोष विराजित।
सन्तोष तपोवन मध्य रहा करता है।
सन्तोष धर्मके पुण्य-द्वार पर शोभित।

- १० -

नाहि जाने तारा इहा नाहि जाने तारा
तोमार कुटिल आर बन्धुर पथेते
सन्तोष नाहिक पारे पातिते आसन।
नाहि पशे सूर्यकर आँधार नरके।

वे नहीं जानते, नहीं जानते हैं वे,
तव ऊँचे - नीचे कुटिल मार्ग में आकर
सन्तोष न आसन कभी बिछा सकता है।
तमपूर्ण नरक में जाते कभी न रवि-कर।

- ११ -

तोमार पथेते धाय सुखेर आशये
निर्ब्बोध मानवगण सुखेर आशये;
नाहि जाने तारा इहा नाहि जाने तारा
कटाक्ष्यओ नाहि करे सुख तोमार पाने।

मानव अबोध केवल सुखकी आशासे
हैं दौड़ लगाते रह-रहकर तव पथपर;
वे नहीं जानते, नहीं जानते हैं वे,
सुख नहीं देखता उनको आँख उठाकर।

- १२ -

सन्देह भावना चिन्ता आशंका ओ पाप
एराइ तोमार पथे छड़ान केवल
एरा कि हइते पारे सुखेर आसन
एसब जंजाले सुख तिष्ठिते कि पारे।

सन्देह - भावना चिन्ता अघ आशंका
तव पथ में केवल ये ही बिछे पड़े हैं;
क्या हो सकते हैं ये सुखके सिंहासन!
इन जंजालों में सुखके पग जकड़े हैं?

- १३ -

नाहि जाने तारा इहा नाहि जाने तारा
निर्ब्बोध मानवगण नाहि जाने इहा
पवित्र धर्म्मेर द्वारे चिरस्थायी सुख
पातियाछे आपनार पवित्र आसन।

वे नहीं जानते, नहीं जानते हैं यह,
निर्बोध मानवोंको यह बात न सुविदित,—
चिर पूत धर्मके द्वार बिछा निज आसन
है वहाँ चिरस्थायी सदा अवस्थित।

- १४ -

ऐ देख छुटियाछे मानवेर दल
तोमार पथेर माझे दुष्ट अभिलाष
हत्या अनुताप शोक वहिया माथाय
छुटेछे तोमार पथे सन्दिग्ध हृदये।

वह लखो मानवोंका दल दौड़ पड़ा है
तव पथमें, हे दुष्टाभिलाष! आतुर हो;
अनुताप शोक हत्याको ढोकर सिरपर
वह दौड़ पड़ा तव पथमें संशय-उर हो।

- १५ -

प्रतारणा प्रवंचना अत्याचारचय
पथेर सम्बल करि चले द्रुत पदे
तोमार मोहन जाले पड़िबार तबे।
व्याघाते बाँशिते जथा मृग पड़े फाँदे।

छलछन्द धूर्त्तता अत्याचार-निचय को
पथका सम्बलकर द्रुत गतिसे धाते हैं,
तव मोह-पाशमें फँसनेको, फन्देमें—
ज्यों वंशी-ध्वनि-मोहित मृग फँस जाते हैं।

- १६ -

देख देख बोधहीन मानवेर दल
तोमार ओ मोहमयी बाशरिर स्वरे
एवं तोमार संगी आशा उत्तेजने
पापेर सागरे डुबे मुक्तार आशये।

देखो, देखो, वह बोधहीन मानव-दल
होकर विमग्न तव मोहक वंशी-स्वरमें
औ' शुष्क तुम्हारी आशासे उत्तेजित
मुक्ता पानेको डूबा अघ - सागरमें।

- १७ -

रौद्रेर प्रखर तापे दरिद्र कृषक
धर्म्म-सिक्त कलेवरे करिछे कर्षण
देखितेछे चारि धारे आनन्दित मने
समस्त वर्षेर तार श्रमेर जे फल।

- १७ -

अति घोर घाममें दीन कृषक करते हैं—
कर्षण, निज तनुसे घर्मसिक्त औ' निर्मल,
लिखते वे चारों ओर प्रसन्न हृदयसे
सम्पूर्ण वर्ष-व्यापी अपने श्रमका फल।

- १८ -

दुराकांक्षा हाय तव प्रलोभने पाड़ि
कर्षिते - कर्षिते सेइ दरिद्र कृषक
तोमार पथेर शोभा मनोमय पटे
चित्रिते लागिल हाय विमुग्ध हृदये।

- १८ -

पड़ तव प्रलोभनों - मध्य दुराकांक्षा हे!
वह दीन कृषकजन करते - करते कर्षण
तव पथ शोभाका खींच मनोमय पटपर
मोहित उर करने लगा हाय! चित्रांकन।

- १९ -

ऐ देख आँकियाछे हृदये ताहार
शोभामय मनोहर अट्टालिकाराजि
हीरक माणिक्य पूर्ण धनेर भाण्डार
नाना शिल्प परिपूर्ण शोभन आपन।

- १९ -

वह देखो, उसने निज उरमें की अंकित
अपनी शोभामय सौध - राजि सुमनोहर,
हीरे - माणिक - धन भरे कोष भी अपने
नाना शिल्पोंसे पूर्ण सुशोभन सुन्दर।

- २० -

मनोहर कुंज - वन सुखेर आगार
शिल्प पारिपाट्य युक्त प्रमोद भवन
गंगा समीरण स्निग्ध पल्लीर कानन
प्रजा पूर्ण लोभनीय वृहत् प्रदेश।

- २० -

वन-कुंज मनोहर सुखागार, शिल्पोंकी—
पारिपाटी - युक्त प्रमोद - भवन मनभावन
गंगा - समीर - सुस्निग्ध ग्रामके कानन
परिपूर्ण प्रजासे वृहत् प्रदेश लुभावन।

- २१ -

भाविल मुहूर्त्त तरे भाविल कृषक
सकलि एसेछे जेन तारि अधिकारे
तारि ऐ बाड़ि घर तारि ओ भाण्डार
तारि अधिकारे ऐ शोभन प्रदेश।

- २१ -

सोचा, क्षणभरमें अरे, कृषकने सोचा—
मानो उसका अधिकार हो गया सबपर;
यह गृह उसका, भण्डार उसीका है यह,
स्वामित्व उसीका इस प्रदेशपर सुन्दर।

- २२ -

मुहूर्त्तेक परे तार मुहूर्त्तेक परे
लीन ह'ल चित्रचय चित्तपट होते
भाविल चमक उठि भाविल तखन
'आछे कि एमन सुख आमार कपाले?'

- २२ -

क्षणभरके ही पश्चात एक क्षणके ही
वे चित्र चित्तसे हुए विलुप्त अरे रे,
वह चौंक उठा, सोचा, हाँ, उसने सोचा—
'क्या ऐसा सुख भी लिखा भाग्यमें मेरे?'

- २३ -

'आमादेर हाय जत दुराकांक्षाचय
मानसे उदय हय मुहूर्त्तेर तरे
कार्य्य ताहा परिणत ना हते ना हते
हृदयेर छवि हाय हृदये मिशाय।'

- २३ -

'हम लोगोंकी हा! सकल दुराकांक्षाएँ
क्षण भरको मानस - मध्य उदय हो जातीं
परिणत न कार्यमें हो पातीं, इतनेमें—
उरकी छवि उरमें हो विलीन खो जाती।'

- २४ -

ऐ देख छुटियाछे तोमार ओ पथे
रक्त माखा हाते एक मानवेर दल
सिंहासन राज - दण्ड ऐश्वर्य मुकुट
प्रभुत्व राजत्व आर गौरवेर तरे ।

- २५ -

ऐ देख गुप्त हत्या करिया बहन
चलितेछे अंगुलिर परे भर दिया
चुपि-चुपि धीरे-धीरे अलक्षित भावे
तलवार हाते करि चलियाछे देख ।

- २६ -

हत्या करितेछे देख निद्रित मानवे
सुखेर आशये वृथा सुखेर आशये
ऐ देख ऐ देख रक्त माखा हाते
धरियाछे राज-दण्ड सिंहासने बसि ।

- २७ -

किन्तु हाय सुख लेश पारे कि कखन ?
सुख कि ताहार करिबेक आलिंगन ?
सुख कि ताहार हृदे पारिबे आसन ?
सुख कभु तारे किगो कटाक्ष करिबे ?

- २८ -

नर-हत्या करियाछे जे सुखेर तरे
जे सुखेर तरे पापे धर्म भावियाछे
वृष्टि वज्र सह्य करि जे सुखेर तरे
छुटियाछे आपनार अभीष्ट साधने ?

- २९ -

कखनइ नय ताहा कखनइ नय
पापेर कि फल कभु सुख हते पारे
पापेर कि शास्ति हय आनन्द ओ सुख
कखनइ नय ताहा कखनइ नय ।

- ३० -

प्रज्वलित अनुताप हुतासन काछे
विमल सुखेर हाय स्निग्ध समीरण
हुतासन सम तप्त हये उठे जेन
तखन कि सुख कभु भाल लागे आर ।

- ३१ -

नर-हत्या करियाछे जे सुखेर तरे
जे सुखेर तरे पापे धर्म भावियाछे
छुटेछे ना मानि बाधा अभीष्ट साधने
मनस्तापे परिणत हये उठे शेषे ।

- २४ -

वह लखो, एक दल-मानव दौड़ पड़ा है
तव पथमें, उसके हाथ रक्तसे रंजित,
सिंहासन वैभव राज - दण्ड शासन औ'
राजत्व प्रभुत्व मुकुट औ' गौरवके हित ।

- २४ -

वह लखो, लुप्त हत्याका भार वहनकर
जाता है पाँवोंके पंजोंके बलपर
चुपके - चुपके धीरेसे और अलक्षित
देखो, जाता तलवार हाथमें लेकर ।

- २६ -

सुखकी आशासे, वृथा सौख्य आशासे,
निद्रित मनुजोंकी हत्या करता बढ़ - बढ़,
वह देखो, अपने शोणित - रंजित - करमें
ले राज - दण्ड बैठा सिंहासन पर चढ़ ।

- २७ -

पर लेशमात्र वह सौख्य कभी पा सकता ?
क्या कभी उसे सुख लगा गले से लेगा ?
क्या सौख्य बिछाएगा उसके उर आसन ?
क्या आँख उठाकर सुख उसको देखेगा ?

- २८ -

जिसने की है नर - हत्या सुखके पीछे,
सुखके ही पीछे धर्म पापको माना,
जो सुखके पीछे वज्र-वृष्टि सह दौड़ा,
अपने अभीष्ट साधनको सब कुछ जाना ?

- २९ -

यह कभी नहीं, यह कभी नहीं हो सकता,
पापोंका फल सुख भला कहीं हो सकता ?
क्या दण्ड पापका सुख आनन्द हुआ है ?
यह कभी नहीं, यह कभी नहीं हो सकता ।

- ३० -

जलते अनुताप-हुतासन से लगकर हा !
निर्मल सुखका सुस्निग्ध समीरण सम्मुख
उत्तप्त हुतासन के समान हो जाता ;
फिर भला कभी अच्छा लगता ऐसा सुख ?

- ३१ -

जिसने सुखके पीछे नर - हत्या की है,
सुखके पीछे सद्धर्म पापको माना,
जो दौड़ा बाधा तोड़ इष्ट साधनको,
फिर उसे अन्त में पड़ा सदा पछताना ।

- ३२ -

हृदयेर उच्चासने बसि अभिलाष
मानवदिगके लये क्रीड़ा कर तुमि
काहार बा तुले दाओ सिद्धिर सोपाने
कारे फेल नैराश्येर निष्ठुर कवले।

- ३३ -

कैकयी हृदये चापि दुष्ट अभिलाष।
चतुर्द्दश वर्ष रामे दिले वनवास,
काड़िया लइले दशरथेर जीवन,
काँदाले सीताय हाय अशोक कानने।

- ३४ -

रावणेर सुखमय संसारेर माझे
शान्तिर कलश एक छिल सुरक्षित
भांगिल हठात् ताहा भांगिल हठात्
तुमइ ताहार हओ प्रधान कारण।

- ३५ -

दुर्य्योधन चित्त हाय अधिकार करि
अवशेषे ताहारेइ करिले विनाश
पाण्डु पुत्रगणे तुमि दिले वनवास
पाण्डवदिगेर हृदे क्रोध ज्वालि दिले।

- ३६ -

निहत करिले तुमि भीष्म आदि वीरे
कुरुक्षेत्र रक्तमय करे दिले तुमि
काँपाइले भारतेर समस्त प्रदेश
पाण्डवे फिराये दिले शून्य सिंहासन।

- ३७ -

बलि ना हे अभिलाष तोमार ओ पथ
पापेतेइ परिपूर्ण पापेइ निर्म्मित
तोमार कतकगुलि आछये सोपान
केह केह उपकारी केह अपकारी।

- ३८ -

उच्च अभिलाष। तुमि यदि नाहि कभु
विस्तारिते निज पथ पृथिवी मण्डले
ताहा ह'ले उन्नति कि आपनार ज्योति
विस्तार करिते एइ धरातल माझे?

- ३९ -

सकलेइ जदि निज निज अवस्थाय
सन्तुष्ट थाकित निज विद्या बुद्धितेइ
ताहा ह'ले उन्नति कि आपनार ज्योति
विस्तार करित एइ धारातल माझे?

- ३२ -

अभिलाष! बैठकर उरके उच्चासन पर
मनुजों को लेकर तुम हो खेला करते,
सोपान सिद्धिका करते सुलभ किसीको,
नैराश्य-कवल में निठुर किसीको भरते।

- ३३ -

कैकयी - हृदयमें पैठ, रामको तुमने
वनवास चतुर्दश वर्षोंका दिलवाया,
हर लिए प्राण दशरथ के, हा! सीता को
तुमने अशोक-वन में कितना कलपाया।

- ३४ -

रावण का था संसार सौख्यमय कैसा,
था कलश शान्ति का एक जहाँ संरक्षित,
वह फूट गया, हा! फूट गया वह सहसा,
उसका प्रधान कारण हो तुम्हीं अलक्षित।

- ३५ -

अधिकार चित्तपर करके दुर्योधन के
हा! नाश अन्त में उसका ही कर डाला,
वनवासी तुमने किया पाण्डु - पुत्रों को
धधका दी उनके उर क्रोधानल-ज्वाला।

- ३६ -

वध किया तुम्हींने भीष्म आदि वीरों का,
कर दिया रक्तमय कुरुक्षेत्र रण - प्रांगण,
कम्पायमान सब प्रान्त किए भारत के,
दे दिया पाण्डवों को सूना सिंहासन।

- ३७ -

कहता हूँ हे अभिलाष! तुम्हारा वह पथ
पापों से पूरित पापों से निर्मित है।
सोपान तुम्हारे भी तो कितने ही हैं—
उपकार-कलित कुछ, कुछ अपकार जड़ित हैं।

- ३८ -

उच्चाभिलाष! यदि तुम न कभी निज पथ को
विस्तारित करते इस पृथ्वीमण्डल में,
तो क्या उन्नति निज दिव्य ज्योति की आभा
विस्तारित कर सकती इस अवनीतल में?

- ३९ -

जिन भिन्न अवस्थाओं में, यदि सब रहते
सन्तुष्ट, स्व-विद्या और बुद्धि के बल पर,
तो क्या उन्नति निज दिव्य ज्योति की आभा
विस्तारित कर पाती इस अवनीतल पर?

# (२) अभिसार

( बोधीसत्त्वादान कल्पलता )

१ संन्यासी उपगुप्त
मथुरापुरीर प्राचीरेर तले
एकदा छिलेन सुप्त ;—
नगरीर दीप निबेछे पवने,
दुआर रुद्ध पौर भवने,
निशीथेर तारा श्रावण - गगने
घन मेघे अवलुप्त।

२ काहार नूपुरशिंजित पद
सहसा बाजिल वक्षे।
संन्यासीवर चमकि जागिल,
स्वप्नजड़िमा पलके भागिल,
रूढ़ दीपेर आलोक लागिल
क्षमा - सुन्दर चक्षे।

३ नागरीर नटि चले अभिसारे
यौवनमदे मत्ता।
अंगे आँचल सुनील वरण,
रुनुझुनु रवे बाजे आभरण ;
संन्यासी - गाये पड़िते चरण,
थामिल वासवदत्ता,

४ प्रदीप धरिया हेरिल ताँहार
नवीन गौरकान्ति,
सौम्य सहास तरुण वयान,
करुणकिरणे विकच नयान,
शुभ्र ललाटे इन्दु - समान
भातिछे स्निग्ध शान्ति।

५ कहिल रमणी ललितकण्ठे
नयने जड़ित लज्जा ;
"क्षमा करो मोरे कुमार किशोर,
दया करो यदि गृहे चलो मोर,
ए धरणीतल कठिन कठोर,
ए नहे तोमार शज्जा !"

६ संन्यासी कहे करुण वचने,
"अयि लावण्यपुंजे !

१ संन्यासी उपगुप्त
एक बार मथुरा नगरीके
दृढ़ प्राचीर - तले थे सुप्त ;
बुझे दीप, खा व्यजन पवनके,
रुद्ध द्वार थे पौर - भवनके,
सघन गगन - पटमें सावनके।
नैश तारिकाएँ थीं लुप्त।

२ किसके नूपुर - शिंजित पदयुग
सहसा बजे वक्षसे आज !
चौंक चकित संन्यासी जागे,
स्वप्न - जाल पलकोंसे भागे,
क्षमा - मंजु नयनोंके आगे
रूढ़ दीप था रहा विराज।

३ नगर - नटी अभिसार हेतु थी—
जाती यौवन - मद - मत्ता,
नीलवर्ण था चंचल अंचल,
मृदु - मुखरित आभरण समुज्वल,
संन्यासीपर पड़ा चरण - तल,
ठिठक पड़ी वासवदत्ता।

४ ले प्रदीप निरखा तब उसने—
उनका गौरवर्ण, वह कान्ति !
सौम्य सहास तरुण वय उत्तम,
करुणा-किरण-विकच दृग अनुपम,
हिमगिरि-शुभ्र-भालपर विधु-सम
उद्भासित सुस्निग्ध सुशान्ति।

५ ललित कंठसे बाला बोली
लज्जासे झुक पड़े नयन ;
"क्षमा करो अविनय, किशोर-वर !
हो यदि सदय, चलो मेरे घर,
कठिन कठोर धरा-शय्या पर
श्रेयस्कर है नहीं शयन !"

६ करुण वचन बोले संन्यासी—
"अयि लावण्य मधुरिमा-पुंज !

एखनो आमार समय हयनि,
जेथाय चलेछ, जाओ तुमि धनि,
समय जेदिन आसिबे, आपनि
जाइब तोमार कुंजे।"

७ सहसा झंझा तड़ित - शिखाय
मेलिल विपुल आस्य।
रमणी काँपिया उठिल तरासे,
प्रलय - शंख बाजिल बातासे,
आकाशे वज्र घोर परिहासे
हासिल अट्टहास्य।

८ वर्ष तखनो हय नाइ शेष,
एसेछे चैत्र - संध्या।
बातास हयेछे उतला आकुल,
पथ - तरुशाखे धरेछे मुकुल,
राजार कानन फुटेछे बकुल
पारुल रजनीगन्धा।

९ अति दूर हते आसिछे पवने
बाँशिर मदिर - मन्द्र।
जनहीन पुरी, पुरवासी सबे,
गेछे मधुबने फूल - उत्सवे,
शून्य नगरि निरखि' नीरवे
हासिछे पूर्णचन्द्र।

१० निर्ज्जन पथे ज्योत्स्ना - आलोते
संन्यासी एका यात्री।
माथार उपरे तरुबीथिकार
कोकिल कुहरि' उठे बारबार,
एत दिन परे एसेछे कि तार
आजि अभिसार - रात्रि?

११ नगर छाड़ाये गेलेन दण्डी
बाहिर प्राचीर - प्रान्ते।
दाँड़ालेन आसि' परिखार पारे,
आम्र - वनेर छायार आँधारे,
के ओइ रमणी पड़े एकधारे
ताँहार चरणोपान्ते!

१२ निदारुण रोगे मारी - गुटिकाय
भरे गेछे तार अंग,
रोगमसी - ढाला काली तनु तार
लये प्रजागणे पूर - परिखार

अभी नहीं आया वह अवसर,
जहाँ चली हो, जाओ सत्वर,
आऊँगा उपयुक्त समय पर
सुन्दरि! स्वयं तुम्हारे कुंज।"

७ सहसा शान्त वदन - मण्डलपर
झलका विद्युत-शिखा-प्रकाश।
डरकर बाला काँपी थर-थर,
बजा वायुमें शंख लयंकर,
सोपहास पवित्र अट्टहास्य कर
गरजा, गूँज उठा आकाश।

८ वर्ष व्यतीत न होने पाया,
आई मधु-ऋतुकी संध्या।
बही समीरण केलि-कलाकुल,
पथ - तरुओंमें लसे मुकुल- कुल,
राजवनोंमें फूले पारुल,
बकुल और रजनीगन्धा।

९ पवन ला रही थी सुदूरसे
मदिर-मन्द्र वंशीकी तान।
थी जनहीन पुरी, सब पुरजन
गए कुसुम - उत्सवमें मधुवन,
हँसते थे, लख नगरी निर्जन,
नीरव सान्द्रचन्द्र छविमान।

१० निर्जन ज्योत्स्नालोकित पथके
पथिक आज दण्डी एकान्त।
स्वर - लहरीसे भर तरु - बीथी
कोयल कूक - कूक उठती थी;
क्या अभिसार-निशा आई थी
यह इतने दिनके उपरान्त?

११ गये नगरके बाहर दण्डी
जिस थल थी प्राचीर खड़ी।
परिखा - पार आम्र - वनके घन—
तममें खड़े हुए जा तत्क्षण,
अरे! कौन वह रमणी उन्मन
थी उनके पग-निकट पड़ी!

१२ दारुण - रोग - पीड़िता थी वह,
भरे फफोलोंसे थे अंग।
था मसि-सम विवर्ण तनु जर्जर।
पौर जनोंने उसको लाकर

बाहिरे फेलेछे, करि' परिहार
विषाक्त तार संग।

फेंक दिया था पुरके बाहर
तजकर उसका विषमय संग।

१३ संन्यासी बसि' आड़ष्ट शिर
तूलि' निल निज अंगे।
ढालि' दिल जल शुष्क अधरे,
मन्त्र पड़िया दिल शिर' परे,
लेपि' दिल देह आपनार करे
शीत चन्दन - पंके।

१३ बैठ, झुका सिर, संन्यासीने
लिया अंकमें उसे निशंक।
शुष्क अधरमें कर जल - सिंचन
किया शीशपर मन्त्रोच्चारण,
गलितांगोंपर किया विलेपन
स्वकरों शीतल चन्दन-पंक।

१४ झरिछे मुकुल, कूजिछे कोकिल,
यामिनी जोछनामत्ता।
"के एसेछ तुमि ओगो दयामय"—
शुधाइल नारी, संन्यासी कय—
"आजि रजनीते हयेछे समय,—
एसेछि वासवदत्ता।"

१४ झरते फूल, कूकते कोकिल
रजनी थी ज्योत्स्नामत्ता।
"आए हो तुम कौन दयाकर!"
हुआ प्रश्न यह, मिला सदुत्तर—
"आज रात आया वह अवसर,
आया हूँ वासवदत्ता!"

## (३) भारत-तीर्थ

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे
जागो रे धीरे
एइ भारतेर महा - मानवेर
सागर - तीरे।
हेथाय दाँड़ाये दु-बाहु बाड़ाये
नमि नर - देवतारे,
उदार छन्दे परमानन्दे
वन्दन करि ताँरे।
ध्यान - गम्भीर एइ-जे भूधर,
नदी - जपमाला - धृत प्रान्तर,
हेथाय नित्य हेरो पवित्र
धरित्रीरे,
एइ भारतेर महा - मानवेर
सागर-तीरे॥

मेरे मन, पुण्य-तीर्थ में तुम
जागो धीरे - धीरे उठकर
भारत के महा - मानवों के
विस्तृत विशाल सागर-तट पर।
हो यहाँ खड़ा दो भुजा बढ़ा
नर-देवों को कर नमस्कार
सानन्द आज उनका वन्दन
करता हूँ छन्दों में उदार।
गंभीर ध्यान-रत यह भूधर,
सरिता-जपमाला-धृत प्रान्तर,
तुम नित्य निहारो इस थल पर
धरती पवित्र पावन सुन्दर,
भारत के महा - मानवों के
विस्तृत विशाल सागर-तट पर॥

केह नाहि जाने कार आह्वाने
कत मानुषेर धारा
दुर्वार स्रोते एल कोथा हते
समुद्रे होलो हारा।
हेथाय आर्य, हेथा अनार्य
हेथाय द्राविड़, चीन—

यह नहीं जानता है कोई कब किसका आवाहन पाकर
किस दिशि-विदिशा से उमड़-उमड़
कितने अदम्य स्रोतों में पड़
कितनी मानव-सरिता-धारा खो गई उदधिमें आ आकर
इस ठौर आर्य, इस थल अनार्य,
औ' यहीं द्रविड़, प्राचीन चीन,

शक हुन-दल पाठान मोगल
एक देहे होलो लीन।
पश्चिमे आजि खुलियाछे द्वार,
सेथा हते सबे आने उपहार,
दिबे आर निबे, मिलाबे मिलिबे
जाबे ना फिरे,
एइ भारतेर महा - मानवेर
सागर - तीरे ॥
रणधारा बाहि' जय गान गाहि'
उन्माद कलरवे
भेदि' मरुपथ गिरि - पर्वत
जारा एसेछिल सबे,
ता'रा मोर माझे सबाई बिराजे
केह नहे नहे दूर,
आमार शोणिते रयेछे ध्वनिते
ता'र विचित्र सुर।
हे रुद्रवीणा, बाजो, बाजो, बाजो,
घृणा करि' दूरे आछे जारा आजो,
बन्ध नाशिबे, ताराओ आसिबे
दाँड़ाबे घिरे,—
एइ भारतेर महा - मानवेर
सागर - तीरे ॥
हेथा एकदिन विरामविहीन
महा ॐकारध्वनि,
हृदयतन्त्रे एकेर मन्त्रे
उठेछिल रनरनि'।
तपस्या - बले एकेर अनले
बहुरे आहुति दिया
विभेद भूलिल जागाये तुलिल
एकटि विराट हिया।
सेइ साधनार से - अराधनार
यज्ञशालाय खोला आजि द्वार,
हेथाय सबारे हबे मिलिबारे
आनत शिरे,—
एइ भारतेर महा - मानवेर
सागर - तीरे ॥
सेइ होमानले हेरो आजि ज्वले
दुखेर रक्तशिखा,

शक हूण मुग़ल, इस थल पठान—
सब एक देह में हुए लीन।
खुल गया आज पाश्चात्य-द्वार,
ला रहे सभी प्रेमोपहार,
जाएँगे लौट न ले-देकर,
अपनाएँगे अपने होकर,
भारत के महा-मानवों के
विस्तृत विशाल सागर-तट पर ॥
उमड़ाते रण-धारा, गाते—
उन्मत्त स्वरों में विजय-गान,
जो-जो आए थे भेद-भेद
मरु-पथ औ' गिरि-पर्वत महान,
वे सब विराजते हैं हम में,
है दूर नहीं कोई भी नर,
बज रहे हमारे शोणित में
ध्वनि में उनके वे अद्‌भुत स्वर।
हे रुद्र-बीन, तुम हो झंकृत ;
जो समझ आज भी हमें घृणित—
हैं दूर, तोड़ सारे बन्धन
वे हमें घेर लेंगे आकर—
भारत के महा-मानवों के
विस्तृत विशाल सागर-तट पर ॥
इस ठौर एक दिन अविश्रान्त
ओंकार नाद अतिशय महान,
गुंजरित एक के मंत्रों से
सब उर-तंत्रोंमें था समान।
तप-बल का अनल एक का था,
देकर अनेक ने आहुति-चय
सब भेद-भाव बिसरा, जागृत—
कर डाला एक विराट हृदय।
उस साधनार्चना का उदार
खुल गया आज है यज्ञ-द्वार,
आनत मस्तक अब सभी लोग
सम्मिलित यहीं होंगे आकर ;—
भारत के महा मानवों के
विस्तृत विशाल सागर-तट पर ॥
उस होमानल में लखो आज
जल रही दुःख की रक्तशिखा,

हबे ता सहिते मर्मे दहिते
आछे से भाग्य लिखा।
ए दुख वहन करो मोर मन,
शोनो रे एकेर डाक।
जत लाज भय करो करो जय
अपमान दूरे जाक।
दुःसह व्यथा हये अवसान
जन्म लभिबे की विशाल प्राण।
पोहाय रजनी, जागिछे जननी
विपुल नीड़े,
एइ भारतेर महा - मानवेर
सागर - तीरे॥
एसो हे आर्य, एसो अनार्य,
हिन्दु मुसलमान।
एसो एसो आज तुमि इंगराज,
एसो एसो ख्रीस्टान।
एसो ब्राह्मण, शुचि करि' मन
धओ हात सबाकार,
एसो हे पतित, होक अपनीत
सब अपमान - भार।
मार अभिषेके एसो एसो त्वरा,
मंगलघट हयनि - जे भरा,
सबार परशे पवित्र - करा
तीर्थ - नीरे।
आजि भारतेर महा - मानवेर
सागर - तीरे॥

यह सहना मर्म दहन करना—
होगा, यह भी है भाग्य-लिखा।
मेरे मन, यह दुख करो वहन
औ' सुनो एक ही की पुकार।
जीतो लज्जा, जीतो भय को,
अपमान सभी हो छार-छार।
होगा जब असह-व्यथावसान
जन्मेंगे क्या ही वृहत् प्राण।
बीती रजनी, जागी जननी
निज विपुल नीड़ में अब उठकर,
भारत के महा-मानवों के
विस्तृत विशाल सागर-तट पर॥
आओ हे आर्य, अनार्य तथा
आओ हे हिन्दू-मुसलमान!
आओ-आओ अँगरेज़, आज
आओ-आओ हे किरस्तान!
आओ ब्राह्मण कर मन पवित्र,
कर गहो सभी के हे उदार,
आओ हे पतित, तुम्हारा भी—
हो जाय लुप्त अपमान-भार!
आ करो मातृ अभिषेक त्वरा,
मंगलघट अब तक नहीं भरा—
उस तीर्थ-नीर से, जो पवित्र—
हो जाय स्पर्श सबका पाकर।
भारत के महा-मानवों के
विस्तृत विशाल सागर-तट पर।

## (४) अपमान

हे मोर दुर्भागा देश, जादेर करेछ अपमान,
अपमाने होते हबे ताहादेर सबार समान।
मानुषेर अधिकारे वंचित करेछ जारे,
सम्मुखे दाँड़ाये रेखे तबू कोले दाओ नाइ स्थान,
अपमाने होते हबे ताहादेर सबार समान॥

मम देश अभागे! दिया सदा तुमने जिनको अपमान दान,
अपमान - क्षेत्र में तुमको भी होना होगा उनके समान।
मानवता के अधिकारों से जिनको वंचित रक्खा तुमने,
सम्मुख वे खड़े रहे तो भी उनको न गोदमें दिया स्थान,
अपमान - क्षेत्र में तुमको भी होना होगा उनके समान॥

मानुषेर परशेरे प्रतिदिन ठेकाइया दूरे
घृणा करियाछ तुमि मानुषेर प्राणेर ठाकुरे।
विधातार रुद्ररोषे दुर्भिक्षेर द्वारे ब'से

मानवका स्पर्श, अरे मानव! प्रतिदिन ठुकराते ही आए,
मानव-घट-वासी ईश्वर पर तुम घृणा जताते ही आए।
विधिके कोपानल में पड़कर दुर्भिक्ष द्वार के भिक्षुक बन

भाग करे खेते हबे सकलेर साथे अन्नपान ।
अपमाने होते हबे ताहादेर सबार समान ॥

तोमार आसन हते जेथाय तादेर दिले ठेले
सेथाय शक्तिरे तव निर्वासन दिले अवहेले ।
चरणे दलित हये धुलाय से जाय बये
सेइ निम्ने नेमे एसो नहिले नाहि रे परित्राण ।
अपमाने होते हबे आजि तोरे सबार समान ॥

जारे तुमि निचे फेलो से तोमारे बाँधिबे-जे निचे ।
पश्चाते रेखेछ जारे से तोमारे पश्चाते टानिछे ।
अज्ञानेर अन्धकारे आड़ाले ढाकिछ जारे
तोमार मंगल ढाकि' गड़िछे से घोर व्यवधान ।
अपमाने होते हबे ताहादेर सबार समान ॥

शतेक शताब्दी ध'रे नामे शिरे असम्मान-भार,
मानुषेर नारायणे तबुओ करो ना नमस्कार ;
तबु नत करि' आँखि देखिबारे पाओ ना कि
नेमेछे धुलार तले हीन पतितेर भगवान ।
अपमाने होते हबे सेथा तोरे सबार समान ॥

देखिते पाओ ना तुमि मृत्युदूत दाँड़ायेछे द्वारे,
अभिशाप आँकि' दिल तोमार जातिर अहंकारे ।
सबारे ना जदि डाको, एखनो सरिया थाको,
आपनारे बेँधे राखो चौदिके जड़ाये अभिमान,
मृत्युमाझे हबे तबे चिताभस्मे सबार समान ॥

मिल-बाँट सभीके साथ तुम्हें अब करना होगा खान-पान ।
अपमान - क्षेत्र में तुमको भी होना होगा सबके समान ॥

तुमने अपने उच्चासन से उनको है जहाँ ढकेल दिया
करके स्व-शक्तिकी अवहेला उसको निर्वासित वहीं किया ।
वह चरणों में दलिता होकर मिट्टीमें हाय ! मिली जाती,
उस निम्न धरातल में बग़ैर उतरे, न तुम्हारा परित्राण ।
अपमान - क्षेत्र में तुमको भी होना होगा उनके समान ॥

तुम जिन्हें गिराते हो नीचे, वे बाँधेंगे तुमको नीचे,
तुमने जिनको पीछे रक्खा, वे तुम्हें खींचते हैं पीछे ।
अज्ञान - तिमिर के परदे में ढककर रखते हो तुम जिनको
कल्याण तुम्हारा ढक करके व्यवधान उन्होंने दिया तान ।
अपमान - क्षेत्र में तुमको भी होना होगा उनके समान ॥

इन सौ शताब्दियों से सिरपर दे असम्मान का विषम भार,
मानव के नारायणको तुम फिर भी न कर रहे नमस्कार ।
अब भी आँखें नीची करके क्या देख नहीं पाते हो तुम
उतरा धूले में पतितों का भगवान परम करुणा-निधान ।
अपमान - क्षेत्र में तुमको भी होना होगा उनके समान ॥

है खड़ा द्वारपर मृत्यु - दूत, पर तुम्हें न होता परिलक्षित,
जात्याभिमान पर तव उसने अभिशाप कर दिया है अंकित ।
यदि बुला न लेते हो सबको तो अब तो अलग हटो, जाओ,
अभिमान-रज्जुसे अपने को लो जकड़, और भी सौख्यमान,
तब मरकर चिता-भस्म में ही हो जाओगे उनके समान ॥

## (५) मुक्त चैतन्य

जेदिन चैतन्य मोर मुक्ति पेल लुप्तिगुहा हते
निये एल दुःसह विस्मयझड़े दारुण दुर्योगे
कोन् नरकाग्निगिरिगह्वरेर तटे ; तप्तधूमे
गर्जि उठे फुँसिछे से मानुषेर तीव्र अपमान,
अमंगलध्वनि तार कम्पान्वित करे धरातल,
कालिमा माखाय वायुस्तरे । देखिलाम एकालेर
आत्मघाती मूढ़ उन्मत्तता, देखिनु सर्वांग तार
विकृतिर कदर्य विद्रूप । एकदिके स्पर्धित क्रूरता,
मत्ततार निर्लज्ज हुंकार अन्यदिके भीरुतार
द्विधाग्रस्त चरण-विक्षेप, वक्षे आलिंगिया धरि

जिस दिन मेरा चैतन्य हुआ निज लुप्तिगुहासे मुक्ति-प्राप्त
दारुण दुर्योगों में दुःसह विस्मय - झंझा से परिव्याप्त
ले आया है वह मुझको किस नरकानल गिरि-गह्वर-तट पर,
फुंकार रहा जो बार-बार उत्तप्त धूम से गर्जन कर
मानवताका अपमान तीव्र ; उसकी ध्वनि अशुभ अमंगलमय
कम्पित करती धरती, भरती कालिख वायुस्तरमें अतिशय ।
अन्धा उन्माद आत्मघाती देखा आधुनिक कालका वह,
विद्रूप विकार का है कदर्य उसके सर्वांगों में दुर्वह ।
है एक ओर हुंकार निलज मदका निर्दयताका स्पर्धित,
है अपर ओर कायरताका पद-चरण द्विधाग्रस्त शंकित,

कृपणेर सतर्क सम्बल ; मन्त्रस्त प्राणीर मतो
क्षणिक गर्जन अन्ते क्षीणस्वरे तखनि जानाय
निरापद नीरव नम्रता। राष्ट्रपति जत् आछे
प्रौढ़ प्रतापेर मन्त्रसभातले आदेश निर्देश
रेखेछ निष्पिष्ट करि रुद्ध ओष्ठ अधरेर चापे
संशये संकोचे। एदिके दानव-पक्षी क्षुब्धशून्य
उड़े आसे झांके झांके वैतरणी नदीपार हते
यन्त्रपक्ष हुंकारिया नरमांसक्षुधित शकुनि,
आकाशेरे करिल अशुचि। महाकाल-सिंहासने
समासीन विचारक, शक्ति दाओ, शक्ति दाओ मोरे,
कण्ठे मोर आनो वज्रवाणी, शिशुघाती नारीघाती
कुत्सित विभत्सा परे धिक्कार हानिते पारि जेन
नित्यकाल र'वे जा स्पन्दित लज्जातुर ऐतिह्येर
हृत्स्पन्दने, रुद्धकण्ठ भयार्त ए शृंखलित युग जबे
निःशब्दे प्रच्छन्न हबे आपन चितार भस्मतले॥

जिसको आलिंगित किए सबल है कृपणों का सतर्क सम्बल ;
सन्त्रस्त प्राणियों के समान क्षण गर्जन के पश्चात तुरत
क्षीण-स्वर में है जना रही नम्रता निरापद मौन सतत।
वे प्रौढ़ प्रतापी मन्त्र-सभा-तल में जो राष्ट्र अधीश्वर हैं,
निज आदेशों निर्देशों को दाबे उनके ओष्ठाधर हैं
संशय-संकोच-विवश होकर। विक्षुब्ध शून्यमें एक ओर
वैतरणी नदी पार से ही निज यन्त्र-पक्ष हुंकार छोर
दल बाँध शकुनि नरमांस-क्षुधित दानव-पक्षी आते उड़कर,
करते अपवित्र गगनको हैं। हे महाकाल - सिंहासन पर
वह महा विचारक समासीन, दो मुझे शक्ति, दो मुझे शक्ति,
औ' भरो कण्ठ में वज्र-घोष, शिशुघाती स्त्रीघाती विरक्ति
कुत्सित वीभत्सा के पीछे धिक्कार हरण कर सकूँ अमित—
धिक्कार रहेगा जो स्पन्दित लज्जित ऐतिह्य-हृदयमें नित,
जब रुद्धकण्ठ शृंखलित भीत निःशब्द मौन होकर पलमें
यह युग होगा प्रच्छन्नपूर्ण छिप अपने चिता-भस्म-तलमें॥

## (६) न्याय-दण्ड

तोमार न्यायेर दण्ड प्रत्येकेर करे
अर्पण करेछ निजे, प्रत्येकेर 'परे
दियेछ शासनभार, हे राजाधिराज।
से - गुरु - सम्मान तव, से-दुरूह काज
नमिया तोमारे जेन शिरोधार्य करि
सविनये, तव कार्ये जेन नाहि डरि
कभु कारे। क्षमा जेथा क्षीण दुर्बलता,
हे रुद्र, निष्ठुर जेन होते पारि तथा
तोमार आदेशे ; जेन रसनाय मम
सत्यवाक्य झलि' उठे खर खड्गसम
तोमार इंगिते। जेन राखि तव मान
तोमार विचारासने लये निज स्थान।
अन्याय जे करे आर अन्याय जे सहे
तव घृणा जेन तारे तृण सम दहे॥

दे डाला प्रत्येक व्यक्ति के कर में अपने-आप
हे राजाधिराज ! तुमने तो अपना न्याय-विधान,
और दिया प्रत्येक व्यक्ति के सिर पर शासन-भार।
अति दुरूह यह कार्य और तव यह अति गुरु सम्मान—
शिरोधार्य कर सकूँ, विनय से करके तुम्हें प्रणाम ;
डरूँ किसी से कभी नहीं जब करूँ तुम्हारा काम।
क्षमा क्षीण दुर्बलता जिस थल, उस थल, मेरे रुद्र !
निष्ठुर मैं हो सकूँ तुम्हारा पा करके आदेश ;
सत्य वाक्य मेरी रसना में खर करवाल समान—
उठे झलमला पाकर के तव इंगित औ' सन्देश।
(प्रभो ! मुझे तुम इतना बल दो) रक्खूँ तव सम्मान
तव विचार-सिंहासन पर मैं पाकर अपना स्थान।
जो करता अन्याय और जो सह लेता अन्याय
घृणा तुम्हारी उसको तृणसम तुरत दहन कर जाय॥
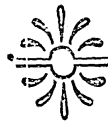
# कवि-गुरु रवीन्द्रनाथके कुछ पत्र

[ कविका परिचय उसके काव्यसे मिलता है ; किन्तु कविगुरु रवीन्द्रनाथके बारेमें यह बात पूरी तरह लागू नहीं होती । उनके काव्यसे उनका प्रकृत परिचय मिलता ज़रूर है, पर वह किसी भी हालतमें 'पूर्ण' नहीं कहा जा सकता । कारण, रवीन्द्रनाथ प्रकृति एवं संस्कारसे कवि होनेपर भी केवल कवि ही नहीं थे—वे कवि होनेके साथ ही साथ थे नाटककार, उपन्यासकार, नृत्यविद्, संगीतज्ञ, साहित्य-मनीषी, राजनीति-पंडित और गृह, समाज तथा प्रकृतिके एक तीक्ष्ण दृष्टिवाले समीक्षक एवं स्रष्टा । अतः उनकी बहुमुखी प्रतिभावाले अन्तरका परिचय और उसका प्रच्छन्न माधुर्य बिखरा है उनकी विभिन्न रचनाओंमें । रवीन्द्र-साहित्यमें समय-समयपर लिखे गए उनके पत्रोंका भी विशेष महत्व एवं स्थान है । सब मिलाकर उनके पत्र उनके जीवन, प्रकृति और अभ्यान्तरकी एक मनोमोहक कहानी हैं । इनमें उनकी कविता, कुतूहल-प्रियता और भावानुरंजकताकी खासी अच्छी छाप है । इनसे पाठक यह जान सकेंगे कि कवि केवल कल्पना, प्रकृति और कलाकी दुनियामें विचरनेवाले जीव ही नहीं थे, मानव-स्वभाव और मानविकताके सुरसज्ञ पुजारी भी थे । स्थानाभावके कारण हम यहाँ उनके पत्रोंके कुछ नमूने ही ( मूल पत्र और उनके हिन्दी-अनुवाद ) पेश कर रहे हैं । —सं० ]

'जीवन-स्मृति'का प्रकाशन और कवि

[ भाद्र, १३१८ बंगाब्दसे श्रावण, १३१९ तकके 'प्रवासी'में धारावाहिक रूपसे कविकी 'जीवन-स्मृति' प्रकाशित हुई थी । इस सम्बन्धमें 'प्रवासी'-कार्यालयकी ओरसे श्री चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय—जो उस समय 'प्रवासी'के सहकारी सम्पादक थे—के साथ कविगुरु रवीन्द्रनाथका जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसमें से कविके तीन पत्र यहाँ दिए जा रहे हैं ।]

\- १ -

शान्तिनिकेतन,
६ सितम्बर, १९१०

'प्रिय सम्भाषणमेतत्,

बाः तुमि त बेश लोक ! एकेबारे आमार जीवने हस्तक्षेप करते चाओ ! एत दिन आमार काव्य निये टानाटानि गियेछे—एखन बुझि जीवन निये छेंड़ाछेड़ि करते हबे ! सम्पादक हले मानुषेर दयामाया एकेबारे अन्तर्हित हय तुमि तारइ जाज्वल्यमान् दृष्टान्त हये उठ्छ ।

जत दिन बेंचे आछि तत दिन जीवनटा थाक् तार बदले व्याकरणेर एकटा किस्ति एबार पाठाइ एवं बड़-दादार लेखाटाओ पाठानो जाच्चे ।...

× × ×

एकटा नूतन नाटक लेखबार चेष्टाय आछि, दुइ-एक दिनेर मध्ये शुरू करब ।

तोमादेर
श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ।'

अर्थात्—

'प्रियवर,

वाह, तुम भी ख़ूब आदमी हो ! एकबारगी मेरे जीवनमें ही हस्तक्षेप करना चाहते हो ! इतने दिन मेरे काव्यको लेकर वाद-विवाद चला है—अब मालूम होता है, मेरे जीवनको लेकर छेड़-छाड़ होगी ? सम्पादक होनेपर मनुष्यकी दया-माया एकबारगी विलीन हो जाती है, इस बातके तुम जाज्वल्यमान दृष्टान्त हो ।

जितने दिन मैं बचा रहूँ, मुझे ज़िन्दा रहने दो । उसके बदलेमें मैं इस बार व्याकरणकी एक क़िस्त और बड़े दादाका लेख भेज रहा हूँ ।

× × ×

एक नया नाटक लिखनेकी चेष्टामें हूँ । दो-एक दिनमें शुरू कर दूँगा ।

तुम्हारा,
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।'

\- २ -

शिलाइदा (नदिया)

'प्रियवरेषु,

आमार जीवनेर प्रति दावी करे तुमि जे युक्ति प्रयोग करेछ सेटा सन्तोषजनक नय । तुमि लिखेछ 'आपनार जीवनटा चाइ ।'—एर पिछने यदि कामान बंदुक वा Halliday साहेबेर नाम स्वाक्षरे थाकत ताहले तोमार युक्तिर प्रबलता सम्बन्धे कारो कोनो सन्देह थाकत ना । तदभावे आपातत आमार जीवन निरापद आमारइ अधीने थाकबे एइटेइ संगत ।

आसल कथा हच्चे एइ जे, तुमि इहकाल परकाल सकल दिक सम्पूर्ण विवेचना करे एइ प्रस्तावटी करेछ, ना सम्पादकीय दुर्जय लोभे सम्पूर्ण अन्ध हये एइ दुःसाहसिकताय प्रवृत्त हच्च ता आमि निश्चय बूझते पारच्चिने बले किन्तु स्थिर करते पारचि ने। तोमार बयस अल्प, हठकारिताई तोमार पक्षे स्वाभाविक ओ शोभन, अतएव ए सम्बन्धे रामानन्दबाबूर मत कि, ता ना जेने तोमादेर मासिक पत्रेर Black and white ए आमार जीवनटार एक गाले चून ओ एक गाले कालि लेपन करते पारब ना।

त्वदीय,

इति ६६ ज्येष्ठ १३१८। श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

अर्थात्—

'प्रियवरेषु,

मेरे जीवनके प्रति दावा करते हुए तुमने जिस युक्तिका प्रयोग किया है, वह सन्तोषजनक नहीं है। तुमने लिखा है—'आपका जीवन चाहते हैं।' इसके पिछे यदि तोप-बन्दूक या Halliday साहबके हस्ताक्षर होते, तब भी तुम्हारी युक्तिकी प्रबलताके सम्बन्धमें किसीको कोई सन्देह नहीं होता! उसके अभावमें अभी तक मेरा जीवन निरापद रूपसे मेरे ही अधीन रहेगा, यही युक्ति संगत है।

असल बात तो यह है कि तुमने इधर-उधरकी सब तरफ़से विवेचना करके यह प्रस्ताव किया है या सम्पादकके दुर्जय लोभसे अन्धे होकर इस प्रकारकी दुःसाहसिकतामें प्रवृत्त हुए हो, निश्चित रूपसे मैं कुछ समझ नहीं पाता। इसीलिए मैं कुछ स्थिर भी नहीं कर पा रहा। तुम्हारी उम्र अभी कम है, हठधर्मी ही तुम्हारे लिए स्वाभाविक और शोभन है; अतएव इस सम्बन्धमें रामानन्द बाबूका मत क्या है, यह जानते हुए तुम्हारे मासिक पत्रके Black and white में अपने जीवनके एक ओर सफ़ेदी ( चूना ) और एक ओर कालिख नहीं पोत सकूँगा।

तुम्हारा,

इति। ६ ज्येष्ठ, १३१८। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

- ३ -

पोस्टमार्क—शिलाइदा,
२७ मे, ११

'प्रियवरेषु,

तोमार होतेइ जीवन समर्पण करा गेल। रामानन्दबाबूके लिखेछि। किन्तु अजितेर[1] प्रबन्ध शेष हये गेले एटा आरम्भ हलेइ भाल हय। लोकेर तखन जीवन सम्बन्धे औत्सुक्य एकटू बाड़ते पारे।

सत्येन्द्रके[2] कबे एखाने पाठाबार उद्योग करले आमाके सत्वर जानियो। एखाने तार कोनो असुविधा हबेना। तुमि यदि आसते ना पार मणिलाल[3] कि तांके पथ देखिये आनते पारबेना।

तोमार

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

इति १३ ज्येष्ठ १३१८।

अर्थात्—

'प्रियवरेषु,

तुम्हारे ही हाथमें आख़िर जीवन सौंप देना पड़ा है। रामानन्द बाबूको लिख चुका हूँ। किन्तु अजितके लेख समाप्त होनेपर ही यदि इसे ( छापना ) आरम्भ करो, तो अच्छा हो। तब लोगोंकी जीवनके सम्बन्धमें उत्सुकता कुछ बढ़ सकती है।

सत्येन्द्रको कब यहाँ भेज रहे हो, मुझे शीघ्र ही सूचित करना। यहाँ उसे किसी प्रकारकी असुविधा नहीं होगी। यदि तुम न आ सको, तो मणिलाल उसे रास्ता दिखानेके लिए भी न आ सकेगा?

तुम्हारा,

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

इति। १३ ज्येष्ठ, १३१८।

### स्त्री-शिक्षा और रवीन्द्रनाथ

[ रवीन्द्रनाथ लड़कियोंकी शिक्षाके लिए क्या कुछ करना चाहते थे, इसका आभास पाठकोंको श्रमरीकारी श्रीभवनकी व्यवस्थापिका श्रीमती हेमबाला सेनको लिखे गए उनके निम्न पत्रसे लगेगा। वे लड़कियोंके लिए शान्तिनिकेतनमें एक महिला-विश्वविद्यालय खोलनेको उत्सुक थे, जिसमें उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाती कि वे घर और बाहरको समान रूपसे सुन्दर बनानेमें समर्थ होतीं। पर धनाभावके कारण उनका यह संकल्प पूरा नहीं हो

1. श्री अजितकुमार चक्रवर्ती द्वारा धारावाहिक रूपसे 'प्रवासी'में रवीन्द्र-काव्यपर लिखे गए तीन प्रबन्ध—रवीन्द्रनाथ, काव्य-परिक्रमा और वातायन।
2. स्वर्गीय कवि सत्येन्द्रनाथ दत्त।
3. स्वर्गीय मणिलाल गंगोपाध्याय।

सका। इस पत्रमें विश्वभारतीके लिए धन-संग्रहके हेतु स्वीकारकी गई भिक्षावृत्तिके प्रति उनकी आत्म-ग्लानि भी झलकती है। यह पत्र उनके अन्तरंग भावोंके प्रकाशनका एक उत्कृष्ट एवं मूल्यवान नमूना है।]

'कल्याणीयासु'

हेमबाला, शरीर खाराप हयेचे खबर पेयेच। विशेष क्षति हय नि—आरामे आछि शय्यातले—घोरा-घोरि बकाबकि डाक्तरेर इंगिते एकेबारे थेमे गेछे। भिक्षार काज समानइ चलूचे किन्तु राजार मत शुये शुये। जादेर काछे थेके भिक्षा पाबार प्रत्याशा करि ताराइ आसे आमार शयनालयेर खास दरबारे।

तबु भिक्षेर काज आमार पछन्दसइ नय—एर चेये डाकाति भालो, ताते पौरुष आछे। अतलान्तिक पाड़ि देबार अनेक द्विधा करे छिलुम—शरीरओ विमुख हयेछिल मन ततोधिक। भितरे भितरे केवल एकटिमात्र तागिद छिल जार ताड़नाय आमाके मरिया करेछिल। मेयेदेर विश्वविद्यालय स्थापन करते हबे एइ संकल्प आमाके रास्ताय बेर करेछे। यदि किछुमात्र सिद्धि-लाभ करि ताहले देहेर दुःख एवं मनेर ग्लानि भूलते पारब। अनेक दिन अनेकेर द्वारे घुरेचि, अनेक अयोग्य लोकेर काछे माथा हेंट करते हयेचे, बारे बारेई अकृतार्थ हयेचि आरो एकबार यदि सेइ दुर्ग्रह घटे तबे एइ बार भिक्षेर झुलिते आगुन लागिये गंगा-स्नान करे जीवनेर शेष खेयार जन्ये चुपचाप बसे अपेक्षा करब। देशे आमार स्थान संकीर्ण तार प्रमाण भारि हये उठेचे तबुओ

नमो नमो नमः सुन्दरी मम जननी वंगभूमि

किछुइ यदि संग्रह करते ना पारि तबे क्लान्त हाड़ क'खाना मिलिये दिये जाब सेइ निष्ठुर जननीर पायेर धूलोर संगे।

थाक, नालिष थाक्; एबार एकटुखानि आशार कथा बला जाक्। किन्तु खुब क्षीण गलाय। केन ना नलोपाख्याने पड़ेचि कलिर चक्रान्ते पोड़ा माछ जले झाँपिये पड़ेचे। आमार दमयन्ती हलेन विश्वभारती आमार लजा रक्षार जन्ये अर्द्धेक आँचलओ बाकि राखबेन किना सन्देह करि। एबारे मने हच्छे जेन एकटा माछ प्राय डांगार काछे तुलेचि—किन्तु जलचर आबार जलेर तलाय फिरवे किना से कथा काके जिज्ञासा करब? किन्तु कल्पना करते दोष कि जे झुलि किछु परिमाणे भर्त्ति हबे, केन ना, ए तो 'आमार जन्मभूमि' नय—एखाने एरा आमाके किछु खातिर करे, आमरा विदेश भाग्यटा भालोइ। किन्तु झुलिर कतखानि करबे जानि ने। यदि यथेष्ट दक्षिणा जोटे तबे आमार देशेर मेयेदेर हाते आमार शेष दान दिये जाब विद्यादान। देशेर मेयेदेर आमि बराबर भाल बेसेचि, बोध हय तादेर कल्याणेइ सरस्वती आमार प्रति प्रसन्न हयेचेन—सरस्वतीर सेइ प्रसादेर अंशइ यदि आमि कोन अभंगुर पात्रे मेयेदेर जन्ये रेखे जेते पारि तबे आमार भाग्यदेवतार जयध्वनि करे विदाय नेब।

नवेम्बरेर शेष पर्यन्त एदेशे आमार शयान अवस्थाय काट्बे। तार परे समुद्र पार हते हते पौष पार हबे ना एइ आशा करे आछि। किन्तु देशेर दुःखे आमार एइ हृत्पिण्ड क' दिन टिक्बे ताइ भावि। तबु एकथाओ भावते हय, बड़ो दाम ना दिये बड़ो फल पाओया जाय ना —बड़ो दुःखेर भितर दियेइ सकल देश सार्थकताय पौंचेछे। आमादेरओ शेष कड़ा पर्यन्त गुणे दिते हबे। बुकेर पाँजर बिछिये देब भाग्येर जयरथ तार उपर दिये चलबे। सेइ अति दुर्गम पथेर चेहारा देखे एसेचि राशियाय। ताइ मने हच्चे एखनो यथेष्ट हय नि—जे चिकित्सक मुमूर्षु दशा थेके आमादेर देशके बाँचिये तुल्बेन तिनि हच्चेन सहस्रमारी चिकित्सक। अनेक मेरे मेरे तबे तिनि बाँचान। सेइ जन्ये मार खेये जखन दुःख प्रकाश करि तखन ताते लज्जा बोध हय। बार बार चलते हबे, ना—किछु लागे नि। एमनि करेइ मारके लज्जा दिते हय। राशियार विप्लवेर इतिहास पड़े देखो। इति २८ अक्टोबर १९३०

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

अर्थात्—

'कल्याणीयासु,

हेमबाला, तुमने मेरे शरीरके अस्वस्थ होनेकी ख़बर पा ली है। पर मुझे कोई विशेष क्षति नहीं हुई है—आरामसे शय्यापर लेटा हुआ हूँ—टहलना-फिरना बात-चीत करना आदि सब डाक्टरके आदेशसे एकबारगी बन्द हो गया है। भिक्षाका काम साधारणतया चल रहा रहा है, किन्तु राजाकी तरह लेटे ही लेटे। जिनसे मुझे भिक्षा मिलनेकी आशा होती है, वे स्वयं ही मेरे शयनालयके ख़ास दरबारमें चले आते हैं।

फिर भी भिक्षाका काम मुझे पसन्द नहीं—इससे तो

डकैती कहीं अच्छी है, उसमें पौरुष तो है। अतलांतिक पार करनेसे पहले मैं बड़ी दुविधामें फँसा था—शरीर तो विमुख था ही, पर मन उससे भी अधिक। मनके भीतर ही भीतर एकमात्र तक़ाज़ा था, जिसकी ताड़ना मुझे मारे डाल रही थी। लड़कियोंके लिए एक विश्वविद्यालय स्थापित करना है, यही संकल्प मुझे इस मार्गपर खींच लाया है। यदि मैंने कुछ भी सफलता प्राप्त की, तो शरीरका दुःख और मनकी ग्लानि सब भूल सकूँगा। कई दिन तक कइयोंके दरवाज़े खटखटाए हैं, कई अयोग्य व्यक्तियोंके सामने सिर नीचा करना पड़ा है और बार-बार अकृतार्थ होना पड़ा है। अगर ऐसा दुर्ग्रह फिर एक बार घटित हुआ, तो भिक्षाकी इस झोलीको आग लगाकर गंगा-स्नान करके शेष जीवन-यापन करनेके लिए चुप-चाप बैठकर अपेक्षा करूँगा। देशमें मेरा स्थान बड़ा संकीर्ण है, इसका प्रबल प्रमाण मिलनेपर भी

'नमो नमो नमः सुन्दरी मम जननी वंगभूमि'

यदि मैं कुछ भी संग्रह न कर सकूँ, तब अपनी इन कुछ क्लान्त हड्डियोंको उसी निष्ठुर जननीकी चरण-रजमें मिला दूँगा।

ठहर, अब शिकायत न कर आशाकी एक बात कहता हूँ—किन्तु ख़ूब क्षीण गलेके साथ। नलोपाख्यानमें पढ़ा है कि कलिकालके प्रभावसे भुनी हुई मछली भी जलमें कूद गई। मेरी दमयन्ती है विश्वभारती, जो मेरी लज्जा-रक्षाके लिए आधा आँचल भी बाक़ी रखेगी या नहीं, इसमें सन्देह है। इस बार मालूम होता है, मैंने एक मछली तटके पास ही पकड़ ली है, किन्तु वह मछली मेरे हाथसे छूटकर फिर पानीमें चली जायगी या नहीं, यह बात मैं किससे पूछूँ? किन्तु यह कल्पना करनेमें हर्ज़ ही क्या है कि मेरी भिक्षाकी झोली कुछ ही भर पायगी; क्योंकि यह मेरी 'जन्मभूमि' तो नहीं है—अभी तक तो यहाँ मेरी ख़ातिरदारी ही हो रही है, क्योंकि मेरा विदेश-भाग्य तो अच्छा है ही। पर यह झोली कितनी भरेगी, यह मैं नहीं जानता। यदि यथेष्ट दक्षिणा जुटा पाया, तभी अपने देशकी लड़कियोंके हाथोंमें मैं अपना अन्तिम दान दे सकूँगा विद्यादान। अपने देशकी लड़कियोंके प्रति बराबर मेरा स्नेह रहा है। जान पड़ता है, उनके कल्याणसे ही सरस्वती मुझपर प्रसन्न हुई हैं। जब सरस्वतीके उस प्रसादके अंशको लड़कियोंकी भलाईके लिए मैं किसी अभंगुर पात्रको सौंप सकूँगा, तब मैं अपने भाग्यदेवताकी जयध्वनि कर विदा ले लूँगा।

नवम्बरके अन्त तक मुझे इस देशमें रोग-शय्यापर लेटे-लेटे ही अपना समय काटना पड़ेगा। उसके बाद समुद्र पार करते-करते पौष ख़त्म नहीं हो जायगा, ऐसी आशा है। किन्तु देशके दुःखसे मेरा यह जीर्ण हृत्पिण्ड कब तक टिका रहेगा, यही सोचता हूँ। उसपर यह बात भी सोचता हूँ कि बड़ी क़ीमत न देनेपर बड़ा फल नहीं मिल सकता—बड़ा दुःख झेलनेपर ही सब देश सफलता प्राप्त करते हैं। हमें आख़री कौड़ी तक गिन देनी होगी। अपना हृदय-पंजर बिछा देना होगा और उसीपर होकर भाग्यका रथ गुज़रेगा। उस अति दुर्गम पथकी रूप-रेखा देख आया हूँ मैं रूसमें। इसीलिए सोचता हूँ कि अभी भी कुछ यथेष्ट नहीं हुआ है—जो चिकित्सक मुमूर्षु दशासे हमारे देशको बचायगा, वह है सहस्रमारी चिकित्सक। बहुतोंको मार-मारकर तब वह लोगोंको बचाता है। इसीलिए मार खाकर जब हम दुःख प्रकाश करते हैं, तो शर्म आती है। हमें तो बार-बार कहना होगा, नहीं—कुछ भी नहीं लगती। ऐसा करके ही हमें मारको लज्जित करना होगा। ज़रा रूसकी क्रान्तिका इतिहास पढ़कर देखो। इति। २८ अक्टूबर, १९३०

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

### विश्वभारतीके स्थायित्वकी इच्छा

[ उपर्युक्त पत्रसे कोई चार मास पूर्व कविने उसीसे मिलता-जुलता एक पत्र श्रीमती किरणबाला सेनको लिखा था, जिसमें विश्वभारतीको स्थायी करनेकी इच्छाके कारण भिक्षा-वृत्ति स्वीकार करनेका बड़े मार्मिक शब्दोंमें उल्लेख है। अर्थकी सार्थकता और अर्थशालियोंकी हिसाबी मनोवृत्तिका विश्लेषण इसमें इतना सूक्ष्म हुआ है कि पाठकके मनपर उससे प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। विश्वभारतीके स्थायित्वको लोगोंकी इच्छाके परे कहकर कविने उसके प्रति अपने दृढ़ संकल्पका ख़ासा अच्छा परिचय दिया है। ]

Darlington Hall
Totnes

'कल्याणीयासु,

किरण, आमार जन्मदिने तोमार जे चिठि लिखेछिले सेटा आज पेलुम। एत दिने आश्रमेर आकाशे आषाढ़ेर

घनघटा। दूरेर थेके जेन धारावर्षणेर शब्द शुनते पाच्चि, आमार कल्पनाय अनुभव करचि भिजे बातासे मालती फूलेर गन्ध। जखन यात्रा करे बेरियेछिलुम मने छिल छुटिर परे फिरब—किन्तु प्रबासेर मेयाद बेड़े चलेचे। जेहेतु एबारे विश्वभारती भिक्षार भूलि निये बेरियेचि—बन्धुरा बलचेन अक्टोबरेर पूर्वे अमेरिकार धनी गृहस्थदेर पाओया जाबे ना। अपेक्षा करतेइ हबे। कारण, अर्थाभावे आमादेर संकल्प अनिश्चयतार सोते भेसे बेड़ाय—कूल पाय ना—तल पाओयार सम्भावनाइ बेड़े उठे। अर्थकृच्छ्रेर दीनता सब चेये स्थूल एवं हीन दीनता—अन्नब्रह्म विमुख हले अधिकांश लोकेर पक्षेइ आत्मश्रद्धा विमुख हये जाय। तखन परस्परेर मध्ये सम्बन्ध कलुषित हते थाके। भिक्षार काज आमार नय किन्तु सकलेर हये भिक्षा आमि छाड़ा आर के करबे? कत अपरिचित धनीर द्वारे कत वाक्यजाल विस्तार करते हबे—तादेर दिन थेके कत प्रश्न कत संशय, आमार दिके थेके नति स्वीकार। अर्थशालीरा स्वभावतइ अर्थेर सार्थकता हिसाब करे, निजेर भाण्डारे तादेर जे टाका संचित सेटाके विविध उपाये सुरक्षित करे तबे तारा निश्चिन्त हय—परेर भाण्डारेओ जखन तादेर उद्धृत्तेर एकांश जाय तखनओ सेटा सुरक्षित होलो कि ना ए उद्वेग तादेर मने थाके। यदि वा आमार वर्त्तमानके तारा विश्वास करे आमार अवर्त्तमानके तारा शून्यबलेइ जाने—तखन की हबे ए प्रश्न तादेर मने जागे। एकथा मने करते पारे ना जा दियेछि तार परे आर असक्ति राखा उचित नय। आमाकेइ जारा भालबेसे सम्पूर्ण आग्रहे दिते पारे तादेर दान सम्बन्धे आमार मनेओ कोन संकोचेर कारण थाके ना। किन्तु विश्वभारती नाम करे जखन विश्वेर द्वारे दाँड़ाइ तखन दानकर्त्ता जे प्रश्नेर उत्तर दिते हय से उत्तर आमि निजेइ जानि ने। तारा थलिर बन्धन मोचन करबार पूर्वेइ नीरवे वा सरवे जिज्ञासा करे विश्वभारती देशे ओ काले, भावे ओ रूपे कतखानि सत्य। केमन करे बलब? आमार इच्छा ओ आमार चेष्टार मध्ये जे सत्य आछे ताइ आमि किछु-किछु जानि—किन्तु तार बाइरे किछुइ जानि ने। जानि बाधा विस्तर आछे, आमार अवर्त्तमाने से बाधा क्षय हबे कि बाड़बे ता केमन करे बलब? आमादेर शुभ इच्छाके चिरस्थायी करते चाइ। से आमादेर लोभ। शतसहस्र लोकेर इच्छार उपर तार स्थायित्व निर्भर करे। ना, ठिक बललुम ना। अल्प लोकेर सत्य इच्छार परेइ तार स्थायित्व। अर्थात् परिमाणेर उपरे नय, सत्यतार उपरे। किन्तु सत्यइ सबचेये दुर्म्मूल्य—नाना प्रलोभन दिये दल बाड़ानो जाय किन्तु सत्य ताते बाड़े ना। आमार विपद हयेचे ताइ—अर्थेर प्रयोजन आमि बूझि। किन्तु से प्रयोजन बाह्य प्रयोजन। जे पदार्थ आपनातेइ आपनि सार्थक सब छेड़े तारइ जन्ये यदि एकान्तभावे तपस्या करतुम ताहले बाह्य सफलतार दैन्येर दिके ताकिये कोनो लज्जा बा दुःखेर कारण थाकत ना। तार साधना ओ तार सिद्धि आमार निजेर भितर थेके। यदि तार जन्ये भ्रूक्षेपमात्र ना करतुम ताहले आज एत बड़ दुश्छेद्य दैन्यजाले आमाके जड़ित ह'ते ह'त ना। जाइ होक, भिक्षा आमाके करतेइ हबे एवं भिक्षुकके अन्येर समयेरइ अपेक्षा करते हय। एइ मने करे आमार मने आक्षेप जन्मे जे आमार तो समय बेशि नेइ। एइटुकु समय ओ आमि सम्पूर्ण भावे पावना। काज करे अनेक समय नष्ट करेछि बेला शेषेर बाकि समयटुकु भोग करे सार्थक करते इच्छा करे। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः, आमार भोग सृष्टिते—से सृष्टिके बुद्धिमान लोके सृष्टिछाड़ा बलेइ जाने—बले समय नष्ट करा। किन्तु आमि बलि, तेमनि करेइ समय यदि नष्ट ना करि ताहले समय आमाके नष्ट करबे। विधाता अनादि अनन्तकाल एमनि नष्ट करेइ आसचेन निजेके सार्थक करबार जन्येइ—तिनि निरन्तर सृष्टि करे आसचेन किन्तु सृष्टि व्यतीत तार आर कोनो अर्थेइ नेइ। इति ६ जून १९३०

तोमादेर

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

अर्थात्—

डार्लिंगटन हाल,

टाटनेस।

'कल्याणीयासु,

किरण, मेरे जन्मदिनपर तुमने जो चिट्ठी लिखी थी, वह आज मिली। इतने दिन आश्रमके आकाशमें आषाढ़के बादल छाए रहे। दूर होनेपर भी जैसे मैं उनके धारा-वर्षणके शब्दको सुन रहा हूँ और कल्पना द्वारा भीनी बयारमें मालतीके फूलोंकी गन्ध अनुभव करता हूँ। जिस समय मैं विदेश-यात्राके लिए निकला था, सोचा था कि छुट्टीके बाद ही लौट आऊँगा—किन्तु

प्रवासकी मियाद बढ़ती ही जाती है। जिस हेतु इस बार मैं विश्वभारतीकी भिक्षाकी झोली लेकर निकला हूँ, उसके लिए अभी अपेक्षा करनी होगी—क्योंकि मित्रोंका कहना है कि अक्टूबरसे पहले अमेरिकाके धनी गृहस्थ मिल नहीं पायँगे। कारण, अर्थाभावसे हम लोगोंका संकल्प अनिश्चितताके स्रोतमें बह जाता है—किनारा उसे नहीं मिलता, उसके पैंदे लगनेकी सम्भावना ही अधिक रहती है। अर्थकृच्छ्रकी दीनता सब दीनताओंसे स्थूल और हीन है, क्योंकि अन्नब्रह्मके विमुख होनेसे अधिकांश लोगोंका आत्मविश्वास भी विलुप्त हो जाता है। तब पारस्परिक सम्बन्ध कलुषित हो उठते हैं। भिक्षाका काम मेरा नहीं है, किन्तु सबका होकर भिक्षा मेरे सिवा और कौन माँग सकता है? कितने अपरिचित धनियोंके दरवाज़ेपर जाकर कितनी बातें बनानी होंगी—कितने प्रश्न और कितना संशय वे करेंगे और मुझे सब कुछ नत मस्तक होकर स्वीकार कर लेना होगा। धनी आदमी स्वभावतः अपने धनकी सार्थकताका हिसाब लगाते हैं, अपने कोषमें उनके जो रुपए संचित होते हैं, उन्हें विविध उपायोंसे सुरक्षित करके ही वे निश्चिन्त होते हैं—दूसरेके कोषमें भी उनकी सम्पत्तिका जो अंश जाता है, वह भी सुरक्षित रहेगा या नहीं, इसका उद्वेग भी उनके मनमें रहता है। उनके मनमें यह प्रश्न उठता है कि यदि वे मेरे वर्तमानपर विश्वास कर भी लें और भविष्यको शून्य समझ लें, तब क्या होगा? यह बात तो वे सोच ही नहीं सकते कि जो कुछ दान कर दिया जाय, उसके बाद उसपर कोई आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। जिन लोगोंका मेरे प्रति प्रेम है, वे अत्यन्त आग्रहपूर्वक जो कुछ देते हैं, उसे लेनेमें मेरे मनमें भी किसी प्रकारका संकोच नहीं होता। किन्तु जब मैं विश्वभारतीके नामपर विश्वके द्वारपर जाकर खड़ा होता हूँ, तब दानकर्ताके प्रश्नका क्या उत्तर दिया जाय, यह ख़ुद मैं भी नहीं जानता। वे अपनी थैली खोलनेसे पूर्व ही नीरव या स-रव रूपसे यह जिज्ञासा करते हैं कि देश और काल तथा भाव और रूपकी दृष्टिसे विश्वभारती कितनी यथार्थ है। उनसे मैं क्या कहूँ? मेरी इच्छा और चेष्टामें जो सत्य है, मैं तो थोड़ा-बहुत उसीको जानता हूँ, किन्तु उसके बाहर मैं कुछ नहीं जानता। जानता यह हूँ कि बाधाएँ बहुत हैं; और मेरे अवर्त्तमानमें वे क्षय होंगी या बढ़ेंगी, यह कैसे कह सकता हूँ? मैं एक शुभ इच्छाको चिरस्थायी करना चाहता हूँ—यही मेरा लोभ है। उसका स्थायित्व शत-सहस्र लोगोंकी इच्छाके ऊपर निर्भर करता है। पर नहीं, यह मैंने ठीक नहीं कहा। कुछ लोगोंकी सत्य इच्छासे परे ही इसका स्थायित्व है। अर्थात् परिमाणपर नहीं, सत्यपर। किन्तु सत्य है सबसे दुर्मूल्य—नाना प्रलोभनोंसे दल बढ़ सकता है, किन्तु सत्य तो उससे नहीं बढ़ सकता। मेरी विपद यही है—अर्थका प्रयोजन मैं समझता हूँ, पर वह तो बाह्य प्रयोजन मात्र है। जो पदार्थ अपने आप ही में सार्थक है, सब कुछ छोड़कर यदि उसीके लिए एकान्त भावसे तपस्या करता, तो बाह्य सफलताके दैन्यकी ओर देखकर लज्जित या दुःखित होनेका कोई कारण न होता। उसकी साधना और सिद्धि मेरे अपने आप ही में होती। किन्तु अन्य सबके लिए जो प्रयोजन है, उसे तो बाहरसे ही पूरा करना होगा। शुरूसे ही यदि उसके लिए भौंहों तकमें बल न डालता, तो आज मुझे इतने दुश्छेद्य दैन्य-जालमें नहीं जकड़ना पड़ता। जो भी हो, भिक्षा-वृत्ति मुझे करनी ही होगी और भिक्षुककी हैसियतसे दूसरोंके समयकी उपेक्षा भी करनी होगी। यही सोचकर मेरे मनमें एक आक्षेप उठता है कि मेरा तो अब अधिक समय शेष नहीं है और इस समयको भी मैं पूरा नहीं पा सकूँगा। काम करके मैंने बहुत-सा समय नष्ट किया है, बचे हुए समयको भी पूरी सार्थकताके साथ यापन करनेकी इच्छा होती है। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' (बहुत-से लोग भोग कर सृष्टिको त्याग देते हैं), मेरा भोग तो सृष्टिमें ही हैं—जिसे बुद्धिमान लोग सृष्टिके बाहरकी ही चीज़ समझते हैं—जिसे समय नष्ट करना कहते हैं। किन्तु मेरा कहना है कि यदि मैं समयको वैसा करके नष्ट नहीं करता, तो एक दिन समय मुझको नष्ट कर देगा। विधाता अपने आपको सार्थक करनेके लिए ही अनादि-अनन्त कालसे इसी प्रकार नष्ट करता आ रहा है—वह निरन्तर सृष्टि करता आ रहा है, किन्तु सृष्टिके बाहर उसका और कोई अर्थ ही नहीं। इति। ६ जून, १९३०

तुम्हारा,

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

### चित्रकला सीखनेको विदेश-यात्रा

[ त्रिपुराके चित्रकार श्री धीरेन्द्रकृष्णदेव वर्माके यह सूचित करनेपर कि चित्रकलाकी 'उच्च' शिक्षाके लिए

उन्हें विलायत जानेको छात्रवृत्ति मिली है, कविने उन्हें जो पत्र लिखा है, उसमें उनके स्वाभिमान और स्वदेशाभिमानकी ख़ासी अच्छी झलक है। विलायतकी छाप लगवाकर आनेवालेकी जो पूछ होती है, उसका प्रधान कारण हमारा भाव-लाघव, हीनता एवं दैन्यका अनुभव ही है, इस ओर कविने बड़े मर्मभेदी शब्दोंमें इशारा किया है। इसी कारण कवि अपने स्नेह-भाजनकी विलायत-यात्रापर भी प्रसन्नता नहीं प्रकाशित कर सके। यहाँ हम श्री देववर्माको लिखे गए उनके दो पत्र दे रहे हैं। ]

- १ -

'कल्याणीयेषु,

तोमार चिठि पेये खुशि हलुम। किन्तु छात्रवृत्ति निये तुमि बिलाते जाच्छ ए संवादे आमि किछुमात्र आनन्द बोध करचि ना। यदि विज्ञान शिखते जेते आपत्ति करतुम् ना। किन्तु चित्रकला ? एइटेइ कि प्रमाण करते जाबे जे एइ हतभाग्य देशे कोनो विभागेइ निजेर मध्ये निजेर शक्तिर उद्भावन नेइ! पिठे ओदेर दागा निये तबे आमरा पण्येर मतो हाटे बिकाते जाब। ज्ञान शिक्षाय नम्रतार प्रयोजन, किन्तु सृष्टिशक्तिर प्रतिभा माथा हेंटे करार द्वारा जे आत्मावमानना करे ताते तार शक्तिर ह्रास हय। * * * तार परिचय दियेचे। तबे किना टाकाय थलिर पूरण हयसे कथा मानि। अजण्टार चित्रीदेर सम्बन्धे एइ गौरव चिरदिन करब जे तारा सम्पूर्ण आमादेरइ—साउथ केन्सिंगटनेर लांछनाय लांछित नय तारा। किन्तु कोन् प्रलोभने कोन् मोहे तोमार एइ अगौरवेर दागा स्वीकार करते चल्ले जा'ते इतिहासे चिरदिन घोषित हते थाकबे जे तोमार ख्याति ब्रिटिश साम्राज्येर ख्यातिरइ उच्छिष्ट! एमनि करे निजेर प्रतिभार जात मेरे तार परिवर्त्ते अर्थ पाबे किन्तु स्वदेशके एकेबारे अन्तरे अन्तरे वंचित करबे सेकथा मने रेखो। आमादेर आपिसे परोपजीवीदेर दल आछे, आमादेर विश्वविद्यालये परेर छात्रदेर भीड़—किन्तु भारतेर भारतीर राज्येर कोथाओ कि एकटा जायगा थाकबे ना जेखाने वीणापाणिर वीणार अंततः एकटि ताराओ एखानेकारइ खनिर खाँटि सोनाय तैरि! सर्व्वत्रइ विलिती हाटेर एइट्टिन् क्यारा‍ट् चालाते हबे ? दुर्भागा देशे मजुररा जाय परेर द्वारे अन्नेर जन्य, किन्तु सेइ देश तारा चेये आरो दुर्भागा जेखान थेके गुणीराओ विदेशी धनीर काछे सेलाम सेलाम क'रे बले, तोमार हातेर तिलक कपाले यदि आँकि तबेइ आमार जय हबे! साउथ केन्सिंगटनेर दागा देशेर आशीर्वादके व्यर्थ करबे ए मने जेने तोमार विदेश यात्राय आमि प्रसन्नता प्रकाश करि केमन करे ? इति २३ श्रावण १३३६

शुभाकांक्षी
श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

अर्थात्—

'कल्याणीयेषु,

तुम्हारी चिट्ठी पाकर ख़ुशी हुई। किन्तु छात्रवृत्ति लेकर तुम विलायत जा रहे हो, इस संवादसे मुझे कुछ भी ख़ुशी नहीं हुई। यदि तुम विज्ञानकी शिक्षाके लिए वहाँ जाते, तो मैं कुछ आपत्ति नहीं करता। किन्तु चित्रकला ? इस सम्बन्धमें क्या तुम यही प्रमाणित करने जाओगे कि इस हतभागे देशके किसी भी विभागमें अपने-आपमें अपनी शक्तिका उद्भावन नहीं है। हम लोग क्या अब पीठपर उनकी छाप लगवाकर बाज़ारमें बिकने जायँगे ? ज्ञानकी शिक्षाका प्रयोजन है नम्रता, किन्तु सृष्टि-शक्तिकी प्रतिभाका सिर नीचा करके जो आत्मवमानना करता है, उससे उसकी शक्तिका ह्रास ही होता है।......उसका परिचय दिया है। तब रुपयोंकी थैली पूरी होती है, यह बात मैं मानता हूँ। अजन्ताके चित्रकारोंपर हम चिरकाल तक इसीलिए गौरव करेंगे कि वे सम्पूर्ण रूपसे हमारे ही हैं, साउथ केन्सिंगटनकी लांछनासे लांछित नहीं हैं। किन्तु किस प्रलोभन और मोहसे तुम अगौरवके इस कलंककी छापको स्वीकार करने जा रहे हो, जिससे चिरकाल तक इतिहासमें यह घोषित होता रहेगा कि तुम्हारी ख्याति ब्रिटिश साम्राज्यकी ख्यातिकी जूँठन ही है ! ऐसा करके तुम अपनी प्रतिभाको मारकर उसके बदलेमें धन ज़रूर पाओगे, किन्तु भीतर ही भीतर तुम स्वदेशको वंचित भी करोगे, यह बात याद रखना। मेरे दफ्तरमें परोपजीवियोंका दल है, विश्वविद्यालयमें दूसरे छात्रोंकी भीड़ है ; किन्तु भारतमें सरस्वतीके राज्यमें क्या कहीं भी कोई ऐसी जगह न होगी, जहाँ वीणापाणिकी वीणाका कमसे कम एक भी तार यहींकी खानके विशुद्ध सोनेका बना हुआ हो ? क्या सभी जगह विलायती बाज़ारका १८ कैरेट् सोना चलेगा ? अभागे देशके मज़दूर अन्नके लिए दूसरोंके दरवाज़ेपर जाते हैं ; किन्तु वह देश उससे भी अधिक अभागा है, जहाँके

गुणी लोग विदेशी धनियोंके सामने जाकर सलाम झुकाते और कहते हैं—'यदि आप अपने हाथसे हमारे ललाटपर तिलक कर देंगे, तब ही हमारी जय होगी !' साउथ केन्-सिंगटनकी छाप तुम्हारे देशके आशीर्वादको व्यर्थ करेगी, यह जानते हुए मैं तुम्हारी विदेश-यात्रापर प्रसन्नता किस प्रकार प्रकट करूँ ? इति। २३ श्रावण, १३३६

शुभाकांक्षी,
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

- २ -

'कल्याणीयेषु, शान्तिनिकेतन

तोमार चिठिखानि पेये आश्वस्त हलुम। बिलिती माष्टारेर हाते तोमरा जे छात्र ब'ने जावे ना, एटा भालो कथा। ओखानकार चित्रकला भालो करे देखबे, विचार करबे, तार थेके जेटुकु सम्पूर्णभावे आपनार करे निते पारो से चेष्टाओ छाड़ा उचित नय—केवल निजेर मुण्डटा निजेर काँधेरइ उपरे जेन थेके एइ हलेइ होलो। * * * एर दुरवस्था देखे आमि भय पेये गेछि।

एखाने शरतेर अवसान हये एलो, शीत पड़ेचे। दुपुर बेलाय आतप्त हाओयाटि बेश लागचे भालो—माठेर प्रान्ते सुदूर वनरेखाटि दिक लक्ष्मीर नील अंचल देओया चक्षुपल्लवेर मतो देखा जाच्चे। माठे वर्षार रसपुष्ट घास एखनो घन सबुज आछे, गोरुगुलि अलसभावे चरे बेड़ाचे—कोथा थेके घुघुर डाक शुनते पाच्चि—सामने ए लाल रास्ता दिये चलेछे गोरुर गाड़ी—आकाशे पाण्डुवर्ण छिन्न मेघेर स्तवक, जेन द्युलोकेर धेनुर पाल—मन्थर गमने परिपुष्ट देहे चरे बेड़ाचे।

प्रवासे तोमार साधना सम्पूर्ण सार्थक होक् एइ आमि कामना करि। इति ११ नवम्बर १९२९

शुभाकांक्षी
श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

अर्थात्—

शान्तिनिकेतन,

'कल्याणीयेसु,

तुम्हारी चिट्ठी पाकर आश्वस्त हुआ। तुम विलायती अध्यापकके छात्र नहीं बनोगे, यह अच्छी बात है। वहाँकी चित्रकलाको अच्छी तरह देखना, विचार करना और उसमें से जो कुछ बिल्कुल अपना करके ले सको, उसकी चेष्टा छोड़ देना भी उचित नहीं। केवल अपना सिर अपने कन्धोंपर रहे, बस इतना ही काफ़ी है।......उसकी दुरवस्था देखकर मैं डर गया हूँ।

यहाँ शरत् ऋतु समाप्त हो गई है और सर्दी पड़ने लगी है। दोपहरकी गरम हवा बहुत अच्छी मालूम होती है—मैदानकी सुदूर वन-रेखा दिक्-लक्ष्मीके नील आँचलको ओढ़कर पलककी नाईं दिखाई पड़ रही है। मैदानमें वर्षाकी रस-पुष्ट घास ख़ूब हरी-भरी है। ढोर अलस भावसे चरते फिरते हैं—कहींसे घुग्घूकी आवाज़ सुनाई पड़ रही है। सामनेके लाल रास्तेपर बैलगाड़ी चली जा रही है। आकाशमें पाण्डुवर्णके छिन्न मेघोंका स्तवक ऐसा मालूम हो रहा है, मानो द्यूलोककी परिपुष्ट देहकी गाएँ मन्थर गतिसे चरती हुई घूम रही हैं।

प्रवासमें तुम्हारी साधना सम्पूर्ण सार्थक हो, यही मेरी कामना है। इति। ११ नवम्बर, १९२९

शुभकांक्षी
श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर।'

## भूल-सुधार

(१) पृष्ठ १३७ के सामने छपे दूसरे चित्रके नीचे 'ड्रेसडनमें' ग़लतीसे छप गया है। उसके स्थानपर 'प्रागमें' होना चाहिए। (२) पृष्ठ १० पर छपे लेखके लेखकका नाम 'जे० रामचन्द्रन' न होकर 'जी० रामचन्द्रन' होना चाहिए। (३) पृष्ठ १७४ पर दूसरे कालमकी पन्द्रहवीं पंक्तिमें 'पारवाज़' (जिसपर ३७ छपा है) की जगह 'परवाज़' होना चाहिए। (४) पृष्ठ ६५ पर छपे लेखका शीर्षक 'वह अमिट चित्र'की जगह 'वे अमिट चित्र' होना चाहिए। पृष्ठ ६७ के पहले कालमका तीसरा पैरा काश्मीरकी एक स्मृति है, शान्तिनिकेतकी नहीं। पृष्ठ ६७ के दूसरे कालमके अन्तिम पैराकी तीसरी पंक्तिमें 'गुरुदेव द्वारा आलेखित रेखाचित्र'की जगह 'गुरुदेवके रेखाचित्र' होना चाहिए।

## सूचना

१. तीन-चार बार जाँच करनेके बाद विशेषांक कार्यालयसे भेजा जारहा है। फ़रवरीका अंक आगामी १० फ़रवरी तक भेज दिया जायगा।

२. आगामी १५ फ़रवरी तक हमारा प्रोगाम :—
१ फ़रवरीसे ४ तक बल्कावस्ती, आगरा, ५ से १५ तक मार्फ़त पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, टीकमगढ़ C. I.

# रवीन्द्रनाथकी वंशावलि
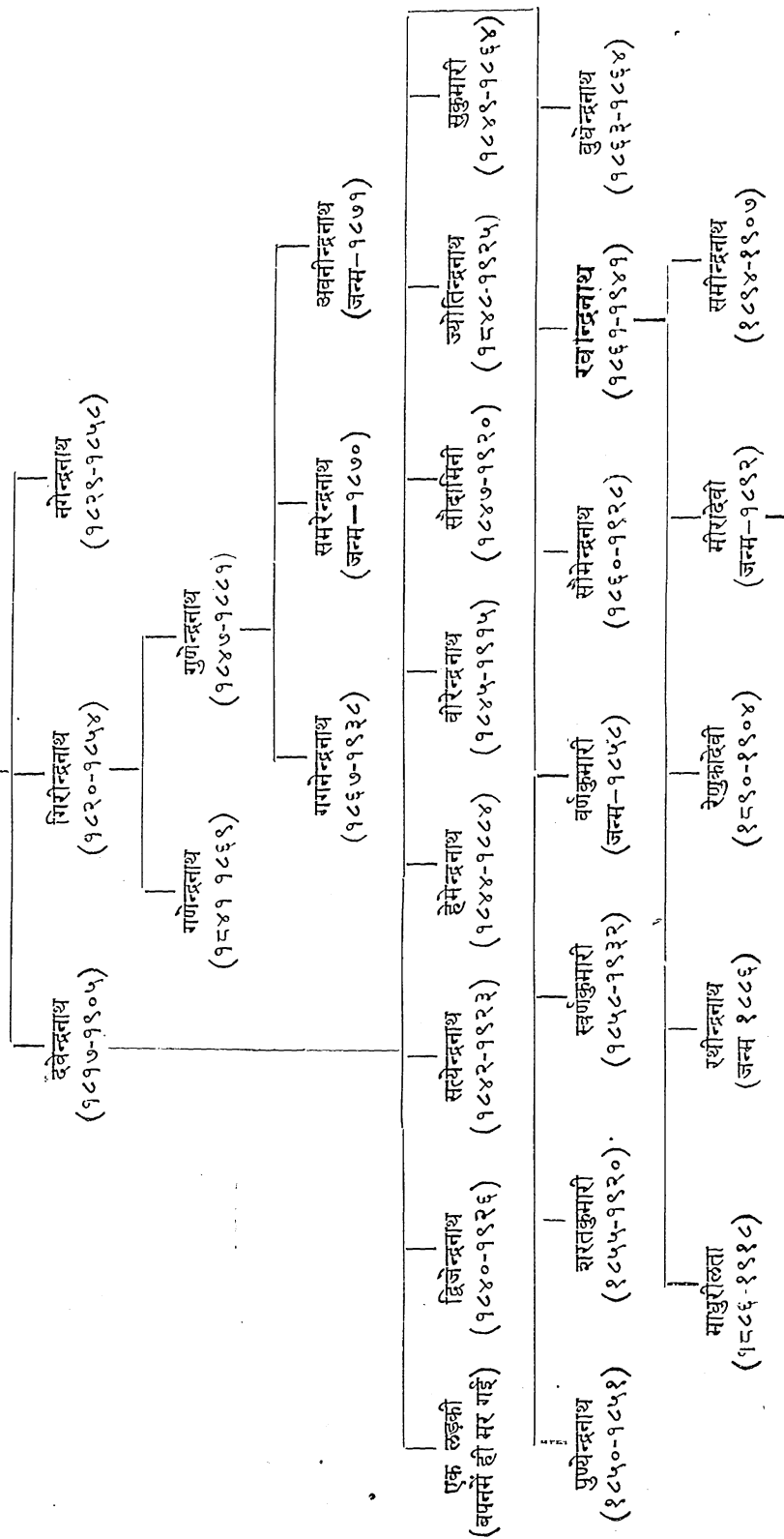
# —इस अंकके कुछ लेखक—

आचार्य क्षितिमोहन सेन—आप शान्तिनिकेतनके एक स्तम्भ हैं और भारतवर्षके इने-गिने पंडितोंमें से एक। 'विशाल-भारत'पर आपकी प्रारम्भसे ही कृपा रही है।

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी—आप शातिनिकेतनके हिन्दी-विभागके अध्यक्ष हैं। आपकी सरलता और विनोद-प्रियताने आपकी गम्भीर अध्ययन-शीलतामें चार चाँद लगा दिए हैं। बलिया-ज़िलेके होनेके कारण द्विवेदीजीका मैनपुरी ज़िलेवालोंसे बौद्धिक स्नेह है।

देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद—आप विनम्रता, सरलता और सौजन्यकी मूर्ति हैं। गहन विवेचन और पाण्डित्यने आपको देशका गौरव बना दिया है।

श्री श्यामसुन्दर खत्री—आप प्रोपेगेण्डाकी दुनियासे दूर रहनेवाले गम्भीर, शान्त और विचारशील साहित्य-सेवी हैं। आप 'विशाल भारत'के सुपरिचित कवि और लेखक हैं।

नन्दिता (जन्म-१९१७)

नितीन्द्रनाथ (१९११-१९३२)

श्री गोपाल हाल्दार—आप बंगालके उन कर्मठ कार्यकर्त्ताओंमें से हैं, जो सचाई, ईमानदारी, त्याग और तपस्याके बल-बूतेपर देशकी स्वतन्त्रताको प्राप्त करना चाहते हैं। अंगरेज़ी और बँगलाके आप उच्चकोटिके लेखक हैं।

श्री महादेवप्रसाद साहा—आप कोई बौद्ध-भिक्खु नहीं हैं, जैसा कि आपकी पोशाकसे प्रकट होता है, वरन् एक परिश्रमी और विचारशील युवक हैं, जो एक आदर्श लेकर चलते हैं। इस अंकके कई लेखोंका आपने बँगलासे अनुवाद किया है।

## आत्मनिवेदन

'विशाल भारत'का रवीन्द्र-अंक पाठकोंके सामने है। वह कैसा है, इसका निर्णय तो सुविज्ञ पाठक स्वयं करेंगे। हमने चेष्टा की है कि इस अंकको पढ़कर पाठक गुरुदेवके विषयमें कुछ जान सकें—उस साहित्यिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक हिमालयके सौन्दर्यका अनुमान कर सकें। गुरुदेव भारतके सांस्कृतिक आदर्शके प्रधान पुजारी ही न थे, वरन महाकवि, दार्शनिक, द्रष्टा, उपन्यासकार, नाटककार, कहानी-लेखक, आलोचक, चित्रकार, अभिनेता, शिक्षा-विशेषज्ञ और भारतीय आदर्शोंकी सजीव मूर्ति थे। हमें आशा है कि जो गुरुदेवके बारेमें कुछ गहन अध्ययन करना चाहेंगे किसी थीसिसकी ख़ातिर, तो इस विशेषांकसे उन्हें काफ़ी सहायता मिलेगी। हमने उनके ग्रन्थोंकी जो प्रामाणिक सूची दी है, वह अन्यत्र सुलभ न होगी। वर्तमान महायुद्धके बाद 'विशाल भारत'के ऐण्ड्रूज़-अंककी भाँति एक दूसरा रवीन्द्र-अंक भी हम निकालेंगे।

हमें दुःख है कि सुदूरपूर्वके युद्धके कारण हम कुछ और बढ़िया चित्र नहीं दे सके। हमारे ब्लाक इतने बढ़िया स्क्रीनके हैं कि उनके लिए आज-कल काग़ज़ ही नहीं मिल सका। चार-पाँच लेख भी जो हम देना चाहते थे, वे स्थानाभावके कारण न दे सके। हमें सर्वश्री केदारनाथ चट्टोपाध्याय, श्री धूर्जटी मुखोपाध्याय तथा श्री गंगोली आदिके लेख न देनेका दुःख है ; पर उनको हम 'विशाल भारत'के आगामी अंकोंमें देंगे।

हम अपने कृपालु लेखकोंके बड़े कृतज्ञ हैं, जिनकी कृपासे हम अपने पाठकोंको महत्वपूर्ण लेख दे सके। श्रीमान् आचार्य क्षितिमोहन सेन, डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी, श्री० रामचन्द्रन, महामहोपाध्याय पं० विधुशेखर शास्त्री, पं० इलाचन्द्र जोशी, श्री विश्वनाथ चट्टोपाध्याय, श्री गुरुदयाल मल्लिकके तो हम आभारी हैं ही, पर साथ ही हम पूजनीय महात्मा गांधीकी असीम कृपाके लिए भी ऋणी हैं, जिन्होंने देशकी समस्याओंकी उलझनोंकी सुलझनोंमें लगे होनेपर भी 'विशाल भारत' के लिए अपनी बहुमूल्य पंक्तियाँ लिख भेजी हैं।

'विशाल भारत' के संचालक श्रीमान् रामानन्द चट्टोपाध्यायने इस अंकके लिए हमें जो सहायता दी—गुरुदेवके पत्रोंका चुनाव करके तथा अन्य सुझाव बताकर,—उसके लिए हम उन्हें सादर प्रणाम करते हैं। पं० हज़ारीप्रसादजीसे तो हम स्नेहवश ज़बरदस्ती काम करा लेते हैं। आयुर्वेदाचार्य श्री रणजितराय तथा श्री शंकरदेव विद्यालंकारके सहयोगके लिए भी हम आभारी हैं। इस अंकमें सभी लेखकोंका हम सूक्ष्म तथा सचित्र परिचय देना चाहते थे, पर स्थानाभावसे हम ऐसा न कर सके।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री रमेशचन्द्र रायचौधरी, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

"इंडियन फोटो एनग्रेविङ्ग"
कम्पनी से हमारा सम्बन्ध रहा है। इस बीच में हमने उनसे पचासों चित्रों के इकरंगे ब्लाक बनवाये हैं और 'विशाल-भारत' के कवर पेज का पचरंगा सुन्दर ब्लाक भी हमारे लिये इसी प्रसिद्ध कम्पनी ने बनाया है। प्रतिज्ञानुसार समय पर काम देना इस कम्पनी का विशेष गुण है।

अनेक महानुभावों ने इस कम्पनी के बनाये हुए ब्लाकों की प्रशंसा की है इसलिये हमें उनके विषय में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं।

हिन्दी भाषा-भाषी सज्जनों से और स्वाधीन प्रवासी भारतीयों से, जो अपने चित्रों के ब्लाक बनवाना चाहते हों, हम इस कम्पनी की बड़े जोर के साथ सिफारिश करते हैं।

बनारसीदास चतुर्वेदी
'विशाल-भारत'

# दी इंडियन फोटो एनग्रेविंग कम्पनी

( स्थापित—१९२६ )

प्रौसेस एनग्रेवर और रंगके मुद्रक

**२१७, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।**

( मालिक—इन्डूवियल ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड )

तार—"DUOTYPE" टेलीफोन B. B. 2905

सचित्र ] विशाल भारत [ मासिक

सम्पादक :—श्रीराम शर्मा

भाग २८ ] जुलाई—दिसम्बर, १९४१ [ पूर्णांक १६८

## विषय-सूची

## लेखक-सूची

# चित्र-सूची

सादे चित्र :—



तिरंगे चित्र :—

# विशाल भारत

**फरवरी, १९४२**


**संचालक**
श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

**सम्पादक**
श्रीराम शर्मा

देशके लिए ६) वार्षिक
विदेशके लिए ९) „
बर्माके लिए ६॥) „


इस अंकमें पढ़िये



— शेष भीतर सूचीमें देखिये —

[ छमाही मूल्य ३।) ] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता [ एक अंकका ॥=)

## विषय-सूची

[ माघ, १९९८ : : फरवरी १९४२ ]

## विषय-सूची





गोपाल सखाराम कं
कालबादेवी रोड बम्बई


SOVEREIGN-REMEDY
AMRUTANJAN
Best Indian
Pain Balm
AmrutanjanDepot
होशियार होशियार नकल से
अमृतांजन
सब जगह मिलता है लाखों बिक गये

विषय-सूची

# 'विशाल भारत' के नियम

## ग्राहकोंके लिए

१. 'विशाल भारत' प्रत्येक अँगरेज़ी महीनेकी पहली तारीख़को प्रकाशित होता है। हर अंक सावधानीसे देख-भाल और पतेकी जाँच-पड़ताल करनेके बाद प्रत्येक ग्राहक, लेखक, विज्ञापनदाता, एजेण्ट आदिके पास भेज दिया जाता है।

२. अगर कोई संख्या किसी ग्राहक या विज्ञापनदाताके पास महीनेकी १० तारीख़ तक न पहुँचे, तो उसे अपने यहाँके डाकघरको शिकायत करनी चाहिए और डाकघरके जवाबके साथ हमें उस मासकी २० तारीख़ तक लिखना चाहिए। आवश्यक जाँच-पड़तालके बाद ही उन्हें दूसरी प्रति भेजी जा सकेगी।

३. कार्यालय उस समय तक किसी भी पत्रका उत्तर देनेके लिए बाध्य न होगा, जब तक कि पत्रके साथ उत्तरके लिए डाक-टिकट, टिकट लगा लिफ़ाफ़ा या कार्ड न होगा। पत्र आनेपर आवश्यक कार्यवाही अवश्य कर दी जायगी।

४. ग्राहकोंको पत्र-व्यवहार करते, रुपया भेजने तथा पता बदलवानेका लिखते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बरके उल्लेखके आए हुए पत्रोंपर कार्यवाही करने या उत्तर देने, न देने अथवा इस सम्बन्धमें होनेवाले विलंबके लिए कार्यालय उत्तरदायी न होगा।

५. 'विशाल भारत' का मूल्य स्वदेशमें ६) वार्षिक, ३।) छमाही और एक प्रतिका ।।-) है तथा विदेशमें ९) वार्षिक और एक प्रतिका ।।।) है।

६. 'विशाल भारत' का मूल्य मनीआडरसे भेजना ही ग्राहकोंके लिए सुविधाजनक है। वी० पी० मँगानेमें एक तो वी० पी० ख़र्च और मनीआर्डर कमीशन मिलाकर ।=) अधिक लग जाते हैं और वी० पी० की वसूलीमें देर होनेसे बादका अंक भेजनेमें भी देर हो जाती है।

७. नमूनेकी प्रति मुफ़्त नहीं भेजी जाती। उसके लिए (विशेषांकोंको छोड़कर) मनीआर्डर या डाकके टिकटोंके रूपमें ।।=) पेशगी आना ज़रूरी है।

८. युद्धके कारण कागज़, स्याही तथा प्रेसकी अन्य आवश्यक चीज़ोंके दाम चढ़ जानेसे 'विशाल भारत' रियायती मूल्यमें देना अभी बन्द कर दिया गया है। अतः इस सम्बन्धमें किसी प्रकारके पत्र-व्यवहारकी आवश्यकता नहीं। रियायत माँगनेवाले पत्रोंका उत्तर देनेको कार्यालय बाध्य न होगा। जो महानुभाव रियायतकी आशासे वार्षिक या छमाही मूल्य कम भेजेंगे, उन्हें उतने समय तक ही पत्र भेजा जायगा, जब तकका मूल्य कार्यालयमें प्राप्त होगा।

## एजेंटोंके लिए

१. ५ कापियाँ प्रतिमास मँगानेपर कोई भी 'विशाल भारत' का एजेंट बन सकता है।

२. स्थायी एजेंटोंको १) फी कापीके हिसाबसे पेशगी ज़मानत जमा करानी होगी और हर महीने हिसाब साफ़ कर देना होगा।

३. जिस महीनेके अंककी जितनी प्रतियाँ चाहिएँ, उसकी सूचना उससे पहले महीनेकी २० तारीख़ तक कार्यालयको मिल जानी चाहिए।

**नमूना मुफ़्त भेजनेका नियम नहीं है। उसके लिए कृपया ।।=) के टिकट भेजिए।**

लीलाकमल

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता ]

[ चित्रकार : श्री सन्तोष सेनगुप्त

# विशाल भारत

" सत्यम् शिवम् सुन्दरम् "
" नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः "

*भाग २९, अंक २ ]* *माघ, १९९८ : : फरवरी, १९४२* *[ पूर्णांक १७०*

## गो-सेवा-संघ

**श्रीराम शर्मा**

भारतकी किसी भी राष्ट्रीय योजनामें गो-वंशकी उन्नतिका प्रश्न प्रमुख होना चाहिए—ऐसी धारणा इन पंक्तियोंके लेखककी सन् १९२० से रही है। प्रत्येक देशमें—विशेषकर उस देशमें, जो गुलामीकी ज़ंजीरोंको तोड़ना चाहता है और जो स्वतंत्र राष्ट्रोंके समान अपनी मान-मर्यादा रखना चाहता है—रचनात्मक काम बड़े महत्वका है। भारतकी राजनीतिक प्रगतिमें तेज़ी न आनेका एक कारण है रचनात्मक कार्यकी ओरसे ढिलाई। सफल क्रान्ति तकके लिए—चाहे वह हिंसात्मक हो अथवा अहिंसात्मक—रचनात्मक कार्य अवश्यम्भावी है। हमारे देशमें अनेक लोगोंने या तो जेल जानेको स्वराज्य-प्राप्तिके लिए पासपोर्ट मान रखा है, या वे भ्रमवश यह समझते हैं कि कोरे जेल जानेसे ही स्वतंत्रता मिल जायगी। पर वे इस बातको भूल जाते हैं कि स्वतंत्रता-रूपी नदीकी गतिके लिए ग्लेशियर-रूपी रचनात्मक कार्य चाहिए। महामना मालवीयजीकी यह बात ठीक है कि स्वराज्यके प्रश्नके बाद भारतमें गायका प्रश्न आता है। पर गायके प्रश्नपर कोरी भावना और कोरे धार्मिक दृष्टिकोणसे नहीं देखा जा सकता। जीवन-मरणके प्रश्नमें आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियोंका ख़याल करना पड़ता है। यदि कांग्रेसके रचनात्मक कार्यकी ओर लोगोंने पूरा ध्यान दिया होता और कोरे जेल जानेको ही सब कुछ न समझा होता, तो आज देशकी और भी उन्नति हो गई होती। देशके ८० फ़ी-सदी लोगों—किसानों—की समस्याको जो ठीक तौरसे समझनेका प्रयत्न नहीं करते, वे अपने अनेक प्रयत्नोंको बेकार कर रहे हैं। यदि ग़रीब किसानको जीवित ही नहीं रखना, वरन् उसकी दशा सुधारनी है, तो राजनीतिक कार्यके साथ-साथ उसकी आर्थिक दशा भी सुधारनी होगी, और किसानकी आर्थिक दशा सुधारनेके लिए गायकी नस्ल अच्छी करनी होगी, ताकि किसानोंको बढ़िया बैल मिल सकें और सस्ता और शुद्ध दूध।

× × ×

गत नवम्बर सन् १९४१ की बात है। नालवाड़ी (वर्धा) देखनेके विचारसे एक मित्रके साथ मुझे उधर जाना पड़ा। नालवाड़ीकी गोशाला, चर्मशाला (Tannery) और उद्योगशालाको ध्यानसे देखना था। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिसे नालवाड़ी जानेके लिए बीचमें श्री सेठ जमनालाल बजाजकी कुटिया पड़ती है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और नालवाड़ीके बीचके प्रशस्त मैदानमें एक सतर्क रखवालेके समान वह कनौती-सी किए खड़ी है। मार्ग कुटियाके पचास क़दम पूर्वकी ओर था। सेठ जमनालालजी बाहर बैठे हम लोगोंकी ओर देख रहे थे। इन पंक्तियोंका लेखक नज़र बचाकर तेज़ीसे क़दम बढ़ा रहा था, ताकि सेठजीसे व्यक्तिगत परिचय न होने पाय। अन्तरात्मा कहती थी कि—

> जो चाहो मुसीबतमें इज़्ज़तसे रहना,
> न रक्खो अमीरोंसे मिल्लत ज़्यादा।

और वह भी इसलिए कि अमीरोंको लोग परेशान करते हैं। कुछ लोग खद्दर पहनकर उनके सामने गांधीवादका दम भरते हैं और पीछे उनकी बुराई करते हैं। इस भावनासे प्रेरित होकर कि कहीं सेठजी यह ख़याल न करें कि अपना उल्लू सीधा करने या किसी स्वार्थको लेकर

इन पंक्तियोंका लेखक उनके पास तो नहीं आया, वह आगे बढ़ रहा था। इतनेमें कुटियाके भीतरसे श्री गुलज़ारीलाल नन्दा (भूतपूर्व पार्लमेंटरी सेक्रेटरी बम्बई-सरकार और भारतवर्षकी मज़दूर-समस्याके प्रसिद्ध विशेषज्ञ) बाहर निकल आए और उन्होंने नाम लेकर पुकारना शुरू किया। पैरोंकी गतिमें ब्रेक लगा और उधर सेठ जमनालाल बजाजके पैरोंमें स्प्रिंग-से लगे। हार मानकर और कुछ लज्जित-से होकर कुटियाकी ओर बढ़ना पड़ा। चालीस-पचास क़दम ही चलना था। नन्दाजी पुराने मित्र हैं। क़रीब पहुँचते ही गो-समस्याकी चर्चा छिड़ गई। थोड़े विनोदके बाद सेठजीने कहा—'आपको गो-सेवा-संघका सदस्य बनना पड़ेगा।'

'यह भी कोई ज़बरदस्ती है?'

'नहीं, पर हम तो आपके लेख पढ़ा करते हैं। आप ही सदस्य नहीं बनेंगे, तो कौन बनेगा?'

'गो-सेवा-संघकी सदस्यता तो अमीरोंके लिए ही सम्भव है। सदस्य बननेके लिए दो शर्तें माननी होंगी—(१) गो-दूधसे बने पदार्थोंका उपयोग और (२) क़त्ल किए गए बैल या गायके चमड़ेसे परहेज़। यदि कहीं गाँवमें जाना है, किसी ग़रीबके यहाँ खाना खाना है, तो दाल या सागके लिए मेज़बान घी लायगा, और गायका घी न हुआ, तो उसकी मुसीबत हो जायगी और कुछ काम न होगा।'

'पर आप ही सदस्य न होंगे, तो कौन होगा? आपको गो-सेवा-संघके उसूलोंपर विश्वास है, तब फिर आप क्यों सदस्य नहीं बनते?'

'संघके उसूलोंसे तो मैं सहमत हूँ; पर व्यावहारिक दृष्टिसे संघकी योजना अमीरोंके लिए ही है अभी। आप लोग कुछ काम करें। गो-दुग्धका प्रचार कर लें, तब मुझ-जैसे आदमी सदस्य बन जायँगे। एक हज़ार मीलकी यात्रा करनी हो, तो रेलमें क्या खाया जाय? होटलोंमें गायके घीका व्यवहार तो होता नहीं। फिर मैं खेती भी करता हूँ। चरस तो बध किए गए पशुका अच्छा होता है। मैंने चरसके बाज़ारोंको देखा है। काश्तकार हलाली (क़त्ल) किए पशुका चरस ख़रीदता है, क्योंकि वह अधिक टिकाऊ होता है।'

'पर आप गाय पालते हैं। उसके बारेमें जानते हैं। लिखते भी हैं। फिर भी सदस्य नहीं बनना चाहते, तो प्रचार कैसे होगा?'

'मैंने अपने घरसे भैंस निकाल दी है। बदलेमें गाय रखता हूँ। आप जब आगरे गए थे, तब आपके लिए गायका घी मेरे यहाँसे गया था। आप तो अपने साथ रेलमें गाय ले भी जा सकते हैं। अन्य स्थानोंमें प्रबन्ध भी हो सकता है; पर मेरी बात दूसरी है।'

अर्थशास्त्रके पंडित श्री नन्दा भी बातें सुनकर चुप थे। सेठ जमनालालजीसे कोई जवाब तो नहीं बन पड़ा था; पर उन्होंने हार नहीं मानी और न उनके उत्साहमें कोई अन्तर पड़ा। गो-सेवाकी लगनमें वे जुटे थे। गो-सम्बन्धी बातोंके बाद उन्होंने कहा—'हमें तो आपसे काम लेना ही है।'

तीसरे ही दिन सेठजी सेवाग्राम आ धमके और सीधे इन पंक्तियोंके लेखकके पास आए। हाथमें उनके सदस्यताका फ़ार्म था। मिशनरी भावसे उन्होंने कहा—'आपको तो सदस्य बनना पड़ेगा?'

'पर मेरी-आपकी बातें हो गई हैं। आप मुझे समझा तो नहीं सकें।'

'तो आपकी पेशी बापूजीके सामने होगी।'

'चलिए, मैं तैयार हूँ। आप जब तक मुझे समझा नहीं देंगे, तब तक मैं सदस्य नहीं बन सकता।'

'अच्छा, चलिए। देखिए, बापूजी अपनी कुटियासे टहलने निकले हैं।'

× × ×

'देखिए बापूजी! शर्माजी गो-सेवा-संघके सदस्य नहीं बनते। गायपर लिखते हैं। गो-पालन भी करते हैं। हमें इनसे काम लेना है।'—सेठजीने कहा।

फिर बापूजीने तनिक गम्भीर होकर पूछा—'क्या कारण है सदस्य न बननेका?'

अपनी दलीलोंकी गोलाबरी-सी—ऊपर लिखी बातोंको और भी मज़बूतीके साथ कहते हुए—करते हुए अपने पक्षकी पुष्टि इन पंक्तियोंके लेखकने की।

'शर्माजी! बात तो यह है कि आपको गो-सेवा-संघ और गायकी रक्षापर विश्वास है या नहीं?'

'हाँ, है। भैंसको घरसे अलग करनेमें घरवालोंका विरोध भी सहना पड़ा; पर यह शर्त कि गायका ही दूध और गायका ही घी इस्तेमाल किया जाय, व्यावहारिक दृष्टिसे ठीक नहीं। वनस्पति घीका व्यवहार क्यों न किया जाय, अर्थात् गायका घी या वनस्पति घी।'

'मेरा द्वेष भैंससे नहीं है। आपने जो दलीलें पेश की हैं, वे कोई नई नहीं हैं। लोग बीमार पड़ते हैं, तो साथमें दवाओंकी बोतलें लेकर चलते हैं। साथमें घी रखना चाहिए और जहाँ गए, वहाँ घी दे दिया। काम भी हो जायगा और विनोद भी रहेगा। अगर आपको विश्वास है, तो विश्वास पालन करनेमें, धर्मके पालन करनेमें कष्ट सहनेको तैयार रहना चाहिए। यदि इस देशमें कुछ लोग कष्ट सहनेको तैयार न होंगे, तो कैसे काम होगा? जब मैंने खद्दरके कामको उठाया, तब लोग हँसते थे; पर आज खद्दर लाखों ग़रीबोंकी जीविकाका साधन है। हमें तो गायके दूधका प्रचार करना है। यदि गायको बचाना है, तो हमें ऐसा करना पड़ेगा और कष्ट सहनेके लिए तैयार रहना पड़ेगा। किसानोंकी ख़ातिर गायको बचाना ही है।'

'बापूजी! अब सेठजीकी डिग्री हो गई और मैं सदस्य बन जाऊँगा।'

बापू ठहाका मारकर हँस पड़े। सेठ जमनालालजी अपनी जीतपर प्रसन्न थे। इन पंक्तियोंके लेखककी दलीलें निकम्मी-सी होकर काफ़ूर हो गईं। किस तरहसे तीन मिनटमें महात्माजीने इन पंक्तियोंके लेखककी बोलती बन्द कर दी। सवाल सीधा था कि कोरी दलीलोंसे काम नहीं चलेगा। कष्ट सहना है या नहीं? फ़ार्मपर हस्ताक्षर कर दिए; पर पैंतालीसवीं वर्षगाँठ—२८ फ़रवरी सन् १९४२—से नियम पालन करनेकी आज्ञा चाही, जो मिल गई। नई वर्षगाँठसे जीवनकी एक नई चीज़ चले, इस ख़यालसे यह निर्णय किया गया।

× × ×

गत ३० सितम्बर, १९४१ को नालवाड़ी (वर्धा) की नई बस्तीके नामकरणके अवसरपर गो-सेवा-मंडलके कार्य-कर्त्ताओंकी सभामें महात्माजीका एक प्रवचन हुआ, उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

"आप अपना विधान सादा और छोटा बनावें और उसमें इतने प्रकारके सदस्य न रखें। एक ही प्रकारके सदस्य रखे जायँ। पेट्रन तो होने नहीं चाहिएँ। जो देनेवाले हैं, वे नामके लिए नहीं देंगे। कोई तो अपना नाम जाहिर करना भी नहीं चाहेंगे। गुप्तदान ही देंगे।

भिन्न-भिन्न प्रकारके सदस्य रखनेसे कुछ लाभ नहीं होनेवाला है। जो सदस्य रहेंगे, उनको कोई अधिकार तो होगा ही नहीं। हम अधिकार नहीं, सेवा चाहते हैं। जो सदस्य रहेंगे, वे प्रत्यक्ष सेवा करनेवाले हों। ऐसे दस-बीस सदस्योंसे भी हमारा काम चल सकता है। सिर्फ़ गायका दूध-घी आदि और मृत पशु-चर्म काममें लानेकी शर्तें हर एक सदस्यपर बन्धनकारक होनी चाहिएँ। उसमें ढीलापन नहीं चल सकेगा। संघके कार्यके लिए एक छोटी-सी समिति नियुक्ति की जाय।

### गाय बनाम भैंस

दक्षिण-अफ्रीकामें ही यह मेरा मत बना था कि हमें भैंसके दूध-घीका मोह छोड़ना होगा। गायकी रक्षासे भैंसकी भी रक्षा हो जाती है। भैंसका दूध सब लोग छोड़ेंगे, ऐसी कोई आशा नहीं की जा सकती। लेकिन गायके दूधके बारेमें यह डर है। इसलिए यदि हम गो-रक्षा नहीं करेंगे, तो गाय और भैंस दोनोंका नाश होनेवाला है।

हम लोगोंमें एक ऐब है—यों तो वह मनुष्य-मात्रमें पाया जाता है—किन्तु हम हिन्दुस्तानियोंमें अधिक परि-माणमें है। वह यह कि जो चीज़ आसानीसे मिल जाती है, उसे हम जल्द अपना लेते हैं और जिसे साध्य करनेमें कठिनाई होती है, उसे छोड़ देते हैं। खादी, ग्राम-उद्योग आदि संस्थाओंमें लोग आराम, सस्तापन और सुविधा खोजते हैं। भैंसका दूध सस्ता और मीठा रहता है, इसलिए लोग उसे ज़्यादा पसन्द करते हैं।

हमारे यहाँ वैदिक कालसे ही गायकी महिमा बताई गई है। भैंसकी नहीं। अगर गायको यह स्थान न दिया जाता, तो उसका नाश ही हो जाता और साथ-साथ भैंसका भी। हिन्दुस्तानमें गाय और भैंसका अनुपात क्या है, इसके आँकड़े मैंने देखे। दोनोंकी बहुतायत है। लेकिन न भैंस तेज़ीपर है, न गाय। जब तक ग्वालेको गाय या भैंससे पैसे मिलते हैं, तब तक वह उसे रखता है और बादमें कसाईके हाथ बेंच देता है। इनको बचानेके लिए गो-रक्षावाले गाय या भैंसको खरीद लेते हैं। जो पैसे मिलते हैं, उससे कसाई दूसरे जानवर ख़रीदते हैं। इससे एक-दो गाएँ तो बचती हैं सही; लेकिन गो-वंशका तो नाश ही होता है। इसलिए सही इलाज यही है कि जो गाय बिक गई हो, उसे हम भूल जायँ और गायकी नस्ल सुधारने, गायकी क़ीमत बढ़ाने तथा गो-पालकोंको उनका धर्म सिखानेमें पैसे ख़र्च करें।

कोई ऐसी शंका न करे कि अगर भैंसके दूध-घीका

सभी लोग त्याग करें, तो भैंसका तो नाश ही है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, ऐसा होना कम संभव है; लेकिन ऐसा हो भी जाय, तो कोई हानि नहीं हो सकती। भैंस जंगली जानवर हो जायगी। असल बात यह है कि अगर बच सकती है, तो गाय ही। उसके साथ-साथ भैंस भी बच जायगी, क्योंकि हमारे लिए दोनोंका दूध उपयोगी है। लेकिन शास्त्रीय पद्धति छोड़कर सभी लोग गो-रक्षाके नामसे अगर मनमाने तरीक़ेसे काम करने लगें, तो दोनोंका नाश निश्चित है, जैसा कि हमारे देशमें और चीज़ोंका नाश हुआ है। उसमें हमारे अज्ञानका सबसे बड़ा हिस्सा था। इसलिए गो-सेवा-धर्मके ज्ञानपूर्वक पालनके पशुओंके प्रति हमारा धर्म हम जानेंगे और उसका पालन भी कर सकेंगे। गो-पालनकी जड़में हम मनुष्येतर जीवोंके प्रति अपना क्या धर्म है, उसका ज्ञान पाते हैं। लेकिन गो-सेवा नाममात्र रही है, इसलिए हम सब धर्मको भूल रहे हैं।

हिसाबकी दृष्टिसे देखें, तो दुनियाके ढोरोंके एक चतुर्थांश हिन्दुस्तानमें पाए जायँगे। लेकिन यहाँके लोगोंकी जितनी बुरी हालत है, उससे भी बदतर यहाँ ढोरोंकी है।

### व्रतकी मर्यादा

गो-सेवकको गायका ही दूध-घी लेना चाहिए, बकरीका नहीं। मैं तो लाचार होकर बकरीका दूध पीता हूँ। लेकिन गो-सेवा-संघके सदस्यको गायका ही दूध-घी और मृत गाय-भैंसका चमड़ा ही इस्तेमाल करना चाहिए।

जहाँ गाय-भैंसका भी इतना संहार होता है, वहाँ मृत बकरेका चमड़ा कहाँसे मिले? आज तक तो मानव-जातिने माना है कि बकरीका जन्म तो क़त्ल हो जानेके ही लिए है। आज दशहरा है। कलकत्तेमें आज हज़ारोंकी संख्यामें बकरोंकी बलि कालीके चरणोंमें चढ़ाई गई होगी।

घीका प्रश्न धनिकोंके लिए नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार वे लवंडर, कोलनवाटर, टूथब्रश साथमें लेते हैं, उसी प्रकार उनको अपने साथ गायका घी भी रखना चाहिए, नहीं तो वे गो-सेवाका छोड़ दें। घीका प्रश्न जितना आसान है, उतना दूधका नहीं है। अल्मोड़ेमें पैसे देकर भी गायका दूध नहीं मिलता। उड़ीसामें भी वही स्थिति है। दूधका मावा पानीमें घोलकर उसका दूध हम बना सकते हैं। हार्लिक्सका पाउडर अच्छी चीज़ है, पचनेमें हलका होता है। इसलिए हम उसका उपयोग करते हैं। लेकिन हम उसी प्रकारका पाउडर यहाँ क्यों न बनावें? शास्त्रीय ज्ञान हासिल करके हमें उसे यहाँ बनाना चाहिए, जिससे हिमालयकी चोटीपर भी पाउडरवाला दूध मिल सकेगा।

### श्री जमनालालजीके बारेमें

जमनालालजीका स्वास्थ्य इतना अच्छा नहीं कि मैं उन्हें फिरसे जेल जानेकी इजाज़त दूँ। अगर वे वहाँ जाकर बीमार हो गए, तो मैं उसे बरदाश्त नहीं करूँगा। यह लड़ाई तो लम्बी चलनेवाली है। जब मौका आएगा, तो मैं ख़ुद ही उनसे कहूँगा कि उठो, जेल चले जाओ। लेकिन उन्हें जेलमें न भेजना ही मेरा आजका धर्म है। तब वे क्या करें? उन्होंने दो-तीन तजवीजें मेरे सामने रखीं—हरिजन, खादी, गो-सेवा आदि। उनमें गो-सेवाको मैंने पसन्द किया। शुरूसे ही इसमें जमनालालजीका हाथ रहा तो है ही और जो काम आज हुआ है, वह निष्फल नहीं हुआ। फिर भी वह मेरी मति और प्रकृतिके अनुसार चल रहा था। अब वह जमनालालजीकी रायसे चलेगा।

### गूँगे प्राणियोंकी सेवा

गो-रक्षा तो मूक प्राणियोंकी सेवा है। आज हरिजन दुर्बल हैं; लेकिन वे कल बलवान हो सकते हैं और अपने-आप प्रगति कर सकते हैं, क्योंकि मनुष्य सब शक्तियाँ उनमें मौजूद हैं। अगर कल हरिजन उठकर मन्दिरोंका कब्ज़ा ले लें, तो मैं नाचूँगा। लेकिन गायमें वह शक्ति नहीं है। उसे खिलाओ-पिलाओ, तो वह हृष्ट-पुष्ट होगी। फिर भी वह तुम्हारे अधीन ही रहेगी। तुम उसे मारो, पीटो, क़त्ल करो; लेकिन तो भी वह तुम्हारे खिलाफ़ बगावत नहीं कर सकेगी। तब उसकी रक्षा करनेवाला कौन है? जमनालालजीकी आध्यात्मिक तृष्णा गोमाताकी सेवासे तृप्त होगी। इस विचारसे मैंने यह कार्य उनके ऊपर पूरा छोड़ दिया है। उसमें वे अपनी सफल व्यापारी दृष्टि भी लगावेंगे और परमार्थिक दृष्टि भी।

### एक प्रचण्ड प्रवृत्ति

गो-रक्षाका काम एक प्रचण्ड काम है। उसके लिए शान्त चित्तसे उस शास्त्रका उन्हें अध्ययन करना होगा। जिन्होंने उसका आधुनिक शास्त्रीय दृष्टिसे अध्ययन किया है, ऐसे लोगोंका संग्रह करना होगा। जहाँसे माँग आय,

वहाँ हम निपुण गो-सेवक भेज सकें, ऐसा दल हमारे पास हो जाना चाहिए। स्वामी आनन्द आना चाहते हैं, तो आ जायँ ; लेकिन वे थानामें बैठे-बैठे भी कार्य कर सकते हैं। वे अपनी सेवाका क्षेत्र निश्चित कर लें और उतने भरमें अपनी शक्ति लगावें। इस प्रकार हिन्दुस्तानका नक़्शा सामने रखकर छोटे-छोटे दस या सौ क्षेत्र बना सकते हैं और हरएक क्षेत्रका आदमी अपना हिसाब भेज सकता है। हिन्दुस्तानमें आज कई गोशालाएँ पड़ी हैं। उनका निरीक्षण होना चाहिए ; उनकी सुव्यवस्था होनी चाहिए। अगर किसी स्थानसे निष्णात सेवकके लिए माँग आवे, तो भेजनेकी भी हमारी तैयारी होनी चाहिए।

गो-सेवक बननेके लिए पवित्र आदमीकी ज़रूरत है। सिर्फ़ क़ाबिल आदमी वह काम नहीं कर सकेगा। इस कार्यके लिए दौरा करनेकी ज़रूरत आज मेरे ध्यानमें नहीं आती। एक ही स्थानमें बैठकर काफ़ी काम हो सकता है। वर्धामें जितने दूध पीनेवाले मिलें, उनको गायका दूध पिलायँ। इतना तो अभीसे शुरू कर सकते हैं।"

## गो-सेवक-संघका विधान

हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है। यहाँ खेतीके लिए गो-वंशका उपयोग अनिवार्य है। इसलिए गो-वंशकी उन्नति और वृद्धि वांछनीय है। पर उसका ह्रास होता जा रहा है। गाएँ दूध कम देती हैं। बैल कमज़ोर हो रहे हैं। हिन्दू गो-रक्षाको अपने धर्मका विशेष अंग मानते हैं ; पर इसका ग़लत अर्थ चल पड़ा है। असलमें गायकी रक्षाके लिए मनुष्य-द्रोह करना कदापि धर्म नहीं हो सकता और न उससे या ज़ोर-ज़बरदस्ती करके गायकी रक्षा हो ही सकती है। वह तो ऐसे लोगोंसे झगड़नेके बदले, जो गो-वधको बुरा नहीं समझते हैं, उन्हें प्रेम-भावसे समझा-बुझाकर गायकी नस्लको सुधारने, गो-वंशको अधिक उपयोगी बनाने और गो-शास्त्रके ज्ञानकी वृद्धि और प्रचार करनेसे ही हो सकती है।

हम गाय और भैंस दोनोंको एक साथ नहीं बचा सकते। दोनोंको बचाने जायँगे, तो दोनोंको खो बैठेंगे। गायकी रक्षा करनी हो, तो भैंसके मुकाबलेमें उसे प्रधानता देनी ही होगी। इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखकर 'गो-सेवा-संघ' नामकी संस्था स्थापित की गई है, जिसका विधान इस प्रकार है :—

१. नाम—इस संस्थाका नाम गो-सेवा-संघ होगा।

२. दफ़्तर—संघका मुख्य दफ़्तर गोपुरी, वर्धामें रहेगा। आवश्यकता पड़नेपर संचालक-मंडल स्थान-परिवर्तन कर सकेगा।

३. उद्देश्य—हिन्दुस्तानमें गो-वंशकी सर्वांगीण उन्नति करना।

४. कार्य—इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए यह ज़रूरी है कि वर्तमान भारतीय समाजको शास्त्रीय और व्यापक गो-पालनकी आवश्यकता महसूस कराई जाय, गो-सेवा-सम्बन्धी प्रचलित अवैज्ञानिक धारणा दूर की जाय, गो-शास्त्रका ज्ञान बढ़ाया जाय और गायकी नस्ल सुधारी जाय। इसके लिए नीचे लिखे काम किए जायँगे :—

(१) व्यक्तिगत व सामूहिक गो-पालनको प्रोत्साहन देना।

(२) अच्छी नस्लके साँड़ तैयार करना और उन्हें गो-पालकोंको उनकी गायोंके लिए देना।

(३) बधिया (खस्सी) करनेकी मौजूदा निर्दय प्रथाको रोकना और उसकी जगह कम-से-कम वेदनावाली पद्धति जारी करना।

(४) साँड़ोंके लिए सिर्फ़ योग्य बछड़ोंको ही रखनेकी प्रवृत्ति बढ़ाना।

(५) गोचर-भूमि और चारेके लिए उपयुक्त खेती बढ़ाना।

(६) जहाँ आवश्यकता हो, मौजूदा गोशालाओं व पिंजरापोलोंमें सुधार करवाना और संघके उद्देश्यानुसार नई गोशालाएँ खुलवाना।

(७) गायके घी-दूध और उनसे बने पदार्थोंके प्रति रुचि बढ़ाना और भैंस आदिके घी-दूध व उनकी बनी चीज़ोंके प्रति रुचि घटाना।

(८) गो-वंशके साथ होनेवाले निर्दय व्यवहार—जैसे, आरी, फूँका, अधिक बोझ लादना आदिको—रुकवाना और उसके लिए आवश्यकतानुसार क़ानूनकी सहायता लेना।

(९) गायोंकी नस्ल-सुधार, खुराक, चारा-पानी तथा चिकित्सा आदिके विषयमें खोज और प्रयोग करना व उनके परिणामोंका प्रचार करना।

(१०) मरे गाय-बैलोंके चमड़े, हड्डी और मांस वग़ैराका रवा व उपयोगी चीज़ें बनानेका प्रचार करना और इस बारेमें घृणाकी जो ग़लत भावना फैली हुई है, उसे मिटाना।

(११) गो-पालकोंको उचित शिक्षा व आवश्यक प्रोत्साहन देना।

(१२) गो-सेवक तैयार करना।

(१३) गो-सेवा-सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित करना।

(१४) आवश्यक धन-संग्रह करना।

(१५) अन्य उचित और आवश्यक कार्य करना।

### नियम

साधारण सदस्य कोई भी व्यक्ति ( स्त्री या पुरुष ) हो सकेगा—

(क) जिसकी उम्र अठारह सालसे कम न हो।

(ख) जिसे संघके उद्देश्य और कार्य मंजूर हों।

(ग) जिसने सिर्फ़ गायका ही दूध, दही, घी और उनकी बनी चीज़ें इस्तेमाल करनेका नियम लिया हो। चिकित्सा या दूसरी मजबूरियोंमें और उन पदार्थोंके इस्तेमालमें जिनमें नाममात्रका दूध, दही, घी इत्यादि लगता है, इस नियमका बन्धन नहीं रहेगा।

(घ) जो क़त्ल किए हुए गाय-बैलके चमड़ेको काममें न लाता हो।

(ङ) जो हर साल एक रुपया या अपना काता हुआ दो हज़ार गज़ सूत गो-सेवा-संघको दे। और

(च) जिसे संचालक-मंडल मंजूर करे।

### संचालन

(क) संघका काम चलानेके लिए कम-से-कम नौ और ज़्यादा-से-ज़्यादा पन्द्रह सदस्योंका एक संचालक-मंडल होगा।

(ख) संचालक-मंडलके हर सदस्यके लिए संघका साधारण सदस्य बनना अनिवार्य होगा।

(ग) संचालक-मंडलमें छः तक आजीवन सदस्य, तीन आजीवन ट्रस्टी और छः तक निर्वाचित सदस्य होंगे।

(घ) संचालक-मंडलमें हर हालतमें दो निर्वाचित व दो आजीवन सदस्योंका रहना ज़रूरी होगा।

(ङ) निर्वाचित सदस्योंमें दो हर साल अपने नियुक्ति-क्रमसे निवृत्त होंगे। उनकी जगह दो नए सदस्य-संघके साधारण सदस्यों द्वारा वार्षिक जलसेमें चुने जायँगे। निवृत्त हुए सदस्य फिरसे चुने जा सकेंगे। शुरूमें निवृत्ति-क्रम आपसमें चर्चा करके या चिट्ठियाँ डालकर तय किया जावेगा।

### कोरम

(च) संघकी साधारण बैठकका कोरम पन्द्रह और संचालक-मंडलका पाँच होगा।

### पदाधिकारी

(छ) संचालक-मंडलके पाँच पदाधिकारी होंगे—अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मन्त्री, सहायक-मन्त्री और कोषाध्यक्ष। उन्हें हर तीन सालके बाद संचालक-मंडलके सदस्य अपनेमें से चुनेंगे। ये ही संघके पदाधिकारी समझे जायँगे।

---

## गुरुवर रवीन्द्र

**श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी**

हे अमृत पुत्र, गुरुवर रवीन्द्र ! हे ठाकुर मेरे, हे कवीन्द्र !

तुमने देखा वह स्वप्न तात, जिसमें मानवता का प्रभात।<br>
भर-भर गागरमें मधु अपार, बरसाया भूपर धार-धार।<br>
जिसमें ऊषा ले सौख्य-शान्ति, फैलाती अंचल स्वर्ण-कान्ति।<br>
जिसमें से लेकर स्नेह-राग, सतयुग की जगती पड़े जाग।<br>
हे अमृत पुत्र, गुरुवर कवीन्द्र ! हे ठाकुर मेरे, हे रवीन्द्र !

कवि तव वीणाके मुखर-तार, जिनमें है मादकता अपार।<br>
जिनमें प्रकाश करता प्रसार, बन स्वर्णिम राजत किरण-सार।<br>
बरसातीं समकी मधुर धार, लघु करतीं मानव-हृदय-भार।<br>
रचतीं मोहक नव इन्द्रचाप, भगता जिससे अभिशाप-ताप।<br>
हे अमृत पुत्र, गुरुवर रवीन्द्र ! हे ठाकुर मेरे, हे कवीन्द्र !

तव लयसे गुंजित अन्तरिक्ष, प्रस्पन्दित लतिका वृक्ष-वृक्ष।<br>
जनके हृदयोंकी स्वस्थ चाल, जिससे मिल देती मृदुल ताल।<br>
सूखे समता के आल-बाल में मधुरस तुमने दिया डाल।<br>
मुरझाई लतिका लाल-लाल, अंकुर दे सिहरी बाल-बाल।<br>
हे अमृत पुत्र, गुरुवर रवीन्द्र ! हे ठाकुर मेरे, हे कवीन्द्र !

कविगुरु, कृतित्व तेरा महान, देता जो जगको ज्ञान-दान।<br>
ओजससे बनते अवनि-इन्द्र, तेरी वाणी सृजती रथीन्द्र।<br>
सित-सित ऊँचा जो नगाधिराज, शिर झुका रहा है तुम्हें आज।<br>
तुम गए पूर्ण कर निज सुकाज वसुधापर ; करने स्वर्ग-राज।<br>
हे अमृत पुत्र, गुरुवर रवीन्द्र ! हे ठाकुर मेरे, हे कवीन्द्र !

# हिन्दुस्तानी

महात्मा गांधी

(अ) कांग्रेस महासभाकी कार्रवाई साधारणतया हिन्दुस्तानीमें चलाई जायगी। अगर कोई वक्ता हिन्दुस्तानी नहीं बोल सके, तो अध्यक्षकी अनुमतिसे अंगरेज़ी या प्रान्तीय भाषामें बोल सकेगा।

(आ) प्रान्तीय कांग्रेस कमिटीकी कार्रवाई साधारणतया उस प्रान्तकी भाषामें ही चलाई जायगी और हिन्दुस्तानी भी काममें लाई जायगी। (कांग्रेस-विधानकी धारा २५)

कांग्रेस अपने इस प्रस्तावपर उल्लेखनीय रूपमें अमल नहीं कर सकी है। कांग्रेसका यह दोष चिन्तनीय है। यह दोष कांग्रेसवालोंका ही है। वे हिन्दुस्तानी सीखनेका प्रयत्न नहीं करते। भाषा सीखनेका उनका प्रयत्न अंगरेज़ विद्वानों जैसी अंगरेज़ी सीखनेके प्रयत्नमें ही समाप्त हो जाता है। इसका परिणाम बहुत दुःखदायक है। इससे यह नतीजा हुआ कि प्रान्तीय भाषाएँ कंगाल हो गईं। कांग्रेसने जिस हिन्दुस्तानीको अखिल भारतीय भाषा माना, उसके लिए स्थान नहीं रहा और एक दूसरा भी नतीजा यह हुआ कि थोड़े-से अंगरेज़ी शिक्षित लोगों और करोड़ों देशवासियोंके बीचमें चौड़ी खाई बन गई। ये ही अंगरेज़ी-शिक्षित देशके नेतागण हैं, क्योंकि ये ही देशके शिक्षित व्यक्ति हैं। सरकार द्वारा स्थापित स्कूलोंमें जो शिक्षा दी जाती है, उसे छोड़कर कोई दूसरी कहने लायक शिक्षा भी इस देशमें नहीं है। कांग्रेसको अंगरेज़ीके स्थानपर हिन्दुस्तानी करनेका भगीरथ प्रयत्न करना ही पड़ेगा। इस प्रस्तावके पास होनेके साथ-साथ इस कार्यको चलानेके लिए उसे एक समिति क़ायम करनी थी, यह काम अब भी किया जा सकता है। अगर कांग्रेस यह नहीं करे, तो कांग्रेसवालोंको चाहिए कि अखिल भारतीय भाषाका निर्माण करनेके ख़यालसे इस कार्यको हाथमें लें।

लेकिन हिन्दुस्तानी है क्या? उर्दू और हिन्दीको छोड़कर हिन्दुस्तानी नामकी भाषा है ही नहीं। उर्दूको भी कभी-कभी हिन्दुस्तानी कहते हैं। तो क्या ऊपरकी धारामें कांग्रेसने हिन्दुस्तानीसे उर्दूका मतलब लिया है? क्या कांग्रेसने उर्दूसे भी ज़्यादा प्रचलित हिन्दीको छोड़ दिया है? अगर कोई ऐसा अर्थ निकाले, तो मूर्खता होगी। इससे साफ़ है और इसका यही अर्थ हो सकता है कि हिन्दी और उर्दूका वैज्ञानिक मिलन हो। इस तरहकी कोई भाषा अभी लिखित रूपमें नहीं मिलती है; लेकिन यह वही भाषा है, जो उत्तर-भारतमें करोड़ों अशिक्षित हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं। चूँकि वह लिखी नहीं जाती है, इसलिए वह अधूरी है। लिखित भाषाओंने दो अलग-अलग रास्ते लिए हैं। रास्ते अलग-अलग होनेकी वजहसे उनमें बहुत फ़र्क़ भी आया है। इसलिए हिन्दुस्तानीसे हिन्दी और उर्दू दोनोंका मतलब निकालना चाहिए। अतः हिन्दी ही हिन्दुस्तानी कही जा सकती है, अगर वह उर्दूका बहिष्कार नहीं करे, बल्कि जहाँ तक हो सके, अपने स्वाभाविक ढांचे और स्वाभाविक मधुरताको छोड़े बिना वैज्ञानिक ढंगसे उर्दूको भी अपनेमें मिलानेका प्रयत्न करे। उर्दू भी इसी तरह कर सकती है। कोई ऐसी अलग हिन्दुस्तानी समिति या सभा नहीं है, जो इन दोनों धाराओंको, जो एक दूसरेसे अलग भागनेकी चेष्टा कर रही हैं, मिला सके।

यह महान कार्य हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और अंजुमन-ए-तरक्क़ि-ए-उर्दू द्वारा हो सकता है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे मेरा १९१७ से सम्बन्ध रहा है। उसी साल सम्मेलनके अध्यक्ष होनेका निमंत्रण मुझे मिला था। मैंने उस समय अखिल भारतीय माध्यमके सम्बन्धमें अपने विचार भी पेश किए थे। दूसरी बार १९३५ में जब मैं उसका फिर सभापति हुआ, तब मैंने सम्मेलनसे सफलतापूर्वक अनुरोध किया था कि वह हिन्दीकी ऐसी व्याख्या करे कि हिन्दी वही भाषा होगी, जो उत्तर-भारतके हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और जो देवनागरी और फ़ारसी लिपिमें लिखी जाती है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होना चाहिए था कि सम्मेलनके सदस्य अपनी भाषाकी जानकारीको ऐसा व्यापक बनाते और हिन्दीकी उस व्याख्याको अपना ध्येय मानकर सारे हिन्दू और मुसलमानोंके पढ़ने लायक साहित्यका निर्माण करते। इसके लिए सम्मेलनके सदस्योंको फ़ारसी-लिपि भी पढ़नी पड़ती। मालूम होता है कि उन्होंने इस भाग्यसे अपनेको वंचित रखना ही उचित समझा; लेकिन यह काम वे अब भी शुरू कर सकते हैं। क्या इस बारेमें वे आगे बढ़ेंगे? अंजुमनके आगे बढ़ने तक उन्हें रुकनेकी ज़रूरत नहीं है। अंजुमन करे, तो बड़ा ही अच्छा होगा। दोनों संस्थाएँ यह काम कर सकती

हैं, बशर्ते कि वे एक दूसरेके साथ सहयोग करें। मैंने तो निवेदन किया है कि दूसरे दलको देखे बिना प्रत्येक संघ अपना-अपना काम करे। जो संस्था मेरी योजनाको अपनायगी, अपनी भाषाको सम्पन्न बनायगी, वह सारे राष्ट्रके काममें आनेवाली एक सुन्दर भाषा बनानेका श्रेय लेगी।

बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है कि हिन्दी-उर्दूके प्रश्नमें साम्प्रदायिकता आ गई है। दोनोंमें से किसीके लिए भी यह आसान है कि एक-दूसरेकी क़दर करे, इस बुराईको दूर करे और उदारताके साथ अपने लायक हिस्सा दूसरेमें से ले ले। जो भाषा दूसरी भाषाओंसे खुले दिलसे अपने स्वाभावको बिगाड़े बिना शब्दोंको अपनेमें मिला लेती है, वही बड़ी सम्पन्न हो जाती है। अंगरेज़ी भी दूसरी भाषाओंसे भरपूर ले-लेकर ही तो सम्पन्न बन गई है।

वर्धाके मार्गमें, २३-१-४२ ]

# शास्त्रीजी और बापूका संलाप

श्रीराम शर्मा

प्रातःकाल टहलनेके बाद बापू जैसे ही श्री परचुरे शास्त्रीकी ओरको मुड़े, वैसे ही कई व्यक्ति साथ छोड़कर चले गए ; पर शास्त्रीजी और बापूमें कभी-कभी ऊँचे दर्जेकी आध्यात्मिक चर्चा हो जाती है, और वह इतनी

बापू-शास्त्रीजी बातचीत कर रहे हैं। (बाईं ओरसे) शास्त्रीजी, बापू, श्रीमती प्रभावती और श्रीपृथ्वीसिंह आज़ाद।

शिक्षाप्रद होती है कि दार्शनिक वृत्तिका कोई भी व्यक्ति उससे वंचित रहना पसन्द न करेगा।

बापू जैसे ही शास्त्रीजीकी ओर आए, परचुरे शास्त्री अपनी पुस्तक अलग रखकर खड़े हो गए और फौरन ही दोनोंमें प्रश्नोत्तर होने लगे :—

शास्त्रीजी—बापू ! संसार त्रिगुणात्मक है। तब फिर अहिंसाका असर रज और तम प्रकृतिवालोंपर कैसे हो सकता है ?

बापू—अगर अहिंसाका असर तम और रजपर नहीं होता, तो फिर अहिंसाके कोई मानी नहीं होते। पानी अगर पानीमें मिल जाता है, तो कौन-सी तारीफ़की बात है। अगर पानीमें कोई ऐसा गुण है, जो पत्थरको भी पिघला दे, तो कोई बात हुई। सत, तम और रजकी बात सापेक्ष है। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जिसमें अकेला एक गुण हो। सब गुणोंका मिश्रण होता है। किसीमें किसी गुणका प्राधान्य होता है, तो किसीमें किसीका। एक व्यक्तिमें एक ही गुणका होना यूक्लिडकी रेखाके समान है। मुझे अहिंसाका सबसे बड़ा माननेवाला और व्यवहार करनेवाला कहा जाता है ; पर मैं जानता हूँ कि मुझमें कितनी हिंसा भरी है। शुद्ध अहिंसा अलिप्त भावसे होनी चाहिए। अहिंसाके प्रभावके लिए यह ज़रूरी है कि स्नेह-भाव बना रहे और कोई डरे नहीं। शास्त्रीजी ! आपकी बातमें कुछ सचाई है। तमस प्रकृतिका व्यक्ति न तो मर सकता है और न मार ही सकता है। रजोगुणवाले व्यक्तिको अपना क्रोध दूर करना चाहिए। तमोगुणीकी अपेक्षा रजोगुणीपर जल्दी प्रभाव होता है। तमोगुणीमें तो कोई चीज़ है ही नहीं।

सेवाग्राम, २२-११-४१ ]

# हिन्दी-साहित्यमें प्रगति

डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त, एम० ए०, पी-एच० डी०

*( गत दिसम्बरके अंकसे आगे )*

तत्पश्चात् १४ वीं शताब्दीके 'हम्मीर रासो'का आगमन होता है। इसमें रणथंभोरके राजा हमीरका गौरव-गान है। लेकिन इसकी एक भी पाण्डुलिपि नहीं मिली है। केवल इतिहासकारोंने इसका निर्देश-मात्र किया है। इसके बाद नल्लसिंह भट्ट-रचित 'विजयपाल रासो'का उल्लेख किया जा सकता है। इसका समय संवत् १३५५ है। इस रासोमें करौलीके राजा विजयपालकी लड़ाइयाँ ओज-पूर्ण भाषामें वर्णित हैं। डिंगल ( राजस्थानी ) में रचित इस प्रकारकी बहुत-सी वीरगाथाएँ हैं; लेकिन वे अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं। चारणोंकी रचना केवल पद्यमें ही नहीं, बल्कि गद्यमें भी है। उन्होंने मुख्यतः राजाओं और उनकी वंशावलियोंके सम्बन्धमें ही विशेष लिखा है। इनमें राजाओंका यश-गान, युद्ध-कौशल, धर्म-परायणता तथा ऐश्वर्य आदिका वर्णन है। चरित-नायककी श्रेष्ठता दिखानेके लिए कविने विपक्षियों ( हिन्दू या मुसलमान )का हीन और नग्न चित्र अंकित किया है। इसके लिए कविने अधिकांशमें कल्पनासे ही काम लिया है। यह साहित्य वीर-रस-प्रधान है। कहीं-कहीं शृंगार-रस भी दिखाई पड़ता है। युद्धके पश्चात् कविका नायक विलासितामें मग्न रहता है अथवा स्वयंवर आदिमें भाग लेता है। उपर्युक्त रासोमें विरहका वर्णन भी मिलता है। युद्ध-वर्णनमें अद्‌भुत, रौद्र, वीभत्स आदि रसोंके वर्णन भी मिलते हैं। शत्रुओंकी मृत्युके बाद उनकी स्त्रियोंके हृदयमें करुणाकी धारा भी प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार हास्य और शान्तको छोड़कर प्रायः सभी रसोंका समावेश उपर्युक्त रासोमें मिलता है।

चौदहवीं शताब्दीके प्रारम्भसे ही इन वीरगाथाओंकी रचनामें ह्रास होने लगा। इसका प्रधान कारण है राजनीतिक परिस्थितिका परिवर्तन। उत्तर-भारतमें मुसलमानी प्रभुत्व प्रबल हुआ और हिन्दू राजा दुर्बल हो गए। अतः राज-सभाओंमें चारणोंकी सम्मान-प्राप्तिका रास्ता बन्द हो गया। अब वीरगाथा कौन लिखे ? इसी समय मुसलमान सार्वभौमत्वका विस्तार हुआ और हिन्दू सामन्तशाही तहस-नहस हो गई। मुग़ल-युगके पहले तक उसकी छाया बची हुई थी; लेकिन मुग़ल-शासनके प्रतिष्ठित होनेके साथ ही उत्तर-भारतमें एक केन्द्रीय शासन प्रवर्त्तित हुआ। गंगाकी उपत्यकामें पुरानी पद्धतिका नामोनिशान मिट गया। मुग़ल-शासनने सामन्त-तान्त्रिक बंगालको ध्वस्त करके उसे 'भातखानेवाले' बंगालियोंका देश बना दिया। उत्तराखण्डके लोग विषहीन सर्प बना दिए गए। केवल राजपूतानेमें ही सामन्तशाहीकी अन्तिम छाया बच गई, और मेवाड़के राजसिंह तथा अजितसिंहकी समाप्तिके साथ ही राजपूतानेके वीर-युगका भी अवसान हो गया। यह सच है कि भारतीय समाज आज भी सामन्तशाहीकी छायामें खड़ा है; लेकिन आज जो औद्योगिक युग प्रवर्त्तित हुआ है, वह भी तेज़ीसे परिवर्त्तित हो रहा है। राजनीतिक क्षेत्रमें यह युग अकबरके समयसे ही लुप्त हो गया था।[1] पाल राजाओंके गाने आज बंगालमें नहीं गाए जाते। हाँ, उड़ीसाके मयूरभंज और उत्तर-बंगालके रंगपुर स्थानोंमें वे कभी-कभी सुनाई पड़ जाते हैं।[2] 'धर्ममंगल' काव्यमें वर्णित लाउसेनकी वीरत्वगाथामें अगर कोई ऐतिहासिक सत्य हो भी, तो शायद वह भी प्राचीन कहावतोंके आधारपर १८ वीं सदीमें लिखा गया है। बाँकुड़ा ज़िलेके वनविष्णुपुरके राजा रघुनाथसिंह (द्वितीय)के साथ 'चेतोबर्दा (मेदिनीपुर ज़िलेका घाटाल नामक स्थान ) की शोभासिंहकी लड़ाई',[3] नोआखाली ज़िलेके 'चौधरियोंकी लड़ाई', मैमनसिंह ज़िलेके 'ईशाख़ाँ और मसनदअलीकी लड़ाइयाँ', 'अन्नदा-मंगल' काव्यमें प्रतापादित्यकी वीरता आदि मुग़ल-युगमें ही लिखी गई थीं।

अब हमें विचार करना होगा कि इन रासोंको किस

---

१. चारणों और भाटोंके गाने बंगालसे लुप्तप्राय हो गए हैं।

२. कुछ दिन पहले महीपालके गीतोंका कुछ अंश रंगपुर ज़िलेमें पाया गया है।

३. स्थानीय लोग इसे 'चेतोवर्दाकी लड़ाई' कहते हैं। —ले०

युगका साहित्य-निर्देशन समझना चाहिए ? यह तो पहले ही लिखा जा चुका है कि इनमें सामन्त-युगका चित्र मिलता है। इनमें वीरता, नारीके प्रति सम्मान और प्रेम-प्रदर्शन, निम्नश्रेणीके लोगोंका उच्चश्रेणीके प्रति स्वामी-धर्म-पालन, क्षत्रिय-वृत्तिकी बड़ाई और नमकहलाली आदिका विशेष वर्णन मिलता है। दुनियामें जहाँ कहीं भी सामन्त-तन्त्रका अभ्युदय हुआ है, वहीं वीरगाथाकी भी रचना हुई है। सामन्त-युगके यूरोपमें स्पेन, इटली, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशोंमें अनेक वीरगाथाएँ प्रचलित थीं। दक्षिणी फ्रांसके त्रोबादूर (Troubadour) तथा उत्तरके त्रोवर्सका चाँसों फ्रांसीसी साहित्यके अमूल्य रत्न हैं। इन चारणोंमें रोलाँ ( Roland ) की गाथाएँ आज भी प्रसिद्ध हैं। सामन्त-युगकी राजनीतिका आदर्श उन्होंने इस प्रकार बतलाया है—'प्रभुके लिए प्राण देना ही सेवकका धर्म है।' इसीका दूसरा नाम स्वामी-धर्म ( Nobles oblige ) है। हमारे देशमें महाभारत, उसके बाद गीताके दूसरे अध्यायसे लेकर हल्दीघाटीका 'झाला स्वामी-धर्म' नहीं भूलता। बंगालमें श्रीहट्ट ( आधुनिक सिलहट ) के राजा कृष्ण-चन्द्रके सेनापति राधाने रणक्षेत्रमें अपने मालिककी मृत्युका समाचार सुनकर 'यथा कृष्ण तथा राधा' कहकर घोड़ेके साथ नदीमें आत्म-विसर्जन कर दिया था। ऐसी घटनाओंसे हिन्दुओंके चरित्रमें स्वामी-धर्मका क्या स्थान एवं प्रभाव था, स्पष्ट हो जाता है। रासोमें इस लक्षणके अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। लेकिन हिन्दुओंमें वर्ण-व्यवस्थाके कारण यह लक्षण एक ही वर्णमें विकसित हुआ। 'बारह बरिसलौं कुकुर जिए, औ तेरहलौं जिए सियार; बरिस अठारह क्षत्रिय जिए, आगे जीवनको धिक्कार।'—से क्षत्रिय-धर्मका परिचय मिलता है। इसमें केवल क्षत्रिय युवकोंका कर्त्तव्य मात्र निर्धारित किया गया है। कुछ आधुनिक इतिहासकारोंकी रायमें राजपूतोंके पतनका प्रधान कारण यही था। इस कथनका यह अर्थ होता है कि उस युगमें केवल राजपूत लोग ही युद्ध करते थे ; लेकिन इतिहास इसके विरुद्ध साक्षी देता है और कौटिल्य तथा मनु भी इसकी पुष्टि नहीं करते। यह ब्राह्मणवादकी एक कल्पना-मात्र है। प्राचीन कालमें क्षत्रियका अर्थ एक कुल-विशेष था।[४] कीथ और मैकडोनेल्डने भी स्वीकार किया है कि प्राचीन कालमें सभी वर्णोंके लोग सेनामें भर्ती होते थे। दूसरी ओर यूरोपमें 'नाइट' लोग एक वर्ग-विशेषके होते थे; लेकिन पुरोहित-वर्गके अलावा सभी वर्गके लोग सैनिक बन सकते थे। ऐसा हो सकता है कि राजपूत-युगमें सैनिक वृत्ति किसी एक वर्णमें सीमित होनेके कारण तथा इस वर्णके सैनिक साधारण वर्गमें रूपान्तरित हो जानेके कारण उन्हीं वंशोंके गुण-कीर्त्तनके कारण इतने वीरोंकी उत्पत्ति हुई थी। बंगालमें इस तरहके वर्गकी उत्पत्ति नहीं हुई थी, राजा और ज़मींदारोंका वंश अल्पकाल तक ही स्थायी होता था। शायद इसीलिए वीरगाथा-साहित्यका विकास अच्छी तरह नहीं हुआ, यद्यपि भाट नामक एक वर्ण अब भी मौजूद है। पहले इनका काम धनियोंका गुण-कीर्त्तन करना और कुल-ग्रंथावली तैयार करना। बंगालमें सैनिक-वृत्ति ग्रहण करनेवाले वर्ण ब्राह्मण्य-धर्मके प्रकोपसे आज अछूत और नीच समझे जाते हैं ; लेकिन आश्चर्यकी बात है कि 'धर्म-मंगल' नामक पुस्तकमें एक वीर डोमके मुखसे ही शौर्यकी बात कहलाई गई है—'बापेरओ ढाल खाड़ा, गलार सुवर्ण छड़ा दिए समाचार बोलो रणे अकातर हये शत्रुशिर संहारिये सम्मुखसमरे साखा मलो।' और कहावत इस पदका पोषण करके 'आगु डोम बागु डोम घोड़ा डोम साजे, ढाल गागर मृदंग बाजे' आदिकी याद हमें दिलाती है।

जो कुछ भी हो, हिन्दी-साहित्यमें वीरगाथाएँ दुनियाके सामन्ततन्त्री युगके वीरत्वसूचक साहित्यमें उच्चतम कोटिका स्थान अधिकार करती है। रोलाँकी बगल ही में हमारे चन्दवरदायीका स्थान है। दोनोंकी स्वामी-भक्तिका निदर्शन एक ही सा है। रोलाँके मालिक नारमण्डीके ड्यूक और इंग्लैण्डके राजा सिंह-हृदय रिचर्ड (Richard the Lion-hearted) के धर्म-युद्धसे लौटते समय आस्ट्रियाके ड्यूकने उन्हें क़ैद करके किसी अज्ञात स्थानमें रख दिया। देश-विदेशोंमें घूमकर अपने संगीतसे अंतमें वियेनाके कारागारमें उनका पता लगाया और रिहाईकी चेष्टामें सफल हुआ। 'पृथ्वीराज रासो'में लिखा है कि जब चन्दको ख़बर मिली कि पृथ्वीराजको ग़ोरी अफ़ग़ानिस्तानमें ले जाकर बहुत कष्ट दे रहा है, तो वह वहाँ जाकर उन्हें कष्ट-मुक्त करनेकी चेष्टा करने लगा। अवश्य यह वर्णन भी ऐति-हासिक घटना नहीं है।

४. Fick: Social Organization of North Eastern India in the time of Buddha.

हिन्दी-साहित्यकी इन वीरगाथाओंको हम प्रगतिशील साहित्य नहीं कह सकते। इनमें केवल कुछ राजवंशोंकी वीरता, वैर (Blood-feud) और मित्रता (Blood-bond) आदिका निदर्शन मिलता है। साधारण जनता तथा गण-समूहकी कोई भी ख़बर हमें नहीं मिलती। मुसलमानोंके आक्रमणसे हिन्दुओंका विपर्यय, हमारे इतिहासका सदाके लिए परिवर्त्तित होना और साथ ही साथ होनेवाले सामाजिक परिवर्त्तनोंका उल्लेख हमें इनमें नहीं मिलता। हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद बंगालके पालों, महाराष्ट्रके राष्ट्रकूटों और पश्चिमी हिन्दुस्तानके गुर्ज्जर-प्रतिहारोंकी पारस्परिक लड़ाइयोंके कारण उत्तरी हिन्दुस्तानमें एक साम्राज्य स्थापित होना असम्भव हो गया था। इसके बाद राजपूतोंके उत्थानका युग आया। वे हमेशा आपसमें लड़कर मरते और अपनेको कमज़ोर बनाते रहे। इनमें से सभी अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकाना चाहते थे।

वीरगाथाओंमें इन पारस्परिक लड़ाइयोंकी प्रशंसा की गई है। देश या समाजकी बात इनमें नहीं है। इतिहासकारोंका एक दल राजपूतोंको विदेशोंसे आया हुआ बताता है; लेकिन मेरा ख़याल है कि यह धारणा ठीक नहीं है। शक, हूण हिन्दू हो गए थे, यह ऐतिहासिक सत्य है और वे राजपूतोंसे विवाह भी करते थे; लेकिन यह धारणा भी ठीक नहीं कि विदेशागत लोगोंने ही भारतमें सामन्त-तन्त्रका प्रवर्त्तन किया, बल्कि यह कहा जा सकता है कि इनके कुल-धर्म और इससे उत्पन्न होनेवाले वैर-विग्रह इत्यादि वैदिक युग तथा महाभारतोक्त सामाजिक अवस्थाका चित्र प्रतिबिम्बित करते हैं। यह सच है कि भारतका इतिहास दोहराया गया था—अर्थात् भारत फिर गोष्ठी-युग (Tribal Age) में लौट गया था। इस लेखमें उसका कारण नहीं बताया जा सकता। अध्यापक सोरोकिनके विभाजनके अनुसार इसे आदर्शवादी युगका साहित्य कहा जा सकता है; लेकिन हम इसे सामन्त-युगका प्रगतिहीन साहित्य कहेंगे।

चारण-कालके बादवाले युगको हिन्दी-साहित्यकारोंने 'फुटकल' अर्थात् विविध साहित्यका युग बताया है। चौदहवीं सदीमें हिन्दुस्तानमें एक नई परिस्थिति दिखाई पड़ी। यहाँ चारों ओर धार्मिक प्रेरणा ही दृष्टिगोचर होती थी। बहुतेरे धार्मिक सुधारक दिखाई पड़े, वे योग-धर्म और भक्ति-धर्मका प्रचार करने लगे। इसी समयसे नवीन वैष्णव धर्मका उत्थान होने लगा। इसके अनुयायियोंमें किसीने तो निराकारवाद और किसीने राम-कृष्णकी उपासनाका प्रचार किया। इस प्रेम-धर्मसे वर्ण-व्यवस्थाका-विरोध, अहिंसावाद, हिन्दू-धर्मका सार्वभौम, ब्राह्मण्य पुरोहितवादका विरोध, हिन्दू-मुसलमान-मैत्री आदिका प्रचार होता रहा। इन प्रचार-कार्योंसे हिन्दू-समाजमें एक नवीन जागरण पैदा हुआ। इसी प्रचेष्टाके फलस्वरूप सभी भारतीय भाषाओंमें एक विशाल भक्ति-साहित्यकी सृष्टि हुई। हिन्दी-साहित्यके इतिहासकारोंका कहना है कि मुसलमान-राज्यकी प्रतिष्ठाके मूल-स्वरूप हिन्दू-पुरुषत्वके अन्तर्धान होनेके बाद हतोत्साह जातिके लिए भगवत् शक्ति तथा उसके ध्यानके अलावा उपाय ही क्या रह गया था? इसीलिए कविने भक्तितत्वका एक नया मार्ग निकाला। बादमें यह भक्तितत्व इतना व्यापक हो गया कि उदार मुसलमान भी आकर्षित हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग अस्त्र-शस्त्रकी जगह जप-तप और माला-कंठीकी शरण लेने लगे। वे अपने लौकिक जीवनकी परलौकिक व्यवस्था ढूँढ़ने लगे और अपने सांसारिक कष्टोंसे छुटकारा पानेके लिए ईश्वरके शरणागत हुए। दुष्टोंके दमनके लिए वे ऐश्वरिक शक्तिपर निर्भरशील हुए। इस तरह वीर-रस शान्त तथा शृंगार-रसमें रूपान्तरित हो गया।

इस नई परिस्थितिकी अर्थनैतिक व्याख्या न करके यहाँ यही उल्लेख कर देना काफ़ी होगा कि इतिहास यही बताता है कि जब कोई जाति पराजित होकर ग़ुलामीकी जंज़ीरोंमें बँध जाती है, तो वह धर्मके सहारे अपने प्राण बचानेकी चेष्टा करती है। किस राजनैतिक या अर्थनैतिक कारणसे जातिका पतन हुआ है, इसकी खोज नहीं करके निहित हितोंके लोग हमें समझाने लगते हैं कि धार्मिक कारणोंसे हमारा पतन हुआ। वे सच्ची बातको हमसे छिपानेकी कोशिश करते हैं। बहुतेरे भोले-भाले आदमी उनकी नक़ली बातोंपर विश्वास भी करने लगते हैं। कुछ लोग सुधारवादीके रूपमें प्राचीन समाजको नई अवस्थाके साथ मिलनेकी कोशिश करते हैं। अध्यापक महाफ़ीने लिखा है कि जब यूनानको मैसिडोनियनोंने जीत लिया और बादमें जब वह रोमके अधीन हो गया, उस समय उनका कोई अपना विशिष्ट धर्म

न होनेके कारण कुछ शिक्षित लोग तो नास्तिक हो गए और बादमें ईसाई भी ; लेकिन हिन्दुओंने धर्मसे अपनी आत्म-रक्षा की।[५] फ़ारसमें इसी प्रकारकी घटना हुई थी। अरबों द्वारा विजित होनेपर फ़ारसवासियोंने अरबोंका धर्म ज़रूर ग्रहण किया ; लेकिन उन्होंने इस्लामकी विभिन्न नई व्याख्याएँ करके अरब प्रधानताको हटानेकी चेष्टा भी की। उन्होंने सूफ़ीवाद, ज़िन्दकी धर्म, शिया-सम्प्रदाय और आधुनिक 'वहाई' मतका प्रचार किया। इस प्रकारकी चेष्टाएँ आज भी जारी हैं। इसीलिए अध्यापक पर्सी ब्राउनने फारसको 'The Land-heresy' कहा है।[६] भारतीय समाजमें भी अगर वही बात दिखाई पड़े, तो आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

श्री रामकुमार वर्माने इस फुटकल साहित्यके युगमें गोरखनाथ वगैरहके हठयोग-सम्बन्धी साहित्यको भी ले लिया है ; लेकिन बंगालके ऐतिहासिकोंका कहना है कि गोरखनाथके अ-बंगाली होनेपर भी 'नाथ-पंथ'की उत्पत्ति बंगाल ही में हुई थी। मत्स्येन्द्रनाथका जन्म बंगालके बरीसाल ज़िलेमें हुआ था और गोरखनाथके गुरु मीननाथ बंगाली थे।[७] इस पंथके हड़िप्पा नामक एक गुरु पूर्वी बंगालके चन्द्रवंशीय राजा गोपीचन्द्रकी माताके गुरु थे। विधवा रानी एक स्थानपर अपने पुत्रसे गुरुके सम्बन्धमें कहती है—'हाड़ी नय, जाति महोत्तर। आर बाहिर दुआरे खाटे षोलशत नफ़र।'

बँगला-भाषामें 'गोरक्ष-विजय' नामक एक पुस्तक मिली है।[८] बंगालके इतिहासकार मीननाथ प्रभृतिका काल ईसाकी दसवीं शताब्दी बताते हैं। पर गोरखनाथका काल ग्यारहवीं सदी है। गोरखनाथ तथा उनके चेलोंकी लिखी हुई धार्मिक पुस्तकें सोरोकिनके कल्पना-प्रधान विभागके अन्तर्गत हैं। इसको हम प्राचीन रहस्यवादी साहित्यके अन्तर्गत समझेंगे। भारतमें प्राचीन कालसे ही योगशास्त्रके अनुसार शिक्षा दी जाती रही है। नवाविष्कृत तथाकथित प्रागवैदिक युगमें मुहेंजोदड़ोमें पाई गई वस्तुओंमें योगासनमें आसीन और योगनेत्र-युक्त मूर्त्तियाँ

5. Mahaffy : Greek Thought & Culture.
6. Percy Brown : Literary History of Persia.
७. डा० नलिनीकान्त भट्टासाली द्वारा अविष्कृत 'जीनचेतन' ग्रन्थ देखिए।
८. डा० दिनेशचन्द्र सेन : बंगला-भाषाका इतिहास।

मिली हैं।[९] इसलिए बहुत-से लोगोंका अनुमान है कि योग-चर्चा इस देशमें बहुत प्राचीन कालसे चली आ रही है। अतएव इस साहित्यको हम प्रगतिशील साहित्य नहीं कह सकते। इस साहित्यने प्राचीन युगकी धाराको मध्य-युगमें प्रचलित करनेका प्रयास किया है।

अब हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें अमीर ख़ुसरोका आगमन हुआ। फ़ारसीमें इन्होंने बहुत-सी किताबें लिखी हैं और हिन्दी खड़ी बोलीमें पद्य भी लिखा है। अरबी, फ़ारसी और खड़ी बोली-मिश्रित भाषामें भी इन्होंने पद्य लिखा है। इसलिए इन्हें उर्दू-साहित्यका जन्मदाता भी कहा जा सकता है ; लेकिन इस लेखमें हमें उनकी हिन्दी-रचनाओंसे ही सम्बन्ध है। वर्मा महोदयका मत है कि ख़ुसरोने जन-साधारणकी खड़ी बोली भाषाको रूप दिया है और इसी भाषाको इन्होंने कवितामें भी स्थान दिया है। इन्हें आधुनिक खड़ी बोली (हिन्दी-भाषा) का आदिकवि कहा जा सकता है। ख़ुसरोने हिन्दी-साहित्यका महान उपकार किया है। ख़ुसरोका साहित्य मनोरंजन और विनोदके उद्देश्यसे लिखा गया है। मिश्रित भाषामें लिखित इनकी कविताके कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं :—

'जेहाल मिशकींन तगाफ़ुल दुराय नैना बनाए बतियाँ।
सखि, पियाको जो मैं न देखूँ तो कैसे कटे अँधेरी रतियाँ।'

बालकों तथा नवविवाहित युवक-युवतियोंमें इनकी बुझौवल-सम्बन्धी कविता बहुत प्रसिद्ध है। ऐसी एक कविताका उदाहरण पाठकोंके मनोरंजनके लिए यहाँ दिया जाता है :—

श्याम वरणकी है एक नारी, माथे ऊपर लोग पयारी,
जो मानुष इस अरथको खोले, कुत्तेकी वह बोली बोले।'
(उत्तर—भौं)

ख़ुसरोकी हिन्दी-रचनाएँ मध्य-युगकी होनेपर भी अतीन्द्रियता तथा सामन्त-युगकी विशिष्टताओंसे रहित हैं। हिन्दीमें उनके साहित्यका जो कुछ हमारे सामने है, उसमें गंभीर तत्वनिरूपण या जीवनके उद्देश्योंके विषयमें कुछ भी नहीं लिखा गया है। मनोरंजन और हास्य-रसके लिए ही इसकी सृष्टि हुई है। इसीलिए इनकी रचनाओंमें भौतिकताकी छाया पड़ गई है। अध्यापक सोरोकिनके अनुसार हम इनके साहित्यको कुतूहलोत्पादक कह सकते हैं।

९. Sir Marshall : Mahanjo-Daro & Indus Valley Civilization (Plates).

जनताकी समस्याओंके सम्बन्धमें लिखे जानेके कारण यह पूर्ववर्त्ती साहित्यकी तुलनामें मार्जित प्रगतिशील कहा जा सकता है। इसके बाद स्व० रामचन्द्र शुक्लने विद्यापतिका उल्लेख किया है। विद्यापतिके विषयमें कुछ लिखेनेकी ज़रूरत नहीं है। हिन्दी-साहित्यिक विद्यापतिको हिन्दीका कवि मानते हैं। इन्हें कल्पना-प्रधान साहित्य-विभागका कवि कहा जा सकता है। इनकी रचनाएँ सामन्त-युगके साहित्यके अन्तर्गत हैं। श्री रामकुमार वर्माके मतानुसार अमीर ख़ुसरोके बाद हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें मुल्लादाउदका नाम लिया जा सकता है। मुल्ला साहबने 'नूरक और चन्दाकी प्रेम-कथा' नामक एक पुस्तक लिखी थी ; लेकिन अब यह पुस्तक नहीं मिलती। मुल्ला साहब अलाउद्दीन ख़िलजी (१२२०-१३१६) के समकालीन थे। इस प्रेम-साहित्य-परम्परामें कुतवन, मनझन, मलिक मुहम्मद जायसी आदि कवियोंने प्रेम-कथाएँ लिखी हैं। आज यह समझना कठिन है कि इनका प्रतिपाद्य अध्यात्मवाद या सूफ़ीवाद था या नहीं। जो कुछ भी हो, ये रचनाएँ प्रगतिशील नहीं थीं।

इसके बाद स्व० शुक्लजी साहित्यमें भक्ति-कालका समय निरूपण करते हैं। इस भक्ति-कालकी ज्ञानाश्रयी शाखामें उन्होंने कबीर, धर्मदास दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास आदिका उल्लेख किया है। इतिहासकारोंका कहना है कि भक्ति-रसकी धारा रामानन्द दक्षिणापथसे उत्तरमें ले आए। इस धारासे सगुण ईश्वरवाद प्रचलित हुआ। इस धारामें हिन्दू-मुसलमान-मिलन हुआ। इनमें से बहुतोंने निराकारवादका प्रचार किया। हिन्दू-समाजमें सुधार करके उद्धार करना और हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य स्थापित करना भी इनका एक उद्देश्य था। 'राम रहीम न जुदा करो भाई' वाला भाव सर्वप्रथम इसी समय प्रचलित हुआ। इसीलिए नामदेवने लिखा था :—

हिन्दू अंधा, तुर्क काना, दुहूँ ते ज्ञानी सयाना
हिन्दू पूजै देहरव मुसलमान मसीद,
नामा सोइ सेबिया जहँ देहरा न मसीद।

यहाँ यह लिख देना ज़रूरी है कि इन धर्म-प्रचारकोंमें बहुतेरे मुसलमान तथा निम्नवर्णके हिन्दू थे। बंगालके ब्रह्महरिदास ठाकुरकी तरह कबीरकी जातिका निश्चित निर्णय अभी तक विवादास्पद है। श्री रामकुमारने लिखा है कि सम्बन्धित प्रमाणोंसे उनका मुसलमान होना ही साबित होता है। ये गुरु नानकके 'ग्रन्थ-साहब'में उल्लिखित रविदास ( रैदास ) का पद प्रमाण्य समझते हैं। इस पदमें रविदासने नामदेवको छींपा या दर्ज़ी, कबीरको मुसलमान जुलाहा, जिसके वंशमें ईद तथा बकरीदके दिन गोकशी होती थी, कहा है और स्वयं अपना चमार होना बताया है। कबीरने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :—

जाति जुलाहा नाम कबीरा,
बनि-बनि फिरौं उदासी।[१०]

कबीरकी निर्गुण या निराकारवाद-पोषक रचनावली हिन्दी-साहित्यका विशेष अंग है। कबीरके बाद धर्मदास, नानक, शेख़ फ़रीद, मलूकदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, रामचरण, वीरभान, यारी साहब, दरिया साहब, बुल्ला साहब, दुलाल साहब, ग़रीबदास, तुलसी साहब वग़ैरह साधुओंका अभ्युदय इसी मध्य-युगमें हुआ। इनमें कबीरके शिष्य परमनराय दादूको भी किसीने ब्राह्मण और किसीने धनिया वर्णका बताया है। आचार्य श्री क्षिति-मोहन सेनने लिखा है—'कुछ प्रबल प्रमाण मिलते हैं कि दादू मुसलमान थे और उनका पहला नाम दाउद था।'[११] दादूसे अकबर धर्मालोचना किया करता था।[१२] वीरभान दादूके समसामयिक थे। इनका जन्म संवत १६०० में हुआ था। ये रविदासकी शिष्य-परम्परानुसार ऊधोदासके चेले थे। सतनामी सम्प्रदाय इन्हींने चलाया। इस सम्प्रदायमें जाति-भेदके लिए कोई स्थान नहीं था। इस सम्प्रदायके लोग एक साथ भोजन करते थे, परस्पर विवाह करते थे, मूर्त्ति-पूजा नहीं करते थे और ईश्वरसे भी अपने गुरु-वाक्यको बड़ा समझते थे। किसान और ग़रीब लोग ही अधिकांशमें इस सम्प्रदायको मानते थे। १६७२ ई० में इस सम्प्रदायवालोंने औरंग़ेबके शासनके विरुद्ध विद्रोह किया था। ऐतिहासिक बकीख़ाँने लिखा है—'ये भक्तोंकी पोषाक धारण करते थे तथा कृषि और व्यापार करते थे। ये सात्त्विक भावसे धन-प्राप्ति करनेके पक्षमें थे। ये किसीके अन्याय या अत्याचार सहन नहीं करते थे। इनमें से कुछ लोग अस्त्र भी धारण करते थे। हिन्दू-मुसलमानका भेद-भाव ये नहीं करते थे।'[१३] उपर्युक्त

१०. 'कबीर-ग्रंथावली'—नागरी-प्रचारिणी सभा, पृ० १८१
११. 'दादू'—पृ० १८। १२. 'दादू'—उपक्रमणिका, पृ० १३।
१३. डा० ईश्वरीप्रसाद : History of Muslim Rule in India, पृ० ६२५–२७।

विवरणसे मालूम होता है कि इस सम्प्रदायके लोग गण-श्रेणीके थे और इनके विद्रोहको गण या कृषक-विद्रोह कहा जा सकता है।[१४] रज्जब ( संवत १७२० ) दादू-पंथी और मुसलमान थे। दरिया साहब भी मुसलमान थे और उन्होंने अपना परिचय इस तरह दिया है:—

जो धुनियाँ तो भी मैं राम तो हमारा।

× × ×

अधम कमीन जाति मतिहीना...।[१५]

बुल्ला साहब ( संवत् १७५० ), जिनका असली नाम बुलाकीराम था, जातिके कुनबी थे। ग़रीबदास ( सं० १७७४) जातिके जाट थे। रामचरण ( संवत् १७७५ ) ने 'राम सनेही मत' को स्थापित किया। इस पंथके साथ इस्लाम-धर्मका सादृश्य अधिक है। इस मतमें जाति-भेद नहीं था। इस पंथके लोग मूर्त्ति-पूजा-विरोधी थे और इसमें नमाजकी तरह दैनिक पाँच बार निराकार ईश्वरकी आराधना करनेकी व्यवस्था थी। भक्ति-कालके इन 'सन्त' मतोंके साहित्यका अध्ययन करनेसे मालूम होता है कि इन्होंने निर्गुण अर्थात् निराकार ईश्वरकी पूजाका प्रचार किया। ये मूर्त्ति-पूजा-विरोधी थे, जाति-भेदको स्वीकार नहीं करते थे और भक्तिके द्वारा ईश्वर-उपासना करते थे। ये कहते थे कि भगवद्-भक्तिमें सभी समान हैं। इस साहित्यको पढ़नेसे यह भी अच्छी तरह मालूम होता है कि इसमें इस्लाम-धर्मका प्रभाव यथेष्ट मात्रामें है। सन्त-मतको मुस्लिम-संस्कृतिने प्रभावित किया है। इस भक्ति-मतमें सूफ़ी-धर्मका प्रभाव विशेष रूपसे दिखाई पड़ता है। बंगालके नववैष्णव धर्म अर्थात् गौड़ीय वैष्णव धर्ममें सूफ़ीवादके प्रभावको अस्वीकार नहीं किया जा सकता; लेकिन इसकी मात्रा क्या है, यह आज भी गवेषणाका विषय रह गया है। किसी-किसी समालोचकका मत है कि सूफ़ीवादने ही हिन्दुस्तानियों द्वारा इस्लाम-धर्म ग्रहण करनेका रास्ता साफ़ कर दिया था। इसी द्वारा हिन्दू-मुसलमान धर्म-साधक आज भी एकत्रित होते हैं। लेखकने अनुसंधान करके देखा है कि अनेक फ़क़ीर-सम्प्रदाय अल्लाहकी अपेक्षा गुरुको अधिक मानते हैं। यहाँपर इन गुरु-मतावलम्बियोंमें तथा प्राचीन बौद्ध 'सहजयानियों'में सादृश्य दिखाई पड़ता है। आधुनिक बंगालके वैष्णव तथा कर्त्ताभजा ( ईश्वरका भजन करनेवाले ) सम्प्रदायवाले भगवानके स्थानपर कर्त्ता या गुरुका अधिक सम्मान करते हैं। एक दल इतिहासके अन्वेषकोंका मत है कि हिन्दू वेदान्तिक मतवादके साथ इस्लामका सम्बन्ध प्राचीन काव्यमें ही हुआ था। वे कहते हैं कि सूफ़ीवादकी उत्पत्ति इसीसे हुई थी, और जलालुद्दीन रूमी इसीके एक प्रमाण हैं। प्रसिद्ध जर्मन प्राच्यविद्या-विशारद फ़ान क्रैमरने अपने एक ग्रन्थमें लिखा है कि कुस्तुन्तुनिया (तुर्कीकी आधुनिक राजधानी इस्ताम्बूल)के एक दरवेश-सम्प्रदायके धर्मतत्वोंके उपदेशोंकी एक गुप्त पुस्तक उन्हें मिली थी। उन्होंने इसका अनुवाद करके दिखाया है कि यह संस्कृत 'वेदान्तसार' से मिलती-जुलती है।[१६] मैंने अपने तुर्की-प्रवासके समय 'नाचनेवाले दरवेशों' का नृत्य देखा है। मैंने एक दरवेशको नाकसे वंशी बजाते भी देखा था। वंशीकी आवाज़ सुनकर ज़मीनपर बैठे हुए दूसरे दरवेश दोनों हाथ उठाकर घूम-घूमकर नाचने लगे और एक-एक करके ज़मीनपर गिरकर 'दशा प्राप्त' करने लगे। इस रीतिके साथ गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायकी रीतिमें एकता है। इस सादृश्यकी एकता गवेषणाकी वस्तु है। 'चैतन्य-चरितामृत' में अद्वैत गोस्वामीने अपनेको 'आऊल' कहा है। औलिया नामक उपाधिधारी एक बड़े वैष्णव साधकका नाम बंगालके वैष्णवोंकी सूचीमें मिलता है।[१७]

वैष्णवोंमें औलिया, साईं, दरवेश आदि सम्प्रदाय हैं। सत्तरसे भी अधिक मुसलमान वैष्णव कवियोंकी पदावलियोंकी पाण्डुलिपि आविष्कृत हुई है। इसके अलावा स्वर्गीय मौलवी वाहेदहुसेन साहबने मुझे बतलाया था कि सूफ़ियों और हिन्दुओंके योगासनोंमें भी सादृश्य है। इसलिए दोनों मतोंके घात-प्रतिघात तथा संघातके विषयोंका विशेष रूपसे अनुसन्धान होना चाहिए। (क्रमशः)

१४. पंडित जवाहरलाल नेहरू : Glimpses of World History, पृ० ५००।

१५. दरिया साहबकी बानी, पृ० ७५।

१६. Von Kraemer : Islamische Streif Ziiege.

१७. जगबंधु भद्र : गौर-भक्ति-तरंगिणी।

९६८९५

# प्रथम और अन्तिम भेंट

श्री जगनप्रसाद रावत

महान व्यक्तियोंके दर्शन-मात्रसे ही सन्तोष कर लेने तथा सर्वसाधारणके लिए दिए हुए उनके उपदेशोंको ग्रहण कर लेनेकी मेरी प्रवृत्ति रही है। उनके अधिक निकट जाकर उनसे वार्तालाप करनेका मैं क़ायल नहीं हूँ। इसमें अपनी उत्सुकता अवश्य पूरी होती है; लेकिन उस महान व्यक्तिका कितना बहुमूल्य समय हम नष्ट कर देते हैं, इसका अनुमान लगाना कठिन है। सन् १९२९ के सितम्बरमें पूज्य बापूजी आगरे लगभग १०-१२ दिन ठहरे थे। स्थानीय कांग्रेस कमेटीकी आज्ञानुसार लेखकको भी वहाँ बराबर चौबीसों घंटे रहनेका अवसर मिला था। पूज्य कस्तूरबा तथा यमुनाबेनसे घरकी मामूली बातोंपर घंटों वार्तालाप होता रहता था; परन्तु बापूसे एक मिनटके लिए भी बात करनेका साहस मुझमें नहीं था। मुझे उनका एक मिनट भी ऐसा नहीं दिखाई पड़ा, जिसे मैं कुछ कम महत्वपूर्ण समझकर अपने लिए माँग लेता। मैं दिन भर उनके दर्शन व दूसरे आगत व्यक्तियोंसे उनके वार्तालापको सुनकर ही आनन्द लेता रहता था! इसी कारण पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा श्रद्धेय पं० मदन-मोहन मालवीयके भी बहुत निकट रहनेका अवसर मिलनेपर भी कभी मैंने उनसे बातचीतकर उनका समय नष्ट करनेकी चेष्टा नहीं की। पं० मालवीयजीके साथ तो आसनसोल जेलमें लेखकको सात-आठ दिन साथ रहनेका भी मौक़ा मिला!

बस, इसी मनोवृत्तिके कारण स्वर्गीय ऐण्ड्रूज़ साहबसे मिलनेका मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया, हालाँकि उनसे मिलनेका अवसर आसानीसे मिल सकता था। गत अप्रैल, १९४० में रामगढ़-कांग्रेससे लौटकर कलकत्ता आया और पं० श्रीराम शर्माके पास ठहरा। शर्माजीसे मालूम हुआ कि ऐण्ड्रूज़ साहब बीमार हैं और अस्पतालमें हैं। सोचा, चलकर दूरसे दर्शन कर लूँगा और लौट आऊँगा। शामको शर्माजीके साथ मैं जनरल मेडिकल अस्पताल गया। वे उस समय आरामकुर्सीपर लेटे हुए कलकत्तेके लार्डबिशपसे धीरे-धीरे बातें करते जाते थे और मुस्कराते जाते थे। हमने जाकर एक नर्स महोदयासे पूछा कि हमारे निकट जाकर दर्शन करनेसे उनको थकान वगैरः तो नहीं होगी? पहले इसके कि नर्स कुछ कहे, उन्होंने हमको देख लिया और इशारेसे बुलाया। मैं भी झिझकता हुआ शर्माजीके पीछे-पीछे जाकर एक कुर्सीपर बैठ गया। शर्माजीने परिचय कराया। दस-पन्द्रह मिनट इधर-उधरकी बातें होती रहीं।

यह मेरी दीनबन्धुसे पहली ही भेंट थी; परन्तु पाँच-सात मिनटमें ही मुझे यह मालूम होने लगा, जैसे मैं उन्हें बरसोंसे जानता होऊँ। मेरी सारी झिझक भाग गई और इस तरह बातें होती रहीं, जैसे मैं अपने सगे पितामहसे बातें कर रहा हूँ। यह मालूम ही न पड़ सका कि हमको बात करते हुए आधे घंटेसे भी अधिक हो गया। दीनबन्धु तो पाससे हटने देना भी नहीं चाहते थे। हम लोगोंने विदा माँगी। वे कुर्सीपर से उठ खड़े हुए। उन्होंने प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाया, सिरपर हाथ फेरा, पीठ भी थपथपाई और फिर दुबारा आनेका वचन लेकर विदा दी।

मैं वहाँसे लौटा, तो अपने-आपको दीनबन्धुके प्रेममें खोया हुआ पाया। परन्तु क्या पता था कि उनसे मेरी यही प्रथम और अन्तिम भेंट होगी! तीन-चार दिन बाद ऑपरेशन हुआ। सुना कि सफलतापूर्वक हुआ है। सोचा, दो तीन दिन बाद जब वे कुछ स्वस्थ हो जायँगे, तो फिर दर्शनको चलेंगे; लेकिन दुर्भाग्य, टेलीफोन आया कि दीनबन्धु चल बसे! मैं शर्माजी तथा 'विशाल भारत'के अन्य कार्यकर्ताओंके साथ गिरिजाघर गया। वहाँसे दीन-बन्धुकी अर्थी एक विराट जुलूसके साथ क़ब्रिस्तानको चली, और हम रोते हुए अन्तिम मिट्टी देकर लुटे-से घर आए!

# महात्माजीकी वाणी

[ गत पहली फ़रवरीके 'हरिजन'में महात्मा गांधीने 'हरिजन-बन्धु' ( गुजराती ) में लिखे अपने एक लेखका अनुवाद 'हरिजन'में 'खेदजनक घटना' शीर्षकसे छापा है। उस लेखके अन्तिम तीन पैरोंका हिन्दी-अनुवाद हम यहाँ दे रहे हैं। –सं० ]

कांग्रेसजनोंका तब यह कर्त्तव्य है कि वे डाकुओं और लुटेरोंका पता चलायँ और उनको समझाने और बदलनेका प्रयत्न करें।...कांग्रेसजनोंको समझना चाहिए कि यह काम उतना ही महत्वपूर्ण है, जितनी कि इसमें जोखिम है। कुछ आदमियोंको इसमें लगना ही है।

दूसरी आवश्यक बात यह है कि हमें ऐसे कार्यकर्त्ता तैयार करने चाहिएँ, जो कठिन परिस्थितियोंमें भी डाकुओंका सामना कर सकें और उनको रोकने या अपने मतका बनानेमें उन्हें चोट खाने या मरने तकके लिए तैयार रहना चाहिए। कदाचित् इस कार्यके लिए बहुत ही कम कार्यकर्त्ता आगे बढ़ेंगे; पर शान्ति-दलोंकी तो देश-भरमें निश्चित आवश्यकता है, नहीं तो गड़बड़ीके समयमें कांग्रेसजन अपने उस सब मानको खो बैठेंगे, जो उन्होंने अब तक प्राप्त किया है।

तीसरी बात यह है कि अमीरोंको इस बातपर अच्छी तरह विचार करना चाहिए कि उनका आज कर्त्तव्य क्या है। जो लोग अपनी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए पैसा देकर नौकर रखते हैं, उनपर उनके नौकर ही टूट पड़ सकते हैं। धनिकवर्गोंको यह बात सीखनी है कि वे शस्त्रोंसे लड़ते हैं या अहिंसाके अस्त्रसे। जो अहिंसाके मार्गको ग्रहण करना चाहते हैं, उनके लिए सबसे कारगर मन्त्र हैं—'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' ( त्याग द्वारा धनका उपभोग करो )। विस्तृत रूपसे इसकी व्याख्या हुई–'आप करोड़ों कमाइए; पर स्मरण रखिए कि आपके पास जो सम्पत्ति है, वह आपकी नहीं है। वह तो लोगोंकी है। उतना ही आप उसमें से लें, जितनी कि आपकी जायज़ ज़रूरतें हैं और शेषको समाजके हितमें व्यय करें।' यदि धनिकवर्ग अब भी इन उथल-पुथलके दिनोंमें इसके अनुसार कार्य नहीं करते, तो वे अपने धन और वासनाओंके गुलाम बने रहेंगे और फलस्वरूप उनके, जो उनपर बलपूर्वक अधिकार कर लेंगे।

लेकिन मुझे ऐसा सूझता है कि इस लड़ाईके अन्तके मानी होंगे पूँजीके शासनका अन्त। ग़रीबोंके राज्यके दिन आते मुझे दिखाई पड़ते हैं। चाहे वह शासन हथियारोंके बल-बूतेपर आय या अहिंसासे। पर इस बातको स्मरण रखना चाहिए कि बल-प्रयोग वैसा ही क्षणिक है, जैसा कि पार्थिव शरीर। पर आत्माकी शक्ति स्थायी है, ठीक उस प्रकार, जिस प्रकार आत्मा अमर है।

सेवाग्राम, २५-१-४२] —मोहनदास कर्मचन्द गांधी

# ट्राट्स्कीकी भविष्यवाणी

[ विश्वविख्यात क्रान्तिकारी तथा प्रकाण्ड पंडित स्व० लियों ट्राट्स्कीने हैरोल्ड इसाक्सकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी ट्रैजेडी आफ़ दी चाइनीज़ रेवोल्यूशन' पुस्तककी भूमिकामें वर्तमान महायुद्धके विषयमें एक विचारपूर्ण बात लिखी थी। उसे हम यहाँ दे रहे हैं। —सं०]

'महायुद्ध, जो बेरोक बलके साथ आ रहा है, औपनिवेशिक सत्ता-सम्बन्धी समस्याओं तथा चीनी समस्याका पर्यायलोचन करेगा। दूसरे महायुद्धका मुख्य कार्य यही होगा: साम्राज्यवादी शक्तियोंके नवीन सम्बन्ध द्वारा भू-खण्डका बँटवारा करना। इस संघर्षका मुख्य क्षेत्र भूमध्यसागर-रूपी नांद न होगा और न अतलांतिक महासागर, वरन प्राशान्त महासागर। संघर्षका अत्यन्त महत्वपूर्ण ध्येय चीन होगा, जिसमें मानव-समाजका एक-चौथाई भाग रहता है। आनेवाले युद्धकी दूसरी बाज़ी होगी सोवियत रूसका भाग्य और उसके भाग्यका निर्णय भी सुदूर पूर्वमें होगा। देवोंके इस संग्रामकी तैयारीके लिए टोकियो एशियाके महाद्वीपकी विशालतम भूमि अपनी ड्रिलके लिए निश्चित रख रहा है। ग्रेट-ब्रिटेन और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका भी समय नष्ट नहीं कर रहे। पर इस बातकी निश्चित रूपसे भविष्यवाणी की जा सकती है—यह बात तत्व-रूपमें भाग्यके वर्तमान विधाताओं द्वारा भी स्वीकृत कर ली गई है—कि यह महायुद्ध अन्तिम निर्णय न करेगा। इसके बाद क्रान्तियोंका एक क्रम चलेगा, जो केवल युद्धके निर्णयोंका ही पर्यायलोचन नहीं करेगा, वरन उन सब धन-सम्बन्धी परिस्थितियोंका भी, जो युद्धकी जननी हैं।

कोयाकन, १९३८] —लियों ट्राट्स्की
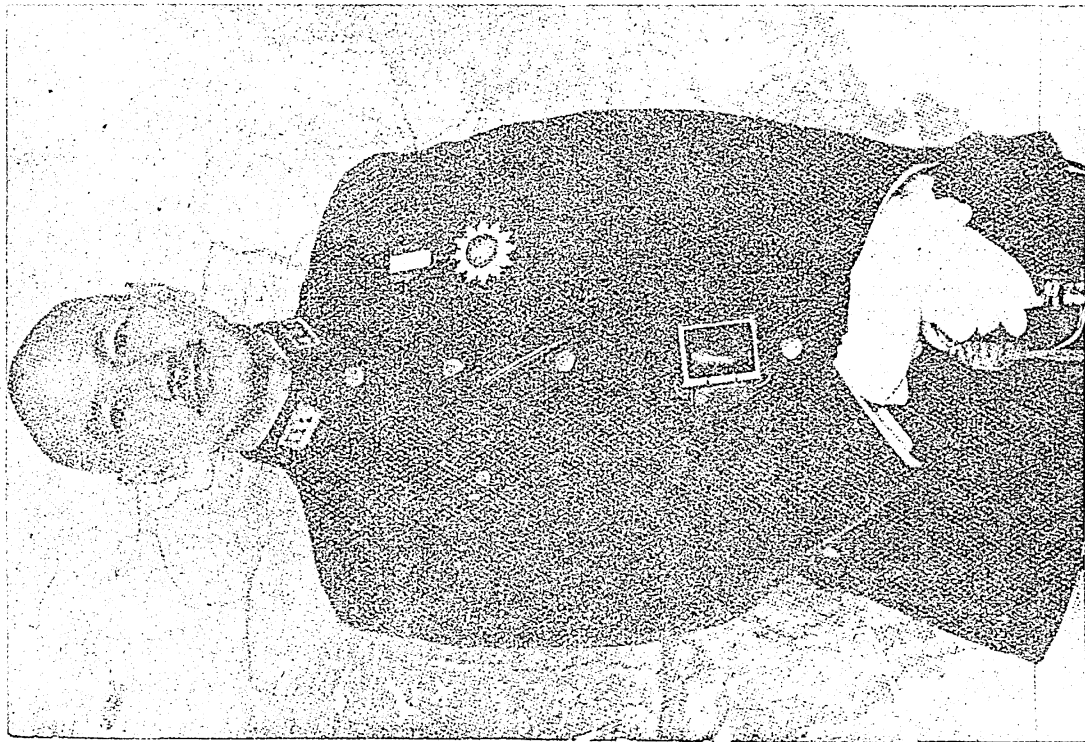
चीनके राष्ट्रपति मार्शल च्यांगकाई शेक, जो भारत-सरकारके फौजी प्रतिनिधियोंसे परामर्श करने इन दिनों भारत आए हुए हैं।

मादाम च्यांगकाई शेक, जो सदा छायाकी तरह अपने पतिके साथ रहती हैं। आप भी इस समय मार्शल च्यांगके साथ भारत आई हुई हैं।
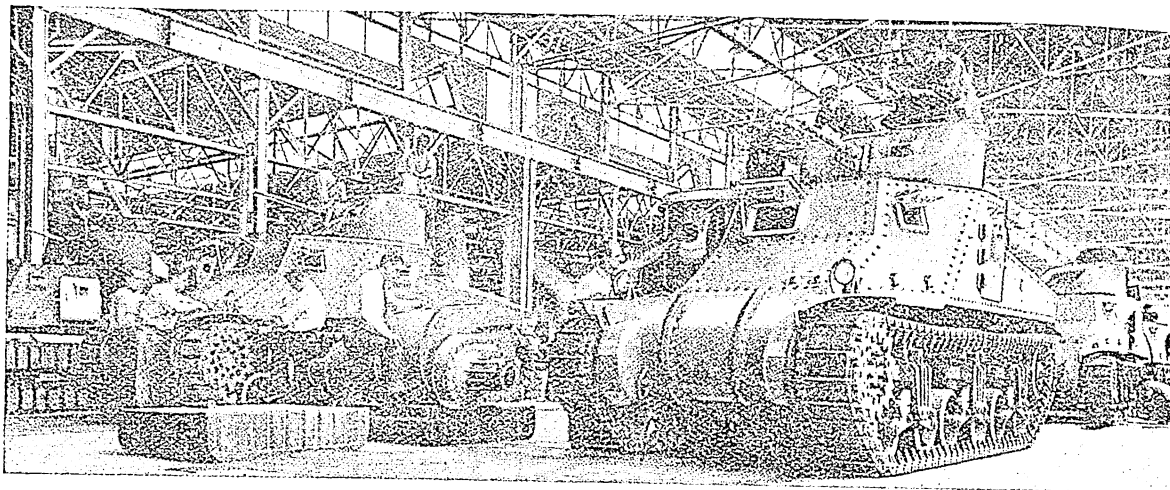
क्रिस्लर (इंग्लैण्ड) का टैंक बनानेका कारख़ाना। एक वर्ष पूर्व यहीं एक लहलहाता हरा-भरा खेत था।
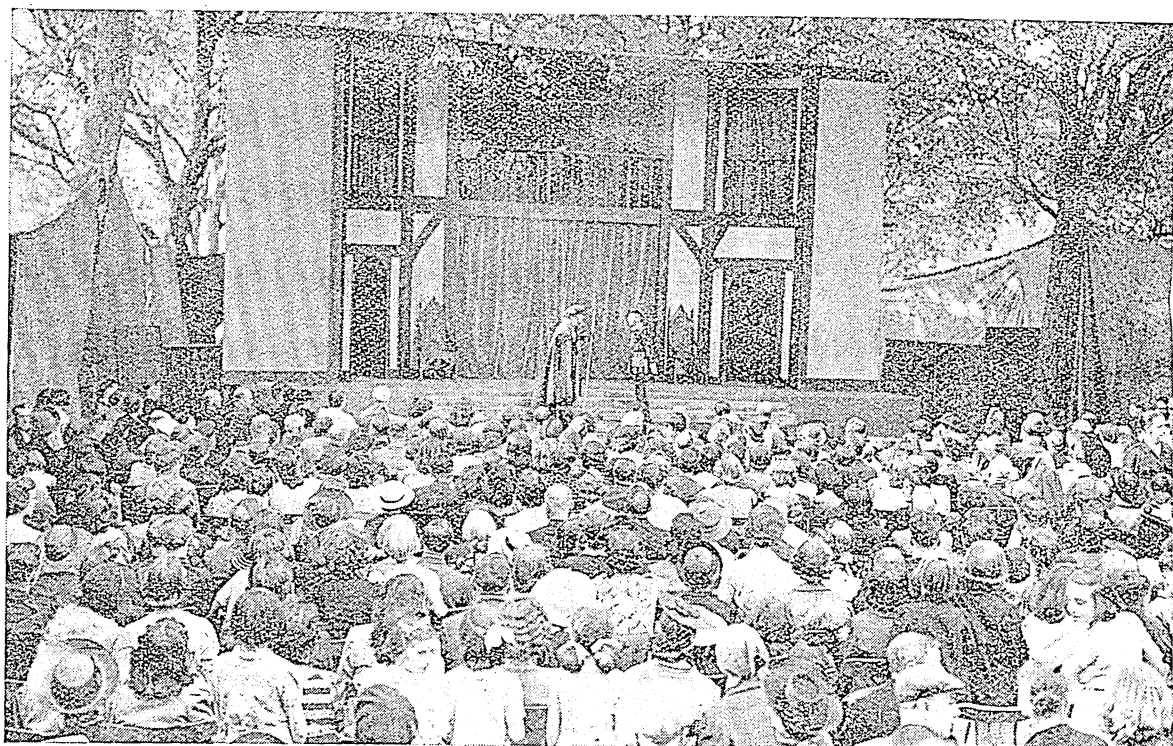
युद्धकालीन लन्दनकी सबसे ग़रीब बस्ती साउथवार्क पार्क (टेम्स नदीके किनारे) में होनेवाले शेक्सपीयरके नाटक 'दि टेमिंग आफ़ दि श्रू' के अभिनयका एक दृश्य।

# रवीन्द्र-स्मृति

श्री केदारनाथ चट्टोपाध्याय

बड़े पर्वतके शिखरोंके समान महापुरुषोंकी जीवनियाँ काल और क्षेत्रकी दीर्घ दूरीसे ही अवलोकित हो सकती हैं। जिस प्रकार बड़ी दूरीसे भी एक समयमें बड़े पर्वतका एक पक्ष ही दिखाई पड़ सकता है, ठीक उसी प्रकार महापुरुषोंकी जीवनियोंके सम्बन्धमें, पर्यालोचन तक में, एक आंशिक रूप ही प्राप्य होता है। सम्पूर्ण चित्र अथवा पूर्ण जीवनीका अर्थ यह है कि अनेक पुरुष दीर्घकाल तक उसके लिए परिश्रम करें।

रवीन्द्रनाथके जीवनके उतने ही पहलू थे, जितने सूक्ष्मतम ढंगसे कटे और अत्यन्त परिष्कृत हीरेके। मुग़लोंकी शिल्पकला-सम्बन्धी कहावत कि वे दैत्योंकी भाँति निर्माण करते थे और जौहरियोंकी भाँति समाप्त करते थे, वर्तमान भारतके इस सर्वोच्च पुत्रके जीवनके लिए भी बिल्कुल लागू होती है। उनके कार्यका क्षेत्र इतना चतुर्मुखी था कि उसकी पूरी नाप तो तभी सम्भव है, जब यथेष्ट समय बीत जाय, ताकि पर्यालोचनमें हम उनपर उचित दृष्टि डाल सकें। फिर भी उनके कार्योंके प्रत्येक भागमें सांस्कृतिक धरातल इतना ऊँचा था कि बिना किसी प्रकाशन और बिना किसी कृत्रिम मूल्यांकनके उनका अन्तर्राष्ट्रीय मान ही सम्भवतः उनका अनुगामी बना। इसलिए महापुरुषोंमें महान इस व्यक्तिके चरित्रका पूर्ण चित्र अत्यन्त कुशल जीवनी-लेखकोंके लिए भी अत्यन्त कठिन कार्य होगा। इन पंक्तियोंका लेखक अपनी क्षुद्र लेखनीकी त्रुटियोंको जानता है; फिर भी वह इस बातका पूर्ण अनुभव नहीं करता कि यह महाप्रयाण वास्तवमें हो चुका है। ऐसी दशामें वह इस महान प्रतिभाशाली पुरुषके कुछ कार्यों-सम्बन्धी अपने विचार केवल अपूर्ण रूपसे ही अंकित कर सकेगा।

भारतके सांस्कृतिक दूतकी हैसियतसे उन्हें अपने मिशनके कारण बहुत-से देशोंमें जाना पड़ा। इनमें से अनेक देशोंमें भारतीयोंके बारेमें यह ख़याल है कि वे एक पिछड़े देशसे आए मज़दूर हैं या उच्च राष्ट्रके वेतनभोगी कर्मचारी, जो अपने स्वामीकी बातोंकी दासतापूर्ण नक़ल करते हैं। इन सब देशोंमें रवीन्द्रनाथके केवल पहुँचनेके मानी थे कि जो लोग उनके सम्पर्कमें आते, वे भारतवासियोंके बारेमें अपनी पहली धारणाको बदल लेते। उनकी उपस्थिति इतनी प्रभावपूर्ण थी और उनकी बातचीत, उनका व्यवहार और कार्य-प्रणालीका उनकी उपस्थितिसे इतना संगीतमय समन्वय था कि फ्रांसके प्रसिद्ध लेखक और दार्शनिक रोमाँ रोलाँने एक दिन आश्चर्यसे कहा—'संगीतमय समन्वयका कितना आश्चर्यजनक मिलन हुआ है!' जिन लोगोंको उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त था, वे जानते हैं कि रवीन्द्रनाथके अधिक सम्पर्कसे उनकी भावना और उपस्थितिका आश्चर्यजनक पूर्ण समन्वय और भी अधिक आकर्षक, भावपूर्ण और स्पष्ट हो जाता था। साथ ही आन्तरिक और बाह्य दृष्टिसे रवीन्द्रनाथ सोलहो आना भारतीय थे—भारतीय मूल बातोंमें ही नहीं, वरन अपनी पोशाक, रहन-सहन, चाल-ढाल और अपने प्रतिदिनके विचारोंमें भी। किसी देशमें उनके जानेके मानी थे भारतीय संस्कृतिके उच्चतम तत्वोंका प्रदर्शन—उस भारतीय संस्कृतिके उच्चतम तत्वोंका प्रदर्शन, जिसमें ऋषिकी भावना और उस व्यक्तिकी चाल-ढाल और व्यवहारका मिलन हुआ हो, जिसकी आन्तरिक कुलीनताने किसी भी व्यक्ति द्वारा प्राप्त उच्चतम धरातलको पहुँचा दिया हो। इस सामंजस्यने उन्हें अपनी मातृभूमिके प्रतिनिधिकी हैसियतसे इस योग्य बनाया कि अपनी अनेक विदेश-यात्राओंमें जो भी उनसे मिले, उनसे वे बराबरीके ढंगसे मिले।

ठीक उस समय जब उनकी 'गीतांजलि'का अंगरेज़ी अनुवाद नोबेल-पुरस्कार-कमेटीको भेज दिया गया था, एक प्रसिद्ध अमेरिकन शिल्पी कविकी मूर्त्ति बना रहा था। प्रतिदिन कवि चैल्सी (लन्दन) में शिल्पीकी शालामें बैठने जाते थे; पर बड़े आश्चर्यकी बात यह थी कि शिल्पीकी प्रगति बहुत ही धीमी थी। एक दिन लन्दनके पत्रके गपशप-स्तम्भ (Gossip Column) में इस देरीका कारण इन पंक्तियोंके लेखकने इस प्रकार पढ़ा—ऐसा प्रतीत होता है कि शिल्पीने अपने कलाकार

मित्रसे—जिसकी शालाको अपने कामके लिए ले रखा था—कहा—'रवीन्द्रनाथ तो आश्चर्यजनक व्यक्ति हैं। यद्यपि वे न तो बोलते हैं और न प्रभावोत्पादक बननेकी चेष्टा ही करते हैं, तो भी उनकी उपस्थिति इतनी अधिक मोहक है कि काम करनेमें—उनकी मूर्ति बनानेमें—बड़ी कठिनाई होती है।' शिल्पीके कलाकार मित्रने कहा—'वाहियात! यह सब तुम्हारी कल्पना है। कल मैं आऊँगा, जब वे तुम्हारे लिए बैठेंगे और मैं इस विचारको काफ़ूर कर दूँगा कि कलाकारपर किसी महान व्यक्तिकी उपस्थितिका कोई असर होता है।' अगले दिन कलाकार मित्रने शालामें प्रवेश किया। उसके मुँहमें लम्बी सिगार थी। सिरपर टोप था और हाथमें छड़ी थी।* पर जैसे ही कलाकारकी नज़र कविपर पड़ी, उसके सिरसे टोप उतर गया, सिगार अगिहानेमें चली गई और छड़ी पीठके पीछे। थोड़ी प्रतीक्षाके बाद कलाकार मित्रने लड़खड़ाती ज़ुबानसे क्षमा माँगी और वह वहाँसे चला गया।

संसारके चारों कोनोंमें नोबेल-पुरस्कार द्वारा फैलाई गई ख्यातिसे पहलेकी यह घटना है। तात्पर्य यह कि उनकी उपस्थितिमें जो कुछ था वह वास्तविक और मौलिक था और उसका स्रोत गहरा—उनकी आत्मामें—था। उनमें कुछ ऐसा था, जिसके कारण वे राष्ट्रीय परिस्थिति और कालके बन्धनोंसे परे उठ सकते थे। हमारी इस सभ्य दुनियामें उनको छोड़कर कोई अन्य व्यक्ति किसी देशमें नहीं था, जिसके मानवताके सन्देशमें विश्वव्यापी अपील हो। उनके लिए मनुष्य बस मनुष्य था, चाहे वह राजा हो या रंक, चाहे उसकी कोई भी जाति हो और जीवनमें कुछ भी उसका पद हो। जिस किसीको भी उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसके लिए वे गुरुदेव थे, ऋषि थे—जिनकी दृष्टि साधारण आँखोंसे परेकी चीज़ोंको देखती थी और जीवनकी गुत्थियोंके गह्वरमें प्रवेश करती थी।

कविकी महायात्राके समय एक स्यामी बौद्धने अपना अन्तिम आशीर्वाद देनेके लिए अनुमति चाही। स्यामी बौद्धका मामला इन पंक्तियोंके लेखकको सुपुर्द किया गया। यह पूछनेपर कि वे क्यों आशीर्वाद देना और प्रार्थना करना चाहते हैं, बौद्ध महाशयने कहा—'मेरे देशके धर्मगुरु और स्यामके प्रधान-मंत्रीसे मुझे आज्ञा मिली है कि मैं गुरुदेवके निधनके समय उपस्थित रहूँ, ताकि मैं उनको अन्तिम आशीर्वाद ठीक उसी भाँति दे सकूँ, जिस प्रकार हमारे देशके सर्वोच्च व्यक्तिको अन्तिम समय दिया जाता है। भारतवासियोंको हम उन्हींके द्वारा जानते हैं। हम उनको अच्छी तरहसे उस कोटिका जानते हैं—उस शानदार प्राचीन जातिकी तरहका, जिसने पूर्वकालमें सम्पूर्ण एशियाको एक संदेश दिया, जिससे बौद्ध-धर्मकी परिधिमें सब लोग समान रूपसे आए। उन दिनों कोई भारतवासी न था, कोई स्यामी न था और न था कोई चीनी ही। उन दिनों बस दो वर्ग थे—एक तो उनका जो विश्व-ज्ञानके नियमका पालन करते थे और दूसरा उनका जो नहीं करते थे।' भिक्षुको गुरुओंके गुरु—जिनकी इहलोककी लीला समाप्त हो रही थी—के पास ले जाया गया। प्रार्थना और आशीर्वादके उपरान्त भिक्षु नतमस्तक बाहर आया। शान्त प्रार्थनामें उसके होंठ हिल रहे थे। जानेसे पूर्व उसने इन पंक्तियोंके लेखकको बताया कि गुरुदेवका निधन सम्पूर्ण एशियाके लिए एक संकट होगा, क्योंकि एशियाके सम्पूर्ण देश उनकी प्रतिभाका उपभोग करते थे। अपने बड़प्पनसे उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि सभ्य संसारमें हम सर्वोच्च व्यक्तियोंके समान व्यक्ति पैदा कर सकते हैं। अपनी महत्तासे उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारा अतीतका गौरव—उस समयका गौरव, जब हम संसारका नेतृत्व करते थे—हमेशाके लिए समाप्त नहीं हो गया है। भारतवर्षमें आपके लिए कदाचित गांधीजी अधिक परिचित हैं और उनका अनुगमन भी अपेक्षाकृत अधिक होता है। यह बिल्कुल ठीक है, क्योंकि गांधीका संदेश तात्कालिक है और आपके राष्ट्रकी समस्याओंके लिए उपयुक्त भी है। पर हमारे समान भारतके अतिरिक्त एशियावासियोंके लिए रवीन्द्र हमारी पूर्व महत्ता और गौरवके प्रतीक हैं और वे हैं पाश्चात्य लोगों द्वारा हमारे ऊपर लादी गई छुटपनकी भावनके विरुद्ध एक जादू।

इन पंक्तियोंके लेखकके समान जिनको गुरुदेवके साथ विदेशोंमें यात्रा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे अपने साथ उस श्रद्धाकी अमिट छाप वापस लाए जो स्वभावतः उनके प्रति विदेशोंमें प्रकट की गई।

---

* शिष्टाचार और आदरके नाते कलाकारको नंगे सिर प्रवेश करना चाहिए। सिगार भी मुँहमें नहीं चाहिए थी और न छड़ी। —सं०

ईरानके शाहके निमन्त्रणकी स्वीकृतिके बाद यह निश्चय किया गया कि कलकत्तेसे बुशायर तककी यात्रा डच के० एल० एम० कम्पनीके हवाई-जहाज़ द्वारा की जाय। जब मार्गकी सब व्यवस्था तय हो चुकी, तब हमारे कुछ उच्च पदभोगी मित्रोंने कविसे यह आग्रह किया कि वे अपनी यात्रा-सम्बन्धी सब व्यवस्था रद्द कर दें। कारण यह बताया गया कि गुरुदेवकी अवस्थावाले व्यक्तिके लिए वह यात्रा बड़ी खतरनाक है और गर्मियोंमें समुद्र-यात्रा या सड़कों द्वारा यात्रा तो सम्भव ही नहीं। कविके पुत्र श्री रथी बाबूने इन पंक्तियोंके लेखकको परिस्थितिसे अवगत किया और कहा कि मैं इस बातकी चेष्टा करूँ कि गुरुदेव अपना पूर्व निर्णय बदलें नहीं, क्योंकि निमन्त्रणकी स्वीकृतिके बाद इन्कार करना एक बड़ी शोचनीय बात होगी—विशेषकर उस अवस्थामें, जब कि निमन्त्रण ईरानके शाह-जैसे उच्च व्यक्तिसे आया हो। इन पंक्तियोंका लेखक अपना भाग्य आज़मानेके लिए गया और कविके दरवाज़ेपर उसे मना करनेवालोंके मुखियासे भेंट हुई। वे प्रोफ़ेसर थे, जिनका कविके ऊपर काफ़ी प्रभाव था। विद्वान प्रोफ़ेसरने दिखावटी क्रोधमें इन पंक्तियोंके लेखकसे पूछा कि वह गुरुदेवके-से बहुमूल्य जीवनको ख़तरेमें डालनेका दुःसाहस कैसे करता है? यह बताए जानेपर कि डच के० एल० एम० की यात्राएँ संसारमें सबसे अधिक सुरक्षित हैं और करोड़ों मीलोंके सफ़रमें अब तक कोई दुर्घटना नहीं हुई है, उन महाशयने कहा कि अगर हवाई-जहाज़ आठ हज़ार फ़ीट तक ऊँचा गया, तो ऊपरकी तरल वायु और इंजनकी गतिसे कविके हृदयकी गतिके रुक जानेकी आशंका है!

इन पंक्तियोंके लेखकको ऐसे विशेषज्ञोंकी बातोंमें जो अपने क्षेत्रसे बाहर जाते हैं, तनिक भी विश्वास नहीं है, और कथित ख़तरेके बारेमें उसे ज़रा भी विश्वास नहीं हुआ। पर चूँकि कविको इन विद्वानके प्रति अधिक विश्वास था, इसलिए इस समस्याका हल यह प्रतीत हुआ कि कलकत्तेमें एक जाँचकी उड़ान की जाय। इन पंक्तियोंका लेखक इसलिए के० एल० एम० के आफ़िस गया और उनसे पूछा कि क्या एक जाँचकी उड़ानका प्रबन्ध हो सकता है? वहाँपर इन पंक्तियोंके लेखकने सम्पूर्ण आफ़िसके लोगों—डच कौंसल-जनरल तक—को इस यात्राके रद्द किए जानेकी बातसे बहुत ही परेशान पाया। डच कौंसल-जनरलने कहा—'देखिए मिस्टर चटर्जी, वे कोई साधारण यात्री नहीं हैं, जो अपनी यात्रा रद्द कर रहे हैं। संसार भरमें हमने घोषणा की है कि महान रवीन्द्र ७० वर्षकी उम्रमें अपनी प्रथम हवाई-यात्रा कर रहे हैं और उन्होंने अपनी लम्बी उड़ानके लिए के० एल० एम० के हवाई-जहाज़को चुना है। यह हमारे लिए बड़े गौरवकी बात है और यात्राका रद्द होना बड़े दुर्भाग्यकी बात होगी!' कारण बताने और यह पूछे जानेपर कि क्या एक जाँचकी उड़ान सम्भव है, कौंसल-जनरलने कहा—'नःसन्देह! अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त वायुयान-चालकको मैं दूँगा। यह वह चालक है, जिसने अटलांटिक पहली बार पार किया। उसीको मैं बटेवियासे इस जाँचकी उड़ानके लिए बुलाऊँगा।' कौंसल-जनरलने फ़ौरन ही जावाको इस विषयका एक तार दिया। चालक फ़ैन टोफ़ कलकत्ते आया और डच हवाई-जहाज़ एक दिन तक कलकत्तेमें इसीलिए रुका रहा। कविको बंगालकी खाड़ीके ऊपर बहुत ऊँचाई तक ले जाया गया। साथमें सपत्नीक डच कौंसल भी था। डच अधिकारियोंने इस प्रकार हवाई-यात्रा-सम्बन्धी सब भ्रमोंको दूर कर दिया। उसके बाद बिना किसी खटकेके ईरानकी यात्रा हुई! बड़ी मनोरंजक बात जाननेके लिए यह होगी कि ऐसी असाधारण बात किसी दूसरे मामलेमें हुई या नहीं?

पर एक महापुरुषके जीवनमें ऐसी घटना तो अति साधारण है। लोगोंकी स्मृति—विशेषकर आधुनिक जगत्में—बहुत छोटी होती है। गत महायुद्धके बादके वर्षोंका इतिहास जब लिखा जायगा, तब स्पष्ट होगा कि कविकी दिव्यदृष्टिने उन सब संकटोंको देख लिया था, जिनको वारसाय-सन्धिके कर्त्ता-धर्त्ताओंकी नासमझीके कारण इस संसारपर थोपा गया था। रोमाँ रोलाँको दिया गया इस विषयका संदेश कि 'अवाराओंका एक संघ इसलिए बनाया जाय, ताकि विजयी राष्ट्रोंकी लुटेरी नीतिका विरोध किया जा सके'—कविकी प्रथम भविष्यवाणी थी उन भयंकर नतीजोंके विषयमें, जो वारसाय-सन्धिसे हुए हैं। जापानमें राष्ट्रीयतापर दिए गए उनके व्याख्यानोंने उस देशको स्पष्ट चेतावनी दी थी। उस चेतावनीमें जापान द्वारा सांस्कृतिक मूल्यके स्थानमें पाश्चात्य झूठे आदर्श ग्रहण करनेके विरुद्ध उनकी आन्तरिक पीड़ा रंजित थी, यद्यपि अन्त तक उनके हृदयमें जापानके लिए स्थान बना रहा।

उनकी रूसकी यात्राने आशाका एक नया सन्देश दिया और हमारा संसार अधिक सुखी हो जाता, अगर लालचसे अन्धे 'बड़े आदमियों' ने कविकी बात सुनी होती। स्वयं हम अपने देशमें उनका नाम राजनीतिक विचारोंकी निष्पक्ष गतिसे सम्बन्धित करते हैं। यह ठीक है कि वे उनसे सम्बन्धित नहीं थे, क्योंकि उनका दृष्टिकोण अन्तर-राष्ट्रीय था, और इस ख़यालसे वे अपने समयसे बहुत आगे थे ; पर उस अलग-सी वृत्तिने उनको दलबन्दी और दलोंके लिए भक्ति-सम्बन्धी झगड़ेसे दूर रखा, तो भी इससे उनकी देनमें राष्ट्रीय गौरव या राष्ट्रीय अभिमानमें तनिक भी अन्तर नहीं आने दिया। जालियाँवाला बाग़के बाद 'सर'की उपाधिको उपेक्षाके साथ ठुकरा देना और अवसर पड़नेपर स्पष्ट टीका-टिप्पणी करना ऐसी बातें हैं, जो जनताको मालूम हैं। पर इस शताब्दीके प्रारम्भमें बंग-विच्छेदके दिनोंमें उन्होंने बंगालके मामलेको जिस दृढ़ताके साथ अपनाया, इस बातको कम लोग जानते हैं। उस आन्दोलनने स्वदेशी-भावनाको जन्म दिया और एक प्रकारसे भारतीय राष्ट्रीयताके ढाँचेकी आधार-शिलाको रखा। उस आन्दोलन और कांग्रेसके पुनर्जीवनका जब सच्चा इतिहास लिखा जायगा, तब कवि और ऋषिने जो इसमें भाग लिया, उसका प्राधान्य प्रकट होगा। उनका दृष्टिकोण हमेशा प्रान्तीय और भौगोलिक सीमाओंसे परे रहता था। इसी कारण बंगालके एक कवि और कलाकारको प्रेरणा मिली कि वह एक अपरिचित व्यक्तिको सहायता और उत्साह दे। वह अपरिचित व्यक्ति मोहनदास कर्मचन्द गांधी थे, जिन्होंने अबसे चालीस वर्ष पूर्व दक्षिण-अफ्रीकाके छोटे-से और कम जाने हुए सूबे नेटालके ग़रीब भारतीय मज़दूरोंको एक प्रकारसे खोए हुए अधिकारका प्रतिपादन करके अपनाया था। अपने कार्यके किसी भी क्षेत्रमें और अपने कामोंमें उन्हें किसी प्रकारका भय या हिचकिचाहट नहीं थी। ग़लत या सहीका निर्णय वे अपनी अन्तरात्मामें करते थे। एक बार निर्णय करनेके बाद उनके लिए यह सवाल नहीं रह जाता था कि वे कौन-से मार्गके अनुगामी हों। फिर उनके लिए मुसीबतों और बलिदानोंका कोई सवाल ही नहीं रहता था। शान्तिनिकेतनकी संस्था, जो विश्वभारती कहलाती है, उनके एक सुखद स्वप्न और विशाल त्यागका फल है। बंगालके स्वदेशी-आन्दोलनके दिनोंमें एक ऐसा भी समय था, जब उसके अस्तित्व तकपर सरकारी कर्मचारियों द्वारा संकट आ पड़ा था। वे चाहते थे कि कुछ संदिग्ध व्यक्तियोंको, जिन्होंने अत्याचार और उत्पीड़नके तूफ़ानसे कविके यहाँ आश्रय लिया था, वे (कवि) निकाल दें। अत्याचार और उत्पीड़न उन दिनों बंगालके राष्ट्रवादियोंके सरपर हर समय मँडराया करता था। धमकी स्पष्ट थी—या तो संदिग्धोंको शरण-स्थानसे निकाल दिया जाय या फिर स्कूलको ही अत्याचारका शिकार बनाया जायगा! कविका उत्तर भी बिल्कुल स्पष्ट था—'जिनको मैंने मुसीबतमें शरण दी है, उन्हें मैं निकाल नहीं सकता—चाहे जो भी नतीजा हो।' अधिकारियोंको कुछ समझ आई और मामला वहीं छोड़ दिया गया। अनेक आदमी हैं, जिनको कविने भोजन दिया और शरण भी, और वे उस महान व्यक्तिकी शरणमें फले-फूले! बादमें उन्होंने कविको, उनके कामको, उनके कुटुम्बको और उनके प्रयत्नोंको हानि पहुँचाकर व उन्हें कष्ट देकर छोड़ दिया। पर क्या कोई भी ऐसा आदमी है, जिसने कभी पश्चाताप या घृणाका एक भी शब्द उनके मुखारविन्दसे सुना हो। कवि देनेमें और क्षमा करनेमें समान रूपसे बड़े थे, यद्यपि अनेक ऐसे व्यक्तियोंने भी उनसे अनुचित लाभ उठाया, जो उन्हें, उनकी संस्थाओं और उनके परिश्रमके फलोंको नष्ट करनेके लिए उनके आसपास इकट्ठे हो गए थे।

उनके विशाल कार्य और उनकी चतुर्मुखी प्रतिभाके फलोंका लेखा अभी नहीं किया जा सकता। यह लेखा उनके कार्योंके अनुपातसे होना चाहिए, और जो कोई इस कार्यको करे, वह इस बातका ख़याल रखे कि कवि अपने समयसे दशाब्दियों आगे थे—यह बात कि वे अपने समयसे दशाब्दियों आगे थे, उस हालतमें लागू होती है, जब हम सभ्य संसारके अत्यन्त प्रगतिशील वर्गोंकी कल्पना करते हैं। सम्भवतः यही कारण है कि उनकी बहुत-से कार्योंमें अपूर्णता-सी प्रतीत होती है। उनके विचार और प्रयत्न उनके सहकारियोंसे बहुत ज़्यादा ऊँचे तथा अपने बहुत-से प्रवीण बुद्धिवाले देशवासियोंकी पहुँचके परे थे।

अब सभी उनके साहित्यिक क्षेत्रमें किए गए कार्यको राष्ट्रीय पूँजी स्वीकार करते हैं। इन कार्योंसे केवल बंगीय साहित्यको ही जीवन प्राप्त करनेमें सहायता नहीं मिली है, बल्कि बहुत-से देशोंमें साहित्यके पुनर्निर्माण-कार्यको अपने

विचार तथा भावनासे कविने अत्यधिक प्रभावित किया है। संगीतमें तो सारे भारतवर्षमें उनकी देन केवल अगाध ही नहीं, बल्कि उसका एक नैतिक प्रभाव भी है। कवि अपने मित्र स्वर्गीय महाराजा नैटोर तथा उनकी प्यारी योग्य भतीजी स्वर्गीया श्रीमती प्रतिभा देवी (धर्मपत्नी स्व० सर आशुतोष चौधरी) के साथ भारतीय संगीत-कला तथा संगीतज्ञोंके दर्जेको ऊँचा उठानेके लिए उठ खड़े हुए। इन पिछले चालीस वर्षोंमें ऐसा कौन-सा बड़ा उस्ताद है, जिसको संगीतके इस उत्साही क्षेत्रसे अपनी इच्छानुसार आर्थिक या दूसरी तरहका प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हुआ हो?

चित्र तथा शिल्प-कलामें—पूर्वीय कलाके स्कूलकी, जो टैगोर-स्कूलके नामसे विख्यात है—केवल नींव डालनेका ही श्रेय कविको प्राप्त नहीं है, बल्कि सम्भवतः वह उन अज्ञानी तथा असभ्य आलोचकों (जो कलाके विषयमें जानते तो नहीं के बराबर हैं, लेकिन जाननेका झूठा दावा अधिक करते हैं) के अपमानसे नष्ट हो गया होता, यदि उसे रवीन्द्रनाथ तथा उनके मित्र-समुदायसे प्रबल सहायता न मिली होती।

नाटकके क्षेत्रमें उसके तीन अंगों—संगीत, नृत्य और अभिनय—को रवीन्द्रनाथने पुनर्जीवित ही नहीं किया, वरन् प्राचीन संस्कृतिके आधारपर उन्होंने कुछ नवीन रचना भी की है। उनके कार्यका यह अंश ही उच्चकोटिके प्रतिभाशाली व्यक्तिकी विराट सफलताके लिए काफ़ी होता। हमारे देशको छोड़कर, जिसमें अपने सांस्कृतिक गौरवको भुलाने और विदेशी दिखावटकी नक़ल करनेकी अधिक प्रवृत्ति है, अन्य किसी भी देशमें रवीन्द्रके कार्यका यह अंग उनकी प्रतीभाका विराट साफल्य माना जाता। शान्तिनिकेतनमें कलाका जो स्तर है, वह सभ्य संसारके किसी भी देशकी कलासे समानता रखता है, और यह बात उन लोगोंने मानी है, जो इस विषयके आलोचक हैं। कलाकी जो रूप-रेखा शान्तिनिकेतनमें रवीन्द्रने स्थापित की है, वह अतुलनीय है; पर कोरी कल्पना और काग़ज़ी व्यावहारिकतासे ही वह पुनर्जागृति और विचारोंकी क्रान्ति सम्भव नहीं थी, जो स्पष्ट रूपसे हमारे देशमें साकार हो चुकी है। गुरुदेवके प्रारम्भिक दिनोंमें उनकी संरक्षता और वास्तविक कार्यकी सहायतासे भद्र पुरुष और महिलाओंके पुत्र-पुत्रियोंने पवित्र वातावरणमें कलाकी वास्तविक तथा क्रियात्मक रचनाएँ और देन उपस्थित की।

यह बिल्कुल निश्चित है कि नृत्य और नाट्यकी कलाओंके दूषित और गन्दे सांस्कृतिक मूल्यांकनके वातावरणमें किसी भी भद्र पुरुषकी बेटीके लिए यह असम्भव होता कि वह जन-साधारणमें अपनी कलाका प्रदर्शन करनेका साहस करती, यदि रवीन्द्रनाथकी उपस्थितिकी हीरेकी-सी ढालसे उसकी रक्षा न होती। भारतीय नाट्य-शास्त्रकी उन्नतिके लिए अब अन्य कलाविद आगे बढ़े हैं। यदि जंगलके चंगुलसे ज़मीनको साफ़कर बीजारोपणके लिए तैयार न किया गया होता और पहली फ़सल बोई जाकर उसकी रक्षा न की गई होती तथा महापुरुषोंकी देनके रूपमें उस फ़सलको काटा न गया होता, तो क्या अन्य व्यक्तियोंको—चाहे वे कितने भी प्रतिभाशाली और लगनवाले क्यों न हों—लाखों अवसरोंमें से एक भी अवसर सफलताका मिलता?

नवीन आदर्शोंके प्रतिपादनसे पूर्व बच्चों और तरुणोंकी शिक्षाके क्षेत्रमें हम कहाँ जा रहे थे? प्राचीन कलाके इस संदेश-वाहक और उसके कुछ अनुयायियोंके आगे आनेसे पूर्व हमारे लोक-गीत और लोक-नृत्य कितने उपेक्षित और दरिद्र हो चले थे? किस प्रकार हमारी मातृभाषाओंकी उपेक्षा—जो पिछली तीन दशाब्दियोंमें एक फैशन-सी बन गई थी—बन्द हुई और उनकी उन्नतिका पुनरारम्भ हुआ? किसने फिर हमें अपनी भूली हुई संस्कृतिकी थातीकी याद दिलाई? कौन पितृभूमिकी उन सन्तानोंका अग्रणी बना, जिसने यह निश्चय किया कि विदेशियों द्वारा बनाई हुई भेद-भाव और विषमताकी मसनूई दीवारोंको तोड़कर हमें फिरसे जातीय आत्म-सम्मान क़ायम करना चाहिए और किसने सबसे पहले यह कहा कि इस संसारमें हमें अधिकार-रूपसे अपना स्थान प्राप्त करना है, हम किसीसे भीख नहीं माँगते—भिक्षा नैव नैव इहा?
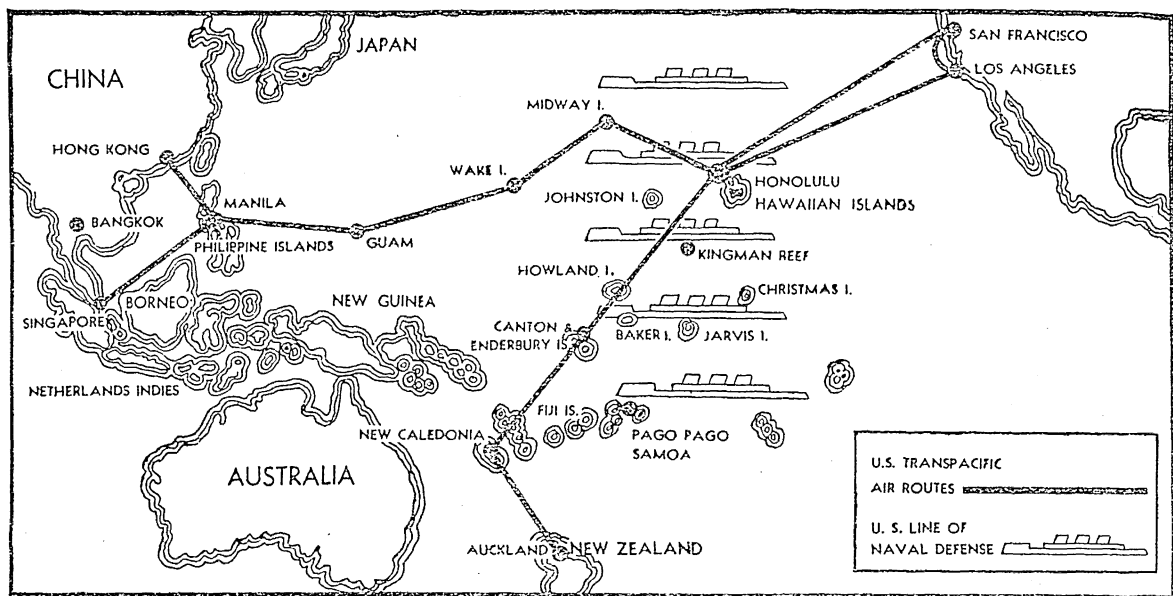
अमरीकासे आस्ट्रेलिया और एशियाको जोड़नेवाले प्रमुख हवाई और जल-मार्ग।

# सिंगापुरसे साइबेरिया

**डा० सत्यनारायण**

जर्मन युद्ध-नीतिज्ञ क्लाउज़ेविचके विश्लेषणके अनुसार राजनीतिक दाव-पेंचके एक स्वरूप-विशेषका ही नाम युद्ध है। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि साधारण समयमें ये दाव-पेंच क़लम और ज़बानसे चलते हैं, और युद्धके दिनोंमें टैंक, बोमारू विमान और जंगी-जहाज़ उसके साधन बन जाते हैं।

वर्तमान महायुद्धके सिलसिलेमें भी ये ही बातें लागू होती हैं। पिछले बहुतसे वर्षोंसे महान शक्तियोंके बीच राजनीतिक दाव-पेंच चलते रहे हैं। उसीके अनुपातमें युद्धसे सम्बन्ध रखती हुई मशीनें भी चलती रही हैं। आज महान व्यक्तियोंकी वे मशीनें सारे संसारमें टकराने लगी हैं।

इस वर्तमान महायुद्धके समेटमें किसी न किसी रूपमें अब लगभग सारा संसार आ गया है। जो हिस्से युद्ध-भूमिमें परिणत होनेसे बचे हैं, उनकी तादाद दिनों-दिन कम होती जा रही है। हमारे भारतके पूर्वी दरवाज़ेपर भी घमासान युद्ध मचा है और कलकत्ता शहर भी ख़तरेके दायरेमें आ गया है।

ऐसे मौक़ोंपर हम बार-बार सोचते हैं—यह युद्ध कितने दिनों तक चलेगा? लड़ाई कौन-सा रुख़ लेगी? यह कहाँ जाकर ख़त्म होगी? इन प्रश्नोंका उत्तर हम वर्तमान परिस्थितिके समुचित अध्ययनके आधारपर ही पा सकते हैं। आज संसारमें जितने स्थानोंपर लड़ाई चल रही है, वे असलमें एक ही युद्धके विभिन्न मोर्चे हैं। इसीलिए अपने पूर्वी दरवाज़ेपर के युद्धके अध्ययनके सिलसिलेमें हमें बहुत दूर उत्तर—साइबेरिया—तक जाना पड़ता है। बहुत-से लोग कहेंगे, सिंगापुर और बर्माके मोर्चोंसे भला साइबेरियाका क्या सम्बन्ध? पर यह सम्बन्ध है और असलमें बहुत गहरा है।

आजकल जो ख़बरें आ रही हैं, उनसे मालूम होता है कि सोवियत और जापानके बीच साइबेरियाके प्रश्नको लेकर फिरसे ज़ोरोंकी तनातनी होती जा रही है। सोवियतके साइबेरियावाले इलाक़ेको भी जापान अपने 'महान एशियायी क्षेत्र' में लाना चाहता है।

इसी प्रश्नको लेकर काफ़ी अर्सेसे इन दो शक्तियोंके बीच राजनीतिक चालोंमें शतरंजकी गोटियाँ बैठाई जाती रही हैं। जब तक सिंगापुरपर जापानका हमला असलमें नहीं हुआ था, तब तक बहुत से लोगोंकी यही धारणा थी कि उसका आक्रमण साइबेरियापर ही होगा। पर सोवियत राजनीतिको इस क्षेत्रमें काफ़ी सफलता मिलती रही है। अपनी पश्चिमी सीमापर जर्मन
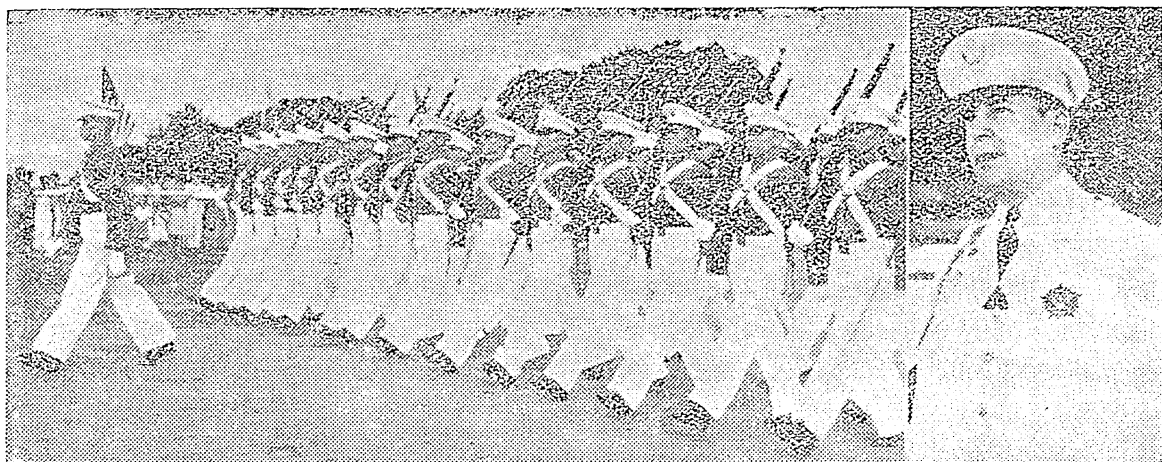
फिलिपाइन सैनिकशालाके सैनिक और सुदूर पूर्वमें लड़नेवाली अमरीकन सेनाके सेनापति जनरल डगलस मेकआर्थर।

आक्रमणका सफलतापूर्वक सामना करने और जर्मनोंको परास्त करनेके इरादेसे सोवियतने सुदूर पूर्वमें अपना हाथ खाली रखा है। साथ ही जापानको इग्लैण्ड-अमेरिका शक्तियोंसे भिड़ जानेमें सहूलियत भी कर दी। दूसरे शब्दोंमें जापानके आक्रमणका रुख़ सोवियतने इग्लैण्ड-अमेरिकाकी ओर फेर दिया। सोवियतका इससे यह लक्ष्य पूरा होता है कि जापानकी शक्ति चीन और ब्रिटेन-अमेरिकाके विरुद्ध ख़र्च होनेपर सोवियतके लिए साइबेरियन मोर्चेपर जापानको परास्त करना आसान हो जायगा।

सोवियतके मैदानमें उतर आनेपर पूर्वी मोर्चेका स्वरूप बिलकुल ही पलट जायगा; पर उसपर विचार करनेके पहले हम आजके पूर्वी मोर्चेपर एक सरसरी दृष्टि डालें। जहाँ तक समुद्री युद्धका सम्बन्ध है, जापानने अपना हमला करनेकी योजना जर्मनी और इटलीके साथ मिलकर तैयार की है। ब्रिटेनकी समुद्री शक्तिको तितर-बितर किए रहने और अमेरिकाकी समुद्री शक्तिको अकेले अटलाण्टिक या प्रशान्त महासागरमें केन्द्रीभूत करनेके अयोग्य बना देनेकी बात भी धुरी-शक्तियोंके ऐडमिरलोंके दिमाग़में अवश्य उठी होगी। उसी बुनियादपर जापानने इसका हिसाब लगाया होगा कि ब्रिटेन अभी अपनी सारी समुद्री शक्ति अकेले सिंगापुर या दक्षिणी प्रशान्त महासागरके मोर्चोंपर नहीं लगा सकता। इसके अलावा जापानकी भौगोलिक स्थिति भी इस भाँतिकी है कि प्रशान्त महासागरके ब्रिटिश या उसकी सहायक शक्तियोंके समुद्री अड्डे उसे बहुत नुक़सान नहीं पहुँचा सकते। वे अड्डे जापानके सिर्फ़ दक्षिणमें हैं और वह भी बहुत दूरीपर। वहाँसे जापानको सांघातिक आघात पहुँचा सकनेवाला हमला नहीं किया जा सकता।

ब्रिटेनकी समुद्री शक्तिके साथ अमेरिकाकी समुद्री शक्ति है; पर इससे भी परिस्थितिमें कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ता। जापानको सांघातिक आघात पहुँचा सकनेवाले नज़दीकके अड्डे अमेरिकाके पास भी नहीं हैं। उसके अड्डे छोट-फूट और दूर-दूरपर हैं। जापानके महत्वके समुद्री अड्डे और उसका वास्तविक किनारा उनसे निरापद रह जाता है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जापानकी भौगोलिक परिस्थिति इस भाँतिकी है कि अमेरिका और ब्रिटेनकी संयुक्त-समुद्री शक्तिके लिए जापानको मर्मान्तक आघात पहुँचा पाना कठिन है। वह संयुक्त-शक्ति भी जापानको शीघ्र परास्त नहीं कर सकती। वैसी अवस्थामें परिणाम यही होगा कि दोनों पक्षोंके बीच समुद्री लड़ाई काफ़ी अर्से तक चलेगी, और उस ताक़तकी आज़मायश हो जानेपर ही ब्रिटेन और अमेरिका जापानपर आक्रमण करनेकी अवस्थामें आ सकते हैं।

पर इसी भाँति जापानकी भौगोलिक स्थिति सोवियतकी ओरसे निरापद नहीं है। सोवियत यदि प्रशान्त महासागरके युद्धमें उतर आय, तो उसके लिए जापानको गहरा आघात पहुँचाना आसान है। रूसके हाथमें व्लाडिवोस्तोक

है, जहाँसे वह जापानको हवाई और समुद्री अस्त्रों द्वारा काफ़ी नुक़सान पहुँचा सकता है।

इस मौक़ेपर जापानको नुक़सान पहुँचा सकनेवाले सोवियत रूसके साइबेरियन मोर्चेपर एक दृष्टि डालना आवश्यक है। रूसके मुख्य हिस्सेसे उसके सुदूर पूर्वका सम्बन्ध ट्रांस-साइबेरियन रेलवेपर निर्भर करता है। यह रेल ब्लाडिवोस्तोकमें जाकर ख़त्म होती है। सोवियतका यह समुद्री अड्डा जापानके तटसे कुल पाँच सौ मीलकी दूरीपर है। वहाँसे तोकियो मुश्किलसे ६८० मील है। यदि सोवियत रूस ब्लाडिवोस्तोक या उसके पासके दूसरे अड्डोंसे जापानपर हवाई हमले करने शुरू करे, तो सुदूर पूर्व और दक्षिण पूर्वमें फैली जापानी समुद्री शक्ति अपने देशका बचाव नहीं कर सकेगी। जापानका नुक़सान बहुत बड़ा होगा। जापानकी हवाई शक्ति सोवियत हवाई शक्तिकी तुलनामें इतने निम्नकोटिकी है कि उसका कोई मुक़ाबला नहीं हो सकता। सोवियतके हवाई हमले जापानको ब्रिटेन-अमेरिकाकी समुद्री शक्तिकी अपेक्षा कहीं बड़ा और गहरा नुक़सान पहुँचायँगे।

इसमें सन्देह नहीं कि सोवियत रूसने अपने साइबेरियन मोर्चेको पुख़्ता बना रखनेमें कोई कसर नहीं छोड़ी है। इस इलाक़ेकी ख़ास समस्या यातायात ( ट्रांसपोर्ट ) की है। यही साइबेरियन मोर्चेकी ख़ास चीज़ है और इसीका प्राण वहाँकी ट्रांस-साइबेरियन रेलवे है। कुछ साल हुए यूरालसे लेकर ब्लाडिवोस्तोक तक यह रेल दोहरी ( डबल ट्रैक ) बना ली गई है। इसमें दूसरे क़िस्मके बहुत-से सुधार भी किए गए हैं। इसे मदद पहुँचा सकनेवाली बहुत-सी नई लाइनें भी निकाली गई हैं। आजकलकी नई साइबेरियन रेल पुरानी ट्रांस-साइबेरियनके समानान्तर उत्तर-मध्य-साइबेरियासे आमूर नदीके मुहाने तक जाती है। जापानी भी अवश्य ही इस बातको जानते हैं कि ट्रांस-साइबेरियन रेलको डबल ट्रैक कर लेनेसे सोवियतकी क्षमता कई गुनी बढ़ गई है। जनरल गोलोविनके अन्दाज़के अनुसार पहले यदि चौदह ट्रेनें रोज़ उस रेल-मार्गसे गुज़र सकती थीं, तो अब साठ ट्रेनें रोज़ाना जा-आ सकती हैं। सोवियतके साइबेरियन मोर्चोंको रसद और अन्य तरहकी मदद पहुँचाते रहनेके लिए यह लाइन पर्याप्त और बहुत उपयोगी है।

ट्रांस-साइबेरियन रेलके पश्चिमी हिस्सेमें भी चीनी तुर्किस्तानसे बैकाल झील तक बहुत-सी रेल्वे लाइनें तैयार की गई हैं। रेलके सिवा इस इलाक़ेमें मोटरकी सड़कें भी बहुत बड़ी तादादमें बना ली गई हैं। इन रेल-मार्गों और सड़कोंके हाथमें रहनेसे सोवियतकी क्षमता और फ़ौजी शक्ति इतनी प्रबल हो उठती है कि वह न केवल एशियाके मुख्य भू-भागपर स्थित जापान-अधिकृत देशोंको आसानीसे तीन तरफ़से घेर सकता है, बल्कि वहाँसे जापानियोंको निकाल भगानेमें भी समर्थ हो सकता है।

यदि एशियाके मुख्य भू-भागपर सोवियत-जापान-युद्ध छिड़ा, तो इसमें कोई शक नहीं कि सोवियतका पलड़ा कहीं भारी रहेगा। ऐसे मौक़ेपर जब कि जापानकी शक्ति इस समय चीनसे लेकर आस्ट्रेलिया तक ख़र्च हो रही है, रूसका आक्रमण अधिक दिनों तक सह सकना जापानके लिए सम्भव नहीं होगा।

जापान और सोवियतकी तुलनात्मक शक्तिपर निगाह डालनेपर हम इसी नतीजेपर पहुँचते हैं कि साइबेरियन मोर्चेपर सोवियतकी शक्ति कहीं प्रबल है, और मुक़ाबला होनेपर वह वहाँ जापानको अवश्य हरा देगा। प्रशान्त महासागर अथवा बर्मामें जापानकी चाहे जितनी बड़ी जीत हो, वह साइबेरियन मोर्चेकी हारकी पूर्त्ति नहीं कर सकती।

वर्त्तमान सोवियत-जापान-निष्पक्षताका समझौता अधिक दिनों तक टिकाऊ रहेगा, ऐसा दिखाई नहीं देता। सोवियत रूसमें जापानके लिए हठात् हमदर्दीका भाव उमड़ पड़ा है, इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस पैक्टके द्वारा स्तालिनकी एशियाई नीति—जापानको एशियाकी मुख्य भूमिसे निकाल बाहर करनेका लक्ष्य—बदल गई है, इसपर कदापि विश्वास नहीं किया जा सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिके रुख़से साइबेरियन मोर्चेपर लड़ाई छिड़नेकी सम्भावना निश्चित होती जाती दीखती है। कुछ विशेषज्ञोंका यहाँ तक ख़याल होने लगा है कि इस द्वितीय महासमरका निर्णय भी उसी मोर्चेपर होगा। जो भी हो, अभी कमसे कम आसार ऐसे ही नज़र आते हैं कि सिंगापुरकी लड़ाई साइबेरिया पहुँचकर ही रहेगी।

[ १२, जोगेन्द्रबसाक रोड, बारानगर ]

# कवि रूमी और सूफ़ी-साधना

श्री हंसकुमार तिवारी

ईरानके सूफ़ी कवियोंमें जलालुद्दीन रूमीका स्थान सर्वोपरि है। अपनी कविताओंमें उन्होंने उस अलौकिक सत्ताका इतना अच्छा आभास उपस्थित किया है कि हमें दिव्य स्पर्शका अनुभव होने लगता है। रूमीके विषयमें विनफ़ील्ड साहबने लिखा है—"रहस्यवादमें रूमीकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।" उनकी कवितापर निकल्सन साहबकी राय है—"उनकी कविता पढ़ते हुए हमें लगता है कि हम किसी स्वर्गीय वेगवती सरिताका गान सुन रहे हैं।" वास्तवमें उनकी 'मसनवी' और 'दीवान शम्श तरवेज़'को पढ़नेसे उपर्युक्त कथनमें अत्युक्तिकी गुंजाइश नहीं मालूम होती। 'मसनवी'को 'क़ुरानी पहलवी' भी कहते हैं। इसमें कुल २६ हज़ार ६ सौ दो-पदी छन्द हैं। 'मसनवी' संसारके अमूल्य ग्रन्थोंमें से एक है। उसकी रचनाके विषयमें संसार-प्रसिद्ध पर्यटक इब्नबतूताने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें एक अजीब बात लिखी है। वे रूमीकी समाधिका दर्शन करने गए थे, और वहाँकी प्रचलित किंवदन्तीके अनुसार ही उन्होंने यह विचित्र कथा संग्रह की थी। उन्होंने लिखा है—एक दिन एक फेरीवाला मिठाई बेचने आया। रूमीने उससे मिठाई ख़रीद कर खाई। उस मिठाईका खाना था कि उनका दिमाग़ फिर गया। वे पागल-से हो घरसे निरुद्देश्य निकल पड़े। कई वर्षोंके बाद जब वे लौटे, तो वे बिल्कुल बदल गए थे। किसीसे वे एक शब्द भी नहीं बोलते और सिर्फ़ कविताएँ ही उनके मुँहसे निकलतीं। 'मसनवी' इन्हीं कविताओंका संग्रह है और वह फेरीवाला ही उनके गुरु शम्श तरवेज़ थे, जिनके प्रभावसे रूमी आध्यात्मिक जगत्के सितारे बने।

किन्तु इतिहासकी कसौटीपर इस बातकी सत्यता साबित नहीं होती। जहाँ तक पता चला है, 'मसनवी'की रचना कविने अपने प्रिय शिष्य हेसामुद्दीनके एकान्त आग्रहसे की थी। कवि अपनी कविताओंकी आवृत्ति करते जाते थे और हेसामुद्दीन उन्हें लिखते जाते थे। इतिहास इस बातके भी सबूत पेश करता है कि 'मसनवी'का पहला हिस्सा ख़त्म हुआ और हेसामुद्दीनकी पत्नी चल बसीं। इस वजहसे लिखनेका कार्य कुछ दिनोंके लिए रुक भी गया। यह बात ६६४ हिजरीके बादकी है।

महाकवि रूमीकी कविता ही आध्यात्मिक भावोंसे ओतप्रोत थी, ऐसी बात नहीं है; उनका जीवन और आचरण भी त्याग और तपस्याका रहा। बहुत समय ऐसा भी देखा जाता है कि किसीकी कविता रहस्यवादकी होनेसे कविमें रहस्यवादीके लक्षण नहीं पाए जाते। बहुत दिन पहले एक मासिक पत्रिकामें रहस्यवादपर लिखते हुए स्वर्गीय पं० अवध उपाध्यायने महाकवि रवीन्द्र-नाथके विषयमें यही बात बताई थी। किन्तु रूमीने जैसा भावोल्लासपूर्ण और भक्तिमय जीवन व्यतीत किया, वैसा हमारे यहाँके सन्त कवियोंके लिए ही सम्भव था। रूमीको संसारकी किसी वस्तुसे स्पृहा नहीं थी। उन्हें उपहारमें जो कुछ मिलता, सब अपने शिष्य हेसामुद्दीन या ज़ारकूबको भेज देते। राजकोषकी १५ मुहरोंसे ही वे अपना काम चलाते। उनका ज़्यादा समय वज्दमें बीतता। उस समय उन्हें बाहरी ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता। कभी-कभी वे भक्तिमें तन्मय हो नाचते हुए घरसे निकल पड़ते और कई दिनों तक ग़ायब रहते। ईरानके एक अन्यतम सूफ़ी कवि शेखसादी (मशरफ़उद्दीन-बिन-मसीहउद्दीन अब्दुल्ला—११८८-१२९१) की कविताओं-के सम्बन्धमें लिखते हुए ब्राउन साहबने 'लिटरेरी हिस्ट्री आफ़् पर्शिया' में लिखा है—"आपकी रचनाओंपर पूर्वीय प्रभावकी पूरी छाप है।" वास्तवमें हमारे यहाँके वैष्णव धर्मकी प्रेम-साधना और सूफ़ी-साधनामें बहुत अधिक सामंजस्य है। विद्वानोंके कथनानुसार सूफ़ी-मतका आविर्भाव फ़िलस्तीनमें ईसासे ८०० साल पहले हुआ। इसके प्रवर्तक थे अबुहासिम। उन्होंने ही सर्वप्रथम फ़िलस्तीनके पास रमलेमें सूफ़ी-साधना-मन्दिरकी स्थापना की थी। लेकिन इन्होंने इस साधनाकी एक नई धारा चलाई थी। यह साधना प्रकट तो इसके पहले ही हो चुकी थी, क्योंकि सूफ़ी-साधिका रबिया अबुहासिमके पहले

ही पैदा हो चुकी थी। रबियाका जन्म बसराके एक बड़े ही ग़रीब घरमें हुआ था, और वह एक धनी आदमीके हाथ बेंच दी गई थी।

'सूफ़ी' शब्दका व्यवहार तो आध्यात्मिक साधनाके साधकके अर्थमें होता है। किन्तु इस शब्दकी उत्पत्ति कैसे हुई, यह एक विवादग्रस्त विषय है। कुछ लोगोंका कहना है, सूफ़ियोंका फ़िर्क़ा सूफ़ (ऊन) पहनता था। सूफ़से कम्बल या ऊनके बने और तरहके वस्त्र हो सकते हैं (कनटोप, कफ़नी इत्यादि)। कुछ लोग अरबीके सफ़ूसे इस शब्दकी उत्पत्ति मानते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि अरबमें सूफ़ी नामकी एक जाति थी, जो जगत्‌के छल-छन्दोंसे दूर रहकर मक्काकी सेवा करती रही। उसी जातिमें जो सन्त पैदा हुए, वे सूफ़ी कहलाए और यह परम्परा चलती रही। एक मत यह भी है कि जिनसे सूफ़ियोंकी परम्परा चली, वे पहले सुफ़्फ़ा यानी हज़रत मुहम्मदके साथी थे। कवि रूमीका जन्म अबूबकरके वंशमें हुआ था, जिनका नाम इस्लामके इतिहासको सदा उज्ज्वल किए रहेगा। अबूबकर हज़रत मुहम्मदके सुख-दुखके साथी थे और सदा छायाकी तरह उनके साथ-साथ घूमते थे।

'ईरानके सूफ़ी कवि' ग्रन्थकी भूमिकामें श्री बाँकेबिहारी ने लिखा है—"मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि सूफ़ीका उद्गम फ़ैलसूफ़ (Philosophy) से है, जिसका मूल अर्थ ज्ञान है।" Philosophy, फ़ैलसूफ़ या फ़लसफ़ी[1] आध्यात्मिक ज्ञानके लिए ही आता है। प्रेम-साधना तथा अध्यात्म-चिन्तनमें बहुत सूक्ष्म पार्थक्य है। 'गीता-रहस्य'में प्रेम-भक्ति और ज्ञान-मार्गको लोकमान्य तिलकने लगभग एक ही बताया है। इस तरहसे इस शब्दकी उत्पत्तिका मूल अगर फ़ैलसूफ़ ही हो, तो यह अस्वाभाविक तो नहीं जँचता।

सूफ़ी-साधनाका सार तत्व है ख़ुदीको मिटाना। रूमीने 'मसनवी' में एक स्थानपर इसका बहुत बढ़िया उदाहरण दिया है—"किसीने प्रियतमके द्वारको खटखटाया। भीतरसे आवाज़ आई, 'तू कौन है?' उत्तर मिला, 'मैं।' आवाज़ने कहा, इस घरमें एक साथ 'तू' और 'मैं' की जगह नहीं हो सकती, और द्वार बन्द ही रहा। प्रेमी तप करनेको जंगलमें लौट गया। साल भर तक बहुत-सी कठिनाइयाँ झेलकर वह फिर लौटा और द्वारके कड़े खटखटाए। आवाज़ने अन्दरसे फिर पूछा, 'तू कौन है?' प्रेमीने जवाब दिया, 'तू।' और दरवाज़ा खुल गया।"

रूमीकी कवितामें मानवीय प्रेमका उच्छ्वास नहीं, वैष्णव कविता या बाइलके संगीत-जैसी प्रेम-तन्मयताकी माधुरी है। सूफ़ियोंके दो स्कूल देखनेमें आते हैं—इलहामिया और इत्तहादिया। एक तो वह, जो ईश्वरपर विश्वास करता है और दूसरा वह, जो ईश्वरसे एक हो जाना चाहता है। रूमी दूसरे स्कूलके कवि थे। वे परमेश्वरकी व्यापक सत्ता मानते थे और उनमें खो जानेकी उन्हें बेकली थी। रूमीके काव्यमें यह सिद्धान्त पाया जाता है कि शरीरके पहले भी आत्मा थी। यथा—"मेरी सत्ता तब भी मौजूद थी, जब न तो वस्तुओंके नामकरण हुए थे और न वे वस्तुएँ ही थीं। नाम रखी हुई वस्तुएँ और सब नाम मुझसे ही उत्पन्न हुए, और उस दिन, जब कि वहाँ 'मैं' और 'तू'का भेद-भाव न था।"[2]

मनुष्यकी स्वतंत्र कोई इच्छा नहीं होती, उसकी इच्छाएँ ईश्वरके अधीन हैं। दीवानमें रूमीने कहा है—"मेरा दिल कलम है और वह तेरे हाथमें है। मैं ख़ुश हूँ या दुखी, जैसा भी हूँ, तेरी ओरसे हूँ। तू जिस रंगमें चाहे मुझे रँग दे। मेरी हस्ती ही क्या है और मेरा प्रेम या वैर क्या वस्तु है?"[3]

आत्मा शरीर-रूपी पिंजरेका पंछी है। इस कारागारसे मुक्त होकर वह प्रियतममें आलिंगनका अमृत पान करेगा। सूफ़ियोंकी इस भावनाके कारण मौत उनके लिए आमन्त्रित करनेकी वस्तु है। रूमीने लिखा है—"मेरा जनाज़ा जब निकले, तो इसलिए दुःख न करना कि मैं

---

१. 'दिमागे फ़लसफ़ी तुझमें शऊर किसका है?'
—मौलाना हसरतमोहानी

२. मन आँ रोज़ बूदम कि अस्मां न बूद।
निशां अज़ बजूदे मुसम्मा न बूद॥
ज़ेमां शुद मुसम्मां व अस्मां पेदीद।
दरां रोज़ कांजा मनो मां न बूद।
—दीवान

३. दिले मन चूँ क़लम अन्दर कफ़े तुस्त।
ज़े तुस्त इरशाद मानम व रह ज़ीनम्॥
दराँ खुम्मे कि दिलरा रंग बख़शी।
कि बाशम मन चे बाशद मेहरो कीनम्॥

संसारसे अलग हो रहा हूँ। वही तो मेरे लिए प्रियतमसे मिलने और उसके संसर्गमें बैठनेका दिन होगा।"[४] क्योंकि आत्मा परमात्माका अंश है। सागरमें छोटी नदियाँ मिलनेको आतुर क्यों होती हैं? क्योंकि सागर अथाह है, अनन्त है। सीमाहीनमें क्षुद्रका, सीमाका खो जाना ही तो अभीष्ट है। आत्मा भी परमात्माकी अनन्त सत्तामें अपनेको खोकर तृप्ति लाभ करता है। इसीलिए अनन्तकी प्राप्तिके लिए सान्तमें एक स्वाभाविक विकल आकर्षण है। आत्मा परमात्मासे आई और उसीमें मिल जायगी। रूमीके शब्दोंमें—"पहले तो मुझमें और तुझमें कोई भेद न था। जो तू था, वही मैं था और अन्तमें भी जो तू होगा, वही मैं हूँगा। तू ही मेरे अन्तको मेरे आदिसे उत्तम बना दे।"[५]

कवि रूमीने बेख़ुदीकी बहुत बढ़िया नज़ीर पेश की है और लिखा है—"'मैं' शब्दका मतलब क्या है? 'मैं' के मानी कोषमें अस्तित्वका न रहना है।" प्रेमपर भी उनकी उक्ति मार्केकी है—"लोग सवाल करते हैं कि प्रेम क्या है? उनसे कह दो कि प्रेम अपने अधिकारको छोड़ देना है। जो अपने अधिकारको न छोड़ सका, वह प्रेमके लिए बनाया ही नहीं गया।"

केवल रूमीकी ही क्यों, सारी सूफ़ी-साधना ही भारतीय वैष्णव कवियोंकी प्रेम-साधनाका रूपान्तर-सी लगती है। रूमीकी वाणी तो कहीं-कहीं ऐसी लगती है कि कबीर, मीरा, चंडीदास आदिकी वाणीका भाषान्तर हो। भारतीय सन्तों और सूफ़ी कवियोंके सिद्धान्तोंमें भी बहुत ज़्यादा फ़र्क़ नहीं। दोनोंका सामंजस्य दिखाते हुए 'माधवजी'ने 'सन्त-साहित्यमें' लिखा है—"जिस प्रकार हमारे यहाँ कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा सिद्धावस्था हैं, उसी प्रकार सूफ़ी साधक भी चार अवस्थाएँ मानते हैं—शरीअत, तरीक़त, हक़ीकत और मारफ़त। उनका 'अनलहक़' हमारे 'अहं ब्रह्मास्मि'का ही बोधक है।"

कवि विद्यापतिके काव्यकी आलोचना करते हुए एक अंगरेज़ विद्वानने लिखा है—"नारी-रूपसे बढ़कर आत्म-समर्पणकी बढ़िया भावना हो ही नहीं सकती। अगर हम उस ईश्वरमें अपनेको लीन कर देना चाहते हैं, तो हमें नारी-रूपमें जाना ही पड़ेगा।" हमारे यहाँ समर्पण तभी माना जाता है, जब आध्यात्मिक परिणय हो। गीताका 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' यही है; और यह समर्पण पत्नी-रूपमें ही सम्भव है। इसमें द्वैत-भावना बिल्कुल लोप हो जाती है, क्योंकि पत्नी न केवल अपने नाम-गोत्रको, बल्कि शरीर, हृदय, आत्मा, सब पतिमें एक कर देती है। इसीलिए साधक प्रीतममें ही अपनेको लीन कर देनेको व्याकुल रहता है। भारतीय सन्तोंकी तरह सूफ़ियोंकी साधनाकी सीढ़ियाँ भी इसी तरहकी होती हैं। सूफ़ी इस बातको मानते हैं कि आध्यात्मिक एकताके लिए ईश्वरकी कृपा, जिसे वे 'फ़या-ज़ान उल्लाह' या 'फ़ज़लुल्लाह' कहते हैं, आवश्यक है। उस सीमामें जाकर तो दोनों तस्वीरें एक हो जाती हैं, क्योंकि तब दुईका पर्दा उठ जाता है। एक अंगरेज़ सन्तने लिखा है—"जब मैं उसे और वह मुझे देखना चाहता है, तो मैं बीचका पर्दा उठा देता हूँ और मैं तथा वह दोनों एक हो जाते हैं।"

भारतीय सन्त-साधकोंकी तरह रूमी भी संसारी इक़्ज़तोंसे अपनेको परे मानते थे। उनका सरोकार तो सिर्फ़ उनके प्रियतमसे था। रूमीने कहा है—"मुसलमानो! मैं क्या करूँ? मैं तो यह भी नहीं समझता कि मैं क्या हूँ। न तो मैं ईसाई हूँ, न यहूदी-पारसी, न मुसलमान ही। न मैं भारतीय हूँ, न चीनी। मैं बुल्गारियामें भी नहीं रहता, न सकलातियामें। मैं ईराक़ या ख़ुरासानका भी नहीं हूँ। अपने हृदय और मस्तिष्कसे मैंने दुईके भावको निकाल दिया है। मैं तो फ़क़त एकको ढूँढ़ता हूँ, उसीको जानता हूँ। मेरी नज़रमें एक वही है और मैं सिर्फ़ उसीका नाम लेता हूँ।"

रूमीके दोनों ग्रन्थों—'मसनवी' और 'दीवान शम्श तरवेज़'—की सारे संसारमें एक-सी प्रतिष्ठा है। यूरोपकी कई भाषाओंमें कविकी जीवनी और काव्यकी आलोचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इंग्लैण्डके प्रसिद्ध काव्य-समालोचक डेविसने रूमीके काव्योंपर कई ग्रन्थ लिखे। सन् १८८७ में रेड हाउसने 'मसनवी'का अनुवाद प्रकाशित किया था। स्वनामधन्य जर्मन विद्वान हेगेलने इन दोनों ग्रन्थोंकी बड़ी प्रशंसा की है और डी० वान रोज़ेनबर्गने तो

---

४. जनाज़ा अम चु बबीनी मगो फ़िराक़ फ़िराक़ ॥
मरा विसालो मुलाक़ात आँ ज़माँ बाशद ॥

५. तू बदी अव्वलो आख़िर तू बाशी।
तू वह कुन आख़िरम् अज़ अव्वलीनम् ॥

१८३८ में वियेनासे 'दीवान शम्श तरवेज़'का जर्मन भाषामें अनुवाद भी प्रकाशित कराया। उर्दूमें मौलाना शिबली-लिखित कविकी जीवनी और काव्यालोचना बड़ी महत्व-पूर्ण है। इन दोनों ग्रन्थोंमें श्रेष्ठ कौन है, यह बताना कठिन है। निकल्सन साहबने तो दोनोंको ही इक्कीस बताया है।

रूमीका जन्म सन् १२०७ में खुरासानके अन्तर्गत बलख़ नगरमें हुआ था। हम पहले ही कह आए हैं कि कवि धर्मप्राण अबूबकरके वंशमें पैदा हुए थे। कविके पिता बहाउद्दीन और पितामह हुसैन दोनों ही प्रसिद्ध सूफ़ी थे। ज्ञान-चर्चाके लिए उनके पास लाखोंकी भीड़ हुई। ख़ुरासानके शाह मुहम्मद ख़्वाज़मने अपनी इकलौती लड़की मालिक-इ-जहानसे हुसैनकी शादी कर दी थी। ख़्वाजमका समय ११९९ से १२२० तक रहा। सन् १२१९ में चंगेज़ख़ाँका मुक़ाबला करनेमें उन्हें मुँहकी खानी पड़ी थी।

इन्हीं ख़्वाजमकी नज़रपर चढ़ जानेसे कविके पिता बहाउद्दीनको कुछ दिनों तक भटकना पड़ा था। बात यह थी कि बहाउद्दीनका नाम दूर-दूर तक फैल गया था। रोज़ हज़ारों आदमी दूर-दूरसे उनके पास आया करते थे। दिन भर तो अध्यापन-कार्यसे उन्हें फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। शामको आए हुए लोगोंसे वे धर्म-चर्चा किया करते थे। हर जुम्मेको ख़ुद ख़्वाजम शाह भी उनके पास आया करते थे। कभी-कभी मशहूर दानिशमन्द इमाम फ़ख़ीरुद्दीन भी वहाँ आ जाया करते थे। जब वे आते, तो बहाउद्दीन कहा करते—'नीरस तर्कशास्त्रकी आलोचनासे कुछ नहीं होता, मुक्ति भगवत्-प्रेमसे ही प्राप्त हो सकती है।' दार्शनिक फ़ख़ीरु-द्दीन मन ही मन कुढ़कर रह जाते। आख़िर उन्होंने धीरे-धीरे राजाको उनके ख़िलाफ़ उभाड़ा, जिसकी वजहसे सन् १२१२ में बहाउद्दीनको सदाके लिए अपनी जन्म-भूमिसे विदा होना पड़ा।

६ वर्षके बालक जलालुद्दीनको लेकर बहाउद्दीन नीशाँपुर पहुँचे। यह श्रेष्ठ कवि फ़रीदुद्दीन अत्तार, जो अबूतालिब मुहम्मदके नामसे मशहूर थे, की जन्मभूमि था। अत्तारने बालकको देखकर कहा था—'भविष्यमें यह बालक उज्ज्वल रत्नकी तरह चमकेगा।' अत्तारकी उम्र उस समय लगभग ५५ के हो चुकी थी। उनके बारेमें आगे चलकर रूमीने कहा था—'मंसूरकी आत्मा डेढ़ सौ सालके बाद अत्तारमें प्रकट हुई है।' अत्तारने रूमीके लिए एक ख़त भी लिखा था, जिसे रूमी सदा अपने पास रखा करते थे। रूमीके बारेमें अत्तारकी भविष्य-वाणी अक्षरशः सत्य निकली। नीशाँपुरसे बहाउद्दीन बग़दाद, मक्का, फिर लरेंदा गए और वहाँ एक विद्यापीठमें अध्यापकका काम करने लगे। इसके बाद अलाउद्दीन कैकोबादने उन्हें एशिया-माइनरमें बुला लिया, जहाँ वे निश्चित रूपसे रहने लगे। जलालुद्दीनका नाम यहीं रूमी पड़ा, क्योंकि उस समय एशिया-माइनरको लोग 'रूम' कहा करते थे।

शुरू-शुरूमें कविको अपने पितासे ही शिक्षा मिली; मगर वास्तवमें उनके शिक्षा और दीक्षा-गुरु थे बहाउद्दीनके प्रिय शिष्य बुरहानुद्दीन। सन् १२३१ में पिताकी मृत्युके बाद कवि शिक्षाके लिए सीरिया गए। दमिश्क और अलप्पोकी उन दिनों शिक्षाके लिए बड़ी शुहरत थी। अलप्पोमें प्रसिद्ध विद्वान कमालुद्दीनसे, जिनका लिखा अलप्पोका इतिहास आज भी प्रसिद्ध है, उन्होंने शास्त्र पढ़े। फिर दमिश्कमें बुरहानिया-विद्यालयमें उन्होंने शास्त्रोंका अध्ययन किया।[६] जब कवि शास्त्रोंमें पारंगत होकर कौनिया लौटे, तो उनकी उम्र चालीसकी हो चुकी थी।

लेकिन शम्श तरवेज़ने कविकी जीवन-धारा बिल्कुल पलट दी। रूखी ज्ञान-चर्चाकी जगह कविमें भक्ति, प्रेम और वैराग्यका उदय हुआ, और उनकी साधनाने उन्हें संसारमें बहुत ऊँचा उठा दिया। शम्श तरवेज़से कविकी भेंट कैसे हुई, इसपर बहुत तरहकी बातें बताई जाती हैं। इब्नबतूताका बयान हम ऊपर लिख आए हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि एक दिन मौलाना रूमी बहुमूल्य ग्रन्थोंसे घिरे बैठे थे। इतनेमें एक दरवेशने आकर उनसे पूछा—'इन ग्रन्थोंमें क्या है?' पाण्डित्यके गर्वसे मौलानाने कहा—'इनमें क्या है, यह तुम क्या समझोगे?' सहसा ग्रन्थ जल उठे। मौलाना ताज्जुबमें आकर बोले—'यह

---

६ इस विषयमें काफ़ी मतभेद है। जलालुद्दीनके शिष्य सिपह-सालारने कविकी जीवनीमें यह बात लिखी है। अन्य किसी ऐतिहासिकने इस बातका ज़िक्र नहीं किया है कि दमिश्कमें कविने कहाँ अध्ययन किया। —ले०

क्या ?' दरवेशने उत्तर दिया—'यह क्या है, तुम क्या जानो ?' बस, उसी दिनसे रूमीके जीवनने पलटा खाया। यही दरवेश कविके गुरु शम्स तरवेज़ थे।

शम्स तरवेज़के सम्बन्धमें निकलसन साहबने लिखा है—"वह एक बहुत ही दुर्बल आदमी था। अपने शरीरको वह हमेशा काले कपड़ेसे ढँके रहता था। दुनियाके रंगमंचपर उसने कुछ ही दिनों तक लोगोंको अपने दर्शन दिए और सबको दुखी बनाकर ग़ायब हो गया। लोगोंपर उस समय उसका बहुत प्रभाव था। जिस प्रकार गुरु सुकरातसे प्लेटोका शरीर और आत्माका सम्बन्ध था, वैसा ही सम्बन्ध था रूमीका गुरु शम्स तरवेज़के साथ, जिसके नामपर उन्होंने अपनी पुस्तक रची।"

कविके शिष्य और जीवनी-लेखक सिपहसालारने लिखा है—"शम्स बिल्कुल सीधे-सादे व्यक्ति थे। उन्हें देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वे मुरीद या पहुँचे हुए हैं। ६४२ हिजरीमें ईश्वरके आदेशसे वे कौनिया आए और एक सरायमें रूमीसे उनकी भेंट हुई। थोड़ी ही देरकी बातचीतमें रूमी उनके शिष्य बन गए।"

शम्ससे भेंट होनेके पहले रूमीमें सम्मानकी भूख थी। वे हमेशा शिष्योंसे घिरे रहते थे। यहाँ तक कि रास्तेमें जाते हुए भी वे पंडितोंके बीच चलते थे। शम्सकी मुलाक़ातके बाद ही उनके असाधारण पाण्डित्यका गौरव लुप्त हो गया। उन्होंने पठन-पाठनसे एकबारगी मुँह मोड़ लिया। शम्सके साथ एकान्तमें बैठकर ध्यानमग्नावस्थामें ही उनका अधिकांश समय बीतता। उनके शिष्य तथा अन्य लोग इससे क्षुब्ध हो उठे। लोगोंमें चर्चा होने लगी कि एक पागलने रूमीकी मति मार दी है, इसीलिए शम्स चुपचाप वहाँसे चल दिए। रूमीकी तो हालत बिगड़ गई। बहुत दिनोंके बाद उन्हें दमिश्कसे गुरुका पत्र मिला, तब रूमीके पुत्र बहाउद्दीन, जो सुल्तान वालद कहलाते थे, बहुत-से शिष्योंके साथ दमिश्क जाकर गुरुको लिवा लाए। इसके दो साल बाद कौनियामें ही उनकी मृत्यु हुई।

शम्स तरवेज़की मृत्युके विषयमें परस्पर-विरोधी बातें कही जाती हैं। कुछ ऐतिहासिकोंने लिखा है कि वे रूमीके शिष्यों द्वारा मारे गए, और कुछ लोगोंका ऐसा भी कहना है कि रूमीके पुत्रने ही उनका ख़ून किया। किन्तु सिपहसालारने लिखा है कि शम्स फिर निरुद्देश्य हो गए और उनका कोई पता न चला। जो भी हो, शम्सकी जुदाईके आघातसे रूमीकी काव्य-प्रतिभा मुखरित हो उठी, और इसी समय उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविताएँ रचीं। कहा जाता है कि इसी समय लोगोंको उनकी दैवी शक्तिका परिचय मिला। इसी समय फ़ारस-विजयी वीर हलाकूख़ाँके सेनापति बेचूख़ाँने कौनियापर हमला किया। नगरमें हाय-तोबा मच गई। यह देखकर रूमीने एक टीलेपर नमाज़ पढ़ी। उन्हें मारनेकी बहुत कोशिश की गई, यहाँ तक कि ख़ुद बेचूख़ाँ उनपर तलवार लेकर टूट पड़ा; मगर वे हिले तक नहीं। यह बात कहाँ तक सत्य है, नहीं कहा जा सकता; लेकिन 'मलेकिब-उल-अरेफ़िन' नामक ग्रन्थमें इसका ज़िक्र है।

शम्स तरवेज़की मृत्युके बाद कविके जीवनमें एक अजीब घटना घटी। कविका पड़ोसी था एक सुनार—सलाहुद्दीन। एक दिन वह चाँदी पीट रहा था कि कवि वहाँ जा मत्त होकर नाचने लगे। यह नाच घंटों चलता रहा। यह देखकर सलाहुद्दीन कविके पैरोंमें जा गिरा। उसने अपनी सारी सम्पत्ति बाँट दी। उस दिनसे कविने शम्स तरवेज़की जगह सलाहुद्दीनको दी। इसपर बहुत लोग रुष्ट भी हो गए थे, गोकि सलाहुद्दीन भी सूफ़ी-साधनामें ऊँचा स्थान प्राप्त कर चुका था। उसने बहाउद्दीन और बुरहानुद्दीनका शिष्यत्व भी किया था। ६६४ हिजरीमें सलाहुद्दीनकी मृत्यु हुई, और फिर उसका स्थान हेसामुद्दीनने अख़्तियार किया, जो कविका शिष्य था। यहाँ तक कि मरते समय कविने इसे ही अपनी जगहपर रहनेका आदेश दिया था। कविके पुत्र सुल्तान वालद एक अच्छे सूफ़ी और पण्डित थे। उन्होंने 'दरबारनामा' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा था, फिर भी कविने अपना पद उन्हें नहीं दिया।

कविके पारिवारिक जीवनकी बातोंका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। किसी-किसीने लिखा है कि रूमीने दो शादियाँ की थीं, जिनसे एक लड़का और एक लड़की हुए थे। लेकिन जहाँ तक पता चलता है, कविकी शादी २० सालकी उम्रमें समरकन्दके लाला शराफ़ुद्दीनकी लड़की गौहर ख़ातूनसे हुई थी और उनसे अलाउद्दीन और बहाउद्दीन दो लड़के पैदा हुए थे। बहाउद्दीन बड़े योग्य पण्डित थे। उनकी मृत्यु सन् १३१२ में ९६ सालकी उम्रमें हुई थी।

सन् १२७२ में कौनियामें बड़ी भयंकर महामारी हुई। इसीमें कविने भी खाटकी शरण ली। उस समयके अद्वितीय हकीम अकमालुद्दीन और गज़ोलकोने दवा-दारू की। कविकी सेवाके लिए मशहूर पण्डित सदरुद्दीन भी उस समय वहाँ आए हुए थे। उनसे कविने कहा—"दोस्त, अब ममता क्या ? प्रेमी-प्रेमिकाके बीच जो दीवार खड़ी है, वह ढह जाय, ज्योतिसे ज्योतिका मिलन हो।" उन्होंने आदेश दिया कि मेरी सम्पत्तिमें से मेरा ५० दीनारका क़र्ज़ अदा कर दिया जाय और बाक़ी जायदाद बाँट दी जाय। साँझकी रोशनीके साथ-साथ कविने भी अन्तिम विदा ली।

कवि जलालुद्दीन रूमीने सूफ़ियोंमें एक नया सम्प्रदाय चलाया था। इब्नबतूताने अपने भ्रमण - वृत्तान्तमें इसका उल्लेख किया है। उस समय जलालुद्दीन द्वारा चलाए जानेसे लोग उस सम्प्रदायको जलालिया कहते थे। इसी सम्प्रदायको रूम, मिस्र, तुर्की, सीरिया आदिमें मौलविया सम्प्रदाय कहा जाता है। इस सम्प्रदायके लोग नाचा करते हैं, जैसा कि गौरांग महाप्रभुके चलाए पंथवाले नाम-कीर्तनके साथ तन्मय होकर नाचा करते हैं। मौलाना रूमी ख़ुद वाद्य-संगीतसे आत्म-विभोर होकर नाचा करते थे। रूमके राजाने इसके लिए उन्हें छूट भी दे रखी थी। नमाज़ पढ़ते-पढ़ते वे सुध-बुध भूल जाते और तमाम रात खड़े ही रह जाते। ध्यानके समय उनकी आँखोंसे आँसूकी धारा उमड़ा करती थी।

दया, दीनता और वैराग्य रूमीके जीवनकी विशेषताएँ थीं। नमाज़में शामिल होनेपर वे पंक्तिमें कभी आगे नहीं रहते। जीवोंको कष्ट देना वे पाप समझते थे। एक बारकी बात है, मौलाना अपने शिष्योंके साथ कहीं जा रहे थे। एक इतनी सँकरी गली मिली, जिसमेंसे साथ-साथ दो आदमियोंका पार होना कठिन था। एक कुत्ता उसी गलीमें सो रहा था। उसके विश्राममें बाधा न पड़े, यह सोचकर रूमी खड़े रहे। बड़ी देर तक उन्हें खड़े देखकर एक शिष्यने कुत्तेको भगा दिया। इसपर उन्होंने सख़्त अफ़सोस प्रकट किया था। और एक बारका ज़िक्र है, मोइनुद्दीनके घर गाने-बजानेकी बैठक थी। उसी बीच एक औरत मौलानाको खाना दे गई। मौलाना तो संगीतमें तन्मय थे। सहसा एक कुत्ता आया और खाना चट कर गया। यह देखकर एक शिष्यने कुत्तेको मारना चाहा, पर रूमी बोल उठे—"अरे रे, उसे न मारो, भोजनकी ज़रूरत हम लोगोंसे उसे ही ज़्यादा थी।" इतना महान् था कवि रूमीका हृदय।

चम्पानगर ( भागलपुर ) ]

---

श्री तपेशचन्द्र त्रिवेदी

# जीवन-मृत्यु

जीवन-पथपर अविराम गतिसे चलनेवाला बटोही ज़रा सुस्ता लेनेको किसी पेड़की शीतल छायामें क्षणभर रुक भी न सका था कि उसके कानोंमें समीपवर्ती ग्रामसे छनकर आती हुई शहनाईकी मधुर ध्वनि पड़ी। पूछनेपर पता चला, गाँवमें किसीके घर बच्चा पैदा हुआ था। पथिककी आकृतिपर इस संवादकी कोई छाप नहीं पड़ सकी।

कुछ दूर आगे जानेपर उसके पैर एकाएक रुक गए। नदीके किनारे कुछ लोग बैठे छाती पीट-पीटकर रो रहे थे और उनके आगे धू-धूकर एक चिता जल रही थी।

बटोही अब भी वैसा ही निर्विकार बना रहा, और तुरत आगे बढ़ गया; मानो उसपर इसका कोई प्रभाव ही न पड़ा हो।

# ईश्वरकी खोज

साधकने अपनी झोली उठाई और मन्दिरके द्वार छोड़कर चल पड़ा।

"कहाँ चले साधक ?"—किसीने पूछा।

"ईश्वरकी खोजमें !"—साधकका संक्षिप्त उत्तर था।

पूछनेवालेने एक व्यंगकी हँसी हँसकर कहा—"तो क्या ईश्वर मन्दिरमें नहीं रहे ?"

चलते-चलते साधकने अपनी उँगली उस ओर उठाई, जहाँ होटलसे बाहर फेंकी हुई कुछ जूठी पत्तलोंपर दो-चार कुत्ते टूट पड़े थे और एक मानव नामधारी जीव उन्हें छीननेकी चेष्टा कर रहा था।

"शायद ईश्वर वहाँ हो।"—साधकने कहा और चला गया।

# चिर उपेक्षिता नारी

श्रीमती शान्तिदेवी आरोड़ा

भारतवर्षमें नारियोंकी स्थिति सुधारनेके लिए जो प्रयत्न किए गए हैं, उनमें प्रायः दो तरहके लोग रहे हैं। प्रथम तो वे लोग, जिनके हृदयमें नारीकी गर्हित स्थितिसे काफ़ी वेदना पहुँची और जिन्होंने इस बातको महसूस किया कि राष्ट्रको उन्नतिशील बनाने और रखनेके लिए नारी-जागरण तथा उसके विचार और दृष्टिकोणमें परिवर्तन करना आवश्यक है। पर ऐसे लोगोंकी संख्या नगण्य ही रही है। दूसरे वे लोग हैं, जिन्हें भावावेशमें नारीकी महत्ताका ध्यान आया। नारी विश्वकी जननी है, परोपकारकी प्रतिमा है, नारी-हृदय स्नेहकी निर्झरिणीका उद्गम-स्थान है, आदि भावनाएँ उनके हृदयोंमें जाग्रत हुई और उनका कवि-हृदय नारीकी प्रशंसामें फूट पड़ा—'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमतस्यै नमतस्यै नमोनमः।' फलस्वरूप नारी विद्याकी अधिष्ठात्री सरस्वती और धनकी अधिष्ठात्री लक्ष्मी बनी, और उसी रूपमें हिन्दू-संसार आज भी उसकी पूजा कर रहा है। नारीके इस महान, व्यापक और विराट रूपका दर्शन उन्होंने विश्वको कराया ; पर जब उनकी भावुकता दूर हुई और जब वे कल्पना-जगत्से वास्तविक कोलाहलमय जगत्में आए, तब उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने भावुकतासे की गई प्रशंसाका सम्बन्ध इस संसारकी रक्त-मज्जासे निर्मित नारीसे न करके उस नैसर्गिक देवीसे कर दिया, जिसकी शायद कल्पना ही की जा सकती है ; पर हमारे चर्म-चक्षु उसे देख नहीं सकते। इस प्रकार एक ओर तो कल्पना-जगत्में नारीकी महत्ताका गुणगान होता रहा और दूसरी ओर व्यावहारिक जगत्में नारी पैरोंकी जूती बनी रही।

पहली श्रेणीके लोगोंके मनमें नारियोंकी स्थितिसे जो चोट पहुँची, वह सच्ची थी। उन्होंने उनके सुधारके लिए जो प्रयत्न किए, उन्हींके फलस्वरूप आज भी हमारे पुराने ग्रन्थोंमें कहीं-कहीं विदुषी नारियोंके नाम आ जाते हैं। इन्हीं कतिपय नामोंके आधारपर हम इस निर्णयपर पहुँच जाते हैं कि प्राचीन कालमें नारियाँ पुरुषोंके समान स्वतंत्र थीं। वे विदुषी और पंडिता होती थीं। फिर भी उसी नारी-स्वातंत्र्यके युगमें जिन धर्मशास्त्रोंका निर्माण हुआ है और उनमें नारियोंके ऊपर जो प्रतिबन्ध लगाए गए हैं, वे बतलाते हैं कि हवाका रुख़ किधर था। मनु महाराजके पहले तक जितने धर्मशास्त्र-लेखक हुए, सभीने नारियोंके साथ अन्याय किया है। सर्वप्रथम मनु महाराजने ही 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' लिखकर लोगोंको कुछ अचकचा-सा दिया। पर मनु महाराजने जो उदारता दिखलाई, वह कोई बहुत बड़ी नहीं थी ; क्योंकि और बातोंमें तो उन्होंने भी नारियोंको इस प्रकारके क़ानूनी बन्धनोंमें बाँध रखा है कि भारतका नारीत्व पिंजरेके व्याघ्रकी नाईं मूक और नीरव भावसे अपने ऊपर किए गए अत्याचारोंको सहता आ रहा है। क़ानून उसका सहायक नहीं और धर्म उसका रक्षक नहीं।*

नारियोंके प्रति जो बुरे व्यवहार हुए हैं, उनका सबसे प्रधान कारण यह रहा है कि पुरुष अपनेको नारीका अर्द्धांग न समझकर अपने-आपको उससे बड़ा समझता रहा है। वह यह समझता रहा है कि पुरुष बल, बुद्धि, विद्या और अर्थोपार्जनमें नारीसे श्रेष्ठ हैं। वह जो कुछ उसके लिए सोचता या करता है, वह नारीके लिए कल्याणप्रद होगा। यही बड़प्पनकी भावना पुरुषके भीतर कार्य करती रही है, और इसीके इशारेपर उसके सभी कार्य होते आए हैं। भारतके लेखकों, नाटककारों तथा सुधारकोंमें भी सब जगह इसी मनोवृत्तिका परिचय मिलता है। नारियोंपर पुरुषों द्वारा जो अत्याचार हुए हैं, उन्होंने पुरुषोंको उन दोषोंसे बचाया है, उनकी वकालत की है। अपनी रचनाओंमें उनका चरित्र-चित्रण उन्होंने इस ढंगसे किया है कि उसके दुर्गुण भी महत्ताके रूपमें प्रकट होने लगते हैं। राम और सीताका उदाहरण हमारे सामने है। रामचन्द्रजी पिताके वचनको सत्य करनेके लिए वन चले। ऐसे अवसरपर पतिव्रता सीता घरमें कैसे रह सकती थीं ! जब उनके प्राणवल्लभ जंगलको चले, तो उनका भी कर्तव्य था कि वे भी उनके साथ वनमें जायँ और अपने प्राणोंके प्राणके मार्गके कंटकोंको दूर करें—उनके पथके शूलोंको अपने नारी-सुलभ स्नेहसे फूल बना दें।

---

* क़ानून तो प्रायः साम्राज्यवाद और उसके पोषकोंके हितसे बनाया गया है। —सं०

वनमें सीताका हरण हुआ, और पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी सीताके वियोगमें ऐसे दुखित हुए कि वन-वन पागलकी तरह रोते फिरने लगे और वृक्षों तथा पर्वतोंसे पूछते—तुमने देखी सीता मृगनयनी ? भवभूतिने तो यहाँ तक लिखा है कि रामचन्द्रजीकी वियोग-व्यथासे दुखित होकर पत्थर भी रोने लगे थे। उस वन-प्रान्तका सारा वायुमण्डल विषादमय और क्षुब्ध हो उठा था। सीताको रामचन्द्रजी लंकासे बचाकर लाए। सीताके सतीत्वकी जाँच करनेके लिए अग्नि-परीक्षा हुई। सती नारीका अपमान यहींसे आरम्भ हुआ। फिर एक धोबीके निन्दा करनेपर सीताको घरसे निकाल देनेका निश्चय किया गया। पर यह सब कुछ होता रहा चुपके-चुपके।

सीता निर्ममताके साथ घरसे निकालकर जंगलमें प्रकृति और हिंस्र पशुओंकी दयापर छोड़ दी गई। इस निर्मम और कठोर कार्यके बदले रामचन्द्रजीने प्रजारंजक बननेका महँगा सौदा मोल लिया।† चारों ओर उनकी प्रशंसा शुरू हुई कि उनके समान प्रजारंजक और लोकोपकारी राजा कौन हो सकता है, जिन्होंने प्रजारंजनके लिए अपनी पत्नी तकका त्याग कर दिया! रामचन्द्रजी इस बातको अच्छी तरह जानते थे कि सीताजी तुषारकी तरह धवल और निर्मल, स्वर्गकी तरह पवित्र और ज्योत्सनाकी तरह स्निग्ध हैं। सीतासे कलंक उतना ही दूर है, जितना कि सत्यसे झूठ। यह सब जानते हुए भी लोकापवादके भयसे उन्होंने एक निर्दोष नारीको निर्वासित कर दिया। अपनी कीर्तिको अक्षुण्ण रखनेके लिए अपने यशको निष्कलंक बनाए रखने की लालसाने अग्नि-परीक्षामें पवित्र और निष्कलंक साबित हुई अबोध सीताको घरसे निकालनेके लिए रामके हृदयमें ज़ोर मारा। पर रामचन्द्रजीने आत्म-प्रवंचना की, अपने-आपको धोखा दिया, क्योंकि सीताको सती जानते हुए भी वे लोकापवादके सामने झुक गए। पिताके वचनको सत्य करनेके लिए जो चौदह वर्ष तक वन-वन मारा फिरा, वही एक नारीकी मर्यादाको क़ायम रखनेके लिए राज्यको ठोकर मारकर घरसे बाहर नहीं निकल सका! उधर सीताको देखिए, गर्भिणी अवस्थामें घरसे बाहर निकाली जानेपर भी रामचन्द्रजीके लिए कोई ऐसी कल्पना नहीं करतीं, जो उनके हृदयेश्वरके लिए अशुभकर हो। पर हाँ, उनके ध्यानमें यह अवश्य आता है कि इस जीवनके दुर्वह भारको ढोनेसे तो आत्म-हत्या कर लेना ठीक है। चारों ओरसे निराश होकर भयंकर जंगलमें पड़ा हुआ मनुष्य और सोच ही क्या सकता है? पर शीघ्र ही उन्हें ध्यान आता गर्भावस्थाका; गर्भस्थित शिशु रामचन्द्रजीकी थाती है, उसकी रक्षा करनी ही होगी।

शकुन्तला और दुष्यन्तकी कहानी भी नारीकी इसी असमर्थताकी द्योतक है। दुष्यन्त घरसे मृगयाके लिए निकलता है और मृगयाके पीछे अपने साथियोंको छोड़ बहुत आगे बढ़ जाता है। वह भूलता-भटकता कण्व ऋषिके आश्रममें प्रवेश करता है। आश्रमके विशुद्ध और शान्त वातावरणमें पली शकुन्तलाका लावण्य और और कमनीयता देखकर उसका मन चंचल हो उठता है, और वह कह उठता है—'दूरीकृता उद्यानलता खलु वनलताभिः।' (इस जंगलमें पली एक वन-लतिकाने राजप्रासादमें पली हुई सुन्दरियोंको भी सुन्दरतामें मात कर दिया है।) फिर वह अपने-आप कहता है, 'अवश्य ही यह क्षत्रिय-कन्या है, नहीं तो मेरा मन इसकी ओर आकृष्ट नहीं होता।' इस प्रकार अपने-आपको समझाकर वह उस भोली शकुन्तलाको अपने मायाजालमें फँसा लेता है और उसके साथ गन्धर्व-विवाहकर उसे अपनी पत्नी बना लेता है। वही शकुन्तला जब राजाके दरबारमें जाती है, तो वह उसे पहचानता तक नहीं और दरबारसे निकाल देता है! राजा शकुन्तलाको पहचानता तो कैसे? प्रति-दिन उसे मार्गमें न जाने कितनी शकुन्तलाएँ मिलतीं और बिछुड़तीं, इन सबका लेखा-जोखा कौन रखे! जिस मनने आश्रममें शकुन्तलाके क्षत्रिय-कन्या होनेका बोध कराया था, वही मन शकुन्तलाको पहचान क्यों नहीं सका? जिस युवतीको पत्नी कहकर राजाने अंगीकार किया, आख़िर उसे वह अपना क्यों न सका? यह एक विडम्बना है। कालिदासने अंगूठी-प्रकरणको कथानकमें जोड़कर, दुर्वासाके शापको मिलाकर, राजाको इन दोषोंसे बचाया है।

तुलसीदास-जैसा पहुँचा हुआ महान कलाकार, महान कवि और जनताको मार्ग-प्रदर्शित करनेवाले नेताने भी नारियोंके सम्बन्धमें वही कठोरता दिखलाई है। तुलसी-

---

† राम आधुनिक कालके तानाशाह या रक्तशोषक साम्राज्यके सम्राट न थे, जो जनमतकी अवहेलना करते। —सं०

दासकी रामायण आज अट्टालिकाओंसे लेकर झोपड़ों तक समान रूपसे आदर पा रही है। वह संसारके सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यमें से एक है। इन सबके होते हुए भी इसे तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि नारियोंके सम्बन्धमें उन्होंने जो कुछ लिखा, उसमें उन्होंने बड़ी हृदयहीनताका परिचय दिया है। जिस नारीकी प्रेरणासे तुलसीदास महात्मा हो गए, उसीकी ऐसी उपेक्षा उन-जैसी महान आत्माको कहाँ तक शोभा देती है? तुलसीदासके समर्थनमें इस सम्बन्धमें जो दलीलें पढ़ने और सुननेको मिली हैं, वे थोथी हैं; आलोचनाकी कसौटीपर वे टिक नहीं पातीं। कोई कहे या न कहे; पर इस बातको सभी मन-ही-मन स्वीकार करते हैं कि तुलसीदासने नारियोंके प्रति अत्याचार किया है। पूरी रामायणमें—जगदम्बा महारानी सीताको छोड़कर, जो इस पार्थिव दुनियाकी नहीं हैं—कहीं भी किसी नारीके सम्बन्धमें दो-एक भी प्रशंसात्मक वाक्य उन्होंने नहीं लिखे।

मनुष्योंने तो अपनी दुर्बलताओं और कमज़ोरियोंका सारा भार नारियोंके ऊपर लादा है। शासन-सूत्र उनके हाथमें रहा है, इसीलिए मूक पशुकी तरह—

फिरता हूँ फेरता है वह पर्दानशीं जिधर;
पुतलीकी तरह हूँ, न है कुछ अख्तियारमें।

इस शेरको चरितार्थ करती हुई नारी सदा जीवन बिताती रही है। पुरुष-समाजने नियमित रूपसे नारी-समाजको अविश्वासकी दृष्टिसे देखा है। स्त्रियोंकी ओरसे वह सदा सशंकित रहा है। यही कारण है कि उनके सम्बन्धमें जब जिसने लिखा, प्रायः वही बातें अक्षरोंको फेर-फारकर लिखी गईं। एक ओर तो नारियोंको वे अर्द्धांगिनी और गृह-लक्ष्मी आदिके सुन्दर सम्बोधनोंसे सम्बोधित करते रहे हैं और दूसरी ओर उन्हें नीच, मायाविनी और राक्षसी समझते रहे हैं। चूँकि समाजका आर्थिक प्रश्न पुरुष ही हल करते रहे हैं, इससे उनकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। समाजने भारतीयताके आदर्श-पालन और उसे निभानेका तथा सती-धर्मकी पूर्ण रूपसे रक्षा करनेका भार नारियोंपर लाद रखा था। एक ओर तो ज्ञानके सभी मार्ग उनके लिए बन्द कर दिए गए और दूसरी ओर उनके भीतर नर-दुर्लभ गुणोंके विकासकी आशा की गई, इसी प्रकारका व्यवहार अतीतमें रहा है। वर्त्तमान भी इसीका अनुकरण कर रहा है। फलस्वरूप कितने घर बरबाद हो रहे हैं।

देशने जबसे अँगड़ाई ली है, जीवनके सभी क्षेत्रोंमें एक उथल-पुथल-सी मच गई है। चारों ओर सुधारकी लहरें दौड़ गई हैं। फिर इस परिवर्तनके युगमें यह कब सम्भव था कि हमारा चिर-सुषुप्त नारी-समाज नहीं जागे। आज उनमें भी जागरण हुआ है और वे प्रगतिके पथपर अग्रसर हुई हैं। पर समाज आज एक चौमुहानेके पास आ गया है। यहाँसे हमारे लिए कौन-सा पथ श्रेयस्कर होगा, यह विचारणीय है। आज कुछ बहनें पश्चिमी सभ्यताको आँख मूँदकर अपना रही हैं; पर बिना सोचे-विचारे पश्चिमी सभ्यताकी नक़ल हमारे जीवनको, हमारे समाजको, विषाक्त बना देगी। जिन रंगीनियोंसे हमारी आँखें चकाचौंध हो रही हैं, वे स्थायी नहीं हैं। अतः जीवनका मार्ग तो ऐसा होना चाहिए, जिसके सहारे चलनेसे हमारे हृदयमें विशालता आय, दृष्टिकोणमें उदारता आय और समाजके भीतर मंगल-प्रभात हो। अतः नारियोंके सम्बन्धमें अब तक लोगोंकी जो धारणा रही है, उसे दूर करनेकी ज़रूरत है। जीवन और समाजको सुखी बनानेके लिए नर-नारीकी समानताको मानना होगा। समानतासे मेरा मतलब है, पुरुष इस बातको समझ लें कि समाज-निर्माणमें जितना ज़िम्मेदार वह है, उतनी ही ज़िम्मेदार नारी है।* अगर पुरुष आर्थिक पहलुओंको सुलझाता है, तो नारी गृह-कार्योंके सारे बोझको सँभालती है, इसलिए समाजमें दोनोंका समान स्थान है। अगर समाजकी रक्षा करनी है, तो पुरुष देवता है और नारी उसके चरणोंकी धूलि, इस मनोवृत्तिमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। तभी हम जीवित रह सकेंगे, तभी हमारा कल्याण होगा। अगर हम अवसरपर नहीं चेते और इन प्रश्नोंको अवहेलनाकी दृष्टिसे देखते रहे, तो प्रश्न आगे चलकर बड़ा बीहड़ हो जायगा। चिर-निद्राके बाद जो प्रतिक्रिया नारी-समाजमें आई है, अगर उसमें उचित सुधार नहीं हुआ, तो पता नहीं वह प्रतिक्रिया हमें किस ओर ले जायगी?

खारीबावली, देहली ]

* हमारा तो खयाल है कि समाज-निर्माणमें स्त्रियोंका महत्व और भी अधिक है। —सं०

# नृत्य-नाट्य और रवीन्द्रनाथ

श्री मणिवर्द्धन

जब कोई जाति स्वकीयता भुलाकर विजातीय संस्कृतिका अनुकरण करके अपने वैशिष्ट्यको खो बैठती है, जब उसका रुचि-रस-बोध पंकिल होकर गतिहीन हो जाता है तथा जब उसकी विचारधारा और भाव-जगत्की दीनता जातिको असहाय कर देती है, तभी जातिके इस मृत्यु-क्षणमें महापुरुष जन्म ग्रहण करते हैं। भारतके ऐसे ही दुर्दिनमें जन्म ग्रहण करनेवालोंमें से रवीन्द्रनाथ एक थे। शिल्प, साहित्य, काव्य, दर्शन आदिमें उनके दानने भारतको जगत्के समक्ष उन्नत किया है।

किन्तु सिर्फ़ दर्शन, काव्य और साहित्य-क्षेत्रमें ही नहीं, नृत्य-कलाके क्षेत्रमें भी इस लुप्तप्राय कलाके पुनरुज्जीवन एवं पुनर्प्रचलनके लिए उन्होंने सर्वप्रथम सक्रिय
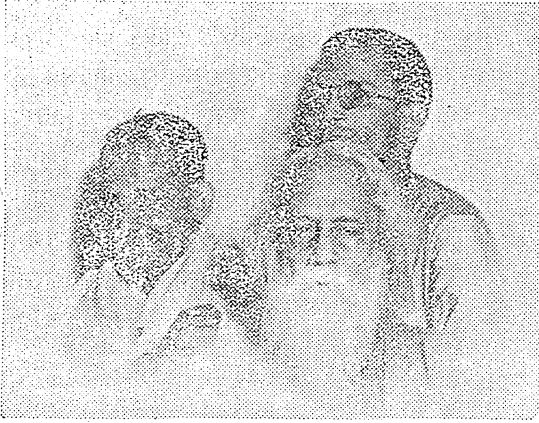
रवीन्द्रनाथ और नृत्यविद् श्री मणिवर्द्धन।

उद्योग किया। पर देशवासी इस सत्य-सुन्दरकी साधनामें लगे एकनिष्ठ साधकको जली-कटी सुनाने और उसका उपहास करनेसे बाज़ नहीं आए। मगर दृढ़व्रती रवीन्द्रनाथने इस बातको अच्छी तरह समझा कि सुन्दरके माहात्म्यको एक दिन देशवासी स्वीकार करेंगे ही। इसीसे इस सुन्दरके पुजारीकी सुन्दरकी साधना बीच ही में उस दिन नहीं रह गई। देशके लिए—सिर्फ़ देशके लिए ही नहीं, समग्र विश्वके नृत्य-जगत्के लिए—विधाताका यह आशीर्वाद ही था; किन्तु उसे पूर्ण रूपसे हृदयंगम करने लायक रुचि-रस-बोध हम लोगोंमें आज भी जाग्रत हुआ है या नहीं, इसमें सन्देह है।

प्राचीन भारतकी नृत्य-कला ईस्वी सन्से पहले कितनी उन्नत थी, इसका पता नाट्यशास्त्र देखनेसे चल जाता है। कितनी ही बाधाओं, युग-धर्मके घात-प्रतिघातों, देशके राजनीतिक और सामाजिक परिवर्त्तनोंके कारण प्राचीन नृत्य-कलाका अवशेष नर्त्तकियोंके शृंगार-रसात्मक अश्लील गानों, आँख मटकाने और कमर लचकाने-मात्रमें रह गया था। विभिन्न प्रदेशोंके रंगमंचों और यात्राओंके कारण जातीय-विजातीय नृत्यके सम्मिश्रणसे एक अद्भुत नृत्य पद्धति प्रचलित हो गई थी। फलस्वरूप देशके शिक्षितवर्ग नृत्य-कलाको अश्रद्धाकी नज़रसे देखने लगे थे।

सुन्दरके एकनिष्ठ पुजारी रवीन्द्रनाथका ही सर्वप्रथम नृत्य-कलाके इस मर्मस्पर्शी परिणामपर ध्यान गया। इसलिए देशवासियोंके व्यंग-विद्रूपकी उपेक्षा करके वे नृत्य-कलाके पुनरुद्धारके कार्यमें लग गए और शान्तिनिकेतनमें अपने छात्र-छात्राओं के बीच नृत्य-चर्चाकी व्यवस्थाके लिए तैयार हुए। उनकी अलौकिक प्रतिभा, कर्मोद्योग और अध्यवसायके स्पर्शसे मृतप्राय नृत्य-कलाके जागरणका प्रथम स्पन्दन अनुभव हुआ। पहले भद्र-विज्ञ लोगोंमें नृत्य-कलाके प्रति जो अश्रद्धा और अवज्ञा थी, वह दूर हो गई। आज भद्र परिवारके लड़के-लड़कियोंमें नृत्य-चर्चाका यह जो 'दुःसाहस' उत्पन्न हुआ है, उसके मूलमें क्या रवीन्द्रनाथका ज़बरदस्त हाथ नहीं है?

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम और बीसवीं शताब्दीके प्रथम भागमें प्राचीन भारतकी नृत्य-कला-पद्धति विभिन्न प्रान्तोंमें प्रायः विभिन्न रूपोंमें मुट्ठी भर निरक्षर लोगोंके बीच किसी प्रकार बची हुई थी। किन्तु प्राचीन नृत्य-पद्धति अपने सम्पूर्ण रूपमें कहीं भी नहीं बची थी। 'कथकलि' नृत्यने उस समय मुद्रा, अभिनयमें आंशिक रूपबन्ध और रीति-प्राधान्य लाभ किया था; दक्षिणी नृत्य अंगहारकरण, चारी, वर्त्तना आदिसे भरा हुआ था;

कत्थक-नृत्य ताल-लयके सूक्ष्म विभागके सुदीर्घ 'चक्रदार बोल' का समष्टि रूप था ; और मणिपुरी नृत्य गमक-मीड़-प्रधान अंग-संचालनकी पुनरावृत्ति-मात्र था। उसका कारण यह था कि नृत्य-चर्चा इस देशके सर्वसाधारणमें प्रचलित नहीं थी, बल्कि सिर्फ़ मुट्ठी भर नृत्य-रसिक लोगोंमें ही प्रचलित थी। इसीलिए नर्त्तकोंके प्रादेशिक धर्म, संस्कार और आबहवाके प्रभावसे नवरसोंमें से केवल दो-चार रस अभिव्यंजनामें ही वह सीमाबद्ध हो गया था। दक्षिणी नृत्य ब्राह्मण्य धर्मके देशका है, इसीसे वीर-रौद्र-रसमूलक अंग-संचालनने ही यहाँके नृत्यमें प्रधान स्थान ग्रहण किया था। उसी प्रकार मणिपुरी नृत्य वैष्णव प्रदेशका समझा जाता है, इसीलिए नर्तक शान्त-भक्ति-रस-व्यंजनाके सहायक अंग-संचालनसे नृत्य करता था। ऐसा ही कथकलि-नृत्य है। कत्थकोंने नृत्यमें विभेद और अपूर्णताके आ जानेसे भिन्न रूप धारण किया और वंश-परम्पराके संकीर्ण दायरेमें आबद्ध होनेसे नृत्य-कला स्पन्दनहीन, वैचित्र्यहीन और मृतप्राय हो चली। रवीन्द्रनाथने ही सर्वप्रथम शुद्ध नामावरणके संकीर्ण गतानुगतिक बद्ध आबहवासे नृत्य-कलाको सम्मिश्रण-नैपुण्यसे प्राणवान करके मुक्त किया।

रवीन्द्रनाथ ही सबसे पहले इस बातको समझ सके कि उपर्युक्त प्रत्येक प्रान्तीय नृत्य-पद्धतिमें जिस हेतु नव-रसोंकी पूर्ण व्यंजना संभव नहीं है, उसके कई कारण हैं। नृत्योंमें नवरसोंकी पूर्ण अभिव्यंजनाके लिए किसी एक विशेष पद्धतिका अनुसरण न करके उन्होंने रस-भाव-प्रकाशपूर्ण विभिन्न नृत्य पद्धतियोंके मिश्रणसे एक अपूर्व नृत्य-रीतिकी सृष्टि की। उन्होंने भारतमें दीर्घ कालसे चली आई हुई नृत्य-पद्धतिकी विशुद्धताके मोहमें अपने-आपको आबद्ध न रखकर नृत्य-पद्धतिकी शुद्धता और विशुद्धतासे बढ़कर नृत्यमें रसको प्रधानता दी। नृत्यमें रस-भावकी अभि-व्यंजनाकी पूर्णताके लिए यदि विभिन्न पद्धतियोंके सम्मिश्रणका प्रयोजन हो, तो वह दोषयुक्त नहीं है और नृत्य-सम्मिश्रण अपरिहार्य है, यह बात उन्होंने देशवासियोंको सिखाई। जैसे समष्टिगत शब्द-योजना जब कोई भाव प्रकट करती है, तभी शब्दोंकी सार्थकता है। उसी तरह इस प्रकारके विभिन्न नृत्य-कर्मोंकी सहायतासे कोई भाव पूर्ण रूपसे प्रकट किया जाय, तभी नृत्यके रूपबन्धकी सार्थकता है। नृत्यका उद्देश्य नृत्य-रीति-पद्धति-ज्ञानकी अविमिश्रताका प्रदर्शन मात्र ही नहीं, बल्कि रसकी सृष्टि करना है। नृत्य-कर्म, नृत्य-पद्धति और रीति तो रस-सृष्टिके वाहन-मात्र हैं।

रवीन्द्रनाथके मनमें सबसे पहले यह इच्छा उत्पन्न हुई कि नृत्यका पुनरुज्जीवन सर्वप्रथम होना चाहिए। बहुत दिनोंसे भूली हुई नृत्य-कलाके प्रति देशवासियोंकी श्रद्धा जाग्रत करनी होगी, और इसके लिए नृत्यको नए भावोंकी अभिव्यंजनासे युगोपयोगी बनाना होगा। जो नृत्यकला दीर्घ कालसे देशवासियोंकी अश्रद्धाके कारण क्षीणप्राण हो गई है, उसके पुनरुज्जीवनकी सम्भावना
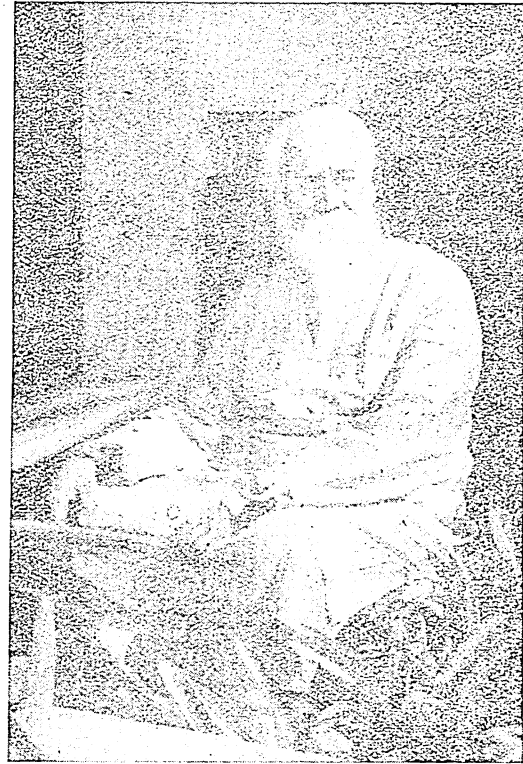
नृत्य-नाट्यके पुनरुद्धारक रवीन्द्रनाथ।

तभी है, जब कि अश्रद्धाके बदले देशवासी उसे श्रद्धा-भावसे देख सकें। अश्रद्धा और अवज्ञा रसानुभूतिके प्रधान शत्रु हैं।

इसी कारण रवीन्द्रनाथने नए नृत्य-नाट्यकी रचना की, नाट्योपयोगी नए गान लिखे और आधुनिक रुचिसम्मत व्यंजना तथा प्रकाश-भंगीसे उसे युग-रुचिके अनुकूल बनाया। इतना ही नहीं, भुलाई हुई नृत्य-कलाके प्रति देशवासियोंमें श्रद्धा जाग्रत करनेके लिए अपने कुटुम्बियोंके साथ वे स्वयं रंगमंचपर अवतीर्ण हुए, जिसे देशवासियोंने स्वप्नमें भी

नहीं सोचा था। पहले-पहल तो बहुतोंने उनका उपहास किया; परन्तु रवीन्द्रनाथने उसपर कोई ध्यान ही नहीं दिया। वे जानते थे कि सुन्दरके माहात्म्यको एक दिन देशवासी स्वीकार करेंगे ही—सुन्दरकी साधनामें हीनताका कोई स्थान नहीं। आज उसी सत्य-सुन्दरके पुजारीकी ऐकान्तिक साधनाके बलपर ही देशवासियोंने अपनी भूली हुई सम्पत्ति फिरसे पाई है। कितने युगोंके सुकृतिक फलसे बंगालमें सत्य-सुन्दरके इस साधकका आविर्भाव हुआ था, कौन जाने! रवीन्द्रनाथ जब स्वयं नृत्याभिनयकी भूमिकामें दूसरे अभिनेताओंके समान ही अपना अंग-संचालन करते हुए उतरते, तब उनकी उम्र साठकी सीमा पार कर चुकी थी। इस उम्रमें आम तौरसे यहाँके लोग शिथिल-अंग हो जाते हैं, उनके अंग-प्रत्यंगमें वार्द्धक्यकी शिथिलता आ जाती है। मगर इस उम्रमें भी उन्होंने कठिन नृत्यकी भूमिका तकमें कार्य किया। ऐसा वे इसी आशासे करते थे कि आत्म-विस्मृत और आत्म-वंचित देशवासी अपनी इस भूली हुई कला-सम्पत्तिको फिरसे प्राप्त कर सकें। वे अपने प्राणसे भी अधिक देशको प्यार करते थे। बाहरी आडम्बरसे प्रभावित देशवासियोंकी भावना और रुचि-रसकी दीनताने ही उन्हें असहाय कर रखा था। पर क्या इसीसे उनके मर्मको बराबर धक्का लगता था? क्या इसी कारण उन्होंने देशवासियोंमें रुचि-रस-बोध जगानेके लिए लोगोंके व्यंग-विद्रूपकी अपेक्षा की थी? उनकी इस रस-सृष्टिको किसी-किसीने अश्रद्धाकी नज़रसे देखा; पर वे तो सारे देशसे प्रेम करते थे।

इस प्रसंगमें एक घटनाका उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। कलकत्तेके एक रंगमंचपर कविगुरु अपने कुटुम्बियों और छात्र-छात्राओंके साथ किसी एक नृत्याभिनयमें अवतीर्ण हुए। अगणित दर्शक-मंडलीके बीच हमारे एक संभ्रान्त मित्रने अभिनय देखते-देखते बंगीय रंगमंचके एक प्रसिद्ध अभिनेतासे प्रश्न किया—'कैसा लगता है?' अभिनयकी प्रशंसा करते हुए अभिनेताने कहा—'इस अभिनयमें पूर्ण रूपसे अभिव्यंजना इसलिए सम्भव हुई है कि कविगुरु स्वयं इसकी परिचालना कर रहे हैं और भद्र परिवारकी सुशिक्षिता लड़कियोंका सहयोग उन्हें प्राप्त हो सका है। साथ ही इसीलिए भी वह सम्भव हुई है कि कविगुरुने स्वयं भी अभिनय किया है। रंगमंचपर भद्र-परिवारकी सुशिक्षिता महिलाओंको लाना हम लोगोंके लिए दुराशा ही नहीं, दुःसाहस भी है। हम लोगोंके लिए प्रतिदिन इस प्रकारकी कल्पना करना पागलपन ही कहा जायगा। यही नहीं, हम लोगोंके साथ रंगमंचपर उतरनेपर इनकी भद्रताको अक्षुण्ण रखना भी सम्भव न होगा। रवीन्द्रनाथ स्वयं इसकी भूमिकामें उतरे हैं, इसीलिए लोग कोई विरुद्ध आचरण नहीं कर रहे, नहीं तो...। रवीन्द्रनाथ उनके लिए एक तरहसे कवचके सदृश हैं।'
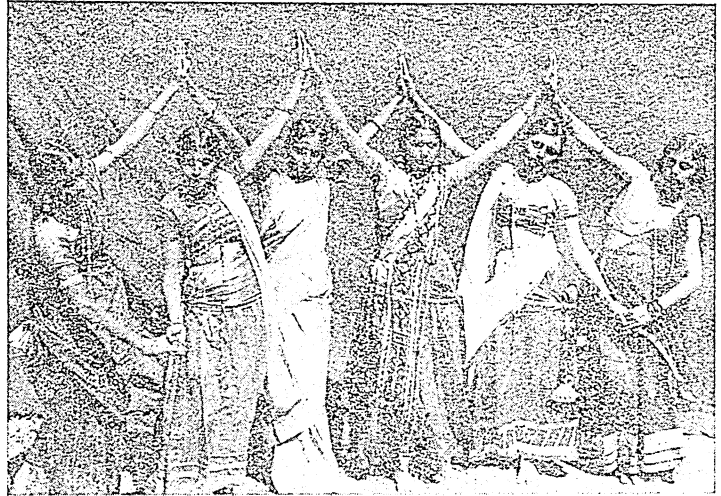
कुलीन एवं सुशिक्षिता युवतियोंके सम्मिलित नृत्यका एक दृश्य।

इससे स्पष्ट है कि रवीन्द्रनाथ स्वयं भलेघरोंके लड़के-लड़कियोंको लेकर रंगमंचपर उतरते थे, इसीलिए सामाजिक दृष्टिसे इसे ठीक न समझनेवालोंने भी उस नृत्यपर कोई आपत्ति नहीं की। दीर्घ कालसे उपेक्षित नृत्यके प्रति लोगोंमें सम्मान और श्रद्धाके भाव जाग्रत हुए। भले-घरोंकी लड़कियोंमें नृत्य-चर्चा शुरू हुई। बहुत बड़े रक्षणशील अभिभावक भी रवीन्द्रनाथके प्रति अत्यधिक श्रद्धाके कारण उनके द्वारा प्रवर्तित नृत्य-चर्चाकी ओर झुके। सर्वसाधारणके बीच भारतीय नृत्यके पुनर्जागरणका इतिहास आरम्भ हुआ। उन्होंने ही सर्वप्रथम उसके प्रति लोगोंमें श्रद्धाके भाव उत्पन्न किए। उसीके आधारपर

दूसरे भद्र अभिनेताओंने नृत्यमें भाग लेना शुरू किया। कवीन्द्र रवीन्द्रके सम्पर्कसे भारतकी नृत्य-कला सिर्फ़ प्राणवान् ही नहीं हुई है, बल्कि वह धन्य और पूर्ण भी हुई है।

विश्वके नाट्य-भाण्डारमें रवीन्द्रनाथने अतुलनीय दान दिया है, इस प्रसंगमें सर्वप्रथम उनके नृत्य-नाट्यका उल्लेख करना होगा। शिल्पी कविकी एकान्तिक चेष्टासे नृत्य-नाट्यसे आत्म-विस्मृत देशवासी पहले पहल यह समझ सके कि नृत्यकी देह-रेखासे नृत्यके भाव, रूप, रस और अपरूप अभिव्यंजना व्यक्त हो सकते हैं। तब रवीन्द्रनाथके समयमें या उनसे पूर्व भारतके नृत्य-नाट्यका अस्तित्व ही नहीं था, ऐसी बात नहीं। नाट्यशास्त्रके युगमें (२०० ई० पूर्व) नृत्य-नाट्यका पूर्ण विकास हो चुका था, जिसकी आंशिक रीति-पद्धति दक्षिण-भारतमें—विशेषतः कथकलि नृत्यके आहार्य-अभिनयके आडम्बरमें ही सुरक्षित थी। उसकी चर्चा मुट्ठीभर नृत्य-रसिकोंमें ही सीमित थी। इसके अतिरिक्त मणिपुर (आसाम) के मन्दिरोंमें एक विशेष राजाश्रित सम्प्रदाय द्वारा होनेवाली कृष्ण-लीलाओंमें भी इसका प्रचलन था। यद्यपि कत्थकोंका कहना है कि तब कत्थक और नृत्याभिनय भी थे; मगर एक ही अभिनेता राधा-कृष्णकी भूमिकामें काम करके रूप-व्यंजना प्रदर्शित करता था, इसलिए उसे नृत्य-नाट्यका पर्यायवाची कहना युक्तिसंगत नहीं। उस समय कत्थकोंका यह अभिनय हम लोग तवायफ़ोंके भाव-प्रदर्शनमें ही देखते थे। किन्तु उपर्युक्त सभी स्थानोंमें नृत्यका प्रचार प्रायः अशिक्षित नटोंमें ही था, इसी कारण उसमें युगोपयोगी सुरुचिपूर्ण भाव-प्रदर्शन और रूप-रस-सृष्टिका अभाव था। नृत्यके साथ साथ गाए जानेवाले गाने भी भाव-अभिव्यंजनाकी अपूर्णताके कारण थे। कत्थक जब नृत्य करता था, तो उसका ध्यान 'लहरे'के साथ 'सम'पर आनेकी सुविधापर अधिक रहता था। उस समय कथकलि नृत्य कर्णाटक राज्यकी भाव-संपदासे सम्बन्धित न होकर 'श्लोकम् पदम्' के अनुरूप होनेकी ही चेष्टा करता था। मणिपुरके नृत्य-नाट्यमें भी इसका व्यक्तिक्रम नहीं हुआ। उसमें नए भाव लानेकी कोई कोशिश नहीं की जाती थी, न चेहरे पर ही कोई अभिव्यंजना होती थी। कारण, मंदिरमें भक्ति-प्रधान सात्विक नृत्यका विधान था और नृत्यके साथ गानेवाले गानोंके नामपर कीर्त्तन ही प्रचलित थे। जब भारतकी नृत्य-कला अपनी परम्पराके संकीर्ण दायरेमें मरणासन्न अवस्थामें थी, रवीन्द्रनाथने उसे नए सिरेसे प्राणवान् बनाया। उन्होंने एकके बाद एक नृत्य-नाट्यकी सृष्टि की और स्वयं विश्वभारतीके छात्र-छात्राओंके साथ रंगमंचपर उतरे। जिस मणिपुरी कथकलि नृत्यको देखकर लोगोंके चित्तमें एक तरहकी खिन्नता पैदा होती थी, उसी मणिपुरी कथकलि नृत्यकी रीति-पद्धतिमें प्रयोग-नैपुण्य, अपनापन और नवीनता लाकर रवीन्द्रनाथने उसे देशवासियोंके सामने उपस्थित किया है।

नृत्य-नाट्यके एक विशिष्ट अभिनयका दृश्य।

नृत्य-निपुणता, संगीत सुर-योजना और प्रकाश-भंगीकी चतुराईमें रवीन्द्रनाथ द्वारा रचित नृत्य-नाट्य संसारके नाट्य-जगत्‌में श्रेष्ठ हैं, ऐसा कहना असंगत न होगा। उन्होंने ऐसे संगीतकी रचना की, जो नृत्यके भावोंको अच्छी तरह प्रकट कर सके। उन्होंने सुरकी योजना भी ऐसी बनाई, जो भाव-रसानुयायी हो। फलस्वरूप नृत्य-नाट्यके प्रत्येक नृत्य-कर्म, आंगिक अभिनय और सुरकी

प्रत्येक मुर्च्छना ऐसी सामंजस्य और अर्थपूर्ण हुई है, जिससे भारतका लुप्तगौरव नृत्य आज संसारके नाट्य-जगत्के समकक्ष हो गया है। अभी तक हम लोग नृत्य नाट्यके आदर्श रूपमें रूसके 'बैले' (Ballet) नृत्यकी ही बात सोचा करते थे। हम लोग कलकत्ते के सिनेमाघरोंमें 'बैले'-नर्त्तक-सम्प्रदायके 'ला सिलफाइडिच' मैजिक फ्लूट, इजिप्शियन 'बैले', कार्निवाल आदि नृत्य नाट्य देखकर उत्फुल्ल और परितृप्त चित्तसे उनकी श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए घर लौटते हैं; पर अपने आनन्दके आवेगको ज़रा रोककर हम

सूर्य-देवताके रूपमें शुभेन्द्र (सरायकेला-नृत्य)।

यह बात सोचनेकी परवाह नहीं करते कि उनकी सफलताकी पूर्णताकी जड़में सामंजस्यपूर्ण यंत्र-संगीतका हाथ है। तब हमारे यहाँ मृदंग, 'चण्डाई', सारंगी और हारमोनियमके साथ नृत्य होता था। रवीन्द्रनाथने सबसे पहले इस बातको समझा और देशवासियोंको समझाया कि नृत्यकी भाव-संपदकी पूर्ण अभिव्यंजनाके लिए संगीतको नृत्यके अनुरूप होना अनिवार्य है। इसीसे उन्होंने स्वयं नृत्य-संगीतकी रचना करके उसे सुरमें बाँधा, जिससे नट आसानीसे अपने अंग-संचालन द्वारा उसके भावोंको प्रकट कर सकता है। उसमें ऐसे भाव, भाषा, सुर और रसका आना इसीलिए संभव हुआ कि रवीन्द्रनाथने अपनी प्रतिभा और कल्पना-शक्तिकी सहायता द्वारा स्वयं उसकी परिचालना की। वे कवि, सुरकार और नृत्य-रसिक थे। इसीसे उनकी सृष्टि नाट्य-जगत्में आश्चर्यजनक वस्तु बन पड़ी—यहाँ तक कि रूसी 'बैले'से भी किसी-किसी विषयमें वह बढ़ गई। रूसी 'बैले'-नृत्य सुरमें बढ़ा हुआ था, नहीं तो नृत्य-रूप-रीति और रूपबन्धकी अभिव्यंजनामें वह भारतीय नृत्य-रूपबन्धकी तुलनामें टिक नहीं सकता। (बहुतोंका कहना है कि रूसी 'बैले'के वर्तमान रूपबन्धोंमें से कितनों ही का उद्भव भारतीय नृत्य रीतिके समन्वयसे हुआ है। किसी समय यह भारतीय रीति मध्य-एशिया पहुँची। वहाँसे वह बोख़ारा और ख़ीवा पहुँची, और फिर रूसमें जाकर संगठनकी विचित्रता, नवीनता और सम्मिश्रणके कारण उसने वर्तमान रूसी नृत्यका रूप ग्रहण कर लिया।) कारण, रूसी 'बैले' में नृत्य-कर्म आसान होनेपर भी अर्थहीन है, अभिव्यंजना-विहीन है। भारतीय नृत्य कर्ममें सामान्य अंगुली संचालनकी 'मुद्रा' और भ्रू कर्म तथा ग्रीवा-कर्मसे चरित्रका जैसा भाव प्रदर्शित किया जाता है, वैसा पाश्चात्य नृत्य कलामें कोई नृत्य कर्म नहीं है। उन देशोंके देवदूत रंगमंचपर प्रवेश करके 'पिरोयेट' कर खड़े हो जाते हैं, जो देखनेमें हमें भले नहीं लगते। हम देवदूतकी गतिमें स्निग्धता और धीर-मन्थर भाव नहीं देख पाते और फिर वही एक 'पिरोयेट' रूपबन्ध देखते हैं शैतान और साधारण मानव-चरित्रकी अभिव्यंजनामें भी। हमारे देशमें मानव-गति, देव गति और असुर-गतिके सम्बन्धमें चरित्रानुयायी युक्ति-संगत कठोर विधान थे। यहाँ तक कि चरित्रानुयायी नृत्यानुषंगिक संगीत-ताल-लय आदिके भी विधान थे। रवीन्द्रनाथने भारतीय नृत्य-कर्ममें प्रकाशभंगी अभिव्यंजनाकी सृष्टि की। जिस मणिपुरी नृत्यमें मुख मंडलपर व्यंजनाका कोई भाव नहीं होता था, वही मणिपुरी नृत्य प्रयोग और मिश्रणके नैपुण्यसे अपूर्व प्राणवन्त होकर नृत्य-नाट्यकी एक बहुमूल्य संपद हो गया है। भारतीय नृत्य-नाट्यमें संगीतके अभावसे उसका पूर्ण विकास असम्भव था, रवीन्द्र-संगीतने उस अभावको दूर कर दिया है। नाट्यके चरित्र-संलापने अपने भाव, भाषा, सुर, गीत आदिसे एक अनुपम वातावरणकी सृष्टि की। यहाँ तक कि अंगराग,

रूप-सज्जा, रंगमंचके दृश्यपट आदिके स्थानमें विशेष प्रतीकात्मक एकमात्र स्वस्तिक-चिह्न ही प्राचीन भारतकी संस्कृतिके रूपमें प्रदर्शित किया जाने लगा। इस तरह रवीन्द्र-प्रवर्तित नृत्य अनवद्य हो उठा। इतना होनेपर भी बहुत-से लोग कहते हैं कि रवीन्द्र-प्रवर्तित नृत्य और चाहे जो कुछ हो, 'क्लासिक' नहीं है। 'क्लासिक'से उनका क्या तात्पर्य है, वे ही जानें। शायद उनके मतसे 'क्लासिक'का तात्पर्य है कष्टसाध्य नृत्य-कर्मकी समष्टि, भाव-सम्पदहीन एक ही तरहकी हस्त-पद संचालनकी क्रिया और पसीनेसे तर नर्त्तकके 'सम'पर आनेके प्रयासमें 'चक्रदार बोल'के अन्तमें सामर्थ्यके अभावमें श्रीहीन मुखभंगी (यहाँ मैं उन्हीं लोगोंकी बात कहना चाहता हूँ, जो एकमात्र कत्थक नृत्यको ही 'क्लासिक' कहते हैं।)—जिसका रसास्वादन जन-साधारण करें या नहीं। उनके मतसे रवीन्द्र नृत्यके प्रभावके ही कारण आज 'क्लासिक' नृत्यका नाम धुँधला पड़ गया है। वे मस्त पंडित होते हैं, पर रसिक नहीं। रवीन्द्र-प्रवर्तित नृत्यसे जनताका चित्त मुग्ध और परितृप्त होता है, और उसमें मन व नेत्रके लिए काफ़ी मात्रामें ख़ुराक रहती है। यह सब कुछ होते हुए भी उनके मतसे रवीन्द्र-प्रवर्तित नृत्य 'क्लासिक' हो या न हो, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।

रवीन्द्रनाथका नृत्य-नाट्य सिर्फ़ सामयिक आनन्द देनेके लिए ही नहीं रचा गया है। उन्होंने रस और आनन्दके साथ श्लेष और विद्रूपके निर्मम आघातसे समाजकी त्रुटियोंको लोगोंकी आँखोंके सामने ला उपस्थित किया है। काव्यमें सिर्फ़ 'हिंगटिंग छट'के तर्ज़की कविताएँ लिखकर ही वे चुप नहीं बैठे, बल्कि 'तासेर देश' जैसे नृत्य-नाट्यकी भी रचना की। पर उनके विरोधी बराबर उससे हमारी संस्कृतिके नष्ट-भ्रष्ट होनेका शोर मचाते रहे। ऐसा करके वे किसका विद्रूप करते थे, इसे देशवासी अच्छी तरह जानते हैं। किन्तु आज भी हमारी आँखोंको ऐसा मालूम होता है कि पानके पंजे, हुकुमके इक्के और ईंटके ग़ुलामको शृंखलाबद्ध रखकर भावावेगसे नृत्यमें आनन्द-प्रकाशकी जो चेष्टा होती थी, उसे देखकर हम लोगोंको हास्योद्रेक होता था। यह विद्रूप क्या हम लोगोंपर लागू नहीं होता? हम लोग भी तो शृंखलाको बचाए रखनेके लिए अनजानमें ही संस्कारबद्ध होनेसे बहुत कुछ किया करते हैं, जो सचमुच ही हास्यास्पद है। रवीन्द्रनाथने अपनी नृत्य रचनाकी अभिव्यंजनासे हम लोगोंमें हास्योद्रेक किया था। जब मैं सोचता हूँ, तो ऐसा जान पड़ता है कि हम लोगोंकी त्रुटि और अहं ज्ञान आदि ही हम लोगोंके हास्योद्रेकके कारण थे, जिनके लिए हम लज्जित भी हुए हैं। देशवासियोंको वे हृदयसे प्यार करते थे, इसीलिए उन्होंने नृत्य-कलाके बहाने भी उन्हें शिक्षा ही दी। आज भी पानके पंजे, हुकुमके इक्के और ईंटके ग़ुलामके सीधे-सीधे कार्याकार्य और हाथ-पाँवके अद्भुत संचालनकी स्मृतिसे हम लोगोंको हँसी आ जाती है। यह

कार्त्तिकेयके रूपमें शुभेन्द्र (सरायकेला-नृत्य)।

अपूर्व रूप-बन्धकी सृष्टि कथकलि आदि नृत्योंमें नहीं मिल सकती—यह तो कविगुरुके मनकी गढ़ी हुई थी। इस प्रकारके विशेष हस्त-पदके द्वारा जो रूप व्यक्त होता है, क्या वह विशुद्ध घरानेके नृत्यकी रीति-अभिव्यंजनामें सम्भव होता? नृत्यके सम्मिश्रणके सम्बन्धमें भी यह कहा जा सकता है कि कविगुरुके रस-बोधकी सूक्ष्मताके लिए उनका मिश्रण हम लोगोंको मन्त्र-मुग्ध कर देता है, और कब किस नृत्य-रीतिका सम्मिश्रण कहाँ हुआ, इसे सोचनेका जैसे हम लोगोंको अवकाश ही नहीं मिलता। चण्डालिका

नृत्य-नाट्यमें उन्होंने काण्डी-नृत्यका परिवेशन किया ; किन्तु मणिपुरी कथकलि-पद्धतिके साथ उसका ऐसा स्वाभाविक सामंजस्य हो गया कि कितने ही लोगोंकी आँखें उसे पकड़ भी नहीं सकीं। उन्होंने ठीक स्थानोंपर ही मिलावट की। नायिकाका मन जब बौद्ध-भिक्षु आनन्दको पानेके लिए उन्मुख था, उसी समय वशीकरण मन्त्रसे प्रभावित हो उसने आनन्दसे नृत्य किया ; किन्तु उसकी

नाविक-नृत्यमें शुभेन्द्र और केदार (सरायकेला-नृत्य)।

शरीर-रेखामें मनकी स्वार्थपरताके तामसिक भावकी अभिव्यंजना काण्डी-नृत्यकी देहभंगीसे उद्दाम भावसे फूट पड़ती है। इस प्रकारका यथास्थान प्रयोग दूसरे आदमी द्वारा सम्भव न होता। 'शापमोचन'-नृत्यके ताल-भंगके अपराधमें इन्द्रने यक्षके प्रति अभिशाप देनेके समय हाथका दृढ़ व्यंजनात्मक निर्देश किया था। जब यह नृत्याभिनय प्रदर्शित किया जा रहा था, तो मेरे एक सम्भ्रान्त मित्र किसी विदेशीको इस अभिनयका मर्मार्थ समझाने लगे। उसने कहा कि बँगला भाषा न जाननेपर भी मैंने संगीत और अभिनयके मर्मार्थसे नृत्याभिनयको अच्छी तरह समझ लिया है। इससे क्या यह नहीं समझा जा सकता कि रवीन्द्रनाथ नृत्य-नाट्यका प्रकाश प्रयोग नैपुण्यके कारण कितने व्यापक ढंगसे कर सकते थे ? यही बात रवीन्द्रनाथके अन्यान्य प्रयोजनोंके विषयमें भी कही जा सकती है। उनकी प्रयोग-निपुणता ही नहीं, उनकी सिखानेकी क्षमता भी कितनी थी, उसकी हम लोग कल्पना नहीं कर सकते। इस प्रसंगमें एक घटनाके उल्लेखसे शिक्षा-गुरु रवीन्द्रनाथकी शिक्षा-धाराका नैपुण्य अनुभव किया जा सकता है। जिस दिन मैंने अपने जापानी बन्धुको विश्वभारतीके छात्र-छात्राओंके साथ नृत्याभिनयके कृतित्वके साथ नृत्याभिनय करते देखा, तो मैं आश्चर्य-चकित रह गया ! उत्सुकतापूर्वक मैंने उससे प्रश्न किया कि इतने कम समयमें इतना सहज नृत्य करना उसने कैसे सीख लिया है, तो उसने बड़े गम्भीर भावसे उत्तर दिया—"Gurudev directed me." ( गुरुदेवने मुझे सिखाया है।) कुछ दिन पहले मैंने अपने इस जापानी मित्रको भारतीय नृत्य सीखनेकी कोशिश करते देखा, तो ख़याल आया कि चूँकि अत्यधिक पाश्चात्य नृत्य-अभ्यासके फलस्वरूप उसके शरीरमें नमनीयताका अभाव है, और चाहे जो कुछ भी हो, पर भारतीय नृत्य सीख सकना उसके लिए कदापि सम्भव न होगा। किन्तु उस दिन मैंने विस्मित होकर देखा—गुरुदेव असम्भवको भी कैसे सम्भव कर सकते थे !

बहुत दिन पहले जब मैं पहले-पहल रवीन्द्रनाथको प्रणाम करनेके लिए गया था, तो उन्होंने स्मित हास्यसे कहा था—'बोलपुर आना।' जब मैं बोलपुर जाकर उनके सामने खड़ा हुआ, तो वे किसी चीज़की आलोचना कर रहे थे ; पर मुझे देखते ही उन्होंने नृत्यके विषयमें आलोचना शुरू कर दी। उन्होंने कितनी ही बातें सुनाईं। मैंने सोचा था कि उनसे कितने ही विषयोंपर विचार-विनिमय करूँगा ; पर कुछ पूछनेसे पूर्व ही उन्होंने सब-कुछ कहना आरम्भ कर दिया। मैं सब-कुछ श्रद्धा-भावसे सुनता रहा। नाना देशोंके नृत्योंके विषयमें तरह-तरहकी बातें सुनीं, जो अपने जीवनमें मैं शायद ही कभी सुन पाता। जब मैं वहाँसे वापस लौट रहा था, तो सोचा, 'क्या वे सब कुछ जानते हैं ?' उनका सान्निध्य और आन्तरिक उत्साह पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ।

महिषासुर-वधका एक दृश्य, जिसमें चण्डी अपने बर्छोंसे राक्षसका वध कर रही है।

हीरेन्द्र द्वारा नृत्य-नाट्यके रूपमें एक शिकारीका अभिनय ( सरायकेला-नृत्य )। [ देखिए पृष्ठ २३४-४०
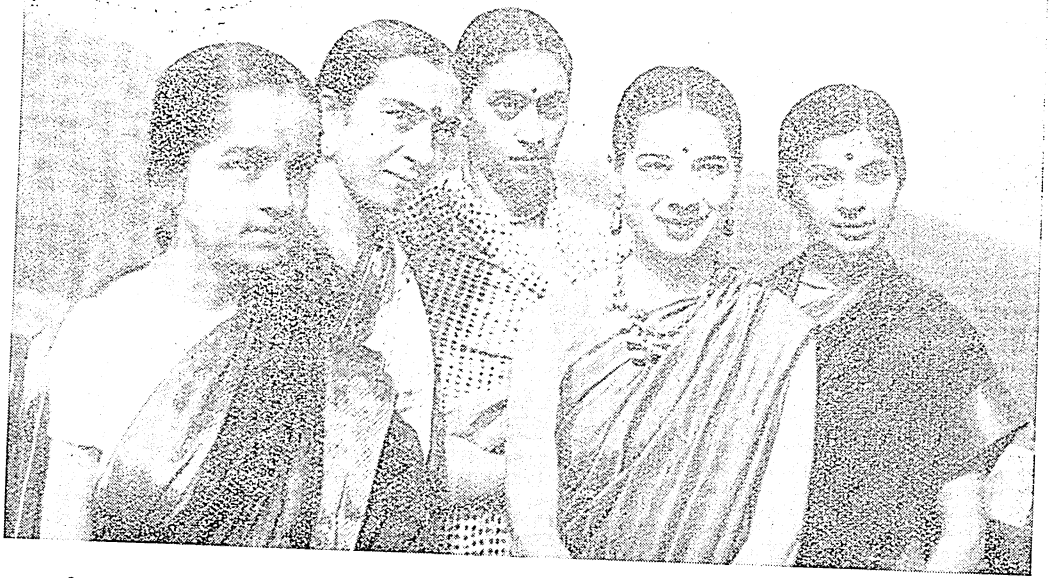
श्री उदयशंकरके संस्कृति-केन्द्र (अलमोड़ा) में नृत्य-कला सीखनेवाली कुछ कुलीन युवतियाँ—सिमकी, ज़ोहरा, अमला, लक्ष्मी आदि।
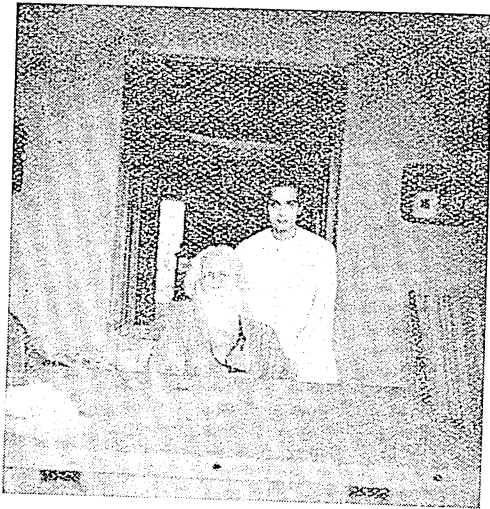
नृत्य-नाट्यके पुनरुद्धारक रवीन्द्रनाथके साथ प्रसिद्ध नृत्यविद श्री उदयशंकर।
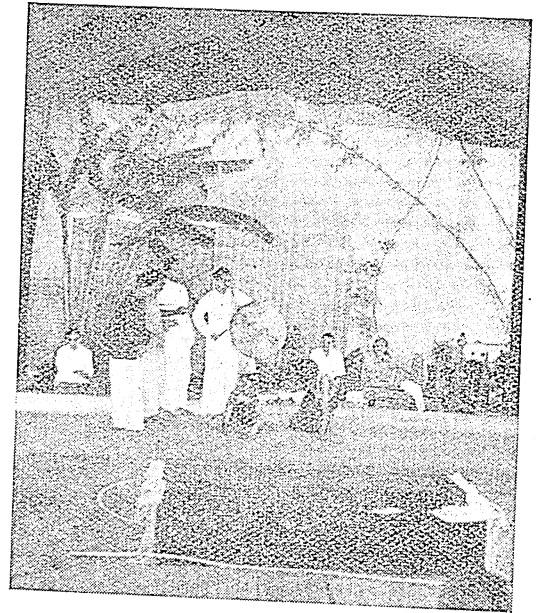
संस्कृतिके-केन्द्र, अलमोड़ाकी नृत्यशालाका एक दृश्य।

# अनबन

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा

चाँदकी चाँदनी तो अवश्य चारों ओर फैल रही थी ; पर हवाका नामोनिशान तक न था। इसलिए शोभाका एक वर्षीय बच्चा बार-बार बिलबिला उठता था। शोभा घड़ी-घड़ी जाग पड़ती और उसे सुलानेका प्रयत्न करती, पर सब व्यर्थ था। गर्मी उसकी एक न चलने देती थी। कोई दो बजेके लगभग वह चारपाईसे उठ बैठी। बच्चेको गोदमें लेकर कुछ देर इधर-उधर टहलती रही और फिर रुक गई। उसकी आँखोंमें नींद भर रही थी। पासकी चारपाईपर उसका पति अतुल मज़ेमें सो रहा था। वह आध क्षण उसकी ओर देखती रही, कुछ सोचती रही और फिर बालकको उसके ऊपर पटक दिया।

अतुलने चौंककर आँखें खोलीं और खीझकर बोला—'इसका क्या मतलब ?'

'किसका ?'—शोभाके नेत्रोंमें चुनौती थी।

'बच्चेको मेरे ऊपर क्यों पटका है ?'

'इसलिए कि अब उसे तुम सँभालो। थोड़ी देर मैं भी तो सो लूँ।'

'मैं सँभालूँ ?'—रोते हुए बच्चेको बेपरवाहीसे एक ओर हटाते हुए अतुलने आँखें फाड़कर पत्नीकी ओर देखा—'अच्छा, यह बात है ! दिन भर दफ़्तरमें पिसूँ और रातको तेरे बच्चोंका टहलुआ बनूँ। ख़ूब !'

'तो क्या मैं ही दिन-रातकी नौकरानी बननेके लिए हूँ।' शोभाकी वाणी खड्गकी धार-सी तीखी हो चली—'सारा दिन चौकेमें जलती रहूँ, झाड़ू लेकर घर भरकी ख़ाक छानती रहूँ और रात जागकर काटूँ। ख़ूब !'

'जिसका जो काम है, वह उसे करना ही होगा।' अतुलने कटु स्वरमें कहा।

'मेरा जो काम है, मैं जानती हूँ। आख़िर यह बच्चा तुम्हारा भी तो है। तुम्हें भी रातका आधा समय इसे सँभालना होगा।'

'मुझे सँभालना होगा ?'

'हाँ।'—शोभाकी गर्दन ऐंठ गई।

'देखो, होशसे बातें करो।'—अतुलकी वाणी थिरकने लगी।

'मैं बेहोश नहीं हूँ।'—शोभा विषसे बुझे हुए स्वरमें बोली—'मेरे ऊपर रोब न गाँठो। जबसे तुम्हारे घरमें आई हूँ, एक दिनका चैन नहीं। मैं कोई अपढ़ गँवार नहीं हूँ। मैंने भी तुम्हारी ही तरह उच्च शिक्षा पाई है। मेरे पिताजीके घरमें आज भी मोटरें और नौकर हैं। मेरे साथवाली सभी राज कर रही हैं, और एक मैं अभागी हूँ कि सारा दिन जानवरोंकी तरह परिश्रम करनेपर भी तुम्हारी घड़कियाँ ही सहनी पड़ती हैं।'

'तुम अभागी हो ? तुम्हारे यहाँ नौकर नहीं ?'

'हाँ, अभागी नहीं तो और क्या ?'—शोभा क्रुद्ध सिंहनीकी भाँति गरजी—'तुम्हारे जैसे मनुष्यके साथ बँधकर कौन अपने भाग्यको नहीं रोएगा और उस छोकरेको तुम नौकर कहते हो ?'

अतुल क्रोधसे पागल हो उठा। उसके ओठ काँपने लगे। नेत्र अंगारेकी तरह लाल हो गए। हाथोंकी मुट्ठियाँ बँध-सी गईं। हत्यारी आँखोंसे पत्नीकी ओर देखता हुआ बोला—'जी तो चाहता है, तुम्हारी यह ज़बान खींच लूँ।'

यह कहकर उसने तेज़ीसे अपना हाथ तकिएके नीचे बढ़ाया, मानो वहाँसे कोई ज़बान खींचनेवाला अस्त्र निकालने जा रहा हो। शोभा उत्सुकतासे तकिएके नीचे घुसे हाथके बाहर आनेकी प्रतीक्षा करने लगी। कोई आधे मिनिटके अनन्तर हाथ बाहर निकल आया। वह कोई अस्त्र नहीं, बल्कि सिगरेट-केस और दियासलाईकी डिबिया पकड़े हुए था। कुछ देर अधिक शायद इसलिए लग गई कि दियासलाईकी डिबिया इधर-उधर हो गई थी।

शोभा खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसकी हँसी व्यंग्यसे ओतप्रोत थी ; किन्तु अतुलने इसकी ज़रा भी परवाह नहीं की। एक सिगरेट निकालकर उसने सुलगाया और फिर उसके कश खींचते हुए स्वप्निल नेत्रोंसे अपनी पत्नीकी ओर देखने और चारपाईपर पड़े चिल्लाते हुए बच्चेको थपथपाने लगा।

शोभाने कुछ सेकेंड दार्शनिककी-सी दृष्टिसे अपने पतिकी ओर देखा और संतोषकी एक साँस लेकर अपनी चारपाईपर जा लेटी।

- २ -

पासके पीपलके वृक्ष-निवासी कुछ पक्षियोंके झगड़ेने अतुलकी अर्ध-सुषुप्तिको तोड़कर उसे चैतन्य कर दिया। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। शोभा उठकर जा चुकी थी; किन्तु बालक अतुलकी चारपाईपर मज़ेमें सो रहा था। एक सिगरेट सुलगाकर उसके कश खींचते हुए अतुल छतपर टहलने लगा। रातकी घटना एक कटु स्वप्नकी भाँति उसके मस्तिष्कमें हलचल मचाने लगी। आज बच्चेको उसकी चारपाईपर पटका गया है, कल शायद उसके हाथमें झाड़ू पकड़वाकर कूड़ा-कर्कट साफ़ करने तथा रसोईघरमें चूल्हा फूँकनेकी आज्ञा होगी। नहीं, उससे यह सब कुछ न हो सकेगा। उसके शरीरका एक-एक अंग इस स्थितिके विपरीत विद्रोह कर उठा। धुएँके बादल उड़ाता हुआ वह टहलने लगा और सोचने लगा और सोचता हुआ टलने लगा। इस तरह लगभग पन्द्रह मिनिट बीत गए। सहसा उसके नेत्र चमक उठे। ऐसे प्रतीत होता था, मानो उसकी उलझी हुई गुत्थी सुलझ गई हो।

वह तेज़ीसे नीचेकी ओर भागा और उड़ता हुआ बैठनेवाले कमरेमें जा पहुँचा। शोभा एक सोफ़ेपर अधलेटी-सी पड़ी थी। हाथमें एक उपन्यास था, जिसे पढ़नेमें वह तन्मय थी। उसने पुस्तकसे दृष्टि हटाकर पतिकी ओर देखा। एकाएक उसके ओठोंपर हलकी-सी एक मुसकान नाच उठी, जिसमें विजय और दम्भ छिपाए भी न छिपते थे। मधुसे ओतप्रोत स्वरमें वह बोली—'जग गए हो?'

'हाँ,'—अपने ऊपर काबू पानेकी कोशिश करते हुए उसने जवाब दिया—'चायका क्या हाल है?'

'तुम्हारा नौकर तैयार कर रहा होगा। इस उपन्यासके कुछ पृष्ठ कल बच रहे थे, मैं उन्हें ही समाप्त करनेमें लगी थी।'

'तुम अपना स्थान जानती हो,'—अतुल दाँत पीसता हुआ बोला—'उपन्यास-जगत्में नहीं, बल्कि...।'

'रसोईघरमें है।'—शोभाने ओठोंको बल देकर अतुलका वाक्य समाप्त किया और तनकर बैठ गई।

'निःसन्देह।'—अतुलके स्वरमें दृढ़ता थी।

'मैं इस अर्द्ध-सत्यको माननेके लिए तैयार नहीं। मैं तुम्हारे साथ सहमत नहीं हो सकती।'

'इसीलिए'—अतुल शोभाके नेत्रोंको चीरता हुआ कहने लगा—'मैंने एक निश्चय किया है।'

'क्या?'—शोभा उत्सुक हो उठी।

'यही कि तुम और मैं इकट्ठे नहीं रह सकते।'

कुछ व्यंग्य और कुछ उपहास-मिश्रित स्वरमें शोभाने कहा—'तो तुम पाँवकी ठोकर लगाकर मुझे घरसे बाहर निकालना चाहते हो?'

'नहीं, यह अन्याय होगा।'

'तो क्या तुम स्वयं सब कुछ छोड़-छाड़कर चल देना चाहते हो?'

'नहीं, यह कायरता होगी।'

'फिर?'—शोभाकी वाणीसे व्यंग्य और उपहास छूमंतर हो गए। साँस रोककर वह पतिके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगी।

'मैं इस मकानको दो भागोंमें बाँटने जा रहा हूँ।' अतुलके स्वरकी गम्भीरता वातावरण तकमें फैल रही थी। 'एकमें तुम रहोगी और एकमें मैं।'

'और बच्चा?'

'वह तुम्हारे साथ रहेगा। मेरा नौकर मेरे साथ रहेगा। क्या तुम्हें यह स्वीकार है?'

'स्वीकार! यह क्रूर प्रस्ताव!' शोभाके हृदयमें मानो किसीने पैनी कटार चुभो दी हो। चार वर्षके वैवाहिक जीवनमें उसका पतिके साथ कई बार झगड़ा हुआ था; किन्तु बात बिगड़कर सदा बन जाती थी। उसका ख़याल था कि रातवाला झगड़ा भी दो-चार उल्टी-सीधी बातोंके गोरख-धंधेमें विलीन हो जायगा। वह यह न जानती थी कि उसको लेकर यह विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दी जायगी। उसके मनमें भावोंका एक बवंडर खड़ा हो गया। अब वह करे तो क्या करे? पतिके सम्मुख गिड़गिड़ानेसे तो वह भी रही। आख़िर उसका भी कुछ आत्माभिमान है। आँखोंमें उमड़ते हुए आँसुओंको रोकते हुए उसने शान्त सहज वाणीमें कहा—'हाँ, मुझे स्वीकार है।'

फिर उठकर तीरकी तरह कमरेसे बाहर चली गई।

- ३ -

इससे दो ही तीन रोज़ बाद मकान दो हिस्सोंमें बँट गया। एकमें अतुल अपने नौकरको लेकर रहने लगा और दूसरेमें अपने बच्चेको लेकर शोभा। शनैः-शनैः दोनोंके हृदयोंके बीच भी एक दीवार खिंच गई। हाँ, केवल एक बात

थी, जो इस दीवारको स्थायी रूप देनेसे बचाती चली आ रही थी। शोभा और उसके बच्चेके व्ययका भार अभी तक अतुल ही उठा रहा था। किन्तु शोभाकी यह स्थिति संतोषप्रद प्रतीत नहीं होती थी। पतिसे अलग होनेके दिनसे ही वह इस बन्धनसे भी मुक्त होनेके लिए छटपटा रही थी। कन्या-विद्यालयोंमें तो उसे जगह मिलती थी; पर उसे बच्चे पढ़ानेका काम पसन्द न था। तीन मास इसी भाँति बीत गए।

फिर उस नगरमें रेडियो-स्टेशनकी स्थापना हुई और अच्छी आवाज़की बदौलत शोभाकी वहाँ नियुक्ति हो गई।

शोभा अभी रेडियो-स्टेशनसे लौटी थी। उस दिन उसे पहले महीनेका वेतन मिला था। एक अद्भुत उल्लासके साथ वह उन सौ रुपएके नोटोंको बेपरवाहीसे अपने बच्चेके पास पलंगपर फेंककर उससे खेलने लगी। इतनेमें अतुलके नौकरने प्रवेश किया।

'क्यों?'

'साहबने चिट्ठी दी है।'—उसने लिफ़ाफ़ा जेबसे निकालकर शोभाकी ओर बढ़ा दिया।

उस पत्रमें क्या है, शोभा ख़ूब समझती थी। फिर भी हाथ बढ़ाकर उसने लिफ़ाफ़ा पकड़ लिया और उसे उतावलीसे खोल डाला। उसमें कुछ नोट थे और एक छोटा-सा पुर्ज़ा। 'इस महीनेका ख़र्च भेज रहा हूँ।'—पुर्ज़ेपर लिखा था।

शोभा कुछ देर उस काग़ज़के टुकड़ेकी ओर देखती रही, फिर उसके टुकड़े कर दिए। नोटोंको उसी लिफ़ाफ़ेमें डालकर लौटाने लगी, फिर रुक गई। निकट ही तिपाईपर नए लिफ़ाफ़े पड़े थे। उनमें से एक उठाकर बड़े ढंगसे उसमें नोट रखे और उसे बन्द कर दिया। जम्परके गलेसे लगी क़लमको खींचकर लिफ़ाफ़ेपर लिखा—'धन्यवाद-सहित वापस।'

'यह अपने साहबको दे देना।'—लिफ़ाफ़ा नौकरको पकड़ाती हुई वह बोली, फिर मुँह मोड़कर पलंगपर पड़े नोटोंको उठाकर अपने बच्चेके इर्द-गिर्द बिखरा दिया और मुसकराने लगी।

नौकर आध क्षण आँखें फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखता रहा, फिर चुपकेसे बाहर हो गया।

- ४ -

मकानकी छतपर अतुल एक आरामकुर्सीपर अध-लेटा-सा पड़ा था। सामने वृक्षसे छनकर चन्द्रमाकी कुछ रश्मियाँ उसे अर्द्ध-प्रकाशित कर रही थीं। कभी-कभी कहीं दूरसे किसी पक्षीका करुण स्वर भी सुनाई दे जाता था, जो अतुलके मस्तिष्कमें भावोंका एक तूफ़ान उत्पन्न कर देता था। क्या जाने उस पक्षीको क्या कष्ट है? कौन कह सकता है, उसकी वेदना शारीरिक है या मानसिक! अतुल कुर्सीसे उठ खड़ा हुआ। चाँदकी ओर एक बार देखा, फिर बेचैनीसे छतपर टहलने लगा।

इतनेमें लिफ़ाफ़ा हाथमें पकड़े हुए नौकरने प्रवेश किया।

'यह क्या है?'—लिफ़ाफ़ेकी ओर संकेत करते हुए अतुलने पूछा।

'बीबीजीने दिया है।'—नौकरने लिफ़ाफ़ा अतुलके हाथमें दे दिया।

उसने झटपट लिफ़ाफ़ा खोला। उस धुँधले प्रकाशमें भी उसे साफ़ दीख गया कि उसके नोट लौटा दिए गए हैं। उसने उछालकर वह लिफ़ाफ़ा पास रखी तिपाईपर फेंक दिया। शोभा द्वारा लिखित काग़ज़का टुकड़ा लिफ़ाफ़ेसे निकलकर उसके पाँवके पास आ गिरा। झुककर उसने उसे उठा लिया। जेबसे दियासलाई निकालकर उस पुर्ज़ेकी एक लाइनको पलक मारते ही पढ़ डाला और प्रकंपित ज्योतिकी रेखा द्वारा अपने-आपको राख बनाती हुई उस सलाईकी ओर महान गंभीर भावसे देखने लगा। क्या उसका जीवन भी समयसे पहले ही राखका ढेर बनने नहीं जा रहा था? क्या शोभा नहीं जल रही थी? अभी तक उन दोनोंको जो एक मकड़ीके जालेके तार-सा बारीक सूत्र एक दूसरेके साथ बाँधता चला आ रहा था, शोभाने उसे भी तोड़ दिया! अब?

कुर्सीकी पीठका सहारा लेकर वह झुककर खड़ा हो गया। कुछ ही दूरीपर दो जुगनू आपसमें उलझते, जगते, बुझते चले जा रहे थे। वह बहुत देर टकटकी बाँधे उनकी ओर देखता रहा। आख़िर एकाएक तनकर सीधा खड़ा हो गया। अपने हाथोंकी मुट्ठियाँ बाँधता हुआ बोला—'नहीं। चाहे कुछ भी हो, उसे एक बार जाना होगा। इसीमें उसका, शोभाका और उस नन्हें बच्चेका कल्याण है।' वह तेज़ीसे सीढ़ियोंकी ओर भागा और हवाकी भाँति उड़ता हुआ उन्हें पार कर गया।

- ५ -

जब अतुल शोभाके कमरेमें पहुँचा, तो वह चुपचाप कुर्सीपर बैठी थी। बच्चा नोटोंसे घिरा मज़ेमें सो रहा था। अतुलने उड़ती हुई नज़रसे उस दृश्यको देखा, फिर

उसके नेत्र शोभापर जम गए। शोभाने लापरवाहीसे पतिकी दृष्टिको अपनी आँखों द्वारा तौला और सहज शान्त स्वरमें बोली—'कैसे आए हो ?'

'एक कहानी कहने।'

'कहानी ?'—शोभाकी उत्सुकता जाग्रत हो उठी। उसके ओठोंपर एक मुस्कान नाचने लगी।

'हाँ, सुनोगी ?'

'अवश्य।'

'एक था पहाड़ और एक थी नदी'—चारपाईके एक कोनेपर बैठते हुए अतुलने आरम्भ किया—'नदी पहाड़की गोदीमें सिर रखकर संसार भरमें झूमती, इतराती और गीत गाती फिरा करती थी, और पहाड़ नदीके यौवन तथा सौन्दर्यको देख-देखकर फूला नहीं समाता था और आकाश छूनेके स्वप्न देखा करता था। इस तरह कई वर्ष बीत गए। नदीका यौवन दिन-प्रति-दिन चित्ताकर्षक होने लगा और पहाड़की शान बढ़ने लगी।'

'फिर ?'

'फिर वही हुआ, जो ऐसी परिस्थितिमें होता है।'

'क्या ?'

'दोनोंके मनमें अभिमानका अंकुर प्रस्फुटित हो गया। मैं पहाड़का सहारा क्यों लूँ, नदीने सोचा। मेरी गोदीमें पड़े होनेके कारण ही नदीका अस्तित्व है, पहाड़ने भी सोचा और कहा भी। फल यह निकला कि दोनों एक-दूसरेसे विमुख हो उठे। कुछ नदी आगे बढ़ी, कुछ पहाड़ पीछे हटा, और देखते ही देखते दोनों एक-दूसरेसे विलग हो गए।'

'तब क्या हुआ ?'—साँस दबाकर शोभा बोल उठी।

'फिर क्या था। सूर्य देवता, जो इन दोनोंके मिलापको देख-देखकर जला करते थे, एकाएक इन दोनोंपर टूट पड़े। उसके प्रखर ताप द्वारा नदीका पानी कम हो चला और नदीके गीले स्नेहसे वंचित पहाड़ सूखने लगा। उसके टुकड़े झड़-झड़कर गिरने लगे। उन्होंने ग़लत पथ पकड़ा है, दोनों समझ गए; किन्तु झूठे हठ द्वारा प्रेरित वे एक-दूसरेके निकट आनेकी अपेक्षा और भी दूर हटते चले गए। यहाँ तक कि नदी पानीकी एक लकीर बन गई और पहाड़ पृथ्वीसे कुछ ही गज़ ऊँचा रह गया।'

'क्या वे फिर मिल न पाए ?'—शोभाका गला भर आया।

'जब अवस्था यह हो गई, तब उन दोनोंको अपनी भूलका पता चला। तब उन्होंने एक-दूसरेके निकट आनेका बहुत प्रयत्न किया; पर व्यर्थ। वे इतने अशक्त हो चुके थे कि उनके लिए एक एक क़दम उठाना भी भारी था।'

यह कहकर अतुल चुप हो गया। उसके नेत्र जो अभी तक शोभापर अटके हुए थे, सहसा छतपरकी शून्यतापर जा लगे।

'आख़िर उन दोनोंका अन्त क्या हुआ ?'—शोभाने नेत्रोंमें छलकते आँसुओंको रोकते हुए उतावलीसे पूछा।

अतुल चुप रहा। वह ज्योंका त्यों बैठा रहा। शोभा तेज़ीसे उठी और दोनों कंधोंसे पकड़कर पतिको हिलाती हुई बोली—'बोलते क्यों नहीं ?'

'हाँ, सुनो।'—अतुल मानो स्वप्नसे जागकर बोला—'दोनों भूतके गर्भमें विलीन हो गए। आज उनकी जगहपर मरुस्थल है और सूर्यका प्रखर ताप। यह हुआ उनका अन्त और यहीं मेरी कहानीका भी अन्त होता है।'

अतुल चारपाईसे उठा और कमरेमें टहलने लगा।

'लेकिन इस लम्बी-चौड़ी कहानीका अभिप्राय क्या है ?'

'अभिप्राय ?'

'हाँ।'

'यही कि तुम्हें मेरे रुपए नहीं लौटने चाहिए थे।'

'बस, यही !'—शोभाका स्वर निराश और टूटा हुआ था।

'तुमने क्या समझा था ?'

'मैंने ? अब बतानेसे लाभ ही क्या ?'

'तब भी, कहो तो !'—अतुल स्नेहसे ओतप्रोत स्वरमें बोला।

शोभा पिघल गई—'मैंने समझा, तुम यह दीवार गिराना चाहते हो।'

'सच ?'—अतुलका चेहरा खिल उठा।

'बिलकुल।'

इससे पहले कि अतुल शोभाकी ओर बढ़े, वह बिजलीकी तेज़ीसे उसके पाँवोंमें आ गिरी। अतुल वहींका वहीं बैठ गया और शोभाका सिर अपनी गोदीमें ले लिया।

उस चूने और ईंटोंकी दीवारकी तो कौन जाने, किन्तु उनके हृदयोंके बीचमें पड़ी हुई दीवार उसी क्षण-पूर्ण रूपसे छिन्न-भिन्न हो गई।

३२९बी, सदर्न एवेन्यू, कलकत्ता]

# रवीन्द्रनाथका जीवन-सन्देश

बनारसीदास चतुर्वेदी

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर अब इस संसारमें नहीं; पर 'कीर्तिर्यस्य स जीवति'के सिद्धान्तानुसार कवीन्द्र अमर हैं—उसी प्रकार अमर हैं, जैसे वाल्मीकि अथवा व्यास, कालिदास या तुलसीदास। वैसे तो समस्त संसार उनका ऋणी है—उनके स्फूर्तिप्रद आध्यात्मिक विचारोंकी तरंगोंने विश्वके अनेक देशोंके ज्ञान-पिपासु प्राणियोंको सात्विक रस प्रदान किया था—पर भारतभू-सिपर तो कवीन्द्रका अनन्त ऋण है। प्रश्न यह है कि हम लोग उनसे कैसे उऋण हों?

## सर्वप्रथम कर्तव्य

निस्सन्देह हमारा सबसे पहला कर्तव्य यही है कि हम कविवर द्वारा स्थापित संस्थाओंको—विश्वभारती (शान्तिनिकेतन) और श्रीनिकेतनको—जीवित रखें और उनकी उत्तरोत्तर उन्नतिके लिए प्रयत्न भी करें।

## सर्वोत्तम स्मारक

उपर्युक्त दोनों संस्थाओंको सजीव बनाए रखनेके सिवा कवीन्द्रके और भी बीसियों छोटे-मोटे स्मारक बनानेके प्रस्ताव जनताके सम्मुख रखे गए हैं। लोग अपनी-अपनी श्रद्धा तथा रुचिके अनुसार भिन्न-भिन्न नगरोंमें उनके स्मारक बनावेंगे भी। यदि धृष्टता न समझी जाय, तो इन पंक्तियोंका लेखक भी अपनी क्षुद्र बुद्धिके अनुसार एकाध बात निवेदन कर सकता है। उसने पहले-पहल सन् १९१८ में शान्तिनिकेतनकी यात्रा की थी। सन् १९२०-२१ में वह चौदह महीने तक शान्तिनिकेतनके सांस्कृतिक वायुमंडलमें रहा और तत्पश्चात् उसे बीसियों बार शान्तिनिकेतनकी तीर्थ-यात्रा करने और हिन्दीके अनेक लेखकों तथा कवियोंको गुरुदेवके चरणोंके निकट ले जानेका अवसर भी मिला था।

गुरुदेवके विचारोंका प्रचार ही उनका सर्वोत्तम स्मारक है और इस दृष्टिसे कवीन्द्रके ग्रन्थोंके हिन्दी-अनुवादोंका हमें अधिकाधिक प्रचार करना चाहिए। ये अनुवाद विश्वभारती द्वारा ही प्रकाशित किए जाने चाहिएँ। इस प्रकार हिन्दी-भवन तथा शान्ति-निकेतनकी कुछ आर्थिक सेवा भी हो जायगी।

## गुरुदेवके आदर्श

हिन्दी-साहित्य-सेवियोंके लिए गुरुदेवके आदर्श अत्यन्त शिक्षाप्रद हैं। यहाँपर हम उनके सर्वश्रेष्ठ गुण—स्वातन्त्र्य-प्रेम तथा सबकी मानसिक स्वाधीनताकी रक्षा—का ज़िक्र नहीं करेंगे, क्योंकि उसके विषयमें तो एक अलग लेख ही लिखा जाना चाहिए। इस समय तो हम उनके एक अन्य अनुकरणीय गुण सहृदयता या दानशीलताके बारेमें कुछ लिखेंगे।

'Life means giving'—'जीवनका अर्थ ही दान है'—गुरुदेवने इन शब्दोंके अर्थको भलीभाँति समझ लिया था और वे अपने जीवन भर दान ही करते रहे। उन्होंने पचासों शिक्षकोंको सहयोग तथा परामर्शका दान दिया, सैकड़ों छात्रोंको सुसंस्कृत वातावरणमें सर्वाङ्गीण शिक्षाका दान दिया, सहस्रों आगन्तुकोंको आतिथ्य तथा स्फूर्तिमय सन्देशका दान दिया और लाखों-करोड़ों पाठकोंको ज्ञान तथा सात्विक मनोरंजनका दान दिया। कितने ही विद्वानों, लेखकों और कवियोंके व्यक्तित्वका विकास अधूरा ही रह गया होता, यदि उचित समयपर गुरुदेवका आश्रय उन्हें न मिला होता।

## विष-पान

प्राचीन कालमें जब समुद्र-मंथन हुआ था, तो देवता लोगोंने बढ़िया-बढ़िया चीज़ें अपने लिए सुरक्षित कर ली थीं और शिवजीको विषका पान करना पड़ा था। यदि वे ज़हर न पी लेते, तो न जाने कितने देवता चल बसते! आधुनिक युगमें हमारे अनेक नेताओंको विषका पान करना पड़ा है। चन्दा इकट्ठा करना—आदर्शहीन लख-पतियोंके सामने हाथ पसारना—एक प्रकारसे ज़हरका घूँट पीना ही तो है। जो लोग कवीन्द्रको निकटसे जानते हैं, वे कह सकते हैं कि जितनी आन्तरिक वेदनाके साथ कवीन्द्रको यह कार्य करना पड़ता था, उतनी वेदना शायद ही अन्य किसी नेताको हुई हो। कहाँ कविका अत्यन्त कोमल स्वभाव और कहाँ चन्देकी कठोर भीख! पर वृद्धावस्थामें भी कवीन्द्रको देश-देशान्तरोंकी यात्रा इसीलिए करनी पड़ी थी कि किसी प्रकार उनकी प्रिय संस्थाओंकी आर्थिक समस्या हल हो जाय!

## सर्वोत्तम श्रद्धांजलि

हिन्दी-जगत्‌में कवीन्द्रके आदर्शोंका प्रचार करना ही उनके प्रति सर्वोत्तम श्रद्धांजलि अर्पित करना है। शहरोंके

दमघोंटू वायुमंडलसे निकलकर ग्रामोंकी ओर जाना, भौतिकताकी तंग गलियोंको तिलांजलि देकर आध्यात्मिकताके उन्मुक्त वातावरणमें विचरण करना, दिमाग़ी जिमनास्टिक करनेके बजाय जीवनके सर्वाङ्गीण विकासके लिए उद्योग करना और शिक्षा, साहित्य तथा संस्कृतिकी धाराको ग्राम-जीवनके सूखे हुए धरातल तक ले जाना, यही तो कवीन्द्रके आदर्श थे।

गुरुदेव भलीभाँति जानते थे कि सभ्यताके सात्विक फलोंका उपभोग मिल-बाँटकर कैसे किया जाता है, और इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि मानव-प्रेम तथा मानव-समाजकी एकताको उन्होंने अपने प्रोग्राममें सर्वोच्च स्थान दिया था।

बँगला-भाषाकी समृद्धिके लिए, उसमें सरलता तथा स्वाभाविकता लानेके लिए उन्होंने क्या नहीं किया? पर भाषा उनके लिए साधन थी, साध्य नहीं। जो महान् व्यक्ति निरन्तर ५०-६० वर्ष तक बिना किसी प्रमादके साहित्यके प्रत्येक क्षेत्रमें रचनात्मक कार्य करता रहा और जिसने अपनी मातृभाषा तथा मातृभूमिके गौरवको विश्व-व्यापी बना दिया, उसके जीवनसे हम बीसियों शिक्षाएँ ग्रहण कर सकते हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि आचार्य क्षितिमोहन सेन तथा बन्धुवर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी गुरुदेवका एक विस्तृत जीवन-चरित हिन्दीमें प्रकाशित करें; पर ऐसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ चार-पाँच वर्षसे पहले नहीं छप सकता, तब तक हम लोगोंमें से प्रत्येकको अपनी रुचि, सामर्थ्य तथा परिस्थितिके अनुसार कवीन्द्रके आदर्शोंका प्रचार करना चाहिए।

### हिन्दी-साहित्य-सेवी क्या करें?

हिन्दी-साहित्य-सेवी निन्यानवे फ़ी सदी साधनहीन हैं और उन्हें अपने व्यक्तित्वके विकासका अवसर मिलना तो दूर रहा, भरपेट भोजन भी मुश्किलसे मिलता है। पर आर्थिक दरिद्रतासे भी बदतर एक और रोग है, यानी आत्मिक दैन्य, और इस बीमारीसे बचना ही हमारा परम धर्म है।

### मुख्य प्रश्न भावनाका है

हमें यह बात हर्गिज़ नहीं भूलनी चाहिए कि मुख्य सवाल आर्थिक नहीं, हार्दिक है। गुरुदेवकी तरह प्रतिभाशाली व्यक्ति तो सैकड़ों वर्षोंमें एक-दो ही उत्पन्न हो सकते हैं, और उनकी तरह साधन-सम्पन्न तो लाखोंमें एकाध ही होता है; पर उनके श्रेष्ठ गुण सहृदयता (क्षुद्रसे क्षुद्र मानवके व्यक्तित्वके विकासमें सहायता देने) का तो हम सभी किसी-न-किसी अंशमें अनुकरण कर ही सकते हैं। हृदयहीनताके रेगिस्तानमें प्रेमकी पाँच बूँदोंका भी कुछ महत्त्व है। निर्दय और शोषक पूँजीपतियोंके लाखों रुपयोंसे किसी सहृदयका एक पैसा भी अधिक क़ीमती है। फिर हम आत्मिक दैन्यको क्यों अपने पास फटकने दें?

हमें मानना पड़ेगा कि हिन्दी-जगत्में और किसी चीज़की इतनी कमी नहीं, जितनी सजीव व्यक्तित्वकी। गंगा और जमुनाके किनारे, नर्मदा और ताप्तीके तटपर, बेतवा तथा केनके सुरम्य स्थलोंमें और हिमालयके निकट—संक्षेपमें यों कहिए कि पंजाब, युक्त-प्रान्त, बिहार, मध्य-प्रदेश, तथा मध्य-भारत और राजपूतानेमें अनेक ऐसे स्थल मौजूद हैं, जहाँ छोटे-मोटे आश्रम स्कूल या विद्यालय स्थापित किए जा सकते हैं।

थका हुआ साहित्य-सेवी—साहित्यिक मिलका मज़दूर—साधनहीन लेखक या पत्रकार जब साल भर कठिन परिश्रम करनेके बाद किसी ऐसे स्थानको खोजता है, जहाँ सांस्कृतिक वायुमंडलमें दस-बीस दिनके लिए वह किंचित् विश्रामके साथ कुछ मानसिक भोजन भी पा सके तथा जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्यसे परिपूर्ण दृश्य उसके क्षत-विक्षत स्नायुमंडलको कुछ शान्ति दे सकें और जहाँसे वह कुछ शक्ति, कुछ स्फूर्ति तथा कुछ उत्साह लेकर अपनी कठोर मज़दूरीपर वापस जा सके, तो उसे निराश ही होना पड़ता है। हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें लखपतियों और करोड़पतियोंकी कमी नहीं; पर क्या उनमें कुछ कल्पना-शक्ति भी है? वेदोंमें एक जगह लिखा है—'जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है।' यदि हिन्दी-भाषा-भाषी पूँजीपति अपनी छातीपर हाथ रखकर अपने विषयमें प्रश्न करें, तो उन्हें अपने निकृष्ट भोजनका पता लग सकता है।

### हिन्दी-उपवनमें वसन्त

जब प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण स्थलोंके निकट घूमते हुए हमें कहीं बाँसोंकी कतार दीख पड़ती है, तो शान्ति-निकेतनके उस 'वेणुकुंज' की याद आ जाती है, जहाँ दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ रहा करते थे। बीसियों वेणुकुंज हमारे यहाँ मौजूद हैं; पर दीनबन्धुका व्यक्तित्व कहाँ? अशोक

और आम, अमरूद तथा ताड़के वृक्षोंकी कमी नहीं; पर 'नीचू बँगले' के ऋषि द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरकी आध्यात्मिक साधना कहाँ है ?

कहाँ है वह सच्चा ब्राह्मणत्व, जो शास्त्री महाशय (महा-महोपाध्याय पं० विधुशेखर भट्टाचार्य), आचार्य क्षिति-मोहन सेन और आचार्य नन्दलाल बसुमें विद्यमान है ? विश्वविद्यालय तो हमारे यहाँ बहुत-से मौजूद हैं; पर जिस प्रकार श्रीनिकेतनकी ग्राम-संगठन-सम्बन्धी संस्था विश्व-भारतीकी शिक्षण-संस्थाकी पूरक है, उस प्रकारकी पूरक संस्थाएँ हमारे यहाँ कहाँ हैं ?

जब हरश्रृंगार फूलता है, तो उसके पुष्पोंसे नीचेकी भूमि लद जाती है। इन पारिजातोंके पुष्पोंसे ढँकी हुई भूमि तो हम किसी भी उपवनमें देख सकते हैं; पर उनकी समता करनेवाली कवीन्द्रकी दानशीलता कहाँ दीख पड़ेगी ?

कवीन्द्र रवीन्द्र महात्मा कबीरके बड़े प्रेमी और प्रशंसक थे और मानो उन्होंने कबीरके इस उपदेशको हृदयंगम कर लिया था :—

"ऋतु बसन्त जाचक भया,
हरखि दिए द्रुम पात।
ताते नव पल्लव भया,
दिया दूर नहिं जात॥"

यदि हम लोग महाकवि रवीन्द्र और महात्मा कबीरके केवल इसी उपदेशको ग्रहण कर लें और कहीं प्राकृतिक सौन्दर्यके निकट ऐसे आश्रम या विद्यालय स्थापित करें, जहाँ प्रतिभाशाली साधनहीन साहित्य-सेवियोंको और सुयोग्य विद्यार्थियोंको अपने व्यक्तित्वके विकासके लिए सुविधाएँ मिल सकें, तो हम इन दोनों महात्माओंके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कर सकेंगे और तब हिन्दी-साहित्यके उपवनमें भी ऋतुराज वसन्तके नवपल्लवोंका शुभागमन होगा।

कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ ]

---

# आरती

श्री रामसिंह हिन्दुस्तानी

रवि गगन में लाल होकर दीप-जैसा जल रहा है;
मेघ मीठा उदक भरकर मधुर स्वरमें झर रहा है।
थाल अम्बर का उषा ले मधुरिमा से पूर लाई;
प्रकृति ने भू पर तृणों की हरित चादर ला बिछाई।
आरती माँ की करूँ मैं
दीन भिक्षुक - सा पुजारी।
हे दरिद्रे ! रुदन मत कर,
मत बहा ये अश्रु खारी।

श्रृंखलाओं में बँधे हैं, तौक कंठों में सजे हैं;
मधुर भोजन, स्वप्न सुखमय एक युग से सब तजे हैं।
मातृ-मन्दिर में विकल नर आर्तस्वर में रो पड़े हैं;
आँसुओं के हार ले कुछ द्वार पर कब से खड़े हैं।
हे जननि ! स्वीकार कर ले,
त्याग दे तू यह उदासी।
आज लाया हूँ कहीं से
बीन कर ये फूल बासी!

कंठ अगणित क्षीण शिशुओं के दुखों से रुँध रहे हैं;
और ये अगणित हृदय हा ! रक्त-जल में गुँध रहे हैं।
इन दुखों की आग से अन्तर धरा का जल रहा है;
उस जलनमें लौह-प्रस्तर ग्रीष्म-हिम-सम गल रहा है।
आ जननि ! तू सान्त्वना दे
विकल शिशु निज अंक ले ले।
ये दुखों में ही पले हैं
जन्म से दुख असह झेले।

हे धरा ! तू आज फट जा, हृदय-दुख नभमें उड़ा दे;
हे जननि ! तू स्वस्थ होकर आत्म-दुख के शिखर ढा दे।
मातृ-मंदिर के पुजारी आत्म-बलि लेकर खड़े हैं;
क्यों नहीं स्वीकार होगी ? धैर्य धरकर ये अड़े हैं।
आरती की एक वेला
हे जननि ! तू सफल कर दे।
रिक्त झोली का भिखारी
यह अमर वरदान भर दे।

# कहानी-कला

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र

प्रत्येक देशके साहित्यके प्रारम्भिक इतिहासकी आलोचना करनेसे हमें पता चलता है कि उस देशके निवासियोंमें गल्प या उपन्यासके रूपमें कितनी ही दन्तकथाएँ प्रचलित थीं। उस समय लिखनेकी सामग्री सब लोगोंके लिए सुलभ नहीं थी, इसलिए लोग एक-दूसरेके मुँहसे कथा-कहानी सुनकर ही आनन्द प्राप्त कर लिया करते थे। इस रूपमें ही एक-दूसरेसे सुनकर दन्तकथाएँ सारे देशमें प्रचलित हो जाती थीं। यही साहित्य बादमें चलकर कथा-साहित्यके नामसे विख्यात हुआ।

कथा-साहित्यकी उत्पत्ति सबसे पहले कहाँ किस रूपमें हुई, यह निर्णय करना सहज नहीं है। किन्तु यह सब देशोंमें और सब कालमें विद्यमान था, यह निर्विवाद मान लिया जा सकता है। अनेक विद्वानोंके मतसे गल्प या छोटी कहानीका सन्धान सबसे प्राचीन कालमें मिस्र देशमें हुआ है। उस कहानीका नाम था 'अनपू और बाटा' ( Anpu and Bata ) की कहानी। सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात तो यह है कि आधुनिक कहानियोंके साथ अति प्राचीन युगकी उक्त कहानीका सादृश्य अनेकांशोंमें है। दो युवक एक ही बालिकासे प्रेम करते हैं और उनमें से एकके साथ उस बालिकाका विवाह हो जाता है। दूसरे प्रेमिकके मनोभाव एवं कार्यको लेकर गल्पकी रचना की गई है। कहते हैं कि मिस्र देशके पंचम राजवंशके समयमें इस गल्पकी रचना हुई थी—अर्थात् ईस्वी सन्से कई हज़ार वर्ष पूर्व। प्राचीन भारतीय साहित्यमें भी कथाका अस्तित्व पाया जाता है। बौद्ध जातकोंका समय ईस्वी सन्से छः-सात सौ वर्ष पूर्व माना गया है। इन जातकोंमें तत्कालीन जन-समाजमें प्रचलित कहानियोंके बीच-बीचमें लोक-शिक्षाके उद्देश्यसे नीति-ज्ञानमूलक गाथाएँ जोड़ दी गई हैं। पंचतन्त्रकी अनेक कथाएँ जातकोंमें भी पाई जाती हैं। संस्कृतमें 'पंचतन्त्र', 'हितोपदेश', सोमदेव-कृत 'कथासरित्सागर', 'बैताल पंचविंशति', 'शुकसप्तति', 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' आदि ग्रन्थ कथा-साहित्यके अन्तर्गत लिए जा सकते हैं। फ़ारसके बादशाह ख़ुसरू नसिरवानके समयमें 'हितोपदेश' का पहलवी भाषामें अनुवाद हुआ था। इसके बाद ग्रीक, अरबी आदि भाषाओंमें भी उसका रूपान्तर हुआ। अरबमें 'अलिफ़लैला', फ़ारसमें शहरियारकी कहानी और अंगरेज़ीमें ईसपकी कहानियाँ आदि भी प्राचीन कथा-साहित्यके ही रूप हैं।

न मालूम किस अतीत युगके वसन्तकालीन प्रभातमें या शीतकालकी संध्यामें इस कथा-साहित्यकी सृष्टि हुई थी—अन्नके खेतमें, वृक्षकी छायामें अथवा अग्निकुण्डके पार्श्वमें। 'एक था राजा'—कथा-साहित्यकी यह चिर-पुरातन वाणी सारे देशके वातावरणमें परिव्याप्त हो गई थी। यह बहुत पुराने ज़मानेकी बात है। उस समयसे ही हम दादी, नानी और बुआके मुँहसे सागर-पारकी राज-कन्याकी विचित्र कहानी, दैत्य-राक्षसोंकी गल्पें आदि सुनते आ रहे हैं। उस समयसे ही इन कथा-कहानियोंकी अनवद्य झंकार प्रत्येक मनुष्यके मनमें एक सुमोहन सुर जाग्रत करती आ रही है। इस कथा-साहित्यका महत्व एवं दान असाधारण है। जैसा कि एक समालोचकने लिखा है—'They are not to be valued, because they make long nights short' अर्थात्—'उनका महत्व केवल इतना ही नहीं है कि इन कहानियोंको सुनकर हम लम्बी रातें सहज ही काट लेते हैं', बल्कि ये हमारे हृदयके स्तर-स्तरमें रस संचार करके पवित्र दीपशिखा प्रज्वलित कर देती हैं और उन्हींकी रश्मियाँ सारे विश्वमें विकीर्ण हो जाती हैं। ये रूपमें, रसमें और गीत-झंकारमें अभिनव आनन्दकी सृष्टि करती हैं। मनुष्यके मनमें आनन्दका संचार करना ही यदि साहित्य एवं कलाका उद्देश्य हो, तो हम कह सकते हैं कि कथा-साहित्य हमारे अन्तरमें जिस निर्दोष आनन्द एवं रसकी सृष्टि करता है, उसके कारण वह साहित्य-भाण्डारका एक अमूल्य रत्न है। 'It diverts the mind of the young and old alike.'—वस्तुतः इसके द्वारा बालक, युवक एवं वृद्ध सबका समान रूपमें मनोरंजन होता है। बालकोंके

आनन्दका यह उत्स है, युवक-युवतियोंकी प्रणय-पिपासाका अमृतकुण्ड और वृद्धोंका शास्त्र। मूर्ख और पण्डित दोनोंके लिए यह समान रूपमें उपभोग्य है।

साहित्यकी दृष्टिसे विचार करनेपर आज कहानी, गल्प और उपन्यासका स्थान विश्व-साहित्यके दरबारमें सर्वोच्च है। इनमें भी छोटी कहानियोंका मूल्य आधुनिक साहित्य-रसिकोंकी दृष्टिमें सबसे बढ़कर है। विदेशी साहित्यमें भी छोटी कहानियोंने विराट् स्थान ग्रहण किया है। इसके मूलमें अनेक विश्वविख्यात साहित्यिकोंकी साधना एवं अविश्रान्त अनुप्रेरणा काम कर रही है। इनमें फ्रान्सके मेरिमि, डडेट और मोपासाँ, जर्मनीके पलहेसि और रूसके टालस्टाय, पुश्किन, गोर्की और चेख़व विशेष रूपसे उल्लेख-योग्य हैं।

आधुनिक युगमें छोटी कहानियोंकी लोकप्रियता जो इतनी बढ़ रही है, उसके अनेक कारण हैं। यह यांत्रिक सभ्यताका युग है। आज मनुष्यके नित्यप्रतिके जीवनमें कर्मव्यस्तता एवं जटिलता पहलेकी अपेक्षा कहीं ज़्यादा बढ़ गई है। मशीनोंके जालमें आबद्ध मनुष्यका जीवन मशीनकी तरह ही परिचालित हो रहा है। जीवनकी गति क्रमशः द्रुतसे द्रुततर हो रही है। जीवनके उद्दाम गति-वेगमें मनुष्य उन्मत्त हो रहा है। इस प्रकारके कर्मक्लान्त जीवनमें ही आजका मनुष्य अपने लिए कुछ ऐसे क्षण या सुयोग-सुविधा निकाल लेता है, जिसमें वह निरानन्द जीवनको आनन्द-रससे सरसित कर सके, जो रस-प्राणको सजीव कर सके। साहित्य-साधनाके लिए ऐसे ही अवसर ढूँढ़ निकालने होते हैं। इस प्रकारके व्यस्त एवं जटिल जीवनमें बड़े-बड़े उपन्यासों या अन्य प्रकारकी पुस्तकोंको पढ़नेके लिए समय निकालना सम्भव नहीं होता और इसके लिए अनेक समयमें धैर्यका भी अभाव देखा जाता है। इसीसे हम लोगोंको ट्रेन या बसमें यात्रा करते समय या कभी-कभी राह चलते भी अपने अवकाशके समयका सदुपयोग करते पाते हैं। इसके सिवा आजकल पत्र-पत्रिकाओंमें भी इस प्रकारकी बहुत-सी कहानियाँ प्रकाशित होती हैं, जो एक ही अंकमें समाप्त हो जाती हैं। इन कहानियोंको अधिकांश पाठक अल्प समयमें ही दिलचस्पीके साथ पढ़ लेते हैं और उनका समय आनन्दसे कट जाता है। इन्हीं सब कारणोंसे जन-साधारणमें छोटी कहानियोंकी क़द्र बढ़ रही है। किन्तु इससे यह नहीं अनुमान कर लेना चाहिए कि एक दिन ऐसा आयगा, जब कि उपन्यासका स्थान छोटी कहानी ग्रहण कर लेगी। इस प्रकारका अनुमान सर्वथा निर्मूल है। उपन्यास एवं गल्प दो भिन्न वस्तुएँ हैं। एकका स्थान दूसरा ग्रहण नहीं कर सकता, क्योंकि एक दूसरेके अभावकी पूर्त्ति नहीं कर सकता। उपन्यास एवं गल्पमें सादृश्य है अवश्य, किन्तु साथ ही दोनोंमें विभिन्नताएँ भी हैं। उपन्यासमें किसी चरित्रकी सम्पूर्णता होनी आवश्यक है, गल्पमें चरित्रके किसी अंश-विशेषका चित्रण होनेसे ही काम चल जाता है। उपन्यासमें नाना चरित्रोंके समावेश द्वारा समाजका एक सर्वाङ्गपूर्ण चित्र अंकित किया जाता है, गल्पमें दो-एक चरित्रोंके दो-एक स्वरूपोंको चित्रित कर देना ही यथेष्ट है। किन्तु इस चरित्र-चित्रणकी प्रणाली क्या होगी, इसको लेकर ही समस्या उपस्थित होती है। गल्पमें विषय-वस्तु होती है, रचना-कौशल होता है और उससे भी बढ़कर एक वस्तु होती है वास्तविकताको प्रस्फुटित करनेका कौशल। उपन्यासमें जटिल मानव-जीवनकी मनोवृत्तियों तथा उसके बाह्य एवं आन्तरिक द्वन्द्वोंका जो सूक्ष्म एवं विभिन्नमुखी चित्र हमें देखनेको मिलता है, वह छोटी कहानीमें कदापि संभव नहीं हो सकता; क्योंकि इसके लिए चाहिए सुपरिसर स्थान, जिसका छोटी कहानीमें सर्वथा अभाव होता है। चरित्रका क्रमविकास, उसकी जटिलताओंका विश्लेषण एवं सहज समाधान भी हम छोटी कहानीमें नहीं पाते; किन्तु किसी-किसी गल्प-लेखकमें हम इस नियमका अपवाद भी पाते हैं। सुप्रसिद्ध फ़रासीसी गल्प-लेखक मोपासाँने अपनी छोटी कहानियोंकी संकीर्ण परिधिमें चरित्र-चित्रणका जो कौशल प्रदर्शित किया है, वह उसके उपन्यासोंमें भी मुश्किलसे मिलेगा। साधारणतः कहानीमें हम मानव-चरित्रके अंश-विशेषका ही कोई विशिष्ट रूप पाते हैं। मान लीजिए कि किसी चरित्रहीन व्यक्तिका चित्रांकण गल्पमें करना हो, तो कबसे उसके चरित्रका क्रमशः अधःपतन शुरू हुआ, किन घटनाओंके घात-प्रतिघात एवं परिवर्त्तनके बीच वह अवनतिकी ओर बढ़ता गया और इसका अन्तिम परिणाम क्या हुआ—यह सब जाननेका सुयोग हमें गल्पमें नहीं मिल सकता। छोटी कहानियोंके नायक-नायिकाके साथ हमारा परिचय क्षण भरके लिए होता है। उनके साथ हमारा घनिष्ठ परिचय नहीं हो पाता, जिससे वे हमें

अच्छी तरह जानने-पहचाननेका मौक़ा नहीं देते। अज्ञात एवं अपरिचित रूपमें रहस्यके अन्तरालमें छिपकर क्षण भरके लिए अपने साथ परिचित होनेका सुयोग वे हमें प्रदान करते हैं। यही कारण है कि उनके चरित्रका कोई स्थायी या व्यापक प्रभाव हमारे मनके ऊपर नहीं पड़ता। वे केवल अस्पष्ट चिह्न-मात्र हमारे मानस-पटलपर अंकित कर जाते हैं। इसके विपरीत उपन्यासके नायक-नायिकाके साथ हमारा परिचय अधिक समयके लिए होता है ; उनके चरित्रका क्रमविकास हमें देखनेको मिलता है, इसलिए हमारे मनपर उनकी छाप उज्ज्वल रूपमें पड़ती है। उपन्यासमें विचार करनेकी सामग्री विशेष रूपमें पाई जाती है। किन्तु किसी-किसी श्रेष्ठ गल्प-लेखककी कहानीमें इस प्रकारकी जटिल समस्या एवं चिन्ता करनेका विषय पाया जाता है, जो बड़े-बड़े उपन्यासोंमें भी नहीं मिलता। चाहे जो कुछ हो, किन्तु जब तक मनुष्यका जीवन रहस्यपूर्ण एवं जटिल बना रहेगा और उन रहस्यों एवं जटिलताओंके सूक्ष्म विश्लेषणमें मनुष्य आनन्द लाभ करेगा, तब तक उपन्यासका स्थान ज्योंका त्यों बना रहेगा और उसके महत्वमें ज़रा भी अन्तर नहीं पड़ सकता।

इसलिए उपन्यासके प्रतिद्वन्द्वी रूपमें नहीं, बल्कि साहित्यकी एक महत्त्वपूर्ण शाखाके रूपमें हम यहाँ गल्पकी आलोचना करेंगे। एलेन पोने छोटी कहानीकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि वह इस प्रकारकी होनी चाहिए, जिसके पढ़नेमें आध घंटा, एक घंटा या अधिकसे अधिक दो घंटा समय लगे। जिस कहानीको एक बार पढ़ना शुरू करनेपर हम उसे सहज ही समाप्त कर सकें, उसे ही हम छोटी कहानीके अन्तर्गत मान सकते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि छोटी कहानी संक्षिप्त उपन्यासका ही रूप है, अथवा जो विषय कई सौ पृष्ठोंमें विवृत हो सकता है, उसका ही तात्पर्य गल्पमें रहता है। एक सौ वर्ष पहले उपन्यास और गल्पमें विशेष पार्थक्य नहीं देखा जाता था। डिकेन्सके 'क्रिसमस बुक' को हम एक छोटा उपन्यास ही कह सकते हैं, यद्यपि एक विशिष्ट भंगीसे उसमें कहानी कही गई है और उसमें रसका भी यथेष्ट परिपाक हुआ है। डिकेन्सके युगमें कहानी लिखनेका जो कौशल था, उससे आजकी कहानी-कला, विषय-वस्तु एवं रचना-प्रणालीमें बहुत कुछ अन्तर है। आज कहानी और उपन्यासमें केवल आकारको लेकर ही नहीं, बल्कि उद्देश्य, कथानक, रचना-कौशल आदिको लेकर भी विशेष अन्तर है, और इन सब दिशाओंमें कहानीकी अपनी निजकी प्रणाली एवं विशिष्ट भंगी स्पष्ट प्रकट होती है। छोटी कहानीकी कथावस्तु इस रूपमें होनी चाहिए कि वह एक निर्दिष्ट सीमाके अन्दर स्पष्ट एवं परिपूर्ण रूपमें व्यक्त हो सके। इस विषयमें उपन्यासकारको जितनी स्वाधीनता है, उतनी गल्प-लेखकको नहीं। उपन्यासकी गति सहज एवं स्वच्छन्द होती है। कल्पनाकी मायापुरीमें स्वच्छन्द भावसे विचरण करते हुए औपन्यासिक रंग-बिरंगे फूलोंका संग्रह कर सकता है। बहुत दूर तक अग्रसर होकर भी उसके लौटनेका पथ प्रशस्त बना रहता है। संकीर्ण परिसरके अन्दर उपन्यासको समाप्त करनेकी चिन्ता उसे नहीं लगी रहती ; क्योंकि ऐसे बहुत कम उपन्यास होते हैं, जिन्हें हम एक बार पढ़ना शुरू करनेपर फिर समाप्त करके ही उठें। लगातार कई दिनों तक या हफ़्तों तक एक उपन्यास पढ़ा जा सकता है। इस प्रकार क्रमशः पढ़ते रहनेसे रसमें भी व्याघात नहीं होता और न पाठकोंकी दिलचस्पी ही कम होती है। किन्तु छोटी कहानीके साथ यह बात नहीं है। छोटी कहानीको क्रमशः पढ़नेसे रसानुभूतिकी मात्रा क्षुण्ण हुए बिना नहीं रह सकती। पाठकोंका कौतूहल एवं आग्रह भी अनेकांशमें मन्द पड़ जाता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उपन्यासके आकारकी कोई निर्दिष्ट सीमा ही नहीं हो, और वह इतना दीर्घ हो जाय कि उसके कथानकके आद्यन्तकी सामंजस्य-रक्षा नहीं हो सके और पाठकोंके मनपर सहज ही उसकी स्पष्ट धारणा नहीं जम सके। 'मांटीक्रिस्टो', 'मिस्ट्रीज़ आफ़ पेरिस', 'ला मिज़रेबल', 'वार एण्ड पीस' तथा डिकेन्स और थेकरेके कई उपन्यास ऐसे ही हैं। इनके आदि और अन्तके बीच स्पष्ट रूपमें समन्वय बनाए रखना पाठकोंके लिए सहज नहीं होता। किसी-किसी गल्प-लेखककी कहानी भी निर्दिष्ट सीमाके बाहर चली जाती है। स्टीवेन्सनकी 'न्यू अरेबियन नाइटस्' कहानी और कोनन डायलकी 'शरलक होम' कहानी काफ़ी बड़ी हो गई हैं। इस प्रकारकी कहानियोंमें उपन्यासके साथ बहुत कुछ सादृश्य पाया जाता है। इसलिए इन्हें यथार्थ रूपमें छोटी कहानीकी श्रेणीमें नहीं माना जा सकता।

आकारके सम्बन्धमें उपन्यासकी अपेक्षा नाटकके साथ छोटी कहानीका अधिक सादृश्य है। नाटककारको भी इस बातपर दृष्टि रखनी होती है कि नाटक बहुत

बड़ा न हो जाय और एक बारमें ही वह समाप्त हो जाय। इस प्रकारके संकीर्ण क्षेत्रमें ही नाटककारको अपना उद्देश्य सिद्ध करना पड़ता है। रंगशालामें अभिनय करने योग्य नाटक दो हज़ार लाइनोंसे अधिकका नहीं होना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि गल्प-लेखक एवं नाटककारको संकीर्ण क्षेत्रके अन्दर ही अपने रचना-कौशलकी विशिष्टता द्वारा मनोरम रूपमें अपना उद्देश्य पूरा करना पड़ता है। इसलिए विषय-वस्तु या कथानकके निर्वाचनमें दोनोंको विशेष विवेचना एवं कौशलसे काम लेना पड़ता है। कथानककी घटनामें काफ़ी काट-छाँट करके केवल प्रयोजनीय अंशको रखना पड़ता है।

इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि सब समय कहानीमें केवल एक ही घटना या दृश्य-विशेषका समावेश होगा। कहानी एक या एकसे अधिक घटनाओंको केन्द्र करके चल सकती है। उसमें चरित्रके अंश-विशेषका अथवा समस्त चरित्रका क्रमविकासका धारावाहिक विश्लेषण हो सकता है। किन्तु सभी क्षेत्रोंमें एक बात आवश्यक है, और वह है उसका रचना-कौशल। इस रचना-कौशलपर ही छोटी या बड़ी कहानीकी सफलता सम्पूर्णतया निर्भर करती है। उपन्यासमें किसी घटनाको प्रकाशित करनेके लिए जितने समयकी आवश्यकता है, उससे भी अधिक समयकी अनेक घटनाओंका सम्मिश्रण कहानीमें हो सकता है। वाशिंगटन इरविंगके 'रिपवान विंकिल'में समाज-जीवनकी एक कौतुकपूर्ण कहानी अंकित हुई है; किन्तु उसका रचना-कौशल इतना चमत्कारपूर्ण है कि संक्षिप्त स्थानमें ही सारी कहानीका समावेश हो गया है। रिपके निद्रारम्भसे लेकर जागरण तक के बीचमें किसी अनावश्यक घटनाको स्थान नहीं मिला है। फिर भी पाठकोंका आग्रह एवं कौतूहल अणुमात्र भी क्षुण्ण नहीं होता। मोपासाँकी 'ला परयूर' कहानी उसकी सुप्रसिद्ध कहानियोंमें अन्यतम है। वह चिरकालीन विषण्ण जीवनकी एक व्यथातुर कहानी है। इस कहानीमें बड़ी कुशलताके साथ प्लाटसे अप्रत्यक्ष रूपमें सम्बन्ध रखने-वाली घटनाओंको अलग रखकर केवल एक घटना-विशेषको केन्द्र बनाकर विषय-वस्तुका विकास किया गया है और पाठकोंकी दृष्टि भी बराबर उस विषय-वस्तुपर ही केन्द्रित रहती है। इसलिए एक निर्दिष्ट सीमाके भीतर जहाँ कहानीको स्पष्ट एवं नियन्त्रित रूपमें आगे बढ़ाना पड़ता है, वहाँ इस बातका भी ध्यान रखना पड़ता है कि उसकी विषय-वस्तुके साथ रचना-कौशल अथवा टेकनीकका पूर्ण सामंजस्य हो। रचना-कौशल एवं प्रकाश-भंगीकी विशिष्टताके बिना कहानी चाहे छोटी हो या बड़ी, उसका महत्व बहुत कम रह जाता है। कहानी-कलाके सम्बन्धमें दूसरी बात जो लक्ष्य करनेकी है, वह है कथानककी एकता एवं संगति। एकताका अर्थ है उद्देश्य, लक्ष्य, कार्य एवं काल-विशेषका पाठकके मनके ऊपर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी एकता। छोटी कहानीकी आलोच्य विषय-वस्तु एक ही होती है और उसीको प्रधानता देते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। कहानी बड़ी, छोटी या न बहुत बड़ी और न बहुत छोटी हो सकती है; किन्तु उसकी मूल विषय-वस्तुकी एकता एवं संगतिपर बराबर ध्यान रखना पड़ता है। हाथर्न, एलेन पो, स्टीवेन्सन, मोपासाँ और हिन्दीके कुछ लेखकोंकी कहानियाँ कहानी-कलाके उत्कर्षकी दृष्टिसे उत्तम कहानियाँ हैं। उपन्यासमें इतनी विभिन्न प्रकारकी घटनाओंका एक साथ ही समावेश होता है कि लेखकका मूल उद्देश्य ढूँढ़ निकालना कठिन हो जाता है। उपन्यासमें एक या एकसे अधिक आवश्यक विषय-वस्तुओंका सम्मिश्रण बहुत सम्भव है; किन्तु कहानीके समय एवं स्थानको देखते हुए यह सम्भव नहीं होता। कहानीके संकीर्ण क्षेत्रमें घटनाबाहुल्यपर ध्यान रखनेका सुयोग नहीं मिलता, इसलिए उसकी मूल कथावस्तु उपन्यासकी तरह घटनाबहुल एवं जटिल नहीं हो सकती। स्काटके 'वेवरली'में कथानककी जटिलता इतनी बढ़ गई है कि उससे आख्यानमें रस-हानि हुए बिना नहीं रही है और सारी कहानी नीरस प्रतीत होती है।

कहानीका उद्देश्य है मानव-मनके निगूढ़ रहस्यको अभिव्यक्त करना और मानव-मनका यह निगूढ़ रहस्य कहानी अथवा उपन्यास द्वारा ही प्रकाशित होता है। श्रेष्ठ कला इन दो उपादानोंमें समन्वय स्थापित करनेकी चेष्टा करती है। रवीन्द्रनाथ और शरच्चन्द्रके उपन्यास एवं कहानियोंकी गम्भीर आलोचना करनेसे मालूम होता है कि मानव-मनके परम आश्चर्यमय एवं रहस्यपूर्ण वैशिष्ठ्यको देखकर ही उनकी कवि-प्रतिभा स्पन्दित हुई थी और उसे प्रकाश करनेके लिए ही उन्होंने कहानीका सूत्र ग्रन्थित किया था।

समग्रका जिस प्रकार एक सौन्दर्य है, समग्रके अंशका

भी उसी प्रकार एक सौन्दर्य है। शिल्पीके हाथसे कहानीमें यह अंश ही परिपूर्ण रूपसे प्रकाशित होता है। अपने अनभ्यस्त नेत्रसे हम इसे देख नहीं सकते। किन्तु शिल्पी जब किसी कहानीमें अपनी प्रतिभा द्वारा समग्रसे पृथक् करके उस अंशका सौन्दर्य हमें दिखला देता है, तो हमारे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता। मानव-जीवनके एक-एक अंशको, एक-एक मुहूर्त्तको चुनकर उसके द्वारा एक परिपूर्ण चित्र मनोरम रूपमें चित्रित करना श्रेष्ठ कहानी-कलाका निदर्शन है।

गल्प-रचना उपन्यास-रचनाकी अपेक्षा सहज या कठिन है, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी लोग ऐसा समझते हैं कि उपन्यास-रचनामें लेखकके ऊपर जितना दायित्व होता है, उतना गल्प-रचनामें नहीं। शायद इसी कारण गल्प-रचनाकी ओर नवीन लेखकोंका झुकाव विशेष रूपमें देखा जाता है। किन्तु इस प्रसंगमें यह स्मरण रखना चाहिए कि गल्प-लेखकका दायित्व किसीकी अपेक्षा कम नहीं है। उसे मानव-जीवनके सभी क्षेत्रोंमें प्रवेश करके सार्वजनीन मत एवं पथका सम्पूर्ण रूपमें परिचय प्राप्त करना और मानव-चरित्र एवं मनोभावका सूक्ष्म ज्ञानार्जन एवं विश्लेषणात्मक शक्ति संग्रह करना पड़ता है। इसके लिए उसे धर्मतत्व, समाजतत्व, इतिहास, राजनीति, अर्थनीति, मनोविज्ञान इत्यादि विषयोंकी अच्छी जानकारी होनी चाहिए।

मिथिला-कालेज, दरभंगा ]

---

# जीवनकी आग

श्री 'द्विजेन्द्र'

वह फूल भला क्या फूल, भरा जिसमें जीवन्त पराग न हो ?
वह यौवन क्या, जिस यौवनमें जीवनकी जलती आग न हो ?

जो आग चिरन्तन दाह लिए
दाहों में अमृत - प्रवाह लिए,
करती हो खाण्डव विपिन ध्वस्त
कुछ 'आह' लिए, कुछ 'वाह' लिए !
जिसकी अजस्र लपटोंसे अगजग कोई सकता भाग न हो।
वह यौवन क्या, जिस यौवनमें जीवनकी ऐसी आग न हो ?

जो शिवा शक्ति - आगार बने,
सुरवृन्द - ज्योति साकार बने,
जगरूढ़ रुजों—दनुजों के हित
कालिका - कोप - अवतार बने !
संहरणशील हो, किन्तु सृजनसे जिसका कभी विराग न हो।
वह यौवन क्या, जिस यौवनमें जीवनकी जलती आग न हो ?

जो दधि - मंथन को साध्य करे,
'हालाहल' प्रकट असाध्य करे,
शिव आशुतोष को नीलकण्ठ
बन जाने को जो बाध्य करे !
जिसके प्रचण्ड शाश्वत प्रकाशका कोई खण्ड विभाग न हो।
वह यौवन क्या, जिस यौवनमें जीवनकी जलती आग न हो ?

जो सती - दाहका काण्ड रचे,
ताण्डव का रूप प्रकाण्ड रचे,
वैदेही के अपहरण - कोपमें
भीषण लंका - काण्ड रचे !
'गायक' कैसा ? जो हँस-हँसकर गा सकता 'दीपक राग' न हो।
वह यौवन क्या, जिस यौवनमें जीवनकी जलती आग न हो ?

जो 'शम' को भी 'संहार' करे,
कुसुमायुध को ले क्षार करे,
जिसका विशिखानल रुद्र - रूप।
उद्वेलित पारावार करे !
वह 'कालिन्दी दह' झूठ, जहाँ फुत्करता 'कालीनाग' न हो।
वह यौवन क्या, जिस यौवनमें जीवनकी जलती आग न हो ?

# सम्मेलनका अबोहर-अधिवेशन

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल

जब निज़ाम-सरकारने हैदराबादमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन करनेकी इजाज़त न दी, तो तीसवें अधिवेशनका स्थान अबोहर निश्चित हुआ। अबोहर वैसे तो पंजाबकी छोटी-सी मंडी है, लेकिन वह पंजाबमें हिन्दी-प्रचारका मुख्य केन्द्र है। स्वामी केशवानन्दने जिस त्याग और लगनसे हिन्दीकी सेवा की है, वह अनुकरणीय है। उन्हींकी तपस्या और परिश्रमका फल है कि अबोहर-जैसे छोटे-से स्थानमें 'साहित्य-सदन' की स्थापना हो सकी। स्वामीजीने साहित्य-सदनको भिक्षा माँगकर खड़ा किया और फिर सम्मेलनको सौंप दिया। इससे केशवानन्दजीकी साधु-वृत्ति और निःस्वार्थ सेवा-भावका पता चलता है। स्वामीजीकी सेवाका अभिनन्दन करने और उनके कार्यको आगे बढ़ानेके लिए सम्मेलनका अधिवेशन अबोहरमें हुआ, यह उचित ही था।

सम्मेलनकी तैयारी करनेके लिए अबोहरके कार्य-कर्त्ताओंको बहुत कम समय मिला। उन्हें धन एकत्र करनेमें भी काफ़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा। अबोहर एक छोटा स्थान होनेके कारण वहाँ सब प्रकारकी सुविधाएँ मिलना भी मुश्किल था। फिर भी प्रबन्ध साधारणतः ठीक था। अगर स्वयंसेवकोंको थोड़ी अधिक ट्रेनिंग मिलती, तो इन्तज़ाम और भी अच्छा हो सकता था। प्रबन्धमें कुछ त्रुटियाँ रह भी गई हों, तो स्वागत-समितिकी आतिथ्य-भावनाने उन्हें सामने आनेका मौक़ा ही नहीं दिया।

मेरी दृष्टिसे अबोहर-सम्मेलनकी सबसे मुख्य बात ग्रामीणोंकी उपस्थिति थी। स्वामीजीने गाँवोंमें अच्छी जाग्रति पैदा की है, इसलिए सम्मेलनमें गाँवोंके काफ़ी प्रतिनिधि थे। उन्होंने सम्मेलनकी कार्रवाईमें ख़ूब दिल-चस्पी भी ली। हिन्दुस्तानमें कोई भी आन्दोलन ग्रामीणोंके सहकारके बिना सफल नहीं हो सकता, क्योंकि असली हिन्दुस्तान तो गाँवोंमें ही है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भी बड़े शहरोंका मोह छोड़कर गाँवोंकी ओर झुका है, यह आनन्दका विषय है। अगला अधिवेशन भी पंजाबमें ही लुधियानेके एक गाँव भैंणीसाहबमें होना निश्चित हुआ है।

अबोहर-सम्मेलनके पहले हिन्दी-संसार खिन्न और चिन्तित था। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति-सम्बन्धी राजेन्द्र बाबूके प्रस्तावोंके कारण काफ़ी ग़लतफ़हमी फैल गई थी। मालूम होता है, कुछ लोगोंने जान-बूझकर अनावश्यक झगड़ा खड़ा करनेकी कोशिश की। ऐसा लगता था कि अबोहरमें अच्छी ख़ासी तनातनी होगी; लेकिन राजेन्द्र बाबूने कशमकशको मिटानेके लिए अपने दोनों प्रस्ताव वापस ले लिए। इसलिए अबोहर-सम्मेलनके सामने कोई विवादका प्रश्न ही नहीं रह गया था। अधिक संख्यामें बाहरसे प्रतिनिधि और दर्शक भी नहीं आए।

सम्मेलनके अध्यक्ष पं० अमरनाथ झाका भाषण पत्रोंमें प्रकाशित हो ही चुका है। उसके सम्बन्धमें विवेचन करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। किन्तु स्वागताध्यक्ष श्री ठाकुरदत्त शर्माका भाषण सम्मेलनके योग्य नहीं था। उन्होंने जिस प्रकार संस्कृतको सभी भाषाओंकी जननी साबित करनेकी कोशिश की, वह हास्यास्पद थी। मेरी रायमें उनका भाषण रेकर्ड करने योग्य नहीं था।

विभागीय परिषदें तो पिछले वर्षोंके समान ही रहीं। अधिकतर इन परिषदोंमें स्वागताध्यक्ष और अध्यक्षके ही भाषण हो पाते हैं, इसलिए परिषदोंमें उपस्थित रहनेकी फ़िक्र बहुत कम प्रतिनिधियोंको रहती है। साहित्य और राष्ट्रभाषा परिषदोंमें तो उपस्थिति साधारणतया ठीक थी; किन्तु विज्ञान, समाजशास्त्र तथा दर्शन-परिषदोंको अगले वर्षसे बन्द कर दिया जाय, तो उचित होगा। इनके बजाय साहित्य-परिषद ही को अधिक समय मिलना आवश्यक है। साहित्य-परिषद तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका मुख्य अंग बन जानी चाहिए। उसके लिए पूरा एक दिन मिलना चाहिए, ताकि साहित्यके हर पहलूपर गंभीरतासे विचार हो सके। कई वर्षोंसे सम्मेलनके अधिवेशनोंमें राष्ट्रभाषा-प्रचारके अलावा कोई महत्त्वपूर्ण चर्चा ही नहीं होती। सम्मेलन हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके बजाय हिन्दी-प्रचार-सम्मेलन बनता जा रहा है। हिन्दी-साहित्यमें अभी बहुत-सी कमियाँ हैं, हिन्दी-साहित्यिकोंके सामने कई व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं, जिनका हल होना बहुत ज़रूरी है। सम्मेलन अगर इस ओर अधिक ध्यान दे, तो कहीं अच्छा हो। अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दूने उर्दू-साहित्यके लिए जो ठोस काम किया है, वह सम्मेलनने हिन्दी-साहित्यके लिए नहीं किया, यह हमें स्वीकार

करना होगा। मौलाना अब्दुलहक़ साहबमें कट्टरपन भले ही हो; लेकिन उन्होंने अविवाहित रहकर उर्दूकी जिस लगनसे सेवा की है, वह हिन्दी-सेवियोंके लिए अनुकरणीय अवश्य है।

× × ×

अबोहरमें जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए, उनमें से अधिकतर पंजाबमें हिन्दी-प्रचारकी दृष्टिसे ही रखे गए थे। कुछ प्रस्तावोंका सम्बन्ध तो पंजाबके भी थोड़े-से हिस्सोंसे ही था। एक अखिल भारतीय संस्थाके मंचपर इस तरहके छोटे-मोटे प्रस्ताव स्वीकृत होना अधिक शोभा नहीं देता। साधारण प्रस्ताव तो राष्ट्रभाषा या साहित्य परिषदोंमें ही रखे जाने चाहिएँ। सम्मेलनके खुले अधिवेशनमें तो वे ही प्रस्ताव स्वीकृत होने चाहिएँ, जिनका ताल्लुक़ हिन्दुस्तानके कई हिस्सोंसे हो और जिनके बारेमें देशकी जनतामें दिलचस्पी पैदा हो सके। उदाहरणार्थ एक प्रस्ताव द्वारा दिल्ली-यूनिवर्सिटीको बी० ए० ( आनर्स ) में हिन्दी शुरू करनेके लिए धन्यवाद दिया गया। अगर दिल्ली-विश्वविद्यालयने इतने दिनों बाद हिन्दीको उचित स्थान दिया, तो ठीक ही किया; किन्तु इतने-से कार्यके लिए अखिल भारतीय सम्मेलनकी ओरसे बधाई देनेकी आवश्यकता नहीं थी। अगर सम्मेलन इसी तरह छोटी-छोटी बातोंपर प्रस्ताव स्वीकृत करता रहेगा, तो फिर उसके प्रस्तावोंका क्या मान रहेगा?

पंजाबमें हिन्दी-प्रचारके सम्बन्धमें भी मेरी निश्चित राय है कि जिस प्रकार हरएक प्रान्तमें प्रान्तीय भाषा चलती है, उसी प्रकार पंजाबमें पंजाबी ही चलनी चाहिए। पंजाब एक बड़ा सूबा है। वहाँ छोटे-बड़े सभी लोग आपसमें पंजाबी ही बोलते हैं। वह हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभीकी मातृभाषा है। अगर सर सिकन्दर भी घरमें पंजाबी ही बोलते हैं, तो फिर पंजाबीको ही प्रान्तीय भाषाका मान क्यों नहीं दिया जाता? गुरुमुखी-लिपि भी आज सभी लोग जानते हैं। उस लिपिमें कुछ आवश्यक सुधार किए जा सकते हैं। बंगालमें भी तो मुसलमानोंकी संख्या अधिक है। वहाँ तो बँगला ही राजभाषा है, उर्दू नहीं। फिर पंजाबमें पंजाबी क्यों नहीं?

पंजाबमें हिन्दी और उर्दू तो राष्ट्रभाषाके नाते ही सिखलाना उचित है। किन्तु उर्दू और हिन्दीका प्रचार मातृभाषा या प्रान्तीय भाषाके नाते पंजाबमें नहीं करना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि पंजाबके लोग इस बातको समझकर पंजाबी भाषाको अपने प्रान्तमें उचित स्थान दिलानेकी पूरी कोशिश करेंगे।

× × ×

सम्मेलनकी कार्रवाई पं० अमरनाथ झाने बड़ी योग्यता और कुशलतासे चलाई। सभाओंका व्यवस्थित ढंगसे संचालन करनेमें पंडित झा निपुण हैं। प्रयाग-विश्व-विद्यालयके वाइस-चान्सलरकी हैसियतसे उन्हें इस दिशामें पूरा अनुभव प्राप्त हो चुका है। सम्मेलनको उन-जैसा विद्वान और कार्यकुशल अध्यक्ष मिला है, यह सन्तोष और आनन्दकी बात है।

अबोहरमें हिन्दीके कई सुप्रसिद्ध साहित्यिक भी पधारे थे। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी बहुत वर्षों बाद सम्मेलनमें शरीक हुए। वे बुन्देलखण्डके लिए तो टीकमगढ़में सुन्दर काम कर ही रहे हैं; किन्तु अब यदि वे हिन्दी-जगत्के व्यापक क्षेत्रमें भी फिर आ जायँ, तो बहुत हर्षका विषय हो। कविवर पं० माखनलाल चतुर्वेदीकी उप-स्थितिसे सम्मेलनको अच्छी सफलता मिली। उनके दो-तीन भाषणोंका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। भाषण-शैली और सुन्दर, गम्भीर तथा काव्यपूर्ण विचारोंके व्यक्त करनेमें शायद हिन्दी-जगत्में कोई उनकी सानी नहीं रखता। श्री जैनेन्द्रजी भी अबोहर आए थे। उन्होंने भी विविध चर्चाओंमें पूरी दिलचस्पी ली और दो-एक भाषण भी दिए।

× × ×

अबोहर-अधिवेशनका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव था टंडनजीका, जिसमें उन्होंने हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी शब्दोंके प्रचलनका स्पष्टीकरण किया और राष्ट्रभाषा तथा प्रान्तीय भाषाओंके पारस्परिक सम्बन्धका निर्देश किया। श्री टंडनजीका प्रस्ताव भी पत्रोंमें प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तावमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपनी भाषाके लिए "हिन्दी' शब्दका ही प्रयोग कर सकता है। कांग्रेस, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी तथा सरकारी विभाग आदि जो 'हिन्दुस्तानी' शब्दका इस्तेमाल करते हैं, उनसे सम्मेलनका विरोध नहीं है; किन्तु 'हिन्दुस्तानी' शब्दका सम्मेलनमें कोई स्थान नहीं है। महात्मा गांधी, राजेन्द्र बाबू तथा काका साहबकी हमेशा

यह कठिनाई रही कि जो लोग सम्मेलन और कांग्रेस दोनोंमें कार्य करते हैं, वे सम्मेलनमें रहकर 'हिन्दुस्तानी' शब्दका बहिष्कार किस प्रकार कर सकते हैं ? सम्मेलनमें राष्ट्रभाषाको 'हिन्दी' कहें और कांग्रेसमें 'हिन्दुस्तानी', तो जनताके सामने उनकी स्थिति शंकामय होती है। आज 'हिन्दुस्तानी'का अर्थ सरल हिन्दी या सरल उर्दू है। कांग्रेसकी दृष्टिसे हिन्दी भी हिन्दुस्तानी है और उर्दू भी। इसलिए कांग्रेसके कार्यकर्ता सम्मेलनके कार्यमें अगर हिन्दीको हिन्दुस्तानी भी कहें, तो सम्मेलनको आपत्ति नहीं होनी चाहिए, यही गांधीजीका कई वर्षोंसे आग्रह रहा है। इसमें सम्मेलनको कोई भय नहीं होना चाहिए, क्योंकि हिन्दुस्तानीके नामपर हिन्दी-शैलीको कृत्रिम ढंगसे बिगाड़नेका प्रयत्न वर्षोंसे कभी नहीं हुआ। हाँ, अगर स्वाभाविक रूपसे हिन्दी और उर्दू शैलियाँ एक-दूसरेके इतने नज़दीक आ जायँ कि उनमें कोई विशेष अन्तर न रहे, तो किसीको दुःख माननेका कारण नहीं है। यदि पृथक निर्वाचन-पद्धतिके टूट जानेसे और परस्पर शंका तथा अविश्वासका वातावरण दूर हो जानेसे हिन्दू और मुसलमानोंका सामाजिक सम्पर्क बढ़े, तो हिन्दी और उर्दू शैलियोंका वर्त्तमान अन्तर बहुत कम हो जायगा, इसमें शक नहीं है; लेकिन यह तो भविष्यका प्रश्न है। फ़िलहाल तो अगर हिन्दी और उर्दूकी आसान शैलियोंका प्रचार होता रहे और दोनों शैलियोंको हिन्दुस्तानी भी कहा जाय, तो कोई हर्ज़ नहीं है। श्री टंडनजीके प्रस्तावमें यदि यह भाव आ जाता, तो अच्छा होता। महात्मा गांधी श्री टंडनजीके प्रस्तावमें अपने लिए सन्तोषजनक स्थान नहीं पा रहे हैं। शायद सम्मेलनको उनकी तथा राजेन्द्र बाबूकी सेवाओंसे वंचित होना पड़े।

बजाजवाड़ी, वर्धा ]

## बन्दी माँ

श्री श्यामनारायण पाण्डेय

झन-झन-झन माँकी हथकड़ियाँ!
पैरों में हैं बँधी बेड़ियाँ,
गिनती दुख की व्याकुल घड़ियाँ;
कारागृह में झनक रही हैं,
झन-झन-झन माँकी हथकड़ियाँ!

बन्दी अलिनी कमल-कोष से
मुक्त हुई गुन-गुन-गुन गाई;
उषा हँसी अपने आँगन में
चकवा से चकई मुसुकाई॥
तो भी टूट सकीं न अभी तक
पराधीन जननीकी कड़ियाँ।
झन-झन-झन माँकी हथकड़ियाँ!

तोड़ेंगे, हाँ तोड़ेंगे अब,
तोड़ेंगे जननी की कड़ियाँ;
पैंतिस कोटि जनों के सिर की
पद पर रहतीं पड़ी पगड़ियाँ।
तन-तन, मन-मन पर बिखरी हैं
नेताओं की मधु फुलझड़ियाँ।
झन-झन-झन माँकी हथकड़ियाँ!

क्यों रुक गए, कपोलों पर क्यों
बिखर गईं आँसूकी लड़ियाँ;
चलो मन्त्र पढ़ देंगे तिल-तिल,
आगे बढ़ने की हम जड़ियाँ।
देखो अपने-आप टूटतीं
माँ के हाथों की हथकड़ियाँ।
झन-झन-झन माँकी हथकड़ियाँ!

# हिन्दुओंकी सामाजिक स्थिति और वेश्याएँ

श्री यतीन्द्रमोहन दत्त

बंगालकी पिछली मर्दुमशुमारीके दौरानमें यह सुना गया था कि सरकार हिन्दू वेश्याओंकी गणना नहीं कर वायगी। इसपर इन पंक्तियोंके लेखकने जनगणना-विभागके अधिकारियोंसे शिकायत की और इस गणनाका महत्व एवं आवश्यकता समझाते हुए एक प्रश्नावली तैयार करके उनके सामने पेश की। इस प्रश्नावलीके अनुसार कलकत्तेके एक वार्डकी वेश्याओंकी गणनासे जो हालात मालूम हुए हैं, उन्हें सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए यहाँ दिया जा रहा है। यद्यपि इस वार्डमें रहनेवाली वेश्याओंकी संख्या बहुत कम (७९) आई है, जिससे कि इस सम्बन्धमें कोई अन्तिम निर्णय नहीं किया जा सकता; तथापि समाज-शास्त्रकी दृष्टिसे उसका जो महत्व है और इस विवरणसे हमें जो लाभ हो सकता है, उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता।

नीचेकी तालिकामें इन वेश्याओंका जातिगत वर्गीकरण किया गया है। इसका तुलनात्मक अध्ययन करनेके लिए साथमें बंगालकी कुल हिन्दू-आबादीके औसतके आँकड़े भी दिए गए हैं:—

| जाति | संख्या | औसत (प्रतिशत) | कुल हिन्दू आबादी का औसत |
|---|---|---|---|
| ब्राह्मण | १३ | १६·४ | ६·५ |
| कायस्थ | ४१ | ५१·९ | ७·० |
| वैद्य | २ | २·५ | ०·५ |
| सदगोप | ८ | १०·१ | २·७ |
| अन्य | १५ | १९·१ | ८३·३ |

ऊपरकी तालिकासे यह स्पष्ट है कि इन अभागिनियोंमें से सबसे अधिक कायस्थ जातिकी ही हैं। पर यह भी संभव हो सकता है कि उन्होंने अपनी असली जाति छिपाकर ही अपने-आपको कायस्थ लिखवाया हो। ग़ैर-भद्रलोक जातियोंमें से सदगोप जातिकी वेश्याएँ ही अधिक हैं।

दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है उनकी सामाजिक स्थितिका। नीचेकी तालिकामें उनकी इस स्थितिका दिग्दर्शन कराया गया है:—

| | अविवाहित | विवाहित | विधवा |
|---|---|---|---|
| संख्या | ३ | १५ | ६१ |
| औसत | ३·८ | १९·० | ७७·२ |

इस तालिकासे मालूम होता है कि कुल वेश्याओंमें से तीन-चौथाई विधवाएँ हैं, जिनको समाजने या तो पुनर्विवाहके अधिकारसे वंचित कर रखा है या जिनके पास वैधव्यमें जीवन-निर्वाहका कोई अन्य साधन शेष नहीं रह गया है। विवाहिताओंकी संख्या भी नगण्य नहीं है, जिससे स्पष्ट है कि बंगालकी वर्त्तमान विवाह-पद्धति कितनी विफल और त्रुटिपूर्ण है।

तीसरा महत्त्वपूर्ण पहलू उनकी आयुका है। निम्न-तालिकामें बतलाया गया है कि किस उम्रमें उन्हें समाजको तिलांजलि देकर यह हेय वृत्ति स्वीकार करनी पड़ी:—

| आयु | विवाहित | अविवाहि | विधवा | योग |
|---|---|---|---|---|
| १५ से कम | २ | × | × | २ |
| १५ से २० | ५ | ३ | ३९ | ४७ |
| २० से २५ | ८ | × | १९ | २७ |
| २५ से ऊपर | × | × | ३ | ३ |

इस तालिकासे यह आसानीसे जाना जा सकता है कि अधिकांश युवतियाँ—चाहे वे कुमारी हों, चाहे विवाहिता और चाहे विधवाएँ—प्रायः १५ से २० वर्षकी आयुमें घर और समाजको छोड़कर वेश्यावृत्ति स्वीकार करती हैं। १५ वर्षसे कम उम्रकी केवल दो युवतियों (कहना चाहिए बालिकाओं) का इस वृत्तिको स्वीकार करना बाल-विवाहके दुष्परिणामका परिचायक है। विधवाओंके सम्बन्धमें यह नहीं जाना जा सका कि विधवा होनेके कितने दिन, मास या वर्ष बाद वे वेश्या हुईं?

उपर्युक्त आँकड़े हिन्दू-समाजकी आँखें खोलनेवाले हैं। उनसे हमारी सामाजिक स्थितिकी कुरूपता और दुर्बलता स्पष्ट लक्षित होती है। क्या समाजशास्त्री इनसे हमारी दयनीय सामाजिक स्थितिको सुधारनेमें सहायता लेंगे?
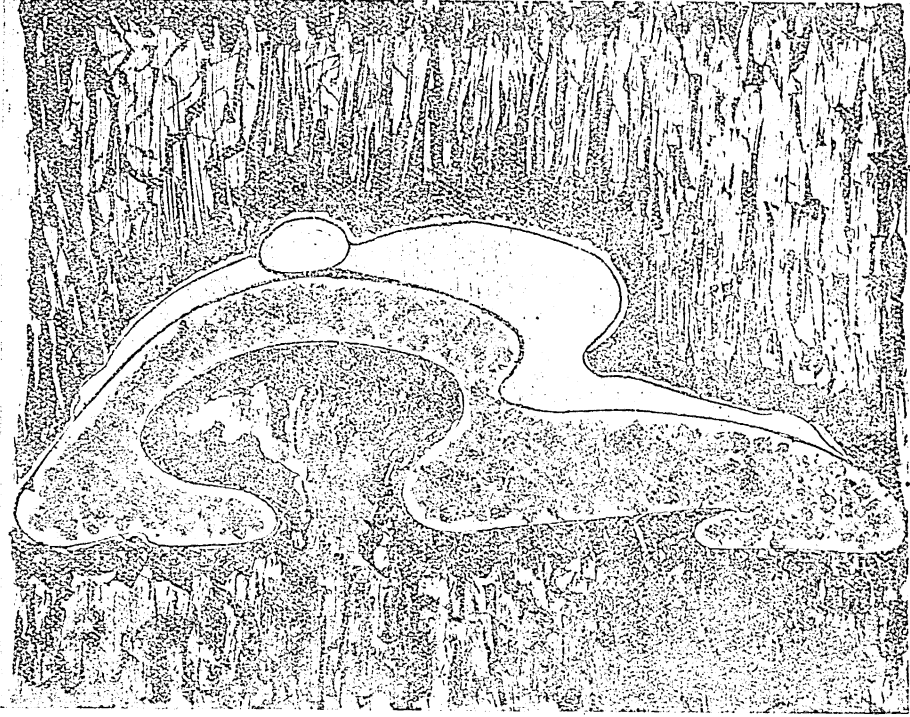
हमारी आँखोंकी चिर-परिचित आकृतियों और रूप-रेखाओंसे भिन्न एक मौलिक आकृति ।
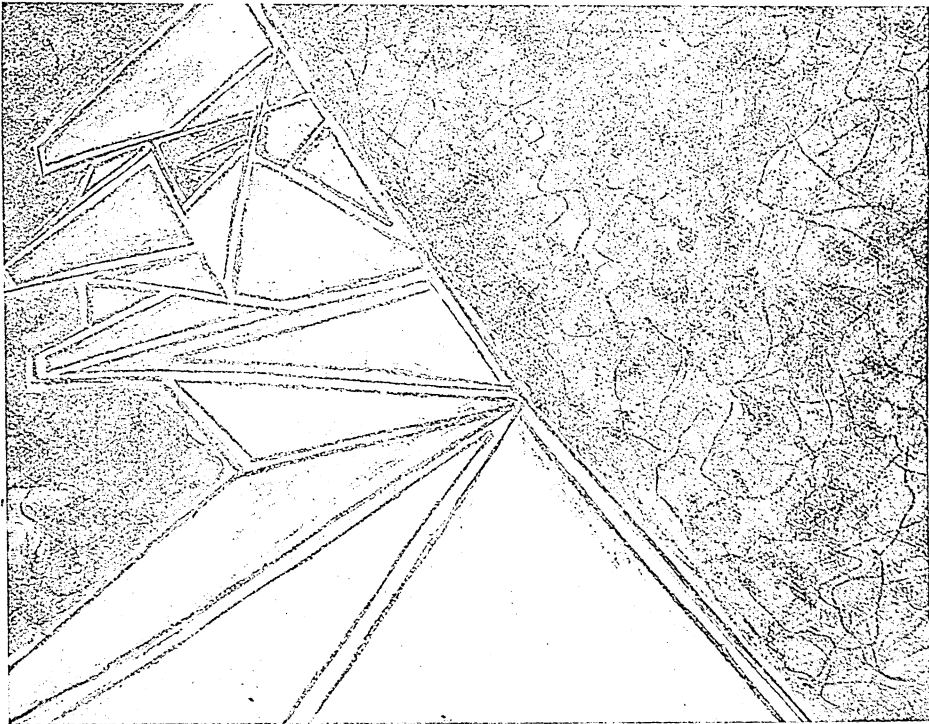
नर या नारी, सुर या असुरकी आकृतिसे साम्य रखनेपर भी यह आकृति अपना उदाहरण स्वयं है ।

[ देखिए पृष्ठ २५७-५९

# रवीन्द्रनाथकी चित्रकलाके कुछ नमूने
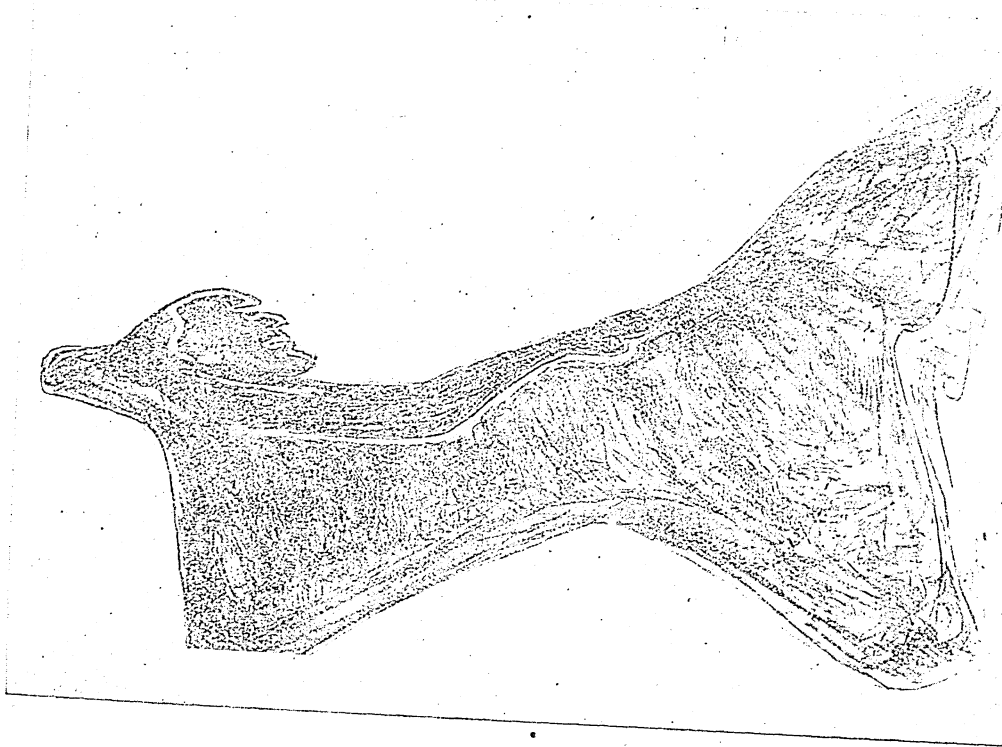
कल्पना और कूचीका एक लापरवाह और स्वच्छन्द खेल।
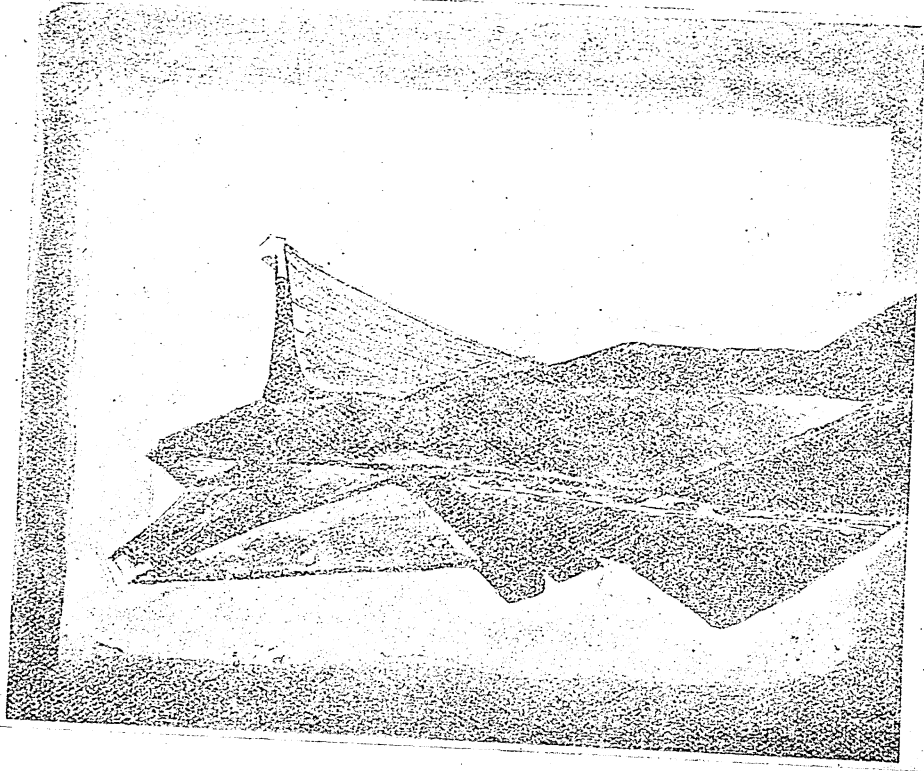
न यह देवी है, न दानवी, और शायद नारी भी नहीं।

[ देखिए पृष्ठ २५७-५९

# रवीन्द्रनाथकी चित्रकला

श्री अर्द्धेन्द्रकुमार गंगोपाध्याय

पिछले कुछ वर्षोंसे साहित्यके विभिन्न क्षेत्रों—जैसे कविता, नाटक, निबन्ध, गीत, कहानियाँ, उपन्यास आदि—में रवीन्द्रनाथकी कृतियोंका संस्कृतिके बढ़ते हुए उपासकों द्वारा—खासकर नई पौधके साहित्य-प्रेमियों और उन लोगों द्वारा जिन्हें पुराने साहित्यका पूर्णतया रसास्वादन करनेके बाद नए दृष्टिकोण और आदर्शों तथा रूप-रेखाके निर्माणकी आवश्यकता महसूस हो रही है—खासा आदर होने लगा है। किन्तु उनकी साहित्यिक कृतियोंके बड़े-बड़े भक्तों और पुजारियों तककी समझमें उनकी चित्रकला नहीं आ रही और कहीं-कहीं तो इसी कारण शिल्पी-गुरु रवीन्द्रनाथके प्रति उनकी आस्थापर भी ठेस-सी लगती हुई देखी गई है। रेखाओं और चिह्नोंके रूपमें लिखी गई कविकी इस कविताके मर्मार्थको वे लोग नहीं समझ सके और इसीलिए रंग-रेखाओंवाली उनकी कृतियोंका उन्होंने विशेष स्वागत नहीं किया। फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड और अमरिकामें रवीन्द्रनाथके चित्रोंका कई बार प्रदर्शन हुआ है, और अनेक विदेशी चित्रकला-पारखियोंने रवीन्द्रनाथकी इस सूक्ष्म कलाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। पर दुर्भाग्यवश हमारे ही देशवासी इसे उतना न सराह सके। कदाचित् इसी कारण रवीन्द्रनाथ अपने साहित्यिक प्रशंसकोंके आगे अपने चित्रोंको रखते हुए बहुत सकुचाते थे। अपनी ७०वीं वर्ष-गाँठके अवसरपर बहुत समझाने-बुझानेपर कहीं जाकर वे कलकत्तेमें अपने चित्रोंको प्रदर्शित करनेके लिए राज़ी हुए। इसके बाद तो भारतके कई नगरोंमें उनके चित्रोंकी प्रदर्शनियाँ हुईं।

साहित्यके अनुशीलनमें हम लोग कुछ इतने अधिक व्यस्त रहे हैं कि कलाकी अन्य रूपोंकी अभिव्यंजनासे हम एकदम अपरिचित-से हो गए हैं और रंग-रेखाओंकी कलाका ककहरा तो जैसे बिल्कुल भूल ही गए हैं। हममें कलाके सिद्धान्तकी अज्ञता इतनी बढ़ गई है कि हम उसे साहित्यसे अलगकी चीज़ समझने लगे हैं। इस अज्ञताको शिल्पी-गुरु श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके नेतृत्वमें गत १२-१४ वर्षोंसे बंगालमें होनेवाली आधुनिक चित्रकलाकी सृष्टि भी दूर नहीं कर सकी है। यह स्थिति बड़ी विषम है। जब हममें से अधिकांश इस आधुनिकतम चित्रकलाके प्रभाव और महत्वको—जिसे पेरिस, बर्लिन और न्यूयार्कके कलाविदोंने स्वीकार किया है और जो आज भारतके कोने-कोनेमें फैल चुका है—लम्बी उपेक्षाके बाद स्वीकार कर चुके हैं, तो कवि-गुरु रवीन्द्रनाथकी इस कलाके प्रति उदासीन रहना किसी भी दशामें उचित नहीं। अतः हमारे लिए यह अनिवार्य-सा हो गया है कि हम रेखाओंके
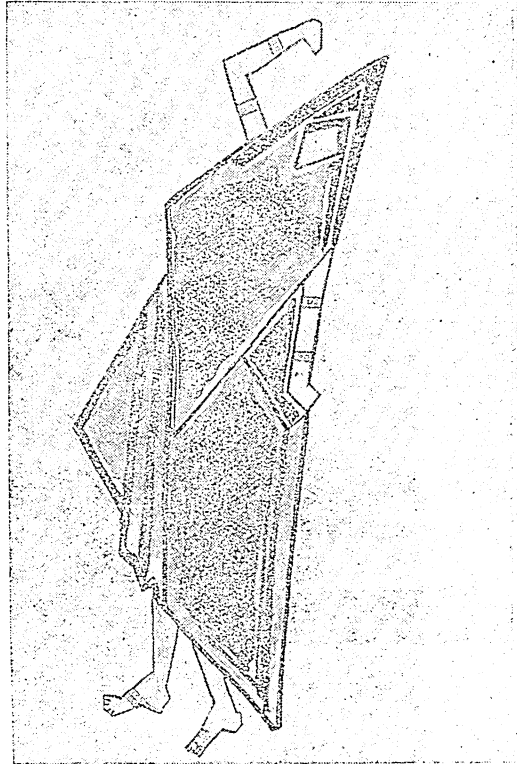
रवीन्द्रनाथका एक चित्र, जो अपनी उपमा स्वयं है।

मूल सिद्धान्तों और उनके स्रोतको समझें। पर यह काम इतना आसान नहीं है। आनन-फ़ाननमें हम चित्रकलाकी भाषा तथा उसकी रूप-रेखाको भलीभाँति समझकर कवि-गुरुके चित्रोंकी—जो हमारी अनभ्यस्त आँखोंको टेढ़े-मेढ़े, भद्दे और बेमानी घसीटे-से लगते हैं—ठीक-ठीक सराहना करने लगें और इस प्रकार अपने-आपमें 'सौन्दर्य-दृष्टि' पैदा कर सकें, यह सम्भव नहीं है।

किसी भाषाकी वर्णमाला, शब्दमाला और व्याकरण सीखनेके लिए हमें वर्षों परिश्रम करना पड़ता है। तब कहीं जाकर हम उस भाषाके वातावरणमें पैठकर उसकी श्रेष्ठ कृतियोंसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं—चाहे वह संस्कृत काव्य हो या यूनानी नाटक या चीनी चित्रकला। किसी भी भाषाको सीखनेके लिए पहली ज़रूरी बात यह है कि हमें उसके प्रति अपनी सारी भ्रान्त धारणाओं और शंका-सन्देहोंको छोड़कर जिज्ञासु और आदरका भाव ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार कलाकी किसी ऐसी अभिव्यंजनाको समझने और सराहनेके
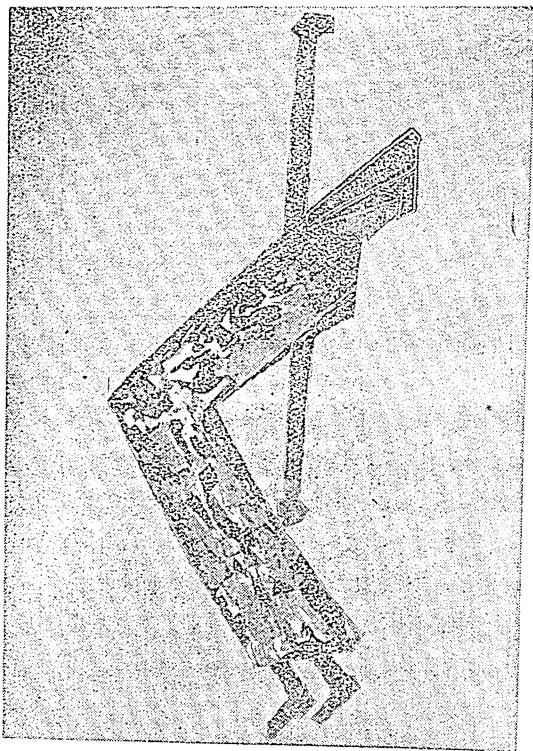
रवीन्द्रनाथका एक अन्य चित्र।

लिए—जिससे कि हम अपरिचित हों—कठोर अवमानना नहीं, बल्कि पूजाकी भावनासे देखना चाहिए; प्रश्नोंकी झड़ी न लगाकर हमें उसके सन्देशको चुपचाप सुनने और समझनेकी चेष्टा करनी चाहिए। चित्रोंको अपनी बात सुनानेके बजाय हमें चित्रोंकी बात सुननी चाहिए।

कविके चित्रोंसे सबसे पहली और स्वाभाविक बात हमें यह मालूम होती है कि वे प्रकृतिकी मौजूदा रूप-रेखाकी सजग प्रतिकृतियाँ ही नहीं हैं। हमारी किसी भी चिर-परिचित आकृति, ढंग या रंग-रूपकी वे सस्ती या हू-ब-हू नक़ल, उसका चित्रण या पुनरावृत्ति नहीं हैं। यदि उनका फूलों, पशु-पक्षियों य मनुष्योंकी आकृतियोंसे थोड़ा-बहुत साम्य है, तो यह सर्वथा आकस्मिक है—जान-बूझकर उन्हें ऐसा बनाया नहीं गया है। सच पूछा जाय, तो वे किसी निश्चित रूप-रेखा या आकृतिके बनाए जानेके उद्देश्य या इरादेसे कदापि नहीं खींचे गए। वे कूचीके आकस्मिक, निश्चिन्त और लापरवाहीसे अपने ही ढंगपर आलेखित कुछ चित्र हैं—वे स्वतन्त्र लेखनीकी वह उपज हैं, जो उसने बिना किसी नियम या उद्देश्यके काग़ज़पर स्वच्छन्द रूपसे चलकर बनाई है। पर अस्लियतमें ये अर्द्ध-चेतन मन द्वारा स्वाभाविक सौन्दर्य-बोधके वशीभूत होकर सौन्दर्यकी नई रूप-रेखाकी खोजमें की गई यात्राका परिणाम है। इन आकस्मिक चित्रोंके स्वभाव और श्रेष्ठताको जाननेके लिए उन्हें उनसे मिलती-जुलती प्रत्याकृतियोंके धरातलपर न देखकर उनके मोड़ और बाँकपनसे व्यक्त होनेवाले उनके सौन्दर्य-भावकी दृष्टिसे देखना होगा। हमें उन्हें उनकी अन्तर्रेखाओंके स्वाभाविक मिश्रण और उनको रूप-रेखाकी विशिष्टताकी दृष्टिसे उन्हें तौलना होगा। अतएव हमें समझ लेना चाहिए कि रवीन्द्रनाथकी इन कला-कृतियोंको हमें उनके अपने गुणों, उनकी अपनी आकृतियों, उनके अपने उद्देश्य या उपयोगिता और सौन्दर्यकी एक नई प्रतिकृति प्रस्तुत करनेकी उनकी अपनी योग्यताके दृष्टिकोणसे देखना है। किसी भी विचित्र रेखा या मनमाने ढंगसे बनाई गई वक्र-रेखाका अपना वैशिष्ट्य—जो किसी भी निर्दिष्ट अथवा परिचित रूप-आकृतिकी न हो—आँखको उससे प्राप्त होनेवाले मनोवैज्ञानिक आनन्दसे ही जाना जा सकता है, क्योंकि वे रेखाएँ बिना किसी प्रकट 'अर्थ' या दृश्य महत्वके अपनी सौन्दर्य-साधनाके मूक सामंजस्यके साथ अपने पथपर बड़े सुहावने ढंगसे बढ़ती हैं। ऐसी आकृतियोंसे किसी विचार-विशेषका प्रकटीकरण नहीं होता; वे तो कल्पनाके स्वाभाविक सामंजस्यका विशिष्ट रूप हैं, जिनमें संगीतकी भाँति ही आकारका सौन्दर्यमय रूप भी निहित है। यदि इन रेखा-चित्रोंकी तुलना हम साहित्य या संगीतके किसी विशिष्ट रूपसे करने लगें, तो हमें कहना होगा कि वे प्रथम तो रहस्यमयी पदावली और ऐसी प्राचीन लोरियाँ हैं, जिनका कोई विशेष अर्थ तो नहीं है, पर बच्चोंको सुलानेके लिए जिनका दीर्घकालसे उपयोग होता रहा है। द्वितीय रूपमें हम उन्हें भारतीय संगीतके 'तराने' ( तेलाना ) कह सकते हैं, जिनके शब्दोंका कोई ख़ास अर्थ तो नहीं होता, पर वे ताल-सुर-मय पद्योंमें गुँथे होनेके कारण कर्ण-मधुर लगते हैं।

इन चित्रोंकी सबसे पहली विशेषता यह है कि इनमें बाल-सुलभ सरलता तथा स्वाभाविक कल्पना और अन्तर्दृष्टि है। कविके बौद्धिक विकास और सुसंयत सांस्कृतिक दृष्टिकोणको देखते हुए यह बात शायद कुछ विरोधात्मक मालूम हो; पर वास्तवमें ये जाग्रत बुद्धि और सुसंयत सांस्कृतिक दृष्टिकोणकी रचनाएँ न होकर उस मानसिक लापरवाही और पागलपनकी घड़ियोंकी कृतियाँ हैं, जब कि बुद्धि और संस्कृतिका बोध और शक्तियाँ सो जाती हैं और कलाकारकी अर्द्धचेतन एवं असंयत भावनाएँ कल्पना द्वारा उन सुन्दरियोंकी सृष्टि करती हैं, जो अपने बाल-सुलभ खेलों द्वारा कलाकारके स्वप्नोंका एक विचित्र मौलिकता और सौंदर्य-बोध-युक्त ताना बाना बुन देती हैं।

इन चित्रोंको समझनेमें प्रधान कठिनाई यह होती है कि इस्लामी कलाके आरब्य रेखा-चित्रोंकी भाँति ये किसी विशेष पदार्थके प्रतिनिधि-रूप नहीं हैं। इनसे ऐसी मानव और पशु आकृतियोंका आभास ज़रूर होता है, जो शायद कभी सम्भव न हो सकें। अपनी प्रारंभिक भ्रूणावस्थामें ये कुछ अपरिचित-सी आकृतियाँ होती हैं; किन्तु बादमें जब उनमें अन्य अंग जोड़ दिए जाते हैं, तो वे किन्हीं प्रकृत रूपोंकी ऐसी प्रेताकृतियाँ-सी मालूम पड़ती हैं, जो काल्पनिक और यथार्थ रूपोंके बीचकी स्थितिमें हों। किन्तु जब उन्हें अन्तिम रूप दे दिया जाता है, तो वे वास्तविक प्रकृत रूपसे अधिकाधिक हटकर एक अवास्तविक और धुँधले स्वप्नके अधिकाधिक निकट पहुँच जाती हैं। कभी-कभी एक पक्षीकी आकृति पूरी होती-होती एक खिले हुए विचित्र फूलका-सा रूप धारण कर लेती है और कभी इसका उलटा। कभी-कभी एक पौधे या सीपके रूपमें आरम्भ हुई एक आकृति बीच ही में जैसे अपना इरादा बदल लेती है और प्राणिशास्त्रके सब नियमोंकी उपेक्षाकर अपने अन्तिम रूपमें मानवाकृति बन जाती है। एक पुष्पका-सा रूप ग्रहण करती हुई आकस्मिक आकृति न मालूम किन टेढ़े-मेढ़े मार्गोंसे चलती-चलती एक ऐसा विचित्र और अपरिचित रूप धारण कर लेती है, जिसका हमारे चिर-परिचित मानव या पशु-जगत्से कोई सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार ये काल्पनिक आकृतियाँ वास्तविक और अवास्तविक आकृति-जगत्के बीचमें स्वच्छन्द विचरण करती हैं। कभी ये परिचित और पूर्ण आकृतियोंका आलंकारिक रूप धारण कर लेती हैं और कभी उस भद्दी तथा अपरिचित रूप-रेखाका जामा पहन लेती हैं, जिनसे अच्छा रूप कवि और कलाकारकी तर्क-बुद्धिने इन्हें देना ठीक नहीं समझा।

जिन्हें रेखा-कृतियोंके सौंदर्य-बोधको समझनेका अभ्यास है, जिनमें वक्र-रेखाओंके संगीत और पुलकको सराहनेकी क्षमता है, उन्हें गुरुदेवके चित्रोंमें कल्पनाके गुणोंका ताज़ा आकर्षण और नई-नई आकृतियाँ बनानेकी क्षमताका स्पष्ट अनुभव हुआ है। कारण, एशियाकी भाँति यूरोपमें भी आधुनिक कलाकारको न केवल बने हुए मार्गों और प्रकृतिकी निश्चित रूप-रेखाओंको छोड़कर चलनेका स्वाभाविक अधिकार है, बल्कि यह अधिकार भी है कि वह अपने सौंदर्य-बोधके स्वप्नों द्वारा कल्पनाकी सहायतासे नई आकृतियाँ और रूप-रेखाएँ बनानेमें प्रकृतिसे प्रतियोगिता करे। ब्रह्माके उत्तराधिकारी विश्वकर्माको नई आकृतियाँ बनानेका जो अधिकार है, वह केवल सौंदर्य और ताल-लयकी कसौटीपर ही कसा जा सकता है।

एशियाकी चित्रकलाके विविध रूपों—असीरियन, भारतीय, चीनी, ससानी और पोलिनेसियन आदि—की भौतिक कृतियोंकी असीम विविधताकी अधकचरे लोगोंने एक युगसे उपेक्षा की है। चित्रकलाके वास्तविक और प्रतिनिध्यात्मक रूपोंके हम कुछ इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि उनकी संकीर्ण परिधिकी ग़ुलामीने इस विविधताके महत्वको बहुत कुछ नष्ट कर दिया है। इस दृष्टिसे अभिव्यंजनाके क्षेत्रमें कविकी ये मौलिक कृतियाँ जहाँ एक ओर हमें आकृतियोंके स्वार्थात्मक महत्वको समझनेमें सहायता पहुँचाती हैं, वहाँ दूसरी ओर वे हमारी उस भ्रान्त धारणाको भी दूर करती हैं, जिसके अनुसार हम कलाको केवल प्रकृत आकृतियों एवं दृश्योंकी नक़ल-मात्र बना या समझ बैठे हैं।

आधुनिक संस्कृतिके बहिष्कृत लोग और चित्रकलाके पुनर्जागरणके सन्देशवाहक उपेक्षित कलाकार इस बातपर प्रसन्नतापूर्वक गर्व कर सकते हैं कि चित्रकलाके क्षेत्रमें रवीन्द्रनाथ-जैसे महान कलाकारका प्रवेश उनके लिए एक बहुत बड़ी नैतिक विजय है। कारण, यद्यपि चित्रकलाके विकासोन्मुख प्रवाह द्वारा वे कला-प्रेमियोंको तो नहीं जीत सके, पर उनके महान कविपर अवश्य उन्हें विजय प्राप्त हुई।
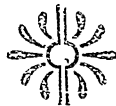
# आधुनिक शिक्षा

श्री झुमुकलाल श्रीवास्तव

संसार आज जिस भोगवादके प्रबल प्रवाहमें आकण्ठ डूबा बहा जा रहा है, उस भोगवादका आधुनिक शिक्षापर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। विद्यावान सदा आदरका पात्र समझा गया है। अतएव भोगवादका शिक्षापर प्रभाव पड़ा है। चूँकि आदर या प्रशंसा भी भोग ही है, इसलिए आदरकी आकांक्षा आगे आ गई है और विद्या पीछे रह गई है। प्रसिद्धिकी भूख जाग उठी है और सिद्धिकी उपेक्षा हो रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि किसीने एक कण पाया नहीं कि विद्याका भाण्डार बन मस्त हो फूल गया। किसीने बड़ाई की नहीं कि आत्म-श्लाघा जागरित हो गई और दुनियामें बेवकूफ़ोंकी संख्या बढ़ती हुई दिखाई देने लगी। इसीलिए आजकल कुछ विद्या-सम्पन्न तो मिल भी जायँगे; लेकिन विनय-सम्पन्न नहीं मिलेंगे।

लेकिन आदरका औचित्य साबित करनेके लिए कुछ न कुछ विद्या तो अवश्य रहनी ही चाहिए। शिक्षाका प्रधान उद्देश्य मनुष्यमें पहलेसे ही विद्यमान अव्यक्त पूर्णताको व्यक्त या जागरितकर उसे पूर्णांश बना देना है। किन्तु पूर्णता प्राप्त करानेवाली वास्तविक विद्या तो बहुत परिश्रम, कठोर संयम-नियम और जन्म-जन्मान्तरकी लगन चाहती है; अतएव आजके यशोलिप्सु, अधीर, परिश्रमसे जी चुरानेवाले विद्यार्थीके हितार्थ शिक्षाकी गति मस्तिष्क तक ही पहुँच पाती है। परिणाम-स्वरूप एक बुद्धिवादने ज़ोर पकड़ा है। वर्तमान शिक्षा शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक पक्षोंको छोड़कर केवल मस्तिष्कीय बनकर बुरी तरह एकांगी हो गई है। शरीरसे दुर्बल भी परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकता है और चरित्र-भ्रष्ट भी प्रथम श्रेणीमें पास हो सकता है। बुद्धिवादकी यह तासीर है कि वह सर्वत्र सारको छोड़कर असारमें ही रुचि रखता है। यदि धर्म, नीति, दर्शन आदिकी शिक्षा दी भी जाती है, तो अमुक सिद्धांत ही मस्तिष्कमें ठूँस दिया जाता है। मस्तिष्कके बाहर जीवनमें व्यवहारमें न आनेके सबबके भिन्न-भिन्न विषयमात्र हैं। कोई प्रोफ़ेसर यह सिद्ध करनेके लिए कि शेक्सपियरके नाटक वास्तवमें उसके लिखे हुए नहीं हैं, बल्कि बेकन या अन्य किसीके लिखे हुए हैं, किसी सभामें, जहाँ उसके व्याख्यानकी व्यवस्था की गई है, १०-२० किताबोंका बण्डल लेकर पहुँचता है और किसीमें से फ़ोटो दिखाकर और किसीमें से कोई अंश पढ़कर श्रोताओंको एक अद्भुत विषयपर चमत्कारिक व्याख्यान सुनाकर अपने अध्ययनकी गहराईसे चकित कर देता है। इतिहाससे प्राचीन जीवन-प्रणालीका अन्वेषण करना छोड़कर किन्हीं ऐतिहासिक तारीख़ोंपर कभी-कभी काफ़ी बहस छिड़ जाती है। इस तरह खाना छोड़कर पेड़ गिननेकी प्रवृत्ति बुद्धिवादका अनिवार्य परिणाम है। बहुत तो दुनियाके सम्मुख हमेशा कोई एकदम नवीन अभूतपूर्व चीज़ रखनेके आदी पाए जाते हैं।

आधुनिक शिक्षाके खोखले आदर्शोंका भारतीय संस्कृतिपर विचित्र प्रभाव पड़ रहा है। इस शिक्षासे शिक्षित भारतीयोंको आज हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-धर्ममें ग़लतियाँ ही ग़लतियाँ दिखाई दे रही हैं। जब हम स्वयं अपनी संस्कृतिकी खिल्ली उड़ाने लगते हैं, उस वक्त हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारी दास-मनोवृत्ति सीमाको लाँघ गई है। आज देशवासियोंने एक उच्छिष्ट दृष्टि-कोणको अपना लिया है। कहा जाता है कि यह बीसवीं सदी है। उन्नतिका युग है। बीसवीं सदीके विद्वानोंकी सर्वज्ञतामें किसीको कोई सन्देह नहीं करना चाहिए। पुराने लोग जिन बातोंका स्वप्नमें भी ख़याल नहीं कर सकते थे—समझनेकी तो बात ही क्या—आज वही बातें (समाजवाद, प्रजातन्त्रवाद आदि) उन्नतिशील मनुष्योंका पथ-प्रदर्शन कर रही हैं। इन बातोंको सुनकर मालूम तो ऐसा होता है कि दिमाग़वाले आदमी इस बीसवीं सदीमें ही पैदा हुए हैं। वस्तुतः यह मनोवृत्ति बुद्धिवाद द्वारा जागरित आत्मश्लाघाका ही परिणाम है।

बुद्धिवादकी प्रबलताने मनुष्यकी हार्दिकताको कम कर दिया है। हृदयकी चीज़—ललित-कला—भी धीरे-धीरे बौद्धिक बनती जा रही है। आधुनिक पाश्चात्य साहित्यके बड़े-बड़े पोथे पढ़ डालिए, लेकिन हार्दिक प्रसन्नता, लोकोत्तर आनन्द शायद ही किसीमें मिले। हृदयकी यह अवहेलना मनुष्यको सहानुभूति-रहित, कठोर, चालबाज़ और पाखण्डमें प्रवीण बनाती जा रही है। यही कारण है कि किसी सहृदयके आगे कभी-कभी यह विचार आज उपस्थित हो जाता है कि साहित्य और जीवन अलग-अलग चीज़ें क्यों हैं?

# गाँवका कीर्त्तन

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

पौषका महीना और तकलीफदेह जाड़ेकी सर्द शान्त, गम्भीर, उदास रात थी। कीर्त्तनकी तैयारियाँ हो रही थीं। ग्यारह बज चुके थे। एक किसानकी झोंपड़ीके समीप शामियाना तना था। धरतीपर जाज़म और दरी बिछी थी। शामियानेके बीचों-बीच तीन-तीन या चार-चार हाथके फ़ासलेपर केलेके चार थम्भ गड़े थे, जिनके ऊपरी पत्तोंको मोड़कर महराब बना दी गई थी। उनपर अशोक और तूनके पत्ते लटक रहे थे और ऊपरसे कोढ़िलेके चौकोर कटे हुए कुछ सफ़ेद फूल, जो लैम्पकी रोशनी पड़नेसे गोल-गोल तारेके सदृश जगमगा रहे थे, उनकी ख़ूबसूरतीको चार चाँद लगा रहे थे। थम्भोंकी परिधिके केन्द्रमें दो चौकियाँ बिछी थीं—एक बड़ी और एक छोटी। दोनों चौकियोंपर रंगीन कपड़ेकी सुन्दर चादरें बिछी हुई थीं। बड़ी चौकीकी पीठपर छोटी चौकी रखी थी और उसपर थीं 'सीता-राम'की दो भव्य मूर्त्तियाँ। श्रद्धालु दर्शकोंमें औरतोंके बजाय मर्दोंकी तादाद ज़्यादा थी, जो बड़ी भक्तिके साथ कीर्त्तन-मंडलीके इन्तज़ारमें आँखें बिछाए बैठे थे। सब श्रद्धा और प्रेमके नशेमें गर्क़ थे। हरएकके दिलमें उमंगकी गंगा-सी उमड़ रही थी। चारों ओर अजीब चहल-पहल थी। इस समयका सारा समा किसी परिस्तानी दुनियाकी याद दिलाता था।

थोड़ी ही देरमें कीर्त्तन-मंडली भी आ गई। 'सीता-राम'की जयके बुलन्द नारेसे गाँवका निस्तब्ध वातावरण गूँज उठा। मंडली आठ-दस तरुणोंकी जमात थी, जो अंडाकार बैठ गई। बीचमें ढोलक, हारमोनियम, चाँदखोल, बेला, झाल और क्लारनेट थे। जमातका सरदार तालबद्ध गतिसे नृत्य करता हुआ गाने लगा। उसके माथेपर लम्बे-लम्बे बाल थे और पैरोंमें पायल। उसकी गाई हुई कड़ियोंको उसके बाक़ी शागिर्द भी दोहराते जाते थे। नृत्यके समय वह कभी अपने पाँव पीछे हटा लेता और कभी आगे बढ़ाता। कभी वह बड़े कलात्मक ढंगसे हँसता और कभी नाचता-नाचता लचक जाता। कभी वह बड़े वेगसे चाककी तरह घूम जाता, तो कभी अपने हाथ उठाकर विभिन्न प्रकारके भाव दिखलाता। वह गा रहा था :—

> भजन विनु बैल बिराना कहएवा।
> तेलिया के घर बरदा होएवा,
> आँख में खोलसा बन्हएवा,
> चलते - चलते ओरो न पएवा—
> नाहक चाबुक खएवा। भजन विनु० ॥
> धोबियाके घर गदहा होएवा,
> तीन टाँग छनवएवा,
> नरक - पाप सब घाट पहुँचएवा,
> गढ़लो घास न खएवा। भजन विनु० ॥
> कलन्दर के घर बन्दर होएवा,
> नाक - कान छेदवएवा,
> भरल सभा में दाँत चिआरवा,
> माँगलो भीख न पएवा। भजन विनु० ॥
> पंछी में तू काग कहएवा,
> मरलो मांस न खएवा,
> सूखल हाड़ जहाँ कहीं पएवा,
> हनि-हनि चोंच चलएवा। भजन विनु० ॥

अर्थात्—भजन नहीं करनेसे तुम परायेका बैल कहलाओगे, और (मरनेके बाद) तुम तेलीका बैल बनोगे। तुम्हारी दोनों आँखोंमें 'खोलसा' (चमड़ेका अन्ध पर्दा) बाँध दिया जायगा और कोल्हूके इर्द-गिर्द चक्कर लगानेपर भी तुम्हें मार्गका अन्त नहीं मिलेगा। (इस प्रकार) तुम बेकसूर ही चाबुककी चोट खाओगे। हाय! भजन नहीं करनेसे तुम परायेका बैल कहलाओगे!

रे मूढ़! तुम धोबीके घरका गधा होगे। तुम्हारे तीन पाँव बन्धनमें जकड़ दिए जायँगे और तुम अपनी पीठपर नर्क और पापका गट्ठर ढोकर घाट पहुँचाओगे। तुम्हें गढ़ी हुई घास भी खानेको नहीं मिलेगी। हाय! भजन नहीं करनेसे तुम परायेका बैल कहलाओगे!

(इतना ही नहीं,) तुम कलन्दरके घर बन्दर होकर

जन्मोगे! तुम्हारे नाक-कान छेद दिए जायँगे, और तुम भरी हुई सभामें दाँत निपोरोगे ; ( फिर भी ) तुम्हें माँगी हुई भीख नसीब नहीं होगी। हाय! भजन नहीं करनेसे तुम परायेका बैल कहलाओगे!

काश, तुम्हें पंछीका चोला मिला, तो तुम काक होते। तुम्हें मृत जानवरका मांस भी नहीं मिलेगा। हाँ, (घुणाक्षरन्यायवत्) कभी तुम्हें सूखा हाड़ मिल जायगा, और तुम (क्षुधातुर) हो उसपर कस-कसकर चोंचका प्रहार करोगे। हाय! भजन नहीं करनेसे तुम परायेका बैल कहलाओगे!

गायक सरोष नेत्रोंसे घूरता हुआ संकेत करता—'ताल तालसे बजाते चलो, लय नहीं छूटे।' सरदारकी दर्प-भरी फटकारसे उसके शागिर्द बीच-बीचमें सावधान हो जाते। उनकी कोमल और मस्त तान वाद्य, ताल और आलापके साथ मिलकर रातके धुँधले सन्नाटेमें गूँज रही थी। लैम्पके टिमटिमाते प्रकाशमें सारी महफ़िल समाधिस्थ पुजारिनकी तरह मन्त्र-मुग्ध बैठी थी—जैसे भौतिक हलचल निर्लिप्त भावसे अपनी हेमवती मायाको समेटकर यहाँसे दबे पाँव खिसक गई हो!

गाते-गाते वह कहने लगा—'पहले-पहल श्री गौरांग महाप्रभुने, जिनकी जन्मभूमि पतितपावनी गंगाके किनारे कलकत्तेसे साठ मील दूर नवद्वीपमें थी, भारत-भ्रमणकर कीर्त्तनका प्रचार किया। नवद्वीप वैष्णव धर्मका प्रधान तीर्थ और बंगालमें प्राचीन संस्कृतिका उद्गम-स्थान है। तबसे बराबर कीर्त्तनका नन्हा-सा संसार भगवान वामनकी तरह अपने डग बढ़ाता गया और ज्यों-ज्यों इसके जीवनकी फुलवारी गुलज़ार होती गई, इसे गौरवका चन्द्र-किरीट पहनानेमें लोक-हृदय अनुरागकी लालिमा छिटकाता गया। अकेलेपनकी डिबियामें बन्द इसकी विजनता अब तो लोकप्रियताका विहाग बनकर बिखर पड़ी है। रामनगरका सुग्गा मायाके बाज़ारमें आकर खो गया है। जिसने कल्पफलकी मिठास चख ली है, वह सेमलका फूल किस तरह चखे?' सुनिए :—

कओने नगरियासे सुगना एक उड़लइ,
भुलाइ गेलइ ना ;
कओने माया हो बजरिया—
भुलाइ गेलइ ना ?
रामे नगरियासे सुगना एक उड़लइ
भुलाइ गेलइ ना ;
एहि माया रे बजरिया—
भुलाइ गेलइ ना।
कलप मिठास चखि कइसे रे सुगना
रे कइसे के ना ?
खयतइ सेमर के फूलवा
रे कइसे के ना ?

अर्थात्—किसी नगरसे एक सुग्गा उड़ा और उड़कर अपना मार्ग भूल गया! हाय! मायाके किस बाज़ारमें वह भूल गया? रामनगरसे एक सुग्गा उड़ा और उड़कर अपना मार्ग भूल गया। हाय! दुनियाकी मायाके बाज़ारमें वह भूल गया। वह सुग्गा, जिसने कल्पफलकी मिठास चख ली है, हाय! वह किस तरह सेमरका फूल चखे?

मैं शाब्दिक चक्रव्यूहमें आस्था नहीं रखता। लोक-साहित्यकी भाषा कंठकी नहीं, टूटे हुए कलेजेकी होती है, जो पाठकोंके दिलमें बरछीकी तरह चुभाकर शीशेकी गोलीके माफ़िक घाव कर देती है। उसके कलेजेके समुन्दरमें काव्यके कितने आबदार मोती भरे हैं, इसे अरसिक दुनिया क्या महसूस करे? कल्पफलकी मिठास चख लेनेके बावजूद भी सुग्गा सेमरके फूलपर कुर्बान क्यों हुआ? यह नादानी न होती, तो वह मायाके बाज़ारमें ठोकरें क्यों खाता? वह नादानी भी तो ठीक नहीं, जो काग़ज़के पत्तेको पारिजातका फूल मान बैठे? डोरेमें उलझकर हिराको छोड़ दे? आँखें रूपकी नक़ली कलई क्यों नहीं ताड़ लेतीं? इसमें क़सूर किसका? आँखोंका या आँखोंके कारीगरका? कारीगर तो बेक़सूर है। प्रोफ़ेसर हेल्म होल्टनके शब्दोंमें—'मैं अपनी आँखोंको लौटा नहीं सकता। मैं इतने दोष होते हुए भी इनको जितने दिन हो सकेगा, रखनेके लिए प्रसन्न होऊँगा।' तो आँखें ही कसूरवार हुईं। फिर कोई सुझायका नहीं कि वे अपने कियेका फल न चखें।

कहते हैं, पहले कीर्त्तनके गीतोंकी जरख़ेज़ ज़मीनपर लोक-भावनाकी रंगीन केसर नहीं उपज सकी थी, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणोंसे भी प्रत्यक्ष है। उनके घुमड़ते हुए कड़खे आध्यात्मिक भावुकता और बेतुके मोजज़ो (Miracles) के सूनेपनमें चारों ओर मँडराया करते थे। पर रफ़्ता-रफ़्ता लोक-मानसके सुख-दुःखकी धूप-छाँह भी इन गीतोंमें उतरती गई।

दानवी ताड़का और पाषाणी अहिल्याका उद्धार करनेके बाद राम-लक्ष्मण कौशिल्यासे इजाज़त लेकर जनकपुरकी प्रधान सड़कोंसे गुज़र रहे हैं। मिथिला नगरकी चित्र-विचित्र अट्टालिकाओंकी जालीदार मुँडेरने उनके दिलपर रंगीन डोरे डाल दिए हैं। ताम्र और रजत वर्ण राम-लक्ष्मण दोनों दाएँ-बाएँ जनकनगरकी चिकनी डगरपर धीरे-धीरे जा रहे हैं और औरतें खिड़कियोंकी ओटसे उन्हें विमुग्ध-सी देखती हुई परस्पर घुल-मिलकर बातें करती हैं :—

मिथिला नगरियाकी चिकनी डगरिया
सखि, धीरे - धीरे,
चले जात दुनु भइया, से धीरे-धीरे !
दाएँ-बाएँ गौर-श्याम,
ठुमुक धरत पांव, सखि धीरे-धीरे !
विहरत शहर डगरिया, से धीरे-धीरे !
निरखत धवल धाम
हरखि कहि-कहि ललाम
चितवत कलस अटरिया, सखि धीरे-धीरे !
देखन मह देव-योग,
हँसि-हँसि कहत लोग, सखि धीरे-धीरे !
जादू-भरी नजरिया, सखि धीरे-धीरे।

अर्थात्—

मिथिला नगरकी चिकनी डगरपर—
जा रहे री सखी, धीरे-धीरे !
दोनों भाई—दाएँ-बाएँ,
साँवले और गोरे ;
राम और लक्ष्मण ;
री सखी, थम-थम कर उठाते हैं पाँव, धीरे-धीरे !
शहरकी गली-गली और डगर-डगरमें
विहर रहे हैं, री सखी, धीरे-धीरे !
लो, घूर-घूर कर निरख रहे हैं,
धवल प्रासादोंको,—
और उसके लावण्यकी दाद दे रहे हैं
पुलक-पुलककर !
हो रहे हैं एकटक अट्टालिकाओंकी मुँडेरको
अपनी चितवनसे, री सखी, धीरे-धीरे !
लोग हँस-हँसकर कह रहे हैं—
देवताके तुल्य हैं वे देखनेमें।
आह, उनकी आँखें जादू-भरी हैं, री सखी, धीरे-धीरे !
आह, उनकी आँखें जादू-भरी हैं, री सखी, धीरे-धीरे !

पहाड़के खुरदरे ऊबड़-खाबड़ मार्गपर तो डग रुक-रुककर ही बढ़ सकते हैं ; लेकिन जनकपुरके मख़मल-से मुलायम डगरपर राम-लक्ष्मणके क़दम थम-थमकर आहिस्ता आहिस्ता क्यों पड़ रहे हैं ? उनकी जादू-भरी निगाह टटोल-टटोलकर किस किन्नरीकी टोह ले रही है ? अट्टालिकाओंकी जालीदार खिड़कीकी ओटमें आख़िर रहस्यकी कौन-सी भड़कीली तस्वीर पर्दानशीं है ? और जनकपुरकी देवियोंकी सेद-भरी आँखें भी धुँधले पर्देसे ही क्यों ताक-झाँक करती हैं ? अगर पर्दा ही मंजूर है, तो साफ़ छुपती क्यों नहीं ? अगर दिल चूर करना नहीं है, तो वे सामने क्यों नहीं आतीं ? पर वे साफ़ छुपती भी तो नहीं और सामने भी नहीं आतीं ! यह कैसी आँखमिचौनी है ? मनोविज्ञानकी यह कैसी पहेली है, जो मनको उलझनमें डाल दे ? सुकुमार चरणोंकी यह कैसी अटपटी चाल है ? कैसे होंगे वे हृदय-हरण राम ? कैसी होंगी वे प्यासी अलख दृग-कणिकाएँ, जिनकी आहट तो मिले ; किन्तु झाँकी न मिले ? हम आज रह-रहकर मनमें यही सोचते हैं। त्रेता-युगके इस चमकीले चित्रको ग्राम-गीतकी रचयित्रीने अपने दिलके अँधेरे कमरेमें कैसे क़ैद कर लिया ?

धनुष-भंगके-उपरान्त सहसा रंगमंचका दृश्य बदलता है। अयोध्यासे बरात सज-धजकर जनकपुर आ गई है। नयनाभिराम राम दूल्हा बनकर विवाह-पंडालमें बैठे हैं। उनके चेहरेपर संध्याके ललाटकी बिन्दियाकी तरह एक रंगीन दुनियाकी सृष्टि हो गई है। मुहल्ले-भरकी स्त्रियाँ सज-धजकर, नूपुरके झन-झन स्वन करती, दूल्हेके दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे आ बैठी हैं। आज जनकपुरके गगन-प्रांगण खन-खन ध्वनिसे मुखरित हैं। जनकके अन्तःपुरका कोना-कोना अनुगुंजित है। दर्शनकी प्यासी वे उत्कंठित आँखें पर्देकी घनी दीवारकी ओटसे टटोल-टटोलकर जिस रूपकी टोह ले रही थीं, पर जिनकी तड़पन नहीं मिट पाई थी, और योंही टटोलते-टटोलते जिन्होंने न जाने कब तक विमुग्ध वेदनाकी धूनी जलाई थी, अब शान्त और उपरमित बनकर फूली नहीं समातीं। जब अरमानोंकी उजड़ी हुई बस्ती बस जाय, तब मन डोला-डोला क्यों फिरे ? देखिए, पुरानी प्रीतिकी अपलक्षी (?) रसको

सुलगाती हुई जनकपुरकी देवियाँ अपने-अपने दिलकी हविस मिटा रही हैं :—

सांवली सुरतिया विलोकु सखिया,
हे विलोकु सखिया !
जादूवाली अपन जदुआ बचाए रखिह,
हे बचाए रखिह !
अपन टोनावाली टोनवा सम्हार रखिह
हे सम्हार रखिह !
शिरके मऊरिया विलोकु सखिया,
हे विलोकु सखिया !
लाल-पीत जामा-जोरा देखु सखिया,
हे देखु सखिया !
मुखवाके पनवा विलोकु सखिया,
हे विलोकु सखिया !
जादू-भरी अँखियाँ निहारू सखिया,
हे निहारू सखिया ।

अर्थात्—

हे सखी, इस साँवरी सूरतको तो देखो,
हे सखी, तनिक देख लो ;
हे जादूवाली जोगन, अपने-अपने तंतर-मंतर रोक रखो !
रोककर रखो अपने-अपने तंतर-मंतर !
हे टोनेवाली जादूगरनी,
अपने-अपने टोने सँभाल रखो ।
सँभालकर रखो अपने-अपने टोने !
दुल्हेपर कोई वशीकरण टोना न डाले ।
हे सखी, दूल्हेके सिरके मुकुटको तो देखो !
तनिक सिरके मुकुटको देख लो !
हे सखी, उनके लाल-पीले आभरणको तो देखो !
हे सखी, तनिक उन्हें देख लो !
हे सखी, उनके होठके पानकी लाली तो देखो !
हे सखी, तनिक देखो !
और हे सखी, उनकी जादू-भरी आँखें भी देखो !
हाँ, हे सखी, तनिक उन्हें देख लो !

जीवनकी अँगड़ाइयों और बेचैनियोंको लिए और पहाड़ी चश्मेकी मस्त चालसे उछलते, कूदते, किलकते और घुमड़ते ये प्राणोन्मादक गीत न जाने कितने संवत्सरसे मन-मन्थन करते आए हैं ? पायलके गहन झन-झन-नाद, निर्निमेष नयन-पुटीके वंक-विलास, दूल्हा रामके विवाह-पंडालके प्रफुल्ल सौन्दर्य और टोनेवाली सखियोंके वशीकरण मन्त्र मानो आज भी बिना किसी भेद-भावके मुझे मौन निमन्त्रण दे रहे हैं। 'जल बीच मीन पिआसी' —कबीरके इन शब्दोंमें अन्तस्तलकी हूक कूक उठी है। जनकनगरकी जिन मंगलामुखियोंने मनहरण रामको भर-नज़र देख लिया, उनकी सोई हुई साधें मानो मचल पड़ीं। उन्हें जैसे कुबेरकी निधि मिल गई। पर जिनकी एड़ीकी मेंहदी गदबदी मिट्टी भी न चूम सकी थी, जिनके माथेकी बिंदिया सुहाग-रातका आलोक भी नहीं देख पाई थी, उन नवविवाहिता तन्वंगियोंके अरमान आधी रातके प्रदीपकी तरह मँझाने लगे। उनके दर्शनकी उत्सुकतापर तुषार पड़ गया। वे जलके बीच प्यासी मीनकी नाईं तड़पती रह गईं। उन्हें अपनी सखियोंके मुँहसे ही दूल्हेके रूपका बखान सुनकर सन्तोषकी साँस लेनी पड़ी—ओस चाटकर प्यास बुझानी पड़ी। सुनिए :—

कओने रंगे मूँगिया, कओने रंगे मोतिया,
कओने रंगे ?
सिया दुलहिनके दूल्हा कओने रंगे ?
लाले रंगे मूँगिया, सब्ज रंगे मोतिया,
सब्जे रंगे ना !
सिया दुलहिनके दूल्हा साँवरे रंगे !
टूटि जयतइ मूँगिया, फूटिए जयतइ मोतिया,
बिछुड़ि जयतइ !
सिया दुलहिनके दूल्हा बिछुड़ि जयतइ !
बिछि लेवइ मूँगिया, बटोरि लेवइ मोतिया,
मनाए लेवइ !
सिया दुहिनके दूल्हा मनाए लेवइ ?
कहाँ शोभे मूँगिया, कहाँ शोभे मोतिया,
कहाँ शोभे ?
सिया दुलहिनके दुलहा कहाँ शोभे ?
गले शोभे मूँगिया, मुकुट शोभे मोतिया,
पलंग शोभे ।
सिया दुलहिनके दुलहा पलंग शोभे ।

अर्थात्—

हे सखी, किस रंगका मूँगा है ?
किस रंगका मोती ?
और दुलहिन सीताका दूल्हा किस रंगका है ?
हे सखी, लाल रंगका मूँगा है !

सबुज रंगका मोती !

और दुलहिन सीताका दूल्हा साँवरे रंगका है।

हे सखी, टूट जायँगे मूँगा,

फूट जायँगे मोती,

और सीता दुलहिनका दूल्हा बिछुड़ जायँगे।

हे सखी, बीन लूँगी मूँगा

बटोर लूँगी मोती !

और सीता दुलहिनका दूल्हा मनालूँगी।

हे सखी, कहाँ मूँगा शोभित होता है ?

कहाँ मोती ?

और दुलहिन सीताका दूल्हा कहाँ शोभा पाता है ?

हे सखी, गलेमें मूँगा शोभित होता है।

मुकुटमें मोती !

और दुलहिन सीताका दूल्हा पलंगपर शोभा पाता है।

एक वाणी है जो काल्पनिक शराबका नशा पीकर गगन-गुफ़ामें फेनकी अट्टालिका उठाती है और बग़ैर लोक-हृदयकी बावड़ीके तलमें डूबे साहित्यका रीता तूम्बा भरा करती है। एक वाणी है, जो कलेजेकी टीसपर अंगराग बनकर लोट-पोट होती है और निराशाके मज़ारपर आशाके चिराग़ रौशन करती है। और एक लोक-वाणी है, जो झोंपड़ीकी भिखारिन है, किन्तु सोनेका पात्र दान करती है; मिट्टीकी गागर है, किन्तु प्यासोंको ठंडा पानी पिलाती है। हाँ, वह लोक-वाणी है, जो सिसकती है, तो मोती बरसते हैं; और खिलखिलाती है, तो फूल झरते हैं। हारमोनियमके सा, रे, ग, म, प, ध, नि और झालकी झन-झन ध्वनिमें ढोलककी ढप-ढप अपना द्वित्व खोकर, जैसे रातके सूने फेफड़ेकी धड़कनमें गुदगुदी भर देती है, उसी प्रकार परिस्तानी बहारकी यह महफ़िल मेरे दिलकी पतझरी पनवाड़ीमें आनन्दके पान उगा रही है।

और मैं स्वप्न देख रहा हूँ—इस दलित, लुंठित, शोषित और दैन्य-कष्ट-कुंठित लोक-जीवनके बीच छाया, गंध, प्रकाश, प्रेम, सत्य और आत्म-विकासके राग-रंगमय स्वप्न। शामियानेके नीचे तख़्तपोशपर घुटने टेके मैं देख रहा हूँ प्रस्तरकी प्रतिमाको। वह प्रतिमा अवाक नहीं, सवाक है—आत्माकी अक्षय स्वरलिपिसे प्राणमय। न यहाँ दुख है, न चिन्ता; न यहाँ ताप है, न दाप; है केवल दर्दमें भीनी तपस्याकी साकार वाणी, जो शिशिर-वायुको चीरती हुई रातकी चुप्पीमें प्रतिध्वनित हो रही है। प्रेमकी फुहारोंपर तैरता हुआ संगीत रोम-रोममें सिहरन-सा फैला रहा है। गायकके गलेमें लोच है और वाणीमें विषाक्त वासनाके प्रति विरक्ति-उत्पादक मर्म-व्यंजना। आत्मानुभूतिके ये दो-चार क्षण सचमुच कितने निर्मल, कितने शीतल हैं !

रूनी सैदपुर (मुज़फ़्फ़रपुर) ]

---

# कौन ख़रीदा जा सकता है ?

### वाल्टर लिपमैन

उन आदमियोंको ईमानदारीका उपदेश देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, जिनका क्रियात्मक उद्देश्य होता है, जिनकी प्रवृत्ति कोई नवीन चीज़ देनेकी होती है। यदि कोई आदमी अपनी आत्माकी शक्तियोंको किसी चीज़के निर्माणमें भरपूर लगा देता है, तो कारीगरीकी सहजबुद्धि ईमानदारीकी रक्षा कर ले जायगी। जिन लेखकोंके पास कुछ कहनेको नहीं होता, वे ही खरीदे जा सकते हैं, औरोंकी तो क़ीमत इतनी होती है कि वह अदा नहीं की जा सकती। एक सच्चा कारीगर अपने मालमें मिलावट नहीं करेगा। इसका कारण यह नहीं है कि कर्तव्यवश वह ऐसा न करेगा, वरन यह कि उसकी लगन उससे ऐसा नहीं करा सकती।

# सच्चा विवाह

### इंगर सोल

सच्चे विवाहमें स्त्री-पुरुष अपने शरीरोंको नहीं, वरन अपनी आत्माओंको देते हैं। आदर्श विवाह यही है और यही नैतिक भी। वे विवाहित नहीं हुए, जो केवल अपने शरीरोंको समर्पण करते हैं और अपनी आत्माओंको नहीं देते। आत्माओंको न देकर कायाका विवाह करना विवाह नहीं, उसके लिए चाहे कोई रस्म अदा की जाय। कोरी कायाका विवाह तो अनैतिक है। अनु०—'निर्मम'

# हार-जीत

श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय

शेखरके साथ उसकी स्त्री अरुणाका झगड़ा छिड़ गया है। शास्त्रकारका मत है कि पति-पत्नीके बीच यदि इस श्रेणीकी घटना हो जाय, तो वह प्रायः किसी प्रकारके संकटका कारण नहीं होती। परन्तु यहाँ यह कुछ चिन्ताका-सा विषय होती जा रही है। कारण, बात ही बातमें अरुणा कह बैठी—'मैं जा रही हूँ मायके। आज ही चली जाऊँगी।'

शेखरके मनमें अवश्य ही ज़रा भयका संचार हुआ। बातचीतके सिलसिलेमें जो गरमाहट आ गई थी, उसपर पानीके छींटे डालनेके विचारसे उसने ज़रा हँसी करनेकी कोशिश की। उसने कहा—'अच्छा तो है, चलो, चले चलें।

किन्तु फल उलटा हुआ। उसकी इस हँसीका जवाब न देकर अरुणा और भी गम्भीर हो उठी। वह बोली—'मंटू और डाली कोई मेरे साथ न जायँगे। देखूँ, कैसे सँभालते हो तुम इन सबको! मालूम पड़ जायगा आटा-दालका भाव! मुझे ही क्या पड़ी है कि मैं इन सबको टाँगे-टाँगे फिरूँ?'

शेखरने कहा—'इसके लिए क्या चिन्ता है? उनकी मौसी तो आ ही रही है। वह प्यार भी करती है इनको, इस बातका तो मुझे ध्यान ही नहीं था। इस अवस्थामें तुम्हारे साथ जानेकी मुझे भी कोई उतावली नहीं है।'

अरुणा आज सवेरे ही अपनी छोटी बहनको अपने यहाँ बुलानेके लिए उसकी ससुराल आदमी भेज चुकी थी। स्वामीकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिसे देखती हुई वह बोली—'मैं न रहूँ और वह यहाँ आकर ठहरे? तुम्हारी रही-सही बुद्धि भी जाती रही क्या?'

होंठोंपर आती हुई हँसीको रोककर शेखरने कहा—'मैं तो समझता हूँ कि तुम न रहोगी, इससे उसका यहाँ ठहरना और भी आवश्यक हो जायगा। अपना एक एवज़ न देकर जाओगी, तो फिर मेरा...।'

अरुणाने बात पूरी न होने दी। संक्षेपमें और साथ ही दृढ़तासे वह बोली—'स्त्री अब दासी नहीं रह गई है।'

शेखरने कहा—'मैं दासीकी बात तो कह नहीं रहा हूँ। मैं कह रहा हूँ संरक्षककी बात। स्वामी तो आज भी नौकर ही बने पड़े हैं न, यदि आठों पहर उनका एक कर्णधार न रहे, तो...'

'तुम्हारे कानोंमें अत्यधिक खुजलाहट हो रही हो तो सरोजिनी जब आयगी, तब देखा जायगा। अभी हँसी रहने दो। मैं तो आज चली। परन्तु कहीं वहाँ बुलाने जाकर बेहयापन न करना।...कहारिन!'

'बेहयापनका सूत्रपात तो तुम्हीं कर रही हो। इस समय वहाँ जानेका कोई उचित कारण तो है नहीं। एकाएक जाकर जब तुम वहाँ पहुँचोगी, तब स्वभावतः सबको सन्देह होगा कि घरसे लड़-झगड़कर आ रही है। तो भी मान लो कि चली ही गईं तुम वहाँ। बादको वे लोग कहीं आग्रह कर बैठें कि दो रोज़ और रह जाओ। इधर तुम्हारी तबीयत लगी रहेगी मेरी ओर...। आँखें लाल करनेसे ही तो कुछ होता नहीं। जो बात सच है, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ। मुझमें जो आकर्षणकी क्षमता है, उसका गौरव तो मुझे है ही। किन्तु...'

अरुणाने और भी ज़ोरसे पुकारा—'कहारिन! क्या तुमने कानोंमें खूँटे ठोंक रखे हैं?' कहारिन आ ही रही थी, अब और तेज़ीसे पैर बढ़ाकर वह आ पहुँची। अरुणाने कहा—'मोटर-ड्राइवरको बुला तो दो नीचे। और देखो, डाली और मंटूको ठीकसे कपड़े-लत्ते पहनाकर तैयार तो कर रखो। वे लोग अपने मामाके यहाँ जायँगे।'

कहारिनके चले जानेपर शेखरने कहा—'अभी ही तो और तरहका हुक्म हुआ था?'

'यह तो मेरी मर्ज़ीकी बात है। इसमें टीका-टिप्पणीकी कोई आवश्यकता नहीं। यदि तुम्हें अच्छा न लगा हो...'

'नहीं, नहीं, मैं तो केवल इस ओर तुम्हारा ध्यान दिला रहा था कि मन बात-बातमें बदलता रहता है।'

'बदलनेकी ज़रूरत होनेपर ही बदलता है। जिन दोनोंके लिए मन अँटका रहेगा, वे साथमें ही रहेंगे।

बस, झंझट ख़तम। और किसीके लिए मैं चिन्ता नहीं करती—ज़रा भी नहीं। अब मैं झूठ-मूठकी धारणाओंको ख़ूब अच्छी तरह नष्ट कर देना चाहती हूँ। यह लो कुंजियोंका गुच्छा ; सबोंकी चाबियाँ इसीमें हैं। अब मुझे परेशान करनेकी कोई ज़रूरत नहीं।'

कुंजियोंका गुच्छा झनसे टेबिलपर गिरकर चारों खाने चित्त हो गया। पर्देके बाहरसे कहारिनने सूचना दी कि मोटर-ड्राइवर नीचे खड़ा है। शेखरने विनीत भावसे कहा—'उसे क्या कहूँ ?'

'मेरे भी मुँह है, मैं आपका एहसान नहीं लेना चाहती।' बरामदेमें जाकर अरुणाने कहा—'पाँच बजे गाड़ी तैयार रहनी चाहिए। मुझे चन्दननगर जाना है। दरवानसे भी तैयार रहनेको कह देना। वह फ़ौरन बागबाज़ार चला जाय और सरोजनीको ख़बर दे आवे कि मैं एक ख़ास कामके लिए चन्दननगर जा रही हूँ, जिससे आज वह न आवे। बल्कि तुम दरवानको ही भेज दो, वह चिट्ठी ले जाय।'

कमरेमें आकर अरुणाने देखा, शेखर कुंजियोंका गुच्छा हाथपर उछालते-उछालते मुस्करा रहा है। संदिग्ध भावसे अरुणाने पूछा—'क्या है ?'

स्वाभाविक स्वरमें शेखरने कहा—'कहाँ ? कुछ तो नहीं।'

दुगुने सन्देहसे अरुणाने कहा—'अवश्य ही कोई बात है। बतलाना ही पड़ेगा।'

'अब तो मुझपर से हुक्मकी पाबन्दी जाती रही।'

अरुणा रोषमें तो थी ही, ऊपरसे उसे अभिमान भी हो आया। उसने कहा—'समझ गई। अच्छा, रहने दो।'

'तो भी दया करके बतला सकता हूँ।'

'कोई आवश्यकता नहीं है। ऊँह, दया !'

'वह बात सुन लेनेपर वहाँ जानेका शौक न रह जायगा। इस तरह बहुत-से झमेले-झंझटोंसे हम दोनों ही बच जाते।'

अरुणाके माथेपर बल आ गया। क्षणभर वह सोचती रही। झमेले-झंझटोंसे इनका तात्पर्य क्या हो सकता है, शायद उसने अपनी बुद्धिके अनुसार इसका अन्दाज़ा कर लिया। बादको वह बोली—'कोई चिन्ता नहीं, झमेलेसे डरनेवाली मैं नहीं। जो उससे डरता हो, वह ख़ुद सावधान हो जाय।'

'तो दया करके सुन ही लो। और कुछ नहीं, बात यह है कि...'

'नहीं, नहीं, मैं किसीपर दया नहीं करना चाहती। मेरे शरीरमें क्या दया-धर्म है ? मैं भी क्या कोई आदमीमें हूँ ? यदि ऐसा ही होता, तो क्या बात-बातमें मुझे नीचा देखना पड़ता ? जिस मनुष्यने जीवनमें माया-ममता पाई है, वही जानता है कि माया-ममता क्या चीज़ है ? क्या मैंने कभी किसीके पास...'

आँखोंसे लगानेके लिए अरुणाने अंचलका एक कोना हाथसे उठा लिया। उत्सुकतासे शेखर देखता रहा। कारण, इस प्रकारके अवसरपर उसे आँसुओंके उमड़ आनेसे बहुत-कुछ आशा थी ; परन्तु वह शान्ति-जल बरस जानेसे पहले ही दरवान आ पहुँचा और सलाम करके बाहर खड़ा हो गया।

अरुणाने कहा—'ठहरो, चिट्ठी देती हूँ।' और पासके कमरेमें जाकर उसने चिट्ठी लिखी और उसे दरवानके हाथमें दे उसे कुछ आदेश देकर विदा किया।

शेखरने कहा—'तो पक्का हो गया ?'

उसकी ओर देखे बिना ही अरुणाने कहा—'मेरे सभी काम पक्के हुआ करते हैं।'

'परन्तु चाणक्यने कहा है—दाम्पत्य कलहे चैव। ख़ूब पक्का होनेपर भी...'

अरुणाने उसी प्रकारकी भाव-भंगीके साथ कहा—'चाणक्यने ठीक ही कहा है। पुरुष पीछे पड़-पड़कर झगड़ा शान्त कर लिया करते हैं।' जान पड़ता है, किसी विशेष दिनकी कोई घटना स्मरण करा देनेके विचारसे स्वामीकी ओर वक्रदृष्टिसे देखती हुई वह बोली—'कभी-कभी पैर पकड़कर भी।'

'कौन आकर पैरों पड़ता है इस बार, इसके लिए गवाह भी ठिकानेका बना रखूँगा। यह बात ज़रूर याद रखना।'

शेखर नीचे उतर गया और बैठकमें रेलवेका जो टाइमटेबिल रखा था, उसे निकालकर देखने लगा। तीन बजकर चालीस मिनट हुए थे। चार बजकर पाँच मिनटपर जो एक ट्रेन थी, उसके मिल सकनेकी कोई आशा नहीं थी। उसके बादकी गाड़ी रवाना होती थी पाँच बजकर पन्द्रह मिनटपर। शेखरने सोचा, यदि अरुणाकी मोटर पाँच ही बजे रवाना हो गई, तब तो उसका उद्देश्य ही व्यर्थ हो जायगा।

ज़रा देर तक सोचने-विचारनेके बाद शेखरने टेबिलपर ज़ोरका आघात किया, मानो उसे कोई मतलबकी बात सूझ गई हो। फिर अस्पष्ट स्वरमें उसने कहा—'ठीक है।'

उसने मोटर-ड्राइवरको नीचे मैदानमें बुलवा भेजा और अरुणाको सुना-सुनाकर उसने कहा—'आने-जानेमें लगभग पचास मील पड़ जायँगे। गाड़ी ठीक है न ?'

अरुणा आकर कान लगाए दरवाज़ेके पास खड़ी रही। 'मोटर ऐसी चीज़ है, जो बिलकुल ठीक कभी नहीं रह सकती।' मोटर-ड्राइवरने ज़रा देर तक सोचनेके बाद कहा—'चली जायगी, हुज़ूर !'

अरुणा 'तब' कहकर कोई बात मुँहसे निकालने ही जा रही थी कि बीचमें शेखर बोल उठा—'यों ही मत कह दो कि चली जायगी। ख़ूब अच्छी तरह देख लो। स्त्री-बच्चोंको लेकर जा रहे हो। ये ज़िद कर रही हैं अवश्य; मगर मैं साथमें जा नहीं सकता। अभी ही मुझे कुछ विशेष कार्यवश बाहर जाना होगा। ख़ूब ध्यानपूर्वक देख लो। रास्तेमें यदि कहीं कोई बात हो गई और तुमने घरके लिए तार भी दिया, तो छः घंटेसे पहले मैं उसे पा भी न सकूँगा।'

इस तरहकी बात आनेपर यदि कहीं छोटा-मोटा भी दोष हुआ, तो वह बहुत ही विशाल रूप धारण कर लेता है। मोटर-ड्राइवरने कहा—'केवल ब्रेकमें ज़रा-सा दोष है। कभी-कभी वह एक चक्केको ज़रा कम पकड़ता है; परन्तु उससे तो कोई विशेष हानि है नहीं। यदि मैं उसे खोलकर ठीक करना चाहूँ, तो भी दो घंटेसे कम न लगेंगे।'

शेखरने मन ही मन हिसाब लगाया। उसने सोचा, पौने चार तो बज ही गए हैं। ड्राइवर जैसा कह रहा है, पौने छः बजे तकका समय वह गाड़ी ठीक करनेमें लगा देगा। छः भी बज सकते हैं। बादको स्त्रीकी ओर देखते हुए उसने ज़रा आवाज़ धीमी करके कहा—'यात्रामें घंटे भरका विलम्ब हो जानेमें क्या श्रीमतीजीका पारा उतर जानेका भय है ? ब्रेकमें गड़बड़ी मेरी समझमें कोई मामूली बात नहीं। उस दिन बहूबाज़ारके मोड़पर जो दुर्घटना देखनेमें आई, याद आनेपर आज भी रोएँ खड़े हो जाते हैं। एक गाड़ी जो स्त्री-बच्चोंसे ठसाठस भरी थी, एकाएक...'

इस संवादके कारण अरुणाके हृदयमें जो भयका संचार हुआ था, उसे दबानेका प्रयत्न करती हुई वह सीधे ड्राइवरसे ही बोली—'नहीं, नहीं, तुम खोलकर ठीक-ठाक कर लो। थोड़ी-सी देरी भी हो जाय, तो कोई बात नहीं।'

दाँतोंसे होंठ दबाकर शेखरने बड़ी कठिनाईसे अपनी हँसी रोकी। इधर अरुणा यह जाननेके लिए अधीर हो रही थी कि ये कहाँ जानेवाले हैं। बहुत ही उत्सुक भावसे उसने पूछा—'कहाँके लिए यात्रा होनेवाली है बाबू साहबकी ?' इस प्रश्नका कोई उत्तर न पाकर उसने फिर पूछा—'कब तक लौटना होगा ?'

'देखूँ, कब तक छुटकारा पाता हूँ। वहाँ तो ज़ोर है नहीं अपना ?'

'कहा ?'

'कहीं नहीं। जिसका अपनी स्त्रीपर ही ज़ोर नहीं रह गया...'

कौतूहल दूर करनेका कोई साधन न पा सकनेके कारण अरुणा गरम होती जा रही थी। उसने कहा—'स्त्रीपर ज़ोर न चला सकनेपर बाबू लोगोंका दम घुटने लगता है। ऊँह, ज़ोर ! किस बूतेपर चलायँगे ज़ोर, ज़रा सुनूँ तो ?'

'ख़ुशामदके बलपर।'

अरुणा हँस पड़ी; परन्तु क्रोधके समय हँस पड़नेका अर्थ होता है पराजय स्वीकार करना। ऐसी अवस्थामें इस बातका अनुभव होते ही क्रोध घटनेकी अपेक्षा बढ़ जाया करता है। इससे अपने-आपको बड़ी कठिनाईसे रोककर विशेष रूपसे खटपट करनेके विचारसे उसने कहा—'जहाँ तबीयत हो, जाओ; मुझसे फिर मुलाक़ात होगी छः महीने बाद।'

लौटकर शेखरने कहा—'छः घंटेके भीतर तुम तो दौड़कर मुलाक़ात करोगी।'

अरुणाका क्रोध और भी बढ़ गया। वह बोली—'तुम ऐसा कहते हो, तो यदि छः वर्षके भीतर इस घरमें पैर रखूँ, तो...'

शेखरने कहा—'और छः घंटेके भीतर ही यदि न लौटकर आना पड़ा, तो...'

क्रोधसे गरजती हुई अरुणा दो कमरे पार कर गई थी। वहींसे ऊँचे स्वरमें वह बोली—'अच्छा, तो देखा जायगा।'

शेखरने इस बातका कोई उत्तर नहीं दया। बरामदेकी रेलिंगसे झुककर वह भीतर ही भीतर हँसने लगा।

- २ -

चन्दननगरमें गंगाजीके तटपर शेखरके ससुरका मकान था। पीछेकी ओर गंगाजी थीं और आगेकी ओर सड़क। मकानके सामने एक छोटा-सा बग़ीचा था। शेखरको यहाँ आए आध घंटा हो चुका था। हाथ-पैर धोकर स्वस्थ होनेके बाद अपने एकाएक आ धमकनेके सम्बन्धमें एक मनगढ़न्त कारण उसने सास-ससुरको सुनाया। ज़रा देर तक वह इधर-उधरकी बातें करता रहा। बादको बड़ी सालीसे वह बोला—चलो शची दीदी, बग़ीचेमें चलकर ज़रा टहलें।'

ससुरने कहा—'इससे तो अच्छा होगा कि जाकर गंगा-तट पर बैठो। सर-सर करती हवा चल चल रही है वहाँ।'

सड़ककी ही ओर रहना शेखरको अभीष्ट था; परन्तु ससुरकी बात रखनेके लिए उसने कहा—'हाँ, यह भी अच्छा है।'

शेखरकी इस बातमें जो अनिच्छाकी गन्ध थी, उसे पहचानकर सालीने कहा—'तो भी बग़ीचा एक बार घूम ही लिया जाय। ज़रा चलकर देखो तो, कई नए गुलाब लगाए गए हैं। एक ऐसा ब्लैक प्रिंस—गुलाब—मैंने मँगवाया है, जिस दर्जेका यहाँ और कहीं नहीं है। है न बाबूजी?'

शेखरकी छोटी सालीका नाम था मलिना। उसकी अवस्था आठ-नौ वर्षकी थी। बहनोईका हाथ पकड़कर उसने खींचना आरम्भ किया। वह बोली—'मेरा कनेर भी देखिएगा जीजाजी, चलिए न! फूलोंके कारण सारा वृक्ष गुलज़ार हो उठा है। आपको बतलाना होगा कि किसका फूल अच्छा है। बलिहारी है! काला और गुलाब! प्रिंसका मतलब है राजकुमार। यह मैं जानती हूँ। परन्तु चाहे राजकुमार हो, चाहे सचिवकुमार, काला भी कहीं सुन्दर होता है? दीदीकी भी कैसी रुचि है! उनकी रुचिकी बलिहारी!'

शची लज्जाके मारे लाल होती जा रही थी। उसकी माने मुँह फेर लिया। पिता विशेष रूपसे कुछ समझे बिना ही सरल-हृदयसे हँसने लगे। इस बातको और न बढ़ने देकर शेखरने कहा—'चलो, तुम्हारा कनेर देखें!'

बग़ीचेकी ओर पैर बढ़ाते-बढ़ाते मलिना ब्लैक प्रिंसके सम्बन्धमें फिर चर्चा छेड़ने जा रही थी। दीदीने डाँटकर कहा—'अच्छा, तू चुप रह नटखट लड़की!' फिर उसने शेखरसे कहा—'इतने समीप रहते हो मुकुर्जी, पर यह नहीं होता कि कभी-कभी चले आओ।'

मलिना जो बात कहने जा रही थी, शेखरने उसीका उत्तर दिया। वह बोला—'क्या आपको मालूम है मलिना सुन्दरी, जो जिसे प्यार करता है, उसके लिए वही...'

बड़ी साली रुष्ट होकर बोली—'उसकी निरर्थक बातें ही तुम्हारे लिए अधिक महत्वकी हैं? मेरे प्रश्नका जवाब...'

'इसीमें तुम्हारे भी प्रश्नका उत्तर है दीदी! तुम्हारी बहनके प्यारके अत्याचारके कारण कहीं पैर तक निकलना मेरे लिए सम्भव नहीं है। किन आँखोंसे देखती है वह इस अधमको! उसे इतना भी गँवारा नहीं है कि मैं दो दण्डके लिए उसकी दृष्टिसे ओझल हो सकूँ। ज़रा देरके लिए भी इधर-उधर हुआ नहीं कि झटसे जवाब तलब कर बैठती है। जवाब भी यदि उसके मनमें न बैठा, तो कभी रोने लगती, कभी रुठ जाती और कभी मुँह और नाक फुला बैठती है।'

'ऐसी तो कभी नहीं थी वह! ज़रा-सी ज़िद उसमें सदा थी अवश्य; किन्तु...'

'आजकल उसमें यह आदत आ गई है। साथी कहते हैं—लकी डाग! तुम्हें देखकर ईर्ष्या होती है। मैं कहता हूँ, पनाह दो भाई! घर छोड़कर दो दण्डके लिए भी बाहर पैर नहीं रखने पाता। यह प्रेम करना है या जेलका बन्दी बनाना?'

बहनके इस प्रकारके आदर्श अनुरागका समर्थन करती हुई साली बोली—'भाई, तुम लोगोंके सामने यदि हृदय खोलकर रख दिया जाय, तो तुम सन्तुष्ट नहीं होते, और यदि गुप्त रूपसे उसका दान किया जाय, तो अनुभव ही नहीं कर सकते! प्रेम प्रदान करनेका और भी कोई उपाय हो सकता है, यह बेचारी स्त्रियाँ समझ ही नहीं पातीं।'

शेखरने कहा—'मैं समझ गया शची दीदी, हर हालतमें हम लोग दोषी हैं! ईंट-पत्थरकी तरह हृदयहीन हैं, यह अकीर्ति भी चिरकालके लिए हम लोगोंके मत्थे

मढ़ दी गई है। किन्तु आजकी ही बातको लीजिए। मैं यहाँ चला आया हूँ। काम-काजसे निवृत्त होनेमें मुझे चार-पाँच दिन लगेंगे। मैंने यह सोच रखा है कि रोज़-रोज़का आने-जानेका झमेला न लगा रखकर तब तकके लिए यहीं ठहर जाऊँ। परन्तु तुम्हारी विरहिणी भगिनी यदि एकाएक घरमें ताला लगा दे और सबको लिए-दिए यहाँ आ पहुँचे और उसकी आँखोंमें आँसू भरे हों, मुख बहुत गम्भीर हो उठा हो, तो यह मेरे लिए कितने झमेलेकी बात होगी, ज़रा बताइए तो ?'

साली हँसकर बोली—'इसमें तो हमारा लाभ ही है, भाई! बहुत दिनोंसे देखा भी नहीं है उन सबको। तुम लोगोंका कान खींचनेसे यदि माथा आ जाय, तो इसमें बुराई क्या है ?'

शेखर बीच-बीचमें शचीकी आँख बचाकर सड़ककी ओर अपनी उत्सुकतामयी दृष्टि दौड़ा लिया करता था। वह बोला—'यदि वह सचमुच ही आ पहुँचे, तो इसमें मुझे ज़रा भी आश्चर्य न होगा।'

मलिनाकी समझमें सब बातें नहीं आ सकीं। तो भी दीदीके आगमनकी सम्भावनाके कारण वह चंचल होती जा रही थी। उसने पूछा—'किस सवारीसे आयँगी वे, जीजाजी ? मोटरसे ?'

शेखरने कहा—'यह तो वह ही जाने। सवारीकी भी क्या ज़रूरत है ? ज्ञानशून्य होकर वह "हा नाथ, हा नाथ !" पुकारती हुई भी दौड़ी आ सकती है।'

अकृत्रिम विस्मयसे दोनों आँखोंको विस्फारितकर मलिना बोली—'बाप रे !'

मलिनाको इस प्रकार विस्मित होते देखकर उसकी दीदी हँस पड़ी। वह बोली—'दुर मुँहजली, तेरी दीदी क्या पागल हो गई है, जो इस प्रकार दौड़ी आयगी।'

शेखरने कहा—'मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। यदि कहीं वह सचमुच आ गई, तो बाबूजी और माँ अपने मनमें क्या कहेंगे ?'

'तो इसमें चिन्ताकी कौन-सी बात है ? यही कह देना होगा कि ये लोग घूमते-घूमते मोटरसे चले आए। तुम्हें रास्तेमें एक विशेष कार्य था और रेलके रास्तेसे ही आनेमें सुविधा थी, इससे तुम पहले ही चले आए। परन्तु वह आ ही कहाँ रही है, जो व्यर्थमें इतनी माथा-पच्ची की जाय।'

'उसके आनेके सम्बन्धमें तो उन लोगोंसे कुछ कहा नहीं गया है ?'

'भूल गए थे !...अच्छा, मलिना, तू चलकर अपना कनेर दिखलाती क्यों नहीं ?'

'तुम पहले अपना गुलाब ही क्यों नहीं दिखलातीं ? तोड़ ले आऊँ जाकर एक फूल ?'

दीदीने डाँटकर कहा—'नहीं।'

शेखरने कहा—'पराई चीज़के लिए इतना लोभ क्यों है, मलिना ? छिः !'

मलिना हो-हो करके हँस पड़ी—'दीदीकी चीज़ भी मानो पराई चीज़ है ? क्या बुद्धिमानीकी बात है !'

शेखर ठहाका मारकर हँसने लगा। इधर मलिनाकी दीदी लज्जित होनेपर भी हँसे बिना नहीं रह सकी। वह बोली—'यह क्या हो रहा है एक बच्चीके साथ ?'

शेखरने कहा—'तुमने भी ख़ूब सलाह दी दीदी ! अपनी स्त्रीके सम्बन्धमें इतनी भूल, और यह भूल उनके सामने प्रकट की जाय, जिनकी वह कन्या है ! इससे अच्छा तो यह कह देना है...'

विरक्तिका भान करके शची बोली—'देखो ज़रा यह पागलपनकी बात! कौन आ रहा है, इसका कुछ ठीक नहीं। इतनी देरसे केवल व्यर्थकी बकवाद कर रहे हो ! दोष तुम दे रहे हो मेरी बहनको ; किन्तु मैं देख रही हूँ कि जबसे तुम आए हो, तबसे मन तुम्हारा उसीकी ओर लगा है ! आकर्षण अधिक किसका है, यह तो मैं समझ नहीं पाई हूँ !'—इतना कहकर शेखरके मुँहकी ओर देखती हुई शची क्रूर भावसे हँसने लगी।

बात तो सच थी। मोटर आनेकी ही बात बराबर शेखरके मनमें जमी हुई थी। इसीसे जबसे वह आया है, तभीसे लगातार अपनी स्त्रीके ही सम्बन्धमें बातें कर रहा था। इस विषयमें वह वैसा सतर्क नहीं था, इससे वह कुछ संकुचित-सा हो उठा।

मलिना गुलदस्ता बाँध रही थी। मुख गम्भीर करके वह बोली—'माँ कह रही थीं न दीदी, अहा इन दोनोंके हृदयोंका कैसा उत्तम मेल है—भगवानकी इच्छासे ही यह जोड़ी मिली है !'

अब शेखरके लज्जित होनेकी बारी आई। स्नेहके आवेगमें आकर शचीने बहनके कन्धेपर हाथ रख दिया। वह बोली—'और वे यह भी कह रही थीं कि मलिनाके

लिए भी यदि एक ऐसा ही अनुकूल वर मिल जाता, तो अच्छा था।'

'दुत्!'—कहकर मलिनाने मस्तक नीचा कर लिया।

शचीने कहा—'चलो, अब गंगा-तटपर चलें। बाबूजी शायद उसी ओर जाकर बैठे हैं।'

मलिनाने कहा—'वाह, तुमने अपना ब्लैक प्रिंस तो दिखलाया ही नहीं! ये कैसे कह सकेंगे कि...'

सरल-हृदया बहन और चतुर बहनोईने मिलकर शचीकी ऐसी अवस्था नहीं रहने दी थी कि वह अपना इतना प्यारा फूल दिखला सकती। लज्जित भावसे वह बोली—'नहीं, रहने दो।'

बहनने ज़िद पकड़ ली। उसने कहा—'नहीं, नहीं, चलकर दिखला ही आओ। अच्छा भाई, मैं कहे देती हूँ कि मुझे ईर्ष्या न होगी। तुम डरो मत।'

दीदीकी लज्जा-भारसे झुकी आँखें हठात् बहनोईके चेहरेपर जा पड़ीं। फिर झटसे नीचेकी ओर आँखें गड़ाकर बोली—'दुत् मुँहझौंसी।'

हँसते-हँसते शेखर बोला—'तुम्हारे ईर्ष्या करनेका भय इन्हें नहीं है मलिना! शायद इन्हें भय हो रहा है हमारी ईर्ष्याका।'

'नहीं, अब मैं चलती हूँ। तुम दोनों ही एक-से-एक बढ़कर रसिक हो। तुम दोनों रहो यहाँ।'—इतना कहकर कृत्रिम क्रोध प्रदर्शित करके शचीने चलनेके लिए जैसे ही पैर उठाया कि एक ज़ोरके हार्नके द्वारा अपनी उपस्थितिकी सूचना देती हुई एक मोटर आकर फाटकके पास खड़ी हो गई।

'कौन आया?'—कहकर शची गर्दन घुमाकर खड़ी हो गई। मलिना—'ओ मा, यह तो मझली दीदी हैं!'—कहती हुई पहले ही सूचना देनेके लिए घरकी ओर दौड़ी। इधर विस्मयका भाव प्रदर्शित करता हुआ शेखर बोला—'देख लिया न दीदी!'

रहस्यका उद्घाटन करनेका प्रयत्न करते हुए सालीने एक तीक्ष्ण दृष्टि डाली। क्षण भरके बाद ही वह बोली—'ठहरो भाई, पहले मैं जाकर उन लोगोंको उतार तो लूँ।' यह कहकर तेज़ीसे पैर बढ़ाती हुई शची आगे बढ़ी।

शेखर पेड़की कतारोंकी ओटमें अपनेको छिपाते हुए धीरे-धीरे अग्रसर हुआ। उधर शचीने अरुणाकी गोदसे डालीको ले लिया और वह मंटूका हाथ पकड़कर नीचे उतरी। फिर बहनसे बोली—'आओ, अग्रदूत तुम्हारे हाज़िर हैं।'

अरुणा मोटरसे उतरी। बहनकी इस हँसीको समझनेके लिए कोई प्रयत्न न करके वह बोली—'सब लोग अच्छी तरह हैं न दीदी?' फिर उसकी पद-धूलि ग्रहण करनेके लिए वह झुकी।

ऐसे अवसरपर शेखर वृक्षकी आड़से निकल पड़ा। वह सामने आकर खड़ा हो गया। क्षण भरमें मंटू मारे आह्लादके चिल्ला उठा—'बाबूजी, बाबूजी! देखो मा, वह बाबूजी!' मौसीके कन्धेपर से उतरकर पिताकी गोदमें जानेके लिए डालीने भी व्यग्र भावसे अपने दोनों कोमल हाथ बढ़ा दिए। अरुणा भी आगे बढ़ी और स्वामी-स्त्रीकी देखा-देखी हुई।

- ३ -

वे दोनों ही खड़े रहे, मानो बायस्कोपकी दो तस्वीरें हों। किसीके भी मुखसे कोई शब्द नहीं निकल रहा था। उग्र विस्मयका भाव उन दोनों ही के मुख तथा समस्त शरीरसे मानो फूटकर निकला पड़ता था। विशेषकर शेखरमें जो विस्मयका भाव था, वह कृत्रिम था। इसीसे यह मालूम पड़ रहा था, मानो कला स्वयं मूर्त्तिमान होकर चली आई है। उस आदमीने एक कुशल अभिनेताके रूपमें भी तो ख्याति प्राप्त की थी। इस अरुणाने ही उसकी अभिनय-कुशलताकी कितनी प्रशंसा की थी।

शेखरने ही पहले-पहल बातचीत छेड़ी। उसने पूछा—'तुम यहाँ एकाएक कैसे आ गई हो?'

बेचारी अरुणाके मुँहसे कोई बात ही नहीं निकल रही थी। असहाय भावसे वह बोली—'एकाएक क्यों?'

वक्र दृष्टिसे संकेत करते हुए शेखरने एक बार सालीकी ओर देखा। फिर स्त्रीकी ओर मुँह फेरकर वह बोला—'ठीक है, एकाएक तुम नहीं आई हो अवश्य; किन्तु ख़याल करो कि मैं तुम्हें कितना रोककर आया था।'

विस्मयपूर्ण स्वरमें स्त्री बोली—'क्या रोक आए थे?'

इतनेमें मलिना आकर खड़ी हो गई। शेखर एक बार उसे देखकर बोला—'यह देखो मलिना, इसीको कहते हैं ज्ञानशून्य होना। अभी तुमसे कहा न था? हमारे आनेकी बातसे ही तुम्हारी दीदीका मन इतना विकल हो उठा था कि घंटे भरसे जो उसे इतना समझाया, वह उसे बिलकुल भूल बैठी।'

मलिना चकित होकर विस्फारित मुँहसे बोल उठी—'बाप रे ! क्या यह सब सच है दीदी ?'

अरुणा शचीकी ओर निहारती हुई बोली—'क्या बात है, बोल तो बहन ?'

शची स्पष्टतः कुछ न समझती हुई भी एक कौतुकका आभास पाकर बोली—'बात क्या है, यह तुम्हीं जानो। अभी चलो, बाबूजी और माँ बरामदेमें खड़े हैं। और बातें पीछे होंगी।'

अरुणाके जैसे पैर ही नहीं उठ रहे थे। पतिकी ओर देखती हुई बोली—'तुम यहाँ अस्मात् कैसे ?'

स्वामीने अविचलित भावसे कहा—'यह मेरी ससुराल है।'—मानो ऐसे आदमीसे बातचीत की जा रही हो, जिसे भूत लगा हो, सम्बद्ध वार्तालापकी आवश्यकता नहीं थी।

कुछ क्षण तक दोनों एक-दूसरेकी ओर ताकते रहे। शेखरने मौन भंग करते हुए कहा—'कोई बात नहीं। जब आ गई हो, तो अब उपाय ही क्या है ? अब लज्जा प्रदर्शित करनेसे क्या लाभ ? दीदीसे मैंने बहुत कुछ बतला रखा है तुम्हारे इस रोगका हाल।'

उत्सुकतापूर्ण दृष्टिसे दीदीकी ओर देखते हुए अरुणाने पूछा—'किस रोगका हाल दीदी ?'

शेखरने फिर कहा—'अच्छा, तुम जब आने लगीं, तब कुंजी किसे दे आईं ?'

गर्दन घुमाकर अरुणा बोली—'कुंजी ? कुंजी तो मैं उस समय तुम्हारे ही हाथमें दे आई थी।'

शेखरने हँसकर मलिनाकी ओर देखा और कहा—'देखती हो न मलिना ? स्वामीको न देख पानेपर पत्नीकी ऐसी अवस्था होती है अवश्य; परन्तु तुम्हारी बहनमें यह बात अपेक्षाकृत कुछ अधिक दीख पड़ती है।' फिर शेखरने अपनी स्त्रीसे कहा—'तुम जब आने लगी हो, तब मेरा हाथ तो वहाँ था नहीं। हाँ, मन अवश्य कुछ-कुछ था ; किन्तु...'

बड़ी बहनकी ओर ताककर अरुणाने व्याकुल भावसे कहा—'किस रोगके बारेमें ये कह रहे थे, बतलाती क्यों नहीं दीदी ? मैं तो ऐसे आदमीसे आजिज़ आ गई हूँ।'

अरुणाका हाथ पकड़कर हँसते-हँसते दीदीने कहा—'बतलाती हूँ। पहले उधर चलो, बाबूजी और माँ इसी ओर चले आ रहे हैं। पता नहीं, वे क्या सोचते होंगे मनमें ?'

चलते-चलते वह फिर बोली—'रोग कौन-सा है, आई ? बाबू लोगोंका हाल यह है कि वे ज़रा-सी देरमें व्याकुल हो जाते हैं। फिर दूसरेकी हँसी उड़ानेसे भी वे नहीं चूकते। अकेली रहनेमें असमर्थ होकर तू चली आवेगी, यही बात कही जा रही थी मुझसे ! परन्तु ऐसा करनेमें दोष ही क्या है ? ऐसे समयमें आकर तूने तो अच्छा ही किया। मुझे अकेली पाकर हँसी-मज़ाकसे इस तरह...'

अरुणा गालपर हाथ रखकर खड़ी हो गई। क्षणभर वह सोचती रही, फिर स्वामीकी ओर रोषपूर्ण दृष्टिसे देख उसने बड़ी बहनकी ओर मुँह फेरकर कहा—'हरे राम, समझ गई मैं ! इतनी देरके बाद समझमें आई है बात ! कैसे मनसूबेबाज़ आदमी हैं ये ! शायद इसीलिए उस समय कह रहे थे कि छः घंटेमें मुलाक़ात होगी ?'

बड़ी सालीको ही मध्यस्थ मानकर शेखरने कहा—'मैं करता ही क्या शची दीदी ! इस तरहकी व्याकुलता, इस प्रकारकी आँसुओंकी धारा ! यह सब देखकर मुझे यह कहना ही पड़ा कि आज रात्रिमें ही लौट आऊँगा, छः घंटेसे अधिक समय न लगने पावेगा। फिर करता ही क्या ? यह पाससे बिलकुल हटने ही नहीं देतीं ?'

एक टेढ़ा-सा जवाब होंठपर आया। कोई उचित उत्तर देनेमें समर्थ न होनेके कारण आवेशमें अरुणा वही कह बैठी—'ठीक ही तो है। तुम लोगोंका विश्वास कमसे कम एक दण्डके लिए भी छोड़ देनेमें मामला गड़बड़ हो जाता है। तुम सब ऐसे ही हो।'

दुःखका अभिनय करके शेखर तुरन्त ही बोल उठा—'छिः अरुणा, यह बात तो एक प्रकारसे शची दीदीको ही कही गई है। सोचो भला, अपने मनमें यह क्या कहेंगी।'

पतिकी इस व्यंग्यपूर्ण बातका रहस्य समझनेमें असमर्थ होकर विस्मय तथा भयके मारे विस्फारित नेत्रोंसे अरुणा बोली—'बाप रे, भला दीदीको मैंने क्या कहा, भला देखो तो !'

शेखरकी उस बातका मर्म दीदीने समझ लिया था। उधर उसके माता-पिता समीप आ गए थे। इससे धीरे-धीरे वह बोली—'तुम लोग ज़रा चुप हो जाओ। मुकुर्जीके मुँहमें क्या लगाम है, जो इनसे तू ज़बान लड़ाती है, अरुणा !'

मंटू दौड़कर नानीकी गोदमें विराजमान हो गया। अरुणाके पिता लकड़ीके सहारे धीरे-धीरे आ रहे थे। ज़रा दूर थे, तभी वे बोल उठे—'वाह, अरुणा भी आई है! बड़ा अच्छा हुआ यह! परन्तु क्यों शेखर, तुमने तो इसके आनेके सम्बन्धमें कुछ चर्चा ही नहीं की?'

शचीने ही उत्तर दिया—'अरुणाके आनेका कोई निश्चय नहीं था, बाबूजी! इसलिए इन्होंने कुछ कहा नहीं। उसकी एक सहेली आई हुई थी और यह तय पाया था कि उसे विदा करनेके बाद यदि समय रहेगा, तो यह मोटरसे यहाँ चली आवेगी।'

इसके बाद जिस प्रश्नके उदय होनेकी सम्भावना थी, उसका उत्तर शेखरने पहलेसे ही दे दिया। उसने कहा—'मैं साथमें ही आता; किन्तु आज तीसरे पहर वैद्यपाटी शहरमें कुछ काम था, इससे मुझे पहले ही घर छोड़ देना पड़ा।'

लज्जाके मारे अरुणा पैर ही नहीं उठा पाती थी। वह सोच रही थी कि मेरे ही लिए इस प्रकार मिथ्याकी सृष्टि हो रही है—विशेषतः दीदीकी ओरसे। इधर पहलेसे आकर स्वामीने पता नहीं, और क्या-क्या बातें गढ़ रखी हैं, यह सोच-सोचकर अरुणा अधीर होती जा रही थी। दीदीके मनमें तो इन्होंने यह धारणा उत्पन्न कर ही दी है कि स्वामीकी ओर अधिक आसक्ति होनेके कारण मैं पिताके घर चली आई हूँ। छिः-छिः, बड़े ख़तरनाक आदमी हैं ये! ये सब कुछ कर सकते हैं!'

अरुणा बहुत सँभल-सँभलकर ही बातचीत करती रही। बीच-बीचमें वह स्वामीकी ओर कभी नम्रतापूर्ण दृष्टिसे और कभी तीक्ष्ण दृष्टिसे देखती भी जाती थी। वह सोच रही थी कि सास-ससुरके सामने भी कहीं ये कोई बेशर्मीकी बात न कर बैठें। मन-ही-मन उसने कहा—भूल हो गई बाबू साहब, अब मैं तुमसे कभी स्पर्द्धा न करूँगी।

कुछ ठहरकर, ज़रा-सा जलपान करनेके बाद सब लोग गंगाजीके तटपर जा बैठे। पिता थोड़ी देरके बाद ही उठ आए। डाक्टरने उन्हें रोक दिया था कि शरीरमें ठंडी हवा न लगने पावे। इससे अधिक समय तक वे वहाँ रुक ही नहीं सकते थे। उनके उठनेके बाद ही मा भी उठ गईं। शेखरका दम घुटता जा रहा था। अब उसे मुँह खोलनेके लिए ज़रा अनुकूल अवसर मिला। उसने कहा—'हमारी हिन्दू ललनाओंका यशोगान जो इतने दिनोंसे होता आ रहा है...'

पतिके मुँहकी ओर एक बार सन्दिग्ध भावसे देखकर अरुणा बोली—'अच्छा, होता रहे। आप चुप रहें।'

'नहीं, तुम्हारी आजकी यह पतिभक्ति देखकर भी यदि मैं उसकी क़द्र न करूँ, तो यह मेरी घोर कृतघ्नता होगी।'

अरुणा खीजकर बोली—'रहने दो जी, मैंने हार मान ली। मुझसे भूल हो गई। अब दीदीके सामने बेहयापन मत करो, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।'

शेखर मुस्कराने लगा। मन्द-मन्द स्वरमें—इतने धीरेसे कि मानो वह अपने मनमें ही कह रहा था—बोला—'सुनता हूँ कि पैरों पड़नेका काम शायद हम लोगोंके ही ज़िम्मे पड़ा हो!'

आज तीसरे पहरकी ही बात है।

अरुणा ज़रा वक्र दृष्टिसे देखे बिना न रह सकी। बात टालनेके लिए वह बोली—'बातें करनेके लिए तुम लोगोंको और कोई प्रसंग ही नहीं मिल रहा है क्या दीदी?'

शचीने कहा—'मुकुर्जी आज हमारे अतिथि हैं। उन्हें यदि केवल तेरी ही चर्चा करनेमें आज सुख मिल रहा है, तो मैं उन्हें उस सुखसे वंचित क्यों करूँ?'

अरुणाने कहा—'क्यों? मैं तो अभी आते-ही-आते चर्चाके उपयुक्त कितने विषय पा गई हूँ। इस स्थानकी मनोरमताको ही ले लिया जाय। कितनी सुन्दर ज्योत्स्ना है, खुला हुआ गंगाका तट है, कैसी सुखद हवा चल रही है! मुझे तो इस स्थानके लिए...'

शेखर उतावला होकर बोल उठा—'परन्तु इसी कारण हम दोनोंको छोड़कर तुम झटपट उठ न जाओ, शची दीदी! अरुणाने यह बात मनमें ऐसा अभिप्राय रखकर नहीं कही, यह मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ।'

शेखर हँसने लगा। शचीने भी हँसकर मुँह फेर लिया। अरुणाने एकाएक चकित होकर एक बार स्वामीकी ओर और एक बार बड़ी बहनकी ओर देखा। फिर स्वामीकी इस गूढ़ हँसीका रहस्य समझकर वह बहुत ही लज्जित हुई और साथ ही साथ उसे अपार क्रोध भी आया। झुँझलाहटसे वह बोली—'नहीं जी, अब मैं चलती हूँ। कहीं भी जानेपर ज़रा शान्ति नहीं। भला, किसे मालूम था कि यहाँ भी पहलेसे ही आकर ये जमे हुए हैं!'

सालीकी ओर देखकर शेखकर बोला—'देखती हो शची दीदी, अपनी सफ़ाई देनेके लिए अरुणा कितनी अधिक व्यस्त है ! मैंने तभी इनसे कह दिया था कि आना मत, नहीं तो तुम्हें बहुत लज्जित होना पड़ेगा। परन्तु भला चोर भी कहीं शास्त्रके उपदेश सुनता है ? ये कहने लगीं, मैं बात-की-बातमें सब सँभाल लूँगी, कोई समझ न पायगा।'

बहुत ही खीझकर अरुणा बोली—'बाप रे बाप! क्या लज्जा-शरम तुमने एकदम धोकर पी ली है ?'

शेखरने कहा—'लज्जाका अभाव नहीं है मुझमें। परन्तु जो बात यथार्थ है, उसे प्रकट कर देना ही मैंने उचित समझा। अन्यथा शची दीदीके मनमें यह बात आ सकती थी कि इन दोनोंके बीचमें कोई बात पैदा हो गई है। झूठ-मूठमें अपने मनमें वे यह धारणा बना सकती हैं कि मुकुर्जी शायद झगड़ा-टंटा करके चले आए हैं, इसीसे मेरी बहन पीछे-पीछे दौड़ी आई है।'

अरुणा भीतर-ही-भीतर मानो जर्जरित हो गई थी। पराजय तो उसकी हो ही चुकी थी, अपने मुँहसे उसे स्वीकार कर लेनेपर स्वामी यदि छुटकारा दे देते, तो इसपर वह सहमत थी। परन्तु इसकी सुविधा कहाँ थी ? वह सोचने लगी—इस बीचमें असहाय भावसे मुझे कितने व्यंग्य-बाण सहन करने पड़ेंगे ?

स्वामीकी इस बातके उत्तरमें दम्भ प्रकट करती हुई वह बोली—'चलिए, चलिए, दौड़ी आऊँगी मैं !' किन्तु उसके साथ ही दीदीकी दृष्टि बचाकर उसने करुणापूर्ण विनम्र दृष्टिसे स्वामीकी ओर देखा।

स्वामीने भी निष्ठुर विजेताके समान ही हास्य-कुटिल दृष्टिसे उसे मौन उत्तर दिया। इसी अवसरपर पराजय स्वीकार करनेकी भी ज़रा सुविधा मिल गई।

मलिना डाली और मंटूको लेकर समीप ही दौड़-दौड़ कर खेल रही थी। डाली उसकी गोदसे गिर पड़नेके कारण रो पड़ी। शची मलिनाको डाँटती हुई उसे उठाने दौड़ी।

एक बार दृष्टि दौड़ाकर अरुणाने देख लिया, चोट उसे ज़रा भी नहीं लगी थी। बादको झटसे स्वामीका हाथ पकड़कर वह बोली—'मैं हार मान गई तुमसे। क्या तुममें दया-मया नामको भी नहीं है ?'

उसका स्वर भारी हो गया। पतिका हाथ छोड़कर अरुणा ज़रा दूर हट गई। बादको अनुनयपूर्ण स्वरमें वह बोली—'किस तरहकी बेशर्मी दिखा रहे हो तुम इतनी देर से ?'

शेखरने कहा—'लौट चलनेके लिए तैयार हो न ?'

'कब ?'

शेखरने हँसकर कहा—'छः घंटे बाद।'

मुँह भारी करके अरुणाने कहा—'इससे तो अच्छा होगा कि अभी ही क्यों न चले चलो। बाबूजी और माँसे अभी तक ठीकसे बातचीत भी नहीं हुई। इस तरह भी मायके आया जाता है ?'

'अच्छी बात है, तो तुम्हीं क्यों नहीं बतलातीं कि कब चलोगी ? कल शामको ?'

'परसों। यहाँ मैं बहुत दिनोंसे नहीं आई हूँ।'

'तो क्या यही हार माननेके लक्षण हैं ?'

आँखोंकी कोरसे देखकर अरुणाने कहा—'हटिए, किसी एक आदमीके सामने भी क्या कभी मेरी हार है ?'

शेखरने भी मुस्करा दिया। वह बोला—'अच्छी बात है, तो परसों ही चलना।'

मलिना, मंटू और डालीको लिए हुए शची रेलिंगके पास खड़ी थी। गंगाजीमें चलते हुए स्टीमरों और नौकाओंको दिखलाकर वह डालीको फुसला रही थी। इधर पति-पत्नीको ज़रा सुविधा देना ही कदाचित् उसका मुख्य उद्देश्य था।

ज़रा देर तक चुप रहनेके बाद सामनेकी ओर देखकर शेखर बोला—'बड़ी सुन्दर ज्योत्सना है।'

गर्दन घुमाकर ज़रा दृष्टि-कोरसे देखनेके बाद अरुणाने कहा—'नहीं, यह सब न होगा। दीदी यदि कहीं घूमकर देखने लगें ?'

शेखर ज़रा पत्नीके समीप खिसक गया और उसके कंधेपर हाथ रखकर बोला—'दीदी इतनी नासमझ नहीं हैं, यह तुम अच्छी तरह समझ रखो।'

अनु०—श्री ठाकुरदत्त मिश्र

# सच्चे फ़रिश्ते

स्वर्गीय मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई

एक आदमी ज़रूरतसे ज़्यादा ख़ुदापरस्त और इबादत करनेवाला था और बहुत दिनोंसे यादेख़ुदामें लगा रहता था। यहाँ तक कि उसकी इबादतका ग़लग़ला ज़मीनसे उठा और आस्मान तक पहुँचा। फ़रिश्तोंने आपसमें एक दूसरेसे उसकी तारीफ़ की।

उसके पड़ोसमें एक आदमी आकर रहा। उस आदमीकी सुन्दर लड़कीकी आवाज़ने आबिदके यादे-इलाहीमें ख़लल डालना शुरू किया। झुँझलाकर उसने कहा—'यह क्यों गुल मचाती है?'

थोड़े दिनोंमें उस लड़कीकी आवाज़में मिठास पैदा होता मालूम हुआ। आबिदने उसे महसूस किया; मगर उसने ख़ुदाकी तरफ़ ध्यान लगाया। फिर उसकी आवाज़में ज़्यादा मिठास पैदा होता गया। उसकी सूरत कैसी होगी—आबिदके दिलमें यह ख़याल आया और चला गया। पर कुछ ही दिनों बाद उस लड़कीकी आवाज़ने आबिदके दिलमें बेचैनी पैदा कर दी। उसकी सूरत-शक्ल कैसी होगी—यह बात रह-रहकर उसके दिलमें आती।

आख़िर एक रोज़ उससे न रहा गया। उसने मूँढ़ेपर खड़े होकर दीवारपर से झाँका। झाँका तो वह छुपकर, मगर हवासे उड़कर उसकी दाढ़ी दीवारपर आई। लड़कीका बाप बैठा हुक्का पी रहा था और माँ उसके पास बैठी थी। माँने देखकर कहा—'उईं, इस मैनाको देखो, कैसी झपाकसे उड़ गई!'

'किधर?'

'ऐं, तुमने देखा नहीं...ऐं, वह...देखो।'

और दाढ़ी उड़कर इस तरफ़ आई और जुम्बिशसे चली गई।

'मैना!...अन्धी हो तुम!'

'उईं, यह तो मुल्लाकी दाढ़ी है! ऐं, झाँक रहा है मुआ...ऐं, तुम्हें ख़ुदाकी क़सम...लो और सुनो...।'

'और हटती भी नहीं हो! चल कमबख़्त...बदमाश, ठहर तो जा।'

अन्दर बीबीने प्रलय खड़ा कर दिया और बाहर मियाँने मुहल्ला सिरपर उठा लिया। लोग दौड़े आए और लट्ठ लेकर लड़कीका बाप आया और बोला—'सिर फोड़ दूँगा। तुम क्यों झाँकते थे?'

आबिदने कहा—'ग़लत है। मैंने हरगिज़ ऐसा नहीं किया।'

एक और आदमीने गवाही दी—'हमने तुम्हारी दाढ़ी दीवारपर ख़ुद देखी।' एक दूसरे आदमीने कहा—'हमने तुम्हारी दाढ़ी हवामें मुँडेरपर हिलती देखी।' पर मुल्लाने ख़ुदाकी क़सम खाई कि वह नहीं झाँका। आदमी जमा हो गए थे। उन्होंने मामला सुना। सब आश्चर्यमें थे। फिर सबोंने यही कहा—'धोका हुआ होगा। चलो, जाने दो।' और आबिदने झूठ बोलकर अपनी जान छुड़ाई।

आसमानपर ग़लग़ला मचा और फ़रिश्तोंमें हलचल मची। उन्होंने कहा कि जिसे हम इतना सच्चा और नेक समझते थे, वह इतना झूठ बोला! दूसरे फ़रिश्तेने उसपर लानत भेजी कि वह आदमी बड़ा धोकेबाज़ है और भूलसे हम लोग उसकी तारीफ़ करते रहे! एक तीसरे फ़रिश्तेने कहा—'इस आदमीने झूठ बोलकर ज़मीनसे लेकर आसमान तक के वातावरणको ख़राब कर दिया!' दो जोशीले फ़रिश्ते ख़ुदाके सामने हाज़िर हुए और कहने लगे—'ख़ुदावन्द तू इस झूठे आदमीपर बिजली गिराकर जहन्नुममें डाल दे, ताकि अनन्त काल तक वह वहाँ जलता रहे।' पर ख़ुदाने उनकी बात सुनी-अनसुनी कर दी।

कई दिन बाद ख़ुदाने अपने इस प्यारे बन्देकी इबादतको न सिर्फ़ क़बूल ही किया, बल्कि उसे ऊँचा दर्जा भी दिया। फ़रिश्ते इसपर परेशान हुए और फिर ख़ुदाके सामने उन्होंने अर्ज़ की—'इलाही, इस झूठे आदमीकी इबादत क़बूल मत कर।'

ख़ुदाने फ़रिश्तोंकी बात सुनकर इस बार भी कोई जवाब न दिया; लेकिन उनमें से दो फ़रिश्तोंको बुलाया, जो अपने जोशमें सबसे आगे थे! ख़ुदाने उनसे कहा—'देखो, झूठ मत बोलना। जाओ, दुनियामें आदमीके

भेषमें। मैंने तुमको भेजा ; मगर झूठसे बचना।'

फ़रिश्ते सिजदेमें गिरे और बोले—'हम भला क्यों झूठ बोलेंगे ?'

ख़ुशीके मारे फ़रिश्ते फूले न समाए। वे आपसमें एक-दूसरेको बधाइयाँ देने लगे—'ख़ुदाबन्दकी यह मर्ज़ी मालूम होती है कि नबियोंको शर्मिन्दा करे और उनको दिखाए कि देखो, फ़रिश्ते कैसा काम करते हैं और तुमसे कुछ भी न हो सका !'

दोनों फ़रिश्ते बोले कि उनके कारनामे नबियोंसे बढ़ जायँगे और वे दुनियाको ख़ुदाके नूरसे रौशन कर देंगे।

एक और फ़रिश्ता बोला—'मालूम ऐसा होता है कि वह अल्लाह तालाकी महरबानी है और ख़ुदा झूठको दुनियाके पर्देसे मिटा देना चाहते हैं।'

दोनों फ़रिश्तोंने कहा—'ज़रूर ऐसा ही है। ख़ुदाबन्द तालाकी मर्ज़ी मालूम होती है कि नबियोंको बता दें कि देखो, तुम झूठकी लानतको दुनियासे न मिटा सके, जिसको मैं अब मिटाता हूँ।'

और वे दोनों फ़रिश्ते प्रसन्नवदन ज़मीनपर आए।

\- २ -

दोनों फ़रिश्ते प्रसन्नवदन सीधे उस शहरमें दाख़िल हुए, जिसमें वह ख़ुदापरस्त मुल्ला रहता था। एक पुलिस-वालेने संदिग्ध दृष्टिसे उन्हें देखा और उनसे उल्टे-सीधे सवाल किए।

अब चारों ओर फ़रिश्ते देखते हैं कि लोग ख़ुदाको भूले हुए दुनियाके चक्करोंमें पड़े हैं, और दुनिया क्या तमाशा है कि प्रत्येक व्यक्ति राग-द्वेषमें फँसा है, ख़ुदाकी हस्तीसे ग़ाफ़िल है और झूठ और फ़रेबकी लानतमें गिरफ़्तार है। फ़रिश्तोंने राय क़ायम की कि यह शहर तो इस क़ाबिल है कि फ़ौरन इसपर ख़ुदाका कोप होना चाहिए। इसका तख़्ता लौटा जाना चाहिए। यह शहर क़ायम ही कैसे है ?

इतनेमें एक गुण्डेने एक फ़रिश्तेके चाँटा दिया और धक्का देकर बोला—'अन्धा है बे! देखकर नहीं चलता, पैर कुचल दिया।'

दूसरा फ़रिश्ता मोटरसे बच गया। दोनों बाज़ारमें भौंचके रह गए। फिर वे एक होटलमें पहुँचे, जहाँ शहरके लफ़ंगे मज़े उड़ा रहे थे। उन्होंने कुछ खाया-पिया। एक गुण्डेसे उनका विचार-विनमय हुआ। कुछ मतभेद हुआ, तो उन्होंने कहा—'तुम ख़ुदासे बिल्कुल ग़ाफ़िल हो।'

गुण्डेने एक क़हक़हा लगाया और कहा—'यार, हम तुमको जान गए कि तुम कौन हो ?'

और फ़रिश्तोंने समझा कि यह कोई सच्चा ख़ुदाका बन्दा है, जो इसको मालूम हो गया है कि हम फ़रिश्ते हैं, और वे ज़रा बेकल हुए।

उसने फिर कहा—'हम जान गए।'

फ़रिश्तोंने कहा—'क्या जान गए ?'

'जान गए। बतायँ फिर...'

'बताओ।'

गुण्डेने कोरसाका हाथ बढ़ाकर कहा—'यार, हम जान गए। तुम सिन्धकी तरफ़ औरतें भगाते हो। कोकेन...(सिर हिलाकर) न कहना...कह दूँ पुलिसमें।'

जब फ़रिश्तोंने क़स्में खाईं और यक़ीन दिलाया, तो गुण्डेने हँसकर कहा—'तुम अव्वल नम्बरके झूठे हो।'

फ़रिश्तोंने एक दूसरेकी तरफ़ देखा। यह कैसी दुनिया है ! हमें यह आदमी झूठा कहता है ! हमें जल्दी ही इस झूठके ख़िलाफ़ जिहाद करना चाहिए।

जब फ़रिश्ते वहाँसे निकले, तो देखते हैं कि दुनिया है कि एक ओर उमड़ी आती है। एक पुलिसमैनने धक्का देते हुए कहा—'हटो, लाट साहब आ रहे हैं।'

लाट साहब एक रईसके यहाँ दावतमें जा रहे थे। बड़ा प्रबन्ध था। फ़रिश्तोंको दो आदमी मिले, और उन्होंने कहा—'चलो, हम तुमको दिखा दें।'

घूमकर ये लोग एक बाग़ पार करके बढ़े कि एक चपरासीने टोका और मना किया कि वे उधर होकर न जायँ, और वे सब लौट आए। पर आँख बचाकर दोनों आदमी घासपर होते हुए निकल गए। फ़रिश्ते भी साथ थे। फ़रिश्तोंने एक दूसरेकी ओर देखा और कहा—'ख़ुदाका हुक्म थोड़े ही है कि उधर न जाओ। यह तो आदमियोंका हुक्म है, और आदमियोंने ख़ुदाके हुक्मोंको नहीं माना।'

आगे जाकर चारों पकड़े गए। उन दोनों आदमियोंने फ़रिश्तोंको परामर्श दिया कि कह देना, हम बेगारमें पकड़े आए थे, सो महलपर से आते हैं।

फ़रिश्तोंने कहा—'हम झूठ नहीं बोलेंगे।'

वे दोनों आदमी छूट गए ; पर फ़रिश्ते सच बोले। चपरासी भी आ गया, जिसने मना किया था। वे एक मोटे-से जमादारके रूबरू पेश हुए। उसने पूछा—'जब

तुमको मना कर दिया था, तब क्यों नहीं मानें ? देखते नहीं, उस तरफ़ ज़नाना है ।'

एक चपरासी बोला—'ये पराई औरतोंको तकने आए थे ।'

'आए क्यों थे ? हुक्म क्यों नहीं माना ? सवाल तो यह है ।'

फ़रिश्तोंने कहा—'लोग ख़ुदाका ही हुक्म नहीं मानते, तुम कौन चीज़ हो ?'

जमादारने कहा—'इनके कान खींचो ।'

सिपाहीने कान खींचे और बोला—'ये तो दस नम्बरके बदमाश मालूम होते हैं । बड़े टर्रे हैं । इनको पुलिसमें दे दूँ ?'

जमादारने कहा—'नहीं, अब पुलिसमें कहाँ देते फिरोगे । इनके एक-दो लातें मारो और निकाल दो ।'

बस, यही किया गया । फ़रिश्ते लातें खाकर हैरानो-परेशान थे । अब पता लगाते वे उस ख़ुदापरस्त मुल्लाकी ओर गए । रास्तेमें एक भारी भीड़ मिली । वहाँ बहस हो रही थी । तालियाँ बज रही थीं । वहाँ बहसमें एक मौलवी साहबको हराया गया था । फ़रिश्ते पंजोंके बल खड़े होकर उचक-उचककर सुनने लगे । जो कुछ उन्होंने सुना, उसको सुनकर वे काँप गए । बहस करनेवाला ख़ुदाके अस्तित्व तक को नहीं मानता था, और सैकड़ों आदमी उसके समविचार थे !

ख़ुदाकी पनाह ! फ़रिश्तोंने आसमानकी ओर देखा कि ख़ुदाका क़हर उस नास्तिकपर गिरने ही वाला है । ओफ़ ! फ़रिश्तोंने कानोंमें उँगलियाँ दे लीं । यह ख़ुदाका मज़ाक़ उड़ाता है ! उसका अस्तित्व तक नहीं मानता ! और फिर उन्होंने आसमानकी ओर देखा ; पर बिजली न गिरी, कोई क़हर नाज़िल न हुआ । अन्तमें नास्तिकने कहा—'जिसको किसीने नहीं देखा, उसको कैसे मानें । किसीने ख़ुदाको देखा होता और वह कहता, तो मैं मान लेता ।'

उन फ़रिश्तोंने सोचा कि यही मौक़ा है । हम अपना काम यहींसे प्रारम्भ कर दें । इससे अच्छा और कौनसा मौक़ा होगा ? हम ख़ुदाकी हस्तीके चश्मदीद गवाह हैं । क्यों न हम इस नास्तिकको क़ायल करके इसकी आँखें खोल दें ? हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम ख़ुदाकी हस्तीकी गवाही दें । फिर दोनों फ़रिश्ते ख़ुदाकी हम्द ( स्तुति ) गाते हुए आगे बढ़े और पुकारकर उन्होंने कहा—'हमसे पूछो । हम मौजूद हैं । बकवास मत करो । हमने ख़ुदा देखा है ।'

भीड़ काईकी तरह फट गई । दोनों फ़रिश्ते प्लेट-फ़ार्मपर पहुँचे और छाती ठोंककर उन्होंने कहा—'हम गवाही देते हैं कि हमने ख़ुदा देखा है ।'

एक क़हक़हा ज़ोरसे ऊँचा उठा । तालियाँ बजने लगीं । व्यंग्य कसे जाने लगे । लोगोंने ख़ुदाका हुलिया पूछा । कोई मुँह, कोई कान और कोई नाकके बारेमें पूछता । किसीने कहा—'इनकी सूरत तो देखो । हबन्नक-जैसी !' किसीने कहा—'चुग़द हैं ।' किसी कहा—'उल्लू हैं ।' और कोई बोला—'लफ़ंगे हैं । अव्वल नम्बरके झूठे । झूठे भी क्या मूर्ख—पागल ।' और सवालोंकी बौछार होने लगी । लोग ठहाका देकर हँसने और हँसकर पूछने लगे ।

किसी लफ़ंगेने सिरपर घोल रसीद की । वक्ता और सभापतिने रोका ; पर लोगोंने चपतोंपर धर लिया । अब फ़रिश्ते ऐसे बौखलाए कि भीड़से भागे । बड़ी कठिनाईसे बचकर निकले । गलीके छोकरोंसे बचे और भागे । वे बड़े आश्चर्यमें थे कि ये लोग हैं कैसे ! पूछते-पूछते वे ख़ुदापरस्त मुल्लाके यहाँ पहुँचे और उससे कहा—'हम आपसे फ़ैज़ हासिल करने आए हैं ।'

- ३ -

फ़रिश्तोंको यह तो मालूम था कि मुल्ला झाँका और झूठ बोला ; मगर उन्हें यह पता न था कि क्यों झाँका ? लेकिन बहुत जल्दी उस सुन्दर लड़कीकी आकर्षक आवा-ज़ने उन फ़रिश्तोंको भी मुल्लाकी भाँति बेकल करना शुरू किया । बस, एक दिन जब मुल्ला किसी काममें व्यस्त था, उन्होंने कहा—'क्या हर्ज़ है ? मुल्लाने मना किया है, ख़ुदाबन्द तालाने थोड़े ही मना किया है ? मुल्लाका इन्सानी हुक्म क्या वक़अत रखता है, जब आदमीने ख़ुद ख़ुदा-बन्दी हुक्म नहीं माना ।'

दोनों मूँढ़ेपर खड़े होकर उस तरफ़ झाँके । औरतोंने शोर मचाया । लड़कीका भाई और बापने आकर देखा कि दो जवान आदमी झाँक रहे हैं । एक तूफ़ान उमड़ आया । शोर मचाते वे मुल्लाके घरपर चढ़ आए और अन्य लोग भी जमा हो गए । मुल्ला हैरान और परेशान था कि ग़ज़ब हुआ । फ़रिश्तोंसे उसने कहा—'यह क्य

ग़ज़ब किया ? मना किया था मैंने और न माने ।'

फ़रिश्ते बोले—'ख़ुद आदम हुक्म ख़ुदाबन्दी न माने, फिर तुम्हारा हुक्म हमपर कैसे लागू हो सकता है ?'

मुल्लाने कहा—'ख़ैर, जो हुआ, सो हुआ ; पर अब इस बलाको टालो ।'

फ़रिश्ते—'कैसे ?'

मुल्ला—'कह देना कि हम नहीं झाँके या कह देना कि हमें नहीं मालूम था ।'

फ़रिश्ते—'तुम हमें झूठ बोलनेके लिए प्रोत्साहन देते हो। लानत है तुम्हारे ऊपर । हम तो झूठ नहीं बोलेंगे । हमें ख़ूब मालूम है कि हम क्यों झाँके ।'

जब उनसे पूछा गया, तो उन्होंने सच-सच कह दिया कि हम झाँके थे । कारण पूछा, तो बता दिया कि लड़कीकी आवाज़के आकर्षणसे झाँके थे ।

फ़रिश्तोंके मुँहोंसे ये शब्द निकले ही थे कि लड़कीका बाप और भाई चिपट पड़े । दूसरे लोगोंने भी उनका साथ दिया । फ़रिश्तोंपर मार पड़ी । बादमें वे पुलिसमें ले जाए गए ।

किसीने कहा—'बुधियाको भी ये ही फ़रार कर ले गए।'

बुधिया एक भिश्तीकी लड़की थी, जो लापता थी । पुलिस तहक़ीक़ात कर रही थी ; पर कुछ सुराग़ न मिलता था ।

- ४ -

पुलिसके थानेमें वे पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि एक ज़बरदस्त आदमी चेहरेसे-क्रोध-भरा बैठा है । उसने ख़ूनी नज़रसे उनको देखा । एक कान्स्टेबिलने बढ़कर कहा—'हुज़ूर, ये वे ही मशकूक आदमी हैं, जिनकी रिपोर्ट फ़िदवी कर चुका है ।'

काग़ज़ निकाला गया । उसमें रिपोर्ट दर्ज थी—'आज दो आदमी मशकूक (सन्दिग्ध) आवारह शहरमें दाख़िल हुए हैं और हल्क़ा-कान्स्टेबिलकी निगरानीमें हैं ।'

हल्क़ा-कान्स्टेबिलने बताया कि किस प्रकार उसका उनपर शुभा था । थानेदारने उनको क़रीब बुलाया और मुंशीको हुक्म दिया कि उनके बयान लिखता जाय । थानेदारने उन दोनोंसे नाम पूछा । फ़रिश्तोंने अपने नाम बताए । थानेदारने हँसकर कहा—'किस मूर्खने तुम्हारे नाम रखे हैं ?'

फ़रिश्ते काँप गए कि ख़ुदाका कोप उस गुस्ताख़ आदमपर होने ही वाला है । मारे डरके उनके चेहरे उतर गए । उनके नाम तो ख़ुद ख़ुदाकी कृपासे उन्हें मिले हैं । ख़ुदाने ही उनके नाम रखे हैं । मगर कुछ नहीं हुआ—कोई कोप नहीं हुआ ।

'और बापका नाम ?'—मुंशीने पूछा ।

फ़रिश्ते एक दूसरेका मुँह ताकने लगे । उनके न मा थी और न बाप । वे आख़िर क्या बताते ?

'कहाँसे आए हो ? कहाँ रहते हो ? क्या करते हो ? कभी दफ़ा दसमें तो चालान नहीं हुआ ? पुलिसकी निगरानी तो नहीं होती ? कभी सज़ा तो नहीं हुई ?' इत्यादि ऐसे ही प्रश्न किए गए ।

फ़रिश्ते क्या जवाब देते ? उन्होंने केवल यही उत्तर दिया—'ख़ुदाकी हम्द (स्तुति) करते हैं और यही पहले करते थे और ख़ुदाका हुक्म बजा लाते हैं ?

'और बाक़ी सवालोंके जवाब ?'

फ़रिश्ते कुछ न बोले । अवाक थे । जब ज़्यादा पूछा गया, तो कहा—'हम नहीं बताते ।'

'नहीं बताते !'—दहाड़कर थानेदारने कहा—'मेरा हुक्म नहीं मानते !'

फ़रिश्तोंने नरमीसे कहा—'हमसे और सवाल न पूछो ; हम नहीं बताते । अब रहा तुम्हारा हुक्म, सो वह कोई चीज़ नहीं । तुम ख़ुद आदमकी औलाद हो, जिसने ख़ुदाका हुक्म नहीं माना । हममें सिवाय ख़ुदाके किसीका भी हुक्म मानना लाज़िम नहीं ।'

'अच्छा, आप सिर्फ़ ख़ुदाका हुक्म मानेंगे, मेरा हुक्म नहीं मानेंगे ! मैं आपको बताऊँ कि मेरा हुक्म क्या है ?'—थानेदारने यह कहा और पुकारा—'अरे जुम्मन !'

एक ज़बरदस्त-सा कान्स्टेबिल दौड़ा आया और बोला—'जी हुज़ूर !'

'ज़रा इनके होश तो दुरुस्त कर दो । ये हुक्म नहीं मानेंगे !'

थानेदारका यह कहना था कि जुम्मन गालियाँ देता उनपर पिल पड़ा और उनको इतना पीटा कि फ़रिश्तोंका हुलिया दुरुस्त हो गया । मारनेकी पहली क़िस्त ख़त्म करके ज़रा दम लेनेके लिए उनको हवालातमें डाल दिया । हवालातमें मुल्ला भी बन्द था । उसने कहा—'ख़ुदा

तुम्हें नेक हिदायत दे। तुमने तो क़यामत (प्रलय) खड़ी कर दी। मेरा कहना नहीं माना।'

फ़रिश्ते नाराज़ हुए कि तुमने हमको झूठका मशविरा दिया था।

मुल्लाने कहा—'ठीक है। तुम्हारा कहना तो सच है; पर क्यों सचको बदनाम करते हो? तुमने क्या बला मोल ली? लड़कीकी मँगनी छूट गई। मुहल्लेमें क़यामत बर्पा हो गई। लड़कीकी शादी अब दूसरी जगह नहीं हो सकती। मुझ ग़रीबको बुधियाके बारेमें गिरफ़्तार किया है।'

फ़रिश्तोंने कहा—'हम नहीं मानेंगे। तुम झूठे हो। हमें भी झूठ सिखाते हो।'

मुल्लाने कहा—'ऐ मेरे दोस्तो, तुम वास्तविकतासे बहुत दूर हो। एक बार मुझसे भी यही भूल हुई थी और लड़कीको झाँककर मैंने देखा था।'

'और झूठ बोल गए!'—उपेक्षासे फ़रिश्तोंने कहा।

'हाँ, मैंने झूठ बोलनेके गुनाहके दण्डमें दोज़ख़में जाना मंज़ूर किया और झूठ बोलकर बड़ी भारी मुसीबतसे बच गया।'

'तो क्या हम भी झूठ बोलें?

'तुम जानो; मगर मेरी राय यह है कि इस बलाको टालो। अब तुम यह करो कि पुलिसवालोंसे असलियत न छिपाओ। भला, पुलिसवालोंसे असलियत कब तक छुपाओगे?'

फ़रिश्तोंने चौंककर कहा—'क्या पुलिसवाले अल्लाह हैं?'

मुल्ला हँसकर बोला—'उनसे भी बढ़कर!'

फ़रिश्तोंने कहा—'हम तो यक़ीन नहीं करते।'

मुल्लाने ख़याल किया कि उनका दिमाग़ ख़राब हो गया है। फिर भी उसने कहा—'छिपाना है, तो तुम जानो। तुम नाम ग़लत-सलत बता दो। बापका फ़र्ज़ी नाम, जगहका फ़र्ज़ी नाम और ऐसे ही कुछ और बता दो।'

पर फ़रिश्तोंकी समझमें कुछ न आया, और उन्होंने कहा—'हम झूठ नहीं बोलेंगे।'

फ़रिश्ते तीसरे पहर थानेदारके सामने पेश किए गए, और वे अपनी बातपर क़ायम थे। थानेदारने उनसे कहा—'अब तुम सच-सच कहो कि बुधिया कहाँ है?'

फ़रिश्तोंने क़समें खाईं, कानोंपर हाथ धरे और लाइल्मी ज़ाहिर की।

एक कान्स्टेबिलने कहा—'हो न हो, तुमने ही बुधियाको छिपाया है।'

दूसरा बोला—'और अभी-अभी इनको बताना पड़ेगा।'

एक और बोला—'सूरत देखो, अव्वल नम्बरके बदमाश और झूठे मालूम होते हैं।'

एक तीसरेने कहा—'तभी तो बापका नाम नहीं बताते और अता-पता नहीं देते।'

एक चौथेने कहा—'दें कैसे? पकड़े न जायँ असल जुर्ममें। अरे, ये कोई और जुर्म करके भागे हैं?'

थानेदारने गरजकर कहा—'अपनी असलियत कब तक छुपायँगे और मुझसे असलियत कब छिपेगी?' थानेदारने आख़िरी मौक़ा दिया—'देखो, बुधियाका पता दो और बताओ कि तुम कौन हो?'

पर जब फ़रिश्ते नहीं माने, तब थानेदारने जुम्मनको तैनात करके उनको हुक्म दिया कि मुर्ग़े बनाए जायँ। और वे दोनों मुर्ग़ा बनाए गए। जुम्मनने कहा—'ज़रा पीठ नीची की नहीं कि मारूँगा और इधर ज़रा पीठ झुकी कि पड़ा तड़ाकसे हण्टर!'

'टाँगें और फैलाओ।'—थानेदार बोला, और उनकी टाँगें और फैलाई गईं। 'और फैलाओ।'—पड़ा एक हण्टर। टाँगें इतनी फैलाई गईं कि गुंजाइश न रही।

फ़रिश्तोंकी आफ़त थी। जब उनकी मार-पीट हुई, तो वे बड़े परेशान हुए और घबरा गए। सोचे, क्या करें? थानेदारने एकान्तमें असलियत बतानेका इरादा किया और आपसमें परामर्शकी ठहरी। थानेदारने आज्ञा दे दी कि वे आपसमें परामर्श कर लें। उन्होंने आपसमें निश्चय किया कि आख़िर अपनी असलियत बतानेमें क्या हर्ज़ है इस अत्याचारीको। सम्भव है, वह राहेरास्तपर आ जाय और उसकी आँखें खुल जायँ।

फिर दोनोंने थानेदारनेसे कहा—'अब पूछो, हम सच-सच बतादेंगे।'

जुम्मनको हटा दिया गया। उन्होंने थानेदारको ख़ुदाके ग़ज़बसे डरनेका उपदेश दिया।

थानेदारने कहा—'जब तक बुधिया नहीं मिलती, इसकी ज़्यादा ज़रूरत है कि मैं सुपरिंटेंडेंटके ग़ज़बसे और तुम मेरे ग़ज़बसे डरो। ख़ुदाके ग़ज़बसे फ़ुरसतमें डरते-डराते रहना। मुक़दमा संगीन है और सुपरिंटेंडेंटकी ताकीद सख़्त।'

फ़रिश्ते फिर ख़ौफ़े-ख़ुदासे काँपे और नरमीसे बोले—'हम तुमको ख़ुदाके हुक्मका रहस्य बतादेंगे ।'

'तुम ख़ुदाके हुक्मका रहस्य बताओगे ?'

'हाँ ।'

'मय बुधियाके पतेके ?'

जब फ़रिश्तोंने बुधियासे लाइल्मी ज़ाहिर की, तब थानेदार बिगड़ खड़ा हुआ। पर जब फ़रिश्तोंने समझाया कि जब वे ख़ुदाके राज़को बतायँगे, तब बुधियाके बारेमें पूछनेकी कोई ज़रूरत ही न रहेगी।'

थानेदारने कहा—'मुझे ख़ुदाके राज़ जाननेसे ज़्यादा बुधियाके बारेमें जानना ज़रूरी है। तुम जानो या न जानो ; पर मैं तुमसे उगलवाऊँगा। तुम सच बोलनेको कहते हो, तो बताओ और सच-सच बताओ।'

फ़रिश्ते हैरान थे कि यह कैसा आदमी है, जिसको ख़ुदाके राज़से ज़्यादा बुधियाकी ज़रूरत है! उन्होंने उत्तर दिया —'हम सच कहते हैं कि हमारा कोई बाप नहीं। हम आसमानपर रहते हैं, ख़ुदाके नौकर और फ़रिश्ते हैं। हम सज़ा पाए हुए नहीं हैं। कभी ख़ुदाके हुक्मकी उदूली नहीं की। हम ख़ुदाकी हम्द (स्तुति) करते हैं और कोई चोरी-डाका नहीं डालते। तुम आँखें खोलो और पहचानो कि हम कौन हैं।'

थानेदारने ज़ोरसे क़हक़हा लगाया और बोला—'तुम फ़रिश्ते हो ? आसमानसे आए हो ? ख़ैर, कहींसे आए हो। तुमने तो ख़ुदाका राज़ बता दिया, अब मैं तुम्हें ख़ुदाका राज़ बताता हूँ। याद करोगे कि कभी आदमीसे पाला पड़ा था।'

थानेदारने जुम्मनको बुलवाकर उन्हें ख़ूब पिटवाया और फिर मुर्ग़ा बनवा दिया, और कहा—'टाँगें फैलाओ।'

और फ़रिश्तोंने टाँगें फैलाईं। 'और ! और ! और फैलाओ।' ऊपरसे मार पड़ती और टाँगें फैलवाई जातीं। फ़रिश्ते मारे तकलीफ़के परेशान थे और उनके हवास गुम थे। ऊपरसे मार और उसपर टाँगें फैलानेका हुक्म !

'ख़ुदाया, यह कैसी दुनिया है ?'—फ़रिश्तोंने हैरान होकर कहा।

'बुधियाको बताओ। टाँगें और फैलाओ और चौड़ी करो।'—थानेदारने कहा।

फ़रिश्तोंकी टाँगें चिरी जाने लगीं। वे हैरान होकर बोले—'ख़ुदाया ! तू ख़ूब जानता है कि हम बुधियाको नहीं जानते और यह आदमी नहीं मानता।'

थानेदार ख़ुद हण्टर लेकर पिल पड़ा और बोला—'टाँगें और चीरो।'

फ़रिश्ते चिल्लाए—'ऐ ख़ुदा, तू ख़ूब जानता है। आदमको तूने बनाया, तो टाँगोंमें गुंजायश रखी कि टाँगें कितनी फैल सकती हैं। लेकिन नहीं मानता।'

थानेदारने हण्टर कसते हुए कहा—'टाँगें फैलाओ।'

फ़रिश्तोंने कहा—'हम ज़रा-सी मुहलत एक दुआके लिए माँगते हैं।'

उसने पूछा—'वह क्या ?'

फ़रिश्तोंने कहा—'तुम हमको थोड़ी-सी मुहलत दो, जो हम ख़ुदासे दुआ माँगें कि वह हमारी टाँगोंमें अधिक चौड़ाई दे।'

थानेदारने क़हक़हा लगाकर पूछा—'यह कैसे हो सकता है ?'

फ़रिश्तोंने कहा—'ख़ुदा चाहे, तो अभी भी हमारी टाँगोंमें कितनी ही गुंजाइश पैदा कर दे। तुम हमें दुआ माँगनेकी इजाज़त दे दो।'

थानेदारने हँसकर कहा—'मान लो, तुम्हारी दुआ क़ुबूल हो गई और टाँगोंमें फैलावकी गुंजाइश हो गई ; पर वह सब बेकार होगी।'

फ़रिश्ते—'क्यों ?'

थानेदार—'मैं उससे ज़्यादा टाँगें फैलानेका हुक्म दूँगा।'—यह कहकर थानेदारने फिर कड़ाई की।

'अब हद हो गई।'—बिलबिलाकर फ़रिश्तोंने कहा—'ऐ ख़ुदा, हम बाज़ आए इस दुनियासे। इस दुनियामें तो टाँगोंकी असीमित गुंजाइश बिना टिकना दूभर है। ऐ ख़ुदा, हम यहाँ नहीं ठहर सकते। हम तेरी पनाह माँगते हैं।' जैसे ही उन्होंने पनाह माँगी, वैसे ही उन्हें पनाह मिल गई।

एक तड़ाका हुआ, रोशनी हुई और चमक। ज़ोरके गर्जनसे थानेदार बेहोश होकर गिरा। फ़रिश्ते आसमानपर पहुँचे और ख़ुदाके सामने सिजदेमें गिरकर गिड़गिड़ाने लगे—'अपने राज़ तू ही जानता है। हम ख़तावार हैं।'

इधर सब दौड़कर आए। थानेदार होशमें आया। फ़ौरन रोज़नामचेमें इस घटनाको अंकित किया गया—'मुलज़िमान जरायमपेशा मुझ फ़िदवीपर बमका गोला फेंककर भाग गए।'
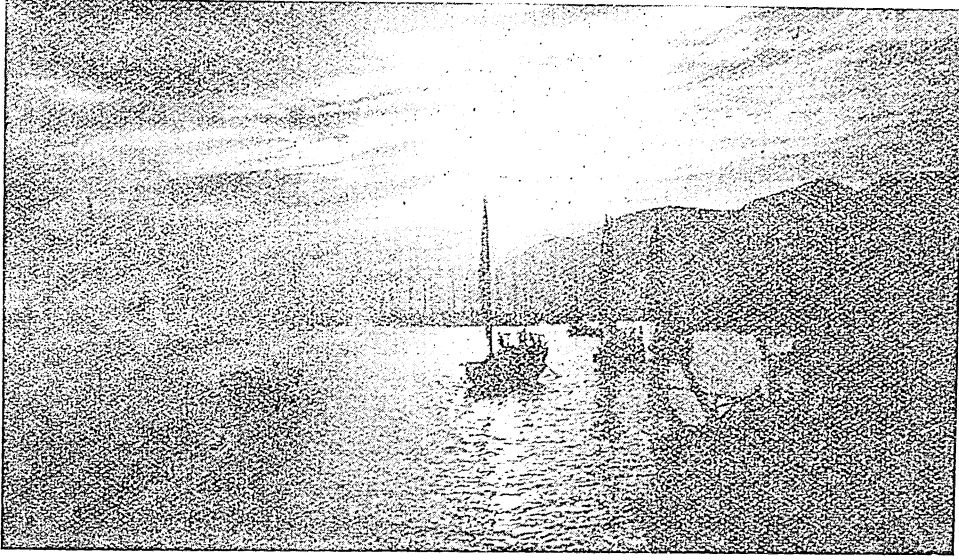
हांगकांगके, जिसपर आजकल जापानियोंका अधिकार है, सूर्योदयका एक दृश्य।
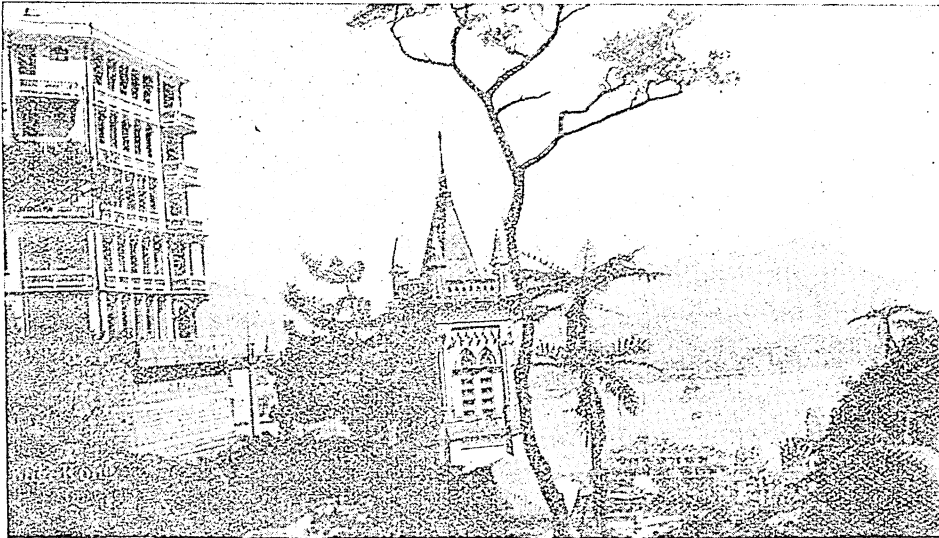
हांगकांगमें समुद्र-तटकी एक सुरम्य पहाड़ीपर बना एक होटल।

हांगकांगके पीक नामक स्थानका एक दृश्य ।

समुद्र-तटसे हांगकांगके बन्दरगाहका दृश्य ।
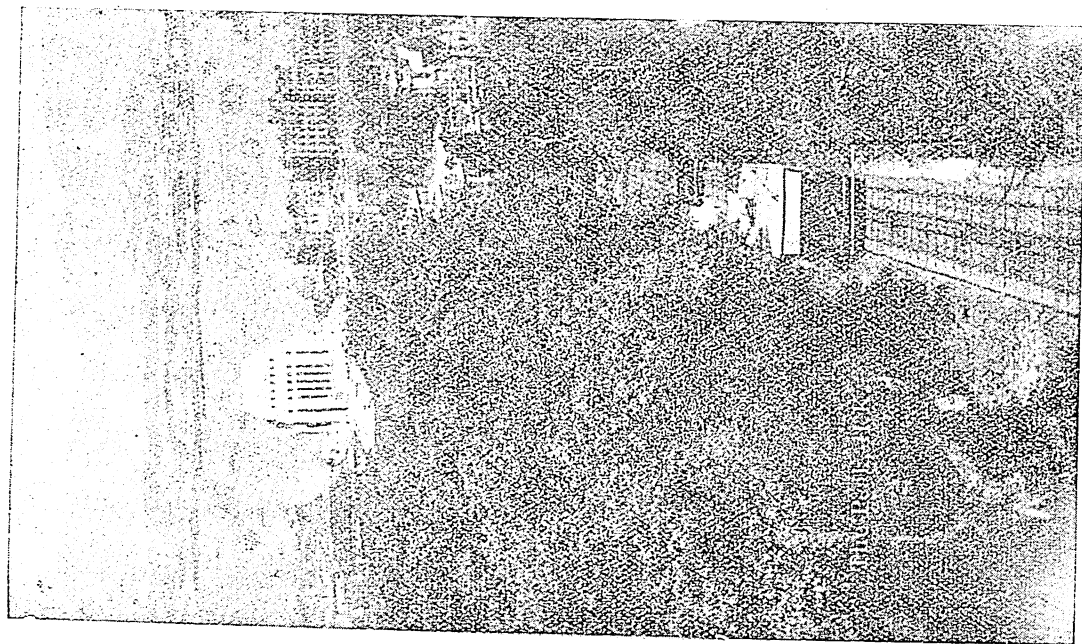
# समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

**कमला** ( नाटक ) : नाटककार—पं० उदयशंकर भट्ट ; प्रकाशक—सूरी ब्रदर्स, गणपत रोड, लाहौर।

भट्टजी हिन्दीके उन अंगुलियोंपर गिने जानेवाले नाटककारोंमें हैं, जिनके नाटक वास्तवमें 'दृश्य काव्य'की कोटिमें आते हैं। प्रस्तुत नाटक इसका ज्वलन्त उदाहरण है। यह तीन अंकोंमें समाप्त ज़रूर हुआ है ; पर इसमें 'एकांकी नाटक'के ही अधिक गुण हैं। यह बहुत ही अल्प समयमें अभिनीत हो सकता है। पात्रोंकी संख्या भी सीमित है और कार्य-कलाप भी। कालका ज्ञान पहले 'सीन'में तो १५ मार्च १९३९ और समय ८ बजकर ४० मिनट प्रातःकाल करा दिया गया है ; परन्तु बादके सीनोंमें तारीख़ें नहीं दी गईं—केवल समय दिया गया है। अतः प्रथम सीनमें तारीख़ देनेका कोई उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता। नाटक दुःखान्त है। दर्शक 'देवनारायण'के दुर्भाग्यपर उसाँसें भरता हुआ लौटता है। नाटकमें ज़मींदार और कृषक-समस्या, अनाथालयके मैनेजरोंकी क्रूरता और स्त्रीके ईर्ष्यालु स्वभावकी यत्र-तत्र झलक मिलती है। पृष्ठ ६४ पर 'उमा' और 'विश्वनाथ'के प्रेमालापमें विश्वनाथके पैरोंपर गिरनेका नाट्य करने और 'मेरी केवल यही भिक्षा है' कहनेपर उमाका ( विवशता दिखाकर और प्रसन्नता दबाते हुए ) यह कहना—'प्राणाधार ! मुझे सब स्वीकार है', प्रभावहीन इतिवृत्त-मात्र हो गया है। 'देवनारायण' का चरित्र-चित्रण बहुत अच्छा हुआ है। नाटककी भाषा बिलकुल सरल और चलती हुई है। समस्यामूलक होनेपर भी सिद्धान्त-चर्चासे नाटक शुष्क नहीं बनाया गया है। लेखकको अपने उद्देश्यमें काफ़ी सफलता प्राप्त हुई है।

**छत्तीसगढ़ी लोक-गीतोंका परिचय** : लेखक—श्री श्यामाचरण दुबे ; प्रकाशक—ज्ञान-मन्दिर, छत्तीसगढ़ ; पृष्ठ ७४ ; मू० ।≤)

किसी फ्रेंच लेखकने एक बार कहा था—'यदि तुम किसी राष्ट्रके मनुष्योंको जानना चाहते हो, तो वहाँकी स्त्रियोंको देखो।' हम कहते हैं—'यदि तुम किसी राष्ट्रकी आत्माकी नाड़ीको पहचाना चाहते हो, तो उसके लोक-गीतोंको सुनो।' सभ्यताके आलोकसे दूर ग्रामीण नर-नारियोंके कंठोंमें गूँजनेवाले गीतोंमें जातीय भावना सुख-दुखके अन्तर्द्वन्द्वोंके साथ कितनी सरसतासे उद्भासित होती है, यह जानकर हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं! आडम्बरहीन उद्गारोंमें काव्यका जो माधुर्य छलक उठता है, वह कई महाकवियोंमें भी दुर्लभ है। ग्राम-गीतोंमें 'उपभोग-पक्ष' ( कला कलाके लिए ) और 'प्रयत्न-पक्ष' ( कलाका 'शिव' रूप ) दोनोंके दर्शन होते हैं। हमें प्रसन्नता है, सहृदय लेखकने गीतोंके संकलनमें कलाके दोनों पक्षोंका ध्यान रखा है। लोक-गीत-प्रेमियोंको छत्तीसगढ़की संस्कृति समझनेमें सहायता मिलेगी। पुस्तकके प्रारम्भमें लोक-गीतका महत्व तथा छत्तीसगढ़-साहित्यकी गति-विधिपर संक्षेपमें विचार किया गया है। लेखकका प्रयत्न श्लाघ्य है। इस दिशामें उनसे बहुत कुछ आशा की जा सकती है।

**सेवाधर्म और सेवामार्ग** : लेखक—पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ; प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मंडल, नई दिल्ली ; पृष्ठ-संख्या ३००, मूल्य एक रुपया।

प्रस्तुत पुस्तकके लेखक 'सेवाधर्म' के वृत्ती और 'सेवामार्ग'के पथी हैं। अतः उनकी लेखनीसे इस विषय पर जो कुछ लिखा गया है, वह केवल तालिकामें दी गई विभिन्न पुस्तकोंकी कतरनोंकी बटोर ही नहीं है, उसमें उनका अनुभव भी निहित है। जिन पाठकोंने लेखककी 'आत्म-कथा' पढ़ी है, वे उनके 'निवेदन'की इस घोषणाका मर्म सहज ही समझ जायँगे कि 'सेवाधर्म मेरी पैत्रिक सम्पत्ति है।' आज जब देशमें सेवाको ही धर्म माननेकी लहर प्रवाहित हो रही है, हिन्दीमें इस विषयको समझाने-वाली पुस्तकका अभाव बुरी तरह खटकता था। ऐसे कितने कार्यकर्ता हैं, जो यह जानते हैं कि ग़रीब बीमारोंको सरकारी अधिकारीके सार्टिफिकेटपर रेल-यात्राका कुछ भी किराया नहीं देना पड़ता ? जन-सेवकको राजनीतिके चलते हुए ज्ञानके अलावा स्वास्थ्य, क़ानूनकी प्रारम्भिक बातें, देशकी प्रमुख संस्थाओं आदिका ज्ञान भी नितान्त आवश्यक है। कार्यकर्ताओंको पालीवालजीकी इस पुस्तकसे अपने कर्तव्योंको समझनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। पुस्तकके अध्यायोंके कुछ शीर्षक हैं—गाँवों और ग्रामीणोंकी सेवा, बीमारोंकी सेवा, अपढ़-कुपढ़ोंकी सेवा, हरिजनोंकी सेवा, यात्रियोंकी सेवा, साहित्य और लेखनी

द्वारा सेवा आदि। इनसे पुस्तककी उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। पुस्तककी लेखन-शैली सरल है। 'रिटर्न जर्नी टिकिट' के लिए लेखकने 'लौटावाट' शब्दका अच्छा प्रयोग किया है। पुस्तक संग्रहीय है।

**नागरिक कहानियाँ** : लेखक—प्रो॰ सत्येन्द्र, एम॰ ए॰; प्रकाशक—श्री भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थमाला कार्यालय, वृन्दावन; पृष्ठ-संख्या १५९, मूल्य दस आना।

पुस्तकका नाम यद्यपि 'कहानियाँ' है, फिर भी उसमें दस कहानियोंके अतिरिक्त एक छोटा एकांकी नाटक भी जुड़ा हुआ है। 'कहानियाँ' पाठकोंका केवल मनोरंजन ही नहीं करतीं, उन्हें नागरिकताकी शिक्षा भी देती हैं। अतः जो कलामें 'सुन्दरम्' ही देखना चाहते हैं, उन्हें सचमुच इन कहानियोंसे निराशा ही होगी। परन्तु लेखकने इन्हें 'कहानी' कहनेके लिए लिखा भी नहीं है। अतः इन कहानियोंको कहानीके 'टेकनीक' की दृष्टिसे देखनेकी आवश्यकता नहीं है। फिर भी उनमें यत्र-तत्र घटनाओंके साथ जीवनके अंश-विशेषके जो चित्रण हैं, वे यथार्थके अधिक निकट हैं और सुन्दर भी हैं। सार्वजनिक कार्यकर्ताओंको ही नहीं, प्रत्येक विद्यार्थीको भी अपने अधिकारोंको समझनेके लिए इस पुस्तकको पढ़ना चाहिए। 'कथा'के रूपमें दी जानेवाली शिक्षा दिमाग़पर बोझिल नहीं बनती।

**अश्रु-गीत** : प्रणेता—श्री कालीप्रसाद 'विरही'; प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मंडल, गुना; नई सराय, ग्वालियर।

लेखक 'हिन्दीके उत्साही और होनहार साहित्य-स्रष्टा हैं।' जान ड्रिंकवाटरने 'गीत'की व्याख्या करते हुए जो यह लिखा है कि 'गीत कविके अपने ही हृदयोद्रेककी अभिव्यक्ति है', वह बिलकुल ठीक है। 'अश्रु-गीत'के लेखककी पंक्तियोंमें भी ऐसे ही अभाव और निराशाके उच्छ्वास हैं। उनके एक गीतकी कुछ पंक्तियाँ देखिए :—

'क्या परिचय दूँ अपना रानी,
उजड़ी हुई एक बस्ती हूँ,
गुज़री हुई जवानी, रानी।'

एक जगह वे लिखते हैं—'रिक्तताके भार ही से फट चुकी झोली हमारी।' इसी एक पंक्तिमें उनकी निराशा अपनी चरम सीमापर पहुँच गई है। कहीं-कहीं छन्दोभंगसे गीतोंका प्रवाह कुंठित भी हो गया है। एक बात और है, वह यह कि ये गीत समयसे बहुत पिछड़े हुए—बासी-से—प्रतीत होते हैं; पर उनमें जो अवस्था-विशेषके उद्गार हैं, वे मानव-जीवनके शाश्वत सत्यसे रिक्त नहीं हैं।

—विनयमोहन शर्मा

**प्रेमचन्द (आलोचनात्मक परिचय)** : लेखक—डा॰ रामविलास शर्मा, पी-एच॰ डी॰; प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस; पृष्ठ-संख्या १८३+५, मूल्य २), सजिल्द।

पिछले कुछ वर्षोंसे हिन्दीके कुछ नए समालोचक पाश्चात्य शैलीमें समालोचना करने लगे हैं। डा॰ रामविलास शर्मा उन्हींमें से एक हैं। आपकी आलोचनाओंमें अध्ययनकी छाप होती है और बात भी आप काफ़ी नाप-तौलकर कहते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें डा॰ शर्माने साहित्यकार प्रेमचन्दका आलोचनात्मक परिचय देनेका प्रयत्न किया है। परिचय तो अच्छा रहा है; लेकिन आलोचना बहुत कम की गई है। अपनी कृतियोंमें जिन मोटी-मोटी सामाजिक समस्याओं और संघर्षोंपर प्रेमचन्दने विचार किया है, उनका विशद वर्णन और विवेचना इस पुस्तकमें सुलझे हुए ढंगसे की गई है। अपनी पुस्तकोंमें प्रेमचन्दने सामाजिक कुरीतियोंको इतना अधिक चित्रित नहीं किया, जितना भिन्न-भिन्न सामाजिक वर्गोंके संघर्षको। इन संघर्षोंको समझने और समझानेमें शर्माजी कम चूके हैं। निस्संदेह इस पुस्तकके द्वारा शर्माजीने प्रेमचन्दकी कृतियोंका यथार्थ रूप और उद्देश्य पाठकके सम्मुख रखा है। यों तो प्रेमचन्दकी कलापर भी उन्होंने विचार किया है; पर यदि वे ज़रा और विस्तार-पूर्वक इसपर प्रकाश डालते, तो पुस्तक अधिक मूल्यवान हो जाती। प्रेमचन्दका साहित्यिक मूल्य आँकते हुए लेखकको उनके गुण ही दीखे हैं, दोष नहीं। उनके कुछ निष्कर्ष भी शायद सर्वमान्य न हो सकें। शर्माजीके विचारमें प्रेमचन्दकी रचनाओंमें सुधारका हाथ छिपा हुआ है। प्रेमचन्दकी प्रारम्भिक एक-दो पुस्तकोंके बारेमें तो यह ठीक है; किन्तु बादकी और अधिकतर रचनाओंके विषयमें यह बात नहीं कही जा सकती। प्रेमचन्दने सुधारकी बात छिपानेका कभी भी प्रयत्न नहीं किया। चूँकि वे स्वभावतः एक महान कलाकार थे, इसलिए उपदेशक प्रेमचन्द कलाकार प्रेमचन्दपर कभी भी विजय प्राप्त नहीं कर सके। यही कारण है कि विशुद्ध कला-प्रेमी भी प्रेमचन्दको साहित्यिक क्षेत्रमें उच्चासनका अधिकारी समझते हैं। शर्माजीकी यह पुस्तक प्रेमचन्दके विद्यार्थियोंके लिए

ही नहीं, बल्कि हिन्दी-कथा-साहित्यकी गति-विधि जाननेवालोंके लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

—पृथ्वीनाथ शर्मा

**सितारोंके खेल**: लेखक—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'; प्रकाशक—भारती-भण्डार, लीडर-प्रेस, इलाहाबाद ; मूल्य १॥) रु०

प्रस्तुत उपन्यास 'अश्क'जी का प्रथम और घटना-प्रधान उपन्यास है। परिस्थितियोंके साथ घटनाएँ उलझती चली जाती हैं। कहीं-कहीं वे विकृत हो उस स्थानपर जा पहुँचती हैं, जहाँ मानवको महाशून्यसे ओतप्रोत अपना भयानक भविष्य दीख पड़ता है। उसे अपनी वह विवशता जीवनसे भी दुरूह और कष्टप्रद जान पड़ती है, तब वह निराश हो मृत्युका आलिंगन करता है। दूसरी ओर ये ही घटनाएँ, जीवनकी उस प्रशस्त जगहपर जा निकलती हैं, जहाँसे उसे अपनी कल्पनाएँ रँगी हुई दीख पड़ती हैं। यहाँ मानव सफलता पाकर अपने पुरुषार्थकी ओर देखता है और कह देता है—'मैं समर्थ हूँ।' उपन्यासमें प्रत्येक जगह इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है।

उपन्यासकी शैली ओजपूर्ण और भाव-प्रधान है; लेकिन भाषामें उर्दूके शब्दोंका सम्मिश्रण कहीं-कहीं बड़ा बुरा लगता है। कहीं-कहीं तो उर्दूके ऐसे क्लिष्ट शब्दोंका प्रयोग किया गया, जो साधारण हिन्दी-पाठककी समझसे दूरकी बात हैं—जैसे, नज़ाकत, नफ़ासत, गिरेबाँचाक, तारीकीमें आदि। दूसरे प्रूफ़-रीडिंग भी सावधानीसे नहीं किया गया है, जिससे काफ़ी अशुद्धियाँ रह गई हैं। वैसे पुस्तकका गैट-अप और छपाई सुन्दर हैं। —शम्भुनाथ सक्सेना

**संस्कृतिर रूपान्तर** ( बँगला ) : लेखक—श्री गोपाल हालदार ; प्रकाशक—पोथीघर, २२, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता ; मूल्य २॥), सजिल्द।

'संस्कृति' शब्द अंगरेज़ी 'कल्चर' शब्दका अनुवाद है। हमारे देशमें यह शब्द अभी अपेक्षाकृत व्यापक नहीं हो सका है। यूरोपकी प्रगतिशील शक्तियोंने जब फासिज़्मके विरुद्ध 'सांस्कृतिक मोर्चा' स्थापित किया, तो हिन्दुस्तानमें हमने भी साम्राज्यवादके विरुद्ध इसी मोर्चेको क़ायम करना चाहा। इसी सिलसिलेमें हमने संस्कृतिके स्वरूपको समझनेकी कोशिश की। इसके वास्तविक स्वरूपको हम जितना जल्द पहचानना चाहते थे, उतना जल्द पहचान नहीं सके, क्योंकि हममें अभी लौकिक संस्कार और वैज्ञानिक परम्पराकी कमी है। एक ओर ज़िम्मेदारी तथा पाण्डित्यके अभावसे उग्रपंथियोंके अतीतको अल्प विद्यासे विकृत करके वर्जन करना चाहा है और 'नवीन संस्कृति'के स्वप्नमें डूब गए हैं। दूसरी ओर कुछ अति पण्डित अतीतको सोलहो आना ग्रहण करके निर्बोध आसक्तिके साथ उससे चिपके रहना चाहते हैं। इन दोनों प्रतिक्रियाओंके मोहसे हमारे शिक्षित तथा शिक्षा-प्रयासी मनको मुक्त करनेके लिए गोपाल बाबूने यह पुस्तक लिखी है।

जीवित रहनेके लिए, प्रतिष्ठा पाने तथा उसे बढ़ानेके लिए, लगातार शक्ति-संचय करनेके लिए और अपनी आवश्यकतासे नवीन सृष्टिके लिए प्रकृतिके विरुद्ध मनुष्य वास्तविक तथा मानसिक क्षेत्रमें जिस संघर्षमें सफलता पाकर उन्नततर सफलताकी ओर अग्रसर हो रहा है, वह भौगोलिक कारणसे विशेषता प्राप्त कर लेती है। मनुष्य अपनी जातिके ही विरोधोंसे प्रतिहत होता है; लेकिन नष्ट नहीं होता—नवीन परिस्थितियोंमें रूपान्तरित होता है। यह प्रक्रिया सभ्यताके उषःकालसे आज तक चली आ रही है—नवीन वर्त्तमान पुरातन अतीतको अप्रयोजनीय समझकर वर्जन नहीं करके संक्रान्त कर रहा है। निरन्तर परिवर्त्तन और परिवर्द्धनके कारण मानव-संस्कृतिके इस रूपान्तरकी धाराको निर्द्धारित करना सहज काम नहीं है। इसके लिए जिस वैज्ञानिक मन, संस्कारमुक्त अन्तर्दृष्टि तथा अथक अनुसन्धानके सहज सम्मिलनकी ज़रूरत है, वह हमारे वैज्ञानिक परम्पराहीन देशमें दुर्लभ है। इसीलिए संस्कृति, प्राचीन संस्कृति, वर्त्तमान संस्कृति तथा भावी संस्कृतिपर इतने वादानुवाद हो रहे हैं। गोपाल बाबूने इस कोलाहलमें संस्कारमुक्त सहज साहस लेकर संस्कृतिकी संज्ञाका निरूपण किया है, इसकी धारा निर्द्धारित की है, कर्त्तव्यका निर्देश किया है। नृतत्व, जातितत्व, जीव-विज्ञान, राजनीतिक तथा अर्थनीतिक इतिहास और समाजतत्वकी रोशनीमें उन्होंने संस्कृतिकी समालोचना करके उसके विभिन्न स्वरूपोंको उद्घाटित किया है और विज्ञानके मज़बूत आधारपर खड़े होकर लिखा है—'संस्कृतिका अर्थ केवल संस्कारकी पुनरावृत्ति ही नहीं है, इसका अर्थ संस्कारका ऐतिहासिक परिवर्त्तन भी है। समस्त विवर्त्तनोंके बीचसे मनुष्य और भी मनुष्य बन रहा है, प्राचीन संस्कृति व्यापकतर विश्व-संस्कृतिमें रूपान्तरित हो रही है।'

यह पुस्तक लेखकके यथेष्ट अध्ययन, अनेक प्राण-प्रिय विश्वासों और संस्कारोंके विरुद्ध विज्ञानकी युद्ध-घोषणा और साहसकी परिचायक है। हमने अपनी संस्कृतिकी अवहेलना की है; लेकिन जिस वातावरणमें हमारा जन्म और लालन-पालन हुआ है, जिस समाजके राष्ट्र तथा अर्थनीतिको लेकर हम माथापच्ची कर रहे हैं, उसके इतिहास, उसकी संस्कृतिके स्वरूपके रूपान्तरका ज्ञान हमें बहुत कम है। इस अज्ञानके कारण हमें व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवनमें नाना प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। गोपाल बाबूने इस पुस्तकको लिखकर मानव-जातिकी एक बहुत बड़ी सेवा की है। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई उत्तम है। अच्छा हो, यदि इसका हिन्दी-रूपान्तर भी प्रस्तुत किया जा सके।

**सोवियत देश** (बँगला): सम्पादक—श्री गोपाल हालदार और श्री सुकुमार मित्र; प्रकाशक—सोवियत-सुहृद-समिति, कलकत्ता। मिलनेका पता—पोथीघर, २२, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता; मूल्य १॥)

The Land of the Soviets (A symposium):—Edited by Prof. Hirendra Nath Mukherjee and Sri Snehansu Acharya, Published by Friends of the Soviet Union Committee. To be had of Puthighar, 22, Cornwallis St., Calcutta, Price Rupees Two.

आज सोवियत रूसपर महान संकट उपस्थित हुआ है; लेकिन यह उसके जीवनमें कोई नई बात नहीं है। उसके जन्मके कुछ महीने भी नहीं बीतने पाए थे कि १४ पूँजीवादी राष्ट्रोंकी सेनाओंने चारों ओरसे उसपर आक्रमण करके बालशेविज़्मके नवजात शिशुका गला घोंट देना चाहा था। आक्रमणकारियोंने उस समय समग्र रूसका तीन-चौथाई हिस्सा दख़ल कर लिया था। उसी समय लाल सेना संगठित हुई। लाल सेना तथा फ्रांस, ब्रिटेन आदिके मज़दूर-आन्दोलनसे उस समय रूसकी विजय सम्भव हुई। आज रूसपर फिर वही संकट आया है। रूसके नर-नारी महान बलिदान करके शत्रुओंका मुक़ाबला कर रहे हैं। उनका संघर्ष अतुलनीय है। पिछले बीस वर्षोंमें किस प्रकार उन्होंने अपने निरक्षर देशको पूरा साक्षर बना दिया, कृषि-प्रधान देशको उद्योग-धंधों तथा वैज्ञानिक खेती बारी-वाला देश बना दिया। कला, साहित्य, विज्ञान आदिमें भी उन्होंने अभूतपूर्व उन्नति की है। जिस सभ्यताका पश्चिमके देश तथा अमरीका २०० वर्षोंमें भी निर्माण न कर सके, वह रूसमें २० सालमें ही कैसे सम्भव हुई? इन सब बातोंकी—सोवियतकी उत्पत्ति, राष्ट्र-व्यवस्था, अर्थनीतिक इतिहास, सामरिक शक्ति और कौशल, समाज-व्यवस्था, शिक्षा, संस्कृति, स्वास्थ्य, कला, विज्ञान आदिकी—जानकारी सर्वसाधारणको करानेके लिए अखिल भारतीय सोवियत-सुहृद-समितिने अधिकारी विद्वानों द्वारा विभिन्न विषयोंपर निबन्ध लिखवाकर उपर्युक्त दोनों बँगला और अंगरेज़ी पुस्तकोंमें प्रकाशित किए हैं। हम सोवियत-सुहृद-समितिको इस प्रकाशनके लिए धन्यवाद देते हैं। सर्वसाधारणके हितके लिए इन पुस्तकोंका हिन्दुस्थानके प्रत्येक पुस्तकालयमें पहुँचना आवश्यक है। हिन्दी-प्रकाशक यदि इनका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर सकें, तो वे हिन्दी-भाषा-भाषी जनताकी बड़ी सेवा करेंगे। समिति इसकी व्यवस्था करनेके लिए तैयार है।

—म० प्र० साहा

## हमारे सहयोगी

**'राष्ट्रभाषा-समाचार'** (मासिक पत्र): सम्पादक—श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल; प्रकाशक—राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति, वर्धा; वार्षिक मूल्य ॥=)

गत ९ माससे राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके तत्वावधानमें यह छोटा, पर उपयोगी मासिक पत्र श्री श्रीमन्नारायण अग्रवालके सम्पादकत्वमें निकल रहा है। हिन्दी-भाषा-भाषी भाई यह कम जानते हैं कि राष्ट्रभाषाकी शक्ति कितनी अपार है और हिन्दी भारतकी संस्कृतिकी आन्तरिक धाराके समान हमारे जीवनमें घुल-मिल रही है। 'राष्ट्रभाषा-समाचार' राष्ट्रभाषाकी प्रगतियों और हिन्दीके प्रचारकी रूप-रेखापर समतुलन दृष्टिसे विवेचन करता है। असम, उत्कल, बंगाल, गुजरात, बम्बई और महाराष्ट्रके प्रान्तोंमें हिन्दीके प्रचारमें हमारे कितने भाई-बहन काम कर रहे हैं और हिन्दीकी जीवनदायिनी शक्ति हमको एक सूत्रमें कैसे बाँध रही है—इन सब बातोंका सजीव, सूक्ष्म और मनोरंजक वर्णन 'राष्ट्रभाषा-प्रचार' में मिलेगा। हमारा आग्रह है कि हिन्दी-भाषा-भाषी भाई हिन्दीकी अहिन्दी प्रान्तोंमें प्रगति पढ़कर उतने ही प्रसन्न होंगे, जितने कि किसी कन्याके मायकेके लोग कन्याके पुत्रवती होनेका समाचार सुनकर प्रसन्न होते हैं। 'राष्ट्रभाषा-समाचार' का प्रचार हिन्दी-भाषा-भाषी भाइयोंमें हम अधिकसे अधिक चाहते हैं।

**विश्वभारती पत्रिका** ( हिंदी त्रैमासिक ) : सम्पादक—पं० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ; प्रकाशक—विश्वभारती, शान्ति-निकेतन (बंगाल) ; वार्षिक मूल्य ६), एक प्रतिका १॥)

'विश्वभारती पत्रिका' का प्रथम अंक पानेके हम उत्सुक थे। जैसे ही उसका प्रथम अंक मिला, वैसे ही हमने उसे एक ओरसे पढ़ना प्रारम्भ किया, और साहित्यिक और पत्रकार-कलाकी दृष्टिसे भी उसका हमने पर्यायलोचन किया। 'विश्वभारती पत्रिका' के निकलनेसे हमें जितनी प्रसन्नता हुई है, उसे हम व्यक्त नहीं कर सकते। गुरुदेवके जीवन-कालमें यदि यह पत्रिका निकली होती, तो वे हिन्दी-भवन और हिन्दी-भवनसे सम्बन्धित व्यक्तियोंकी लगनपर प्रसन्न होते और न जाने क्या-क्या बातें सुझाते ; पर उनके पार्थिव शरीरके उठ जानेके बाद 'विश्वभारती पत्रिका' का निकलना इस बातका प्रमाण है कि शान्तिनिकेतनमें गुरुदेव अदृश्य रूपसे अब भी विराजमान हैं—उनकी आत्मा शान्तिनिकेतनकी प्रगतियोंको न केवल बल ही पहुँचा रही है, वरन् उनका अबाध रूपसे प्रदर्शन भी कर रही है।

'विश्वभारती पत्रिका' के उद्देश वही हैं, जो विश्व-भारतीके ; किन्तु उसका कर्मक्षेत्र यहीं तक सीमित नहीं है। सम्पादक-मंडल (जिसमें सर्वश्री रथीन्द्रनाथ ठाकुर, क्षितिमोहन सेन, नन्दलाल बोस, गुरुदयाल मल्लिक और कृष्ण कृपलानी हैं) उन सभी विद्वानों और कलाकारोंका सहयोग आमंत्रित करता है, जिनकी रचनाएँ और कला-कृतियाँ जाति-धर्म-निर्विशेष समस्त मानव-जातिकी कल्याण-बुद्धिसे प्रेरित हैं और समूची मानवीय संस्कृतिको समृद्ध करती हैं।

पत्रिकाके इस अंकमें १५ लेख हैं और सभी उच्चकोटिके हैं। साहित्यिक भद्रता, सांस्कृतिक उड़ान और गुरुदेवकी प्राणसंजीवनी वाणीसे पत्रिका ओतप्रोत है। आचार्य क्षितिमोहन सेन, विश्वविख्यात कलाकार नन्दलाल बोस, डाक्टर आनन्दकुमार और डाक्टर ए० एरन्सनके लेखोंका तो प्रत्येक विचारशील व्यक्तिको मनन करना चाहिए। 'पुरानी पोथियोंकी विदेश-यात्रा'-शीर्षक लेख भी हमें बहुत पसन्द आया। 'सम्पादकीय स्तम्भ'में बन्धुवर हज़ारीप्रसादजीके नोट हमें पसन्द हैं और हमें आशा है कि 'हिन्दी-भवन' प्रान्तीय साहित्योंके अध्ययनका केन्द्र बन सकेगा। बापूके आशीर्वादसे पत्रिका प्रारम्भ होती है। गुरुदेवके भावपूर्ण चित्र और पत्रिकाकी शुद्ध सादगी, बढ़िया छपाई और काग़ज़ने उसे और भी आकर्षक बना दिया है।

'विश्वभारती पत्रिका' द्वारा गुरुदेवके ग्रन्थोंका प्रामाणिक हिन्दी-अनुवाद भी निकल सके, तो बड़ा काम हो। ग्रन्थोंके अनुवादके लिए भी एक सम्पादक-मण्डल बन जाय, तो उससे हिन्दी और बँगला दोनोंका बड़ा हित हो। भारतीय संस्कृति, साहित्यिक प्रगति और गुरुदेवकी वाणीके प्रति श्रद्धा रखनेवाले पाठकोंसे हमारा आग्रह है कि वे 'विश्वभारती पत्रिका' के ग्राहक बनें, ताकि संचालकोंके पवित्र उद्देश्यकी सिद्धिमें वे सहायक हों और अपने तथा देशके मानसिक क्षितिजको भी विशाल बना सकें। स्थानाभावके कारण अभी हम 'विश्वभारती पत्रिका' का परिचय मात्र ही दे रहे हैं। उसके अगले अंकके निकलनेपर हम उसके बारेमें विस्तृत रूपसे लिखेंगे।

**'योगी'** ( उद्योग-अंक ) : हिन्दीके साप्ताहिक जगत्में 'योगी' का अपना एक स्थान है। उद्योग-अंक निकालकर 'योगी' अपने उद्योगमें सबसे बाज़ी मार ले गया है। भारतीय उद्योगोंके सम्बन्धमें विशेषज्ञों अथवा साधारण व्यक्तियोंके लिए जितनी सामग्री इस अंकमें है, उतनी उपादेय और ज्ञानवर्द्धक सामग्री एक ही स्थानमें अन्यत्र मिलनी कठिन है। एक प्रकारसे 'योगी' का अक्टूबर १९४१ का उद्योग-अंक उद्योग-डायरेक्टरी और रेफरेन्स बुकके समान है। हमारा आग्रह है कि 'योगी' 'भारतीय कृषि' और 'भारतीय गो-पालन'पर भी विशेषांक निकाले। 'योगी'-कार्यालय पटनासे उद्योग-अंक मिल सकता है।

**'स्वतंत्र भारत'** ( दिवाली-विशेषांक ) : हमें दुःख है कि 'स्वतंत्र भारत' की आलोचना इससे पहले हम न कर सके। पर इस देरीसे इस विशेषांकके महत्वमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। लेखोंके चुनाव, सम्पादन-कला और लेखोंकी विचार-शैलीकी दृष्टियोंसे 'स्वतंत्र भारत'का यह अंक बहुत बढ़िया है। इसका पहला लेख श्रद्धेय पं० अम्बिका-प्रसाद वाजपेयीका 'उर्दूका ऋण हिन्दीपर है या हिन्दीका उर्दूपर ?' शीर्षक है। वाजपेयीजीके पांडित्यपूर्ण विश्लेषणसे हिन्दी-जगत् परिचित है। यह लेख इस अंकके लेखोंकी माणिमाला सुमेरु है। 'भारतीय जहाज़ी व्यवसायका विकास'-शीर्षक लेख भी ज्ञानवर्द्धक है और बड़े परिश्रमसे लिखा गया है। 'भारतीय कृषिपर युद्धका प्रभाव'-शीर्षक लेख भी श्री अमृतलाल ओझाकी

योग्यताका द्योतक है। कृषि और वाणिज्यसे रुचि और सम्बन्ध रखनेवाले लोगोंके लिए वह बड़े कामका है। पं० हरिशंकर शर्माका 'कुक्कुर-कवि-सम्मेलन' पढ़कर मनहूसोंको हँसी आयगी और शिष्ट हास्यकी चाशनीका मज़ा पाठकोंको आएगा। 'धर्म सभ्यता और विज्ञान', 'दामकी समस्या', 'बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ' आदि लेख भी उच्चकोटिके हैं। सम्पूर्ण अंक कुशल सम्पादन-कलाका एक बढ़िया नमूना है। चित्रों और मुखपृष्ठने तो उसकी शोभा और उसका आकर्षण और भी बढ़ा दिया है। इस अंककी सफलताके लिए संचालक और सम्पादक बधाईके पात्र हैं। मिलनेका पता :—कुमार-प्रेस, १०२, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

'प्रजा-सेवक' (गांधी-जयन्ती-विशेषांक): करीब दो वर्षोंसे 'प्रजा-सेवक' जोधपुरसे निकल रहा है। इसके सम्पादक हैं श्री अचलेश्वरप्रसाद शर्मा। पत्र राष्ट्रीय है। हमने अब तक इसकी आलोचना जान-बूझकर इसलिए नहीं की कि कहीं 'प्रजा-सेवक' कुछ ही अंक निकालकर बन्द न हो जाय। कारण थे दो—एक तो युद्ध-सम्बन्धी संकट और दूसरे देशी रियासतोंसे किसी राष्ट्रीय पत्रका चलना—अपने कंटकाकीर्ण मार्गपर चलना—बड़ा ही कठिन है। 'प्रजा-सेवक' अपने ध्येयपर डटा है और हमें आशा है कि वह अपने ध्येयसे विचलित न होगा। सम्पादक महोदयसे हमारा आग्रह है कि वे साहित्यिक और राजनीतिक विश्लेषणमें तनिक अधिक गम्भीरतासे काम लें।

प्रस्तुत अंक—गांधी-जयन्ती-अंक—में गांधीजी-सम्बन्धी अनेक लेख हैं। श्री किशोरलाल मश्रूवालाका 'गांधीजीके जीवनका सन्देश' तथा श्री काशीनाथ त्रिवेदीका 'गांधीजीका जीवन सन्देश' महात्माजीके जीवनपर एक नए पहलूसे प्रकाश डालते हैं। 'सोमरका अभिशाप' प्रत्येक लोक-सेवकके पढ़नेकी वस्तु है। 'जागीरदारी' प्रथापर श्री श्रीकृष्णचन्द्रजीका लेख विवादग्रस्त होते हुए भी उपयोगी है। 'राजस्थानकी नमक समस्या' और 'महात्मा गांधी और देशी राज्य' भी अच्छे लेख हैं। इस अंककी सफलताके लिए सम्पादक बधाईके पात्र हैं।

—श्रीराम शर्मा

## चिट्ठी-पत्री

### बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी रीडरें

[ कलकत्तेके प्रसिद्ध नागरिक श्री सेठ जुगलकिशोरजी बिड़लाने श्री जमनालालजी बजाजको एक निजी पत्र इस आशयका लिखा था कि बाबू राजेन्द्रप्रसादजीके प्रभावके कारण ही बिहारकी कांग्रेस-मिनिस्ट्रीने कथित हिन्दुस्तानीके नामपर हिन्दीको बिगाड़नेकी चेष्टा की। श्री बिड़लाजीके पत्रका जो उत्तर बाबू राजेन्द्रप्रसादजीने दिया है, वह ज्योंका त्यों नीचे दिया जाता है। उससे बिहारकी हिन्दी-रीडरोंके बारेमें स्थिति स्पष्ट हो जाती है। —सं० ]

"आपका एक पत्र कुछ दिन पहले जमनालालजीके पास आया था, जिसके साथ आपने एक कतरन भेजी थी। उसमें एक रीडरमें से एक अंश उद्धृत किया हुआ था और कुछ शब्द दिये गए थे, जो फ़ारसीके हैं और जिनका व्यवहार उस रीडरमें किया गया है। शिकायत इस बातकी है कि इस तरहके शब्द हिन्दीमें लाये जा रहे हैं और हिन्दी बिगाड़ी जा रही है। बिहार-प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे मेरा कोई निजी घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है, तथापि मैं उसकी स्थायी-समितिका पहले एक बार सभापति हो जानेकी हैसियतसे हमेशा सदस्य माना जाता हूँ। बहुत दिनोंसे समयके अभावके कारण उस काममें उपस्थित भी नहीं हुआ हूँ। इसलिए वहाँ जो कुछ हुआ है, उसका पता लगाकर ही आपको उत्तर देना था। वह मैं अब कर सका हूँ, और इसलिए पत्र देनेमें विलम्ब हुआ, जिसके लिए क्षमा चाहता हूँ। बिहार-प्रांतीय साहित्य-सम्मेलनने कई साल पहले छपरेके अधिवेशनमें एक समिति बनाई, जिसको बिहार-सरकारकी समान भाषा-सम्बन्धी नीतिकी जाँच करनेका भार दिया गया। उस समितिकी सिफ़ारिश हुई कि समान भाषा-सम्बन्धी सिद्धांतको सम्मेलन स्वीकार करे। मगर जिस तरीक़ेसे समान भाषा सरकार चलाना चाहती है, वह तरीक़ा उपयुक्त नहीं है। इसलिए छोटे वर्गोंकी पुस्तकोंको ज्योंका त्यों छोड़ देना चाहिए और ऊपरके वर्गोंमें यह तरीक़ा अख्तियार

किया जाय कि हिन्दी-रीडरोंमें उर्दूके कुछ पाठ नागरी-लिपिमें और उर्दू-रीडरोंमें हिन्दीके कुछ पाठ उर्दू-लिपिमें जोड़ दिये जायँ। इस तरह मैट्रिकुलेशन पहुँचते-पहुँचते हिन्दी पढ़नेवाले उर्दूसे और उर्दू पढ़नेवाले हिन्दीसे परिचित हो जायँगे और समान भाषाकी समस्या अपने-आप हल होने लगेगी। गवर्मेंटकी कमेटीने सम्मेलनके इस प्रस्तावको मान लिया और हिन्दी और उर्दूकी रीडरें इस प्रकार तैयार की गईं, जिनमें तीन भाग हुआ करते हैं। हिन्दी-रीडरमें पहला भाग, जो प्रायः तीन-चौथाई होता है, हिन्दीके प्रामाणिक लेखकोंके लेखोंसे लिया जाता है। बाक़ी एक-चौथाईका आधा उन उद्धरणोंसे बनता है, जो हिन्दुस्तानी भाषासे लिए जाते हैं—अर्थात् जिनमें न कठिन संस्कृतके शब्द होते हैं और न कठिन फ़ारसीके शब्द; और तीसरा भाग, जो रीडरका आठवाँ हिस्सा होता है, उर्दूके प्रामाणिक लेखकोंके लेखोंका होता है और कठिन फ़ारसी शब्दका अर्थ फुटनोटमें हिन्दीमें दिया जाता है। इसी प्रकार उर्दू-रीडरमें पहले भागमें उर्दूके प्रामाणिक लेख, दूसरेमें हिन्दुस्तानीके और तीसरेमें हिन्दीके प्रामाणिक लेख हुआ करते हैं और संस्कृत शब्दोंका अर्थ उर्दूमें दिया होता है। जो उद्धरण आपके द्वारा भेजी गई कतरनमें दिये गये हैं, वे सभी उर्दू भागसे लिए गये हैं और उनको उर्दूका कह करके वहाँ दिया गया है और इसलिए दिया गया है कि लड़के उनके द्वारा उर्दू भी सीख लें, जिस तरह उर्दू पढ़नेवालोंके लिए उर्दू-रीडरमें हिन्दीके उद्धरण दिये गये हैं। इस प्रकारकी दो रीडरें बिहार-प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी ओरसे तैयार की गई हैं। पूर्णियाके सम्मेलनने प्रस्ताव स्वीकार किया था कि इस प्रकारकी रीडरें सम्मेलनकी ओरसे तैयार की जायँ। कुछ दिन हुए इस बातपर प्रांतीय सम्मेलनकी स्थायी-समितिके सामने चर्चा हुई थी और वहाँ भी आठ-दस आदमी जो विरोधी थे, सभामें से चले गये और सूबे भरके बाकी सैकड़ों साहित्यकोंने कार्यकारिणीका समर्थन किया, जिसने रीडरें तैयार करवाई थीं। इससे आप समझें कि मेरे अनजानमें प्रांत-भरके साहित्यिकोंने दो सम्मेलनोंमें इस तरहकी रीडरें चलानेकी बात मंज़ूर कर ली है और उनके प्रस्तावके अनुसार कार्यकारिणीने रीडरें तैयार करवाईं, जिनको स्थायी समितिने मंज़ूर किया। जो हिन्दीका भाग है, उसके सम्बन्धमें किसीको कुछ नहीं कहना है और कोई कुछ कह भी नहीं सकता है, क्योंकि उसमें प्रामाणिक हिन्दी-लेखकोंके ही लेख हैं। जो हिन्दुस्तानीवाला भाग है, उसके सम्बन्धमें भी कोई शिकायत नहीं है। उसमें कई लेख राहुल सांकृत्यायनके ही हैं, जो हिन्दीके प्रामाणिक लेखक समझे जाते हैं। जो विरोध हुआ है, वह उर्दूके विषयमें है। उनको तो रीडरोंमें भी उर्दू ही कहकर दिया गया है और उनको किसीने हिन्दीका उद्धरण नहीं समझा है। इसमें शिकायतकी क्या बात हो सकती है, मैं नहीं समझ सकता—खासकर जब वह इसलिए दिये गये हैं कि हिन्दी पढ़नेवाले लड़के कुछ उर्दू सीख लें और जब उर्दू पढ़नेवालोंके लिए भी इसी तरहके हिन्दीके उद्धरण उर्दू-रीडरोंमें दिये गये हैं। जो फ़ारसीके शब्द आपके द्वारा भेजी गई कतरनमें दिये गये हैं, वह भी उर्दू भागमें से ही चुनकर दिये गये हैं। हिन्दीकी शैली बिगाड़नेकी बात निर्मूल है। आपको इस विषयपर जो कुछ हुआ है, मैंने सब बातें खोलकर जता दीं। इससे मेरा कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं रहा है। यह सब किया हुआ प्रान्त भरके विद्वानोंका है। मैंने पहले इस सम्बन्धमें आपको इसलिए भी पत्र नहीं लिखा कि शायद कोई ऐसा न समझे कि मैं सम्मेलनके सभापतित्वके चुनावमें आपपर कोई ज़ोर डालना चाहता हूँ। जब वह बात बीत गई है, तब सब कुछ लिख देना उचित समझा।"

### 'सैनिक' के प्रेमियोंसे

यों तो 'सैनिक' जबसे जन्मा है, तभीसे उसने स्वदेश-सेवा और स्वाधीनता-संग्राममें अपना विशेष स्थान रखा है; परन्तु १९३९-४१ के सत्याग्रह-संग्राममें तो उसकी सेवाएँ देशवासियों द्वारा भी स्वीकार की गई हैं। युद्ध प्रारम्भ होते ही वह जनताका प्यारा और शासकोंकी आँखोंका काँटा बन गया। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलके इस्तीफ़ा देते ही उसके सम्पादक व मुद्रक भारत-रक्षा-क़ानूनमें गिरफ़्तार कर लिए गए और उन्हें डेढ़-डेढ़ वर्षकी सख़्त क़ैद व क्रमशः आठ सौ व पाँच सौ रुपए जुर्मानेकी सज़ा दी गई। इसके बाद ही उनपर दफ़ा १४४ में दूसरा मुकदमा भी चला दिया गया, जिसमें उन्हें छः छः महीनेकी सज़ा हुई।

जबरन चन्दा वसूल किए जानेके सम्बन्धमें जो शिकायतें सूबा-कमेटीके पास आ रही थीं, उनके सम्बन्धमें सूबेकी कौंसिलके मेम्बरान व भूतपूर्व मिनिस्टरोंके दस्तख़तोंसे जो नोटिस निकला, उसे छापनेके अपराधमें 'सैनिक' के जनरल-मैनेजर गिरफ़्तार कर लिए गए और उन्हें नौ महीनेकी सख़्त क़ैद और ५०) जुर्माने की सज़ा हुई। १५ जुलाई, १९४० को याकायक आगरेके डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटने पुलिस द्वारा 'सैनिक'-प्रेसपर कब्ज़ा

कराके दैनिक व साप्ताहिक 'सैनिक' का प्रकाशन बन्द करा दिया। इस ग़ैर-क़ानूनी हुक्मके ख़िलाफ़ अपील की गई। अपीलमें सेशन जजने हाईकोर्टसे हुक्मको रद किए जानेकी सिफ़ारिश की, तब सूबेकी सरकारने उस हुक्मको रद किया। इस तरह ढाई महीने बाद 'सैनिक' फिर निकला; लेकिन सत्याग्रह आरम्भ होते ही आचार्य विनोबा भावेका बयान छापनेके अपराधमें पुलिसने फिर प्रेसपर कब्ज़ा करके पत्रोंका प्रकाशन रोक दिया। इस ग़ैरक़ानूनी हुक्मसे देश भरमें तहलका मच गया। स्वयं महात्मा गांधीने सरकारकी तीव्र निन्दा की और वायसराय महोदयको बहुत कुछ लिखा। अखिल भारतवर्षीय सम्पादक-कान्फ्रेंसने सर्वसम्मतिसे इस आज्ञाका विरोध किया और सरकारपर ज़ोर डाला। लेकिन सरकारने लगभग एक महीने बाद पहले तो पुलिसका पहरा हटाकर प्रेस व पत्रसे तीन-तीन हज़ारकी ज़मानत माँगी, फिर वह सात महीने बाद मईके महीनेमें पाँच-पाँच सौकी कर दी। तब महात्माजी व अखिल भारतवर्षीय सम्पादक-कान्फ्रेंस व अखिल भारतवर्षीय व संयुक्त-प्रान्तीय प्रेस-कमेटीके बार-बार कहनेपर भी यह अनुचित आज्ञा रद नहीं की। चूँकि महात्माजीकी आज्ञा थी कि सत्याग्रहके समय पत्रोंको ज़मानत नहीं देनी चाहिए, इसलिए 'सैनिक' के ट्रस्टियोंने ज़मानत नहीं दी। कांग्रेसकी इस आज्ञाको मानकर न निकलनेवाला पत्र भी अकेला 'सैनिक' ही था। सूबेकी सरकार इतने ही से सन्तुष्ट नहीं रही। उसने 'सैनिक'के जनरल-मैनेजर व उनके भाई तथा 'सैनिक' के सम्पादकीय विभागके श्री देवेन्द्रको दफ़ा २६ में नज़रबन्द कर दिया।

'सैनिक' ने भी सत्याग्रह-संग्राममें अपने सर्वस्वकी बाज़ी लगा दी। 'सैनिक'-परिवारके जितने सदस्य जेल गए, उतने हिन्दुस्तान भरमें दूसरे किसी भी पत्रके नहीं गए! 'सैनिक' के सात ट्रस्टियोंमें से पाँच जेल गए, छठेको महात्माजीने रोका और सातवें परिस्थितियोंसे लाचार होकर रुके। इस संग्राममें 'सैनिक' को दसियों हज़ारकी चोट लगी। दस हज़ारके क़रीब जो रुपया एजेन्टों व विज्ञापनदाताओंपर चाहिए था, घोटालेमें पड़ गया, ग्राहक टूट गए और विज्ञापन भी बन्द हो गए। अब जब कि सत्याग्रह बन्द हो गया है और 'हरिजन' निकलने लगा है, तब ट्रस्टियोंने पब्लिककी माँगको पूरा करनेके लिए 'सैनिक'को फिरसे निकालनेका निश्चय किया है और निश्चय किया है उसे निकालनेके लिए दस हज़ार रुपया इकट्ठा करना। हमें आशा है कि 'सैनिक'के प्रेमी और हितैषी इस रक़मको थोड़े ही समयमें आसानीसे पूरा कर देंगे।

—ट्रस्टीगण, 'सैनिक'-ट्रस्ट, आगरा।

### राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ

नागरी - प्रचारिणी - सभा, आरा ( शाहाबाद ) ने सर्वसम्मतिसे यह निश्चय किया है कि स्वनामधन्य देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजीको, जो स्वदेश और राष्ट्रभाषाको प्रगतिशील बनानेमें सतत प्रयत्नशील हैं, उनकी स्तुत्य सेवाओंका सम्मान करनेके लिए एक सर्वाङ्ग-सुन्दर अभिनन्दन-ग्रंथ आगामी वसन्त-ऋतुमें अर्पित किया जाय, जिसमें विविध महत्त्वपूर्ण विषयोंके सारगर्भ निबन्धोंके अतिरिक्त उनके सम्बन्धमें भी कुछ ऐसे प्रामाणिक संस्मरण रहें, जो उनके इष्ट-मित्रों, सहपाठियों, सहकर्मियों, परिचितों और प्रशंसकों द्वारा लिखे गए हों। किन्तु यह निश्चित है कि ऐसा ग्रन्थ विद्वानोंके सहृदयतापूर्ण सहयोगके बिना सर्वाङ्गपूर्ण प्रस्तुत नहीं हो सकता। अतएव हिन्दी विद्वानोंसे सविनय निवेदन है कि वे फरवरी, १९४२ के अन्त तक अपनी कोई विशिष्ट रचना अवश्य ही भेजने की कृपा करें। विशेष रूपसे करबद्ध प्रार्थना यह है कि निबन्ध या निजी संस्मरण काग़ज़के एक ही तरफ़ हाशिया छोड़कर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे हुए होना चाहिएँ, जिससे उनके अमूल्य विचार शुद्धतापूर्वक प्रकाशित किए जा सकें। विश्वास है कि हिन्दीके विद्वान लेखक अवश्य ही इस विनीत प्रार्थनापर उचित ध्यान देनेकी कृपा करेंगे।

—राधिकारमणप्रसाद सिंह, रामदहिन मिश्र,
शिवपूजन सहाय, रासप्रीत शर्मा, शौकीनसिंह
( सम्पादक-मण्डल )

### हि० सा० स०का स्वीकृत प्रस्ताव

हिन्दी और हिन्दुस्तानी शब्दोंके प्रयोगके बारेमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और उसकी समितियोंकी—विशेषकर उसकी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी—क्या नीति है, इस विषयमें कुछ भ्रम उपस्थित हुआ है और कथनोपकथन प्रकाशित हुए; इसलिए अपनी नीतिका स्पष्टीकरण करनेके हेतु सम्मेलन निम्नलिखित घोषणा करता है :—

(१) प्रारम्भसे ही सम्मेलनने अपनी भाषा और राष्ट्रभाषाको हिन्दी कहा है और उस भाषा तथा नागरी-लिपिकी उन्नति और प्रचार ही उसका उद्देश रहा है।

द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें जो पहली नियमावली प्रयागमें स्वीकृत हुई, उसमें तथा उसके पश्चात् अब तक जितने भी संशोधन उस नियमावलीमें हुए हैं, उन सबसे यह प्रकट है कि सम्मेलनकी भाषाका नाम हिन्दी है— यद्यपि साहित्यिक अथवा प्रचारकी दृष्टिसे और स्थानोंकी विभिन्नताके कारण उसके रूपमें शब्दावलीका कुछ अन्तर होना स्वाभाविक है।

(२) वास्तवमें उर्दू भी हिन्दीसे उत्पन्न अरबी-फारसी-मिश्रित एक रूप है। हिन्दी-शब्दके भीतर ऐतिहासिक दृष्टिसे उर्दूका समावेश है; किन्तु उर्दूकी साहित्यिक शैली, जो थोड़े-से आदमियोंमें सीमित है, हिन्दीसे इस समय इतनी विभिन्न हो गई है कि उसकी पृथक् स्थिति सम्मेलन स्वीकार करता है और हिन्दीकी शैलीसे उसे भिन्न मानता है।

(३) "हिन्दुस्थानी" या "हिन्दुस्तानी" शब्दका प्रयोग मुख्यकर इसलिए हुआ करता है कि वह देशी-शब्द-व्यवहारसे प्रभावित हिन्दी-शैली तथा अरबी-फारसी-शब्द-व्यवहारसे प्रभावित उर्दू शैली दोनोंका एक शब्दसे एक समयमें निर्देश करे। कांग्रेस, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी और कुछ गवर्नमेंट विभागोंमें इसी अर्थमें इसका प्रयोग हुआ है और होता है। कुछ लोग इस शब्दका प्रयोग उस प्रकारकी भाषाके लिए भी करते हैं, जिसमें हिन्दी और उर्दू-शैलियोंका मिश्रण हो।

इस प्रकार निश्चित अर्थोंमें उर्दू और हिन्दुस्तानी शब्दोंका प्रचलन है। इस विषयमें सम्मेलनका कोई विरोध नहीं है; किन्तु सम्मेलन, साहित्यिक और राष्ट्रीय दोनों दृष्टियोंसे, अपने और अपनी समितियोंके काममें हिन्दी-शैलीका और उसके लिए हिन्दी-शब्दका ही व्यवहार और प्रचार करता है।

(४) राष्ट्रीय सजगताके विस्तार और राष्ट्रीय भावनाके उत्थानके साथ-साथ हिन्दका राष्ट्रीय रूप दिन-दिन विकसित हो रहा है। भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे आए हुए तथा भिन्न-भिन्न प्रभावोंसे उत्पादित नये शब्दोंका भी उसमें धीरे-धीरे स्वभावतः समावेश होगा। जीवित, क्रियाशील तथा हिन्दीकी सार्वभौमिक प्रतिनिधि-संख्याके कर्त्तव्य पालनमें सम्मेलन इस विकासका आवाहन और स्वागत करता है।

(५) राष्ट्रभाषा होनेके कारण प्राचीन समयसे हिन्दी सब प्रान्तीय भाषाओंकी बड़ी बहन है, उसके और उसकी छोटी बहनोंके स्वरूपोंमें माताका अमर सौन्दर्य छलकता है। बहनें एक दूसरेके रूपमें अपना रूप भी देखती हैं। उनका आपसका प्रेम स्वाभाविक है। बड़ी बहन छोटी बहनोंके अधिकार सुरक्षित रखती है। उसका अपना घर सब बहनोंके लिए खुला है और उसके घरमें ही सब बहनोंको आपसमें मिलने और मिलकर राष्ट्रोपासनाकी सुविधा है।

सच्ची राष्ट्रीय भावनाओंसे प्रेरित सब देशभक्तोंसे सम्मेलन अनुरोध करता है कि राष्ट्रीय उत्थान, संगठन और एकीकरणमें भाषाकी शक्तिका अनुभवकर वे राष्ट्र-भाषा हिन्दीके प्रयोग और प्रचारमें निष्ठा और दृढ़तासे संलग्न हो। (प्रस्तावक—श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन)

## भारतका राष्ट्रीय इतिहास

भारतीय इतिहास-परिषद्ने विद्वानों द्वारा २० ज़िल्दोंमें भारतका राष्ट्रीय इतिहास लिखवानेका जो आयोजन किया था, उसका विवरण-पत्र विगत जनवरी महीनेमें प्रकाशित किया जाचुका है। तभी सात प्रमुख विद्वानोंका एक संपादक-मंडल समूचे इतिहासकी योजना बनाने और चलानेके लिए नियुक्त कर दिया गया था। गत अप्रैल, १९४१में कलकत्तेमें संपादक-मंडल और परिषद्की कौंसिल (समिति) की बैठक हुई थी। उनमें यह विचार किया गया था कि इतिहासका विभिन्न जिल्दोंमेंसे किस-किसका सम्पादन किस-किस विद्वानको सौंपा जाय। उक्त निश्चयोंके अनुसार इस संबंधमें विद्वानोंसे चिट्ठी-पत्री शुरू की गई और अनेक विद्वानोंसे ठहराव किए गए। आज हम सहर्ष यह घोषित कर सकते हैं कि नीचे लिखी जिल्दोंका सम्पादन उसके सामने लिखे विद्वानोंने निश्चित रूपसे हाथमें ले लिया है:—

जि० १. 'भारत-भूमि, उसके निवासी और प्रागितिहास'—रायबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित, अध्यक्ष भारतीय पुरातत्त्व-विभाग, नई दिल्ली।

जि० २. 'आर्य-उपनिवेश-स्थापन और वैदिक काल'—श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, इलाहाबाद।

जि० ४. 'नन्द और मौर्य-साम्राज्य'—प्रो० के० ए० नीलकंठ शास्त्री, मद्रास और डा० हेमचन्द्र रायचौधरी, कलकत्ता।

जि० ५. 'शुंग सातवाहन और शक'—डा० प्रबोध-

चन्द्र बागची, कलकत्ता और प्रो० के० ए० नीलकंठ शास्त्री, मद्रास।

जि० ९. 'वाकाटक और गुप्त-साम्राज्य'—डा० रमेशचन्द्र मजुमदार, ढाका और डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर, बनारस।

जि० १२. 'अकबरका ज़माना'—सर यदुनाथ सरकार, कलकत्ता।

जि० १५. 'पिछले मुग़ल और पहले पेशवा'—रायबहादुर गोविन्द सखाराम सरदेसाई और सर यदुनाथ सरकार, कलकत्ता।

उक्त विद्वानोंमें से कइयोंने अपनी-अपनी जिल्दकी तफ़सीलवार योजना भी संपादक-मंडलकी मददसे तैयार करके अलग-अलग अध्याय विशेषज्ञ विद्वानोंको लिखनेके लिए बाँट दिए हैं। दो जिल्दोंकी लिखाईका कार्य काफ़ी आगे बढ़ चुका है और बाक़ी सबका कार्य भी प्रगतिकी विभिन्न मंजिलोंपर है। कुछ और जिल्दोंके संपादकोंकी नियुक्तिके बारेमें भी बातचीत चल रही है। हम पूरी कोशिश कर रहे हैं कि सन् १९४२ में दो जिल्दें प्रकाशित हो सकें।

—जयचन्द्र (मंत्री)

---

# सम्पादकीय विचार

## 'बेगम सीता'

बिहारकी हिन्दुस्तानी रीडरोंमें 'बादशाह राम' और 'बेगम सीता' शब्दोंका प्रयोग सुनकर हमने रीडरें मँगाकर स्वयं देखना चाहा कि जनकसुता सीता माताके लिए बेगम सीता किस प्रकार लिखा गया है—विशेषकर उस अवस्थामें, जब उर्दूमें राजा और रानी शब्दोंका प्रयोग होता है। दुर्भाग्यसे हमें बिहारकी हिन्दुस्तानी रीडरें न मिल सकीं और हमारी धारणा हो गई कि उन रीडरोंमें 'बेगम सीता' शब्दका प्रयोग हुआ है। रीडरोंके रचयिता अथवा संकलनकर्ताके प्रति बुरी भावनाका होना स्वाभाविक था; पर पिछले दिनों हमें काशीमें एक विश्वस्त और सम्मानित हिन्दी-साहित्य-सेवीसे मालूम हुआ कि उन रीडरोंमें 'बादशाह राम' शब्द पढ़कर महामना मालवीयजीने हँसीमें कहा था कि बादशाह राम है, तो बेगम सीताका प्रयोग भी होगा। वास्तवमें उन रीडरोंमें 'बेगम सीता' शब्द कहीं नहीं आया।

## साक्षरता और स्वतन्त्रता

देशमें साक्षरता प्रचारके लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और वह अब भी चल रहा है। साक्षरता-आन्दोलन स्वतन्त्रताके लिए वांछनीय और सहायक हो सकता है; पर स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए वह अनिवार्य नहीं है। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय, तो स्वतन्त्रताके बाद ही सफल साक्षरता आती है। ज़ारशाही रूसमें साक्षरता सन्तोषजनक नहीं थी; पर सोवियत रूसने थोड़े ही दिनोंमें निरक्षरता-निशाचरीका नामोनिशान मिटा दिया। ट्रावंकोर रियासतमें साठ फ़ी-सदी लोग साक्षर हैं; पर क्या वहाँके लोग ब्रिटिश भारतकी जनताकी अपेक्षा स्वातन्त्र्य-युद्धके लिए अधिक तैयार हैं? कथित स्वतन्त्रताके लिए लड़नेवाले भारतीय सैनिकोंमें कितने साक्षर हैं? साक्षर और सुसंस्कृत फ्रांसका पतन क्यों हुआ? वास्तविक बात यह है कि देशकी स्वतन्त्रताके लिए मर-मिटनेवालों—हिंसात्मक और अहिंसात्मक ढंगोंसे स्वतन्त्रता प्राप्त करनेवालों—में कठोर जीवटकी आवश्यकता है। इसलिए भारतवर्षमें साक्षरता-आन्दोलन वांछनीय है; पर कोरे साक्षरता-आन्दोलनसे हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। हाँ, स्वराज्य मिलनेपर साक्षरता-आन्दोलन बहुत जल्दी सफल होगा। स्वराज्य-प्राप्तिकी गंगोत्तरीसे साक्षरताकी भागीरथी स्वतः ही फूट निकलेगी।

## स्व० सेठ जमनालालजी

'विशाल भारत' का मैटर समाप्त करते समय सेठ जमनालाल बाजाजके निधनका समाचार मिला। अभी पिछली ५ फ़रवरीको उनसे गो-सेवा-संघपर हमारी बातें हुई थीं। यह किसीको गुमान भी नहीं था कि सेठजी इतनी जल्दी हम लोगोंके बीचसे उठ जायँगे। राष्ट्रीय संघर्ष-कालमें किसी भी साधारण कार्यकर्त्ताका उठ जाना अखरता है, फिर देशके राजस्व स्तम्भका उठ जाना तो भारी क्षति

हुई। देशके अमीरोंमें—और इस ग़रीब देशमें भी थोड़े अमीर हैं और जमनालालजीसे भी बड़े अमीर हैं—स्वर्गीय बजाजजी जैसी लगनका देशके लिए श्रद्धापूर्वक ठोस काम करनेवाला व्यक्ति दूसरा नहीं। सेठजीके पुण्य प्रतापसे ही महात्माजी जैसी हस्ती सेवाग्राममें टिक सकी। देशकी कई रचनात्मक योजनाओंमें सेठजीके व्यक्तित्वकी छाप है। कौन जाने महात्मा-जीको रचनात्मक योजनाओंमें सेठजीके अभावमें कठिना-इयाँ उठानी पड़ें। सेठजीके निधनसे देशके रचना-त्मक कार्यों का एक स्तम्भ-सा टूट गया है।
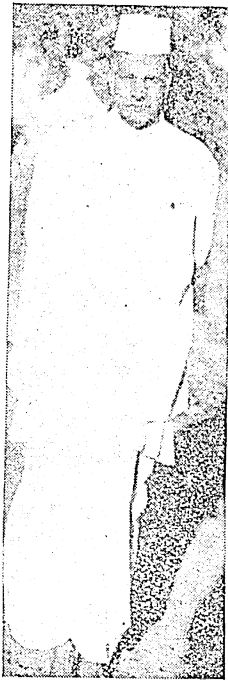
स्व० जमनालाजी बजाज

सेठजीके कुटुम्बीजनोंके प्रति हम हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि स्वर्गीय सेठजीकी कीर्तिको क़ायम रखनेके लिए श्रीमती बजाज—श्रीमती जानकी बाई—और उनके पुत्रद्वय उनके उठाए कामको और प्रबल प्रगतिसे चलाते रहेंगे।

## 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी'

हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानीका झगड़ा दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है। हमारे देशमें कठमुल्लोंकी कमी नहीं है। कोई तो कहता है कि हाई स्कूलकी पढ़ाई तक उर्दू और हिन्दी दोनोंको लाज़िमी बना दिया जाय और कोई कहता है कि पाकिस्तानकी जड़ तो उस समय पड़ी थी, जब लोगोंने अदालतोंमें हिन्दी-प्रचारका काम प्रारम्भ किया और सिक्कोंपर हिन्दी-अक्षर लिखनेकी कोशिश की। एकाध तो हमारे यहाँ ऐसे भी हैं, जो यह कहनेका दुस्साहस करते हैं कि कांग्रेसी हिन्दू ग़ैर-कांग्रेसी हिन्दुओंकी अपेक्षा अधिक साम्प्रदायिक हैं। हमें कठमुल्लोंसे कुछ नहीं कहना, क्योंकि उनसे कुछ कहनेसे कोई लाभ नहीं; पर विचार तो यह करना है कि क्या हाई स्कूल तक हिन्दी-उर्दूको अनिवार्य करनेसे समस्या हल हो जायगा? हमारे ख़यालसे सब झंझटोंका इलाज वही है, जो महात्मा गांधीने अपने लेख 'हिन्दुस्तानी' में बताया है।

झगड़ा नामका है या रूपका? कथित हिन्दुस्तानीके हम विरोधी हैं। हमारे मतसे—और उसमें ऐतिहासिक तथ्य भी है—तो उर्दू भी हिन्दीके अन्तर्गत है। जब तक हिन्दीका रूप विकृत नहीं होता, तब तक हिन्दीको हिन्दुस्तानी कहनेमें कोई विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए। जो भूल उर्दूवाले उर्दूका क्षेत्र संकीर्ण बनानेमें करते हैं, वह भूल हिन्दीवाले क्यों करें? यदि हिन्दीका रूप नहीं बिगड़ता, तो कोई हिन्दीके लिए हिन्दुस्तानी कहे, तो क्या हर्ज है?

## कलकत्तेकी भगदड़

जापान-इंग्लैण्ड-युद्धके कारण कलकत्तेमें दिसम्बरके महीनेमें वह आतंक फैला कि जिसका अनुमान बाहरके लोग नहीं लगा सकते। कलकत्तेसे भागनेवालोंका एक समुद्र-सा उमड़ा और भगदड़ मची। फलस्वरूप विशाल कलकत्ता नगरी वैधव्य धारण किए अनमनी-सी पड़ी है। अन्धाकुप्प (Blackout) के कारण गलियोंमें शामके ८ बजे सन्नाटा हो जाता है। इक्के-दुक्के आने-जानेवालेपर कुत्ते भौंकते हैं। गलियोंमें रातको चूहे दौड़ें लगाते हैं। कलकत्ता छोड़कर जो लोग बाहर गए हैं, उनके कारण काशी, कटक, पटना और अन्य शहरोंमें चीज़ें महँगी हो गई हैं और किराया बढ़ गया है। अनेक स्थानोंमें संक्रामक बीमारियोंकी आशंका है। साथ ही इस भगदड़से कलकत्तेका व्यापार ठप्प हो गया है।

## इतना आतंक क्यों?

सवाल यह है कि लोग इतने घबराए हुए क्यों हैं? हमारी बेबसी और कायरताके अतिरिक्त इसका दूसरा कारण क्या है? महात्माजी तक ने लिखा है कि लोगोंको भागना नहीं चाहिए। आतंकसे बुरा रोग और कोई नहीं! स्नायु तने-से रहते हैं और बेचैनी बनी रहती है। पर इतने घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं। ग़रीब लोगों, मज़दूरों और साधारण कामकाजी लोगोंके भागनेसे जीविकाका स्रोत बन्द हो जायगा और निरर्थक भय और ग़रीबीके प्रहारोंसे भागनेवालों और उनके आश्रितोंको कठिनाइयाँ उठानी पड़ेंगी। भागनेवालोंको

अफ़वाह फैलानेवालों लोगोंकी अपेक्षा समझदार लोगोंसे परामर्श करना चाहिए। अपने घरों और जीविकाके स्थानोंको इस प्रकार छोड़कर जाना देश और समाजके लिए हानिकर हो नहीं, वरन अपमानजनक भी है।

### महायुद्धकी प्रगति

महायुद्धकी लपटें शैतानकी आँतकी तरह नहीं, वरन बवंडरकी गतिसे बढ़ती ही जाती हैं। संसारके देशोंका पारस्परिक सम्बन्ध शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवोंके समान है। इसलिए वर्तमान महायुद्धके प्रारम्भमें ही समझदार लोगोंका अनुमान था कि वर्तमान युद्ध विश्वव्यापी होगा। लगभग दो वर्ष तक जापान युद्ध-क्षेत्रमें नहीं कूदा। हाँ, कूटनीतिके दाँव-पेच होते रहे। बाह्य शिष्टाचार और वार्तालापके पीछे जापानकी साम्राज्य-लिप्सा पनप रही थी। गत दिसम्बरके दूसरे सप्ताहमें जापानने ब्रिटेन और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकापर धावा बोल दिया। पहले ही हल्लेमें उसने इंग्लैण्डके दो नामी जंगी-जहाज़ों—'प्रिंस आफ़ वेल्स' और 'रिपल्स'—को समुद्रकी तहमें पहुँचा दिया और अमेरिकाके नामी नाविक अड्डे पर्ल हारबर (हवाई टापू) को भारी क्षति पहुँचाई और अमेरिकाके एक नामी नाके गौमपर अधिकार कर लिया। इन दो महीनोंमें जापानने सारे मलायापर अधिकार कर लिया है। फिलीपाइन टापुओंके महत्त्वपूर्ण स्थानोंको भी उसने हथिया लिया है। हालैण्डके टापुओंमें से कईपर उसने अधिकार जमा लिया और सिंगापुरके भीतर जापानी सेना घुस चुकी है।

### जापानी-जीतके कारण

चर्चिल-मंत्रिमंडलने लोगोंको समझाया था—प्रोपेगेंडा तो किया ही गया था—कि ब्रिटिश शक्ति सुदूर पूर्वमें अजेय है; पर वास्तविक बात यह न थी। मुसीबतके दिनोंमें अपनी कमज़ोरीका ढोल पीटना ठीक नहीं, इसीलिए अपनी वास्तविक परिस्थितिका पता सर्वसाधारणको नहीं दिया। जापानको परिस्थितिका पता था और उसने इसीलिए धावा बोल दिया। अंगरेज़ोंके पास मलाया और सिंगापुरमें हवाई-जहाज़ और जंगी-बेड़ा मज़बूत न थे। दो भारी जंगी-जहाज़ोंके बूतेपर जो काम किया गया था, वे समाप्त कर दिए गए। साथ ही ब्रिटिश सरकारको जापानसे समुद्रकी ओरसे ही भय था; पर जापानने मलायाकी ओरसे धावा किया। तीसरा कारण है अंगरेज़ोंका थाईका विश्वास करना। थाई और जापानकी तो मिली-भगत थी। यदि थाईपर अंगरेज़ोंने हमला किया होता, तो स्थिति इतनी विषम न होती।

### रूस और जर्मनी

दिसम्बरके दूसरे सप्ताहसे पूर्वी मोर्चेपर उलट-पुराण प्रारम्भ हो गया। रूसियोंने जर्मन सेनाओंको धकेलना शुरू किया। अब वे जर्मनोंको मारते-मारते ख़ारकोव तक आ पहुँची हैं, और जर्मन सेनाएँ घायल हिंस्र जन्तुके समान गुर्राती हुई अपने घाव चाट रही हैं।

### भ्रम-निवारण

रूसियोंने यह भ्रम दूर कर दिया है कि जर्मन सेना अजेय है, और अन्य लोग समझ सकते हैं कि जनताके युद्धके सामने कोई भी शक्ति नहीं टिक सकती।

### लीबियाकी रस्साकशी

गत वर्षकी भाँति लीबियामें फिर रस्साकशी हुई। जनरल आचेनलेकने धुरी-राष्ट्रोंकी सेनाको बेंगाज़ी तक मार भगाया और फिर जनरल रोमेलने ब्रिटिश सेनाको डारना तक मार भगाया।

### सूचना

मार्चका 'विशाल भारत' यथासमय पहली मार्च तक भेज दिया जायगा। कलकत्तेकी परिस्थितिके कारण दो-चार दिनकी देरी यदि किसी प्रकार हो जाय, तो पाठक उसे मजबूरी ही समझें। आगामी अंकसे हम श्री मुंशीके उत्कृष्ट उपन्यासको धारावाहिक रूपसे देंगे। 'विशाल भारत'के परिचित डाक्टर सत्यनारायण सिंह हर महीने अपना एक रोचक लेख देंगे। साथ ही हम शीघ्र ही 'चायचक्रम' स्तम्भको भी चालू करेंगे।

आगामी १५ फ़रवरीसे १८ तक हमारा पता है—बल्काबस्ती, आगरा; १९-२-४२ से २२-२-४२ तक C/o श्रीमती सत्यवती मलिक, ८/० कनाट सरकस, न्यू दिल्ली; २३-२-४२ से १५ मार्च तक आगरा।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री रमेशचन्द्र रायचौधरी, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

# प्रसिद्ध सिनेमा-तारिका सुन्दरी हसीना बानो

इस प्रशंसा-पत्र द्वारा बालोंके लिए रोस्कोके सुगन्धित कैस्टर आयलकी सिफ़ारिश करती हैं :—

"इस बातको कहते मुझे परम प्रसन्नता होती है कि कुछ दिनोंसे मैं रोस्कोका सुगन्धित कैस्टर आयल इस्तेमाल कर रही हूँ और उसके नतीजेसे मैं बहुत ही सन्तुष्ट हूँ। इसीलिए मैं इसे व्यवहार करनेके लिए उन लोगोंसे सिफ़ारिश कर सकती हूँ, जो अपने बालोंको मुलायम, चमकीला और घना बनाना चाहते हैं।"

*Hasina Aziz Bano*

अपने परम मनोहर सुगन्धिके साथ ही रोस्कोके सुगन्धित कैस्टर आयलमें ऐसी जड़ी-बूटीका अंश भी है, जो मस्तिष्कको शीतल रखता है और बालोंकी जड़ोंको पुनः शक्ति प्रदान करता है।

फ्रैंक रौस एण्ड कं० लि०, (केमिस्ट्स और ड्रगिस्टस) कलकत्ता

सावधान !!

सर्दी और खांसी
अथवा छाती की
किसी भी बीमारी के लिये

लोकप्रिय
सिरोलिन
'रोश'

सेवन करने का यही समय है

# विशाल भारत

**अप्रैल, १९४२**

संचालक
श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

सम्पादक
श्रीराम शर्मा



देशके लिए ६) वार्षिक
विदेशके लिए ९) "
बर्माके लिए ६॥) "


## इस अंकमें पढ़िये



— शेष भीतर सूचीमें देखिये —

## विषय-सूची

[ चैत्र, १९९९ : : अप्रैल १९४२ ]

## कबीर

विश्वभारती ( शान्तिनिकेतन ) के संस्कृत और हिन्दीके अध्यापक पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी शास्त्राचार्यका लिखा हुआ यह अपूर्व ग्रन्थ हाल ही में प्रकाशित हुआ है। कबीर, उनका साहित्य और उनके दर्शनको समझनेके लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। अभी तक कबीरके सम्बन्धमें इतनी गहराईके साथ और किसी भी ग्रन्थमें चर्चा नहीं की गई है। इसमें कबीरके वे सौ पद्य भी दे दिए गए हैं; जिनका स्व० गुरुदेव रवीन्द्रनाथने अंग्रेजी ट्रान्सलेशन किया था। मू० २॥)

## श्रीकान्त ( चतुर्थ पर्व )

जिसके लिए पाठक बरसोंसे प्रतीक्षा कर रहे थे और जिसके तीन पर्व पहले छप चुके हैं, अब प्रकाशित हो गया है। मूल्य बारह आने।

## सुलभ साहित्यमालाका मूल्य

कागजकी महँगाईके कारण दस आनेसे बारह आने कर दिया गया है। इस मालाके छब्बीसों ग्रन्थ अब इसी दामसे मिलेंगे।

## अन्य पुस्तकोंका मूल्य नहीं बढ़ा है

मुगल-साम्राज्यका क्षय और उसके कारण प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति। इतिहासका अपूर्व ग्रन्थ। मू० ४॥)

शिवाजी—सर जदुनाथ सरकार-लिखित शुद्ध ऐतिहासिक जीवन-चरित्र ... मूल्य १॥)

जैनेन्द्रके विचार—निबन्ध, लेख, चिट्ठी-पत्री। ... ... ... मूल्य ३)

कुलीनता ( नाटक )—सेठ गोविन्ददासजी ... ... ... मूल्य १)

दो चिड़ियाँ ( कहानियाँ )—श्री जैनेन्द्रकुमार ... ... ... मूल्य १)

दो फूल ( कहानियाँ )—श्रीमती सत्यवती मलिक ... ... मूल्य १।)

राधा ( भाव-नाट्य )—पं० उदयशंकर भट्ट ... ... ... मूल्य ॥≈)

मौक्तिक माल ( गद्यकाव्य )—सुश्री दिनेशनन्दिनी चोरड्या ... ... मूल्य १।)

सुमनांजलि ( कविता )—सुकवि पं० अनूप शर्मा, एम० ए०, एल० टी० ... मूल्य २)

नोट—सूचीपत्र मँगाइये।

संचालक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

## विषय-सूची



SOVEREIGN-REMEDY
AMRUTANJAN
Best-Indian Pain Balm
Amrutanjan Depot
होशियार होशियार नकल से
अमृताञ्जन
सब जगह मिलता है लाखों बिक गये

# 'विशाल भारत'के नियम

## ग्राहकोंके लिए

१. 'विशाल भारत' प्रत्येक अँगरेज़ी महीनेकी पहली तारीख़को प्रकाशित होता है। हर अंक सावधानीसे देख-भाल और पतेकी जाँच-पड़ताल करनेके बाद प्रत्येक ग्राहक, लेखक, विज्ञापनदाता, एजेण्ट आदिके पास भेज दिया जाता है।

२. अगर कोई संख्या किसी ग्राहक या विज्ञापनदाताके पास महीनेकी १० तारीख़ तक न पहुँचे, तो उसे अपने यहाँके डाकघरको शिकायत करनी चाहिए और डाकघरके जवाबके साथ हमें उस मासकी २० तारीख़ तक लिखना चाहिए। आवश्यक जाँच-पड़तालके बाद ही उन्हें दूसरी प्रति भेजी जा सकेगी।

३. कार्यालय उस समय तक किसी भी पत्रका उत्तर देनेके लिए बाध्य न होगा, जब तक कि पत्रके साथ उत्तरके लिए डाक-टिकट, टिकट लगा लिफ़ाफ़ा या कार्ड न होगा। पत्र आनेपर आवश्यक कार्यवाही अवश्य कर दी जायगी

४. ग्राहकोंको पत्र-व्यवहार करते, रुपया भेजने तथा पता बदलवानेका लिखते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बरके उल्लेखके आए हुए पत्रोंपर कार्यवाही करने या उत्तर देने, न देने अथवा इस सम्बन्धमें होनेवाले विलंबके लिए कार्यालय उत्तरदायी न होगा।

५. 'विशाल भारत' का मूल्य स्वदेशमें ६) वार्षिक, ३।) छमाही और एक प्रतिका ।।-) है तथा विदेशमें ९) वार्षिक और एक प्रतिका ।।।) है।

६. 'विशाल भारत' का मूल्य मनीआर्डरसे भेजना ही ग्राहकोंके लिए सुविधाजनक है। वी० पी० मँगानेमें एक तो वी० पी० ख़र्च और मनीआर्डर कमीशन मिलाकर ।=) अधिक लग जाते हैं और वी० पी० की वसूलीमें देर होनेसे बादका अंक भेजनेमें भी देर हो जाती है।

७. नमूनेकी प्रति मुफ़्त नहीं भेजी जाती। उसके लिए (विशेषांकोंको छोड़कर) मनीआर्डर या डाकके टिकटोंके रूपमें ।।=) पेशगी आना ज़रूरी है।

८. युद्धके कारण काग़ज़, स्याही तथा प्रेसकी अन्य आवश्यक चीज़ोंके दाम चढ़ जानेसे 'विशाल भारत' रियायती मूल्यमें देना अभी बन्द कर दिया गया है। अतः इस सम्बन्धमें किसी प्रकारके पत्र-व्यवहारकी आवश्यकता नहीं। रियायत माँगनेवाले पत्रोंका उत्तर देनेको कार्यालय बाध्य न होगा। जो महानुभाव रियायतकी आशासे वार्षिक या छमाही मूल्य कम भेजेंगे, उन्हें उतने समय तक ही पत्र भेजा जायगा, जब तकका मूल्य कार्यालयमें प्राप्त होगा।

## एजेंटोंके लिए

१. ५ कापियाँ प्रतिमास मँगानेपर कोई भी 'विशाल भारत' का एजेंट बन सकता है।

२. स्थायी एजेंटोंको १) फी कापीके हिसाबसे पेशगी ज़मानत जमा करानी होगी और हर महीने हिसाब साफ़ कर देना होगा।

३. जिस महीनेके अंककी जितनी प्रतियाँ चाहिएँ, उसकी सूचना उससे पहले महीनेकी २० तारीख़ तक कार्यालयको मिल जानी चाहिए।

नमूना मुफ़्त भेजनेका नियम नहीं है। उसके लिए कृपया ।।=) के टिकट भेजिए

अरुणोदय

'प्रवासी प्रेस', कलकत्ता ] [ श्री रामनारायण नन्दी

# विशाल भारत

" सत्यम् शिवम् सुन्दरम् "

" नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः "

भाग २९, अंक ४ ] चैत्र, १९९९ : : अप्रैल, १९४२ [ पूर्णांक १७२

## क्या जर्मनी भारतपर हमला करेगा ?

**श्री एलेक्ज़ेण्डर किरालफ़ी**

[ पूर्वसे जब भारतपर जापानी आक्रमणकी आशंका प्रबल हो उठी है, उत्तर-पश्चिमसे जर्मनीके उसपर चढ़ाई करनेकी सम्भावना भी फ़ौजी-विशेषज्ञ देख रहे हैं। यह सम्भावना कहाँ तक यथार्थ हो सकती है, हम नहीं कह सकते। प्रस्तुत लेखमें 'एशिया' के फ़ौजी और नौ-सेना-सम्बन्धी समस्याओंके विशेषज्ञ श्री एलेक्ज़ेण्डर किरालफ़ीने इसीपर सविस्तार प्रकाश डाला है। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि हिटलरको हरानेकी एकमात्र कुंजी भारतकी रक्षा ही है, जिसे खो देनेपर शायद जनतन्त्र राष्ट्रोंका जीतना मुश्किल हो जाय। —सं० ]

त्रिभुजाकार भारत धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूपसे जर्मनीके महानाशकारी युद्ध-यन्त्रोंकी मृत्यु-छायामें आ रहा है। जर्मन सेनाकी आँख बराबर वोल्गाके पूर्व और कैस्पियन-सागरके उत्तरमें स्थित रूसी नगर स्तालिनग्रादपर लगी है, और यही भारतपर चढ़ाई करनेकी कुंजी है। आततायी हिटलरकी रक्त-पिपासु सेनाको इस ओर बढ़नेसे रोकने और नात्सी-विजयको अपनी वास्तविक विजयमें परिणत करनेका एकमात्र उपाय जनतन्त्र राष्ट्रोंके पास यही है कि वे वर्त्तमान महायुद्धके अभिप्रेतार्थको एक बार भलीभाँति समझनेकी फिर कोशिश करें और केवल आत्म-रक्षाके लिए लड़नेकी नीतिका परित्यागकर आक्रमण करनेकी नीतिका अवलम्बन करें।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि काला और कैस्पियन सागर जर्मन सेनाको भारतकी ओर बढ़ने देनेमें बहुत बड़ी बाधा बने हुए हैं; फिर भी उनके उत्तर और दक्षिण होकर इस ओर बढ़ा ही जा सकता है। कैस्पियनके उत्तरमें स्तालिनग्राद है ही; पर इसके दक्षिणका कोहकाफ़-प्रदेश तो न केवल दक्षिण-मध्य रूसके तेल-स्रोतोंका, बल्कि मध्य-पूर्व अफ़ग़ानिस्तान और उत्तर-पश्चिम भारतके लिए महत्वपूर्ण प्रवेश-द्वार है। पहले यह आशा थी कि केन्द्रीय और उत्तरी रूसमें शीतके फलस्वरूप बर्फ़ और तूफ़ानी ठण्डी आँधियोंका प्रकोप होनेके कारण जर्मनी शायद दक्षिणके इस अपेक्षाकृत कम ठण्डे प्रदेशकी ओर बढ़ेगा और इसे भारतपर हमला करनेका आधार बनायगा। पर शीतने, जान पड़ता है, जर्मनोंके मनसूबोंपर पानी फेर दिया। काला-सागरके क्षेत्रमें जर्मन सेनाओंकी सफलताओंने रूसको बहुत-सी खाद्य-सामग्रीसे वंचित कर दिया। यूक्रेनका गेहूँ तो इस वर्ष आगकी लपटोंकी ही भेंट चढ़ गया। इस प्रकार काला-सागर और दरेदानियालके बीचसे रूसका इरान, ईराक और भारतसे अंगरेज़ों द्वारा सहायता पहुँचनेका यातायातका मार्ग एक तरहसे खंडित हो गया। पर इस क्षेत्रमें जर्मन सेनाके पाँव जम जानेसे आक्रमणका ख़तरा भारतके और भी निकट आ गया है। यही नहीं, ब्रिटिश द्वीप-समूहको छोड़कर समूचे यूरोप और उत्तरी अफ़्रीकाके एक महत्वपूर्ण भागपर धुरी-राष्ट्रोंका अधिकार है। इस प्रकार यदि उत्तर-भारतकी ओर जर्मन सेनाएँ बढ़ती हैं, तो मध्य और निकट-पूर्वमें उनका आतंक हो जाना स्वाभाविक है और इस दिशामें जर्मनीको

मिलनेवाली थोड़ी-सी भी सफलताका अर्थ होगा श्वेत जातियोंकी पूर्वी सीमा तक जर्मनीका प्रभुत्व। इस हालतमें सैनिक-दृष्टिकोणसे बाग़ीके रूपमें केवल पश्चिमी गोलार्द्ध (अमरीका और प्रशान्त महासागरके द्वीप), दक्षिण-अफ्रीका और आस्ट्रेलिया ही रह जायँगे।

सम्भावनाओं और सीमाओंसे परेके ऐसे जर्मन-साम्राज्यकी आशंकाके कारण ही आज धुरी और जनतन्त्र राष्ट्रों द्वारा दो विभिन्न प्रकारकी युद्ध-नीतिका अवलम्बन किया जा रहा है। यह नीतियाँ हैं क्रमशः केन्द्रीकरण और वितरणकी। फ़ौजी विशेषज्ञोंकी रायमें केन्द्रीकरण और नाकेबन्दी सफलताके तथा वितरण विफलताके कारण समझे जाते हैं। इसी सर्वसम्मत फ़ौजी सिद्धान्तके अनुसार जर्मन अधिकारी अपनी सारी शक्ति ब्रिटिश द्वीप समूहको ख़त्म करनेके लिए केन्द्रित करनेमें लगे हैं। कदाचित् उनका विश्वास है कि इसे समाप्त करनेके बाद जनतन्त्र राष्ट्रोंका संयुक्त-मोर्चा अपने-आप ख़त्म हो जायगा। इसीके उत्तर-स्वरूप जनतन्त्र राष्ट्रोंकी सारी शक्ति इस बातपर केन्द्रित हो रही है कि किसी-न-किसी तरह जर्मनीको हराया जाय—कारण, उसकी हारसे धुरी-राष्ट्रोंका मोर्चा स्वतः छिन्न-भिन्न हो जायगा और अन्तिम विजय

फ़ील्डमार्शल फ़ान ब्राउखिट्श, जो रूसमें लड़नेवाली जर्मन सेनाओंके सेनापति-पदसे हटनेके बाद जर्मनीके 'ग्रीष्म-अभियान'की तैयारीमें लगे बतलाए जाते हैं।

मित्रराष्ट्रोंकी ही होगी। जनतंत्र राष्ट्रोंकी वितरण-नीति इसी लक्ष्यको ध्यानमें रखकर निश्चित की गई है। ब्रिटेन, मध्य-पूर्व और भारतमें उनके जितने सैनिक हैं, वे अन्य स्थानोंसे सैनिकोंके न हटाए जा सकनेकी मजबूरीको देखते हुए ही उतने हैं, उतनेसे कम या अधिक नहीं। किन्तु जर्मनीकी जो भी टुकड़ी उत्तर-पश्चिम भारतकी ओर बढ़ेगी, वह या तो डोवरकी ओरसे या रूसी-मोर्चेकी ओरसे या मध्य-पूर्वके मोर्चेसे हटाई जायगी। यह स्पष्ट रूपसे धुरी-राष्ट्रोंके लिए हानिकर और मित्र-राष्ट्रोंके लिए सहायक होगा।

इस महायुद्धके अब तकके अनुभवका भी यही तकाज़ा है कि 'वितरण' या 'परोक्ष मुक़ाबले'की नीतिपर हम विश्वास करें। इस नीतिके अन्तर्गत बहुत बार ऐसी जगहोंपर भी हवाई या नाविक घेरा डालना पड़ता है, जिनका मुख्य क्षेत्रसे परोक्ष सम्बन्ध ही होता है। उदाहरणके लिए यद्यपि सन् १८१२ में फ्रांससे काफ़ी दूर रूसको पीछे हटना पड़ा था; पर इससे फ्रांसके यातायातके साधनों और तैयारियोंपर ऐसा प्रतिकूल असर पड़ा कि विजय फ्रांसके शत्रुओंकी ही हुई। कहनेका तात्पर्य यह है कि परोक्ष रूपसे मुक़ाबला करनेकी नीतिका महत्व इसी बातमें है कि शत्रुको अपने हाथ-पाँव इतनी दूरीमें पसारनेको बाध्य किया जाय कि वह उन्हें आसानीसे फैलाए न रख सके और उसके रसद पहुँचानेके साधनोंपर भी दबाव पड़े, ताकि अधिक समय तक वह मुक़ाबलेमें टिका न रह सके।

जनतन्त्र राष्ट्रोंकी इस युद्ध-नीतिमें भारतका स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। जहाँ धुरी-राष्ट्रोंकी धमकियोंके कारण मित्र-राष्ट्रोंके लिए भारत और सुदूर-पूर्वके अपने हितोंकी रक्षाके लिए अपनी ख़ासी सेनाको साम्राज्यके इस भागमें रखना लाज़मी है, वहाँ धुरी-राष्ट्रोंके लिए इस स्थितिसे लाभ उठाकर अपने अधिकृत यूरोपपर हमला न होने देनेके लिए और ब्रिटेनको पराजित करनेके लिए अधिकाधिक ज़ोर लगाना भी उतना ही लाज़मी है। अभी तक तो जर्मनोंने ओडेसा और लेनिनग्रादकी तरह ही ब्रिटेनको भी अपनी सशस्त्र शक्तियोंसे घेर रखा है और सेनाको अन्य क्षेत्रोंमें लड़नेको भेजा हुआ है। ब्रिटेनके चारों ओर यू-बोट्स और पनडुब्बियाँ उसके शस्त्रास्त्र और अन्य प्रकारकी सहायता लानेवाले जहाज़ोंको नष्ट करती रहती हैं और आकाशसे जर्मन बमबाज़ उसपर आग लगानेवाले और

भारी विस्फोटक बम बरसाया करते हैं। और इस स्थितिमें भी ब्रिटेन न केवल अपनी ही रक्षा कर रहा है, बल्कि अपनेसे दूर स्थित साम्राज्यकी रक्षाके लिए भी सेना और सामान भेज रहा है।

इस दृष्टिसे जर्मनीकी स्थिति अधिक सुगम और सुरक्षापूर्ण है। अपनी और अपने अधिकृत स्थानोंकी रक्षाके लिए तथा अपने शत्रुसे मुकाबला करनेके लिए अन्यान्य क्षेत्रोंमें उसे सेना और युद्ध-सामग्री भेजनेमें जनतन्त्र राष्ट्रोंकी-सी कठिनाइयाँ और जोखिम नहीं है। शत्रु-सेनाओंकी अपेक्षा अतलांतिकसे काला-सागर तक जर्मन सेनाएँ अधिक सुगमता और सुरक्षाके साथ आ-जा सकती हैं। संक्षेपमें जर्मनी एक वृत्तके केन्द्रमें है, जो व्यासार्द्धके माध्यमसे वृत्तके किसी भी भागमें जल्दी और आसानीसे पहुँच सकता है—जब कि जनतन्त्र राष्ट्र वृत्तके पास-पास ही फैले हुए हैं, जिन्हें वृत्तके एक भागसे ही दूसरे भागमें पहुँचना पड़ता है। इस हिसाबसे एक जर्मन दस्ता जितने समयमें कैलेसे ईरानके उत्तरमें पहुँचकर लौट आयगा, उतने समयमें अंगरेज़ोंका दस्ता ब्रिटेनसे कैस्पियन-सागरके तटपर पहुँच भर पायगा। इस दृष्टिसे भारतकी ओर होनेवाली जर्मन सेनाकी प्रगतिमें यद्यपि अधिक सतर्कतासे काम लेना होगा ; पर व्यासार्द्धसे आगे बढ़ने, लड़ने और सामान भेजनेकी सुविधासे ब्रिटेनकी अपेक्षा उसकी स्थिति सुगम और सुरक्षित रहेगी। यह बात युद्ध-रेखागणितको स्तालिनग्रादसे पंजाब तकके भूखण्डपर फैलानेसे पाठक आसानीसे समझ जायँगे।

डोन और वोल्गा नदियोंके बीचमें जर्मन सेनाओंकी उपस्थितिसे तिहरा ख़तरा रहेगा—कारण, दक्षिण-पूर्वमें वे अफ़ग़ानिस्तान, दक्षिणमें बसरा और दक्षिण-पश्चिममें मिस्रकी ओर क्रमशः या एक साथ बढ़ सकती हैं। सब मोर्चोंपर मिलाकर जनतन्त्र राष्ट्रोंकी शक्ति जर्मनोंसे भले ही अधिक हो ; पर इनमें से प्रत्येकमें अलग-अलग शायद वे जर्मनोंसे अधिक शक्तिशाली न हों। स्तालिनग्रादसे जर्मन सेनाकी एक टुकड़ी कैस्पियन-सागरके पश्चिममें होकर निकट-पूर्वकी ओर बढ़ सकती है, जब कि पश्चिमसे दूसरी टुकड़ी ट्रांसकैस्पिया होकर मध्य-पूर्वकी ओर बढ़ सकती है। इस नगरसे जितनी दूर स्वेज़-नहर है, उतनी ही दूर हीरात (अफ़ग़ानिस्तान) है। यदि जर्मन सेनाएँ कोहकाफ़में आ सकीं, तो वे पश्चिममें थ्रेस और पूर्वमें बाटुम होकर बुल्गारियासे तुर्कीपर धावा बोल सकती हैं और इस प्रकार ईरानपर आक्रमण करके ब्रिटेनकी सहायताको बेकार कर सकती हैं। तुर्कीपर अधिकार होनेसे जर्मन सेनाएँ एलेक्ज़ेंड्रिया-बाकूकी मोर्चेबन्दी कर सकती हैं। इस स्थितिमें ब्रिटिश सेनाओंके लिए मिस्र, फ़ारसकी खाड़ी और अफ़ग़ानिस्तान पहुँचना मुश्किल हो जायगा —जिनकी रक्षा उसके लिए अत्यावश्यक है।

यदि जर्मनी मिस्रमें सफलपूर्वक बढ़ सका, तो रूस और लाल-सागरसे ब्रिटिश नौ-सेनाको हटना पड़ेगा। ईरान और इराकपर हमला होनेका डर तो है ही, साथ ही यदि एक जर्मन टुकड़ी बग़दादकी ओर और दूसरी कैस्पियन सागरके दक्षिणी तटकी ओरसे बढ़े, तो तबरिज़की ब्रिटिश
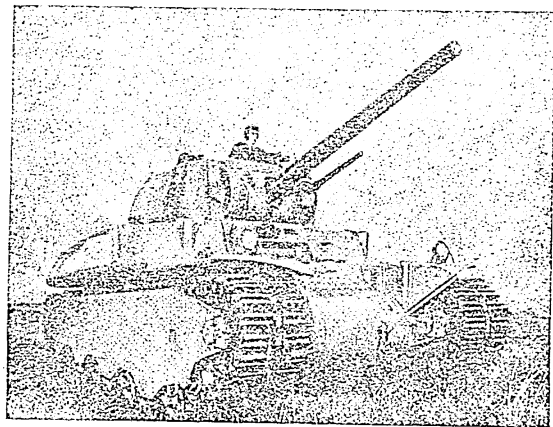
अमरीकाके नए भारी टैंक, जो रूस भेजे जा रहे हैं।

और रूसी टुकड़ियोंको बेकार कर सकती है और सीरिया, फिलस्तीन तथा मिस्रको पूर्वसे अलग कर सकती है। बग़दादसे जर्मन सेना आसानीसे फ़ारसकी खाड़ी, केन्द्रीय ईरान और अफ़ग़ानिस्तान या सीरियाके समुद्र-तटकी ओर बढ़ सकती है। ब्रिटिश सेनाओंको उसकी इस तरहकी प्रगतिको रोकनेके लिए बड़ी लम्बी यात्राएँ करनी पड़ेंगी। नात्सी फ़ौजियोंका यह सिद्धान्त है कि वे शत्रुकी सेनाको किसी एक जगह एकत्रित नहीं होने देना चाहते। इसीलिए वे अनेक प्रमुख शत्रु-स्थानोंपर जब-तब साधारण आक्रमण किया करते हैं, ताकि शत्रुका ध्यान और शक्ति कई जगह बँटी रहे। साथ ही जहाँ जर्मन आक्रमण नगण्य या

विफल हुए, वहाँ मित्र-राष्ट्रोंको उन्हें हरा सकनेकी आशा होने लगती है और वे अन्य स्थानोंसे सेना हटाकर यहाँ ले आते हैं, जब कि जर्मन सेना उन्हें कोई निर्णयात्मक युद्ध करनेका अवसर ही नहीं देती। इसी भ्रममें पड़कर लाल-सेनाने किएफ़से पहले ओडेसा और स्मोलेंस्कसे पहले मास्को तथा लेनिनग्रादकी 'सफलतापूर्वक' रक्षा की, जबकि अन्य मोर्चोंपर जर्मन सेनाओंने अपनी सारी शक्ति लगाकर लाल-सेनाके एक बहुत बड़े भागको ख़त्म कर दिया। भारतपर होनेवाले आक्रमणमें ऐसी चालोंकी सम्भावना और भी अधिक है। अतः आश्चर्य नहीं, यदि मित्र-राष्ट्रोंको किसी प्रकारकी मज़बूत क़िलेबन्दी न करने देनेके लिए जर्मनी अभी जल्दी स्वेज़-नहर या बसरापर आक्रमण न करे। बसरा और दमिश्कपर होनेवाले जर्मन आक्रमणका कुछ समय तक मुक़ाबला किया भी जा सके, तब भी इस क्षेत्रमें जर्मन सेनाओंके हाथके पंजेकी तरह फैलनेकी सम्भावना तो है ही, जिसमें एक टुकड़ी निश्चय ही भारतकी ओर बढ़ेगी।
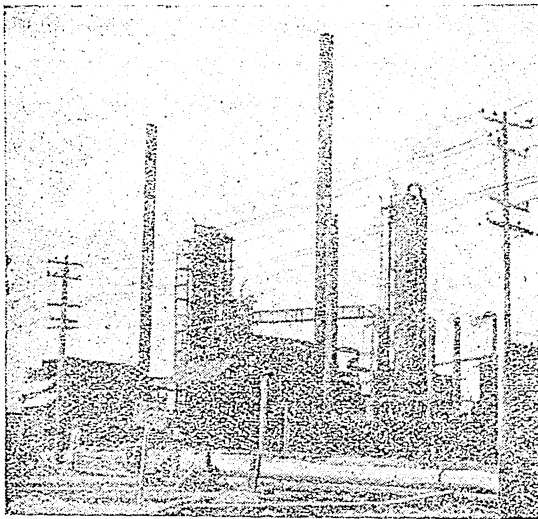
बेहरीनका तेल साफ़ करनेका एक कारखाना।

रूस-ईरान-सड़क, जो किसी ज़मानेमें रूसी सेनाओंको भारतपर चढ़ाई करनेके लिए लानेको बनाई गई थी, अब जर्मन सेनाओंको रूसपर आक्रमण करनेके लिए ले जानेका मुख्य मार्ग बन सकती है। इसीसे जर्मन सेनाएँ अफ़ग़ानिस्तानकी सीमा तक भी आ सकती हैं और इस प्रकार रूस या भारतकी सहायताके लिए आनेवाली ब्रिटिश सेनाओंको रोक सकती हैं। यद्यपि अफ़ग़ानिस्तान और भारतके बीचके दुर्गम पहाड़ी दर्रे शत्रुकी प्रगतिको रोकनेके लिए इतिहासमें प्रसिद्ध हैं; किन्तु बमवर्षकों, हवाई-सेना और आधुनिकतम युद्ध-यन्त्रोंने इस कठिनाईका महत्व बहुत कुछ कम कर दिया है। जर्मनी द्वारा यूगोस्लाविया और यूनानपर हुए आक्रमणोंने यह सिद्ध कर दिया है कि—यदि सर्दीका मौसम न हो, तो—पहाड़ी दर्रे अगुआ दलोंकी प्रगतिके लिए बाधक न होकर सहायक ही विशेष होते हैं। फिर सैनिक प्रगतिके अलावा जर्मन अधिकारी यूगोस्लावियाके क्रोआटियनों और बुल्गारिया तथा रूमानियाके मुसलमानोंकी तरह भारतमें भी अपने सहानुभूति रखनेवालोंकी तलाश निश्चय ही करेंगे। मुस्लिम राष्ट्रकी स्थापना और तख़्तों तथा सल्तनतोंका प्रलोभन पूर्वमें भी उनके बहुत-से समर्थक पैदा कर सकता है। उत्तर-पश्चिमी भारतका सीमा-प्रदेश न केवल अफ़ग़ानिस्तानके लिए, बल्कि काबुलसे मोरक्को तकके निवासियोंके लिए एक प्रवेश-द्वार रहा है। यद्यपि पिछली कुछ दशाब्दियोंसे उसकी क़िलेबन्दीकी ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है, फिर भी जर्मनीकी सशस्त्र यान्त्रिक सेनाओंको रोकनेके लिए वह उपयुक्त नहीं कही जा सकती।

उत्तर-पश्चिमसे जहाँ भारतपर जर्मन-आक्रमणका ख़तरा है, पूर्वसे लगभग उतना ही ख़तरा जापानके आक्रमणका भी है। इस कमीको दूर किया जा सकता था; पर जनतन्त्र राष्ट्रोंने उसे रोकनेके लिए आवश्यक कार्यवाही न कर अक्षन्तव्य अपराध किया है। अभी कुछ ही वर्षों पहले बर्मापर आक्रमण हो सकना 'निकट भविष्यमें सम्भावनाकी सीमाओंसे परे' समझा जाता था और घने जंगलोंवाले पहाड़ोंपर विशेष ज़ोर दिया जाता था तथा कहा जाता था कि उनमें होकर खच्चरोंके जो रास्ते हैं, उनसे शत्रु केवल इकहरी (एक-एक सैनिककी) पंक्तिसे ही आ सकता है। इस मोर्चेपर भी सेनाका प्रमुख काम १५०० मील लम्बे रेल-मार्गोंकी रक्षा करना ही रहा है। जिस ढंगसे इस मोर्चेपर सेनाएँ एकत्र की गई हैं और हवाई-अड्डे बनाए गए हैं, उनसे ज़ाहिर होता है कि इस भागमें भौगोलिक कठिनाइयाँ उतनी नहीं हैं, जितना कि उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर कहा गया है। यद्यपि फ्रांसीसी हिन्द-चीनमें (और थाईलैंडमें भी) जापानियोंकी सेना अधिक

नहीं है और सहायक-सेना केवल समुद्र-मार्गसे होकर ही आ सकती है। पर असली ख़तरा यह नहीं है कि जापान आज क्या करेगा, या अधिक अनुकूल परिस्थितिमें क्या करता, बल्कि यह कि यदि एशियाकी ओर नात्सी सेनाएँ बढ़ीं, तो जापान भी जनतन्त्र राष्ट्रोंके विरुद्ध ज़िहाद बोल देनेकी ही सोचेगा। भारतपर जर्मनीके हमलेसे जापानकी आँखोंको न केवल दिल्लीपर ही, बल्कि उन स्थानोंपर भी स्वतिकाका झण्डा फहराता हुआ दिखेगा, जिन्हें वह अपनी 'नई व्यवस्था' में सम्मिलित करनेका स्वप्न देखता रहा है। जापानके लिए इस सम्बन्धमें दो ही मार्ग हैं—या तो वह भारतकी लूटका अपना हिस्सा लेनेके लिए जनतन्त्र राष्ट्रोंसे लड़े या तटस्थ रहकर भारतको नात्सियोंके चंगुलमें चला जाने दे।

भारतपर जर्मनी इसलिए भी अधिकार करनेको उत्सुक है कि पूर्व और अफ्रीकासे थल-मार्ग द्वारा जर्मनी तक पहुँचनेका मित्र-राष्ट्रोंके हाथमें कोई मार्ग न रहे और साथ ही हज़ारों मिलके समुद्र-तट और रक्षक बन्दरगाहोंसे भी उनकी नौ-सेना वंचित हो जाय। साथ ही यहाँसे जर्मन-यान अफ्रीका और आस्ट्रेलिया भी आसानीसे पहुँच सकते हैं। भारतमें बन्दरगाह कम और जहाज़ोंको रक्षाके लिए शरण देनेमें असमर्थ हैं। पर शत्रुको इनसे यह लाभ होगा कि जनतन्त्र राष्ट्रोंके नाविक प्रत्याक्रमण और हवाई सेना उतारनेके उतने ही कम प्रयत्नोंका सामना करना होगा। कच्छकी खाड़ी, गंगा तथा इरावदीके मुहानों तथा त्रिंकोमालीके सुरक्षित बन्दरगाहोंमें बने जर्मन यू-बोट्सके केन्द्र आसानीसे नष्ट नहीं किए जा सकेंगे। इस प्रकार जर्मन यू-बोट्स दक्षिण-अफ्रीकाके आसपास आसानीसे पहुँचकर हिन्द-महासागरमें लौट सकते हैं। वे अफ्रीकाके पुर्त्तगीज़ उपनिवेशों या किसी छद्मवेशी जर्मन जहाज़से पेट्रोल ले सकते हैं।

अभी कुछ समय पहले तक भारतमें रखी जानेवाली ब्रिटिश सेना एक तरहसे पुलिसके रूपमें ही रही है। उसका प्रमुख कार्य देशके रेल-मार्गोंकी रक्षा करना और गौण कार्य सीमान्तोंकी चौकीदारी करना रहा है। गत १९३७ में ही दिल्लीमें यह चिन्ता प्रकट की जा रही थी कि आया भारतीय सेना भारतकी रक्षा करनेके बजाय मलायाकी रक्षामें योग देने लायक है भी या नहीं! पर इस महा-युद्धके छिड़नेके बादसे भारतकी रक्षाके लिए रखी गई

इस सेनाको मलाया, उत्तर-पूर्वी अफ्रीका, मिस्र, सीरिया, ईरान तथा इराक आदिमें लड़ना पड़ रहा है। गत नवम्बर मासमें भारत-मन्त्रीने कहा था कि भारतमें १५ लाख सैनिक संगठित किए जा सकते हैं। मित्र-राष्ट्रोंके यूनान-त्यागके बाद उन्होंने घोषणा की कि भारतमें ५ लाख सैनिक संगठित हुए हैं और इनसे चौगुने और हो सकते सकते हैं। यद्यपि इस महायुद्धके छिड़नेसे पूर्व भारतकी सेना—हवाई-जहाज़ोंके सिवा—उसकी रक्षाके लिए पर्याप्त थी; किन्तु यान्त्रिक उपकरणों और शस्त्र-सज्जाकी बढ़ी हुई आवश्यकताओंको देखते हुए जितनी सेना आज भारतमें संगठित हो चुकी है, उसे किसी सबल शत्रुका मुक़ाबला कर सकनेके लिए सुसज्जित और सुसंगठित नहीं कहा जा सकता।

भारतको खोनेकी इस महान दुर्घटनाको रोकनेके लिए केवल रक्षात्मक लड़ाईसे ही कुछ न होगा। लाल-सेना अपने पूर्णतया सुव्यवस्थित मोर्चेपर जो न कर सकी, वह कहीं बड़े और कम क़िलेबन्दीवाले मोर्चोंपर छोटे-छोटे जनतन्त्र राष्ट्रोंकी सेनाएँ कैसे कर सकेंगी? एलेक्ज़ेंड्रेटा और बाकूके बीचका मोर्चा उतना ही बड़ा है, जितना कि रूस-जर्मनीका पिछले दिनों रहा है और ईरान-अफ़ग़ान-मोर्चा तो इससे भी दुगुना होगा। शत्रु हमला करे, तभी उसका मुक़ाबला करनेकी नीतिसे जनतन्त्र राष्ट्रोंको बराबर यह नुक़सान हुआ है कि युद्धारम्भका लाभ जर्मनीको ही होता रहा है और उसने सदा मित्र-राष्ट्रोंके सबसे कमज़ोर मोर्चेपर ही हमला किया है। यदि एशियापर होनेवाले जर्मन आक्रमणका सफलतापूर्वक मुक़ाबला भी किया जा सके और जर्मन सेनाको पीछे हटना पड़े, तो, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, जर्मनीकी सेनाएँ अपनी केन्द्रीय स्थितिके कारण पीछे ही हट सकती हैं, घेरी नहीं जा सकतीं। एलेक्ज़ेंड्रेटामें हारनेपर वे अंकारा, ईरानमें हारनेपर कोहकाफ़ और अफ़ग़ानिस्तानमें हारनेपर तुर्किस्तानमें पीछे हट सकती हैं। जर्मनीके छोटे-मोटे मोर्चोंपर सीधा हमला करना इस स्थितिमें विशेष अन्तर नहीं लायगा। जिस युद्ध-नीतिसे जर्मनी लड़ रहा है, उसके सबसे सबल मोर्चेपर मुक़ाबला करना ठीक न होगा। कहनेका तात्पर्य यह कि नात्सी टुकड़ियोंसे सब कुछकी बाज़ी लगाकर लड़नेकी अपेक्षा अधिक समय तक टिकनेवाली और लचीली युद्ध-प्रणाली अधिक उपयुक्त होगी। मित्र-राष्ट्रोंको

मुख्य आक्रमण जर्मनीके उन मोर्चोंपर करना चाहिए, जिनपर जर्मनीने विशेष शक्ति नहीं लगाई हुई है। ये मोर्चे हैं बर्लिनकी दिशामें और जर्मन सेनाओंकी प्रगतिके नवीन केन्द्र।

जहाँ तक भारतकी रक्षाका सवाल है, मित्र-राष्ट्रों द्वारा फ्रांस या इटलीपर होनेवाला आक्रमण अन्य किसी स्थानपर होनेवाले आक्रमणकी अपेक्षा भारतकी रक्षाके लिए अधिक सहायक सिद्ध होगा। यदि बाटुमकी ओरसे नात्सी सेनाएँ भारत या निकट-पूर्वकी ओर बढ़ती हैं, तो मित्र-राष्ट्रोंको दरेदानियाल और बास्फोरसकी राहसे आक्रमण कर जर्मन यातायातकी पंक्तिको छिन्न-भिन्न कर देना चाहिए। इसका जर्मनी और उसकी सेनाओंपर गहरा असर पड़ेगा। ज्यों-ज्यों जर्मन सेनाएँ पूर्वकी ओर बढ़ेंगी, आक्रमणका बिन्दु भी पूर्वकी ओर ही बढ़ता जायगा। इस दृष्टिसे सीरियाकी स्वतन्त्र फ्रांसीसी और सीरियन तथा ब्रिटिश सेनाएँ कोहकाफ़से अफ़ग़ानिस्तानकी ओर बढ़नेवाली जर्मन सेनाओंपर पीछेसे सफल आक्रमण कर सकती हैं। पर इस तरहके युद्धके लिए मित्र-राष्ट्रोंका सबसे पहला फ़र्ज़ है तुर्कीकी सुरक्षा, क्योंकि यदि अंकारापर जर्मन सेनाओंका अधिकार हो जाता है, तो सीरियाकी सेनाएँ बेकार हो जाती हैं। शत्रुके यातायातके मार्गपर हमला करनेके लिए मित्र-राष्ट्रोंके पास स्वेज़, बसरा, बन्दर अब्बास और कराची आदि कई उपयुक्त बन्दरगाह हैं। प्रश्न केवल यही है कि आया यहाँसे जर्मनीकी आगे बढ़नेवाली टुकड़ियोंपर आक्रमण किया जा सकेगा या नहीं?

पर इस तरहकी क्रियाओंमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है सोवियत् सेनाकी स्थिति और नेतृत्वकी। जब तक वे सबल और सुसज्जित हैं, मित्र-राष्ट्रोंका ऊपरी मोर्चा दृढ़ रहेगा। किन्तु समूची सैनिक स्थितिका ख़याल न कर कुछ नगरों और महत्वपूर्ण क्षेत्रोंकी रक्षाका विफल प्रयत्न करने भरसे ही यह स्थिति बनी नहीं रह सकती। हम यह नहीं कहते कि सोवियत् सेनापति यूरालके उपयोगी क्षेत्रोंकी रक्षाके बजाय भारतकी ओर अधिक ध्यान दें, बल्कि यह कि भारतपर होनेवाले जर्मन आक्रमणसे मित्र-राष्ट्रोंको बढ़े हुए जर्मन यातायातके मार्गोंपर ऐसे आक्रमण करनेका मौक़ा मिलेगा, जिनका जर्मनीपर वाक़ई कुछ असर पड़ सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि इस कार्यसे काफ़ी दबाव पड़ेगा। पर जब तक मित्र-राष्ट्र आक्रमणात्मक युद्ध-नीतिसे काम न लेंगे, कम-से-कम एशियामें उनके लड़ाई हारनेकी जोखिम ही रहेगी। किन्तु जर्मनी-विरोधी युद्धका निर्णय तो जर्मनीके पास ही होना है—और सब तो फ़ौजी-विशेषज्ञोंकी सूझ-भर है।

---

# कारा

श्री मैथिलीशरण गुप्त

राम, हमारे राम, तुम्हारे बने रहें हम,
जीवन के संघर्ष हर्ष के साथ सहें हम।
प्रभो, मुक्ति दो हमें हाय! किस भाँति कहें हम?
बँधे गुणों से रहें, कहीं भी क्यों न बहें हम।

सुन कर 'कारा' नाम न चौंको, आस्तिक, आओ,
तुम निज 'मोहन' और 'दास' दोनों को पाओ।
पापात्मा से स्वयं स्वर्ग में नरक सनेगा,
पुण्यात्मा से किन्तु नरक भी स्वर्ग बनेगा।

हम सौ - सौ की यहाँ एक ही करुण कहानी
व्यथा यही, इस कथा योग्य मिल सकी न वानी।
कहाँ रोष की अग्नि, दग्ध दोषों को कर दे?
वह सुवर्ण-निधि कहाँ, अर्थ - कोषों को भर दे?

छुटपन में ही मुझे सदा को छोड़ गई माँ,
पर दद्दू ने मुझे न ला दी और नई माँ।
गाय, माय या धाय बनी वह श्यामा गौरी,
गई रँभाती हुई पुरोहित के घर धौरी।

कुछ-कुछ सुध है मुझे शुष्क-से माँ के मुख की,
कही न कोई बात उन्होंने सुख की, दुख की।
मानों मेरा हाथ, पिता का पैर पकड़कर
वे चिर-निद्रित हुईं खाट से नीचे पड़कर।
परिजन कहते—"बिसा लायँगे हम फिर मैया,"
किन्तु दिखाते पिता मुझे वह श्यामा गैया।
लिया बाप ने ठौर आप माँ का भी जैसे,
पाला-पोसा मुझे पढ़ाया भी कुछ कैसे।
मैं बढ़ता ही गया एक में दो-दो पाकर,
घाते में था एक तीसरा चतुरा चाकर।
उस चमार को मिली कहाँ ब्राह्मण की वाणी,
निज गुण से वह बना हमारे घर का प्राणी।
माँ तो नहीं, परन्तु पिता ने बहू बिसाई,
बेटी-सी कुछ समय पूर्व ही वह घर आई।
घर की गति-विधि उन्हें उसे जो दिखलानी थी,
बाहर की भी रीति-नीति सब सिखलानी थी!
कर्त्ता-धर्ता सभी पिता, मैं केवल द्रष्टा,
वे समक्ष थे, पर अलक्ष था मेरा स्रष्टा।
खाता-पीता और अखाड़े में मैं लड़ता,
रहता निडर परन्तु किसी से नहीं झगड़ता।
रहे गाँव में और पेट भर कर खाता हो,
माथा ऊँचा किए हुए आता-जाता हो,
तो उसपर शनि-दृष्टि पड़ेगी क्यों न पुलिस की?
पूजा देकर शान्ति करो जैसे हो इसकी!
उद्धत रहूँ, परन्तु न था मैं चोर-उचक्का,
पर रह जाना पड़ा मुझे तब हक्का-बक्का
जब औचक आ धरा दरोगा के दल-बल ने,
पाया भी मैं नहीं सबेरे जाग सँभलने!
तन में बल था और अखाड़े का कौशल था,
मन में किन्तु न छूट भाग जाने का छल था,
पुलिस पकड़ ले मुझे, न्याय से मैं छूटूँगा,
अपना यह अपमान गर्व से ही घूटूँगा।
हँसा दरोगा, "न्याय वही जो कुछ मैं कर दूँ,
हाकिम गड़बड़ करे, धाँध उसको भी धर दूँ!"
मैं क्या जानूँ, बात उसीकी सच्ची होगी,
एक वर्ष के लिए हुआ मैं कारा-भोगी।

मेरा कारागार गाँव का छोटा-मोटा,
जिसके चारों ओर बना ऊँचा परकोटा।
उसके भीतर साथ-साथ थे खेत और घर,
घर मानों छड़दार हिंस्र पशुओं के पिंजर!
इन पिंजड़ों में एक-एक में सौ-सौ वन्दी,
हो जाती है हवा सहज ही इनकी गन्दी।
ऊमस में भी बन्द रात में मरना होगा,
आड़ बिना मल-मूत्र इन्हीं में करना होगा।
जिस जन का यह गृह-विधान वह वनचर अब भी,
पहने बीसों वसन, लाज उसको क्या तब भी?
कलकत्ते की काल-कोठरी सुनी गई थी,
उसी कल्पना पर यथार्थ यह चुनी गई थी!
इन पिंजड़ों का एक जीव भी कभी पलावे,
तो नाहर-सा निकल गया वह माना जावे।
किन्तु किसी का अन्त करे कारा की पीड़ा,
तो मानों मर गया मार्ग का कोई कीड़ा।
सहसा मेरी जीभ जकड़ जड़-सी रह जाती,
सुध अब भी जब कभी प्रथम भोजन की आती।
रोटी जिसकी बनी, अनोखा एक मिसा था,
मिट्टी, कंकड़, घुन, अनाज सब साथ पिसा था!
होती थी घर कुटी गँड़ासे से ढोरों को,
वह भाजो बन मिली उबलकर हम चोरों को!
दाल देख फिर गया आप मेरा मुँह रोकर,
उलटा खाया-पिया न निकले उलटी होकर!
कढ़ी-भात के साथ दाल-रोटी वह घर की,
वह बघार की सौंध, कौंधती टिकुली-तरकी!
वह काँसे का थाल, फूल के भरे कटोरे,
आगे धरते हुए हाथ वे गोरे-गोरे!
खीर-खाँड़ पर शुद्ध सद्य घृत-धार बरसना,
बस-बस पर कान न धर कुछ और परसना!
यह अवाध्यता और आप ही आप सरसना,
उस भोजनके लिए रहा आमरण तरसना।
बाहर देखे बाप और घर बहू निराली,
न थी काम के नाम सींक तक मैंने टाली।
पर कारा का कार्य मनुज को पशु करना है,
जुत कोल्हू में मुझे बैल बनकर मरना है।

कर - कर के श्रम हाय ! व्यर्थ मैंने तन तोड़ा,
बँधी तौल से किन्तु तेल निकला कुछ थोड़ा।
लाख गालियाँ मिलीं, हो गई पेशी फिर भी,
पैरों में बेड़ियाँ पड़ीं, फूटा यह सिर भी।
बँटा बान ने मुझे, खेत ने गोड़ा धरकर,
मैं कोल्हू में पिरा, पिसा चक्की में चर - मर !
सूख चला तन, किन्तु हुआ मन गीला - गीला,
मैंने पड़ने दिया नहीं अपने को ढीला।
किए काम सब, पुरस्कार भी कभी न छोड़े,
हाथों में थे कड़े और पैरों में तोड़े !
पर लोहा ही रहा हाय ! लोहा अभिमानी,
पत्थर के थे किन्तु न पारस के थे दानी !

मन पर वश चल सका कहाँ कब किस शासनका ?
मुझ पर पड़ा प्रभाव और प्रतिकूल दमन का,
डंडा - बेड़ी पड़ी, कल्पना ने गति पाई,
जैसा - जैसा कुटा - पिटा दृढ़ता ही आई।
सोता सहचर - वृन्द पास ही पड़ा हुआ था,
मेरे ऊँचे हाथ बँधे, मैं खड़ा हुआ था।
मचा रहे थे वेग उदर में रुककर घातें,
इसी दशामें बीत गईं कितनी ही रातें !
मुझको था अभ्यास गुनगुनाने का यों ही,
रहा वही अवलम्ब यहाँ आया मैं ज्यों ही।
काल - कोठरी कटी उसीके बल से मेरी,
देती माथा फेर जहाँ की मौन अँधेरी।
देखा मैंने आप यहाँ नर पागल होता,
हम सबको ही नहीं, आप अपने को खोता !
ऐसा अत्याचार मनुज पर करे मनुज ही,
हाय ! मनुजको कहा जाय फिर क्यों न दनुज ही।

दिन के हारे - थके रात को सब सोते थे,
पड़ी व्यार भी शिथिल, स्यार वन में रोते थे।
तान उड़ाकर गया घड़ीवाला बढ़ आगे,
ये चिल्लाते हुए प्राण अब किसके जागे ?

हाय ! चीरती हुई अभागे की यह छाती,
वह पुकार की प्रखर धार थी धँसती आती।
यह तो माँ की टेर, रो उठा बालक-सा मन,
"सोने देती नहीं राँड़"—बोला कोई जन।
मैंने पूछा—कौन अभागिन है यह भाई ?
क्या दो बच्चे छोड़ धरी चोरी में आई ?
दिखलाई दे गए मुझे दो बच्चे भूखे,
सूखे जिनके अंग, केश थे जिनके रूखे।
माँ अभागिनी आज उन्हें किस भाँति जिलावे ?
चोरी से भी अन्न मिले तो क्यों न खिलावे ?
पर जिनके रक्षार्थ आप यह पाप कमाया,
न हो सदा के लिए उन्हें भी कहीं गमाया।
उस पुकार का सार—"जगत मुझसे कुछ कह ले,
किन्तु बता दे मुझे यही सोने के पहले—
ठौर - ठिकाना लगा कहीं मेरे बच्चों का ?
दोषी मैं हूँ, दोष नहीं मेरे बच्चों का।"
सिहर उठा मैं, काँप गई एड़ी से चोटी,
लगी लूट - सी मुझे जेल की भी वह रोटी !
यदि मेरा नर आज कहीं नारायण होता,
देख न सकता कभी किसीको वह यों रोता।
चुप हो, चुप हो, न रो, ऐसे, ओ माई !
तेरे बच्चे हुए आज मेरे दो भाई।
गायें - भैंसें तीन - तीन हैं घर पर मेरे,
एक एक का दूध पियें हम तीनों तेरे।
पूछा मैंने दीन शिष्य बनकर वार्डर से—
रह सकते क्या नहीं यहाँ बच्चे आर्डर से ?
"नहीं, एक नौ और दूसरा सात बरस का"
बोला गुरु गम्भीर बना वह तनिक तरस खा—
"छै के ऊपर यहाँ नहीं रहने पाते हैं,
होते हैं जो स्वजन उन्हें वे ले जाते हैं।
करती बहुधा त्राण मिशन की गोरी मैया,
जहाँ ईश का पुत्र ईशु है प्राण बचैया !"

( अपूर्ण )

जिला-जेल, झाँसी ]

# जंगली सूअर : शूरमा

श्रीराम शर्मा

फागुनकी पूर्णिमा थी। होलीके त्योहारमें देहातके लोग जुटे थे। घरोंकी लिपाई-पुताईके बाद अपनी-अपनी हैसियतके अनुसार स्त्रियाँ पकवान बनानेमें व्यस्त थीं। पुजापा तैयार हो रहा था। लोग ढप, ढोलक और मजीरे सँभाल रहे थे और बाहर खेतों और वनोंमें वसन्त-सेना पग जमाए खड़ी थी। उत्साह और यौवनकी लहरमें प्रकृति बह रही थी। खेतोंमें गेहूँ और जौके पौधे लाखों मन अन्न-कणोंको अंजलियोंमें लिए वसन्तका स्वागत कर रहे थे। आमोंके द्रुमदल कंटकित होकर और झूम-झूमकर भीनी-भीनी सुगन्ध छोड़ रहे थे। ढाक और सेमरके वृक्षोंमें तो जवानीके ख़ूनकी वह तेज़ी थी कि वे सुर्ख़रू होकर बुड्ढे शीतका खुलेआम उपहास कर रहे थे। अनेक पक्षियों और पौधोंके रग-पुट्ठोंमें एक नवीन जीवन संचारित हो रहा था। बस, यों समझिए कि ठिठुरी वसुन्धराने वसन्तकी बिजलीसे शक्ति पाकर अँगड़ाई लेते हुए जँभाई ली और उसकी एक चितवनसे ही शीत धराशायी-सा होकर कन्दराओं और पर्वत-शिखरोंकी ओर सरक गया।

पूर्णचन्द्रके निकलते ही धरातलपर एक रुपहली चादर-सी तन गई, मानो शीतपर कफ़न डाल दिया हो और हर गाँवमें शीतकी प्रतिमा—होली—में दाह लगाया गया। ढप और ढोलोंने वसन्त-दुन्दुभी बजाई। वसन्त-सेनाकी विजयश्रीकी हुंकार मुखरित होकर थलचरों, नभचरों और जलचरोंमें प्रस्फुटित होने लगी और ब्रजके एक गाँवसे राग उठा :—

बिरहुल अलकन्द बछेरिय रे!

और फ़र्रुख़ाबाद ज़िलेके चियासर गाँवके गंगा-तटवर्ती जंगलके सामने, गंगाजीकी रेतियामें, पन्द्रह-बीस सूअरोंकी एक टोली परिधि-सी बनाए खड़ी थी। रातके आठ बजे होंगे। परिधिके बीचमें दो दँतैल सूअर पैंतरोंपर खड़े थे। पचास गज़की दूरीपर दो उन्मत्त घड़ियाल अपनी शक्तिके प्रदर्शनमें लगे थे और क़रीब एक बड़ी गोह (मादा मगर) आँखें झपकाए गंगा-किनारे पड़ी थी, मानो वह गंगाकी शपथ खा रही थी कि वह विजयीको ही बरेगी। रेतियापर जो अखाड़ा जमा था, उसकी जलचरोंको कोई परवाह न थी। गाँववाले फागमें मस्त थे। सूअरोंकी टोलीमें उस दिन, वसन्तकी प्रेरणासे, इस बातपर ठन गई थी कि टोलीका नेतृत्व कैसे हो—टोलीके विभाजनमें कौन-से दँतैलके संरक्षणमें कितनी और कौन-सी सूअरियाँ आयँ। असलमें एक युवती सूअरियाको लेकर दोनों दँतैल शक्तिकी होली खेलनेपर उतारू हो गए थे। झगड़ा दो मर्दोंका था, और दोनों दँतैल सूअरोंने जानकी बाज़ी लगा दी थी। दर्शकोंने—झुण्डके सदस्योंने—उनके झगड़ेमें न तो हस्तक्षेप करना ठीक समझा और न किसीमें इतना ताब था कि उस झगड़ेमें कोई पड़ता।

चाँदनी रातमें पैंतरोंपर खड़े दोनों सूअरोंकी काँपें चमचमा रही थीं। लगभग छै-छै इंच लम्बी दूधके रंगकी काँपें अर्द्धचन्द्राकारमें बाहर निकली हुई थीं। बाल खड़े हुए थे। दोनों सूअर एकदम भिड़नेकी अपेक्षा पिचैतीसे काम ले रहे थे। दोनोंके पास एक-से हथियार थे। दाँव-पेच भी एक-से ही थे, जो दोनोंको मालूम थे। मौक़ा पाकर वे अपनी पैनी काँपोंको अपने प्रतिद्वन्द्वीकी बग़लमें मारनेकी घातमें थे। पहलवानोंकी भाँति पहले तो उन्होंने पैंतरे बदले—थूथड़ियोंका ख़याल रखते हुए। घूम-घूमकर अर्द्ध-वृत्तमें थूथड़ीको थूथड़ीसे मिलाए हुए, वे पटेबाजोंकी भाँति कुछ सिकुड़े हुए घूमे और घुर्र शब्द करके एक दँतैलने टक्कर मारी; पर उसके प्रतिद्वन्द्वीने आक्रमणकारीपर वैसा ही प्रत्याक्रमण करके हमलेके ज़ोरको कम कर दिया। बस, दोनोंके जबड़ोंके पास गहरी खुरसटें आईं। बजाय इसके कि वे पशु-बलका प्रयोग करके एक दूसरेसे भिड़ पड़ते, वे पैंतरेबाज़ीसे, सुकड़-सुकड़कर और घूम-घूमकर, काम ले रहे थे। कभी तो वे अपनी थूथनोंको भिड़ाकर, अपनी काँपोंको कटकटाकर बजाते और ठेलमठेला भी करते; पर जोड़ बराबरका था। लगभग साढ़े तीन मनके सजीव टैंकका मुकाबिला उतने ही भारी सजीव टैंकसे था। यों तो उनमें से

प्रत्येक अपने अर्द्धचन्द्रमाओंकी जोड़ी—काँपों—के बलबूते किसीसे भिड़नेको तैयार था ; पर बराबरीका मुक़ाबिला बुरा होता है। घंटे भर तक उनकी पिचैती होती रही। ऊपर आकाशसे चन्द्रमाने अपने बाल-रूपको सूअरोंके जबड़ोंसे निकलता देख विस्मयसे उन सूअरोंकी जोड़ीकी ओर देखा। उन चार चाँदोंसे छपाकरकी छटामें मानो चार चाँद लग गए।

इस प्रकारकी घंटे भरकी पैंतरेबाज़ीके बाद सूअरोंने कुछ अधिक तेज़ी दिखाई। एक सूअरने बिगड़कर आक्रमण किया—टक्कर मारकर बग़ली-सी मारी ; पर दूसरे सूअरने बचकर वही पेच अपने आक्रमणकारीपर चलाया। तलवारें जैसे आपसमें टकराकर रुक जाती हैं, उसी प्रकार दोनोंके वार हुए। बस, बग़लमें दोनोंके दो-दो इंच गहरा और चार इंच लम्बा घाव हो गया, मानो हलके फालेसे किसीने चीरा लगाया हो। चर्बी मिला मांस लटक पड़ा। ख़ूनके फव्वारे-से चले ; पर सूअरोंने मैदान नहीं छोड़ा। लगभग चार बजेके दोनोंकी लड़ाई समाप्त हुई। लोहू-लुहान होकर वे हट गए और गंगाजीमें पानी पीनेके लिए घुस गए। एक घायल सूअर गंगाजीकी एक दहकी ओर गया। जैसे ही वह तनिक गहरेमें घुसा, वैसे ही शान्त जल एकदम फटा और एक भारी घड़ियालके ख़ूनी दाँतोंने सूअरको पकड़ा। स्टील-जैसे मज़बूत जबड़ोंमें बँधकर घायल सूअर जलमग्न हो गया। ह्वौ-२ और कीं-३ की ध्वनिसे सूअरकी टोली बिदककर पीछे हटी और फिर उसकी सहायताको बढ़ी। पर सूअरको सुरसरिने समूचा निगल लिया था और जलकी धरातलकी गति ऐसी प्रतीत होती थी, मानो वह अपने पाप-कर्मसे आँखें बचानेकी फ़िक्रमें हो।

बँटा हुआ झुण्ड फिर एक हो गया। रात भर जो लड़ाई चली थी, उससे उस झुण्डका विभाजन कोई दो घंटोंके लिए ही हुआ। प्रातःकाल होते-होते वह झुण्ड दँतैल सूअरके नेतृत्वमें गंगाजी पार करके चियासरसे तीन फ़र्लांग दूर पूर्वकी ओर गंगा-तटसे लगी करौंदोंकी घनी झाड़ियोंमें, सेमर वृक्षके समीप, आ लेटा। दँतैल उस सूअरियाके क़रीब पड़ा सो रहा था, जिसके ऊपर उसकी पिछली रात लड़ाई हुई थी। उसने घावपर मिट्टी लथेड़ ली थी और सारी देहको भी कीचड़से ढँक लिया था। दोनों टाँगोंके बीच अपनी थूथन रखे वह पड़ा था। बड़ी-बड़ी सफ़ेद काँपें शक्ति-स्वरूपा उसकी पहरेदारकी भाँति सतर्क सीधी खड़ी थीं। सेमरके पेड़पर लगे लाल फूलोंने जंगलमें मानो सैनोंसे सूचना दे दी कि उसकी छायामें युवती सूअरिया—ढड्डो—एक नए कुटुम्बकी आशामें वहाँ आकर टिकी थी। प्रातःकालसे कौओं, गलगलों और तोतोंने सेमरके फूलोंसे अपना नशा पिया और बसन्ता ( Barbet ) ने घंटों ढड्डोके सुहागपर ठौंक-ठौंककी ध्वनिसे ख़ुशी मनाई। गलगलने बिगड़कर बसन्तापर चोंच मारनेकी कोशिश की, तो ग़ोता-सा लगाकर शाखाके नीचेवाले अपने खोतेमें वह जा छिपा। शाम होते ही दँतैल ढड्डोके साथ उठा और सारी डार गंगाजल पान करके भोजनकी खोजमें झाउओंके झाड़ोंमें चली गई और अगले दिन सुबह फिर सेमरके पेड़के निकट आ गई।

× × ×

असाढ़के उतरते ही ढड्डोने एक नालेमें एक माँद-सी बनाई। सरकंडोंको काटकर उसने इस प्रकार सजाया कि उनकी जड़ोंकी ओरका भाग ज़मीनमें गड़ गया और एक फैली-सी छतरी नालेमें बन गई। नालेके ऊपरी भागमें पानीके सम्भावित मार्गसे हटकर सघन झाड़ियोंमें ढड्डोने प्रसूति-गृह बनाया। एक दिन ढड्डो अनमनी-सी लेटी रही और टोलीके साथ शामको भोजनकी तलाशमें नहीं गई। प्रातःकाल जब दँतैल प्रसूति-गृहकी ओर गया, तब ढड्डोने उसे तनिक दपटा। कनखियोंसे दँतैलने देखा कि ढड्डो छै घेंटोंकी माँ बनी पड़ी है और छै घेंटे उसके थनोंसे जुटे दूध पी रहे हैं। घेंटे तीन नर थे और तीन मादा। सुविधाके लिए नर बच्चोंको सट्टमोंगरा, खुड़मुड़ और कौंदिल कहा जायगा और मादा बच्चोंको ललकिया पिरनिया और झबिया। सबसे पहले ललकियाका जन्म हुआ था और उसके बाद सट्ट-मोंगराका। बादको क्रमशः पिरनिया, खुड़मुड़, झबिया और कौंदिलने यह दुनिया देखी। सब बच्चोंमें सट्टमोंगरा और ललकिया अपेक्षाकृत बड़े और मज़बूत थे। सबके ऊपर खड़ी लकीरें थीं और रंग था सबका काला। गोल-मटोल असहाय बच्चे ढड्डोके शरीरसे लगे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो किसी काली शिलामें किसीने छै गोलमटोल पत्थर लगा दिए हों।

दूध पिलाकर ढड्डोने अपने बच्चोंको सरकंडोंके नीचे

माँदमें अपनी थूथनसे कर दिया और क़रीब ही वह दूबकी जड़ें खोदकर खाने लगी। एक घंटेके बाद वह चारों ओर देखकर कि कहीं कोई गीदड़ या चरख तो नहीं है, गंगाजीकी ओर गई और पन्द्रह मिनटमें पानी पीकर तथा लोरकर लौट आई।

ढड्डोके ज़च्चा होनेके तीसरे ही दिन घंटों मुसलधार पानी गिरा और मेंहकी ख़ुशामद और कीड़ों-मकोड़ोंकी स्तुतिसे धरतीका दिल पसीजा। करुणा-रससे भूतल कंटकित हुआ। चार-पाँच दिनोंके भीतर ही घास और पौधोंके कल्ले नज़र आने लगे, मानो पावस-सेनाकी बर्छियोंकी नोंकें ग्रीष्म-ऋतुको बेधकर बाहर निकल आई हों। खेतोंमें बुवाई हो गई। नदियोंकी क्षीण धाराएँ पावस-सहयोगसे पीन-पयोधरा हो गईं। ढड्डोके लिए भी बारिशसे कम आराम न था। अपने बच्चोंको लुका-छिपाकर ले जाने और रखनेमें उसे कोई कठिनाई न रही, मानो सूअरोंकी नस्लकी रक्षाकी ख़ातिर ही बारिश प्रारम्भ की जाती है।

बारिशसे दो दिन पहले दँतैलकी टोली तीन भागोंमें बँट गई थी। कई अन्य दँतैल सूअरों और ढड्डोके दँतैलमें एक बार फिर कई सूअरियोंके कारण झगड़ा हुआ था और उस बड़ी डारके तीन भाग बन गए थे। अब ढड्डोके बच्चोंको मिलाकर दँतैलकी टोलीमें कुल दस सदस्य थे। सायंकाल ढड्डो अपने बच्चोंके साथ निकलती, तनिक-सा खटका होनेपर सतर्क होकर रुक जाती और सब घेंटे एकदम स्तब्ध होकर ज़मीनपर लग जाते। आत्म-रक्षाके मूल-सिद्धान्तों—अपने-आपको छिपानेकी कला—का पाठ उन्हें ढड्डो तो सिखाती ही ; पर इस प्रकार बचनेके तरीक़े उनके ख़ूनमें ही थे। जब जंगलका कोई खुला टुकड़ा आता, तब घेंटे बाहर आनेसे पहले झाड़ीके किनारे रुककर कीं-कीं करते और ढड्डोके आश्वासन दिलाने, घुड़-घुड़की ध्वनि करनेपर वे बाहर निकलते ; पर ढड्डोकी टाँगोंके बीच पेटके नीचे रहनेमें उन्हें अधिक अच्छा लगता। खेतमें पहुँचकर ढड्डो जड़ें खोदने और खानेमें लग जाती और घेंटे अपनी छोटी थूथनोंसे गीली मिट्टीको उँड़ेलते और मोथा घासकी जड़ें मिलनेपर उन्हें स्वादसे खाते। ललकिया और सट्टमोंगरा शुरूसे ही ढीठ थे। वे दोनों खुड़मुड़, काँदिल, पिरनिया और फतियाको परेशान करते। छुछी खेलते, एक-दूसरेके टुल्ले मारते और ख़ूब भाग-दौड़ करते।

एक दिन प्रातःकाल ढड्डो जंगलके एक गड्ढेमें लोर रही थी। बच्चोंको भी उसने पानीमें बुलानेकी चेष्टा की। कीं-२ करके सभी बच्चे उधर आए ; पर ललकिया और खुड़मुड़ गड्ढेकी ओर नहीं बढ़े और ढड्डोकी नज़रोंमें ही वे गड्ढेके ऊपर खेलते रहे। घेंटोंकी कीं-२ कीं-२ सुनकर अपनी माँदको जानेवाले दो चरखे कौतुहलवश उधर मुड़ पड़े। यदि माँदमें जानेसे पूर्व उन्हें कुछ खानेको मिल जाय, तो क्या कहने! लुककर जैसे ही एक झाड़ीसे ललकिया और खुड़मुड़पर उनकी नज़र पड़ी, वैसे उनके मुँहमें पानी भर आया। दो गदकारे घेंटे गड्ढेके पास खेल रहे थे ; पर क़रीब ही ढड्डो गड्ढेमें लोर रही थी। यदि उन्होंने घेंटोंपर हमला किया, तो कहीं ढड्डोकी टक्कर उनपर न पड़े। एक ही टक्करमें चरखोंकी आँतें बाहर निकल पड़ेंगी। पर इतना स्वादिष्ट और मुलायम मांस छोड़ा भी कैसे जाता। खुला हमला करनेमें काफ़ी जोखिम थी। चरखोंने इसलिए चालबाज़ीसे काम लिया। चक्कर काटकर एक चरखा गड्ढेके पूर्व ओरकी झाड़ीमें गया और दूसरा वहीं जमा रहा ; पर ढड्डोको गन्ध आ गई। वह हौं करके खड़ी हो गई और उसके बच्चे चीं-२ कीं-२ करते हुए उसके पेटके नीचे सिमट-सुकड़कर खड़े हो गए। ललकिया और सट्टमोंगरा ढड्डोकी अगली टाँगोंसे अपनी छोटी थूथनें निकालकर गन्ध लेनेकी कोशिश करते थे। ढड्डोकी देख-रेखमें बच्चोंकी टोली अपने शयन-स्थानकी ओर चली। बच्चे एक-दूसरेसे सटे, छोटी पूँछोंमें एक फन्दा-सा बनाए, बिसूरती सूरत लिए झाड़ियोंमें बढ़े। चरखोंने छिपकर उनका पीछा किया। ढड्डोके आराम-स्थानके पास एक दँतैल सूअर और अन्य कई सूअरोंको देखकर चरखोंके पैर आगे न पड़े। अकेली ढड्डोसे ही भिड़नेमें उनका साहस न होता था। इतने सूअरोंमें तो बघेरेकी भी हिम्मत न पड़ती कि वह आक्रमण करके किसीको पकड़ पाता। चरखे मन मसोसकर लौट गए ; पर उन्होंने ढड्डोके रहनेका स्थान देख लिया था, और कौन जाने कभी उनका दाँव लग जाय? वहाँसे एक फ़र्लांगकी दूरीपर ही चरखोंकी माँद थी।

सायंकालको चरखे निकले अपने शिकारपर और ढड्डो निकली अपने कुटुम्बके साथ अपने भोजनकी तलाश में। झाउओंकी झाड़ियोंमें घासकी मीठी जड़ें और कीड़े-

मकोड़े भी थे। उन्हींकी खोजमें ढड्डो कई दिनोंसे जा रही थी। चरखोंने पहलेसे ही नालेके उतारकी बग़लमें बैठकर घात लगाई थी। कुछ सूअर उस मार्गसे निकल गए। उनकी गन्ध पाकर और आहट सुनकर चरखोंने अपना मोर्चा जमा लिया था। जैसे ही ढड्डो नालेमें उतरी, वैसे ही ललकिया और सट्टमोंगरा नालेपर रुके और उनके पीछे खुड़मुड़ और पिरनिया ठिठके। बिजलीकी भाँति चरखोंने खुड़मुड़ और पिरनियापर अपने इस्पाती जबड़े कस दिए और उनको उठाकर वे करौंदेकी झाड़ीमें बढ़ गए। बच्चोंकी चीख़से ढड्डो ख़ौ-हौ-हु करके ऊपर भाग आई और क्रोधित सिंहनीकी भाँति पिरनिया और खुड़मुड़की चीत्कारकी ओर लपकी। पर जैसे ही वह करौंदेकी झाड़ीमें कूदी, वैसे ही उसके अन्य बच्चोंने डरकर रोना-धोना-सा मचाया। उसके पीछे भागकर वे चीं-२ कीं-२ करने लगे। काँदिल तो ललकिया और सट्टमोंगराके धक्केसे गिर गया और रोने लगा। क्रोधित ढड्डो अपने बिल्लाते बच्चोंकी ओर मुड़ी और लौटकर उनको सुरक्षित पाया। सट्टमोंगरा, ललकिया, काँदिल और झबिया चीख़ते हुए माँके पेटके नीचे खड़े हो गए। ढड्डोने फिर खुड़मुड़ और पिरनियाके अस्पष्ट चीत्कारकी ओर जानेकी कोशिश की ; पर उसके शेष बच्चोंकी आतंकपूर्ण कीं-चींने उसे आगे न बढ़ने दिया। हाँ, उसके दिलमें रह-रहकर हूक उठती और ख़ौ-हौ करके कनौती छिए वह आगे बढ़ती और फिर रुक जाती। शोरोग़ुल सुनकर दँतैल और दो-तीन सूअरियाँ उधर आए ; पर उस समय तक चरखे चार फ़र्लांगपर निकल चुके थे। एक नालेमें बैठकर उन्होंने पिरनिया और खुड़मुड़का स्वादिष्ट नरम मांस खाया और साथमें उनकी हड्डियाँ भी चबाईं।

उस रात ढड्डो बड़ी सतर्क रही और बड़ी कठिनाईसे वह अपने बच्चोंका डर दूर कर सकी। सुबह वह गुरगुज-पुरके पड़ोसकी झाड़ियोंमें जाकर रही। सारी बरसात उसने वहीं काटी। ज्वार, बाजरा और मकईके खेत लह-लहा रहे थे। उसके बच्चे अब ख़ूब दौड़ सकते थे। मक्काके खेतोंमें वे भुट्टे तोड़कर भी खाने लगे थे। उनकी थूथड़ियाँ भी काफ़ी मज़बूत हो गई थीं। सट्टमोंगरा उनमें सबसे ज़्यादा मज़बूत था। उसकी खड़ी धारियाँ भी अब फीकी-सी पड़ रही थीं। उधर ढड्डोकी एक साथिनने क़रीब ही चार बच्चे दिए थे।

शीतकालके प्रारम्भसे, जुआर और बाजरा कट जानेपर, ढड्डो अपने बच्चोंके साथ ईख और अरहरके खेतोंमें दिनमें सोती और रात पड़ते ही शकरकन्द और जुआरके झुओंसे जुआर खाती। अरहरके खेतमें अरहरके पेड़ोंको काटकर उसने और अन्य सूअरोंने एक गट्ठर-सा बनाया और ज़मीन खोदकर वे जाड़ेमें उसके नीचे सोते। अधपकी अरहर और शकरकन्द खाकर उनमें चर्बीका पुट और भी मोटा चढ़ गया था।

जाड़ोंके दिनोंमें एक दिन लगभग दस बजे दिनके जब ढड्डो, दँतैल, ललकिया, सट्टमोंगरा, झबिया और काँदिल अरहरके खेतमें पड़े सो रहे थे और एक सूअरिया अपने तीन-तीन महीनोंके बच्चोंको दूध पिला रही थी तथा कई अन्य पट्ठे सूअर और सूअरियाँ भी आँखें झपकाए पड़े थे कि खेतके एक ओरसे हो-होकी आवाज़ आई। अरहरके खेतमें आदमी घुस पड़े। साथमें उनके कुत्ते थे। बल्लमों और लाठियोंसे अरहरके पौधोंको झूरते वे आगे बढ़े। पहले ही खटकेपर दँतैल उठा और उसके साथ ढड्डो भी उठी। छोटे बच्चोंवाली सूअरिया पूर्वकी ओर बढ़ी। कुत्ते दँतैलपर टूटे। दँतैलने लौटकर हौ करके कुत्तोंको धमकाया। चार पाँच लेंडी कुत्ते तो डरकर पीछे हटे और भूँकने लगे ; पर दो शिकारी कुत्तोंने दँतैलको आ घेरा। एक कुत्ता आगे बढ़ा और एक पीछेसे उसकी ओर बढ़ा। दो बल्लमबाज़ भी उधर आ पहुँचे। वहाँ अखाड़ा-सा जम गया। दो आदमियोंको देखकर दँतैलने आगे बढ़नेकी ठानी। जैसे ही एक कुत्तेने उसकी पिछाईपर मुँह मारा, वैसे ही दँतैलने मुड़कर कुत्तेके वह काँपें मारीं कि उसकी आँतें निकल पड़ीं और काँय-काँय करके वह गिर पड़ा और छटपटाने लगा। दँतैलने बल्लमवालेको भी दस गज़पर देखा। क्रोधसे उसने अपनी पूँछ ऊपरको उठाई और हौ करके वह टूट पड़ा। बल्लमका वार ओछा पड़ा। पिछाईपर खुरसट मारकर वह पीछेको गई और बल्लमबाज़ धड़ामसे नीचे गिरा। उसकी दोनों जाँघोंमें अर्द्धचन्द्राकार काँपें घुस गईं। दूसरा कुत्ता भाग गया और दँतैल अरहरके खेतसे निकल भागा ; पर फौरन ही उसकी बग़लमें रायफ़लकी गोली पड़ी। कलामुंडी खाकर दँतैल गिर पड़ा। उसकी दस इंच लम्बी काँपें बेकार हो गईं। दँतैलकी लड़ाईसे छोटे बच्चोंवाली सूअरिया साफ़ निकल गई। ढड्डो,

सट्टमोंगरा, झबिया और काँदिल भी गंगामें कूदकर गंग-पुरके जंगलमें चले गए। बस, ललकिया खेतमें गिर गई। अभी वह आठ महीनेकी थी; पर जब उसने बचनेका कोई मौक़ा न पाया, तब वह आदमियोंपर टूट पड़ी। उसने एक टक्कर एक हाँका करनेवालेके दी, और वह धड़ामसे गिर पड़ा। इतनेमें एक कुत्ता उसपर आ चिपटा और एक दूसरे कुत्तेने उसका कान पकड़ना चाहा; पर ललकियाने मुँह मारकर कुत्तेकी टाँग पकड़ ली और उसको उसने बिल्कुल चबा डाला। बल्लमसे ललकियाका ख़ात्मा किया गया। कटियारी रियासतके आदमी दँतैल और ललकियाको लेकर अपने घर गए।

जब सट्टमोंगरा नौ महीनेका हुआ, तब एक दिन उसके जबड़ेमें दर्द-सा हुआ। थोड़ी सूजन भी आई। काँदिलकी भी यही हालत हुई। दो दिन तक वे अनमने-से रहे। उनकी काँपें (tusks) निकल रही थीं। आदमीके मूँछें, हिरनके सींग और सूअरोंके काँपें तरुणावस्थाके आगमनके सूचक होते हैं। सट्टमोंगराकी उठती जवानीके चिह्न भी प्रकट हो गए थे। टोलीकी गन्ध पहचान लेना, आदमी तथा अपने अन्य दुश्मनोंकी गन्ध और उनकी चालोंको समझना, ढड्डो तथा टोलीसे अधिक सम्बन्ध न रखना और स्वावलम्बनके पथपर अग्रसर होना—ये सब बातें सट्टमोंगरामें आ रही थीं। ढड्डोको तो अब अपने बच्चोंकी ओरसे मोह टोलीके नाते था। माँकी हैसियतसे तो उसे अपनी भावी सन्तानका ख़याल होनेको था।

असाढ़के आनेपर ढड्डोने पाँच बच्चे और दिए। सट्टमोंगराने एक बार अपनी माँकी ओर जानेकी कोशिश की, जब वह खड़ी-खड़ी घेंटोंको दूध पिला रही थी। ढड्डोकी एक ही घुड़कीसे सट्टमोंगरा वहाँसे हट गया। फिर तो वह अन्य सूअरियोंसे ही अधिक मिला-जुला रहता। कुआरके महीनेमें उसने अपनी टोलीकी सहयोग-वृत्तिका एक ज्वलन्त उदाहरण दिया। एक दिन ढड्डो अपने बच्चेके साथ पानी पीने गई। जैसे ही वह गंगाजीके किनारे डाँडेके नीचे उतरी कि एक नीलगाय एकदम ऊपरसे कूदकर भागी। ढड्डो बिदककर गंगाजीके तटकी ओर भागी और घेंटे जंगलकी ओर लौट पड़े। झाड़ीमें करीब ही दो सियार बैठे थे। लपककर एक सियारने एक घेंटेको पकड़ लिया। घेंटेकी चीत्कार सुनकर सट्टमोंगरा और ढड्डो उधर दौड़ पड़े। सट्टमोंगरा करीब ही एक झाड़ीकी ओटमें दूबकी जड़ खोदकर खा रहा था। ढड्डोके आनेसे पहले ही सट्टमोंगराने सियारके वह टक्कर दी और अपनी काँपको इस ढंगसे चलाया कि सियार ऊपरको फिंक गया और नीचे गिरते ही सट्टमोंगराने उसे चबा डाला। दूसरा गीदड़ अपनी जान बचाकर भागा। ढड्डो भी आई और मरे गीदड़को मारकर शाहमदार बनी। घेंटेको अपनी थूथनके सहारे ढड्डो पानीपर ले गई।

× × ×

यों तो जबसे सट्टमोंगराकी काँपोंने जबड़ोंसे चन्द्रमाको झाँककर देखा, तभीसे सट्टमोंगराकी मर्दुमीका प्रदर्शन हुआ था; पर उस संघर्षमय जीवनके तीन वर्षमें सट्टमोंगराको काफ़ी अनुभव हो चुका था। पड़ोसके खेतोंकी फ़स्ल, जंगलके रास्ते और गंगपुर और छोछपुरकी कटरीके छिपनेके स्थान उसे सब मालूम थे। दो-चार बार किसी सूअरियाको लेकर उसका अपने बराबरके सूअरसे झगड़ा भी हो चुका था। काँदिल तो सट्टमोंगरासे काँपता था, इसलिए वह उससे कतराया ही रहता। चियासर और गंगपुरकी कटरीमें उसकी उठानका कोई सूअर न था। जगदीशपुरकी कटरीसे लगाकर गंगपुरीकी कटरी और राम-गंगासे लगाकर काली नदी तक सट्टमोंगराकी जवानीकी धूम थी। कोई सवाया सूअर उसके सामने टिकता न था खानेवाले भी सट्टमोंगराकी तलाशमें थे; पर सट्टमोंगरा फ़स्लके दिनोंमें जंगलमें न मिलता। मक्काकी फ़स्लमें वह झाउओंकी झाड़ीमें बैठ रहता। किसी एक स्थानमें भी वह न रहता। चियासरके जंगलमें शिकारियोंके अनेक

कुत्तोंको उसने तोड़ डाला था, इसलिए शिकारी उसके मारनेकी फ़िक्रमें थे।

ठाकुर नारायणसिंह दहलिया गाँवके क़रीब रहते थे। वे सूअरके नामी शिकारी थे ; पर उनके हाथ भी सट्टमोंगरा नहीं लगता था। ठाकुर नारायणसिंहने सट्टमोंगराकी खोजमें बहुत-से आदमी लगा दिए थे। एक दिन दोपहरमें एक आदमीने ख़बर दी कि सट्टमोंगरा कुंडा-किनारे एक झाऊके नीचे पड़ा सो रहा है। ठाकुर नारायणसिंह बन्दूक़ उठाकर फ़ौरन तैयार हुए और कुंडाके किनारे पहुँचे। आदमीने कहा था कि वह पाँच गज़की दूरीसे सूअरको दिखा देगा। बस, घात लगाए, बिना आहटके, जैसे ही नारायणसिंह उस आदमीके साथ पहुँचे और उस आदमीने उँगलीके इशारेसे बताया—देखो, वह बैठा है सूअर कि एक हौंकी आवाज़के साथ सट्टमोंगराने उनपर आक्रमण कर दिया। ठाकुर नारायणसिंहकी टाँगें आसमानमें दिखाई दीं। सट्टमोंगरा यह गया और वह गया। दो मील दूर जाकर उसने दम लिया। ठाकुर नारायणसिंह हँसकर खड़े हुए। जाँघमें पट्टी बाँधी और लँगड़ाते घर आए।

यों तो सट्टमोंगरा एक टोलीका नेता था ; पर होली-दिवालीके क़रीब वह टोलीके साथ ही विशेष रक्षा करता था। वह इतना सताया गया था और उसपर इतनी गोलियाँ चली थीं कि आदमियोंकी सूरत और गन्धसे वह चौकन्ना रहता। कटियारी रियासतके सूअरोंके नामी शिकारी दफ़ेदारने बल्लमसे सट्टमोंगराको मारनेका बीड़ा उठाया। अस्तबलसे तेज़ घोड़ा लिया, जो सूअरके शिकारपर सधा हुआ था। साथमें हथिनी भी थी, जिसपर से बैठे-बैठे शिकार खेल जा सकता था। हथिनीको इसलिए नहीं लिया गया था कि उससे अच्छा शिकार होगा, वरन् इसलिए कि थोड़ी दूरके सफ़रमें हाथी ठीक रहता है और हाथीसे दूर तक देखा जा सकता है।

चियासर जंगलके क़रीब हथिनी खड़ी की गई। सूअरोंके सम्भावित स्थानोंपर कई शिकारी खड़े किए गए और जंगलका हाँका किया गया। एक शिकारीने बैठकर देखा, तो सट्टमोंगरा हथिनीकी ओर निकलनेको खड़ा था। हथिनीको देखकर वह ठिठक गया था और पीछे लौटने ही वाला था कि पीछेसे चार नम्बरका छर्रा मज़ल लोडरसे उसपर चला दिया। आधे छर्रे सट्टमोंगराकी पिछाईपर लगे और क्रोधसे वह भन्ना गया। सूअर स्वभावसे ही सूरमा होता है। जब वह बिगड़ता है, तब वह किसीसे भी लड़नेको तैयार हो जाता है। बस, सट्टमोंगरा हौं-हौं करके हथिनीपर पिल पड़ा। एक टक्कर उसने उसकी अगली टाँगोंमें मारी। हथिनीके तनिक खुरसट आई। चट्टानमें चोंच मारकर कौआ चट्टानका कुछ नहीं बिगड़ पाता। सट्ट-मोंगराकी टक्करसे हथिनीका भी कुछ न बिगड़ा ; पर हथिनीको आश्चर्य ज़रूर हुआ, और उस दिनसे हथिनी सूअरको देखकर घबराने लगी। यदि कहीं हथिनीकी ठोकर लग जाती, या वह उसपर पैर रख पाती, तो सट्टमोंगरा मक्खीकी भाँति पिस जाता। सट्टमोंगराकी टक्करसे हथिनी घबराई और हथिनीकी पीठपर फ़ायर न हो सका। सट्टमोंगरा मैदानकी ओरसे काली नदीकी ओर भागा। दफ़ेदारने उसके पीछे घोड़ा डाला। सट्टमोंगराने एक नालेकी शरण ली। दफ़ेदारने सूअरकी अगाई कटनेकी खातिर नाला पार करके एक आमके पास जाकर घोड़ा रोका कि कहीं टेढ़े-मेढ़े नालेके बीचमें से ही सट्ट-मोंगरा न निकल पड़े। यदि नालेके बीचसे सूअर निकल पड़ता, तो फिर नालेके अख़ीरसे उसे दो फर्लांगका दाव (start) काली नदीकी झाड़ियोंके लिए मिल जाता। ऐसा होनेसे उसके भाग जानेकी भी आशंका थी। दफ़ेदारने इसलिए नाकेबन्दी कर ली थी। दफ़ेदारने जैसे ही घोड़ा रोका कि सौ गज़पर समकोण बनाता हुआ सट्टमोंगरा अपनी लम्बी काँपें निकाले और भारी शरीरको लिए नालेसे निकला। नालेसे जैसे ही पचास गज़की दूरपर वह आया, वैसे दफ़ेदारने घोड़ेकी रास उधर की। घोड़ेको अपनी ओर आता देख सट्टमोंगरा हौं करके रुका

और फिर नालेकी ओर मुड़ा। दफ़ेदारकी चालको उसने बेकार कर दिया। सट्टमोंगरा कायर नहीं था। कोई भी सूअर कायर नहीं होता; पर बहादुरीके मानी नासमझी नहीं हैं। दुनियामें कोरी सचाई और ईमानदारीके विशेष मानी नहीं, यदि सचाई और ईमानदारीके साथ कार्यपटुता और क्रियात्मक कल्पनाशक्ति न हो। गधेकी ईमानदारी और सचाईमें किसको सन्देह है? दीवारकी तपस्या कौन कम है; पर उनमें कौशल और प्रेरक बुद्धि नहीं। सट्टमोंगरा भी कम बहादुर न था; पर जान-बूझकर कुएँमें गिरना मूर्खता है, इसलिए बिना अवसरके बल्लमबाजसे भिड़ना उसने ठीक नहीं समझा। वह नालेमें लौट पड़ा। दफ़ेदारने भी घोड़ा उसके पीछे डाला। नालेका एक चक्कर काटकर सट्टमोंगरा ऊपर निकलकर चियासरके जंगलकी ओर भागा; पर उसे आदमियोंकी ताज़ा गन्ध उधर आई, और वह लौट पड़ा। नालेके किनारे वह लौटकर आया ही था कि दफ़ेदारका घोड़ा ऊपर चढ़ता दिखाई दिया। बस, सट्टमोंगराकी आँखोंमें क्रोधकी आग भड़कने लगी। बचनेका कोई अवसर न देख वह हौ-खौ करके घोड़ेपर टूट पड़ा। घोड़ा अभी नालेके ऊपर चढ़ भी न पाया था कि सट्टमोंगराने बाईं ओरसे घोड़ेकी अगली टाँगपर वह काँप मारी कि टाँग पेटके जुड़ावसे टूट गई। दफ़ेदारकी बल्लम भी चली; पर सट्टमोंगराकी पीठमें वह ऊपर ही लगी। चोट खाकर सट्टमोंगराने एक मुँह दफ़ेदारकी पिंडलीमें मारा। फिर घोड़ेके पुट्ठेसे मांस नोंचकर वह नालेमें चला गया। बल्लम आक्रमणके प्रहार और ओछे वारसे ज़मीनपर जा गिरी। घोड़ा तो बेकार हो गया और दफ़ेदार मुश्किलसे चियासर तक पहुँचे। ख़ैर यह हुई कि सट्टमोंगराका दूसरा वार घोड़ेके पुट्ठेपर पड़ा। वार तो किया था उसने दफ़ेदारके पेटपर; पर घोड़ेके घायल होते ही और हाथसे बल्लम छूट जानेसे दफ़ेदारने घोड़ेके दूसरी ओर कूदकर बल्लम उठानेका प्रयास किया था। यदि सूअर डटा रहता, तो बल्लम उठानेका मौक़ा दफ़ेदारको शायद ही मिल पाता। सट्टमोंगरा अपने शत्रुओंको परास्त करके काली नदीके झाउओंमें जा छिपा। उसके बाद बहुत दिनों तक सट्टमोंगरा काली नदीके किनारे रहा। आमोंकी फ़स्लके दिनोंमें वह चियासरके बग़ीचोंमें रातको गिरे पके आमोंको खाता। एक रात चियासरके धानुकके सूअरको, जो सूअरियोंके साथ आम या आमकी गुठलियाँ खाने आया था, उसने बुरी तरह घायल किया।

× × ×

सट्टमोंगराकी शक्तिके साथ उसके शत्रु भी बढ़े। किसान उससे परेशान थे। शकरकन्दके खेतोंमें तो वह इतनी बुरी तरह जुटता कि हुल्कारनेसे भी नहीं भागता। कुत्तोंका उसे डर नहीं था। झोंपड़ी या टाँड़से जब रखवाला उसे हुल्कारता, तब वह नाराज़ होकर ज़रा रुकता और हौ करके तनिक हटता, मानो वह चैलेंज देता कि जिसमें दम हो, वह आगे बढ़े। बानर-विभीषिका बच्चोंके लिए हो सकती है। फिर वह सतर्क बना क्यारियोंको उँड़ेल-उँड़ेलकर शकरकन्द खाता रहता। पर आत्मविश्वासकी भी कोई सीमा होती है। चालाकी भी हमेशा नहीं चलती। समय आनेपर हिरन भी चौकड़ी भरना भूल जाता है। भगवान कृष्ण तक अपने पैरके कमलको एक दिन ऊँचा करके लेटे थे। उनका समय आ गया था। फिर सट्टमोंगरा तो एक सूअर ही था। अपनी अकड़ और चालाकीमें उसने एक दूरके शकरकन्दके खेतपर प्रति रात जाना शुरू किया। किसानने दफ़ेदारको ख़बर दी कि सट्टमोंगरा हर रात उसके खेतमें शकरकन्द खाने आता है। दफ़ेदार और अन्य शिकारी तो सट्टमोंगराकी टोहमें थे ही। फ़ौरन ही दो आदमी टोपीदार बन्दूक़ भरकर चल दिए।

रातके दो बजेके क़रीब सट्टमोंगरा शकरकन्दके खेतमें आया। तनिक परिस्थितिका अवलोकन किया और फिर क्यारियोंको उँड़ेलनेमें लगा। दफ़ेदारने आँखें फाड़कर

देखा, तो सूअरकी झाईं मारती थी। अन्धाधुन्ध फ़ायर करनेमें डर यह था कि गोली ओछी पड़नेपर सट्टमोंगराने आक्रमण कर दिया, तो फिर वह अँधेरेमें दोनों शिकारियोंको चबाकर धर सकता था। कृष्णपक्षकी त्रयोदशी थी, इसलिए प्रातःकालके समय चन्द्रमा निकलनेवाला था।

जैसे चन्द्रमा निकला, वैसे ही सट्टमोंगराकी छटा खेतमें खिल गई। मेघवर्ण शिला क्यारियोंके उँड़ेलमें व्यस्त थी और शकरकन्दें उसके पेटमें चरड़ करके जा रही थीं। अगले कखनेका निशान बाँधकर दोनों नालोंके ग्राफ़ छोड़ दिए गए। शकरकन्दकी बेलके कारण धोखा हुआ। निशाना पेटपर पड़ा। सट्टमोंगरा एक ओर झुका और क्रोधसे चिल्लाया। फिर उसने अपनी माँदका रास्ता लिया। चन्द्रमा उसकी काँपोंपर अब भी विहँस रहा था।

ऊषा काल था। प्रभात होते ही चारों ओर चहल-पहल मच गई। सट्टमोंगरा लहू-लहान भागा चला जा रहा था। एक गाँवके क़रीब होकर निकला, तो गाँवके कुत्ते उसपर टूटे। सट्टमोंगराकी गति धीमी थी; पर उसके शौर्यमें तनिक भी अन्तर नहीं पड़ा था। कुत्तोंकी परवाह न कर वह बढ़ता ही रहा; पर दो कुत्तोंने उसपर पीछेसे वार किया। बस, फिर तो सट्टमोंगरा पिल पड़ा। एकको पकड़कर उसने पिछाड़ीसे चबचबाना शुरू किया और उसकी थूथनी तक चबा डाली। एक दूसरे कुत्तेको पाँच गज़ आगे फेंक दिया और उसकी कमर तोड़ दी। कम्बख़्तीकी मारी एक भैंस सिर उठाकर उधर आई। समझा होगा कि कोई बकरी है; पर सट्टमोंगराने भैंसपर वह वार किया कि उसकी अगली टाँग ऐसे टूट गई, जैसे कोई मूलीको तोड़ देता है। एक काश्तकारकी (१२५) की भैंस बेकार हो गई। सट्टमोंगरा रौद्र रूप धारण किए मर-मिटनेको तैयार था। उसने समझ लिया था कि उसके बचनेकी कोई सूरत नहीं, इसलिए सबसे बढ़िया बचाव आक्रमण था। जो सामने पड़े, जो उससे छेड़-खानी करे और उसपर निगाह करे, उसीपर उसे पिल पड़ना था।

दफ़ेदार खोजपर थे। भैंसका मालिक और मांसके शौक़ीन भाले लेकर उसके पीछे पड़े; पर उसके निकट जानेका साहस किसीको न होता था। अरहरके एक खेतमें होकर वह निकला कि सामने रास्तेमें उसे हरपालपुरका पोस्टमैन मिला। यमदूत सट्टमोंगराके शरीरमें प्रवेश कर चुका था; पर वह यमदूतसे भी लड़ रहा था। पोस्टमैनपर वह पिल पड़ा और चारों ख़ाने चित्त उसे पलट दिया और उसके थैलेको चबा डाला, मानो मौतका वारण्ट उसीमें था। आगे बढ़कर वह झाऊमें जा बैठा। लोग जमा हो गए। दफ़ेदारके आनेपर कई बल्लमवाले भी आए। झाऊमें फ़ायर किया गया। सट्टमोंगरा एकदम उसमें से निकला और लोगोंपर टूट पड़ा। पहले दो फ़ायर ख़ाली गए। तीसरा पीठमें लगा; पर सँभलकर वह खड़ा हुआ। एक आदमीको उसने दे मारा। इतनेमें ही छै-सात भालोंने उसे बेकाबू कर दिया। प्राण-वेदनामें वह क्रोधकी मूर्ति बना चिल्लाता रहा। वह रोना किसी कायरका रोना न था, वरन एक शूरमाकी अन्तिम घड़ियाँ थीं। सट्टमोंगरा अपने चीत्कारमें मानो कहता था—'बोटी-बोटी कटि मरै औ तऊ न छाँड़ै खेत, सूरा सोई।'

आठ-दस आदमी लादकर उसे ले गए। एक लक्कड़पर टँगे उसकी थूथड़ी ऊपर आकाशकी ओर थी, मानो उसकी ग्यारह इंची काँपें आकाशमें चन्द्रमाको खोज रही हों।

# अन्धक-वृष्णि-संघका इतिहास

श्री रामधारीसिंह, एम० ए०

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें अन्धक-वृष्णियों तथा उनकी अन्य मित्र जातियोंके राज्य-संघका, जो यादव-वंशीय क्षत्रियोंकी शाखाएँ थीं, महत्वपूर्ण स्थान है। मालवा, मध्य-भारत और राजपूतानेके मूल निवासियोंमें आर्य-सभ्यताको प्रधान बनानेका सारा श्रेय इन्हींको है। यह उन्हींके महान परिश्रमका परिणाम है कि आर्य-संस्कृतिका प्रकाश दक्षिण तथा पश्चिम तक फैल गया। सम्भवतः प्राचीनकालमें राजपूताना, मालवा, गुजरात और सुदूर दक्षिण तक उनकी प्रधानता थी।[1] उनकी सफलता तथा उत्कर्षके सम्बन्धमें पता चलता है कि 'उनके अन्दर धार्मिक नेता, वीर सेनापति तथा बड़े-बड़े व्यापारी थे।'[2] यदि हम उनकी आर्य-संस्कृतिके प्रति की गई सेवाओंपर ध्यान न दें, तो भी उनके राज्य-संघका एक ही व्यक्ति—श्रीकृष्ण—उनको अमरत्व प्रदान करनेके लिए पर्याप्त है। भारतवर्षको अन्धकारके गर्त्तसे निकालकर यशपूर्ण पदपर पहुँचानेवाली महान आत्माओंमें श्रीकृष्णका स्थान सर्वोच्च है। हिन्दू-समाज इस महान दार्शनिक तथा धार्मिक गुरुको ईश्वरका अवतार मानकर पूजा करता है। आज भी श्रीकृष्णके बहुमूल्य उपदेशोंकी पुण्य-स्मृति-स्वरूप पवित्र गीता विश्व-सभ्यता-कोषमें भारतवर्ष द्वारा समर्पित अमूल्य रत्न है। अतः इस महान विभूतिको प्रादुर्भूत करनेवाले संघका इतिहास जानना हमारे लिए गौरवकी वस्तु है।

### उत्पत्ति

यदुवंशियोंकी उत्पत्तिका विषय बिलकुल अन्धकारमें है। इस सम्बन्धमें महाभारत, हरिवंश तथा भागवत पुराणसे सहायता ली जा सकती है। किन्तु हमें ज्ञात है कि हरिवंश तथा भागवत पुराण अपेक्षाकृत बहुत बादकी कृतियाँ हैं। यही बात महाभारतमें वर्णित यादवोंके वंशवृक्षमें भी लागू है। सम्भवतः इन ग्रन्थोंके निर्माता उस कालके व्यक्ति थे, जब कि लोग प्रजातन्त्र शासन-प्रणालीसे बिलकुल अनभिज्ञ थे और केवल राजतन्त्र शासन-प्रणालीसे ही परिचित थे। अतएव उन्होंने अपने परम्परागत लेखोंमें यादवोंकी शासन-प्रणालीको राजतन्त्रात्मक माना है। इन लेखोंमें यदुवंशियोंका सम्बन्ध ब्रह्मा अथवा प्रजापतिसे दिखलाया गया है। पुराणोंसे पता चलता है कि कुरुवंशी यदु यादवोंके आदि-पुरुष थे और अन्धक-वृष्णि, कुकुर, भोज, सातवाहन आदि कुल उन्हींके वंशज थे।[3]

### व्रात्य

महाभारत-कालमें यदुवंशी शुद्ध क्षत्रिय नहीं समझे जाते थे। श्रीकृष्णके उपदेशोंके अनुयायी होनेके कारण अर्जुनको भूरिश्रवाने बड़ी फटकारें सुनाई थीं। उसका कहना था कि महाभारतके युद्धमें अर्जुनके सभी पापकर्म यदुवंशियोंकी संगतिके प्रभाव ही से हुए। वह यदुवंशियोंको स्वभावसे दुष्ट तथा कुकर्मी ही नहीं, प्रत्युत व्रात्य भी कहा करता था।[4] यहाँपर 'व्रात्य' शब्दके अर्थपर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। मनुके अनुसार 'व्रात्य' उन्हें कहना चाहिए, जो द्विजों द्वारा स्वजातीय स्त्रियोंसे पैदा होकर अपने कर्त्तव्योंका पालन न करनेके कारण सावित्रीसे च्युत कर दिए जाते थे।[5] इससे स्पष्ट है कि वे आर्य, जो ब्राह्मणों द्वारा निश्चित कर्मकाण्डोंको नहीं करते थे, 'व्रात्य' समझे जाते थे। पं० हरिप्रसाद शास्त्रीने अथर्ववेदमें प्रयुक्त 'व्रात्य' शब्दकी व्याख्या यों की है—'व्रात्य आर्य-सन्तान होते हुए भी वैदिक संसारके बाहर थे। वे वीर थे और अपने ढोरोंके साथ झुण्डमें भ्रमणशील जीवन व्यतीत करते थे। वे वैदिक आर्योंसे युद्ध किया करते थे। वैदिक समाजके सभी अधिकार इन्हें प्राप्त थे।'[6] पं० शास्त्री द्वारा

---

१. रंगाचार्य : 'Pre-Muslim India, Vedic India', पृ० ३०५

२. ,, ,, ,, ,, पृ० २५१।

३. वैद्य : 'Epic India', पृष्ठ ४९५।

४. महाभारत, द्रोणपर्व, अध्याय १४१, श्लोक १५।

५. मनुस्मृति, अध्याय १०, श्लोक २०।

६. J. A. S. B. Annual Address : New Series, Vol. XVII, 1921 नं० २।

वर्णित सभी विशेषताएँ यादवोंमें उपस्थित थीं। अतएव स्पष्ट है कि यादव लोग आर्य-सन्तान थे।

असुर

पुराणोंमें यादवोंको असुर लिखा गया है। इसका कारण भी स्पष्ट है। उनके वैवाहिक नियम बहुत ढीले थे। उनमें फुफेरी बहनसे भी शादी कर लेनेकी प्रथा प्रचलित थी। वे अनार्योंकी काली-कलूटी लड़कियोंसे भी विवाह कर लेनेमें नहीं हिचकते थे। सम्भवतः श्रीकृष्णका श्याम रंग भी इसीका परिणाम रहा हो। इस प्रकार वैवाहिक प्रथा तथा धार्मिक सिद्धान्तोंमें असामंजस्य होनेके कारण वे आर्योंके इतने घृणाके पात्र थे कि उनको असुर कहकर सम्बोधित करनेमें तनिक भी संकोच नहीं किया गया है।

सब आर्य भारतमें एक ही साथ नहीं आए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके पहले जत्थेने पंजाब तथा गंगाकी ऊपरी घाटीमें अपना निवास-स्थान बनाया। कदाचित् किसी बादवाले जत्थेमें यादवोंने भारतमें प्रवेश किया हो और यमुनाकी घाटी, मालवा, ग्वालियर, कच्छ, काठियावाड़ आदि पश्चिमीय प्रदेशोंमें अधिकार स्थापित कर लिया हो। ऋग्वेदसे भी कुछ ऐसी ही ध्वनि निकलती है। ऋग्वेदमें यादवों और तुर्वशोंके किसी दूरस्थ देशसे आने और पार्श्वस अथवा फ़ारस-निवासियोंसे यदुके घनिष्ठ सम्बन्धका विवरण पाया जाता है।[७]

वेदोंमें यादव

ऋग्वेदमें केवल एक स्थानपर यादवोंका वर्णन द्रुह्यों, अणुओं तथा पुरुओंके साथ हुआ है।[८] इसके अतिरिक्त प्रायः सभी स्थानोंपर उनका नाम तुर्वशोंके साथ-साथ आया है।[९] मालूम होता है कि ये दोनों जातियाँ पास-पास निवास करती थीं। इन दोनों जातियोंके विनाशके लिए वशिष्ठ तथा अन्य ऋषियोंने इन्द्रसे प्रार्थना की है।[१०] किन्तु बादमें कुरु तथा अंगिरसने सहानुभूतिपूर्वक यादवों तथा तुर्वशोंका स्पष्ट वर्णन किया है। उपर्युक्त बातोंसे हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि पहले जत्थेवाले आर्य इनसे घृणा करते थे और द्वेष-भाव रखते थे; पर जब स्थायी रूपसे वे यहाँके निवासी हो गए, तो उन लोगोंने इनके साथ सद्व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। ऋग्वेदमें विभिन्न स्थलोंपर यादवोंका बार-बार वर्णन उस कालमें इनके महत्वपूर्ण पदका परिचायक है।

ऐतरेय ब्राह्मणसे प्रकट होता है कि सतवत-गणके अन्दर भौज्य-शासन-विधान प्रचलित था।[११] डाक्टर जायसवालने अपनी 'हिन्दू-पालिटी' में सतवत-गण तथा यादव-गणको एक ही माना है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक प्रमाणों द्वारा भौज्य-शासन-विधानको गणतन्त्रात्मक सिद्ध किया है।[१२] महाभारत-कालमें भोजगण यादवोंकी एक शाखा मात्र थे। बहुत सम्भव है कि सतवतोंका ही नाम भौज्य-शासन-प्रणालीके आधारपर भोज पड़ गया हो। ऐतरेय ब्राह्मण यहाँ तक बतलाता है कि सतवत लोग कुरु-पांचाल-क्षेत्रसे बाहर दक्षिणमें आबाद थे।[१३] इससे प्रतीत होता है कि सम्भवतः सतवत लोग यादवोंकी एक शाखा थे।

अष्टाध्यायीमें अन्धक-वृष्णि-संघ

अन्धक-वृष्णि-संघका वर्णन पाणिनिने अपनी 'अष्टाध्यायी' में भी किया है। उनके अनुसार अन्धक-वृष्णि-संघमें दो राजन्य होते थे।[१४] ऐसा प्रतीत होता है कि यह संघ दो वर्गोंका सम्मिश्रण था, जिसमें एक-एक राजन्य एक-एक वर्गका प्रतिनिधि था। इन्हीं दोनों राजन्योंके कन्धोंपर संघके शासनका भार लदा था।[१५]

महाभारतमें अन्धक-वृष्णि-संघ

यादवोंके इतिहासका सर्वश्रेष्ठ साधन महाभारत है। विद्वानोंके मतानुसार महाभारतका रचना-काल ५०० ई० पूर्वसे ४०० ई० पश्चात् तक है।[१६] किन्तु महाभारतमें

---

७. ऋग्वेद, मंडल १, सूक्त ३६, ऋचा १८; मंडल ६, सूक्त ४५, ऋचा १; मंडल ८, सूक्त ६, ऋचा ४६।

८. वैदिक इंडेक्स (Vedic Index), भाग २, पृष्ठ १४५।

९. ऋग्वेद १ : ३६ : १८; १ : ५४ : ६; १ : १७४ : ९; ४ : ३० : ७; ५ : ३१ : ८;, ६ : ४५ : १; ८ : ४ : ७; ८ : ७ : १८; ८ : १ : १४; ८ : १० : ५; ९ : ६१ : २; १० : ४९ : ८।

१०. वैद्य : 'महाभारत-मीमांसा', पृष्ठ १४५।

११. ऐतरेय ब्राह्मण, ८:१४।

१२. डा० जायसवाल : 'हिन्दू-पालिटी', ९१-९२।

१३. रायचौधरी : 'पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़् ऐंशंट इंडिया', पृष्ठ ११८।

१४. पाणिनि : 'अष्टाध्यायी', ६ : २ : ३४।

१५. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ८१।

१६. मैकडानेल : 'ए हिस्ट्री आफ़् संस्कृत लिटरेचर', पृष्ठ २८६-८७।

यादव-सम्बन्धी वर्णित घटनाएँ बहुत पहले घटी थीं। श्रीकृष्ण तथा कृतवर्मन आदि इस वंशके योद्धाओंने महाभारत-युद्धमें सक्रिय भाग लिया था। इस प्रकार यदि ये वीर महाभारत-युद्धमें उपस्थित थे, तो उनके सम्बन्धी तथा साथी तीसरी या चौथी शताब्दीमें कदापि न रहे होंगे।

### श्रीकृष्णका जीवन

महाभारतमें श्रीकृष्णका जीवन-वृत्तान्त ही अन्धक-वृष्णि-संघका इतिहास है। उनका जीवन-वृत्तान्त बहुत-सी पौराणिक कथाओंसे परिवेष्ठित है, जिससे ऐतिहासिक सत्यका पता लगाना कुछ कठिन तो अवश्य है; पर असम्भव नहीं है। महाभारतके सभापर्वमें श्रीकृष्णने स्वयं अपने जीवनपर कुछ प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि कुछ वर्ष पूर्व कंसने मथुरासे यादवोंको भगा दिया और जरासंधसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापितकर शक्ति-सम्पन्न हो अपने स्वजनों तकको कष्ट देने लगा। फलतः श्रीकृष्ण कंस तथा उसके भाई सुनामके वधको न्यायसंगत बतलाते हैं। इसके पश्चात् उन्होंने अपने ऊपर जरासंधके आक्रमण, उसकी पराजय तथा मथुरामें अपने प्रभुत्व और सुखमय शासनका भी वर्णन किया है। किन्तु थोड़े ही दिनों पश्चात् जरासंधके आक्रमणकी पुनरावृत्तिके कारण श्रीकृष्णको मथुरासे रैवतक पर्वतके समीपस्थ कुशस्थली नामक रमणीय नगरमें भाग जाना पड़ा। किंवदन्तियोंके अनुसार कुशस्थली अनार्योंकी राजधानी थी। यहाँका तत्कालीन शासक गन्धर्व-देशमें संगीत-विद्याका अध्ययन करनेके लिए गया था। अतएव इस प्रान्तको अपने अधिकारमें कर लेनेमें उनको किसी बाधाका सामना नहीं करना पड़ा। गन्धर्व-देशसे लौटनेपर भी उसने अपने राज्यको पुनः प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत उसने अपनी पुत्रीका विवाह बलरामके साथ कर दिया। वहाँ उन लोगोंने कुशस्थलीका नाम द्वारका या द्वारावती रखकर ऐसे दृढ़ दुर्गकी रचना की, जिसकी रक्षा स्त्रियाँ तक कर सकती थीं। उस नगरमें यद्यपि वे अठारह सहस्र स्वजनोंके साथ सुखमय जीवन व्यतीत करते थे, तथापि मथुरा लौटनेके लिए वे सदा लालायित रहते थे।

श्रीमद्भागवत् पुराण तथा हरिवंशमें कृष्ण-चरित्र, कंससे उनका सम्बन्ध, पालन-पोषण, बाल-चरित, कंस-वध आदिका विशद वर्णन है, जिससे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। इनमें से एक कथा विशेष उल्लेखनीय है। कृष्ण और कालिय नागकी किंवदन्ती केवल पौराणिक कथा ही नहीं है, प्रत्युत इसमें ऐतिहासिक सत्यकी झलक भी है। कालिय नाग मनुष्य था और सम्भवतः वहाँके मूल नागवंशी निवासियोंका नेता था। वह आर्योंका शत्रु था। वह यमुना-तटके अरण्यमें छिप-छिपकर आर्योंपर आक्रमण करता, उनके पशुओंको चुरा ले जाता, जिसे पाता उसे मार डालता तथा सभी सम्भव उपायोंसे उनको तंग किया करता था। नागोंके इस अत्याचारी शासकको श्रीकृष्णने मार डाला।

किन्तु बौद्ध-साहित्यमें कृष्ण-कथा दूसरे रूपमें दी गई है।[१७] जातक-कथाके अनुसार महासागर उत्तरी मथुराका शासक था। उसके दो पुत्र सागर तथा उपसागर आपसमें लड़ा करते थे। उपसागर वहाँसे भगकर महा-कंस द्वारा शासित उत्तर-पथ राज्यमें रहने लगा। महाकंसके कंस और उपकंस नामक दो पुत्र और देवकी नामक एक पुत्री थी। एक भविष्यवाणीके कारण, जिसका तात्पर्य यह था कि देवकीके पुत्र द्वारा कंसका वध होगा, वे देवकीको तालेमें बन्द रखते थे। किन्तु नन्दगोप नामक सेवककी सहायतासे देवकीने उपसागरसे गुप्त सम्बन्ध स्थापित किया, जिसके फल-स्वरूप उसके दस पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए। इस सन्ततिको देवकीने गुप्त रूपसे अन्धकवेणु नामक एक सेवकको सौंप दिया। बड़े होनेपर इन लोगोंने राज्यमें लूट-पाट मचाई, जिससे कंसने अन्धकवेणुको कड़ी डाँट सुनाई। अन्तमें लाचार होकर वेणुने इस रहस्यको सबपर प्रकट कर दिया। कंसने मल्ल-युद्धका आयोजन करके उनको मारना चाहा; पर फल विपरीत हुआ। ज्येष्ठ पुत्र वासुदेवने चक्रकी सहायतासे कंस तथा उपकंस दोनोंका वध किया। पौराणिक तथा बौद्ध दोनों कथाओंमें मौलिक अन्तर बहुत ही कम है।

### कृष्ण और पाण्डव

महाभारतसे ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण पाण्डवोंके परम मित्र, सहायक, मन्त्रदाता तथा सम्बन्धी थे। श्रीकृष्णकी बूआ कुन्तीका विवाह पाण्डुसे हुआ था और तीनों ज्येष्ठ पाण्डव कुन्ती ही से उत्पन्न हुए थे। अनेक

१७. कावेल : जातक, चौथा भाग, पृष्ठ ५०।

अवसरोंपर जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित होनेपर श्रीकृष्णने पाण्डवोंकी रक्षा की थी। एक बार अर्जुन स्वयं द्वारका गए थे। वहाँ बड़े समारोहके साथ संघकी ओरसे उनका स्वागत किया गया था। उनके सम्मानमें रैवतक पर्वतपर स्त्री-पुरुष सभीने एकत्र होकर उत्सव किया था। इसी उत्सवने अर्जुन और सुभद्राके विवाहका अवसर भी दिया।[१८] यादवोंका महान शक्तिशाली शत्रु जरासन्ध, जो समीपस्थ राजाओंका वध करके एक विस्तृत साम्राज्यकी स्थापना करना चाहता था, अब भी जीवित था। श्रीकृष्णने जरासंधकी शक्तिको ध्वंस करनेके लिए युधिष्ठिरको राजसूय-यज्ञ करनेके लिए प्रोत्साहित किया। भीम तथा जरासंधमें मल्ल-युद्धका आयोजन किया गया, जिसमें जरासंधकी मृत्यु हुई। तत्पश्चात् उसका पुत्र सहदेव मगधके राजसिंहासनपर आसीन किया गया।

महाभारत युद्धमें श्रीकृष्ण

महाभारत-युद्ध प्रारम्भ होनेके पूर्व ही दोनों पक्षोंमें शान्ति स्थापित करनेके लिए श्रीकृष्ण कौरवोंके दरबारमें पधारे थे। उस अवसरपर कौरवोंने प्रसन्नतापूर्वक उनका स्वागत किया था। भीष्म तथा द्रोण ऐसे गुरुजनोंने भी उनको प्रणाम किया। इससे सिद्ध हो जाता है कि उस समय भी समाजमें श्रीकृष्णकी काफ़ी प्रतिष्ठा थी। बहुत-से कुरु नेताओंको शान्ति-पक्षमें कर लेनेमें उनको सफलता भी मिली; किन्तु हठी दुर्योधनपर उनका कुछ भी प्रभाव न पड़ सका।

युद्ध अवश्यम्भावी होनेपर पाण्डव तथा कौरव दोनों ही यदुवंशियोंको अपने-अपने पक्षमें लानेकी चेष्टा करने लगे। अन्तमें निश्चित हुआ कि एक पक्षमें यादव दलके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, दार्शनिक तथा रणकुशल श्रीकृष्ण रहेंगे और दूसरे पक्षमें यादवोंकी सारी सेना। यह भी निश्चय कर लिया गया था कि युद्धमें श्रीकृष्ण अस्त्र-शस्त्र धारण न करेंगे। फिर भी पाण्डवोंने श्रीकृष्ण ही को अपने पक्षमें रखना उचित समझा। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत-युद्धके सम्बन्धमें संघ एकमत कायम न कर सका। श्रीकृष्ण तथा कुछ अन्य नेता पाण्डवोंकी सहायता करना चाहते थे; किन्तु संघकी बैठकमें कौरवोंकी सहायता करना निश्चित हुआ। भोजोंका प्रधान कीर्तिवर्मन एक अक्षौहिणी सेनाके साथ कौरवोंकी ओरसे स्वयं युद्धमें सम्मिलित हुआ। पाण्डवोंकी सफलताका बहुत-कुछ श्रेय उस सफल सारथी तथा परामर्शदाता श्रीकृष्णको ही है।

संघका अन्त

युद्ध समाप्त होनेपर श्रीकृष्ण अन्य नेताओंके साथ द्वारका लौट आए। वैमनस्यका जो बीज बोया गया था, युद्ध समाप्त होनेपर भी उसका अन्त नहीं हुआ। श्रीकृष्णको नारदसे हम विरुद्ध पक्षको प्रसन्न करने और एक मतमें लानेके लिए उपाय पूछते हुए पाते हैं। यह पारस्परिक फूट ही संघके विनाशका कारण हुई। उनके मदिरा-पानने भी इस काममें मदद पहुँचाई। महाभारतके मौसलपर्वमें यह विनाश ब्राह्मणके क्रोधका परिणाम बतलाया गया है। यादव लोग वैदिक कर्मकाण्डोंके अनुसार आचरण नहीं करते थे। अतएव सम्भवतः इस अधर्मके दुष्परिणामको सिद्ध करनेके लिए ब्राह्मणोंने इस कथाकी कल्पना कर ली हो। यद्यपि संघके सभापति उग्रसेनने शराबका बनना बिलकुल रोक दिया था; पर इस आज्ञाका उचित रूपसे पालन नहीं होता था। एक बार प्रभासतीर्थमें श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें ही यादवोंने ख़ूब मदिरा-पान किया और नशेमें आकर एक-दूसरेको गाली भी देना प्रारम्भ कर दिया। यह झगड़ा इस सीमा तक पहुँच गया कि पुत्र पिताका, पिता पुत्रका तथा मित्र और सम्बन्धी एक-दूसरेका वध करने लगे। जब प्रायः सभी मर गए, तब श्रीकृष्णने यादव स्त्री-बच्चोंको ले जानेके लिए हस्तिनापुरसे अर्जुनको बुलवाया। अर्जुनने उनको कुरुक्षेत्र ले जाकर भिन्न-भिन्न स्थानोंमें बसाया। श्रीकृष्णकी मृत्यु भी पैरमें एक शिकारीके बाणके लग जानेसे हुई। ऐसे विराट संघका ऐसा अन्त सचमुच शोचनीय है।

दार्शनिक श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण चतुर राजनीतिज्ञ और कुशल योद्धा तो थे ही, साथ ही महान दार्शनिक भी थे। उन्होंने संसार-रहस्य तथा जीव-ईश्वर-सम्बन्ध आदि गम्भीर विषयोंपर काफ़ी विचार किया था। सम्भवतः उन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवनमें दर्शनशास्त्रके भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंका गहन अध्ययन किया था और दर्शनशास्त्रके वेदान्त-सिद्धान्तमें पारदर्शिता प्राप्त की थी। छन्दोग्य उपनिषद्से ज्ञात होता है कि देवकी-सुत कृष्ण वेदान्तके गुरु थे और उनको घोर

१८. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय २२०-२३।

अंगिरससे इस विशेष शास्त्रकी शिक्षा मिली थी।'[१९] हमें उनके दर्शन-सम्बन्धी अपार ज्ञानका पता उन उपदेशोंसे मिलता है, जो युद्ध आरम्भ होनेसे पूर्व युद्धसे मुख मोड़ते हुए अर्जुनको दिए गए थे। श्रीमद्भगवद्गीता दर्शन-शास्त्रका अमूल्य रत्न है। श्रीकृष्ण ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने ज्ञान-विहीन, यन्त्रवत् वैदिक कर्मकाण्डोंके विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। गीतामें एक सरल और सुन्दर सिद्धान्तको जन्म दिया गया है। श्रीकृष्णके प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व तथा अपार दार्शनिक ज्ञानके ही कारण उनके समकालीन भी उनकी पूजा करते थे।

अर्थशास्त्रमें अन्धक-वृष्णि-संघ

कौटिल्यने अर्थशास्त्रमें गणतन्त्र राज्योंकी विशेषताओं तथा उनके प्रति साम्राज्यकी नीतिका वर्णन करते हुए लिच्छवि, वृजिक, कुरु तथा पांचाल आदिके साथ-साथ कुकुर-गणका भी राज-शब्दोपजीविन संघोंमें नाम दिया है।[२०] डाक्टर जायसवालके मतानुसार उपजीविनका अर्थ ग्रहण करना है, अतएव राज-शब्दोपजीवी संघका अभिप्राय उन गणतन्त्र राज्योंसे है, जिनके शासक राजन् शब्दकी उपाधिसे विभूषित थे।[२१] डा० लाका कथन है कि इन राष्ट्रोंमें प्रत्येक नागरिक राजा कहलानेका अधिकारी था।[२२] किन्तु बौद्ध-सूत्रोंसे पता चलता है कि लिच्छवि-गणमें राजाओंके अतिरिक्त बहुत-से उपराजा, भंडागारिक आदि भी हुआ करते थे।[२३] यदि सभी नागरिक अपनेको राजा कह सकते, तो उपराजा कहलानेका किसको शौक होता? अतः हमें डाक्टर जायसवालका ही मत ठीक जँचता है। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कौटिल्यके समय तक यादवोंकी एक शाखा कुकुरोंमें गणतन्त्र शासन-प्रणाली प्रचलित थी। यह प्रश्न उठ सकता है कि सम्पूर्ण संघका नाम क्यों नहीं दिया गया? वृष्णि-गणोंके प्रथम शताब्दी (ईस्वी पूर्व) के सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उस काल तक वृष्णि-गण जीवित था। महाभारत-कालीन उनके पारस्परिक गृह-युद्धोंपर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। सम्भवतः यह झगड़ा भविष्यमें इतना विकराल रूप धारण किया कि संघको छिन्न-भिन्न होना ही पड़ा। कदाचित् यही कारण था, जिसकी वजहसे कौटिल्यने कुकुरोंको वृष्णि संघसे अलग मानकर वर्णन किया है। मौर्योंकी साम्राज्यवादी नीति कुकुर तथा वृष्णि-संघकी स्वतन्त्रताको अवश्य अपहरण कर ली होगी। कौटिल्यने किसी-न-किसी उपायसे उनको मौर्य-साम्राज्यके अन्तर्गत कर लिया होगा। किन्तु ऐसा प्रतीत होता कि मौर्य-साम्राज्यका पतन होते ही उन लोगोंने अपनी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर ली थी, जैसा कि वृष्णियोंके प्राप्त सिक्कोंसे ज्ञात होता है।

वृष्णियोंके सिक्के

कनिंघमने वृष्णियोंके एक सिक्केका विवरण दिया है, जिसका काल, उनके अनुसार, प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व है। किन्तु इस विचारसे कि यह सिक्का राजा 'वृष्णि' का है, उन्होंने इस विषयपर कुछ टीका-टीप्पणी नहीं की कि यह किसका सिक्का है। उन्होंने लिखा है कि सिक्केके एक ओर एक स्तम्भ है, जिसमें अर्द्ध-सिंह और अर्द्ध-हाथीके चित्र खुदे हैं और इन सबके ऊपर त्रिरत्नका चिह्न है। ये सभी चिह्न बौद्ध-शैलीके विशिष्ट घेरेसे घिरे हुए हैं। सिक्केके दूसरी ओर धर्मचक्र अंकित है। सिक्केके दोनों ओर खरोष्ठी-लिपिमें 'वृष्णि राजन्य गणराव भुमरस्य' लिखा है।[२४] किन्तु सिक्केपर का लेख वर्गनीके अनुसार 'वृष्णि राजाज्ञा गणस्य भुमरस्य' है।[२५] पर एलनका विचार है कि राजाज्ञाके स्थानपर राजन्य होना चाहिए, और उनके अनुसार लेखका अर्थ 'वृष्णियोंके राजन्य (योद्धा) कुलका रक्षक' है।[२६] किन्तु डाक्टर जायसवाल इसका अनुवाद भिन्न प्रकारसे करते हैं। उनके अनुसार इसका अर्थ है—'देश-रक्षक वृष्णि राजन्य (तथा) गण।'[२७] उन्होंने इस बातकी ओर भी संकेत किया है कि राजन्य श्रीकृष्णके कालसे ही उनका राज-चिह्न 'चक्र' था, जो उनके सिक्केपर अंकित है और जिसको जनरल कनिंघमने भूलसे धर्मचक्र समझ लिया है।'

१९. छन्दोग्य उपनिषद, प्रपाठक ३, खण्ड १६।

२०. अर्थशास्त्र ११ : १।

२१. जायसवाल : 'हिन्दू-पालिटी', पृष्ठ ३२।

२२. ला : 'Some Kshattriya Tribes of Ancient India', पेज ९१।

२३. कावेल : जातक, जिल्द १, पेज ३१६।

२४. कनिंघम : 'Coins of Ancient India', पृष्ठ ७०।

२५. J. R. A. S. सन् १९००, पृष्ठ ४१६-४२०।

२६. एलन : 'Catalogue of Indian Coins in British Museum,' पृष्ठ १९२।

२७. जायसवाल : 'हिन्दू-पालिटी', पृष्ठ १५७।

### जूनागढ़के शिला-लेख

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्वके पश्चात् यह संघ बहुत काल तक जीवित न रह सका। विदेशी आक्रमणकारियोंने इसे अधिकृत कर लिया। रुद्रदामनका अपने जूनागढ़वाले शिला-लेखमें दावा है कि उसने बहुत-से गणोंके साथ-साथ कुकुर-गणपर विजय प्राप्त करके उसको अपने अधीन कर लिया था।[२८] यद्यपि उनकी स्वतन्त्रताका अपहरण कर लिया गया ; परन्तु उनका नाम कुकुर-जातिके रूपमें कुछ काल तक जीवित रहा। श्री गौतमी-पुत्र सतकारणीने अपने नासिकके गुफ़ा-लेखमें इस बातका वर्णन किया है कि वह असिक, असक, अपरान्त आदि जातियोंके साथ कुकुर-जातिपर भी शासन करता था।[२९]

इसके उपरान्त फिर सातवीं शताब्दीमें बाणके 'हर्ष-चरित' में 'वृष्णि-संघ' का नाम आया है। किन्तु बाणने वहाँपर वृष्णि-गणका वर्णन उसके असली अस्तित्वके आधारपर नहीं, प्रत्युत केवल ऐतिहासिक ज्ञानके आधारपर किया है। इसके पश्चात् अन्धक-वृष्णि-संघके इतिहासके विषयमें हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। बहुत सम्भव है कि क्षत्रपोंने उनको पराजित करके अपने राज्यमें सम्मिलित कर लिया हो।

### शासन-विधान

महाभारतसे ज्ञात होता है कि यादवोंकी शासन-प्रणाली एकतन्त्रात्मक नहीं थी। यह कई स्वतन्त्र कुलोंका राज-संघ था, और इसमें अन्धक, वृष्णि, कुकुर तथा भोज वंशवाले सम्मिलित थे।[३०] इस संघका कोई वंशवत शासक नहीं था। सम्भवतः इसी आधारपर ब्राह्मणोंने ययातिके शापकी कल्पना की थी।[३१] ययातिने अपने पुत्र यदुको उसकी आज्ञाके उल्लंघनपर शाप दिया कि उसके वंशजोंको राज्याधिकार कभी न प्राप्त होगा। यदुवंशियोंको राज्याधिकार न प्राप्त होनेका विवरण महाभारतमें एक स्थलपर और आया है। चेदिराज शिशुपालने राजसूय-यज्ञमें अर्घ्य-ग्रहण करनेके अवसरपर श्रीकृष्णका तीव्र विरोध इसी आधारपर किया कि न तो वे किसी राजवंशके हैं और न कभी अभिषिक्त राजा ही रह चुके हैं।[३२]

अन्धक-वृष्णि-संघके शासन-विधान तथा शासन प्रबन्धपर महाभारत सम्यक प्रकाश डालता है। महाभारतके शान्तिपर्वमें श्रीकृष्णने राजनीति-विशारद नारदके समक्ष संघकी समस्याओं और कठिनाइयोंको उपस्थित किया है। वे कहते हैं—'संघमें दो दल हैं। प्रत्येक दल शासन-शक्ति प्राप्त करनेके लिए स्पर्धा रखता है। राज-सभामें वाद-विवाद बड़ी उग्रतासे होता है और कभी-कभी तो भीषण रूप धारण कर लेता है। शासकोंपर आक्षेप किया जाता है।'[३३] संघके दो 'गण-मुख्य' थे। महाभारत-कालमें उग्रसेन तथा श्रीकृष्ण इस पदके लिए निर्वाचित किए गए थे। परन्तु संघकी बैठकमें आहुक तथा अक्रूर नेता थे, जिनके अनेक अलग-अलग अनुयायी थे। उपर्युक्त बातोंसे स्पष्ट हो जाता है कि अन्धक-वृष्णि-संघमें एक सम्मिलित संघ-शासन-विधान प्रचलित था, जिसमें शासन-सूत्र दो प्रधानोंके हाथमें था, और ये दोनों दो भिन्न-भिन्न वर्गोंके प्रतिनिधि थे। हम लोग देख चुके हैं कि पाणिनिके अनुसार अन्धक-वृष्णि-संघका शासन दो 'राजन्यों' द्वारा होता था।[३४] यहाँपर राजन्य शब्दका अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। काशिकामें लिखा है कि पाणिनिका सूत्र ६ : २ : ३४ अन्धक-वृष्णि-संघके सदस्योंके लिए लागू नहीं हो सकता, यह केवल राजन्योंके ही लिए है। इससे ज्ञात होता है कि राजन्योंमें साधारण सदस्योंकी अपेक्षा कुछ विशेषता थी। राजन्य कुटुम्बके नेता होनेके कारण शासकके रूपमें अभिषिक्त किए जाते थे।[३५] काशिकामें कुछ राजन्योंके जोड़े भी दिए गए हैं, जैसे—शिवि और वासुदेव, श्फलक और चैत्रक, शंकरषण तथा वासुदेव। इस प्रकारके जोड़ोंका वर्णन अन्य पुस्तकोंमें भी मिलता है। कात्यायनने अक्रूर तथा वासुदेवके दलोंका उल्लेख किया है।[३६] महाभारतसे भी मालूम होता है कि उग्रसेन तथा वासुदेव अपने-अपने दलोंके नेता थे।[३७] राजन्योंके इन

२८. एपिग्राफ़िक इंडिका, भाग ८, पृष्ठ ४७।
२९. „ „ पृष्ठ ६१।
३०. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ८१, श्लोक २९।
३१. „ आदिपर्व, „ ८४।
३२. महाभारत, सभापर्व, अध्याय ३७, श्लोक ५।
३३. „ शान्तिपर्व, „ ८१।
३४. पाणिनि : 'अष्टाध्यायी' ६ : २ : ३४।
३५. जायसवाल : 'हिन्दू-पालिटी', पृष्ठ ४०।
३६. पाणिनिके सूत्र ४ : २ : १०४ पर कात्यायनका भाष्य।
३७. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ८१।

जोड़ोंके परिवर्तनसे ज्ञात होता है कि यह पद निर्वाचन द्वारा प्राप्त होता था।

संघमें बहुत-से दल थे, जिनमें से प्रत्येकके वंशगत नेता थे, और एक सभा थी, जिसमें सम्भवत: संघके सभी नागरिकोंको भाग लेनेका अधिकार था। उसमें पिता-पुत्र और कनिष्ठ भ्राता ( श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और गद ) सभी उपस्थित होते थे।[३८] सभा-मण्डप भलीभाँति सुसज्जित था, जिसमें सहस्रों जवाहर और मोतियोंसे जड़े हुए राज-सिंहासन रखे हुए थे। एक सभापति भी होता था, जो विशेष आवश्यकता पड़नेपर सदस्योंको आमन्त्रित करता था। सुभद्रा-हरणका समाचार सुभद्राके सेवकोंने सर्वप्रथम इसी सभापतिको बतलाया था। इस अवसरपर उसने सब लोगोंको रणभेरी बजाकर युद्धके लिए बुलाया था।[३९] सभामें बड़ा वाद-विवाद हुआ कि क्या करना चाहिए। अन्तमें निश्चय यही हुआ कि अर्जुनके साथ सुभद्राका वैवाहिक सम्बन्ध उनके लिए लाभप्रद है। इस विवरणसे यादवोंकी सभा और उसकी कार्यवाहीपर काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

### सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन

इस संघके सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन-पर भी प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। उनके वैवाहिक बन्धन बड़े ही ढीले-ढाले थे। वे अपनी फुफेरी बहनोंसे भी विवाह कर लेते थे। सुभद्राका विवाह फूफीके पुत्र अर्जुनसे हुआ था। श्रीकृष्णने स्वयं एक फुफेरी बहनसे विवाह किया था। शूद्र स्त्रियोंसे भी विवाह करनेमें उन्हें कुछ हिचकिचाहट न थी। श्रीकृष्णका जाम्बवन्तीके साथ विवाह करना इसीका प्रमाण है। इन्हीं कारणोंसे वे कभी-कभी असुर या व्रात्य भी कहलाते थे। बहु-विवाहकी भी प्रथा उनमें प्रचलित थी। कहा जाता है कि श्रीकृष्णके सोलह सहस्र स्त्रियाँ थीं। इसी प्रकार उग्रसेनके पास भी एक सहस्र स्त्रियाँ थीं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस संख्यामें बहुत अतिशयोक्ति है। सम्भवत: उस समय यह नियम था कि विजेता लोग पराजितोंमें से स्वेच्छानुकूल स्त्रियाँ लेते थे।

प्राचीन भारतकी प्रथाओंका अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय कम-से-कम धनिक वर्गमें पर्दा-प्रणाली प्रचलित थी; परन्तु यादवोंमें यह प्रथा बिलकुल न थी। पर्वके अवसरोंपर स्त्री-पुरुष सभी एक साथ बिना किसी प्रकारके पर्देके उत्सव मनाते थे।[४०] श्रीकृष्ण तथा अन्य व्रजवासियोंका गोपियोंके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक क्रीड़ा करनेका वर्णन भागवत पुराणमें पाया जाता है। महाभारतमें श्रीकृष्णको गोपी-जन प्रिय कहा गया है। पीछे लिखे जानेवाले ग्रन्थोंमें इस शब्दका अर्थ बहुत ही बुरे भावमें लिया गया; परन्तु वास्तवमें बात ऐसी न थी। श्रीकृष्ण अत्यन्त सुन्दर, बुद्धिमान तथा आकर्षक थे। ऐसी परिस्थितिमें स्वभावत: उनके बचपन तथा युवावस्थामें सभी देखनेवाले उनको प्यार तथा प्रशंसाकी दृष्टिसे देखते थे। बहुत सम्भव है, गोपियोंके सम्बन्धमें भी ऐसी ही बात रही हो।

यादव-जाति नितान्त परिश्रमी तथा आनन्द-प्रिय थी। यह जाति ग्वालोंकी थी, जो अपने ढोरोंके साथ यमुना-तटवर्ती अत्यन्त उपजाऊ तथा सुविधापूर्ण स्थानमें निवास करते थे। उनकी कौटुम्बिक प्रथाएँ भी यह सिद्ध करती हैं कि उनका व्यवसाय गो-पालन था। सुभद्रा तक भी कुन्ती तथा द्रौपदीसे अन्त:पुरमें मिलनेके लिए रानीकी पोशाकमें न जाकर एक साधारण गोपी-वेशमें भेजी गई थी।[४१] यह घटना उनकी रहन-सहन और व्यवसायका प्रत्यक्ष प्रमाण है। श्रीकृष्ण तथा बलराम भी अपनी गायोंको जंगलोंमें चराया करते थे। इससे सिद्ध होता है कि अमीर-ग़रीब सभी समान जीवन व्यतीत करते थे। वे पर्याप्त मात्रामें दूध, दही, मक्खन तथा घी उत्पन्न करके सुखमय जीवन व्यतीत करते थे। इन स्निग्ध पदार्थोंका प्रयोग करनेके कारण उनका शरीर बलवान था। उनकी सामरिक प्रवृत्तियोंके प्रोत्साहनके लिए यहाँ मल्ल-युद्ध आदिका आयोजन हुआ करता था। श्रीकृष्ण तथा बलराम मल्ल-युद्धमें काफ़ी प्रवीण थे। श्रीकृष्णने मल्ल-युद्धमें कंस तथा उसके अन्य पहलवानोंका वध ही नहीं किया, प्रत्युत कुवलियापीड़-जैसे हाथियोंको भी पछाड़ा।

महाभारतके आदिपर्वमें इनके रहन-सहन तथा सभ्यताका अच्छा चित्र खींचा गया है। अर्जुनके स्वागतमें नगर पूर्णत: सजाया गया था। मैदानों और सड़कोंपर स्त्री और पुरुषोंके झुंडके झुंड सहस्रोंकी संख्यामें एकत्र

३८. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ८१।
३९. ,, आदिपर्व, ,, २२२, श्लोक १५।

४०. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय २२०।
४१. ,, ,, ,, २२३।

होकर अर्जुनका स्वागत कर रहे थे। इस संघमें संगीत-विद्याका भी काफ़ी प्रचार था। श्रीकृष्ण बाँसुरी बजानेमें प्रवीण थे। हरि-वंशमें उनके स्नान तथा प्रमोद-यात्राओंका वर्णन किया गया है। महाभारतसे भी पता चलता है कि वे त्योहारों, उत्सवों तथा दावतोंके बड़े प्रेमी थे। अर्जुनके आगमनके उपलक्षमें इस संघके नागरिकोंने रैवतक पर्वतपर एक बहुत बड़ा उत्सव मनाया और ब्राह्मणोंको दान दिया।[४२]

महाभारत यादवोंके आचरण-सम्बन्धी गुणोंपर ही प्रकाश नहीं डालता, बल्कि उनके दोषोंपर भी। इसमें सन्देह नहीं कि वे महान योद्धा, विद्वान, दानवीर तथा सत्यवादी थे; पर साथ ही शराबी तथा झगड़ालू भी थे। रैवतक पर्वतपर उत्सवके समय बलराम शराब पीते-पीते बेहोश हो गए थे। श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भी शराब पीते हुए पाए गए थे। एक ही दो नहीं, प्रत्युत सारी जाति मद्यपी थी। मद्य-पान तथा पारस्परिक कलह ही के कारण संघका विनाश भी हुआ, जिसकी करुण कथा पहले ही लिखी जा चुकी है।

उनके धार्मिक जीवनका हमें अल्प ज्ञान है; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे प्राचीन आर्योंसे सामाजिक व्यवहार तथा धार्मिक प्रथाओंमें सर्वथा भिन्न थे। यद्यपि हमें ज्ञात है कि श्रीकृष्णने भारतीय दर्शनशास्त्रके सभी अंगोंका अध्ययन किया था और वे वेदान्तके आचार्य भी थे, तथापि मालूम होता है कि वे वेदोंके कर्मकाण्डके विरुद्ध थे। श्रीकृष्णने स्वयं ही भगवद्गीतामें वेदोंके कर्मकाण्डका विरोध किया है।[४३] यादवोंने वैदिक देवता इन्द्रकी पूजा न करके गोवर्द्धनकी पूजा की थी। यह घटना सूचित करती है कि वे वैदिक प्रथाओंके विरोधी ही नहीं, प्रत्युत प्रकृति-पूजक भी थे।

डोभी, जौनपुर ]

४२. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय २२२।

४३. भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक ४२, ४३, ४६

# किसान

श्री 'अंचल'

तेरे शोषणके अमिट चिह्न युग-युगसे लिए पड़ी धरती।
लादे सदियोंका भार चला जा रहा मूक तेरा जीवन;
है खेत-खेतमें दबा पड़ा तेरा युग-संचित उत्पीड़न।
हर साँस हवाकी कहती है, तू अन्धकारका चिर - सहचर;
तेरे कानोंसे टकराते प्रतिक्षण विनाशके भैरव - स्वर।
प्रतिक्षण थर-थर कँपती आत्मा, कैसी डरावनी यह निठुरन;
बलिके पशु-सा धुँधला कातर तुझको प्राणोंसे प्रिय बन्धन।
असमर्थ चेतना है तेरी जीवनकी व्यर्थ तृषा करती।
तेरे शोषणके अमिट चिह्न युग-युगसे लिए पड़ी धरती।

इन खलिहानोंमें गूँज रही किन अपमानोंकी लाचारी?
हिलते हड्डीके ढाँचोंने पिटती देखीं घरकी नारी।
जब लोट - लोट - सी पड़ती हैं ये गेहूँ - धानोंकी बालें;
है याद इन्हें आती मानो जब खिंचती थीं तेरी खालें।
युग-युगके अत्याचारोंकी आकृतियाँ जीवनके तलमें,
घिर-घिरकर पुंजीभूत हुईं ज्यों रजनीके छायाछलमें।
कण-कणसे नूतन जग उपजे, क्यों चाह न यह कविकी मरती?
तेरे शोषणके अमिट चिह्न युग-युगसे लिए पड़ी धरती।

# सच्चे मित्रके लक्षण

एफ़० एस० वी०

उस व्यक्तिके बारेमें जिसे आप मित्र कहते हैं, क्या आप बता सकते हैं कि वह दुःखके दिनोंमें आपके साथ रोएगा? क्या वह ईमानदारीके साथ सामने आपको आपके उन कामोंके लिए फटकार सकेगा, जिनके बारेमें अन्य लोग पीठ पीछे आपकी हँसी करते हैं या भर्त्सना करते हैं? क्या वह आपकी सफ़ाईमें डट सकेगा, जब झूठे आरोप लगानेवाले अपने भयंकर हथियारको आपके मानपर चुपचाप चलाते हों? यदि दुर्भाग्य और हानियाँ आपको ऐसा जीवन बितानेको बाध्य कर देती हैं, जिसमें आप पहलेके समान खर्च नहीं कर सकते, तो क्या वह आपके साथ उतना ही सुखी महसूस कर सकेगा और बजाय आपसे आँख चुरानेके अपनेको आपका मित्र कहनेमें गौरव मानेगा और आपकी मुसीबतोंका भार वहन करनेमें आपका सहायक होगा? जब बीमारीके कारण आप दुनियाकी चकाचौंधसे हटकर एकान्तमें पड़े होंगे, तब क्या वह आपकी विपदाकी कहानी सुनकर आपको सान्त्वना देगा? और अन्तमें जब मौत पार्थिव बन्धनको तोड़ देगी, तब क्या वह आपकी क़ब्रपर एक आँसू गिराकर आपकी पारस्परिक मैत्रीकी प्रिय स्मृतिको हृदयमें स्थान देगा? —'निर्मम'

लेडी क्रिप्सके साथ सर स्टैफर्ड क्रिप्स, जो आजकल वैधानिक समझौतेके लिए भारत आए हुए हैं।

जापानके तानाशाह जनरल तोजो, जो सुदूर-पूर्वके युद्धके लिए ज़िम्मेदार हैं।

फिलिपाइन्सके कुछ सैनिक लकड़ी और बाँसोंका एक अस्थायी पुल पार कर रहे हैं।

प्रसिद्ध अमरिकन सेनापति जनरल मैक'आर्थर, जो जापानके विरुद्ध नया मोर्चा लेनेके लिए आस्ट्रेलिया आ गए हैं।
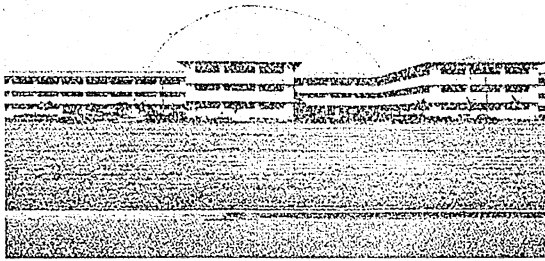
होनेलूलूकी वे बारकें, जिनपर हुए जापानी आक्रमणके कारण सहस्रों अमरीकन सैनिक मारे गए।
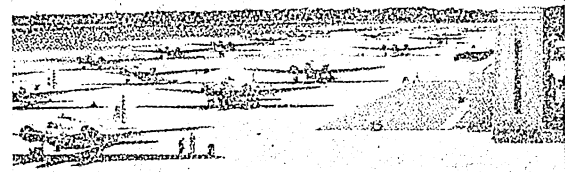
हिकेमफील्ड (हवाई द्वीप) का हवाई अड्डा, जिसपर जापानियोंने सबसे पहला हवाई आक्रमण किया।
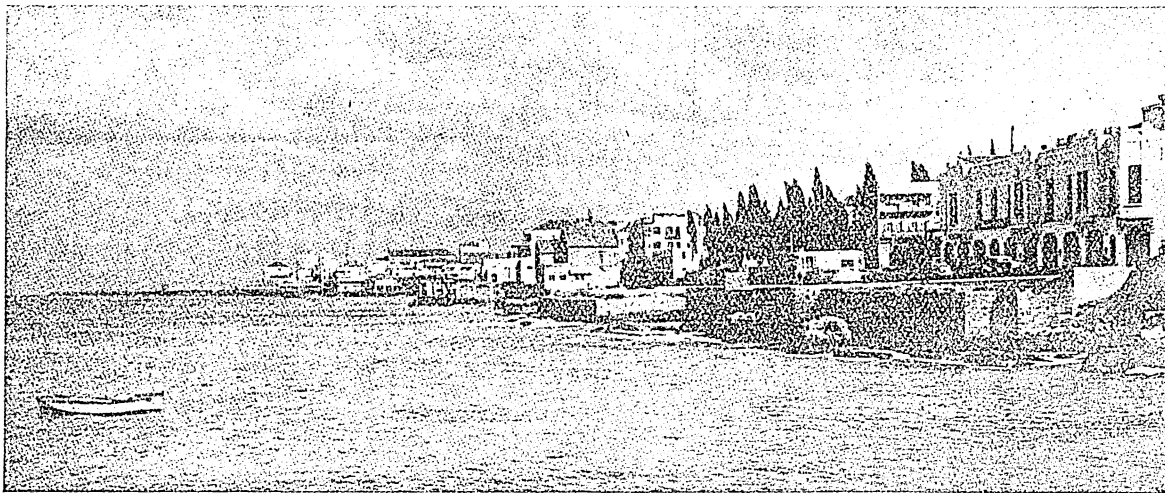
कैस्पियन सागरके तटपर स्थित ईरानका प्रमुख बंदरगाह और रेलवे जंकशन बंदरशाह।
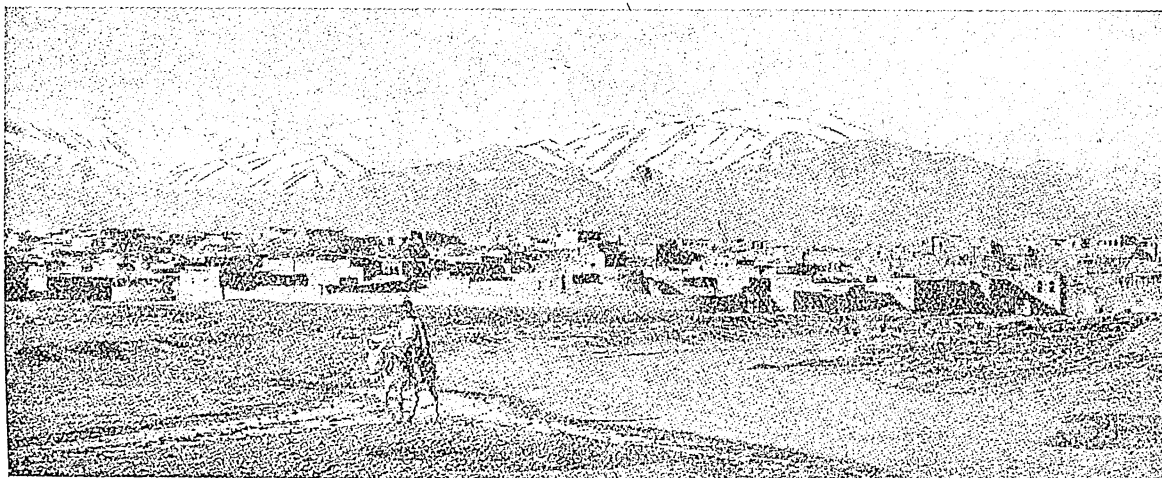
ईरानकी सीमापर स्थित रेलोंका प्रसिद्ध जंकशन ख़ानीक़ीन।

# उत्तर-सागरके रास्ते

डा० सत्यनारायण

उत्तर-सागरका नाम लेते ही मुझे प्रोफ़ेसर शिमटकी याद आ जाती है। वे हाल ही में आर्कटिक-अभियानसे लौटे थे। अपने जहाज़के उत्तर-सागरमें डूब जानेपर उन्हें बर्फ़पर तम्बू तानकर ४० दिन तक रहना पड़ा था। वहाँकी कठोर प्रकृतिसे संग्राम करते रहनेके चिह्न उनके चेहरेपर विद्यमान थे। बर्फ़के झकोरेने उनके शरीरको दुर्बल बना दिया था ; पर उसकी उन्हें ज़रा भी चिन्ता नहीं थी। उत्तर-सागरपर उन्होंने विजय प्राप्त की है, इसका उत्साह उस समय भी उनके चेहरेपर झलक रहा था।

हम भारत-जैसे गरम देशके रहनेवालोंके लिए प्रोफ़ेसर शिमटके उत्तर-सागरवाले अभियानकी ठीक-ठीक कल्पना कर पाना भी कठिन होगा। उस समुद्रमें बारहो महीने बर्फ़ जमी रहती है। वह समुद्र नहीं, हज़ारों वर्गमीलके विस्तारका विशाल बर्फ़का मैदान-सा दीखता है। आर्कटिक-प्रवाहके कारण यह मैदान स्थान-स्थानपर फट जाता है और मीलों लम्बे बर्फ़के कई मैदान बहे चले जाते हैं। वहाँ हवा चौकनिया ( चक्करदार ) बहती है। उसके ज़ोरसे बर्फ़के बहुत बड़े-बड़े ढोके तक लुढ़कने लगते हैं। बर्फ़के ये बहते हुए मैदान भी आपसमें टकराया करते हैं। सर्दी शून्यके ४०-४५ डिग्री नीचे रहती है, जो ख़ूनको बर्फ़के रूपमें परिणत कर देनेके लिए काफ़ी है। इसी अंचलसे होकर प्रोफ़ेसर शिमटको सोवियत् रूसके लिए 'उत्तर-सागरका रास्ता' निर्माण करना था।

सोवियत् रूसने यह पहलेसे ही अनुमान कर रखा था कि संसारव्यापी युद्ध छिड़नेपर सोवियत् रूसके विपक्षी उसका सम्बन्ध बाह्य-जगत्‌से विच्छिन्न कर देनेकी कोशिश करेंगे। अपने शत्रुओंको परास्त करनेके लिए सोवियत् रूसका बाह्य-जगत्‌से सम्बन्ध बनाए रखना आवश्यक था, और इसलिए अटलांटिक सागरका पथ ख़तरेके दायरेमें आ जानेपर एक दूसरा निरापद रास्ता ढूँढ़ निकालना भी ज़रूरी था। इस नए रास्तेकी खोजमें सोवियत् रूसने कुछ भी उठा नहीं रखा। रूसी उड़ाके रूससे उत्तरी ध्रुव होते हुए अमेरिका पहुँचनेका रास्ता ठीक करने लगे। प्रोफ़ेसर शिमटके ख़यालसे यह रास्ता उत्तर-समुद्रसे होकर निकल सकता था। यह एशियाके उत्तरी किनारे-किनारे 'बेरिंग-प्रणाली' तक बनाया जा सकता था और बाल्टिक सागरके समुद्री जहाज़ प्रशान्त महासागरकी यात्रा कर सकते थे। इसी रास्ते अलस्का होकर रूस अमेरिकासे भी संयोग स्थापित कर सकता था।

पर इस रास्तेमें बाधाएँ कम नहीं थीं। इसके लिए सबसे पहला आवश्यक काम था आर्कटिक-क्षेत्रके मौसमका वैज्ञानिक ढंगसे अध्ययन करना। समुद्रके प्रवाह और बर्फ़के मैदानोंके बहावकी दिशा आदिका समुचित निरीक्षण करना भी आवश्यक था। प्रोफ़ेसर शिमटने इसके लिए एक योजना तैयार की। इस योजनाको स्वीकारकर सोवियत् सरकारने उत्तरी एशियाके किनारे-किनारे आर्कटिक समुद्रके टापुओंमें रेडियो-स्टेशन बनाए। उन स्टेशनोंपर यातायात और निरीक्षणके लिए हवाई-जहाज़ रखे गए। इन्हीं विमानों और रेडियो-स्टेशनोंकी सहायतासे बर्फ़के मैदानोंकी ठीक-ठीक गतिका पता लगाया गया। इस सम्बन्धकी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेनेपर प्रोफ़ेसर शिमटका काम बहुत कुछ आसान हो गया। इस जानकारीको प्राप्त किए बिना ही बहुत-से नाविकोंने उत्तर-समुद्रपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टाएँ की थीं ; पर उनके जहाज़ बर्फ़में जमकर नष्ट हो गए थे और कई साहसी नाविकोंको अपने प्राण तक गँवाने पड़े थे। उत्तर-सागरकी प्रकृतिकी ठीक जानकारी रहनेके ही कारण प्रोफ़ेसर शिमटका अभियान सफल हुआ। उनका यह अभियान आर्कटिकके इतिहासमें सबसे अधिक सफल और महत्वका साबित हुआ है।

प्रोफ़ेसर शिमटका पहला अभियान सन् १९३२ की गरमीके मौसममें आरम्भ हुआ। उनका जहाज़ 'सिबिरियाकोव' उस एक ही मौसममें लेनिनग्राडसे चलकर उत्तर-समुद्र होता हुआ 'बेरिंग-प्रणाली' तक निरापद पहुँच गया और वहाँसे प्रशान्त, भारत और अटलांटिक सागर

होता हुआ लेनिनग्राड वापस लौट गया। इतिहासमें यह अपने ढंगका पहला ही सफल अभियान था।

अपने इस प्रथम अभियानकी सफलतासे प्रोत्साहित होकर प्रोफ़ेसर शिमटने सन् १९३४ में दूसरे अभियानकी योजना बनाई। इस बार उनका जहाज़ 'चेल्यूस्किन' उत्तर-सागरका अधिकांश भाग पार कर आया; पर 'बेरिंग-प्रणाली' पहुँच पानेके थोड़ा पहले आँगल द्वीपके पासकी जमी हुई बर्फ़ तोड़नेमें असमर्थ रहा। बर्फ़की तह यहाँ इतनी मोटी थी कि जहाज़ अटक गया। बर्फ़ चारों तरफ़से जहाज़को दबाने लगी। जहाज़की वैसी हालत देख प्रोफ़ेसर शिमट और उनके सब साथी बर्फ़पर उतर आए। खाने-पीने और वैज्ञानिक अन्वेषणके यन्त्र भी उन्होंने उतार लिए कुछ देर बाद जहाज़ डूब गया!

प्रोफ़ेसर शिमट और उनके साथी बर्फ़पर ख़ेमे गाड़कर रहने लगे। जहाज़ डूबनेकी ख़बर उन्होंने रेडियो द्वारा सोवियत् सरकारको दी। सरकारने उनकी रक्षाके लिए कई रास्तोंसे विमान और जहाज़ रवाना किए; पर आर्कटिकके उस अंचल तक उनके पहुँच सकनेमें काफ़ी दिक़्क़तें थीं। प्रोफ़ेसर शिमट और उनके साथियोंके बचानेके कामको सारे संसारने असम्भव क़रार दे दिया। उधर प्रोफ़ेसर शिमट और उनके साथियोंके ख़ेमे जिस बर्फ़के मैदानमें गड़े थे, वह मैदान भी अचानक बह चला! इस तरह उन लोगोंके प्राण जानेका भय पल-पलपर बढ़ने लगा। उस मैदानके दूसरे मैदानोंसे टकरानेका भय तो था ही, अक्सर ख़ेमोंके बीच दरार पड़ जाया करती और उसमें डूबनेसे उसपर के आदमी बाल-बाल बच जाया करते। इसी हालतमें प्रोफ़ेसर शिमट और उनके साथी ४० दिनों तक उस बर्फ़के मैदानपर—ख़ेमोंमें—रहते रहे। बर्फ़का झकोरा प्रायः चक्करदार आँधीका प्रचण्ड रूप धारण किए रहता। सर्दी बराबर ख़ून जमा डालनेकी धमकी देती रहती।

एक मिनटके लिए आप भी ज़रा अपनेको प्रोफ़ेसर शिमटके स्थानपर खड़ा करके देखिए तो! सम्भव है, आप भी अपनेको भाग्यके ही भरोसे छोड़ देंगे। बहुतेरे लोग अपनेको असहाय मानने लगेंगे; किन्तु प्रोफ़ेसर शिमटसे मैंने पूछकर देखा है। उनकी मनोभावना एक और ही ढंगकी थी। उन्हें अपने और अपने कार्यपर दृढ़ विश्वास था। वे थे सोवियत् द्वारा गढ़े गए इस नए युगके मनुष्य! वैसी विकट परिस्थितिमें भी वे प्रसन्न चित्त रहे। उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। प्रोफ़ेसर शिमटके साथियोंमें दस महिलाएँ भी थीं। एक महिलाकी कोखसे उसी विकट परिस्थितिमें एक कन्याने जन्म ग्रहण किया। प्रोफ़ेसर शिमटने उस कन्याका नाम दिया 'चेल्यूस्किना'।

बर्फ़पर निवास करनेवालोंने अपने बर्फ़ जमे मैदानमें हवाई-जहाज़के उतरनेका एक स्थान तैयार किया। उनकी रक्षाके लिए भेजे गए सोवियत् उड़ाकोंने भी हिम्मत नहीं हारी। तूफ़ान और सर्दीके बावजूद वे आगे बढ़ते गए। प्रोफ़ेसर शिमट और उनके साथियों द्वारा तैयार किए गए स्थानपर उन्होंने अपने विमान उतारे और प्रोफ़ेसर शिमट तथा उनके एक सौ दस साथियोंको बारी-बारीसे वे सोवियत्की सुदृढ़ साइबेरियन भूमिपर उतार लाए। प्रोफ़ेसर शिमट और उनके साथियोंको सुनिश्चित मृत्युके मुखसे बाहर निकाल लाए जानेपर सारा संसार आश्चर्य करने लगा। इस कार्यमें सोवियत् लाल सेनाके उड़ाकोंने जिस असाधारण धैर्य और साहसका परिचय दिया, वह भी इतिहासमें अद्वितीय है। सोवियत् सरकारने उन्हें इसके लिए 'सोवियत् वीर'की उपाधिसे सम्मानित किया।

इस अभियानके बाद प्रोफ़ेसर शिमटका स्थान आर्कटिक-अन्वेषकोंमें अद्वितीय बन गया। वे जिन खोजोंमें सफल हुए हैं, उनका महत्त्व न सिर्फ़ वैज्ञानिक जगत्में ही, बल्कि सारे संसारके राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक जगत्में भी बहुत ऊँचा स्थान ले चुका है।

× × ×

अब आइए, प्रोफ़ेसर शिमट द्वारा खोज निकाले गए रास्तेकी हम भी एक झाँकी लगायँ। आजकल लड़ाईका ज़माना है, इसलिए चलिए, हम किसी सोवियत् जंगी-जहाज़में ही यात्रा करें।

यह देखिए, 'लेनिन' और 'स्तालिन' उत्तर-समुद्रकी बर्फ़ तोड़ते चले आ रहे हैं। आप चौंक पड़े? हाँ, चौंकनेकी ही बात है। स्तालिन तो ख़ैर ज़िन्दा हैं, इसलिए सम्भव है, सैर करनेके लिए ही इस ओर निकल आए हों; लेकिन लेनिन? वे अपनी मास्कोके रेड-स्क्वायरकी समाधिसे क्योंकर जग पड़े? और निकट आ जानेपर वे आपको दिखाई देने लगते हैं—काले, विशाल, ठीक दैत्यके समान! और पास आ जानेपर आप उन्हें पहचान लेते

हैं। ये हैं 'लेनिन' और 'स्तालिन' नामक सोवियत् सरकारके विशाल बर्फ़ तोड़नेवाले (आइस-ब्रेकर) यंत्र। बर्फ़की छः-सात फीट मोटी तहको ये रुईके फाहेके समान धुन डालते हैं। देखिए, बर्फ़-जमे समुद्रमें भी ये कितने आत्म-विश्वासके साथ और अपनी अपूर्व शक्तिका कैसा प्रभावपूर्ण परिचय देते हुए अकड़-अकड़कर चल रहे हैं!

'लेनिन' और 'स्तालिन' ने बर्फ़ तोड़कर जो रास्ता तैयार किया है, उसपर उनके पीछे-पीछे दूसरे साधारण जहाज़ आ रहे हैं। उनमें कितने ही जहाज़ फ़ौज ढोनेवाले हैं। उनके चदरे बहुत मोटे नहीं होते, इसलिए बर्फ़ तोड़ना उनकी शक्तिके बाहरकी बात है। उत्तर-सागरमें वे लाचार हो गए-से दीखते हैं।

'लेनिन' और 'स्तालिन' थोड़ी देरके लिए हमसे बहुत आगे निकल गए हैं। उन्हें दूर गया देख फिरसे बर्फ़ आ-आकर आपके साधारण जहाज़ोंसे चिपट जाती है। आप अपने कप्तानसे पूछते हैं—'यह क्या हुआ?'

'अई, अई, बड़ी भूल हो गई।'—वे सर खुजलाते हुए उत्तर देते हैं—'लेनिन और स्तालिनके बनाए रास्तेसे हम ज़रा बाईं ओर चले गए थे।' फिर वे दूरबीनसे पीछेकी ओर देखकर कहते हैं—'बर्फ़के मैदानमें सब एक-सा दीखता है; यह भी मुमकिन है कि हम उनके रास्तेसे दाईं ओर चले आए हों।'

आपका जहाज़ बर्फ़में अटक गया है। बर्फ़ उसे चारों तरफ़से दबा रही है। कप्तान सीटी बजाते हैं और फिर आर्डर देते हैं। मशीन-घरका एक ख़लासी लोहेकी जंज़ीर पकड़कर खींचता है। जहाज़का भोंपा बज उठता है। उसके मुँहसे स्पष्ट आवाज़ भी नहीं निकलती। उसका स्वर बड़ा कातर हो गया है। आपके सामनेकी बर्फ़की चट्टान सर ऊँचा करके जैसे आपके जहाज़की नाकपर घूँसा तानकर कहती है—'बहुत फुद्-फुद् किया करते थे! अब?'

पर वह देखिए, 'स्तालिन' के पास तक आपके जहाज़की सिसक पहुँच गई है। वह पीछे लौट रहा है। इस बार पहलेकी अपेक्षा अधिक ज़ोरसे वह बर्फ़ रौंदता हुआ आ रहा है। उसके आपके पास पहुँच जानेपर बर्फ़का दबाव कम होने लगता है। बर्फ़ आपके जहाज़का गला दबा पाए, इसके पहले ही 'स्तालिन' उसकी धज्जियाँ उड़ा देता है। फिर 'स्तालिन' का कप्तान आपके जहाज़को हुक्म देता है—'कोई भय नहीं। हमारे ठीक पीछे-पीछे चले आओ।'

इसी प्रकार आपके जहाज़ोंका पूरा क़ाफ़िला उत्तर-समुद्र पारकर प्रशांत महासागरके फाटकपर आ पहुँचता है। आप उत्तर-समुद्र पार कर आए—बर्फ़के मैदान पीछे छूट गए। अब समुद्रमें लहरें हैं। वे छींटें उड़ा-उड़ाकर आपका स्वागत करती हैं। उन्हींके तालमें झूम-झूमकर आप उनकी अभ्यर्थना स्वीकार करते हैं। आपके इंजनकी भी आवाज़ बदल जाती है। मालूम पड़ता है, उसने जहाज़में दो पंख जोड़ दिए हों। अब 'लेनिन' और 'स्तालिन' ही आपके बहुत पीछे छूट गए। आपका कप्तान निश्चिन्तताका श्वास लेते हुए कहता है—'बेरिंग-प्रणाली—अब आगे बर्फ़ नहीं है!'

हम असलमें उत्तर-सागर पार कर आए।

७, योगेन्द्रवसाक रोड, बराहनगर ]

---

## श्रेय और प्रेय

अन्यच्छ्रेयोऽन्य दुतैव प्रेयस्ते
उभे नानार्थे पुरुष सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु—
र्भवति हीयतेऽर्थाद्य उप्रयो वृणीते।
—कठोपानिषद

अर्थात्—श्रेय (विद्या) और है तथा प्रेय (अविद्या) और ही है। वे दोनों विभिन्न प्रयोजनवाले होते हुए ही पुरुषोंको बाँधते हैं। उन दोनोंमें से श्रेयको ग्रहण करनेवाला शुभ होता है और जो प्रेयको वरण करता है, वह पुरुषार्थसे पतित हो जाता है।

## शिक्षित कौन है ?

एलबर्ट हुब्बार्ड

सब शिक्षित आदमी कालेजके ग्रेज्युएट नहीं हैं और न सब कालेजके ग्रेज्युएट शिक्षित हैं। शिक्षित आदमी वह है, जो मानव-सामजके लिए और अपने लिए उपयोगी है।

वास्तविक दृष्टिसे शिक्षित आदमी स्वाभाविक आदमी है और वास्तविक शिक्षा स्वाभाविक विकास। अनु०—'निर्मम'

# भूल ?

**श्री पृथ्वीनाथ शर्मा**

नरगिसकी क्यारीमें कुछ नए फूल खिले थे। उनकी मधुर-मादक गन्ध अपनी अलग सत्ता लिए हुए वाटिकामें इधर-उधर लहराते दूसरे फूल-पौधोंके साथ छेड़-छाड़ करती हुई बिखर रही थी। सूर्यकी कुछ रश्मियाँ मानो आँख बचाकर उन सुनहले-रूपहले फूलोंके साथ खेल रही थीं। मैं यही सब-कुछ देखनेमें तन्मय था कि मेरे ऊपर किसी मनुष्यकी छाया पड़ी। मैं चौंक पड़ा और मुड़कर पीछे देखा।

'मुझे पहचानते हो?'—नवागन्तुकने मुझे अपनी छोटी-छोटी आँखोंसे चीरते हुए पूछा।

'तुम्हें?'—मैंने उसे सिरसे पाँवतक देखते हुए कहा। चमचमाते पेटेंट लेदरके जूते, सिल्कके मोज़े, गहरे नीले रंगका सूट, बड़ी-बड़ी सुनहली तितलियोंसे छाई हुई नीली नेकटाई और ब्रिलक्रीम द्वारा सँवारे हुए लम्बे बाल। मैंने सोचा—क्या यह मनोज तो नहीं है, जो कालेजके दिनोंमें भिखारियोंकी पंक्ति कभी छोड़ नहीं पाया था? अभी दो वर्ष पहले जो एक रुपया पानेके लिए मेरे यहाँ पाँच मील चलकर आया था। मैं विस्मित स्वरमें बोला—'यदि कोई दो वर्षमें रंकसे राजा हो सकता है, तो तुम मनोज हो!'

'बहुत ख़ूब! और सचमुच मैं इस समय राजा हूँ। टूटे हुए जूतों और फटे हुए वस्त्रोंका जीवन सुदूर अतीतके एक कोनेमें सदाके लिए छिपा आया हूँ।'—मनोजने कहा।

मैंने उसके कीकरके छिलके-से ऊबड़-खाबड़ चेहरेको—जिसे पश्चिमी प्रसाधनों द्वारा ठीक-ठाक करनेका विफल प्रयत्न किया गया था—ग़ौरसे देखा और आश्चर्यसे पूछा—'लेकिन यह कायापलट हुई कैसे?'

'यह सब-कुछ जादूसे नहीं हुआ, बल्कि इस अद्भुत मस्तिष्ककी करामात है।'—अपनी तर्जनी अंगुली द्वारा अपना ललाट छूते हुए उसने जवाब दिया—'जिस रुपएके लिए कभी तुम्हारे-जैसे लोगोंके आगे हाथ पसारना पड़ता था, उसे मैं अब फूँक सकता हूँ, फूँक!'

'इतने न उड़ो।'—मैंने ज़रा मुस्कराते हुए कहा—जिस शेयर-मार्केटने तुम्हें बनाया है, वह बरबाद भी कर सकता है, यह न भूलो।'

'शेयर-मार्केट!'—वह अपने होंठोंको बल देकर ज़रा मुस्कराया और बोला—'तुम भी पागलोंकी-सी बातें करते हो, नरेश भैया!' यह कहकर वह चुप हो गया। कुछ देर इधर-उधर टहला। उड़ती हुई दृष्टिसे वाटिकामें खिले हुए फूलोंको एक बार देखा, फिर लानमें पड़ी हुई कुर्सियोंकी ओर देखने लगा। कुछ क्षण बाद वह आगे बढ़ा और एक पास ही पड़ी हुई आरामकुर्सीपर बैठते हुए गम्भीर स्वरमें बोला—'तुम शायद यह समझते होगे कि इस धन-दौलतसे मैं आनन्द-विभोर हो उठा हूँ; पर बात ऐसी नहीं है। मेरे हृदयमें सदा एक बेचैनी छाई रहती है। रातें बड़ी बेचैनीसे तड़पकर काटता हूँ।'

'इसका तो सीधा इलाज है।'

'क्या?'

'विवाह!'

'विवाह! असम्भव!'

'असम्भव क्यों?'

'क्योंकि मेरे निकट नारी एक भोग-सामग्री नहीं है',—मनोज एक-एक शब्दपर इस तरह ज़ोर देता हुआ कहने लगा, मानो कोई पुस्तक पढ़ रहा हो—'बल्कि पूजनीय देवी है, महान श्रद्धाकी वस्तु है।'

मैं ठहाका मारकर हँसा और बोला—'पड़ गई हो जो आदत बचपनमें, वह दूर भला कब होती है? मालूम होता है, अब शेक्सपियरसे मन ऊब गया है। आजकल किस लेखककी छीछालेदर कर रहे हो? सच बताओ, ये वाक्य तुमने किस पुस्तकसे उड़ाए हैं?'

'पुस्तकसे',—वह किंचित् उत्तेजित होकर कुर्सीसे उठ खड़ा हुआ और बोला—'यह भी ख़ूब रही! अच्छा बोलो, सिगरेट पियोगे?'

'नहीं।'—मैंने कहा।

उसने जेबसे एक सुनहला सिगरेट-केस निकाला।

सिगरेट-केसके साथ ही दो-चार सौ-सौके नोट भी उसके हाथमें आ गए। ज़रा तिरछी नज़रसे मेरी ओर देखते हुए उसने लापरवाहीसे उन्हें जेबमें रखा और सिगरेट-केसमें से एक सिगरेट निकालकर सुलगाया। फिर उसे होंठोंके एक कोनेमें दबाकर बोला—'लो, अब चलता हूँ।'

'इतनी जल्दी ही ?'

'हाँ।'

हीरेकी तीन-चार अंगूठियाँ प्रदर्शित करते हुए दोनों हाथ जोड़कर मनोजने मुझे नमस्कार किया और जिस राह आया था, द्रुत गतिसे उसी राहसे लौट गया।

- २ -

मनोजके चले जानेपर मैं ज्योंका त्यों खड़ा रहा। अब तक धूप चारों ओर फैल चुकी थी। आध क्षण मैंने उसकी ओर देखा, फिर मेरे विचार मुझे मनोजकी ओर खींच ले चले।

आजसे २० वर्ष पहले मुझसे उसका साक्षात्कार हुआ था। मुझे ख़ूब याद है वह दिन, जब फटा हुआ पाजामा और कमीज़, टूटा हुआ जूता और चमचमाती लाल मख़मलकी नई टोपी पहने उसने क्लास-रूममें प्रवेश किया था। उसका यह विचित्र लिबास देखकर सबके सब विद्यार्थी खिलखिलाकर हँस पड़े थे; पर मनोज अविचलित रहा—ज़रा भी नहीं घबराया। उसने अपनी टोपी उतार एक बार ध्यानसे उसकी ओर देखा, फिर अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। मेरे पासवाला स्थान ख़ाली था। वह चुपकेसे आकर वहीं बैठ गया और मुस्कराकर मुझे नमस्कार किया। उसी दिनसे हम दोनों मैत्री-बन्धनमें बँध गए।

आज २० वर्षके बाद फिर उसी नाटकीय ढंगसे उसने प्रवेश किया था और वही मयूर-वृत्ति दिखाई थी। उस दिन उसने अपने फटे हुए कुर्ते और टूटे हुए जूतेको उस मख़मली टोपीसे छिपानेका विफल प्रयत्न किया था। और आज ? कौन जाने इस भड़कीली पोशाक द्वारा अपने टूटे हुए हृदयको छिपानेका प्रयत्न कर रहा हो ? टूटा हुआ हृदय ! लेकिन क्यों ? यद्यपि उसने इस बातकी कभी किसीसे शिकायत नहीं की थी; पर कौन जाने हृदयपर कहीं चोट खा ही बैठा हो।

'क्या हो रहा है, भैया ?'—शैलने आकर मुझे चौंका दिया।

'आओ शैल ! कहाँसे आ रही हो ?'

'बाज़ारसे कुछ चीज़ें ख़रीदनेको निकली थी। सोचा, ज़रा इधर भी होती चलूँ। कहिए, क्या हो रहा है ?'

'कुछ ख़ास तो नहीं। कल्पनाके आवरणमें एक कुरूपताको सौन्दर्य प्रदान करनेकी कोशिश कर रहा था।'

'क्या मतलब ?'

'क्या इधर आते समय कोठीसे निकलते हुए तुमने किसी आदमीको नहीं देखा ?'

'हाँ, एक बड़े सजे-धजे महानुभाव अपनी ही धुनमें मस्त बाहर जाते हुए दिखे तो ज़रूर थे। क्यों, क्या बात है ?'

'जानती हो, वह कौन था ?'

'नहीं। कौन था वह ?'

'मनोज।'

'मनोज !'

'हाँ, वही था।'—मैंने कहा। शैल मुझसे दो वर्ष छोटी थी। कालेजमें हम दोनों लगभग साथ ही रहते थे, अतः शैल मनोजको अच्छी तरह जानती थी।

किंचित् आश्चर्यसे उसने कहा—'लेकिन मैं तो उसे पहचान ही नहीं सकी। ख़ैर। पर सौन्दर्य और कुरूपतासे उसका सम्बन्ध ?'

'मैं यह सोच रहा था कि शायद वे भड़कीले वस्त्र उसने अपने टूटे हुए हृदयको छिपानेके लिए धारण किए हों।'

'मनोज और टूटा हुआ हृदय !' शैल खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—'भैया, आप जीवनमें छायावाद लानेका प्रयत्न क्यों कर रहे हैं ? उसे तो हिन्दी-कविताके लिए ही रहने दीजिए।'

'शैल, यह तुम क्या कह रही हो ?'

'मैं ठीक ही कह रही हूँ, भैया ! मनोज स्वभावतः एक अभिनेता है। पहले दिन क्लास-रूममें वह फटे हुए कपड़े और मख़मली टोपी दरिद्रताके कारण नहीं, बल्कि अपनी नाटकीय प्रवृत्तिके कारण ही पहनकर आया था। और आजकी उसकी वेश-भूषा भी उसी प्रवृत्तिकी परि-चायिका है। ख़ैर, छोड़िए भी इन बातोंको।' एक क्षण रुककर वह बोली—'अब देर हो रही है, भाभीजीसे भी मिल आऊँ।'

यह कहकर वह दूसरी ओर चली गई।

- ३ -

इसके बाद न जाने कितने दिनों तक मनोजके रहस्यमय व्यक्तित्वने मेरे भावोंसे छेड़-छाड़ की। पर शनैः-शनैः उसका चित्र स्मृति-पटलपर धुँधला होता जाने लगा—यहाँ तक कि जब कोई दो वर्ष बाद एक दिन फिर वह मेरे सामने आकर खड़ा हुआ, तो मैं उसे भूल-सा चुका था।

कलकत्तेके दक्षिणमें एक झील है। एक दिन सूर्यास्तके समय उसीके किनारे एक बेंचपर बैठा हुआ मैं लताओंमें उलझे कुछ वृक्षोंके पीछे अस्त होते हुए सूर्यकी आभा देखनेमें तन्मय था। घूमनेवालोंके दलके दल इस हृदयहारी दृश्यसे पीठ मोड़कर अपनी बढ़ती हुई तोंदको घटानेके विफल प्रयत्नमें खट-खट करते हुए मेरे पाससे तेज़ीसे जैसे उड़े चले जा रहे थे। पर मैं इन सबसे बेख़बर उस सुनहले गोलेको रक्त-वर्णमें परिवर्त्तित हो चारों ओर अपना सौन्दर्य फैलाकर धीरे-धीरे अदृश्य होते हुए देख रहा था। इसी समय अचानक किसीने मेरे कन्धेपर हाथ रखा। मैंने चौंककर पीछे देखा और आश्चर्यसे पूछा—'तुम ?'

'हाँ, मैं।'—कहकर मनोज मेरे पास बेंचपर बैठ गया और अपने कोटकी जेबसे एक बीड़ी और दियासलाई निकाली। बीड़ी सुलगाकर उसने दियासलाई वापस जेबमें रख ली।

मैंने सिरसे पाँव तक उसे देखा। आज फिर वही टूटा हुआ जूता था, फटी हुई धोती, पुराना कुर्त्ता, घिसा हुआ कोट और अँगूठी-रहित अँगुलियाँ! केश उसके रूखे और बिखरे हुए थे। मेरे निरीक्षणकी कुछ भी परवाह न कर वह उस दमड़ीकी बीड़ीके कश खींचने लगा।

'आख़िर वही हुआ न ?'—मैंने ज़रा व्यंग्यसे कहा।

'क्या ?'

'जिसकी मैंने तुम्हें चेतावनी दी थी।'

'चेतावनी ?'

'हाँ भूल गए क्या—वही शेयर-मार्केटवाली बात ?'

'शेयर-मार्केट !'—वह ज़ोरसे हँसा और फिर कहा—'मनोज शेयर-मार्केटसे ऊँचा—बहुत ऊँचा—उठ चुका है।' यह कहकर उसने कोटके अन्दरकी जेबमें हाथ डाला और नोटोंका एक बंडल निकालकर बेंचपर पटकता हुआ बोला—'यह देखो!'

सचमुच नोटोंका बंडल देखकर मैं अवाक् रह गया और बोला—'तब फिर इन सबके होते हुए भी तुम इस तरह फटे हाल क्यों फिर रहे हो ?'

'क्यों फिर रहा हूँ ?'—मनोजने आधा क्षण झीलमें उछलती-कूदती मछलियोंको देखा, फिर एक आह भरकर बोला—'इसलिए कि मैं अपने-आपको धोखा नहीं दे सकता। मैं अपने-आपको भीतर-बाहरसे एक रूपमें देखना चाहता हूँ। टूटे हुए हृदयपर फटे हुए वस्त्र ही शोभा देते हैं।'

'टूटा हुआ हृदय !'—मैं उछल पड़ा। आख़िर मैं भूल नहीं कर रहा था। मैंने पूछा—'इसका क्या मतलब ?'

'मतलब ?'—मनोज उठकर खड़ा हो गया। दो-चार क़दम इधर-उधर टहलकर वह फिर बेंचपर आ बैठा और बोला—'आज तुमसे कुछ न छुपाऊँगा। अच्छा, लो सुनो।'

'बहुत अच्छा।'—मैं प्रसन्नतासे बोला।

- ४ -

'होश सँभालते ही'—जेबसे एक और बीड़ी निकालकर उसे सुलगाते हुए मनोजने कहना आरम्भ किया—'मैं स्वप्न देखने लगा था। शुरूसे ही नारीके प्रति मेरे हृदयमें असीम श्रद्धाका भाव रहा है। मेरा सबसे महान स्वप्न यही था कि मुझे एक ऐसी देवी मिले, जो वासनासे निर्लिप्त हो और जिसकी पूजा करते हुए मैं अघाऊँ नहीं। और एक दिन सौभाग्यसे मेरा यह स्वप्न यथार्थतामें परिणत भी हो गया।'

'तो क्या तुम्हें ऐसी नारी मिल गई ?'

'हाँ, वह नारी नहीं, देवी थी। ओस-सी निर्मल, गौरीशंकरके हिम-सी पवित्र, श्वेत कमल-सी कोमल और लावण्यमयी तथा आँसू-सी सत्य।'

'आज तो ख़ूब कवित्वमय भाषामें उलझते जा रहे हो।'

मनोजने मेरे इस कथनकी कोई परवाह नहीं की और कहता चला गया—'आरम्भमें तो मैं उसे मन ही मन नमस्कार कर लिया करता था; पर धीरे-धीरे उसके निकट जानेका साहस भी मुझमें आने लगा। अंततः वह मेरे आदर्शवादसे चमत्कृत हुई और उसकी मुझपर कृपा हो

गई। इसपर मेरी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। छायाकी तरह मैं उसके आगे-पीछे चक्कर काटने लगा। उन दिनों मैं किस अनूठे लोकमें विचरण कर रहा था, तुम्हें क्या बताऊँ ! किन्तु एक दिन सब छूमन्तर हो गया।'

'वह कैसे ?'

'वह घटना भी इसी झीलके किनारे घटी थी। उस पार वह सामनेवाली बेंच देख रहे हो, जिसपर एक नारी और एक पुरुष बैठे हैं।'

'हाँ।'

'ठीक इसी तरह उस रात उसी बेंचपर हम दोनों भी बैठे थे। पूर्णिमाके चाँदकी चाँदनी तारोंसे खेलती हुई झीलकी लहरोंपर थिरक रही थी। वृक्षोंसे अठखेलियाँ करती हुई मन्द-मन्द हवा हमारी देहोंको छूती हुई बह रही थी। बहुत दूर कोई बाँसकी बाँसुरी द्वारा मधुर तानें छेड़ रहा था। कुछ देर तक वह देवी चाँदकी ओर देखती रही, पवनके स्पर्शको अनुभव करती रही और बाँसुरीकी तानको सुनती रही। फिर एकाएक वह उठ खड़ी हुई और आवेशमें बोली—'यह सब छल है !'

'क्या ?'—मैंने ज़रा डरते-डरते पूछा।

'तुम्हारा आदर्शवाद !'—वह दाँत पीसती हुई बोली—'इसका सुनहला माया-जाल मेरे चारों ओर फैलाकर तुम मुझे हृदयहीन पत्थरकी देवी बना रहे हो।'

'पर ज़रा यह तो देखो कि इसमें महानता कितनी है ?'

'महानता ! मनुष्यता खोकर महान बननेसे क्या लाभ ? तुम महानताके लिए भटकते फिरो। मैं तो आजसे सीधी-सादी मानवताके पथपर चलूँगी।'

'यह कह मुझे अवाक्-सा छोड़कर वह तेज़ीसे भागती हुई-सी चली गई।'

'क्या फिर कभी भी उससे तुम्हारी भेंट नहीं हुई ?' मैंने ज़रा उत्सुकतासे पूछा।

'कई बार हुई ; किन्तु पथ-भ्रान्त पथिक मेरे अब किस कामका ?'—उसने एक दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा।

'ख़ैर, कुछ भी हो, मेरा अनुमान तो ठीक निकला।' मैं अपनी क्षुद्र विजयको मनोजकी दुःखान्त कहानीके बाद भी छिपा न सका। फिर मैंने मनोजसे कहा—'अभी जाकर शैलको समझाता हूँ कि तुम्हारे बारेमें उसकी धारणा बिल्कुल ग़लत है।'

'क्या है उसकी धारणा मेरे बारेमें ?'

'उसका ख़याल है कि तुम्हारी बातें तथ्यहीन हुआ करती हैं और तुम स्वभावतः एक अभिनेता हो।'

'अभिनेता ! बहुत ख़ूब !'—मनोज मुस्कराया और बोला—'कौन जाने, उसका ख़याल ही ठीक हो ; किन्तु कहीं उसे मेरी कहानी सुनानेकी भूल मत कर बैठना।'

'भूल ! क्यों ?'—मैं आश्चर्यसे उसकी ओर ताकने लगा।

उसने मेरे प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया। चुपकेसे उठा और चारों ओर फैले हुए जन-समूहमें मिलकर देखते ही देखते मेरी आँखोंसे ओझल हो गया।

३२९-बी, सदर्न-एवेन्यू, कलकत्ता ]

---

# अमिट प्यास

**श्री सुधीन्द्र**

दे दिया मानस मुझे तुमने अमिट पर प्यास भी दी !

पुतलियों को दे दिए तुमने अमित रंगीन सपने,
कर सके तन और मन सुधि-चित्र वे सच भी न अपने।
वेदना की चुभन में ही यह अनंत मिठास भी दी !
दे दिया मानस मुझे तुमने अमिट पर प्यास भी दी !

इस लपट में यदि गला लूँ मैं कलुषमय स्वर्ण तन का,
आभरण तो क्या बना लोगे न कुन्दन-रूप मन का ?
प्रलय-आँधी के हृदय में सदय मलय वतास भी दी !
दे दिया मानस मुझे तुमने अमिट पर प्यास भी दी !

दे दिया दुर्गम विषम पथ लक्ष्य जिसके तुम निकट ही !
बन गए बाधा नदी की धार को ये युगल तट ही !
मुक्त सीमाहीन को यह बन्धनों-सी साँस भी दी !
दे दिया मानस मुझे तुमने अमिट पर प्यास भी दी !

# मौतके व्यवसायी

श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

आधुनिक युद्धोंके रहस्यमय पहलुओंका अध्ययन करनेसे हमें इस नतीजेपर आना पड़ता है कि प्रत्येक राष्ट्र स्वयं अपने प्रमुख शत्रुको विध्वंसक हथियारोंसे सुसज्जित करनेमें प्रयत्नशील रहा है। ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रान्स और अमेरिकाने हिटलरशाहीकी आसुरी शक्तियोंको सशस्त्र करनेमें कुछ कम हिस्सा नहीं लिया है। उसी प्रकार जर्मन पूँजीपतियोंने भी अपने लाभके लिए 'घृणित कम्युनिस्टों' की सोवियत सरकारको अनेक प्रकारके काफ़ी अस्त्र-शस्त्र बेचे हैं। यद्यपि संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका समय-समयपर जापानी ख़तरेका अनुमान लगाकर अपना भय प्रदर्शित करता रहा है, तथापि जापानी शस्त्रागारोंको भरनेके लिए कच्चे माल और 'पेटेन्ट्स' आदिकी प्राप्ति जापानको अमेरिकासे ही सर्वाधिक होती रही है। जिस समय इटलीने अबीसीनियापर हमला किया था, उस समय ब्रिटेन और इटलीके बीच लड़ाई छिड़ जानेकी बहुतेरी सम्भवनाएँ पैदा हो गई थीं; लेकिन फिर भी विकर्सटर्नी तथा अन्य ब्रिटिश हथियार बनानेवाले कारख़ानोंने इटलीको हथियार भेजना जारी ही रखा।

फ्रैंकलिन रूज़वेल्टने एक बार कहा था—'सरकारोंको शस्त्रीकरणकी उन्मत्त दौड़में शामिल होनेके योग्य बनानेके उद्देश्यसे कई देशोंकी जनतापर ग़रीबी और भूखकी क़ीमतपर भी टैक्स लगाए जा रहे हैं। शान्तिके लिए इस महान ख़तरेका उत्तरदायित्व विनाशके व्यवसाइयों और युद्ध-सामग्रीके उत्पादकोंकी नियंत्रणहीनतापर भी कुछ कम नहीं है।'

मौतके व्यवसाइयोंकी इस अन्तर्राष्ट्रीय होड़की ओर हमारा ध्यान आम तौरसे तैयार हथियारों अथवा लोहेके टुकड़ों, ताँबे, मैंगानीज़ आदि जैसे कच्चे मालोंकी बिक्रीके द्वारा ही आकृष्ट होता है, और निश्चय ही इनका महत्त्व भी कम नहीं है। किन्तु शस्त्रीकरणकी इस अन्तर्राष्ट्रीयताके और भी अधिक महत्वपूर्ण ढंग हैं, उसकी और भी विशेष प्रणालियाँ हैं, जिनपर साधारणतः लोगोंका ध्यान नहीं जाता। इनमें 'अन्तर्राष्ट्रीय आविष्कार सर्वाधिकारी व्यवसाय-संघ' (International Patent Pools), शाखा फ़ैक्टरियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय लाइसेन्स, पूँजीका अन्तर्राष्ट्रीय स्वामित्व एवं संचालकत्व आदि मुख्य हैं।

हाउस आफ़ कामन्सकी 'म्युनिशन कमिटी' और 'पेटेन्ट पूल्स कमिटी' ने अपनी रिपोर्टोंमें अन्तर्राष्ट्रीय आविष्कार-सम्बन्धी सर्वाधिकारवाले व्यवसाय-संघोंके बारेमें कई दिलचस्प बातें बतलाई थीं। इस प्रणालीके कार्य करनेका ढंग बहुत ही साधारण है। मान लीजिए कि जर्मनी, इँग्लैण्ड, फ्रान्स और अमेरिकाके रासायनिक द्रव्योंके उत्पादकोंका एक दल यह निश्चय करता है कि वे लोग बिना अस्वस्थ पारस्परिक होड़के ही अच्छा मुनाफ़ा कमा सकते हैं। तदनुसार ही वे लोग आपसमें राज़ीनामा कर लेते हैं कि उनके व्यवसाय-संघका प्रत्येक सदस्य एक निश्चित रायल्टीकी अदायगीकी शर्तपर अपने-अपने फ़र्मोंकी नवीनतम यांत्रिक उन्नति और सिद्धिको एक-दूसरेके लिए प्राप्य बना देंगे। अक्सर ये लोग अपने-अपने विक्रय क्षेत्र बाँट लेते हैं, और इस प्रकार बड़ी सावधानीसे सारा संसार रक्षित विक्रय-क्षेत्रोंमें बँट जाता है, जिनमें विभिन्न कम्पनियाँ अलग-अलग अपने काम करती हैं। हर कम्पनी अपनी बिक्रीपर अन्य कम्पनियोंको एक निश्चित कमीशन देती जाती है। मान लीजिए कि एक अमेरिकन रासायनिक द्रव्य-उत्पादकने एक नए विस्फोटक पदार्थ अथवा ज़हरीली गैसका आविष्कार किया है, जो नर-संहारके कार्यके लिए अत्यन्त प्रभावोत्पादक साबित हो सकता है, और यह नई चीज़ युद्धके अवसरपर किसी भी सरकारके लिए निश्चय ही असाधारण लाभदायक साबित हो सकती है। लेकिन पेटेन्ट व्यवसाय-संघोंके नियमानुसार उसपर अमेरिकन सरकारका ही एकमात्र अधिकार न होकर संघके सभी सदस्यों—जर्मन, जापानी, ब्रिटिश, फ्रेंच आदि—का समान अधिकार हो जाता है। यही प्रणाली मशीनगनों, हवाई-जहाज़ों तथा अन्य छोटे-मोटे कई युद्ध-यंत्रोंके बारेमें भी कार्यान्वित होती रहती है।

अन्तर्राष्ट्रीय लाइसेन्सका भी यही उद्देश्य होता है।

अमेरिकनों द्वारा आविष्कृत और पेटेन्ट कराए हुए हवाई-जहाज़ोंके इंजन बनानेका लाइसेन्स एक अच्छी ख़ासी रक़म अदा करके जर्मनी, जापान आदि अन्य देशोंके कारख़ानेदार ले लेते हैं तथा वे विशेष इंजन सभी देशोंमें बनने लगते हैं। इस प्रकारकी व्यवस्था कई प्रकारके पेटेन्ट कराए हुए पनडुब्बे जहाज़ोंके बारेमें भी की गई है। युद्ध-सम्बन्धी नवीनतम मशीनोंके निर्माणके लाइसेन्स प्राप्त करना आज एक अत्यन्त साधारण बात हो गई है। कोई भी व्यक्ति पेटेन्ट-आफ़िसमें जाकर वहाँके रजिस्टर उलटकर नवीनतम आविष्कारोंकी सूची देख सकता है, और उसमें से अपने मतलबकी कोई भी चीज़ तलाशकर वह उसका उत्पादन-अधिकार बहुत ही आसानीसे हासिल कर सकता है। यह व्यवस्था हरएक व्यावसायिक देशमें प्रचलित है। विश्व-शान्तिके सम्बन्धमें कार्य करनेवाले प्रसिद्ध बेल्जियन श्री जार्ज लॉर्फ़ेन्हरने अपने युद्ध-विरोधी बुलेटिन 'दाकुमेन्तेशियों ऐन्ती ज़ेर्रे' के कई अंकोंमें लगातार उन पेटेन्टोंकी सूची छापी थी, जो फ्रांसीसी लोगोंने अन्य देशोंके युद्ध-सामग्री-उत्पादकोंके हाथ बेचे थे।

मृत्यु-व्यवसायकी इस अन्तर्राष्ट्रीय दौड़में शाखा फ़ैक्टरियाँ और भी अधिक काम करती हैं। किसी भी बहुत बड़ी हथियार बनानेवाली फ़ैक्टरीके नएसे नए पेटेन्टको दूसरे देशोंके लिए प्राप्य बनानेमें शाखा फ़ैक्टरियाँ बहुत आसानी पैदा कर देती हैं। १९३७ में प्रसिद्ध फ्रांसीसी 'युज़ेने रिनाल कम्पनी' के जापानमें शाखा स्थापित करनेके प्रयत्नोंके बारेमें सबको आज जानकारी है। लड़ाईके हवाई-जहाज़, टैंक, मोटर आदि बनानेवाली उक्त कम्पनीने जापानकी 'शोवारिनाल इन्डस्ट्री कम्पनी' के साथ अपने एक हज़ारके लगभग सारे पेटेन्टोंको जापानी शाखाके हाथ हस्तांतरित कर देनेका राज़ीनामा किया। न केवल इतना ही, वरन यह भी तय पाया कि उक्त फ्रांसीसी कम्पनी भविष्यमें भी जो पेटेन्ट ईजाद करेगी, उसे जापानी शाखाके लिए सुलभ कर देगी। इस प्रकारके हज़ारों-लाखों व्यावसायिक राज़ीनामे आज संसारमें कार्यान्वित किए जा रहे हैं।

इन सबके अतिरिक्त और इन सबसे अधिक रहस्यमय अस्त्र-शस्त्र बनानेवाले कारख़ानोंकी पूँजी—मूलधन—का अन्तर्राष्ट्रीय स्वामित्व और संचालकत्व होता है। संसारके कितने ही ऐसे कारख़ानोंका स्वामित्व आज भी रहस्य ही बना हुआ है। कई देशोंमें ऐसा नियम है कि क़ानूनन इस प्रकारके कारख़ानोंके नियंत्रणका बहुलांश अपने ही देशके हाथमें रहेगा; किन्तु संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका-जैसे एकाधिक देशोंमें इस तरहका कोई बन्धन नहीं है—न तो प्रत्यक्ष और न ही परोक्ष। कई मामलोंमें हथियार बनानेवाले कारख़ानोंका अन्तर्राष्ट्रीय स्वामित्व जग ज़ाहिर भी हो गया है। जैसे स्वेडनके 'बोफ़ोर्स वर्क्स' तथा बेल्जियम और स्वीज़रलैण्डकी कई कम्पनियोंके ऊपर जर्मनीका नियंत्रण आज किससे छिपा रह गया है, जब कि उक्त देशोंके किसान-मज़दूर नात्सी बर्बरताके शिकार उन्हीं कारख़ानोंके बलपर बनाए जा रहे हैं। भूगोलका प्रत्येक पाठक जानता है कि इस महायुद्धसे पूर्वकी जर्मन-फ्रेंच-सीमापर कोयले और लोहेकी खानें बहुतायतसे हैं। स्वभावतः वह ख़ित्ता लोहेके कारख़ानों और वाष्प भट्टियोंसे भरा हुआ है, जिनका स्वामित्व अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीके ही अधीन है। जब कभी भी बड़े-बड़े युद्ध-यन्त्रोत्पादक कारख़ानोंके पूँजीपतियोंका पता लगानेकी कोशिशें की गई हैं, तो वे अन्तर्राष्ट्रीय पैमानेपर काम करनेवाले नामी और संसार-प्रसिद्ध पूँजीपतियोंके धनसे चलनेवाले बैंक तथा गुप्त प्रतिनिधि कम्पनियाँ ही निकली हैं। इन कारख़ानोंके व्यवसायका अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र उनके प्रतिनिधि-संचालक-मंडलके सम्मानित सदस्योंका नाम देखकर ही समझ लिया जा सकता है। इन संचालक-मंडलोंमें अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीका पूर्ण रूपसे प्रतिनिधित्व होता हुआ आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

अब अगर इन रहस्यमय तथ्योंके प्रकाशमें इस युद्ध मात्रपर एक नज़र डालें, तो हमें यह समझनेमें देर न लगेगी कि जब तक हथियारोंका यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय चलता रहेगा, तब तक हर देश अपने-आपसे लड़ता रहेगा, हर राष्ट्र अपने ही वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत, अपने ही द्वारा लाइसेन्स दिए गए और यहाँ तक कि अपनी ही फ़ैक्टरियोंमें उत्पादित युद्ध-सामग्रियों द्वारा मौतके घाट उतारे जानेके लिए अन्तर्राष्ट्रीय युद्धोंमें अपने आदमी भेजता रहेगा। न केवल सैनिकोंके लिए ही, वरन् प्रत्येक नागरिकके लिए यह बात तरस खानेकी है; किन्तु अमंगल-मयी पूँजीवादी व्यवस्थाके गर्भमें ये चीज़ें अनिवार्यतः छिपी रहती हैं, और इसीलिए आजके ब्रिटिश मंत्रिमंडलके

प्रचार-मंत्री अल्फ्रेड डफ़ कूपर महोदयने एक बार कहा था—'हम लोगोंसे कहा जाता है कि ब्रिटिश सैनिक ब्रिटिश गोलियोंसे ही मारे गए हैं ; लेकिन सैनिकोंके लिए इसका महत्व अत्यन्त नगण्य है कि आया गोलियाँ कहाँसे आती हैं।' लेकिन इसके साथ ही पाठकोंको आश्चर्य हुए बिना न रहेगा कि पूँजीवादी शासकोंका यह विचित्र रवैया उस समय उन्हें एकदम विस्मृत हो जाता है, जब युद्धके नए इंजनों और मशीनोंके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेकी कोशिश करते हुए कोई शत्रु-पक्षका जासूस पकड़ा जाता है। निश्चय ही आजकी सभ्य दुनियामें इस मृत्यु-व्यवसायकी न्यायता सिद्ध करनेका दावा मुट्ठी भर निहित स्वार्थी-वर्गके लोगोंको छोड़कर और कोई नहीं कर सकता।

युद्ध-सामग्रियोंकी बिक्री व्यक्तिगत मुनाफ़ेके लिए ही की जाती है, चाहे उसका अर्थ यही क्यों न होता हो कि ब्रिटिश या अमेरिकन अथवा कोई भी यह व्यवसाय करनेवाली कम्पनी अपना उक्त मुनाफ़ा अपने ही देशवासी सैनिकोंको मारकर प्राप्त करती है, और यह मुनाफ़ा कमानेका सिलसिला, क्या शान्ति और क्या युद्ध-काल, सदा ही चला करता है। अकेले सन् १९३४ से १९३६ तकके तीन सालोंमें युद्ध-सामग्री बनानेवाली ब्रिटिश कम्पनियोंका मुनाफ़ा १३५ प्रतिशत बढ़ा था। ब्रिटिश जनतासे यह कहा गया कि चूँकि देश एक राष्ट्रीय संकटके दौरसे गुज़र रहा है, इसलिए शस्त्रीकरणपर होनेवाले व्ययका ठोस आधार पैदा करनेके लिए यह आवश्यक है कि उक्त कम्पनियोंका मुनाफ़ा बढ़े। हथियारोंके उत्पादकों और व्यवसाइयोंके लिए यह राष्ट्रीय संकटका नारा-मात्र मुनाफ़ा कमानेका एक स्वर्ण सुअवसर था। आजकी इस युद्धोन्मत्त दुनियामें इसी तरह लगभग सारे पूँजीवादी देशमें होता रहता है।

मुनाफ़ेके लाभमें ये व्यवसायी और भी कई प्रकारकी नीतियाँ और छल-छद्म इस्तेमाल करते हैं—जैसे, प्रेसपर प्रभाव एवं नियंत्रण स्थापित करनेकी चेष्टा, सरकारी कर्मचारियोंको रिश्वतें देना, युद्धातंकको बढ़ाने और फैलानेकी कोशिश करना, नौ-सेना और युद्ध-विभागके उच्चाधिकारियोंमें से अपने व्यवसायके संचालक ( जो मुनाफ़ेका एक अंश पानेके अधिकारी होते हैं ) होनेका प्रयत्न करना आदि। पिछले कुछ वर्षोंमें ये और अन्य बहुत-से हथकंडे जो इन मृत्यु-व्यवसाइयों द्वारा व्यवहृत होते रहे हैं, काफ़ी प्रकाशमें आ चुके हैं। सच तो यह है कि यह व्यवसाय ही देशभक्तिके नामपर एक लज्जास्पद एवं क्रूर स्वांग है, जिसका औचित्य सिद्ध करनेका साहस इन कम्पनियोंके संसार-प्रसिद्ध संचालक और रूइरवाँ लोग भी नहीं कर सके हैं।

इन असह्य परिस्थितियोंका सामना करनेके उद्देश्यसे इस महायुद्धसे पूर्व कतिपय सरकारोंने इन व्यवसायोंपर एक हद तक नियंत्रण स्थापित करनेकी ओर क़दम उठाया था और किसी विशेष कमिटी या विभागके ज़िम्मे इन व्यवसायोंकी देखरेखका काम सौंप दिया था। ये सरकारी विभाग वैज्ञानिक आविष्कारोंके निर्यातका लाइसेन्स देने और इस बातका ब्योरा रखनेका काम करते हैं कि कौन-कौन-से आविष्कार बाहर जा रहे हैं और कहाँ ले जाए जा रहे हैं। राष्ट्र-संघने भी जेनेवामें एक इस प्रकारके कामोंके लिए विभाग खोल रखा था, जो विभिन्न देशोंसे उक्त प्रकारके ब्योरे एकत्रित करके रखनेका काम करता था। किन्तु अनुभवसे यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो गई है कि जब तक देशोंके शासन-सूत्र निहित स्वार्थवालोंके हाथमें रहेंगे, तब तक हथियारों और अन्य युद्ध-सामग्रियोंके अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसायपर किसी तरहका भी नियंत्रण स्थापित करनेकी चेष्टा एक दिलचस्प मज़ाक़से अधिक महत्वपूर्ण नहीं साबित होगी। निहित स्वार्थ-वर्गवालों द्वारा संचालित होनेवाली सरकारोंने प्रदर्शनके लिए नियंत्रण-विभाग अवश्य क़ायम किए ; किन्तु कार्यतः सारी अवस्था जैसीकी तैसी ही रह गई, क्योंकि निर्यात-व्यवसायको हर हालतमें उचित और न्यायसंगत माननेवाले सिद्धान्तके अन्तर्गत काम करनेवाली संस्थाएँ इस दिशामें किसी हालतमें प्रभावपूर्ण ढंगसे काम नहीं कर सकतीं, और इसीलिए नियंत्रण विभागोंके क़ायम हो जानेके बावजूद भी शायद ही ऐसा कभी हो पाया हो कि किसी वैज्ञानिक आविष्कारके निर्यातके लाइसेन्सके लिए दी गई दरख़्वास्त अस्वीकृत कर दी गई हो।

इसके अतिरिक्त सरकारी नियंत्रणका परिहार कर सकना भी बहुत आसान काम है। 'म्युनिशन-कमेटी' की रिपोर्टसे पता चलता है कि धनलोलुप और सिद्धान्तहीन व्यवसायी निर्यात-रजिस्टरोंमें खुले ख़ज़ाने हथियारों और युद्ध-सामग्रियोंको—कभी मशीन, कभी मशीनके हिस्से, कभी गलाया हुआ लोहा और कभी अन्य कुछ—दर्ज कराकर

प्रायः ही कस्टमकी आँखमें धूल झोंक अथवा उसे रिश्वत देकर धड़ल्लेसे एक देशसे दूसरे देशोंको निकाल ले जाते हैं। जहाज़पर जाँच करनेवाले इन्सपेक्टरोंको धोखा देनेके लिए सचमुच ही युद्ध-सामग्रियोंके पैकिंगको विभिन्न प्रकारकी अन्य निर्यात सामग्रियोंके पैकिंगके भीतर डाल दिया जाता है। इसी प्रकार और भी बहुतेरे तरीक़े सरकारी नियंत्रणोंका परिहार करनेके लिए ये मौतके व्यवसायी करते हैं।

फ्रांसमें संयुक्त जनमोर्चा-सरकारके छोटे-से शासन-कालमें एक नया परीक्षण प्रारम्भ किया गया था। यानी सरकारने स्वयं ख़रीद-ख़रीदकर युद्ध-सामग्री बनानेवाले कारख़ानोंका राष्ट्रीयकरण शुरू किया था; और अब प्रश्न आकर यह रह गया था कि आया पूँजीपति-व्यवसाइयोंको सरकारके साथ ही साथ युद्ध-सामग्रियाँ बनानेकी सुविधा क़ानूनन रहनी चाहिए अथवा नहीं? किन्तु यह प्रश्न अन्तिम तौरपर अभी तय होने ही को था कि विभिन्न नामधारी सोशलिस्ट दलोंकी ग़द्दारीके कारण तथा फ्रांसके पूँजीपतियोंके प्रयत्नोंसे जनमोर्चा-सरकारका पतन हो गया, जिसकी रक्षाके लिए मो० तोरेके नेतृत्वमें फ्रांसके कम्युनिस्टोंने आख़िरी साँस तक कोशिश की। फलतः उक्त प्रयोग भी असफल हो गया और उन्हीं मृत्यु-व्यवसाइयोंकी स्वार्थमूलक नीतिके कारण आज महान फ्रांसीसी जनतंत्र हिटलर तथा घृणित फ़ासिज़्मकी एड़ियोंके नीचे दम तोड़ रहा है। लेकिन सच तो यह है कि फ्रांसके जैसे प्रयोगोंसे भी इस समस्याका अन्तिम समाधान नहीं हो सकता, क्योंकि अगर युद्ध-सामग्री बनानेवाले कारख़ानोंका स्वामित्व किसी देशकी सरकारके हाथमें चला जाय, तब भी जब तक कि उस देशकी सरकार एक सोवियत सरकार नहीं है, तब तक हमेशा यह ख़तरा बना रहेगा कि सरकार स्वयं आजकी फ़ासिस्ट जर्मन सरकारकी तरह युद्धवादी और सेनावादी बन सकती है और व्यक्तिगत पूँजीकी छत्रछायामें होनेवाले इस मृत्यु-व्यवसायको और भी अधिक ज़ोरदार बना सकती है। इसके अलावा अगर बने-बनाए अस्त्र-शस्त्रोंका अन्तर्राष्ट्रीय आयात-निर्यात बन्द कर दिया जाय, तब भी यह प्रश्न शेष ही रह जाता है कि क्या ये मौतके व्यवसायी अन्य तरीक़ोंपर अपना कारबार बन्द कर देंगे? आज आर्थिक दृष्टिसे हम एक अन्तर्राष्ट्रीय जगतमें रह रहे हैं। व्यापार, व्यवसाय, पूँजी (finance), विज्ञान, यंत्र-विज्ञान आदि सब कुछ आज अन्तर्राष्ट्रीय हुए बिना नहीं रह सकते। उन्हें राष्ट्रीय सीमा-रेखाओंमें बाँध सकना आज किसी तरह भी संभव नहीं रह गया है। ऐसा करनेकी कोशिश भी मूर्खता होगी। तब तैयार हथियार आदिका आयात-निर्यात बन्द करके भी क्या उन हज़ारों तरहके कच्चे मालोंका आयात-निर्यात रोक सकना संभव हो सकेगा, जो युद्ध-सामग्रियोंके उत्पादन और निर्माणके लिए आवश्यक होनेके साथ-ही-साथ संसारके विशाल जनसमूहके रोज़मर्राके काममें आनेवाली चीज़ें भी हैं? प्रत्यक्ष ही है कि आज दुनियामें यह मुमकिन नहीं है। तब क्या इस मृत्यु-व्यवसायको बन्द करनेका कोई भी मार्ग नहीं है? निश्चय ही है, और वह है सारे संसारमें सच्चे अवर्गवादी समाजकी स्थापना, ताकि देशोंकी झूठी राजनीतिक सीमा-रेखाएँ मिट जायँ और संयुक्त रक्षाके आधारपर एक विश्व-संघकी स्थापना हो सके।

---

# कुटुम्ब-दिवस

कुटुम्ब समाज-जीवनका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। समाजका स्वास्थ्य इसके ऊपर निर्भर है। फिर भी कुटुम्बमें पारस्परिक सम्बन्ध प्रतिदिन बिगड़ते जा रहे हैं। माता-पिताके प्रति होनेवाला मान और कृतज्ञता (उसी प्रकार भाई-बन्धुओं और पति-पत्नीके बीचका सम्मानपूर्ण प्रेम और शुभ-चिंतन) बहुत न्यूनतम प्रमाणमें देखनेमें आती है। राष्ट्रकी उन्नति अथवा स्वास्थ्यके लिए यह स्थिति प्राणघातक है।

इसके अनेक उपाय हैं। एक उपाय यह है कि हमें प्रचलित, अपितु निरर्थक त्यौहारोंको कम करके कुटुम्ब-जीवनके पोषक अन्य नूतन उत्सवोंकी वृद्धि करनी चाहिए। 'भ्रातृ-द्वितीया'का त्यौहार हम सबको प्रिय लगता है, चाहे वह बहुत पुराने स्वरूपमें ही क्यों न मनाया जाता हो। इसी प्रकार 'रक्षा-बन्धन'की विधि भी हमारे कुटुम्ब-जीवनकी पोषक बनी चली आ रही है। इसीके अनुरूप हम मातृ-दिवस, पितृ-दिवस, पति-पत्नी-दिवस आदि मना सकते हैं। इसमें निर्धनता या श्रीसम्पन्नता, ज्ञान अथवा अज्ञान बाधक न हों। इस तरह कुटुम्बमें जिस उच्च प्रकारकी सामाजिक शिक्षाकी आवश्यकता होती है, वह प्रभावशाली-स्वरूपमें मिल सकती है।

'घरशाला'से ] अनु०—श्री सुबोधचन्द्र शर्मा

# संस्कृत-साहित्यमें महिलाओंका दान

डा० यतीन्द्रविमल चौधरी

वर्तमान युगमें महिलाओंकी प्रगतिके बारेमें यों तो सभी सचेष्ट हैं ; परन्तु महिलाएँ विशेषरूपसे सचेष्ट हैं। वे शिक्षा, दीक्षा एवं सब विषयोंमें ऊँचे-से-ऊँचे आदर्शको प्राप्त करना चाहती हैं और इसके लिए कितनी ही महिलाओंने यत्न भी काफ़ी किया है। उन्होंने सिर्फ़ ऊँची शिक्षा ही नहीं प्राप्त की है, बल्कि नाना विषयोंके ग्रन्थोंकी रचयित्री होनेका श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। स्त्री-शिक्षाका उच्च आदर्श हिन्दुस्तानमें कोई नया नहीं है। वैदिक युगसे ही भारतीय महिलाएँ इस आदर्शसे अनुप्राणित होती आ रही हैं। वैदिक युगमें महिलाओंने सब तरहसे सामाजिक जीवनमें जो उच्च स्थान प्राप्त किया था, उसके बारेमें कुछ-न-कुछ प्रायः सभी लोग जानते हैं। इस छोटे-से लेखमें वर्तमान युगकी महिलाओंके विषयमें कुछ बतलानेकी कोई चेष्टा हम नहीं करेंगे। अतीत कालमें भी स्त्रियाँ सिर्फ़ उच्च शिक्षिता ही नहीं थीं, बल्कि वे बहुत-से ग्रन्थोंकी रचयित्री भी थीं, सम्भव है कि इसका इतिहास भी किसीको मालूम न हो।

इन सब संस्कृत-ग्रन्थोंकी हस्त-लिखित पोथियाँ भारतके विभिन्न स्थानों—पुस्तकालयों, व्यक्ति-विशेषोंके हाथों, मठों और मन्दिरों—में विक्षिप्त रूपसे छिपी पड़ी हैं। इनमें से कितनी ही काल-स्रोतसे नष्ट-भ्रष्ट भी हो गई हैं। इसके अलावा कुछ पोथियाँ भारतके बाहर भी चली गई हैं। फिर भी काव्य, पुराण, स्मृति, तन्त्र आदि विषयोंमें खोज करनेसे उनके जो पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं, उनका भी कुछ कम मूल्य नहीं है। इन ग्रन्थोंसे ही प्राचीन-कालीन भारतीय महिलाओंकी बहुमुखी प्रतिभाका कुछ-कुछ आभास हम पाते हैं। संस्कृत-साहित्यमें भारतीय नारियोंका जो दान अवशिष्ट है, उससे भी इस साहित्यमें एक नवीन शाखाकी सृष्टि की जा सकती है, जो आज तक अज्ञात ही पड़ी हुई है। काफ़ी अनुसन्धानके बाद भारतीय महिलाओंकी जो संस्कृत-रचनाएँ हम संग्रह कर सके हैं, उन्हें ही हम क्रमशः प्रकाशित करेंगे। उनके कितने ही ग्रन्थोंका संक्षिप्त विवरण यहाँ हम देंगे।

### दृश्य-काव्य—नाटक आदि

महापण्डित घनश्यामकी सुन्दरी और कमला नामक दो विदुषी पत्नियोंने कवि राजशेखरके प्रसिद्ध 'विद्धशालभंजिका' पर एक अत्यन्त सुन्दर और पाण्डित्यपूर्ण टीका लिखी है। इस टीकाका नाम है 'सुन्दरीकमली' या 'चमत्कारी-तरंगिणी'। उनके पति घनश्यामने भी इसी 'विद्धशालभंजिका' पर 'प्राणप्रतिष्ठा' नामक एक संक्षिप्त टीका लिखी है। सुन्दरी और कमलाकी बोधशक्ति अपूर्व, भाषा शुद्ध और विचारदक्षता अतुलनीय है। उन्होंने पहलेके टीकाकारोंकी समालोचना ही नहीं की है, बल्कि कालिदास, भवभूति, अमरसिंह, विशाखदत्त आदि महामनस्वियोंकी कठोर आलोचना करनेसे भी वे विचलित नहीं हुई हैं। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि बहुत-सी जगहोंमें उनकी आलोचना उपयुक्त भी है। उक्त टीकामें कितने ही स्थलोंपर अपने मतकी पुष्टिके लिए उन्होंने अलंकार-ग्रन्थ, अभिधान, व्याकरण आदिसे प्रमाण उद्धृत किए हैं। इन ग्रन्थोंका अधिकांश भाग बहुत पहलेसे दुनियासे लुप्त हो गया है।

### श्राव्य-काव्य और महाकाव्य आदि

श्राव्य-काव्यमें महिलाओंके दानके सम्बन्धमें जो कुछ पाया गया है, उसे दो हिस्सोंमें बाँटा जा सकता है—(१) विभिन्न विषयोंपर छोटी-छोटी कविताएँ और (२) सम्पूर्ण काव्य।

(१) घोषा, विश्ववाला, अपाला आदि वैदिक ऋषियोंकी स्त्रियों और प्राकृत और पालि भाषाओंकी कवयित्रियोंके बारेमें यहाँ हम कुछ नहीं कहेंगे। इनके अतिरिक्त भी बहुत-सी ऐसी कवयित्रियोंके नाम हमें प्राप्त हुए हैं, जिन्होंने संस्कृतमें कविताएँ लिखी हैं। राजशेखर, धनददेव आदि जैसे प्रसिद्ध साहित्यिक महारथियोंने भी उनका काफ़ी गुणगान किया है। ऐसी महिलाओंमें से आज कितनोंके सिर्फ़ नाम ही मिलते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि उनके सुसज्जित काव्योद्यानका कोई फटा-गला पन्ना भी आज नहीं मिलता। उनमें से

कुछके नाम इस प्रकार हैं—कामलीला, कनकवल्ली, ललितांगी, मधुरांगी, सुनन्दा, विमलांगी, प्रभुदेवी लाटी, विजयांका इत्यादि। जिनकी छोटी-मोटी कविताएँ पाई गई हैं, उनमें से कितनोंके नाम हैं—भावदेवी, गौरी, इन्दुलेखा, केरली, कुटला, लक्ष्मी, मदालसा, मधुरवर्णी, मदिरेक्षणा, मारुला, मोरिका, नागम्मा, पद्मावती, फल्गुहस्तिनी, चन्द्रकान्ता भिक्षुणी, प्रियम्बदा, सरस्वती, सरस्वतीकुटुम्बदुहिता, शीलाभट्टारिका, सीता, सुभद्रा, त्रिभुवनसरस्वती, चण्डालविद्या, विद्यावती, विज्जा, विकटनितम्बा आदि। इनमें से हमें किसी-किसीकी तीस-पैंतीस कविताएँ मिली हैं और किसी-किसीकी सिर्फ़ दो-चार। ये कविताएँ विविध विषयोंपर लिखी गई हैं—जैसे, देवस्तुति, दर्शन, धर्म, प्रेम इत्यादिका वर्णन, अंग-प्रत्यंग-वर्णन, पशु-पक्षी-वर्णन आदि। इनके भाव और भाषा मधुर हैं एवं छन्द और अलंकारोंकी छटाकी भी कमी नहीं है। उनकी और भी कितनी ही कविताएँ थीं, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु आज ये सब दो-चार इधर-उधर बिखरे हुए फूलोंकी तरह नाना दिशाओंको सुवासित कर रही हैं। उनमें से बहुतोंने ईस्वी सन् नवीं और दसवीं शताब्दियोंसे पूर्व भारतको अलंकृत किया था।

( २ ) हमें भारतीय महिलाओंके कितने ही सम्पूर्ण काव्य भी प्राप्त हुए हैं।

( क ) संग्रामसिंहकी माता अमरसिंहकी पटरानी देव-कुमारिकाने 'वैद्यनाथ-प्रसाद-प्रशस्ति' लिखी है। वैद्यनाथके मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय यह प्रशस्ति लिखी गई थी और यह मन्दिरमें खुदी हुई है। यह ऐतिहासिक प्रशस्ति राजामाता-कृत है या नहीं, इस विषयमें सन्देहकी काफ़ी गुंजाइश है। ईस्वी सन्की अठारहवीं शताब्दीमें राजपूतानेमें उनका जन्म हुआ था।

( ख ) रानी गंगादेवी-कृत 'मधुरा-विजय' या 'वीर-कम्पराय-चरित है'। वे विजयनगरके सम्राट वीर कम्पनकी रानी थीं। ईस्वी सन्की चौदहवीं शताब्दीके मध्यमें अपने पतिके मदुरा ( मधुरा ) विजयके उपलक्षमें उन्होंने उक्त ग्रन्थकी रचना की। यह ग्रन्थ चौदहवीं शताब्दीके दक्षिण-भारतके ऐतिहासिक तथ्योंसे परिपूर्ण है।

( ग ) तांजोरके राजा रघुनाथ नायककी सभा-कवियित्री मधुरानी-कृत 'रामायण-काव्य' है। वे ईस्वी सन्की सत्रहवीं शताब्दीमें हुई थीं। यह ग्रन्थ रघुनाथ-कृत तेलुगू रामायणके आधारपर संस्कृतमें लिखा गया है।

( घ ) उपर्युक्त रघुनाथ नायककी एक दूसरी सभा-कवियित्री रामभद्राम्बा-कृत 'रघुनाथाभ्युदय-महाकाव्य' है। इस महाकाव्यमें रघुनाथ राजाके रूप, गुण और विजयकी कहानियोंका वर्णन किया गया है। इससे हम लोग तांजोरके तत्कालीन कितने ही ऐतिहासिक तथ्योंको जान सकते हैं।

( ङ ) विजयनगरके सम्राट अच्युतदेवरायकी सभा-कवियित्री तिरुमलम्बा-कृत 'वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू' है। उन्होंने ईस्वी सन्की सोलहवीं शताब्दीके मध्यमें इस ग्रन्थकी रचना की। इसके प्रथम भागमें अच्युतदेव-रायकी वंशावली, उनके पिताकी विजय-कहानी और उनके बाल-कालका इतिहास आदिका वर्णन है तथा उत्तरार्द्धमें अच्युतदेवरायका वरदाम्बिकाके साथ परिणय और उनके पुत्र चिनवेंकटरायके जन्म आदिका वर्णन है। इसमें इतिहासकी अपेक्षा कवित्वकी ही मात्रा अधिक है।

### आधुनिक संस्कृत-कवियित्रियाँ

यद्यपि आजकल संस्कृतका पठन-पाठन बहुत कम हो गया है, फिर भी अभी भारतीय महिलाएँ संस्कृतमें काव्य इत्यादिकी रचना करती हैं, इसके अनेक प्रमाण पाए जाते हैं—जैसे, मलाबारकी लक्ष्मीरानी-कृत सम्पूर्ण काव्य 'सन्तान-गोपालन'। इस सम्बन्धमें और भी कितने ही नाम लिए जा सकते हैं, जैसे—अनुसूया कमलाबाई बापटे, बालाम्बिका, हनुमाम्बा, ज्ञानसुन्दरी, कामाक्षी, मन्दमय घाटी, आलमेलम्मा, राधाप्रिया, रमाबाई, श्रीदेवी बाला-राज्ञी, सोनामणीदेवी, सुन्दरवल्ली, त्रिवेणी इत्यादि।

### पौराणिक कर्म-पद्धति

मण्डलीक नृपतिकी कन्या हरसिंह राजाकी महारानी लीनयागी ईस्वी सन्की तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दीमें गुजरातकी शोभा बढ़ाती थीं। श्रुति, स्मृति और पुराणकी वे प्रगाढ़ पण्डिता थीं। 'द्वारका-माहात्म्य' नामक उनकी पुस्तक सिर्फ़ कईएक विशिष्ट आदमियोंकी धार्मिक क्रियाकी सहायताके लिए ही नहीं लिखी गई है, बल्कि सब जातियों और वर्णोंकी धर्म-क्रिया सुचारु रूपसे सम्पादित करनेके लिए उन्होंने इस ग्रन्थकी रचना बहुत देशों और तीर्थोंके भ्रमणसे ज्ञान प्राप्त करनेके बाद की थी। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि धर्म-

संक्रान्त विषयोंपर—ख़ासकर लौकिक आचारके विधानके सम्बन्धमें—केवल वैदिक युगमें ही स्त्रियोंका अधिकार था, यह बात नहीं ; उसके बादके युगोंमें भी स्त्रियाँ देशके धर्म-संक्रान्त विविध विषयोंपर सुव्यवस्था कर गई हैं और आचार-विचार तथा क्रिया-कलाप आदि विषयोंपर नाना प्रकारके पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना कर गई हैं।

स्मृति-शास्त्र

स्मार्त नारियोंके बीच विश्वासदेवी और लक्ष्मीदेवी पायगुण्डके नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। ईस्वी सन्‌की पन्द्रहवीं शताब्दीमें विश्वासदेवी मिथिलाके राज-सिंहासनकी शोभा बढ़ाती थीं। वे पद्मसिंहकी पटरानी थीं। उनके राजत्वके अवसानके साथ उनका राज भवसिंहके पुत्र हरसिंहके हाथमें चला जा रहा था। वे अत्यन्त धर्मपरायणा थीं। गंगाके प्रति उनकी बहुत ज़्यादा आसक्ति थी, इसलिए उन्होंने गंगापर एक विस्तृत पुस्तकको रचना की, जिसका नाम 'गंगा-पद्मावली' है। गंगासे सम्बन्ध रखनेवाले जितने भी प्रकारके धर्म, क्रिया-कर्म इत्यादि सम्भव हैं—जैसे, दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, स्नान, गंगाके तीरपर वास, श्राद्ध इत्यादि—सभी विषयोंपर श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, ज्योतिष इत्यादि ग्रन्थोंसे अपने मतकी पुष्टिमें उद्धरण देकर उन्होंने अधिकार-पूर्वक प्रकाश डाला है। स्मृतिके कठोर नियमोंके अनुसार आत्म-नियोग करनेमें वे ज़रा भी विचलित नहीं हुईं। उन्होंने पहलेके सभी स्मार्तोंके मतोंकी विवेचना करके अपने मतका निःसंदिग्ध भावसे प्रचार किया है। स्मृति-तत्त्व-सम्बन्धी उनकी बोध-शक्ति अपूर्व और विश्लेषण-शक्ति अनुपम थी। इस पुस्तकने परवर्ती स्मार्त-मण्डलीका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट किया था। फलस्वरूप मित्र मिश्र, स्मार्त-भट्टाचार्य रघुनन्दन, वाचस्पति मिश्र इत्यादि सभी स्मार्त-शिरोमणियोंने इस ग्रन्थके मतका श्रद्धाके साथ उल्लेख किया है और उसको सब जगह माना है। इतनी युक्ति और पाण्डित्यपूर्ण पुस्तक एक भारतीय महिला कैसे लिख सकती है, ऐसी शंका भी किसी-किसी सम्मानित व्यक्तिने की है। उनके विचारसे यह पुस्तक विद्यापति-कृत है। परन्तु उक्त पुस्तकमें स्पष्ट रूपसे लिखा हुआ है कि यह विश्वासदेवीकी लिखी हुई है और विद्यापतिने इसके लिए प्रमाण संग्रह करनेमें थोड़ी-सी मदद दी है। सिर्फ़ इसीलिए यह मान लेना कि यह पुस्तक विश्वासदेवी-कृत नहीं है, अत्यन्त अयुक्तिपूर्ण है।

लक्ष्मीदेवी पायगुण्ड सुप्रसिद्ध वैयाकरण वैद्यनाथ पायगुण्डकी सहधर्मिणी थीं। वे अठारहवीं शताब्दीमें जीवित थीं। अपनी 'कालमाधव-लक्ष्मी' नामक टीकाके द्वितीय अध्यायके शेषमें उन्होंने लिखा है कि सन् १७९२-९३ में इस टीकाके लिखनेके पहले तेरह दिनका पक्ष हुआ था, जो हमेशा नहीं होता। लक्ष्मीदेवी एक असाधारण विदुषी रमणी थीं। विज्ञानेश्वर-कृत 'याज्ञवल्क्य-स्मृति-टीका-मिताक्षरा' पर उन्होंने 'मिताक्षरा-व्याख्यान' नामक टीका लिखी है। माधवाचार्य-रचित 'कालमाधव' नामक सुप्रसिद्ध स्मृति-ग्रन्थपर भी उन्होंने बहुत ही सुन्दर टीका लिखी है और उसका नामकरण उन्होंने अपने नामके अनुसार 'कालमाधव-लक्ष्मी' किया है। लक्ष्मी पूर्ण सरस्वती ही थीं। उनकी हरएक पंक्तिमें अगणित शास्त्रोंका ज्ञान प्रकट रूपसे विद्यमान है। उन्होंने वैदिक साहित्य, ब्राह्मण, उपनिषद, सूत्र, महाभारत, प्राचीन और नवीन स्मृति, पुराण और उप-पुराण, ज्योतिष और विशेषतः व्याकरण आदिके अंश-विशेषको यथास्थान उद्धृत करके उनकी व्याख्या अपने मतके प्रतिपादनमें जिस निपुणताके साथ की है, उसे देखकर हम लोगोंको आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है।  माधवाचार्य प्रगाढ़ विद्वान और अपने सिद्धान्त-निरूपणमें अकाट्य युक्ति देनेमें सिद्धहस्त थे। माधवाचार्य-रचित ग्रन्थपर टीका करना असीम साहसका कार्य है। किन्तु लक्ष्मीदेवीकी टीका देखनेसे ज्ञात होता है कि मौलिक तत्वोंके अनुसन्धान और विश्लेषण करनेमें अनेक स्थानोंमें वे माधवाचार्यसे भी आगे बढ़ गई हैं। माधव जहाँपर अस्पष्ट हैं, वहाँपर लक्ष्मी सुस्पष्ट ; जिनपर माधवने कुछ नहीं कहा है, उनपर लक्ष्मीने अपनी नारी-सुलभ सरलता और सौजन्यपूर्वक प्रकाश डाला है। लक्ष्मीके समान सरस्वतीकी पुत्रियाँ कम ही हैं। 'कालमाधव-लक्ष्मी' के संस्करणके प्रथम खण्डमें और दो टीकाएँ साथ-ही-साथ दी हुई हैं। उनमें से एक टीका 'कालमाधव-लक्ष्मी' से पहले स्वयं माधवाचार्यके नामपर चलती थी। देखा गया है कि उक्त टीकाके हिसाबसे लक्ष्मीकी लक्ष्मी-टीका सर्वोत्कृष्ट है। दूसरी दो टीकाएँ 'कालमाधव' पर ठीक टीकाएँ नहीं हैं। सिर्फ़ लक्ष्मीने ही समूचे ग्रन्थपर सुचारु रूपसे

टीका की है। उन्हींके कल्याण, धैर्य और ज्ञानके समुद्रसे जगतके कल्याणके लिए 'कालमाधव-लक्ष्मी' टीका निकली है, जो भारतकी विशिष्ट निधि है।

तंत्रशास्त्र

सुप्रसिद्ध तांत्रिक प्रेमनिधिकी पत्नी प्राणमंजरी शिक्षा-दीक्षा आदि सब प्रकारसे अपने पतिकी अनुवर्तिनी थीं। अठारहवीं सदीके प्रथम भागमें उनका जन्म कुमायूँमें हुआ था। उनकी 'तंत्रराज-तंत्र' की टीकाका प्रथम परिच्छेद ही बचा हुआ है। बहुत सम्भव है कि उन्होंने अवशिष्ट परिच्छेदोंकी भी टीका की हो; पर कालक्रमसे अब वह लुप्त हो गई है। टीकाका जितना अंश प्राप्त और प्रकाशित हुआ है, उससे प्रमाणित होता है कि उन्होंने और भी कितने ही ग्रन्थोंकी रचना की थी। 'तंत्रराज तंत्र' की टीकाका नाम 'सुदर्शन' है। उन्होंने अपने पुत्र सुदर्शनकी मृत्युके बाद उसे अमरत्व प्रदान करनेके ख़्यालसे 'अविनाशी सुदर्शन' नामक टीकाकी रचना की। इसमें उन्होंने तंत्रशास्त्र-सम्बन्धी अपनी प्रगाढ़ निपुणता प्रदर्शित की है। 'तंत्रराज तंत्र' की प्रथम कविताकी पाँच प्रकारकी व्याख्या उनके विशेष पाण्डित्यका द्योतक है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती 'मनोरमा' के रचयिता सुभगनाथ आदि टीकाकारों और दूसरे तांत्रिकों तथा शास्त्रोंके मत उद्धृत किए हैं। कहीं-कहीं तो उन्होंने अपने मतके प्रतिपादनमें उन मतोंका समर्थन और कहीं-कहीं खण्डन भी किया है। उन्होंने तंत्र-शास्त्रके सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचारोंपर अपने विचार प्रकट किए हैं और तंत्रशास्त्रके विभिन्न मतोंका खण्डन करके अपने मतका प्रतिपादन किया है। इस प्रकारकी विदुषी होनेपर भी उन्होंने अभिष्ट देवता हैहयनाथसे अपने ग्रन्थ सम्पादनके कल्याणार्थ वर न माँगकर अपने पतिकी शुभकामनाका ही वर माँगा था। तंत्रशास्त्र अत्यन्त जटिल है। उसपर इस प्रकार पाण्डित्यपूर्ण प्रकाश डालना सर्वथा प्रशंसनीय है।

युग-युगसे भारतीय महिलाएँ जो ज्ञान-दीप जलाती आ रही हैं। उसके आलोकका अनुसरणकर वर्त्तमान युगकी महिलाएँ भी ज्ञानकी अधिकारिणी हो सकती हैं। इस प्रकार ज्ञानके आलोकका वितरणकर वे देशका कल्याण करेंगी, इसमें सन्देह नहीं।

३, फेडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता ]

# व्याकुल विरही रोता क्यों है ?

**श्री नवावसिंह चौहान 'कंज'**

आहें भरने से बढ़ती है और हृदय की जागृत ज्वाला।
डाल रहा है आशा-ईंधन इसपर तू होकर मतवाला।
शुष्क तृणोंको मन - मदिरा से
रो-रो अरे भिगोता क्यों है? व्या०॥

मृग-मरीचिकाके ऊपर तू मत्त हुआ अपने को भूला।
इस प्रदेश में कभी न कोई, उर-पादप है फला न फूला।
फिर इस मलिन मरुस्थलमें तू
प्रेम-बीज यों बोता क्यों है? व्या०॥

चिन्तित है प्रियकी परछाईं, इन पलकोंमें शेष निशानी।
विरहाकुल दुखिया अँखियोंकी आशाओंपर फेर न पानी।
स्मृति के धूमिल धब्बों को
रो-रो करके धोता क्यों है? व्या०॥

बड़ी दूर है प्रिय की नगरी, पथ अगम्य, तू है अति निर्बल।
साथ नहीं है कोई साथी, पास नहीं है कुछ भी संबल।
शेष रहे हैं यह कुछ मोती
इनको भी तू खोता क्यों है? व्या०॥

पिक, पपिहा, आकुल पतंगकी मिला तुझे क्या देख होड़कर?
फेंक दिया क्यों पागलपनमें हाय हृदयका हार तोड़कर?
कुम्हलाए बिखरे पुष्पों को
अब तू व्यर्थ पिरोता क्यों है? व्या०॥

जिसने दिया दर्द है तुझको, वही हृदयका भी दाता है।
उसकी देन उसे देनेमें बतला क्यों तू शर्माता है?
आशा और निराशाओं का
व्यर्थ भार तू ढोता क्यों है? व्या०॥

प्रेम-पथिक उठ-उठ मुँह धो ले, सुन्दर प्रिय प्रभात है आया।
सुन्दर सविता की प्यालीमें मादक-सी मदिरा है लाया।
जाग, फूल हँसते हैं तुझपर
पड़ा नींदमें सोता क्यों है? व्या०॥

# ध्वनि-नियम

श्री राममूर्त्ति मेहरोत्रा, एम० ए०

किसी भाषाके विभिन्न कालोंके अथवा किसी काल-विशेषकी विभिन्न भाषाओंके ध्वनि-विकारोंकी तुलना करनेसे प्रकट होता है कि वे किसी निश्चित नियमके अनुसार होते हैं, जिसे हम ध्वनि-नियम कह सकते हैं ; परन्तु इसके मानी न तो यही हैं कि किसी भाषा-विशेषके विभिन्न कालोंमें होनेवाले ध्वनि-विकारोंके तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निर्धारित ध्वनि-नियम प्रत्येक भाषामें लग सकता है और न यही कि किसी काल-विशेषकी विभिन्न भाषाओंमें होनेवाले ध्वनि-विकारोंसे सम्बन्ध रखनेवाला ध्वनि-नियम किसी भी कालमें लागू हो सकता है, वरन् जो नियम जिस भाषा अथवा कालका है, वह केवल उसीमें लग सकता है। सच तो यह है कि प्रत्येक ध्वनि-नियम अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें एक प्रवृत्ति होता है। कभी तो किसी भाषा-विशेषमें किसी कारणवश कोई प्रवृत्ति चल निकलती है, जिसके अनुसार उसमें भिन्न-भिन्न कालोंमें ध्वनि-परिवर्त्तन होते रहते हैं और कभी किसी काल-विशेषमें कोई प्रवृत्ति चल पड़ती है, जिसके अनुसार भिन्न-भिन्न भाषाओंमें ध्वनि-विकार होते हैं। अनेक प्रवृत्तियाँ तो परिवर्तित अथवा समाप्त हो जाती हैं ; परन्तु जो शेष रह जाती हैं, वे अपना कार्य पूर्ण करनेपर, चाहे उनका कार्य-क्षेत्र कितना ही संकुचित क्यों न हो, सिद्धान्तका रूप धारण कर लेती हैं और ध्वनि-नियम कहलाने लगती हैं। अतएव प्रत्येक ध्वनि-नियमका कार्य-क्षेत्र परिमित और काल नियमित है। जिस प्रकार प्राकृतिक नियम निरपवाद होते हैं, उसी प्रकार ध्वनि-नियममें भी अपवाद नहीं होते। यदि किसी ध्वनि-विकारकी उसकी भाषा अथवा काल-सम्बन्धी ध्वनि-नियम द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती, तो इसके यह मानी नहीं हैं कि वह उस नियमका अपवाद है, क्योंकि ऐसे ध्वनि-विकार प्रायः उपमान, विभाषा-मिश्रण, मस्तिष्ककी स्वच्छंदता, ग्राम्य तथा प्राचीन मृत शब्द-मिश्रण आदि बाह्य कारणों द्वारा सिद्ध किए जा सकते हैं। वास्तवमें बात यह है कि ध्वनि-नियमोंका सम्बन्ध मुख-जन्य तथा श्रुति-जन्य विकारोंसे अर्थात आन्तरिक कारणोंसे है, बाह्यसे नहीं ; परन्तु भाषाके विकासमें बाह्य कारणोंका विशेष हाथ रहता है, अतः ध्वनि-नियमोंपर भी बाह्य प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। यदि कोई भाषा बाह्य कारणोंसे पृथक् रहे अथवा हम उसके बाह्य प्रभावको अलग कर दें, तो शुद्ध अथवा निरपवाद ध्वनि-नियम बन सकता है। अतएव प्रत्येक ध्वनि-नियमकी कुछ सीमाएँ होती हैं, जिनके बाहर वह नहीं जा सकता। दो-एक उदाहरणोंसे यह विषय स्पष्ट हो जायगा। यथा, (१) ग्रिमके द्वितीय वर्ण-परिवर्त्तनके अनुसार निम्न जर्मन K, T, P, का उच्च जर्मनमें Ch. Z. F या Pf. हो जाता है ; परन्तु जब K, T, P, 'S' के पश्चात् आते हैं, तो उनमें कोई विकार नहीं होता। 'T' के उदाहरणसे यह विषय स्पष्ट हो जायगा—जैसे, अंगरेज़ी Tongue, Timber, Ten आदि उ०ज०में क्रमशः Zunge, Zimmer, Zehn आदि हो जाते हैं ; परन्तु अंगरेज़ी Steel, Stool, Straw आदि क्रमशः Stahl, Stuhl, Stroh आदि ही रहते हैं। इसका कारण यह है कि नियम K. T. P. असंयुक्त वर्णोंका है, Sk. St. Sp संयुक्त वर्णोंका नहीं। (२) अंगरेज़ी Beget, Speak, Break आदिके भूतकालिक रूप प्राचीन कालमें Begat, Spake, Brake आदि होते थे ; परन्तु आजकल अपने कर्मवाचक कृदन्त Begot, Spoken, Broken आदिके सादृश्यपर a का o में आदेश होकर Begot, Spoke, Broke आदि हो गए हैं। (३) ग्रिमके प्रथम वर्ण-परिवर्त्तनके अनुसार अंगरेज़ी K (c) के स्थानमें संस्कृतमें ग अथवा ज (g) होना चाहिए ; परन्तु अंगरेज़ी Camel तथा सं० क्रमेलकमें ऐसा नहीं है। इसका कारण यह है कि क्रमेलक शुद्ध संस्कृत शब्द नहीं है, यह अरबी जमल है। इसका संस्कृतमें सेमिटिकसे आगमन हो गया है। इसी प्रकार ग्राम्य तथा प्राचीन मृत शब्दोंमें भी, जिनको प्रायः कवि तथा लेखक लोग प्रयोग किया करते, कोई ध्वनि-नियम नहीं लगता। अतः इस प्रकारके अपवाद वास्तविक अपवाद नहीं, अपितु अपवाद-स्वरूप हैं, जिनका हम बाह्य कारणों द्वारा समाधान कर सकते हैं। इनको हम ध्वनि-नियमकी सीमाएँ कह

सकते हैं। सारांश यह है कि किसी ध्वनि-नियमकी व्याख्या करते समय उसके क्षेत्र, काल तथा सीमाओंका इसमें विशेष ध्यान रखना चाहिए। ध्वनि-नियम तो अनेक हैं; परन्तु यहाँ हम स्थानाभावके कारण सर्वप्रसिद्ध ग्रिम-नियम तथा उससे सम्बन्धित नियमोंकी ही विवेचना करेंगे।

**ग्रिम नियम**—यद्यपि ग्रिम-नियमका पता आर० के० रास्क ( १७८७-१८३२ ई० प० ) ने ग्रिमसे पहले ही लगा लिया था; परन्तु उसका पूर्ण तथा वैज्ञानिक प्रतिपादन जैकब ग्रिम (१७८५-१८६३ ई० प०) ने किया। अतः यह नियम उसीके नामसे प्रसिद्ध है। इसको अंगरेज़ीमें sound-shifting और जर्मनमें Laut-verschiebung कहते हैं। इसका सम्बन्ध मूल भारोपीय स्पर्श व्यंजन-ध्वनियोंसे है। ग्रिम-नियमका मुख्य उद्देश्य कंठ्य, दंत्य तथा ओष्ठ्य स्पर्शोंका, क्लासिकल ( classical ) तथा निम्न जर्मन और निम्न जर्मन तथा उच्च जर्मन भाषा-वर्गोंमें पारस्परिक ध्वनि-परिवर्तन दिखाना है। इसके दो भाग हैं,—प्रथम वर्ण-परिवर्तन, तथा द्वितीय वर्ण-परिवर्तन।

**प्रथम वर्ण-परिवर्तन**—१८२२ ई० प० में जैकब ग्रिमने संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, गाथिक, अंगरेज़ी, जर्मन आदि भारोपीय भाषाओंके शब्दोंके तुलनात्मक अध्ययन द्वारा यह निश्चित किया कि प्रागैतिहासिक कालमें मूल भारोपीय स्पर्श-व्यंजन-ध्वनियोंका विकास गाथिक, अंगरेज़ी आदि निम्न जर्मन वर्गकी भाषाओंमें संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि क्लासिकल वर्गकी भाषाओंकी अपेक्षा भिन्न प्रकारसे हुआ और कुछ वर्ण-परिवर्तन ऐसे हैं, जो एक ओर क्लासिकल वर्गकी भाषाोंमें और दूसरी ओर निम्न वर्गकी भाषाओंमें पाए जाते हैं। अतः प्रथम वर्ण परिवर्तन द्वारा क्लासिकल वर्गकी भाषाओंका निम्न जर्मन वर्गकी भाषाओंसे सम्बन्ध दिखाया गया है। यह वर्ण-परिवर्तन क्राइस्टके जन्मके पूर्व जर्मन भाषाके भिन्न भाषाओंमें विभाजित होनेसे पहले हो चुका था। यह नियम इस प्रकार है:—

(१) क्लासिकल वर्गके K, C. Qu (क, सं० श). T ( त ). P ( प ) अघोष स्पर्श निम्न जर्मन वर्गमें क्रमशः H अथवा Hw ( wh ). Th. F. महाप्राण घर्ष हो जाते हैं जैसे K H:—सं० कः लै० quis का गा० Hwas ऐ० से० Haw अं० Who, सं० कद् लै० quod ग्री० Kos का ऐ० से० Hwœt अं० What गा० Hwo, सं० शृंग ( सींग ) का अं० Horn, सं० श्वन ग्री० Kuon लै० Canis का अं० Hound ; T Th :—सं० तय ग्री० to का गा० that अं० that, सं० त्वं लै० तथा ग्री० tu का अं० thou, सं त्रि ग्री० treis लै० tres का गा० threis ऐ० से० thri अं० three ; P F :—सं० पाद लै० pedis ग्री० podos का गा० fotus ऐ० से० fot अ० foot, सं० पत्र लै० penna ग्री० pteron का० अं० feather। (२) क्लासिकल वर्गके G (ग, ज). D ( द ). B ( ब ) सघोष स्पर्शके स्थानमें निम्न जर्मन वर्गमें K(c)T.P. अघोष स्पर्श आते हैं—जैसे G K:—सं० जनः ग्री० genos लै० genus का गा० kuni ऐ० से० cyn अं० kin, सं० गा का ऐ० से० cu अं० cow ; D T: सं० द्वि लै० duo ग्री० dyo का गा० tvai ऐ० से० twa अं० two, सं० द्रुम ग्री० drys का गा० triu अं० tree ; B P:—लै० Cannabis का० ऐ० से० hœnep अ० hemp। (३) क्लासिकल Gh ( घ, सं० तथा लै० ह ) Dh (ध). Bh (भ) महाप्राण स्पर्शके स्थानमें निम्न जर्मन G.D. B. सघोष स्पर्श आते हैं—जैसे Gh G :—सं० हर्यतिका गा gairan ऐ० से० georn ; सं० हंस लै० anser (haser) का ऐ० से० gos अं० goose ; लै० hortus का गा० gards अं० garden Dh D:—सं० धा का ऐ० से० don अं० do, सं० धितिका अं० deed ; Bh B :—सं० भ्रातृका अं० brother ऐ० से० brothor, सं० भृ का गा० bairan अं० bear। उक्त वर्ण-परिवर्तनको संक्षेपमें निम्न प्रकार प्रकट कर सकते हैं :—

| क्लासिकल | निम्न जर्मन |
|---|---|
| (१) K (क, सं० श). T (त). P (प) (अघोष स्पर्श) | H. TH. F. (महाप्राण घर्ष) |
| (२) G (ग, ज). D (द). B (ब) (सघोष स्पर्श) | K (c) T P (अघोष स्पर्श) |
| (३) Gh (घ,सं० तथा लै० ह). Dh (ध). Bh (भ) (महाप्राण स्पर्श) | G. D. B. (सघोष स्पर्श) |

**द्वितीय वर्ण-परिवर्तन**—जिस प्रकार प्रथम वर्ण-परिवर्तन द्वारा क्लासिकल वर्गकी भाषाओंका निम्न जर्मन वर्गकी भाषाओंसे सम्बन्ध दिखाया गया है, ठीक उसी

प्रकार द्वितीय वर्ण-परिवर्तन द्वारा निम्न जर्मन वर्गकी भाषाओंका उच्च जर्मन वर्गकी भाषाओंसे सम्बन्ध दिखाया गया है। इसका उद्देश्य निम्न जर्मन भाषा-वर्गके सम्बन्धमें उच्च जर्मन भाषा-वर्गमें होनेवाले भारोपीय स्पर्श-ध्वनि-सम्बन्धी वर्ण-परिवर्तन दिखाना है। ये वर्ण-परिवर्तन उच्च जर्मन लोगोंके ऐंग्लो-सेक्सनसे पृथक् होनेके पश्चात् सातवीं शताब्दीमें हो चुके थे। इस वर्ण-परिवर्तनका विशेष सम्बन्ध केवल ट्यूटानिक अथवा जर्मनिक भाषाओंसे है। यह नियम इस प्रकार है :—(१) निम्न जर्मन भाषा-वर्गके (H). Th. F. महाप्राण घर्षका उच्च जर्मन भाषा-वर्गमें (H). D. B.(v) सघोष स्पर्श हो जाता है, जैसे Th—D :— गा० thata अं० that का ज० das, अं० thread का ज० draht ; F—B(v) :—अं० leaf का० ज० laub, अं० father गा० fadar का प्रा० उ० ज० Vatar। (२) निम्न-जर्मन-वर्गके K(c). T. P अघोष स्पर्शके स्थानमें उच्च जर्मन वर्गमें क्रमशः Ch.Z.F अथवा Pf. महाप्राण घर्ष आते हैं, जैसे K(c)—ch:—अं० scum का ज० schaum ; T—Z:—गा० tvai ऐ. से. twa अं० two का ज० zwei, गा० tunthus अं० tooth का प्रा० उ० ज० Zand ज० zahn ; P—F, Pf :—अं० pray का ज० fragen, अं० leap का ज० laufen, अं० pool path plug pole आदिका क्रमशः ज० Pfuhl Pfad Pflock Pfahl आदि। (३) जहाँ निम्न जर्मन वर्गमें G. D. B. सघोष स्पर्श आते, वहाँ उच्च जर्मन वर्गमें K. T. P. अघोष स्पर्श आते हैं, जैसे G—K :—गा० gards अं० garden का प्रा० उ० ज० Karto ; D—T :—अं० deer का प्रा० उ० ज० tior ; B—P :—गा० balths अं० bold का प्रा० ज० pald। द्वितीय वर्ण-परिवर्तनको संक्षेपमें निम्न प्रकार प्रकट कर सकते हैं :—

| | निम्न जर्मन | उच्च जर्मन |
|---|---|---|
| (१) | (H). Th. F. (महाप्राण घर्ष) | (H). D. B(v). (सघोष स्पर्श) |
| (२) | K(c). T. P. (अघोष स्पर्श) | Ch. Z. F, Pf. (महाप्राण घर्ष) |
| (३) | G. D B. (सघोष स्पर्श) | K. T. P- (अघोष स्पर्श) |

**समन्वित रूप अथवा ग्रिम-नियम**—ग्रिम-नियममें प्रथम तथा द्वितीय दोनों वर्ण-परिवर्तनोंका समावेश हो जाता है। इस समन्वित ग्रिम-नियम द्वारा क्लासिकल भाषा-वर्गके सम्बन्धमें निम्न जर्मन भाषा-वर्गमें और निम्न जर्मन भाषा-वर्गके सम्बन्धमें उच्च जर्मन भाषा-वर्गमें होनेवाले मूल भारोपीय स्पर्श-सम्बन्धी ध्वनि-परिवर्तनोंका विवेचन होता है, अर्थात यह क्लासिकल, निम्न जर्मन तथा उच्च जर्मन भाषा-वर्गोंमें होनेवाले स्पर्श-सम्बन्धी परिवर्तनोंका पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट करता है। इसका सम्बन्ध केवल कंठ्य, दंत्य तथा ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन-ध्वनियोंसे है। यह नियम इस प्रकार है :—

(१) क्लासिकल K, C, Qu (क, सं० श). T (त). P (प). अघोष स्पर्श क्रमशः निम्न जर्मन H, Hw, Wh. Th. F. महाप्राण घर्ष और उच्च जर्मन H. D. B(v) सघोष स्पर्शके हो जाते हैं। (२) क्लासिकल वर्गके G(ग, ज). D (द). B (ब) सघोष स्पर्शके स्थानमें निम्न जर्मन वर्गमें K, C. T. P. अघोष स्पर्श और उच्च जर्मनमें Ch. Z. F, Pf. महाप्राण घर्ष आते हैं। (३) जहाँ क्लासिकल भाषाओंमें Ch (ख, सं० ख्र). Th (थ) F, Ph (फ). महाप्राण घर्ष अथवा Gh (घ, सं० तथा लै० ह). Dh(ध). Bh (भ). महाप्राण स्पर्श पाए जाते, वहाँ निम्न जर्मन भाषाओंमें G. D. B. सघोष स्पर्श और उच्च जर्मन भाषाओंमें K. T. P. अघोष स्पर्श आते हैं। अगले पृष्ठपर दिए गए उदाहरणोंसे यह नियम स्पष्ट हो जायगा।

| | क्लासिकल | निम्न जर्मन | उच्च जर्मन |
|---|---|---|---|
| (१) | अघोष | महाप्राण (घर्ष) | सघोष |
| (२) | सघोष | अघोष | महाप्राण (घर्ष) |
| (३) | महाप्राण (स्पर्श अथवा घर्ष) | सघोष | अघोष |

सारांश यह है कि क्लासिकल, निम्न जर्मन तथा उच्च जर्मन तीनों भाषा-वर्गोंमें मूल भारोपीय स्पर्शोंका विकास तथा ध्वनि-परिवर्तन एक-दूसरेसे भिन्न प्रकारसे हुआ है ; परन्तु फिर भी एक निश्चित नियमके अधीन होनेके कारण उनमें पारस्परिक सम्बन्ध है। मैक्समूलरने तो इस त्रिविध सम्बन्धके कारण मूल भारोपीय भाषाको ही उक्त तीन वर्गोंमें विभक्त मान लिया है—क्योंकि प्रथम तो ट्यूटानिक भाषाओंके अतिरिक्त शेष सभी भारोपीय भाषाओंका क्लासिकल वर्गकी भाषाओंसे सादृश्य है, द्वितीय अनेक वर्ण-परिवर्तन ऐसे हैं, जिनमें समन्वित

| क्लासिकल | निम्न जर्मन | उच्च जर्मन |
|---|---|---|
| (१) K. T. P. | H. Th. F. | H. D. B. |
| K :—लै० cord, ग्री० kard | H :—गा० hairto अं० heart | H :—प्रा० उ० ज० herz |
| लै० beto, सं० अष्ट | गा० ahtan | प्रा० उ० ज० ahte |
| लै० claudus | अं० half | प्रा० उ० ज० halz |
| T :—सं० त्वं, ग्री० तथा लै० tu | Th :—गा० तथा ऐ० से० thu | D :—उ० ज० du |
| लै० tectum | गा० thak, अं० thatch | प्रा० उ० ज० dach |
| सं० तनुः, लै० tenuis | अं० thin | प्रा० उ० ज० dunni, ज० dunn |
| P :—सं० पितृ, ग्री० तथा लै० pater | F :—गा० fadar अं० father | B :—प्रा० उ० ज० Vatar |
| लै० Rapina | ऐ० से० Reaf | प्रा० उ० ज० Roub |
| (२) G. D. B. | K. T. P. | Ch. Z. F. |
| G :—ग्री० gonu | K :—अं० knee | Ch :—प्रा० उ० ज० chnio |
| लै० ager, ग्री० agros | अं० acre, गा० akrs | प्रा० उ० ज० achar |
| लै० granum | गा० kaurn, अं० corn | प्रा० उ० ज० chorn |
| D :—लै० dingua | T :—अं० tongue ऐ०से० tunge | Z :—प्रा० उ० ज० Zunga, ज० Zunge |
| ग्री० dero | ऐ०से० teran अं० tear | ज० Zehren |
| B :—ग्री० Kanuabis | P :—अं० hemp | F :—प्रा० उ० ज० hanaf, ज० hanf |
| (३) Ch. Th. F. अथवा Gh. Dh. Bh. | G. D. B. | K. T. P. |
| Ch, Gy :—ग्री० chthes, सं० ह्यः | G :—गा० gistra ऐ०से० geostra | K :—प्रा० उ० ज० Kestre |
| ग्री० chen, सं० हंस, लै० anser ( hanser ) | ऐ०से० gos, अं० goose | प्रा० उ० ज० Kans. |
| Th, Dh :—ग्री० thugater, सं० दुहिता (हि०धी) | D :—गा० dauhtar, अं० daughter | T :—प्रा० उ० ज० tohtar |
| ग्री० ther | अं० deer | प्रा० उ० ज० tior |
| F, Bh :— लै० frango | B :—गा० brikan, अं० break | P :—प्रा० उ० ज० prechan |
| ग्री० phu, लै० fu | अं० be | प्रा० उ० ज० pim |
| सं० भ्र (भरामि) | गा० bairan, अं० bear | प्रा० उ० ज० peran |

ग्रिम-नियम ठीक प्रकार नहीं बैठता, अर्थात् या तो वे क्लासिकल तथा निम्न जर्मनमें ही पाए जाते हैं या निम्न जर्मन तथा उच्च जर्मनमें ही, तीनों वर्गोंमें नहीं पाए जाते। यह त्रिविध सम्बन्ध न तो अविच्छिन्न रूपसे घनिष्ट ही है और न मूल भारोपीय भाषाके त्रिविध विभागका द्योतक ही। वास्तवमें ग्रिम-नियम पूर्णतया सदोष है। प्रथम तो वह क्राइस्टके पूर्व तथा सातवीं शताब्दी दो भिन्न-भिन्न कालोंसे सम्बन्ध रखता है। द्वितीय इसका क्षेत्र संकुचित है और वर्ण-परिवर्तनका सम्बन्ध केवल ट्यूटानिक भाषाओंसे है; क्योंकि उच्च जर्मन वर्गकी प्रा० उ० ज० भाषाके वर्ण-परिवर्तन निम्न जर्मन वर्गमें पाए जानेवाले वर्ण-परिवर्तनोंके पश्चातके हैं, अतः यह उनमें भी ठीक प्रकार नहीं बैठता और प्रा० उ० ज० में इसके अनेक अपवाद पाए जाते हैं। सच तो यह है कि द्वितीय वर्ण-परिवर्तन तो केवल जर्मन भाषाओंकी विशेषता मात्र है, ध्वनि-नियम नहीं। हाँ, प्रथम वर्ण-

परिवर्तन अवश्य निर्दोष है, और वही आजकल ग्रिम-नियमके नामसे पुकारा भी जाता है। तृतीय न तो यह पूर्ण ही है और न इसकी सीमाएँ ही निर्धारित हैं, अतः यह सापवाद है। लाटनर ( Lottner ) ने इस प्रकारके अनेक अपवाद दिखाए हैं, जिनमें से कुछका स्वयं ग्रिमने उपनियमोंके रूपमें विवेचन किया है और शेषको ग्रासमन तथा वर्नर उत्तरवर्ती विद्वानोंने समझानेका प्रयत्न किया है। अतएव ग्रिमके उपनियम तथा ग्रासमन और वर्नरके नियम ग्रिम-नियमके पूरक स्वरूप हैं।

**ग्रिमके उपनियम :—**

(१) * गाथिक B.P.F. G.K.H. D.T.Th.
शुद्ध प्र० उ० ज० P.Ph.F. K.Ch.H. T.Z.D

ग्रिम-नियम असंयुक्त वर्णोंमें लगता है, संयुक्तमें नहीं ; अतः मूल भारोपीय Sk, St, Sp, के K, T, P में S के संयोगके कारण कोई विकार नहीं होता, जैसे :—

| क्लासिकल | निम्न जर्मन | उच्च जर्मन |
|---|---|---|
| K :—लै० piscis | गा० fisks | उ० ज० fisch |
| T :—ग्री० stello | अं० stall | ज० stall |
| ग्री० aster, लै० stella | अं० star | ज० stern |
| सं० अस्ति, लै० est | गा० ist | उ० ज० ist |
| P :– ग्री० spathe, लै० spatha | अं० spade | ज० spaten |

शुद्ध अंगरेज़ी शब्दोंमें sk का sh हो जाना जैसे—ग्री० skaphos, लै० scapha का अं० ship, ग्री० skotos, जि० skad का अं० shade इत्यादि—उक्त उपनियमका अपवाद नहीं है, अपितु अंगरेज़ीकी प्रकृति है, क्योंकि sky, skill, school आदि विदेशी शब्दोंमें ऐसा नहीं होता।

उक्त संयुक्त वर्ण sk, st, sp की भाँति kt तथा pt में t अविकृत रहता है, जैसे Kt : ग्री० Okto लै० Octo का गा० ahtan तथा ज० acht ; Pt :—लै० neptis सं० नप्ताका प्रा० उ० ज० nift, लै० captus का गा० hafts, इत्यादि।

**ग्रासमनका उपनियम**—लाटनरके शेष विरोधोंमें से कुछका परिहार ग्रासमनने किया। ग्रिम-नियमके अनुसार निम्न जर्मन G.D.B. क्लासिकल Gh (घ=सं० ह) Dh (ध) Bh (भ) के स्थानापन्न हैं, अतः गा० daubs तथा biudan का क्रमशः सं० दभ् तथा बोधतिका स्थानापन्न होना इसका स्पष्ट अपवाद है, क्योंकि गा० d, b, सं० द, ब के स्थानापन्न न होकर ध, भ के स्थानापन्न होने चाहिएँ। इसका समाधान ग्रासमनने किया। उसने संस्कृत तथा ग्रीकका अध्ययन करके यह नियम खोज निकाला कि संस्कृत ग्रीक आदि क्लासिकल भाषाओंमें किसी अक्षर (syllable) के आदि तथा अंत दोनोंमें सोष्म स्पर्श (aspirates—प्राणध्वनि अथवा महाप्राण स्पर्श) नहीं आ सकते अर्थात् एक अक्षरमें एकसे अधिक प्राणध्वनि नहीं रह सकती। यदि सोष्म स्पर्शवाले दो अक्षर द्वित्व अथवा अव्यवहित रूपसे आते हैं, तो पाणिनिके "पूर्वोऽभ्यासः" सूत्र (पाणिनीयाष्टाध्यायी ६।१।४) के अनुसार अभ्यासमें उनमें से प्रथम निरुष्म हो जाता है। उदाहरणार्थ 'हा' धातुका द्वित्व होनेपर बिना सूत्र लगे 'हाहाति' रूप होना चाहिए; परन्तु अभ्यासमें 'जहाति' हो जाता है। इसी प्रकार सं० दधाति बिभेति तथा बभारमें क्रमशः 'धा' भी तथा भृ धातुओंकी पुनरावृति है। इनके धाधाति भीभीति तथा भृभृभ्र' जैसे रूप होने चाहिए थे, क्योंकि सोष्म स्पर्शवाले दो अक्षर द्वित्व रूपसे एक साथ आ नहीं सकते, अतः अभ्यासमें ध तथा भ परिवर्तित होकर द तथा ब हो गए। अतएव सम्भव है कि मूल भारोपीय भाषाओंमें दभ् तथा बुध् धातुओंके आरम्भिक वर्ण सोष्म स्पर्श ध, भ रहे हों। अतः उक्त अपवाद नियमानुकूल है। संक्षेपमें ग्रासमनके उपनियमको इस प्रकार कह सकते हैं, चूँकि ग्रीक तथा संस्कृत क्लासिकल भाषाओंमें दो अव्यवहित सोष्म स्पर्शवाले अक्षरोंमें से प्रथम अभ्यासमें निरुष्म स्पर्शवाला हो जाता है, अतः जहाँ निम्न जर्मन G.D.B. क्लासिकल G(ग, ज), D(द), B(ब) के स्थानापन्न हो अर्थात् कोई परिवर्तन न हो, वहाँ यह समझना चाहिए कि क्लासिकल G.D.B. सोष्म स्पर्श Gh.Dh. Bh. के स्थानापन्न हैं।

* F. Max Muller : 'The Science of Language' Vol.II, page 267.

**वर्नरका उपनियम** :—ग्रासमनके उपनियमके पश्चात् लाटनरके जो कुछ विरोध शेष रहे, उनका समाधान वर्नरने किया। ग्रिम-नियमके अनुसार क्लासिकल K(क,श). T (त). P (प) के स्थानमें निम्न जर्मन H. Th. F. आते हैं; परन्तु *K लै० juvencus सं० युवशसका गा० juggs अं० young ; T—लै० centum सं० शतम्‌का गा० hund अं० hundred ; P—लै० lippus सं० लिम्पामि का गा० bileiba, लै० septem सं० सप्तनका गा० sibun, इत्यादिमें क्लासिकल K. T. P. के स्थानमें निम्न जर्मन वर्गमें G. D. B. आते हैं, जो ग्रिम-नियमके प्रतिकूल हैं। इसका निराकरण वर्नरने किया है। वर्नरका कहना है कि ग्रिम-नियम स्वरकी स्थितिपर निर्भर है। यदि क्लासिकल भाषाओंमें मूल भारोपीय K. T. P. S. के अव्यवहित पूर्वमें कोई उदात्त स्वर होता है, तो उनमें ग्रिम-नियम लगता है, अर्थात् उनके स्थानमें निम्न जर्मन वर्गमें H. Th. F. S. आते हैं, अन्यथा नहीं। यदि उदात्त स्वर उनके पश्चात् होता है, तो उनके स्थानमें G (Gw). D. B. R(Z) आते हैं। सारांश यह है कि यदि क्लासिकल K. T. P. S. का पूर्व स्वर उदात्त है तो उनके स्थापन्न निम्न जर्मन H. Th. F. S. होंगे और यदि परस्वर उदात्त है, तो G (Gw) D. B. R (Z) होंगे। K. T. P. S के पूर्व S के आनेसे बने हुए संयुक्त वर्ण—अर्थात् sk, st, sp. ss तथा pt, ps, ft—इसके अपवाद-स्वरूप हैं। उपर्युक्त उदाहरणोंमें उदात्त स्वर श (क), त, प के पश्चात् है, अतः इनके स्थानमें G.D.B. आए हैं। कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जो वर्नर-नियमके अपवाद प्रतीत होते हैं—जैसे भ्रातामें त के पूर्व उदात्त स्वर है, अतः उसके गा० brothar, ऐ०से० brothor तथा अं० brother ग्रिमनियमानुकूल है। सं० माता, लै० mater तथा सं० पिता, ग्री० लै० pater में उदात्त स्वर त के पश्चात् है, अतः इनके क्रमशः ऐ० से० moder तथा ऐ० से० faeder गा० fadar रूप आते थे; परन्तु अं० brother के मिथ्या सादृश्यपर इनके भी अं० रूप mother तथा father हो गए। ऐसे अपवाद तो उपमान आदिसे सिद्ध हो जाते हैं; परन्तु इनके अतिरिक्त निम्न जर्मन वर्गोंकी संज्ञा, सबल क्रियाओं (strong verbs) के रूप आदि कुछ अन्य भी ऐसे स्थान हैं, जहाँ वर्नरका उपनियम पूर्णतः नहीं लगता। इन ध्वनि-नियमोंकी भाँति और भी अनेक भाषा तथा काल-सम्बन्धी ध्वनि-नियम हैं।

रानीकटरा, लखनऊ ]

* डा० मंगलदेव शास्त्री : 'भाषा-विज्ञान', पृष्ठ ३४२।

---

# देवलीकी दुनिया

**श्री नरेन्द्र शर्मा**

एक हमारी भी दुनिया है घिरी कँटीले तारों से।
इन तारोंके, दीवारोंके, पार चाँद - सूरज उगते हैं।
ऊपर, दिनके हंस, रातके मानसके मोती चुगते हैं।
हम भी दूर-दूर दुनियासे उन सूने नभ-तारोंसे। एक०
हम दीवारोंके भीतर हैं, मनके भीतर हैं मनुहारें।
पर पलकोंकी ओट नहीं होने देती काली दीवारें।
मन मारे मनुहार पड़ी है बँधी कँटीले तारोंसे। एक०
यहाँ कँटीले तार खिंचे हैं जिनके पार रँगीले बादल।
साँझ-सुबहके बादल दिखते जैसे खिले डालपर पाटल।
पूछो लाल रंग कैसा है बिंधी हुई मनुहारोंसे? एक०
बुलबुल गीत यहाँ भी गाती, कभी सुबह पीलो उड़ आती।
नील चँदोवेमें रजनी भी रत्नोंके नक्षत्र सजाती।
हम भी सोते-जगते, हँसते-रोते घिर दीवारोंसे। एक०
बाहर करवट लेती दुनिया, बदल रहा जग बिना बताए।
कौन जीवितोंकी समाधिपर फूल गिराए, ओस चुआए?
सजते नहीं नए घर, प्यारे, उजड़े बन्दनवारोंसे। एक०
युग - परिवर्त्तनके इस युगमें बैठे कर्त्तव्योंसे वंचित।
दुनियाका मुँह देखा, बाकी केवल बीतेकी सुधि संचित।
दूर समय की धारा बहती छूटे हुए कगारोंसे। एक०
पर जो दूर गरजता सागर हम भी उसकी एक लहर हैं।
उस त्रिकालके कण हैं हम भी महाकालके एक प्रहर हैं।
गतिको कब तक बाँध सकोगे पूछो पहरेदारोंसे? एक०
हैं अगाध अंबुधिमें लहरें, लहर-लहरपर मुक्त फेनकण।
झलकेंगे हम मिटते-मिटते प्रलय-ज्वारमें क्या न एक क्षण?
हाथ उठाकर छोड़ चलाएँ लहरोंकी ललकारोंसे। एक०
वह्नि-वृष्टिकी पिचकारी इस दबकर बीज बनेंगे ऐसा।
जिनके दल होंगे कटीले और फूल होगा शोले-सा।
टूट-पिटकर कुछ निकलेंगे हम मिल नए प्रहारोंसे। एक०

# इसका क्या दण्ड ?

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन

जेठका महीना है ; किन्तु पूर्वी हवाके कारण गर्मी आज विशेष नहीं है। मेरा छोटा-सा बिछौना भूमिपर बिछा है। एक चींटा नंगी भूमिकी ओरसे दौड़ा हुआ मेरे बिछौनेपर आता है। चींटा किशोर-वयस्क है। उसमें सुकुमारता है, अनुभवहीनता है और चपलता है। मैं अपना यरवदा-चक्र ठीक कर रहा हूँ। सूत कातना है और कुछ कते हुए सूतको अटेरनपर चढ़ाना है। कुछ समाचारपत्र भी देखनेको पास रख लिए हैं।

जहाँ मैं बैठा हूँ, चींटा उसी ओर दौड़ता आता है। मैं बिछौनेपर हाथसे थप-थप करता हूँ कि वह मेरी ओरसे भाग जाय और बिछौनेसे हटकर नंगी भूमिपर चला जाय। थप-थपका शब्द तो उसने सुना, किन्तु उसका मतलब नहीं समझा। शिष्टाचार भी वह नहीं जानता। मेरी शक्तिका भी उसको ज्ञान नहीं। मेरी ओर दौड़नेकी गति उसने तीव्र कर दी। उसके अशिष्ट वेगपर मुझे थोड़ी-सी झुँझलाहट आ गई। हाथके झटकेसे उसे मैंने बिछौनेपर से हटा दिया ; किन्तु झुँझलाहटमें झटका कर्रा लग गया। वह बिछौनेसे लगभग एक हाथ दूर नंगी भूमिके एक नन्हेंसे गड्ढेमें है। काँपते हुए अपने हाथ-पैरोंसे वह अपने शरीरको सम्हालनेकी चेष्टा कर रहा है।

मेरे हृदयमें सहसा एक टीस उठी। मैंने अनुभव किया कि उसे कष्ट हो रहा है। एक पल पहले वह मेरे बिछौनेपर कल्लोल कर रहा था। अब मेरे हाथके झटकेने उसे बेकाम कर दिया है ! हृदयने प्रार्थना की कि वह अच्छा हो जाय। उसे एक कागज़के टुकड़ेपर सावधानतासे उठाकर मैंने एक दूसरे चिकने कागज़पर रख दिया। किस स्थानपर उसे चोट लगी है, यह मैं समझ न सका। उसकी चिकित्सा कैसे करूँ, यह भी समझमें न आया। किन्तु मैं प्राकृतिक चिकित्सामें विश्वास करनेवाला हूँ। मैंने आशा की कि प्रकृति उसे ठीक कर लेगी और ममतासे उसकी ओर देखता रहा। उसके हाथ-पैर हिल रहे हैं। अपने नन्हें शरीरको, जो पतली कमरसे मुड़ गया है, वह धीरे-धीरे सीधा कर रहा है। मुझे आशा होने लगी कि मेरी प्रार्थना सुनी गई, धीरे-धीरे वह ठीक हो जायगा !

मैं चर्खेपर अटेरन लगाकर तकुएपर से सूत निकालने लगा। किन्तु आँख बार-बार चींटेकी ओर जाती थी। कई तकुओंपर सूत कते रखे थे। लगभग पौन घंटा सूतको अटेरनपर चढ़ानेमें लगा। फिर सूतकी लच्छी बनाई। अब भी चींटा वहीं चिकने कागज़पर बैठा हाथ-पैर हिला रहा है ; किन्तु चल नहीं सकता। मुझे सन्देह हुआ कि कागज़का चिकनापन शायद उसको इस दशामें कष्टदायक है। इसलिए एक कागज़पर उठाकर मैंने समतल भूमिपर उसे बिठा दिया और फिर उसे देखता रहा।

झटका खानेके बादसे अब लगभग डेढ़ घंटा हो गया है। पहलेकी अपेक्षा उसका नन्हा शरीर अब सीधा थे। मेरे हृदयमें यह ध्यान उठा कि अपनी चोटको ठीक करनेके प्रयत्नमें यह थक गया है, शायद उसे भोजनकी आवश्यकता हो। मैं उठा। पास ही कुछ मुनक्के रखे थे। एक मुनक्काके दो टुकड़े किए, जिसमें रस कुछ ऊपर आ जाय। दोनों टुकड़े चींटेके मुँहसे मिलाकर रख दिया। उसने मुँह लगाया ऐसा मुझे जान पड़ा। फिर मेरे हृदयमें आशा बँधी कि आहारसे कुछ शक्ति पाकर यह चलने लगेगा। एक और बड़ा चींटा मुनक्केके टुकड़ोंके पास आ गया और रस लेने लगा।

मैं समाचारपत्र पढ़ता रहा और चींटेको ठहर-ठहर कर देखता रहा। हृदय मेरी क्रूरताको धिक्कार रहा था। एक घंटेसे अधिक और बीत गया। चींटा मुनक्केके पास पड़ा रहा; किन्तु धीरे-धीरे उसकी शक्ति घटती गई। उसके हाथ-पैर चलानेमें शिथिलता आती गई। फिर वह निश्चेष्ट हो गया !

मैं अपराधी हूँ, यह मुझे भास रहा है। किससे कहूँ कि मुझे दण्ड दे ? कह भी नहीं सकता, कौन समझेगा ? मेरी आँखोंसे जलकी धार बह रही है। यह आँखें, जो पुरुषार्थियोंका सामना करनेवाली हैं, इस नन्हें चींटेकी पीड़ासे त्रस्त हैं। एक घंटेमें मैं फिर अपने सब साधारण काम करूँगा। कालके प्रवाहमें यह दो घंटेका समय मुझे याद भी न रहेगा। किन्तु क्या मेरे इस अपकार्यको याद रखनेवाला कोई नहीं है ?

मेरे हाथका वह झटका इस समय मेरे हृदयको खींच रहा है। क्या यह मेरी मूर्खता है ? अथवा कहींसे आई हुई चेतावनी है ?

# पीपलका पेड़

श्री भैरवप्रसाद गुप्त

'अरे, अभी तू आटा ही गूँध रही है ?'

सहसा यह सुनकर वह अचकचा उठी। ज़रा पीछेकी ओर मुड़कर जो देखा, तो वह ! उसका विस्मय उल्लासमें बदल गया। लज्जित हाससे वह बोल उठी—'क्यों, आज इतनी जल्दी कैसे आना हुआ ? कोल्हुआड़ेका काम निबट गया क्या ? साँझ हुई नहीं कि पेटमें चूहे दौड़ने लगे !'—फिर उसने एक बार अपनी विनोद-भरी आँखोंसे उसकी ओर देख लिया।

'तुम्हें मालूम नहीं क्या ?'—उसी उतावलेपनमें उसने पूछा।

'क्या ?'—स्त्रीने पूछा। उसकी आँखोंमें उत्सुकता झलक पड़ी।

'वाह, सारे गाँवमें कोलाहल मचा है और तुम्हें...'

'अरे, बोलो भी तो, क्या हुआ ?'

'आज फिर दीपक जल रहा है।'

'पीपलके उसी खोखलेमें ?'

'हाँ, हाँ।'

'सच !'—उसकी आँखें हर्षातिरेकसे चमक उठीं।

'और नहीं तो क्या ? चलो, जल्दी करो।'—आटेकी थाली एक ओर खिसकाता हुआ वह कहने लगा—'नहीं तो जगह नहीं मिलनेकी। याद है न, उस दिन ज़रा-सी देर हो जानेसे...'

'मगर पाँच मिनट...' कहते-कहते वह रुक गई।

'नहीं, नहीं, रहने दो। आज ऐसा नहीं करने दूँगा। जल्दी हाथ धो लो।'

- २ -

माघकी वह साँझ जैसे आनेके पहले ही चली गई। सारा वायुमंडल धुँधला और कुहरेसे भीगा-सा नज़र आता है, मानो रजनीका काला अंचल शबनममें भींगा हुआ भूमिकी ओर खिसकता चला आ रहा हो। गाँवमें चारों ओर एक गहरी निस्तब्धता रात्रिके इस पहले प्रहरमें ही छा गई है। ठंडी हवा सी-सी करती हुई टेढ़ी-मेढ़ी गलियोंसे चक्कर काटती बहती जाती है। कहीं किसी प्राणीका चिह्न तक नहीं दिखाई देता। एक अजीब खौफ़नाक सन्नाटा छाया हुआ है।

गाँवके बाहर जगमगाते तारों-भरे आकाशके नीचे काला-काला मुरेठा सिरपर बाँधे लिपे-पुते चबूतरेपर खड़ा है विशालकाय पीपलका वृक्ष—बिल्कुल शान्त, निःशब्द और खोखलेमें लहरें लेता हुआ दीप सँजोए, मानो हृदयमें भक्तिकी ज्योति जगाए वह ध्यान-मग्न हो। चबूतरेसे ज़रा हटकर दाहनी ओर एक मन्दिरनुमा नन्हा-सा मिट्टीका कुटीर अपनेमें सिमटा-सिकुड़ा छायाकी तरह खड़ा है। उसके पुराने दरवाज़ेकी दरारोंसे पीली-पीली-सी प्रकाशकी क्षीण किरणें बाहर आकर वहींकी वहीं अन्धकारमें विलीन हो जाती हैं। उसी छायापर जन-सागरकी लहरोंपर तैरती-सी, कुटीरके सामने दूर तक उमंगोंमें चमकती, उत्सुकतामें मचलती हज़ारों नज़रें बिछी हैं। सारा गाँव जैसे वहाँ टूट पड़ा है। बाल-वृद्ध, युवक-युवतियाँ सबके सब एकाग्रचित्त, टकटकी बाँधे, हृदयका उल्लास दबाए दरवाज़ा खुलनेकी प्रतीक्षामें चुपचाप बैठे हैं। एक ओर कुछ कुत्तोंकी एक कतार है। वे भी पिछले पैरोंपर बैठे, गर्दन उठाए, कान खड़े किए, आँखें फाड़-फाड़कर दरवाज़ेकी ओर देख रहे हैं।

धीरे-धीरे दरवाज़ा खुला। द्वारपर धूमिल प्रकाशमें एक छाया कुछ अस्थिर-सी झलमला उठी। सारा वायुमंडल जय-जयकारसे गूँज उठा। पीपलकी डाल-डाल झूम उठी। पत्तोंने करतल-ध्वनि की। छाया अपने दीर्घ हाथ उठाकर आगे बढ़ी। वह चबूतरेपर आ आसन मारकर बैठ गई। सबकी नज़रें उसके ज्योतिर्मय मुख-मंडलपर गड़ गईं। दीपकके लहराते प्रकाशने उसके होंठोंकी मुस्कान ले चारों ओर बिखेर दी। एक उत्फुल्ल हास्य जन-समुदायमें थिरक उठा, हृदयका उल्लास आँखोंसे फूट पड़ा। फिर एकाएक उसकी मुद्रा गम्भीर हो गई। उसका त्रिपुण्ड-लसित उन्नत भाल दमक उठा। बड़ी-बड़ी आँखोंसे ज्योतिकी किरणें फूट निकलीं। विशाल वृक्षपर लहराती सफ़ेद दाढ़ीसे जैसे नूर टपकने लगा। फिर

निस्तब्धताका वही शान्त वातावरण, वही ठगा-ठगा-सा ध्यानावस्थित जन-समुदाय !

अचानक उसके सरस कंठसे अनुरागमयी संगीतकी सुमधुर लहरी फूट पड़ी। संगीतके आरोह-अवरोहकी तरल तरंगोंपर सारा जन-समूह आत्म-विभोर होकर झूमने लगा। दीप-शिखा अलौकिक ज्योतिसे लहक उठी। पीपलका पत्ता-पत्ता हिल गया। गायक आत्म-विस्मृत हो गाता रहा और उसके संगीतकी मधुरता बढ़ती ही गई।

- ३ -

कुछ वर्षों-बाद। उस रात भी पीपलके उस खोखलेमें प्रकाशकी एक परिधि बनाता और बिगाड़ता दीपक वर्षाके घने अन्धकारसे मानो आँखमिचौनी खेल रहा था। पीपलके पत्तोंके झुरमुटमें जुगनुओंका झुण्ड जगमग-जगमगकर काले-कजरारे बादलोंके नीचे जैसे एक नए तारों-भरे आकाशकी रचना कर रहा था। रह-रहकर सर्द हवाके झोंके समूचे वृक्षको आन्दोलितकर हहराते हुए निकल जाते। दीप-शिखा काँप उठती और सामने दूर तक गुटमुटाकर बैठे जन-समुदायका रोम-रोम सिहरनसे काँटोंकी तरह खड़ा हो जाता ; लेकिन कोई टससे मस तक नहीं होता था।

नियत समयपर कुटीरका कपाट खुला। वही जय-जयकार, वही उमंग, वही आँखोंमें उत्सुकताकी अधीरता, वही हृदयमें उमड़ता उछाह, वही शान्त वातावरण! गायकका सुरीला संगीत कल्पनाके कोमल इन्द्रधनुषी पंखोंपर लोगोंका स्निग्ध हृदय ले, भावोंकी लहरोंपर तैरता, स्वरोंके तारोंपर थिरकता, अनन्त आनन्दकी ओर मन्द गतिसे उड़ चला। अविरत प्रवाहमें वह उड़ा जा रहा था कि सहसा पंख टूट गए, लहरें शिथिल हो गईं और तार बिखर गए। तानकी मधुर लहरी वायुमंडलमें झनझनाकर कुंठित हो गई। गायकका कंठ-प्रवाह अवरुद्ध हो गया, ज्योतिर्मय मुखमंडल उतर गया और सारा शरीर जैसे पसीने-पसीने हो गया। जन-समुदाय अवाक्, आश्चर्य-चकित, खिन्न, आँखें फाड़े गायकका अप्रतिभ मुख देखता रह गया।

गायक सँभला। उसने ज़रा गला साफ़ किया और हृदयका ज़ोर लगाकर फिर आलापना शुरू किया। लोगोंके हृदयमें आशाका संचार हुआ कि संगीत-धारासे पुनः उनका मानस लहरा उठेगा। किन्तु कहाँ ! कल्पनाके पंख फड़फड़ाकर रह गए, भावोंकी लहरें स्पन्दित हो अतलमें विलीन हो गईं और स्वरोंके तार झंकृत हो थरथराकर रह गए। गायकका चहरा फ़क पड़ गया। वह समझ नहीं पाता था, उसे अचानक यह हो क्या गया ? सिकुड़े भालसे स्वेद-कण टप-टप चू पड़े। आँखोंकी चमक धुँधली हो गई। होंठ काँपकर रह गए। जन-समुदाय पर निराशाके घोर बादल छा गए।

गायक काँपता हुआ उठा। सारे लोग शोकातुर, अन्यमनस्क उसके साथ ही खड़े हो गए। गायकने हाथसे इशारा करते हुए रूँधे गलेसे कहा—'बैठो, एक बार देवीकी प्रार्थना कर देखूँ।' और वह लड़खड़ाता हुआ अपने कुटीरमें घुस गया। कपाट बन्द हो गए। क्षण-क्षण पहाड़की तरह कट रहे थे। कुटीरके कपाट नहीं खुले। विह्वल जनता धैर्य खो बैठी—'गायकको आज यह क्या हो गया, क्या हो गया ?' आख़िर दरवाज़ा खुला। सबके हृदयमें बिजली-सी दौड़ गई। लेकिन इस बार सदाकी तरह गायक चबूतरेपर नहीं आया। वहींसे उसने कहा—'जाओ, आज देवी रूठ गई हैं, फिर कभी...' और उसने कपाट बन्द कर लिए। लोगोंकी हसरत-भरी नज़रें अतृप्तिमें तड़पती दरवाज़ोंपर टिककर रह गईं।

- ४ -

आज गायक पीपलके खोखलेमें केवल दीप जलाकर ही सन्तुष्ट न होगा। आज उसके आनन्दका ठिकाना नहीं। उसका रोम-रोम पुलकित है, मुखमंडलपर प्रसन्नता हिलोरे ले रही है, आँखोंसे मानो ख़ुशी छलकी पड़ती है और उसके पैर हर्षके मारे भूमिपर नहीं पड़ते। आत्माका मुक्त संगीत जैसे बन्धन तोड़कर निकलनेके लिए तड़प रहा है ; भावनाओंका समुद्र जैसे प्रलय-वेगसे उफ़ान ले रहा है। नहीं-नहीं, आज वह दीप जलाकर ही सन्तुष्ट नहीं रह सकता। आज वह स्वयं गाँवमें जायगा, एक-एकको स्वयं निमन्त्रित करेगा और चिल्ला-चिल्लाकर उनसे आनेको कहेगा। गायकने एक अपूर्व शक्ति और स्फूर्तिका अनुभव किया, और गाँवकी ओर चल दिया। उसे देखते ही सारा गाँव बावला हो टूट पड़ा। उसके चारों ओर उत्कंठित जन-सागर लहरा उठा। जय-जयकारकी ध्वनिसे सारा गाँव एक क्षणके लिए गूँज उठा। उसकी बड़ी-बड़ी गर्वीली आँखें प्रलयंकर प्रसन्नतामें उल्लसित हो ऊपरको उठीं। चारों ओर देखते हुए उसने चिल्लाकर कहा—'आज फिर दीप

जलेगा। आज हम तुम्हें अपने जीवनका सबसे महान संगीत सुनायँगे—सबसे महान।' और उसके साथ ही जैसे सारा वायुमण्डल चिल्ला उठा—सबसे महान संगीत—सबसे महान।

* * *

तूफ़ानी रात अपने दल-बलके साथ आ आकाश और पृथ्वीको एक कर रही है। गड़गड़ाते बादलोंमें रह-रहकर बिजली कड़क उठती है, मानो अपनी प्रलयंकरी लपटोंसे वह सारी दुनियाको भस्मीभूत कर देनेकी धमकी दे रही हो। भयंकर आँधी घोर अंधकारके प्राणोंमें ज़ोरसे साँस फूँकती जैसे कह रही है—आओ, हम दोनों मिलकर इस दुनियाको महानाशके गर्त्तमें सदाके लिए झोंक दें। सारा वायुमंडल त्रस्त थरथर काँप रहा है। पीपलकी डालें झकोरे खा रही हैं। पत्ते टूट-टूटकर आकाशमें उड़ रहे हैं। तना मचमचा उठता है। दीप बुझ-बुझकर लपलपा उठता है। कुटीरके कपाट झोंकेकी चपेटसे पछाड़ खाकर गिरनेको हो जाते हैं। फिर भी दरवाज़ेके प्रकाशपर आँख गड़ाए जनता बैठी है। वह अवश्य सुनेगी आज गायकके जीवनका सबसे महान संगीत।

इतनेमें बादल गरज उठे। सारा वायुमंडल भक्से जल उठा। उधर बिजलीकी लपलपाती जिह्वा प्रलय-वेगसे पृथ्वीकी ओर बढ़ी और इधर बढ़ा आँधीका विकराल झोंका। चड़चड़ाकर कुटीरका कपाट धड़ामसे गिर पड़ा। ज्योति बुझ गई। कुटीरमें भयंकर अन्धकार और शान्ति छा गई। लोग उधर लपके। देखा, गायक देवीके चरणोंपर सिर रखे लुढ़का पड़ा है—वही हास्य-रंजित मुखमंडल, वही त्रिपुण्ड-लसित दमकता उन्नत भाल, वही बड़ी-बड़ी आँखें! परन्तु जनता विह्वल हो उठी—उनका गायक! गायक! गायक!

गायकने बड़ी कोशिशसे क्षण-भरके लिए आँखें खोल दीं। आँसूके कण बरौनियोंपर बिखर गए। एक रहस्यमयी मुस्कान उसके होंठोंपर थिरक गई। फिर धीरे-धीरे आँखें बन्द हो गईं और होंठोंकी मुस्कान उड़ गई। लोग कलेजा थामकर वहीं बैठ गए।

वह नवयुवक गायकके चरणोंसे लिपटकर रो पड़ा—'गायक, क्या यही तुम्हारे जीवनका सबसे महान संगीत है?'

वह बूढ़ा गायक युवककी ओर आँसू-भरी आँखोंसे देखता, एक दुख-भरी मन्द हँसी हँसता, काँपती हुई आवाज़में बोल उठा—'पागल!'

हिन्दी-प्रचार-सभा, त्रिची ]

# जमनालालजीके मृत्यु-पत्र

**श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल**

स्वर्गीय जमनालालजी बजाज देशके एक बहादुर सिपाही थे। अपने जीवनके अन्तिम समय तक उन्होंने अपनी सारी शक्ति सेवामें ही लगाई; दूसरोंकी सेवा लेना पाप ही समझा। अगर मृत्युके वक्त उन्हें किसीकी सेवा लेनी पड़ती, तो वे उसे अपने पुराने जन्मके पापोंका फल ही समझते। वे तो हमेशा ही कहा करते थे कि अगर किसीकी चारपाईपर लेटे मरना पड़े, तो इससे ज़्यादा दुर्भाग्यकी और क्या बात होगी? मरे तो चलते-फिरते, काम करते मरे!

उनकी यह इच्छा पूरी भी हुई। उन्होंने हँसते-हँसते अपनी देहका त्याग किया। मौतका उन्हें कभी डर ही न था; उसके लिए वे हमेशा तैयार रहे। अपने मृत्यु-पत्र लिख रखनेका उन्हें शौक था, ताकि दुनियासे जाते समय उन्हें किसी भी तरहकी चिन्ता न रहे। सन् १९२० से ही उन्होंने मृत्यु-पत्र लिखना शुरू कर दिया था। उस समय तो वे केवल ३० वर्षके ही थे। सन् १९३६ तक उन्होंने चार मृत्यु-पत्र लिखे। आख़िर मृत्यु-पत्र लिखनेके बाद पिछले पत्र तो रद्द ही हो गए थे; लेकिन सभी मृत्यु-पत्रोंको डायरीके रूपमें सुरक्षित रखा। इन पत्रोंको मुझे उन्हें उनके देहावसानके बाद ही पढ़नेका मौक़ा मिला। उन्हें पढ़कर काफ़ी आश्चर्य और आनन्द हुआ। वे महात्मा गांधीके सम्पर्कमें सन् १९२० से ही आए थे। तभीसे उनके विचार कितने गहरे, निर्मल और परिपक्व थे, यह उनके मृत्यु-पत्रोंसे मालूम होता है।

अपने १९२२ के पत्रमें वे लिखते हैं—'...मेरी इस देहकी मृत्युकी दशामें और कैसी ही स्थितिमें भी मुझे कैसे शान्ति रहेगी?' २० वर्ष पहले भी उन्हें कितना आत्म-विश्वास था!

उसी मृत्यु-पत्रमें आगे वे लिखते हैं—'मुझे पूरा विश्वास है कि निःस्वार्थ-भावसे जन-सेवा ( देश-सेवा ) करते रहनेसे ही शीघ्र मोक्ष प्राप्त हो सकता है। अगर मुझे कोई यह कहे कि इस तरह देश-सेवा करनेवालोंको इस जन्ममें नहीं, कई जन्मों बाद मोक्ष प्राप्त होगा, तो भी मुझे तो कोई चिन्ता नहीं होती। एक प्रकारसे आनन्द ही होता है। पवित्रताके साथ जन-सेवा करते-करते कई जन्म भी हो जायँ तो क्या फिकर? मनुष्यको केवल इस बातका ही विचार रखना चाहिए कि कहीं वह इस मायाजालमें फँसकर मनुष्य-जन्मके आदर्शको न भूल जाय और अभिमानमें प्रवृत्त होकर इस नर-देहका पतन न कर ले।'

उनकी आध्यात्मिकताका कितना सुन्दर दर्शन हमें उनके १९२२ के मृत्यु-पत्रमें ही मिल जाता है!

उसी पत्रमें देशके नवयुवकोंको उनका मार्मिक संदेश भी है—'मेरे भारतके होनहार बालको, बालिकाओ तथा नवयुवको! तुम्हारी बालपनकी व जवानीकी उमर बहुत ही जोखमसे भरी हुई है। इसलिए यह उमर आदर्श सच्चरित्र महानुभावोंकी संगतसे व उपदेशसे बिताना तुम्हारा धर्म है!'

अपने व्यवसायके सम्बन्धमें वे लिखते हैं—'मेरे बाद व्यवसाय बन्द कर दिया जाय। व्यवसाय-कार्य करना ही जचे तो वह सत्यताके साथ व जिस व्यवसायसे देशको पूरा लाभ पहुँचाते हुए व्यवसाय हो सके, वही करना चाहिए। बाकी बन सके, वहाँ तक व्यवसायके झगड़ेमें न पड़कर आत्म-शुद्धिके व्यवसायमें ही जीवन बितानेकी चेष्टा करना मेरे पीछे रहनेवालोंको मेरी सलाह है। साधारण ख़र्च-निर्वाह-पुरता व्यवसाय-उद्योग उपर्युक्त सिद्धान्तके अनुसार करते रहनेसे वैश्य-धर्मका पालन भी हो सकेगा तथा आत्मोन्नति और निःस्वर्थ-भावसे देश-कार्य भी हो सकेंगे।'

उनके १९२२ के मृत्यु-पत्रपर अगर फ़रवरी सन् १९४२ की तारीख़ होती, तो किसीको शक करनेका कारण न होता। बीस वर्ष पहले भी उनके विचार कितने विकसित और सुलझे हुए थे!

अपने कर्मचारियों और कुटुम्बियोंके लिए भी उनका सन्देश कितना आध्यात्मिक है—'मेरी इस संसार-यात्रामें जिन कर्मचारियों और कुटुम्बियोंने ईमानदारी-पूर्वक और स्वार्थ-त्यागसे मेरी सेवा तथा व्यवहार किया है, उनसे क्षमा माँगता हुआ इतना ही कहना चाहूँगा कि वे मेरे इस मृत्यु-पत्रसे उनके नामसे कोई रक़म निकाली हुई न देखकर अथवा उनके नामका खास उल्लेख न किया हुआ देखकर मुझपर नाराज़ न हों और असन्तोष भी न करें...अगर उन्होंने ईमानदारीसे मेरी सेवा की है, तो मैं उनसे नम्रतापूर्वक यही निवेदन करूँगा कि अब वे अपना भविष्यका जीवन इस मायाके संसारमें आज तक बिताते आए, उस मुताबिक न बितायँ, और यह नर-देह बहुत ही पुण्य-कर्मसे प्राप्त होती है, ऐसा मानकर सत्यको ही मुख्य धर्म और जन-सेवाको ही मुख्य कर्म समझकर वे अपने जीवनका परिवर्तन कर दें। वे गृहस्थमें रहकर भी उसमें आसक्त न हों और उपकारका ध्येय सामने रखते हुए पवित्रता व सादगीसे तथा त्यागका भाव रखते हुए अपना जीवन बितायँ। मुझे आशा है कि इस माफ़िक वे चलेंगे, तो एक दिन अवश्य जीवन मरणसे छूट जायँगे और परमात्माकी ज्योतिमें मिल जायँगे। महात्मा गांधीके जीवनको वे आदर्श मानें, इतना निवेदनकर फिर एक बार उनकी आत्माओंसे क्षमा-प्रार्थना करता हुआ परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि उन सबको अवश्य सद्बुद्धि प्रदान करे।'

जमनालालजीने अपने संवत् १९८२ के मृत्य-पत्रमें अपने धार्मिक और सामाजिक विचारोंका खुलासा किया था—'पूज्य महात्माजीके सिद्धान्त और विचार मुझे पसन्द हैं। मैं तथा मेरे घरके बालक अगर उन्हें अपने जीवनमें ला सकेंगे, तो अवश्य लाभ (कल्याण) होगा, ऐसा विश्वास है—ख़ासकर सत्य, अहिंसा, अंत्यजों (हरिजनों) के साथ व्यवहार तथा सेवा, विधवा-विवाह (जो लड़की ब्रह्मचर्य-पालनमें असमर्थ हो)।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।

यह ध्येय सामने रखकर व्यापार तथा अन्य कार्य करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

'मृत्युका ख़र्च, बिरादरी, ब्रह्मपुरी न की जाय; घर-शुद्धि हवन आदिसे कर ली जाय।'

पूज्य जमनालालजीका जीवन उज्ज्वल और आदर्श-जीवन रहा। उनकी मृत्यु भी जीवनकी ही प्रखर ज्योति थी।

सेकसरिया कालेज, वर्धा ]

# अमेरिकामें हिन्दू-धर्म

श्री मुरलीधर श्रीवास्तव

प्राचीन कालमें हिन्दू-धर्म संसारके अनेक भागोंमें फैला हुआ था, जिसके चिह्न आज पुरातत्व-प्रेमियोंके कारण जनताके सम्मुख प्रकट होते जा रहे हैं। भारतके उस प्राचीन गौरवसे किस हिन्दूका हृदय फूला नहीं समाता। किन्तु यह तो उस अतीत युगकी बात है, जिसे हम इतिहासके पन्नोंमें ही पढ़ सकते हैं। पर आधुनिक भारत सदियोंसे ग़ुलामीके बन्धनमें बँधा हुआ रहकर भी संसारके सम्मुख अपनी धर्म-ज्योति प्रकाशित करनेका साहस करे, यह वस्तुतः आश्चर्य और हर्षका विषय है। संसारके नवीनतम देश अमेरिकामें हिन्दू-धर्मकी ज्योति किस रूपमें फैल रही है, इसका अनेक भारतीयोंको ज्ञान नहीं है। एक सबसे प्राचीन धर्म सबसे नवीन महादेशमें किस तरह क्रमशः फैल रहा है, हिन्दू-धर्म अपनी शाखा-प्रशाखाओंके साथ अमेरिकामें किस तरह बढ़ रहा है, इसका इतिहास जितना ही मनोरंजक है, उतना ही उत्साह-वर्द्धक भी। अमेरिकाके अनेक कवियों और लेखकोंपर, जिनमें एमर्सन प्रधान हैं, हिन्दू-दर्शनका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है, और उन्होंने इस दिशामें बड़ी सुन्दर रचनाएँ की हैं। हिन्दू-धर्मके विभिन्न रूपोंके प्रचार, थियोसफ़ीकी प्रगति तथा क्रिश्चियन साइन्सकी उन्नतिके कारण दिनपर दिन हिन्दू-विचार अमेरिकामें बढ़ते जा रहे हैं। अनेक स्वामी और योगी, विद्वान व्याख्याता तथा हिन्दू-यात्रियोंके भाषणों, लेखों और रचनाओंका प्रचार होनेके कारण अमेरिकामें हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-साहित्यकी चर्चा बढ़ रही है। भारतके गांधी, टैगोर और राधाकृष्णनकी रचनाओंके विश्वव्यापी प्रचारने भी अमेरिकाका ध्यान हिन्दू-विचारधाराकी ओर विशेषतः आकर्षित किया है। किन्तु हिन्दू-धर्मकी जड़ रोपनेवाले वे वेदान्ती गृहत्यागी साधु-संन्यासी हैं, जिन्होंने विदेशोंमें हिन्दू-धर्मकी सर्वप्रथम पताका फहराई थी।

स्वामी विवेकानन्दने सर्वप्रथम हिन्दू-धर्मका संदेश, वेदान्तके रूपमें, अमेरिकाकी मिट्टीमें पहुँचाया। शिकागोकी विश्व-धर्म-सभाकी उनकी प्रसिद्ध वक्तृता आज भी भारतीयोंके भूलनेकी चीज़ नहीं है। विवेकानन्दकी वाणीमें आर्य-धर्मने उस दिन ऐसा ओजस्वी प्रतिनिधि पाया, जिसने अकेले सारे अमेरिकाका ही नहीं, सारे संसारका ध्यान आर्य-धर्मकी ओर आकर्षित कर दिया। उस दिन हिन्दू-धर्मकी जड़ अमेरिकाकी भूमिमें रोपी गई, जिसे स्वयं उस महापुरुषने सिंचितकर पल्लवित किया। भारतका मुखोज्ज्वल करनेवाले महानपुरुषोंमें स्वामी विवेकानन्द अत्यन्त आदरणीय स्थानके अधिकारी हैं और भारत उनकी कीर्तिको कभी भुला नहीं सकता। अमेरिकामें स्वामीजीने जो कार्य किया है, उससे शिक्षित भारतीय सुपरिचित हैं, अतः हम उनके धर्म-विषयकी चर्चा न कर उनके बादके हिन्दू-धर्मका सन्देश फैलानेवाले कुछ कर्मयोगी पुरुषोंकी चर्चा करेंगे, जिन्होंने अपनी अचल कर्तव्यनिष्ठा, पावन उद्योग तथा योग्यतासे शाश्वत धर्म-ज्योति जलाई है। इन पुरुषोंके पास न तो सरकारका बल था, न धनका बल और न संगठन और देशका ही बल। यदि उनके पास कुछ था, तो वह धर्म-बल था।

विवेकानन्दने १८९४ ई० में अमेरिकामें वेदान्त-सोसाइटीकी स्थापना की। अमेरिकन वेदान्त-रूपी वृक्षका बीज विवेकानन्दने बोया था।। १९०० ई० में अन्तिम बार विवेकानन्दने अमेरिकाकी भूमिका त्याग किया और अपना कार्य-भार स्वामी तुरीयानन्दको सैनफ्रांसिस्को और स्वामी अभेदानन्दको न्यूयार्कमें सौंप दिया। किन्तु दो ही वर्ष बाद तुरीयानन्दको दुर्बल होकर भारत लौटनेके लिए बाध्य होना पड़ा। अन्तमें स्वामी त्रिगुणातीतको अमेरिकामें धर्म-प्रचारके लिए भेजा गया। उन्होंने लासएंजेलस और सैनफ्रांसिस्कोके शान्ति-आश्रमका कार्य स्वामी तुरीयानन्दके स्थानपर सँभाला। इन केन्द्रोंकी वेगसे वृद्धि होने लगी। १९०० ई०में स्वामी सच्चिदानन्दको लासएंजेलस-केन्द्र मिला। अभेदानन्दकी सहायताके लिए स्वामी निर्मलानन्द आए। वे न्यूयार्कमें कार्य करने लगे; किन्तु १९०६ ई० में निमोनियासे पीड़ित होकर उन्हें भारत लौट आना पड़ा। अभेदानन्दने पिट्सवर्गमें नया केन्द्र खोला। यहाँ १९०६ ई०में वेलूरसे स्वामी प्रकाशानन्द, परमानन्द और बोधानन्दका आगमन हुआ, जिन्हें क्रमशः सैनफ्रांसिस्को, न्यूयार्क और पिट्सबर्ग केन्द्र मिले। १९०९ ई० में स्वामी परमानन्द न्यूयार्कके लिए रवाना हुए। उन्होंने बोस्टनमें एक नया केन्द्र खोला। स्वामी परमानन्द और शारदानन्दने वाशिंगटन-केन्द्रकी

स्थापना की और उसका कार्य एक अमेरिकन देवी सिस्टर देवमाताको सौंपा। १९११ ई० में स्वामी अभेदानन्दने यूरोपकी यात्रा की और अनेक स्थानोंमें हिन्दू-धर्मके केन्द्र स्थापित किए। १९१२ ई० में न्यूयार्क त्यागकर अभेदानन्दने वेस्ट कार्नवालमें ३७० एकड़के एक आश्रममें विश्राम ले लिया। ९ वर्ष बाद हिन्दू-धर्मका बड़ी सफलताके साथ प्रचारकर अभेदानन्द भारत लौटे।

उधर पश्चिमी अमेरिकामें कार्य करके स्वामी सच्चिदानन्द १९१३ में भारत लौटे और त्रिगुणातीतका १९१४ में देहान्त हो गया। इन लोगोंके स्थानपर उपयुक्त प्रचारक चुननेके लिए प्रकाशानन्द भारत आए और फिर प्रभवानन्द और राघवानन्दको लेकर वापस लौटे। १९१५ ई० में परमानन्दने पश्चिमी अमेरिकाकी यात्रा की, मिनापोलिस और सैनफ्रांसिस्कोमें लेक्चर दिया और १९१६ ई० में लासएंजेल्समें एक स्थायी केन्द्र पुनः स्थापित किया, जिसकी शाखाएँ लौटा बारबरा, सैन डीगा, लांग ब्रैंच, पसाडना और दक्खिनी कैलिफोर्नियाके अन्य स्थानोंमें खुलीं। १९१८-१९१९ ई०में टकोमा, पोर्टलैण्ड, लुईविले, सिनसिनाटी, गैलप, न्यू मेक्सिको आदि स्थानोंमें भी केन्द्र स्थापित हो गए। १९२६ में परमानन्दने भारतसे दो और स्वामियोंको बुलाया, सैनफ्रांसिस्को-केन्द्रके लिए दयानन्दको और बोस्टनके लिए अखिलानन्दको। १९२७में प्रकाशानन्दकी मृत्यु होनेपर स्वामी माधवानन्द, जो 'रामकृष्णकी जीवनी' के लेखक थे, वहाँ प्रचारार्थ गए। उसी वर्ष न्यूयार्कमें राघवानन्दसे ज्ञानेश्वरानन्दने कार्य-भार लिया। जुलाई, १९२९ में प्रभावानन्द पोर्टलैण्डसे सिनेमा-संसारकी राजधानी हालीउड आए। १९२९ में ज्ञानेश्वरानन्द न्यूयार्कसे शिकागोमें केन्द्र स्थापित करनेके लिए आए, जहाँ विवेकानन्दने १८९३ ई० में हिन्दू-धर्मका बीज बोया था।

इस तरह सन् १९२९ तक रामकृष्णके अनुयायी १७ स्वामी अमेरिकामें आ चुके थे। इन लोगोंने भिन्न-भिन्न स्थानोंमें केन्द्र स्थापित करके कार्य शुरू किया ; पर कोई अखिल अमेरिकन संस्था क़ायमकर प्रचार नहीं किया। अमेरिकाके धनिकोंकी सहानुभूति प्राप्त करके वे केन्द्र चलते हैं, भारतसे रुपया नहीं जाता। ये स्वामी केन्द्रोंके संचालक नहीं, एक तरहसे केन्द्रोंके मार्ग-दर्शक हैं और अमेरिकन भक्तोंके अतिथि बनकर रहते हैं। ये सीधे बेलूर-मठसे सम्बन्ध रखते हैं, जो पहले-पहल सन् १८९९ में स्थापित हुआ था। रामकृष्ण-आन्दोलनका अमेरिकामें जो कार्य हुआ है, उसका संक्षिप्त परिचय यही है। अमेरिका हिन्दू-धर्मके नवीन रूपोंसे—आर्यसमाज और ब्राह्मसमाजसे—अधिक प्राचीन रूपोंकी ओर आकर्षित होता है। इसका क्या कारण है ? अमेरिकन जब किसी धर्मकी ओर झुकता है, तब वह अपनेको ठीक उसी रूपमें रखना चाहता है, जैसे एक आदर्श हिन्दूको रहना चाहिए। वह हिन्दू-धर्मके नए रूपोंकी ओर नहीं झुकता। इसके अतिरिक्त स्वामियोंके जीवन, त्याग, आसन, प्राणायाम, योग-क्रियाओंकी नवीनता उन्हें विशेष रूपसे आकर्षित करती है। रामकृष्ण-मिशनके ये स्वामी हिन्दू-धर्मका वेदान्त-तत्व अमेरिकामें शुद्ध रूपमें फैलाते हैं और इसे अमेरिकाके लिए सुबोध बनानेके ख़यालसे परिवर्तित नहीं करते। उन्हें हिन्दुओंकी संख्या बढ़ाने या अमेरिकनोंकी शुद्धि करनेका ध्यान नहीं है। वे शुद्ध वेदान्तके सन्देश-वाहक हैं और शुद्ध भावसे हिन्दू-दर्शनकी ओर अमेरिकाके शिक्षित समुदायका ध्यान आकर्षित करते हैं।

अमेरिकामें हिन्दू-धर्म जिन भिन्न-भिन्न रूपोंमें पाया जाता है, उनका हम नीचे उल्लेख करते हैं—(१) हिन्दू-सम्प्रदाय, जैसे रामकृष्ण-आन्दोलन तथा योगदा-सतसंग-सोसाइटी। (२) हिन्दू-सांस्कृतिक आन्दोलन। (३) विद्वान हिन्दू भाषणकर्त्ता, जैसे टैगोर और सर राधाकृष्णन। (४) व्यावहारिक हिन्दू-धर्मपर साधारण व्याख्यान। (५) अमेरिकन धूर्त्त, पाखण्डी तथा कथित हिन्दू, जो अपनेको हिन्दू कहते हैं ; पर हिन्दू नहीं हैं। (६) अमेरिकामें बसे हुए हिन्दू प्रोफ़ेसर और छात्र। (७) पूर्वी धर्म, जो अधिकांशमें हिन्दू-धर्मसे सम्बन्ध रखते हैं, जैसे बौद्ध-धर्म और सिक्ख-पंथ। (८) अमेरिकन पंथ, जिनका कुछ अंश हिन्दू मूलसे सम्बन्ध रखता है, जैसे थियोसफ़ी और क्रिश्चियन साइन्स। (९) पाश्चात्य विचारकोंका प्रभाव, जिनपर हिन्दू-विचारधाराका प्रभाव पड़ा है। इन मुख्य रूपोंके अन्तर्गत ही अमेरिकामें हिन्दू-धर्मका अध्ययन किया जा सकता है।

'योगदा-सतसंग-सोसाइटी' नामक संस्था बड़े वेगसे अमेरिकामें बढ़ रही है। इस संस्थाके प्रवर्त्तकने अपने व्यावहारिक योग और विचारोंको इस आकर्षक रूपमें अमेरिकाके सम्मुख रखा है कि इसकी प्रगति दिनपर दिन

बढ़ती जा रही है। इसके मुख्य प्रवर्त्तक स्वामी योगानन्द हैं और उनके सहकारी स्वामी धीरानन्द। उन्होंने बड़े ही आकर्षक रूपमें अपने पंथका परिचय प्रकाशित किया है, अमेरिकनोंकी रुचिके अनुकूल अपने विचारोंका प्रचार किया है और अमेरिकन संस्थाओंके प्रचार-साधनोंका बड़ी ख़ूबीसे उपयोग किया है।

स्वामी योगानन्द भी विवेकानन्दकी तरह एक क्रिश्चियन कांग्रेसमें शरीक होनेके लिए अमेरिका गए थे। वे भी कलकत्ता-यूनिवर्सिटीके बी० ए० हैं और अपनेको वेदान्ती कहते हैं। वे शंकरमठके 'पुरी' उपाधिधारी साधु हैं और 'बाबाजी' नामक एक बंगाली योगीको 'योगदा-सतसंग-आनन्दोलन' का प्रधान प्रवर्त्तक मानते हैं। ये बाबाजी स्वामी योगानन्दके आध्यात्मिक पितामह हैं और कहा जाता है कि वे अब तक जीवित हैं। स्वामीजीने बाबाजीके शिष्य स्वामी श्रीयुक्तेश्वर गिरिसे संन्यास लिया और दूसरे शिष्य लाहिड़ी महाशयसे योग सीखा। श्रीयुक्तेश्वरकी प्रेरणासे ही स्वामी योगानन्द अमेरिका गए। १९२० में स्वामी योगानन्द अमेरिका बोस्टनमें अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-संघमें सम्मिलित होनेके लिए प्रतिनिधि-रूपमें आए थे। बोस्टनमें आकर उन्हें हिन्दू धर्मके प्रचारका ध्यान आया और वे अमेरिकन प्रचारके साधनोंसे बहुत प्रभावित हुए। पिता और कुछ विद्यार्थियोंकी सहायतासे उन्होंने बोस्टनमें एक केन्द्र स्थापित किया। सिस्टर योगमाताके सहयोगसे यहाँ एक छोटे-से 'समर-स्कूल'की स्थापना की गई। फिर कार्य बढ़नेपर स्वामी धीरानन्द भारतसे बुलाए गए। स्वामी धीरानन्दने न्यूयार्कके एक व्याख्यान द्वारा अपने कार्यकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया। क्रमशः अन्य स्थानोंपर भी उन्हें भाषणका निमन्त्रण मिलने लगा, और इन दो संन्यासियोंके प्रयत्नसे काम बढ़ निकला। इस कार्यको अग्रसर करनेके लिए 'योगदा' नामक एक पुस्तिका भी प्रकाशित की गई। इसी समय भाग्यसे एक योग्य अमेरिकन सेक्रेटरी भी मिल गया। भ्रमण, भाषण, पैम्फलेट, पुस्तक, लेख आदि द्वारा बहुतरे हिन्दू-धर्ममें दिलचस्पी लेनेवाले व्यक्ति तैयार हो गए और योगदा-सतसंग बढ़ने लगा। लासएंजेल्समें योगानन्दका शानदार स्वागत हुआ। क्लबों, कालेजों, सोसाइटियों, गिरजों और अख़बारोंने उनके आगमनका हृदयसे स्वागत किया। योगदा-कोर्सके १५०० विद्यार्थी हुए और योगकी शिक्षा और प्रचार बढ़ने लगा। 'माउन्ट वाशिंगटन' नामक स्थान योगानन्दको आन्दोलनका केन्द्र बनानेके लिए उपयुक्त जँचा और प्रेमियोंकी आर्थिक सहायतासे यह भूमि केन्द्रके लिए ख़रीद ली गई। यह प्रधान केन्द्र स्वामी धीरानन्दको सौंपकर योगानन्दने भ्रमण करना शुरू किया। उन्होंने अमेरिकाके प्रधान-प्रधान स्थानोंकी यात्राकर वहाँकी मनोवृत्तिका पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। लोगोंको 'योग-चिकित्सा' की शिक्षा दी जाने लगी। योग द्वारा किस प्रकार अनेक रोग अच्छे किए जा सकते हैं, यह देखकर अमेरिकन विशेषरूपसे प्रभावित होते थे। वे जहाँ जाते, वहाँ पर्याप्त उत्साह देख स्थानीय कमेटियाँ क़ायमकर अपनी 'योगदा'का प्रचार करते थे। अमेरिकामें धनकी कमी नहीं है। २५ डालर (७५ रु०) में कोर्स सिखलाया जाता था। २५ हज़ारसे भी ऊपर विद्यार्थी 'करेस्पाण्डेन्स-कोर्स' पढ़ते थे। इस प्रकार स्वामी योगानन्द चलते-फिरते विश्वविद्यालयका कार्य करते थे। शीघ्र ही लासएंजेल्स-'योगदा-कोर्स' का 'करेस्पाण्डेन्स-यूनिवर्सिटी' बन गया। यहाँसे 'ईस्ट-वेस्ट' नामक एक सुन्दर मासिक पत्र प्रकाशित होता है। इसके द्वारा वैज्ञानिक शब्दावलीका प्रयोगकर योगको पश्चिमके लिए सुबोध और ग्राह्य बनाया गया है। इसमें उपनिषद, राजयोग, कर्मयोग, योगक्रिया आदिकी चर्चा रहती है। इस सोसाइटीमें स्त्रियाँ अधिक संख्यामें हैं। योगदाका अर्थ है योग देनेवाली। योगके आधारपर ही यह सोसाइटी चलती है, वेदान्तके रूखे ज्ञानको जनताके सम्मुख कम रखा जाता है।

वेदान्त और योगदा-सोसाइटीकी चर्चाके बाद यहाँ उन अनेक रूपोंकी संक्षिप्त चर्चा करना ज़रूरी है, जिनसे अमेरिकाके संयुक्त-राज्यमें हिन्दू-धर्मका दर्शन मिलता है। इन नाना रूपोंको देखकर यह स्पष्ट है कि हिन्दू-विचारधाराका आध्यात्मिक रूप अमेरिकनोंमें बढ़ता जा रहा है और भविष्यमें भी बढ़नेकी आशा है। वेदान्तके बाद सबसे पुराना पंथ बाबा भारतीका 'कृष्ण कल्ट' (पंथ) था। १९०४में बाबा प्रेमानन्दका एक ग्रन्थ 'Krishna the Lord of Love' कृष्ण-समाज, न्यूयार्कसे प्रकाशित हुआ। प्रेमानन्द, जो वहाँ 'बाबा' नामसे प्रसिद्ध थे, १९०४ से १९०९ ई० तक यहाँ ठहरे।

डा० राबर्ट० ई० स्पीयरके अनुसार वे तिब्बतके पर्वतोंपर रहनेवाले एक साधु थे। उन्होंने लासएंजेल्समें एक कृष्ण-मन्दिर स्थापित किया। कहा जाता है कि वहाँ उनके ५००० भक्त या अनुयायी हुए।

योगी हरिराम सन् १९२५ में अमेरिका पहुँचे और थोड़े ही वर्षों बाद सन् १९२८ में भारत लौटे। उन्होंने 'बनारस-लीग' की स्थापना की, जिसका केन्द्र लास-एंजेल्समें था। उसकी कई शाखाएँ भी खुलीं। वे योगके साथ ही आध्यात्मिक तत्वज्ञानकी चर्चा करते और प्राणायाम आदिका उपदेश देते थे। तन्त्र, राजयोग और हठयोगसे मिश्रित हिन्दू-धर्मका प्रचार करना उन्हें इष्ट था। इसी तरहकी धार्मिक शिक्षा देनेवाले देवरामजी हैं। उन्होंने भी एक कोर्स चलाया है और भारतीय ऋषियोंको मानवताका उपहार कहकर उपदेश देते हैं। वे 'योग-नवजीवन' नामक 'करेस्पाण्डेन्स-कोर्स' चलाते हैं। उनका पूरा नाम श्री देवराम शुक्ल है। एक दूसरे सज्जन अयोध्याके स्वामी भगवान विश्वेश्वर हैं, जो 'योगेश्वर' नामक पुस्तिकामें अपने उपदेशोंकी चर्चा करते हैं। उनका स्थान कैलिफोर्नियामें है। उन्हें ईटन कालेज और आक्सफोर्डमें शिक्षा मिली। इसके बाद वे विश्व यात्राको निकले। फिर, कहा जाता है, हिमालय धर्मज्ञानके लिए गए और अब 'निर्वाण'का प्रचार करनेके लिए अमेरिकामें हैं। वे अध्यात्मवादका क्लास चलाते हैं और प्राण, कर्म, ज्ञान और राजयोगकी चर्चा करते हैं।

१९१७ ई० में एक मद्रासी हिन्दू हिज़ होलीनेस श्रीमत स्वामी शंकरने तोतापल्ली हिल्स, गोदावरी ज़िलेमें एक शान्ति-आश्रम स्थापित किया। इसे स्वामी रामतीर्थके स्मारक-स्वरूप क़ायम किया गया है। इसकी एक शाखा सन् १९२३ में फ़िलेडेल्फ़िया (अमेरिका) में खोली गई और उसकी अध्यक्षा सिस्टर मोरिया आयोना और मंत्री ब्रह्मचारी रूपानन्द बनाए गए। इसकी दूसरी शाखा एलवरडो स्ट्रीट, लासएंजेल्समें है। एक महाशय योगी रामचरक हैं। उनका अमेरिकन नाम विलियम वाकर एटकिन्सन है। उनकी पुस्तकें योगसे सम्बद्ध हैं। धर्ममंडलकी स्थापना केदारनाथ दासगुप्तने की है। वे बंगाली हैं और न्यूयार्क और लन्दनमें बहुत दिनों तक रह चुके हैं। वे भाषण-क्लास चलानेसे अधिक उपासनामें विश्वास करते हैं। उन्होंने थियोसफ़ी और हिन्दू-धर्मको अधिक निकट लानेका प्रयत्न किया है। उनका केन्द्र न्यूयार्कमें है। इसके अतिरिक्त श्री केदारनाथ दासगुप्त एक सुदृढ़ सांस्कृतिक आन्दोलनके भी प्रवर्त्तक हैं, जो 'थ्रीफोल्ड मूवमेन्ट' के नामसे मशहूर है। इसके अधीन सब धर्मोंमें मूल एकता, भ्रातृ-भाव, विश्व-बन्धुत्वकी चर्चा होती है। इसका सर्वधर्म-समन्वय उद्देश्य है, जो 'Fellowship of Faiths' नामक पुस्तकसे स्पष्ट है। इसकी शाखाएँ कई देशोंमें खुल गई हैं। हिन्दू-संगीत, नाटक, काव्य आदिका प्रचार भी किया जाता है। एक संस्था है वैदिक और तत्सम्बन्धी अनुसन्धानकी अन्तर्राष्ट्रीय पाठशाला। इसका ध्येय है पश्चिमको पूर्वके ज्ञानसे परिचित कराना। इसके सभापति पं० जगदीशचन्द्र चटर्जी और मंत्री एक अमेरिकन संस्कृतज्ञ तथा हिन्दू-धर्मके प्रेमी डा० जार्ज सी० ओ० हास हैं। इन लोगोंके विचारमें हिन्दू-धर्म विशुद्ध रूपमें अमेरिका अभी नहीं पहुँचा है। थियोसफ़ी और नए विचारके नामपर उसका जो रूप फैल रहा है, वह विकृत और भ्रामक है। इसके केन्द्र अमेरिका और भारतमें हैं। 'ब्रिटिश सेक्सन' से लार्ड ज़ेटलैण्डका सम्बन्ध था। भारतीय कमेटीके अस्थायी सभापति श्री जयकर भी रह चुके हैं। चटर्जी महोदय संस्कृत-कालेज कलकत्ताके विद्यार्थी, भारत-धर्म-महामंडलके विद्यावारिधि और केम्ब्रिज-यूनिवर्सिटीकी डिगरी प्राप्त कर चुके हैं। पहले वे काश्मीरमें पुरातत्व-विभागके अध्यक्ष थे और बड़ोदाके शिक्षा-विभागमें भी उच्चपदपर रह चुके हैं। वे 'हिन्दू-रियलिज़्म' नामक ग्रन्थके प्रणेता हैं। न्यूयार्कका 'हिन्दुस्तान एसोसिएशन' भी इसी तरहकी एक सांस्कृतिक संस्था है। हेमेन्द्रकिशोर रक्षित नामक एक बंगाली युवक 'हिन्दुस्तानी स्टूडेण्ट' नामक मासिक पत्रिकाका सम्पादन करते हैं। ऐसी ही एक संस्था हरि जी० गोविलने न्यूयार्कमें खोली थी। ये हिन्दी-लाइनो-टाइपके आविष्कारक और लिपि-सुधारके कट्टर समर्थकके रूपमें हिन्दी-जगत्में परिचित हैं।

### विद्वान हिन्दू-व्याख्यानदाता

'होमिलिटिक रिव्यू' से पता चलता है कि सन् १८८६ में किसी मि० जोशीने अमेरिकाकी थियासोफ़िकल सोसाइटीके सामने व्याख्यान दिया था। शायद वे ही पहले हिन्दू थे। इससे अधिक उनके विषयमें कुछ पता नहीं चला।

सन् १९०३ में स्वामी रामतीर्थका सैनफ्रांसिस्कोमें आगमन हुआ। गेरुआ वस्त्रमें एक संन्यासीके रूपमें पंजाबके एक प्रोफ़ेसरको कौन पहचान सकता था ? ये सच्चे वेदान्ती थे। एक अमेरिकन साथी मुसाफ़िरने जहाज़पर उनसे पूछा—'आपका असबाब कहाँ है ?'

'राम उतना ही असबाब रखता है, जितना वह ख़ुद ढो सकता है।'—गम्भीर उत्तर मिला।

'पासमें पैसा है ?'

'नहीं।'

'क्या यहाँ आप उतरेंगे ?'

'हाँ।'

'मददके लिए यहाँ कोई आपका दोस्त है ?'

'हाँ, एक आदमी है।'

'कौन ?'

'आप।'—साथीके कन्धेका स्पर्श करते हुए स्वामी रामतीर्थने कहा।

बिजलीका स्पर्श छूते ही प्रभाव कर गया। अमेरिकाकी सम्पूर्ण यात्रामें यह अमेरिकन उनका सहायक हो गया।

इनके बाद विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका आगमन हुआ। उन्होंने सन् १९१०, १९१७ और १९२१ में अमेरिकाकी यात्राएँ कीं। अमेरिकाके बड़े-बड़े लोगोंका ध्यान भारतकी ओर आकर्षित करनेमें उन्होंने बड़ा काम किया। सन् १९०९ में महाराष्ट्रके एक विद्वान श्रीधर वेंकटेश केतकरका अमेरिकामें आगमन हुआ। सन् १९३६ में भारतके अनन्य विद्वान दार्शनिक सर राधाकृष्णन अमेरिका गए। शिकागो-यूनिवर्सिटीमें उनका हिन्दू-दर्शनपर विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। उनके सहयोगी श्री सुरेन्द्रनाथ दासगुप्तने नार्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटीमें 'हैरिस-लेक्चर्स' दिए। उसके बाद सुप्रसिद्ध कवियित्री सरोजिनी नायडू १९२९ ई० में अमेरिका गईं। अपने ओजस्वी व्याख्यानोंसे उन्होंने अमेरिकनोंको मुग्ध कर लिया। उनके भाई कवि हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय भी उसी वर्षके अन्तमें अमेरिका गए। अन्य बंगालियोंमें सर्वश्री जगदीश मित्र, धनगोपाल मुकर्जी और हरेन्द्रनाथ मैत्र उल्लेखनीय हैं। डा० आनन्दकुमार स्वामीने हिन्दू-संस्कृतिपर अच्छे व्याख्यान दिए हैं। इलाहाबादके रामकृष्ण लाल कार्नेल-यूनिवर्सिटीके विद्यार्थी थे और हिन्दू-धर्मपर अमेरिकामें व्याख्यान देते थे। श्री हरिदास मजूमदार और श्री विश्वनाथ केसकर भी दूसरे कोटिके व्याख्याता हैं।

हिन्दू-धर्मपर साधारण भाषण

विद्वत्तापूर्ण और दार्शनिक भाषणोंके अतिरिक्त कुछ लोग साधारण कोटिके भाषणों द्वारा अमेरिकाकी उत्सुक जनताको हिन्दू धर्मसे सुपरिचित कराते हैं। इनमें पंजाबके एक योगी वस्सन हैं। कुछ लोग मनका प्रश्न बतलाकर जीविका कमाते हैं। यह कला देखकर कुछ अमेरिकन भी हिन्दू-धर्मके प्रचारक हो गए हैं। एक अमेरिकन सज्जन पीटर ए० बनार्ड हैं, जो भारत हो आए हैं और हठ-योग तथा तन्त्र सिखलाते हैं। एक दूसरे साहब प्रिंस राम महाराजके नामसे प्रचार करते हैं और अपनेको तिब्बतसे लौटा हुआ बतलाते हैं। थियासोफ़िकल सोसाइटीके बहुत-से गुरु तिब्बतके ही बताए जाते हैं। शुद्ध हिन्दू-धर्मके अतिरिक्त डा० भगतसिंह सिक्ख-पंथपर भाषण देते हैं। बौद्ध-धर्म और पारसी-धर्मके प्रचारक भी लोगोंको अपना सन्देश सुनाते हैं। थियासफ़ीका अमेरिकनमें काफ़ी प्रचार है। थियासफ़ीने हिन्दू-धर्मकी कितनी ही बातोंको ग्रहण कर लिया है। 'क्रिश्चियन साइन्स' नामक सम्प्रदायपर भी हिन्दू-विचारोंका प्रभाव पड़ा है।

एमर्सनपर हिन्दू-तत्त्वज्ञानका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। ५२ वर्षकी उम्रमें उनके मित्र थोरोको एक अंग्रेज़ मित्रसे हिन्दू-धर्मके ५४ ग्रन्थ पढ़नेको मिले। एमर्सनने भी उन ग्रन्थोंका अध्ययन किया। दो वर्ष बाद 'एटलांटिक मंथली' में उनकी 'Song of the Soul' या 'ब्रह्म नामकी कविता' छपी, जिसपर गीताका प्रभाव स्पष्ट है। पाश्चात्य देशके भारतीय साहित्य-प्रेमियों और संस्कृतज्ञोंके ग्रन्थ, लेख आदिके प्रचारसे अमेरिका भारतीय दर्शनको गौरवकी दृष्टिसे देखने लगा है। इस प्रकार हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-विचारधाराका अनेक रूपोंमें अमेरिकामें प्रवेश हो रहा है। महात्मा गांधीकी धार्मिक दृष्टि और उनकी विश्वव्यापी ख्याति भी भारतको अमेरिकाकी दृष्टिमें ऊँचा स्थान दिलाती है।*

मोतीझील, मुज़फ्फरपुर ]

* इस लेखको तैयार करनेमें वेण्डेल टामसकी पुस्तक 'हिन्दूइज़्म इनवेड्स अमेरिका'से सहायता ली गई है। —ले०

# बुकसेलरकी डायरी

एक बुकसेलर

[ इस डायरीके लेखक एक युवक साहित्य-सेवी हैं, जिन्होंने जीविकाकी खातिर घूम-घूमकर पुस्तकें बेचनेका प्रयोग किया। उसी प्रयोगमें लेखकको अनेक मीठे-कड़ुए अनुभव हुए। लेखमें वर्णित व्यक्तियोंके प्रति लेखककी कोई बुरी भावना नहीं है। जो धारणा लेखककी हुई—जो चित्र उसके हृदयपटलपर चित्रित हुआ—उन्होंने उसीको अंकित करनेका प्रयास किया है। —सं० ]

मसूरी, १२-६-१९४१

१६ मईसे किताबें लेकर दरवाज़े-दरवाज़े बेचनेवाला बुकसेलर बना हूँ। इसके पहले जो कुछ था, उससे दो क़दम आगे, दो हाथ ऊपर उठा हूँ। पहले जो कुछ था, वह बता दिया करूँ, तो ताज्जुब नहीं कि कोई-कोई चायपर मुझे निमन्त्रित करनेको भी तैयार हो जायँ। पर अब जो कुछ बना हूँ, उसमें मैंने कोई अगला क़दम उठाया है, यह मानने-समझनेके लिए कोई बिरला ही तैयार होगा। वैसे समझना कुछ ठिक नहीं। जो था, सो तो हूँ ही; जो हूँ, वह उसमें और जोड़ है।

१६ मईको आगरेसे चला था। १७ को देहरादून पहुँचा और वहाँसे २३ को मसूरी। २८ को मसूरीसे फिर देहरादून आया और २९ को देहरादूनसे हरद्वार। ३० को वहाँसे चलकर ३१ को वापस आगरा। आगरेके कुछ प्रकाशकोंसे पुस्तकें लेकर एक बक्स भर लिया। मसूरीके दो साठ दिनवाले वापसी टिकट ले लिए थे—एक अपने लिए और दूसरा लीलाके लिए। दो टिकटोंमें कमसे कम तीन टिकटों भरके वज़नका सामान ले जाना था। रेलवेकी यह चोरी शायद मेरे लिए पहली ही थी, इसलिए मनमें कचाई और खटका था। देहरादूनमें कुलीकी कृपासे उसे सिर्फ़ एक रुपया देनेपर—आख़िर बेड़ा पार हो गया।

१८ को डी० ए० वी० कालेज देहरादूनके प्रोफ़ेसर महेन्द्रप्रताप शास्त्रीसे मिला। कहता तो कह देता—'हरिशंकरजी शर्मा मुझपर बड़ा स्नेह रखते हैं। आपके विद्यागुरु प्रोफ़ेसर पी० एम० भम्मानीसे मेरा परिचय है और उनका भी मुझपर बहुत आदरपूर्ण स्नेह है। वे आ नहीं सके, नहीं तो मेरे साथ ही सपरिवार आते और मैं भी उनके साथ आपका स्नेहपात्र मेहमान होता।' लेकिन मैं तो एक बुकसेलर था, ऐसी बातें क्यों कहता? 'आप कहाँसे आए हैं?'—आर्यसमाज-मन्दिरके आँगनमें खड़े-खड़े उन्होंने पूछा। 'आगरेसे; मैं एक बुकसेलर हूँ।' मैंने मानो सबसे गरम और सबसे पहले निगला। बुकसेलर होना भी कितनी ओछी, कितनी लज्जाजनक बात है, यह मैंने आज ही अनुभव किया। मैंने उस समय अनुभव किया; लेकिन यह बुकसेलरी जो मुझे श्रमजीवी, सहिष्णु और स्वावलम्बी होना सिखाती है, जो मेरे अध्ययनकी सजीव पुस्तकोंको सामने ला खड़ा करती है, श्रेष्ठ है बहुतेरी एडीटरियों और प्रोफ़ेसरियोंसे, जिनमें इनके लिए अवकाशकी कमी है।

मेरे न माननेसे क्या होता है? बुकसेलर, मोटी तौरपर, कोई आदरकी चीज़ नहीं है। 'आप कल दस बजे मुझसे कालेजमें मिलिए।'—प्रोफ़ेसर साहबने कहा। मैंने उनसे कह दिया था कि श्री हरिशंकरजी मुझको जानते हैं, उनसे मैंने कई बार आपका नाम सुना है और मैं देहरादूनमें अपने कामके सिलसिलेमें आपसे कुछ जानकारी पाना चाहता हूँ। प्रोफ़ेसर साहब मुझसे २४ घंटे बाद बात करेंगे, क्योंकि मैं एक अदना-सा व्यवसायी हूँ। २४ घंटेमें मेरा कुछ हर्ज, यानी उनके द्वारा हो सकनेवाले लाभमें रुकावट, भी हो सकती है, यह वे उस समय नहीं सोच सके। अगर मैं कोई लेखक या कवि होता—निठल्ली और भावुक-मात्र श्रेणीका ही सही—तो शायद प्रोफ़ेसर साहब मुझे उसी समय पूछ लेते और मेरी कुछ ख़ातिर भी हो जाती। प्रोफ़ेसर साहब व्यस्त रहनेवाले आदमी हैं, सहृदय भी हैं, मिलनसार भी हैं, यह मैंने उनके मुखपर पढ़ा है। लेकिन एक सज्जन किस-किसके लिए क्या-क्या करे? यह तो अधिक समाईवालेका ही काम है।

लाला तोताराम। 'सेठजी, आपको हिन्दी-किताबें देखनेका भी कुछ शौक है?'—मैंने अपने हमउम्र पहले ग्राहककी आटा-दाल-चावलकी दूकानपर आवाज़ दी। तब मैंने समझा कि व्याख्याताओंको ज़रूर बहुत-से वाक्य

प्रशांत महासागरका गोम्राम-द्वीप, जिसपर अब जापानका अधिकार है ।

वेक-द्वीपकी माल ढोनेवाली एक गाड़ीका दृश्य । यह द्वीप तीन द्वीपोंका एक समूह है ।

गोम्राम-द्वीपकी एक खाड़ी, जहाँ जहाज़ सागरके उपद्रवोंसे शरण लेते हैं ।
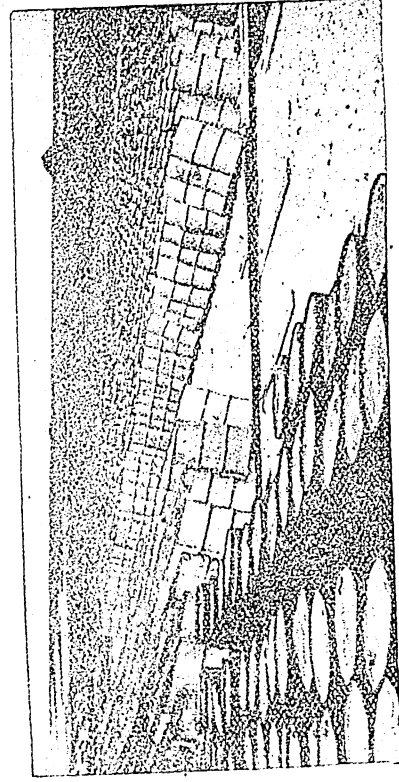
केन्टन-द्वीपमें लड़ाकू यानोंके लिए एकत्रित किए गए पेट्रोलके ढोल ।

चीनी तोपख़ानेका एक दस्ता, जिसने बर्मामें जापानियोंकी प्रगतिको बहुत मन्थर कर दिया है।
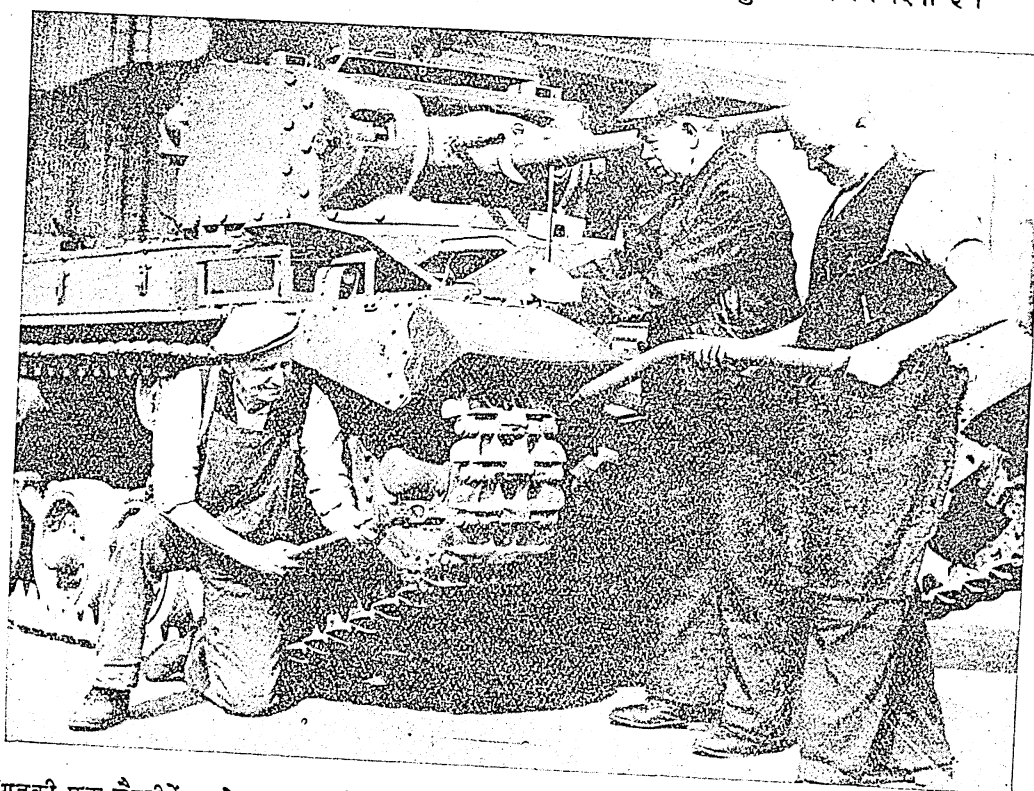
इंग्लैण्डकी एक फैक्ट्रीमें बननेवाला एक टैंक। ऐसे ही सैकड़ों टैंक बर्मा और रूसमें अपना कृतित्व दिखा रहे हैं।

कण्ठस्थ होते होंगे, तभी उनके व्याख्यान उनके लिए सुगम हो पाते होंगे। 'सेठजी, आपको हिन्दी-किताबें देखनेका कुछ शौक है ?'—यह अब मेरे पेटेंट भाषणका प्रथम वाक्य है। ऐसे ही कुछ सैकड़े वाक्योंके सहारे मैं एक अच्छा वक्ता बननेकी आशा कर सकता हूँ। ख़ैर, उधर तोतारामजीने इनकार कर दिया और मैं आगे बढ़ चला। 'कैसी किताबें हैं आपके पास ?'—उन्होंने पीछेसे पुकारकर पूछा। मैं लौटा, बातें हुईं, किताबें देखनेका वादा हुआ और अन्तमें उन्होंने एक दिन दो पुस्तकें ख़रीद भी लीं। तब मैंने अनुभव किया कि मैं पुस्तकें बेच सकता हूँ और एक सफल व्यवसायी हो सकता हूँ। तोतारामजी तबसे मेरे मित्र हैं।

लाला......का नाम एक बार पूछा तो था ; पर भूल गया। इसलिए नहीं कि उन्होंने कोई किताब नहीं ख़रीदी, बल्कि इस भूलका दोष मेरी पुरानी लापरवाहीकी आदत ही है। चावल वग़ैरहके व्यापारी यह नवयुवक इन्टर तक पढ़े-लिखे, हमदर्द स्वभाव और पैसेको सम्हालकर रखना जाननेवाले हैं। जिस दिनसे उन्होंने किताब ख़रीदनेमें अपनी असमर्थता या नापसन्दगी प्रकट की है, उस दिनसे मैंने उन्हें अपना मित्र बना लिया है।

मिस्टर गिरधारीलाल सलूजा। किताबों व अख़बारोंकी दूकान करते हैं। मिलनसार और ख़ातिरदार हैं। दावत दी और काममें भी मदद देनेकी कोशिश की।

मिस्टर सी० ओमप्रकाश सत्संगी। कपड़ोंकी दूकान है, मिलनसार हैं। एक किताब भी ख़रीदी, शायद कुछ लिहाज़में आकर।

मिस सत्यवती सेठ, प्रिन्सिपल कन्या-गुरुकुल और सेक्रेटरी श्री महात्मा ख़ुशीराम-लाइब्रेरी। वयोवृद्धा हैं। व्यवहारमें कुछ रूखापन भी आ जाता है, शायद बेचनेवालोंके ही साथ। 'लाइब्रेरियनसे कहो, आपकी किताबें देख ले।'—उन्होंने अन्तमें स्वीकार किया। 'एक चिट लाइब्रेरियनके नाम मुझे दे दीजिए।'—मैंने कहा। पर इसके लिए वे राज़ी नहीं हुईं। चलते समय मैंने लीलाके लिए उनसे एक ग्लास पानी माँगा, फिर अपने लिए भी। तब मैंने देखा, उनमें स्निग्ध वात्सल्य-भाव था, कुछ आदरपूर्ण भी। पानी पीकर हम लोग चल दिए।

श्री गुरुदयाल, उपर्युक्त लाइब्रेरीके लाइब्रेरियन मिलनसार और साहित्यिक हैं, जैसा कि एक अच्छे लाइब्रेरियनको होना चाहिए। खोदकर देखो, तो कौन मिलनसार नहीं निकलता ? उन्होंने थोड़ी-सी किताबें ख़रीदीं।

प्रिन्सिपल, महादेवी कन्या-पाठशाला इन्टर कालेज। नाम ? नहीं पूछा। भद्र महिला हैं। इम्तहानके दिन थे, कामकी अधिकता थी, किताबें नहीं देख सकीं। बातचीतमें मैंने पूछा—'प्रिन्सिपल आप ही हैं ?' उनका कमरा आम आफ़िसका-सा था, उसके बाहर कोई बोर्ड भी नहीं था। एक बुकसेलरको वह इस बातका उत्तर क्यों देतीं ? 'क्यों ?'—उन्होंने उत्तरमें पूछा। 'मैं इसलिए पूछ रहा हूँ कि आप अपनी लाइब्रेरियनको कह दें। उन्हें फ़ुर्सत हो, तो किताबें देख सकती हैं।' उन्होंने बताया कि वे ही प्रिन्सिपल हैं और पुस्तकें देखनेका लाइब्रेरियनको भी अवकाश नहीं है।

लिखनेको अभी बहुत पड़ा है ; लेकिन दस बज गए हैं, फेरीपर जाना है, हाथ भी थक गया है—फिर लिखूँगा।

१४-६-'४१

अभी पिछली ही ट्रिपकी बात बाक़ी है। २३ को सबेरे देहरादूनसे चलकर दोपहरके पहले मसूरी पहुँचे। देहरादूनमें पन्द्रह रुपएकी किताबें बेच लीं—पाँच दिनमें। इससे बड़ी एक नवजात बुकसेलरकी सफलता और क्या होनी चाहिए थी ? मसूरी देखी और उसके पहले मसूरीकी राह देखी। अगर मेरी याद ठीक है, तो कालिदास दुष्यन्तको एक बार शायद ऐसी ही राहपर ले गए थे, जहाँसे उन्होंने अपनी सवारीसे नीचे झाँक-झाँककर उड़ते हुए बादलोंको देखा था। मसूरीमें सनातनधर्म-धर्मशालामें ठहरे। दूसरे-तीसरे दिन लीलाकी तबीयत ख़राब हो गई। इलाजकी फ़िक्र पड़ी। डाक्टर इक़बाल हुसेन ज़ैदीका इलाज हुआ। धड़कन, बुख़ार और कुछ पेटकी ख़राबीकी शिकायत थी। डाक्टर साहबको लाकर दिखाया। दवाने फ़ौरन और ठीक काम किया। डाक्टर साहब बड़े योग्य, सज्जन और मित्र-स्वभावके हैं। उनकी आँखोंमें एक गहरी गुलाबी रंगत रहती है (अगर वह मई सन् '४१ की ही कोई ख़ास रंगत नहीं थी), जिसे, मैं समझता हूँ, उनका कोई भी कमज़ोर-दिल मरीज़ नहीं भूल पाता होगा। उनकी दूकानकी सादगीको देखते हुए उनके घरको शाही कहा जा सकता है। उनकी सहृदयताको मैं याद रखूँगा।

लीलाकी तबीयत कुछ सम्हली, तो वापस आगरा चलनेकी तैयारी की गई, क्योंकि यहाँकी उतार-चढ़ावकी सड़कोंपर वह चल नहीं सकती थी और पेल्पिटेशनकी शिकायत यहाँ दूर होनी ऊँचाईकी वजहसे कठिन थी। चलते-चलाते ए० वी० सनातनधर्म गर्ल्स मिडिल स्कूलकी हेड मिस्ट्रेस मिस एम० मुकर्जीके हाथों कुछ किताबें बेची जा सकीं। जब अपने लिए एम० ए० की परीक्षाके लिए हिस्ट्रीकी पुस्तकोंका प्रबन्ध कर देनेकी बात उन्होंने मुझसे कही और इस सिलसिलेमें उन्होंने अपना प्रास्पेक्टस मँगाकर मुझे दिया, तो मैंने कहा—'यह किताब (प्रास्पेक्टस) आपकी है न? इसपर अपना नाम लिखिए।' उन्हें कुछ झिझक-सी हुई और उनके क्लर्कने उनकी सहायतार्थ पुस्तकपर हेड मिस्ट्रेसकी मोहर लगा दी। मैंने कहा—'अपनी किताबपर आपको अपना नाम लिख देनेमें एतराज़ क्या है?' और उन्होंने उसपर लिख दिया—(Miss) M. Mukerjee.

मसूरीमें आते ही पहला दोस्त बनाया छोटे-से मसूरी स्टेशनरी-स्टोर्सके मैनेजर मिस्टर रघुनन्दनप्रसादको। ये एक सुस्वभाव गढ़वाली नवयुवक हैं और देहरादूनके मिस्टर सलूजाके वैतनिक मैनेजर हैं।

२८ मईको मसूरीसे रवाना हुए। पुस्तकें पंडित सदानन्दजीके पास, जिनकी मसूरीमें पुस्तकों और स्टेशनरीकी दूकान है, रख दीं। पंडितजी शान्त और धीरे-धीरे उदार होनेवाली प्रकृतिके व्यक्ति हैं। भले स्वभावके हैं और, जान पड़ता है, पैसा कमाना जानते हैं।

२८ की रात देहरादूनमें उसी जैन-धर्मशालामें रहकर २९ को हरद्वार पहुँचे। मसूरीमें चौथी और पाँचवीं रातका धर्मशालाके कमरेका किराया भी देना पड़ा था, क्योंकि तीन दिनसे अधिक वहाँ ठहरनेकी आज्ञा नहीं है। हरद्वारमें गंगाजीके स्नान किए, गुलज़ार बा-बहार हरकी पैड़ीकी सैर की, बाज़ारका चक्कर लगाया और ३० को वहाँसे चलकर ३१ की सुबह आगरा आ पहुँचे। लीलाकी तबीयत सम्हली रही और आगरेमें अपना ५-६ दिनका विश्राम आरम्भ हो गया।

१६-६-'४१

५ जूनको आगरेसे चलकर ६ को मसूरी पहुँचे। देहरादून पहुँचनेवाली गाड़ीपर तीन लड़कोंकी एक मंडलीसे कुछ बातचीत हुई और मसूरीकी सनातनधर्म-धर्मशालामें पहुँचनेपर देखा, वे लोग भी उसीमें आ ठहरे हैं। साथ हो गया। आज़मगढ़के इन तीन विद्यार्थियोंकी टुकड़ीमें कप्तान थे मिस्टर दाऊदयाल अग्रवाल, अठवारिया स्टेटके मालिकके सुपुत्र। १८-१९ सालकी उम्र है, नवीं क्लासमें पढ़ते हैं; लेकिन तबीयतमें बुज़ुर्गी है। स्वभाव अच्छा और दयालु है। हुकूमत और पैसेका न घमंड है, न दिखावा। सिर्फ़ सिगरेट पीनेका और घर रहनेपर कभी-कभी छान लेनेका शौक ज़रूर है। दो नई चीज़ोंका परिचय मसूरीमें रहनेके लिए मैंने उन्हें करा दिया है—चाय और डबल रोटी। शेष दो उनके सहपाठी हैं। सन्तन पाठक मिलनसार और श्रद्धालु प्रकृतिके नवयुवक हैं। भक्ति-भावात्मक लेखोंको नाटकीय भाषामें पढ़नेमें उन्हें रस मिलता है। जीवनका कुछ उद्देश्य भी बनाना चाहते हैं। बनारसी पाँड़े उन नवयुवकोंमें से हैं, जो किसी प्रकारकी भी असाधारणता अपने भीतर नहीं रखते। इन सबके साथ है दाऊदयालजीका सेवक 'सेवक'। मालिकका वफ़ादार है, और इसीलिए मालिकपर कुछ अधिकार भी रखता है। मालिकका रुख़ पहचानकर मालिकके मित्र-महमानोंका आदर करना जानता है। मुझे इस टोलीके नेताकी ओरसे इसमें सम्मिलित होनेका निमन्त्रण मिला और मैंने स्वीकार कर लिया। इस स्वीकृतिके लिए एक बड़ा आकर्षण था रोटियाँ पकानेवाला सेवक। परदेशमें पकी-पकाई रोटी कोई घर बैठे खिला दे, तो वह मीठी भी बहुत होती है और पैसे भी बहुत बच जाते हैं। शायद इसी वजहसे उन रोटियोंकी मोटाईने—चाहे मैं एक बारमें एक खाऊँ या डेढ़ या दो—कभी पेटमें पहुँचकर कच्चे होनेका शोर नहीं मचाया और उस 'भात' ने अपनी विपुलताके बावजूद कभी खाँसी या ज़ुकामकी ख़राश तक पैदा नहीं की।

दो दिन और दो रातें धर्मशालामें बिताईं। दूसरी रातको कोटकी जेबसे फाउण्टेनपेन ग़ायब हुआ और उसके बाद सबेरे दोहरी ऊनी चादर। सोचा, अभी इतनी आमदनी कहाँ कि ५-७ रुपये ख़र्च करके फाउण्टेनपेन ख़रीदा जाय, तब तक पेंसिल ही काम करेगी, और गरम चादर ख़रीदनेका तो सवाल ही नहीं उठता। जो हलका कम्बल साथ बचा है, वह मसूरीमें जूनकी सर्दी-बरसात भरके लिए काफ़ी है।

८ जूनको लक्ष्मणपुरीमें एक कमरा इस पार्टीने

किराएपर लिया ; पर किराया तय न होनेकी वजहसे और कुछ मसूरीमें जी न लगनेकी वजहसे मेरे ये चारों मित्र ११ जूनको हरद्वारके लिए रवाना हो गए। कमरा छोड़ दिया गया, तीन रातोंके कुछ पैसे देकर। ११ और १२ की रातें उसी धर्मशालामें बिताकर मैंने महन्त लक्ष्मणदासके अहातेमें एक यात्री व्यापारी सज्जन द्वारा किराएपर ली हुई एक कुटियामें जूनके अन्त तकके लिए साझा कर लिया। यह स्थान आसपासके दृश्य और एकान्त होनेकी दृष्टिसे मेरे लिए बहुत अच्छा है। मिस्टर दीनदयाल इस कुटियाके दूसरे किराएदार हैं। घड़ीके पुर्ज़े बेचते हैं। अच्छे और सीधे-सादे पंजाबी भाई हैं। पहले किराएदार मिस्टर एन० आर० भारद्वाजसे, जो वीणा टेक्सटाइल्स, लुधियानाके आर्गेनाइज़र हैं, पहले परिचय हुआ। उनकी मार्फ़त ही इस काटेजमें मुझे जगह मिली। उनकी सलाह है कि मैं उनके टेक्सटाइल्सका काम भी साथ-साथ करूँ। ख़ुश-मिज़ाज और तेज़दम आदमी हैं। १४ जूनको वे आगे अपने दौरेपर चले गए।

९ तारीख़से मैंने अपनी फेरी शुरू की। पहली ग्राहक हुईं मिस मुकर्जी, जिनके लिए एक इम्तहानके पर्चोंकी पुस्तक लाया था। उनके लिए परीक्षाकी पुस्तकोंका प्रबन्ध मैंने आगरेसे कर दिया है, और उनके सम्पर्कमें आनेवाला मैं पहला बुकसेलर हूँ, जो वादा-खिलाफ़ नहीं है। दूसरे ग्राहक हुए लाला रेवतीप्रसादजी, पुस्तकाध्यक्ष सनातनधर्म-सभा-पुस्तकालय। आप एक हँसमुख नवयुवक हैं और आटा-दाल-आलू आदिकी दूकान भी करते हैं। एक रुपएमें तीन पुस्तकें ख़रीदीं। इस तरफ़ धार्मिक और सामाजिक संस्थाओंके पदाधिकारी इसी वर्गके व्यवसायी प्रायः देखे जाते हैं और ये पैसेवाले भी होते हैं।

११ तारीख़को प्रतापगढ़के महाराजने पुस्तकें ख़रीदीं। महाराज नवयुवक हैं और उनमें एक भारतीय राजकुमारका गठन और सौन्दर्य है। उनके 'रामप्रिया-हाउस'की छतरीके नीचे बैठे हुए महाराजके सामने रखी हुई टेबलपर पुस्तकें पेश करते हुए मानो उनकी उदारतासे पूरित वहाँके छोटे-से वातावरणमें मैंने अनुभव किया कि मैं भी उनका आदर-प्राप्त एक दरबारी हूँ। किसानों और गाँवोंमें, जान पड़ता है, महाराजकी अच्छी रुचि है। 'किसानोंकी कहावतें' नामक पुस्तकमें से कुछ कहावतें महाराजने रुचिपूर्वक पढ़कर सुनाईं। 'ज़ेबुन्निसाके आँसू'में से कुछ चीज़ें उनके एक मुसाहिबने पढ़कर उन्हें सुनाईं। ज़ेबुन्निसाके आँसू महाराज नहीं ख़रीद सके—शायद इसलिए कि वह अच्छी होते हुए भी एक मुसलमान राजकुमारीकी चीज़ थी और वे थे एक सम्भ्रान्त हिन्दू राजकुमार! उसमें जैसे एक मीठा-सा अनाकर्षण था। महाराजके मुखसे एक बुकसेलरके लिए 'आप' का सम्बोधन मेरी दृष्टिमें एक विशेष आदरणीय बात थी। पाँच-सात पुस्तकें उन्होंने ख़रीदीं। उनकी सुरुचि प्रशंसनीय है। महाराजके सेक्रेटरी और उनके स्टाफ़के एक अन्य सदस्य (उनके भी नाम मैंने नहीं पूछे) बड़े सज्जन और मिलनसार प्रकृतिके हैं। उनका मुझपर विशेष कृपा-भाव रहा।

लन्दन-बुकहाउसके मालिक मिस्टर खन्नाकी उक्त नामकी दूकानपर कुछ पुस्तकें बिकनेके लिए रख दी हैं। बिकी हुई पुस्तकोंपर उन्हें कुछ कमीशन देना होगा। मिस्टर खन्ना अच्छे आदमी हैं। हिन्दी-साहित्यके कुछ क़द्रदाँ भी हैं।

फेरी लगती रहती है और तरह-तरहके लोग आँखोंसे गुज़रते रहते हैं। एक दिन कसमंडा-लाज है, तो दो दिन हिमालय-क्लब, कभी कैप्टेन रामचन्द्रकी डिस्पेंसरी है, तो कभी लाला बैसाखीलालजीकी दूकान। हिमालय-क्लबमें औसत दर्जेके 'शिक्षित' हिन्दू-परिवार ठहरते हैं। कालेजिएट लड़कों, लड़कियों और पढ़ी-लिखी बीबियोंकी चहल-पहल वहाँ ख़ासी रहती है। 'बाबूजी या बीबीजी, हिन्दीकी किताबें देखिएगा?'—बुकसेलरकी सदा होती है। 'नहीं'; 'नो, थैंक्स'; 'वी आर वेरी बिज़ी'; 'ऊपर लाना'; 'लाओ देखें' आदि उत्तर मिलते हैं। किताबें देखी जाती हैं, चुन ली जाती हैं, कमीशन काटकर दाम बतला दिए जाते हैं, तब और कमीशनके लिए झगड़ा चलता है और अक्सर कुछ घटा-बढ़ी करके फ़ैसला कर लिया जाता है। लेकिन इसके मानी यह होते हैं कि ख़रीदनेवालेकी ग़रज़ ज़रूरतसे कुछ कम और बेचनेवालेकी ज़रूरतसे ज़्यादा हो जाती है। ग़रज़का यह अनुपात जल्द ठीक कर लिया जाना चाहिए। कसमंडाके सेक्रेटरी साहबने तो मँहगी होनेके कारण केवल दो रुपए पाँच आनेकी छाँटी हुई दो पुस्तकोंको भी कमीशन न देनेकी वजहसे लेनेसे इनकार कर दिया। मेरी वही कमज़ोरी, पुस्तकें वापस लेकर मैंने उनसे कहा—'ख़ैर, यह तो रही बिज़िनेसकी बात, इसे जाने दीजिए। मेहरबानी करके मेरी एक भेंट युवराजके पास

पहुँचा दीजिए।' मैंने भेंटके दो शब्द लिखनेके लिए उनसे उनका फाउण्टेनपेन माँग लिया। मैं एक पुस्तकपर कुछ लिखनेको ही था कि उन्होंने मुझे रोककर कहा—'अभी रहने दीजिए, महाराज (युवराज) अभी बाहर जा रहे हैं, भेंट अभी मत कीजिए...और वैसे भी पुस्तककी भेंट तो लेखककी तरफ़से होनी चाहिए।' (न कि एक बुक-सेलरकी तरफ़से—उनका मतलब था।) 'यह लेखककी ही तरफ़से है।'—मैंने कहा। और बातें हुईं। सेक्रेटरी साहबने बतलाया, लेखकोंके लिए उनके दिलमें बड़ा सम्मान है, मानो लेखक मनुष्यसे ऊपरकी कोई चीज़ है, या फिर बुकसेलर मनुष्य नहीं है। मैंने उनसे कह दिया कि लेखक या किसी दूसरी तरहसे बड़े आदमीकी क़दर करना हम तब तक नहीं सीख सकते, जब तक मनुष्यकी क़दर करना न सीख लें। भेंटकी पुस्तक उस समय लेनेमें उन्हें हिचक हो रही थी, इसलिए मैंने ज़ोर नहीं दिया। मेरे चलते समय उन्होंने कहा—'वे दोनों किताबें तो देते जाइए।' 'कमीशन कुछ नहीं मिलेगा।'—मैंने कहा। उन्होंने पूरे दाम देकर पुस्तकें ले लीं।

हिमालय-क्लबमें, और दूसरी जगहोंमें भी, जब मेरे ये भाई 'बाबू लोग' और उनके साथ दो-एक 'बीवी लोग' कुर्सियाँ डालकर बैठ जाते हैं और मैं उस घेरेके बीच फ़र्श-पर बैठा हुआ किताबें बक्ससे निकाल-निकालकर उन्हें दिखाता हूँ, या जब कोई साहब और साहिबा अपने कमरेकी देहलीज़के भीतर कुर्सीपर बैठ जाते हैं और मैं पायदानके पास धरतीपर बैठकर उनके सामने किताबें पेश करता हूँ, तब मुझे एक ख़ास मज़े और विशेष गौरवका अनुभव होता है। मैं अपने-आपको अपने बड़े परिवारके बीच लौटकर (जी हाँ, मैं अपने-आपको ऐन औसतसे कुछ ऊपरके आद-मियोंमें समझता रहा हूँ) आया हुआ पाता हूँ। अब मैं समझ रहा हूँ कि दुनियामें—और शायद हिन्दुस्तानमें सबसे अधिक—आदर और श्रद्धाके योग्य मनुष्योंकी संख्या कुर्सियोंकी तादादसे बहुत ज़्यादा है!

कभी-कभी एक-आध बात वैसी मेरे मुँहसे निकल जाती है, एक-आध नज़र मेरी वैसी उठ जाती है, जिसमें मैं कह बैठता हूँ, 'हलो डीयर ब्वाय, तुम अभी तक इतने सीधे, इतने कोरे बने हुए हो!' और शुकर है कि मेरी वह चूक उनकी पकड़में नहीं आती। वे ठीक कोरे ही निकलते हैं। एक सज्जनने 'मायापुरी' ख़रीदी और दूसरे दिन मुझे बताया कि किताब बहुत अच्छी निकली और उन्होंने उसे सबेरे चार बजे तक पढ़ा। मैंने कुछ तोले हुए लहज़ेमें कहा—'ऐसे नहीं, ज़रा थम-थमकर पढ़ा कीजिए।' पर उनकी समझमें यह बात नहीं आई। एक मिस्टर श्रीवास्तवने, जब कि आठ या दस रुपएकी एक पुस्तक मैंने चार रुपएमें न दे सकनेकी अपनी मजबूरी ज़ाहिर की, कहा—'आपने हमारा जी खट्टा कर दिया, अब हम आगे कोई किताब क्या देखें?' मैंने देखा, बात करना इन्हें कितना कम आता है और व्यवहारके शिष्टाचारसे तो वैसे और भी दूर हैं। क्यों साहब, जिस बुकसेलरके कपड़े—सही सादे कपड़े, कुर्ता या कमीज़, धोती या पाजामा—मैले न हों, जिसके बाल बढ़े हुए न हों और जो साफ़-सुथरा और आपका हमउम्र या कुछ कम उम्र भी सही—नौजवान हो, उसे ऊपर कुर्सीपर बैठनेके लिए आप क्यों नहीं कहते? पर क्या किया जाय, न आपके किसी स्कूल-कालेजने और न आपके दिल ही ने आपको यह सबक़ पढ़ाया है।

१५ जूनकी बात

किताब-घरवाली सड़कपर जो चलती हैं, वे सब सुन्दरियाँ मूर्तिमान प्रदर्शिनी होती हैं। चलनेवाले सुन्दर और सजीले होते हैं। जो कोई अनजान लेडीज़ और जेन्टल्स, गर्ल्स और यंगमैन ऐसे नहीं होते, वे कमसे कम 'बड़े लोग' ज़रूर होते हैं और जो यह भी नहीं होते, वे मनचले हुस्नपरस्त होते हैं। जो यह भी नहीं होते, उन थोड़े-सोंकी बात मुझे यहाँ नहीं कहनी है। एक और क़िस्मके लोग उस सड़कपर मिलते हैं, जो सिर्फ़ इन्सान होते हैं और कभी-कभी उन्हें अपने इन्सान होनेकी याद भी भूली रहती है। रूपली और बादुरी ऐसे ही दो इन्सान हैं। एक बापके दो बेटे, एककी उम्र १० साल, दूसरेकी ८ साल। किताब-घरके चौकमें जब बड़े लोग बेंचोंपर बैठ जाते हैं, तब ये दोनों—और भी दर्जनों लोग—उनके बूटोंपर पालिश करते हैं।

'देखो जी, हम तुमको पालिशका एक पैसा देंगे।'—एक बाबू साहबने, जो शुद्ध हिन्दुस्तानी बोलनेवाले थे, साहबी भाषामें रूपलीसे कहा, जब कि वह एक बूटपर पालिश कर चुका।

'नहीं बाबूजी, दो पैसे।'—रूपलीने कहा।

'तो रहने दे, मतकर पालिश।'

'बाबूजी, अब तो एक जूतेपर पालिश हो चुकी है।'

'ओ बदमाशके बच्चे ! दूसरेसे तूने एक पैसा लिया है, हमसे दो माँगता है ! पाजी, सुअर...', वह कहते गए।

पास बैठे हुए एक गुजराती या मराठी सज्जनने उनका साथ दिया। यू० पी० की भाषामें गालियाँ उन्हें अच्छी तरह याद थीं। एक दूसरे लड़केने इन दूसरे सज्जनके बूटपर हाथ लगा दिया। 'बाबूजी, पालिश ?'—उसने प्रार्थना की।

'देखता नहीं, फोड़ दूँगा माथा...' वह बहुत कुछ कहते गए।

लड़केका माथा सचमुच जूतेकी ठोकरसे फूटते-फूटते बचा। मैं पास ही बैठा था। जूतेकी वह ठोकर और वे गालियाँ जैसे मुझपर ही पड़ रही थीं। मेरा जी उमड़ रहा था। रूपली जैसे मेरा सगा छोटा भाई था। एक छोटा-सा हाथ डरता-झिझकता मेरे पैरोंकी तरफ़ बढ़ा। यह बादुरीका हाथ था। 'बाबूजी, पालिश ?'—उसने कहा। मैंने जूते उतार दिए।

बादुरी पालिश करने लगा। पालिश हो चुकी। बूँदें पड़ने लगीं। 'लाओ जूता, देखो पानी आ गया।'—मैंने कहा।

'बाबूजी, अभी इसे और चमकाऊँगा। आइए, आप उस छतरीके नीचे खड़े हो जाइए।'—उसने कहा।

छोटा-सा बादुरी मनुष्य था और वह पैसेसे ऊपरकी चीज़को जानता था, जब कि उसने अपने भाईसे कहा था—'यह बाबूजी ख़ुशीसे दो पैसे देंगे।' वह जानता था कि पैसे उसे उतने कामपर भी—जब कि जूतेका सिर्फ़ ख़ूब चमकाना बाक़ी रह गया था—दो मिलनेको थे।

हम तीनों छतरीके किनारे जा पहुँचे। 'दुनियामें वैसे लोग भी होते हैं और ऐसे भी !'—जूतेको रगड़ते हुए बादुरीने कहा। मैंने सुना, दिलकी गहराईसे एक विश्व-साक्षी दार्शनिक बोल रहा था। 'इतना बड़ा जूता और एक पैसा दिया। ऊँह् क्या हुआ, भगवान और देगा।'—बादुरी कह रहा था। उसके हृदयने रूपलीकी आत्माको अपने भीतर समेट लिया था, उससे उसकी सहानुभूति अभेद थी और वह ग़रीब नहीं, सन्तोष-धनका धनी, महाधनिक था। रूपलीको एक पैसेका नुक़सान हुआ था। उसकी एक इकन्नी और भी खो गई थी। उसके समूचे घाटेका बोझ उठाना मेरे सामर्थ्यके बाहर था।

पालिश कराई देनेके लिए मैंने बादुरीको एक इकन्नी दी। उसने उसके चार पैसे मेरे हाथपर रख दिए। दो पैसे उसमें से मैंने उसे दे दिए, फिर एक पैसा और। बादुरीके भगवानने जैसे उसके भाईका घाटा पूरा कर दिया। मैंने एक पैसा, अपनी सम्पत्तिका आधा भाग अपने एक भाईकी सेवामें ख़र्च कर दिया। खोई हुई इकन्नीके लिए सब्र करनेको मैंने उनसे कहा। उन्हें सब्र था।

वहाँसे डेरे तक आते हुए रास्ते भर मैं सोचता रहा कि इन नीच कहलानेवाले अपने भाइयोंमें मैं मिल जाऊँ और दुनियाकी निगाहोंमें ऊपर उठूँ, तो इन्हें साथ लिए हुए उठूँ—तभी मेरी साधना सफल होगी—यही मेरी इस मंज़िलकी साधना होगी।

मेरे आँसुओंने उमड़-उमड़कर कहा—ये मेरे भाई हैं, ये मेरे भाई हैं और मैंने कहा—इनके लिए मैं कुछ करूँगा, ज़रूर करूँगा।

( शेष अगले अंकमें )

---

# प्रेमकी भीख

श्री तपेशचन्द्र त्रिवेदी

तरुणीने अपने देवताके चरणोंपर सिर टेक दिया और बोली—'देव,...!'

'कौन तुम ?...यहाँ किस लिए ?'—देवता जैसे चौंक उठा।

'एक भिक्षा माँगने आई हूँ, प्रभु !'—तरुणीकी आँखोंमें करुणा तैर रही थी।

'तुम्हें भिक्षा चाहिए ?...तुम्हें किस वस्तुकी कमी है, सुन्दरी ?'—देवताके मुखपर किंचित् विस्मयकी रेखा खिंच आई।

'मुझे प्रेमकी भिक्षा चाहिए, देव !...'

देवता मुस्कराया—'तुम प्रेमकी भीख चाहती हो, देवी ! लेकिन वह तो माँगनेकी चीज़ नहीं है। उसे तुम उत्सर्गके मार्गमें पा सकती हो। जाओ सुन्दरी, वह तुम यहाँ नहीं पा सकतीं। उसे अपने-आपमें ढूँढ़ो—शायद वहीं तुम्हें वह मिल जाय।'

और देवताने पुनः अपने नेत्र मूँद लिए।

# सुबराती और गाज़ी

श्री सरयूपण्डा गौड़

सुबरातीको आज शान्ति नहीं है। उसे आज सरे शामसे ही नींद नहीं आई। पलकें ज़रा झँपतीं और वह तुरत चौंककर उठ बैठता। वह बहुत बेचैन था। वह क़ुरानकी आयतोंका शुद्ध-अशुद्ध पाठ करता और वज़ीफ़ा पढ़ता; पर उसे शान्ति न मिलती। अपने पुआलेके झोंपड़ेसे वह बाहर निकला। आसमानकी ओर देखा। अब तारे भी सुबरातीके भाग्यकी भाँति मन्द और हृदयकी नाईं खिन्न हो बुझने जा रहे थे। व्यथित सुबरातीने अपने दोनों हाथ याचकोंकी भाँति फैलाकर आकाशकी ओर देखते हुए बड़ी आर्त्त-विह्वल वाणीमें कहा—'ऐ जहाँके ख़ालिक-मालिक, क्या तेरे दरबारमें भी दुनियावालोंकी तरह हम ग़रीब पामालोंके लिए रहमो-तरस नामकी कोई चीज़ नहीं रही? ऐ पाकपरवर, दुनियाकी यह नापाकी तुम्हारी पाक दुनिया—बहिश्त—में कैसे घुसी? तुम ग़रीबनेवाज़ कहलाकर भी हम बदक़िस्मत ग़रीबोंसे क्यों किनारा करते हो?'

सुबरातीकी आँखें आँसुओंके नदमें डूब-उतरा रही थीं। उसकी आवाज़ लड़खड़ा-सी रही थी और सारा शरीर काँप रहा था। वह उस सूनी रातके शून्यमें हाथ फैलाए किसीसे कुछ माँगता-सा कह रहा था—'ओ मेरे अल्लाह, जिस दिन मेरा गाज़ी मेरे खूँटेसे खुलकर उस बेरहम सूदख़ोर पठान खुदियारख़ाँके हाथों चला जायगा, उस दिन तुम्हारे इस बदनसीब ख़िदमतग़ारकी क्या दशा होगी, क्या इसे तू नहीं जानता? सुबराती सिर्फ़ एक चलती-फिरती क़ब्र भर रह जायगा! गाज़ीको मैंने अपने बेटेकी तरह प्यार किया, उसे पाला-पोसा और बड़ा किया। उस बेईमान क़स्साब हबीबुल्लाके घर पूरे पन्द्रह दिन गारा-चूना ढोकर, उसका घर छा-बनाकर, मज़दूरीमें अपने इस मासूम-यतीम कुल चार माहके दुधमुँहे गाज़ीको लाया। उस समय इसकी कैसी दर्दनाक हालत थी। उसके जिस्मपर फ़क़त खाल और हड्डी भर रह गई थी। यह बेचारा उस कातिलके खूँटेमें बँधा सूखा पयाल चबाता, हर आदमीकी ओर अपनी ग़रीब आँखोंसे देखता और अपनी बेकसी व पामालीका दर्द-भरा इज़हार किया करता था! तबसे आज चार-पाँच बरस हो गए, मैं बराबर इसकी सेवामें जुटा रहा। इसीसे मेरा गाज़ी आज गाज़ीकी शक्लका हुआ है। फिर उस गाज़ीको मैं उस बेरहम दोज़ख़ी पाठान खुदियारको सौंप दूँ! हाय, मेरे गाज़ीको वह शैतानका पुतला जाने किस घाट लगायगा, क्या करेगा, किसके हाथ बेचेगा? वह तो कोरा क़साई है—क़साई! जो उसे पैसा देगा, गाज़ीकी पगहिया वह उसीके हाथ थमा देगा, चाहे वह क़साई हो, डोम हो, नट हो। मेरे ख़ुदा, तब मेरे गाज़ीका क्या होगा?'—सुबराती ये शब्द कहते-कहते बच्चोंकी भाँति बिलख पड़ा।

सबेरा हो चला था। सुबरातीके जलते हृदयकी भाँति सुदूर पूर्वका आकाश लोहित वर्ण हो चला था। सुबराती जल्दी नित्यक्रियासे निपट बड़ी तेज़ीसे गाज़ीके पास गया। देखा, गाजी अपने यौवनकी उमंगमें मस्तीसे झूम रहा है और उसके झूमनेके साथ-साथ उसके गलेकी घंटी और घुँघरू बज रहे हैं। गाज़ी अब युवावस्था प्राप्त कर रहा है। उसका प्रत्येक अंग मांससे लद गया है। चौड़ा ललाट। चमकता हुआ रोआँ, जिसपर मक्खी फिसल पड़े। छोटे-छोटे सींग। शेरकी मानिन्द चौड़ी छाती। मल्लोंकी तरह कसी-कसाई गठी देह। सुन्दर पैर। चमकती आँखें। सुबरातीने आज अपने गाज़ीकी यह हृदयहारी शोभा जी भरकर देखी। जो सुबराती गाज़ीका सौन्दर्य देख फूला नहीं समाता था, आज उसका वह सौन्दर्य सुबरातीको काँटों-सा बिंधने लगा। जैसे ही सुबराती उसके बिलकुल पास आ गया कि वह पूँछ उठाए हुँकार भरता उसकी ओर बढ़ा, मानो वह उछलकर सुबरातीकी गोदमें बैठ जाना चाहता है।

सुबराती उसका मुँह अपने सीनेसे लगाकर, प्यारसे उसका माथा सहलाते हुए भींगी आँखों बोला—'बेटा गाज़ी, आजसे तुम्हारा दाना-पानी हमारे घरसे उठ गया। जानते हो क्यों? मैं तुम्हारा एक अभागा बाप हूँ, जिसके पास पैसा तो क्या, फूटी कौड़ी तक नहीं, और एक ऐसे सूदख़ोर

ज़ालिम महाजनका कर्ज़दार हूँ, जिसके पास रहम व मेह्र कभी नहीं फटकती। बेटा, आज तुम्हें उसी क़स्साबके हाथों सौंपना है, क्योंकि मैं ख़ुदा और उसके हुक्मको मानता हूँ, ईमानको जानसे भी ज़्यादा प्यार करता हूँ, और उस बेईमानके पास ईमान नामकी कोई शै नहीं। परसाल मैंने उससे दस रुपएके कपड़े उधार लिए, बहुत मजबूर होकर! जब एकके बाद दूसरे हमारे लड़के ज़ालिम जाड़ेके शिकार हो निमोनिया और टायफायडकी भेंट चढ़ने लगे, तो लतीफकी अम्मा बेजार हो उठी। क्यों न होती बेटा, वह माँ थी। किस तरह वह बदक़िस्मत अपने बच्चोंकी नींद सोई और जगी। जब उसके दो प्राण-प्यारे बच्चोंने दईमारे जाड़ेमें ओढ़नेकी कमीसे तड़प-तड़पकर दम तोड़ दिया, तो वह बदनसीब माँ मेरे पैरोंपर अपना माथा पटककर बोली—न हो, कोई ले तो दस-पाँचपर कहीं मुझको बेंच लो, या कहीं ज़हर मिले तो लाओ, मुझे खिला दो; मगर यों मेरे बच्चोंको मेरी आँखोंके सामने बेमौत मत मारो! आह, मेरे लाल, मेरे कलेजेके टुकड़े, कीड़े-मकोड़ेकी मौत मरे!'

सुबराती पहलेसे ही उबाल खा चुका था, पुत्र-मरणके स्मरणसे वह और भी विकल हो गया। आँखोंकी राह वह अपना हृदय-रक्त उलीचता दिल चीरनेवाले स्वरमें बोला—'बेटा गाज़ी, दुखियारी माँकी उस पुरदर्द बेज़ारीने मुझे घबरा दिया। मैं सरापा काँप उठा। उसकी ग़रीब आवाज़ दिलमें चुभ गई। और बेटा, आख़िर मैं भी तो उनका बाप था! मजबूर हो चला उसी खुदियारख़ाँके पास; मगर जब मेरी निगाह उसके ख़ूख़ार, दैत्यकी तरह लम्बे-चौड़े शरीरपर पड़ी, तो उसकी बेरहम आँखें और चेहरेकी शरारत देखकर मेरी हिम्मत टूट गई और हौसला पस्त हो गया। सोचा, चलो लौटो, इस दोज़खके दूतसे उधार लेनेके बजाय मल्कुल-मौतसे ही लड़ना अच्छा है। वह इसकी तरह सतायगा तो नहीं, चटपट मार ही डालेगा! बेटा गाज़ी, मैं लौट चला; मगर पैर घर जानेसे साफ़ इनकार कर गए—उठाए नहीं उठते थे। उस दुखिया माँकी मासूम सूरत याद आई, जो अपने दो-दो नौनिहालोंको अभागी मुफ़लिसीपर क़ुर्बानकर किसी तरह दोको बचाए मेरे इन्तज़ारमें पलकें बिछाए चौखटेपर बैठी होगी। लाचार फिर लौटा; मगर फिर भी मेरी हिम्मत उस जल्लादसे उधार माँगनेकी न हुई। फिर घर वापस लौटा; लेकिन मुझसे घर न लौटा गया। उल्टे पाँव फिर खुदियारके पास पहुँचा। मेरी तरह और भी कई मजबूर लोग खुदियारको घेरे बैठे थे। कोई कपड़ा ले रहा था, कोई दाम चुका रहा था और कोई लाचार बेचारा उस ज़ालिमकी चिरौरी कर रहा था। मुझे कई बार आते-जाते देख खुदियार सरसे पाँव तक मुझे घूरते हुए बोला—क्यों म्याँ, क्या फेरी लगा रहे हो? कुछ ज़रूरत हो तो कहो, यों बेमतलब चक्कर काटनेसे फ़ायदा? फ़जूल हैरान हो रहे हो! बेटा गाज़ी, उसके पास बैठकर मैंने अपनी मजबूरियाँ सुनाईं। वह ख़ान अपनी भूरी और बेरहम आँखें मेरी सूरतपर जमाते हुए बोला—म्याँ, कपड़े देनेको तो मैं तैयार हूँ; मगर अगले साल तुम्हें इसी महीनेमें जैसे भी हो पाई-पाई चुका देनी पड़ेगी। उस वक्त मैं कोई हीला-हवाला न सुनूँगा। अगर मेरी यह शर्त तुम्हें मंज़ूर हो, तो शौकसे कपड़े जितनी ख़्वाहिश हो, ले जाओ।'

सुबराती कहता रहा—'बेटा, मैंने उस सूदख़ोर बेईमानसे दस रुपएके कपड़े उधार लिए, जिसका दाम उसने पन्द्रह रुपया लिखा। उनमें से सात तो सालके भीतर ही चुका दिए, बाक़ी आठके लिए वह रोज़ दौड़ रहा है। लाख कहा—ख़ाँ साहब, सिर्फ़ महीना भर और ठहर जाओ; मगर वह दोज़ख़ी नहीं सुनता। मुहल्लेमें सबके घर दौड़ आया, महज़ आठ रुपयकी किसी भलेमानसके पास नहीं! हाय री दुनियादारोंकी हमदर्दी! बस, आजका वादा है बेटा! आज या तो वह रुपया लेगा या तुम्हें। लेकिन रुपया मेरे पास कहाँ? वह तुम्हींको ले जायगा। क्या करूँगा, कलेजेपर पत्थर रखकर तुम्हें उसे दे दूँगा। ग़रीबोंका दर्द अब ख़ुदा भी नहीं सुनता, यह जानकर भी मैं नाख़ुदा नहीं हो सकता बेटा! नहीं तो यह बेईमान लेता मुझसे रुपया? अच्छा बेटा, तुम उसके साथ चले जाना। राहमें मूँड़-ऊँड़ मत मारना, नहीं तो वह बेरहम तुम्हें डंडोंसे पीटेगा! और जो कुछ दे बेटा, उसे चुपचाप खा लेना, नहीं तो मर जाओगे, कमज़ोर हो जाओगे। और मुझसे तुम एकदम नाउम्मीद भी मत हो जाना। वह तुम्हें ले जायगा, तो मैं फिर तुम्हें लानेके लिए हज़ार कोशिश करूँगा।'

सुबराती भारी दिल लिए गाज़ीके पाससे चला।

गाज़ी भी शान्त और शिथिल हो गया। वह बार-बार सुबरातीको देखकर हुँकर पड़ता। सुबराती आँखें पोंछता बाहर आया। ज्यों ही वह बाहर आया कि देखा, सामने यमराजकी तरह हाथोंमें डंडा लिए, सरपर लाल छींटका साफ़ा बाँधे खुदियार खड़ा है। सुबरातीको देखते ही खुदियार बोला—'क्यों म्याँ, रुपएका इन्तज़ाम किया?'

सुबराती बोला—'नहीं ख़ाँ साहब, बहुत खोजा, रुपया न मिला।'

ख़ाँ ज़रा हँसकर बोला—'म्याँ, रुपया क्या ठिकरा है, जो खोजनेपर मिल जायगा। वह तो मालदारोंको ही खोजनेपर मिलता है, मुफ़लिसोंको नहीं। यह हमीं लोगोंकी हिम्मत है, जो मुफ़लिसोंमें अपने रुपए ठिकरेकी तरह छींट देते हैं। ख़ैर, मैं तो आज बिना रुपया या तुम्हारा बछड़ा लिए न जाऊँगा। लाओ, बछड़ा कहाँ है?'

सुबराती बोला—'बछड़ा हाज़िर है ख़ाँ साहब, मुझे बेईमानी नहीं करनी है। आप ले जाओ; पर एक अर्ज़ है।'

'अरे बाबा, अर्ज़-वर्ज़ मैं तुम्हारी बहुत सुन चुका। अब मैं कुछ न सुनूँगा। बस, बछड़ा लाओ और मैं अपनी राह लूँ।'

सुबराती—'बछड़ा तो मैं दूँगा ही। जब वादा कर दिया है, तो मैं आपको यहाँसे खाली हाथ न लौटाऊँगा। मैं ज़रका गरीब हूँ, मगर ज़बानका नहीं। हाँ, वह अर्ज़ यह है कि आप बछड़ा ले जायँ, मगर इसे कमसे कम एक माह तक न बेचें। मैं इस एक माहमें आपको आठके बदले दस देकर अपना बछड़ा वापस ले आऊँगा।'

ख़ाँ बोला—'अरे बाबा, तो इस एक माह तक इसे दाना-घास कौन देगा? दस रुपएका तो यह एक माहमें घास चबा जायगा। फिर इसे बाँधना, खोलना, नहलाना-धुलाना और सबसे बड़ी दिक़्क़त इसका गोबर-मूत रोज़ साफ़ करना, यह कौन करेगा? मुझसे तो मरनेपर भी न होगा।'

सुबराती—'सब मैं करूँगा, ख़ाँ साहब! आप इसकी फिकर छोड़ दो।'

ख़ाँ—'हाँ, भाई, तो तुम मुफ़्त थोड़े करोगे, मज़दूरी लोगे!'

सुबराती—'एक छदाम भी हराम। हाँ, मैं यही मज़दूरी लूँगा कि एक माह तक इसे न बेचो, बस! यही एक लालच है ख़ाँ, इसे मैंने बड़े प्यारसे पाला है, मुहब्बत मेरा गला नहीं छोड़ती।'

सुबरातीकी आँखें भर आईं। ख़ाँ बोला—'अच्छा, मैं तुम्हारी ख़ातिर तुम्हारी यह बात मान लेता हूँ; मगर एक माह बाद मैं एक लहमा भी न ठहरूँगा।'

सुबराती सहर्ष बोला—'हाँ, हाँ, आप एक माह बाद एक लहमा भी मत ठहरना, ख़ाँ!'

सुबराती गाज़ीको लाने घरमें घुसा। उसने देखा, गाज़ी दीन, खिन्न-सा खड़ा है। उसकी आँखोंसे आँसू जारी हैं और उसके सामनेका दाना ज्योंका त्यों पड़ा है। यह देखकर सुबरातीका कलेजा व्यथित हो उठा। वह रोता हुआ गाज़ीके निकट जाकर प्यार-भरे स्वरमें बोला—'बेटा गाज़ी, उदास मत हो! मैं उस ज़ालिमके घर तुम्हें हरगिज़ नहीं छोड़ूँगा। महज़ तीस दिनकी बात है। फिर मैं अपनी जान देकर भी तुम्हें घर लाऊँगा। इतनेपर भी मैं उस ज़ालिमके आसरेपर तुम्हें न छोड़ूँगा, बेटा! उसके घर भी दाना-घास मैं ही तुम्हारे लिए लाऊँगा, मैं ही तुम्हें खिलाऊँ-पिलाऊँगा। समझे...'

इतनेमें बाहरसे खुदियारने पुकारा—''क्यों म्याँ, भीतर जाकर बैठ रहे क्या? लाओ, जल्दी करो। मुझे और जगह भी जाना है।'

सुबराती अपने गाज़ीको लिए आँखें पोंछता बाहर निकला, मानो वह अपने बेटेका जनाजा लिए निकला हो। नहीं, नहीं, वह अपने दो-दो बेटोंका जनाजा लिए आजसे कुछ ही मास पहले निकल चुका था; परन्तु इतनी पीड़ा, ऐसा दाह और ऐसी व्यथा उसे न हुई थी। उसे सब्र था—दो बेटे गए, तो दो तो बचे हैं; मगर गाज़ीके जानेके बाद दूसरा गाज़ी सुबरातीके पास कहाँ है, जिसे देखकर वह सब्र बाँधे? यद्यपि सुबराती यह जानता था और उसे इसका ध्रुव निश्चय भी था कि वह अपने गाज़ीको कभी उस निठुर ख़ानके पास रहने न देगा, फिर भी उसकी व्याकुलता जाती न थी।

गाज़ीको ख़ानके खूँटेमें बाँध सुबराती तन-मनसे काममें पिल पड़ा। वह सारे दिन टोकरा लिए इस खेतसे उस खेत घास छीलता, कुछ गाज़ीको खिलाता और बाक़ी बेंच देता। किसी दिन सबेरे गाज़ीको खिला-पिलाकर वह कुल्हाड़ी लिए बागोंमें निकल जाता, लकड़ियाँ काट लाता और उन्हें बाज़ारमें बेच आता। सुबरातीने देखा, घाससे अच्छा

पैसा ईंधनमें वह उठा लेता है। उसने बारह बरसके अपने बच्चे लतीफ़को गाज़ीके लिए घास छीलनेपर तैनात किया और आप सारे दिन लकड़ी काटने लगा। आज अट्ठाइसवाँ दिन है। आज सुबरातीने जान लड़ाकर ख़ूब लकड़ी काटी और शामको उसे बाज़ारमें बेचने चला। उसका ईंधन बारह आनेको बिका। सुबराती खिल उठा। वह लम्बे-लम्बे डग भरता, ख़ुशीमें फूला, अपने गाज़ीके पास आया। उसे ख़ूब प्यार किया और बोला—'बेटा, सिर्फ़ दो दिन और किसी तरह तकलीफ़ करके बिताओ, फिर तो उसी मड़ैयामें तेरे घंटी-घुँघरू बजेंगे—टुन-टुन टुन, झुन-झुन झुन, हाँ।' सुबरातीके सूखे हृदयमें मानो काव्यका संचार हुआ और उसका रोआँ-रोआँ रसमें डूब गया।

घर आकर सुबरातीने अपनी एक मासकी कमाईका लेखा-जोखा किया—नौ रुपए, चार आने! सुबरातीकी आँखें चमक उठीं। उसका मुर्झाया मुखड़ा खिल उठा—'बस, कुल बारह आनेकी और कसर है—महज़ कल दिन भरकी मिहनत! फिर तो गाज़ी उसके खूँटेपर ताहयात झूमता और हुँकरता रहेगा और चाहे सारा कुनबा मल्कुल-मौतके गालमें चला जाय; मगर सुबराती कान उमेठता है, लाहौल पढ़ता है, अब ऐसी ग़लती कभी न करेगा—गाज़ीको कभी गिरो न रखेगा।' सुबराती आवेशमें कहता रहा—'और हाँ, वह बेईमान सूदख़ोर पठान भी समझेगा कि पड़ा है किसी मर्दानेसे काम। महज़ आठ रुपल्लीका सूद सिर्फ़ एक माहका दो रुपए उसने मेरी नाकपर रख दिए! हः हः हः! अरे हाँ, एक महीनेसे मेरे गाज़ीका घर तो अभी गन्दा ही पड़ा होगा। कल जब वह आयगा, तो रहेगा कहाँ और कल घर साफ़ करनेका मौक़ा भी कहाँ? मैं तो सुबह बग़ीचोंमें लकड़ी काटने चला जाऊँगा और लतीफ़ घास लाने। उसकी अम्माको सफ़ाईकी तमीज नहीं। वह ज़रूर कहीं-न-कहीं कूड़ा-कतवार छोड़ देगी। फिर गाज़ीको तकलीफ़ होगी। चलो, आज ही साफ़ कर लो, लीप-पोत लो कि कल शाम तक घर सूख भी जायगा।'

प्रेमोन्मत्त सुबराती उसी दम गाज़ीका घर साफ़ करने लगा। सारा दिन लकड़ी काट और उसे बाज़ारमें बेंचकर अभी वह आठ बजे रातमें आया है। न कुछ खाया, न पिया और फिर काममें पिल पड़ा।

लतीफ़ने आकर कहा—'बाबा, खाना ठंडा हो रहा है, माँ बुलाती है।'

'चल, होने दे ठंडा।'

इतनेमें सुबरातीकी स्त्री भी आ गई और बोली—'अरे, इसे आज रातमें ही साफ़ कर लेना कौन-सा बड़ा ज़रूरी है? कल साफ़ न होगा? सुबहके गए-गए अभी आए और फिर जुत गए!'

'चल, चल, कल नहीं, आज ही होगा! मेरा गाज़ी कल आयगा, तो ऐसी जगहमें बैठेगा कैसे? जा, तू खा ले।'

सुबह होते ही वह बाग़की ओर भागा। प्रायः दस बजे दिन तक वह इस बाग़से उस बाग़ मारा-मारा फिरा; पर अफ़सोस, उसे आज कहीं बित्ते भरकी भी सूखी लकड़ी नज़र नहीं आ रही थी। प्यासके मारे उसके तालू चट्ट-चट्ट हो रहे थे। मुखपर धूल उड़ रही थी और शरीर शिथिल हुआ जा रहा था। पर सुबराती हिम्मत हारने-वाला न था। अगर आज वह हिम्मत हार जायगा, तो इस हारकी हूकमें वह आजीवन तड़पता रहेगा। सुबराती इस बाग़से उस बाग़ दौड़ रहा है और आँखें फाड़-फाड़कर हर दरख़्तको देख रहा है। सहसा उसे दीखी ऊपर एक बड़ी मोटी सूखी डाल। उसे जैसे स्वर्ग मिल गया! वह दरख़्तपर चढ़ गया और दनादन कुल्हाड़ी चलाने लगा। उसने सोचा, बस, यह एक ही लकड़ी करस जलनेपर भी बारह आनेसे कममें न बिकेगी। अभी कुल चार ही हाथ कुल्हाड़ी चलानेपर सुबराती थक क्यों गया? उसका हाथ क्यों भर-भर आता है? उसकी जाँघ क्यों जूड़ीके रोगीकी तरह काँप रही है? माथा क्यों फटा जा रहा है? कुल्हाड़ी तो वह लकड़ीपर चलाता है; परन्तु प्रत्येक आघात उसके सरपर क्यों लगता हुआ जान पड़ता है? चाहे जो कुछ भी हो, वह लकड़ी काटे बग़ैर न मानेगा।

और लकड़ी कट गई; पर लकड़ीके साथ ही काँपता हुआ सुबराती भी ज़मीनपर आ रहा और ज़ोरसे चिल्ला पड़ा—'बेटा गाज़ी, मैं आ गया! लकड़ी कट गई!'

पर सुबराती अपने बेटे गाज़ीके पास न जाकर स्वर्गमें जा पहुँचा! उसकी बिलखती स्त्री और बिसूरते बच्चे वहाँ आए। पड़ोसियोंने जुड़कर सुबरातीको धरती माताकी गोदमें सुला दिया! और खुदियारख़ाँ पठानने गाज़ीको पचास रुपएमें बेच दिया!

जगदीशपुर (शाहाबाद) ]

---

# हमारे प्रान्तीय सम्मेलन

बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रान्तीय सम्मेलन हिन्दी-जगत्‌के लिए कोई नवीन चीज़ नहीं। बिहार, पंजाब, संयुक्त-प्रान्त और मध्य-प्रदेश इत्यादिमें उनके अधिवेशन अनेक बार हो चुके हैं और अब भी होते रहते हैं। इस विषयमें सबसे अधिक नियमितताके साथ यदि किसी प्रान्तने कार्य किया है, तो वह बिहार-प्रान्त है। बिहारी भाइयोंने हम लोगोंके सम्मुख एक आदर्श उपस्थित कर दिया है। भूतपूर्व प्रान्तीय सभापतियोंके भाषण भी उन्होंने पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिए हैं। संयुक्त-प्रान्त शायद सबसे फिसड्डी है। लगभग पच्चीस वर्षमें केवल पाँच-छः अधिवेशनोंका होना हमारे प्रमादका ही सूचक है।

हर्षकी बात है कि श्रीयुत श्रीनारायणजी चतुर्वेदी तथा श्रद्धेय टंडनजीके उद्योगके कारण संयुक्त-प्रान्तीय सम्मेलन फिरसे जाग्रत हो गया है और उसका एक सफल अधिवेशन अभी आगरेमें हो चुका है। तत्पश्चात् बुन्देलखण्ड-साहित्य-मंडलका उत्सव कालपीमें हुआ है। मध्य-प्रदेश तथा मध्य-भारतके अधिवेशन पहले हो ही चुके थे और अब राजस्थानका सम्मेलन होने जा रहा है। क्या ही अच्छा हो, यदि हम सब मिलकर एक निश्चित कार्यक्रम बना लें। वैसे भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी परिस्थितियोंके कारण कार्यक्रममें कुछ अन्तर तो रखना ही पड़ेगा; पर साधारणतः एक व्यापक प्रोग्राममें हम सभी प्रान्तोंको सम्मिलितकर पारस्परिक सहयोग स्थापित कर सकते हैं।

प्रान्तीय सम्मेलनोंके उत्सव तथा उनके कार्यक्रमका एक मसौदा यहाँ विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता है:—

(१) प्रान्तीय अधिवेशन होनेके महीने डेढ़ महीने पहले ज़िला अथवा मंडल अधिवेशन हो जायँ। पुस्तकालयोंके जल्से भी इसी बीचमें किए जा सकते हैं। प्रान्तीय सम्मेलनमें लाए जानेवाले प्रश्नोंपर भी इसी समय वाद-विवाद किया जा सकता है।

(२) प्रान्तीय अधिवेशनपर जो व्यक्ति निमन्त्रित किए जायँ, उनको आसपासके स्थानोंमें अवश्य घुमाया जाय। हमारी साहित्यिक संस्थाएँ प्रायः साधनहीन हैं और वे प्रतिष्ठित साहित्य-सेवियोंको बार-बार बुलानेमें असमर्थ हैं।

(३) सम्मेलनके दो रूप होने चाहिएँ : एक तो शुद्ध साहित्यिक तथा दूसरा प्रचारात्मक। प्रातःकालके तीन घंटे नित्यप्रति गम्भीर साहित्यिक प्रश्नोंपर बातचीत करनेके लिए रिज़र्व कर देने चाहिएँ। ठसाठस प्रोग्राम बना देनेसे कोई भी कार्य विधिवत् नहीं हो पाता।

(४) रिपोर्टिङ्गका काम कम-से-कम तीन-चार व्यक्तियोंके सुपुर्द होना चाहिए। उपस्थित जन-समुदाय तो अधिक-से-अधिक दो-ढाई हज़ार ही होता है; पर पत्रोंके पढ़नेवालोंकी संख्या लाखोंपर पहुँच सकती है। हमें प्रान्त भरकी हिन्दी-प्रेमी जनताका भी ख़याल करना है।

(५) प्रचारात्मक कार्यक्रममें ग्रामीण गीतोंको उचित स्थान देना चाहिए। उदाहरणार्थ, ख्याल अथवा खैर कहनेवालोंको निमन्त्रण देना आवश्यक है। खैर बुन्देलखण्डकी ख़ास चीज़ है। आल्हा भी गवाया जा सकता है।

(६) कवि-सम्मेलनोंके भी दो रूप होने चाहिएँ : एक तो चुने हुए साहित्य-मर्मज्ञोंके सम्मुख कविता-पाठ और दूसरा दंगली। दूसरे रूपको कठोर नियन्त्रणके अधीन कराना चाहिए। उसके लिए टिकट भी लगाया जा सकता है।

(७) अधिवेशनमें दो बातोंका होना निहायत ज़रूरी है। एक तो पिछले वर्षके कार्यका लेखा-जोखा और दूसरे अगले वर्षके लिए भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंको उनकी योग्यता तथा रुचिके अनुसार कार्य सुपुर्द करना।

(८) वोटों द्वारा सभापतिके चुनावकी जो प्रथा हमारे यहाँ चल पड़ी है, उसे रोकनेकी ज़रूरत है। इसमें समय और शक्तिका अपव्यय ही होता है। ख़ास-ख़ास दस-पन्द्रह व्यक्ति आपसमें मिलकर सर्वसम्मतिसे यह निश्चय कर सकते हैं कि अगले वर्ष कौन व्यक्ति इस भारको सम्हाल सकेगा। चुनावके दंगल हर्गिज न लड़े जाने चाहिएँ।

(९) अगले वर्षके लिए कार्यक्रम बनाते समय हमें अपनी शक्ति तथा साधनोंका ख़याल कर लेना चाहिए। प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलनके कार्यक्रमको तैयार करनेके पूर्व उसका एक ढाँचा बना लेना चाहिए। इस विषयपर आचार्य क्षितिमोहन सेन तथा विद्वद्वर वासुदेवशरणजी अग्रवालने जो विचार उपस्थित किए थे, वे हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। श्रद्धेय क्षिति बाबूने 'मधुकर' में अपनी बुन्देलखण्ड-यात्राका वर्णन करते हुए लिखा था—

'इस प्रदेशमें बैठकर ही आदमी बहुत-कुछ कर सकता है। यहाँ भूमिपर खड़े होकर सिरपर जो मेघ और वायु

उड़े जा रहे हैं, उनका अध्ययन किया जा सकता है और इस प्रकार मैट्रियोलौजीका काम चल सकता है। यहाँका भू-तत्व ( Geology ) और मिट्टीके नीचेके गुप्त ऐश्वर्य ( खनिज-तत्व ), यहाँकी मिट्टीके उपादान और उसका कृषिसे सम्बन्ध ( Soil-analysis ) का गम्भीर भावसे अध्ययन किया जा सकता है। इस देशके चारों ओरका भूगोल, भू-परिचय ( Topography ) और साथ-ही-साथ नद-नदी और अन्याय जल-संस्थानोंकी अवस्था अध्ययन की जा सकती है। यहाँकी वनस्पतियोंकी अवस्था, नानाविध शस्यों और मूल-फल-फूलों, औषधोपयोगी पेड़-पौधों तथा शिल्पोपयोगी उद्भिज वस्तुओंकी जाँच-पड़ताल की जा सकती है। यद्यपि जर्मनीके एनिलिनने इस देशके रंगोंको पछाड़ दिया है, तथापि हमारे देशकी वनस्पतियोंसे बहुत तरहके रंग तैयार करनेका अब भी मौक़ा है—विशेष करके इस युद्धके समय। फिर यहाँकी काष्ठ-सम्पत्तिका अध्ययन आरम्भ किया जा सकता है।

यहाँके जीव-जन्तु-पक्षी, जिनमें ग्राम्य और आरण्य दोनों ही हैं, काफ़ी आकर्षक हैं। इनका अध्ययन किया जा सकता है तथा ऐसे नियम और उपाय खोजे जा सकते हैं, जिनसे यहाँकी पशु-सम्पत्ति—जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदिकी वृद्धि हो और फिर मुर्ग़ी आदिकी वृद्धि और विकासके लिए पोलट्रियाँ भी चलाई जा सकती हैं।

यहाँ कीट-पतंगोंके अध्ययनका अद्भुत स्थान है। कितने ही कीड़े—जैसे रेशम पैदा करनेवाले—उपयोगी हैं और कितने ही क्षतिकर। इस प्रदेशमें यह बात बड़ी ख़ूबीसे अध्ययन की जा सकती है कि किस प्रकारके कीड़ोंसे क्या फ़ायदा या क्या नुक़सान है और किन कीड़ोंकी वृद्धि या ह्रासके क्या उपाय हैं?

और इन सब जीवोंमें श्रेष्ठ जीव मनुष्यकी बात आती है। इसे भी पहले पशु समझकर ही इसका अध्ययन शुरू किया जाना चाहिए। उसकी व्याधियोंका प्रतिशोध और प्रतिकार, स्त्रियोंकी प्रसव-चर्या और शिशु-पालन एवं शिशु-मंगलके लिए जो सब उपाय ग्रहणीय हो सकते हैं, उनका अध्ययन आवश्यक है। फिर यहाँके आदमियोंकी आर्थिक दशा उन्नत बनानेके लिए गाँवोंकी आर्थिक जाँच (इकनामिक सर्वे) की जानी चाहिए। उनकी सामाजिक स्थिति, ग्राम-पंचायत आदिकी अवस्थामें सुधार आदि, यहाँका राजनीतिक इतिहास, इस देशकी जातियों और कबीलोंका नृतत्त्व-विज्ञानकी दृष्टिसे अध्ययन, मतों और सम्प्रदायोंका अध्ययन, सांस्कृतिक इतिहास, प्राचीन साहित्य और वर्तमान कालीन ग्राम-कथा-कहानियाँ और गान आदि, यहाँके स्थानीय विशेष प्रकारके गानोंके सुर या कीर्तन आदि, लोरियाँ, गीत इत्यादि बहुत कुछ देखने योग्य और जानने योग्य बातें हैं। यहाँके जो शिल्प और कला नष्ट हो रहे हैं, उनकी रक्षा और पुनः प्रतिष्ठाके उपाय खोजने चाहिएँ। यहाँकी वास्तुकला, मूर्ति-निर्माण-कला आदिके अध्ययन और उनके विकासका उपाय उद्भावन, एतत्स्थानी विद्याएँ, संस्कृतके ग्रन्थ, उनकी पढ़ाई, शिक्षा-प्रचार इत्यादिके द्वारा अर्थात् सर्वतोभावेन देशको आलोकित करनेके उपाय सोचे जा सकते हैं।'

श्रद्धेय क्षिति बाबूके परामर्शोंके अनुसार यदि प्रत्येक जनपदमें कार्य किया जाय, तो हमारे देशकी सर्वांगीण साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उन्नति होनेमें देर न लगे।

श्री वासुदेवशरणजीने अपने एक पत्रमें मुझे लिखा था—'मेरा विश्वास है कि भारतीय संस्कृतिकी जो थाती अब तक बची है, उसका निवास हमारे जनपदोंमें है। हमारे पुरातन आचार, धार्मिक विचार, संस्था, भाषा और बहुमुखी जीवनका अटूट प्रवाह भारतीय ग्रामोंमें तथा उनके समुदाय जनपदोंमें अभी तक विद्यमान है। टर्नरका नेपाली कोष, ग्रियर्सनका काश्मीरी कोष, इनके जैसे कितने ही ग्रन्थ-रत्नोंकी सामग्री भारतीय जनपदोंमें सुरक्षित है। टर्नर और ग्रियर्सनकी पद्धतिपर कार्यको हाथमें लेनेवाले नवयुवक बुन्देलखण्डके लिए भी उत्पन्न होने चाहिएँ। प्रत्येक जनपदी बोलीको ऐसे ही व्यक्तियोंकी चाह है। ग्रियर्सनने बिहारमें रहते हुए वहाँके किसानोंके जीवनपर एक अमूल्य ग्रन्थ 'Bihar Peasant Life' के नामसे लिखा था। आपने देखा होगा। न देखा हो, तो अवश्य देखिएगा। वह आपके कार्यकर्ताओंके लिए एक आदर्श रूप-रेखा उपस्थित करता है। प्रादेशिक सभ्यताओं और बोलियोंके लिए कार्य करनेकी बात अब बहुधा सुननेमें आने लगी है। लोगोंमें उत्साह भी है; पर उसकी वैज्ञानिक पद्धति कुछ विचारशील लोगोंको निर्धारित कर देनी चाहिए, जिससे सामान्य कार्यकर्ता तदनुसार काममें लग सकें। जनपद-सम्बन्धी खोजके लिए बुन्देलखण्डके चुने हुए विद्वानोंकी समितियाँ संगठित की जायँ, तो कार्यमें प्रगति हो सकती है।'

श्रीयुत अग्रवालजीने पुरातत्त्वकी सामग्रीकी रक्षाके लिए संग्रहालय स्थापित करनेपर भी ज़ोर दिया था और निम्न-लिखित आठ समितियोंकी सिफारिश की थी—भाषा-समिति, भूगोल या देश-दर्शन-समिति, पशु-पक्षी-समिति, वृक्ष-वनस्पति-समिति, ग्राम-गीत-समिति, जन-विज्ञान-समिति ( Anthropological Committee ), संस्कृति और साहित्य-समिति, खनिज-पदार्थ और कृषि-उद्योग-समिति।

आजसे दो वर्ष पहले १० मार्च सन् १९४० को हमने भी एक कार्यक्रम ब्रज तथा बुन्देलखण्डके कुछ साहित्यिक बन्धुओंके सम्मुख उपस्थित किया था। उसका सारा भाग निम्न-लिखित है :—

### क्षेत्रोंकी जाँच

पहला काम जो हमें करना है, वह है अपने क्षेत्रकी जाँच या सर्वे कराना। यह ज़रूरत नहीं है कि हम एक साथ दस-बीस ज़िले ले बैठें। बेहतर तो यह होगा कि हम प्रारम्भमें दो-तीन ज़िलोंमें ही पारस्परिक साहित्यिक सहयोग स्थापित कर लें। पेश्तर इसके कि कोई काम शुरू किया जाय, यह निहायत ज़रूरी है कि दो-तीन आदमियोंका एक डेपूटेशन भिन्न-भिन्न स्थानोंकी जाँच करके वहाँकी परिस्थितिको पहचान ले। हमें अपने प्रान्तके छोटे-छोटे केन्द्रोंको स्वावलम्बी बनाना चाहिए।

### कार्यक्रम

क्षेत्रकी जाँचके बाद कार्यक्रमका सवाल आता है। कार्यक्रममें हम—( १ ) पुराने पुस्तकालयोंको परामर्श-दान, (२) नवीन पुस्तकालयोंकी स्थापना, (३) व्याख्यान-मालाका प्रबन्ध, (४) साहित्यिक क्लबोंकी योजना, (५) साहित्यिक यात्राएँ और (६) ग्राम-साहित्य-संग्रह आदिको ले सकते हैं।

### प्रेमका नियन्त्रण

भिन्न-भिन्न संस्थाओंका सहयोग पारस्परिक सद्भावपर ही निर्भर रहेगा। हाँ, इतना प्रबन्ध तो करना ही होगा कि पोस्टेज तथा काग़ज़ इत्यादिका व्यय केन्द्रीय संस्थाको मिल जाय।

हमें एक मुख्य उद्देश्य सदैव सम्मुख रखना चाहिए। केन्द्रीय संस्थाका नियन्त्रण कम-से-कम हो—वह भी केवल परामर्शके रूपमें और स्थानीय संस्थाओंको अधिकसे अधिक स्वतन्त्रता हो।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ये सब विचार अभी बिखरे हुए हैं। इन्हें क्रमबद्ध करना और इनमें यथोचित संशोधन करके अपने-अपने प्रान्तके लिए उपयोगी कार्य-क्रम तैयार करना—यह काम विद्वानों तथा साहित्यिक कार्यकर्त्ताओंका है।

दो ख़तरोंसे हमें बचना चाहिए, एक तो यह कि कहीं भिन्न-भिन्न जनपदोंकी बोलियोंमें पाठ्य-पुस्तक निर्माण करनेका आन्दोलन न उठ खड़ा हो। उदाहरणके लिए ब्रजभाषा या बुन्देलखण्डीमें स्कूली किताबोंके लिखे जानेका हमें विरोध ही करना चाहिए। दूसरा ख़तरा है भिन्न-भिन्न प्रान्तों या जनपदोंमें पाई जानेवाली पुरातत्त्व-सामग्री या प्राचीन साहित्यका किसी एक या दो ही स्थानोंपर एकत्र कर देना। स्वयं भारत-सरकारके पुरातत्त्व-विभागके अधिकारी भी इस ख़तरेको अनुभव करने लगे हैं। हमारा कर्तव्य है कि काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभा तथा प्रयागके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी तरह संग्रहालय प्रत्येक प्रान्तमें स्थापित करें।

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलनका सम्बन्ध क्या हो, यह प्रश्न भी विचारणीय है। कम-से-कम एक कार्य तो हमें अवश्य करना चाहिए, वह यह कि सम्मेलनकी परीक्षाओंके जितने भी केन्द्र हम अपने यहाँ क़ायम कर सकें, करें। इससे हमारी मुख्य केन्द्रीय संस्थाकी कुछ सेवा भी हो जायगी।

यदि हमारे प्रान्तीय सम्मेलन अगले वर्षके लिए निम्न-लिखित चार कार्य चुन लें, तो उनकी नींव सुदृढ़ आधारपर रखी जा सकती है :—

( १ ) ग्रामीण गीत, शब्द, कहानी और मुहाविरोंको इकट्ठा करना।

( २ ) पुस्तकालयों तथा वाचनालयोंकी स्थापना।

( ३ ) भिन्न-भिन्न साहित्यिक केन्द्रोंमें सांस्कृतिक व्याख्यानोंका प्रबन्ध करना।

( ४ ) एक-एक रुपया प्रतिवर्ष देनेवाले सदस्य अधिक-से-अधिक संख्यामें बनाना।

आशा है, अन्य साहित्य-प्रेमी सज्जन भी इस विषय पर अपने विचार प्रकट करेंगे।

टीकमगढ़ ]

# हिन्दुओंका स्वर्ग और मुक्तिकी कल्पना

श्री चन्द्रभाल ओझा

दसवें दर्जेमें जो अंगरेज़ीकी किताब पढ़ाई जाती है, उसमें एक पाठ है 'डेमस्कस' (Damascus)। पाठमें एक स्थलपर यह वर्णन है कि दमिश्क जाते समय एक पर्यटक शहरके क़रीब उस स्थलपर पहुँचा, जहाँ पहुँचकर मोहम्मद साहबने आगे बढ़नेसे यह कहकर इन्कार कर दिया था कि 'मनुष्यके लिए एक ही दफ़ा बहिश्त जाना लिखा है। मैं अपना बहिश्त मरनेके बाद लूँगा।' मतलब यह कि शुष्क रेतीले मैदानोंमें दूरसे चलकर आनेपर थके-माँदे उन लोगोंको वह हरा-भरा, सब्ज़ बागोंवाला, मीठे पानीके फ़व्वारोंसे युक्त दमिश्क स्वर्ग-सा सुहावना मालूम हुआ। इसी सिलसिलेमें बातचीत करते हुए मैंने लड़कोंसे कहा कि स्वर्ग वास्तवमें कहीं हो या न हो; पर उसकी कल्पना सुखद है और स्वर्गकी कल्पनामें जातियोंके अतीतका इतिहास और दार्शनिक विचारधाराका संकेत मिलता है। एक धर्मभीरु छात्रने कहा—'स्वर्ग कहीं न कहीं होगा ज़रूर; नहीं तो वेद-शास्त्रोंमें उसका नाम न आता।'

पाठसे हम लोग दूर चले गए थे। दूसरे इस मामलेपर कुछ विस्तारपूर्वक कहनेसे लड़कोंके धार्मिक भावोंमें ठेस पहुँचती और मेरे धार्मिक विचारोंके बारेमें उन्हें शायद अनावश्यक भ्रम भी होता, इसीलिए मैंने यही कहकर चर्चा ख़त्म कर दी कि स्वर्ग कहीं भी हो, हमें उसे धरातलपर लानेकी कोशिश करनी चाहिए। स्वर्ग आख़िर है क्या? एक बहुत सुन्दर जगह, जहाँ सब तरहके आरामके साधन हों, मदिरा (शराब) हो, लोग निठल्ले बैठे गाना-बजाना सुनते हों। यदि मनुष्यका जीवन ऐसा ही सुखी कर दिया जाय; एक हरा-भरा सुन्दर बग़ीचा सबके घरमें हो; सब एक-दूसरेका भला चाहनेवाले हों; सब ईमानदारीकी रोटी खानेवाले हों; नीरोग, स्वस्थ और सुखी हों, तो उस ऊपरके स्वर्गमें शायद ही कोई जाना पसन्द करेगा—क्योंकि इस धरातलके स्वर्गमें मनुष्य कर्मठ और सदाचारी जीवन, जो जीवन कहा जा सकता है, व्यतीत कर सकता है और ऊपरके स्वर्गमें कुछ काम ही नहीं है।

बात आई और चली गई; पर इसने मेरे मस्तिष्कमें एक उधेड़-बुन पैदा कर दी। जितना ही मैं सोचता, स्वर्ग मुझे एक कल्पनाकी चीज़ मालूम होने लगी। मेरा यह भी ख़याल हुआ कि लेखकों, कवियों और दार्शनिकोंको अपने जीवनमें जिन-जिन वस्तुओंका अभाव हुआ—यानी जिन्हें वे बहुत प्रिय समझते हैं, परन्तु पैसेके अभाव या समाजके डरसे उन्हें प्राप्त नहीं कर सके—उनकी कल्पना करके उन्होंने एक स्वर्ग बना डाला। मैं निम्नलिखित श्लोकके रचयिता ऋषिको उसके पूर्वार्द्धमें सन्निहित विचारके कारण श्रद्धासे प्रणाम करता हूँ; पर उत्तरार्द्धके अन्तिम चरणपर कुछ विस्मय होता है:—

ब्राह्मणस्य शरीरोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
कृच्छाय तपसे चैव प्रेत्यान्त सुखाय च।

यदि इसका मतलब यह है कि लोगोंको कष्टमय जीवन प्रसन्नतापूर्वक बितानेके लिए तैयार रहना चाहिए और आलसी तथा सुखी जीवन दूसरे जीवनमें इसलिए इष्ट है कि वह जीवन मनुष्यको निष्क्रिय बना देता है, और मनुष्यमें जो उत्तम गुण हैं—कष्ट-सहन, कठिनाइयोंका वीरता-वीरतापूर्वक मुक़ाबिला करना—उनका विकास नहीं होने देता, तब तो यह स्तुत्य है। परन्तु यदि इसका सीधा-सादा अर्थ यही है कि इस जन्ममें कष्ट सहो और तपस्या-युक्त जीवन व्यतीत करो, ताकि दूसरे जन्ममें सुख मिले, तो मैं इस अदला-बदलीके उत्तरमें वही कहूँगा, जो रूसी क्रान्तिके बाद एक साम्यवादी रूसी किसानने एक पादरीसे कहा था। पादरीके यह कहनेपर कि इस जन्ममें जितना ही कष्ट सहोगे, उतना ही दूसरे जन्ममें सुख भोगोगे, किसानने कहा था—'पादरी साहब, हमको इस जन्ममें रोटी खाने दो और थोड़ा-बहुत जो सुख मिले, भोग लेने दो। दूसरे जन्मका जितना सुख है, सब तुम भोग लेना!' इस तरह सब किसानोंने एकमत होकर गिरजाघर बन्द कर दिया। स्वेच्छापूर्वक कष्टमय जीवन व्यतीत करनेसे एक प्रकारकी शालीनता आती है, जो गुलगुले ग़लीचोंपर सोने और ऐश-आरामका जीवन व्यतीत करनेवाले नहीं समझ सकते। परन्तु इस जीवनके अन्तमें, दूसरे जीवनमें, स्वर्ग-सुखकी कल्पना कोरा बौड़मपन है। इससे कहने-वालेकी केवल लाचारी और असन्तुष्ट इच्छाओंका ही संकेत मिलता है।*

* हिन्दू-धर्मशास्त्रोंके देखनेसे पता चलता है कि स्वर्ग एक 'लोक'-विशेषका नाम है। भले ही यह लोक-विशेष इस

अब मुक्तिकी बात लीजिए। मुक्ति क्या है? आवागमनसे मोक्ष यानी बार-बार जन्म न लेना पड़े। इस मुक्तिकी पुकारकी बुनियाद भी कष्टमय जीवन और पराधीनता है। जब आर्योंमें बल था और शक्ति थी, तो वैदिक साहित्यमें हमें 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत' और 'अपाम सोमं अमृतावभूम' इत्यादि वाक्य पढ़नेको मिलते हैं। तबका आर्य मृत्युको परास्त करनेकी फ़िक्रमें रहता था। कम-से-कम उसे मरनेकी इच्छा नहीं थी। मुक्तिकी इच्छा तो कायरता है। संसारमें रहकर उसके संघर्षका दृढ़तापूर्वक सामना करना, दुखियोंकी सेवा, करना परोपकारसे दूसरोंको प्रसन्न करना, मनुष्य-समाज क्या संसारके प्राणीमात्रको सुखी और प्रसन्न करनेका यत्न करना, यह स्तुत्य है या निष्क्रिय मोक्ष वाञ्छनीय है? तुलसीदास भक्तिकी पराकाष्ठामें कहते हैं—'गति न चहौं निर्वाण'। वे तो जन्म-जन्ममें रामके चरणोंमें भक्ति चाहते हैं। वर्त्तमान समयका समझदार आदमी ईश्वर-प्रेमके साथ-साथ जीव-दया करते हुए संसारमें स्वस्थ तथा सुखी जीवन व्यतीत करनेकी इच्छा करता है। और हम तो उस क्रान्तिकारी कविके शब्दोंमें कहेंगे :—

Dear friend, do not with weary soul aspire
Away from the gray earth, your sad abode,
No! throb with the earth, let earth your body tire.
So help your brothers bear the common bond.

कि संसारसे भागकर वनों और कन्दराओंमें छिपना कायरता है। मुक्तिकी कल्पना भी ऐसी ही कमज़ोरी है। आइए, संसारको ही स्वर्ग बनाएँ।

हाँ, यदि 'मुक्ति' से मतलब है वासनाओं और विकारोंके संघर्षसे मुक्त इसी जीवनमें ऐसी सिद्धावस्था, जिसमें प्रलोभनोंका कोई असर न हो, तो वह सर्वथा स्तुत्य, साधनीय और ग्राह्य है।

भूलोकके अन्दर या बाहर या समान हो। यह सांख्य सिद्धान्त है कि 'अनन्ता वैलोकाः'। महाकवि कालिदासने भी मेघदूतमें अलकापुरीका वर्णन करते समय 'शेषैः पुण्यैः' इत्यादि लिखते हुए स्वर्गको लोक-विशेष माना है। गायत्री मन्त्रकी सप्त महाव्याहृतियोंकी व्याख्या करते हुए 'स्वः' एक लोक-विशेषकी संज्ञा मानी गई है। यही आपस्तम्वादि धर्म सूत्रकारोंका मत है। —सं०

# नेत्र-रक्षाके कुछ उपाय

श्री रणजित्राय आयुर्वेदालंकार

शार्ङ्गधर कहता है :—

भक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्दीयते यदि।
जाता रोगा विनश्यन्ति तिमिराणि तथैव च॥

अर्थात्—उभय काल भोजन करनेके पश्चात् मुख धोकर दोनों हथेलियाँ परस्पर रगड़कर यदि आँखोंपर मली जायँ, तो उत्पन्न हुए रोग नष्ट हो जाते हैं (नवीन रोगोंकी उत्पत्तिकी तो कथा ही क्या?) इस उपायसे तिमिर—आँखोंके आगे अँधेरा छाना तथा विविध रूप दिखाई देना—जैसे रोग भी शान्त हो जाते हैं। शार्ङ्गधर ही कहता है :—

शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः कालत्रयेण नयनद्वितयं जलेन।
आसिंचति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षिरोगव्यथाविधुरतां भजते मनुष्यः

अर्थात्—जो पुरुष प्रतिदिन तीन बार—प्रातः, मध्याह्न तथा सायाह्न (सायंकाल)—शीत जलसे मुख भरकर शीत जलसे ही दोनों आँखोंपर छींटे मारता है, उसे कभी आँखके रोग—दुखना, ठीक दिखाई न देना प्रभृति—कष्ट नहीं देते।

एक बार बर्नार्ड शासे किसीने पूछा—'इस वार्द्धक्यमें भी आपका मुख ऐसा तेजस्वी कैसे है?' उन्होंने उत्तर दिया—'मैं नित्य मुखपर ठण्डे पानीके छींटे देता हूँ, इसीलिए।'

वैद्यकका एक ग्रन्थ है 'सिद्धभेषज्यमणिमाला'। यह वर्त्तमान सदीमें ही लिखा गया है। इसके योग (नुस्खे) ऐसे हैं कि आँख मींचकर दिए जायँ, तो भी लाभप्रद होते हैं। इसमें कहा है :—

सदैव दन्तपवनभक्षणं वामदंष्ट्रया।
हन्ति हंहो दृशों दुःखं संशयश्चेत् परीक्ष्यताम्॥

अर्थात्—दातुन सदा बाँई ओरके दाँतोंसे चबानी चाहिए। इससे आँखके रोग दूर होते हैं—प्राप्त नहीं होते। यदि संशय हो, तो परीक्षा कर देखें।

नेत्र-रक्षाके प्रथम दो उपाय अद्यापि (अब भी) वृद्ध जनोंमें प्रचलित हैं। तृतीय उपायके विषयमें स्वयं लेखक कहते हैं कि संशय हो, तो परीक्षा कर देखें। अवश्य ही नेत्र-रक्षाके अन्य उपाय भी हैं; यथा लेटकर न पढ़ना, उदर शुद्ध रखना, आँखोंके तत्-तत् व्यायाम इत्यादि। परन्तु उनका विस्तार अन्यत्र देखना चाहिए।

धारावाहिक उपन्यास

# जय सोमनाथ

श्री कन्हैयालाल मुन्शी

## (२) नृत्यांजलि

मंदिरके बाहर छज्जोंपर हजारों दिए जल रहे थे। परकोटेपर चारों ओर दीपमाला जगमगा रही थी। भगवान सोमनाथकी आरतीका समय हुआ, तब तक सभामंडपमें लोगोंकी अपार भीड़ जमा हो गई।

सभामंडपके खंभोंपर लगे सुनहले दीवटोंमें बत्तियाँ जल रही थीं। छत और थमलोंपर बने त्रिपुरारिके पराक्रमके चित्र ऐसे मालूम हो रहे थे, मानो सजीव हों। छतमें चार-चार थमलोंके बीचमें सोनेकी साँकलोंसे लटकते हुए घण्टोंका नाद बढ़ता जा रहा था, और ज्यों-ज्यों लोगोंकी भीड़ बढ़ती जा रही थी, त्यों-त्यों 'जय सोमनाथ' का उद्घोष भी बढ़ने लगा था।

गर्भगृहकी छतसे लटकनेवाले रत्नजटित दीवटमें बत्तियाँ जल रही थीं और बीचमें बिल्वपत्रोंके ढेरमें छुपा हुआ छाती-जितना ऊँचा सोमनाथका लिंग कैलाशका भास करा रहा था। उसपर ऊपर लटकनेवाली सोनेकी जलधरीमें से टप्-टप् पानी गिर रहा था। सामने ही चारों वेद-विद्यामें निष्णात श्रोत्रिय पुरुष-सूक्तिका पाठ करके महाशिवकी पूजा कर रहे थे।

अचानक नक्कारखानेमें नगारे और सहनाई बजने लगे और उपस्थित लोगोंमें धक्कमपेल शुरू हुई। इसी समय कोई १५ बाबाजी आए और लोगोंको पीछे हटाकर रास्ता बनाने लगे। लोग चटपट इधर-उधर हो गए और देखते ही देखते गर्भद्वारके सामने जगह हो गई। एक बाबाजीने शंख फूँका, जिसका घोष चारों ओर फैल गया। सब लोग चुप हो गए और एक नज़रसे सभामंडपकी सीढ़ियोंकी ओर देखने लगे।

पहले एक वृद्ध आए—लंबे, गौरवर्ण, लगभग ६० वर्षके। इन्होंने सारे शरीरमें भभूत रमा रखी थी और कमरेमें व्याघ्र-चर्म लपेट रखा था। अपनी अर्द्ध-श्वेत दाढ़ीको समेटकर इन्होंने ठोड़ीके नीचे गाँठ बाँध ली थी। बाएँ कन्धेसे दूजके चाँद-सा शुभ्र जनेऊ लटक रहा था। इन्हें देखकर कइयोंने इनके चरण छुए, कइयोंने हाथ जोड़, शीश झुकाकर प्रणाम किया और कइयोंने साष्टांग दण्डवत किया। चारों ओर 'जय स्वरूप' और 'जय सर्वज्ञ'की ध्वनि गूँज उठी।

इन वृद्धके ललाटपर त्रिकाल-ज्ञानका प्रकाश झलक रहा था। इनकी आँखें निर्मल, गंभीर और सद्भावपूर्ण थीं। इनकी दृष्टि इस प्रकार इधर-उधर घूम रही थी, मानो इस जाग्रत जगत्से दूर कोई तेज-बिन्दु ढूँढ़ रही हो। गत २७ वर्षोंसे शंभुकी सेवा और पाशुपत मतकी विजयके लिए पग-पगपर अपने जीवनको सुसंस्कृत करनेके बाद कहीं ये मठाधिपति हुए थे। उस समय तक पाशुपत मतकी कीर्त्ति अस्त होने लग गई थी। किन्तु आज देश-देशके पंडित और राजा-महाराजा इनके मुँहसे निकलनेवाले प्रत्येक शब्दको सिर-आँखोंपर लेनेको तैयार रहते हैं। इन्हींकी एकनिष्ठ सेवाकी बदौलत आज समूचे भरतखंडमें सोम-नाथकी दुहाई फिर रही है।

सर्वज्ञके पीछे-पीछे तीन आदमी और आए। एक था उनका पट्टशिष्य शिवराशि। यद्यपि उसकी वेश-भूषा भी उसके गुरु-जैसी ही थी, उसके चेहरेपर विद्याकी अपेक्षा व्यावहारिकताकी छाप ही अधिक स्पष्ट थी। उसके साथ एक दूसरा क़द्दावर और बलिष्ट व्यक्ति था। मशालोंका प्रकाश उसके श्यामवर्ण चेहरेको ताँबेकी तरह चमका रहा था और उसकी मोटी-मोटी काली आँखोंमें प्रतिबिम्बित हो रहा था। इसके चेहरेपर, इसकी आँखोंमें तथा इसके समूचे व्यक्तित्वसे कुछ ऐसी सरलता, निडरता और विश्वस-नीयता प्रकट हो रही थी, मानो इसने संसारसे प्रेमका दान पानेको ही जन्म लिया है। यद्यपि यह कुछ थका हुआ-सा दीख रहा था, तथापि चालसे यह कोई राजवी मालूम होता था। इसके सिरपर बँधा मोटा साफ़ा, कमरमें लटकी लम्बी तलवार और कन्धेपर लगा हुआ धनुष इस धारणाको और भी पुष्ट करते थे। इसे देखकर ऐसे सिंहका स्मरण हो आता था, जो थका होनेपर भी छलाँग मारनेको तत्पर हो। इसके साथ जो तीसरा व्यक्ति चल रहा था, उसे विधाताने इससे बिल्कुल भिन्न बनाया था। उसका शरीर छोटा, किन्तु छटापूर्ण था। गौरवर्ण और सुंदर मुँह, चंचल और तेजपूर्ण आँखें तथा छोटी और सुघड़ अँगुलियोंको

देखकर वह किसी भाग्यशाली श्रीमंतका लाड़ला मालूम होता था। उसे देखते ही पहले-पहल ऐसा मालूम होता, जैसे वह अभी बालक ही हो। पर उसके बन्द होंठोंकी अडिग रेखाओंने उसके चेहरेको ऐसा प्रतापशाली बना दिया था कि उसे ऐसा समझनेवाला शीघ्र ही अपनी ग़लती समझकर जैसे थर-थर काँपने लगता था। उसकी कमरमें केवल एक तलवार बँधी थी और ऐसा मालूम होता था, मानो वह अनावश्यक शस्त्रोंका भार ढोनेका शौकीन नहीं है।

सर्वज्ञ 'नमः शिवाय' के सत्कारका 'शिवाय नमः' उत्तर देते और हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुए गर्भद्वारके निकट आए। पास ही में तैयार खड़े एक आदमीके हाथसे उन्होंने बिल्वपत्र लिए और गर्भगृहमें दंडवतकर बड़े देवकी पूजा की। फिर राजा-महाराजा जिनकी पूजा करना गर्वकी बात समझते थे, उन्हीं सर्वज्ञने विनम्र भावसे हाथ जोड़, शीश झुकाकर देवका ध्यान किया। फिर एक सेवकने आरती सजाकर उनके सामने की, जिसे लेकर सर्वज्ञ देवकी आरती करने लगे। आज १४ वर्षोंसे प्रतिदिन सायंकाल, बिना एक भी दिनकी नागा किए, सर्वज्ञ ख़ुद अपने हाथसे इसी तरह देवकी आरती उतारते थे। इस अवसरपर सारे भक्त और यात्री चुपचाप 'नमः शिवाय' का उच्चारण करते रहते थे। इस प्रकार हज़ारों घण्टोंके उच्च घोष और देव-दुन्दुभिके समान बजते हुए नगारोंके गंभीर नादके साथ सर्वज्ञ अपने हृदयकी भक्तिको प्रार्थनाके रूपमें व्यक्त करते।

आरती पूरी करके गंग सर्वज्ञने उच्च स्वरसे 'जय सोमनाथ' कहा, जिसे आसपास खड़े हुए सभी लोगोंने उच्च स्वरसे दोहराया। यह जयघोष सभामंडपमें फैला, फिर परकोटेमें एकत्रित यात्रियोंमें गूँजा और तब प्रलय-सागरके गर्जनकी भाँति बाहर चारों ओर फैल गया। एक क्षणके लिए समूचा प्रभास (पाटण) सोमनाथमय हो गया।

सब यात्रियों द्वारा आरती ली गई। इस प्रकार शिव-पूजाकी पूर्णाहुतिकर गंग सर्वज्ञ बाहर आए और एक स्वर्ण-पत्र-मंडित चौकीपर बैठ गए। उनके पास ही शिवराशि और अन्य अतिथि भी बैठ गए। राजवी दिखनेवाले अतिथिकी ओर देखकर सर्वज्ञने कहा—'भीमदेव, बेटा, आख़िर धारा-धीशको गाँव देने ही पड़े न!'

भीमदेव बड़े चावसे कुछ नज़दीक खिसक आए और बोले—'पर महाराज, मंदिरका जीर्णोद्धार तो मुझे ही कराना होगा।'

'जैसी तेरी भक्ति और देवकी इच्छा।'—सर्वज्ञने किंचित मुस्कराहटके साथ कहा। इसी समय कुछ लोग उनके पाँव छूने आ गए। उनके चले जानेपर सर्वज्ञने पूछा—'अच्छा, तो फिर अब कब आना होगा?'

'अगले वर्ष, क्यों विमल?'—भीमदेवने अपने मंत्रीकी ओर देखकर कहा।

'हाँ, हाँ, ज़रूर,'—उनके साथीने हँसकर कहा—'तब तक आदीश्वर चाहेंगे, तो महाराजके हाथमें मालवा भी आ जायगा।'

सर्वज्ञ ज़रा गंभीर होकर देखने लगे। आदीश्वरका नाम और मालवाके साथ विग्रह ये दोनों बातें उन्हें कुछ रुचीं नहीं। वे बोले—'अब नृत्यका समय हो गया।'

इसी समय दरवाज़ेके सामने अचानक लोगोंका शोर बढ़ गया, जिससे वे अपनी बात पूरी करनेसे पहले ही चुप हो गए। पूछताछ करनेपर मालूम हुआ कि अन्दर आनेकी धक्कमपेलमें कोई आदमी कुचल गया है। इसीसे हो-हल्ला हुआ और मशालचियोंमें भगदड़ मच गई।

थोड़ी देर बाद फिर शान्ति हुई। परकोटेके दक्षिणी दरवाज़ेसे सभामंडप तक रस्सोंको बाँधकर बीचमें रास्ता बनाया गया और सभी लोगोंका ध्यान उसी ओर केन्द्रित हो गया। पहले दो मशालची आए और उनके पीछे भड़कीले कपड़े पहने गंगा। उसके पीछे थी सफ़ेद वस्त्रोंमें सिकुड़ी-सिमटी एक युवती। इसके पीछे छः नर्त्तकियाँ थीं और उनके पीछे मृदंग और अन्य वाद्य-यन्त्र बजानेवाले साज़िन्दे। इन सबने सभामंडपके बीचमें पहुँचकर महादेवको साष्टांग दंडवत किया और चुपचाप खड़े हो गए। सर्वज्ञकी आँखें भाव-भीनी हो सफ़ेद वस्त्रोंमें लिपटी युवतीपर जा टिकीं।

'आज क्या कोई नई नर्त्तकी नृत्य करनेवाली है?' भीमदेवने धीरेसे शिवराशिसे पूछा। उत्तरमें उसने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा।

उनके मन्त्री विमलने बड़ी उत्सुकतापूर्वक पूछा—'कौन है वह? उसका नाम क्या है?' किन्तु शिवराशिने चुप रहकर ही इसका उत्तर देनेसे इन्कार किया।

गंगाने देवका कीर्त्तिगान आरम्भ किया। उसके कण्ठसे जैसे माधुर्यकी सरिता बह निकली। इस सरितामें

तैर रही थी भक्ति, भाव और स्तवन। यद्यपि कर वह शंकरकी ही स्तुति रही थी, पर उसका उद्देश्य था सर्वज्ञको रिझाना। जितनी बार उसकी आँखें देवकी ओर जातीं, उससे अधिक बार वे सर्वज्ञकी आँखोंमें कुछ खोजती हुई-सी दिखाई देतीं। वह जैसे अकेले उन्हींके लिए गा रही हो और वे भी अधखुली आँखोंसे जैसे अकेली उसीको देखते। अन्य सभी शास्त्रोंके साथ वे संगीत-शास्त्रमें भी पारंगत थे और गंगाके सिवा किसीका संगीत उनकी कसौटीपर चढ़ नहीं सकता था।

संगीत रुका और गंगाने अपनी दृष्टि इस तरह सर्वज्ञकी ओर घुमाई, जैसे सत्कारकी याचना कर रही हो। सर्वज्ञने आँखें पूरी खोलकर उसकी ओर आदर और संतोष-भरी दृष्टिसे देखा और फिर दोनोंकी दृष्टि एक ही साथ सफ़ेद वस्त्रोंमें लिपटी हुई युवतीकी ओर गई। धीरेसे उन्होंने कहा—'अब नृत्य शुरू करो।'

और उनके सामने एक अविस्मरणीय प्रभात आ उपस्थित हुआ। १९ वर्ष एक पलमें संकुचित हो गए। अर्बुदाचल—जहाँ इन्होंने आत्म-शुद्धिके लिए छः महीने तक पंचाग्नि सेवन की थी—इनके सामने आ खड़ा हुआ। वहाँसे लौटनेपर देवकी सेवा और भक्तों तथा शिष्योंके सहवासमें उन्हें जिस अद्भुत उत्साहका अनुभव हुआ था, वह याद आया। आधीरात बीत गई, फिर भी इनके उत्साहका ज्वार उतरा नहीं। उस रात ये सो भी नहीं सके, जैसे दूरसे इन्हें कोई बुला रहा हो। हाथमें एक डंडा लेकर ये बाहर आ गए और सागरके किनारे अस्त होते हुए तारोंके तेजमें घूमने लगे। उसी समय सागरमें से लक्ष्मी-जैसी एक सुन्दरी निकली। अरुणोदयके तेजमें वह इन्हें अपार्थिव-सी लगी। वह चित्र आज भी इनके स्मृति-पटसे ओझल नहीं हुआ है। इन्होंने पूछा—'कौन ?'

सुन्दरीने जवाब दिया—'यह तो मैं हूँ।' ये शब्द, ये आवाज़ आज भी वे भूले नहीं थे। तुरन्त इन्होंने सुन्दरीको पहचान लिया। वह थी नर्त्तकियोंकी मुखियाकी पुत्री, जो अपने कोकिल-कण्ठसे शिव-स्तवनको चाँदनी रातमें बहनेवाला अमृतका झरना बना देती थी। यह जानते थे कि वह नर्त्तकी है, किन्तु शिव-भक्तिमें अचल। उसके प्राण और साँस उनकी सेवा ही है। कुछ देर सर्वज्ञ रुके, फिर उनके अन्तरका उल्लास बाहर आया—'तू यहाँ कैसे ?'

'अभी नहीं, फिर बताऊँगी। अभी मुझे भगवानके सामने नृत्य करने जाना है।'—सुन्दरीने कहा।

'लेकिन इस समय और यहाँ अकेली ? देवसे तू क्या वर माँग रही थी ?'—सर्वज्ञने पूछा।

और वह नीचे देखने लगी। १९ वर्षोंमें भी वे यह दृश्य भूले नहीं थे। उसने धीरेसे कहा—'आपकी और देवकी सेवा !' और इस समय उसके हृदयमें एक अनजाना-सा आनन्द उमड़ पड़ा। सर्वज्ञसे यह कुछ भी छुपा नहीं था। भीलनीके नृत्यसे शिवके हृदयमें प्रकट हुई ज्वालाकी आँच इसे अब लगी थी। इसने देवकी आज्ञाका पालन किया। अस्त होते हुए तारोंका तेज, सागर-संगीतका नशा, प्रातःकालकी मादक पवनकी लहरें इस समय भी इसके स्मृति-पटपर ज्योंकी त्यों चित्रित थीं।

पल भरमें यह स्मरण-स्वप्न भंग हुआ और स्थिर आवाज़में उन्होंने कहा—'नृत्यका समय हो गया है।' और उनका हृदय आनेवाले आशा-भरे क्षणोंकी जैसे प्रतीक्षा करने लगा।

और छोटी-सी चौला श्वेत परिधानमें अपने सब वस्त्राभूषण छुपाए नीचा मुँह किए बैठी थी। आज उसका हृदय जिस वेगसे धक्-धक् कर रहा था, उस वेगसे वह पहले कभी नहीं धक्-धक् करता था। उसके कानोंमें एक विचित्र-सा गम्भीर नाद हो रहा था। सर्वज्ञकी आवाज़ उसके कानोंमें पड़ी। काँपते हुए पाँवोंसे वह उठी। उसकी आँखोंके सामने अँधेरी-सी छा रही थी और रह-रहकर आशंका हो रही थी—पाँव कैसे उठेंगे ? वह नाचेगी कैसे, नृत्य और अभिनयका कोई एक भी ढंग तो उसे याद नहीं है ? पर उसके हृदय-तलमें श्रद्धा थी। उसके सोमनाथने उसे कभी अनाश्रित नहीं छोड़ा था और आज तो वे उसके बिलकुल सामने ही थे। उसने लिंगकी ओर देखा और झुककर प्रणाम किया। इसी समय उसके कानोंमें गंगाके शब्द पड़े—'सर्वज्ञके पाँव ज़रूर छूना।'

'ज़रूर'—उसके होंठ हिले। न मालूम कहाँसे उसके पाँवोंमें ज़ोर आ गया था। आगे बढ़कर उसने सर्वज्ञके चरण छुए। मठाधिपति हँसे। यही उसके लिए उनका आशीर्वाद था...और दूसरे ही क्षण अस्त होते हुए तारोंका वह प्रकाश, गरजता हुआ सागर और प्रभात-पवनकी लहरें उसके स्मृति-पटपर झलक गईं। उसने

शिवराशिकी ओर देखा, फिर उसके पास बैठे हुए दो अपरिचित व्यक्तियोंको अपनी ओर घूरते हुए देखा, फिर ज़रा पीछे हटी और कूदकर उज्ज्वल प्रकाशसे जगमगाते सभामंडपके बीचमें जा खड़ी हुई। अपने ऊपरका श्वेत वस्त्र हटाकर उसने नीचे डाल दिया था और उसके बीचमें खड़ी हुई वह ऐसी मालूम हो रही थी, मानो श्वेत कमलमें से निकली हुई नारायणी हो! प्रेक्षकगण मुग्ध और अवाक् होकर उसे देख रहे थे।

कोमल कदली-जैसे सुन्दर पाँवोंमें नूपुर शोभायमान थे। सुनहरी ज़रीकी गाँठों द्वारा बँधे घुँघरुओंसे युक्त मेखलामें से निकली उसकी नाज़ुक कमर, गौरवर्ण पेट, हीरोंमें डगमगाता किन्तु अदेखा स्तनमण्डल, स्पष्ट भूरी नसोंकी रेखाओंसे शोभित गर्दन और बालक-सा भोला और सुन्दर चेहरा ऐसे मालूम हो रहे थे, मानो किसी मन्दिरमें से उसका शिखर निकाला हो। उसके मुखपर पार्थिव सुन्दरीकी अपूर्व रेखाएँ नहीं थीं, देवियोंकी-सी भव्यता भी न थी, नन्हीं बालिकाकी केवल सुकुमारता ही नहीं थी, बल्कि वह तो किसी सुभग स्वप्नमें से पलभरमें निकला हुआ नवमंजरियों द्वारा निर्मित निर्दोषताके सत्व-स्वरूप बाल-वसन्तका मुख था! पर चौलाको अपने सौन्दर्यका तनिक भी भान न था। उसके आसपास ज़मीन भी थी या नहीं, इसका भी उसे भान न था। उसकी निर्निमेष दृष्टि तो दूर, सामने, अपने जीवनके सर्वस्व सोमनाथके लिंगपर लगी थी, जिन्हें रिझानेके लिए उसने इतने वर्षों तक एकाग्र चित्तसे तपस्या की थी।

और भोले शंभु भी तो उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे—उसका नृत्य देखनेको वे अधीर हो रहे थे और साथ ही उसे शाबासी देनेको भी तत्पर थे। दूसरे ही क्षण चौलाके पाँवोंमें चेतना आई। अविरत गतिसे घुँघरू बजने लगे। वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाली सरिताकी तरह वह गर्भद्वार तक गई और मृदंगका ठेका शुरू हुआ।

चौलाकी नसोंमें दौड़नेवाले रक्तकी गति बढ़ी। उसे ऐसा लगा कि वह चौला नहीं, पर्वत-कन्या है। यह सोमनाथका मन्दिर नहीं, नगाधिराज हिमालय है। यह सोमनाथका लिंग नहीं, तपश्चर्यामें निश्चल उसके मूर्त्तिमान प्राण हैं। पार्वतीके रूपमें वह उनकी पूजा कर रही है। उसके हाथ, उसके पाँव, उसकी कमर और उसकी गर्दन पार्वतीके भाव बतला रहे थे। उसकी आँखें आतुर, विह्वल और भक्ति-भीनी थीं। खड़े-खड़े, बैठकर और झुक-झुककर उसने पूजा की। हाथके अभिनय द्वारा उसने उनपर चन्दनके छींटे डाले, दोनों हाथोंकी अंजलियाँ भर-भरकर पुष्प चढ़ाए। उसकी समूची अंग-भंगिमासे शंभुको रिझानेकी एकमात्र आकांक्षा निःसृत हो रही थी।

कुछ समय बाद वह पुजारिणी थक गई। उसके पाँव शिथिल हो गए, हाथोंमें भी शिथिलता आ गई। उसके चेहरेपर भी खिन्नताके चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। संगीत मंद पड़ा, तालका ठेका धीमा पड़ा। शनैः-शनैः उसके मुखपरका उल्लास भी अदृश्य हो गया। उसके चेहरेपर करुणा और आँखोंमें निराशा झलकने लगी। पर यह सब चौला अभिनयके रूपमें नहीं कर रही थी—जिस प्रकार पार्वतीने तप किया था, वैसे ही वह भी कर रही थी। आज वह शंभुको रिझाने चली थी, और यदि वे न रीझे तब? उसके अन्तरके भावोंने उसके नृत्यको स्वानुभवालंबी बना दिया था।

तुरन्त उसका भाव बदला। उसने कामदेवको आते देखा। उसके मुँहपर एक हँसी दिखाई पड़ी—उसके अभिनयमें नई चेतना आई। पाँवका ठेका धीमा, पर आशापूर्ण हुआ और धीरे-धीरे खिसकते हुए पाँव आशा-पूर्ण तालके साथ नर्त्तन करने लगे। वह चौंकी, उसका आधा अंग टेढ़ा हुआ, उसकी विह्वल आँखें कुछ खोजने-सी लगीं और धीरे-धीरे वह पीछे हटी। कामदेवका बाण शंभुके लगा और वह बड़े आग्रहसे, आँखोंमें प्राण भरकर, चौंककर, कुछ लज्जित हो, किन्तु गर्वके साथ शंभुके पास आई। दृष्टि भरकर उसने शंभुके लिंगकी ओर देखा और उसे ऐसा भान हुआ, मानो शंभु रीझ गए। इसी समय पीछे खड़ी हुई छः नर्त्तकियोंने महादेवजीकी वाणी उचारी :—

> किं मुखं किं शशांकश्च किं नेत्रे चौत्पले च किं।
> भ्रूकुट्यौ धनुषी चैते कन्दर्पस्य महात्मनः॥
> अधरः किं च बिंब किं किं नासा शुकचंचुका।
> किं स्वरः कोकिलालापः किं मध्ये चा थ वेदिका॥ *

* यह मुख है या चन्द्रमा? ये नेत्र हैं या कमल? यह भृकुटी है या महात्मा कामदेवका धनुष? यह अधर हैं या बिम्ब? यह नाक है या सुएकी चोंच? यह स्वर है या कोकिलका आलाप? यह क्या कटि (मध्य) है या वेदिका? (शिवपुराण)

विरह-विह्वल पार्वती जैसी खिंचती और शर्माती हुई पीछे हटी। उसके नितम्ब क्रमशः हिल-हिलकर विजयकी मस्ती दिखाने लगे। मंद हास्य और संभ्रम चेहरेसे, कन्धेपर पड़े वस्त्रसे अपना स्तनमंडल ढँकती हुई, धीरे-धीरे गर्व और संकोचपूर्वक पीछे कदम रखती हुई वह पीछे लौटी और अनायास फिर चौंकी, घबराई। नर्त्तकियोंने गाया :—

किं जातं चरितं चित्रं किमहमोहमागतः।
कामेन विकृत श्चाद्य भूत्वापि प्रभुरीश्वरः॥
ईश्वरीऽहं यदीच्छेयं परांगस्पर्शनं खलु।
तर्हि कोऽन्योऽक्षमः क्षुद्रः किं किं नैव करिष्यति।†

सर्वज्ञसे चुप न रहा गया। पीछेसे वे भी कह उठे :—

एवं वैराग्य मासाद्य पर्य्यं कौंसाद्धनं च तत्।
वारयामास सर्वात्मा परेशः किं पतेदिह।×

और चौलाका शरीर काँपने लगा। उसके घुँघरुओंमें घबराहट हुई और भयसे उसका अंग-प्रत्यंग काँपने लगा। कामदेवका वध हुआ और पार्वतीने अपने मित्रकी मृत्यु देखकर नृत्यकी मुख-मुद्रा द्वारा रुदन आरम्भ किया। इसी बीच शिवजी चले गए और मित्र-वियोगका यह रुदन विरहका रुदन बन गया। मृदंग सिसकने लगे। चौलाके पाँव लड़खड़ाने लगे। उसके हाथोंमें थी निराशा और आँखोंमें क्रन्दन। वह रोई, सिसकी और अन्तमें प्रभुपर दोनों आँखें गड़ाकर ध्यान करने लगी। उसकी मुख-मुद्रामें कुछ सख्ती आई, घुँघरुओंकी झंकारमें स्थिरता आई, अभिनयमें तपस्विनीका गौरव आया और अंगोंमें कठोरता आई। अभिनय द्वारा उसने आसन बनाया, अँगुलियों द्वारा ध्यान-मुद्रा बनाई और नेत्रोंको नासिकाग्र करके धीरे-धीरे मन्द पड़ते जानेवाले मृदंगके साथ ध्यान लगाया। देखते ही देखते वह स्थिर—ध्यानस्थ—हो गई और ब्राह्मण अतिथिके सत्कारका भाव दर्शाने लगी। दत्तचित्त होकर वह ब्राह्मणके वचन सुनने लगी :—

इन्द्रादिलोकदालांश्च हित्वा शिवमनुव्रता।
नैतत्सूक्तं हि लोकेषु विरुद्धं दृष्यतेऽधुना॥
क्वत्वं कमलपत्राक्षी क्वासौ वै त्रिविलोचनः।
शशांकवदना त्वं च पंचवक्त्रः शिवस्स्मृतः॥
वेणी शिरसो ते दिव्या सर्पिणिव विभासिता।
जटाजूटं शिवस्थैव प्रसिद्ध परिचक्षते॥
चंदनं च त्वदीयांगे चिताभस्म शिवस्य च।
क्व दुकूलं त्वदीयं वैशांकरं क्व गजाजिनम्।
क्व भूषणानि दिव्यानि क्व सर्पा इशंकरस्य च॥ *

पार्वतीने तिरस्कार किया। घुँघरू गुस्सेसे चीख़ उठे। उसके हाथोंके मरोड़में उग्रता आ गई। मृदंग क्रोधसे गरज उठे। उसके आरक्त नेत्रोंमें से अंगारे झड़ने लगे। पाँवोंसे छलाँग भरती और घुँघरुओंसे ताल देती वह चारों ओरसे ब्राह्मणको डराने-सी लगी। आँखोंसे, भावसे, मुद्रासे और मुँहसे उसने घृणा तथा उपेक्षा प्रकट की और मुँह चढ़ाकर वह लौट पड़ी।

ऐसा मालूम हो रहा था कि इस समय चौला एकदम बदल गई है। प्रच्छन्नवेशी शिवजी ब्राह्मण न होकर अब अपने असली रूपमें प्रकट हुए। वाद्य-यंत्र रुक गए और मृदंगसे बादलोंका-सा गम्भीर घोष निकलने लगा। चौलाकी आँखोंने देखा कि सामनेवाले लिंगमें से शिवजी प्रकट हो रहे हैं। नृत्य करती हुई चौलाकी रंगोंमें उल्लास बढ़ता जा रहा था। उसके हृदयमें अकथनीय उत्साह उमड़ रहा था। गति और ध्वनिकी उछलती हुई सरितामें बहती चौलाकी कल्पनाने उसके सामने उसके प्राणपति साक्षात् शिवको ला उपस्थित किया था। वह सब कुछ भूल गई। नृत्य और अभिनयके शास्त्रोंको

---

† ईश्वर और प्रभु होनेके बावजूद कामान्ध होनेके कारण मेरा व्यवहार आज कितना विचित्र हो गया है? और क्या मैं मोहवश नहीं हो गया हूँ? यदि ईश्वर होकर भी मैं पर-स्त्रीके अंग-स्पर्शकी इच्छा करता हूँ, तो क्षुद्र और अक्षम व्यक्ति क्या-क्या असत्कार्य नहीं कर सकते?

× इस प्रकार वैराग्य द्वारा विवेक प्राप्त करके सर्वात्मा शिवने दृढ़ कटि-बंधन रचा, क्योंकि ईश्वर क्या कभी मोहमें पड़ सकते हैं, कदापि नहीं।

* इन्द्रादि लोकपालोंको छोड़कर तू शिवकी कामना करती है, यह तेरे लिए लोक-विरुद्ध होनेके कारण ठीक नहीं। कैसे, यह मैं तुझे बताता हूँ, सुन। कहाँ तो वे कमलनयनवाले और कहाँ त्रिनेत्र शिव? कहाँ वे चन्द्राननवाले और कहाँ पाँच मुँहवाले शिव? कहाँ तेरे शिरकी सर्पिणी-सी दिव्य वेणी और कहाँ शिवका वह प्रसिद्ध जटा-जूट? कहाँ तेरे अंगपर चर्चित चन्दन और कहाँ शिवके अंगपर लगी भभूत? कहाँ तेरा यह सुन्दर रेशमी वस्त्र और कहाँ शिवका हस्तिचर्म-रूपी अशुभ वस्त्र? कहाँ तेरे ये सुन्दर आभूषण और कहाँ शिवके सर्प?

भी वह भूल गई। उसकी नाक फटने-सी लगी। प्रेमके पागलपनसे उसकी आँखें व्याकुल और विशाल हो गई थीं। प्रणय-विह्वल पार्वतीका अभिनय करते-करते वह प्रणय-विह्वल वधू बन गई थी। उसके पाँव नाच नहीं रहे थे, बल्कि पृथ्वीका स्पर्श किए बिना ही उड़ रहे थे। हाथ एक ख़ास छटाके साथ मुड़ नहीं रहे थे, बल्कि तीव्र पवनके झोंकोंमें झुकती, डोलती, उलझती लतिकाओंकी तरह मालूम हो रहे थे। उसका मुख प्रणयके ख़ारकी तरह अलख तेजसे दिपदिपा रहा था।

इसी उल्लासमें उसने शिव-लिंगकी प्रदक्षिणा की वृषभको गले लगाया, शम्भुसे आलिंगन किया, उनकी रुण्डमालासे खेली और फिर उसी आलिंगनमें दब गई—चुम्बनसे शरमा गई। फिर वह नृत्य करने लगी। बढ़ते हुए वेगसे मृदंगका ठेका और घुँघरुओंकी झनकार धड़कते हुए हृदयसे उसका साथ दे रहे थे। चौलाने सारा संयम त्याग दिया। अब उसका नृत्य प्रणय-काव्य बन गया था।...चुम्बित, मुदित और आनन्दकी पराकाष्ठाका अनुभव करती हुई वह पृथ्वीपर लोट गई। वाद्य और मृदंग एकदम बन्द हो गए। पृथ्वी एक चित्र-सी बन गई। सर्वज्ञ स्वस्थ हुए और आँखोंमें उमड़े गर्वाश्रुओंको पोंछा। इसके बाद सबने मठाधिपतिको जो कुछ करते देखा, वह पिछले २७ वर्षोंमें कभी किसीने नहीं देखा था।

जहाँ वे बैठे थे, वहाँसे उठे और दौड़कर जहाँ चौला पड़ी थी, वहाँ गए और उसे दोनों हाथोंपर उठा लिया। चौला उनकी पुत्री थी। देवाशासे वह उन्हें कैसे मिली थी, यह आज मालूम हुआ। उसे लेकर वे गर्भद्वारके निकट गए और बोले—'देवाधिदेव, इस लड़कीको स्वीकार कीजिए। जब तक चौला जीवित रहेगी, शिवरात्रिको यही आपके सामने नृत्य करेगी।' और यह कहकर जैसे कोई कुछ भेंट चढ़ाता हो, उस तरह सर्वज्ञने चौलाको सोमनाथके आगे रख दिया।

चौलाको आज उसके जीवनकी परम सौभाग्यशाली घड़ी प्राप्त हुई। जटाधारी पिनाकपाणि आज उसकी नज़रके सामनेसे हटे तो नहीं।

'मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हारी—इस जन्ममें और जन्म-जन्मान्तरमें!'—बड़बड़ाती हुई चौला बेहोश हो गई।

अनु०—मो० सिं० सेंगर (क्रमशः)

# सत्साहित्य-प्रसारक संस्था

**श्री भानुकुमार जैन**

उस दिन एक प्रकाशक आए। एक पुस्तक हाथमें रखते हुए बोले—'देखिए, यह आपके यहाँ चलेगी?' आवरण साफ़ मटमैले रंगका था। ऊपर चित्र और नाम आदि कुछ नहीं। खोलकर देखा, तो चौंक पड़ा। ऐसे वीभत्स चित्र ज़िन्दगीमें कभी नहीं देखे थे। ग्लानि हुई। पुस्तकपर मुद्रक और प्रकाशकका नाम ढूँढा, मिला नहीं। मैंने पुस्तक लौटाते हुए कहा—'क्षमा कीजिए, यह नहीं चलेगी।'

प्रकाशक चले गए। मैं सोचमें पड़ गया। मेरा मस्तिष्क चक्कर खा रहा था—भले ही यह मेरे मनकी कमज़ोरी ही हो। कई साहित्यिक और देशभक्त पुस्तक-विक्रेता भी इस प्रवृत्तिके शिकार देखे गए हैं। पैसा कमाना जिनका मूल उद्देश्य है, नीति, अनीति, सदाचारसे उन्हें क्या मतलब? छिपे और खुले रूपसे होनेवाले इस अनीति-मय साहित्यिक व्यापारको बदलनेके लिए मूलमें ही परि-वर्त्तन करना होगा। साहित्यके व्यापारको केन्द्रित करना होगा। यह सब कैसे हो, आज हमें यही विचार करना है।

पाठकोंको मालूम होगा कि अखिल भारत-चर्खा-संघ द्वारा खादी-उत्पादन और प्रचारका कार्य केन्द्रित है। चर्खा-संघ इस बातकी कोशिश करता है कि अप्रामाणिक खादी-भंडारोंसे लोग खादी न ख़रीदें। इसके लिए संघ द्वारा जगह-जगह अपने भंडार और खादी-उत्पादन-केन्द्र खोले गए हैं। संघके नियम और आदेशोंको पालनेवाले स्वतंत्र खादी-भंडारों और व्यवसायियोंको संघ प्रमाण-पत्र देता है। गांधी-जयन्ती, राष्ट्रीय सप्ताह और ग्रामोद्योग-प्रदर्शिनी आदि अवसरोंपर अपनी विज्ञप्तियों, खादी-हुंडियों

और पत्र-पत्रिकाओंमें संघ उन स्वतंत्र प्रामाणिक खादी-भंडारोंकी भी सूचनाएँ आदि प्रकाशित करता है। इस प्रकार यह कार्य केन्द्रित रूपसे अधिकारी व्यक्तियोंकी देख-रेखमें चलता है। इसमें ठगाई और व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धिके लिए बहुत कम गुंजाइश है। इस व्यवस्थासे जहाँ शुद्ध खादीका ही सम्यक रूपसे प्रचार होता है, वहाँ अस्वस्थ और अनावश्यक प्रतियोगिता भी नहीं होती और खादी-उत्पादकोंको उनके परिश्रमका उचित एवज़ाना भी मिल जाता है।

साहित्य-सृजन और प्रचार भी करोड़ोंके जीवन-निर्माणका प्रश्न है। किसी भी देशके साहित्यने उसके नव-निर्माणमें कम महत्त्वपूर्ण सहायता नहीं की है। रूसके जन-साहित्यने रूसकी काया पलट कर दी। कोई माने या न माने, हिटलरके 'माइन कैम्फ़' (मेरा युद्ध) ने जर्मनीमें जो संजीवनी फूँकी है, वह आश्चर्यजनक है। भारतवर्षमें दुर्भाग्यसे क़ानूनी बन्धन होनेपर भी अश्लील साहित्य बुरी तरह प्रचार पा रहा है। हमारा आत्म-बल, विश्वास और नैतिक शक्ति इससे कितने परिमाणमें नष्ट हो रही है, यह विचारणीय है। किन्तु क्रियात्मक रूपसे इस दिशामें कुछ तभी किया जा सकता है, जब कि कुत्सित साहित्यके प्रतिरोध और सत्साहित्यके प्रचारके लिए एक केन्द्रिय संस्था स्थापित की जाय। यह संस्था अपने अस्तित्व और कार्य तथा अधिकारके मामलेमें स्वतंत्र होते हुए भी कांग्रेसका एक अखंड अंग होकर रहे—यद्यपि राजनीति, राजनैतिक दलों, मतों और परिवर्त्तनोंके प्रभाव एवं बन्धनोंसे यह मुक्त रहे। 'साहित्य' शब्दकी व्याख्या और उसकी परिधि हमें ज़रा और व्यापक करनी होगी। पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, चित्र, नाटक-सिनेमा और कलाके अन्य उत्पादन भी 'साहित्य' शब्दकी नई व्याख्याके अंतर्गत आने चाहिएँ। 'सत्साहित्य' से मतलब होना चाहिए उस साहित्यसे, जो स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सबके लिए उपयोगी हो और सबकी मानसिक (बौद्धिक), आध्यात्मिक, नैतिक और शारीरिक उन्नतिमें योगवाहक हो।

मेरी रायमें आयोजित संस्थाके उद्देश्य इस प्रकार हों—(क) पूर्व प्रकाशित और नवीन प्रकाशित सभी साहित्यको एकत्रकर उसका अवलोकन करे और पठनीय तथा अपठनीय साहित्यका निर्णयकर सत्साहित्यको प्रमाणित करे। इस कार्यमें प्रकाशकोंसे यदि बिना मूल्य सहयोग न मिले, तो समूल्य भी पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ आदि मँगवाकर योग्य निर्णय करे। (ख) एक ही पुस्तकके कई संस्करणोंमें से सर्वश्रेष्ठ संस्करण, या विभिन्न संस्करणोंमें से विभिन्न दृष्टियोंसे कुछ श्रेष्ठ और विशिष्ट संस्करण, या एक ही पुस्तककी कई टीकाएँ और भाष्य उपलब्ध होनेपर सर्वश्रेष्ठ टीका या विभिन्न विशिष्ट भाष्य और टीकाएँ प्रमाणित करे। (ग) जीवन और साहित्यके किसी भी ललित विषय और अंगका अनुचित विरोध न कर वैज्ञानिक, विवेचनायुक्त और आरोग्यकी दृष्टिसे जातीय हितको लक्ष्यकर काम-विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थोंका प्रणयन, प्रकाशन और प्रचार करे अथवा ऐसा करानेकी उचित व्यवस्था करे। (घ) युग-निर्माणकारी पाठ्यक्रम तैयार करे तथा स्त्रियोपयोगी और बालकोपयोगी साहित्यके निर्माण एवं प्रचारपर भी विचार करे। सर्वधर्म-समन्वयके नए दृष्टिकोणसे किसी भी धर्म-विशेषका साहित्य भी प्रचार पाने योग्य समझा जाय।

संस्थाको अधिकार हो कि उपर्युक्त उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिए वह चन्दा एकत्र करे, स्थावर सम्पत्ति रखे, प्रकाशन करे, प्रेस खोले और पत्र-पत्रिकाएँ चलाए। जगह-जगह वह शाखा-भंडार खोले, प्रचारक (वैतनिक और अवैतनिक) नियुक्त करे तथा वाचनालय और पुस्तकालय खोले। लेखकों, स्वतंत्र सत्साहित्य-प्रसारकों, प्रामाणिक साहित्य-सेवियोंको पारितोषक और प्रमाण-पत्र आदि देकर प्रोत्साहित करे और इन उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिए आवश्यक विधान (नियम) बनाए। प्रामाणिक साहित्यका प्रचार बिक्री, भाषणों, चर्चाओं, लेखों, पुस्तिकाओं, विज्ञापन, पत्र-व्यवहार और प्रतिनिधि-मंडल तथा अन्य विविध उपायोंसे बढ़ाए। सत्साहित्यके प्रचार और गंदे साहित्यकी रोकके लिए क़ानून बनवानेके लिए सरकार, कांग्रेस और जनतासे सहयोग ले।

संस्थाके संरक्षक, पोषक, आजीवन सहायक और साधारण सदस्य उसके मतदाता और व्यवस्थापक सदस्य समझे जायँ। पाठक और अनुमोदक सदस्य सिर्फ़ सत्साहित्यके पठन-पाठनका बीड़ा उठाएँ और कांग्रेसके लाखों सदस्योंकी भाँति चवन्नी-सदस्य हों। (सदस्योंके नियम और अधिकार आदि बादमें तय किए जा सकते हैं।) संस्थाके ट्रस्टी और कार्यकारी-मंडलमें निम्न-लिखित व्यक्ति रहें—महात्मा गांधी, सर्वश्री राजेन्द्रप्रसाद, राज-

गोपालाचार्य, मूलाभाई देसाई, किशोरलाल मश्रुवाला, क्षितिमोहन सेन, जवाहरलाल नेहरू, कन्हैयालाल मुंशी, पुरुषोत्तमदास टंडन, काका कालेलकर, रामानन्द चटर्जी, हरिभाऊ उपाध्याय ( या मार्तण्ड उपाध्याय, ) बनारसीदास चतुर्वेदी ( या श्रीराम शर्मा ) और जैनेन्द्र-कुमार। सभी साहित्यिक और भाषा-प्रचार करनेवाली संस्थाओंके प्रतिनिधि भी इसमें रहें। प्रान्त-प्रान्तके कुछ विशिष्ट व्यक्ति और कुछ प्रगतिशील ( नई पीढ़ीके ) तथा प्रत्येक प्रान्तीय भाषाके साहित्यिक भी हों, तो अधिक अच्छा है। नामोंकी इस प्रस्तावित सूचिमें आवश्यकता-नुसार परिवर्त्तन भी किया जा सकता है।

संस्थाका कार्यक्षेत्र समस्त भारतवर्ष और भारतवर्षके बाहर भी जहाँ-जहाँ भारतीय बसते हों, हो। संस्था अपना कार्य राष्ट्रभाषामें प्रारम्भ करेगी ; किन्तु प्रान्तीय शाखाएँ और कार्यालय खुलनेपर प्रान्तीय भाषाओंका आश्रय भी ले। वह हर जगहसे भाषावार और स्थानवार पाठकोंकी सूची एकत्रकर प्रकाशित करे और उसे शाखा-भंडारों, प्रमाणित प्रचारकों और पुस्तक-व्यवसायियोंमें वितरित करे। साथ ही वह सत्साहित्य-प्रचार-आन्दोलन चलायगी। साहित्यके पठन-पाठन और अध्ययनका शौक बढ़ानेके लिए 'पठन-पाठन और अध्ययन-सप्ताह' मनानेकी व्यवस्था भी करे। प्रकाशकों, पुस्तक-व्यवसायियों, लेखकों और ख़ासकर गन्दे या हलके साहित्यके प्राचरकोंसे वह अनुरोध और प्रार्थना करे कि अपने और देशके हितके लिए वे अपना दृष्टिकोण बदलें। संस्थाके निश्चित नियमों और आदेशोंको माननेपर वह 'सत्साहित्य-प्रचारक' होनेका प्रमाण-पत्र और उन्हें हर तरहसे मदद दे।

संस्था प्रकाशकों और लेखकोंमें यह भावना फैलाए कि एक ही पुस्तकके कई संस्करण बिना किसी नवीनताके सिर्फ़ अपने-अपने भाष्य और टीकाएँ या सम्पादनको लेकर ही न निकाले जायँ, क्योंकि उन प्रकाशनोंकी बिक्री तो जितनी होती है, उतनी ही होगी ; आपसमें व्यर्थकी प्रतियोगिता होगी। इसलिए प्रकाशगण स्वतन्त्र और युगके अनुकूल नवीन प्रकाशन करें, तो अच्छा है। सत्साहित्यकी उपयोगिता एवं आवश्यकता तथा मार्ग-निर्देशके लिए संस्था समय-समयपर अधिकारी व्यक्तियोंसे परामर्श करके उद्‌घोषणा और रूप-रेखा प्रकाशित करे। इसी प्रकार पूर्व-प्रकाशित या नव-प्रकाशित रचनाओंमें से आपत्तिजनक या प्रचार न पाने योग्य अंश पुनर्मुद्रणमें निकाल देनेके लिए संस्था लेखकों और प्रकाशकोंसे निवेदन करे, पत्र-पत्रिकाओंमें छपनेवाले गन्दे विज्ञापन बन्द करानेके लिए उनके संचालकों और सम्पादकोंसे अनुरोध करे या ऐसे विज्ञान छापनेवाली पत्र-पत्रिकाओंको वह सत्साहित्यके लिए प्रमाणित न करे। वह संस्था यह भी प्रयास करे कि लेखक, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक, पुस्तक-विक्रेता और ग्राहकका हक़ बराबर ( प्रमाणसे ) समझा जाय और उन्हें अपने लाभ या पारिश्रमिकका पूरा हिस्सा मिले।

इस प्रकारके एक केन्द्रीय संगठन द्वारा संस्थाका उद्देश्य साहित्य-प्रणयन, प्रकाशन और प्रचारमें रोक थाम लगाना या लेखकों, सर्जकों, प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओंकी रोज़ी मारना या स्वार्थ नष्ट करना नहीं, बल्कि राष्ट्रके हितमें व्यवसायको सरल, सात्त्विक, लाभप्रद, नियमित और शुभ-भावनायुक्त बनाना है। व्यक्तिगत अनुचित लाभ और ग़लत शोषण भी इस प्रयास द्वारा काफ़ी कम हो जायँगे। इसमें सन्देह नहीं कि यह कार्य बड़ा है ; पर है नितान्त आवश्यक और राष्ट्र-हितका कार्य। बड़े-बड़े नेताओं और सुयोग्य तथा अनुभवी कर्मियोंके सहयोगसे यह प्रयास सरलतापूर्वक कार्यान्वित हो सकता है। क्या मैं आशा करूँ कि अन्य महानुभव भी इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करेंगे ?

हीराबाग, बम्बई ]
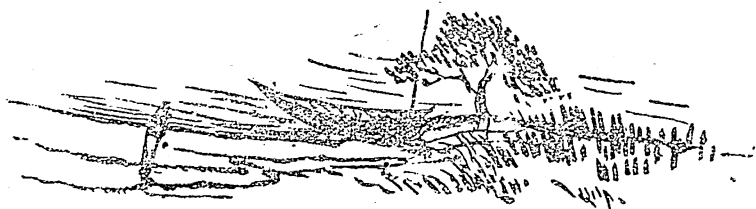
# निर्मोहीका मोह

**श्री परोपकारदेव 'सेवक'**

जब दोपहरकी निस्तब्धता भंग करते हुए खंजनपुर क़स्बेके थानेका बारहका गजर बहरकर शान्त हो गया, तब बहुत देरसे चुपचाप बैठी रहमानकी बुढ्ढी माँने अपनी पुत्रवधू नरगिससे पूछा—'क्यों बहू, खेतपर रोटी दे आई क्या?'

नरगिस एक कपड़ेमें कटोरदान लपेटती हुई रसोईमें से बोली—'अभी तो कण्डे पाथकर और मुर्ग़ियोंको दाना डालकर आई हूँ। कुएडेमें पानी तक तो नहीं पड़ा है।'

'सबेरे भी तो रहमान कुछ खाकर नहीं गया था। अभी तक वह भूखा बैठा होगा।'—बुढ़िया फिर बोली।

रहमानकी स्त्रीने धीरेसे उत्तर दिया—'जा रही हूँ अभी, ज़रा बाजरा उबल जाय; तब तक मैं मुर्ग़ियोंको पानी भी पिलाए आती हूँ।'

बाजरा उबल जानेके बाद नरगिस भोजनकी गठरी सिरपर रखकर खेतकी ओर चल दी। मार्गमें कच्ची सड़कके मोड़पर उसका आठ-दस वर्षीय देवर सुलेमान गुल्ली-डण्डा खेलकर आता हुआ दिखाई दिया। नज़दीक आते ही वह भाभीसे बोला—'मैं भी चलूँगा खेतपर।'

नरगिसने उसे समझाते हुए कहा—'तुम क्या करोगे चलके? सवेरेसे रोटी भी तो नहीं खाई तुमने। घर जाओ, अम्मीजान तुम्हारे इन्तज़ारमें खानेको बैठी हैं।'

'भैयासे मैं गन्ना लाऊँगा।'

'अच्छा, गन्ना मैं लिए आऊँगी, बस।'

सुलेमान किसी प्रकार घरकी ओर चल दिया और नरगिस खेतकी ओर चल पड़ी। रहमान उस समय पीठ फेरे ईखके खेतके समीप बैठा सुस्ता रहा था। दूरपर किसीकी आहट पाकर उसने मुड़कर जो देखा, तो उसकी सुन्दर नरगिस मंथर गतिसे उसकी ओर चली आ रही थी। वह मन्त्रमुग्ध-सा उसे निहारता रहा। उसकी पत्नी वैसे रूपवती तो थी ही, परन्तु आज वह कितनी सुन्दर लग रही थी! गहरे रंगके आकर्षक वस्त्र और झीने दुपट्टेपर टँका हुआ चमकदार गोटा। कानोंमें लटकते हुए बड़े-बड़े झुमकोंसे रह-रहकर सूर्यकी किरणें विस्फुटित हो उठती थीं। मुखपर पड़ती हुई धूपने उसके रूप-लावण्यको अत्यधिक बढ़ा दिया था। सिरपर खानेकी गठरी धरी थी। वह दृश्य उसके हृदयपर किसी फ़ोटोकी भाँति खिंच गया। ध्यान-मग्न रहमान उसकी ओर ताकता रहा और मन-ही-मन वह अपने भाग्यको सराहने तथा ईश्वरको धन्यवाद देने लगा। ईश्वर कितना दयालु है! उसने उसे सब प्रकारका सुख दिया है। खानेकी कमी नहीं। भाई और माँकी स्नेह-छाया और नवयौवना पत्नीका प्रेम भी उसे प्राप्त है। उसे और चाहिए ही क्या? सहसा चलनेसे उत्पन्न वस्त्रोंकी सर-सरने उसकी विचार-लहरी तोड़ दी। उनकी पत्नी सिरपर रखी गठरी उतारकर उसके नज़दीक ज़मीनपर रखने लगी। रहमानने देखा, नरगिसके चंचल काले नेत्रोंमें चमक थी और अधरोंपर मन्द मुस्कान। भावावेशमें वह पूछ बठा—'आज बड़ी देर लगाई। मैं तो काम छोड़कर बहुत देरसे इन्तज़ार कर रहा था।'

नरगिस गठरी खोल रही थी। वह अपने पतिके मुखपर दृष्टि गड़ाए हुए हँसकर बोली—'तुम मुझे इतना चाहते हो! अगर मैं मर जाऊँ, तो...?'

'तो क्या? मैं किसी दूसरीसे निकाह कर लूँगा।'—कहकर रहमान ज़ोरसे हँसने लगा। फिर गम्भीर मुद्रा बनाकर बोला—'देखो, जब हम किसीको नुक़सान नहीं पहुँचाते, तो अल्लाह हमें क्यों मुसीबतमें डालेगा? यह दुनियाका क़ानून है। जो दूसरोंको सताते हैं, उनपर अल्लाहतालाका क़हर गिरता है।'

ऐसे गम्भीर विषयपर एक अपढ़ नारी 'हाँ' कहनेके सिवा और कह ही क्या सकती थी? नरगिसने भी केवल 'हाँ' भर कह दिया। फिर भोजन परोसकर बोली—'लो, खाओ!'

रहमान खाने लगा। नरगिसने थालीमें से एक नारंगी उठा ली और उसे छीलते हुए उसका एक छिलका रहमानके नेत्रोंके आगे ले जाकर दबा दिया। रहमानकी आँखोंमें आँसू छलछला आए। नरगिस ज़ोरसे हँस

पड़ी और रहमान भी हँस पड़ा। जब रहमान भोजन कर चुका, तब थोड़ी देरके मनोरंजक वार्तालापके बाद उसकी स्त्री झूठे बरतन लेकर चली गई। सुलेमानके लिए चार-पाँच गन्ने लेना भी वह न भूली। इधर प्रफुल्लित रहमान विचारोंमें खो गया। नरगिसको पाकर वह सचमुच अपने-आपको बहुत भाग्यवान समझता था।

एक दिन सहसा नरगिसकी तबीयत गिरने-सी लगी और फिर उसे बुखार चढ़ आया। बुख़ार भी कैसा—टायफायड, जो अन्तमें उसके जीवनका ग्राहक ही बन बैठा। और अन्तमें वह चल बसी। रहमानके आगेसे मानो कोई ऊँची अट्टालिका गिर पड़ी और सामनेका आकाश सूना-सूना-सा रह गया। यही नहीं, उसे ईश्वर और उसकी करुणा तथा न्यायमें भी विश्वास नहीं रह गया। उसके अरमान मिट्टीमें मिल गए। स्त्रीकी मौतसे उसके दिलपर ऐसा आघात लगा कि वह लोगोंसे बातचीत न करता। उसका हृदय पाषाण-सा हो गया। उसमें न दया रह गई और न ममता ही। दिन-रात वह क्रोध और क्षोभसे भरा बैठा-बैठा न जाने किस अवसरकी प्रतीक्षा किया करता।

× × ×

उसी समय यूरोपमें युद्ध छिड़ा। भारतके गाँव-गाँवमें रँगरूट भर्ती होने लगे। रहमानने भी जब यह सुना, तो युद्धपर जानेके लिए उसमें अपूर्व उत्कण्ठा जाग्रत हो उठी; पर उसने अपनी इच्छाको किसीपर प्रकट न कर अपने ही तक सीमित रखा। एक दिन रातको वह चुपचाप उठा और पासकी फ़ौजी छावनीमें जाकर फ़ौजमें भर्ती हो गया। बादमें सैनिक शिक्षा समाप्त हो जानेपर उसे युद्ध-स्थलमें भेज दिया गया।

इधर बुढ़ियाको रहमानका कोई समाचार नहीं मिला। कुछ दिनों तक तो दुखी माँ इसी आशामें आँख लगाए बैठी रही कि उसका रहमान आता ही होगा; पर ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, उसकी आशा निराशामें परिणत होती गई। फिर कल्पनाकी उड़ानमें वह सोचा करती, यदि रहमान जीवित है, तो अवश्य आयगा। बुढ़िया सोचती, आख़िर रहमान चला ही क्यों गया? उसने उसे कोई कड़ी बात भी तो नहीं कही। यही सोचकर बुढ़िया दिन-रात आँसू बहाया करती। पर उन आँसुओंको देखनेवाला कौन था सिवा बालक सुलेमानके, जो माँकी ऐसी अवस्था देखकर स्वयं रो पड़ता।

फिर भी बुढ़िया अपने दिलको मज़बूत बनाए बालक सुलेमानपर अपनी सारी आशाको केन्द्रित किए बैठी थी। पर सुलेमानका सुख भी उसे अधिक दिनों तक नहीं बदा था। एक दिन सुलेमानको बागमें साँपने काट लिया और घर आते-आते उसकी मृत्यु हो गई। निर्बल बुढ़ियापर दुःखका पहाड़-सा टूट पड़ा। उसका जो एकमात्र आशा-दीपक था, वह भी बुझ गया। उसका हृदय टूक-टूक हो गया। उसके जीवनमें अब कौन-सा उल्लास, कौन-सी आशा शेष रह गई थी, जिसके लिए ज़िन्दा रहती? फिर भी वह बेचारी मरी नहीं और विधाताके इस क्रूर प्रहारको सहती हुई किसी प्रकार अपने दिन काटने लगी।

* * *

रहमानको मिस्रकी खाइयोंमें लड़ते हुए एक वर्ष बीत गया था और अपनी वीरता और साहसके लिए काफ़ी ख्याति प्राप्त कर चुका था। इसीसे वह हवलदारसे जमादारका पद भी प्राप्त कर चुका था। हवलदार तो मिस्रमें आनेके लगभग एक मास बाद ही बना दिया गया था। जिस समय रहमान लड़ाईके मोर्चेपर होता, लड़नेमें ही वह विशेष आनन्द अनुभव करता और उसे दूसरे कुछका ध्यान ही नहीं आता; परन्तु अपने खाली समयमें वह घरकी ही बात सोचा करता। कभी-कभी घरकी यादमें वह बच्चोंकी भाँति सिसककर रो पड़ता और अपनेको धिक्कारने लगता कि वह अपनी बुड्ढी माँ और प्यारे भाईको बिना कुछ कहे-सुने यों चला आया। यह उसने उनके प्रति घोर अन्याय किया है। घर पहुँचकर इसके लिए वह अवश्य प्रायश्चित्त करेगा। वह खंजनपुर वापस जायगा और माँके चरण पकड़ रो-रोकर क्षमा माँगेगा। भावोंमें तल्लीन कभी-कभी वह अपने घर पहुँचनेके कल्पना-चित्र भी खींचने लगता। युद्ध-स्थलसे वह घर पहुँचकर आँगनमें खड़ा है। सुलेमानने जो उसे देखा, तो 'अम्मा, भैया' कहता हुआ आकर उससे लिपट गया है। इतनेमें अम्मीजान भी आ पहुँचती हैं और आँखोंमें आँसू भरकर कहती हैं—'क्यों बेटा, मुझे दुख देनेको ही जन्म लिया था? ऐसे ही कल्पना-चित्र रहमान जब-तब देखा करता और विचार-लहरी टूटनेके घंटों बाद तक उसका प्रभाव उसके हृदयपर रहता था, जिसके कारण वह प्रायः सुस्त और उदास दिखाई देता।

एक दिन रातमें रहमानने एक बड़ा ही करुण स्वप्न

देखा कि उसका छोटा भाई सुलेमान रोग-शय्यापर पड़ा है और बेहोशीमें उसके नेत्र मुँदे हैं। शरीर ज्वरके तापसे जल रहा है। पासमें बैठी बूढ़ी माँ असमर्थताके आँसू बहा रही है। बस, उसकी नींद उचट गई और स्वप्नकी याद करके उसका हृदय काँप उठा। काफ़ी धूप निकल आनेपर भी वह चारपाईपर पड़ा-पड़ा जाने क्या सोचता रहा था कि इतनेमें उसका एक सूबेदार मित्र वहाँ आ पहुँचा और उसका उतरा हुआ चेहरा देखकर बोला—'क्यों रहमान, कैसी तबीयत है ? चारपाईसे नहीं उठे अभी ?'

रहमान पहले तो चुप रहा ; परन्तु मित्रके आग्रहपर उसे सारी बात बतानी पड़ी। स्वप्नकी बात सुनकर सूबेदार ठहाका लगाकर हँसा और बोला—'तुम तो कहते थे, मैं बड़ा बहादुर हूँ !'

रहमान विवादमें पड़ना नहीं चाहता था। उसने बड़ी नम्रतासे उससे छुट्टीके लिए प्रार्थना की। उस ख़ान अफ़सरने कहा—'अच्छा भाई, हम तुम्हें दो महीनेकी छुट्टी दिलवा देंगे।'

रहमानने सिर हिलाते हुए कहा—'नहीं, कमसे कम तीन महीनेकी।'

× × ×

जनवरीके जाड़ोंकी अँधेरी रात थी। आकाशमें काले बादल छाए हुए थे। अभी थोड़ी देर पूर्व महावत बरसी थी ; ओले भी गिरे थे। हड्डियोंको काटनेवाली ठंडी हवा चल रही थी। रास्ते भर ट्रेनके यात्री ऋतुकी तीव्रताके विषयमें बातचीत करते रहे थे। नौ बजेके लगभग खंजनपुरके छोटे-से स्टेशनपर ट्रेन रुकी। उस शान्त निर्जन प्लैटफार्मपर रहमान उतर पड़ा। कोलाहल-पूर्ण गाड़ी स्टेशनको सूना करके चली गई। रहमानने देखा, दो-एक ग्रामीण यात्री इधर-उधर तार लाँघकर चले गए। पर वह वहीं एक ओर एक आमके वृक्षके नीचे खड़ा रहा। अपने आगमनका भेद वह किसीपर प्रकट नहीं करना चाहता था, इसीलिए दूसरोंसे दृष्टि बचाकर वह वहाँ रुक गया था। अपने आकस्मिक आगमनसे अपने भाई और माँको वह आश्चर्य और आनन्दमें विभोर कर देना चाहता था। इसी विचारसे उसने अपने आनेका कोई पत्र भी घरपर नहीं लिखा था। जब माँ और भाई उसे अचानक आया हुआ देखेंगे, तो वे कितने हर्षित होंगे और फूले नहीं समायँगे। बार-बार वह यही सोचता रहा।

अन्तमें रहमान भी खंजनपुरकी ओर चल पड़ा। रहमान टार्चके प्रकाशमें राह खोजता चलने लगा। वर्षा हो जानेसे ज़मीन गीली हो गई थी। कहीं-कहीं गड्ढोंमें पानी भी भर गया था। उनसे बच-बचकर वह चल रहा था। चारों ओर सन्नाटा था, केवल दूरके गाँवोंमें रह-रहकर कुत्ते भोंक उठते थे। ठंडके कारण उसकी आँखों और नाकसे पानी निकल रहा था ; परन्तु हृदयमें अपूर्व उल्लास और उत्साह होनेके कारण जैसे उसे जाड़ेका ध्यान ही न था। बस, उसे घर पहुँचनेका ध्यान था। विचारोंमें डूबा जैसे वह उड़ा जा रहा था।

आख़िर उसका मकान आ ही गया। रहमानने देखा, द्वारके किवाड़ खुले पड़े हैं और आँगनमें मलिन प्रकाश फैल रहा है। चौखट पारकर वह आँगनमें आ खड़ा हुआ। घरमें एक अजीब उदासी छाई थी, जिससे उसके हृदयकी सारी उत्सुकता और उत्साह, उफनते हुए दूधपर पानी पड़ जानेके समान, शान्त पड़ गए। दुश्चिन्ता और आशंकाने आकर सहसा उसके हृदयको दबोच-सा लिया। नीमके पेड़के नीचे जो एक क़ब्र थी, उसके छोटे-से आलेमें रखे दीपकी शिखा सिहर-सिहरकर आँगन और क़ब्रको क्षीण प्रकाश प्रदान कर रही थी। एक कोनेमें एक झींगुर बड़े आर्त्त स्वरसे कोई करुण-गान गा रहा था।

रहमानके पाँव क़ब्रकी ओर बढ़े। उसे यह समझनेमें देर न लगी कि वह उसके प्यारे भाई सुलेमानकी क़ब्र थी। रहमानने बहुतेरा प्रयत्न किया कि वह अपने हृदयको पत्थर बना ले ; परन्तु वह वैसा न कर सका और फूट-फूटकर रो पड़ा। वह और आगे बढ़ा। ओफ़ ! यह क्या ? वह अपलक नेत्रोंसे देखने लगा। उसकी बुड्ढी माँ ज़मीनपर बैठी क़ब्रपर सिर रखे ऊँघ गई थी। रहमानने उसे झकझोरकर पुकारा—'अम्मीजान, तुम यहाँ बैठी हो, इतनी ठंडमें !' परन्तु उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उसे कोई उत्तर न मिला। सूने मकानकी दीवारोंसे केवल प्रतिध्वनि लौट आई। रहमानने टार्चके प्रकाशमें देखा, माँका म्लान मुख आँसुओंसे भीगा है, जिससे ज्ञात होता था कि कुछ समय पहले रोती-रोती वह सो गई थी। रहमानने उसकी नाड़ी देखी। वह मन्द गतिसे चल रही थी। बुढ़ियाको उठाकर उसने टूटी चारपाईपर लेटाकर

अपना ओवरकोट ओढ़ा दिया। बुढ़ियाका निर्बल शरीर जाड़ेसे सिकुड़ गया था, शरीरका ख़ून जम गया था। उस बेचारीमें इतना दम कहाँ कि वह इस भीषण शीतका प्रहार सहन कर सकती? उसकी दुर्बल काया मृत्युसे असफल युद्ध कर रही थी। अन्तमें बुढ़ियाने दम तोड़ दिया। रहमानकी बुरी दशा हो गई। वह माँके मृत शरीरसे लिपट फूट-फूटकर रो पड़ा। अब उसके लिए सारा संसार शून्य हो चुका था। वह घर जैसे उसे काट खाने लगा। वह पागलोंकी भाँति उठा और माँके मृत शरीरको दफ़नाए बिना ही स्टेशनकी ओर लौट पड़ा। फिर ट्रेनमें बैठ युद्ध-क्षेत्रकी ओर चल दिया।

सबेरे जब खंजनपुर-निवासी सोकर उठे, तो निराश सैनिक अपने घरसे कोसों दूर पहुँच चुका था!

सैदपुरिया स्ट्रीट, बरेली]

---

# चिट्ठी-पत्री

## हिन्दी-लेखक और रायल्टी

प्रिय सम्पादकजी,

मैं एक दुविधामें पड़ गया हूँ। यदि आपको लिख दूँ, तो शायद अनुचित न होगा। पत्रकारकी दृष्टिसे भी आपको लिख सकता हूँ। मेरा इरादा ऊँचे स्टैण्डर्डकी दो रीडरें तैयार करनेका था। इन रीडरोंमें कुछ लेख मैं अपने रखना चाहता था, कुछ अन्य हिन्दी-लेखकोंके। इन लेखकोंको पत्र-पुष्पके रूपमें मैं कुछ देना भी चाहता था। लेकिन कुछ लेखक अपनी एक रचनाके लिए भी रायल्टी चाहते हैं। एक सज्जन पुस्तककी १००० कापियाँ छपनेपर २५ प्र० श० की माँग पेश करते हैं, दूसरे १५ प्र० श० की। जहाँ तक मुझे मालूम है, अंगरेज़ी-लेखकोंमें भी अपनी एक रचनापर रायल्टी लेनेकी पद्धति नहीं। यदि इस तरह लेखक रायल्टी माँगने लगें, तो अच्छे संग्रह ही तैयार न हो सकें। कल्पना कीजिए, एक पुस्तकमें २० पाठ हैं—दस मेरे हैं और दस अन्य लेखकोंके। किताबकी क़ीमत है दस आने, जो प्रचारकी दृष्टिसे कम रखी गई है। लेखकको प्रकाशककी ओरसे दस फ़ी-सदी रायल्टी मिलती है। इस हिसाबसे १००० कापियाँ बिकनेपर उसे ६२॥) मिलेंगे; लेकिन दूसरे दस लेखक उससे २००) (बीस फ़ी-सदी प्रत्येककी रायल्टी) माँगते हैं। कदाचित् उसे बीस लेखोंका संग्रह तैयार करना हो, तब तो उसे ४००) दूसरे लेखकोंको प्रति १००० कापियोंके बिकनेपर देने पड़ा करेंगे, जब कि उसे ६२॥) की ही प्राप्ति होगी। मैं समझता हूँ १५ प्र० श० या २० प्र० श० रायल्टी माँगना हिन्दी-लेखकोंकी ज़्यादती है। हाँ, वे एकमुश्त रुपया माँग सकते हैं; पर वह भी उचित होना चाहिए। आपकी जानकारीके लिए मैं उक्त दोनोंके नाम...लिखे देता हूँ। क्या आप इस विषयमें कुछ प्रकाश डाल सकेंगे? इस विषयमें यदि कुछ हिन्दी-लेखक मिलकर निश्चित कर सकें, तो बहुत सुविधा हो। यहाँ बम्बई-यूनिवर्सिटी गुजराती सलेक्शनके लिए लेखकको २५) प्रतिपाठ पुरस्कार देती है।

२८, शिवाजी पार्क, बम्बई २८] —जगदीशचन्द्र जैन

## गुरुदेवका महत्व

गुरुदेवके गौरवमें निकला 'विशाल भारत' का विशेषांक देखकर प्रसन्नता हुई। गुरुदेव वास्तवमें हमारे जीवनकी अन्यान्य परिस्थितियोंमें दिशा-ज्ञान करानेवाले प्रदीप थे, इसमें सन्देह नहीं। पिछले बीस-पचीस सालोंमें ज्ञानकी हरएक शाखामें उनकी-सी गहन अधिकार रखनेवाली प्रतिभाशाली विभूतियाँ भारतमें बहुत ही कम हुई हैं। अधिक प्रसन्नता और सन्तोष तो इस बातका है कि गुरुदेवकी विशाल ज्ञानोपासनामें भारतीय वैदिक तथा संस्कृत वाङ्मयका भी अन्तर्भाव है, जो बड़े-बड़े पंडितोंमें भी कम पाया जाता है। गुरुदेवने काव्य, नाटक, कथा-उपन्यास, समीक्षा, गम्भीर साहित्य, शिक्षा, दर्शन आदि कई क्षेत्रोंमें अपूर्व और कुतूहलास्पद कार्य किया है; लेकिन उनकी उच्च संस्कृताभिज्ञताने उनके इस बहुविध क्षेत्रको सम्पन्नता और गौरव प्रदान किया, यह स्मरण

रहे। गुरुदेव प्राचीन वैदिक साहित्यके मार्मिक अभ्यासी ही नहीं थे; किन्तु उसके उच्च लक्ष्य और आदर्शोंके उदाहरण-स्वरूप भी थे। 'प्राचीन साहित्य' नामक एक किताबमें संस्कृत और वैदिक वाङ्मयपर उनकी लिखी विद्वत्तापूर्ण लेख-मालाएँ उनकी संस्कृतज्ञताको अच्छी तरह प्रकट करती हैं।

भारतीय आदर्श और वाङ्मय, ये दोनों बातें ऐसी हैं, जिन्हें विभाजित या पृथक नहीं किया जा सकता। भारतकी सच्ची और महात्म विभूतिके लिए इन दोनों पहलुओंको समझ लेना बड़ा आवश्यक है। गुरुदेव इस बातके प्रतीक थे। आजकलकी पाश्चात्य सभ्यतासे प्रभावित भारतीय विद्वान् अपनेको पूरा भारतीय कहकर भी कितनी विदेशी प्रवृत्ति प्रकट करते हैं, इसका हमें अनुभव है। अगस्त, १९४० में आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयके आचार्य (D.Litt) का पदवी-पत्र स्वीकार करते समय दिया गया गुरुदेवका भाषण हमारे सच्चे भारतीय होनेका निर्दिष्ट लक्षण उपस्थित करता है। गुरुदेवका महत्व केवल उनके कार्यकी विशालता और बहुविधतामें ही नहीं है, बल्कि प्रधानतया इसमें है कि प्रतिपादित मतों और विचारोंके अनुसार उन्होंने सच्चे भारतीयका अन्तरंग धारण किया था, जो आज हमारे नेताओं और विचारोंका वास्तवमें मार्ग-दर्शक है।

६२, दारागंज, प्रयाग | —बालाजीराव जोशी

### हिन्दीका प्रचार कैसे हो?

हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानीकी वास्तविकताका भंडा-फोड़ हो चुका है। हिन्दीका अब उत्कर्ष हो रहा है। यह समय सँभल जानेका है। हिन्दीके धुरन्धर विद्वानोंको साहित्यके क्षेत्रमें कमर कसकर डट जाना चाहिए। उन्हें आपसी मतभेदोंको समूल नष्ट कर देना चाहिए। सम्पादकोंको पक्षपातकी स्वार्थपूर्ण नीतिको त्याग देना चाहिए। हिन्दीके बढ़ते हुए विस्तृत क्षेत्रके लिए नवीन लेखकों और कवियोंको पूर्णरूपसे सहयोग देकर उन्हें आगे लानेका प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दी-प्रचारके लिए सबसे बड़ा सहयोग सम्पादकोंसे मिल सकता है। वे अपनी पत्रिकाके लेखोंके लिए पुरस्कार रखें और लेखकोंको यथोचित प्रोत्साहन दें।

धनी-मानी सज्जनों, राजा-महाराजाओं तथा साहित्य-समितियों द्वारा प्रतिवर्ष कम-से-कम हिन्दीकी पचास विभिन्न प्रकाशित पुस्तकोंपर पुरस्कार दिए जायँ। इससे हिन्दी-संसारमें जिस विषयकी पुस्तकें कम हैं, उनकी अच्छी पूर्ति हो सकती है। इसके साथ विभिन्न प्रान्तोंमें हिन्दीको प्रोत्साहित करनेके लिए उस प्रान्तके ही निवासियोंसे किसी विषयपर पुस्तकें लिखवाकर उत्तम पुस्तकोंपर पुरस्कार दिया जाय तथा पुस्तक-प्रकाशनमें भी यथोचित सहायता की जाय।

अहिन्दी-प्रान्तोंमें हिन्दीके प्रोपेगेण्डाके लिए हिन्दीके परचे और पुस्तिकाएँ लोगोंमें वितरण की जायँ। हिन्दीके प्रमुख लेखकोंकी प्रचलित और लोकप्रिय कविताओंके संग्रह अमूल्य अहिन्दी-प्रान्तोंमें अधिकाधिक संख्यामें बाँटे जायँ। इनके साथ हिन्दी-पुस्तकोंका संक्षिप्त सूचीपत्र जोड़कर विज्ञापन भी बड़ी सरलतासे किया जा सकता है। हिन्दीके शब्दोंको प्रचलित और प्रभावशाली बनानेके लिए उनका दैनिक बोल-चालकी भाषामें प्रयोग करना हिन्दी-जानकारोंका हिन्दी-उत्कर्षके लिए प्रधान कर्त्तव्य है। प्रत्येक हिन्दी-भाषीका कर्त्तव्य है कि वह हिन्दी-शब्दोंका अपनी बोल-चालकी भाषामें प्रयोग करे। इसका फल यह होगा कि हिन्दी-शब्द बोल-चालकी भाषाके शब्द हो जानेपर महत्त्व-शाली हो जायँगे और बोलने तथा सुननेमें मधुर और प्रिय जान पड़ने लगेंगे। हिन्दीके साइनबोर्डों और पोस्टरोंको भी ध्यानसे छपवाना या बनवाना चाहिए, ताकि हिन्दी-शब्द अशुद्ध न लिखे जायँ। कारण, अशुद्ध बोलना और लिखना भाषाकी मर्यादाको नष्ट करना है। प्रेसवालोंको चाहिए कि हस्त-लिपिकी अशुद्ध हिन्दीको शुद्ध कर लें, फिर उसे छापें।

समय-समयपर कवि-सम्मेलनों तथा अन्य साहित्यिक उत्सवोंका भी आयोजन होना चाहिए। कवियोंको चाहिए कि वे सरल, चुभती, चलती और मनभाती चीज़ें लिखें। मन्दिरों, शिवालयों और बैठकोंमें भी हिन्दीके ललित छन्दो-पदेश टाँगे जाने चाहिएँ। सब चिट्ठियों, लिफ़ाफ़ों और पैकेटोंपर पते हिन्दीमें लिखे जायँ, यहाँ तक कि उनकी गिनती भी हिन्दीमें लिखी जाय। आज हमारे जितने भी हिन्दीके पत्र हैं, उनके ग्राहकोंका पता अंगरेज़ीमें ही लिखा जाता है। क्या यह हिन्दी-पत्रोंके लिए लज्जाकी बात नहीं? मेरा सम्पूर्ण हिन्दी-भाषियोंसे नम्र निवेदन है कि वे उपर्युक्त बातोंमें से किसी-न-किसीको अवश्य प्रयोगमें लायँ और हिन्दी-प्रचारमें सहायता दें।

बछरावाँ, रायबरेली ] —रामसिंह ठाकुरिया

# समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

**कादम्बरी-कथासार:** लेखक—प्रो० गुलाबराय एम० ए० ; प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा ; मूल्य लिखा नहीं।

'कादम्बरी' का नाम काल्पनिक काव्य-जगत्‌में अत्यन्त प्रसिद्ध है। महाराष्ट्रमें तो 'उपन्यास' का 'कादम्बरी' दूसरा पर्याय-सा बनकर व्यवहृत होता है। 'कादम्बरी' की कथा कैसी है, इसे प्रत्येक जानना चाहता है। यह कथा भी ऐसी रोचक है कि आप एक बार पढ़ने बैठ जाइए, फिर पुस्तक हाथसे छोड़नेको मन नहीं होता। साहित्य-जगत्‌में जागरूक ज्ञान-पिपासाको शमन करनेके लिए उक्त 'कथासार' के लेखकने यह रचना की है। प्रस्तुत पुस्तकमें एक नहीं, अनेक ऐसे स्थल हैं, जो मख़मली गद्देमें छिपाकर रखे हुए पैरमें चुभनेवाले गोखरुओंकी तरह चुभते हैं—बेतरह खटकते हैं। पहली बात बाण भट्टके पुत्रका नाम-विषयक विवाद है। यह बात मानी जा चुकी है कि उनके पुत्रका नाम पुलिन (पुलिन्द) भट्ट था, भूषण भट्ट नहीं। पं० पाण्डुरंग शास्त्रीकी खोज तथा महाकवि धनपालका निम्न-लिखित श्लोक इसके प्रबल प्रमाण हैं:—

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन।
किम्पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्द-कृत संनिधिः॥

इस विषयको हम स्वतन्त्र लेखमें सविस्तर लिखेंगे। हम इस बातसे भी सहमत नहीं कि 'कादम्बरी' के समास पण्डितोंके भी दाँत खट्टे करनेवाले हैं। ऐसे तो और ही ग्रन्थ हैं, जैसे—'वरदाम्बिका-चम्पू', 'तिलकमंजरी' आदि। 'कादम्बरी' तो बड़ा ललित काव्य है। हाँ, बी० ए० और एम० ए० के छात्र जो संस्कृत पढ़ते हैं, उनकी दृष्टिसे यह बात कही जाय, तो ठीक भी है, क्योंकि उनकी 'योग्यता' ही क्या होती है ! प्रस्तुत 'सार' की और बातें तो जाने दीजिए, शब्दोंमें भी बड़ा मतभेद है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द लीजिए :—

| मूल पुस्तकका पाठ | 'सार'का पाठ |
|---|---|
| उज्जयिनी | उज्जयनी |
| शिप्रा | छिप्रा |
| विद्वान् | विद्वान |
| शनैश्चर | शनिश्चर |
| ज्यौतिषी | ज्योतिषी |
| चन्द्रापीड | चन्द्रपीड़ |
| कुलूत या कुत्तल | कतूल |
| चन्द्रप्रभ | चन्द्रप्रभा |
| निवृत्त | निवृत |
| अरिष्टा | अरिष्ठा |
| अन्तर्धान | अन्तर्ध्यान |
| अच्छोद | आच्छोदी |

इत्यादि। रही कथाकी बात, वह भी कहीं टूट-सी गई है—उदाहरणार्थ ४७ वें पृष्ठकी १वीं पंक्ति ठीक नहीं; पृष्ठ ४८ की ३-री पंक्ति ठीक नहीं ; ७ वीं व ८ वीं भी ग़लत हैं। पृष्ठ ५१ कथाकी दृष्टिसे असम्बद्ध है। 'हेममण्डप' के वर्णनकी चर्चा भी छोड़ दी है। पृष्ठ ४५ पर राजमाता ही नहीं बुला रही ; किन्तु चित्ररथ व राजमाता दोनों ही बुला रहे हैं। पृष्ठ ४६ की—'प्रेम...वासनावश' यह भाषा निराधार है। पृष्ठ ४३ पर 'महाश्वेताको बोला' यह अंश परिवर्षित है। 'रमणीक स्थान' नहीं, किन्तु चैत्ररथ नामक कानन। जरासन्धकी प्राप्ति भी मूलके विरुद्ध है। इत्यादि। यदि प्रस्तुत पुस्तकका मूल संस्कृत कादम्बरीसे एक बार मिलान कर लिया गया होता, तो शायद ऐसी भूलें न होतीं। आशा है, अगले संस्करणमें यह सब त्रुटियाँ दूर कर दी जायँगी। —हरिदत्त शर्मा शास्त्री

**हृदय-ध्वनि :** लेखक—श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी, एम० ए० ; प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर ; पृष्ठ-संख्या २०९ ; सजिल्द प्रतिका मूल्य १।-)।

श्री अवस्थीजी हिन्दीके प्रतिष्ठित कलाकार हैं। आप कविता, कहानी, एकाङ्की नाटक, आलोचना, निबन्ध आदि सभी कुछ लिखते हैं और उनपर अपनी छाप अंकित करनेका प्रयत्न करते हैं। 'हृदय-ध्वनि' उनके 'साहित्यिक लेखों'का ही, जैसा कि प्रकाशकीय पंक्ति कहती है, 'संग्रह' नहीं है, उसमें मनोविज्ञान, साहित्य, समाज आदि सभी विषयोंका विवेचन है, जैसे—हाँ, नहीं, इच्छा, स्व० रामचन्द्र शुक्ल, कर्मकाण्ड और वितंडावाद (नितंडावाद नहीं ; प्रेसके भूतोंका इस तरहका उपद्रव यत्र-तत्र दिखलाई देता है।), पश्चात्ताप, प्रकाश-अन्धकार आदि।

हिन्दीमें 'निबन्ध' और 'प्रबन्ध' को अंगरेज़ीके 'एसे'का पर्यायवाची माना जाता रहा है ; पर अब उसमें भेद भी

किया जाने लगा है। निबन्ध उसे कहते हैं, जिसमें लेखक अपने अनुभवोंको व्यक्त करता है और प्रबन्ध उसे, जिसमें वह अपने अध्ययन—ज्ञान—को तटस्थ होकर प्रस्तुत करता है। इस प्रकार एकमें Subjectivity (वस्तुको अपनेमें आत्मसात् कर लेनेके पश्चात् उसका बिम्ब-वर्णन) और दूसरेमें Objectivity (वस्तुका अपनेको पृथक रखकर किया गया बाह्य-वर्णन) प्रधान रहती है। प्रस्तुत पुस्तकके लेखकने निबन्धको 'किसी प्रकारके बन्धनको न स्वीकार करनेवाला साहित्यिक गुंफन' तथा प्रबन्धको 'विशेष प्रकारकी बँधनीके अनुसार की गई साहित्यिक रचना' कहा है। यहाँ हमें प्रोफ़ेसर श्री रामरतन भटनागरकी निबन्धकी उस परिभाषाका भी स्मरण हो आता है, जिसमें वे कहते हैं—'निबन्ध शब्दका अर्थ है बँधा हुआ, अतः सुबद्ध लेख।' ("निबन्ध-प्रबोध" पृष्ठ ६) हमें भटनागरजीकी यह शाब्दिक व्याख्या ठीक नहीं प्रतीत होती। 'नि' का अर्थ 'सु' नहीं हो सकता। 'निबन्ध' का शाब्दिक अर्थ अवस्थीजीका उचित जँचता है। परन्तु अवस्थीजने प्रस्तुत संग्रहमें भूमिकाके रूपमें 'निबन्ध' पर १८ पृष्ठोंमें जो कुछ लिखा है, उससे अंगरेज़ी निबन्ध-कारोंका ही चलता हुआ परिचय मिलता है—हिन्दी-निबन्ध-साहित्यपर उन्होंने बहुत ही कम, डेढ़ पेजमें, बहुत मामूली जानकारी दी है। यह सच है कि अभी हिन्दी-निबन्ध-साहित्य पर्याप्त विकसित नहीं हो पाया है ; फिर भी उसका जो रूप आज है, उसकी समीक्षा की जा सकती थी।

संकलित निबन्धों और प्रबन्धोंमें लेखकने स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्लकी शैलीमें कुछ मनोवैज्ञानिक रचनाएँ भी लिखी हैं, और उनमें वे काफ़ी सफल हुए हैं। 'पश्चात्ताप' की व्याख्या करते हुए आप लिखते हैं—'पापकी परेशानीका दूसरा नाम पश्चात्ताप है। वह बुराईकी थकावट है। पश्चात्ताप आदर्शका सच्चा भाई है। वह आदर्शका ही पद-चिह्न है।' 'क्रोध' की व्याख्या पं० रामचन्द्र शुक्लने की है—'बैर क्रोधका अचार या मुरब्बा है। दण्ड कोप ही का एक विधान है।' हमें प्रसन्नता है, अवस्थीजीने शुक्लजीकी मनोवैज्ञानिक निबन्ध-शैलीको अपनानेमें काफ़ी सफलता प्राप्त की है। 'इक्केवाला' निबन्धमें जब हम काशीके इक्केवालोंकी ये उक्तियाँ सुनते हैं—'मरबो का, जान देबो का ? सरबा सुनत नाहीं ?' तो हमें स्व० चन्द्रधर गुलेरीकी 'उसने कहा था ?' कहानीका स्मरण हो आता है, जिसमें उन्होंने अमृतसरके 'बचो खालसाजी, आने दो लालाजी, हट जा जीणा जोगिए, हट जा पुत्तां प्यारिए' की ललकार करनेवाले इक्केवालोंका सुन्दर चित्र खींचा है। संग्रहमें 'पल्हड़' एक रेखाचित्र है और 'प्रकाश' तथा 'अन्धकार' गद्य-काव्य। 'प्रकाश' में चिन्तना अधिक है और अन्धकारमें भावना। अन्तिम निबन्ध स्व० पं० रामचन्द्र शुक्लपर की गई समीक्षा है, जिसके निष्कर्षोंसे मतभेद रहते हुए भी यह कहा जा सकता है कि उसमें आलोचककी पैनी दृष्टि और अपने मतको प्रतिपादन करनेवाली तर्क-बुद्धिकी प्रचुरता है। लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारोंपर निर्भीकतासे लिखनेकी प्रवृत्ति बढ़नी चाहिए, तभी हम साहित्यका ठीक मूल्य आँक सकेंगे। इस दृष्टिसे हम अवस्थीजीकी इस समीक्षाका स्वागत करते हैं। 'हृदय-ध्वनि'के लेखोंसे हिन्दी-निबन्ध-साहित्यकी श्रीवृद्धि होगी, इसमें सन्देह नहीं।

**गद्य भारती** : सम्पादक—सर्वश्री केशवप्रसाद मिश्र और पद्म-नारायण आचार्य ; प्रकाशक—एजुकेशनल पब्लिशिंग हाउस, बनारस ; पृष्ठ ५७६ ; सजिल्द प्रतिका मूल्य २॥)।

पुस्तक हिन्दीके कई लेखकोंके निबन्धों-प्रबन्धोंका संग्रह है। 'यह उन विद्यार्थियोंके लिए प्रस्तुत किया गया है, जिनको हिन्दीके प्रौढ़ साहित्यका अध्ययन न करके भी उसकी वर्तमान प्रचलित शैलियोंका परिशीलन और अनु-करण करना अभीष्ट है।' इसलिए यह रवि बाबूके वचन-सूत्रोंसे लेकर काशी-विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागकी ओरसे दिए जानेवाले 'अभिनन्दन-पत्र'—जो श्रीमान आचार्य बाबू श्यामसुन्दरदासजी भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी-विभाग काशी वि० वि० से प्रारम्भ होकर 'अन्तमें हम ईश्वरसे हम यही प्रार्थना करते हैं कि आप शतायु होकर इसी प्रकार हिन्दीके अभ्युदयका प्रयत्न करते रहें और...रखें।' में समाप्त हुआ है। यह अभिनन्दन-पत्र भाषा-शैलीके एक उदाहरणके रूपमें दिया गया है ; पर यह किस महाभाग लेखककी शैली है, इसका कहीं उल्लेख नहीं है। यशोधराके 'चम्पू-काव्य' का एक अंश उद्धृतकर बाबू मैथिलीशरण गुप्तकी भी एक गद्य-शैली प्रस्तुत कर दी गई है। क्या ही अच्छा होता, यदि 'आमुख'में हिन्दी-गद्य-साहित्य और उसकी विभिन्न शैलियोंकी विवेचनात्मक विस्तृत चर्चा विद्वान लेखकों द्वारा हो जाती। इससे विद्यार्थियोंको एक

साथ ही 'पका हुआ मसाला' मिल जाता। फिर भी संग्रहका अध्ययन करनेवाला विद्यार्थी हिन्दी-साहित्यकी गति-विधिको भलीभाँति समझ सकेगा। संग्रह उपादेय है। सम्पादकोंने प्रत्येक निबन्ध या प्रबन्धके साथ जो रचयिताकी लेखन-शैलीका परिचय दिया है, वह कामका है।

—विनयमोहन शर्मा

**अवतारोंके क़िस्से** : लेखक—सय्यद महम्मद मंज़ूरअली रिज़वी; प्रकाशक—लाला रामनारायण लाल, बुकसेलर, इलाहाबाद; मूल्य ४)।

अभी उस दिन आगरेमें, हिन्दीपर व्याख्यान देते हुए, माननीय डाक्टर कैलाशनाथ काटजूने कहा था कि हिन्दीमें मुसलमानोंके और उर्दूमें हिन्दुओंके धार्मिक पुरुषोंके चरित्र लिखे जानेसे दोनों जातियाँ एक-दूसरेके बहुत समीप पहुँच सकती हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें हमें काटजू साहबके उपर्युक्त कथनकी सिद्धिका ही शुभ प्रयत्न दिखाई देता है। इसमें 'राम-कहानी' 'कुमर कन्हैया' और 'महाभारतकी कहानी'—ये तीन कथाएँ वर्णित हैं। वर्णन करनेवाले एक मुसलमान विद्वान हैं। आशा है, उर्दूमें इसी प्रकारकी अन्य धार्मिक पुस्तकें भी प्रकाशित होंगी। हिन्दी-प्रकाशकोंको भी मुसलमानोंके धार्मिक आचार्यों और नेताओंके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी पुस्तकें प्रकाशित करनेपर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

**नवरस** : लेखक—सेठ गोविन्ददास; प्रकाशक—सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद।

सेठ गोविन्ददासजी नाटक लिखनेमें अच्छी ख्याति लाभ कर चुके हैं। 'नवरस' भी आप ही का लिखा हुआ नाटक है। यह तीन अंकोंमें सम्पन्न हुआ है। इस नाटककी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें प्रत्येक रसको एक पात्रका स्वरूप दिया गया है—यथा, वीरसिंह, रुद्रसेन, ग्लानिदत्त, मधु (वात्सल्य), अद्भुतचन्द्र, भीम, शान्ता, करुणा, प्रेम (श्रृंगार) और लीला (हास्यरस)। एक कथानकके रूपमें इन पात्रोंका सच्चा स्वरूप-बोध कराना अवश्य ही एक नई बात है। नाटक सुन्दर है, और उसमें भिन्न-भिन्न रसोंका अपने स्थानपर अच्छा परिपाक मिलता है। इस प्रकार नव रसोंको मानवी चोला पहनाकर उन्हें रंगमंचपर ला खड़ा करना निःसन्देह एक अभिनव कल्पना है।

**ग्राम-बाला** : लेखक—श्री कलाशचन्द्र 'पीयूष'; प्रकाशक—श्री भारती-निकेतन, बल्लीमारान, दिल्ली; मूल्य १)।

'पीयूष'जी द्वारा लिखित ग्राम-बालाकी यह काव्यमयी कहानी है। कहानीमें ग्रामीण जीवन और ग्राम-वातावरणका अच्छा अंकन किया गया है। 'पीयूष' जीका यह प्रथम प्रयास जान पड़ता है, अतएव वे प्रोत्साहनके अधिकारी हैं। पुस्तकके प्रारम्भमें प्रो० नगेन्द्र एम० ए० की लिखी 'एक दृष्टि' है। उसमें उन्होंने ठीक ही लिखा है कि 'पीयूषजीकी प्रतिभा अभी थोड़ी अपरिष्कृत (Raw) है, इसीलिए उनकी भाषा और छन्द-प्रवाहमें कहीं-कहीं संस्कारका अभाव दिखाई देता है।'

—हरिशंकर शर्मा

**पाटनका प्रभुत्व** : लेखक—श्री क० मा० मुन्शी; अनुवादक—श्री प्रवासीलाल वर्मा, मालवीय; प्रकाशक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई; पृष्ठ-संख्या १६०+१३६; मूल्य ॥=)+॥=) अजिल्द।

हिन्दीमें ऐतिहासिक उपन्यासोंका ख़ासा अभाव है। हर्षका विषय है कि हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालयने श्री मुंशीके 'पाटन नो प्रभुत्व' नामक ऐतिहासिक नाटकका यह अनुवाद (दो भागोंमें) प्रकाशित किया है। मुंशीजी गुजरातीके लब्ध-प्रतिष्ठ उपन्यास और कहानीकार हैं। दूसरे भागके अन्तमें उनकी एक कहानी ('कोतवाल साहब') भी दी गई है, जिससे श्री मुंशीकी कहानी-कलाका भी अच्छा आभास मिलता है। पूरे उपन्याको आद्यन्त पढ़ जानेके बाद जहाँ हम श्री मुंशीकी पैनी दृष्टि, सूझ, व्यापक लेखन-शैली और गहन अध्ययनशीलताके कायल हुए, वहाँ हमें यह एक बात खटकी भी कि कहीं-कहीं वे बातों, घटनाओं और विवरणोंको व्यर्थ और अनावश्यक विस्तार दे देते हैं। अच्छे उपन्यासमें यह दोष ही कहा जायगा। कारण, इससे पाठक कभी-कभी ऊब भी उठता है। ऐतिहासिक इतिवृत्तमें यह भले ही गुण समझा जाय; किन्तु उपन्यासमें तो यह खटकता ही है।

अनुवाद सरल और प्रवाहपूर्ण है। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई सुन्दर और प्रत्येक भागका ॥=) मूल्य अधिक नहीं है। आशा है, हिन्दी-संसार मुंशीजीके इस उपन्यासको चावसे पढ़ेगा।

—'अग्रदूत'

# सम्पादकीय विचार

## सर्वक्षार और भारत

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकामें एक कहावत है कि नक़्क़ाल कांग्रेसमैनकी अपेक्षा मौलिक मोची होना अच्छा है ( It is better to be an original shoe-maker than an imitate Congress-man )। पर श्रद्धा अथवा भक्तिसे प्रेरित होकर लोग दूसरोंका अनुकरण किया करते हैं। कभी-कभी शान दिखानेकी ख़ातिर भी कई बातोंकी नक़ल की जाती है ; पर जहाँ जीवन-मरणका सवाल हो, वहाँपर हमको बुद्धिसे इस बातकी जाँच कर लेनी चाहिए कि किसी बातकी नक़ल हितकर होगी अथवा अहितकर। जापानी आक्रमण हमारी सीमापर आ चुका है, और देशमें इस बातकी चर्चा है कि यदि किसी प्रकार जापानियोंकी प्रगति भारतवर्षमें हो, तो रूसियोंकी 'सर्वक्षार-नीति' (Scorched earth policy) का अनुकरण करना चाहिए, अर्थात् ऐसी सब सामग्रियों, मकानों व अन्य पदार्थोंको नष्ट कर देना चाहिए, जिनका आक्रमणकारी अपने हितके लिए उपयोग कर सकें। मलाया और डच ईस्ट इंडीज़में इसी सर्वक्षार-नीतिका प्रयोग किया गया और अंगरेज़ी पत्रकार इस नीतिके समर्थनमें प्रशंसाके पुल बाँध रहे हैं। हमें दुःख है कि हमें मिट्टीके तेलके कुओं-सम्बन्धी इतना ज्ञान नहीं कि नए कुएँ और तेल खींचनेकी मशीन कितने दिनोंमें दुबारा चालू किए जा सकते हैं और न हमें इस बातका ही पता है कि रूसमें सर्वक्षार-नीति कहाँ तक सफल हुई है। पर एक बात ज़रूर है और वह यह कि रूसकी लड़ाई अपने राष्ट्रीय जीवनकी रक्षाकी लड़ाई है और भारतकी वर्त्तमान लड़ाईकी बागडोर देशके हाथमें नहीं और न भारत अभी स्वतंत्रताकी रक्षाके लिए लड़ रहा है। भारतकी लड़ाई एकदम छिड़ गई, क्योंकि ब्रिटिश सरकारने ऐसा करना उचित समझा।

पर हमें तो यहाँ इस बातपर विचार करना है कि यदि हमारी लड़ाई राष्ट्रीय भी होती, तब भी क्या हम वर्त्तमान स्थितिमें रूसियोंकी नक़ल कर सकते हैं ? हमारा यह मंशा कदापि नहीं है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे जापान या जर्मनीको सहायता दी जाय ; पर हमें इस बातका कोई जवाब नहीं मिलता कि कोई मैनेजिंग-एजेंट किसी कम्पनीके हिस्सेदारोंकी अनुमतिके बिना सर्वक्षार-नीतिका प्रयोग कैसे कर सकता है ? उदाहरणके लिए, मान लीजिए कि चटगाँव या कलकत्तेपर आक्रमण होता है ; वहाँपर टाटा कम्पनी या बंगाल केमिकल कम्पनीका कोई कारख़ाना है और उसके मैनेजिंग-एजेंट मान लीजिए कि श्री घनश्यामदास बिड़ला या करीमभाई हैं। क्या करीमभाई या बिड़लाजी डायरेक्टर्सकी अनुमतिके बिना मशीनोंको नष्ट करनेकी आज्ञा दे सकते हैं ? सब कारख़ाने गवर्नमेंटके तो नहीं हैं। हाँ, सरकारी कारख़ानोंमें सरकार इस नीतिका प्रयोग कर सकती है और वहाँ कोई कठिनाई भी खड़ी नहीं होती। इसके अतिरिक्त फ़स्लको नष्ट करने अथवा खलियानोंमें आग लगानेकी वृत्ति भारतीय किसानोंकी मनोवृत्तिके विरुद्ध है। अन्नमें आग लगाना किसानोंकी दृष्टिसे घोर पाप है। देहातमें खलियानमें आग लगानेवाला घोर पातकी समझा जाता है। ऐसी दशामें सर्वक्षार-नीतिका प्रयोग मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भारतमें कोई अच्छा असर नहीं डालेगा। वह तो एक ज़बरदस्तीकी बात होगी। अधिकारियोंको इस बातपर भी विचार करना चाहिए कि भारतके लाखों नंगे-भूखे लोगोंमें अभी इतनी जाग्रति नहीं है कि वे दो विदेशी शासनोंमें भेद कर सकें। यह हम जानते हैं कि हमारी यह बात नक्कारख़ानेमें तूतीकी आवाज़के समान होगी; पर हमें विश्वास है कि देशके कर्णधार इस प्रश्नपर सावधानीसे विचार करेंगे।

## यू० पी० के शहरोंमें अंधाकुप्प

युक्तप्रान्तके अनेक नगरोंमें अंधाकुप्प (Black Out) के प्रयोग किए जा रहे हैं। किसी-किसी नगरमें तो एक-एक घंटे तक हवाई-हमलेकी तैयारीके लिए रास्ते बन्द रखे जाते हैं। नगरोंको हवाई-हमलोंसे बचानेके लिए कुछ प्रयत्न होना चाहिए ; पर हमारी समझमें यह नहीं आता कि बिना हवाई-जहाज़मार तोपोंके कोरे अंधाकुप्पसे हवाई-हमलोंका आक्रमण कैसे रोका जा सकता है ? हवाई-हमलोंसे बचावके लिए हवाई-जहाज़मार तोपोंका होना

ज़रूरी है। साथ ही नगरवासियोंको इस बातकी भी शिक्षा देनी चाहिए कि अग्नि-बम कैसे बुझाए जाते हैं। कोरे किताबी ज्ञानसे काम न चलेगा। हर मुहल्लेमें अग्नि-बम दिखाकर उनमें आग लगानी चाहिए और तब लोगोंको उनके बुझानेका तरीक़ा समझाना चाहिए। बमोंके गिरनेपर लोगोंको ज़मीनपर क्यों लेट जाना चाहिए और खाइयोंमें क्यों छिप रहना चाहिए—इसपर भी काफ़ी चर्चाकी ज़रूरत है। विस्फोटक बमोंके फटनेसे एक ऐसा धक्का लगता है, जिससे फेफड़े और कानके पर्दे फट जाते हैं। ज़मीनपर लेटे रहनेसे हवाका धक्का शरीरको नहीं लग पाता। कील और काँचके लगनेसे आदमी घायल हो सकता है ; पर हवाके धक्केसे तो आदमी बच ही नहीं सकता। ऐसी बातोंको आसानीसे समझानेकी आवश्यकता है। पर जहाँपर हवाई-जहाज़मार तोपें नहीं हैं ; वहाँपर अगर रातमें आक्रमण न होकर दिनमें आक्रमण हुआ, तो अंधाकुप्पके कोई मानी नहीं हुए। साथ ही हिन्दुस्तानकी शुक्लपक्षकी रातें, जिनमें अंधाकुप्पा कोई मानी नहीं रखता, इतनी साफ़ होती हैं कि बमवर्षक हवाई-जहाज़को कोई कठिनाई नहीं हो सकती। सरकारको चाहिए कि जहाँ-जहाँ अंधाकुप्पपर ज़ोर दिया जाता है, वहाँपर हवाई-जहाज़मार तोपें रखी जायँ और बमवर्षक और लड़ाकू जहाज़, जो शत्रुका मुक़ाबिला कर सकें। इसके अतिरिक्त हमारी समझमें यह नहीं आता कि आगरा, मेरठ और दिल्लीमें कहाँसे हवाई हमला हो सकता है? उदाहरणके लिए आगरेको लीजिए। जब तक शत्रु बनारसको अपना अड्डा नहीं बना लेगा, तब तक आगरेपर सफल आक्रमण नहीं हो सकता। ऐसी दशामें यू० पी० सरकारको चाहिए कि अंधाकुप्पपर इतना ध्यान न दे, जितना भोजनकी कमीकी समस्यापर।

### गेहूँकी कमी

हिन्दुस्तान भरमें गेहूँकी कमी बहुत बुरी तरह महसूस हो रही है। बिहार, बंगाल और यू० पी० के पूर्वी ज़िलोंमें गेहूँका अच्छा आटा बड़ी मुश्किलसे मिलता है और गेहूँका एक-आध बोरा मिलना असम्भव-सा हो गया है। एक-एक रुपएका गेहूँ बहुत-से शहरोंमें भी कठिनाईसे मिलता है। गेहूँकी कमी बिहार, बंगाल और यू० पी०में ही नहीं है, वरन पंजाबमें भी महसूस हो रही है। गत मास हमने लिखा था कि क्या कोई केन्द्रीय असेम्बलीका सदस्य सरकारसे पूछेगा कि गत छः महीनोंमें कितना गेहूँ विदेश भेजा गया? असेम्बलीके प्रश्नोत्तरोंसे मालूम हुआ कि हमारे देशमें एक करोड़ टन गेहूँ पैदा होता है और ९० लाख टनका हमारा ख़र्च है। व्यापार-सदस्य सर मुदालियरने बताया कि सन् १९४०-४१ में गेहूँकी कुल पैदावार एक करोड़ टनकी हुई थी। एक लाख अठहत्तर हज़ार टन गेहूँ और बयासी हज़ार टन गेहूँका आटा विदेशोंमें भेजा गया। यदि इतना कम गेहूँ बाहर भेजा गया है, तो फिर गेहूँकी कमी क्यों महसूस की जा रही है? सरकारने जो भाव नियंत्रण किया है, उससे तो उस नीतिकी अदूरदर्शिता ही प्रकट होती है। यदि इस भाव-नियंत्रणके होनेपर भी लोगोंने गेहूँको खत्तियोंमें रोक रखा है, तो फिर उस गेहूँको बाज़ारमें लानेकी ज़िम्मेदारी किसकी है? भारतकी ग़ैरज़िम्मेदार सरकारको तनिक क्रियात्मक कल्पना-शक्तिसे काम लेना चाहिए और उसको जनताके प्रतिनिधियोंसे सहयोग करके इस छिपे हुए गेहूँको लोगोंको दिलवाना चाहिए। देशमें जो आतंक फैला हुआ है, उसका एक कारण यह भी है कि लोगोंको इस बातपर विश्वास नहीं है कि उन्हें खानेको उचित मात्रामें गेहूँ बाज़ारसे मिल सकेगा।

### सरकारका कर्त्तव्य

लन्दनके प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'इकनामिस्ट' ने लिखा है—'लड़ाईके दिनोंमें जनताको जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, उनका उत्तरदायित्व सरकार अपने सिरसे नहीं हटा सकती।' हमने इँग्लैण्डके अन्य पत्रोंमें भी पढ़ा है कि इँग्लैण्डकी सरकारने अन्न और फल पैदा करनेके लिए लोगोंको कितनी सुविधाएँ दी हैं। जर्मन पनडुब्बियाँ अंगरेज़ोंके माल-जहाज़ोंको डुबानेपर तुली हैं, और वीर अंगरेज़ चींटेकी भाँति अपनी रक्षामें चिपटे हुए हैं। खाद्य-सामग्री भी वे बाहरसे ला रहे हैं। साथ ही इंग्लैण्डमें खाद्य-सामग्री पैदा करनेके भी भगीरथ प्रयत्न किए जा रहे हैं। कृषि-विभागकी ओरसे लोगोंको सब सुविधाएँ दी जा रही हैं। हमारे देशमें भी अगर सूबेकी सरकारें काश्तकारोंको नहरोंसे मुफ़्तमें नहीं, तो नाममात्रके ख़र्चपर सिंचाईके लिए पानी दें, ताकि काश्तकार जानवरोंके लिए जल्दी-से-जल्दी चारा उगा लें और जल्दी साग-भाजी और अन्न पैदा करें, तो आतंक बहुत कम हो जाय। सरकार लोगोंको अपने घरोंमें कम-से-कम छः

THE CROWNING TOUCH to BEAUTY
दूसरे शब्दोंमें लम्बी और मुलायम जुल्फ़ें हैं। बालोंको यक़ीनी तौरपर सुन्दर बनानेके लिए नियमित रूपसे इस्तेमाल कीजिए—
Rosco's Perfumed
CASTOR OIL
FOR THE HAIR
गारंटीड मसालोंसे बना यह मुफ़ीद व दिल खुश करनेवाली खुशबूवाला तेल सिरकी कई बीमारियाँ दूर करता, दिमागको ठण्डा रखता व बालोंकी जड़ें मजबूत करता है।
FRANK ROSS & CO. LTD.
15/7, CHOWRINGHEE CALCUTTA
and at Darjeeling
35, PARK MANSIONS CALCUTTA
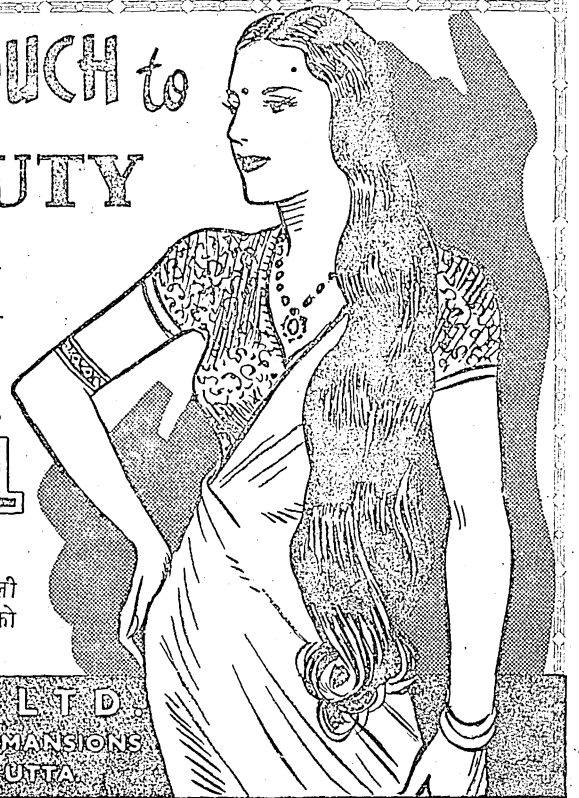
सावधान!!
सर्दी और खांसी
अथवा छाती की
किसी भी बीमारी के लिये
लोकप्रिय
सिरोलिन
'रोच'
सेवन करने का यही समय है

# विशाल भारत

जून, १९४२

संचालक
श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

सम्पादक
श्रीराम शर्मा

देशके लिए ६) वार्षिक
विदेशके लिए ९) „
बर्माके लिए ६॥) „

इस अंकमें पढ़िये



— शेष भीतर सूचीमें देखिये —

छमाही मूल्य ३।) ] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता [ एक अंकका ॥=)

जब वर्षा आए
वरसातमें टिकाऊ उम्दा आक्सफोर्ड वाटरप्रूफ जूता।
क्रोम चमड़ेके बादामी ग्रौर काले एस्काइडकी एड़ी ग्रौर तलेवाले जूते
नई काटके उम्दा चमकीले काले वाटरप्रूफ जूते।
Bata
जी. जी. फ्रूट प्रिजर्विङ्ग फैक्टरी, आगरा.

## विषय-सूची

[ जून, १९४२ :: प्रथम ज्येष्ठ, १९९९ ]

## विषय-सूची



SOVEREIGN-REMEDY
AMRUTANJAN
Best Indian Pain Balm
Amrutanjan Depot
होशियार होशियार नक़ल से
अमृताञ्जन
सब जगह मिलता है लाखों बिक गये

शिव और पार्वती

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता ]

[ श्री नीहाररंजन सेनगुप्त

# विशाल भारत

" सत्यम् शिवम् सुन्दरम् "
" नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः "

*भाग २९, अंक ६ ]* *प्रथम ज्येष्ठ, १९९९ : : जून, १९४२* *[ पूर्णांक १७४*

## चीन और भारत

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन

चीन और भारत इन दो पड़ोसी देशोंमें—जिनमें से एक एशियाके सुदूर-पूर्वमें है और दूसरा सुदूर-दक्षिणमें—समानताकी बहुत-सी बातें हैं। दोनों ही घने बसे हुए और दोनों ही युगातीत संस्कृतियोंके उद्गम-स्थल रहे हैं। इन दोनों देशोंके लम्बे इतिहासके प्रारम्भिक कालमें दोनोंकी संस्कृतियोंका संगम हुआ है, जिससे दोनों ही देशोंको लाभ हुआ है। इसीके परिणाम-स्वरूप दोनों देश पारस्परिक प्रेम और सहानुभूतिके एक अदृष्ट सम्बन्ध-सूत्रसे बँधे रहे हैं। दोनों देशोंके बीचके सघन वन और दुर्गम पर्वत-श्रेणियाँ भी इस नैतिक मैत्रीपूर्ण आवागमनको रोक नहीं सकी हैं। मध्य-युगमें किन्हीं कारणोंसे आवागमनका यह प्रवाह रुक गया, और बादकी शताब्दियोंकी उपेक्षाने उसके रहे-सहे चिह्नोंको भी निःशेष कर दिया।

अपने पड़ोसीको न जानना एक ऐसा दोष है, जिसके परिणाम मानवताके लिए गम्भीर साबित हो सकते हैं। आदमी जो कुछ है, वह एक जातिका सदस्य होनेकी हैसियतसे ही है। अपने सामाजिक कर्त्तव्यकी यह चेतना ही उसे पशुसे श्रेष्ठ बनाए हुए है, और इसीसे वह उन्नति कर पाया है। महाभारतकी प्राथमिक शिक्षाओंमें से एक यह है कि कौरवों द्वारा अपने चचेरे भाई पाण्डवोंके साथ सम्बन्ध-विच्छेद करनेके फल-स्वरूप ही कुरुक्षेत्रके विग्रहकी दुर्घटना घटी। चूँकि यह मानव जगत् एक कुटुम्ब है, इसका सम्बन्ध कुटुम्बके प्रत्येक सदस्यके लिए मान्य है।

रवीन्द्रनाथने इस सम्बन्धको स्वीकार किया, और इसीलिए सन् १९२४ में चीनसे आए निमन्त्रणको उन्होंने बिना किसी झिझकके मंजूर कर लिया, ताकि दोनों देशोंके उस सम्बन्ध-सूत्रको—जिसे उनके पूर्ववर्त्तियोंने कई शताब्दियों पहले स्थापित किया था—पुनरुज्जीवित कर सकें। २१ मार्चको, दोल-पूर्णिमाके दिन, वे कलाकार श्री नन्दलाल बसु, डा० कालिदास नाग और इन पंक्तियोंके

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन।

लेखकको साथ लेकर चीनके लिए रवाना हुए। मार्गमें बर्मा, मलाया, हांगकांग आदि होते हुए जब हम लोग १२ अप्रैल, १९२४ को यांग्सी नदीके मुहानेपर पहुँचे, तो मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो हम लोग पूर्वी बंगालके अपने घर पहुँच गए हों! यांग्सी और गंगामें अद्भुत साम्य है—गँदले पानीका वैसा ही फैलाव, जहाँ-तहाँ छिछले पानीमें से ऊभरे हुए वैसे ही उपजाऊ ज़मीनके टुकड़े, वैसे ही कोलाहलमय और भीड़-भड़क्केके हाट-बाज़ार, जैसे कि हमारे यहाँ हैं। गुरुदेव तो इस साम्यसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने

मुझसे संस्कृतके उन श्लोकोंको पढ़नेका आदेश दिया, जो गंगाको सम्बोधित करके पढ़े जाते हैं। और ज्यों-ज्यों हमारा स्टीमर यांग्त्सीमें आगे बढ़ता जा रहा था, उसपर खड़ा हुआ मैं एकके बाद दूसरा श्लोक पढ़ता जा रहा था।

शंघाईसे हम लोग हांगचो पहुँचे, जो चीनका सौन्दर्य-स्थल है। हांगचो पहुँचनेपर हम वहाँके कुछ मन्दिर देखने गए, जिनमें से एक है लेइ-फेंग ( वज्र-शिखा ) और दूसरा पेइ-लुंग ( श्वेत-सर्पका मन्दिर )। इन दोनों मन्दिरोंकी बनावटमें आश्चर्यजनक भारतीयता थी, और हम बड़ी देर तक खड़े उन्हें देखते रहे। हमें आश्चर्य हो रहा था कि कहीं हम अपने ही देशमें तो नहीं हैं! हांगचोकी झीलका जो सम्मोहक सौन्दर्य है, उसका चीनके कलाकारों और कवियोंने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। इस झीलके बीचमें कई छोटे-छोटे सुन्दर टापू हैं, जहाँ मन्दिर और कुंज बने हैं। इसीके एक किनारे लिंग-यिन मठ है। इस मठकी स्थापना आजसे १७ शताब्दियों पूर्व—२०४ ई० में—हुई-लि नामक एक भारतीय सन्तने की थी। झीलके चारों ओरकी पहाड़ियोंमें यह स्थान उन्होंने मठके लिए इस वजहसे चुना कि यहाँका पर्वत-शिखर उन्हें राजगिरके गिद्ध-शिखरका स्मरण दिलाता था। यही इन पहाड़ियोंका चीनी नाम भी था।

हांगचोके अपने प्रवास-कालमें प्रायः मैं फल-फूल लिए पूजार्थियोंको इस मठकी ओर जाते देखा करता था। यह दृश्य मुझे पुलकायमान कर देता था, और मुझे भारतीय मन्दिरों एवं तीर्थ-स्थानोंपर देखे गए ऐसे ही दृश्योंका स्मरण हो आता था। मठके पास ही, चिंगनाग जल-प्रपातके समीप, बाँसके छोटे-छोटे वृक्षोंका वह कुंज तो असाधारण रूपसे सुन्दर था। इसी लिंग-यिन मठमें हुई-लि की समाधि है, जिसने अपना जीवन अपने इस दूसरे देशको अर्पित कर दिया। जब तक वे जीवित रहे, उन्होंने अपने जीवनका श्रेष्ठ भाग चीनको दिया, और आज जब वे नहीं हैं, उनकी अजर-अमर मिट्टी चीनकी मिट्टी बन गई है। इस भारतीय सन्तकी समाधिपर असंख्य चीनी आकर प्रार्थना करते हैं और कई संतप्त आत्माओंको यहाँ सान्त्वना प्राप्त हुई है। इस समाधिके पास—जो उन आत्म-त्यागी महात्माओंकी पवित्र स्मृतियोंको ताज़ा कर देती है, जिन्होंने भारत और चीनके बीच पारस्परिक भ्रातृ-भावका पुल बाँधनेमें अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था—विचारों और स्वप्नोंमें डूबे हम लोग न जाने कितनी देर तक खड़े रहे।

२५ अप्रैलको चीनके प्रमुख बुद्धिजीवियों और विद्वानोंने रवीन्द्रनाथका बाक़ायदा स्वागत किया। इसके लिए पीकिंगका टी-चेम्बर चुना गया। पीकिंग-विश्वविद्यालयके अध्यक्ष और चीनके एक प्रमुख लोक-सेवक श्री ल्यांग चि-चाओने इस अवसरपर बड़ा ही स्मरणीय और महत्वपूर्ण भाषण दिया। उन्होंने कहा कि भारत और चीन दो भाइयोंकी तरह हैं। जब आजके सभ्य देशोंके पूर्वज अज्ञानके अन्धकारमें खोए हुए थे, चीन और भारत सुसंस्कृतिके लाभोंका उपभोग कर रहे थे। "और अब हमसे कहा जा रहा है कि हम हाल ही में 'सभ्य' जातियोंके सम्पर्कमें आए हैं! पर वे हमारे पास क्यों आए हैं? उनकी गिद्ध-दृष्टि हमारी ज़मीन और सम्पत्तिपर पड़ी है। उन्होंने हमें मानवके रक्तसे रँगे तोपोंके गोले भेंट किए हैं! उनके कारख़ाने ऐसा माल और मशीनें तैयार करते हैं, जो हम लोगोंके घरू उद्योग-धन्धोंको नष्ट कर रहे हैं। पर हम दोनों भाई प्राचीन कालमें ऐसे नहीं रहे हैं। हम दोनों सांसारिक सत्यके पक्षपाती थे, और पारस्परिक सहयोगकी आवश्यकताको महसूसकर हमने मानव-जीवनके उद्देश्यकी पूर्ति की। हम चीनियोंने इस कार्यमें नेतृत्व और संचालनके लिए अपने बड़े भाई भारतके लोगोंसे आशा की। और हममें से किसीके भी हृदयमें ऐसा करनेमें स्वार्थ-भावना तनिक भी नहीं थी—ऐसी हमारी कभी मंशा भी नहीं रही।"

चीन और भारतमें सबसे पहला सांस्कृतिक सम्बन्ध सम्राट अशोकके राज्यकालमें स्थापित हुआ। उस महान एवं बुद्धिमान शासकके संरक्षण और आदेशानुसार ही बौद्ध-प्रचारकोंने चीनकी यात्राएँ कीं। जब मिंग-ति चीनके सम्राट थे, भारतके एक प्रमुख अध्यात्मवादी कश्यप मातंगने अपने चीनी भाइयोंके लिए 'धम्म'का उपहार लेजानेका तय किया। इसी निश्चयके अनुसार वे चीनकी लम्बी और कष्ट-साध्य यात्राके लिए चल पड़े। ६७ ई०में वे चीनकी राजधानीमें पहुँचे और लो नदीके किनारे लो-यांगमें जाकर ठहरे। इनके बाद तो चीनी सम्राट हान-युंग-सिन और तांग-चेन-युवानके राज्यकाल ( ६७-७८९ ई० ) में धर्मरक्षा, बुद्धभद्र, जिनभद्र, कुमारजीव आदि न मालूम कितने बौद्ध प्रचारक और विद्वान चीन
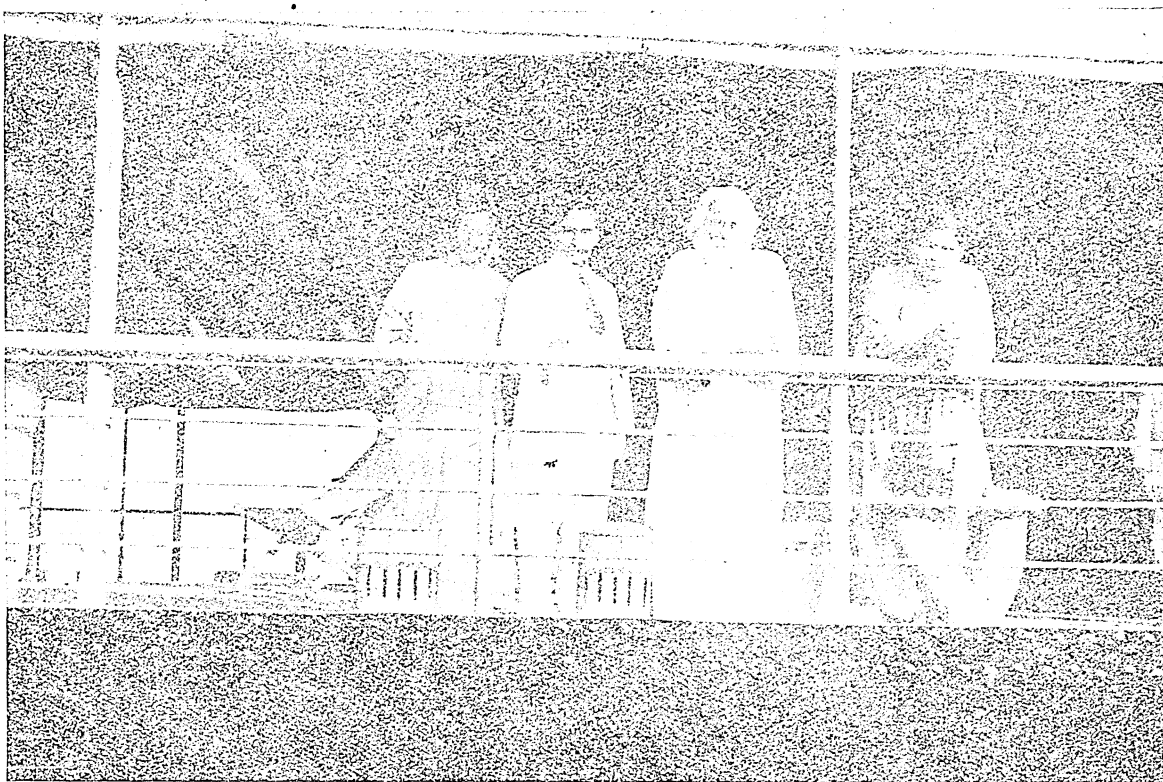
चीन जाते हुए जहाज़पर ( बाईं ओरसे ) श्री नन्दलाल बसु, डा० कालीदास नाग, गुरुदेव और श्री क्षितिमोहन सेन ।

गए हैं। चीनसे भी इस बीचमें कोई १८७ बौद्ध विद्वान और प्रचारक भारत आए हैं, जिनमें से फाहियान, हुएन सांग और इत्सिग आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

दोनों देशोंके लोगोंका यह आवागमन किसी स्वार्थ-भावना या अर्थ-लोलुपताके कारण नहीं था। इसके मूलमें विद्याका निःस्वार्थपूर्वक अध्ययन, विश्व-कल्याणके सार्वजनीन मतके प्रति आत्मोत्सर्ग और मस्तिष्कके विचक्षण उपहारोंका आदान-प्रदान ही मुख्य प्रेरणाएँ थीं। दोनोंके सांस्कृतिक सम्बन्धके इस गौरवपूर्ण अध्यायके सम्बन्धमें बोलते हुए श्री ल्यांग चि-चाओने कहा—"भारतने हमें पूर्ण स्वाधीनताका मूलमन्त्र सिखाया है।...उसका वह नकारात्मक रूप ही नहीं, जो बाहरी दमन और गुलामीसे हमें मुक्त कर सके, बल्कि वह रूप भी जिससे कि आदमी अपने ही से अपने व्यक्तित्वको उन्नत कर सके, जिससे कि लोग महान आज़ादी, महान सुविधा और महान निर्भयता प्राप्त करते हैं।...भारतने ही हमें पूर्ण प्रेमका भी पाठ पढ़ाया है—मानव-मात्रके प्रति वह विशुद्ध प्रेम, जो द्वेष, क्रोध, अधीरता, घृणा और प्रतिद्वन्द्विताकी बुराइयोंसे मुक्त है...वह विशुद्ध प्रेम, जो सब चीज़ोंकी अपृथकतामें विश्वास रखता है।" आगे चलकर उन्होंने चीनके साहित्य, कला, संगीत, नृत्य, नाटक, कविता, चित्रकला, मूर्त्ति-निर्माण-कला और मन्दिरों-सम्बन्धी वास्तु-विद्यापर पड़े भारतके प्रभावका ज़िक्र किया। वहाँके नक्षत्र-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, तर्क-शास्त्र, शिक्षण-शास्त्र और सामाजिक संगठन आदिपर भारतका प्रभाव स्पष्ट है। कई चीनी विद्वानोंने चीनी वर्णमालाको ३६ अक्षरों तक ही सीमित करके संस्कृत-उच्चरण चलानेका प्रयत्न भी किया है। तांग-राजवंशके समयमें शू-वेन नामक एक भिक्षुने इसी कार्यको अपने जीवनका चरम उद्देश्य बना लिया था।

जो भारतीय विद्वान धर्म-प्रचारार्थ चीन गए थे, उन्होंने चीनके साहित्यको—विशेषतया काव्यको—बहुत कुछ दिया है। ऐसा ही एक भारतीय विद्वान कुमारजीव चीनी भाषाका एक बड़ा प्रसिद्ध लेखक हो गया है।

उसके ग्रन्थोंमें से कमसे कम ४९ तो हम तक पहुँच भी चुके हैं। उसकी शैली इतनी सुन्दर है कि प्रत्येक चीनी विद्वानको—भले ही वह बौद्ध हो या न हो—कुमारजीवकी रचनाओंका अध्ययन करना पड़ता है। ऐसा किए बिना उसके चीनके प्राचीन साहित्यका अध्ययन अधूरा ही समझा जाता है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री और विद्वान फाहियान इन्हीं कुमारजीवका शिष्य था। जब अपनी लम्बी यात्राके बाद फाहियान चीन लौटा, तो उसने देखा कि उसके गुरु अब भी उसी तन्मयताके साथ लिखनेके काममें लगे हैं, जिसके साथ कि वे उसके भारत जानेके समय लगे थे। जब फाहियानने कुमारजीवसे विदा ली, तो उन्होंने कहा कि भारतमें अपना सारा समय धर्मके अनुसन्धान एवं अध्ययनमें ही मत खोना, बल्कि भारतीयोंके जीवन और आदतोंकी बारीकियोंका भी अच्छी तरह अध्ययन करना, ताकि चीनी लोग कुल मिलाकर भारतको अच्छी तरह समझ सकें। इसी आदेशका पालन करनेके लिए फाहियानने 'फू-काओ-ची' (बौद्ध-राष्ट्रोंका विवरण) नामक ग्रन्थ लिखा, जो इतिहासके विद्यार्थियोंके लिए एक अमूल्य ग्रन्थ है।

जिनगुप्तने, जो छठी शताब्दीके अन्तमें चीन गए थे, कई संस्कृत-ग्रन्थोंका चीनीमें अनुवाद किया है। उनकी असाधारण विद्वत्ताकी ख्याति इतनी फैली कि तांग-राज-वंशका एक सम्राट उनका शिष्य बन गया। इसी समय दक्षिणके सम्राट ल्यांग वू-तिका भी उदाहरण मिलता है, जो सब कुछ छोड़कर भिक्षु बन गए।

चीन लोग स्वभावके बहुत ही नम्र हैं। अतः यह स्वाभाविक ही था कि श्री ल्यांग चि-चाओने भारतका चीनपर जो ऋण है, उसीका ज़िक्र किया। उन्होंने उन बहुमूल्य उपहारोंका उल्लेख भी नहीं किया, जो इस महा-देशसे हमें मिले हैं। वे इतने अधिक और इतने समय पहलेके हैं कि आज उन सबका ठीक-ठीक मूल्यांकन भी नहीं हो सकता। 'चीनाचार', जो तान्त्रिक पद्धतिकी पूजाके लिए अत्यावश्यक है, चीन ही से आया है—जैसा कि उसके नामसे ही प्रकट है। तान्त्रिक लेखोंमें हम चीना-तन्त्रका उल्लेख कई जगह पाते हैं।* 'हिबिस्कस' (Hibiscus), जिसका तान्त्रिक पूजासे घनिष्ठ सम्बन्ध है, चीन ही का गुलाब है। कालिदासने चीनके जिस रेशमका ज़िक्र किया है, वह अमीरोंके लिए जितना आवश्यक है, उतना ही पूजार्थियोंके लिए भी। हमारे यहाँ भोज-पत्र ही प्रायः लिखनेके लिए काममें लाया जाता था; किन्तु पहले-पहल हमें चीनसे काग़ज़ प्राप्त हुआ, जो आज सभ्य संसारका एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। सुन्दर और चमकीले अक्षरोंके लिखनेकी तरकीब भी हमने चीनसे ही सीखी है। इसी प्रकार लीची, मूँगफली (चीना बादाम), चीनी तरबूज, चीनी चावल और सौंफ आदि भी हमें चीनसे ही प्राप्त हुए हैं। सोयाबीन हमारे खाद्योंमें चीनसे आया हुआ सबसे नया इज़ाफ़ा है। चीनी मिट्टी और उससे तैयार होनेवाली चीज़ें तो सर्वप्रसिद्ध ही हैं। ऐसा समझना भी शायद बहुत ग़लत न होगा कि चीनी (खाँड) और चीनमें भी कुछ सम्बन्ध है। छोटे-छोटे पार्क और बाग़ लगानेमें भी चीनी बड़े दक्ष थे। कई भारतीय ग्रन्थोंमें हम एक श्रेष्ठ क़िस्मके इस्पात 'चीनजा'का भी उल्लेख पाते हैं, जो चीनमें होता था। सोनेके महीन बरक़, जिन्हें 'चीना-पत्र' कहते हैं, चीनसे ही लाए गए हैं। इसी प्रकार मलमलकी छपाई भी हमने चीनसे ही सीखी है। चीनने ही हमें आतिशबाज़ीके रूपमें मनोरंजन करनेके लिए बारूद दी थी, जिसका दुर्भाग्यवश अब नर-संहारके लिए दुरुपयोग किया जा रहा है। चाय और हुक्का (जवानों और बूढ़ोंके मनबहलावकी चीज़ें) भी हमें चीनसे ही प्राप्त हुए हैं। चीनमें हमने उस समयके—जब कि नूरजहाँ†का भारतमें जन्म भी नहीं हुआ था—हुक्कोंके कुछ असाधारण कारी-गरीके नमूने देखे।

हमारे कई आयुर्वेदिक ग्रन्थोंके मतानुसार 'हिंगूल' (जिसे अंगरेज़ीमें 'चीना बार' कहते हैं) और कपूर चीनसे ही आए हैं। हमारे औषधालयोंमें तैयार होनेवाला पारा इसी 'हिंगूल'से तैयार होता है। नागार्जुनका रसायन, जो पारे-जैसी खनिज वस्तुओंपर ही आधारित है, सम्भवतः

* मात्रिका-भेदतन्त्र, भाग १। नीलतन्त्र (खण्ड ९) और फेत्कारिणी तन्त्र (खण्ड ११), जिनमें महाचीना कर्म-साधनाका उल्लेख है।

† इतिहासकारोंके मतानुसार जहाँगीरकी मल्का नूरजहाँने पहले-पहल भारतमें हुक्का पीनेका रिवाज चलाया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चीनके चंगेज़ख़ाँके वंशधर मुग़ल अपने साथ अपने मूल मंगोल-वंशकी कई चीज़ें लाए हों। इत्र और गुलाब जल भी—जिसके प्रचलनका श्रेय नूरजहाँको दिया जाता है—चीनसे ही आए होंगे।

चीनसे ही आया मालूम होता है—कारण, वहाँ उन दिनों इस विज्ञानका बहुत प्रचलन था। यद्यपि अफ़ीमकी आदत बहुत बुरी है ; पर औषधके रूपमें वह चिकित्सा-शास्त्रके लिए एक आवश्यक द्रव्य है। इसके उपयोग और दुरुपयोग दोनोंको भारतमें लानेका श्रेय उन मुसलमानोंको है, जिन्होंने इसे चीनसे सीखा। कस्तूरी तथा पशुओंसे प्राप्त होनेवाली ऐसी ही रोगोंकी अन्य बहुमूल्य दवाइयाँ संसारके अन्य भागोंमें पहुँचनेसे बहुत पहले चीनमें प्रचलित थीं। चीनमें प्रचलित अन्य अनेक दवाइयोंमें से 'जिनसेंग' नामक एक महौषधिका उल्लेख करना आवश्यक है, जो नवजीवन या दीर्घजीवन प्राप्त करनेके लिए ली जाती थी। पश्चिमी भारतमें दूल्हेको जिस 'तांजाम' (पालकी) में विवाहके दिन ले जाया जाता है, वह भी चीनका ही एक पुराना रिवाज है। पाठकोंको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'तांजाम' शब्द किसी भारतीय भाषाका शब्द न होकर चीनी भाषाके 'तान-जाह' शब्दका ही अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है 'ले जाना'। भारत ही की तरह चीनमें भी शोककी पोशाक एक नया बिना धुला, बिना रँगा और बिना सिला कपड़ा है। दोनों देशोंमें वर और वधूके कपड़ोंको लाल रेशमके एक टुकड़े (चेली) से बाँध दिया जाता है। चीनी भाषामें 'चे-ली' (che li) का अर्थ है विवाह या वर वधूका गँठबन्धन।* हिन्दू-स्त्रियोंका सुहाग-चिह्न सिन्दूर भी चीन ही से आया है।

हमारे देशके बहुत-से प्राचीन साहित्यको—जो आज हमारे यहाँ उपलब्ध नहीं है—सुरक्षित रखनेके लिए भी हमें चीन ही का कृतज्ञ होना चाहिए। वे आज भी चीनी भाषामें अनूदित-रूपमें उपलब्ध हैं। आम तौर पर हमने ऐसे ६००० ग्रन्थोंके मौजूद होनेकी बात सुनी है, यद्यपि सुंग-पाओ संग्रहके अनुसार इनकी संख्या ८००० है। यह समझना ग़लत होगा कि ये सब ग्रन्थ बौद्ध-मतसे ही संबंधित हैं। इनमें से कई ग्रन्थ ब्राह्मण-कालके भी हैं, जो नक्षत्र-विज्ञान, गणित, चिकित्सा, ज्योतिष, पुराण, प्रेत-सिद्धि आदि विषयोंपर हैं। इन सब ग्रन्थोंके मुद्रण और प्रकाशनके विवरण महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काग़ज़ात हैं, जिनसे हमें सैकड़ों वर्ष पहलेके भारतीयोंके जीवन और कार्योंका पता लगता है।

पर भारत और चीनके बीच यह सम्बन्ध-सूत्र आसानीसे स्थापित नहीं हुआ। इसके लिए दोनों देशोंके विद्वानोंको अकथनीय यातनाएँ सहनी पड़ी हैं। पर कोई भी यातना या बाधा उनके इस सांस्कृतिक मिशनके कार्यको रोक नहीं सकी। इससे भी अधिक आश्चर्यकी बात यह है कि इनमें से कई वयोवृद्ध थे। न उन दिनों सवारीका ही कोई प्रबन्ध था और न थककर विश्राम करनेके लिए कहीं सराय आदि ही। उनका एकमात्र साधन था भिक्षाका पात्र और हृदयमें ज्ञानकी खोजके लिए निरन्तर जलती हुई लौ। हमारी १९२४ की यात्रामें तो सवारी, भोजन आदि सभी तरहकी सुविधाएँ हमें प्राप्त थीं, फिर भी कई बार छोटी-छोटी बातों और जब-तब होनेवाली यात्राकी थकावटसे हम लोग चिढ़ जाते थे। जब मैं अपनी इस मनोवृत्तिकी तुलना शताब्दियों पूर्व चीन गए अपने भारतीय पूर्वजोंसे करता हूँ, तो उनकी महत्ताके प्रति पैदा हुई श्रद्धा अपनी क्षुद्रताके प्रति मुझे लज्जित और ग्लानि-गलित कर देती है। साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन कालके उन यात्रियोंमें से कई मार्गमें ही मर गए और कई चीनमें ही जाकर बस गए। ऐसे कुछ महापुरुषोंकी समाधियोंपर जाकर उनकी स्वर्गस्थ आत्माओंके प्रति श्रद्धा-ज्ञापन करनेका सौभाग्य मुझे मिला है।

क्या उनकी युगातीत तपश्चर्या और उसका प्रभाव व्यर्थ ही जायगा? ऐसा दुर्भाग्य होना नहीं चाहिए। दोनों देशोंके उस पुराने हार्दिक सम्बन्धको पुनरुज्जीवित करनेका हम लोगोंका सामूहिक रूपसे प्रयत्न करना चाहिए। इसी प्रयोजनसे चीनने रवीन्द्रनाथको आमंत्रित किया था। चीनके हार्दिक आतिथ्य और सद्भावनाको हम लोग सदा याद रखेंगे। जहाँ भी हम गए, भारत और चीनके उसी प्राचीन मैत्री-सम्बन्धका ज़िक्रकर हमारा स्वागत-सत्कार किया गया।

जिन शब्दोंके साथ गुरुदेवने चीनमें अपना एक भाषण समाप्त किया था, उन्हींका उल्लेखकर मैं यह लेख समाप्त करता हूँ। उन्होंने कहा था—"आइए, पूर्वकी इस जागृतिसे सचेतन होकर हम अपनी ही संस्कृतिके उस आवश्यक और विश्वजनीन अर्थको खोज निकालें, जो इसके मार्गके रोड़ोंको हटाय, अचलायतन होकर अशुद्ध होनेसे इसे बचाय और इसे सभी मानव-जातियोंके आदान-प्रदानका साधन बनाय।"

* Chinese English Dictitionary by O. Z. Tsang.

# शान्ताबहन रानीवाला

श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी

महात्मा गांधी अक्सर कहा करते हैं कि यदि हमें भारतकी नारियोंका सहयोग मिले, तो मैं स्वराज्य बहुत जल्द प्राप्त कर सकता हूँ और ग्रामीण उद्योग-धन्धोंको बढ़ा सकता हूँ। अनपढ़ लोगोंमें शिक्षाकी जान फूँकी जा सकती है। बालकोंको उचित शिक्षा देकर उन्हें वीर देशभक्त बनाया जा सकता है। स्वराज्यकी गाड़ीकी चाल तेज़ की जा सकती है। सफ़ाईके कामको हमारी माँ-बहनें और बेटियाँ बड़ी आसानीसे सम्हाल सकती हैं। हमारे घरोंमें स्वराज्यकी जीवित मूर्तियाँ तो ये माँ-बहनें ही हैं। शिक्षाके अटपटे सवालको ये बहनें अपने हाथमें आसानीसे ले सकती हैं। काश कि ये आगे बढ़ें और इन्हें आगे बढ़ने देनेकी हम सहूलियत दें।



महात्मा गांधीकी पुकार कभी निरर्थक नहीं जाती। भले ही उन्हें बहुमतका सहयोग किसी काम-विशेषमें न मिले; पर कुछ संख्या उनके आदर्शके लिए आगे निकल ही आती है। आज हम एक ऐसी ही नारीके सम्बन्धमें कुछ शब्द लिखने जा रहे हैं, जो बिल्कुल आदर्शवादी हैं। वह हैं सुख-वैभवकी गोदीमें पली, इच्छा करते ही प्रत्येक चीज़ पानेवाली, शान-शौकतके साथ बम्बईकी आलीशान कोठियोंमें रहनेवाली, एक सेठकी लड़की शान्ताबहन रानीबाला। उन्हें क्या पता कि हमारी असंख्य बहनें अन्धकारपूर्ण अज्ञानका जीवन व्यतीत कर रही हैं। पर उन्हें एक दिन, कहींसे, कुछ प्रेरणा हुई कि ग़रीब माँ-बहनोंकी सेवा करनी चाहिए। इसीलिए स्व० सेठ जमनालाल बजाजकी प्रेरणासे उन्होंने क़रीब तीन लाख रुपए बहनोंकी शिक्षापर ख़र्च करनेके लिए सौंप दिए। एक लाख शान्ताबहनने अपने ख़र्चमें से दिए और बाक़ी रक़म आपकी बहनोंकी है। वर्धाके महिलाश्रममें उनके रहने और शिक्षाके लिए एक भव्य विद्या-भवन तैयार करा दिया गया। उन्हींके धनसे आज हिन्दुस्तानके अनेक प्रान्तोंकी बहनें शिक्षा पा रही हैं, जहाँसे निकलकर वे स्वावलम्बी जीवन व्यतीत कर सकती हैं या गृह-कार्यको अच्छे ढंगसे चला सकती हैं।

श्री शान्ताबहन रानीबालाको बहुत कम लोग जानते हैं। वर्धामें बाहरसे जो यात्री जाते हैं, वे भी शायद ही इस देवीके दर्शन करते होंगे। लेकिन महिलाश्रमकी इमारत और लड़कियाँ दूरसे ही हमें बताती हैं कि यह सब जो हो रहा है, वह एक मूक निरभिमानी शान्ताबहनका काम है। उन्हींके कारण भारतके कोने-कोनेकी लड़कियाँ यहाँ देखनेमें आती हैं, जिनमें से कोई कपड़ा सीना सीखती है, कोई दस्तकारीका काम करती है, कोई ओटना-धुनना सीखती है और कोई लाठी-लेजिम सीखती है। कहीं कोई

श्रीमती शान्ताबहन रानीवाला।

चित्र बनाती है, तो कहीं कोई सितारपर मधुर राग अलापती है। यहाँ उन्हें कितनी ही तरहकी शिक्षा दी जाती है। बौद्धिक शिक्षा देनेका भी यहाँ प्रबन्ध है और मैट्रिक तककी शिक्षा उन्हें मिल जाती है।

शान्ताबहनने केवल रुपया देकर ही सन्तोष नहीं कर लिया है, बल्कि वे यहाँकी सारी प्रवृत्तियोंमें भी हाथ बँटा रही हैं। वे संस्थाके सुप्रबन्धमें सहायता पहुँचाती हैं। उन्होंने धनके साथ-साथ अपने जीवनको भी संस्थाको अर्पण कर दिया है। फिर यह संस्था क्यों

नहीं फूल-फल सकती ? शान्ताबहनका जीवन एक आदर्श नारीका जीवन है। उनके शरीरसे एक प्रकारकी तेज आभा चमकती है। ललाट दमकता है। मुखपर मृदुलताकी मुस्कराहट हमेशा नाचती है। हृदय उनका बहुत ही मुलायम है। उनकी रग-रगसे स्वदेशाभिमान टपकता है। मानव-समाजके प्रति उनकी असीम श्रद्धा है। माँ-बहनोंकी सेवाके लिए अपना तन-मन-धन सब कुछ अर्पण करके आज वे महिलाश्रममें निवास करती हैं।

बहुत लोग धन देकर उस संस्थासे मुँह मोड़ लेते हैं। वहाँ क्या होता है, क्या नहीं ? वहाँ रुपएका सदुपयोग ठीक ढंगसे किया जा रहा है या नहीं ? वहाँ जिनपर रुपया ख़र्च किया जाता है, वे संतुष्ट हैं या नहीं और उनकी तरक्क़ी हो रही है या नहीं ? इन बातोंका उन्हें कुछ पता भी नहीं रहता। ऐसा धन देकर भी न देनेके बराबर ही होता है, क्योंकि संचालक अपनी मर्ज़ीके अनुसार ख़र्च कर सकते हैं। सब कोई महात्मा गांधीकी तरह कौड़ी-कौड़ीका हिसाब नहीं रख सकता। यदि दाताका कुछ अंकुश रहा, तो वह धन फूलता-फलता रहेगा। जिस उद्देश्यसे धन दिया गया हो, उसकी पूर्तिकर वह लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। काम व्यवस्थित ढंगसे चलता है। लोगोंकी सहानुभूति बढ़ती है। नई-नई चीज़ोंको शुरू करनेकी कल्पना आती है। वहाँ रहनेवालोंकी श्रद्धा एक दूसरेपर पैदा होती है।

संस्थामें रहते हुए भी मालिकपन या दाताका आभास किसीको न मिले, यह किसी महान व्यक्तिका ही काम है। निर्लिप्त रहकर सेवा करना बहुत ही कठिन और दुःसाध्य कार्य है। दुःसाध्य कार्यको सिद्ध करनेवाला ही महान् व्यक्ति बनकर हमारा पथ-प्रदर्शक बनता है। शान्ताबहन किसी भी लड़की या शिक्षकपर कभी यह जाहिर नहीं होने देतीं कि महिलाश्रममें उनका भी कुछ हाथ है। बाहरके लोग उन्हें फिर क्यों जानने और पहचानने लगे ? उनकी सरलता अपनी विशेषतासे ओतप्रोत है। वे हरएक बहनकी सेवामें बड़ी तन्मय होकर लग जाती हैं। वे प्रत्येकके सुख-दुखमें हिस्सा बँटाना चाहती हैं। हरएक लड़की और शिक्षकके घरमें पारी-पारीसे जाकर कुटुम्बके सुख-दुःखकी कहानी सुनती हैं और हर प्रकारसे हरएकके साथ कौटुम्बिक स्नेह रखती हैं। मालूम होता है कि वे प्रत्येक घरकी सदस्या हैं। कहीं कोई बीमार हुआ, तो उसकी सेवा वे स्वयं करती हैं और उसे हर प्रकारकी सहायता पहुँचानेकी कोशिश करती हैं। साथ ही वे अपनी निजी सेवा कभी किसी बहनसे नहीं लेतीं। ज़रूरत पड़नेपर कभी आदमी नहीं रहा, तो स्वयं कुएँसे पानी भर लाती हैं। वे अपना काम स्वयं अपने हाथसे कर लेती हैं ; लेकिन किसी आश्रमवासीकी सेवा किसी हालतमें भी ग्रहण नहीं करतीं।

उनकी मिलनसारीमें सबसे बड़ी ख़ूबी यह है कि अगर आप एक बार उनसे मिल लें, तो कभी उनके शिष्टाचारको

श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी

भूल नहीं सकते। ऊँच-नीच और छोटे-बड़ेका अहंभाव उनमें छू तक नहीं गया है। एक भारतीय आदर्श नारीमें जितने गुण होने चाहिएँ, वे उनमें हैं। फिर शान्ताबहनसे क्या हम दानका आदर्श नहीं सीख सकते और धन-वैभवमें रहते हुए भी क्या हम समाज-सेवा नहीं कर सकते ?

धन-सम्पदा ढेरकी ढेर यों ही बम्बई, कलकत्ता और कहाँ-कहाँ कोने-अँतरेमें पड़ी हुई है ; किन्तु अन्तःकरणकी सच्ची प्रेरणा चाँदी-सोनेका सुन्दर सात्विक विनियोगकर चारों तरफ़ कैसी ज्योति फैला सकती है, कितना संयमी पवित्र वातावरण उत्पन्न कर सकती है और पराधीन भारत-माताके कलपते हुए हृदयको धीरज बँधा सकती है, इसकी प्रतिनिधि हैं शान्ताबहन रानीबाला।

---

# स्व० सेठ जमनालाल बजाज

## (संस्मरण)

**श्रीराम शर्मा**

स्व० सेठ जमनालालजीका निधन राष्ट्रकी एक महान क्षति है, और देशकी वर्त्तमान परिस्थितिमें सेठजीका उठ जाना ठीक उस प्रकार है, जिस प्रकार किसी पुराने रोगीपर विकट आघात। स्व० सेठजीको पूज्य बापू-जैसी महान आत्माने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है, तब फिर किसी साधारण व्यक्तिका उनके विषयमें लिखना कोई विशेष महत्व नहीं रखता। पर महान व्यक्ति हिमालयके ऊँचे शिखरोंके समान होते हैं और सम्पूर्ण देश हिमालयके शिखरोंसे ही आच्छादित नहीं है। इसलिए और व्यक्ति भी अपने भाव प्रकट कर सकते हैं, जो उनके

स्व० सेठजी गांधीजीसे ग्राम-सुधार-सम्बन्धी बातचीत करते हुए।

हृदय-पलटपर स्व० सेठजीके मिलनेसे अंकित हुए थे। भिन्न दृष्टियोंसे किसीपर लिखना उस व्यक्तिकी महत्ताको बढ़ाता ही है। अस्तु, स्व० सेठ जमनालालजीसे अप्रत्यक्ष परिचय तो इन पंक्तियोंके लेखकका उस समय हुआ था, जब स्व० गणेशशंकर विद्यार्थीजीने उनकी चर्चा 'प्रताप' कार्यालयमें एक बार की थी। पर उनसे मिलनेका अवसर एक विचित्र ढंगसे ही हुआ। यों मिलनेको उनसे बहुत पहले मिला जा सकता था; पर जान-बूझकर इन पंक्तियोंके लेखकने उनसे दूर रहना ही ठीक समझा। न मिलनेमें सेठजीका कोई दोष न था, वरन अपनी ही मनोवृत्ति और अपना यह पेट-पाप कि स्व० सेठजी महात्मा गांधीके इतने भक्त नहीं हो सकते, जितने वे कहे जाते हैं। मनमें एक धारणा थी कि भारतीय पूँजीपति देशकी पूर्ण स्वतन्त्रताके हामी नहीं हो सकते, क्योंकि पूर्ण स्वतन्त्रताके मानी होंगे ब्रिटिश क़ानूनके बलपर कमाए हुए अपने धनके अधिकांश भागसे हाथ धो बैठना। पर जब स्व० सेठजीका वह बयान इन पंक्तियोंके लेखकको पढ़नेको मिला, जो उन्होंने अपनी पिछली जेल-यात्राके समय मजिस्ट्रेटके सामने दिया था, तब उसकी आत्माको एक चोट-सी पहुँची कि अकारण ही एक भले आदमीके प्रति उसने वह धारणा क्यों बना ली? अनेक वृत्तियोंपर मनुष्यका अधिकार नहीं होता, अथवा वह उनपर अधिकार कर नहीं पाता; इस ख़यालसे यह समझते हुए भी कि सेठ जमनालालकी अन्य भारतीय अमीरोंसे बिलकुल भिन्न हैं, अपने-आप मिलनेकी इच्छा नहीं की। बल्कि दो-चार बार सेवाग्राममें बापूजीके साथ टहलनेमें दो-तीन बार एक मील तक स्व० सेठजीके साथ टहलनेका भी अवसर हुआ; पर इस बातसे लेखकको बड़ी प्रसन्नता हुई कि सेठजीसे परिचय नहीं हो पाया। एक दिन एक मित्रके साथ नालवाड़ी जानेका मौक़ा हुआ। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिसे नालवाड़ी जानेके मार्गमें स्व० सेठजीकी सुन्दर कुटिया पड़ती है। खुले मैदानमें उँची जगहपर छोटी-सी सुन्दर कुटिया प्रहरीकी भाँति खड़ी है, मानो आसपासकी भूमिका सिंहावलोकन करने वह ज़मीनमें स्वतः उग आई है। कुटियाके क़रीबसे होकर हम लोग जैसे ही निकले, वैसे ही सेठजीकी नज़र हम लोगोंपर पड़ी। उन्होंने समझा कि कोई आदमी नालवाड़ी देखने जा रहा है। अपरिचित व्यक्तिसे बिना बात वे क्यों बोलते? इन पंक्तियोंके लेखकने भी अपने क़दम लम्बे किए और भीतर ही भीतर इस बातपर ख़ुशी हुई कि सेठजीसे व्यक्तिगत परिचय नहीं हुआ, अन्यथा उनसे मिलना ही पड़ता। पर अभी कुछ ही क़दम हम लोग आगे बढ़े थे कि श्री गुलज़ारीलाल नन्दा सेठजीकी कुटियामें से निकले और देखते ही फ़ौरन उन्होंने आवाज़ लगाई। बस, फिर क्या था? बिजली-सी गिरी। क़दम वहीं रुके और एकदम संकोचसे कुछ परेशान होते हुए लेफ़्ट-टर्न करके कुटियाकी ओर बढ़ना पड़ा। नन्दाजीकी पुकारने लेखककी गतिको तो एकदम नालवाड़ीकी ओर

जानेसे रोक दिया और सेठजीके पैरोंमें स्प्रिंग-से लगा दिए। वे एकदम खड़े हो गए और हँसते हुए बोले—"वाह साहब, यह क्या बात है ? आप बिना मिले ही चले जाते हैं।" मार्गसे कुटिया तीस गज़के क़रीब होगी, वहाँ जाकर सेठजीसे बातें होने लगीं। सेठजी गो-सेवा-संघकी धुनमें मस्त थे। ऐसा मालूम होता था कि उनकी आत्मा और उनके शरीरके अंग-प्रत्यंग तक में गो-सेवा-भावकी बिजली भरी थी। कहने लगे—"हम तो 'विशाल भारत' आपके गो-सम्बन्धी लेखोंको पढ़नेके लिए ही ख़रीदते हैं। आपसे तो हमें बड़ी बातें करनी हैं। गो-सेवा-संघका आपको मेम्बर बनाना है।"

"गो-सेवा-संघ तो अभी अमीरोंकी चीज़ है। मुझ जैसे आदमीके लिए उसका सदस्य होना ठीक नहीं।"

"पर आप तो गो-सेवाके कामको समझते भी हैं, घरपर गाय पालते भी हैं और गायोंकी समस्यापर लिखते भी हैं, तब आप सदस्य न होंगे तो कौन होगा ?"

"यह ठीक है ; पर सदस्य बननेके लिए तो यह ज़रूरी है कि गो-दुग्धसे ही बने पदार्थोंका व्यवहार किया जाय। मेरी कठिनाई है ; अगर कहीं गाँवमें जाना हुआ और वहाँ खाना खानेकी नौबत आई, तो ग़रीब भाई साग-दालमें घीका इस्तैमाल करेगा। अगर उसे मालूम हो कि मैं गायका ही घी इस्तैमाल करता हूँ, तो उसके लिए मैं भार-स्वरूप हो जाऊँगा। फिर लम्बे सफ़रमें क्या व्यवस्था की जाय ? होटलसे खाना मँगानेमें दाल-सागमें गायका घी नहीं मिल सकता। आप तो अपने साथ रेलमें गाय ले जा सकते हैं। ऐसी हालतमें पहले आप इसका प्रचार कर लें। स्टेशनों-पर गायके दूध और उसकी ही मिठाईका प्रचार कर दें, तो मैं बड़ी ख़ुशीसे सदस्य बन जाऊँगा।"

"आपको गो-सेवा-संघके उसूलोंपर विश्वास है या नहीं ?"

"सोलहो आने ; पर मैंने अपनी मजबूरी आपको बता दी।"

"पर आपको तो मेम्बर बनना ही पड़ेगा।"

"यह भी कोई ज़बरदस्ती है ? आप जब तक मुझे समझा नहीं देंगे, तब तक मैं गो-सेवा-संघका मेम्बर नहीं बनूँगा। गौका अनन्य भक्त मैं अवश्य हूँ।"

उपर्युक्त बातें सेठजीसे बड़े स्पष्ट ढंगसे हुई और दो-चार बातें कुछ तेज़ीके लहजेमें भी, और उन बातोंका लेखकपर यह असर पड़ा कि स्व० सेठ जमनालालजी एक उच्चकोटिके मिश्नरी हैं और लगनके इतने पक्के कि जिस चीज़पर जुट जायँ, उसको करके ही छोड़ें ; क्योंकि लेखककी बातोंसे निरुत्तर होनेपर भी वे तनिक हताश नहीं हुए, वरन् उनका उत्साह कुछ बढ़ा-सा ही दिखाई पड़ा। फिर उन्होंने हँसते हुए कहा—"आपको तो हम मेम्बर बनायँगे ही।"

अगले दिन सूरज निकलनेसे पहले ही वे सेवाग्राम आ धमके और सीधे लेखकके कमरेमें आए। सदस्यताका फ़ार्म उनके हाथमें था। उन्होंने कहा—"आपको तो मैं समझा नहीं सकता ; पर बापूजीके सामने चलिए, वहीं पेशी होगी।" अपने पक्षको प्रबल समझकर इन पंक्तियोंके
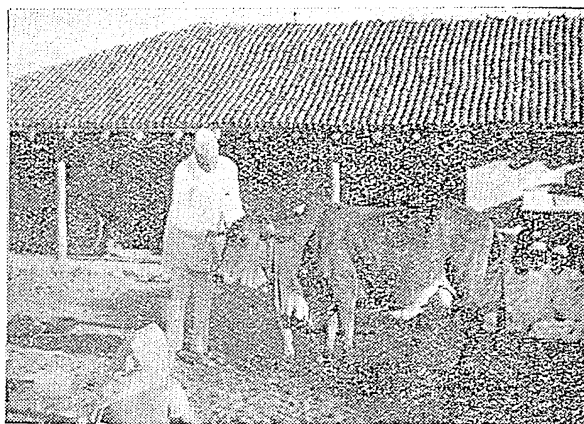
स्व० सेठजी : गो-पालकके रूपमें।

लेखकने सेठजीका चैलेंज स्वीकार कर लिया। बापूजीके सामने जो बातें छिड़ीं, तो तीन-चार मिनटके भीतर ही लेखकको मुँहकी खानी पड़ी।*

सेठजीकी इस लगनसे लेखकपर यह प्रभाव पड़ा कि यूरोपमें Counter Reformation आन्दोलनके चलाने-वाले सेठजी-जैसे ही मिश्नरी रहे होंगे, जिन्होंने कैथलिक धर्मके गिरते पक्षको इतना प्रबल बनाया। अपनी जीतपर उन्हें एक विजेताकी-सी ख़ुशी नहीं थी, वरन एक मिश्नरीकी-सी। उसके बाद उन्होंने लगातार गो-सेवा-संघके ऊपर बातें करनेको कहा।

कई दिनों तक हमारी घंटों बातें होती रहीं। बातें (१) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, (२) गो-सेवा-संघ और (३) गो-वंशकी उन्नतिके साधनोंपर ही होती रहीं। एक दिन तो

* देखिए 'विशाल भारत' फरवरी, १९४२ में 'गो-सेवा-संघ' शीर्षक लेख।—लेखक

टहलनेमें वे इसी बातपर ज़ोर देते रहे कि इन पंक्तियोंका लेखक वर्धा ही आकर रहने लगे। रहने और खाने-पीनेका पूरा प्रबन्ध वे कर देंगे, ताकि गो-सेवा-संघके कार्यमें पूरा ध्यान लेखक दे सके। हँसकर यह भी कहा—"मेम्बर तो मैंने आपको बापूजीकी वकालतसे बना लिया; पर संघका सेक्रेटरी मैं कैसे बनाऊँ ?"

मैंने भी हँसकर उत्तर दिया—"बापूजी-जैसा वकील मुफ़्तमें हरएकको नहीं मिल सकता; पर मैं गो सेवा-संघका काम अपनी शक्तिभर करूँगा, मैं सेक्रेटरी नहीं बन सकता। आपने जो मेरे घर-बारके ख़र्चका भार लेनेको कहा है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ; पर जो काम मैं कर रहा हूँ, वह भी कोई रुपएकी ख़ातिर नहीं कर रहा। मज़दूर और किसानकी हस्ती ही क्या है ? मैं
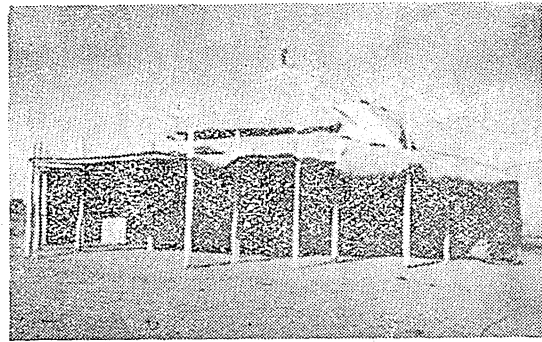
गोपुरी (वर्धा) में स्व० सेठजीकी कुटिया।

आपका आभारी हूँ—एक अमीरके नाते नहीं, एक सहृदय मनुष्यके नाते। आपने जो बात कही है, उसकी मैं क़द्र करता हूँ; पर मैं यहाँ आ नहीं सकता। सेक्रेटरीशिपका काम मैं इसलिए नहीं करूँगा कि इस संघके सेक्रेटरीको पूरा समय इसीमें देना चाहिए और वर्त्तमान परिस्थितिमें मैं पूरा समय नहीं दे सकता।"

तब फिर इस बातपर चर्चा रही कि अखिल भारत-वर्षीय जाँच-कमेटी कैसे बने ? सेठजीके चातुर्यको देखकर मैं अवाक् रह गया, जब उन्होंने मुझे अपने ही वाक्योंसे इस बातमें फँसा लिया कि जाँच-कमेटीकी रिपोर्ट मैं तैयार करूँ। एक बात मैंने उनसे स्पष्ट कर दी कि हरियानेकी गायपर छः-सात सालके भीतर मैं उन्हें एक किताब लिखकर दूँगा और उसे गो-सेवा-संघ ही प्रकाशित करे। इन दो-चार दिनोंकी बातोंमें ही सेठजीसे ऐसा कुछ स्नेह हो गया, मानो उनसे वर्षोंका सम्बन्ध हो। किसी प्रकारका भेद-भाव बातें करनेमें नहीं रहा।

मूल बातको पकड़नेमें वे बड़े सिद्धहस्त थे, और शायद इसका एक कारण यह हो कि अंगरेज़ी विश्वविद्यालयकी पढ़ाई न मिलनेके कारण वे अपनी मौलिकता और सहज-बुद्धिको क़ायम रख सके थे। किसी चीज़का वैज्ञानिक कारण न बताते हुए भी वे मूल तत्वको समझ जाते थे, यह उनकी सूझका काम था। भौंरेके समान, जो प्रत्येक प्रकारके फूलसे रस खींच लेता है, वे प्रत्येक प्रकारके व्यक्तिसे अपने मतलबकी बातें निकाल लेते थे। गो-सेवा-संघके मामलेमें तो यह बात बिल्कुल ही स्पष्ट हो गई। घोर सरकार-भक्त, घोर गांधीवादी और कट्टरपंथी लोगोंको उन्होंने गो-सेवाके धागेमें ऐसे पिरोया था कि गो-सेवाके मामलेमें सब सेवा करनेपर उतारू हो गए।

सम्भवतः देशमें ऐसा कोई अन्य धनी आदमी नहीं है, जो अपनी स्पष्ट आलोचना सुन सके और अपने दिलकी बात कह दे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके मामलेमें उनसे बात करते हुए जब कहा गया कि उन्होंने श्री श्रीमन्नारायणजीका नाम राष्ट्रभाषा-परिषदके लिए पेश करके समझदारीका काम नहीं किया, तब उन्होंने कहा—"मैं साहित्य-सेवी नहीं हूँ और न कभी साहित्य-सेवी होनेका मुझे गुमान ही हुआ। हाँ, जो सेवा बन पड़ी, रुपया पैसा इकट्ठा करके जो मैं कर सका, वह मैंने किया। जिस ड्राफ़्टपर दस्तख़त थे, वह मैंने देखा भी नहीं। काका साहबकी मैं इज़्ज़त करता हूँ और उनका विश्वास करता हूँ। उन्होंने मेरी स्वीकृति लेकर मेरा नाम दिया। मैंने समझा, कोई ठीक ही बात होगी। बाक़ी अच्छे-बुरेको आप लोग ही जानें।" मैंने उनसे कहा—"यह तो ठीक है; पर उस गश्ती पत्रसे लोगोंको काफ़ी भ्रम हुआ है, और श्रीमान् राजेन्द्र बाबू जीत नहीं सकेंगे। पर उनकी हार न तो महात्माजीकी हार होगी और न राजेन्द्र बाबूकी ही।" इसपर गम्भीर होकर सेठजीने कहा—"मेरी तो सब शक्ति अब गो-सेवापर लगी है। बापूजी जानें, और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका मैं तो एक सेवक हूँ।"

एक दिन एक-दो मील टहलनेके बाद अपनी कोठीपर ले जा पहुँचे और आग्रह किया कि मैं चाय, दूध या फलोंमें से कोई चीज़ ज़रूर लूँ। उत्तरमें उनसे कहा गया—"मैं चायका पियक्कड़ नहीं, यों कभी-कभी पी लेता हूँ;

पर जब गायका दूध मिले, तब चाय क्यों पी जाय ? दूध पीनेका मैं आदी हूँ, दूध पी लूँगा।" तश्तरीमें रखकर गरम दूध आया और एक प्यालेमें चीनी और कुछ फल। स्वयं सेठजीने कुछ नहीं लिया। आतिथ्य-सत्कारके वे आचार्य थे। दूधमें जब मैंने दो चम्मच चीनी डाली, तो वह बैठ ज़्यादा गई। एक चम्मच और डाली और मिलाया; पर वह जब न मिली, तब गीली चम्मच-भरी चीनी मैंने मुँहमें रख ली। जैसे ही मुँहमें रखी कि तबीयत बिगड़ गई। वह निगलनेकी चीज़ नहीं थी, इसलिए थूकनेके लिए उठना पड़ा। सेठजी घबराए, क्या बात है ? एक तरफ़ उगलते हुए लेखकने हँसकर कहा—"सेठजी, आज आपका नमक खा लिया।" देर तक क़हक़हा लगा और चीनी फिर मँगाई गई। असलमें ग़लतीसे नौकर चीनीकी जगह नमक ले आया था। सेठजीने सुनाया कि राजपूतानेमें कहीं-कहीं नमकको मीठा कहते हैं, और मीठा माँगनेपर लोग नमक देते हैं। फिर बड़ा तमाशा होता है। नमक थोड़ा पड़ता है और मीठा ज़्यादा। मीठा थोड़ा दिया जाता है। लेनेवाला परेशान होता है।

नवम्बरमें सेवाग्रामसे आनेके बाद सेठजीके कई पत्र आए कि लेखक एक सहायक ले ले और गोपालन-सम्बन्धी पत्रिकाके सम्पादनका भार अपने ऊपर ले ले। बादमें निश्चय हुआ कि पत्रके निकालनेमें इतनी जल्दी नहीं करनी चाहिए। जब गो-सेवा-संघके अधिवेशनकी तारीख़ें नियुक्त हुई थीं, तब सेठजीका आदेश आया कि इन पंक्तियोंका लेखक उसमें ज़रूर ही उपस्थित हो। यह ख़याल करके कि पहले अधिवेशनमें शामिल होना ज़रूरी है, वर्धा ठीक समयपर लेखक जा पहुँचा। सेठजीने पहलेसे ही कह रखा था कि लेखक कहीं और खाना न खाय। मेरा विचार था कि खाना वहाँ न खाया जाय। जलसोंमें शामिल होना चाहिए। पर सेठजीके आग्रहके सामने किसीकी न चली और वहींपर खाना खाया। फिर उनकी वही रट थी कि मैं सेक्रेटरी हो जाऊँ और खुले अधिवेशनमें भी उन्होंने इसकी चर्चा की।

चलते समय उनसे मुलाक़ात नहीं हुई; पर रास्ता उनकी कोठीके सामनेसे ही था। साथमें एक मित्र भी थे। मैंने युवक मित्रसे, जिनसे सेठजी अपरिचित थे, कोठीके सामनेसे निकलते हुए कहा—"वह देखिए, सेठजी बैठे हैं। कोठीके सामने बाड़ेसे बड़े लाभ हैं। अगर वे देख पाते, तो मानते नहीं। बचकर निकल चलें। पैदल स्टेशन चलना है।" पर दरवाज़ेके सामनेसे निकलते ही उनकी गृद्धदृष्टि पड़ गई। आदमी दौड़ाया, ख़ुद खड़े हुए, शिकायत की—"वाह साहब, आप तो बिना मिले ही चले जाते हैं ! मैं तो गो-सेवा-संघका सभापति हूँ और आप बिना मिले कैसे जा रहे हैं !" लेखकसे हँसकर कहा—"हम तो जान-बूझकर बच निकलना चाहते थे और आपकी रेलियाकी तारीफ़ करते थे।"

उसके बाद बड़े स्नेहसे खाने-पीनेके लिए कहा। दूध पीनेको मैं राज़ी हो गया। मज़ाकमें यह भी कह दिया कि आपका नमक तो खा ही चुका हूँ। नौकर

स्व० सेठजीके अन्तिम दर्शन।

जैसे ही दूध लेने गया, वैसे ही उसे रोककर उन्होंने श्रीमती जानकीबाई बजाजसे कहा—"नहीं, तुम ख़ुद जाकर दूध लाओ।" वे ख़ुद दूध लाईं। बड़े आदरसे पिलाया। इतने नौकरोंके होते हुए भी श्रीमती जानकीबाईसे दूध मँगवाना भारतीय संस्कृतिकी दृष्टिसे कोई बड़ी बात न हो; पर इस अंगरेज़ियतके युगमें जब अमीर लोग रुपए-पैसेको ही बड़प्पनकी कसौटी समझते हैं और जब अनेक देशसेवक और साहित्य-सेवी उनकी चिरौरी करते हैं, तब स्व० जमनालालजी इस बातके ज्वलन्त उदाहरण हैं कि वे वास्तवमें अपनेको उस धनका ट्रस्टी ही समझते थे, जिसे उन्हें परमात्माने व्यापार-कौशलसे दिया था। श्रीमती जानकीबाई पति-भक्तिकी सजीव मूर्त्ति बनी बड़ी

तत्परतासे आतिथ्यमें जुटी रहीं। दूध पीते समय मनमें इसपर बड़ा संकोच था और लज्जा भी आती थी कि हमारा इस प्रकार इतने भले आदमीसे बिना मिले चले जाना अनुचित था। वहाँ भी सेठजीकी एक रट गो-सेवा-संघकी ही थी। उन्होंने फिर दोहराया—"आपसे हमें बड़ा काम लेना है।" और तब श्री महावीरप्रसाद पोद्दारको संकेत करके कहा—"इसे आप जानते हैं? यह आपसे परिचय करना चाहता था।" मैंने शिष्टाचारके नाते कहा—"मुझे दुःख है कि मैं आपको नहीं जानता।" जब सेठजीने नाम बताया, तो लज्जित होकर मैंने कहा—"नामसे तो मैं परिचित हूँ। पोद्दारजीकी लगनका भी मैं क़ायल हूँ।" बादमें मालूम हुआ कि पोद्दारजीका लेखकसे पत्र-व्यवहार भी रह चुका है। पोद्दारजीने फिर एक बात कही और उस बातको यहाँ व्यक्त करनेके लिए हम उनसे क्षमा माँगे लेते हैं। पर उस व्यक्तिगत बातको व्यक्त करनेका कारण है सेठजीकी सूझ और सहजबुद्धि। पोद्दारजीने कहा—"...आपको बहुत याद करते हैं।"

"आख़िर क्या याद करते हैं?"

"बस एक बातकी आपकी तरफ़से उन्हें शिकायत है कि आपने उन्हें यह कहकर बदनाम किया कि वे दिनमें शराब पीकर आते हैं।"

इन पंक्तियोंके लेखकके कुछ कहनेसे पूर्व ही सेठजीने बात काटकर कहा—"अच्छा, तो रातमें तो वे ज़रूर ही पीते हैं।"

लेखकने उत्तर दिया—"अपने अनेक परिचित लोग शराब पीते हैं; पर किसीकी बुराईकी चर्चा सार्वजनिक रूपसे करनेसे क्या लाभ? मैंने यह तो कहा नहीं कि वे दिनमें शराब पीकर आते हैं। वे जैसे और जितनी पीते हैं, मैं जानता हूँ; पर उससे और ग्राम-सुधारसे कोई सम्बन्ध नहीं। यू० पी० मन्त्रिमण्डलकी भूलोंमें से एक भूल उन महाशयकी नियुक्ति है। किन्तु ये सब बातें पुरानी हो गई हैं। मेरा उनसे व्यक्तिगत द्वेष नहीं।"

सेठजीसे विदा ली। उन्होंने फिर आग्रह किया कि गो-सेवा-संघके लिए लेखक काफ़ी काम करे। यह बात ५ फरवरीकी थी, और छः दिन बाद ही (११ फरवरीको) कलकत्तेमें एक वज्रपात हुआ कि सेठजी सदाके लिए इस दुनियासे उठ गए! लोग मरते समय स्वर्गकी ख़ातिर गायकी पूँछ पकड़ते हैं और सेठजीने अपने जीवनके अन्तिम वर्षमें भारतवर्षकी गायोंकी पूँछ पकड़ी थी, क्या इसी कारण उनको इतनी जल्दी मोक्ष प्राप्त हुआ? पता नहीं, क्या बात है? पर उनका इस तरह उठ जाना राष्ट्रकी क्षति है। श्रीमती जानकीबाई और बापूजीकी ज़िम्मेदारी काफ़ी बढ़ गई है। सेठजीको अमर करनेके लिए उनके अन्य कामोंको छोड़ गो-सेवा-संघकी स्थापना ही काफ़ी है। उनके निधनसे जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति होना सम्भव नहीं। रही निधनकी, सो :—

ज़िन्दगीकी दूसरी करवट थी मौत;<br>
ज़िन्दगी करवट बदलकर रह गई।

---

# गीत

### श्री 'विराज'

धीरे-धीरे खिल रहे सुमन!

प्राचीमें लख रवि बालारुण,<br>
छूकर मलयजको, हो सकरुण,<br>
सुनकर विहगोंकी बोलीमें<br>
वनदेवीकी नूपुर रुन-झुन।<br>
हँस-हँस उठते हैं वन-उपवन।

निर्मल जलमें खिल रहे कमल,<br>
विकसित अरुणाके अरुणांचल,<br>
है सूर्यमुखी मुँह उठा हँसी,<br>
हँस उठे सहस्रों पाटल दल।<br>
लख ऊषाकी मादक चितवन।

प्राचीमें आया रवि हँसता,<br>
पश्चिममें पीला शशि ढलता,<br>
जाने क्यों देख कुमुदिनीको<br>
पीड़ासे उर अन्तर जलता।<br>
असमयमें मूँद रही लोचन।

# कांग्रेस-महासमितिकी इलाहाबादकी बैठक

श्रीराम शर्मा

तीर्थराज प्रयागमें कांग्रेस महासमितिकी बैठक कई वर्षों बाद – अनुमानतः आठ वर्षों बाद—गत २९,३० एप्रिल तथा १,२ मईको हुई। जबसे इलाहाबादमें महासमितिकी बैठककी चर्चा समाचारपत्रोंमें हुई, तबसे प्रयागराज राजनीतिक चर्चाका केन्द्रबिन्दु बन गया। सर स्टैफ़र्ड क्रिप्सके मिशनकी असफलताके बाद महासमितिकी बैठक होने जा रही थी, इसलिए इलाहाबादकी बैठक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। कांग्रेस-कार्यसमितिने सर स्टैफ़र्डके प्रस्तावोंपर जो निर्णय किया था, उसपर महासमिति मोहर लगाती है अथवा वह कार्यसमितिके प्रति रोष प्रकट करती है।—यह एक भावना थी, जो पत्रकारों और महासमितिके सदस्योंके मनमें रह-रह कर उठती थी। क्रिप्स-मिशनकी असफलतासे देशमें ब्रिटिश शासनके विरुद्ध एक तेज़ लहर उठ खड़ी हुई थी, और यदि कहीं सर स्टैफ़र्ड क्रिप्सके प्रस्तावोंको मान लिया जाता, तो कार्यसमितिके सदस्योंकी वह छीछालेदर होती कि उन्हें लेनेके देने पड़ जाते।

गत २८ एप्रिलकी शामको तीन-चार मित्रोंके साथ इलाहाबादके लिए इन पंक्तियोंके लेखकने प्रस्थान किया। पारसल-एक्सप्रेससे हम लोग ग्यारह बजेके लगभग इलाहाबाद स्टेशनपर पहुँचे। ठहरनेका विचार तो कहीं और था; पर स्टेशनपर पं० शिवचरणलाल शर्मा एडवोकेट मिल गए, और उनके आग्रहसे हम लोग उनके बँगलेपर ठहरे। श्री जगनप्रसाद रावत और श्री भगवानसहाय और इन पंक्तियोंके लेखकने शर्माजीके यहाँ अड्डा जमाया। इलाहाबादकी गर्मी प्रसिद्ध है; पर आगरेवालोंके लिए तो वह कुछ भी नहीं। फिर राजनीतिक गरमीके कारण तो मौसमकी गरमी कोई हस्ती नहीं रखती थी। सायंकालके साढ़े चार बजे हम लोग अधिवेशन स्थानकी ओर चले। लाऊदर रोड और नेहरू रोडके मिलानपर पहुँचते ही आनन्द-भवनका भव्य रूप सामने दिखाई पड़ा। ऐसा जान पड़ा, मानो गम्भीर मुद्रामें स्व० पं० मोतीलाल नेहरू अदृश्य रूपसे चेतावनी दे रहे हों कि ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंके जालमें फँसना देशकी आत्माका बलिदान करना है। खद्दरधारियोंकी टुकड़ियाँ इक्कों और ताँगोंपर तथा पैदल टैगोरनगरकी ओर बल खाती बढ़ी चली आती थीं। महानदमें जब बाढ़ आती है, तब सफ़ेद फेनके टुकड़े शाखाओं और झाड़ियोंके साथ हँसते, किलकते-से प्रवाहमें बहे जाते हैं, उसी भाँति टैगोरनगरकी ओर जन-समुद्रकी एक बाढ़-सी बही जा रही थी। गांधीटोपियाँ और इक्कों और ताँगोंके पहिए फेन और शाखाओंके टुकड़े प्रतीत होते थे।

टैगोरनगर पहुँचकर पहले तो प्रेस-गैलरीका पास लिया। अनेक मित्रोंसे भेंट हुई। श्री लालबहादुर शास्त्री अपने बचकानी क़दको लिए मुस्कराते दिखाई पड़े। अभी हालमें गिरफ़्तार होनेके बाद ज़मानतपर छूट कर आए थे। महासमितिका पंडाल देखकर तबीयत ख़ुश हो गई। नुरम्बर्ग रैलीके कुछ चित्र बिलायती पत्रोंमें देखे थे, वैसी ही कुछ धज पंडालकी थी। पंडाल अत्यन्त सुन्दर था। दाईं ओर २५) और १०) की टिकट लेनेवाले दर्शकोंके लिए स्थान था। प्रवेश-द्वार और मंचके बीच दो गोल चक्कर थे। भीतरका गोल चक्कर कांग्रेस महासमितिसे सदस्योंके लिए था। पंडालके चारों ओर बिजली चमचमाती थी। बड़े चक्करमें अनेक ऊँचे स्तम्भ थे, जिनमें मशालें जलानेका प्रबन्ध था। स्थान-स्थानपर तिरंगे झण्डे थे, और मेज़के ठीक पीछे एक विशाल झण्डा फहरा रहा था।

लगभग साढ़े ६ बजे शामको राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आज़ादने पंडालमें क़दम रखा। उनके पीछे दो-दोकी क़तारोंमें कार्यसमितिके अन्य सदस्य थे। मौलानाकी चाल-ढाल और वेश-भूषा बड़ी रोबीली है। उनके व्यक्तित्वकी छाप दर्शकोंपर वैसे ही पड़ जाती है। वन्देमातरम् गायन हुआ। आचार्य कृपलानीने गत मीटिंगकी रिपोर्ट पेश की, और वह बिना पढ़े ही स्वीकार कर ली गई। उसके बाद राष्ट्रपतिने ६-४१ पर अपना भाषण प्रारम्भ किया। ठीक डेढ़ घण्टे तक भाषण देकर मौलाना साहबने सबको मन्त्रमुग्ध कर दिया। उन्होंने सर स्टैफ़र्ड-सम्बन्धी भेंटों तथा क्रिप्स-मिशनके बारेमें जो भाषण दिया, वह राजनीतिक दृष्टिसे ही नहीं, वरन्

साहित्यिक दृष्टिसे भी बहुत सुन्दर था। उनकी निथरी-सुथरी भाषा, सीधे चोट करनेवाले शब्द और मँजे हुए मुहावरे सुनकर मुँहसे वाह निकल जाती थी। यदि उस भाषणकी रिपोर्टिंग मौलानाके शब्दोंमें ही की जाती, तो वह एक सुन्दर साहित्यिक कृति भी हो जाती। उदाहरणके लिए "हुकूमतकी दीवारें एकके बाद एक गिर रही हैं, और जो बाक़ी हैं, वे भी हिल रही हैं।" मौलानाकी यह बात बड़ी सारगर्भित थी कि क्या ब्रिटिश गवर्मेण्ट इस जंगके बाद किसीको कुछ दे सकेगी? राष्ट्रपतिके भाषणके बाद क्रिप्स-प्रस्तावको अस्वीकार करनेका कार्यसमितिका प्रस्ताव और सरकार द्वारा रोका गया श्री नेहरूका प्रस्ताव पास किए गए। स्व० सेठ जमनालाल-सम्बन्धी शोक-सूचक प्रस्ताव राष्ट्रपति द्वारा पेश किया गया, और सबने खड़े होकर उसे स्वीकृत किया। डा० राजेन्द्रप्रसादने सर स्टैफ़र्ड-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया और आसफ़अली साहबने उसका समर्थन किया।

लगभग साढ़े तीन घंटेकी बैठकके बाद अगले दिन यानी ३० एप्रिलके लिए बैठक स्थगित कर दी गई। पंडालसे लगी हुई और पंडालके भीतर शरबत और सोडेकी दुकानें थीं। वैसे स्वयंसेविकाएँ प्रत्येक व्यक्तिके पास पानी लिए घूमती थीं, इसलिए पानीका कष्ट किसीको नहीं हुआ। डा० काटजू अचकन और चूड़ीदार पाजामेमें अपने सफल प्रबन्धपर अप्रत्यक्ष रूपसे बड़े प्रसन्न प्रतीत होते थे। उनके रोम-रोमसे—वैसे उनके चेहरेको छोड़कर सारा शरीर कपड़ोंसे ढँका और कसा था—उनकी प्रसन्नता प्रस्फुटित हो रही थी।

राजाजीकी मुस्लिम-लीगसे सुलह करनेकी बातपर चारों ओर चर्चा थी। महामना मालवीयजीका मंचपर आना एक ऐसा दृश्य था, जिसे देखकर सब गद्गद् हो गए। कांग्रेसके सभापति जितनी बार मालवीयजी और नेहरूजी बने हैं, उतनी बार और कोई नहीं बना। अपने ७५-७६ वर्षके जीवनके भारको लिए हुए वयोवृद्ध महामना मालवीयजी बड़ी तत्परतासे मंचकी ओर पं० जवाहरलाल नेहरू और पं० गोविन्द मालवीयके सहारे आकर बैठे। राष्ट्रपतिने उठकर, उनके निकट जाकर और झुककर बाक़ायदा तस्लीम बजाई। जिस पेड़को महामना मालवीयजीने बड़े परिश्रमसे सींचा था, उसे अपने बुढ़ापेमें फूलता-फलता देखकर उन्हें आत्मतोष हो रहा था। भाषणोंको उन्होंने बड़े ध्यानसे सुना। अगले दिन यानी ३० एप्रिलको महासमितिका अधिवेशन सायं-काल सात बजे राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आज़ादकी अध्यक्षतामें शुरू हुआ। महामना मालवीयजी ३० तारीख़को भी पधारे, और सबने करतल-ध्वनिसे उनका अभिनन्दन किया।

प्रवासी भाइयोंकी समितिके सभापति श्री सत्यमूर्तिने बरमासे लौटनेवाले भारतीयोंके सम्बन्धमें की गई व्यवस्थाकी आलोचना की और मलाया तथा बरमाके आश्रयार्थियोंसे सम्बन्धित प्रस्ताव पेश किया। पं० गोविन्दवल्लभ पन्तने उसका समर्थन किया, और वह सर्वसम्मतिसे पास हो गया। दूसरा प्रतिबन्धित प्रस्ताव डा० प्रफुल्लचन्द्र घोषने पेश किया और उसका अनुमोदन श्री शंकरराव देवने किया। उसके बाद पहली मईके लिए अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। समय काफ़ी था और कम-से-कम दो ढाई घंटे तक अधिवेशन और हो सकता था। पर फिर भी राष्ट्रपतिने अधिवेशन क्यों स्थगित किया—यह एक ऐसी बात थी, जिसका रहस्य जाने बिना पत्रकारोंको चैन नहीं मिल सकता था। अनेक अफ़वाहें फैली हुई थीं। कोई कहता था कि महात्मा गांधीने एक बड़ा ही कड़ा प्रस्ताव मीराबेनके हाथ या सरदार पटेलके हाथ भेजा है, जिसपर कार्यसमितिके सदस्योंमें काफ़ी मतभेद है। बात यहाँ तक उड़ी कि महात्माजीने जो प्रस्ताव भेजा है, उसके पक्षमें १३ व्यक्ति हैं और विपक्षमें अकेले पं० जवाहरलाल नेहरू। पर यह बात तो निराधार केवल इसीलिए थी कि मौलाना साहब और पं० जवाहरलाल नेहरू सर स्टैफ़र्डके मामलेमें एक ही मतके थे। फिर भी यह बात तो स्पष्ट ही थी—कम-से-कम ऐसा प्रतीत तो हुआ ही—कि कार्यसमितिके सदस्य अधिवेशनके मूल प्रस्तावके बारेमें निर्णय नहीं कर चुके थे और उनका पारस्परिक वाक्युद्ध अभी बाक़ी था। मौलाना साहबकी चिन्ताग्रस्त मुद्रा भी इस बातका प्रमाण थी कि उन्हें विवादके तूफ़ानमें से होकर गुज़रना है। पत्रकार बातको स्पष्ट रूपसे जाने बिना ही अपना अनुमान लगा बैठते हैं, या यों कहना चाहिए कि शिकारी कुत्तोंकी भाँति वे अपने शिकारको सूँघ लेते हैं। इस पत्रकार-कला-जन्य घ्राण-शक्ति और अनुमानकी कलासे इन पंक्तियोंका लेखक इस नतीजेपर पहुँचा कि महात्माजीके पत्रको लेकर काफ़ी वाद-विवाद हुआ, और

पहली तारीख़को श्री गोविन्दवल्लभ पन्तने जो प्रस्ताव पेश किया और जैसा उनका भाषण हुआ, उससे तो यह साफ़ हो गया कि पन्तजीने जो महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखा, उसका प्रस्तावित रूप वह नहीं था, जो महात्माजी चाहते थे। क्यों ? इसलिए कि पन्तजीने प्रस्ताव पेश करते हुए जो भाषण दिया, वह उनके अनुरूप न था। पन्तजी भारतवर्षके सबसे अच्छे पार्लमेंटेरियन हैं, और यह भी ठीक है कि उनकी भाषण-कलाकी प्रतिभा उस समय बहुत खिलती है, जब उनसे कोई छेड़ख़ानी कर दे। धधकती आगमें घीकी आहुतिसे जिस प्रकार उग्रता आ जाती है, ठीक उसी प्रकार पन्तजीको बोलते समय अगर कोई छोड़ दे, तो फिर वे अपने जौहर ही दिखाते हैं। पर छेड़ख़ानी न होनेपर भी वे बड़े ज़बरदस्त वक्ता हैं; लेकिन उस दिन प्रस्ताव रखते समय उनकी वह प्रतिभा नहीं दिखाई पड़ी। हाँ, विवादका जो उन्होंने उत्तर दिया, वह उनके अनुरूप था। सबसे अच्छे भाषण जो पहली तारीख़को उस प्रस्तावपर हुए, वे थे गिडवानीजी और डा० राजेन्द्रप्रसादके। सीधे-सादे और चुटीले शब्दोंमें गिडवानीजीने इस तरह अपना संशोधन पेश किया कि उपस्थित सदस्य फ़ौरन उनके साथ हो गए और पं० जवाहरलालजीको उनका संशोधन मानना पड़ा। यह भी पता चला कि महात्मा गांधीके मूल प्रस्तावके पक्षमें कार्यसमितिमें बहुमत था और मौलाना, नेहरूजी, पन्तजी और आसफ़अली एक ओर थे।

कांग्रेस-महासमितिके अधिवेशनमें पहली मईको पं० जवाहरलालजीने जो भाषण दिया, वह एक प्रकारसे उनकी मानसिक वेदनाका प्रकटीकरण था। समझमें नहीं आता, उस प्रकारकी क्षमा-याचनाका क्या कारण था ? सम्भवतः कार्यसमितिमें नेहरूजीका काफ़ी विरोध हुआ होगा। यदि ऐसी बात न होती, तो वे ऐसी बातें क्यों कहते कि "लोगोंका ख़याल है कि मेरा दिमाग़ आवारा-सा है। कुछ जंगलीपन मुझमें है। मैं दिन-दिन महसूस करता जाता हूँ कि मैं औरोंको और ख़ास तौरसे एक जमातको किसी कामके लिए सलाह देने लायक़ नहीं रहा। स्टालिनसे मेरा कोई पत्र-व्यवहार नहीं हुआ।" नेहरूजीकी मनोवृत्ति इस बातकी द्योतक है कि कार्यसमितिमें इस बातकी आलोचना की गई होगी कि वे मौक़े-बेमौक़े रूसकी स्तुति किया करते हैं। इसमें शक नहीं कि नेहरूजी देशके रत्न हैं; उनका बड़ा दोष यह है कि देशकी संक्रामक स्थितिमें वे बहुत-सी अस्पष्ट बातें कहते हैं, और ऐसा मालूम होता है कि अनेक बातोंमें उनके दिल और दिमाग़का संघर्ष रहता है। लोगोंकी आम शिकायत है कि स्टालिन भारतके बारेमें एक शब्द भी नहीं निकालता और एक नेहरूजी हैं, जो रूसकी नीतिपर फ़िदा बने हुए हैं। भारतीय ग़रीब रूसके विरोधी नहीं हैं; पर हम हैं किस लायक़ ? पहले हमें अपना घर और देश ठीक करना है। बार-बार कोरी सहानुभूतिसे क्या होता है ? कम्युनिस्ट डा० अशरफ़से जब पन्तजीने आग्रह किया कि वे अपना प्रस्ताव वापस ले लें, तब अशरफ़ साहबने अशिष्ट ढंगसे आवाज़ कसी कि "नसीहत मत कीजिए, आगे चलिए।" पन्तजीका प्रस्ताव बहुमतसे पास हुआ। बड़ी मज़ेकी बात यह है कि इस प्रकारके विवादग्रस्त प्रस्ताव
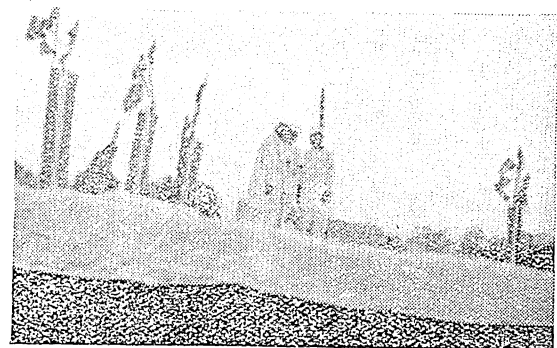
कांग्रेस-महासमितिकी बैठकमें मंचपर खड़े राजेन्द्र बाबू और सरदार पटेल परामर्श कर रहे हैं।

कई बार पन्तजीने ही पेश किए हैं। त्रिपुरीका पन्त-प्रस्ताव तो एक इतिहासकी चीज़ है और इलाहाबादका सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी, जिसका संशोधित रूप पन्तजीने रखा, उन्हींके सिर पड़ा।

महासमितिकी अन्तिम बैठकके लिए संगीत-परिषदका स्थान नियत हुआ, और उस दिन राजाजीका प्रस्ताव पेश होनेकी सूचना दी गई। इस सूचनाके देनेके बाद ही दिल्लीके श्री देशबन्धुने एक वैधानिक आपत्ति की कि पन्तजी द्वारा पेश किए गए प्रस्तावके पास होनेके बाद राजाजीका प्रस्ताव पेश करना अनुचित है। अपना निर्णय देनेसे पूर्व मौलाना साहबने राजाजीसे कुछ बोलनेका अनुरोध करते हुए कहा कि उनका प्रस्ताव पेश न होना एक बड़ी

Reg. No. C—1645



ख़तरनाक बात होगी। वास्तवमें श्री देशबन्धुका 'प्वाइन्ट आफ़ आर्डर' वाजिब था। स्वयं पन्तजी भी यह कहते सुने गए कि लाला देशबन्धुकी आपत्ति बिल्कुल उचित है। पर मौलाना साहबने राजाजीको अपना प्रस्ताव पेश करनेकी आज्ञा दे दी।

दूसरी मईको राजाजीने अपना प्रस्ताव रखा। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राजाजी भाषण-कलाके आचार्य हैं और एक प्रवीण वकीलकी भाँति नपे तुले शब्दोंमें पौराणिक गाथाओंके सहारे उन्होंने अपने मतकी पुष्टि की। उन्होंने कहा—"समुद्र-मंथनमें विष निकलता ही है। मैं भलाईके लिए यह चीज़ कर रहा हूँ। उससे विष पैदा होगा और उस विषको पान करनेकी शक्ति कांग्रेसमें है।" राजाजीका भाषण पांडित्य, तर्कशैली और उनका सिक्का जमानेके लिए काफ़ी था। लेकिन वे अपनी बातको लोगोंके हृदय तक नहीं पहुँचा सके। मुस्लिम-लीगसे समझौता करनेकी नीति उनकी वैसी ही पांडित्यपूर्ण थी, जैसे कालिदास या रवीन्द्रनाथ ठाकुर भूलसे व्यभिचारकी पुष्टिमें एक काव्य लिखनेका दुस्साहस करते। उनके मतका प्रदर्शन नहीं था, जितना उनके पांडित्यका प्रकटीकरण। भाषणके दौरानमें राजाजीकी नेहरूजीसे एक झपट भी हो गई, और वह झपट ठीक ऐसे थी, जैसे दो फ़िकैत अपने वार करते हों।

डा० राजेन्द्रप्रसादने, जैसा कि अनुमान था, राजाजीको उत्तर दिया। एक भारी टैंकसे दूसरा भारी टैंक भिड़ा दिया गया। सीधे-सादे ढंगसे श्रीमान राजेन्द्र बाबूने राजाजीकी प्रत्येक बातकी धज्जियाँ उड़ा दीं। समुद्र-मन्थनकी पौराणिक कथाका उन्होंने वह मख़ौल उड़ाया कि राजाजीकी पौराणिक गाथाकी दीवार बिल्कुल ढह गई। उन्होंने कहा—"आख़िर इस समुद्र-मंथनमें देव कौन हैं? असुर कौन हैं? अभी तो इस मंथनमें विष ही विष निकला है, और फिर न जाने कितने राहु और केतु इस देशमें नहीं दिखाई पड़ेंगे। और देश कब तक विषपान करता रहेगा?" ब्रिटिश सरकारके नए प्रस्तावोंकी आलोचना करते हुए उन्होंने भोजपुरीकी एक सुन्दर कहावत सुनाई—'बहुरियाके बहुत दुलार, हाँड़ी-चूल्हा छूअहीं ना पावे।'

बिहारके श्री जगतनारायणजीका प्रस्ताव एक प्रकारसे राजाजीके प्रस्तावका प्रत्याक्रमण था। श्री जगतनारायणजीके प्रस्तावसे राजाजी इतने चकराए कि उन्होंने प्रार्थना की कि चाहे उनका प्रस्ताव गिरा दिया जाय; पर जगतनारायणजीका प्रस्ताव किसी भी तरह स्वीकृत न हो। फिर भी राजाजीका प्रस्ताव गिर गया और जगत बाबूका बहुमतसे पास हुआ। कांग्रेसने एक प्रकारसे पाकिस्तानी योजनाके विरुद्ध एक मोहर लगा दी।

मौलाना आज़ादने अपना अन्तिम भाषण बड़े ही मर्म-स्पर्शी शब्दोंमें दिया। मालूम होता था कि मौलाना भावावेशमें आकर अपनी आत्माकी पुकारको शब्दोंमें व्यक्त कर रहे थे। हिन्दुस्तानीकी हैसियतसे और मुसलमानकी हैसियतसे उन्होंने पाकिस्तानकी निन्दा की। "कांग्रेसमें सभी लोग हैं। अगर उसमें हिन्दू ही होते और कांग्रेस इस बातका दावा करती कि वह सभी हिन्दुस्तानियोंकी स्यासी जमात है, तब भी वे उसीमें रहते।" उन्होंने राजाजीकी काफ़ी आलोचना की और कहा—"राजाजीके तरीक़ेसे उस उद्देशको काफ़ी नुक़सान पहुँचा है, जिसे वे चाहते हैं। मुस्लिम-लीगकी बागडोर जिनके हाथमें है, उन्होंने कांग्रेसके ख़िलाफ़ एक अभेद्य दीवार खड़ी कर दी है। जिन्ना साहबसे मैं मिला। महात्माजी भी मिले। नेहरूजीने पत्र व्यवहार किया। लोकमत इसके ख़िलाफ़ था। पर मुस्लिम-लीगकी तरफ़से कहा जाता है कि सवाल हिन्दू-मुसलमानोंका नहीं, वरन् कांग्रेस-लीगका है। तब हमारे सामने दो सवाल थे—हम अपने पिछले ५० सालके इतिहासको मिटा दें और यह बात मान लें कि कांग्रेस हिन्दुओं ही की संस्था है और हम यह भी मान लें कि मुस्लिम-लीग ही एकमात्र मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करती है।"

कांग्रेस महासमितिकी इलाहाबादकी बैठकने लोगोंपर एक प्रभाव यह छोड़ा कि ब्रिटिश सरकारके प्रस्तावोंकी मृग-मरीचिकासे घबराकर और अन्य थोथी बातोंके चक्करमें पड़नेके बाद कांग्रेस-महासमितिने अथवा देशने महात्मा गांधीके चरणोंमें अपना सिर टेक दिया। एक प्रस्ताव ऐसी भी आनेवाला था, जिसके द्वारा महात्माजीसे प्रार्थना की जानेवाली थी कि वे कांग्रेसका नेतृत्व फिर सँभाल लें। अगर वह प्रस्ताव पेश किया जाता या वह तजवीज़, जो महात्माजीने वर्धासे भेजी थी, महासमितिके सामने रख दी जाती, तो वह पास हो जाती।

## चुंकिंगमें अन्तर्राष्ट्रीय महिला-दिवस (तीसरा वार्षिकोत्सव)

चीनी महिलाओंकी पथ-प्रदर्शिका मादाम च्यांग-काईशेक समानेतृ-पदसे अपना मौखिक भाषण दे रही हैं।

एक युवती चीनके भविष्य और महिलाओंके कर्त्तव्यके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट कर रही है।

चीनकी लाखों महिलाएँ उच्च हर्षध्वनिसे सभानेतृ मादाम च्यांग-काईशेकका स्वागत कर रही हैं।

Reg. No. C—1645
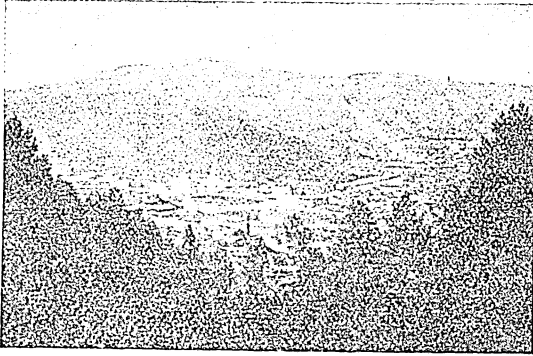
यूरालकी तराईमें स्थित स्टालिंस्क नगर, जहाँ रूसी युद्ध-सामग्री तैयार कर रहे हैं।

बर्मासे चटगाँव पहुँचनेवाले कुछ भारतीय शरणार्थी, जो अब विपदाशंकाके कारण चटगाँवसे भी चल पड़े हैं। ऐसे ही न मालूम कितने शरणार्थी अब भी बर्मा और आसामसे चलकर प्रतिदिन भारतकी ओर आ रहे हैं।
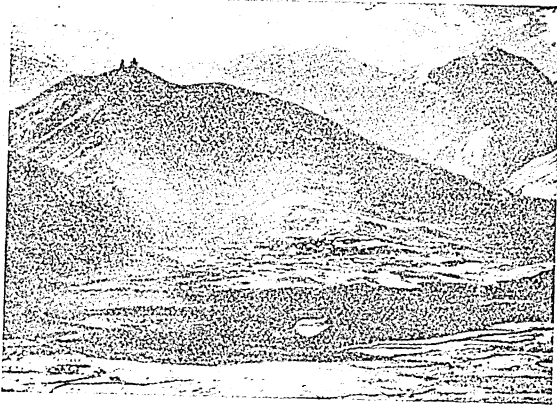
कोहकाफ़ पर्वत-श्रेणीका द्वार, जिसकी रक्षाके लिए रूसी पूरी तरह तैयार हैं।

कविवर घासीराम व्यास [ देखिए पृष्ठ ६५६
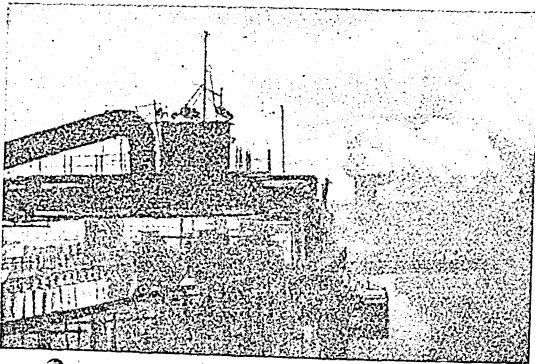
मैगनिटगरस्क, जहाँ रूसके प्रसिद्ध लोहेके कारख़ाने हैं।
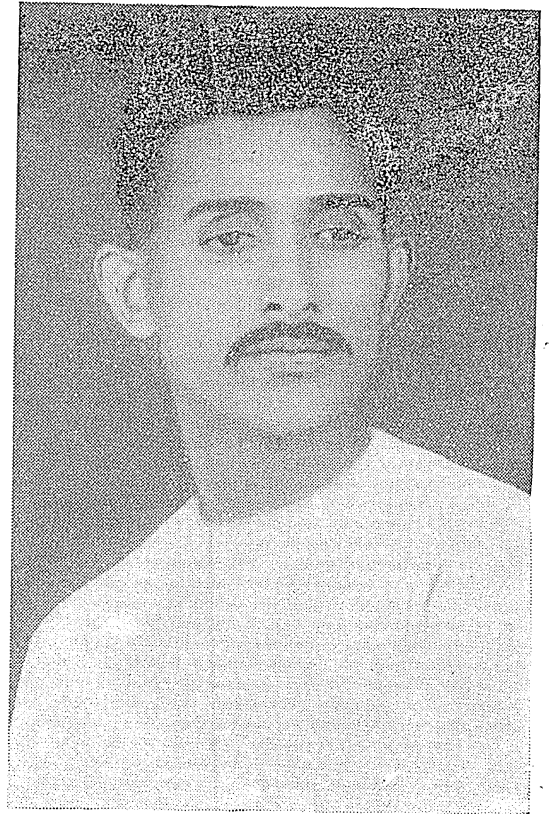
# वह शनिवारकी बात

श्री मनमोहन गुप्त

"ऐसी बहुत-सी बातें हमारे जीवनमें रोज़ हुआ करती हैं ; परन्तु हम लोग उनकी परवाह भी नहीं करते। कौन जाने उनके पीछे क्या छिपा हुआ है ? अभी-अभी तुमने जिस भिखारीको कुत्ते-जैसा दुतकारकर भगा दिया है, कौन जाने उसने किस प्रयोजनसे तुम्हारे आगे हाथ फैलाए हों। तुम सोचती होगी कि वह ढोंगी है और ढोंग करके भीख माँग रहा है ; किन्तु तुम यह नहीं समझतीं कि भला ढोंग करके भी कोई भिक्षा माँग सकता है ? भीख तो, मेरे ख़्यालसे, तभी कोई माँगता है, जब उसकी आवश्यकताएँ अन्य किसी सम्मानपूर्ण कार्यसे पूरी नहीं होतीं। अच्छा मान लो, जिस भिखारीको तुमने दुतकारते हुए कहा—'जा, मेहनत करके क्यों नहीं खाता ? इतना भारी बदन रहते हुए भी ढोंग करके भीख माँगता फिरता है', यदि वह यह कह बैठता—'अच्छी बात है, माताजी ! कोई काम देकर मुझे और मेरे बाल-बच्चोंको अपने पास रख लीजिए।' तो क्या तुम उसे कोई काम दे सकती थीं ? तब फिर इस प्रकारसे डाँटना केवल अन्याय ही नहीं, बल्कि उन ग़रीबोंपर ज़ुल्म तथा अत्याचार करना है।"

बनारसके केदारघाटके एक चबूतरेपर बैठकर रमेश बाबू अपनी स्त्रीको इसी प्रकारकी शिक्षा दे रहे थे। उनकी पत्नीने भिखमंगेको दुतकारकर वैसी ही मनोवृत्तिका प्रदर्शन किया था, जैसी आजकलके शिक्षित लोगों और राजनीतिज्ञोंकी हुआ करती है कि भीखमंगोंको भीख माँगनेसे रोको। बेचारी प्रीति स्वामीके सामने अपनी बातोंको कहकर लज्जित-सी बैठी थी। जिन बातोंसे स्वामीको चोट पहुँची थी, उन्हें कैसे वापस लिया जाय, यह उसे सूझ ही नहीं रहा था। थोड़ी देर तक वह चुप-चाप बैठी रही, फिर बोली—"हमारे कालेजमें तो लड़कोंसे लेकर प्रोफ़ेसर तक यही कहते थे और इसी मतका पोषण करते थे। इसी बातको लेकर कितनी ही बार बहस-मुबाहसे भी हुए थे और अन्तिम निर्णय यही हुआ कि भीख माँगना बन्द होना चाहिए।"

यह सुनकर रमेशने कहा—"हाँ-हाँ, मैं कब कहता हूँ कि ऐसा न होना चाहिए। परन्तु सवाल तो यह है कि बिल्लीकी 'म्याऊ' को पकड़नेकी भी कोई व्यवस्था हुई है या कोई कर रहा है ? केवल बिल्लीके गलेमें घंटी बाँधनेका प्रस्ताव पास करनेसे तो काम नहीं चलेगा। यदि भिख-मंगे भी यही कह दें कि हम भीख माँगकर जो कुछ करते हैं, उसे प्रस्तावकगण पूरा कर दें, तो हम भीख माँगना छोड़ देंगे ; तो इसका भी निराकरण किसीने सोचा है ? बात कहना जितना सहज है, उसे करना उतना सहज नहीं।" थोड़ी देर रुककर वह फिर बोला—"इसकी एक बड़ी सुन्दर कथा प्रोफ़ेसर बोसने हम लोगोंको एक बार क्लासमें सुनाई थी। उसे मैंने अपनी नोटबुकमें नोट कर लिया था। घर चलकर तुम्हें दिखाऊँगा। उसे पढ़ोगी, तो तुम्हें सारी बातोंका पता चल जायगा।"

यह बात वहीं ख़त्म हो गई। उस दिन शनि-वारकी संध्या थी। वे दोनों सिनेमाकी ओर चले। साधारणतः नौकरी-पेशेवाले लोग सारा सप्ताह काम करनेके बाद शनिवारके दिन अपने बाल-बच्चोंको लेकर सिनेमा-हाउसमें पहुँचते हैं। सिनेमाकी ओर चलते-चलते रमेशने प्रीतिसे कहा—"देखो, वे जो भिखमंगे सड़कके दोनों ओर बैठे दीखते हैं, उनमें सब एक-से नहीं हैं। उनमें कोई काना, कोई गूँगा, कोई लँगड़ा और कोई अस्सी-नब्बे सालका बुड्ढा है। अब बताओ, उनमें से कितनोंको उनके लायक काम दे सकती हो ? और फिर जिस दुनियामें स्वस्थ और खासे लिखे-पढ़े नौजवानोंको नौकरियाँ नहीं मिल रहीं, वहाँ ग़रीबोंको कौन पूछे ? अच्छा तो यह हो कि दुनियामें इनके लायक काम मिले और इनके किए हुए कामोंका इन्हें उतना ही पारिश्रमिक भी मिले, जितना कि इनका ख़र्च हो। जब तक यह नहीं होता, तब तक भिखमंगोंका दुरदुराया जाना मैं नहीं देख सकता। तुम यह कह सकती हो कि जब उनके लिए क़ानून बनेगा, तो उनके जेल जानेसे उन्हें खाना मिलने लगेगा ; परन्तु क्या मैं यहाँ पूछ सकता हूँ कि वे बेचारे अन्धे, लँगड़े, लूले या बुड्ढे अपनी मर्ज़ीसे हुए हैं, जिसके लिए उन्हें

सज़ा मिले ? यदि इसी अपराधके लिए उन्हें सज़ा मिले, तो उन लोगोंको भी सज़ा मिलनी चाहिए, जो जन्मसे स्वस्थ होते हुए भी सिर्फ़ पासमें काफ़ी पैसा रहनेके कारण बैठे-बैठे खाते हैं। आजकी हालत देखते हुए दोनों बातोंमें पहली उतनी ज़रूरी नहीं है, जितना कि दूसरी। कारण, दूसरीके व्यावहारिक रूप पानेपर पहली अपने-आप बन्द हो जायगी। इसीसे मैं कहता हूँ कि भिखमंगोंके लिए कुछ सोचनेसे पहले उन लोगोंके लिए सोचना ज़रूरी है, जो लोग स्वस्थ होते हुए भी टाँग पसारे गुलछर्रे उड़ाते हैं।''—इतना कहते-कहते वे सिनेमा-हाउसके सामने आ गए।

- २ -

रविवार छुट्टीका दिन है। प्रातःकालका भोजन समाप्तकर जब प्राफ़ेसर रमेश अपने मित्र हरेन्द्र बाबूके यहाँ बैठक जमानेके लिए रवाना हुए, तो प्रीत स्वामीकी दी हुई नोटबुक लेकर पढ़ने बैठा। लिखावट बहुत दिनोंकी होनेके कारण कुछ मिटी हुई-सी मालूम होती थी, फिर भी पढ़ी जा सकती थी। आज चार सालसे रमेश काशीके एक कालेजमें नौकरी करते थे, और यह नोटबुक उनकी उस समयकी थी, जब वे विश्व-भारतीके छात्र थे। उसमें सबसे पहले गुरुदेवकी एक अमर वाणी लिखी हुई थी—'तेरी पुकार सुनकर जो कोई न आवे, तो तू अकेला ही चला चल!' फिर आगे उसने पढ़ना शुरू किया :—

शनिवार ; १६ मई, १९३२

''लेपज़िकस्ट्रास पार करके मैं शहरकी सीमा अतिक्रम कर रहा था। कुछ-कुछ गाँवका आभास मालूम हो रहा था। मिलकी चिमनियोंने भी शायद वहींपर अपने धूएँकी सीमा बाँध रखी थी। धीरे-धीरे सड़कके दोनों तरफ़के बड़े-बड़े वृक्षोंकी संख्या भी बढ़ती जा रही थी। सामनेवाले लोहेके पुलके, जो चेरी और नाशपातीके पेड़ोंकी कतार पार करके पड़ता है और जो शहर और देहाती क्षेत्रोंका विभाजन करता है, पाससे मेरा नौकर रिक्शा खींचे चला जा रहा था। मैं अटैचीपर पैर रखे न जाने क्या-क्या सोच रहा था। आज शनिवारकी संध्या थी। मैं शहरसे हफ़्ते-भर तक काम करके थका-माँदा चला जा रहा था। हफ़्ते-भरके बाद शहरसे गाँवमें जानेका आनन्द तो वे ही अनुभव कर सकते हैं, जिनकी प्रतिमा-जैसी स्त्रियाँ गाँवके घरोंमें आँखें बिछाए खड़ी हों। मैं भी प्रतिमासे मिलने जा रहा था। सोमवारको सवेरे फिर उसी शहरमें वापस आ जाना है—हाँ, फिर वापस! ओह! प्रतिमाका वह रुँआसा चेहरा...!

'अरे बाप रे! हा भगवान!'—मिलरने चीख़ मारी!

मेरा सिर भी पुलकी नीची दीवारसे टकरा गया। मैं सँभलकर खड़ा हो गया। ओवरकोटको झाड़ते हुए मिलर एकदम रिक्शेकी ओर झपटा। शायद उसके पैरमें काफ़ी चोट आई थी। देखा, तो उसके अँगूठेका नाख़ून उखड़ गया था। मैं भी कोटको झाड़ते हुए उठकर खड़ा ही हुआ था, मिलरने रिक्शेको सँभालकर कहा—'बाबूजी, जल्दी-जल्दी सवार हो जाइए!'

यद्यपि मेरी समझमें कुछ नहीं आया, फिर भी मैं अटैची लेकर एक छलांगमें रिक्शेपर सवार हो गया। उस समय मिलरकी सतर्क वाणीसे अधिक अटैचीकी ओर मेरा ध्यान था। कारण, प्रतिमा मेरे साथ-साथ उस अटैचीकी प्रतीक्षामें भी होगी। ओह, उस छुंना-झपटीके आनन्दको मैं भुला नहीं सकता—वह भी मेरे लाए हुए थोड़े से फलोंके लिए! उस दिनके वे फल शायद किसीको मैं उतने ही सोनेके बदलेमें भी नहीं दे सकता था।

मिलर रिक्शा लेकर चलने ही वाला था कि बग़लसे आकर किसीने उसे पकड़ लिया। मैंने सोचा, यह कोई डाकू है। जबसे यूरोप गया था, तबसे मैंने एक पिस्तौल पास रखनेकी आदत-सी डाल ली थी। मेरा हाथ तुरन्त पिस्तौलपर गया। मैंने निशाना लेते हुए कहा—'ठहरो! रुक जाओ! छोड़ो!...ऐ!'

परन्तु पकड़नेवाले आदमीने छोड़ा नहीं, बल्कि और ज़ोरसे मिलरको पकड़ते हुए कहा—'रोको, रोको।'

मैंने रिक्शेपर से ही कहा—'अच्छा, तो अब मरनेके लिए तैयार हो जाओ।'

मैं गोली चलाने ही वाला था कि पुलकी बग़लसे एक नारीकी आवाज़ आई—'बाबूजी, बचाओ ; ख़ुदाके वास्ते बचाओ!'

मेरा हाथ शिथिल हो गया और वह जवान मिलरको छोड़कर अलग हो गया। मैं कुछ समझ न पाया। मिलरने रिक्शा छोड़, उस ज़वानके गलेमें हाथ डाल उसे गिरा दिया और उसकी छातीपर चढ़ बैठा।

मैं भी अब तक रिक्शेसे नीचे उतर पड़ा था। इतनेमें मिलरने उसका गला दबाते हुए कहा—'बोल बदमाश, बोल !'

उसका गला रुँध गया था और वह गिड़गिड़ा रहा था। यह देख उधरसे वह औरत चिल्ला उठी—'बचाओ, बचाओ...बाबू...!'

मैंने तुरन्त मिलरसे कहा—'छोड़ दो मिलर, छोड़ दो !'

मिलर मेरा बड़ा पुराना नौकर था। वह मेरी बात माननेके लिए बाध्य भी था। फिर भी उस दिन यह पहला मौक़ा था जब कि मेरे कहनेपर भी उसने उसे नहीं छोड़ा, बल्कि और भी ज़ोरसे उसका गला दबाता ही गया। शायद उसके पाँवके उस कठिन आघातका यही जवाब था। आख़िर बाध्य होकर मुझे ही मिलरका हाथ पकड़कर छुड़ाना पड़ा। दाँतपर दाँत रखकर मिलरने उसके बाएँ हाथपर अपने दाहिने हाथसे घूँसा मारते हुए कहा—'इसे तो आज मार ही डालना है।'

ग़ुलामोंको मैं बहुत ग़रीब समझता था; परन्तु आजका मिलरका क्रोध देखकर मैं समझ गया कि हिन्दुस्तानके पठानोंसे ये लोग कम बदला लेनेवाले नहीं होते। वह अजनबी अब तक बिलकुल बेहोश हो गया था, फिर भी मिलरने दौड़कर उसकी छातीपर एक लात लगा ही दी। यह देख मैंने कहा—'मिलर, अब जाने दो !'

मिलरने ग़ुर्राते हुए कहा—'नहीं, नहीं, इसपर कोई दया मत दिखाइए। इस नरकके कुत्तेको गोलीसे उड़ा दीजिए ! मारिए, अभी मारिए !'

अब मैंने ज़रा कड़ककर कहा—'मिलर, होश सँभालो !'

वह कुछ शान्त तो अवश्य हुआ; परन्तु उस अजनबीसे मनमाना बदला न लेनेके कारण जैसे उसकी आँखोंसे लहूके आँसू टपकने लगे। अभी तक मुझे इतनी फ़ुर्सत ही नहीं मिली थी कि मैं उस औरतकी खोज-ख़बर लेता। जब मिलर शान्त हुआ, तो स्वभावत: मेरी दृष्टि उस औरतकी ओर गई। मैंने देखा कि एक औरत बेहोश-सी पुलकी दीवारके सहारे खड़ी है। उसके बदनका फटा-पुराना गाउन ख़ूनसे लतपत हो रहा है। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं आगे बढ़कर बिलकुल उसके सामने जा खड़ा हुआ। उसकी अधखुली आँखें मेरी ओर बिछी हुई थीं। उसकी हालत देखकर मुझसे रहा न गया। मैंने जाकर उसे पकड़ लिया। उसने आह भरकर मेरे हाथपर अपना सिर रख दिया और दोनों हाथोंसे मेरे बाएँ हाथको पकड़ लिया। इतनेमें मिलर भी आ पहुँचा।

वह औरत धीरे-धीरे कहने लगी—'बाबूजी, मुझे अस्पताल पहुँचाओ ! मेरे पतिको, ईश्वरके नामपर, क्षमा करो।'

समझते देर न लगी कि वह औरत गर्भवती है। रक्तस्रावसे यह भी पता चल गया कि उसके बच्चा होनेमें देर नहीं है। देर करनेसे काम नहीं चलेगा, इसलिए मैंने मिलरसे तुरत रिक्शा लानेको कहा। पहले तो मैंने सोचा था कि मिलर इनकार करेगा; परन्तु वह जिस व्यग्रतासे रिक्शा लाने दौड़ पड़ा, उसमें स्पष्टरूपसे मनुष्यताकी छाप थी। उस औरतको ढाढ़स देते हुए मैंने कहा—'घबराओ नहीं, सब ठीक हो जायगा।'

उस बेचारीकी आँखोंसे और वेगसे आँसू बहने लगे। मैं और मिलर दोनोंने मिलकर उसे रिक्शेपर सयत्न लेटा अस्पतालके लिए रवाना किया। जाते समय उसने फिर कहा—'मेरे स्वामीको माफ़ करना और मेरा पता बता देना।'

मैंने निश्चिन्त रहनेका दिलासा देकर उसे रवाना किया। जब तक वह दिखती रही, उसकी आँखें ज़मीनपर पड़े अपने अर्द्ध-मूर्च्छित पतिकी ओर अवश्य लगी रही होंगी। कारण, मैंने देखा था कि उन आँखोंमें एक ऐसी पति-प्रेमकी भावना अंकित थी, जिसे मैंने प्रतिमाकी आँखोंमें कई बार अपने ऊपर कोई मुसीबत आ पड़नेपर देखा था।

अब मेरा ध्यान उस जवानकी ओर गया। जब वह औरत चली गई, तो मैं उसके पास गया और उसे उठाकर सड़कके एक किनारे किया। गला दबानेसे वह मूर्च्छित हो गया था। थोड़ी देर तक उसकी सेवा-सुश्रूषा करनेके बाद वह कुछ सँभला। मुझे देखकर उसकी आँखोंमें आँसू भर आए और बहुत ही धीमी आवाज़से वह कहने लगा—'बाबूजी, थोड़ा पानी दो।'

अटैचीसे लोटा निकालकर मैं नहरसे पानी भर लाया। थोड़ा-सा पानी पीनेके बाद वह कुछ स्वस्थ हुआ और

फिर धीरे-धीरे बोला—'बाबूजी, मैं कोई चोर या डाकू नहीं, मैं एक मज़दूर हूँ।' उसके फटे हुए पैंट और मिलकी कालिख लगी हुई ख़ाकी कमीज़को देखकर उसकी बातोंपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं था। फिर उसने कहा—'बाबूजी, मेरी औरतको बचाओ; अभी अभी उसे बच्चा होनेवाला है।'

मैंने उसे आश्वासन देते हुए कहा—'भाई, घबराओ नहीं, उसे अस्पताल भेज दिया है।' यह सुनकर उससे रहा नहीं गया, उसका दुःख-संतप्त हृदय टूट गया और वह रो पड़ा। मैंने उसका सिर अटैचीपर रखते हुए कहा—'भाई, रोनेसे कुछ लाभ नहीं। तुम्हारी औरत अच्छी हो जायगी।'

वह और भी फूट फूटकर रोने लगा और बोला—'बाबूजी, मैं जानता हूँ कि आप काले लोग हैं। काले लोग बड़े दयालु होते हैं। हिन्दुओंका हृदय दयासे भरा होता है।' (यहाँ यह याद रखना चाहिए कि 'हिन्दू'का अर्थ हिन्दुस्तानी है। यूरोप, अमेरिका आदि देशोंमें हिन्दुस्तानके रहनेवालेको 'हिन्दू' कहते हैं—चाहे वह किसी भी धर्मका क्यों न हो।)

वह और भी कुछ कहने जा रहा था; परन्तु मैंने बीच ही में टोककर उससे पूछा—'कुछ खाओगे?'

उसके चेहरेसे साफ़ मालूम हो रहा था कि उसने कई दिनोंसे कुछ नहीं खाया है। खानेका नाम सुनकर उसके मुँहका भाव भूखी बिल्ली जैसा हो गया। उसने धीरेसे सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए आँखें नीची कर लीं। उसके कान खड़े हो गए, मानो वह उस प्रिय प्रश्नको फिर सुनना चाहता हो। एक बार उसकी जीभ ओठपर इस तरह फिर गई, जैसे बहुत दिनोंसे उसने किसी प्रकारका आहार चखा ही न हो।

उसका सिर उठाकर मैंने अपने दाहिने घुटनेपर रख लिया और धीरेसे अटैची खोली। उसमें शहरसे ख़रीदे हुए कुछ फल रखे थे। थोड़े से अंगूर निकालकर उसको दिए। उसने अँगूर ले लिए और भूखे भेड़िए-जैसा उसके मुँहमें जितने अंगूर आ सकते थे, उतने उसने डाल लिए। ऐसा मालूम पड़ा कि वह अंगूरोंको डंठल समेत खा जायगा; परन्तु पहली बार उसने एक दाँत मारा होगा कि तुरन्त सारे अंगूर मुँहके बाहर निकाल फेंके। कारण क्या था, मैं समझ न पाया। फिर बड़ी कातरताके साथ मैंने पूछा—'क्यों भाई, अंगूर फेंक क्यों दिए?'

उससे कुछ कहा न गया, केवल आँसू बहाने लगा। जब पुनः मैंने प्रश्न किया, तो उसने रोते-रोते कहा—'बाबूजी, क्षमा करो। भगवान आपका भला करे।'

यह सुन मैंने कहा—'भाई, भगवान तो जीता-जागता सामने बैठा है। मैं और किसीका आशीर्वाद नहीं चाहता। मेरे चढ़ाए हुए फलोंको तुम ग्रहण करो, इसीमें मैं अपनेको धन्य तथा कृतार्थ समझूँगा।'

अबकी बार वह गिड़गिड़ाते हुए बोला—'माफ़ करो बाबूजी, अभी तक मेरी औरत...' आगे उसके मुखसे कुछ न निकला।

मैंने उसे धीरज देते हुए कहा—'भाई, घबराओ नहीं। तुम्हारी बीवी अब तक अस्पताल पहुँच गई होगी और वहाँ सब कुछ ठीक भी हो गया होगा। तुम भी अच्छे होकर वहाँ पहुँचो और अपनी स्वस्थ बीवी तथा बच्चेसे मिलो।'

मेरी बात उसे जँच गई। ज़मीनपर फेंके हुए अंगूरोंको उसने उठा लिया और कुछ कहे बग़ैर धूल समेत उन्हें चबा गया। मुझे मालूम हो गया कि वह अभी भी भूखा है, इसलिए मैंने अटैचीसे और भी फल निकालकर उसके सामने रख दिए। उसने पेट भरकर फल खाए। पेट भर खाने और पानी पी लेनेके बाद वह धीरे-धीरे उठ बैठा। अब तक उसने अपनेको कुछ-कुछ सँभाल भी लिया था। पैदल तो नहीं; किन्तु मोटरपर सवार होकर वह शहर तक जाने लायक हो गया था, इसलिए मैं मोटरकी तलाशमें निकला।

× × ×

रातके बारह बजेके क़रीब मिलरको घरके लिए रवाना करके मैं सेन्टके साथ वीएना अस्पतालके पास एक होटलके कमरेमें बैठा था। नीचे डेन्यूब नदी अपनी सहेली स्टीमबोटोंके साथ अमानिशाकी लुका-छिपी खेल रही थी। होटलकी बत्तियाँ अपनी किरणें विकीर्ण करके डेन्यूबका जल स्पर्श कर रही थीं। सेन्ट भी अब तक काफ़ी सँभल चुका था। उसके लिए बात करना अब कोई तकलीफ़-देह न था। यह सेन्ट है कौन, अब तक मैं जान भी नहीं पाया था। अतः जाननेकी इच्छासे मैंने पूछा—'आख़िर हुआ क्या था कि तुमने मिलरको पत्थर खींचकर मारा?'

वह मेरी सहृदयताके बोझसे दब गया था। उसका सिर नीचा हो गया। फिर उसने आँख उठाकर कहा—'बाबूजी, मैं कोई चोर या डाकू नहीं। मैं तो एक मज़दूर हूँ। मेरी बीवीके बच्चा होनेवाला था, इसलिए उसे लेकर मैं अस्पताल जा रहा था। पास इतना पैसा नहीं था कि कोई सवारी कर लेता। सबेरेसे चलते-चलते थक गया था, इसलिए उस पुलके पास बैठ गया। इतनेमें उसके पेटमें दर्द उठा और थोड़ी ही देरमें रक्त-स्राव होने लगा। रास्तेसे कईएक मोटरें गुज़रीं। मैंने बहुत हाथ हिलाया; मगर किसीने मुड़कर भी नहीं देखा! आज शनिवार था, इसीलिए जिनके पास मोटर है, वे अपनी बीवियोंको लेकर सैर-सपाटेके लिए निकले थे या सिनेमा जा रहे थे। भला, वे रुकते भी क्योंकर? तिसपर मेरा मिलका कालिख लगा हुआ फटा-पुराना कपड़ा देखकर शायद वे मुझे चोर या डाकू समझते होंगे। कारण, लोगोंका ऐसा ख़याल है कि ऐसा कपड़ा डाकू या चोरोंका होना चाहिए। यन्त्रणासे छटपटाते-छटपटाते मेरी स्त्री बेहोश-सी हो गई, और उसका रक्तस्राव मुझसे देखा नहीं गया। बाबूजी, मैं सच कहता हूँ, तब मैं पागल सा हो गया। उस समय मेरे लिए ख़ून करना भी कोई बड़ी बात नहीं थी। इस ज़ुल्मी एवं दुखद संसारसे मैं ऊब चला था। ऐसे जीवनसे घृणा हो गई थी। फिर मैंने तय कर लिया था कि अब जो कोई भी इस रास्तेसे गुज़रेगा, उसीकी हत्या करके अपनी बीवीकी प्राण-रक्षा करूँगा!'—कहते-कहते उसकी आँखें चमकने लगीं और वह कहता गया—'यह न समझिए कि मैं एक गँवार था, इसलिए ऐसा तय किया था। अब आप ही बताइए, मैं और करता ही क्या? आपके यहाँके लोग दयालु होते हैं; मगर हमारे देशके लोगोंको तो केवल धन कमाने और उसे संचित करनेकी धुन है। धनवान होनेके कारण क़ानून बनाना या बनवाना केवल धनियोंका ही हक़ है। मनचाहा क़ानून बनवा रखा है। भीख माँगनेपर पकड़कर सज़ा दे देते हैं। उधर बेकारोंको काम देनेकी भी कोई व्यवस्था नहीं है। यही देखिए कि मैं तीन-चार महीनेसे लगातार बेकार घूमता रहा, दरवाज़े-दरवाज़े भटकता फिरा; परन्तु किसीने कोई रोज़गार नहीं बताया। न तो मज़दूरी ही मिली, न क्लर्की ही। यह न समझिए कि मैं लिखा-पढ़ा नहीं हूँ। स्कूलसे जब कालेजमें गया, तो पिताका देहान्त हो गया था। फिर भी बहुत परिश्रम करके बैरिस्ट्री पास कर ली। जब कचहरीमें वकालत करने गया, तो तीन-चार महीने तक कोई केस ही न मिला। फिर लन्दन छोड़कर सुदूर वीएनामें आया। कारण, मैं लन्दनमें मज़दूरी नहीं कर सकता था—कुछ तो लोक-लज्जा थी और कुछ आत्म-सम्मान। यहाँ वीएनामें दो-तीन साल तक मज़दूरी करके गुज़ारा किया और बादको श्रीमती सेन्टके साथ विवाह किया। जिस मिलमें मैं मज़दूर था, उसी मिलके मैनेजरने श्रीमती सेन्टको देखकर उनसे अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहा। मैं तथा मेरी स्त्री दोनोंने उसका मुकाबला किया। इसी कारण उस शैतान मैनेजरने मुझको नौकरीसे निकाल बाहर किया और उल्टा चोर कहकर मुझे बदनाम भी किया। फिर लगातार तीन-चार महीनों तक बेकार घूमता और दरवाज़े दरवाज़े भटकता रहा, पर किसीने न पूछा। आख़िर करता तो क्या करता? भिक्षा! परन्तु उसका भी रास्ता बन्द था। ऐसी परिस्थितिमें कोई क्या करे, सिवाय चोरी, डाका, ख़ूनके?'

थोड़ी देर तक चुपचाप बैठा हुआ वह कुछ सोचता रहा, फिर बोला—'अहा! मैंने पढ़ा था कि आपके देशमें क़ानून बनानेवाले साधु-महात्मा होते थे, और आज भी गांधी और टैगोर जैसे तपस्वी भिक्षा-द्वारा हज़ारों मनुष्योंके जीवनका हौला लगाते हैं। वे महान तथा दूरदर्शी थे और हैं। उन्होंने बेकारोंके लिए भिक्षा माँगनेकी भी व्यवस्था रख छोड़ी है; मगर हमारे देशमें वह भाव कहाँ या वे साधु-महात्मा कहाँ? यहाँ तो एकसे बढ़कर एक विषयी हैं। भला, वे दया-धर्म क्या जानें? जिस तरह उन्होंने ग़रीबोंकी बहू-बेटी, धन-दौलत, सब कुछपर डाका डालनेके लिए क़ानून बनाए हैं, उसी तरह यहाँपर नाना प्रकारकी लूटके तरीक़े और बदमाशीकी रीति लोग सीखते हैं।' यह कहते-कहते उसकी मुट्ठी बँध गई और फिर उसने अपना हाथ ऊँचा उठाते हुए कहा—'आपको धन्यवाद, आप सच्चे हैं। काश, मैं भी कोई धनवान बड़ा आदमी होता, तो भारतीय संस्कृतिकी कुछ बातोंका अपने यहाँ प्रचार करता और अपने देशको दया सिखाता, क्षमा सिखाता। आज आपकी जगह यदि कोई यहाँका आदमी होता, तो मुझे दस-बीस सालके लिए सीधे जेलकी हवा खिलाता और मेरी बीवीको अपने भोगकी सामग्री बनाता।'

अपनी प्रशंसा अपने कानोंसे सुनकर मुझे कुछ शर्म-सी मालूम हुई। उसे चुप रहनेके लिए कहते हुए मैंने कहा—'भाई, यह कोई बड़ा काम नहीं है। यह तो हमारे देशका एक नीचसे नीच भी कर सकता है, और जो तुम्हारी इस अवस्थामें इतना भी न करे, तो वह अपनेको मनुष्य कैसे कह सकेगा?' कहनेको तो कह दिया परन्तु मेरा दिल ही जानता था कि आज हमारे यहाँ क्या है?

इसी प्रकारकी बातें चल रही थीं कि होटलके नौकरने आकर कहा—'बाबूजी, कोई टेलीफ़ोनपर आप लोगोंको बुलाता है।'

सेन्टने कुछ उद्विग्नतासे पूछा—'क्या बात है?'

उसकी हालत ऐसी नहीं थी कि वह टेलीफ़ोन तक जा सके। सात-आठ दिनोंके बाद ज़्यादा खाना खानेके कारण वह दो-तीन बार टट्टी भी गया था। मुझे इस बातका भय था कि कहीं उसे हैज़ा न हो जाय। मैंने उसे जानेसे मना किया और स्वयं टेलीफ़ोन-रिसीवरके पास पहुँचा। वहाँ टेलीफ़ोनपर मैंने जो-कुछ सुना, वह सेन्टको सुनाने लायक बात न थी। मैं वापस आकर चुपचाप बैठ गया और सेन्ट बारंबार पूछता रहा।

अब तक उसके साथ मेरी काफ़ी घनिष्ठता हो गई थी और वह बिलकुल अपने आदमी जैसा मेरे साथ बेतकल्लुफ़ीका व्यवहार करता था। मेरी टालनेवाली बातोंको वह भाँप गया। कुछ देर तक आँखें बन्द किए वह धीरे-धीरे गुनगुनाता रहा, जिसका मतलब मैं कुछ समझ न पाया। बादको मुझे उसने अपने पास बुलाकर कहा—'सुनो मिस्टर बोस, अब मैं तुम्हें बाबूजी नहीं कहूँगा। हम तुम सब एक ही ईश्वरकी सन्तान हैं। तुमने मेरे लिए जो कुछ किया है, वह ईश्वर ही तुम्हें बतायगा और मेरी आँखोंके आँसू भी वही देखेगा।'—कहते-कहते उसका मुँह गम्भीर-सा हो गया। फिर वह बोला—'शायद अब ज़्यादा देर नहीं! मेरे आर्त्तनाद—कातर आर्त्तनाद—को उसने सुन लिया है।' ऊपरको उँगली उठाकर बोला—'प्रभु पुकार रहे हैं!' उसके बाद उसने मेरी ओर अपना हाथ बढ़ा दिया। मैंने अपना हाथ उसकी तरफ़ बढ़ा दिया। मेरा हाथ पकड़कर वह बोला—'मेरी आख़िरी विनती है कि मेरी स्त्रीकी बग़लमें ही मेरी भी क़ब्र बनवाना और चिल्लाकर दुनियाके सम्पत्तिवालोंसे यह कह देना—अब बस करें, अब भी समझें कि परम पिताके यहाँ मेरे-जैसे हज़ारों आदमी फ़रियाद करनेवाले हैं।

मैंने सेन्टको सँभालना चाहा; परन्तु उसकी आँखें खुली ही रह गईं! मैंने कम्बलसे उसे ढँक दिया। इस प्रकार मेरे इस दोस्तने देखते ही-देखते महाप्रस्थान कर दिया!

मैंने मिलरको घर भेजकर बड़ा बुरा किया था। अब अकेला मैं उस हैज़ेसे मरे हुए व्यक्तिका क्या करता? घड़ीमें भी दो बज चुके थे। अभी उसकी बीवी और बच्चेकी लाशें भी उठानी थीं। मैं अपना ओवरकोट पहनकर पासकी पुलिस-चौकीमें गया। पुलिस भी जैसे-तैसे मददके लिए तैयार हुई। बड़ी कठिनाईसे सबको लेकर क़ब्र तक पहुँचा। सेन्टकी इच्छा पूर्ण करनेमें मैंने कोई कसर नहीं छोड़ी। पादरीने आकर प्रार्थना की। पासकी मण्डीसे गजरे ख़रीदकर उनकी क़ब्रोंपर चढ़ाते हुए मैंने अपनी भाषामें कहा—'हे दरिद्रनारायण, तुष्ट हो!'

पता नहीं, मिट्टीकी मोटी पड़त भेदकर मेरे ये शब्द उस दम्पतिके कान तक पहुँचे या नहीं! अधिक देर तक मैं वहाँ रह न सका। दिन भी काफ़ी चढ़ चुका था। मेरी कमज़ोरीको कोई देख न ले, इसलिए आँखोंपर रुमाल डालकर मैं वहाँसे चल दिया। मालूम यह हो रहा था कि मुझे लड़खड़ाते हुए देखकर मेरे बन्धु त्रय कब्रिस्तानका आहाता पार करानेके लिए मेरे साथ साथ चल रहे हों।

पहले तो सोचा था कि इस हफ़्तेमें प्रतिमासे भेंट न होगी; परन्तु दोपहर तक सब कामसे निपट मैंने एक टैक्सी किराएपर ली और घर पहुँचा। मेरे न आनेका कारण पहले ही मिलरसे उसे मालूम हो गया था, इसलिए जाते ही प्रतिमाने पहला प्रश्न उसी दम्पतिके विषयमें किया। मैंने उसे सारा हाल आद्योपान्त कह सुनाया।"

× × ×

उपर्युक्त बातोंको पढ़कर प्रीति विचारमग्न हो बैठी रही। बादको जब रमेश वापस आए, तो वह प्रेम-भरी आँखोंसे पतिकी ओर देखती हुई बोली—"वह शनिवारकी बात बड़ी शिक्षाप्रद है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि यदि ऐसा ही हरएक दम्पति हो, तो दुनियामें शान्ति स्थापित हो जाय।"

# भुंजिया

श्री श्यामाचरण दुबे

वर्त्तमान सभ्यताकी कोलाहलमयी विभीषिकासे दूर, अपेक्षाकृत सभ्य जातियोंकी बस्तियोंसे पृथक, शैल-मालाओंके समीपवर्त्ती स्वच्छ जल-युक्त पहाड़ी नालोंके तटके पास, छत्तीसगढ़के वनोंमें एक ऐसी अनुन्नत और अप्रगतिशील जाति बसती है, जो अपने जीवनकी गति-विधियोंको अपने विशिष्ट वर्ग एवं लघु क्षेत्रमें ही सीमित रखना चाहती है। हमारे वर्त्तमान सामाजिक संगठनमें आर्थिक रूपसे परतंत्र होनेके कारण, इस जातिको अपने जीवन-यापनके लिए अनिवार्यतः दूसरी जातियोंके संसर्गमें आना पड़ता है; किन्तु सांस्कृतिक तथा धार्मिक रूपसे यह जाति अपने-आपको अन्य जातियोंसे पृथक ही रखना चाहती है। विकासके क्रमने इस जातिको भी प्रभावित किया है, तथा सांस्कृतिक एवं धार्मिक रूपसे इस जातिपर समवर्त्ती मूलनिवासी संस्कृतियोंका कुछ प्रभाव भी पड़ा है; किन्तु परम्पराने इस जातिकी कुछ ऐसी विशेषताएँ जीवित रखी हैं, जिनके कारण महाकोशलके मूलनिवासियोंमें 'भुंजिया' जाति अत्यंत पुरातनवादी, अप्रगतिशील तथा जंगली समझी जाती है।

भुंजिया-जाति द्रविड़-वंशीय मूलनिवासियोंकी एक छोटी-सी शाखा है, जो रायपुर-ज़िलेकी बिन्द्रानवागढ़, फिंगेश्वर आदि ज़मींदारियों और उनकी सीमाओंको छूते वनोंके सीमित क्षेत्रमें वास करती है। छत्तीसगढ़के गोंड़ों, कमारों तथा अन्य मूलनिवासियोंकी अपेक्षा यह जाति कहीं अधिक संकोची है, और दूसरी जातियोंसे अत्यंत अल्प संबंध स्थापित करनेकी अपनी जातिगत विशेषताके कारण प्रायः प्रत्येक दृष्टिसे पिछड़ी हुई है। अन्य मूलनिवा-सियोंकी भाँति यह जाति भी सामान्य ग्रामोंसे दूर, वन-स्थलीके हृदयमें, पानीके समीप, अपनी दो-तीन कुनबोंकी बस्ती बसाती है। जंगलकी लकड़ियोंसे सर्वप्रथम घरका ढाँचा तैयार कर लिया जाता है और फिर उस ढाँचेपर वृक्षोंकी डालियाँ बाँधकर उसे मिट्टीसे छाब देते हैं। छप्पर प्रायः घास-फूस तथा पलासके पत्तोंका ही बनाया जाता है; किन्तु अब लोग खपरैलका उपयोग करना भी सीख रहे हैं। रहनेका स्थान प्रायः एक छोटी अँधेरी कोठरी-सी होती है, जिसके सामने एक खुला बरामदा होता है। मुर्गियाँ तथा गाय-बैल आदि रखनेका स्थान प्रायः अलग ही रहता है। सामान्यतः प्रत्येक परिवारके रसोईघर तथा देवस्थान चारों ओरसे घेरकर इस तरह अलग-अलग बनाए जाते हैं कि किसी भिन्न गोत्रके स्वजातीय व्यक्ति अथवा किसी अन्य जातीय व्यक्तिके स्पर्शसे अपवित्र न हो जायँ। स्वजातीय तथा अन्य जातीय व्यक्तियोंको ठहरानेके लिए एक अतिथि-गृह अलग ही बना रहता है। ग्रामसे कुछ ही दूर हटकर जातिका एक संयुक्त पंचायत-घर भी होता है, जहाँ जातिके सम्मिलित उत्सव-समारोह आदि मनाए जाते हैं और धार्मिक एवं कौटुम्बिक झगड़ोंका निबटारा भी किया जाता है। साधारणतः इस जातिके लोगोंके घर अन्य छत्तीसगढ़ी घरोंकी अपेक्षा अधिक साफ़ रहते हैं; किन्तु कमारों तथा मुरियोंके समान स्वच्छता-प्रेमी इस जातिके लोग नहीं हैं। जहाँ इस जातिके लोग अपने ग्रामों तथा घरोंको स्वच्छ रखनेके लिए कुछ प्रयत्नशील होते हैं, वहाँ वे अपनी शारीरिक स्वच्छताकी ओरसे प्रायः उदासीन रहते हैं। भुंजिया लोग प्रायः एक-एक सप्ताह तक नहीं नहाते और एक ही कपड़ेको पहनकर पन्द्रह-पन्द्रह दिन रह जाते हैं। पुरुष कपड़ेकी एक सँकरी पट्टीसे ही अपनी लज्जा ढँकते हैं और स्त्रियाँ घुटने तथा कमरके बीचका भाग एक छोटी-सी धोतीसे लपेटकर तथा उसके छोरसे अपनी छाती ढँकती हैं। अधिक वस्त्रोंके प्रयोगका प्रचलन इस जातिमें नहीं है। पुरुष प्रायः युवावस्थामें बड़े बाल रखते हैं; किन्तु दाढ़ी रखनेका प्रचलन इस जातिमें नहीं है। दाँतोंकी सफ़ाई या दातुन करना भुंजिया-जातिके दैनिक जीवनका आवश्यक अंग नहीं है, और वे इसकी उपयोगिता भी नहीं समझते। वस्तुतः शारीरिक स्वच्छताकी दृष्टिसे भी यह जाति छत्तीसगढ़के दूसरे मूलनिवासियोंसे बहुत पिछड़ी हुई है।

भुंजिया-जातिकी दो प्रमुख शाखाएँ हैं—एक

चौखुटिया और दूसरी चिन्दा। इस जातिपर गोंड़-संस्कृतिका अत्यन्त व्यापक प्रभाव है तथा जाति-कथाके अनुसार यह जाति गोंड़ तथा हलबा जातियोंके मिश्रणसे उत्पन्न है। चौखुटिया-शाखाकी उत्पत्तिके संबंधमें एक किंवदंती प्रचलित है, जिसके अनुसार बाछुर नामक एक भात्रा गोंड़के पैरी नदीमें मछलीके लिए जाल फेंकनेपर उसमें से एक पत्थर निकला। बाछुरने जालमें से पत्थरको निकालकर पानीमें फेंक दिया और मछलीके लिए जाल पुनः पानीमें डाला। दूसरी बार भी मछलीके स्थानपर वही पत्थर निकला। उसे भी पानीमें फेंककर उसने तीसरी बार जाल पानीमें डाला ; पर इस बार भी वही पत्थर जालमें आया। पत्थरको किनारेपर ही छोड़, वह घर आ गया। रात्रिमें उसे गोंड़ोंके आदिदेव 'बूड़ादेव'ने दर्शन दिए, और इस स्वप्नमें ही उसे ज्ञात हुआ कि उस पत्थरमें उसके जातिपूज्य देवका वास था। उसे अपने स्वप्नकी सत्यतापर एकाएक विश्वास न हुआ। उसने कहा कि यदि स्वप्न सच है, तो आज मुझे प्रथम बार ही जालमें जाँघ-भर मोटी मछली मिले।[1] बाछुरने जब पानीमें से जाल बाहर खींचनेका प्रयत्न किया, तो उसे उसका वज़न अपेक्षाकृत बहुत अधिक बढ़ा हुआ प्रतीत हुआ। बाछुरने जालमें जब इष्ट मछली देखी, तब उसे अपने स्वप्नकी यथार्थतापर विश्वास हुआ। इसी समय शिलाके बूढ़ेदेवने उसे अपनी पूजा करनेका आदेश दिया। बाछुरने पूजा करना तो स्वीकार नहीं किया ; किन्तु बूड़ा-देवको यह आश्वासन अवश्य दिया कि वह उनके लिए एक दूसरा भक्त खोज देगा। बूड़ादेवने उसकी यह वृत्ति स्वीकार कर ली ; किन्तु उससे यह वचन भी प्राप्त कर लिया कि बाछुर उस भक्तके साथ अपनी कन्याका विवाह कर देगा। लाफन्दी नामक ग्राममें बाछुरको कोन्दा नामक हलबा-जातिका एक मूक, बधिर, पंगु तथा कोढ़ी व्यक्ति मिला, जिसे वह उस शिलाकी भक्तिके लिए ले गया। शिलाके समीप आनेसे ही कोन्दाकी समस्त व्याधियाँ दूर हो गईं और वह सदय बूढ़ादेवकी भक्ति करने लगा। कोन्दाके साथ बादमें बाछुरकी कन्याका विवाह हो गया और उनके एक सन्तान उत्पन्न हुई, जिसका नामक 'चौखुटिया भुंजिया' रखा गया। चौखुटिया-शाखा इसी व्यक्ति द्वारा उत्पन्न है।

दो जातियोंके मिश्रणसे उत्पन्न होनेके कारण यह जाति हीन समझी जाती है ; किन्तु इस जातिके लोग गोंड़ तथा हलबा जातियोंके संबंधको ईश्वरीय प्रेरणा मानते हैं। इस प्रकार वे अपना कलंक दूर करनेकी चेष्टा करते हैं। इस संबंधमें सर्वश्री रसेल और हीरालालने अपनी पुस्तक 'ट्राइब्स एण्ड कास्टस् आफ़ सेन्ट्रल प्राविन्सेज़' में एक छत्तीसगढ़ी गीत दिया है, जो इन पंक्तियोंके लेखककी सम्मतिमें अप्रामाणिक है। इस जातिके व्यक्ति जातीय प्रथाओंसे संबंधित गीत अपनी ही भाषामें गाते हैं, छत्तीसगढ़ीमें नहीं। उपर्युक्त कथाका आधार उन्हींको भाषाका एक गीत है, जिसके अंतमें उन्होंने अपने ढंगसे सब देवताओं तथा आदि-पुरुषोंकी प्रशंसा की है और अन्तमें यह प्रकट किया है कि देवताओंकी दृष्टिमें यह जाति हीन नहीं है, बल्कि उनकी विशेष कृपापात्र है। उपर्युक्त लेखकों द्वारा दिए गए छत्तीसगढ़ी गीतसे गोंड़-जाति और इस जातिके कोई सीधे संबंधका पता नहीं लगता ; किन्तु इस गीतसे यह स्पष्टतः लक्षित होता है कि यह जाति मूलतः गोंड़-जातिकी ही एक शाखा है। इसे गोंड़-जातिसे संबंधित माननेका एक विशेष कारण यह भी है कि इस जातिका गोत्र-विभाजन सम्पूर्णतः गोंड़-जातिके गोत्र विभाजनके अनुसार हुआ है। जिस प्रकार गोंड़-जातिके मरकाम, नेताम आदि गोत्र हैं, उसी प्रकार भुंजिया-जातिके भी हैं, और जिस तरह उक्त जातिके विभिन्न गोत्रोंमें विवाह सम्बन्ध होते हैं, इस जातिके विभिन्न गोत्रोंमें भी होते हैं।

### विवाह तथा यौन-जीवन

सामान्यतः भुंजिया-जातिका यौन-जीवन उसके जीवनका प्रमुख अंग प्रतीत नहीं होता ; किन्तु निकटसे देखनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि यौन प्रेरणा उसमें शैशवके साथ ही विकसित होने लगती है। इसका कारण उनके रहन-सहनका ढंग और आचार-विचारकी अकृत्रिमता है। शायद इसीलिए भुंजिया-समाजमें इसे अप्राकृतिक ढंगसे दबानेकी चेष्टा नहीं की जाती। लड़के और लड़कियोंको बचपनसे ही एक-दूसरेसे मिलनेकी पूर्ण स्वतंत्रता रहती है और युवावस्थामें बिना किसी भय या दण्डकी आशंकाके यौन-संबंध भी स्थापित कर सकते हैं। ग्रामोंमें पारस्परिक परिचय बढ़ानेकी स्वतंत्रता, दिवसमें कार्यके बीचका विश्राम और वनोंके एकान्त स्थानमें मिलनेकी सुविधा इस प्रकारके संबंधोंको अधिकाधिक

१. कुछ लोगोंके अनुसार हरिण।

सुगम बना देते हैं। विवाहके पूर्व जातिमें ही इस प्रकारके संबंध स्थापित कर लेना अपराध नहीं समझा जाता। चिन्दा शाखाकी स्त्रियाँ यदि विवाहके पूर्व ही किसी अन्य जातिके व्यक्तिसे यौन-संबंध स्थापितकर गर्भवती हो जाती हैं, तो बात दबा दी जाती है। चौखुटिया-शाखामें अवश्य इस तरहकी स्वतंत्रता नहीं है, यद्यपि उपर्युक्त दोनों शाखाओंमें इस तरह स्थापित होनेवाले संबंधोंकी संख्या अत्यंत अल्प होती है, क्योंकि स्वभावतः भुंजिया स्त्रियाँ (पुरुष भी) बहुत शर्मीली होती हैं। उपर्युक्त सुविधाओंके कारण इस जातिमें यौन प्रेरणाका विकास अत्यंत स्वस्थ ढंगसे होता है और उक्त प्रेरणाके दमनकी प्रतिक्रियासे उत्पन्न विकृतियाँ समाजमें नहीं आ पातीं।

चिन्दा-शाखाके भुंजियोंमें वर और वधूके वयस्क हो जानेपर उनकी स्वीकृति प्राप्त होनेपर ही उनके माता-पिता उनका विवाह-संबंध निश्चित करते हैं; किन्तु चौखुटिया-शाखाकी प्रथा इससे भिन्न है। वे हिन्दू-प्रथाका अनुकरणकर कन्याका विवाह प्रायः उसके रजस्वला होनेके पूर्व ही कर दिया करते हैं। यदि इस अवस्था तक उसके उपयुक्त कोई वर नहीं मिलता, तो कन्याका विवाह 'तीर' के साथ करके उसे तीर-सहित किसी व्यक्तिको सौंप दिया जाता है। यदि कन्या उस पुरुषको पसन्द न करे, तो वह उसे त्यागकर अन्य किसी भी स्वजातीय पुरुषसे विवाह करनेको स्वतन्त्र होती है। इस शाखामें विवाहका प्रस्ताव वर-पक्षकी ओरसे किया जाता है और वर-पक्षके दो व्यक्ति (महालिया और जंगालिया) कन्याके माता-पिताके घर जाकर वरके माता-पिताकी इच्छा व्यक्त करते हैं। यदि कन्या-पक्षको प्रस्ताव स्वीकार होता है, तो आगत व्यक्तियोंके ऊपर पानीमें घुली हुई हल्दी डाल दी जाती है। यह स्वीकृतिका लक्षण समझा जाता है। 'डिनवारी' (बूढ़ा मुखिया) फिर विवाहकी तिथि निश्चित करता है। विवाह-कार्य वरके घर होता है। सर्वप्रथम वर-पक्षके व्यक्ति बाजे-गाजेके साथ कन्याको लेकर वरके ग्राममें आ जाते हैं और वरके घरपर ही शेष रस्में पूरी होती हैं। हिन्दू-प्रथाके अनुसार वर-वधू विवाह स्तम्भकी सात परिक्रमाएँ करके उपस्थित वृद्धजनोंका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। चिन्दा शाखाकी वधू तो माता-पिताके घर कुछ आवश्यक रस्मोंके लिए लौटती है; किन्तु चौखुटिया-शाखाकी कन्याका विवाहके बाद प्रायः सब संबंध पिताके घरसे टूट जाता है। यदि वह पिताके घर जाती भी है, तो एक पराए व्यक्तिकी ही भाँति। उस हालतमें वह न तो पिताके देवस्थानको स्पर्श कर सकती है और न वहाँके किसी व्यक्तिका छुआ या पकाया हुआ भोजन ही ग्रहण कर सकती है।

समाजमें स्त्रीका स्थान प्रायः पुरुषके समान ही समझा जाता है। पतिके साथ पत्नीको भी जीवन-संग्राममें भाग लेना पड़ता है और आर्थिक रूपसे भी स्त्रीका उत्तरदायित्व पुरुषके बराबर ही होता है। शायद इसी कारण भुंजिया-समाजमें नारीको पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त है। यदि पत्नी किसी कारण पतिसे असन्तुष्ट हो जाय, तो वह उसे त्यागकर किसी अन्य पुरुषसे विवाह कर सकती है। पुरुष बहु-विवाह कर सकते हैं; किन्तु इसके बहुत थोड़े ही उदाहरण देखनेमें आते हैं। वैवाहिक संबंधमें कुछ कटुता आते ही स्त्री या पुरुषमें से कोई एक दूसरेको छोड़ देता है। जहाँ 'बैगा' आदि अपेक्षाकृत 'सभ्य' मूलनिवासियोंमें विवाह-संबंध अत्यंत अधिक संख्यामें टूटते हैं, वहाँ पुरातनवादी भुंजियोंमें टूटनेवाले विवाह संबंधोंकी संख्या अपेक्षाकृत थोड़ी है।

मासिक धर्मके समय स्त्री आठ दिन तक 'अशुद्ध' रहती है। इस बीचमें 'अपवित्र' समझी जानेके कारण उसे घरसे अलग रहना पड़ता है। इस अवस्थामें वह देवस्थान तथा रसोईघरको छोड़कर शेष स्थानोंकी झाड़ा-बुहारी, लिपाई-पुताई आदि सामान्य कार्य ही कर सकती है। इन दिनोंमें वह न तो भोजन तैयार कर सकती है और न पानी ही ला सकती है। आठवें दिन जब तक वह स्नानकर शुद्ध नहीं हो जाती, वह पति या अन्य घरवालोंका स्पर्श प्रायः नहीं करती और सबसे पृथक् रातको अकेली एक छोटी कोठरीमें सोती है। इस जातिमें वृद्ध तथा आदरणीय व्यक्तियोंकी छायाको लाँघना अपमानजनक समझा जाता है—विशेषतः यदि कोई रजस्वला स्त्री ऐसा करे, तो यह उसकी बड़ी भारी उद्दण्डता समझी जाती है।

गर्भ धारण करनेपर भी स्त्रीको कोई विशेष सुविधाएँ नहीं मिलतीं। प्रसवके कुछ समय पूर्व तक उसे नियमित रूपसे अपने कार्य करने पड़ते हैं। गर्भ धारणके सामान्यतः चार मास पश्चात् तक पति-पत्नी यौन संबंध स्थापित किए रख सकते हैं। इसके पश्चात् यद्यपि कोई निषेधात्मक नियम नहीं है; पर साधारणतः पति-पत्नी अलग-अलग ही

दूसरे शब
तौरपर सु

रहते हैं। गर्भाधानके छः मास पश्चात् पति-पत्नीके यौन संबधकी कल्पना इस जातिमें हास्यास्पद समझी जाती है।

प्रसवके कुछ घंटे पूर्व तक गर्भिणीके नियमपूर्वक परिश्रम करते रहनेके कारण प्रसव विशेष वेदनाकारक नहीं होता। शिशु-जन्मके समय विशेष कोई उत्सव नहीं मनाया जाता। शिशुके जन्मके कुछ समय पश्चात् ही माताको भात खानेको दिया जाने लगता है और शिशुको थोड़ी-सी शराबके साथ भातका पानी। गोंड़ोंके समान दस दिनके पश्चात् किसी पूर्वपुरुषके नामके अनुसार नवजात शिशुका नामकरण कर दिया जाता है।

### सामाजिक प्रथाएँ

जैसा कि हम लेखके प्रारम्भमें कह चुके हैं, परम्पराने इस जातिकी कुछ ऐसी विशेषताओंको जीवित रखा है, जिनके कारण यह जाति पुरातनवादी मूलनिवासियोंमें सबसे अधिक अप्रगतिशील समझी जाती है। इस जातिकी सर्वप्रथम विशेष प्रथा यह है कि इस जातिके व्यक्ति अपने परिवारके सगोत्रीय व्यक्तियोंके अतिरिक्त अन्य किसीको अपना देवस्थान—जो उनका रसोईघर भी होता है—स्पर्श नहीं करने देते। यहाँ तक कि विवाहके पश्चात् घरकी कन्या भी इस स्थानको स्पर्श करनेके अधिकारसे वंचित कर दी जाती है। यदि अधिकृत व्यक्तिके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति उनके देवस्थानका स्पर्श कर लेता है, तो वे उसे (घरको) आग लगाकर नष्ट कर देते हैं, और प्रायः किसी दूसरे स्थानपर जाकर नए सिरेसे गृहस्थी बसाते हैं।

इनकी दूसरी जातिगत विशेषता है इनकी खान-पान-संबंधी कड़ाई। सगोत्रीय व्यक्तिके अतिरिक्त ये निकटतम स्वजातीय संबंधीके हाथका छुआ भोजन भी ग्रहण नहीं करते। विवाहके बाद न कन्या माताके हाथका भोजन ग्रहण करती है और न माता पिता कन्याके हाथका। विवाह इत्यादिके अवसरपर जो भोज होते हैं, उनमें अतिथियोंको कच्चे चावल तथा दाल-तरकारी आदि दे देनेपर मेज़बानका कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। पुरुष यदि चाहें तो बारह वर्षसे कम आयुके बालकों (बालिकाओं नहीं) से बनवाकर भोजन ग्रहण कर सकते हैं; परन्तु स्त्रियोंको पृथक पृथक अपने लिए स्वयं भोजन बनाना पड़ता है। अन्य किसी भी जातिका छुआ भोजन वे ग्रहण नहीं कर सकतीं।

तीसरी विशेषता इनकी यह है कि ये अपने ग्रामके अतिरिक्त यदि किसी स्थानमें रात्रि व्यतीत करते हैं, तो केवल वनोंमें ही। अपरिचित ग्रामोंमें वे कभी रातको नहीं ठहरते। यदि उन्हें कभी किसी दूसरे ग्रामको कार्यवश जाना भी होता है, तो वे गाँवके बाहर वृक्षोंके नीचे रात काट लेते हैं; पर ग्राममें नहीं ठहरते। अपरिचित वस्तुओंके प्रयोगसे वे घबराते हैं और नवीन आविष्कारोंके प्रति सशंकित ही रहते हैं। साक्षरता तो इन लोगोंमें अपवाद-स्वरूप भी नहीं है।

### आर्थिक परिस्थिति

संतोषी वृत्तिके इन सरल मूलनिवासियोंकी आर्थिक परिस्थिति अत्यंत शोचनीय है। खेती करनेकी उपयुक्त एवं नवीन विधियों तथा औज़ारोंसे परिचित न होनेके कारण भुंजिया लोग उसमें विशेष प्रगति नहीं कर सके हैं। जो थोड़े-से लोग खेती करते हैं, उन्हें लगान चुकाना भी कठिन प्रतीत होता है। परम्परासे वे जंगलसे अपनी जीविका चलाते रहे हैं; किन्तु इस समय उसपर से उनका अधिकार छिन गया है। साधारणतः तीर-कमानसे शिकार करनेके लिए भी दस रुपएका लाइसेंस लेना पड़ता है। उनके लिए यह काफ़ी कठिन कार्य है। जंगलकी चीज़ें तथा शहद आदि एकत्र कर बेचनेकी स्वतंत्रता भी उन्हें प्राप्त नहीं है। अब उन्हें साधारणतः मेहनत-मज़दूरी ही से अपना काम चलाना होता है। विषम आर्थिक परिस्थितियोंमें यह जाति धीरे धीरे मिटती जा रही है। यदि प्रान्तीय सरकार मूलनिवासियोंकी समस्यामें दिलचस्पी ले और लम्बी-चौड़ी योजनाएँ बनानेके बजाय उन्हें उनके पूर्ववत् अधिकार तथा बिना लाइसेंस शिकार करनेकी इजाज़त दे दे, तो भी उनकी बहुत-सी समस्याओंका अंत हो सकता है। मूलनिवासियोंमें शिक्षा-प्रचारके प्रश्नकी ओर भी प्रान्तीय सरकारका ध्यान देना चाहिए।

### भाषा और साहित्य

मूलतः छत्तीसगढ़के लोक-साहित्यमें दो विशिष्ट धाराएँ हैं—प्रथम है आर्य गीतोंकी धारा और द्वितीय मूलनिवासियोंके गीतोंकी। छत्तीसगढ़ी गीत मूलनिवासियोंके गीतोंसे स्पष्टतः भिन्न हैं। छत्तीसगढ़ी गीतोंमें जहाँ हृदयकी अभिव्यक्ति अधिक हुई है, विरह एवं प्रेमका वर्णन अधिक हुआ है, वहाँ इन मूलनिवासियोंके गीतोंमें धार्मिक विश्वासोंके उदयका मूलस्रोत ही अधिकांशतः मिलता है।

संख्यामें इनके गीत थोड़े ही हैं, और जो हैं, उनमें धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्वके गीत ही अधिक हैं। विरह और प्रेमके जो गीत हैं, उनमें हृदयकी सर्वथा सुन्दर तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। धार्मिक कृत्योंके समय तथा विवाहके अवसरपर गाए जानेवाले प्रायः सब गीत पूर्वपुरुषों तथा बूढ़ादेव, ठाकुरदेव, नारायणदेव आदिके संबंधके ही हैं। नृत्य-गीत इनके आजकल पन्द्रह-बीस ही मिलते हैं तथा बड़ी गीतमय गाथाएँ एक-दो ही। कहानियाँ भी इन लोगोंकी थोड़ी ही शेष रही हैं। वस्तुतः इनकी अपना भाषा नष्टप्राय हो चुकी है, और लोक-व्यवहारमें वे छत्तीसगढ़ी, उड़िया, लटिया आदिकी एक मिश्रित भाषा ही बोलते हैं। संभवतः उनकी इस मिश्रित भाषासे उनके संबंधमें अनुसन्धान करनेवालोंने यह समझ लिया कि उनकी भाषा यही मिश्रित बोली है, और शायद इसी धारणासे डाक्टर ग्रियर्सन-जैसे विद्वानोंने उनकी बोलीको छत्तीसगढ़ीका एक परिवर्तित रूप मान लिया। किन्तु वास्तवमें साठ सत्तर शब्दोंकी इनकी अपनी भाषा अभी भी शेष है, जिसमें अपने धार्मिक कार्य आदि करनेके अतिरिक्त भुंजिया लोग आपसी व्यवहारका कार्य भी चला लेते हैं।

### मृत्यु, धर्म और विश्वास

'आत्मा' और 'परलोक' के संबंधमें भुंजिया जातिकी कोई विशेष धारणा नहीं है। वे मृत्युके पश्चात् आत्माओंके गृह-वासमें भी विश्वास करते हैं और उनके भूत प्रेत आदि होनेको भी सम्भव मानते हैं। वस्तुतः वे पूर्वजोंको देव-रूप मानकर पूजते हैं; किन्तु हिन्दुओंके संसर्गमें आनेके कारण 'परलोक' (अथवा भगवानके घर) के संबंधकी कुछ अस्पष्ट धारणाएँ भी उनमें प्रचलित हो गई हैं। किसी व्यक्तिकी मृत्युके पश्चात् वे उसका अंतिम संस्कार गोंड़-ढंगसे करते हैं। मृत व्यक्ति द्वारा व्यवहृत वस्तुओंका उपयोग नहीं किया जाता और देवस्थानमें उसका स्मारक-चिह्न स्थापित कर दिया जाता है।

उनके सृष्टि, ईश्वर तथा धर्म-विषयक विश्वास भी स्पष्ट नहीं हैं। उनकी धार्मिक भावनाएँ अंध-विश्वास तथा भय जनित प्रेरणाओंसे आक्रान्त रहती हैं। भुंजिया-जातिके धार्मिक विश्वासोंके संबंधमें यही कहा जा सकता है। मूलतः वे गोंड़के बूढ़ादेवकी उपासना करते थे; किन्तु अब ठाकुरदेव, नारायणदेव आदि अनेक और भी देवताओंकी पूजा करने लगे हैं। हैज़े, चेचक आदिसे बचनेके लिए वे माताकी पूजा करते हैं और क़र्ज़-भारसे मुक्त होनेके लिए सूर्यकी आराधना। महान शक्ति-सम्पन्न समझे जानेवाले विविध भूतोंसे भी वे भयभीत रहते हैं तथा समय-समयपर बकरा, बकरी, मुर्ग़ी आदिकी बलि देकर उन्हें संतुष्ट रखनेका यत्न करते हैं। जादू, टोना, मंत्र आदिकी शक्तिमें भी वे विश्वास करते हैं और समय-समयपर अपने व्यावहारिक जीवनमें उनसे लाभान्वित होनेकी चेष्टा भी करते हैं।

फिंगेश्वर (रायपुर)]

---

# उपदेश

**कबीर**

पर-धन पर तिय अरु असत तीन बात को त्याग;
यह साँचो व्रत जानिए और वृथा खटराग।

क्षुधा तृषा शीतोष्णता मान और अपमान;
सुख-दुख आदिक द्वन्द्वको सहन परम तप जान।
कहा भयो वनमें गए मन सें गयो न राग;
त्याग वासना को किए घर ही में बैराग।

छाप - तिलक माला - जटा लुंचित - मुण्डित केश;
दण्ड - कमण्डल आदि सब उदर - भरणके वेश।
मिटै न मनकी कल्पना भस्म रमाए गात;
काह होत है धूरमें खर लोटत दिन-रात।

Reg. No. C—1645

# पंचांग-शोधनका नया प्रस्ताव

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

काशी नगरी-प्रचारिणी सभाने सम्पूर्णानन्दजीका निम्न-लिखित आशयका महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजा है :—

"पंचांगका महत्व तो सभी देशोंमें है; परन्तु हमारे देशमें जहाँ लोगोंका फलित ज्योतिषपर विश्वास है और विवाह, व्यापार, खेती-जैसे काम ज्योतिषियोंके परामर्शसे किए जाते हैं, इस शास्त्रका स्थान बहुत ऊँचा है। गणनामें थोड़ी-सी भी भूल होनेसे सैकड़ों व्यक्तियोंके जीवनपर गहरा प्रभाव पड़ सकता है। इस समय मेरी समझमें पंचांग-सम्बन्धी नीचे लिखे प्रश्न विशेष रूपसे विचारणीय हैं : (१) संक्रान्तिकी जो तिथियाँ पंचांगमें दी रहती हैं और हमारे घरोंमें मनाई जाती हैं, वे दृश्यगणितकी तिथियोंसे, जो वस्तुस्थितिपर निर्भर हैं, नहीं मिलतीं। उदाहरणार्थ वर्तमान संवत्‌में दृश्य-मतसे मेषसंक्रान्ति २३ मार्च १९४१ को थी, जब कि विश्व-पंचांगके मतसे १३ अप्रैल १९४१ को (२) चान्द्रमास कहीं शुक्ल-पक्षसे आरम्भ होते हैं, कहीं कृष्णपक्षसे। श्रीकृष्णजन्माष्टमी जिस दिन होती है, उसको कहीं तो भाद्र कृष्ण अष्टमी कहते हैं, कहीं श्रावण कृष्ण-अष्टमी। (३) पुराने ज्योतिष-ग्रन्थोंमें ग्रहोंकी गति विधिके सम्बन्धमें जो अंक दिए गए हैं, उनके अनुसार ग्रहोंके जो स्थान आते हैं, वे उन स्थानोंसे भिन्न हैं, जहाँपर ग्रह सचमुच हैं। उदाहरणार्थ सौर वर्षका अर्वाचीन मान (३६५ दि० ६ घं० ९ मि० ९ से०) सूर्यसिद्धान्तके मतसे ३ मि० २७.५६ से० कम है और आर्यभटके मतसे ३ मि० २०.६४ सेकेण्ड।

"यदि दशमलवके दूसरे-तीसरे स्थानमें भी कुछ भूल हो, तो वह सैकड़ों वर्षोंमें बड़ा रूप धारण कर लेती है। हमारे ज्योतिषी इस बातको जानते हैं। अब महत्त्वका प्रश्न यह है कि फलित ज्योतिषके लिए इन दृश्य-स्थानोंसे काम लिया जाय या अदृश्यसे। इस विषयमें बड़ा मतभेद है। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि कुछ विद्वानोंकी एक समिति बुलाई जाय, जो विचार करे कि १. इन प्रश्नोंपर विचार करना उचित और व्यावहारिक है या नहीं। २. ऐसे विचारके लिए काशीमें एक सम्मेलन बुलाना ठीक होगा या नहीं। ३. यदि ठीक हो, तो उसमें किस-किसको बुलाया जाय। ४. सम्मेलनके सामने कौन-कौन-से प्रश्न रखे जायँ और ५. सम्मेलनका आयोजन करने और उसकी रिपोर्ट निकालनेमें कितना व्यय होगा। इस समितिमें मेरी रायमें ये सदस्य हों : पं० रामव्यास ज्योतिषी, पं० बलदेव मिश्र ज्योतिषाचार्य, पं० रघुनाथ शर्मा ज्योतिषाचार्य, डा० गोरखप्रसाद, डा० अवधेशनारायणसिंह, बा० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव। एक नाम कोई और हो। सात सदस्योंकी समिति पर्याप्त है, जल्दी बैठ सकती है। किसी भी तीन-चार दिनकी छुट्टीमें लोग मिल सकते हैं। मैं समितिका सदस्य नहीं हो सकता, क्योंकि मैं इस विषयका ज्ञाता नहीं हूँ। और हर प्रकारसे सहायता दूँगा। मैंने जिन नामोंका सुझाव किया है, इनमें प्राचीन और अर्वाचीन गणित तथा फलित सभीके विशेषज्ञ हैं।"

उक्त प्रस्तावमें श्री सम्पूर्णानन्दजी जिसे 'दृश्य'-मत कहते हैं, उसे वस्तुतः 'सायन'-मत कहा गया होता, तो ग़लतफ़हमीकी कम गुंजायश होती। इसका कारण हम यथासंभव ऐसी भाषामें बतानेकी चेष्टा करते हैं, जो आसानीसे औसत शिक्षित व्यक्तिकी समझमें आ सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सायन मतको 'दृश्य' और निरयण-मतको (जिस मतसे विश्व-पचांग तथा अन्य भारतीय पत्रे बनते हैं) 'अदृश्य' नहीं कहा जा सकता। अपनी बात कहनेसे पहले यह कह रखना ज़रूरी है कि इस समस्याको विशेषज्ञ पंडितोंके हाथमें न छोड़कर इस प्रश्नको ऐसा व्यापक बना देना चाहिए कि प्रत्येक सुसंस्कृत व्यक्ति इसमें रस ले सके। श्री सम्पूर्णानन्दजीका समितिमें रहना नाना कारणोंसे वांछनीय है। उन्हें पूर्वी विद्या और पश्चिमी विज्ञानका समान भावसे ज्ञान है। फिर वे सभी प्रश्नोंको सहजबुद्धिके द्वारा भी देख सकते हैं। इसीलिए उनका उस समितिमें रहना आवश्यक है। अब असली बातपर आया जाय।

यूरोपियन ज्योतिष और भारतीय ज्योतिषका विकास दो भिन्न रास्तोंमें हुआ है, इसलिए दोनोंमें प्रकृतिगत पार्थक्य रह गया है। भारतीय ज्योतिषका विकास ही

नाना प्रकारके आचार-विचार, परम्परागत रीति नीति, व्रत-उपवास आदिकी स्मृति रक्षाके लिए हुआ है। इसलिए भारतीय पंचांग इसी लक्ष्यसे बनते हैं कि उनके द्वारा उक्त घटनाओं, व्रतों, उपवासों आदिका यथार्थ काल निश्चित किया जाय। इसके अतिरिक्त शुभ कर्मोंकी भी एक परम्परा है। जिस दिन, जिस नक्षत्र, जिस राशिमें आज भारतीय विवाह हो रहे हैं, हज़ारों वर्षोंसे उसीमें हो रहे हैं। भारतीय ज्योतिषकी प्रकृतिके साथ ये बातें इस प्रकार घुल-मिल गई हैं कि उनको अलग करके सोचना भारतीय पंडितके लिए असम्भव है। परन्तु वह इन बातोंके कारण सायन-गणना (या आधुनिक यूरोपीय गणना) के प्रचारका विरोधी नहीं है। गणना जितनी ही शुद्ध होगी, उतनी ही यथार्थताके साथ वह ग्रह-राशि-नक्षत्रोंका निर्णय कर सकेगा। पर नाना कारणोंसे वह पहली राशिको मेष और पहले नक्षत्रको अश्विनी कहनेको बाध्य है। तभी उसकी परम्परा सुरक्षित रहेगी। यदि सायन-गणना प्रचलित कर दी जाय, तो आज जो राशि पहली है, वह कल दूसरी हो सकती है और फिर एक ज़मानेके बाद तीसरी, क्योंकि सम्पात-बिन्दु निरन्तर पीछे खिसकता जायगा। फिर संक्रान्ति, अधिमास, क्षयमास आदिमें इतना अधिक उलट-पलट होगा कि भारतीय ज्योतिषकी प्रकृति उसे बर्दाश्त नहीं कर सकेगी।

यह ध्यानमें रखना चाहिए कि शुद्ध वर्षमान क्या पदार्थ है। आकाशमें जो बिन्दु स्थिर है, उस बिन्दुसे चलकर एक पूरा चक्कर लगाकर जब पृथिवी उसी बिन्दुपर आ जाती है, तब एक वर्ष पूरा हुआ कहना चाहिए। पृथ्वीके घूमनेके कारण हम सूर्यको चक्कर लगाते हुए देखते हैं, इसलिए व्यवहारमें सूर्यकी गणना ही की जाती है। हम सूर्यको ही एक राशिसे दूसरीकी ओर खिसकते देखते हैं, इसलिए यहाँ भी सूर्यका चलना ही कहते रहेंगे। अब सूर्य किस बिन्दुपर से चल रहा है, यह तो स्थिर नहीं है। सम्पात-बिन्दुपर से सम्पात-बिन्दुपर अगर वह आ जाय, तो पूरा चक्कर नहीं लगा सकेगा, क्योंकि साल भरमें सम्पात-बिन्दु थोड़ा-सा पीछे खिसक आया रहेगा। इसलिए यह स्थान ठीक नहीं है।

लेकिन उपाय यहीं-भर नहीं है।

एक और बिन्दु है, जहाँसे सूर्यकी गणना की जा सकती है। सूर्यकी गति प्रतिदिन बराबर नहीं होती, इसी-लिए उसकी एक औसत गति मान लेते हैं। सूर्य, मान लीजिए, एक दिन अपनी औसत गतिके बराबर चला। अब साल-भर उसकी गति बढ़ती-घटती रहेगी; फिर जब उस औसत गतिवाले स्थानपर आएगा, तो निश्चित है कि गति-सम्बन्धी सारी जटिलताओंको पार करके वह ठीक जगहपर आ जाय। इस स्थानसे भी वर्ष नापा जा सकता है; पर कठिनाई यह है कि यह भी चला करता है, सम्पातकी उल्टी दिशामें। इसपर से जो वर्ष निकाला जायगा, उसमें सूर्यको एक चक्करसे कुछ अधिक चलना पड़ेगा। अब यद्यपि उदयास्त आदिके लिए ये मान ठीक होंगे; पर उसको एक चक्कर पूरा करनेका काल नहीं कह सकते। एक तीसरा रास्ता भी है। नक्षत्रगण प्रायः स्थिर हैं। अगर किसी एक नक्षत्रको स्थिर कर लें और सूर्य वहाँसे आरम्भ करके चक्कर काटता हुआ फिर वहीं पहुँच जाय, तो कहेंगे कि यह मान अपेक्षाकृत शुद्ध है। इसीको नाक्षत्रमान कहते हैं। भारतीय पंडितोंने इसीको माना है। वे उदयास्त आदि कर्मोंके लिए इसीमें अयन-सम्पात-सम्बन्धी और उच्च-सम्बन्धी गति जोड़ और घटाकर काम चला लेते हैं; पर नक्षत्रोंको स्थिर रखते हैं। यह रास्ता बहुत सुविधाका है। इससे बहुत परिश्रम बच जाता है और भारतीय परम्पराकी रक्षा भी होती है।

ग्रीनविचके ज्योतिषी जो पत्रा बनाते हैं, उसमें नाक्षत्र-मान नहीं देते, बल्कि उसमें सम्पातकी गति और उच्चकी गतिका संस्कार करके देते हैं। हमारे देशमें इसीको सायन-मत कहा जाता है। इससे ग्रीनविचवाले ज्योतिषियोंको ग्रहोंकी गणनामें तो बड़ी सुविधा पड़ती है; पर नक्षत्र-स्थान ठीक करनेके लिए प्रतिवर्ष गणना करनी पड़ती है। ६५०पृष्ठके पत्रेमें २२८ पृष्ठ इन अनेक नक्षत्रोंकी गणनामें लगाए जाते हैं! भारतीय पंचांगोंको इतनी झंझटकी ज़रूरत नहीं होती।

इसीलिए मैं निरयण-गणनाका पक्षपाती हूँ।

परन्तु सायन और निरयणका अन्तर अयनांश है। और अयनांशके विषयमें भारतीय पंडितोंमें "नासौ मुनि-र्यस्य मतं न भिन्नम्।" मैंने सन् १९३८ में सात विभिन्न पंचांगोंकी तुलना करके देखा कि कोई भी दो पंचांग एक ही अयनांश नहीं मानते। दो-एक उदाहरण देता हूँ। सन् १९३८ में निम्न-लिखित पंचांगोंके अयनांश इस प्रकार थे :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| विश्व-पंचांग (काशी) | २२° | ५३´ | २५´´ |
| तिलक-पंचांग (पूना) | १६° | ०´ | ०´´ |
| विशुद्ध सिद्धान्त-पंजिका (कलकत्ता) | २२° | ५९´ | २४´´६५ |
| गुप्त प्रेस पंजिका (कलकत्ता) | २१° | १५´ | ०´´ |
| नाना-दाते पंचांग (पूना) | २३° | ३०´ | ०´´ |
| भारतविजय पंचांग (इन्दौर) | २२° | ५९´ | ०´´ |
| दृग्गणित पंचांग (मद्रास) | २२° | ५९´ | ३´´ |
| ग्रहलाघवीय पंचांग | २२° | ३६´ | ०´´ |

इस विषयमें मैं विस्तृत रूपसे अपना मत 'विशाल भारत' ( जनवरी, फ़रवरी १९३८ ) में व्यक्त कर चुका हूँ। यहाँ उन बातोंको दुहराना बेकार है। पाठकोंको अगर जाननेकी इच्छा हो, तो वे वहाँ देख ले सकते हैं। परन्तु यहाँ इतना निवेदन कर देनेमें कोई हर्ज़ नहीं कि धार्मिक प्रश्नोंको सावधानीसे पहले अलग कर लेना चाहिए। प्रस्तावित सम्मेलनमें केवल ज्योतिषिक विषयोंकी ही चर्चा हो, तो अच्छा है। मुझे दो-तीन ज्योतिष-सम्मेलनोंमें उपस्थित रहनेका सौभाग्य मिला है। प्रत्येकमें मैंने यह लक्ष्य किया है कि धर्मशास्त्रीय और विश्वासगत मत ही अन्त तक प्रधान हो उठते हैं और मूल विषय दब जाता है। हमें उन पुराने अनुभवोंसे फायदा उठाना चाहिए और प्रयत्न करना चाहिए कि प्रस्तावित सम्मेलन मूल विषयसे अलग न हो जाय।

आजसे लगभग दस वर्ष पूर्व इन्दौरमें एक अखिल-भारतीय ज्योतिष-सम्मेलन पूज्य पं० मदनमोहन माल-वीयजीके सभापतित्वमें हुआ था। उस समय उक्त सम्मेलनके कर्णधारोंसे जो कुछ निवेदन करना ज़रूरी था, वही सक्षेपमें इस प्रस्तावित सम्मेलनसे भी किया जा सकता है। यह शुरूमें ही मान लिया जा सकता है कि ऐसा ज्योतिषी शायद ही हो, जो यह न जानता हो कि ज्योतिष-शास्त्र ( मेरा मतलब गणित-ज्योतिषसे है ) ग्रह-नक्षत्रोंकी विद्या है। अगर ऐसा ज्योतिषी कोई हो, तो उसको हम विचारके लिए निमंत्रित नहीं भी कर सकते हैं। भारतवर्षके नाना स्थानोंसे नाना मतोंके अनुसार पंचांग निकालने-वाले ज्योतिषी यह निश्चित जानते हैं कि उनका पंचांग किसी-न-किसी प्रकार आकाशसे ज़रूर सम्बन्ध रखता है। वे यथासाध्य चेष्टा करते हैं कि उनके बताए हुए ग्रहण, उदय, अस्त सबको यथासमय प्रत्यक्ष दिखें, उनके बताए अनुसार चन्द्रदर्शन हो, सूर्योदय हो, इत्यादि। परन्तु बहुत-से ज्योतिषी यह नहीं मानते कि पंचांगका उद्देश्य केवल आकाशमें यथास्थान ग्रहों या ज्योतिषिक बिन्दुओंका दिखाई देना ही है। यह एक अद्भुत विरोधाभास है, पर है सच।

कारण क्या है ? जो लोग ज्योतिष सम्मेलनमें विविध विवादास्पद प्रश्नोंकी मीमांसा करनेके लिए एकत्रित हों, उन्हें धैर्य और गम्भीरताके साथ इन दो परस्पर विरोधी विचारोंका कारण अनुसन्धान करना चाहिए। कहते हैं, ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष विद्या है, सूर्य और चन्द्रमा इसके गवाह हैं—"प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।" फिर इस शास्त्रमें दृश्य और अदृश्य गणना, चैत्र और रैवत पक्ष, सौर और ग्रहलाघवीय मत, इन दो-दो मतोंका स्थान ही नहीं होना चाहिए। गणना दो प्रकारकी हो सकती है, अर्थात् किसी अभीष्ट फलकी प्राप्ति दो प्रकारसे हो सकती है ; मगर यह समझमें नहीं आता कि फल दो प्रकार कैसे हो सकते हैं ? अगर कोई कहे कि १५×१४=२१० यह फल दो तरहकी गणनाओंसे आ सकता है [ उदाहरणार्थ, १५×(१०+४ ) और १५×२×७ ] तो उसकी बात समझमें आ जायगी। मगर अगर कहनेवाला यों कहे कि गुणनफल दो तरहका होता है, सही और ग़लत, तो बुद्धिमान मनुष्य उसकी बात सुनने योग्य नहीं समझेंगे।

ग्रन्थोंको लेकर अपने-अपने मत खड़े करनेवाले पंडित भी न जाने क्या सोचते होंगे। सच्चा ज्योतिषी किसी ग्रन्थको—वह कितना ही प्राचीन या कितना ही नवीन क्यों न हो—प्रमाण नहीं मानता। अगर ग्रन्थ प्राचीन है, तो वह उसे आदरकी दृष्टिसे देखेगा ; पर उसके मतको बिना युक्तिकी कसौटीपर कसे नहीं मान लेगा। वराहमिहिरने दो अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्तोंको 'दूर विभ्रष्ट' कहकर उपेक्षा की थी। भास्कराचार्यने ज़ोर देकर कहा था, यह ज्योतिष-शास्त्र अनन्त काल तक नूतन बनता रहेगा। ग्रहलाघवके आचार्य श्रीगणेश दैवज्ञने प्राचीन सिद्धान्तोंकी फिरसे जाँच की थी और जो बातें ग़लत मालूम हुईं, उन्हें साफ़ साफ़ ग़लत कहकर त्याग दिया। स्व० पं० सुधाकर द्विवेदीने गणेश दैवज्ञकी जाँचकी भी जाँच की थी। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कोई ग्रन्थ या आचार्य ज्योतिषीके लिए उसके मार्गका रोधक सिद्ध होगा।

भारतीय ज्योतिषका धर्मशास्त्रसे गहरा सम्बन्ध है ;

पर यह कहना बिल्कुल ग़लत है कि अकेले भारतवर्षमें ही ज्योतिष और धर्मशास्त्रका सम्बन्ध रहा है। मिस्रमें ज्योतिष और धर्मकृत्योंका बड़ा ज़बर्दस्त सम्बन्ध था; कैल्डिया और बेबीलोनिया, ग्रीस और रोम, ईरान और अरब इन सभी देशोंमें ज्योतिष और धर्मका गहरा सम्बन्ध था, कितनी ही जगह अब भी है। ज्योतिष और धर्मशास्त्रमें सम्बन्ध न तो हिन्दुस्तानमें अकेला है और न गर्व करनेका ही विषय है। ज्योतिष और धर्मशास्त्रमें सम्बन्ध हुए बिना रह नहीं सकता। अत्यन्त जंगली जातियाँ भी ज्योतिषिक पर्यवेक्षणसे अपने धार्मिक अनुष्ठानोंका पालन करती हैं। लेकिन ज्योतिष और धर्मशास्त्रके सम्बन्धसे भारतवर्षके एक श्रेणीके ज्योतिर्विद् मण्डलमें एक समस्या खड़ी हो गई है। ये लोग समझते हैं कि प्राचीन कालसे जिस ग्रन्थके आधारपर वे गणना करते आ रहे हैं, वह ग्रन्थ ही धर्मकृत्योंका एकमात्र सहारा है। यह बात चिन्त्य है।

ज्योतिष और धर्मशास्त्रके सम्बन्धमें एक लक्ष्य करनेकी बात यह है कि जहाँ तक गणनाका सम्बन्ध है, धर्मशास्त्र सदा ज्योतिषका अनुवर्तन करता आया है। स्वतन्त्र रहा है ज्योतिष। ज्योतिष अगर शुक्रवारके दिन ५० दण्ड एकादशीका निर्देश करे, तो धर्मशास्त्रको इसे मानना ही पड़ेगा। यह दूसरी बात है कि स्मार्तोंकी एकादशी एक दिन हो, वैष्णवोंकी दूसरे दिन—धर्मशास्त्रको इस विषयके निर्णय करनेका पूरा हक़ है—मगर यह नहीं हो सकता कि ज्योतिषके निर्णयमें धर्मशास्त्र बाधा दे। धर्मशास्त्र विश्वासके ऊपर प्रतिष्ठित है, ज्योतिष युक्तिके ऊपर। ज्योतिषको पूरा अधिकार है कि आज अगर शुक्रवारवाली एकादशीके भोगमें जो ५० दण्ड पड़े हैं, तो कल इससे अधिक विशुद्ध गणनाके बलपर बदलकर ४४ दण्ड कर दे। अगर धर्मशास्त्रको इस निर्णयपर से अपनी व्यवस्था बदलनी पड़े, तो कुछ चिन्ता नहीं। धर्मशास्त्रके लिए ज्योतिष नहीं रुक सकता।

जो विद्वान् प्रस्तावित ज्योति-सम्मेलनमें एकत्र होंगे, उन्होंने अयनांशके विवादास्पद प्रश्नपर ज़रूर ध्यान दिया होगा। हमारे पंचांगोंमें चैत्र और रैवत पक्षका जो गज-कच्छप-युद्ध चल रहा है, वह बन्द होना चाहिए। इसका न तो ज्योतिषसे गहरा सम्बन्ध है और न धर्मशास्त्रसे। जिन देशोंमें अयनांश नहीं है—संसारमें वह भारतवर्षके सिवा और कहीं भी नहीं है—वहाँ ज्योतिषकी उन्नति और अग्रगतिमें कोई बाधा नहीं पहुँची है। अयनांशका अधिक सम्बन्ध परम्परासे है। ज्योतिषसे इसका यही सम्बन्ध है कि निरयण गणना अगर जारी रहेगी, तो शताब्दियोंसे हमारे पूर्वज जिस मेषको 'मेष' (या राशिचक्रकी प्रथम राशि) कहते आ रहे हैं, उसे हम भी भविष्यमें ज्यों-का-त्यों कहते रहेंगे, अर्थात् हमारी परम्परा द्वारा समर्थित बातें ज्यों-की त्यों रह जायँगी। धर्मशास्त्रसे इसका इतना ही सम्बन्ध है कि वर्षोंसे हम जिस तिथिके आसपास संक्रान्ति आदि मनाते आ रहे हैं, उसे वहीं मनावेंगे, अर्थात् हमारी परम्परा ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। सच पूछिए, तो अयनांश एक कल्पित ज्योतिषिक तथ्य है। खूब सम्भव, अत्यन्त प्राचीन कालमें हमारे पूर्वजोंमें इसका चलन ही न था, फिर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि आज हम अयनांशको छोड़ नहीं सकते। ऊपर हमने देखा है कि हमारा ज्योतिषशास्त्र विचित्र रूपमें उससे उलझा हुआ है; पर हमें इसके महत्त्वकी ठीक-ठीक धारणा होना चाहिए।

मेरी रायमें ज्योतिष-सम्मेलनको इस बातको एक निर्णयपर पहुँचाकर ख़त्म कर देना चाहिए। किसी सर्वमान्य ग्रंथके किसी सर्वमान्य नियमसे किसी सर्वमान्य तिथिको अयनांश निर्णय कर लेना चाहिए। फिर उसे विशुद्ध अयन-गतिसे चलाना चाहिए। मैं सूर्यसिद्धान्तके उस नियमकी ओर पंडित-मण्डलीका ध्यान आकर्षित करूँगा, जिसमें वेधागत और ग्रन्थागत सूर्यके अन्तरपर से अयनांश ठीक करनेकी बात बताई गई है। स्व० पं० सुधाकर द्विवेदी इस मतको मान्य समझते थे। काशी-विश्वविद्यालयका पंचांग उसी नियमसे अयनांश स्थिर करता है। एक बार एक विशेष अवसरपर मैंने इस तिथिके लिए तीन नाम सुझाए थे। इनमें से किसी की जन्म-तिथि, निर्वाण-तिथि या किसी विशेष तिथिके दिन अयनांश निर्णय कर लिया जाय। पहले दो सज्जन हैं पं० सुधाकर द्विवेदी और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक। कहना नहीं होगा कि इन दोनों सज्जनोंने ज्योतिषकी अशेष सेवाएँ की हैं। तीसरे सज्जन हैं पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय। मालवीयजी शायद हिन्दू-विश्वविद्यालयमें वेधशाला स्थापित करानेवाले हैं। क्या ही अच्छा हो कि जिस दिन यह तपस्वी पंडित अपने हाथों वेधशालाका शिलान्यास करें, उसी दिनको अयनांश निपटारेका दिन

Reg. No. C—1645



मान लिया जाय। इस प्रकार इस विवादास्पद प्रश्नको सदाके लिए हल किया जा सकेगा।

पंचांगोंके एकीकरणका विषय धर्मशास्त्रसे इतना अधिक सम्बद्ध हो गया है कि ज्योतिष-सम्मेलनमें यह प्रश्न उठे बिना रह ही नहीं सकता। पंडित-समुदाय धार्मिक प्रश्नोंका अगर वर्गीकरण कर ले, तो मालूम होगा कि अधिकांश प्रश्न धार्मिक नहीं हैं। पंचांग-एकीकरणके अवसरपर मूल विषयको ढँक देनेवाली बातें नहीं होनी चाहिएँ। वह ज़माना अब लद गया, जब कि केवल लाखों वर्षोंकी प्राचीनताके बलपर ही लोगोंको प्रभावित किया जा सकता था। किसी संहिता या भाष्यका काल कितने लाख वर्ष पुराना है, यह बात ज्योतिषिक समस्याओंका समाधान नहीं करेगी। इस समय सत्ययुग चल रहा है या कलियुग, इस बेतुकी बातको उठाकर मूल प्रश्नको धुँधला नहीं कर देना चाहिए। यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि ज्योतिषिक गणनाके बलपर किसी प्राचीन ग्रन्थका काल-निर्णय करना सब समय न तो निरापद ही है और न उपयोगी ही। ज्योतिष-सम्मेलनको दृढ़ताके साथ इन प्रश्नोंको छाँटकर अलग कर देना चाहिए। प्रस्तावित ज्योतिष-सम्मेलनको हम आशाकी दृष्टिसे देखते हैं। उसके निर्णय ज्योतिषकी रक्षा करते हुए होने चाहिएँ। उस एकताका कोई मूल्य नहीं, जिसमें मूल-वस्तुको ही बलिदान कर देना पड़े।

शान्तिनिकेतन ( बंगाल ) ] ('विश्वभारती पत्रिका')

# मिट्टी और फूल

### श्री नरेन्द्र शर्मा

वह कहती—'हैं तृण तरु प्राणी जितने, मेरे बेटा-बेटी।
ऊपर नीला आकाश और नीचे सोनामाटी लेटी।
मैं सब कुछ सहती रहती हूँ हो धूप-ताप वर्षा-पाला;
पर मेरे भीतर छिपी हुई बिनबुझी एक भीषण ज्वाला।
मैं मिट्टी हूँ, मैं सब कुछ सहती रहती हूँ चुपचाप पड़ी;
हिम-आतपमें गल और सूख, पर नहीं आज तक गली-सड़ी।
मैं मिट्टी हूँ, मेरे भीतर सोना-रूपा, नौरतन भरे।
मैं सूखी हूँ, पर मुझसे ही फल-फूल और बन-बाग हरे।
मैं पाँवोंके नीचे, मैं ही हूँ पर पर्वतपर की चोटी;
मेरी छातीपर शत पर्वत—मैं मिट्टी हूँ, सबसे छोटी।
मैं मिट्टी हूँ, अंधी मिट्टी, पर मुकुल-फूल मेरी आँखें;
मैं मिट्टी हूँ, जड़ मिट्टी हूँ, पर पत्रोंमें मेरी आँखें।
मैं मिट्टी हूँ, मैं वर्णहीन, पर मुझसे निकले वर्ण सकल;
मेरे रससे प्रसून रंजित, रंजित नव अंकुर, पल्लव-दल।
मैं गंधहीन, मुझसे करते फल-फूल-मूल पर गंध ग्रहण;
जल-वायु-व्योम, जो गंध-रहित करते वह जिसकी गंध वहन?
मैं, शवकी शैया, मुझसे ही पर जीवन पाते हैं अंकुर;
नभमें कैसे खेती करता सब जीवोंमें जो जीव चतुर?
आती है मेरे पास खगी दाने-दानेको चोंच खोल;
तृण दबा या कि उड़ जाती वह मेरे पेड़ोंपर जो अबोल।
'मुझसे बनते हैं महल और ये खड़ीं मुझीपर मीनारें;
मैं करवट लेती, ढह जाते हैं दुर्ग, चीनकी दीवारें।
हाँ बुद्धिजीव आदर्शमुग्ध मानव भी मेरी ही कृति है;
पैग़म्बर और सिकंदरका मुझसे अथ है, मुझमें इति है।
मेरे कण-कणपर उडुगण भी वारा करते हिमकण मोती;
जिनकी सतरंगी गोदीमें सिर धर सूरज किरणें सोतीं।
मैं मर्त्यलोककी मिट्टी हूँ, मैं सूर्यलोकका एक अंश;
आती हैं जिस घरसे किरणें, है मेरा भी तो वही वंश!'
इतनेमें आया हँस वसंत, मिट्टीको चूमा, खिला फूल।
थलका बुलबुला फूल जैसे हँसता समीरमें भूल-भूल।
जिस मिट्टीसे जीवन पाया वह उस मिट्टीको गया भूल;
थलका बुलबुला फूल जैसे हँसता समीरमें भूल-भूल।
देखा जो तारोंको, सोचा—'मैं भी उड़ जाऊँ बहुत दूर;
है जहाँ जल रहा नीलमके मंदिरमें वह कर्पूर-चूर!'
तितलीको देखा और कहा—'मुझको दे दो दो चटुल पंख';
मैना आई तो उससे भी उड़नेको माँगे चटुल पंख।
फिर आ निकली बनकी चिड़िया तिनके चुगने चुग्गा लेने,—
'ले चलो मुझे भी उड़ा कहीं,' यों फूल लगा उससे कहने।
चिड़ियाकी चोंच वसन्ती थी, था फूल गुलाबी रंग भरा;
बस पल भरमें दीखा चिड़ियाके मुँहमें डंठल हरा-हरा।
ऊपर था नीला आसमान, दीखी नीचे सोनाधरती;
थलका बुलबुला फूल टूटा, पर मिट्टी इसमें क्या करती?
आ गिरा धरापर फूल, मिला मिट्टीमें, पलमें हुआ धूल;
जिस मिट्टीसे जीवन पाया था उस मिट्टीका गया भूल।
मिट्टी बोली—'मैं सब कुछ सहती रहती हूँ चुपचाप पड़ी;
हिम-आतपमें गल और सूख, पर नहीं आज तक गली-सड़ी।

# पति-परमेश्वर

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा

लॉनके कोनेमें एक कुर्सीपर बैठी हुई अमला कभी रैकेटसे पिटती हुई गेंदकी ओर देखने लगती और कभी घुटनोंपर पड़ी चित्रमय पत्रिकाके पृष्ठ अन्यमनस्क भावसे उलटने लगती। उसके बड़े-बड़े नेत्र सदाकी भाँति आज हँस नहीं रहे थे। मस्तकपर गहरे चिन्तनकी छाप पड़ी हुई थी। सहसा पत्रिका उसने सामने रखी हुई तिपाईपर फेंक दी और अपने अधकटे सुनहले बालोंसे खेलती हुई वह उठ खड़ी हुई। खिलाड़ियोंकी ओरसे मुँह मोड़कर सफेदेके वृक्षोंकी दो लम्बी कतारोंके बीच कोठी तक पहुँचती हुई लाल गेरुसे रँगी सड़कको रौंदने लगी। उसके पाँवोंकी आहट सुनकर कभी कभी किसी-किसी वृक्षसे एक-आध पक्षी फड़फड़ाकर उड़ जाता; किन्तु वह इस सब कुछसे बेखबर थी। सड़कको दो-एक बार आर-पार करके वह फिर अपने स्थानपर आ बैठी। इतनेमें खेल समाप्त हो गया। खेलमें की गई भूलों, जीते हुए गेमों और खोए हुए अवसरोंकी चर्चा करते हुए खिलाड़ी अमलाके निकट कुर्सियोंपर आ बैठे। अमलाने उड़ती हुई दृष्टिसे एक बार इन चारों—अर्थात् अपने भाई रजत, उसके मित्र कल्याण, कल्याणकी बहन इला और सबकी सहेली इन्दु—की ओर देखा। फिर अपने भाईपर दृष्टि गड़ाकर बोली—'भैया, कुछ सुना?'

'क्या?'—रजतने आश्चर्यसे अमलाकी ओर देखा।

'तुम्हारे बैरिस्टर मित्रने तीसरी पत्नी गौरीका भी परित्याग कर दिया।'

'किसने? सन्तोषने?'

'हाँ, उसी असन्तोषकी मूर्ति सन्तोषने।'

'क्यों?'

'यह वही जाने।'—अमला दाँत पीसती हुई बोली—'भैया, क्षमा करना, तुम्हारी पुरुष-जाति पूर्ण रूपसे स्वार्थी और हृदयहीन है।'

'हो सकता है;' कल्याण अपने मोटे ओठोंको बल देकर मुस्कराता हुआ बीच हीमें बोल उठा—'किन्तु यह जाति तुम्हारे लिए कितनी आकर्षक, कितनी मनमोहक है, क्या इससे इनकार करोगी?'

'मनमोहक!'—इन्दु अपनी पतली कलामय अंगुलियोंसे रैकेट घुमाती हुई बोली—'जितना कुरूप पुरुष हो सकता है, तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। अपने-आपको अपने चश्मेसे न देखो, कल्याण बाबू!'

'यह सब हमारे समाजका दोष है।'—इलाने शायद इसीलिए कहा कि वह भी ज़बान रखती थी।

'समाज?'—अमला फिर जोशमें आ गई—'यह सब हमारा दोष है।'

'हमारा?'—इन्दुका स्वर आश्चर्यसे ओतप्रोत था।

'हाँ, हमारा। सिवाय आहें भरनेके क्या हमने कभी कुछ किया? क्या हममें से एक भी लड़कीने सन्तोषको उसके अन्यायका दण्ड देनेकी बात सोची?'

'दण्ड?'—इन्दुने प्रश्नसूचक दृष्टिसे अमलाकी ओर देखा।

'हाँ, दण्ड। यदि हम मृतप्राय न होतीं, यदि हममें कुछ जीवन होता, तो आज तक कोई-न-कोई लड़की सन्तोषको नरकका द्वार दिखा चुकी होती।'

'लड़की!'—कल्याण खिलखिलाकर हँसा—'पग-पगपर मूर्च्छित होनेके भयसे अपने हैण्डबैगमें स्मेलिंग-साल्टकी शीशी रखनेवाली लड़की! अमला रानी, कहने और करनेमें बहुत अन्तर है।'

'कहनेवाला कर भी सकता है।'

'कर सकता है, यह शायद ठीक हो; पर क्या वह करेगा भी?'

'करेगा।'—अमला गहरे सोचमें पड़ गई। कुछ ही दूरीपर लम्बाईमें अपनेसे चौगुना तिनका चोंचमें दबाए एक चिड़िया ज़मीनसे उड़कर सामने वृक्षपर जा बैठी। अमला कुछ देर उसकी ओर देखती रही, फिर निश्चयात्मक स्वरमें बोली—'हाँ, कहनेवाला करके भी दिखलाएगा।'

'क्या मतलब?'—रजतने घबराकर पूछा।

'मतलब यही कि मैं सन्तोषको ठीक राह दिखाऊँगी, उसे नरकके औघट घाट उतारूँगी और उसे चौथी पत्नी ब्याहनेका अवसर ही न दूँगी।'

'तुम ?'—इन्दु और इला एकाएक बोल उठीं।

रजत अवाक्-सा अपनी दुबली-पतली बहनकी ओर देखने लगा और कल्याण संशयसूचक भाव द्वारा अपना सिर हिलाने लगा।

'हाँ, मैं।'—अमलाका चेहरा तमतमा उठा। वह उठी और भागती हुई कोठीकी ओर बढ़ चली।

- २ -

वह सारी रात अमलाने चारपाईपर शरीर रगड़ते हुए बिताई। क्या वह अपनी ऊँचाईसे ऊँचे तो नहीं उड़ रही थी? वह कितनी बड़ी बात कह आई थी। क्या वह उसे पूरा कर सकेगी? क्या उस नर-पिशाच सन्तोषका पार वह पा सकेगी? नर-पिशाच! सन्तोषके चित्रके पैशाचिक रूप उसके नेत्रोंके सम्मुख सारी रात नाचते-मँडराते रहे। उन रूपोंने उसे डराया ज़रूर; पर उसके निश्चयको हिला न सके। कब और कैसे उस निश्चयको व्यावहारिक रूप वह दे सकेगी, इसी उधेड़-बुनमें दिन चढ़ आया। वह चारपाईसे उठकर कमरेमें टहलने लगी। सूर्यकी प्रथम किरणें उसके चेहरे और केशराशिसे खेलती हुई कमरेमें इधर-उधर थिरकने लगीं। कुछ देर वह उन सुनहली रश्मियोंका निरीक्षण करती रही। फिर तेज़ीसे कमरेके बाहर चली गई, मानो उसने कोई निश्चय कर लिया हो। कोई आध घंटेके अनन्तर अपनी संग-मरमर-सी गौरवर्ण अंगुलियों द्वारा भड़कीली धानी रंगकी साड़ीका छोर सँभालती हुई जब वह घरसे बाहरकी ओर चली, तो धूप काफ़ी चढ़ आई थी।

'किधर जा रही हो?'—रजतने, जो बरामदेमें एक आरामकुर्सीपर पड़ा अँगड़ाइयाँ ले रहा था, पूछा।

'चाय पीने।'

'चाय पीने, कहाँ?'

'यहीं, किसी रेस्तराँमें।'

'मालूम होता है, घरकी चायसे ऊब गई हो।'—रजत मुस्कराया—'शोफ़रसे कहकर गाड़ी तो मँगवा ली होती।'

'मैं ट्रामसे चली जाऊँगी।'

यह कहकर शीघ्रतासे क़दम बढ़ाती हुई वह घरसे बाहर निकल आई। ग्रैण्ड रेस्तराँमें चायके लिए सन्तोष प्रायः प्रति सुबह-शाम जाया करता था, यह अमला जानती थी। शायद आज भी उससे भेंट हो जाय, इसी आशासे वह ग्रैण्ड रेस्तराँमें जा पहुँची। हालमें घुसते ही उसे पता चल गया कि उसकी आशा फलीभूत हो गई। सन्तोष सचमुच हालके बड़े द्वारके निकट बैठा था। आधी पी हुई चायकी प्याली सामने पड़ी थी। उससे बेख़बर मुँहके एक कोनेमें दबाई हुई सिगरेट द्वारा धुएँके बादल रच रहा था। अमलाके अन्दर घुसते ही मानो वह स्वप्नसे जागकर उठ खड़ा हुआ।

'हलो मिस अमला, तुम किधरसे भूल पड़ीं? बैठो।'

'चायका व्यसन खींच लाया है।'—अमला हँसकर उसके निकटवाली कुर्सीपर बैठती हुई बोली—'अकेले बैठे हो। गौरी बहन किधर है?'

'गौरी?'—सन्तोषने पहलेवाली सिगरेट मसलकर ऐश-ट्रेमें फेंक दी और एक नई सिगरेट सुलगाते हुए कहने लगा—'वह तपस्विनी हो गई!'

'मैं समझी नहीं।'

'वह मुझसे विलग हो गई है।'

'पर क्यों?'—अमलाका स्वर मधुसे ओत-प्रोत था।

'इसलिए कि मैं उसे नहीं भाया। मैं उसे पढ़ाता था आधुनिकताके पाठ; किन्तु वह वैदिक कालके स्वप्न देखा करती थी। बात बनती तो कैसे? इसलिए हमने यह ठीक समझा कि हमें अलग-अलग रास्ते पकड़ने ही उचित हैं।' यह कहकर सन्तोष थोड़ा रुका। फिर अमलाको सिरसे पाँव तक देखता हुआ बोला—'किन्तु तुम्हारी दृष्टिमें तो शायद मैं बहुत गिर गया हूँ। तुम तो मुझसे बहुत घृणा कर रही होगी।'

'सच पूछते हो?'

'बिलकुल सच।'

अमला सन्तोषके नेत्रोंमें नेत्र डालकर एक-एक शब्दको तौलती हुई कहने लगी—'मैं तुम्हें एक वीर, एक महान पुरुष समझती हूँ, मिस्टर सन्तोष! आत्माकी पुकार सुनकर तुम इस निर्दय समाज, इस क्रूर संसारको ठोकर मारते हुए कभी नहीं झिझके। आज कितने मनुष्य हैं, जिनमें इतना आत्म-बल है?'

सन्तोष उछल पड़ा। उसका हृदय सामने बैठी हुई उस अप्सरा-तुल्य नारीके प्रति स्नेह और सम्मानसे उमड़ उठा। उसके कृत्यको इस दृष्टिकोणसे देखा जा सकता है, तर्ककी लाखों युक्तियाँ सोचता हुआ भी वह सोच न सका था। अनायास उसका दायाँ हाथ अमलाके दाएँ

हाथकी ओर बढ़ा और उसे वह ज़ोरसे दबाता हुआ बोला—'मिस अमला, तुम अद्‌भुत् हो—सचमुच अद्‌भुत हो!'

अमलाकी हृदयहारी दन्त-पंक्ति एकाएक चमक उठी। सन्तोष कृतकृत्य हो गया।

'मेट्रोमें एक बहुत सुन्दर चित्र आया है। आज शामको चल सकोगी?'

'खुशीसे।'

'तो मैं शामको तुम्हें घरसे ले लूँगा।'

'बहुत अच्छा। अब चलती हूँ।'

'लेकिन तुमने चाय तो पी नहीं!'

चाय! वह चायको तो बिलकुल भूल ही गई थी। उसने झटपट एक प्याला बनाया और जल्दीसे बड़े-बड़े घूँटोंमें उसे समाप्त कर दिया। फिर उठ खड़ी हुई। मुस्कराते हुए, हाथ जोड़कर सन्तोषको नमस्कार किया और पीठ मोड़कर तेज़ीसे द्वारसे बाहर हो गई।

- ३ -

सड़कपर आते ही अमलाकी मुस्कराहट छूमन्तर हो गई। मन अपने प्रति ग्लानिसे भर गया। मुख कुछ लज्जा, कुछ क्रोधसे लाल हो उठा। वह यह टेढ़ा रास्ता क्यों पकड़ बैठी? आधे क्षणके लिए उसे पश्चात्ताप हुआ। फिर हाथोंकी मुट्ठियाँ बाँधते हुए उसने सोचा, उसे इसी राहपर चलकर अपना ध्येय प्राप्त करना होगा। भावुकताको पाँव-तले रौंदकर उसे अबलासे सबला बनना ही होगा। यह सोचते-सोचते उसके चेहरेपर गम्भीरताकी छाप पड़ गई। वह कई क्षण वहीं-की-वहीं खड़ी होकर सामने बड़े मैदानमें उछलते-कूदते बच्चों और उनसे खीझती हुई काली-पीली आयाओंको अन्यमनस्क भावसे देखती रही। फिर अपनी ट्रामकी ओर बढ़ गई।

ट्राममें बैठकर भी उसकी दुविधा नहीं मिट सकी। उसे शामको उस दुष्ट, मानवताके उस घृणित प्रतिरूपके साथ सिनेमा देखना होगा। सन्तोषके साथ दो-ढाई घंटेका समय बिताना होगा। नहीं, उससे यह सब कुछ न हो सकेगा। फिर? क्या वह अब भी पीछे नहीं हट सकती थी? क्यों नहीं? पर कौन-सा मुँह लेकर? उसका आत्माभिमान एकाएक उत्तेजित हो उठा। नहीं, कुछ भी हो, उसे यह खेल खेलना ही होगा। उसकी जातिका इसीमें कल्याण है।

घर पहुँचते-पहुँचते अमलाकी दुविधा थोड़ी-बहुत मिट गई थी। इसीलिए शामको जब सन्तोष उसे लेनेके लिए आ पहुँचा, तो वह पहलेसे तैयार खड़ी थी। नवेली बहूकी भाँति उत्सुकता प्रदर्शित करती हुई वह उसके संग हो ली। मोटर कुछ ही मिनटोंमें उन्हें मेट्रो ले पहुँची। सन्तोष टिकटोंका पहलेसे ही प्रबन्ध कर चुका था, इसलिए वे सीधे सिनेमा-हालमें घुस गए। हाल खचाखच भरा हुआ था। नव-दम्पति, पुरातन पति-पत्नी, भविष्यके सुनहले स्वप्नद्रष्टा प्रियतम-प्रेयसी खिलखिलाते हुए जिह्वासे ही नहीं, बल्कि हृदयोंसे भी एक-दूसरेसे बातचीतमें संलग्न थे। किन्तु अमला? हृदयमें आह दबाए, घृणाका जलता हुआ अंगार छिपाए, सन्तोषकी प्रेयसी बननेका स्वांग रच रही थी! उसके जीमें तो आता था कि पाँवका जूता उतारकर लोगोंके देखते ही देखते सन्तोषपर बरस पड़े। पर उसके भाग्यमें यह कहाँ? कौन जाने, कब तक उसे यह अस्वाभाविक जीवन बिताना होगा?

और सन्तोष? उसके मनमें एक नई उमंग, एक नई आशा उदय हुई थी। उसका व्यक्तित्व कितना अद्‌भुत, कितना आकर्षक है! स्त्रियोंके हृदयपर अधिकार पानेमें वह कितनी जल्दी सफलता प्राप्त कर लेता है, यह सोचता सोचता वह गद्‌गद् हो उठा। अभी तीसरीको लगाई हुई ठोकरका निशान भी पाँवसे न मिटा था कि चौथी उसपर बलाएँ लेती हुई आ पहुँची है। अर्द्ध-प्रकाशित हालकी ज्योतिमें उसने अमलाकी ओर इस तरह देखा, जैसे एक बिगड़ा हुआ बालक नए खिलौनेकी ओर देखता है। उसकी यह दृष्टि अमलासे छिप न सकी। वह होंठोंको बल देकर मुस्कराई—'क्या देख रहे हो?'

'कितना रूप, कितना यौवन, कितना आकर्षण विधिने तुझपर उँड़ेल दिया है, यही देख रहा हूँ!'

'कितनी चतुर, कितनी मधुर जिह्वा विधिने तुम्हें दी है, यह भी कभी सोचा है?'

सन्तोष खिल उठा। कुर्सीकी भुजापर अमलाका हाथ पड़ा था। कोमलतासे वह उसपर अपना हाथ फेरने लगा। अमलाने कोई आपत्ति नहीं की।

- ४ -

उस प्रथम दिवसके अनन्तर तो सन्तोष छायाकी भाँति अमलाके साथ रहने लगा। सिनेमाघरों, थिएटरों, होटलों, पिकनिकों—सब जगह वे दोनों इकट्ठे ही देखे जाते। इस बीच अमलाका व्यक्तित्व इतना प्रबल हो उठा था कि

सन्तोष उसकी आँखोंके छोटे-से-छोटे संकेतपर भी नाचने लगता था।

उस दिन इतवार था। जुलाईका महीना था। पिकनिकका आयोजन किया गया था। हुगलीके उस पार बोटैनिकल गार्डेन है। वहीं जानेका निश्चय था। सन्तोष, इला, इन्दु, कल्याण सभी निमन्त्रित थे और दस बजे तक ये सब लोग रजतकी कोठीपर आ भी पहुँचे। नौकरोंको सामान आदि लेकर स्टीमर द्वारा जानेकी आज्ञा हुई; इन लोगोंने मोटरोंका सहारा लेना उचित समझा। एक मोटरमें रजत, इन्दु और इला सवार हो गए, और दूसरीमें अमला, सन्तोष और कल्याण बैठे। चौरंगीमें पहुँचकर अमलाने शोफ़रको न्यूमार्केटकी ओर मुड़नेका आदेश दिया।

'क्यों?'—सन्तोषने पूछा।

'मुझे कुछ फूल लेने हैं।'

'कौन-से फूल?'

'काले गुलाबके फूल।'

'काले गुलाबके फूल!'—कल्याण शोफ़रके साथवाली सीटपर बैठा हुआ बोल उठा—'आजकल काला गुलाब कहाँ?'

'कलकत्तेमें सब कुछ मिल सकता है, कुण्डूकी दुकानपर।'

इतनेमें न्यूमार्केट आ गया। अमला और सन्तोष उतरकर फूल लेने चल दिए; किन्तु कल्याणने जानेसे इनकार कर दिया। फूलोंकी दुकानोंपर सभी भाँतिके फूल थे; किन्तु काला गुलाब कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। अमला चारों ओर दृष्टि दौड़ा रही थी।

'क्या चाहिए, हुज़ूर?'—मलमलके कुरतेसे मानो फूटकर बाहर निकलती हुई काली तोंदसे होड़ करते हुए श्यामवर्णके होंठों द्वारा मुस्कराकर कुण्डूने पूछा।

'काला गुलाब। क्या नहीं है?'

'क्यों नहीं!'

कुण्डूके दाएँ हाथ कुछ विलायती फूलोंके ढेर लगे थे। उन्हींके पीछे छिपाकर अमलाके प्रिय पुष्प रखे हुए थे। हाथ बढ़ाकर कुण्डूने फूलोंका बड़ा-सा गुलदस्ता निकाल कर अमलाके हाथमें दे दिया। उन्हें देखकर उसका चेहरा खिल उठा। इतने ताज़े, इतने सुन्दर पुष्प! उसने अपना आधेसे अधिक चेहरा उनमें छिपा लिया।

'क्या दाम?'—सन्तोषने जेबमें हाथ डालते हुए पूछा।

'दस रुपए।'

'दस रुपए! इन० मुट्ठी-भर फूलोंके लिए!'—अमला आश्चर्यसे बोली।

इससे पहले कि कुण्डू कुछ कहे, सन्तोषने उसके हाथमें दस रुपएका नोट पकड़ा दिया। अमलाको बाँहसे पकड़कर बाहरकी ओर खींचता हुआ रईसाना स्वरमें बोला—'जो चीज़ अवश्य लेनी हो, वह किसी दामपर भी मँहगी नहीं होती।'

पुष्पोंसे गाल रगड़ती हुई अमला चुप रही।

बाग़के भीतर पिकनिक करनेकी अपेक्षा अमलाके अनुरोधके कारण नदी-तटपर ही एक वृक्षकी छायामें उन्होंने डेरा डाल दिया। वैसे छायाकी कोई आवश्यकता न थी। आकाशमें चारों ओर बादल छाए हुए थे। पवनके तीव्र झकोरे हुगलीकी, जो बरसातके कारण एक छोटे समुद्रका रूप धारण कर चुकी थी, उमड़ती हुई लहरोंसे अठखेलियाँ करते हुए वातावरणमें मस्ती बिखरा रहे थे। काले गुलाबका गुलदस्ता हृदयसे लगाए अमला नदी-तटपर टहलने लगी। सन्तोषके पग भी उसीके साथ उठ चले। सन्तोषका हृदय आह्लादसे खिल-खिल उठता था। कभी आकाशपर बनते-बिगड़ते मेघोंको देखता, कभी बल्लियों उछलती हुई नदीकी लहरोंका निरीक्षण करता और फिर उसके तृषित नेत्र अमलाके चेहरेपर गड़ जाते। भविष्यके कितने मधुर और सुनहले स्वप्न उसका मस्तिष्क बुन रहा था। इतनेमें हवाका एक बहुत तेज़ झोंका आया और इसके साथ ही अमलाका पाँव एक गीले पत्ते-पर जा पड़ा, जिससे वह लगभग फिसल पड़ी। थोड़ा यत्न करनेसे वह तो सँभल गई; पर काले गुलाबके फूलोंका गुच्छा उसके हाथसे छूटकर नदीमें जा गिरा।

'मेरे फूल!'—उसने रोनी सूरत और करुण नेत्रोंसे सन्तोषकी ओर देखा।

'अभी लाता हूँ।'—सन्तोषने आव देखा न ताव, झटपट कोट और जूते उतारकर नदीमें कूद पड़ा।

बाक़ी सब लोग निकट ही बैठे थे, चौंककर उठ खड़े हुए और भागकर अमलाकी ओर बढ़े।

'क्या हुआ?'—कल्याणने पूछा।

'मेरे फूल!'—जलकी तीव्र धारामें बहे जाते उन पुष्पों और उतावलीसे उनके पीछे बढ़ते हुए सन्तोषकी ओर उसने संकेत किया। नदीका प्रवाह इतना तेज़ था,

उसकी लहरें इतनी प्रबल थीं कि फूलोंके उस गुच्छेको तिनकेकी भाँति उड़ाए लिए जा रही थीं। और जीवनकी बाज़ी लगाकर उनके पीछे यन्त्रवत् हाथ-पाँव मारता हुआ सन्तोष बढ़ा जा रहा था। ज्यों ही वह उस गुच्छेके पास पहुँचता कि एक नई लहर उसे लेकर आगे बढ़ जाती। किनारेपर खड़े सब लोग पुरुष और प्रकृतिके बीच लगी हुई इस होड़को साँस रोके खड़े देख रहे थे। इतनेमें सन्तोष बहुत दूर नदीके लगभग मध्यमें जा पहुँचा।

'अरे, सन्तोष तो बहुत दूर निकल गया!—इन्दु बोली।

'दूर!'—कल्याण मानो स्वप्नसे जागकर बोला—उसका लौटना अब बहुत मुश्किल है।'

'मुश्किल ही नहीं, असम्भव है।'—अमलाके चेहरेपर एक सेकेण्डके लिए मुस्कानकी छाया आई और फिर अदृश्य हो गई।

'असम्भव!'—इला, इन्दु, रजत और कल्याण सब एक साथ चिल्ला उठे। अब दूरसे देखनेपर भी स्पष्ट मालूम होता था कि सन्तोष थककर चूर हो गया है। उसके हाथों और पाँवोंकी गति शिथिल हो रही थी। एक-आध बार उसका सिर अदृश्य होकर ऊपर उठा था।

'अरे, वह तो गया!'—कल्याणने घबराकर कुछ ही दूरीपर खड़े स्टीमरवालोंको सन्तोषकी सहायताके लिए जानेकी आवाज़ दी। स्टीमर तेज़ीसे भागा; किन्तु उसके सन्तोषके पास पहुँचनेसे पहले ही इन सबके देखते-देखते नदीकी कराल लहरें सन्तोषको निगल गईं!

इन्दु और इला तो आँसू पोंछती हुई मुँह मोड़कर वहीं-की-वहीं बैठ गईं; पर अमला ज्यों-की त्यों खड़ी माँझियोंकी छटपटाहट देखती रही।

'आदमी ख़ूब था!'—कल्याण बोला।

'हाँ, किन्तु मेरे फूल न ला सका!'

'क्या कहा?'

'मैं कहा नहीं करती, किया करती हूँ, कल्याण बाबू!'—यह कहते-कहते अमलाका गला भर आया। नेत्रोंको दोनों हाथोंसे ढाँपकर औंधे मुँह घासपर लेट गई।

- ५ -

तीसरे दिनकी बात है। लॉनमें कुर्सी डाले अमला चिन्तित बैठी थी। सामने तिपाईपर एक-दो पत्रिकाएँ और उनके ऊपर एक खुला लिफ़ाफ़ा पड़ा था। उसके नेत्र कोठीके बड़े फाटककी ओर लगे थे। कान ज़रा-सी आहटसे खड़े हो जाते थे। कुछ ही देरके बाद बाहर मोटर आनेका शब्द हुआ और उसके साथ ही रजत उतावलीसे उसकी ओर बढ़ता हुआ उसे दिखाई दिया। वह उसे देखकर एक बार उठकर खड़ी हो गई और फिर कुछ सोचकर अपने-आपको सँभालती हुई बैठ गई।

'क्यों?'—रजत जब उसके पास आ गया, तो अमलाने उत्सुकतासे पूछा।

'हाँ, मिल गई लाश।'—सामनेवाली कुर्सीपर बैठते हुए रजतने जवाब दिया।

'कब मिली?'

'आज प्रातः। वह तो अग्निकी भेंट भी चढ़ गई।'—यह कहकर रजत थोड़ा रुका और फिर बोला—'श्मशानमें एक बड़ी विचित्र बात हुई।'

'क्या?'

'अभी चितामें आग दी ही जानेवाली थी कि सन्तोषकी पहली और दूसरी दोनों पत्नियाँ चिल्लाती और छाती पीटती वहाँ आ निकलीं।'

'अच्छा! कुछ कहती भी थीं?'

'हाँ, तुझे जी भरकर कोस रही थीं।'

'बहुत ख़ूब!'

इतनेमें रजतकी दृष्टि सामने तिपाईपर जा पड़ी।

'यह किसका पत्र है?'

'सन्तोषकी तीसरी पत्नीका।'

'क्या लिखा है?'

'यही कि मैं हत्यारिणी हूँ! मेरे कारण उसने अपने पति-परमेश्वरको खोया है और विधवा बनी है!'

अमलाके स्वरमें छिपा व्यंग्य छिपाए भी छिप न सका था।

'पति-परमेश्वर?'

'हाँ, हमारी जातिके उद्धारमें अभी शताब्दियाँ लगेंगी।'

अमला उठ खड़ी हुई। एक बार डूबते हुए सूर्यकी ओर देखा और फिर धीरे-धीरे पग रखती हुई कोठीकी ओर चल दी।

पी० ३२९ बी०, सदर्न एवेन्यू, कलकत्ता ]

# गीतांजलि : सार्वभौम हृदय-वाणी

काका कालेलकर

आसम-प्रान्तमें मोटर-बसमें यात्रा कर रहा था। शिलांगसे गौहट्टी जाता था। मोटर-बसमें भीड़ ठीक-ठीक थी। साथके यात्री जन ख़ास तौरपर संस्कारी और भद्र नहीं मालूम होते थे। उनका सहवास सहन करना ही था, इसलिए मनमें से इन सबका विचार निकाल देनेकी दृष्टिसे, बाहर प्रकृतिकी भव्यता निहारता हुआ, तदाकार होनेका प्रयत्न कर रहा था। प्रकृतिके साथ एकता होते ही उपनिषत्कारोंका सूत्र 'तज्जलान्' याद हो आया। 'तत्' अर्थात् परब्रह्म—उसके साथ 'ज' 'ल' और 'अन्' जोड़ देनेसे यह सूत्र तैयार होता है। भगवत् तत्वमें से यह कुछ जन्मा है। हम सब इसमें लय प्राप्त करके लीन हो जायँ तथा उस परब्रह्मकी प्राणशक्तिसे ही प्राणित् (अन्) होकर हम सब तन्मय या तद्रूप हो जायँ—सूत्रका अर्थ इस प्रकार मैंने घटाया।

इस सूत्रके अनुसार प्रकृति-रूपी आदि अवतारकी मैं शान्त चित्तसे उपासना कर रहा था। इतनेमें मेरे पास बैठकर झोंका खाते हुए, मज़दूर सदृश दिखाई देनेवाले एक युवकके हाथमें से रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी अंगरेज़ी 'गीतांजलि' नीचे गिर पड़ी। 'गीतांजलि' देखते ही मेरे मनमें अनेक भाव पैदा हुए। मैं जिस पोथीमें से, पिछले पचीस-तीस वर्षोंसे, असाधारण आनन्द प्राप्त करता हूँ, उसी पोथीमें से यह ग़रीब विद्यार्थी भी रस प्राप्त कर रहा है। जिन गीतोंने मेरे हृदयमें प्रविष्ट होकर अनेक बार मुझे अस्वस्थ बना दिया है, वही गीत इस अज्ञात युवकके हृदयमें इसी प्रकारका मनोमंथन कर रहे होंगे।

पहले-पहल 'गीतांजलि' मैंने हरद्वार या देहरादूनमें बाँची थी। उसके बाद गुजरात-विद्यापीठके स्वराज्य-प्रेमी विद्यार्थियोंको पढ़ाई थी। वही 'गीतांजलि' यहाँ, भारतवर्षके ईशान-कोणमें, एक युवक—जिसके पास आवश्यक कपड़े भी नहीं तथा जिसके मुखपर पढ़ाई (अध्ययन) की छाप (निशानी) भी नहीं—रस-मग्न होकर पढ़ रहा है। मोटर-बसमें उद्भूत यह दृश्य मुझे स्मरण द्वारा एकदम 'गीतांजलि'के प्रस्तावना-लेखक आयरिश कवि यीट्सकी ओर ले गया—'I have carried the manuscript of these translations about with me for days, reading it in railway trains, or on the top of omnibuses, and in restaurants, and I have often had to close it lest some stranger would see how much it moved me.' सुदूर आयरलैण्डका कवि यीट्स, मुंबईकी ओरका मैं तथा कामरूप देशका यह विद्यार्थी बंगकविके इन गीतोंके कारण एक हृदय हो गए थे। अब मेरे मनका द्वैत निकल गया। मोटर-बसके अन्दर निरी अरसिकता यात्रा कर रही थी तथा बाहर भगवान रसेश्वर अपने दर्शनके अनेक पार्श्व प्रस्तुत कर रहे थे। इस प्रकारकी जो संकुचित कल्पना मनमें जम गई थी, वह अब पिघल गई और आन्तर-बाह्य एक रूप होकर 'तज्जलान्' की शान्त उपासनामें निर्बाध होकर पूर्ण कर सका। और इससे मेरा पुराना अभिप्राय एक बार पुनः दृढ़ हो गया कि 'गीतांजलि' जीवन-देवताकी उपासना करनेकी दीक्षा देनेवाला धर्मकाव्य ही है।

× × +

'गीतांजलि'को अंगरेज़ीमें प्रकट हुए तीस वर्ष हो गए। इस अरसेमें इस प्रकारके गीत-संग्रहका जो प्रचार हुआ, वह सचमुच आजके ज़मानेमें भी आश्चर्यकारी बात है। 'गीतांजलि' भारतीय संत-साहित्यकी परम्पराकी वस्तु है, अतः प्रत्येक भारतीय हृदयको स्वभावतः ऐसा लगता है कि यह हमारे ही हृदयकी आबेहूब और उत्कृष्ट प्रतिबिम्ब है। किसीको ऐसा भी लगेगा कि रवीन्द्रनाथजीने इसमें नवीन क्या कहा है? हमारे सब सन्त आज तक जो कहते आए हैं, यही इन्होंने नवीन ढबसे, परिमार्जित और कसी हुई भाषामें लिखा है, इतना ही। खरी बात यदि इतनी ही होती, तो 'ग़ीतांजलि' अंगरेज़ीमें ही इतनी लोकप्रिय न होती तथा दुनियाकी सभी भाषाओंमें इसके जो अनुवाद हुए हैं, वे कभी होते ही नहीं। भारतीय हृदय-वाणीमें जो कुछ सार-रूप और विश्वजनीन है, उसे ही रवीन्द्रनाथने परखा है, अपनाया है तथा आधुनिक बुद्धि व हृदयको संतुष्ट कर सके, ऐसे रूपमें प्रस्तुत किया है। इसमें कुछ भी उधार नहीं है। जो कुछ है, वह हृदयकी अनुभूतिमें से प्रकट हुआ है। इसकी एक-एक वस्तु चिर-परिचित होनेपर भी सर्वथा नवीन, ताजी, शुद्ध और समृद्ध है। 'गीतांजलि' बाँचकर चीनी मनुष्य कहेगा—'मुझे ऐसा लिखना नहीं आया, इससे क्या;

परन्तु मुझे इसमें अपना ही हृदय प्रतिबिम्बित हुआ दीखता है।' दक्षिण-अमेरिकामें जाकर बसा हुआ कोई स्पेनियार्ड कहेगा कि मुझे भी ऐसा ही कुछ कहनेकी इच्छा हो रही थी; परन्तु कैसे कहना चाहिए, यह नहीं सूझता था। अफ्रीकाका कोई शिक्षित हब्शी भी कहेगा—'ठीक इन्हीं विचारोंको व्यक्त करनेके लिए हमारी असंख्य पीढ़ियाँ प्रयत्न कर रही थीं, और हृदयकी बात व्यक्त नहीं होती, ऐसी अवरुद्ध वेदना अनुभव कर रही थीं! गीतांजलि हमारे हाथमें आई, हमें अपना हृदय मिल गया।' प्राचीन पैगम्बरोंकी परम्परामें परिपोषित कोई यहूदी कहेगा—'हमारे ही किसी नबीने अपनी साधना पूरी करनेके लिए भारतमाताके पेटसे जन्म लिया है।' जिस प्रकार दुनियाके सब कुटुम्ब भावनाको साधनेके लिए गांधीजीमें आकर बस गए हैं, उसी प्रकार दुनिया भरके बुद्धिशाली भक्त कवि रवीन्द्रके हृदयमें मजलिस जमाकर बैठे हैं।

'गीतांजलि'का गायक विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ।

चिर-परिचितताका समाधान और अननुभूत नवीनताकी चमत्कृति, दोनों एक साथ हमको इस गीतांजलि'में मिलती है। ज्ञानेश्वरकी भाषामें कहूँ, तो 'गीतांजलि'के गीत तो कविता-लताके छीले हुए स्वादिष्ट हरे दाने हैं, भक्ति-रसका नवनीत है। सितारके तारोंको मिलानेके प्रयत्नमें कर्ण-कठोर स्वर देर तक सुननेके बाद अन्तमें स्वर-मेलका जो आनन्द मिलता है, उसी प्रकार हृदयकी भावनाओंको व्यक्त करनेके, अनेक देशोंके, अनेक कालोंके, अनेक ऊँचे-नीचे प्रयत्नोंको देखनेके बाद हृदय सन्तोष-पूर्वक कहता है, अब तक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की है, वह अन्तमें 'गीतांजलि'में वस्तुतः सफल हुई है। सादगी इन गीतोंका सबसे अधिक आकर्षक आभूषण है। स्पष्टता इन गीतोंकी सर्वोच्च कला है। सार्वभौमता इन काव्योंका वैशिष्ट्य है।

आगे-पीछे क्या कहा है, इसका विचार किए बिना तथा एकवाक्यताकी आवश्यकताको स्वीकार किए बिना कवि लिखते समय जो कुछ मनमें स्फुरित होता है, उसे यहाँ गा देता है। इस बातका वह ज़रा भी विचार नहीं करता कि इसमें परस्पर-विरोध है या नहीं, विचारका मेल

है या नहीं। अमेरिकन कवि ह्विटमैनको किसीने कहा था कि तुम्हारी कृतियोंमें परस्पर-विरोधी वचन मिलते हैं, तुम अपनी बात स्वयं काट गिराते हो! आत्म-विश्वासी और बेपरवाही कविने उत्तर दिया—'तुमको किसने कहा कि मैं एक मनुष्य हूँ? मेरे हृदयमें मनुष्यका सागर उछल रहा है : जिस समय जो कोई बोल उठा, सो बोल उठा। मुझे क्या?'

"Do I contradict myself? Well then I contradict myself. I contain multitudes."

तथापि इन सभी विविध भावोंमें रवीन्द्रनाथका व्यक्तित्व अखंड रूपमें अनुग्रथित दीखता है। यदि आन्तरिक एकता होगी, तो उसे बनाए रखनेके प्रयत्नकी क्या आवश्यकता है? और यदि वह नहीं है, तो क्या केवल प्रयत्नसे उसे उपजाया जा सकता है? अतः कविके लिए कुछ भी सँभालकी ज़रूरत नहीं! सर्वप्रकारसे यदि बेपरवाह रहनेका किसीका अधिकार है, तो वह कविका है। वह कोई तत्त्वज्ञ या फ़िलासफर थोड़े ही है, जो तत्त्वकी लगाम मुखमें पकड़कर, दार्शनिक युक्तिके रास्ते, दौड़ता रहे। वह तो जीवन-रूपी मैदानमें स्वैरविहार करनेके लिए उत्पन्न हुआ है। जीवनकी गहराईमें से वह बोलता है और उसे दृढ़ विश्वास है कि यदि जीवनमें कोई एक-रूपता है, तो उसकी स्वैरकथामें भी वह एकता, स्वयं ही, अक्षुण्ण रहनी चाहिए।

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी भक्ति कोई मायाकूट-वाली साधनाकी भक्ति नहीं है; परन्तु सहज जीवनवाली सर्वसुलभ भक्ति है। इसीलिए एक 'गीतांजलि'में उन्होंने भक्तिके अनेक प्रकार बताए हैं। उन्होंने हमको बताया है कि मनुष्यके हृदयमें जितने भाव पैदा हो सकते हैं, उन सबको मधुर-भावसे ईश्वरकी ओर किस प्रकार झुकाना चाहिए। जीवन जैसा है, उसी प्रकार उसको जीओ; परन्तु उसमें हृदयको ईश्वराभिमुख रखो! उन्होंने हमें बताया कि ऐसा करनेसे सब कुछ अच्छा होगा। कविकी साधना जीवनसे डरती नहीं, जीवनको परमार्थ-विरोधी नहीं मानती, प्रत्युत जीवनको पूर्णतया स्वीकार करके उसे कृतार्थ बनाना चाहती है, और इसीलिए इनकी साधनाको जीवन-योगका नाम देनेकी इच्छा होती है।

लोग मानते आए हैं कि वैष्णव-धर्म ख़ूब सरल है। तपस्या, इन्द्रिय-दमन और वैराग्यके साथ इसकी बनती नहीं। 'गीतांजलि'के कुछ एक गीतोंसे कुछ लोगोंके मन पर ऐसा ही प्रभाव पड़ा है। 'वैराग्यकी साधना द्वारा मिलनेवाली मुक्ति मुझे नहीं चाहिए' (गीत-संख्या ९५), अथवा—'हे प्रभु, तेरा कहा हुआ काम मैं पीछेसे करूँगा, परन्तु पहले क्षण-भर तू मुझे अपने पास बैठने दे' (गीत-संख्या १२), या 'मुझे ऊँघ आने लगी, उसे दूर करके मैं ईश्वरकी उपासना नहीं करूँगा, पहले आँखें भरकर ऊँघ लूँगा और ताज़ा होकर पूजाका विचार करूँगा' (गीत-संख्या ७२)। इस प्रकारके उद्गार कितने ही मधुर और मोहक क्यों न हों, तथापि वे साधकके तो नहीं हैं—इस प्रकारका अभिप्राय कई लोगोंका है। रवीन्द्रनाथके तत्त्वज्ञानमें तपस्या, इन्द्रिय-दमन, पुरुषार्थ, पराक्रम आदि बातोंको अधिक स्थान नहीं। जहाँ देखो, वहाँ व्याकुलता और समाधानकी रेल-पेल—प्रचुरता—है। कितने ही ऐसा भी कहते हैं।

जिस प्रकार बीजमें से अंकुर, अंकुरमें से पत्र और उसमें से फूल-फल अपने-आप निकलते हैं, उसी प्रकार सरलतापूर्वक रहें और मांगल्यपर निष्ठा बनाए रखें, तो बिना किसी दौड़ादौड़के, सभी कुछ बिना प्रयासके ही मिल जायगा। कवीन्द्रका तत्त्वज्ञान इसी प्रकारका है, यह मानकर कुछ लोग कहते हैं कि यह तो नवाबीपूर्ण तत्त्वज्ञान है। मनुष्य-जीवन तो धक्का-मुक्काका मामला है; जीवन कोई काव्य नहीं, अपितु रण संग्राम है। इस प्रकार कहकर कितने ही लोग कविके काव्य मधुर तत्त्व-ज्ञानकी अवज्ञा करते हैं। परन्तु 'गीतांजलि'को ध्यान-पूर्वक बाँचनेवालेको सर्वत्र साधना दीखे बिना नहीं रहेगी।

'गीतांजलि'में सर्वत्र ईश्वर-निष्ठा, ईश्वर-भक्ति और मांगल्यकी ही उपासना नयनगोचर होती है। 'आमार सकल अंगे तोमार परश' (संख्या ३) इस शुभ संकल्पसे अधिक उच्चतर साधना कौन-सी हो सकती है? 'सबकर्मे तव शक्ति एइ जेने सार, करिब सकल कर्म तोमार प्रचार' (संख्या ३) इससे बड़ी तपस्या कहाँसे मिलेगी?

'गीतांजलि'में सर्वत्र आर्य-भावना ही दिखाई देती है। 'गीतांजलि' कोई तर्क, दर्शन अथवा विशिष्ट कविवृत्ति नहीं, किन्तु एक समग्र संस्कृति-सतक ही है।

अनुवादक : श्री शंकरदेव विद्यालंकार

---
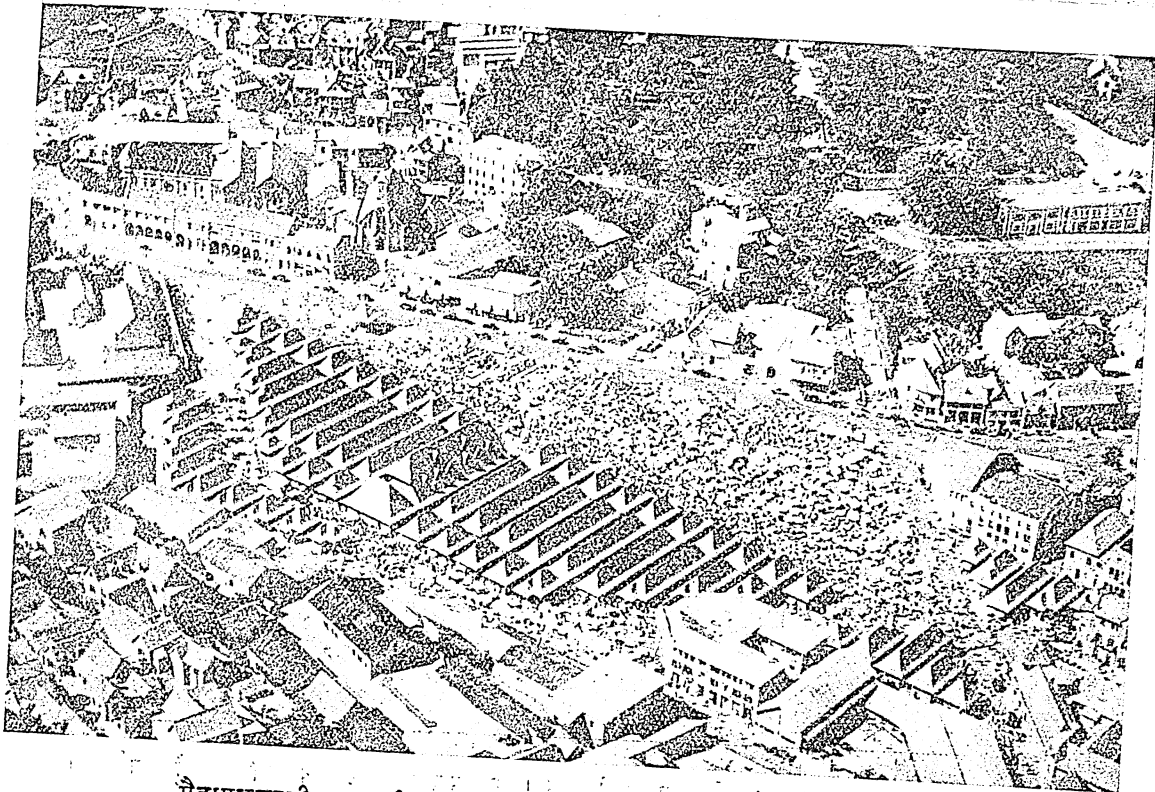
मैडागास्करकी राजधानी तानानारिवका हवाई जहाज़से लिया हुआ एक दृश्य।
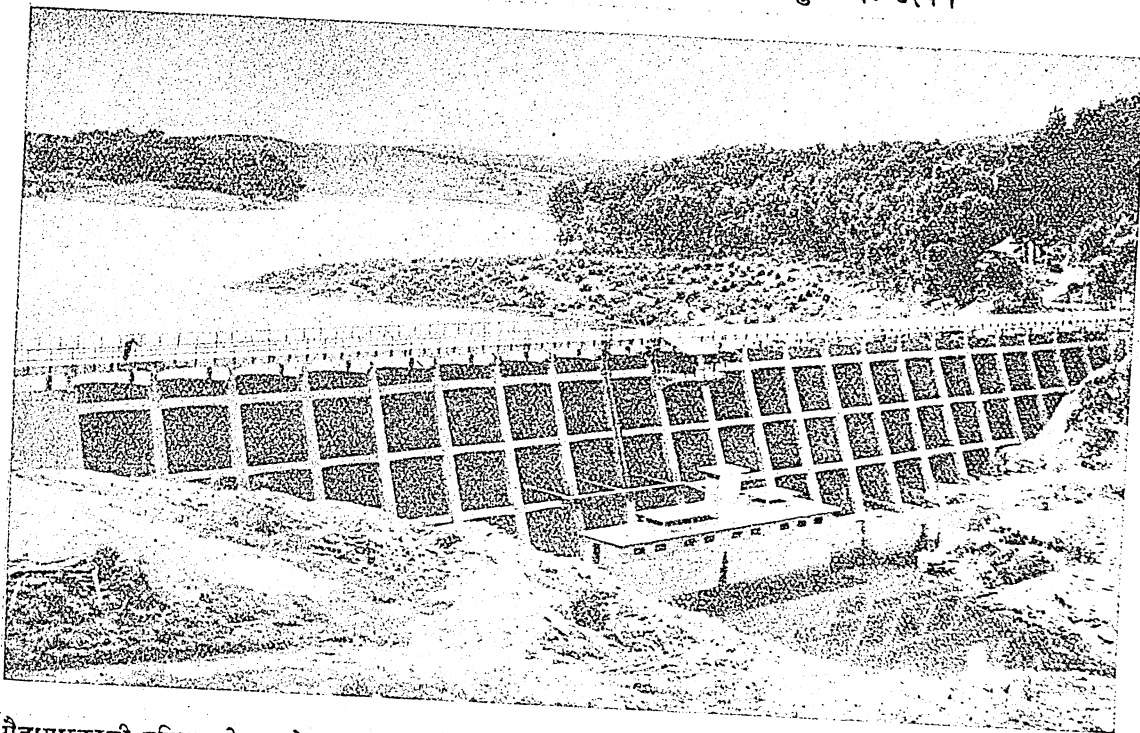
मैडागास्करकी प्रसिद्ध झील इकोपा मान्तासोएरका अभी हाल ही में बनाया गया बाँध। [ देखिए पृष्ठ ६०९-१३

Reg. No. C—1645
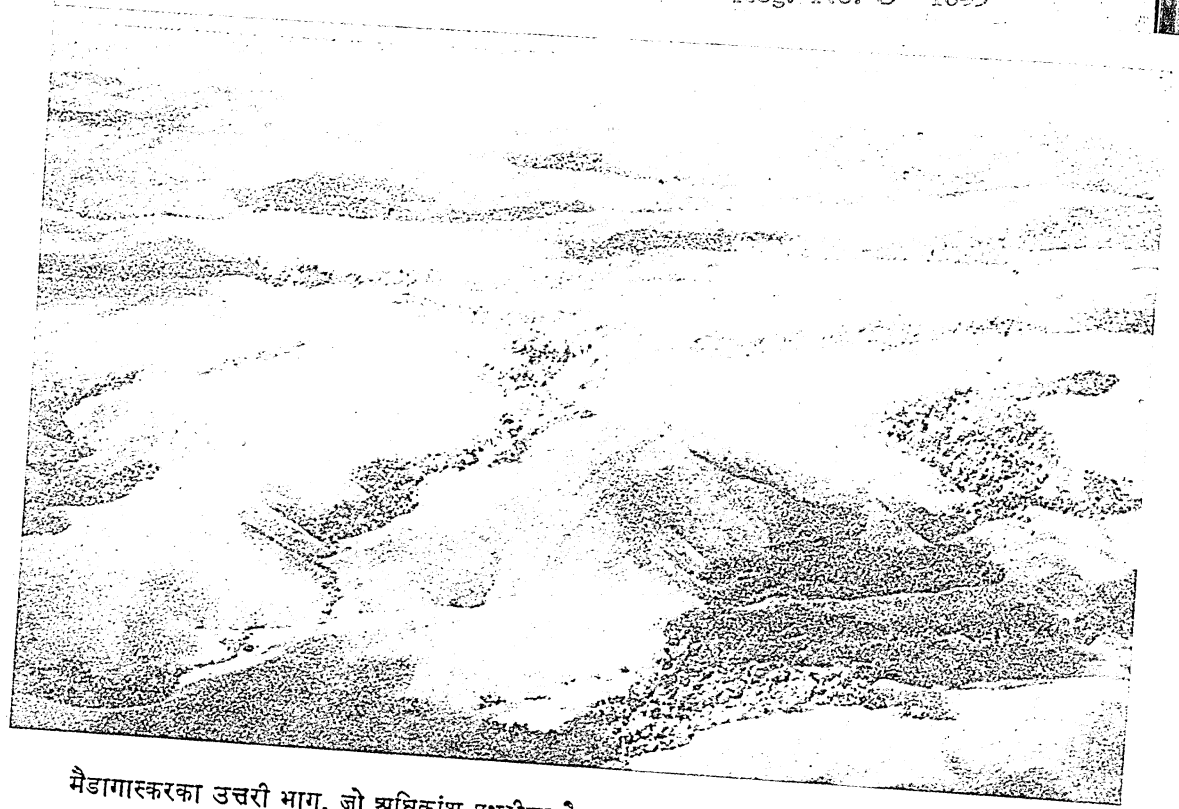
मैडागास्करका उत्तरी भाग, जो अधिकांश पथरीला है। महायुद्धकी लपटें अब यहाँ भी पहुँच गई हैं।
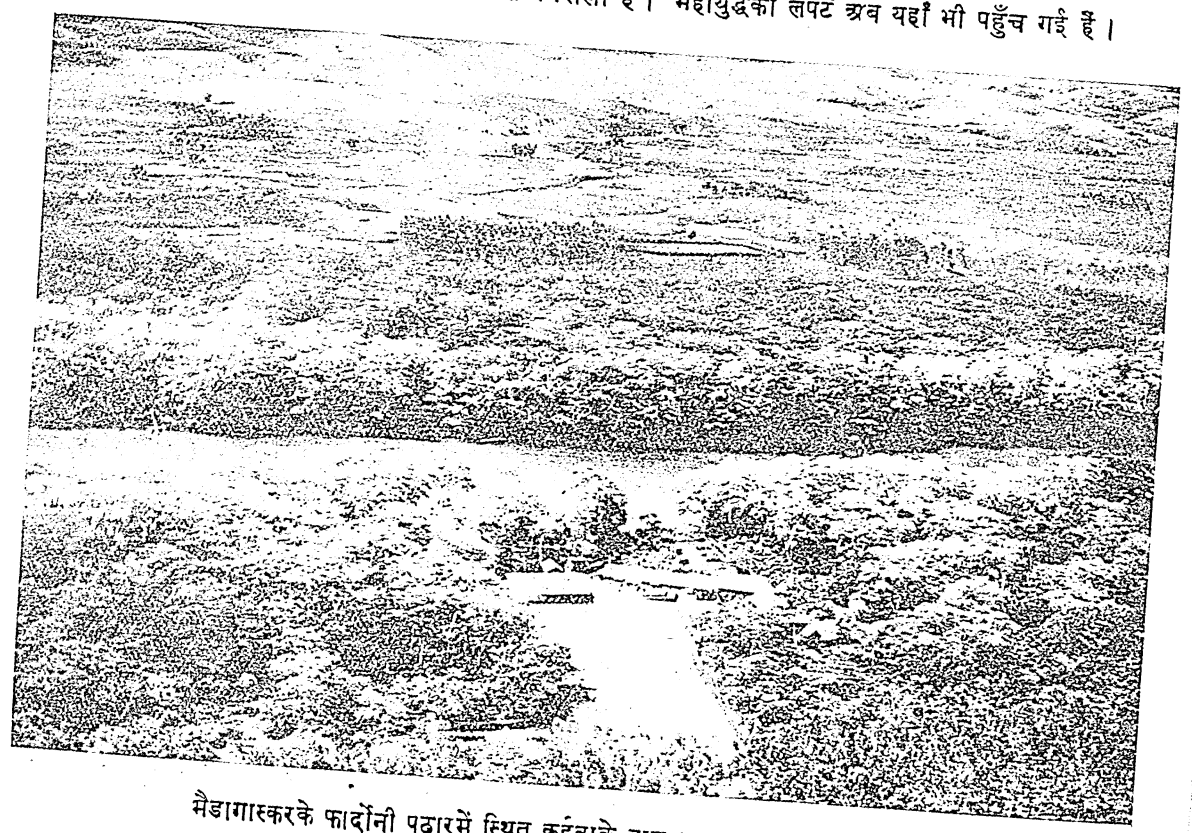
मैडागास्करके फार्दोनी पठारमें स्थित कहवाके बाग़।

[ देखिए पृष्ठ ६०९-१३

# मैडागास्कर

मोहनसिंह सेंगर

मैडागास्कर संसारके बड़े द्वीपोंमें से एक है, फिर भी उसका नाम हम लोगोंने अपेक्षाकृत कम ही सुना है। इसका कारण है उसका राजनीतिक, औद्योगिक और उत्पादनकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण न होना। पर भौगोलिक स्थितिकी दृष्टिसे उसका महत्व पुर्त्तगीज़, फ्रांसीसी और अंगरेज़ जहाज़रानीवालोंने कई शताब्दियों पहले ही मालूम कर लिया था, और इसी कारण इन प्रतिद्वन्द्वियोंमें कई युद्ध भी हुए। आज भी मैडागास्करकी भौगोलिक स्थितिके महत्वके कारण ही ब्रिटिश सेनाने उसपर अस्थायी रूपसे अधिकार कर लिया है।

यह द्वीप अफ्रीकाके दक्षिण-पूर्वमें स्थित है। इसकी तुलना हम भारतके दक्षिण-पूर्वमें स्थित सिंहल (सीलोन) द्वीपसे कर सकते हैं। पर यह सिंहल द्वीपकी अपेक्षा अफ्रीकाकी मुख्य भूमिसे ज़रा अधिक दूर और कुछ अधिक उत्तरमें है। यदि हम नक्शेमें सिंहल द्वीपको मद्रासके बन्दरगाहके ठीक सामने रख सकें, तो मैडागास्करकी स्थिति ठीक-ठीक हमारी समझमें आ जायगी। सिंहलको भारतसे पृथक करनेवाले पाक-जलडमरूमध्य और मन्नारकी खाड़ी न इतने चौड़े हैं और न गहरे ही, जितनी कि मैडागास्करको अफ्रीकासे पृथक करनेवाली मोज़ाम्बिक-जलप्रणाली (चैनल) है। यह जल-प्रणाली कोई १०,००० फ़ीट गहरी और ४०० मील चौड़ी है। इसका सबसे सँकरा भाग २४० मील चौड़ा है। यह फ़ासला डोवर और कैलेके बीचके फ़ासलेसे—जहाँ ब्रिटिश द्वीप-समूहको यूरोपकी मुख्य भूमिसे पृथक करनेवाली इंग्लिश चैनल सबसे सँकरी है—बीस गुना है।

मैडागास्करका फोर्ट-द-फ्यां, जहाँ १६४३ ई० में सर्वप्रथम फ्रांसीसी उपनिवेश स्थापित किया गया था।

### पशु, पक्षी और निवासी

प्राचीन कालमें जिस प्रकार सिंहल द्वीप भारतीय मुख्य भूमिका ही एक भाग था, उसी प्रकार मैडागास्कर भी अफ्रीकाकी भूमिका ही भाग था। पर कब, कैसे और किस प्राकृतिक प्रकोपके परिणाम-स्वरूप यह अफ्रीकाकी मुख्य भूमिसे पृथक हुआ, इस सम्बन्धमें अब तक

इतिहासवेत्ता अथवा भूतत्ववेत्ता अधिकारपूर्वक कुछ भी प्रकाश नहीं डाल पाए हैं। उनके ऐसा माननेका मुख्य आधार हैं कुछ ऐसे वृक्षों एवं जंगली जानवरोंके फॉसिल, जो उस काल-विशेषमें दक्षिण-पूर्वी अफ्रीकामें पाए जाते थे और धीरे-धीरे जिनके चिह्न निःशेष हो रहे हैं। एक बार एक भूगर्भशास्त्रीने एक विशालकाय दरियाई घोड़ेका फॉसिल देखकर कहा था कि इतना बड़ा दरियाई घोड़ा मैडागास्कर द्वीपकी छोटी और द्रुतगामिनी नदियोंमें होना असम्भव है। ऐसे दरियाई घोड़े तो अफ्रीका महादेशकी बड़ी-बड़ी नदियोंमें ही पाए जा सकते हैं। वहाँसे वे मैडागास्करमें उसी हालतमें आ सके होंगे, जब कि वे नदियाँ यहाँ तक फैली हुई रही हों और बीचमें समुद्रका यह व्यवधान नहीं रहा हो। यही बात कुछ अन्य विशालकाय पशुओंके बारेमें भी लागू होती है।

इस समय मगरमच्छ और कतिपय अन्य पशु-पक्षियोंके अलावा दक्षिण-अफ्रीकाके जानवर और पक्षी मैडागास्करमें विशेष नहीं पाए जाते। इसका कारण कुछ भूगर्भशास्त्री यह बतलाते हैं कि समुद्री हवाओं और समुद्री धाराओंके प्रभावसे अफ्रीकाका यह भाग शनैः-शनैः पश्चिम और उत्तरके भागकी अपेक्षा ठण्डा होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उष्ण-कटिबन्धके मौसमके आदी पशु-पक्षी यहाँसे हटकर अफ्रीकाके उत्तर तथा पश्चिमके अधिक गरम भागोंमें चले गए। इसके बाद ही एक दिन जल और थलका ऐसा आकस्मिक प्रकोप हुआ कि मैडागास्करका यह भूभाग अफ्रीकाकी मुख्य भूमिसे अलग हो गया और अफ्रीकाके बड़े-बड़े पशु-पक्षी सदाके लिए यहाँसे मिट गए। पर घने जंगलों और पहाड़ोंकी बहुतायतके कारण आज भी मैडागास्कर तरह-तरहके विचित्र जानवरों और पक्षियोंका एक ख़ासा अच्छा चिड़ियाघर है। भारतके कई चिड़ियाघरोंमें वहाँसे आए हुए बनमानुस, जंगली तोते, लाल तोते, सफ़ेद मोर, साँप और सुरख़ाबियाँ आदि देखनेमें आते हैं।

पशु-पक्षियोंकी भाँति यहाँके निवासी भी कई जातियों और वंशोंके हैं, और उन सबको अफ्रीकाके मूलनिवासियोंके ही वंशधर नहीं कहा जा सकता। यहाँके अधिकांश निवासी 'मलागासी' या 'होवा' कहलाते हैं, जिनके पूर्वज मलायाके रहनेवाले थे। यदि इस किंवदन्तीमें कुछ भी यथार्थता है, तो यह तय है कि या तो प्राचीन कालमें मलायाके साथ अफ्रीकाका व्यापारिक सम्बन्ध रहा है या शायद किसी तूफ़ानमें पड़कर मलायाके कुछ माँझी यहाँ पहुँच गए हों। अपनी प्रसिद्ध यात्राओंके दौरानमें सिन्दबाद जहाज़ीके मैडागास्कर पहुँचनेका उल्लेख भी कुछ ग्रन्थोंमें मिलता है। कदाचित् इसीलिए इसे 'सिन्दबादका द्वीप' भी कहते हैं। 'होवा' लोगोंके अलावा यहाँके रहनेवालोंमें चीनी, फ्रांसीसी, पुर्त्तगीज़ तथा अन्य यूरोपीय लोग भी हैं, जो व्यापार-व्यवसायके सिलसिलेमें यहाँ आए थे और अब यहीं बस गए हैं।

### आबादी, जल-वायु और पैदावार

मैडागास्करकी कुल आबादी ३९,००,००० है, जिसमें से ३८,६२,५६७ 'होवा' अथवा मलागासी, २०,९२३ फ्रांसीसी, १५,००० चीनी और शेष अरबी, पुर्त्तगीज़ तथा अन्य यूरोपीय देशोंके हैं। ये सब सरकारी अफ़सर या व्यापारी हैं। यह द्वीप १००० मील लम्बा और ३८० मील चौड़ा है। इसकी समुद्र-रेखा कोई ३२०० मील लम्बी है, जिसपर ९ अच्छे और प्राकृतिक बन्दरगाह हैं। इनमें से मोजंगा, दीगो स्वारी, तामातव, सतमारी, अन्दोवोरान्तो, मारोसिका, वागेन्द्रानो, पोर्ट आन्द्रोका आदि प्रमुख हैं। इसका क्षेत्रफल २,४९,०९४ वर्गमील—अर्थात् फ्रांस, हालैण्ड और बेल्जियमके बराबर—है। इतने बड़े द्वीपकी रक्षाके लिए फ्रांसने वहाँ केवल २४०० फ्रांसीसी और ६००० मलागासी सेना रखी हुई थी, जिसमें से इस महासमरके छिड़नेपर कुछ सैनिक स्थानान्तरित कर दिए गए।

विषुवत् रेखाके निकट होनेके कारण यहाँका मौसम काफ़ी गरम है। वर्षा भी बहुत होती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यहाँ घने जंगल हैं और पेड़-पौधे बहुतायतसे होते हैं। द्वीपका अधिकांश भाग पथरीला है। लगभग सारे द्वीपमें उत्तरसे दक्षिणकी ओर पर्वतमालाएँ फैली हुई हैं। इन्हींके बीचमें जो ज़मीन है, वहाँ चावल, आलू, मक्का, गन्ना, तम्बाकू आदिकी खेती होती है। पश्चिम और दक्षिणकी ज़मीन अपेक्षाकृत अधिक उपजाऊ है, जहाँ चावलकी खेती होती है। खेतीके लायक ज़मीन कुल ३० लाख एकड़ ही है। यह ज़मीन समुद्र-तलसे ६०० फीट ऊँची है, जब कि पठार ४००० से ६००० फ़ीट और अंकारात्रा पर्वत ९००० फ़ीट ऊँचा है। बीचका भाग अधिकांशतः पठार है, जिसका मुख्य भाग

इमेरीना पठार कहा जाता है, और द्वीपके ठीक बीचोबीच है। अधिकांश पर्वत बुझे हुए ज्वालामुखी हैं, जिनमें से अक्सर गड़गड़ाहट होती हुई सुनाई देती रहती है; पर अब वे फटते नहीं। जो समतल भूमि इनकी तराईमें है, उसकी मिट्टी इन्हींके लावाकी होनेके कारण बहुत उपजाऊ है। लगभग सभी पहाड़ पश्चिम या पूर्वकी ओर झुके हुए हैं, जिसके परिणाम-स्वरूप द्वीपकी सभी नदियाँ भी पश्चिम या पूर्वकी ओर समुद्रमें गिरती हैं। पहाड़के ढालोंपर से गुज़रनेके कारण वे बहुत द्रुतगामिनी और छोटी हैं। इसी कारण वे न तो निवासियोंके विशेष उपयोगकी हैं और न उनके मुहाने ही जहाज़ोंके लिए विशेष उपयोगी हैं। पूर्वकी अपेक्षा पश्चिमकी पर्वत-श्रेणियाँ समुद्र-तटसे कुछ दूर हैं, अतः पश्चिमकी नदियाँ पूर्वकी नदियोंकी अपेक्षा लम्बी और चौड़ी हैं। पश्चिमकी बहुत-सी नदियोंमें से नहरें निकालकर फ्रांसीसी इंजीनियरोंने कई जल-मार्ग बनाए हैं। दक्षिण-पूर्वकी मांगोका और ओनीलाही तथा उत्तर-पश्चिमकी आइकोपा नदियाँ इस दृष्टिसे काफ़ी उपयोगी हैं। आइकोपाके मुहानेपर स्थित मोजंगा बन्दरगाह बहुत पुराना और अच्छा है। कुछ शताब्दियों पूर्व यहाँसे अरबी लोग गुलाम ख़रीदकर ले जाया करते थे। आज दक्षिण-अफ्रीकासे होनेवाले मैडागास्करके व्यापारका यही प्रमुख बन्दरगाह है।

मैडागास्करमें इटासी झीलके निकटस्थ एक विशाल ज्वालामुखी।

यहाँके निवासी विशेष परिश्रमशील और उद्योगी नहीं हैं। इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि यहाँ गर्मी बड़ी तेज़ पड़ती है और वर्षा प्रायः रोज़ ही होती रहती है, जिसके कारण घरोंसे बाहर निरन्तर परिश्रम करना मुश्किल है। दूसरा कारण यह है कि लोगोंको घने जंगलोंमें से खानेके लिए कन्द, मूल, फल, शिकार आदि इतनी आसानीसे और पर्याप्त मात्रामें मिलते रहते हैं कि उदर-पोषणके लिए विशेष परिश्रम करनेकी वे आवश्यकता ही नहीं समझते। यहाँकी मुख्य पैदावार चावल है; पर गन्ना और आलू भी पर्याप्त मात्रामें पैदा किए जाते हैं। इनके अलावा मक्का, तम्बाकू, कहवा, कोको, कपास आदिकी भी खेती होती है। रबर और रेशम भी काफ़ी मात्रामें तैयार किया जाता है। साधारण लकड़ीके अलावा कई विशिष्ट और मूल्यवान लकड़ियाँ भी यहाँके जंगलोंमें पाई जाती हैं। नारियल और उष्ण कटिबन्धके अन्यान्य फल भी यहाँ बहुतायतसे पाए जाते हैं। खनिज-पदार्थोंमें ग्रेफ़ाइट, सोना, फ़ास्फ़ेट आदि मुख्य हैं। कोयला और तेल बहुत कम मात्रामें पाए जाते हैं। द्वीपके चारों ओर मछलियाँ बहुतायतसे मिलती हैं और जंगलके जानवरोंसे मांस तो उनसे भी कहीं अधिक। इन्हें बाहर भेजनेके लिए मोजंगा, दीगा स्वारी, तामातव और अन्तानारिवोमें कई फैक्ट्रियाँ काम करती हैं। यह सब चीज़ें यहाँसे बाहर भेजी जाती हैं। आयातकी अपेक्षा यहाँसे होनेवाले निर्यातका मूल्य इसीलिए कई गुना अधिक होता है।

प्रतिवर्ष यहाँका औसतन आयात ३॥ करोड़ रुपएके लगभग होता है, जब कि निर्यात कोई ८ करोड़के लगभग।

विदेशियोंका आगमन : फ्रांसीसी उपनिवेश

१६वीं शताब्दीके प्रारम्भसे कुछ पुर्त्तगीज़ व्यापारी पहले-पहल यहाँ आए। यह कह सकना कठिन है कि यह आगमन समुद्री हवाओं, तूफ़ान या रास्ता भूल जानेके कारण आकस्मिक रूपसे हुआ या नए बाज़ारोंकी खोजके परिणाम-स्वरूप। उन दिनों, इन्हीं यूरोपीय व्यापारियोंके कथनानुसार, यहाँ असभ्य और जंगली जातियोंके छोटे-छोटे राज्य थे। पश्चिमी समुद्र-तटके इमेरीना और साकालावा प्रदेशोंपर होवा-जातिके मुखियाका शासन था और उससे मिले हुए उत्तर-पूर्वके प्रदेशोंपर बेट्सीलियो जातिके मुखियाका।

अभी पुर्त्तगीज़ व्यापारी अपने अरब प्रतिद्वन्द्वियों तथा विरोधी मलागासी लोगोंसे निबट भी नहीं पाए थे कि फ्रांसीसी और उनके कुछ ही समय बाद अंगरेज़ व्यापारी भी आ धमके। चूँकि फ्रांसीसी व्यापारियोंके पास माल अधिक था और वे शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित भी थे, उन्होंने सन् १७०० के लगभग द्वीपके कई भागोंपर—विशेषकर उन बन्दरगाहोंपर, जहाँ उनके जहाज़ माल लेकर आते और मैडागास्करका कच्चा माल ले जाते थे—अपनी चौकियाँ क़ायम कर लीं। पर नैपोलियनके साथ युद्ध छिड़ते ही अन्यान्य स्थानोंके साथ ब्रिटिश अधिकारियोंने इन चौकियों-पर भी अपना अधिकार कर लिया। तामातव द्वीप तो १८११ तक ब्रिटेन ही के हाथमें रहा, जहाँसे आयात-निर्यातके अलावा ब्रिटिश पादरी लोग ईसाई-मतका प्रचार करने द्वीपके भीतरी भागोंमें जाते थे।

इस समय समूचे द्वीपपर होवा-वंशका राजा रादामा राज्य करता था। वह बड़ा शक्तिशाली और लोकप्रिय था; पर उसका उत्तराधिकारी इतना योग्य नहीं था। गद्दीपर बैठनेके कुछ ही समय बाद वह मर गया। इसके बाद शासनकी बागडोर उसकी रानीके हाथमें आई। कहते हैं कि इसने फ्रांसीसी प्रतिद्वन्द्वियोंके प्रभावमें आकर अंगरेज़ों द्वारा बनाए गए ईसाइयोंका दमन करना शुरू किया। इससे अंगरेज़ बहुत बिगड़े; पर इस समय तक फ्रांसने वहाँ ऐसी मज़बूतीसे पाँव जमा लिए थे कि उसे उखाड़ना सम्भव नहीं था। अतः दोनोंने १८६५ में यह सन्धि की कि दोनों ही मैडागास्करकी स्वतन्त्रताका मान करेंगे और उसके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे। यहाँ हमें क्लाइव और डूप्ले द्वारा भारतमें किए गए 'हस्तक्षेपों' और उनकी प्रतिद्वन्द्विताके परिणाम-स्वरूप हुए युद्धोंकी याद ताज़ा हो आती है।

इसके ३ वर्ष बाद ही रानी रानावालोना द्वितीय गद्दीपर बैठी। उसने ईसाइयोंपर होनेवाला दमन बन्द कराया और अंगरेज़ों तथा फ्रांसीसियोंकी सहायतासे शासन-सत्ताको सुधारने तथा मज़बूत करनेका कार्य आरम्भ किया। १८७८ में फ्रांसने १८४० में उत्तरके एक जागीरदारसे ख़रीदी हुई भूमिपर अपनी शासन-सत्ता स्थापित करनेका अधिकार माँगा। रानी द्वारा उनकी इस माँगको ठुकरा दिए जानेके कारण होवा तथा मलागासी लोगों और फ्रांसीसी सेनामें दो वर्ष तक (१८८३-१८८५ ई०) जमकर युद्ध हुआ—परिणाम वही हुआ, जो इटली अबीसीनिया-युद्धका हुआ था। फ्रांसके नवीनतम युद्धास्त्रोंके आगे रानीके बर्छियों, भालों और तीरोंवाले सैनिक दो वर्षसे अधिक टिक भी कैसे सकते थे, अतः रानीको फ्रांससे सन्धि करनी पड़ी। फ्रांसने रानीको राज्यच्युत तो नहीं किया; पर आन्तरिक मामलोंके अलावा उसकी सारी स्वतन्त्रता छीन ली। तामातवपर फ्रांसका अधिकार पहले ही हो गया था, दीगो स्वारीपर सन्धिके बाद उसका अधिकार हो गया। पर इतनेसे ही फ्रांसको सन्तोष नहीं हुआ। १८९० में उसने समूचे मैडागास्करको अपना रक्षित-राष्ट्र (प्रोटेक्टोरेट) घोषित कर दिया। ब्रिटेनने उसके इस अधिकारको स्वीकार कर लिया; पर मैडागास्कर-निवासियोंने फ्रांसके इस विश्वासघातका विरोध और मुक़ाबला करनेका निश्चय किया। इसके परिणाम-स्वरूप फ्रांस और वहाँके लोगोंमें फिर घमासान हुआ। इस बार फ्रांसने मैडागास्करके रहे-सहे बन्दरगाहोंपर भी क़ब्ज़ा कर लिया, रानी रानावालोना तृतीयको बन्दी बनाकर एल्जियर्स भेज दिया (जहाँ उसकी १९१७ में मृत्यु हो गई) और १८९६ में मैडा-गास्करको अपना उपनिवेश घोषित कर दिया। पर पूर्ण रूपसे समूचे द्वीपपर अपना अधिकार करने और यहाँके निवासियोंके मुक़ाबलेको ख़त्म करनेमें फ्रांसको ३-४ वर्ष और लगे।

इसके बादसे मैडागास्करकी गुलामीका युग शुरू होता है। फ्रांसके साम्राज्यवादियोंने द्वीप या उसके निवासियोंकी स्थिति सुधारनेके लिए अभी तक लगभग

कुछ नहीं किया है। न उनमें शिक्षाका कोई उल्लेखनीय प्रचार ही हो पाया है और न राजनीतिक जागृति ही। चुनावों और राजनीतिक दलोंका वहाँके लोग नाम भी नहीं जानते। शासन-व्यवस्था फ्रांस द्वारा नियुक्त गवर्नर-जनरल एक नाममात्रकी परामर्शदातृ समितिकी मददसे चलाता है। इस समितिके सदस्य—जिनमें से अधिकांश फ्रांसीसी व्यापारी या अर्द्ध-सरकारी कर्मचारी हैं या एकाध देशी जीहुज़ूर—गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द किए जाते हैं। सारा द्वीप २४ प्रान्तोंमें विभाजित है, २५ वाँ प्रान्त मैडागास्करके उत्तर-पश्चिम स्थित कोमोरो द्वीपोंका है, जिनपर फ्रांसका ही अधिकार है। इतने बड़े द्वीपमें अभी तक कुल ८०० मील लम्बी रेलवे और कोई १४०० मील लम्बी सड़क है।

नगरोंका रंग-रूप कुछ शिक्षा-प्रसार होनेसे अवश्य बदला है। यद्यपि सरकारी दफ़्तरोंमें अफ़सर सब फ्रांसीसी और क्लर्क तथा चपरासी होवा-जातिके हैं; पर तीक्ष्णबुद्धि होनेके कारण होवा-जातिके कई युवकोंने अवसर और साधन मिलनेपर बाहर जाकर उच्चशिक्षा प्राप्त की है और उनमें से कई आज डाक्टर, वकील, अध्यापक, इंजीनियर आदि हैं। मैडागास्करके स्वतन्त्र होनेपर ये लोग क्या किसी जातिसे किसी भी काममें पीछे रह सकते थे?

## वर्त्तमान युद्ध और मैडागास्कर

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, ब्रिटेनने मैडागास्करकी भौगोलिक स्थितिके कारण ही उसपर अस्थायी रूपसे अधिकार किया है। लाल और रूम-सागरके सुरक्षित न रहनेके बादसे मध्य-पूर्व और सुदूर-पूर्वको युद्ध-सामग्री तथा सैनिक लेजाने-लानेका एकमात्र मार्ग अब उत्तमआशा अन्तरीप होकर ही रह गया है। हिन्द-महासागरमें जापानी जंगी जहाज़ोंके विचरनेके कारण यह मार्ग उसी समय तक सुरक्षित रह सकता है, जब कि कमसे कम मैडागास्करपर—जिसे शत्रुके अधिकारमें चले जानेपर मित्र-राष्ट्रोंके जहाज़ोंपर हमला करनेका अड्डा बनाया जा सकता है—उसका अधिकार हो। ऐसा न होनेपर ब्रिटेनके लिए मध्य-पूर्व, रूस, भारत, आस्ट्रेलिया आदिका समुद्री यातायात बन्द हो सकता है। यही नहीं, यदि इसपर शत्रुका क़ब्ज़ा हो जाता, तो फ़ारसकी खाड़ी अथवा मध्य-पूर्वमें जर्मनी और जापानका मिलना भी सुगम हो जाता, जिसके परिणाम-स्वरूप जर्मनीको जापानसे कच्चा माल और जापानको जर्मनीसे युद्ध-यन्त्र बिना किसी बाधाके पहुँच सकते थे। इस प्रकार युद्धका रूप ही बदल जाता और मित्र-राष्ट्रोंकी स्थिति बहुत ख़राब हो जाती।

यहाँ तक तो हुई मैडागास्करके भौगोलिक महत्वकी बात। किन्तु वह केवल एक द्वीप ही नहीं है, केवल एक हवाई और नाविक अड्डा ही नहीं है; वहाँ भी अंगरेज़ों-जैसे ही आदमी रहते हैं, जिनके हृदयोंमें स्वतन्त्रता और आत्म निर्णयकी अंगरेज़ों-जैसी ही प्रबल भावना है। अपने और जनतन्त्र राष्ट्रोंके लाभके लिए ब्रिटेनने आज मैडागास्करपर अस्थायी रूपसे अधिकार कर लिया है; पर मैडागास्कर-निवासियोंके लाभके लिए वह क्या सोचता है? उसपर अधिकार करते समय ब्रिटिश अधिकारियोंने कहा है कि वे उसपर से फ्रांसकी सार्वभौम सत्ता हटाना नहीं चाहते। यह बात कुछ समझमें नहीं आती। अगर यह लड़ाई केवल कच्चे माल और व्यापारिक महत्वके स्थानोंके हस्तान्तरित करने या नए सिरेसे उनका बँटवारा करनेकी साम्राज्यवादी भावनाको लेकर नहीं हो रही है और वास्तवमें इसके उद्देश्य विश्व-स्वातंत्र्य तथा जनतन्त्र जैसे उच्च आदर्श एवं सिद्धान्त हैं, तो कोई कारण नहीं कि मैडागास्करको स्वतन्त्र नहीं किया जाय। जब सीरिया स्वतन्त्र हो सकता है, तो लगभग आधी शताब्दी पूर्व स्वतन्त्रता उपभोग करनेवाले मैडागास्करको स्वतन्त्र क्यों नहीं किया जा सकता? अगर युद्ध-कालमें मैडागास्करका भौगोलिक महत्व है, तो शान्ति-कालमें उसका कहीं अधिक नैतिक और राजनीतिक महत्व है। क्या जनतन्त्र राष्ट्र इस ओर ध्यान देंगे?

# फ़ौजी तैयारियाँ

डा० सत्यनारायण
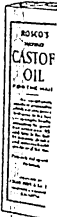
युद्ध भी एक ख़ास नियमसे चलता है। इसका भी 'टाइम-टेबल' होता है। फ़ौजी तैयारियोंके सिलसिलेसे ही यह ख़ास तरहका 'टाइम-टेबल' निर्धारित होता है। युद्धको राष्ट्रके जीवन-मरणका प्रश्न समझनेवाले राष्ट्र शान्तिके दिनोंमें ही एक योजना तैयार करते हैं। देशकी सारी आर्थिक और औद्योगिक व्यवस्थाको उस योजनाके अधीन कर दिया जाता है। फ़ौजी-विभाग सारी जन-शक्ति फ़ौजी तालीम प्राप्त करने और युद्धका सरंजाम तैयार करनेमें लगाने लगता है। राज्य-शक्तिकी बागडोर अपने हाथमें रखनेवाला दल देश-भक्तिकी दुहाई देकर सारे देशकी मनोवृत्ति लड़ाई चला सकनेके अनुकूल बनाने लगता है। प्रचार-विभाग लड़ाई जीत लेनेके बाद अपने मुल्कके लोगोंके सुख और समृद्धिके जीवनके सब्ज़ बाग़ दिखाने लगता है।

जोखिमके लिए हमेशा तैयार रहनेवाले राष्ट्र-संचालक लड़ाई आरम्भ करनेके मौक़ेकी ताकमें रहते हैं। यह मौक़ा देशकी फ़ौजी तैयारियोंके ही ऊपर निर्भर करता है। इस मौक़ेकी परखमें वक़्तका हिसाब सबसे ज़रूरी बात रहती है। आक्रमणकारी राष्ट्र अपनी तैयारी और फ़ौजी मज़बूतीकी तुलना विपक्षीसे करते हैं। जिस समय विपक्षीकी तैयारीकी तुलनामें उनकी अपनी तैयारी और उस तैयारीकी आगे बढ़नेकी रफ़्तार सबसे अधिक बढ़ी होती है, वही उनके आक्रमण करनेका सबसे अच्छा मौक़ा रहता है।

लड़ाईके इसी नियमकी दृष्टिसे अब हम इस बारके युद्धको देखें। इसकी फ़ौजी तैयारियोंपर दृष्टि डालनेसे ये हमें दो ढंगसे की गई दिखाई देती हैं। एक तरीक़ा फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरिकाका है और दूसरा जर्मनी, इटली, जापान और सोवियत्-रूसका रहा है। इसमें हम पहले दलको पिछड़ा हुआ और दूसरे दलको आगे बढ़ा हुआ कह सकते हैं।

फ्रांसकी शिथिलता और खोखलापन

फ्रांस और उसीकी नीतिका अवलम्बन करनेवाले कितने ही अन्य राष्ट्रोंको अपने उद्योग-धन्धोंको युद्ध-शक्तिमें परिणत कर लेनेका अवसर उनके शत्रुओंने नहीं दिया। ऐसी परिणति लानेके पहले ही उन देशोंकी हार हो गई। उनकी इस हारका ख़ास कारण हमें उनकी फ़ौजी तैयारियोंके ग़लत ढंगमें ही दिखाई देगा। फ्रांसने जिस ग़लत ढंगसे फ़ौजी तैयारी की थी, उससे विजय प्राप्त करना तो बहुत दूरकी बात रही, वह अपनी रक्षा भी कर पानेके क़ाबिल नहीं था। वर्त्तमान महासमरके छिड़ जानेपर भी फ्रांसीसी सेनाके पास १९१४-१८ वाले ही हथियार थे। और उन पुराने हथियारोंके लिए भी गोलाबारीकी बेहद कमी थी। उसका आधुनिक युद्धके सबसे उपयोगी हथियारों—विमानों और टैंकोंका अनुपात जर्मनीकी तुलनामें निम्न-लिखित था :—

| फ्रेंच विमानोंकी संख्या— | | जर्मन विमानोंकी संख्या |
|---|---|---|
| अगस्त ३०, १९३९ ई०— | २००० | ९४०० |
| मई, १९४० ई०— | २५०० | १२००० |

| फ्रेंच टैंकोंकी संख्या | | जर्मन टैंकोंकी संख्या |
|---|---|---|
| अगस्त ३०, १९३९ ई०— | १७०० | ६००० |
| मई, १९४० ई०— | ३६०० | ११ से १६ सौ तक |

इन आँकड़ोंसे स्पष्ट हो जाता है कि फ्रांसीसी सेनाध्यक्षोंने आधुनिक युद्धमें विमानों और टैंकोंके महत्वको ठीक-ठीक समझा ही नहीं था। तब कहा जा सकता है कि फ्रांसीसी फ़ौजी नेता इन अस्त्रोंके लिए ब्रिटेनपर निर्भर करते थे। और हम फ्रांसीसी विमानोंके साथ ब्रिटिश विमानोंकी संख्या जोड़ दें, तब भी दोनों शक्तियोंका अनुपात जर्मनीकी तुलनामें कहीं कम रह जाता है। यह जर्मनीका पाँच, तो ब्रिटेन-फ्रांसका तीन निकलता है। जर्मनी इनकी उत्पत्ति फ्रांससे सात गुना अधिक पैमानेपर करता जा रहा था। टैंकोंकी उत्पत्तिका फ़र्क़ और अधिक था। फ्रांसकी तैयारीको 'आधुनिक फ़ौजी तैयारी' नाम ही नहीं दिया जा सकता।

सैन्य-शिक्षाके क्षेत्रमें भी फ्रांसीसी फ़ौज वास्तविक मैदानकी शिक्षासे बहुत हद तक वंचित ही रखी गई थी। फ्रांसीसी जनरलोंको विश्वास था कि १९१४ में पैदल-सेना

और तोप-विभाग मिलकर जो नहीं कर पाए, वह विमानों और टैंकों द्वारा भी नहीं हो सकता। ये प्रमुख जनरल मैजिनो-लाइन जैसी मज़बूत मोर्चेबन्दीके भी पक्षपाती नहीं थे। उससे कहीं हल्की, सिर्फ़ कँटीले-तारों, मशीनगन और तोपोंसे तैयार की गई साधारण-सी मोर्चेबन्दी ही उनकी दृष्टिमें फ्रांसकी रक्षाके लिए पर्याप्त थी। उनका ख़याल था कि वैसे ही मोर्चेपर वे जर्मनीको तीन साल तक रोक सकेंगे और उस बीच जर्मनीको हराने लायक़ फ़ौजी ताक़त तैयार कर सकेंगे। भावी लड़ाईकी बाबत फ्रांसीसी जनरलोंकी धारणा थी कि यह कशमकश कुछ ऐसा रूप धारण करेगी, जिसमें दोनों ही विपक्षी आमने-सामने जमे रहेंगे। जब फ्रांसकी सीमापर 'दुर्भेद्य' मैजिनो-लाइन तैयार हो गई, तब वे और भी निश्चिन्त हो गए। वे समझने लगे कि उनके मोर्चोंपर हमला करनेके लिए शत्रुके पास तीन गुनी अधिक पैदल-सेना, छः गुनी अधिक तोपें और बारह गुना अधिक गोलाबारीका सामान रहना आवश्यक है, और इतना सामान जर्मनी जुटा नहीं सकता।

पर उन फ्रांसीसी जनरलोंकी धारणाएँ वास्तविक युद्धमें अक्षरशः ग़लत निकलीं। ख़ूब ज़ोरोंका आक्रमण होनेपर उनकी मोर्चेबन्दी असलमें एक दिन भी नहीं टिक सकी। पर उस मोर्चेबन्दीकी अपेक्षा फ्रांसकी कहीं बड़ी कमज़ोरी थी सेनाको आधुनिक युद्ध-प्रणाली—आक्रमणात्मक और गतिशील—के अनुसार तैयार न करना। आधुनिक युद्ध-नीतिके अनुसार सेनाकी कमज़ोरीकी पूर्ति मज़बूतसे मज़बूत मोर्चेबन्दी—मैजिनो-लाइन—भी नहीं कर सकती। फ्रांसकी इस फ़ौजी कमज़ोरीके ही कारण वहाँपर लड़ाईके लिए किसी क़िस्मका भी उत्साह नहीं था। राजनीतिक नेता सिर्फ़ अपने दलको मज़बूतकर विरोधी-दलको मात करनेके दाँव-पेंच ही सोचा करते थे। इनमें भी जो फ़ाशिस्ट दलके थे, वे जर्मनी और इटलीसे दोस्ती स्थापित कर लेनेकी फ़िक्रमें थे। हिटलर और मुसोलिनीकी ही मदद ले वे अपने दलका आधिपत्य बढ़ाने और जमाए रखनेकी बातें सोचा करते थे। जिस दलका व्यवसाय-वाणिज्यमें स्वार्थ था, वह अपने स्वार्थके दृष्टिकोणसे ही फ्रांसकी नीति निर्द्धारित करनेकी कोशिश करता। वह दल व्यवसायकी सुविधाके ख़यालसे ही 'शान्ति' की दुहाई देता।

इन दोनों दलोंको भय था उग्र-दलसे। उग्र-दलके साथकी लड़ाईके वक्त फ़ाशिस्ट और व्यवसायी दल साफ़-साफ़ कहा करते—'उग्र-दलके नेताओंके हाथमें फ्रांसकी बागडोर आने देनेकी अपेक्षा हम उसे हिटलरके हाथमें देना अधिक पसन्द करेंगे।' और समय आनेपर उन्होंने असलमें किया भी ऐसा ही। अपने विरोधी-दलके सामने टिक पानेमें जब वे अपनेको असमर्थ देखने लगे, तो वे फ्रांसकी हारके ही हिमायती हो गए। उन्हें उम्मीद थी कि उस हारके बाद फ्रांसमें उनके ही दलका आधिपत्य होगा, चाहे वह हिटलरकी अधीनतामें ही क्यों न हो! इस तरहकी दलादलीने फ्रांसकी राजनीति बहुत दूषित और खोखली कर दी थी और शत्रुसे सामना करनेकी तैयारीका तो किसीको ध्यान भी नहीं था।

सेनानायक अधिकतर फ़ाशिस्ट दलके सदस्य अथवा व्यवसायी-दलके हितेच्छु थे। इसलिए फ्रांसके आन्तरिक राजनीतिक दाँव-पेंचके ख़यालसे वे अपना स्वार्थ भी फ्रांसकी हारमें ही देखते थे, बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि फ्रांसकी हार करानेवालोंमें सबसे आगे वहाँके जनरल ही रहे हैं। उन्होंने ही अपने ग़लत सिद्धान्तों द्वारा फ्रांसको दुर्बल और जर्मनी द्वारा रौंदे जानेके क़ाबिल बनाए रखा। इतना ही नहीं, फ्रांसके सहायक दूसरे राष्ट्रोंको भी शत्रु बना देनेमें उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। शोविनो जैसे प्रभावशाली फ्रांसीसी जनरल अपने फ़ौजी सिद्धान्तोंके आधारपर कहते थे—'फ्रांसकी मोर्चेबन्दी और उसकी रक्षात्मक नीति उसकी रक्षाके लिए पर्याप्त हैं। उसे और किसी सहायककी आवश्यकता नहीं।' शोविनोकी इस नीतिसे फ्रांस अकेला पड़ गया। राजनीतिक और सामरिक दृष्टिसे वह पहले ही खोखला बन चुका था। इन सब कारणोंसे फ्रांसकी फ़ौजी तैयारियाँ इस ढंगकी हुईं कि उनसे सिवा करारी हार खानेके और कोई दूसरा नतीजा नहीं निकल सकता था।

### ब्रिटेनकी ग़लतियाँ

ब्रिटेनकी भी फ़ौजी तैयारियाँ शान्तिके दिनोंमें मुस्तैदीसे शुरू नहीं हो सकीं। उसे सिर्फ़ समुद्री रास्तोंपर अधिकार जमाए रहनेकी फ़िक्र थी। इसीलिए उसके जो जंगी जहाज़ तैयार हो रहे थे, उनका वज़न जर्मनी और इटलीकी संयुक्त नौशक्तिके वज़नसे ज़्यादा था। पर ब्रिटेनको जर्मनी और इटलीके साथ-साथ जापानका भी सामना करना था। दूसरी बात यह थी कि हवाई-शक्ति और

पनडुब्बियोंके क्षेत्रमें हुई नई-नई ईजादोंके कारण ब्रिटेनके बड़े-बड़े जंगी जहाज़ोंको ख़तरा बढ़ता जाता था। ब्रिटेन इन बातोंका ख़याल न कर बड़े-बड़े जहाज़ बनाता ही गया। स्थल और हवाई शक्तिका भी उसी अनुपातमें विकास होनेपर उसकी नौ-शक्तिकी पूरी उपयोगिता होगी, इसका उसने ख़याल ही नहीं किया। ब्रिटेनके सामरिक विशेषज्ञोंने स्वीकार किया है कि १९३८ के सितम्बरमें ब्रिटेनके पास नामके लिए एक हज़ार बोमारू ( बमवर्षक ) विमान थे— उनमें वास्तविक काम कर सकनेवाले सिर्फ़ दो सौ ही थे। जर्मन समर-पत्रिकाने उस समय चेतावनी दी थी :—

'ब्रिटेन सिर्फ़ अपना निजी टापूवाला देश ही नहीं, बल्कि उसके साथ-साथ अपने द्वारा अधिकृत आधी पृथ्वीकी रक्षा करनेके लिए बाध्य होगा। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब ब्रिटेनके पास सबसे मज़बूत नौ-शक्ति हो और उसके साथ-साथ उसकी हवाई-शक्ति भी वैसी ज़बर्दस्त हो कि हवामें भी उसका ही आधिपत्य रहे।'

पर ब्रिटेनको अपनी हवाई-शक्तिकी दुर्बलताका अच्छी तरह पता जापानके साथ युद्ध छिड़नेपर लगा। उसके 'प्रिंस आफ़ वेल्स' और 'रिपल्स'-जैसे बड़े जंगी जहाज़ विमानोंके अभावमें ही नष्ट हुए।

स्थल-युद्धकी तैयारीमें ब्रिटेन और भी अधिक पिछड़ गया। विशेषकर यही क्षेत्र उसके लिए सबसे अधिक तैयार रहनेका था। पर इस क्षेत्रकी दुर्बलताका पता स्वयं डफ़ कूपरके शब्दोंसे लगता है। वे स्वयं ब्रिटेनके युद्ध-मन्त्री रह चुके थे। उन्होंने १९३८ के संकटका ज़िक्र करते हुए कहा था—'सितम्बरमें चेकोस्लोवाकियाके पास अच्छे हथियारोंसे लैस ३५-४० डिवीज़न तैयार थे। उस समय ब्रिटेनके पास दो डिवीज़न थे, जो तैयार नहीं थे।'

स्थल-सेनाके तैयार करने, उसके लिए हथियार जुटाने और उसे उन हथियारोंके चलानेकी शिक्षा देनेमें वक्त लगता है। ब्रिटेन इस मामलेमें बहुत अधिक पिछड़ा हुआ था। यही आगे चलकर उसके फ्रांस, बलकान, मलाया, जावा, बर्मा आदिके युद्धोंमें हार खानेका एक ख़ास कारण बना। जापानके साथकी लड़ाईमें तो ब्रिटेनको अब भी पीछे हटना पड़ रहा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शान्तिके दिनोंमें उसने स्थल-सेनाके निर्माणमें जो समय खोया, वह अब तक पूरा नहीं किया जा सका है।

अब आइए, ब्रिटेनके ग़लत फ़ौजी तरीकोंपर एक दृष्टि डालें। उसकी शुरू-शुरूकी सबसे बड़ी भूल तो यह हुई कि उसने यूरोपीय युद्धमें बड़े पैमानेपर हिस्सा नहीं लिया। इस महासमरके छिड़ जानेपर भी वह अपनी पुरानी दक़ियानूसी पद्धतिका ही अवलम्बन करता रहा। ब्रिटेनकी पुरानी युद्ध-पद्धतिके ख़ास सिद्धान्त निम्न-लिखित थे :—

(१) आर्थिक युद्धको निर्णयकारी महत्व देना।
(२) समुद्री युद्धको हवाई और स्थल युद्धसे अधिक प्रधानता देना।
(३) अपने देश और साम्राज्य-रक्षाको प्रमुख गिनना।
(४) मुख्यतः रक्षात्मक युद्ध-नीतिका अवलम्बन करना।
(५) यूरोपीय युद्धमें आंशिक हिस्सा लेना।
(६) स्थल-सेना बहुत छोटी रखना।

ब्रिटेनकी इस युद्ध-पद्धतिको दूसरे महासमरके सिलसिलेमें सब कुछ सिर्फ़ लड़ाईमें ही झोंक देनेवाले राष्ट्रोंके साथ टक्कर लेनी थी। उसकी अकेली समुद्री ताक़त जर्मनी और जापानके साथकी लड़ाईमें निर्णायक नहीं हो सकती थी। वह ब्रिटेनकी हार होनेसे बहुत हद तक बचा ले सकती थी; पर सिर्फ़ उस समुद्री शक्तिके ही बलपर ब्रिटेन विजयी नहीं हो सकता था।

इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश टापुओंकी रक्षा करना ब्रिटेन के लिए आवश्यक था; पर दूसरी ओर यूरोपीय युद्धको उतना कम महत्त्व देना भी उसकी बड़ी सांघातिक ग़लती थी। फ्रांसकी लड़ाई द्वारा ही शत्रुके हमलेसे ब्रिटेनकी अधिक अच्छी तरह रक्षा की जा सकती थी; डंकर्क और सेडानके मोर्चोंकी मज़बूतीसे ही लंदन और बरमिंघम सुरक्षित हो सकते थे। इस मामलेमें ब्रिटेनको फ्रांसकी सहायताके लिए नहीं, बल्कि अपनी निजी रक्षाको मद्देनज़र रखकर अधिकसे अधिक तैयारी और मुस्तैदीके साथ लड़ाईके मैदानमें उतरना चाहिए था। फ्रांसके मोर्चोंकी मज़बूतीपर ब्रिटिश साम्राज्यके जिब्राल्टर, स्वेज़, मिस्र और कुछ अंशमें उसके भारतीय साम्राज्यकी मज़बूती निर्भर करती थी। पर ब्रिटेनने इन प्रश्नोंकी गम्भीरता महसूस ही नहीं की। ब्रिटेनके लिए लिडेलहार्ट-जैसे प्रभावशाली फ़ौजी विशेषज्ञ पश्चिमी यूरोपमें जर्मनीके ज़ोरोंके आक्रमणपर विश्वास ही नहीं करते थे। उनकी जर्मन सेनानायकोंके साथ

व्यक्तिगत परिचयके आधारपर यह धारणा थी कि वे सेनानायक यूरोपके और सेनानायकोंसे भी पहले रक्षात्मक पद्धतिके फ़ायदोंके क़ायल बन चुके हैं।

हथियारोंकी संख्याके मामलेमें भी अंगरेज़ फ़ौजी विशेषज्ञ भ्रममें रहे हैं। उनका ख़याल था कि फ्रांसके पास जर्मनीकी अपेक्षा अधिक तोपें और पल्टनके साथ काम करनेवाले टैंक हैं। जर्मन फ़ौजके आक्रमणकी मुस्तैदीकी अपेक्षा फ्रांसीसी फ़ौजकी रक्षात्मक तत्परतापर वे अधिक भरोसा रखते थे। इसी आधारपर ब्रिटिश सेनानायक इस नतीजेपर पहुँचे थे कि ब्रिटेनको फ्रांसमें अधिक बड़ी फ़ौज भेजनेकी ज़रूरत नहीं है। उनका विश्वास था कि फ्रांसीसी सेना अपने रक्षात्मक हथियारों द्वारा अपनी रक्षा आप कर लेगी। फ्रांस आगे बढ़कर आक्रमण चलाए, इसके लिए ब्रिटेन मदद नहीं भेजना चाहता था, क्योंकि वैसे आक्रमणकी असफलता वह शुरूसे ही निश्चित मानता था। पर असल बात यह थी कि उस आक्रमणमें ब्रिटेन अपना निजी लाभ देख नहीं पाता था।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्रमें भी ब्रिटेनमें फ्रांस-जैसी ही दक़ियानूसी नीति काम करती रही। इसी कारण जो राष्ट्र उसके मित्र बन सकते थे, उनके साथ भी उसने उपेक्षा या शत्रुता मोल ले ली। थोड़ी देरके लिए इन सब ग़लतियोंका ख़याल न करें, तब भी हम देखते हैं कि जर्मनी और जापानकी तुलनामें ब्रिटेनके पास कहीं अधिक धन और लड़ाईके साधन मौजूद थे। पर उसके ग़लत फ़ौजी तैयारियोंके ढंगने उन साधनोंका विकास ही नहीं होने दिया। यही युद्धके बहुत-से क्षेत्रोंमें ब्रिटेनकी पराजयोंका मुख्य कारण बन गया।

### अमेरिकाकी नीति और साधन

अमेरिका लड़ाईकी तैयारीमें सबसे पीछे दाख़िल हुआ है। उसकी फ़ौजी तैयारियाँ मुस्तैदीके साथ अभी हालमें शुरू हुई हैं। उसकी आँखें तब खुली हैं, जब जापानने ७ दिसम्बर, १९४१ को पर्ल और हवाईके नाविक अड्डोंपर अचानक हमलाकर उसके प्रशान्त महासागरवाले बेड़ेको पंगु बना दिया। इस महासमरके छिड़ जाने पर भी अमेरिका यही समझ रहा था कि पिछले महासमरके समयकी ही उसकी नीति इस बार भी निभ जायगी। पर इन दोनों लड़ाइयोंमें बहुत अंतर आ गया है। पिछली बार अमेरिकाको सिर्फ़ यूरोपमें जाकर लड़ना था। इस बार उसे प्रशान्त-महासागरमें लड़ने और अपने देशको आक्रमणसे बचानेकी भी व्यवस्था करनी पड़ रही है। इसके सिवा युद्धके और बहुत-से मोर्चों—भारतवर्ष, बर्मा, आस्ट्रेलिया आदि—पर भी युद्ध-सामग्री और फ़ौज भेजना पड़ रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिकामें कच्चा माल और हथियार तैयार करनेके कारख़ाने काफ़ी तादादमें हैं। पर उनके पूरी तरहसे युद्धके काममें लगाए जानेकी योजना हाल ही में तैयार हुई है। यह योजना अवश्य ही बड़े मार्केकी है। ६ जनवरी, १९४२ को प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्टने जो वक्तव्य दिया था, उससे अमेरिकाकी फ़ौजी तैयारियोंकी योजनाका पता लगता है। उसके हिसाबसे अमेरिकामें जो युद्ध-सामग्री तैयार होगी, उसका ब्यौरा निम्न-लिखित ढंगका है :—

| | १९४२ में | १९४३ में |
|---|---|---|
| हवाई-जहाज़ | ६०,००० | १२५,००० |
| टैंक | ४५,००० | ७५,००० |
| विमान-ध्वंसक तोपें | २०,००० | ३५,००० |
| जहाज़ (टनमें) | ८०,०००,०० | १०,०००,००० |

सिर्फ़ १९४२ में इन तैयारियोंमें अमेरिकाके छप्पन अरब डालर ख़र्च होंगे। उसकी इस क्षेत्रकी मुस्तैदीका सबूत इसीसे मिलता है कि अब तक फ़ौजी तैयारियोंमें वह अपनी राष्ट्रीय आयका सिर्फ़ १५ प्रतिशत ख़र्च करता था; पर अब उस मदमें ५० प्रतिशतसे भी अधिक ख़र्च करेगा। अमेरिकाकी यह योजना १९४३ के अन्तमें जाकर पूरी होगी। जर्मनी और जापान उस वक्त तक अपनी तैयारियोंमें जितनी तरक़्क़ी करेंगे, हमें उसका भी हिसाब रखना होगा। विशेषज्ञोंका ख़याल है कि अमेरिका १९४३ में ही जर्मनीकी तैयारियोंके बराबर पहुँचेगा। यदि वह असलमें पहुँच गया, तो इसका मतलब यह होगा कि जिस तैयारीमें जर्मनीको ख़ून-पसीना एक करके ९ साल तक लगा रहना पड़ा था, अमेरिका वह दो सालमें ही कर लेगा।

पर युद्ध-सामग्रीके तैयार कर लेनेसे ही लड़ाई जीती नहीं जा सकती। उसके उपयोग कर सकने लायक फ़ौज तैयार करनी पड़ेगी। आदमियोंकी वह शिक्षा [illegible] अस्त्र तैयार करनेकी [illegible] जल्दी हो जायगी, इसमें

सन्देहकी गुंजायश रह जाती है। जर्मनी और जापानपर विजय प्राप्त करनेके लिए उनके द्वारा दख़ल किए गए अड्डोंको वापस छीननेके काममें, जो फ़ौज भिड़ेगी, उसकी शिक्षा जर्मन और जापानी फ़ौजसे भी अच्छी होनी चाहिए। साथ ही उसका लड़नेका हौसला भी विपक्षियोंकी अपेक्षा अधिक रहना चाहिए। इस क्षेत्रमें अमेरिका कितनी तरक़्क़ी कर पाता है, यह संसारको अब भी देखना बाक़ी है।

### जर्मनीकी तैयारियोंकी विशेषता

अब हम जर्मनीको लें। जर्मनीने अपनी फ़ौजी तैयारी एक ख़ास लक्ष्य सामने रखकर की थी। यह लक्ष्य युद्ध आरम्भ करनेके वक़्त था—अपने विपक्षी ब्रिटेन-फ्रांस-पोलैण्डके गुट्टको परास्त करना। उस गुट्टको हरानेके लिए किस तरहके अस्त्र-शस्त्रोंकी ज़रूरत पड़ेगी, उनकी तादाद शत्रुओंकी अपेक्षा कितनी अधिक रखनी अनिवार्य होगी आदि बातोंका जर्मनीने हिसाब लगाया और उन हथियारोंको तरतीबसे बनाना भी शुरू किया। इसके लिए उसे तीन बातों—युद्ध-सामग्रीका अटूट भंडार, बहुत बड़ी फ़ौज और उस फ़ौजकी आधुनिक युद्ध-विद्यामें निपुण शिक्षा—पर ध्यान देना पड़ा। जर्मनीने युद्धके समय ३०० डिवीज़न (लगभग साठ लाख सैन्य) मैदानमें ले आनेकी योजना पूरी की। ब्रिटेन-फ्रांस कभी इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। पर उस फ़ौजके अलावा भी जर्मनीने सैन्य-सहायक संस्थाएँ तैयार की थीं। हिटलर-युवा-दल, श्रम-सेवक, मोटर-वैमानिक युवा-दल, तूफ़ानी टुकड़ी और रक्षक-दलको भी काफ़ी अच्छी सैन्य-शिक्षा दी गई थी। इस फ़ौजकी भी तादाद ४० लाख थी। वास्तविक लड़ाईके मैदानमें इसी दलकी फ़ौज विकटसे विकट मोर्चोंपर भिड़ती रही है।

लड़ाई छिड़नेके वक़्त जर्मनीके पास बहुत-से 'डाइव बाम्बर (छापामार) और 'डेस्ट्रौयर' (नाशक) विमान थे, जो उन दिनों उसके विपक्षी बिलकुल ही तैयार नहीं कर रहे थे। उन विमानोंके ही अनुपातमें और उनकी सहायता लेते हुए मोर्चा तोड़नेवाले टैंक भी जर्मनीने बहुत बड़े पैमानेपर तैयार किए थे। अपनी तोपोंका ज़िक्र करते हुए जर्मन समर-पत्रिकाने लिखा था—'अगर जर्मनीकी बड़ी-बड़ी तोपें कभी काममें लाई गईं, तो उसके परिणामका [illegible] चकित होकर देखेगा।'

पर इन सब तैयारियोंसे भी जर्मनीकी बड़ी तैयारी सैन्य-शिक्षाके क्षेत्रमें थी। उसने अस्त्र-शस्त्रोंके उपयोग और आधुनिक युद्ध-विद्यामें सचमुच कमालकी निपुणता हासिल कर ली थी। उसके विपक्षियोंकी फ़ौजें उस तरहकी सैन्य-शिक्षा देख सचमुच ताज्जुब करने लगी थीं। जर्मनीकी निपुणतामें एक थी विमानोंका तीरकी तरह नीचे आकर बम बरसाना (डाइव बाम्बिंग) और दूसरी युद्ध-क्षेत्रमें शत्रु-फ़ौजपर बड़े पैमानेपर हवाई हमला करना। बड़े-बड़े छातोंके सहारे विमानोंसे शत्रुकी सीमामें फ़ौज (पैराशूट ट्रूप्स) उतारनेकी उसकी कला भी नई थी। इसके सिवा जर्मनोंकी जीतका सबसे बड़ा कारण रहा है उनका युद्धके प्रत्येक अस्त्रको दूसरे अस्त्रोंकी सहायता लेते हुए एक साथ इस्तेमाल करना। विमान टैंकोंकी सहायता करते हैं, टैंक तीव्रगति फ़ौज (स्पीड ट्रूप्स) का काम हलका करते हैं और मोटर-वाहिनी पैदल सेनाकी रक्षा करते हुए उसे आगे ले जाती है। इस तरह सब अस्त्रोंके एक साथ काम करनेका अभ्यास शान्तिके ही दिनोंमें जर्मनीने बहुत अच्छी तरह कर लिया था। उसकी ये फ़ौजी तैयारियाँ ही उसके बहुत-से मोर्चों पर अब तक सफल होनेका ख़ास कारण हैं।

### इटलीकी तैयारियाँ

इटलीकी कोई अलग युद्ध-नीति नहीं है। उसकी तैयारियाँ जर्मन तैयारियोंका ही एक अंग मानी जा सकती हैं। इटलीके ज़िम्मे ख़ासकर नौ-शक्तिके अच्छे ढंगपर तैयार करनेका काम सौंपा गया था। इटलीने यह काम मुस्तैदीसे पूरा किया है। पता लगानेवाले जहाज़ों (रिकानोजांस क्रैफ्ट) के तैयार करनेमें उसने बहुत तरक़्क़ी की है। उसकी स्थल और हवाई शक्तिने भी जर्मन फ़ौजकी ताक़त और अधिक बढ़ा देनेमें मदद की है। जर्मनीसे अलग करके यदि हम इटालियन सैन्य-शक्तिको थोड़ी देरके लिए देखें, तो वह हमें द्वितीय श्रेणीकी जँचेगी। पर फिर भी उसने स्थल, नौ और हवाई-शक्तिका विकास आनुपातिक ढंगसे किया है। फ्रांसने हवाई-शक्ति और ब्रिटेनने स्थल-शक्तिके बाबत जैसी ग़लती की, वैसी इटलीने अपनी फ़ौजी तैयारियोंमें नहीं की।

### जापानकी तैयारियाँ

जापानकी भी फ़ौजी तैयारियाँ जर्मनीके ही ढंगपर हुई हैं। देश छोटा होनेपर भी उसका फ़ौजी बजट

बड़ा हुआ करता है। १९४१-४२ सालमें ही इस मदमें ख़र्च करनेके लिए उसने २,६२८,०००,००० येन रखे थे। इसमें 'चीन-युद्ध' का ख़र्च शामिल नहीं था। उस युद्धके ख़र्चके मदमें उसने १२,८७५,०००,००० येन अलग रखे थे। सुदूर-पूर्वकी लड़ाई छिड़ जानेपर तो उसका बजट और भी बड़ा हो गया होगा। जब तक जापान ब्रिटेन-अमेरिकाके विरुद्ध लड़ाईके मैदानमें नहीं उतरा था, उसकी सैन्य-शक्तिके बारेमें ग़लत अन्दाज़ लगाए जाते रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जर्मनी अथवा सोवियत् रूसकी तुलनामें जापानकी सैन्य-शक्ति (नौ-शक्तिको छोड़कर) कहीं निम्न-कोटिकी है। फिर भी प्रशान्त-महासागरमें जिन शक्तियोंसे उसे अब तक मुक़ाबला करना पड़ा है, उनकी फ़ौजी शक्तिकी अपेक्षा जापानकी शक्ति बहुत-से क्षेत्रोंमें प्रबल साबित हुई है। मलाया, सिंगापुर, पूर्वी द्वीप-समूह और बर्माके युद्धमें जापानियोंकी सैन्य-शक्ति उनके विपक्षियोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी प्रमाणित हुई है। इन सब इलाक़ोंके युद्ध-क्षेत्रमें जापानने अपनी नौ, हवाई और स्थल शक्तिका सम्मिलित उपयोग युद्धके आधुनिक नियमोंके आधारपर बड़े सुचारु ढंगसे किया है। ब्रिटेन-अमेरिकाने सुदूर-पूर्वके युद्ध-क्षेत्रमें अपनी जितनी शक्ति लगानेकी तैयारी की थी, उससे कहीं ज़बर्दस्त जापानकी तैयारी थी। नेदरलैण्डके प्रधान मन्त्री डा० गेरब्रांडीने जावाके युद्धका ज़िक्र करते हुए स्वीकार किया है—'स्थल-क्षेत्रमें चार गुनी और हवाई-क्षेत्रमें दस गुनी अधिक प्रबल जापानी शक्तिके ख़िलाफ़ युद्ध करना हमारे लिए निराशाजनक था।...हमारी संयुक्त नौ-शक्ति जापानकी तुलनामें एक तृतीयांशसे भी कम थी।'

### सोवियत् रूसकी तैयारियाँ

सोवियत् रूसकी फ़ौजी तैयारियोंपर भी दृष्टि डालनेपर हम यही देखते हैं कि १९४१-४२ के शीतकालमें जब तक उसने कई मोर्चोंपर जर्मन फ़ौजको परास्त करना नहीं शुरू किया था, बहुत-से समर-विशेषज्ञोंको उसकी सैन्य-शक्तिके मामलेमें ग़लतफ़हमी थी। शान्तिके दिनोंमें ही सोवियत् रूसने जितनी तैयारी की थी, उसीके बलपर वह जर्मनीके सामने सफलतापूर्वक टिक पाया है, इसमें सन्देह करनेकी अब कोई गुंजायश नहीं रह गई है। कुछ जर्मन समर-विशेषज्ञोंने बहुत पहलेसे ही सोवियत् सैन्य-शक्तिका बहुत कुछ सही अन्दाज़ लगा रखा था। जनरल गुदेरियानने १९३५ में ही अन्दाज़ लगाया था कि सोवियत् रूसके पास दस हज़ार टैंक थे। जनरल बूलोवके अन्दाज़से १९३६ में ही सोवियत् रूसके पास आठ हज़ार विमान थे। १९३९ तक सोवियत्ने उस तादादको दूना कर लिया था। इसलिए यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि दूसरा महासमर छिड़नेके समय सोवियत्-रूसकी शक्ति जर्मनीकी सैन्य-शक्तिसे अधिक थी।

लगभग इसी समय सोवियत्की लाल फ़ौजके सेनाध्यक्ष मार्शल वोरोशिलोवने सोवियत् और धुरी-राष्ट्रोंकी विमान-शक्तिका हिसाब लगाया था। उनके हिसाबसे सोवियत् विमानोंके बम ढोनेकी शक्ति जर्मनीकी तुलनामें दूनी, जर्मन-इटालियन शक्तिसे पचीस प्रतिशत अधिक और जर्मन-इटालियन-जापानी संयुक्त हवाई-शक्तिसे भी दस प्रतिशत अधिक थी। जहाँ तक टैंकोंका सवाल था, जर्मन समर-पत्रिकाने स्वीकार किया है कि १९३९ में भी जर्मन टैंकोंकी अपेक्षा सोवियत् टैंकोंकी संख्या ज़्यादा और क़िस्म अच्छी थी। तोपोंके मामलेमें भी सोवियत् रूस काफ़ी मज़बूत था। सब हथियार और सैन्य-शिक्षा आदिकी तैयारियोंका ख़याल करनेपर यही पता चलता है कि १९३९ में यूरोपके सब राष्ट्रोंमें सोवियत् रूसकी ही सैन्य-शक्ति सबसे प्रबल थी। फ्रांसके पतनके बाद जब जर्मनीके हाथ लगभग सारे यूरोपके कारख़ाने आ गए, तबसे यह अवस्था अवश्य ही बदल गई है।

संसारके महान राष्ट्रोंकी फ़ौजी तैयारियोंके सिलसिलेपर दृष्टि डालनेके बाद अब हम फिर इस महायुद्धके आरम्भ होनेके समयका ख़याल करें। उस समयकी यूरोपीय परिस्थिति इस भाँतिकी थी कि जर्मन-दलकी तैयारी ब्रिटेन और फ्रांसकी अपेक्षा कहीं अधिक हो चुकी थी। जर्मन-दलने अपने शिल्प और अपने देशकी आर्थिक व्यवस्थाको युद्धके उपयोगमें लगभग चरम सीमा तक पहुँचा दिया था। वह अपने देशकी फ़ौजी उम्रकी पूरी जनसंख्याको तालीम भी दे चुका था। हथियारोंके मामलेमें अकेले जर्मनीकी हवाई, टैंक और तोपकी शक्ति ब्रिटेन और फ्रांसकी अपेक्षा दुगुनीसे भी अधिक प्रबल हो गई थी।

शत्रुको हरानेके लिए ब्रिटेन-फ्रांसकी काफ़ी फ़ौजी तैयारी नहीं थी, तब उन्हें वैसी ताक़त रखनेवाले राष्ट्रसे लड़नेके बजाय उस समय मित्रता स्थापित कर लेनी चाहिए थी। ऐसा राष्ट्र सोवियत्-रूस ही हो सकता था।
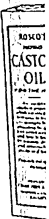
पर उन दिनों सोवियत्‌से बजाय मित्रताकी सन्धि करनेके ब्रिटेन-फ्रांस उसके साथ शत्रुता ही बढ़ाते गए। दूसरी ओर जर्मनी अपना फ़ौजी लक्ष्य प्राप्त करनेके लिए सैन्य-शक्तिके ही अनुपातमें राजनीतिक चालोंकी व्यवस्था बड़े सुचारु ढंगसे करता जा रहा था। वह अच्छी तरह समझता था कि उसकी फ़ौजी कामयाबी यूरोपकी राजनीतिक परिस्थिति, उसकी समझ और उसका अपने ध्येय-पूर्त्तिके लिए पूरापूरा उपयोग कर पानेकी क्षमतापर ही निर्भर करती है। जर्मनीने अपनी उस क्षमताका बहुत अच्छा परिचय म्यूनिख़के सिलसिलेमें दिया। सन् १९३८ के सितम्बरमें म्यूनिख़-पैक्टपर हस्ताक्षर किए गए थे। इस समयसे यूरोपीय राजनीति और फ़ौजी मामलोंका पलड़ा बिलकुल ही पलट गया। म्यूनिख़-पैक्टके बलपर ही चेकोस्लोवाकिया जर्मनीके क़ब्ज़ेमें आ गया। वहाँके पाँच भारी हथियारबन्द (पंज़र) और चालीस दूसरे डिवीज़न, जो मौक़ा पड़नेपर फ्रांस-ब्रिटेनके साथ ही लड़ते, उनके हाथसे जाते रहे। चेक लोगोंके हथियारसे जर्मनीने अपने चालीस डिवीज़न लैस किए। इस तरह जब फ्रांसके हाथसे निकलकर जर्मनीके हाथ चालीस डिवीज़न आ गए, तो वास्तवमें यह दो विरोधियोंके बीचका फ़र्क़ जर्मनीके फ़ायदेके हिसाबसे अस्सी डिवीज़नका हो गया। इसके बादसे चेकोस्लोवाकियाके सारे कारख़ाने भी जर्मनीके लिए ही हथियार बनाने लगे।

इस सिलसिलेमें सबसे मार्केकी बात यह है कि सामरिक और राजनीतिक दोनों ही क्षेत्रोंमें ब्रिटेन-फ्रांसकी अदूरदर्शितासे जर्मनीने काफ़ी फ़ायदा उठाया है। जर्मनी अपने विपक्षियोंकी मददसे ही पनपता, मज़बूत होता और उन्हें शिकस्त देता रहता है। जहाँ तक नात्सी सेनाके हथियारोंका सवाल है, ब्रिटेनने अपने धनकी सहायतासे उन्हें तैयार करवाया है। बात थोड़ी अजीब-सी दीखती है; पर यह है अक्षरशः सत्य। ब्रिटेनका शासकवर्ग शुरूसे ही फ़ाशिज़्मका मददगार था। फ़ाशिज़्मकी मदद देकर वह सोवियत् रूसका पतन देखना चाहता था। यही ब्रिटेनकी दक़ियानूसी नीतिकी असली बुनियाद रही है। जब ब्रिटेनको पता लग गया कि जर्मनीके साथ उसे लड़ना पड़ेगा, उस समय भी वह फ़ाशिस्ट राष्ट्रोंकी मदद करनेसे बाज़ नहीं आया। दूसरा महासमर छिड़ जानेके एक सप्ताह पहले तक ब्रिटेनसे जर्मनीके पास युद्ध-सामग्री पहुँचती रही है। सिर्फ़ अगस्त, १९३९ में—अर्थात् इस महासमरके छिड़नेसे एक ही मास पूर्व—जर्मनीको ब्रिटेनसे सत्रह हज़ार टन रबर मिला था। जर्मनीके साथ युद्ध घोषित हो जानेपर भी इस सिलसिलेमें विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ। उसके बाद भी ब्रिटेनसे जर्मनीको तेल मिलता रहा है। यह इटलीके रास्ते जाता था। अप्रैल, १९३९ के पहले आठ मासमें इटलीने २१९,१५१ ढोल (बैरल) तेल लिया था; पर १९४० के अप्रैलके पहले उसके पास ५३३,६७७ ढोल तेल पहुँचा। अमेरिकाकी रुई स्विट्ज़रलैण्डके रास्ते जर्मनी पहुँचती रही है। फ्रांसके लोहेके तार बेल्जियम ख़रीदकर जर्मनीके हाथ बेचता रहा है। सुदूर-पूर्वमें भी यही हालत थी। ब्रिटिश डच पूँजी द्वारा बहुत-सा तेल जापानको दिया गया था। मिस्रकी रुई और ब्रिटिश-कोलम्बियाका ताँबा भी जापानको मिलता रहा है।

इन सबसे यही प्रमाणित होता है कि फ़ौजी तैयारियोंके क्षेत्रमें ब्रिटेन-फ्रांस अपने विपक्षियोंको शक्तिशाली बनाते जानेमें मदद देते रहे हैं। जर्मनी और जापानकी तोपोंमें ब्रिटेन-फ्रांस ही गोला भरते रहे हैं। उनका ख़याल था कि उन्हीं लोगोंसे सोवियत् रूसका पतन होगा; पर उनके ख़यालके अनुसार बातें नहीं हुईं। उनके द्वारा भरे गए गोले पहले उनपर ही गिरने लगे। इसमें आज संसारव्यापी मोर्चे और भारतीय भूमिपर उनका ही धमाका सुनाई देता है।*

---

* लेखककी अप्रकाशित पुस्तकका एक अध्याय। —सं०
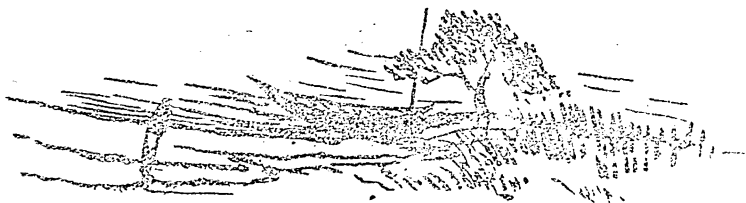
# शिक्षा-शास्त्र

श्री श्यामनन्दन सहाय

शिक्षा-शास्त्र[1] क्या है ? इस प्रश्नका हमें सन्तोषजनक उत्तर ढूँढ़ना है। पर इसके प्रयत्नमें हमें सफलता तभी मिल सकती है, जब दो शब्दोंके अर्थ स्पष्ट कर दिए जायँ। वे दो शब्द क्या हैं ? वे हैं 'शिक्षा' और 'शास्त्र'। इनके विषयमें काफ़ी भ्रम लोगोंको रहा है। साधारणतः 'शिक्षा'[2] तथा 'अध्यापन'[3] इन दो शब्दोंमें कोई भेद ही नहीं किया जाता। पर हमें यह बात ध्यानपूर्वक हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि इनके अर्थ भिन्न हैं; ये पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। इनमें वही भेद है, जो जाति[4] और प्राणि-विशेष[5] में होता है। अथवा यों कहा जाय कि शिक्षा और अध्यापनमें वही सम्बन्ध है, जो एक बड़ी चीज़का उस छोटी चीज़के साथ होता है, जो उसके अन्तर्गत होती है। शिक्षामें अध्यापन सम्मिलित है। हम देखते हैं कि एक व्यक्ति दूसरेको पढ़ाता है। इस अध्यापन-क्रियाके साथ-साथ शिक्षा भी मिलती जाती है। शिक्षा-रहित अध्यापनकी हम कल्पना नहीं कर सकते। बिना कुछ शिक्षा दिए किसी व्यक्तिको पढ़ाना असम्भव है। किन्तु शिक्षा देनेके लिए यह अनिवार्य नहीं है कि हम उस व्यक्तिको पढ़ाएँ ही।

यहाँ तक तो हम 'शिक्षा' तथा 'अध्यापन'के भेदकी परीक्षा कर रहे थे। अब हमें 'शिक्षा' शब्दके अर्थपर दृष्टि डालनी है। इसके स्पष्टीकरणके लिए आज तक अनेक विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।[6] इनमें बस एक ही प्रवृत्तिकी झलक मिलती है। प्रत्येक लेखकने 'शिक्षा'की अलग-अलग परिभाषा उपस्थित की है, पर उन्होंने केवल लक्ष्य[7] पर ही ध्यान रखा है और साधन[8] की ओरसे आँखें मोड़ ली हैं। अतएव उनके प्रयत्न अपूर्ण ही रह गए हैं। हमें लक्ष्य तथा साधन दोनोंपर विचार करना चाहिएँ। जब तक हम यह नहीं करते, उपर्युक्त प्रश्नका सन्तोषजनक उत्तर हमें कदापि नहीं मिल सकता।

साधारणतः लोग शिक्षाको 'जीवनके लिए तैयारी'[9] समझते हैं। धार्मिक वृत्तिवालोंके अनुसार यह 'भविष्य जीवनके लिए तैयारी'[10] है। हरबर्ट स्पेंसरकी परिभाषामें लक्ष्य कुछ अधिक निश्चित ढंगसे प्रकट हुआ है। आपका कथन है कि शिक्षा 'सम्पूर्ण जीवनके लिए तैयारी'[11] है। अन्य परिभाषाओंमें और भी लक्ष्योंका आभास मिलता है। एक सज्जनका विनम्र निवेदन है कि शिक्षा द्वारा हम सन्ततिको जीवन-व्यापारके लिए तैयार करते हैं। मिल्टनने तो इसे बड़े गम्भीर शब्दोंमें व्यक्त किया है। आपका कथन है कि 'पूर्ण और उदार शिक्षा मनुष्यको सभी कार्योंको—चाहे वे आत्मीय हों अथवा सार्वजनिक, उनका सम्बन्ध सन्धिसे हो या युद्धसे—उचित, कुशल तथा उदारपूर्ण रीतिसे करनेके योग्य बनाती है।'[12]

सर जान स्टूअर्ट मिलने भी एक परिभाषा दी है, जिसे काफ़ी ख्याति मिली है। सेन्ट एण्ड्रूज़-विश्वविद्यालयमें रेक्टर (Rector) के पदसे भाषण देते हुए आपने बतलाया था कि 'शिक्षा'के अन्तर्गत क्या-क्या आने चाहिएँ।[13] उनके अनुसार वे हैं चरित्र तथा माननीय शक्तियोंपर पड़नेवाले वे प्रभाव, जिनकी उत्पत्ति उन वस्तुओंसे होती है, जिनके प्रत्यक्ष लक्ष्य भिन्न हैं—जैसे क़ानून, शासन-विधि, व्यवसाय, सामाजिक जीवन-व्यापार। इतना ही नहीं, आपने प्राकृतिक उपादानोंको भी नहीं छोड़ा, जो मनुष्यकी इच्छापर किंचित् भी निर्भर नहीं हैं—जैसे, जल-वायु, भूमि और स्थिति। आगे चलकर आपने अपनी परिभाषाको सरल शब्दोंमें व्यक्त

---

1. Educational theory.
2. Education.
3. Teaching.
4. Genus.
5. Species.
6. (*i*) Dr. Murray Butler: The Meaning of Education.
   (*ii*) Professor J. Welton: What do we mean by Education ?
   (*iii*) Dr. E. C. Moore: What is Education ?
   (*iv*) Sir Stanley Leethes: What is Education ?
7. Aim.
8. Process.
9. A preparation for life.
10. A preparation for life to come.
11. A preparation for complete living.
12. 'A complete and generous education....fits a man to perform justly, skilfully and magnanimously all the offices, private and public, of peace and war.'
13. 'The indirect effects produced on character, and on the human faculties, by things of which the direct purposes are different; by laws, by forms of government, by the industrial arts, by modes of social life; nay, even by physical facts, by climate, soil and local position.'

किया।[14] आपकी दृष्टिमें शिक्षा 'वह संस्कृति है, जिसे कोई पीढ़ी अपने उत्तराधिकारियोंको प्रत्यक्ष रूपसे इसलिए प्रदान करती है कि वे प्राप्त उन्नतिको भरसक अग्रसर कर सकें; नहीं तो उसे उसी अवस्थामें रख सकें, जहाँ वह पहुँच चुकी है।'

अब दूसरा प्रश्न हमारे सामने आ खड़ा होता है। मिल साहबकी माँगें कैसे पूरी हो सकती हैं? हम जैसे इसपर विचार करने बैठते हैं, शिक्षाकी वास्तविक विशेषताकी समस्या हमें रोक लेती है। इस अवरोधके निवारणके लिए हमें लक्ष्यसे आगे बढ़कर साधनपर भी दृष्टि डालनेकी आवश्यकताका अनुभव होने लगता है। शिक्षा साधन है; पर इस साधनके तत्व क्या हैं?

सर्वप्रथम शिक्षा द्वि-ध्रुवात्मक साधन है।[15] इसके दो ध्रुव[16] हैं, एक शिक्षक-ध्रुव[17] और दूसरा शिष्य-ध्रुव।[18] पहलेको शिक्षक[19] और दूसरेको शिष्य[20] कह सकते हैं। किन्तु यह सर्वथा अनिवार्य नहीं है कि इन दो ध्रुवोंके लिए दो पृथक व्यक्ति हों। यह ध्रुवता[21] एक ही व्यक्तिकी अनुभूतिके अन्तर्गत हो सकती है। बाह्य शिक्षककी अनुपस्थितिमें भी जब हम अपनी शिक्षा संचालित करते हैं, तो द्वि-ध्रुवात्मक साधन जारी रहता है। तब हम शिक्षक तथा शिष्य दोनों आप ही बन बैठते हैं। गत्यात्मक स्वरूप[22]को कभी-कभी अधिकरण-निष्ठ[23] कहते हैं और स्थिर स्वरूप[24]को पदार्थ-निष्ठ[25]। जब हम शिक्षाको 'द्वि-ध्रुवात्मक' कहते हैं, तो हमारा तात्पर्य केवल यही है कि इसके दो स्वरूप हैं, अधिकरण-निष्ठ तथा पदार्थ-निष्ठ। यह कदापि आवश्यक नहीं कि इस साधनकी सफलता दो व्यक्तियोंपर ही निर्भर हो।

रीतिबद्ध पाठ्यक्रम[26] ही को लीजिए। क्या यह अनिवार्य है कि इस साधनको दो व्यक्ति आरम्भसे अन्त तक चलाते रहें? हाँ, यह ठीक है कि इसमें शिक्षक और शिष्यके रूपमें शिक्षक-ध्रुव तथा शिष्य-ध्रुव प्रकट होते हैं; पर वे दोनों व्यक्ति इस साधनमें सदा नहीं लगे रहते। कुछ समयके पश्चात् शिष्य इसकी ओर आकर्षित होने लगता है और अपनी शिक्षा कुछ दूर तक स्वयं चलाता है। स्वावलम्बनकी क्रमशः वृद्धि होती है और पाठ्यक्रमके समाप्त होनेपर अपना शिक्षक वह स्वयं बन जाता है। तब शिक्षककी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। इसीमें तो शिक्षाकी पूर्णता एवं सफलता है।

अब आइए वास्तविक शिक्षण-क्रियापर। यहाँ हमें वे तीन तत्व प्राप्त होते हैं, जो शिक्षाके लिए आवश्यक हैं। वे क्या हैं? पहलेके अनुसार शिक्षा द्वारा शिष्यका रूपान्तर होता है। या यों कहा जाय कि उसके द्वारा उस चेतन-समष्टिका रूपान्तर होता है, जिसे मानव-प्रकृति[27] कहते हैं और जो प्रत्येक व्यक्तिमें निहित है।

शिक्षाकी दूसरी विशेषता है किसी निश्चित् लक्ष्यका होना।[28] यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है, वरन् एक उद्देश्यपूर्ण साधन है।

तीसरी विशेषता यह है कि शिक्षाका साधन ज्ञान है। ज्ञान दो प्रकारका होता है: एक वास्तविक या यथार्थ ज्ञान[29] और दूसरा शिक्षात्मक ज्ञान। वास्तविक ज्ञान द्वारा हमें प्रकृति एवं बाह्य-संसारपर अधिकार प्राप्त होता है। इसे उपयोगी ज्ञान[30] भी कहते हैं। यह विज्ञानके अनेक तत्वोंसे निर्मित है। दूसरे प्रकारके ज्ञानका कोई उपयोग नहीं होता; व्यवहारसे उसे कोई सम्बन्ध नहीं। इसे मानव-समाजने मूल्य प्रदान किया है और वास्तविक ज्ञानका पद दिया है। इसके उदाहरण हैं वंशावली-ज्ञान[31] तथा सामाजिक नियम[32]। हरबर्ट स्पेंसर[33] ने इसके शिक्षात्मक महत्वपर प्रकाश डाला है।

एक दृष्टिकोणसे शिष्यको अपने वातावरण[34] के अनुरूप बनाना शिक्षाका लक्ष्य है। पर यह तभी हो सकता है, जब ऐसे अन्तर्जगत्[35] की सृष्टि की जाय, जो

---

14. 'The culture which each generation purposely gives to those who are to be its successors, in order to qualify them for at least keeping up, and if possible for raising the level of improvement which has been attained.'
15. Bipolar process.
16. Pole.
17. The teacher-pole.
18. The pupil-pole.
19. Educator.
20. Educand.
21. Polarity.
22. Active aspect.
23. Subjective.
24. Passive aspect.
25. Objective.
26. Conventional school course.
27. Human nature.
28. Deliberate process.
29. Intrinsic knowledge.
30. Useful knowledge.
31. Heraldry.
32. Conventions.
33. Herbert Spencer: Education.
34. Environment.
35. Inner world.

बाह्य-जगत्[36] का प्रतिबिम्ब हो। इस जगत्‌की सृष्टिके लिए शिष्य द्वारा उपयुक्त अनुभूतियों[37] का ग्रहण अनिवार्य है। यों तो सामान्य जीवन-व्यापार द्वारा भी ये उपलब्ध हो जाते हैं। परन्तु इस प्रकार प्राप्त अनुभूतियोंसे स्कूल द्वारा गृहीत अनुभूतियाँ श्रेय हैं। स्कूलसे विशेष लाभ है। स्कूल मुख्य तत्वों[38] का चयन तथा संगठन, काल और स्थानके अनुकूल, करता है। इससे समयकी तो बचत होती ही है, अनेक अरुचिकर तथा भयानक अनुभवोंसे भी हमारी रक्षा होती है।

दूसरे पहलूसे, तत्व-ग्रहणके अतिरिक्त शिक्षा द्वारा हमें मानसिक अभ्यास भी होता है।

एक और तत्वपर प्रकाश डालना आवश्यक है। वह है कालतत्व[39]। यों तो शिक्षा जन्मसे मृत्यु तक[40] जारी रहती है; पर जब हम 'शिष्य' शब्दका उल्लेख करते हैं, तो हमारी दृष्टिके सामने तरुण वयस्क व्यक्तिका ही स्वरूप खड़ा हो जाता है। सच पूछिए तो शिक्षाकी एक विशेष सीमा है। उसीके अन्तर्गत यह स्वाभाविक ढंगसे चलती है। संसारमें इतिहासको देखिए। भिन्न-भिन्न युगोंमें, नहीं, एक ही युगमें तथा भिन्न देशोंमें, उनके विकासके अनुसार परिवर्त्तन होते रहे हैं।

रूसोका तो विचार है कि जब शिशु पहली साँस खींचता है, तभीसे उसकी शिक्षाका प्रारम्भ हो जाता है। सन्तति-शास्त्रके आचार्य[41] शिक्षाको अगणित अतीत युगों तक खींच ले जाते हैं। जहाँ तक लौकिक शिक्षा[42]का सम्बन्ध है, यह ठीक हो सकता है; परन्तु नियम-निष्ठ शिक्षाके लिए ६ या ७ वर्ष प्रारम्भिक अवस्था मानी गई है। उच्चश्रेणीकी शिक्षा[43] के लिए ऊपरी सीमा १८ वर्ष रखी जाती है। १२ से १४ वर्ष तक प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त हो जाती है। साधारणतः २४ वर्षको अन्तिम सीमा[44] मान सकते हैं, क्योंकि उसके बाद क्रमशः शक्ति घटनेका नियम लागू होने लगता है।

ऊपरके विवेचनके बाद हम एक कामचलाऊ परिभाषा रख सकते हैं। अब हम शिक्षाको वह साधन कह सकते हैं, जिससे हम निश्चित रूपसे प्रेषणीयता एवं ज्ञान-दान द्वारा शिशुके विकासके लिए प्रबन्ध करते हैं।

अन्तमें हमें 'शास्त्र' की विशेषताका निरूपण करना है—ख़ासकर शिक्षाके सम्बन्धमें। 'शास्त्र' शब्दका अर्थ है किसी विषयपर विचार करना तथा उसके ढाँचेको खड़ा करना। 'शिक्षा-शास्त्र', इस अर्थके अनुसार, वह शास्त्र है, जिसमें शिक्षा-सम्बन्धी विचारोंका निरूपण हो। इन विचारोंके अध्ययन करनेवालोंको 'शिक्षज्ञ' कह सकते हैं, चाहे वे शिक्षक हों या नहीं। फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सुयोग्य शिक्षकके लिए शिक्षा-शास्त्रका ज्ञान अनिवार्य है।

बैंक रोड, पटना ]

36. Outer world.
37. Appropriate experiences.
38. Significant facts.
39. Element of time.
40. 'From the cradle to the grave.'
41. Eugenists.
42. Cosmic education.
43. Secondary school.
44. Finishing age.

# साधु या शैतान ?

संयमी कभी असंयमी बन जाता है; सत्यवादी कभी असत्यका आश्रय ले लेता है; पवित्र कभी अपवित्र हो जाता है; शान्त स्वभाववालेको कभी क्रोध आ जाता है; प्रामाणिक कभी अप्रामाणिक बन सकता है; नीतिमान कभी अनीतिका सेवन कर लेता है; निःस्वार्थी कभी स्वार्थके फेरमें पड़ जाता है।

## लेकिन

जो पाखंडी है, वह कभी अपनी ग़लती क़बूल नहीं करता। वह मानता है कि उससे कभी कोई ग़लती नहीं होती।

जो कभी किसी भी प्रकारकी ग़लती नहीं करता, वह सच्चा साधु है; और अगर साधु नहीं है, तो निश्चय ही वह शैतान है। सन्त असन्त बन सकता है; किन्तु शैतानको असन्त बननेकी आवश्यकता ही नहीं रहती, क्योंकि उसमें असाधुताको छोड़ और कुछ होता ही नहीं।

—स्व० गिजुभाई

# दहशत

### मोपासाँ

एक मज़ेदार रातकी परछाइयाँ धीरे-धीरे गिर रही थीं। औरतें भवनके गोल कमरेमें बैठी थीं और आदमी बाग़में रखी शराबके ख़ाली प्यालोंसे भरी एक बड़ी मेज़के चारों ओर बैठे धूम्रपान कर रहे थे। अन्धकार क्षण-प्रतिक्षण बढ़ता चला जा रहा था और उसमें उनके सिगार आँखोंकी तरह चमक रहे थे। पिछली रात यहाँ जो डरावनी दुर्घटना हो गई थी, उसीके सम्बन्धमें ये लोग बातचीत कर रहे थे। कल रात सामनेवाली नदीमें इन मेहमानोंके देखते-देखते दो आदमी और तीन औरतें डूब गई थीं।

जनरल डी० जी० ने टिप्पणी की—"हाँ, ये चीज़ें डरानेवाली हैं; परन्तु इन्हें दहशत पैदा करनेवाली नहीं कहा जा सकता। इस तरहकी डरानेवाली एक दुर्घटना हमें द्रवित कर सकती है, बेचैन बना सकती है, कँपा सकती है; परन्तु वह दहशत पैदा नहीं कर सकती। दहशत पैदा करनेके लिए सिर्फ़ आत्माकी उत्तेजना ही काफ़ी नहीं है, भयंकर मौतका दृश्य भी उसके लिए काफ़ी नहीं है; उसके लिए एक कँपा देनेवाला रहस्य या अत्यन्त असाधारण भयकी अनुभूतिका होना ही आवश्यक है। ऐसा रहस्य या ऐसा भय, जो प्रकृतिकी सीमासे भी बाहरका हो। किसी आदमीकी अत्यन्त नाटकीय परिस्थितियोंमें होनेवाली मौत भी दहशत पैदा नहीं कर सकती। युद्धक्षेत्र दहशत पैदा नहीं कर सकता; ख़ून दहशत पैदा नहीं कर सकता; बुरेसे बुरे अपराध भी प्रायः दहशत पैदा नहीं कर सकते। दो ऐसी घटनाएँ हैं, जिन्होंने मुझे महाभयंकर दहशतका मतलब समझा दिया :—

"सन् १८७०के युद्धके दिनोंकी बात है। हमारी सेनाएँ हारकर रोअनके रास्ते पोण्ट-औडमीरकी ओर वापस आ रही थीं। इस फ़ौजमें बीस हज़ार अव्यवस्थित, विशृंखल, थके-हारे और उत्साहहीन सैनिकोंको हावरेमें पुनः संगठित होना था।

"ज़मीन बर्फ़से ढँकी पड़ी थी। रात हो रही थी। पिछले ४८ घण्टोंसे उनके पेटमें कुछ भी नहीं गया था, और इस अरसेमें वे लगातार पीछे हट रहे थे। जर्मन सेनाएँ उनसे दूर नहीं थीं। भारी हो रहे काले आसमानके नीचे बर्फ़से भरा हुआ नीले रंगका उजाड़-सा यह नार्मन प्रदेश दूर तक फैला हुआ था।

"निर्जीव सान्ध्य-प्रकाशमें भागती हुई फ़ौजोंके उलझे हुए शब्दके अतिरिक्त और कोई ध्वनि वहाँ सुनाई नहीं देती थी। मार्चके शब्द, घोड़ोंकी टापें, हथियारोंकी खड़खड़ाहट, सबके सब बेतरतीब। झुके हुए, गोल-कन्धोंवाले, मैले, बहुत-से तो बिलकुल चिथड़ोंमें लिपटे हुए मनुष्य उत्साहहीन शीघ्रताके साथ इस बर्फ़पर लगातार चले जा रहे थे।

"उनके हाथ अपनी बन्दूक़ोंके घोड़ोंपर चिपटे हुए थे। उस रात सरदी बहुत अधिक थी। मैंने देखा कि एक फ़ौजी बर्फ़पर नंगे पैर चल रहा है। उसका जूता उसे इतना अधिक काटता था। यह भी मैंने देखा कि अपने प्रत्येक क़दमके साथ वह सफ़ेद बर्फ़पर ख़ूनका बड़ा-सा निशान बनाता चला जा रहा है। कुछ देरके बाद ज़रा सुस्तानेके लिए वह ज़मीनपर बैठ गया; मगर उसके बाद वह उठ नहीं सका। जो आदमी एक बार भी सुस्तानेको बैठा, अकड़कर वहीं बैठा रह गया।

"इस तरह मरनेवालोंकी संख्या क्रमशः बढ़ती चली गई। फ़ौजमें जो बेचारे कमज़ोर थे, वे निराहार रहे और लगातार चलनेने उन्हें और भी अशक्त बना दिया था। मैं देख रहा था, क्रमशः उनकी चाल धीमी पड़ती है; फिर वे सहसा रुक जाते हैं, जैसे कोई उन्हें किसी निश्चित स्थानपर सी देता हो। अगले ही क्षण उनके शरीर लकड़ीके समान अकड़ जाते थे, जैसे हम लोग जगह-जगह पत्थरकी आदमक़द मूर्तियाँ छोड़ते चले जा रहे हों।

"हम लोगोंमें से जिनका स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अच्छा था, जिस-किसी तरह उस बर्फ़पर आगे बढ़े जा रहे थे। हमारी मज्जा तक जमी जा रही थी। उस उजाड़ और मौतके प्रदेशमें दर्द, हार और निराशासे पिसे हुए हम लोग जैसे-तैसे चले जा रहे थे। परित्याग, मौत और

शून्यताकी अत्यन्त अप्रिय अनुभूतियाँ हमें हर वक्त बनी रहती थीं।

"ऐसे वक्त मैंने देखा कि दो सैनिक एक अजीब-से दिखाई देनेवाले आदमीको पकड़कर लिए आ रहे हैं। छोटा-सा और बूढ़ा-सा दिखाई देनेवाला आदमी सचमुच बहुत अजीब मालूम पड़ता था। दोनों सैनिकोंका ख़याल था कि वह जासूस है, और इसी कारण वे किसी अफ़सरकी तलाशमें थे। 'जासूस' शब्दने लड़खड़ाकर चलते हुए सभी सैनिकोंको जैसे चौकन्ना कर दिया। सैकड़ों सैनिकोंने उस क़ैदीको घेर लिया। सहसा किसीने चिल्लाकर कहा—'इसे गोलीसे उड़ा देना चाहिए!' इस चिल्लाहटने उन थके-माँदे सैनिकोंमें एक विशेष प्रकारका उत्साह, एक विशेष प्रकारके पाशविक क्रोधकी लहर पैदा कर दी, और वे सबके सब ख़ून करनेपर उतारू हो गए।

"मैंने कुछ कहना चाहा। मैं उनका सबसे बड़ा अफ़सर था; मगर इस वक्त वे किसी अफ़सरकी भी सुननेको तैयार नहीं थे। वे मुझे भी गोली मार सकते।

"एक सैनिकने कहा—'पिछले तीन दिनोंसे यह आदमी हमारा पीछा कर रहा है। हरएकसे यह हमारी फ़ौजके बारेमें अजीब-अजीब तरहके सवाल करता है।'

"मैंने उस आदमीसे पूछा—'तुम यहाँ क्या कर रहे हो? तुम क्या चाहते हो? फ़ौजके पीछे-पीछे तुम क्यों चले आ रहे हो?'

"वह शायद बहुत अधिक घबरा गया था। लड़खड़ाती-सी देहाती ज़बानमें उसने जो कुछ कहा, वह किसीकी समझमें नहीं आया। वह आदमी सचमुच बहुत अजीब-सा दिखाई दे रहा था। वह कमज़ोर-सा, घबराया-सा, बूढ़ा-सा, बेढंगा आदमी मेरी निगाहमें कभी जासूस तो हो ही नहीं सकता था। अव्यक्त-सी ध्वनिमें कुछ कहकर बहुत ही दीन और ग़रीब-सी निगाहसे वह मेरी ओर देखने लगा।

"इसी वक्त सब फ़ौजी चिल्लाए—'इसे गोलीसे उड़ा दो! इसे उड़ा दो!'

"मैंने अब साथके सैनिकसे पूछा—'तुमने इससे कुछ पूछा है?'

"मैं अपनी बात समाप्त भी न कर पाया था कि भीड़से एक धक्का आया और मैंने पाया कि मैं दूर धकेल दिया गया हूँ। क्षण भरमें उत्तेजित सिपाहियोंने उस आदमीको धक्का देकर गिरा दिया और साथके एक वृक्षके साथ बाँध दिया। बर्फ़पर पड़ा वह आदमी पहले ही मरा हुआ-सा दिखाई दे रहा था।'

"और उसी वक्त बीसों गोलियाँ एक साथ उसके जिस्मपर लगीं। उत्तेजनाने मेरे सैनिकोंको निरा पशु बना दिया; अन्धकार ही में वे बार-बार उस आदमीके क्षत-विक्षत निर्जीव शरीरपर गोलियाँ चलाने लगे। जिस तरह अरथीपर गुलाबजल (पवित्र जल) का छिड़काव किया जाता है, उसी तरह उस व्यक्तिपर मेरे फ़ौजी लगातार गोलियाँ चलाए जा रहे थे।

"परन्तु अचानक एक चिल्लाहट सुनाई दी—'जर्मन! जर्मन!!' और सभी फ़ौजी जिधर बन पड़ा, भाग खड़े हुए। थोड़ी ही देरमें मैंने पाया कि मुझे और मेरे दो शरीर-रक्षक सैनिकोंको छोड़कर उस वृक्षके नीचे और कोई भी व्यक्ति बाक़ी नहीं रहा है। उन दोनों सैनिकोंने उस ख़ूनसे भरे चिथड़े हुए शरीरको उठाया।

"मैंने कहा—'हमें इसकी परीक्षा करनी चाहिए।'

"मेरी जेबमें दियासलाईकी एक डिबिया थी। मैंने वह एक सैनिकको दी। दूसरे सैनिकके पास भी दियासलाई थी। मैं उन दोनों सैनिकोंके बीचमें खड़ा था।

"दियासलाई जली। जो सैनिक शरीरकी परीक्षा कर रहा था, बोला—'नीला ब्लाउज़, पतलून, जूते।'

"पहली दियासलाई समाप्त हो गई। हम लोगोंने दूसरी दियासलाई जलाई। सैनिकने अबके जेबोंको टटोला—'एक सींगवाला चाकू, एक रूमाल, सुँघनीकी एक डिबिया, थोड़ा-सा धागा, रोटीका एक टुकड़ा।'

"दूसरी दियासलाई समाप्त हो गई। हमने तीसरी दियासलाई जलाई। सैनिक तलाशी लेता रहा और बादमें बोला—'और कुछ नहीं।'

"मैंने कहा—'उसके कपड़े उतारो। शायद अन्दरसे कोई चीज़ मिले।'

"अब मैं दियासलाइयाँ जलाने लगा और वे दोनों सैनिक उस व्यक्तिके ख़ूनसे भरे क्षत-विक्षत कपड़ोंको उतारने लगे। एक-एक करके सब कपड़े उतार दिए गए। मांसका वह बड़ा-सा कटा-फटा लोथड़ा इस वक्त तक भी ठंडा नहीं हुआ था। मैंने एक दियासलाई और जलाई। सहसा एक सैनिक चिल्ला उठा—'ओह मेरे परमात्मा! साहब, यह तो एक औरत है!'

"उस वक्त मेरे हृदयको जो अत्यन्त व्यथापूर्ण अनुभूति हुई, उसे मैं व्यक्त नहीं कर सकता। इस बातपर विश्वास करनेकी जैसे मुझे इच्छा ही नहीं हुई। मांसके उस ढेरके सम्मुख अत्यन्त शीतल बर्फ़पर मैंने अपने घुटने टेक दिए। सचमुच वह एक औरत ही थी! मैंने स्वयं देखा।

"दोनों सैनिक चुपचाप बुत-से खड़े रहे। जैसे वे मेरी राय जानना चाहते हों। मगर मुझे समझ ही नहीं आया कि इस वक्त क्या सोचूँ, किस नतीजेपर पहुँचूँ!

"आख़िर एक सैनिकने कहा—'शायद इस बूढ़ी औरतका बेटा फ्रांसीसी फ़ौजमें होगा और यह उसीकी तलाशमें यहाँ तक आई होगी।'

"दूसरा सैनिक बोला—'शायद क्यों? ज़रूर यह अपने बेटेकी तलाशमें निकली होगी।'

"और मैं, जिसने अपनी ज़िन्दगीमें सैकड़ों अत्यन्त भयंकर बातें देखी हैं, उस वक्त बरबस रोने लगा। बर्फ़ीली ठण्डी रातमें उस क्षत-विक्षत नारी-देहकी मौजूदगीमें मुझे समझ आया कि 'महाभयंकर दहशत' किस चीज़का नाम है।

"अब, पिछले साल फ्लैटर्स-मिशनके एक ज़िन्दा बच रहे अल्जीरियन निशानेबाज़से जाँच-पड़ताल करते हुए वह अनुभूति एक बार और मुझे हुई।

"इस निन्दनीय नाटकके सम्बन्धमें शायद तुम्हें कुछ बातें ज्ञात ही होंगी। फिर भी सम्भवतः सभी बातें तुम्हें मालूम नहीं होंगी।

"रेतका जो महासमुद्र अटलांटिकसे मिस्र तक और सूदानसे अल्जीरिया तक फैला हुआ है, उसमें कर्नल पुराने ज़मानेके एक सामुद्रिक डाकूके समान घूम-फिर रहा था। उसके दलके साथ औग्लोंके चम्बा-कबीलेके मार्गदर्शक थे।

"एक दिन जब उन्होंने रेगिस्तानके बीचोंबीच पड़ाव डाला हुआ था, अरबोंने कहा कि चश्मा यहाँसे दूर है। इस कारण हम लोग अपने ऊँट साथ लेकर चश्मे तक जायँगे।

"सिर्फ़ एक आदमीने कर्नलको चेतावनी दी कि उसके साथ धोखा किया जा रहा है। परन्तु कर्नल फ्लैटर्सने इस बातपर विश्वास नहीं किया, और अपने दलके प्रायः सभी डाक्टरों और इंजीनियरों-सहित वह भी इस क़ाफ़िलेके साथ हो लिया। चश्मेके नज़दीक उन सबकी हत्या कर दी गई और उनके ऊँट हथिया लिए गए।

"अरब-सूचना-विभागका एक कैप्टेन, जो क़ाफ़िलेके साथ नहीं गया था, बाक़ी बचे हुए दलका नेता बना, और वे सब लोग वापस लौटने लगे। उनके पास अब ऊँट नहीं थे। इस कारण वे अपना सामान वहीं छोड़ गए।

"इसके बाद इस निर्जन, छाँह-रहित, असीम प्रदेशमें इन लोगोंकी यात्रा शुरू हुई। ऊपर जलता हुआ सूरज सुबहसे साँझ तक आग बरसाता रहता था।

"स्थानीय क़ौमोंका एक क़ाफ़िला इन लोगोंके पास आया और उसने इनकी अधीनता स्वीकार कर ली। भेंटके तौरपर उन्होंने खजूर खानेको दिए। इन खजूरोंमें ज़हर मिला हुआ था। लगभग सभी फ्रांसीसी ये खजूर खाकर मर गए। अन्तिम अफ़सर भी मर गया।

"अब थोड़े-से सिपाही, उनका अफ़सर अकेला फ्रांसीसी पोबेगिन और चम्बा-कबीलेके कुछ आदमी ही बच रहे थे। इनके पास सिर्फ़ दो ऊँट बाक़ी थे। एक रात इन ऊँटोंको भी दो अरब चुरा ले गए।

"बाक़ी बच रहे लोगोंको अब सचमुच यह डर प्रतीत होने लगा कि कहीं भूखके मारे वे एक दूसरेको ही न खाने लगें। यह अनुभूति होते ही वे सब एक-दूसरेसे इतना अन्तर रखकर चलने लगे कि एक आदमी दूसरे आदमीको अपनी गोलीका शिकार न बना सके।

"दिन भर वे इसी तरह चलते रहे—बिल्कुल भूखे और प्यासे। शामके वक्त एक चश्मा उन्हें मिला। बारी-बारीसे अपने बीचके निश्चित फ़ासलेको बदस्तूर क़ायम रखते हुए उन सबने चश्मेसे पानी पिया। एक आदमी जब पानी पीकर आगे बढ़ जाता था, तब दूसरा आदमी उस चश्मेपर जाता था। इसी तरह एक दूसरेसे डरते हुए उस अन्तहीन ऊँचे-नीचे रेगिस्तानमें वे सब लोग आगे बढ़ने लगे।

परन्तु एक प्रातःकाल एक यात्री सहसा अपने पीछे-वाले यात्रीकी ओर घूम पड़ा। सब यात्री अपनी-अपनी जगहपर खड़े होकर देखने लगे कि अब क्या होता है। पिछले आदमीने जब अपनेसे अगले यात्रीको अपनी ओर लौटकर आते देखा, तो वह ज़मीनपर लेट गया और तब ताककर उसने आते हुए यात्रीपर गोली चलाई।

निशाना ठीक नहीं बैठा। लौटता हुआ यात्री तेज़ीसे आगे बढ़ा और उसने लेटे हुए आदमको गोलीसे मार दिया। इसपर सभी यात्री इस मरे हुए आदमीकी ओर झपट पड़े। जिस आदमीने हत्या की थी, उसने मरे हुए यात्रीके बहुत-से टुकड़े किए और सब साथियोंमें उसने वे टुकड़े बराबर-बराबर बाँट दिए।

"अपने ही एक साथीका कच्चा मांस खाकर वे सब एक-दूसरेपर असीम अविश्वास करनेवाले साथी फिरसे पहलेका-सा अन्तर छोड़कर चलने लगे। मानो वे इस बातकी प्रतीक्षामें थे कि किसीकी हत्या हो और वे सब उसमें अपना हिस्सा बँटाएँ।

"उस आदमीके गोश्तपर दो दिनों तक उन सबका गुज़ारा हो गया। उसके बाद अकालकी भीषणता पुनः उसी उग्रतासे प्रकट हुई। उसी आदमीने तीसरे दिन एक और हत्या की। इस यात्रीका मांस भी उसने पुनः सभीको बराबर-बराबर बाँटा। स्वयं उसने अपने हिस्सेमें कुछ भी ज़्यादा मांस नहीं लिया। यही घटना अब हर तीसरे रोज़ दोहराई जाने लगी और मनुष्य-भक्षियोंका यह दल लगातार आगे बढ़ता गया। अन्तिम फ्रांसीसी पोवेगिन जिस दिन मारा गया, उससे अगले ही दिन इस दलको मदद और रसद पहुँच गई।

"अब तुम समझ गए कि महाभयंकर दहशतका मतलब क्या है ?"

यह कहानी कुछ रातें हुईं, जनरल डी० जी० ने हमें सुनाई थीं।

अनुवादक—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

---

# कभी-कभी सोचा करता हूँ—

श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'

देख प्रणय की शापित ममता
देख मुखर मन की आतुरता
अरमानों से भरे हृदय में
असफल जीवन की व्याकुलता
कभी-कभी सोचा करता हूँ—
बीत जायगा सारा जीवन, क्या पथ पर ही चलते-चलते ?

देख स्नेह की बाती उन्मन
देख प्रज्वलित लौ का कंपन
अपनी ही ज्वाला से विह्वल
देख पतिंगे का झुलसा तन
कभी-कभी सोचा करता हूँ—
भस्म-ढेर ही रह जाऊँगा, क्या ज्वाला में जलते - जलते ?

देख कली का कोमल जीवन
देख मलय का मादक यौवन
वन के सूने - से झुरमुट में
बिखरी पंखुड़ियों की सिसकन
कभी-कभी सोचा करता हूँ—
बिखर जायगा सारा सौरभ, सूने में ही खिलते - खिलते ?

सुन निर्बल की कातर वाणी
देख मनुजता की क़ुरबानी
देख बरफ़ - सी शीतल छाती
गरम-गरम नयनों में पानी
कभी - कभी सोचा करता हूँ—
क्या न धरा उर्वर कर लूँगा, मैं हिमगिर-सा गलते-गलते ?

देख दलित का दुर्दिन, क्रन्दन
देख पतित का पछताया मन
सुख - सुहाग - सिन्दूर - हीन
विधुरा की भूली-भूली चितवन
कभी-कभी सोचा करता हूँ—
नष्टप्राय होगी मानवता, क्या यों ही कर मलते - मलते ?

Reg. No. C—1645

# रवीन्द्रनाथ और भारतीय राष्ट्रीयता

श्री विश्वनाथ उपाध्याय

प्रायः भारतके ऊपर यह कलंकका टीका लगाया जाता है कि इसमें सदासे राष्ट्रीयताका अभाव रहा है। पाश्चात्य देशों—विशेषकर इंग्लैण्ड—को इस बातका गर्व है कि दुनियाको राष्ट्रीयता उनकी एक देन है। आजकलकी राष्ट्रीयता पृथ्वीके थोड़े-से भागको सीमितकर उसकी सर्वांगीण उन्नति करना तथा अन्य देशोंका शोषण करना है। अगर बात यहीं तक रहती, तो कोई बात नहीं; किन्तु आज तो उस छोटे भू-भागमें भी संकीर्णता आ गई है और धर्म, जाति, समाज तथा प्रान्तीयताके नारे बुलन्द किए जा रहे हैं। आश्चर्यकी बात तो यह है कि आज लोग उस हृदयकी सीमा उचित पैमानेसे नहीं नाप सकते, जिसकी राष्ट्रीयताकी रूपरेखा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त था, जिसने 'चिदान्दमैको शिवोऽहम्' का शुभ सन्देश दुनियाके कोने-कोनेमें प्रेरित किया था और अपनी राष्ट्रीयताकी सीमा रंग, रूप तथा जातिके ऊपर स्थापित न कर समस्त संसारको 'सियाराममय' समझा था।

यही भारतकी अपनी राष्ट्रीयता थी, जिसके वातावरणमें रवीन्द्रनाथ फले-फूले थे। इसीलिए तो वे मानवताके पुजारी थे। उन्हें देश, जाति तथा धर्मकी कड़ी बेड़ियाँ अपने अन्दर बाँध नहीं सकती थीं। वे तो अपनेको प्रत्येक प्राणीमें देखते थे, इसीलिए उनका कष्ट रवीन्द्रनाथका अपना कष्ट था। यही कारण था कि उनका हृदय क्षुब्ध होकर कह उठा था :—

हे मोर दुर्भागा देश जाहादेर करेछ तूमि अपमान।
अपमानित हते हबे ताहादेर सबार समान।

कुछ लोगोंका यह अनुमान है कि रवीन्द्रनाथमें प्रान्तीयताकी भावना थी, जिससे वे मातृभूमि बंगाल तथा बंगाली-जातिको नहीं भूल सके, उदाहरणमें वे उनका :—

| | |
|---|---|
| बाँगलार माटी | बाँगलार जल |
| बाँगलार वायु | बाँगलार फल |
| पुण्य होउक | पुण्य होउक |
| पुण्य होउक | हे भगवान् |
| बाँगलार घर | बाँगलार हाट |
| बाँगलार बन | बाँगलार माठ |
| पूर्ण होउक | पूर्ण होउक |
| पूर्ण होउक | हे भगवान्! |

कविता पेश करते हैं। किन्तु पता लगानेपर उन्हें मालूम होगा कि जो व्यक्ति विश्व-प्रेमके सामने स्वदेश-प्रेमको तिलांजलि देकर 'एकला चल, एकला चल' का राग अलापनेका साहस कर सकता है, वह भला प्रान्तीयताके नरकमें कब पड़ सकता है! इस कविताकी रचना कविने राखीके अवसरपर की थी, जब सरकारने वंग-भंगका क़ानून पास किया था। इसी मन्त्र द्वारा उसने बंगाली-जातिमें नवजीवनका संचारकर उस क़ानूनका विरोध किया था।

× × ×

रवीन्द्रनाथकी राष्ट्रीयताके दो मूलाधार हैं—उनकी विश्वैक्यानुभूति तथा मानवता। स्वयं कविने एक स्थानपर कहा है—'मेरे अन्दर दो दिशाएँ हैं : एक मेरे द्वारा ही बद्ध है और दूसरी सर्वत्र व्याप्त है। इन्हीं दोनोंसे युक्त तथा दोनोंके मिलनमें ही हमारी सम्पूर्ण सत्ता है। तात्पर्य यह कि जब हम अहंको बिलकुल पकड़े रहते हैं, तब मानव-धर्मसे गिर जाते हैं। उस महामानव, उस महापुरुषसे तब हम दूर जा पड़ते हैं, जो हमारे अन्दर है।' मानवताके प्रति कविने कहा है—'मेरी सब अनुभूति तथा रचनाकी धारा मानवतापर ठहरी है। स्वजातिकी खूँटी गाड़कर मानवताको ठुकराना हमसे नहीं हुआ, क्योंकि अमरता तो उसी मानवमें है, जो सबमें विद्यमान है।'

अपने 'नैशलिज़्म' ग्रन्थमें उन्होंने बताया है कि राजनीतिक स्वाधीनताने पश्चिमकी शक्ति बढ़ाई है; परन्तु उन्हें स्वाधीन किया है, ऐसी बात नहीं है। जातीयताके अन्दर जो संकीर्णता है, वह बलवती होनेपर समस्त जातिको प्रकृत स्वाधीनताके पथसे दूर कर देती है। स्वाधीन देशोंमें शासनकी ग़ुलामी तथा शोषण हमारे पराधीन देशोंकी अपेक्षा कम नहीं है।

उपर्युक्त बातोंसे स्पष्ट है कि रवीन्द्रनाथ प्राचीन भारतीय राष्ट्रीयताके एक प्रतीक थे। उन्होंने उस घोर अन्धकारको अपने प्रकाशसे दूर किया था, जो हमारी संस्कृतिपर अपनी छाप रखना चाहता था। उन्होंने संसारको अपनी प्रतिभासे बतला दिया कि हमारा हृदय कितना विशाल है और हम किस राष्ट्रीयताके पुजारी हैं। यद्यपि रवीन्द्रनाथ हमारे बीच नहीं हैं, फिर भी भारतको उनपर गर्व है। भला, कौन ऐसा हृदयहीन होगा, जो काज़ी नज़रुल इस्लामकी निम्नपंक्तियोंको पढ़कर आनन्दित न होगा :—

सकल देशेर सकल जातिर सकल लोकेर तूमि।
अर्घ्य आनिया धन्य करिले भारत वंगभूमि।

---

# अशोककी युद्धसे विरक्ति

श्री सोहनलाल द्विवेदी

क्यों दहक रहा उर बना अनल ?

\- १ -

यह भीषण नर-संहार हुआ,
प्रतिपल में हाहाकार हुआ,
मरघट - सा सब संसार हुआ,
पर, नहीं शान्ति-संचार हुआ।
क्यों अमिय आज बन रहा गरल ?

\- २ -

सिंहासन पर सिंहासन नत,
मानव पर मानव है आहत,
मुकुटों पर मुकुट हुए श्रीहत,
राज्यों पर राज्य हुए कर-गत।
फिर भी न हुआ है मन शीतल !

\- ३ -

विजयी कलिंग है पड़ा ध्वस्त,
दम्भी का बल भी हुआ त्रस्त,
वैरी का दिनकर हुआ अस्त,
किस उलझनमें है विश्व व्यस्त ?
क्यों थका हुआ - सा है भुज-बल ?

\- ४ -

कब तक के लिए राज्यका मद ?
कब तक के लिए राज्यका पद ?
दो दिन मानव हो ले उन्मद,
शोणित के विपुल बहा ले नद,
उसको भी चलना ही है कल !

\- ५ -

दो दिन ही के हित यह महान्,
सत्ता - सुख - सम्पतिका विधान,
मानव है कितना शून्यज्ञान,
जो परम तत्त्व भूला निदान।
फिर क्यों न दुःख से हो विह्वल ?

\- ६ -

लो चला, त्याग मैं मुकुट-ताज,
लो चला, त्याग मैं विशद राज,
लो चला, त्याग मैं स्वर्ण-साज,
लो चला, त्याग सर्वस्व आज।
अब रक्षक हो गैरिक अंचल !

\- ७ -

उठती थी उर में चिर अशान्ति,
मिट रही आज वह महाभ्रान्ति,
हो रही प्राण में कौन क्रान्ति ?
मिलती है सुख की एक शान्ति।
करुणा में है कितना मंगल ?

Reg. No. C—1645

# बच्चे और लोरी

श्री वी० मुखोपाध्याय

गृह-निर्माण करके अपनी हौवा एवं बच्चोंके साथ रहना हमने सीखा है। हमने अपनी मण्डली बना ली है—समाजके नियम-कानूनोंसे नाता जोड़ लिया है, प्यार करना सीखा है और स्नेहसे कोमल गालोंको धीरेसे चूमा है। हम लोगोंका नामकरण हो गया—'पुरुष' और 'हौवा', जिसे लोग 'स्त्री' कहने लगे। दोनोंको अलग-अलग काम बाँट दिए गए—हमारे जिम्मे सृष्टि करना और उसके जिम्मे पालन करना। इसी समयसे पारिवारिक समस्याकी गोमुखी धारा वह निकली। उलझती-सुलझती हुई अभी तक वह कल-कल गीत गा रही है।

बहिर्जगत्‌के कर्म-कोलाहलमें उदयास्त व्यस्त रहनेके कारण ही पुरुषोंने अपने भावी आशा-स्तम्भोंके लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षाका सम्पूर्ण भार स्त्रियोंपर अर्पितकर अपनेको बहुत-कुछ हल्का कर लिया। स्त्रियाँ भी विशेष निपुणताके साथ इस दायित्वपूर्ण कार्यको सँभालती हुई पग-पगपर मातृत्वका परिचय दे रही हैं।

बच्चेका मन बड़ा कौतुकप्रद है। वह संगीतका प्रेमी है। फूवेलने लिखा है कि शिशु, भुजंग और मृग ये तीनों एक ही क़िस्मके प्राणी हैं। बहुधा हम अपने बच्चोंको संगीतके ज़रिए भुलावा देकर उनसे अपने मनोनुकूल कार्य करा लेते हैं। अक्सर बच्चोंको सुलाने और भुलानेके लिए लोरी गाई जाती है। लोरीका प्रचार किसी स्थान-विशेषमें ही नहीं, बल्कि प्रत्येक प्रान्त, प्रत्येक देशमें है। हमारे पारिवारिक जीवनमें लोरीका इतना प्रमुख स्थान होते हुए भी यह अब तक साहित्यका सम्मान नहीं प्राप्त कर सकी है।

बहुत दिन हुए गुरुदेवने इसे पत्र-पत्रिकाओंका विषय बनाकर इस ओर जन-समुदायको आकर्षित करना चाहा था। उनके कवि-हृदयने शिशु-हृदयके जिस गूढ़ रहस्यको पकड़ा था, उसका ही विस्तृत वर्णन उन्होंने अपने प्रबन्धमें किया था। जो कुछ असम्भव और अजगुत है, वह किस प्रकार शिशु-हृदयपर प्रभाव डालकर उन लोगोंको अभिभूत कर लेता है, शिशु-मन किस प्रकार वयस्कोंके परिचित पथपर से दूर, दूसरी ओर, दौड़ता है और जीवनके अवास्तविक तथा अप्रयोजनीय पदार्थ किस प्रकार शिशु-हृदयके सम्मुख बहुमूल्य बन जाते हैं, इसका ही रहस्योद्घाटन उन्होंने अपनी आलोचनामें किया था। हम तो समझते हैं कि इसके साथ-साथ इसका एक कार्यगत रहस्य भी है। गृहिणियाँ मूलतः लोरी कोई साधनके उद्देश्यसे ही गाया करती हैं।

लोरीका नाम सुनते ही हम यही सोच लेते हैं कि इससे बच्चोंको सुलाया जाता है। अतिजिज्ञासु, चंचल-स्वभावका बच्चा कभी एक स्थानपर स्थिर नहीं बैठ सकता। स्वास्थ्यकी लाभ-हानि वह नहीं समझता और बेमौक़े इधर-उधर कड़ी धूपमें दौड़ता एवं वर्षामें भीगता है। इन असुविधाओंसे अपनी सन्तानोंको बचानेके लिए माताएँ लोकप्रिय लयमें लोरियाँ गा-गाकर उनके स्वास्थ्यकी रक्षा करती हैं। उचित विवेचनसे लोरियोंका एक पर्यायक्रम निर्धारित किया जा सकता है, जिसकी सहायतासे बच्चोंके शरीर और मनकी तन्दुरुस्तीके लिए उन्हें समयपर नहलाया, खिलाया तथा सुलाया जा सकता है। लोरियोंमें भाव-समृद्धिकी अपेक्षा कार्य-समृद्धि ही अधिक परिलक्षित होती है। बहुत-से बच्चे ऐसे होते हैं, जो पानीके पास घुटनोंके बल पहुँचकर उसे थपथपाने लगते हैं और बहुत-से ऐसे भी होते हैं, जो पानीको देखकर ही रोने लगते हैं। ऐसे बच्चोंको नहलाना बड़ा कठिन है। किन्तु ऐसे मौक़ोंपर माताएँ कैसी बुद्धिसे काम लेती हैं, ज़रा देखिए। बंगालकी एक महिला अपने बच्चेको लोरी गाकर नहला रही है :—

शाक शाक आठारो शाक ; तारपर एलो ढेंकि शाक।  
ढेंकि शाक लागाने मन्द ; तारपर एलो भाँड़ाली छन्द।  
भाँड़ाली छन्देर माथाय गाड़ू ; तारपर एलो खीरेर लाड़ू।  
खीरेर लाड़ू लागलो तीत ; तारपर एलो आस्के पीठा।  
आस्के पीठार बुके खुद ; तारपर एलो पोड़ा दूध।  
पोड़ा दूध लागलो भालो ; नेड़ार माथाय घोल ढालो।

मूँड़े हुए माथेपर घोल ( मट्ठा ) ढालनेके साथ ही बच्चेके माथेपर भी पानी ढालना शुरू हो गया। गानेके मिठासके कारण बच्चा रोना ही भूल गया। यही हाल उसके खानेका है। समयपर बच्चेको खिलाना ज़रा टेढ़ी खीर है। दृष्टि-क्षुधाकी ताड़नासे बच्चा इधर-उधरकी बहुत-सी चीज़ोंको बहुधा मुँहमें डालकर कंठसे पारकर थैलीमें कस लेता है, जिससे समयपर उसे भूख नहीं

लगती। इसका फल उसके स्वास्थ्यपर पड़े बिना नहीं रहता। किन्तु शिक्षिता माताएँ तो यही चाहती हैं कि उनके बच्चे समयपर खाया करें, और यदि उन्हें भूख न भी हो, तो भी समयपर खानेकी आदत उनमें डालनी ही है। ऐसे कार्योंके लिए भी माताएँ अधिकतर लोरियोंकी शरण लिया करती हैं।

बच्चेको दूध पिलाना तो और भी कठिन काम है। इसमें तो एक अपूर्व अभिनयका ही आयोजन करना पड़ता है। माँ बच्चेको गोदमें लेकर दूध पिलाने बैठी है। बगलमें गर्म दूधकी कटोरी रखी है। बच्चेकी तनिक भी इच्छा दूध पीनेकी नहीं है; फिर भी लोरी गा-गाकर माँ उसकी इच्छाको ज़बर्दस्ती कैसे बुला रही है:—

चन्दा मामा आरे आओ
पारे आओ नदिया किनारे आओ
सोनेके कटोरवामें दूध-भात ले-ले आओ
आर बबुआके मुँहमें घुटुक।

माताकी 'घुटुक'की आवाज़के साथ ही साथ दूधकी कटोरी भी साफ़ हो जाती है।

सबसे गुरुतर काम है रोते हुए बच्चेको चुप करना और उसे सुलाना। ऐसे समयमें माँ लोरीकी ही सहायता लेती है। दो-चार अन्तर्प्रान्तीय उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं। आन्ध्र-प्रान्तकी एक तन्वी रोते बच्चेको चुप करा रही है:—

एडवुकू[१] विड्डा[२], एडिरनै[३] निन्नेवरु[४]
एत्तु - कोणे - वारु[५]
बूसी[६] बरतून्दि[७] अय्या[८] अल्लरि[९] भेयकू[१०]
अल्लरि चरते[११] एत्तुकू[१२] पोतून्दि बाब्ब!

मलयालम्‌की एक सुन्दरी प्रौढ़ा अपने बच्चेको सुला रही है:—

ओ—ओ—ओ—
कुंजीमोन[१३] ओरंगीको[१४]
वावामन[१५] ओरंगीको
कुंजीमोन करेमेंडा[१६]
ओ—ओ—ओ—
कुँजीकोई[१७] वावाम ओरंगीको।

(१) रोओ मत, (२) लल्ला, (३) रोओगे तो, (४) तुमको, (५) कौन गोद लेगा, (६) हौवा, (७) हौवा आयगा, (८) बाबू (९) हल्ला, (१०) मत करो, (११) करोगे तो, (१२) उठा ले जायगा (१३) छोटा, (१४) सो जाओ, (१५) बच्चा।

अशिक्षित जंगलियोंमें भी लोरीका काफ़ी प्रचार है। दिन-रात जंगलोंमें घूमनेवाली इस संथाल-जातिकी एक युवती गोदमें अपने नन्हें बच्चेको सुलाती हुई लोरी गा रही है:—

लल़ बेटा लल़ रे।
बेटा दोए जापीद तालेया
लल़ लल़ लल़ रे।
भेंट बेटा कनाई रे
बेटा दोए जपीद तालेया
लल़ लल़ लल़ रे।
बापू दोए जपीद तालेया
लल़ लल़ लल़ रे।

खाने-पीने एवं सोनेके अलावा मनोरंजन भी बच्चेका एक ख़ास अंग है। बच्चेको हँसानेके लिए घरवाले और पास-पड़ोसवाले कितने उत्सुक रहते हैं। सब समय माँ अपने बच्चेको अपनी गोदमें ही नहीं रख सकती। इस-लिए बच्चेको सँभालना घरके दूसरे लोगोंका भी काम है। देखिए, एक वयस्क बालक अपने छोटे भाईको अपने घुटनोंपर चढ़ाकर उसके दोनों कोमल हाथोंको हल्के हाथों पकड़कर लोरीके सहारे कैसे खेल रहा है:—

घुघुआ घू बबुआ घू
बबुआ के नाना घू
बबुआ की नानी घू
बबुआ की चाची घू।

शिशुकी माँ भोजन कर रही है। घरकी एक वृद्धा शिशुको अपने पास बिठाकर लोरी गा-गाकर माँके भोजन खराब करनेसे कैसे बचाती है, ज़रा एक मिथिलाकी ही वृद्धाके कण्ठसे सुनिए:—

हमर बबुआ बड़ लट भार,
तोरा लै आनतौ मोतीके हार।
हमर बबुआ बड़ बदनाम,
तोरा लै आनतौ पकले लताम।

हिन्दी-विद्यापीठ, देवघर ]

(१६) रोओ मत, (१७) छोटा प्यारा लल्ला।

Reg. No. C—1645

# बुकसेलरकी डायरी

एक बुकसेलर

( गतांकसे आगे )

८ को रातकी गाड़ीसे हम लखीमपुरके लिए रवाना हुए और ९ की सुबह वहाँ पहुँच गए। वह लीलाके फूफाजीका घर था। जैसी चाहिए, वहाँ हमारी ख़ातिर हुई। फूफाजीका कत्थेका कारबार है। धनी व्यक्ति हैं, ऊँची कोठी है। सम्बन्धका नाम ही नए और स्वल्प परिचित प्रियजनके प्रति स्नेह-सत्कारका भाव उत्पन्न कर देता है, यह मैंने वहाँ स्पष्ट देखा। मिस्टर हरनामसुन्दर फूफाजीके भतीजे हैं। वे ही अब फूफाजीके कारबारको सम्हालने लगे हैं। अभी लड़के ही हैं; लेकिन समझ-बूझ अच्छी है। रिश्तेदारोंमें कोई रुचि नहीं रखते, इसलिए उनसे ज़रा दूर ही दूर रहते हैं; लेकिन संयोगकी बात, मुझसे बातचीत हुई, तबीयत मिल गई और दोस्ती हो गई। भारतीय नवयुवकोंमें हमजोलीकी मित्रताकी अभी बहुत कमी है, और मिस्टर हरनाममें यह बात देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।

१० को लखीमपुरसे वापस लौटते हुए लखनऊमें भार्गवजीके 'सुधा'-कार्यालयसे 'सुधा', गंगा-पुस्तकमाला, रामायण, 'बालविनोद'के प्रचारका काम लिया। भार्गवजीसे मैंने उनकी शर्तोंमें जो थोड़ी-सी रियायत माँगी, उसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। १०की रात हम वापस कानपुर आ गए।

१४-८-४१

११, १२ और १३ को कानपुरमें कुछ काम किया। शहरमें थोड़ा-सा भी नियमपूर्वक काम कर लेनेपर डेढ़-दो रुपएकी बचत रोज़ हो सकती है। ११ तारीखको श्रीकृष्ण झासे भेंट हुई। चूँकि यह नाम अपने-आप काफ़ी आदरयुक्त है, इसलिए मुझे सुविधा है कि इसमें आगे-पीछे कुछ जोड़नेकी आवश्यकता नहीं है। श्रीकृष्णसे लगभग सात साल पहले मेरा परिचय हुआ था। उनका अंकन मेरे मनपर गहरा पड़ा था और, कुछ अस्वाभाविक नहीं, उसके थोड़े समय बादसे ही मैं उन्हें क़रीब-क़रीब भूल गया था।

मैं बुकसेलर हूँ, मुझे गाहकोंकी ज़रूरत रहती है। सोचा, मालूम भी हुआ, कि श्रीकृष्ण झा कुछ किताबें ख़रीद लेंगे। उनके घर पहुँचा। बड़े आदर-उत्साहसे मिले। मैं उतनी देरके लिए बुकसेलर न रह सका। उनके पास जैसे मेरा एक पहलेका चित्र सुरक्षित था और वह एक प्रिय-हृदय मनुष्यका-सा चित्र था, फिर मैं उनके सामने एक बुकसेलर मात्र कैसे होता? 'आपने यह (बुकसेलरीका) काम किस मतलबसे अपनाया है?'—उन्होंने पूछा, और मैंने उन्हें बतलाया कि रोटी कमानेके लिए। 'नहीं, आप इस तरह भ्रमण करके लोगोंसे मिल कर मानव-हृदयका अध्ययन करना चाहते हैं।'—उन्होंने प्रतिवाद-सा किया और मैंने मान लिया। निःसन्देह यह भी मेरे इस रोज़गारका एक कारण था—यह गौण और वह मुख्य। उन्हें मेरी इस अध्ययन-प्रवृत्तिका पता था।

श्रीकृष्ण झा अब वकील हैं। मनमें प्रश्न उठ रहा था, आख़िर मैंने पूछा ही—'आपका वकालतकी लाइनमें आनेका क्या पहलेसे ही इरादा था?' मेरे विचारके अनुसार उन्हें दार्शनिक, कवि या एक प्रमुख लोक-सेवक होना चाहिए था। 'नहीं, इरादा कुछ नहीं, मैं तो जो-जो भी अब कर रहा हूँ, ऐसा जान पड़ता है, दूसरोंके लिए कर रहा हूँ, किसी दूसरेकी इच्छासे। मनुष्यकी अपनी इच्छा पूरी ही कहाँ तक होती है?' उनका उत्तर था। बात ठीक भी थी। सचमुच एक गम्भीर और अपने भीतर गहरी नज़र डालनेवाला व्यक्ति अपने-आपको विवश और अपनी इच्छा-पूर्तिको पराधीन पाता है, क्योंकि वह कुछ अज्ञात-अस्पष्ट शक्तियोंको—उन्हें अपनी ही आत्म-शक्ति कहिए या परमात्म-शक्ति—अपने जीवनमें ज़रा खुलकर काम करते देखता है। हाँ, एक उच्छृंखल अदूरदर्शी अवश्य किसी धुनको पकड़कर कुछ दूर तक अपनी इच्छा-विशेषकी पूर्तिके लिए संसारमें काम करनेवाली शक्तियोंको अपने साथ खींच ले जाता है; लेकिन इसमें उसका कोई बड़ा और व्यापक हित नहीं होता।

झाजीसे मेरा वह प्रश्न लगभग अनावश्यक ही था। मनुष्य जब अपने-आपको मनुष्य समझने लगता है, तो फिर वह जीवन-भर मनुष्य ही रहता है, चाहे वह वकालत करे, चाहे बुकसेलरी, चाहे और ही कुछ। उस समय उनकी मेरे प्रति आत्मीयताकी भावनाने मेरे हृदयको अच्छी तरह छू लिया। उनकी इतने पिछले दिनोंकी जीवन-कथा मैंने सुनी। काफ़ी विपत्तियों और प्रियजनोंके

चिर-बिछोहका दुःख उन्हें सहना पड़ा, मनुष्यकी स्वार्थ-परताके व्यावहारिक अनुभव उन्हें हुए। अपने शब्दोंमें उन्होंने बतलाया कि मनुष्य मात्रसे अब उन्हें घृणा है, अध्यात्मवादमें अब उनकी अरुचि है, और मैंने देखा, आध्यात्मिक मात्रामें उनकी नाव ज़रा और आगे बढ़ आई है। यह उनकी भावुकतापर इस पथके मंगलमय तूफ़ानोंके आक्रमणका समय है। भावुकताको नष्ट होना ही चाहिए। वह अच्छी कम और बुरी अधिक हुआ करती है। भावुकतासे प्रारम्भ एक सुन्दर प्रारम्भ है, उसपर आघात-प्रतिघात एक उपयोगी मध्य है और भावुकताकी नींवपर अन्तःअनुभूतिका निर्माण एक कक्षाकी मंगलमयी पूर्णता है। झाजी इस कक्षाकी दूसरी मंज़िलमें आ गए हैं। मैं पहलीमें हूँ; लेकिन मेरी जानकारी सम्भवतः उनसे अधिक है, और मैं उस दूसरी मंज़िलमें पहुँचनेपर उसकी यात्रा अधिक स्थिरता और साहसके साथ करनेकी तैयारी करता हूँ। श्रीकृष्ण झा उन व्यक्तियोंमें हैं, जिनके चित्र मेरे लिए संग्रहणीय हैं। वे कहते हैं, उन्हें मनुष्य मात्रसे घृणा हो गई है; लेकिन वास्तवमें उन्हें अब मनुष्यसे कुछ प्रेम-सा हो चला है, क्योंकि उन्होंने अबसे उसे—भले ही पहले उसकी दुर्बलताओं और अबोधताओंको—देखना-समझना प्रारम्भ कर दिया है। उन्होंने कुछ पुस्तकें भी ख़रीदीं और मुझे एक प्रत्याशित ग्राहककी ओरसे निराश नहीं होना पड़ा।

१९-८-४१

१५ की दोपहर कानपुरसे चलकर हमीरपुर पहुँचे। वहाँ अपने दोनों बड़े भाई हैं। ज़िलेका सदर हमीरपुर एक छोटा-सा क़स्बा है। काम वहाँ बहुत कम हुआ। छः रुपए सवा सात आनेकी किताबें बिकीं और ढाई रुपएका 'बालविनोद'का एक ग्राहक बना। श्री रघुराजशरण शर्मा हिन्दीके एम्० ए० और बी० टी० हैं। गवर्मेंट स्कूलमें अध्यापक हैं। आजके नए जगे हुए सामाजिक युगमें नवयुवकोंमें जो पारस्परिक स्नेह-सहयोगका भाव होना चाहिए, वह उनमें है। साहित्य-प्रेमी और उसके पारखी भी हैं। मेरी उनकी तबसे मित्रता है। श्री हरदेव प्रधान, इंचार्ज डिस्ट्रिक्ट आफ़िस, कुछ पुस्तकें ले लेंगे; उनकी श्रीमती कमलादेवी प्रधानको साहित्यमें अच्छी रुचि है। वे कुछ लिखती भी रहती हैं, मुझे अपने व्यवसायके सम्बन्धमें पूछ-ताछ करनेपर हमीरपुरमें मालूम हुआ। मैं उनकी कोठीपर पहुँचा। श्रीयुत प्रधानजीको एक बुकसेलरके आनेकी ख़बर भेजवा दी गई। मुझे बिठाया गया। कुछ देर बाद प्रधान-जीके दर्शन हुए। "मैं बुकसेलर हूँ और कुछ मासिक पत्रोंकी एजेंसी भी मेरे पास है।'—मैंने उन्हें बतलाया। वे भीतर गए, सम्भवतः श्रीमती प्रधानसे पूछने और लौट कर मुझे बतलाया कि हिन्दी-पत्र बहुत आते हैं उनके पास, औरकी ज़रूरत नहीं है। अच्छा हो, यदि साहि-त्यिक व्यसन रखनेवाले किसी नई अच्छी चीज़के सामने पड़ जानेकी आशामें बुकसेलरोंके बक्स एक बार देख अवश्य लिया करें। इस तरह कभी-कभी कोई बड़े कामकी पुस्तक भी उन्हें मिल सकती है, बुकसेलरोंका प्रोत्साहन भी हो सकता है और अगर कुछ ख़रीदा न जाय, तो एक धन्यवाद द्वारा समुचित रूपमें उनका वह पारिश्रमिक भी अदा किया जा सकता है।

२१-८-४१

आजसे कानपुरमें फेरीकी डायरी चलती है। क़दीमी यूनानी दवाख़ानाके मालिक शंकरलालजीकी एक अत्तार की-सी दूकान है। दवा लेने मैं एक बार पहले उनके पास गया था। उनकी दवा कारगर हुई थी। शिक्षा-प्रेमी सज्जन हैं। पुस्तकें देखनेको माँगी थीं, आज दिखाईं। फ़िलहाल तीन पुस्तकें उन्होंने लीं।

फेरी आगे चली। हर कहीं न आवाज़ देनेकी हिम्मत पड़ती है और न उतनी 'बेहयाई' बनती है; लेकिन इन आवाज़ोंका 'कोरम' तो पूरा करना था। साथमें अब किताबोंका बक्स लिए हुए मज़दूर नहीं, बल्कि हाथमें एक अटैची ही थी, जिसमें ग्राहक बनानेके लिए कुछ अख़बारोंके नमूने थे। वह क्या थी? लाला अनन्तराम भरतियाकी ग्वालटोलीमें कोठी ही तो थी। भीतर पहुँचा। भीतर नौकर-चाकर-जैसे लोग ही थे और उन्हींकी गृहस्थी। 'हियाँ नहीं नाँय लाला अनन्तराम भरतिया, जाव हियनते।'—एकने मेरे प्रश्नके उत्तरमें कहा। मैं मालिकके कम ईमानदार नौकरकी तरह अपना कर्तव्य-सा भुगताकर बाहर चला आया।

साइस नम्बर २ और मैं सेठ रामसनेही वकीलकी कोठी 'सेवासदन' के भीतर था। नौकरने भीतर इत्तिला कर दी। 'तुम्हारे नाँव का है?—नौकरने बाहर आकर पूछा। 'बुकसेलर!'—मैंने कहलवाया। एक नौउम्र

बाबूजी बाहरके बरामदेमें आए। 'आइए।'—मुझे बाहर खड़ा देखकर उन्होंने बुलाया। सम्भवतः ये बाबूजी उपर्युक्त वकील साहब नहीं, उनके कोई प्रियजन थे। 'मैं आगरेसे आया हूँ, एक बुकसेलर हूँ। कुछ मासिक पत्रोंकी मेरे पास एजेंसी भी है, आप देखें।'—आगे बढ़ते हुए मैंने कहा, और पीछे फिरकर भीतर वापस जाते हुए वे एक छोटा-सा उत्तर देते गए—'नहीं।' शायद वह नौकर उन्हें मेरा बतलाया हुआ नाम नहीं बतला सका था। लल्लू बाबू ( यही नाम सम्भवतः मैंने उनका सुन पाया था ) देखनेमें मुझे बहुत अच्छे लगे थे और मैं उनसे बात करके कुछ प्रसन्न होना चाहता था। न जाने क्यों, इन्सान इन्सानसे बात तक नहीं करना चाहता! यह दोनोंके लिए दुर्भाग्यकी बात है। लेकिन किसके लिए अधिक—पहलेके या दूसरेके? जवाब साफ़ ही जान पड़ता है।

मिस्टर जगन्नाथप्रसाद निगम मेरे कुछ पूर्वपरिचित हैं। जब 'बालविनोद' उनके सामने पेश किया गया, तो उन्होंने बतलाया कि अव्वल तो उनका लड़का उर्दू पढ़ता है, दूसरे अख़बार पढ़नेको पासकी लाइब्रेरीमें मिल जाते हैं और तीसरे यह कि वे ख़र्च नहीं कर सकते। मिस्टर निगमका यह उत्तर मुझे बहुत उचित और सुलझा हुआ जान पड़ा। कम ही जबाब देनेवाले इतना सुव्यवहारपूर्ण उत्तर देते हैं।

अपनी छोटी-सी दूकानपर बैठे हुए वह कोई पैसेवाले सेठजी जँचते थे। 'इनसे कहूँ', मैंने सोचा; लेकिन साहस न हुआ। मैं आगे बढ़ गया। 'लौटो, इनसे ज़रूर कहो', मनमें बात उठी और लौट पड़ा। 'बड़ी झिझककी बात है, इतने लोग देख रहे हैं।' मैं दूकानको छोड़ता आगे बढ़ गया। फिर लौटा और हिम्मत करके सवाल कर ही दिया—'कुछ न चाहिए?' जवाब भी मिल गया। मुझे एक बड़ा व्यवसायी बननेमें कोई एतराज़ नहीं है, और इस बातको देखते हुए यह कितना मनोरंजक चित्र है!

एक साहस और। लाला कृष्णकुमार अमरचन्दकी दूकान। यह जसवन्त स्ट्राबोर्ड मिल्स लिमिटेड मेरठकी एजेंसी है। 'हिन्दीके मासिक पत्रोंकी मेरे पास एजेंसी है, आप कुछ पत्र देखना पसंद करेंगे?'—मैंने कहा ( यह वाक्य बहुत ढीला है, आयन्दा ज़रा कोई ज़ोरदार वाक्य पहले कहा करूँगा )। 'नहीं, हम नहीं देखते हिन्दी।'—एक सज्जनने उत्तर दे दिया। मेरा काम पूरा हो चुका था और अपने नियमके अनुसार मैं चलनेको था। 'थोड़ी-सी बेगार लाओ और कर लूँ', मैंने सोचा और कहा—'और कोई साहब यहाँ हिन्दीके पत्र देखना पसंद करेंगे?' 'ये हिन्दीकी चीज़ें देखते हैं।'—उन्होंने एक दूसरे सज्जनकी ओर इशारा करके कहा। पत्रिकाएँ उन्होंने देखीं। एक और महाशय इसमें शामिल हुए। पसन्दकी चीज़ें निकलीं। कल किताबें भी देखी जायँगी और किताबों तथा अख़बारोंका काम कुछ हो जायगा। विज्ञापन देनेकी भी बात मैंने कही। 'ज़रूर, विज्ञापन हम ज़रूर देंगे इनमें। आपके अख़बार बहुत अच्छे हैं।'—उन्होंने कहा। ऐसे खुदराज़ी गाहक भी कभी-कभी यों ही बेगारकी तौरपर पूछ लेनेपर भी मिल जाते हैं। कोशिश ज़रूर करनी चाहिए और जहाँ तक हो सके, मनसे और पूरी-पूरी। ऐसी घटनाओंसे यह निश्चय पक्का होने लगता है।

मिस्टर टी० वाई० ( अगर मैं भूलता नहीं हूँ ) टंडन, लाइब्रेरियन श्रीगयाप्रसाद-पुस्तकालय, से भेंट की। ये एक सुयोग्य और सुशिक्ष लाइब्रेरियन जान पड़े। 'पूजा' पुस्तक मैंने उन्हें दिखाई। 'पूजा चीज़ अच्छी है; लेकिन गेट-अप और छपाई ख़राब हैं। किताब अच्छी बन सकती थी।'—उन्होंने कहा। शंकर-सदनका सूचीपत्र उन्होंने रख लिया।

बाबू शिवप्रसाद सक्सेना मेरे पूर्वपरिचित हैं। आपसी बातें समाप्त होनेपर मैंने कहा—'अब मैं चलूँगा और चलनेके पहले आपको एक चीज़ दिखाऊँगा। यही एक चीज़ मेरे पास प्रेम ( उनके बच्चे ) के कामकी है।' 'बालविनोद' की कापी देते हुए मैंने उनसे कहा। अपना यह ढंग मुझे पसन्द आया। भाई शिवप्रसादजी लगनवाले और सेवाशील व्यक्ति हैं और मेरे प्रति पहलेसे ही कुछ आत्मीयताका भाव रखते हैं।

२२-८-४१

कलवाली मेसर्स कृष्णकुमार अमरचन्दकी दूकान। किताबें ले जाकर आज दिखाईं। वहाँ हिन्दी-पुस्तकोंके ग्राहक रामेश्वरजी थे। किताबें देखीं, कुछ छाँटीं; लेकिन 'इतने दाम! इनके दाम बहुत ज़्यादा-ज़्यादा हैं, हम नहीं ले सकेंगे।'—उन्होंने कहा। उन्हें पुस्तकोंका शौक था, लेनेकी उत्सुकता भी थी; लेकिन उसके लिए

फ़ज़ूलख़र्ची उन्हें तकलीफ़देह थी। दो-एक छोटी-छोटी पुस्तकें, जो उन्हें बहुत पसन्द थीं, वे एकदम ख़रीदनेसे पहले ही पढ़ डालना चाहते थे। उन्हें भी वे नहीं ख़रीद सके। ये सेठ-बन्धु, मेरा विचार है, इतने धनग्राही नहीं हैं, जितना उन्हें इस समय बनना पड़ा, पैसेकी मनमें कुछ हठपूर्ण पकड़ हो जानेकी वजहसे और अधिकांशमें मेरी अनावश्यक अनुचित ग़रज़मन्दी प्रकट होनेके कारण। इस सौदेके बिगाड़में अधिक दोष मेरा है। 'बालविनोद' और 'नोकझोंक' के ग्राहक होना उनके दूसरे साथियोंने स्वीकार किया। आर्डर ले लिए गए। 'बालविनोद'के ढाई रुपए आप कार्यालयको भेज दें और 'नोकझोंक'के डेढ़ मुझे दें और मुझसे उसके कार्यालयकी रसीद लें।—मैंने कहा। उन्होंने समझा, ये डेढ़ रुपए संकटमें पड़ेंगे। 'नहीं, रुपया हम आपको नहीं देंगे।'—एक महोदयने कहा। तो फिर मनीआर्डर कर दीजिए कार्यालयको।—मैंने सलाह दी। अब मनीआर्डरके दो आने पैसेकी समस्या उठ खड़ी हुई, वह भी कठिन थी। आख़िरकार उन्होंने रसीद लेकर डेढ़ रुपया मुझे देना स्वीकार कर लिया, जब कि मैंने ढाई रुपए एक दूसरे ग्राहकके उन्हें और दिए, अपने ढाई रुपएके साथ 'बालविनोद'-कार्यालयको मनीआर्डर करनेके लिए। उसके मनीआर्डर-कमीशनका बोझ हमने आधा-आधा बाँट लिया। मनुष्य इस ज़मानेमें मनुष्यका विश्वास करते डरता है और इसके लिए उसके सामने स्पष्ट कारणोंकी एक बड़ी संख्या है। तो फिर हो क्या? अधिक उपयोगी यही जान पड़ता है कि वह अपनी समाईके अनुसार कभी-कभी धोखा खाकर थोड़ी-सी हानि उठानेके लिए भी तैयार रहे; लेकिन दूसरोंपर विश्वास करने और उनका विश्वासपात्र बननेके रुपहले और सुनहरे संयोगोंको हाथसे न जाने दे। मैं उन्हें अपना मित्र बनाकर यह बतला सकता, तो अच्छा होता।

२५-८-४१

२३ और २४ सैर और दावतके दिन थे। मिस्टर रामेश्वरदयाल सक्सेना मेरे मित्र हैं। लीलाकी भी उनकी श्रीमतीजीसे ज़रा पुरानी दोस्ती है। उनके यहाँसे विशेष आग्रहपूर्ण निमंत्रण था। ख़ूब स्नेहपूर्ण सत्कार रहा। मिस्टर रामेश्वरदयाल एक अच्छे मित्र और फुर्तीली तबीयतके नवयुवक हैं। उनके घर पहुँचनेसे पहले अपने दो और प्रियजनों कोको बाबू और चाचाजी (बड़ी मामीके चाचा बाबू गयाप्रसादजी) के घर सफ़री भेंट की, स्नेह-भाव इतना तो करा ही लेता है।

यह बुकसेलरकी डायरी है, और इसके पन्नोंपर के उभरे हुए चित्रोंपर थोड़ा-थोड़ा रंग भर देना मेरा काम है। एक चित्र यह है—कोको बाबू यानी बाबू उमाशंकर। जीवनकी परिस्थितियोंने इन्हें एक सामाजिक दर्जेका व्यवहार-कौशल सिखाया है। जब कुछ कहते हैं, तो ख़ूब कहते हैं, और इनके कथनमें धार्मिकताकी अपेक्षा उपयोगिताके लिए अधिक स्थान रहता जान पड़ता है। सहृदयता इनमें है भी और सीखी भी है। पर-सेवा इनका व्यावहारिक स्वभाव-सा है। भीतर कुछ ढँका हुआ-सा और भी कुछ है—आँखोंमें एक परख, जो कभी-कभी जागती है और अन्तसमें एक अलसाई-सी खोज, जिसे इन्होंने कभी-कभी देखा है और मुझे भी इसका एक-आध बार अनुमान हुआ है।

और यह कौन? दूर-पासके किसी नाते-रिश्तेने उसे मेरे पास बिठाया हुआ था। कह दिया था, थोड़ी-सी बातचीत कर लो। ऐसे नाते-रिश्ते निकल आनेसे किसी अपरिचितसे भला आत्मीयता होती है? लेकिन मैंने देखा, उसकी आँखोंमें आत्मीयता और उस आत्मीयतामें—यहाँ स्वाभाविक ही है—रूप और बचपन-पारके तकाज़ेका भी कुछ हाथ। उसका नाम मैंने पूछ लिया था।

आज श्रीकृष्ण झासे फिर भेंट की। अपनी एक कापी उनसे वापस लेनी थी और दरअसल उनसे मिलना भी था। उनके पुस्तकोंवाले कमरेमें उनके साथ उस कोचपर बैठकर बातें करते हुए मैंने अनुभव किया कि मैं विद्या और विनयके एक सागरके किनारे बैठा हुआ उसकी तटवर्ती दो-एक लहरोंमें भीग रहा हूँ और साथ ही उसके गम्भीर अदृष्ट विस्तारका आभास भी मुझे मिल रहा है। श्रीकृष्ण झा एक यशकामी उपदेशक या लेखक नहीं बने, यह उनका संन्यास है और उनके लिए स्वाभाविक है। वह एक आगे चलनेवाले लोक-सेवक नहीं बने, यह उनकी शैली है और उपयोगी है। उनसे मुझे प्रोत्साहन मिलता है, और भी किसीको मिलता होगा। मेरे लिए उपयोगी दो पुस्तकें उन्होंने मुझे पढ़नेको दीं।

Reg. No. C—1645

# विश्व-स्वातन्त्र्य और जनतन्त्रकी रक्षा

मोहनसिंह सेंगर

"आप किसी साधारण अमरीकनसे बात कीजिए, तो आपको मालूम होगा कि वह ईमानदारीसे समानता, न्याय और प्रत्येक व्यक्तिको जनतान्त्रिक अधिकार दिए जानेके सिद्धान्तमें विश्वास करता है। लेकिन उसीसे अगर आप काले लोगोंके बारेमें पूछिए, तो शायद आपको अपने कानोंपर विश्वास नहीं होगा और आप यह नहीं समझेंगे कि आप उसी आदमीसे बातें कर रहे हैं। वह कहेगा—'नहीं, काले आदमीके साथ गोरे आदमी-जैसा व्यवहार कैसे किया जा सकता है?' अगर आप पूछें क्यों, तो वह गोरा अमरीकन अपना सिर खुजलाकर कहेगा—'क्यों क्या, भला ऐसा भी कभी हुआ है!'[1] और ऐसा कहकर वह हमारे जापानी शत्रुओंको काफ़ी सुविधा देता है।

"पर ऐसा क्यों है? इसका उत्तर भी स्पष्ट है। यह अमरीकन उस रोगका शिकार है, जिसे मनोविज्ञानकी भाषामें 'द्वन्द्वात्मक व्यक्तित्व' कहा जाता है। वह दो विशिष्ट अमरीकनोंका युग्म रूप है। उसका एक रूप है स्वतन्त्रता-प्रिय, न्याय-परायण, एक उदार व्यक्तिका; और दूसरा रूप है एक ऐसे व्यक्तिका, जो उदार या अनुदार हो या न हो, पर वर्ण-सम्बन्धी अपने रुखमें एकदम अ-जनतान्त्रिक है, और इस सम्बन्धमें न्याय तथा मानव-समानताको उसी तरह धता बता देता है, जिस तरह कि कोई फ़ाशिस्ट।"[2]

इन शब्दोंमें प्रसिद्ध अमरीकन लेखिका श्रीमती पर्ल बकने गोरे अमरीकनोंके 'द्वन्द्वात्मक व्यक्तित्व'का बड़ा सुन्दर विश्लेषण किया है। उनका कहना है कि 'यदि इस व्यक्तित्वके दो रूप, दो पृथक व्यक्तियोंमें होते, तो दोनोंके समर्थकोंमें दूसरा गृह-युद्ध हो सकता था। पर सच तो यह है कि हमने कभी काली जातियोंको वास्तविक स्वतन्त्रता और जनतान्त्रिक अधिकार दिए ही नहीं। दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि यह द्वन्द्वात्मक व्यक्तित्व एक ही अमरीकनमें है और अधिकांशतः ऐसे ही अमरीकन हमारे देशके कर्त्ता-धर्त्ता हैं। इस प्रकार हम अपनी वैयक्तिक बनावटमें ही विभाजित हैं।'

श्रीमती पर्ल बकने जो बात अमरीकनोंके सम्बन्धमें कही है, वही औपनिवेशिक साम्राज्यका उपभोग करनेवाली अन्य गोरी जातियोंके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। फ्रान्स, ब्रिटेन, हालैण्ड और बेल्जियमके गोरोंपर तो वह अमरीकनोंसे भी कहीं अधिक लागू होती है। अपनी साम्राज्य-लिप्साके कारण इन्होंने जिन्हें अब तक असभ्य, अर्द्ध-सभ्य, जंगली और पिछड़ी हुई जातियाँ कहा, समझा और बनाए रखा है, उन्हींसे आज ये अपने अस्तित्व और साम्राज्यवादी स्वार्थोंकी रक्षा करना चाहते हैं। पर उनका सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए कहते यह हैं कि हम अपनी, तुम्हारी और समूचे संसारकी स्वतन्त्रता तथा जनतन्त्रकी रक्षा करनेके लिए लड़ रहे हैं। काश, ये लोग जो कहते हैं, वही करके भी दिखाते और सब काली जातियोंका सच्चा सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करते। प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्टसे विचार-विनिमय करनेके बाद ब्रिटेनके प्रधान-मन्त्रीने संयुक्त-राष्ट्रोंकी ओरसे जो अटलांटिक-सनद प्रकाशित करवाई है,

(१) अमरीकाकी आबादीका दसवाँ भाग हब्शियोंका है, जो 'नीग्रो' कहलाते हैं। ये लोग कई पुश्तोंसे अमरीकाके नागरिक हैं; फिर भी गोरे अमरीकनोंकी कलुषित वर्ण-भेद-नीतिके कारण ये समाज, राजनीति और जीवनके अन्यान्य क्षेत्रोंसे बहिष्कृत हैं। इनके प्रति अमरीकनोंका जो रुख है, उनकी जो मनोवृत्ति है, वह इसी एक बातसे जानी जा सकती है कि वहाँ मज़ाक, व्यंग्य या गालीके रूपमें लोग एक-दूसरेको "You black nigger" (ऐ काले नीग्रो) कहते हैं। 'निगर' नीग्रो शब्दका और भी घृणास्पद एवं निकृष्टताका द्योतक रूप है। इस युद्धमें भी अमरीकाकी सेना, नौ-सेना और वायु-सेनामें एवं कारखानों और ट्रेड-यूनियनोंमें वेतन, भोजन, वर्दी और सुविधाओंके मामलेमें कालों और गोरोंके साथ भेद-भावकी नीतिसे काम लिया जा रहा है। —लेखक

(२) देखिए, मार्च १९४२ के 'एशिया' में श्रीमती पर्लबक-लिखित 'टिण्डर फ़ार टुमारो' (पृष्ठ १५५)।

उसमें केवल उन गोरे लोगोंके देशोंको पुनः स्वतन्त्र करनेकी बात कही गई है, जिन्हें हिटलरकी नात्सी सेनाओंने पद्दलित किया है। पर भारत, अफ्रीका, चीन, बर्मा, मलाया, पूर्वी द्वीप-समूह, आस्ट्रेलिया, फिलीपीन, न्यूज़ी-लैंड और जापान द्वारा अनधिकार एवं बलपूर्वक अधिकृत मंचूरिया, कोरिया आदिके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा गया है। केवल ब्रिटिश द्वीप-समूहकी रक्षा और यूरोपके कतिपय छोटे-मोटे गोरे देशोंके पुनः स्वतन्त्र हो जानेसे ही तो विश्व-स्वातन्त्र्य और जनतन्त्रकी रक्षा नहीं हो जायगी। भारत और चीन-जैसे महादेश—जिनके सैनिक आज अंगरेज़ोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर लड़ रहे हैं—क्या अपने बारेमें यह जाननेका अधिकार भी नहीं रखते कि उनका भविष्य क्या होगा ?

गोरोंकी इसी अदूरदर्शिता, झिझक और भयने जापानियोंको उनके विरुद्ध प्रोपेगण्डा करनेका सुवर्ण अवसर प्रदान किया है। 'एशिया एशियावासियोंके लिए' का नारा देकर उसने न मालूम कितने गोरों द्वारा अधिकृत उपनिवेशोंके लोगोंको भ्रान्त और विचलित किया है। यद्यपि कोरिया, मंचूरिया और चीनपर हुए उसके आक्रमणोंने एशियावासियोंके सामने उसके नारेका खोखलापन सुस्पष्ट कर दिया है और वह अपनी साम्राज्य-लिप्साको एक सीमा तक ही पूरी कर पाया है ; पर गोरे साम्राज्यवादियों द्वारा अपनी नीतिमें अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल एवं वर्ण-भेदहीन कोई परिवर्त्तन न किए जाने और वर्त्तमान युद्धमें सुदूर-पूर्वमें उनके पश्चात्पद होनेके कारण जापानको उनके—और ख़ासकर उनकी वर्ण-भेदपूर्ण नीतिके—विरुद्ध प्रोपेगण्डा करनेका फिर उपयुक्त अवसर और वातावरण मिल गया है। तोकियोसे रोज़ गोरों द्वारा काली जातियोंके साथ होनेवाले दुर्व्यवहारों, अत्याचारों तथा शोषण आदिकी सत्य, अर्द्ध-सत्य और असत्य बातें सुनाई जाती हैं। अमरीकन सेना द्वारा फिलीपिनों और अंगरेज़ों द्वारा भारतीय सैनिकोंके साथ होनेवाले तथाकथित दुर्व्यवहारके मनगढ़न्त क़िस्से सुनाकर सुननेवाली काली जातियोंसे कहा जाता है कि ऐसे वर्ण-भेद-ग्रसित गोरोंसे तुम्हें न्याय, समानता या स्वतन्त्रताकी आशा नहीं करनी चाहिए। चूँकि जापानके शत्रु ब्रिटेनसे जर्मनी पहलेसे ही लड़ रहा है, पूर्वके ब्रिटिश अथवा उसके मित्र-राष्ट्रों द्वारा अधिकृत देशोंमें वर्ण-द्वेषको उत्तेजन देनेके लिए वह भी जापानकी सहायता कर रहा है। बर्लिन-रेडियोसे लगभग वैसी ही बातें सुननेमें आती हैं, जैसी कि तोकियो-रेडियोसे।

किन्तु जापानके इस प्रोपेगण्डाको असत्य, निराधार और काली जातियोंकी सहानुभूति प्राप्त करनेकी चाल कहकर हँसीमें नहीं उड़ाया जा सकता। कोई भी समझदार व्यक्ति उसके तथ्य और प्रभावको अस्वीकार नहीं कर सकता। उसके सुनने अथवा प्रभावमें आनेवाले काले लोगोंको भले ही हम मूर्ख, अज्ञानी अथवा पिछड़े हुए कहें ; किन्तु जिन्हें सामूहिक मनोविज्ञानका थोड़ा भी अनुभव है, वे इसके द्वारा उनके मस्तिष्कमें पैदा होनेवाली स्वाभाविक प्रतिक्रियासे इन्कार नहीं कर सकते। तब हम पूछना चाहते हैं कि गोरोंने काली जातियोंके मनोंपर होनेवाले इस जापानी प्रोपेगण्डाके प्रभावको बेकार करनेके लिए क्या किया है ? जापानी प्रोपेगण्डाको झूठा और निराधार कहकर वे अपनी अधीनस्थ काली जातियोंकी उसके प्रति पैदा हुई स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक उत्सुकताको मिटा नहीं सकते। इसी प्रकार जापानी या जर्मन-रेडियोका सुनना क़ानूनन निषिद्ध एवं दंडनीय करके भी वे अपनी ही वर्ण-भेदपूर्ण नीतिसे काली जातियोंके हृदयोंमें अपने प्रति पैदा हुई घृणा और द्वेषको निर्मूल नहीं कर सकते। वे जीतें या हारें ; जापानका साम्राज्य रहे या वह केवल अपने द्वीप तक ही सीमित रहे ; हिटलर, जर्मनी अथवा नात्सीवाद रहें या मिट जायँ, काली जातियोंकी इस सुदृढ़ एवं गहरी भावनाको दमनसे अथवा छोटी-बड़ी रियायतें देकर मिटाया या बदला नहीं जा सकता, यह बात गोरोंको गाँठ बाँध लेनी चाहिए।

लेकिन हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि काली जातियोंकी सहानुभूति जापानियोंके साथ है, अथवा वे जापानके नेतृत्व ( जिसका स्पष्ट अर्थ है गोरोंकी ग़ुलामीसे निकलकर एशियाकी पीली जातिकी अधीनता स्वीकार करना ) में अपने किसी बेहतर भविष्यकी परिकल्पना कर रहे हैं। ऐसा समझना उनके साथ सरासर अन्याय करना होगा। यह तो उनकी एक मनोवैज्ञानिक मानसिक अवस्था-विशेष है, जिसके लिए सौ फ़ी-सदी गोरे साम्राज्य-वादी और उनकी वर्ण-भेदपूर्ण दुर्नीति ही ज़िम्मेदार है। यह सत्य है कि फ़िलीपीनो अमरीकनोंको नहीं चाहते ; हिन्द-चीनीके लोग फ्रांसीसियोंसे घृणा करते हैं ; पूर्वी द्वीप-समूहके निवासी डचोंसे असंतुष्ट एवं अप्रसन्न हैं ; मलाया,

बर्मा और भारतके लोग अँगरेज़ोंके शासनसे सन्तुष्ट और सुखी नहीं हैं ; पर साथ ही यह भी सत्य है कि इनमें से कोई भी जापानको नहीं चाहता। जापानके सैनिक सत्तावादियोंसे ये लोग उतनी ही घृणा करते हैं, जितनी किसी भी गोरे साम्राज्यवादी और आततायीसे। यदि ऐसी बातन होती, तो अब तक जापानका साम्राज्यका स्वप्न कभीका पूरा हो चुका होता और एशियामें एक भी गोरा दिखाई नहीं देता। यदि ऐसा होता, तो चीन और भारतकी सेनाएँ उस जापानसे क्यों लड़तीं, जो उन्हें गोरोंके अत्याचारों और शोषणसे मुक्तकर अपने सम-समृद्धि क्षेत्रमें लानेका दावा कर रहा है ? और फिर वे उन गोरोंका साथ क्यों देतीं, जो सदियोंसे उन्हें अपने शोषण, वर्ण-भेद और प्रतिगामी नीतिसे सताते रहे हैं ? हम तो यहाँ तक कहेंगे कि इन काली जातियोंका जापान-विरोध उस अमरीकासे अधिक यथार्थ और गहरा है, जो कल तक जापानको तेल और लोहा देता रहा था तथा उस ब्रिटेनसे भी अधिक प्रबल और स्थायी है, जिसने अपने हितोंके लिए चीनके भविष्यकी कुछ भी परवाह न कर जापानकी चिरौरी करनेको तीन मासके लिए बर्मा-रोड बन्द कर दी थी। यही काली जातियाँ हिटलर अथवा नात्सीवाद (फ़ाशिज़्म) की भी प्रबलतम शत्रु हैं—शायद गोरी जातियोंसे भी ज़्यादा—कारण, इन्हें फ़ाशिज़्मके फौलादी पंजोंमें पिसकर जितना भुगतना पड़ा है, गोरे तो संभवत उसकी कल्पना ही कर सकते हैं। कोरिया, मंचूरिया तथा चीनमें जापानियोंने जिस अमानुषिक बर्बरताका नग्न प्रदर्शन किया है, उसके स्मरण-मात्रसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

काली जातियोंको जापान या जर्मनीसे स्वतन्त्रता, समानता अथवा जनतान्त्रिक अधिकारोंके मिलनेकी आशा नहीं है। उनसे इन्हें अगर किसी बातकी आशा हो सकती है, तो केवल अधिक शोषण, पीड़न और बर्बर मृत्युकी ही। पर साथ ही हम यह भी कहेंगे कि गोरी जातियोंसे भी उन्हें स्वतन्त्रता, समानता और जनतान्त्रिक अधिकार मिलने तो दूर रहे, जीवित रहनेके लिए साधारण सुविधाएँ और उपकरण भी नहीं मिले। अपने-आपको मनुष्य तथा विश्व-स्वातन्त्र्य और जनतन्त्रका हिमायती कहनेवाला कोई भी गोरा इसपर गर्व नहीं कर सकता। गोरी चमड़ी होनेपर भी दिलके जितने कालेपनका परिचय इन्होंने अपने साम्राज्यवादी शासन-कालमें दिया है, मानव-इतिहासमें उससे निकृष्ट और अधिक काला अध्याय शायद दूसरा नहीं है।

पर इतना सब कुछ होते हुए भी आज काली जातियाँ जापान और जर्मनीके विरुद्ध जो गोरोंका साथ दे रही हैं, वह कोई आकस्मिक बात नहीं है। अज्ञान या मूर्खतावश या केवल चाँदीके चन्द टुकड़ोंके लोभसे ही वे ऐसा कदापि नहीं कर रही हैं। उनका स्पष्ट और प्रबल मत है कि गोरोंके वर्ण-भेदपूर्ण साम्राज्यवादके छोटे ख़तरेसे पहले उन्हें धुरी-राष्ट्रोंके बड़े और अधिक बर्बर ख़तरेका ख़ात्मा करना है। लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं कि बड़े ख़तरेका सामना करते हुए छोटे ख़तरेको वे भूल गए हैं, या उसके प्रति उनकी मुक़ाबला करनेकी भावना शिथिल एवं दुर्बल हो गई है। बड़े ख़तरेका मुक़ाबला करते हुए काली जातियोंके सैनिकों तथा साधारण लोगोंके दिमाग़में अपना अपेक्षाकृत छोटा ख़तरा, अपना भविष्य और अपनी आज़ादी एक तूफ़ानकी तरह दौड़ रहे हैं। जापानके अपने द्वीपमें लौट जाने तथा हिटलर और नात्सीवादके नाशसे गोरोंकी लड़ाई ख़त्म हो सकती है ; पर काली जातियोंकी लड़ाईका तो तब आरंभ-मात्र होगा और न मालूम वह कब तक चले ? बहुत संभव है कि आजकल चलनेवाली और उस लड़ाईमें एक क्षणका भी व्यवधान न हो, अथवा यही लड़ाई जर्मनी और जापानके पतन तथा फ़ाशिज़्मके विनाशके बाद गोरी जातिके शोषण और उत्पीड़नके विरुद्ध काली जातियोंकी आज़ादी और समानताकी लड़ाईका रूप धारण कर ले। किन्तु इतना हम और कह देना चाहते हैं कि अवश्यम्भावी होनेपर भी यह लड़ाई दुर्निवार नहीं है। इसे रोका जा सकता है ; किन्तु टैंकों, बमवर्षकों या ज़हरीली गैससे सुसज्जित सेनाओं द्वारा नहीं ; मानव-मात्रको पूर्ण स्वतन्त्रता, समानता और जनतान्त्रिक अधिकार देकर—गोरोंकी विशिष्टता, विशेषाधिकार एवं शोषणके एकाधिकार और कालोंकी तथाकथित अयोग्यताओंको सदाके लिए जलांजलि देकर। दूसरा कोई उपाय इसे रोकनेका नहीं है।

पिछले महायुद्धमें मित्र-राष्ट्रोंने लड़ाई ज़रूर जीती ; पर शान्ति उन्होंने खो दी। यह दूसरा महायुद्ध उसीका परिणाम है। साथ ही यह इस बातकी एक बहुत बड़ी

चेतावनी भी है कि अगर संसारमें स्वातन्त्र्य और जनतन्त्रको सुरक्षित बनाना है, अगर हमें भविष्यमें इन दो महायुद्धोंमें हुए नर-संहार और विनाशकी पुनरावृत्तिको रोकना है और सुख-समृद्धिके समान एवं निर्बाध उपभोग द्वारा मानव-सभ्यता और संस्कृतिके पथपर बल और वेगके साथ अग्रसर होना है, तो इस युद्धके साथ ही साथ शान्तिपर भी विजय प्राप्त करना अनिवार्य है। और शान्तिपर विजय तभी प्राप्त हो सकती है, जब मित्र-राष्ट्र इस प्रश्नका उत्तर दें कि यह युद्ध क्यों लड़ा जा रहा है ? और इसमें विजय प्राप्त होनेके बाद वे क्या करेंगे ? इन प्रश्नोंका उत्तर न केवल जापान और जर्मनीके मिथ्या प्रोपेगण्डाका ही मुँहतोड़ जवाब होगा, बल्कि वह मित्र-राष्ट्रोंकी स्थितिको कहीं अधिक सुस्पष्ट और सुदृढ़ कर देगा, उनके काले साथियोंकी भ्रान्त धारणाओं और आशंकाओंको दूर कर देगा और सुतरां उनकी विजयको अधिक निकट, सुगम और सुनिश्चित बना देगा।

अटलांटिक-सनद इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं देती। कारण, यह महायुद्ध अटलांटिककी सीमाओंको लाँघकर विश्व-व्यापी बन चुका है। इसे अटलांटिक या प्रशान्त-महासागर अथवा रूस और बर्माकी लड़ाइयोंके विभाजित दृष्टिकोणसे देखना अपने बौड़मपनकी ही दुहाई देना है। इसके उद्देश्योंपर केवल विश्व-सनद (World Charter) द्वारा ही प्रकाश डाला जा सकता है। इसी प्रकार यह दावा करना कि यह महायुद्ध विश्व-स्वातन्त्र्य और जनतन्त्रकी सुरक्षाके लिए लड़ा जा रहा है, जब कि भारत तथा करोड़ों अन्य काले लोगोंको आज भी स्वातन्त्र्य और जनतन्त्रसे वंचित रखा जा रहा है, कोरमकोर राजनीतिक दिवालियापन ही है। यह कहना कि युद्धमें विजय प्राप्त होनेके बाद इन लोगोंको आत्म-निर्णयका अधिकार और स्वतन्त्रता दे दी जायगी, न केवल छिछला बहाना ही मालूम होता है, बल्कि एक भयंकर और ख़तरनाक भूल भी, और अगर कोई समझनेकी कोशिश करे, तो उसे यह जानते देर नहीं लगेगी कि ऐसे थोथे दावे द्वारा मित्र-राष्ट्र दूसरोंको नहीं, बल्कि अपने आपको ही धोखा दे रहे हैं। अपनी ही अदूरदर्शिता द्वारा अपना पक्ष दुर्बलकर वे अपने शत्रुओंके हाथमें अपने ही विरुद्ध प्रयोग करनेको एक प्रबल हथियार दे रहे हैं।

क्या अब भी विश्व-स्वातन्त्र्य और जनतन्त्रके इन गोरे हिमायतियोंको यह बतलाना होगा कि आजका संसार क्रान्तिके युगमें से गुज़र रहा है ? क्या अब भी उन्हें यह समझाना होगा कि क्रान्त्योन्मुखी शक्तियोंके इस उषःकालमें साम्राज्यवादी परम्परा और पूँजीवादी तर्ज़े-अमल टिक नहीं सकते ? उन्हें और उनके आचार-विचारको बदलना होगा—स्वेच्छासे, अन्यथा समय उन्हें बदलेगा। पिछले महायुद्धके ढंगपर लड़कर वे इस महायुद्धके परिणामको सुनिश्चित नहीं समझ सकते। यह 'पूर्ण युद्ध' (Total War) है, जिसमें सर्वसाधारणके जीवनका सब कुछ टिका हुआ है। अतः इसमें विजय प्राप्त करनेके लिए 'पूर्ण युद्ध-प्रयत्न' (Total War-effort) की आवश्यकता है—और यह युद्ध-प्रयत्न उस समय तक 'पूर्ण' नहीं कहा जा सकता, जब तक कि मित्र-राष्ट्रोंके अधीनस्थ करोड़ों काले आदमी जनतन्त्र एवं स्वतन्त्रतासे वंचित हैं और मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंके साथ लड़नेवाले ऐसे लाखों सैनिक काफ़ी मानसिक दुविधा (Mental reservation) के साथ लड़ रहे हैं। जब तक इनका हृदय-परिवर्त्तन नहीं होता, मित्र-राष्ट्रोंका युद्ध-प्रयत्न 'पूर्ण' नहीं हो सकता; और जब तक 'पूर्ण युद्ध-प्रयत्न' न होगा, वे इस युद्धमें विजय प्राप्त कर सकेंगे अथवा इसकी धाराको अपनी इच्छानुकूल दिशामें ले जा सकेंगे, इसका उत्तर मित्र-राष्ट्रोंके सेनावादी, राजनीतिज्ञ और मनोविज्ञानवेत्ता ही दे सकते हैं।

इस दिशामें मित्र-राष्ट्र, यदि चाहें तो, जर्मनी और जापानके युद्ध-संचालनसे सबक़ सीख सकते हैं। उनके 'पूर्ण युद्ध-प्रयत्न' में न केवल जल, थल और हवाई सेनाओंका केन्द्रीकरण ही है, बल्कि उसीके साथ उनके देशकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियोंका एकीकरण भी है। पर मित्र-राष्ट्रोंमें रूस और चीनके सिवा अन्यत्र ऐसा देखनेमें नहीं आता। इसी कारण हम दोनोंके युद्ध-संचालनके प्रकार और गतिमें ख़ासा अन्तर देख रहे हैं। इस महायुद्धको आरम्भ हुए लगभग तीन वर्ष होते हैं; किन्तु अभी तक भी मित्र-राष्ट्र अपनी जल, थल और हवाई सेनाओंका संतोषजनक ढंगसे और पूर्ण केन्द्रीकरण स्थापित नहीं कर पाए हैं। सुदूर-पूर्वके युद्धमें वे बराबर हवाई शक्तिकी कमी और समयपर उसका उचित सहयोग न मिलनेकी शिकायत करते रहे हैं। रही सैन्य-शक्तिके साथ अपने तथा अपने अधीनस्थ देशोंकी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शक्तियोंके एकीकरणकी

बात, सो उस सम्बन्धमें ब्रिटेनके शान्तिवादियों तथा अन्य लोगोंकी मानसिक दुविधा और भारत, बर्मा तथा सुदूर-पूर्वके अन्य स्थानोंके लोगोंका असहयोग ब्रिटिश राजनीतिज्ञता तथा युद्ध-नीतिकी विफलताके स्पष्ट और प्रबल प्रमाण हैं।

तब प्रश्न होता है कि आख़िर किस प्रकार मित्र-राष्ट्र सैन्य शक्तिके साथ ही साथ अपने और अपने अधीनस्थ देशोंकी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक शक्तियोंका भी एकीकरण करें, जिससे उनका युद्ध-प्रयत्न 'पूर्ण' हो और धुरी-राष्ट्रोंकी बर्बर शक्तिको ध्वंसकर वे विश्व-स्वातन्त्र्य तथा जनतन्त्रकी वास्तवमें रक्षा कर सकें ? इसका उत्तर देनेसे पूर्व हमें इस और पिछले महायुद्धके प्रमुख कारणोंपर विवेचनात्मक रूपसे दृष्टि डालनी होगी। पिछला युद्ध सौ फ़ी-सदी साम्राज्यवादी युद्ध था, जो उपनिवेशोंके बँटवारेके लिए दो प्रतिद्वन्द्वी दलोंमें छिड़ा था। उससे पूर्व न तो विश्वव्यापी असन्तोष और दलादली ही इतनी थी, जितनी कि आज है और न उपनिवेशोंकी शोषित जनतामें इतनी जागृति ही आई थी। हाँ, उसके दौरानमें यह जागृति और वर्ग-चेतना कुछ व्यापक ज़रूर हुईं; पर उनके किसी निश्चित आन्दोलनका रूप धारण करनेसे पहले ही वह महायुद्ध समाप्त हो गया। उसकी समाप्तिके बादसे लेकर इस महायुद्धके छिड़ने तक संसारमें—और विशेषकर यूरोपमें—भयंकर राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अशान्ति, अस्थिरता तथा उथल-पुथलका बोल-बाला रहा। ब्रिटेनमें भीषण बेकारी हुई, फ्रांसमें आर्थिक असन्तुलनके कारण फ्रांकका मूल्य दिन-पर-दिन गिरने लगा, रूस क्रान्ति और महायुद्धकी तबाहीसे कराह रहा था और पराजित जर्मनीकी सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक विशृंखलताका तो वर्णन भी नहीं किया जा सकता। इस समय विश्वव्यापी सहयोग और समझौतोंकी दूरदर्शितापूर्ण नीतिसे काम लेनेके बजाय मित्र-राष्ट्रोंने अपने-अपने स्वार्थ-साधनकी सोची, और प्रत्येकने इस बातका प्रयत्न किया कि उसका मित्र या शत्रु भविष्यमें उसका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी अथवा उससे अधिक शक्तिशाली न हो जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि ज़ाहिरा तौरपर तो सभी लड़ाकू और उनके अधीनस्थ देशोंमें शान्ति स्थापित हो गई; किन्तु भीतर ही भीतर सामाजिक और राजनीतिक असन्तोष तथा आर्थिक संकट और बेकारीकी आग सुलगने लगी।

इसी मनोवैज्ञानिक क्षणमें पराजयसे अपमानित और लज्जित तथा उपनिवेशोंसे वंचित हुए जर्मनीमें पतनोन्मुख साम्राज्यवादको ज़िन्दा रखनेके लिए जर्मन पूँजीवादियोंके संरक्षणमें राष्ट्रीय समाजवाद ( National Socialism ) का जन्म हुआ, जिसे बादमें पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विताके कारण गुप्त रूपसे फ्रांस तथा ब्रिटेनके पूँजीवादियोंका संरक्षण और आर्थिक साहाय्य भी प्राप्त हुआ। इसके बाद किस प्रकार जर्मनीके समाजवादी जनतन्त्रवादियों ( Social Democrats ) को अपदस्थ कर नात्सी-दलकी स्थापना हुई, किस प्रकार शासन-सत्ता उसके हाथमें आई और फ्रांस तथा ब्रिटेनकी प्रतिद्वन्द्वितासे लाभ उठाकर तथा उन्हींकी आर्थिक सहायतासे उसने वर्तमान महायुद्धकी तैयारी की; किस प्रकार इटलीको पिछले महायुद्धमें लगे साम्राज्यवादके चस्केने वहाँकी राजनीतिक अनिश्चितताको फाशिस्ट सत्ताके रूपमें बदल दिया; किस प्रकार रूस और फ्रांसकी सन्धि हुई तथा बादमें ब्रिटेनकी नीतिके प्रयत्न-स्वरूप वह बेकार हो गई; किस प्रकार ब्रिटेनकी रूस-विरोधी नीति और बादमें कुछ रियायतें देकर जर्मनीको शान्त रखनेकी कमज़ोरीने उसे क्रमशः युद्धोन्मत्त बनाया; चीनके प्रति ब्रिटेन-अमरीकाकी उपेक्षा और जापानको सन्तुष्ट रखनेके लिए अमरीकाका उसे बराबर लोहा तथा तेल देते जाना आदि तो ऐसी ताज़ी बातें हैं, जिनपर विस्तारसे कुछ लिखना अनावश्यक होगा। पिछले महायुद्धमें भारत द्वारा दी गई शक्ति-भर सहायताके बावजूद ब्रिटेनने जो वादा-ख़िलाफ़ी की और जिस प्रकार १९३५ का प्रतिगामी विधान भारतीयोंकी मर्ज़ीके ख़िलाफ़ उनपर ज़बरदस्ती थोपा गया, उसीकी प्रतिक्रियाका मुक़ाबला इस महायुद्धमें ब्रिटिश शासकोंको करना पड़ रहा है।

उपर्युक्त बातोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले महायुद्धसे पहलेकी और दूसरे महायुद्धके पहलेकी स्थितिमें काफ़ी फ़र्क़ था तथा इन दोनों महायुद्धोंके बीचका समय उन आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रतिक्रियाओंका विकास-काल था, जो पहले महायुद्धके बाद स्थापित हुई बनावटी शान्तिके कारण स्वाभाविक था। यह कहना ग़लत होगा कि यह दूसरा महायुद्ध केवल वर्साई-सन्धिका ही परिणाम है। वर्साई-सन्धिके बावजूद यदि मित्र-राष्ट्रोंने वास्तवमें शान्ति स्थापित करने और उसे स्थायी बनानेका

खुले दिल और खुली नीतिसे प्रयत्न किया होता, तो शायद इस महायुद्धके वर्त्तमान कारण ही उपस्थित न होते। अतः यदि वे विश्व-स्वातन्त्र्य और जनतन्त्रकी रक्षा करना चाहते हैं, तो इस बार उन्हें लड़ाईके साथ ही उसके बादमें आनेवाली शान्तिपर भी विजय प्राप्त करनी होगी। इस सम्बन्धमें, हमारी रायमें, निम्न दो प्रकारकी घोषणाएँ अत्यावश्यक हैं :—

(१) जो देश परतन्त्र हैं, स्वशासनसे वंचित हैं, उन्हें तुरन्त स्वतन्त्रता दी जाय और युद्ध-कालमें उनकी शासन-व्यवस्थाके सुचारु रूपसे संचालन करनेमें मित्र-राष्ट्र, उन्हींकी सम्मतिसे, आवश्यक सहायतो पहुँचायँ।

(२) जिन स्वतन्त्र देशोंके लोग अथवा अभी हाल ही में अपने देशोंकी स्वतन्त्रता खोए हुए लोग मित्र-राष्ट्रोंकी ओरसे लड़ रहे हैं, उनके सामने युद्धके बादकी 'नई व्यवस्था' ( New Order ) की रूप-रेखा रखी जाय।

पहली घोषणा द्वारा भारत तथा अन्य पराधीन देशोंके करोड़ों आदमी स्वतंत्र हो जायँगे और तब वे मित्र-राष्ट्रोंके अस्तित्व अथवा हितोंके लिए नहीं, बल्कि अपनी आज़ादीके लिए लड़ेंगे। इस प्रकार मित्र-राष्ट्रोंके विरुद्ध होनेवाला प्रोपेगण्डा भी ख़त्म हो जायगा और इन देशोंके लोग बिना किसी मानसिक सुविधा या संकोचके अपनी सैन्य-शक्तिके साथ-साथ अपनी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शक्तियोंके एकीकरण द्वारा पूरा बल लगाकर लड़ेंगे। इससे मित्र-राष्ट्रोंको जो नैतिक, सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक बल मिलेगा, उसका अन्दाज़ नहीं लगाया जा सकता।

दूसरी घोषणा द्वारा उनके घरू मोर्चेकी रही-सही दुर्बलता भी दूर हो जायगी और उनका युद्ध-प्रयत्न 'पूर्ण' और ठोस हो सकेगा। यदि वे अपने देशवासियोंको इस बातका विश्वास दिला दें कि इस महायुद्धके बाद उनके देशोंका शासन अधिक जनतान्त्रिक होगा, उसमें प्रत्येक नागरिकके लिए अधिकाधिक वैयक्तिक राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक एवं सामाजिक सुविधा और सुरक्षा रहेगी; बेकारी, बुढ़ापे या अंग-भंग होनेपर उसे और उसके परिवारवालोंको सरकार सहायता देगी; उसके बच्चोंकी शिक्षा और स्वास्थ्यकी ज़िम्मेदारी सरकारपर रहेगी और व्यक्तिगत विशिष्टता, भेद-भाव तथा एकाधिकारका अंत हो जायगा; तो कोई कारण नहीं कि उनके देशोंका एक भी नागरिक उन्हें अपनी शक्ति-भर पूरी-पूरी मदद देनेसे तिल-भर भी पीछे रहे। पर क्या मित्र-राष्ट्र ऐसा करेंगे? उनका और मानवताका भविष्य बहुत कुछ इसीके उत्तरपर निर्भर करता है।

# वनस्पति-घीकी समस्या

**श्री मुरलीधर दिनोदिया**

आजकल बाज़ारमें बिकनेवाली अधिकांश वस्तुओंमें घटिया चीज़ोंकी मिलावट पाई जाती है। खाद्य-पदार्थोंमें तो बिरला ही कोई पदार्थ मिलावटसे बच पाया होगा। किसी राष्ट्रकी उन्नति उसके स्वस्थ नागरिकोंपर ही निर्भर करती है। जब देशमें शुद्ध खाद्य-पदार्थ नहीं मिलेंगे, तो लोगोंकी तन्दुरुस्ती अवश्य ही ख़राब होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्यान्य वस्तुओं और खाद्य-पदार्थोंकी मिलावटमें काफ़ी भेद है। अन्यान्य वस्तुओंकी मिलावटका स्वास्थ्यसे प्रायः उतना सम्बन्ध नहीं, जितना खाद्य-पदार्थोंका। इसलिए खाद्य-पदार्थोंकी मिलावट देशके लिए घातक ही सिद्ध होगी। जैसे, हमारे देशके भोजनमें घी एक आवश्यक तरल पदार्थ है। उसमें जो मिलावट चल रही है, वह राष्ट्रीय स्वास्थ्यकी दृष्टिसे शोचनीय है।

जबसे वनस्पति-घी चला है, तबसे घी और वनस्पति-घीका भेद प्रकट करनेके लिए क्रमशः 'असली घी' और 'नकली घी' कहा जाने लगा है। वनस्पति-घीके समर्थकोंने तो आज उसे विज्ञापनके बलपर घीसे भी आगे बढ़ा दिया है। विक्रेताओंने जिस 'शुद्ध स्वदेशी पवित्र असली वनस्पति-घी'के बड़े-बड़े साइनबोर्ड लटका रखे हैं, वह वास्तवमें है क्या चीज़? तिल, गोला, मूँगफली, बिनौला, महुआ आदिके तेलोंको बड़े-बड़े कारख़ानोंमें मशीन द्वारा साफ़ करके जमा दिया जाता है। इसीको 'वनस्पति-घी' कहते हैं। इन तेलोंमें जो थोड़े-बहुत पोषक द्रव्य हैं, वे भी इस प्रक्रियामें नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रक्रियामें सोडा कास्टिक, निकल धातु और हाइड्रोजन गैसका प्रयोग किया जाता है, जो स्वास्थ्यके लिए हानि-

कारक है। फिर भी आज बड़े-बड़े डाक्टर फतवा देते हैं कि वनस्पति-घी एक अच्छा पोषक पदार्थ है!

शुरू-शुरूमें वनस्पति-घी हालैण्डसे आता था। पर इधर कई वर्षोंसे देशी-विदेशी पूँजीपतियोंने भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें इसके आठ-दस बड़े-बड़े कारख़ाने स्थापित करके इसे स्वदेशी बना दिया है। घीकी अपेक्षा यह बहुत सस्ता पड़ता है, इसलिए इसे घीमें मिलाकर बेचा जाता है। जो लोग इतने मुनाफ़ेसे भी नहीं अघाते, वे साफ़ किए हुए गोले और मूँगफलीके तेलमें इसे फिरसे पका लेते हैं। इस प्रक्रियामें दही, मिश्री, सेंट आदि चीज़ें भी उपयुक्त मात्रामें मिला दी जाती हैं। इस प्रकार प्रस्तुत वनस्पतिको दिल्लीमें 'तावड़ा' कहा जाता है। कारख़ानेके वनस्पति-घी और घीमें भेद करना कठिन है; पर 'तावड़ा'को पहचानना तो लगभग असम्भव ही है।

घी खानेवाले धोखेसे बचना चाहते हैं; पर वनस्पति-घी बेचनेवाले नईसे नई चालाकीसे काम लेते हैं। दूधमें ही वनस्पति घीको मिला दिया जाता है और ग्राहकके सामने बिलोककर घी निकाला जाता है। यही नहीं, भैंसको तक वनस्पति-घी पिला दिया जाता है। इस मिलावटको जन-साधारण पकड़ नहीं पाते और न वैज्ञानिक ही अभी तक इसके विश्लेषणके लिए कोई उपाय सोच सके हैं। ऐसी अवस्थामें जो लोग अपने यहाँ गाय-भैंस नहीं रखते, उनके लिए शुद्ध घी मिलना एक समस्या हो गई है।

अब ज़रा देशकी आर्थिक स्थितिपर इसका क्या प्रभाव पड़ता है, इसपर भी विचार कीजिए। जब मिलावटके बाज़ारमें घीको कोई पूछेगा ही नहीं, तो पशु-पालन और घी तैयार करनेका धन्धा अपने-आप बन्द हो जायँगे। इससे किसानोंकी घरेलू दस्तकारी बरबाद होगी और उनकी ग़रीबीमें वृद्धि ही होगी। पशु-धनका क्षय होगा, उसकी नस्ल मारी जायगी और कृषि-प्रधान भारतके लिए यह एक दुर्भाग्यका विषय होगा। जहाँ देशकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हुए दुग्धजात पदार्थोंको विदेशोंमें भेजा जाना चाहिए था, वहाँ ये ही चीज़ें भारत विदेशोंसे मँगा रहा है। जो बचा-खुचा दुग्धजात पदार्थोंका कारबार देशमें चल रहा है, उसे अब वनस्पति-घी बरबाद कर रहा है।

वनस्पतिके हिमायतियोंका यह कथन कि 'सस्ते घीको पाकर लोग सन्तुष्ट हैं', नितान्त भ्रमपूर्ण है। जनता इससे त्राण पाना चाहती है। इसी कारण पंजाबमें गाँवों और मण्डियोंमें पंचायतों द्वारा वनस्पति-घीकी रोक-थाम की गई। जगह-जगह सभाएँ करके सरकारसे यह माँग की गई कि वनस्पति-घीमें रंग देनेका क़ानून बनाया जाय, ताकि वह आसानीसे पहचान लिया जाया करे। इसपर उसके हिमायतियोंने तरह-तरहकी दलीलें दीं और सर्व-साधारणकी धार्मिक भावनाको भड़काया। कुछ पत्रोंने भी आवाज़ उठाई कि 'वनस्पति पंजाबकी एक दस्तकारी है, इसे बन्द करना भारी भूल होगी।' आश्चर्य है, उन्हें यह नहीं मालूम कि घी तैयार करना पंजाबकी सबसे बड़ी दस्तकारी है, न कि वनस्पति-घी। फिर प्रान्तका स्वास्थ्य ही जिससे ख़तरेमें पड़ जाय, ऐसी दस्तकारीसे क्या लाभ?

आख़िरकार पंजाब-सरकारने क़ानून बनाया कि १ अगस्त, १९४१ से प्रान्तमें रंग मिला 'वनस्पति-घी' ही बन और बिक सकेगा। इस क़ानूनका बनना था कि वनस्पति-प्रेमियोंने अड़ंगा लगाना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा कि पंजाब-धारसभाको ऐसा क़ानून बनानेका अधिकार ही नहीं है। वनस्पतिके हिमायतियोंको तो अपने लाभकी फ़िक्र है। उन्हें इसकी क्या चिन्ता कि प्रान्तके लोगोंका स्वास्थ्य गिरे या बचे? फिर युक्त-प्रान्तीय सरकारने भी पंजाब-सरकारको लिखा कि युक्त-प्रान्तमें भी ऐसा ही क़ानून बना था; पर उसमें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। बाज़ारमें पर्याप्त परिमाणमें रंग भी उपलब्ध नहीं है। पंजाबका उक्त क़ानून भी खटाईमें डाल दिया गया और कारण यह बताया गया कि बाज़ारमें रंग उपयुक्त परिमाणमें प्राप्य नहीं।

वनस्पति-घीका प्रश्न राष्ट्रव्यापी है। इसलिए दो-एक प्रान्तोंमें ही इसपर प्रतिबन्ध लगानेसे कोई विशेष लाभकी आशा नहीं। इसके लिए तो सारे देशमें आन्दोलनकी आवश्यकता है। सारे देशके लिए बिना रंग मिले वनस्पति-घीका उत्पादन और विक्रय निषिद्ध ठहराया जाय। यदि यह भी कारगर होता हुआ नज़र न आय, तो क़ानूनन इसका उत्पादन और विक्रय रोक दिया जाय। इस समस्या पर भारतीय जनताको गम्भीरताके साथ विचार करना चाहिए। कतिपय पूँजीपतियोंके लाभसे कहीं अधिक हमें राष्ट्रके नागरिकोंके स्वास्थ्यका ख़याल करना है। इस दिशामें सरकारके साथ-साथ जनताका भी कुछ कर्त्तव्य है, और यदि जनता वनस्पति-घीके विरुद्ध वातावरण तैयार करना अपना काम समझ ले, तो उसे अवश्य सफलता मिलेगी।

# चिट्ठी-पत्री

### नैनी-जेलके साथी

मेरे एक मित्रने, जिन्हें मैंने प्रयागके सत्याग्रहके संचालनका काम सौंपा था, एक लेख आपके पत्रमें लिखकर नैनी-जेलके कुछ साथियोंका स्मरण किया है। मैं इस पत्र द्वारा अपने मित्रके लेखको पूर्ण करना चाहता हूँ। मेरे मित्र एक व्यक्तिको भूल गए हैं, और वे हैं ठाकुर संग्रामसिंह। ठाकुर साहबका चरित्र एक आदर्श चरित्र है। आप अविवाहित हैं। अब तक तीन-चार बार जेल जा चुके हैं। आप सालमें बराबर ३६५ दिन कांग्रेसका काम करते हैं। आप बढ़ईका काम भी जानते हैं। जब कभी आपको ख़र्चकी ज़रूरत पड़ती है, आप बढ़ईका काम कर लेते हैं। किसी व्यक्ति तथा किसी संस्थासे आप एक पैसा भी सहायताके रूपमें नहीं लेते। माननीय पुरुषोत्तमदास टंडनने कई बार आपसे कहा कि आप पीपुल्स सोसाइटीके सदस्य हो जाइए; पर आपने इन्कार कर दिया। बहुत-से आदमियोंने आपको सहायता देनी चाही; पर आपने हमेशा सहायता लेनेसे इन्कार किया। आप अपने क्षेत्रके सार्वभौमिक नेता हैं। आप प्रयागके डिस्ट्रिक्ट-बोर्डके सदस्य भी हैं और कुछ समय पहले इसके जूनियर वाइस-चेयरमैन भी रह चुके हैं। वास्तवमें ठाकुर साहबका चरित्र हमारे लिए एक आदर्श चरित्र है। नैनी-जेलमें मैं सबसे अधिक ठाकुर साहबसे प्रभावित हुआ था। यदि ऐसे कार्यकर्ता हज़ार-दो-हज़ार भी देशमें हों, तो देशका बहुत लाभ हो सकता है।

हरद्वार ] —बलदेवप्रसाद गुप्त

[ गतांकमें हममें 'नैनी-जेलके मेरे साथी'-शीर्षक श्री सुरेशशरण अग्रवालका जो लेख प्रकाशित किया था, उसके अन्तमें लेखकने स्वयं लिखा था कि 'नैनी-जेलके साथियोंका यह अधूरा-सा वर्णन है। साथी तो बहुत-से रह गए...।' ऐसे लेख कभी पूर्ण हो भी नहीं सकते। कारण, नैनी-जैसी बड़ी जेलके सभी 'साथियों' के बारेमें एक छोटे-से लेखमें कुछ लिखना सम्भव भी नहीं है। हमें प्रसन्नता है कि श्री बलदेवप्रसाद गुप्तने इसी कमीकी आंशिक पूर्ति की है। उपर्युक्त पत्रमें उन्होंने जिन ठा० संग्रामसिंहका वर्णन किया है, वे निःसन्देश एक आदर्श-चरित्र राष्ट्रकर्मी मालूम होते हैं। ऐसे लोगोंका चरित्र हमारे लिए न केवल गर्व और गौरवकी चीज़ है, बल्कि अनुकरणीय भी है। —सं० ]

### नागरी-प्रचारिणी सभा, काशीके समालोचक

वि० सं० १९९७ के माघकी नागरी-प्रचारिणी पत्रिकामें श्रीयुत अवधविहारी पाण्डेयकी लिखी हमारे मारवाड़के इतिहासकी समालोचना प्रकाशित हुई थी। परन्तु उसमें अधिकतर भ्रम फैलानेवाली बातोंका ही समावेश देखकर हमने उनके संक्षिप्त उत्तरकी एक प्रति उक्त पत्रिकाको प्रकाशनार्थ भेजी; परन्तु नागरी-प्रचारिणी पत्रिकाके सम्पादक-मण्डलने उसके प्रकाशनमें असमर्थता प्रकट की। इसके बाद हमने समालोचनामें किए गए भ्रमोत्पादक आक्षेपोंका निर्णय करनेके लिए सभाके द्वारा ही पाण्डेयजीसे उनके आक्षेपोंके कारण लिख भेजनेकी प्रार्थना की, जो सहर्ष स्वीकार कर ली गई। परन्तु जब हमने उन कारणोंका समाधान भेजकर सभा द्वारा उनसे उसपर सम्मति माँगी, तो हमें उसके स्थानपर मामलेको यहींपर समाप्त कर देनेकी निराशाजनक आशा मिली।

ऐसी अवस्थामें हम लाचार होकर 'विशाल भारत' के द्वारा ही पाण्डेयजीके आक्षेपोंका संक्षिप्त विवरण और अपने उत्तर हिन्दी-संसारके सामने प्रस्तुत करना आवश्यक समझते हैं, जिससे पाठकोंको हमारे विपक्षकी मनोदशाका भी पता चल जाय।

आक्षेप—(१) पुस्तकमें दिए नक़्शेमें पुस्तकमें आए सब स्थानोंका नामांकन नहीं है। (२) यह नक़्शा सब मारवाड़-नरेशोंकी राज्य-सीमाका पता नहीं देता। (३) इस पुस्तकमें सीहाजी, जोधाजी, मालदेवजी, चन्द्रसेनजी, उदयसिंहजी, अजितसिंहजी, आदिके अधिकृत प्रदेशोंके नक़्शे भी देने चाहिए थे। (४) इस पुस्तकमें राजपूतानेका

नक्शा देना भी आवश्यक था, जिससे मारवाड़के बाहरके जिन स्थानोंका उल्लेख पुस्तकमें आया है, उनकी स्थिति स्पष्ट हो जाती। उत्तर—पुस्तकमें दिए नक्शोंमें स्थानाभावसे सब स्थानोंके नाम नहीं लिखे जा सकते। परन्तु उसमें नदी, नाले, सड़क, रेल-लाइन, पर्वत आदि ११ उपयोगी बातें अंकित की गई हैं, और उनमें की एक बात मारवाड़को २१ प्रान्तोंमें विभजित करके दिखलाना भी है। इससे अधिकतर स्थानोंके साथ दिए प्रान्तोंके नामोंसे उन स्थानोंकी स्थितिका सहज ही अनुमान हो सकता है। इसके अलावा नक्शेमें प्रत्येक प्रान्तके मुख्य-मुख्य स्थानोंके नाम भी दिए गए हैं। एक ही नक्शेमें क़रीब ४० नरेशोंकी राज्य-सीमाका बतलाया जा सकना असम्भव है। प्रत्येक नरेशके अधिकृत प्रदेशोंके लिए एक भिन्न नक्शा देनेमें कितना ख़र्च पड़ता और उससे पुस्तककी क़ीमत कितनी बढ़ जाती?

आक्षेप—चित्रोंपर चित्रकारोंके नाम नहीं हैं। उत्तर—इतिहासकी कितनी पुस्तकोंपर चित्रकारोंके नाम मिलते हैं? इसके अलावा संग्रहालयों तकमें अधिकांश प्राचीन चित्र अज्ञात चित्रकारोंकी रचनाएँ हैं।

आक्षेप—ख्याति-पुस्तकोंके अवतरणोंके साथ उनके नाम, उनके लेखकोंके नाम और काल आदिका उल्लेख न होनेसे वे फ़ारसीकी पुस्तकोंके मुक़ाबलेमें अमान्य हैं। उत्तर—प्राचीन ख्याति-पुस्तकोंमें उनका नाम, उनके लेखकका नाम और समय बहुत ही कम मिलता है। उदाहरणार्थ ओझाजीका 'उदयपुरका इतिहास', पृ० ७०५ फ़ुटनोट १। ओझाजीका 'जोधपुरका इतिहास', पृ० २२५, पंक्ति १७। इसके अलावा जाति-द्वेषके कारण फ़ारसी इतिहास-लेखकोंके किए हिन्दू नरेशोंको नीचा दिखलानेके प्रयासोंकी अब तक बहुत कुछ पोल खुल चुकी है। उदाहरणार्थ, ओझाजी अपने उदयपुरके इतिहासके पृ० ७३९-४० पर लिखते हैं—"इस घटनाका वर्णन संक्षेपसे 'राजप्रशस्ति' महाकाव्य और राजपूतानेकी ख्यातों आदिमें भी लिखा मिलता है, परन्तु अबुलफ़ज़लने, जो मुसलमान इतिहास-लेखकोंमें सबसे बढ़कर खुशामदी था, इस बातका उल्लेख न कर इसके विरुद्ध यह लिखा है...। यह कथन सर्वथा अविश्वसनीय है, क्योंकि बादशाहका महत्त्व बतानेके लिए झूठ-मूठ ही ऐसा लिखा गया है।"

आक्षेप—राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रतापकी तुलना पक्षपातपूर्ण है। राव चन्द्रसेनके विषयका अबुलफ़ज़लका मत बहुत कुछ सही मालूम देता है। महाराणा प्रतापके विषयमें ऐसी कोई बात नहीं कही जा सकती। उत्तर—एक तो यदि चन्द्रसेनके बारेका अबुल-फ़ज़लका लेख सही माना जाता है, तो प्रतापके विषयका भी क्यों नहीं सही माना जाता? दूसरा आपका यह लिखना, कि प्रतापके विषयमें ऐसी कोई बात नहीं कही जा सकती, भी भ्रम मात्र ही है। इसके निवारणके लिए 'अकबरनामा' से ही दो अवतरण दिए जाते हैं—

"वहाँसे बमूजिब हुक्म शाही (मानसिंह मय अमीरों) के उदयपुर पहुँचा। रानाने पेशवाई करके शाही खिलअत बहुत अदबसे पहना और मानसिंहको मेहमान करके अपने घर ले गया। बदज़ातीसे माफ़ी माँगी।" [ भा० ३, पृ० ४० ]

"जब शाही लश्कर रानाके रहनेकी जगह गोगुंदे पहुँचा, तब राना गुज़रे हुए ज़मानेमें जो क़ुसूर किए थे, उनके लिए शार्मिन्दगी और अफ़सोस ज़ाहिर करके राजा भगवंतदाससे आकर मिला और उससे शाही दरबारमें सिफ़ारिश चाही। साथ ही उससे मानसिंहको घर ले जाकर मेहमानदारी की और अपने लड़केको उसके साथ कर दिया। उसने यह भी कहा कि बदक़िस्मतीसे पहले मेरे दिलमें घबराहट थी। मगर अब आपके ज़रिएसे बादशाहसे इल्तिजा करता हूँ और अपने लड़केको खिदमतमें भेजता हूँ। कुछ दिनोंमें अपने दिलको तसल्ली देकर खुद भी हाज़िर हो जाऊँगा।" [ भा० ३, पृ० ६६-६७ ]

आक्षेप—(१) महाराजा जसवन्तसिंह औरंगज़ेबसे पराजित होकर दिल्ली जानेके स्थानपर मारवाड़में बैठ रहे। (२) महाराजाने औरंगज़ेबसे डरकर पहले तो पत्र द्वारा दाराको गुजरातसे बुलवाया, परन्तु बादमें औरंगज़ेबसे समझौता हो जानेके कारण दाराको टाल दिया।

उत्तर—(१) सर जदुनाथ सरकारने अपने 'औरंग-ज़ेबके इतिहास'में लिखा है—'मुसलमानी सेनाके भाग जानेपर जसवन्त चाहता था कि वह शत्रुओंके बीच घुसकर उनका संहार करता हुआ मृत्युको वरण करे। परन्तु उसके हिन्दू सेनापतियोंने उसे समझाया कि मुग़ल शाहज़ादे एक-दूसरेका गला काट सकते हैं; परन्तु उनकी घरेलू लड़ाईमें राठौरोंके मुखिया और मारवाड़के आशा-रूप आप नाहक ही क्यों अपनी जान देते हैं? इस प्रकार कहकर वे उनके घोड़ेको युद्धस्थलसे बाहर खींच लाए।'

[ भा० २, पृ० २०-२१ ] इसी सम्बन्धमें बर्नियर लिखता है—'महाराजा जसवन्त जब खजवासे लौटता हुआ आगरे पहुँचा, तब वहाँके संरक्षक शाइस्ताख़ाँने डरकर विष-पानका विचार कर लिया। जसवन्त चाहता, तो शाहजहाँको क़ैदसे छुड़वा सकता था ; परन्तु समयकी गतिको देख उसने वहाँ (आगरेमें) अधिक ठहरना उचित न समझा।' [भा० १, पृ० ८३-९४]। इसके अलावा यह भी याद रखनेकी बात है कि युद्धके प्रारम्भमें ही शाही-सेनानायक कासिमख़ाँ महाराजको छोड़कर, मय शाही सेनाके, युद्ध-स्थलसे निकल भागा था। अतः मुसलमानोंको इस प्रकार औरंगज़ेबका पक्ष लेते देख महाराजका उनके गृह-कलहसे दूर हो जाना क्या उचित न था ?

(२) महाराजा जसवन्तको औरंगज़ेबके पूर्ण सत्ताधिकारी हो जानेपर भी कभी भय नहीं हुआ। 'तवारीख़ मुहम्मदशाही'में लिखा है—'औरंगज़ेब अक्सर कहा करता था कि ख़ुदाकी मंशा हिन्दुस्तानमें इस्लामी मज़हब क़ायम रखने की थी, जो उस दिन (उज्जैनके पास) जसवन्त युद्धसे चला गया।' इसके अतिरिक्त 'जसवन्तने ही औरंगज़ेबके मुरादपर चढ़ाई करनेके समय उसकी सेनाके पिछले भागपर हमलाकर उसे लूट लिया था।' [आलमगीरनामा, पृ० २५४-५६ ] सर जदुनाथ सरकार अपने औरंगज़ेबके इतिहासमें लिखते हैं—औरंगज़ेबने अपने ई० स० १६५९ के पत्रमें लिखा है कि वह काफ़िर जसवन्त, जिसने मसजिदोंको तोड़कर मन्दिर बनवाए।' [ भाग ३, पृ० ३६८-६९ ] विन्सेंट स्मिथ अपनी 'आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ़ इण्डिया'में लिखते हैं—'जसवन्तके मरनेपर ही औरंगज़ेबकी जज़िया लगानेकी हिम्मत हुई।' [पृ० ४३८] रही दाराको पत्र लिखनेकी बात, सो ख्यातोंमें दाराके महाराजको पत्र लिखने और 'आलमगीरनामा'में महाराजके दाराको पत्र लिखनेका उल्लेख है। इसके अलावा मुहम्मद अक़बरके अपने पिता औरंगज़ेबको लिखे पत्रमें लिखा है—'दारा राठौरोंसे अन्दरूनी विशेष मेल न रखता था, इसीसे उसकी यह दशा हुई।' [ प्रोसीडिंग्स आफ़ सेकिण्ड हिस्ट्री कांग्रेस, इलाहाबाद, पृ० ३५७ ]

आक्षेप—मारवाड़ एक भौगोलिक प्रदेश है। वह समय-समयपर जोधपुर-नरेशोंके राज्यमें रहनेवाला देश नहीं हो सकता। आपने अपने इतिहासमें केवल उस प्रदेशका इतिहास दिया है, जो इन नरेशोंके अधिकारमें रहा है, या जिसे वे अधिकारमें लाना चाहते थे। किसी समय बीकानेर और किशनगढ़का अधिकांश भी मारवाड़-राज्यके राठौर नरेशोंके अधिकारमें था, इसलिए उनका भी वर्णन करना चाहिए था। दूसरा आपने जो भौगोलिक वर्णन दिया है, वह वर्तमान जोधपुर-नरेशके राज्यका है। लेकिन आपने अपनी पुस्तकमें दूसरे नरेशोंके शासनका भी वर्णन किया है, जिनका शासित देश सदा ही यही नहीं था। इसलिए इसे मारवाड़का ही वर्णन कैसे मान लिया जाय ? इसलिए इसका नाम 'मारवाड़का इतिहास' अनुचित है।

उत्तर—गवर्मेंट-गज़ेटियर आदिमें जोधपुर-राज्य और मारवाड़को समानार्थक बतलाकर उसका विस्तार २४ अंश ३६ कला उत्तर अक्षांशसे २७ अंश ४२ कला उत्तर अक्षांश तक तथा ७० अंश ६ कला पूर्व देशान्तरसे ७५ अंश २४ कला पूर्व देशान्तर तक माना गया है, और उसका क्षेत्रफल ३५०१६ वर्गमील दिया है। इस समय पठित जगत्में भी यही प्रदेश मारवाड़ समझा जाता है। यों तो नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी शब्द-सागर'में मारवाड़ शब्दका अर्थ 'मेवाड़ राज्य' लिख दिया है, वैसे आप भी जैसा चाहें, मान सकते हैं। इसके अतिरिक्त जिस समय जो प्रदेश इन नरेशोंके अधिकारमें आया, उस समय उसका उल्लेख व उसके कारणका उल्लेख यथास्थान स्वयं ही हो गया है। परन्तु बीकानेर या किशनगढ़के किसी प्रदेशपर इन नरेशोंका राज्य रहनेके कारण लेखकसे एक ही पुस्तकमें उन राज्योंका भी आद्योपान्त इतिहास लिख देनेकी आशा रखना हास्यास्पद ही है।

जोधपुर ]  —विश्वेश्वरनाथ रेउ

# समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

**गुप्तजीके काव्यकी कारुण्य धारा** : लेखक—प्रो० धर्मेन्द्र, एम० ए० ( त्रितय ) ; प्रकाशक—पुस्तक-भंडार, लहरिया-सराय ; मूल्य २॥) ।

यह प्रसन्नताकी बात है कि हिन्दीमें आलोचनात्मक ग्रन्थोंका प्रकाशन बढ़ रहा है ; परन्तु उनमें ऐसी आलोचनाएँ कम ही मिलती हैं, जिनमें आलोचक अंध-श्रद्धासे बचकर 'अहो रूपं अहो ध्वनिः' के स्तरसे ऊँचा उठ सका हो ! बाबू मैथिलीशरण गुप्त अपने व्यक्तित्व तथा साहित्य-सेवाके नाते हिन्दी-भाषा-प्रेमियोंके आदरास्पद हैं । अतएव उनके ग्रन्थोंकी समीक्षा लिखते समय आलोचककी बुद्धिपर उसके सहृदयका स्वभावतः आधिपत्य हो जाता है । धर्मेन्द्रजीने आलोचनाके इस प्रमादसे बचनेका प्रयत्न किया है । इसमें आपने गुप्तजीके सभी ग्रन्थोंमें करुणाकी पृष्ठभूमि खोजनेका श्रम किया है । अतएव उन्हें करुणा और कारुण्यमें भेद करना पड़ा है, क्योंकि शास्त्रीय ग्रन्थोंके अनुसार करुण-रसका संचार वहीं माना जाता है, जहाँ 'इष्टवस्तुके अनिष्ट'से शोक छा जाता है । यों तो प्रिय-वियोग-जनित दशामें करुणाका उदय हो जाता है ; परन्तु इस खेदको 'करुण-रस' का आधार नहीं, विप्रलम्भ-शृंगारका संचारी भाव माना जाता है । आलोचक भवभूतिके अनुसार 'एको रसः करुण एव' मानकर ही अपनी अनुसन्धान-दिशामें चले हैं । पुस्तकके आरम्भमें तीन भूमिकाएँ जुड़ी हुई हैं—पहली राजा श्री राधिकारमणप्रसादसिंह एम० ए० की, दूसरी श्रीमती उर्मिला शास्त्री मेरठकी और तीसरी स्वयं लेखक द्वारा लिखी गई है । प्रथम भूमिकाके पीछे विशेष चिन्तना-धारा नहीं है, रस्म-निर्वाहका सौजन्य ही है । दूसरी भूमिका भी लेखकका हिन्दी-जगत्में स्वागत करनेके सिवा कोई तथ्य-निरूपण नहीं प्रस्तुत करती । पुस्तक इन भूमिकाओंके बिना भी अपना यथास्थान स्वीकृत करा सकती थी । पुस्तककी तीसरी भूमिका, जो स्वयं प्रोफ़ेसर साहब द्वारा लिखी गई है, मननीय है । इसमें उन्होंने गुप्तजीके व्यक्तित्व और उनकी कलापर ११७ पृष्ठोंमें विचार किया है । 'गुप्तजीके व्यक्तित्व'-शीर्षक संकलित निबन्धको लेखकने विशेष छानबीनके साथ नहीं रखा । पृष्ठ ६ पर छपा है—"( गुप्तजीकी ) कवित्व-प्रतिभापर मुग्ध होकर... राजा रामपालसिंहने मौलाना हालीके मुसद्दसके ढंगपर एक रचना हिन्दुओंके लिए लिखनेके लिए आपसे अनुरोध किया । इसी अनुरोधके फलस्वरूप आपने 'भारत-भारती' लिखी...।" और पृष्ठ ७ पर ही 'हिन्दुओंके लिए' लिखी 'भारत-भारती'के सम्बन्धमें कहा गया है कि "वह आपका एक राष्ट्रीय काव्य है ही ।" यह निबन्ध, जब कि लेखक स्वयं गुप्तजीको 'राष्ट्रीय कवि' नहीं मानते, पुस्तकके प्रारम्भमें न दिया जाता, तो अच्छा था ; क्योंकि उसकी परस्पर-विरोधी बातोंसे साधारण पाठकमें भ्रम पैदा हो सकता है । आलोचकका यह कहना सम्भवतः 'गुप्त-भक्तों'को खटकेगा कि "गुप्तजीका दृष्टि-मंडल वर्तमान राष्ट्रीय जागरणकी दृष्टिसे कितना संकुचित है !...गुप्तजीका हिन्दुस्तान कुछ-कुछ जिन्नके पाकिस्तानकी टक्करका होगा ।" बात यह है कि जब गुप्तजी साहित्याराधनमें लीन हुए थे, उस समय हिन्दी-क्षेत्रमें 'हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान'का नारा ही वातावरणमें व्याप्त था । गुप्तजीके संस्कारोंके साथ इस 'नारे'का अच्छा मेल खाता था । अतः उनकी रचनाओंमें हिन्दू-महासभाकी राष्ट्रीय भावना दिखलाई देती है, तो कोई आश्चर्य नहीं । इसी दृष्टिसे उनकी तथाकथित राष्ट्रीय रचनाएँ 'जातीय रचनाएँ' कहलानी चाहिएँ । स्वदेशकी वन्दना करनेपर भी उनकी मूल हिन्दू-मनोवृत्ति ज्यों-की-त्यों क़ायम रहती है । भूमिकामें एक ही अध्याय विशेष रूपसे मननीय है, और वह है 'गुप्तजीकी काव्य-कला' । गुप्तजीकी रचनाएँ कह रही हैं कि वे 'उपयोगितावाद' के ही नहीं, रीतिकालीन 'चमत्कारवाद'के भी हामी हैं ।

लेखकने लम्बी भूमिकाके पश्चात् २२३ पृष्ठोंमें कविके मौलिक-अमौलिक सभी ग्रन्थोंमें 'कारुण्यकी छाया' की खोज की है । ग्रन्थोंकी चर्चा करते समय उन्होंने प्रबन्ध-काव्य और खण्ड-काव्यके शास्त्रीय भेदको भी उड़ा दिया है । पुस्तक साहित्य-विद्यार्थियोंका मनोरंजन करेगी, इसमें सन्देह नहीं । लेखकने यत्र-तत्र स्वतन्त्र विचार-प्रकाशन-प्रवृत्तिका परिचय अवश्य दिया है ; पर यदि वे

अप्रस्तुत चर्चाओंमें पृष्ठ-संख्या बढ़ानेके बजाय संयत तथ्य-विवेचनकी ओर ही ध्यान देते, तो अच्छा होता। हम लेखकसे भविष्यमें अच्छे आलोचनात्मक ग्रन्थकी आशा कर सकते हैं। —विनयमोहन शर्मा

**हिन्दी-नाट्य-चिन्तन :** लेखक—श्री शिखरचन्द जैन; प्रकाशक—नरेन्द्र-साहित्य-कुटीर, ५७, सीतवारिया, इन्दौर; पृष्ठ-संख्या २ + १८३; मूल्य १।।=)।

**प्रसादका नाट्य-चिन्तन :** लेखक तथा प्रकाशक उपर्युक्त; पृष्ठ-संख्या २०१; मूल्य २)।

प्रस्तुत दोनों पुस्तकोंमें लेखकने हिन्दीके नाटक-साहित्यपर अपने विचार प्रकट किए हैं। पहली पुस्तक 'हिन्दी-नाट्य-चिन्तन'को जैनजीने चार अध्यायोंमें बाँटा है। पहला अध्याय नाट्य-कला एवं साहित्यकी रूप-रेखाओंपर है और बाक़ीके तीन अध्यायोंमें क्रमशः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लक्ष्मीनारायण मिश्र और सेठ गोविन्ददासकी नाट्य-कलाकी आलोचना की गई है। प्रसादजीको छोड़ कर लेखककी दृष्टिमें हिन्दीके ये ही प्रमुख नाटककार हैं। हाँ, एक और नाटककार हैं श्री उदयशंकर भट्ट, जिनपर 'विषम पूर्णताकी दृष्टिसे जैनजीको लिखना चाहिए था।' किन्तु उनकी 'वृत्तिएँ' उस लेखकमें 'रमीं नहीं'। इसलिए आपने उन्हें छोड़ दिया है! जहाँ तक हम समझते हैं, केवल इसी कारण किसी भी समालोचकको उस लेखककी अवहेलना करनेका अधिकार नहीं, जिसपर उसे 'लिखना चाहिए था।' यह मानते हुए भी कि भट्टजीके नाटक टेकनीकके दृष्टिकोणसे सर्वथा निर्दोष नहीं हैं और उनमें कहीं-कहीं अस्वाभाविकता भी प्रस्फुटित हो गई है, फिर भी हमारे विचारमें उनकी कृतियाँ सेठ गोविन्ददाससे ज़्यादा अच्छी बन पड़ी हैं। उनके नाटकोंमें अधिक जीवन है, अधिक चिन्तन है। वे केवल क़लम हाथमें लेकर पृष्ठके पृष्ठ रँगते चले नहीं गए।

पुस्तकके पहले अध्यायमें लेखकने केवल हिन्दी-नाटकको ही नहीं लिया, बल्कि पाठकको कलाका रूप दिखानेकी भी कोशिश की है, और सुन्दर ढंगसे की है। इस अध्यायमें उन्होंने हिन्दीके अधिकतर नाटक-लेखकोंपर कुछ न कुछ कहनेका प्रयत्न किया है; किन्तु इस अध्यायमें भी इनके तीन प्रमुख नाटककार और चौथे 'प्रसाद' ही हैं। जो कुछ इसमें कहा गया है, वही अधिक विस्तारपूर्वक पुस्तकके बाक़ी भागमें है। इसलिए यदि लेखक चाहते, तो पुस्तकका कलेवर आधा कर सकते थे, और ऐसा करनेसे इसका सौन्दर्य अधिक खिल उठता है, यह निश्चित है।

नाटककारोंके चुनावमें लेखकने यद्यपि कुछ ज़बरदस्ती ज़रूर की है; किन्तु यह प्रसन्नताकी बात है कि उनकी समालोचना करते हुए, प्रसादजीको छोड़कर, वे अपने उत्तरदायित्वको नहीं भूले। जैनजीके विचारमें सेठ गोविन्ददासजी 'सत्यतासे अपनेको व्यक्त नहीं कर सके हैं।' (पृष्ठ १६०) 'उनकी रचनाओंमें नाटकीय तत्वोंकी अपेक्षा सिनेमाके तत्वोंका अधिक प्रयोग हुआ है।' (पृष्ठ १६३) 'कहीं-कहीं लेखककी कला-हीनताका परिचय स्पष्ट रूपसे न केवल समालोचकोंको, किन्तु साधारण पाठकों एवं प्रेक्षकोंको भी हो जाता है।' (पृष्ठ १६४) 'उनके यात्रियों एवं राहगीरोंके कथनोपकथन जो स्पष्ट रूपसे कथावस्तुकी पूर्त्यर्थ प्रयुक्त हुए हैं और सब नाटकोंमें, कथा-पूर्तिके मेरी दृष्टिमें सबसे सरल एवं निकृष्ट साधन हैं और कलाकारकी महत्ताको बढ़ानेवाले नहीं।' (पृष्ठ १६४) इतनी त्रुटियाँ होते हुए भी सेठजीको प्रमुखता क्यों प्रदान की गई है, समझमें नहीं आता। क्या इसलिए कि उन्होंने बहुत अधिक लिखा है! और चूँकि भट्टजीने भी बहुत अधिक लिखा है, क्या इसीलिए उनकी अव-हेलना करनेके लिए लेखकको खेद प्रकट करना पड़ा है। यदि यह बात है, तो ठीक नहीं। कलाकारका स्थान निश्चित करनेके लिए उसकी कृतियोंकी मुटाईकी ओर नहीं, बल्कि उनके सौन्दर्य, ऊँचाई और गहराईकी ओर अधिक ध्यान देना हमें उचित है।

दूसरी पुस्तक 'प्रसादका नाट्य-चिन्तन' में जैनजीने प्रसादजीके सभी नाटकों, उनके चरित्र-चित्रण, उनकी भाषा, प्रवृत्तियों आदिपर परिश्रमपूर्वक लिखा है। पुस्तक पढ़नेसे ऐसा मालूम होता है कि लेखक प्रसादजीकी महान प्रतिभासे आतंकित हैं, इसीलिए कहीं-कहीं अतिरंजनके दोषी हो गए हैं। किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी पुस्तक हिन्दी-साहित्यके विद्यार्थियोंके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

—'अवनीश'

**कारावास :** लेखक—'यश' बी० ए०; प्रकाशक—श्री ओंप्रकाश सूरी, अध्यक्ष मिलाप-पुस्तकालय, लाहौर; पृष्ठ-संख्या १२८, मूल्य १।), सजिल्द।

श्री 'यश' पंजाबके एक उदीयमान हिन्दी-कहानीकार हैं। अभी हाल ही में आप पाँचवीं बार जेल-यात्रा करके

लौटे हैं। बन्दी-जीवनमें जिन बातों और घटनाओंका आपके मनपर गहरा असर पड़ा है, उन्हींको आपने कहानियोंका रूप दिया है। प्रस्तुत पुस्तकमें ऐसी ७ कहानियाँ संग्रीत हैं। लगभग सभी कहानियाँ भावना-प्रधान हैं। भाषामें प्रवाह और ज़ोर है। कई जगह लेखककी कल्पना-शक्ति और प्रतिभाका ख़ासा अच्छा आभास मिलता है। 'कारावास'की नरगिस, 'टाटवर्दी'का नन्दलाल, 'बोल जवान'का छुम्मा, 'इहाता नं० २' का राजू और 'रसीला पत्थर'की नीला पुस्तक समाप्त करनेके बाद भी पाठकके मस्तिष्कपर गहरी मनोवैज्ञानिक गुत्थियोंके रूपमें झलकते रहते हैं। कहानियाँ रोचक और लेखककी अध्ययन-शीलताकी परिचायक हैं। हमें आशा है, हिन्दी-संसार इन्हें चावसे पढ़ेगा। —'भग्नदूत'

**राष्ट्रवादी दयानन्द** : लेखक—श्री सत्यदेव विद्यालंकार; भूमिका-लेखक—अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्द; प्रकाशक—गीता-विज्ञान-कार्यालय, ४० ए, हनुमान रोड, नई दिल्ली; पृष्ठ-संख्या १४+१३६; मूल्य ॥), सजिल्द १)।

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने स्वामी दयानन्दजीके विचारोंका एकत्रीकरण करके उनके राष्ट्रीय जीवनपर अच्छा प्रकाश डाला है। जिस समय भारतीय जीवन चारों ओरसे अन्धकाराच्छन्न था, स्वामीजीने भारतीयोंमें न केवल धार्मिक, बल्कि राष्ट्रीय भावना जगानेमें बहुत बड़ा कार्य किया। उस समय लोगोंके मस्तिष्कमें स्वदेशी और राष्ट्रीयताकी भावना जाग्रत करना स्वामी-जैसे महान ऋषिका ही काम था। पुस्तक पढ़नेसे ऐसा मालूम पड़ता है कि स्वामीजीका रोम-रोम राष्ट्रीयतासे भरा हुआ था और वे भारतीय राष्ट्रकी स्थापनाका स्वप्न देखा करते थे। क्या उनके व्याख्यानों, पत्रोंके उद्धरणों सभीसे यही प्रतीत होता है कि स्वामीजीने धार्मिक क्षेत्रमें जैसा कार्य किया, उससे किसी भी अंशमें कम राजनीतिक क्षेत्रमें नहीं किया। यदि कोई राष्ट्रवादी दयानन्दसे परिचित होना चाहता है, तो उसे इस किताबको अवश्य पढ़ना चाहिए और ख़ासकर आर्यसमाजियोंको, जिनके बारेमें लेखकको शिकायत है और वह शिकायत कुछ अंशोंमें ठीक भी है। पुस्तक बहुमूल्य है और छपाई-सफ़ाई अच्छी।

**कजली-कौमुदी** : संग्रहकर्ता—श्री कमलनाथ अग्रवाल; प्रकाशक—काशी पेपर स्टोर्स, ३१, बुलानाला, बनारस सीटी; पृष्ठ-संख्या ३+५+१२९; मूल्य १)।

प्रस्तुत पुस्तक २१० कजलियोंका संग्रह है। इसमें कजलीका एक छोटा-सा इतिहास भी है, जिसके लेखक हैं श्री सूरजप्रसाद शुक्ल। संग्रहमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 'प्रेमघन', अम्बिकादत्त व्यास, श्रीधर पाठक आदि हिन्दीके प्रसिद्ध कवियोंकी कजलियाँ भी सम्मिलित हैं। कुछ मुसलमान कवियोंकी कजलियाँ भी दी गई हैं। जो लोग कजली गाते हैं, वे उसकी अश्लीलतापर कम ही ध्यान देते हैं, जिसे सुनकर सुरुचि-सम्पन्न व्यक्तिके हृदयपर एक आघात-सा लगता है। इस पुस्तकमें कजलियोंके चुनावमें सुरुचिका ध्यान रखा गया है। फिर भी इसमें कितनी ही ऐसी कजलियाँ हैं, जिनका न दिया जाना ही ज़्यादा अच्छा होता। आशा है, कजली प्रेमी इसे अपनायँगे।

—श्रीपति पाण्डेय

## हमारे सहयोगी

**'दि इण्डियन बी जर्नल** ( The Indian Bee Journal ) : सम्पादक—श्री आर० एन० मुर्त्तू; प्रकाशक—आल इण्डिया बी-कीपर्स एसोसिशन, ज्योलीकोट, नैनीताल; वार्षिक चन्दा ३); एक अंकका ॥)।

मधुमक्खी-पालन-सम्बन्धी यह उपयोगी मासिक पत्रिका कई वर्षोंसे निकल रही है। भारतवर्षमें—विशेषकर उत्तर-भारतमें—मधुमक्खी-पालनका काम अन्य देशोंकी अपेक्षा बहुत पिछड़ा हुआ है। यू० पी० के कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके दिनोंमें जब हमने मधुमक्खी-पालनका कार्य प्रारम्भ किया था, तब अनेक लोगोंको आशंका थी कि यह कार्य सफलतापूर्वक नहीं चल सकेगा; पर 'विशाल भारत' के पाठकोंको जानकार प्रसन्नता होगी कि ज्योलीकोटमें श्री मुर्त्तूके तत्वावधानमें मधुमक्खीके पालनका जो काम हो रहा है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। हमें आशा है कि ज्योलीकोटके मधुमक्खी-पालनका काम कुछ ही वर्षोंमें एक आदर्श केन्द्र बन जायगा, जहाँसे मधुमक्खी-पालनकी शिक्षा प्राप्त करके सैकड़ों किसान अपने बग़ीचों और खेतोंमें मधुमक्खी पालेंगे। हमें दुःख है कि पढ़े-लिखे लोग अभी मधुमक्खी-पालनमें उतनी दिलचस्पी नहीं लेते, जितनी कि उन्हें लेनी चाहिए। युक्त-प्रान्त और बिहारके जिन ज़िलोंमें मधुमक्खीका पालन सम्भव है, वहाँपर यदि मधुमक्खियाँ पाली जायँ, तो न केवल लोगोंकी कुछ आमदनी बढ़ेगी, वरन् उन्हें आसानीसे 'देवताओंका भोजन' शहद खानेको मिलेगा।

हमारा आग्रह है कि जिन लोगोंको ग्राम-सुधारसे तनिक भी दिलचस्पी है और जो अपना स्वास्थ्य सँभालना चाहते हैं, वे अंगरेज़ीकी इस पत्रिकाके ग्राहक बनें। पत्रिका पढ़नेसे उनके ज्ञानकी वृद्धि होगी और मधुमक्खी-पालनमें उनकी रुचि; क्योंकि इसमें मधुमक्खी-पालनपर छोटे, पर सारगर्भित लेख रहते हैं।

**'साधना'** : सम्पादक—श्री प्रवासीलाल वर्मा; प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड सन्स, शफ़ाखाना रोड, आगरा; वार्षिक चन्दा २); एक अंक ≡)।

'साधना' के मार्च, अप्रैल और मईके अंक हमने बड़े ध्यानसे पढ़े हैं। प्रवासीलालजीके हाथमें आने ही 'साधना' की कायापलट-सी हो गई। प्रवासीलालजी मुद्रण-कलाके तो विशेषज्ञ हैं ही; पर साथ ही सम्पादन-कलाके भी वे मार्मिक जानकर हैं, इसीलिए 'साधना' में लेखोंका चयन बहुत सुन्दर हुआ है। सफल सम्पादककी एक कसौटी यह है कि वह इस बातको अच्छी तरह समझता हो कि किस लेखमें कौन-सी चीज़ नहीं जानी चाहिए। इसी दृष्टिसे 'साधना' के सभी लेख छापे गए हैं। भरतीकी चीज़ इसमें कोई नहीं है। अप्रैलके अंकमें 'पंचवटी-पर्याय-लोचन'-शीर्षक लेख विस्तृत होनेपर भी केवल अध्यापकी ढंगसे लिखा गया है। आलोचनाकी जो दीवारें खड़ी की जा रही हैं, उनका ख़याल वर्माजी ज़रूर रखेंगे, ऐसी हमें आशा है। 'साधना'की इस कायापलटके लिए सम्पादक और प्रकाशक बधाईके पात्र हैं। हमें आशा है, 'साधना' उन्नतिके पथपर अग्रसर होकर अपने स्टैण्डर्डको क़ायम रखेगी।

**'जीवन'** : सम्पादक—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'; प्रकाशक—जीवन-साहित्य मण्डल-ट्रस्ट, जयेन्द्रगंज, लश्कर, ग्वालियर; वार्षिक चन्दा ३)।

देशी रियासतोंसे राष्ट्रीय पत्रका निकालना और वह भी वर्तमान महायुद्धके दिनोंमें दुःसाहस नहीं, तो बड़े साहसका काम है। 'जीवन'की आलोचना अभी तक हमने जान-बूझकर नहीं की; क्योंकि हमारा अनुभव कुछ ऐसा है कि हिन्दीके पत्रोंकी प्रायः अकाल मृत्यु हुआ करती है। श्री मिलिन्दजीसे हम क्षमा-याचना करते हैं कि हम उनके पत्रकी भी आलोचना इतने दिनों बाद कर रहे हैं। हमें आशंका थी कि युद्धकी कठिनाइयोंके कारण 'जीवन'का जीवन संकटमें न पड़ जाय; पर हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि 'जीवन' अपने मार्गके रोड़ोंको ठुकराता हुआ अपने आदर्शपर दृढ़ है। जैसा हम लिख चुके हैं कि किसी देशी रियासतसे किसी निर्भीक पत्रका निकालना आसान काम नहीं है। केवल इसी दृष्टिसे 'जीवन' की सचाई और कर्तव्य-परायणताकी जितनी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है। 'जीवन' की [illegible] और भावुकताओंकी खरी बातें, विवेचनात्मक लेख और देशी रियासतों-सम्बन्धी उसकी टिप्पणियाँ प्रशंसनीय होती हैं। हमें आशा है, सब लोगोंके अतिरिक्त देशी रियासतोंके पाठक 'जीवन' को अपनाकर अपने [illegible] मिलिन्दको निश्चिन्त करेंगे और 'जीवन' [illegible] करेंगे।

**'जीवन-सखा' 'व्यायाम-अंक'**; सम्पादक—डा० [illegible]-प्रसाद सिंह; प्रकाशक—जीवन-सखा-कार्यालय, हिम्मतगंज, प्रयाग; वार्षिक चन्दा ३); एक अंकका ≡)।

प्रयागके प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृहसे निकलनेवाले इस प्रसिद्ध मासिकका जनवरी, १९४२ का विशेषांक अत्यन्त उपादेय है। इसमें इतनी उच्चकोटिकी स्वास्थ्य तथा व्यायाम-विषयक सामग्री है कि उसको मननकर तथा तदनुसार अपना आहार-विहार नियमितकर प्रत्येक प्राणी अपना जीवन सुधार सकता है। सम्पादक द्वारा लिखित 'आसन-व्यायाम' लेखमें योगके मुख्य-मुख्य आसनोंका बड़ी सरल भाषामें सचित्र वर्णन है, जिसे पढ़कर कोई भी स्वास्थ्य-इच्छुक योग क्रियाएँ आरम्भ कर सकता है। भोजन, मालिश, लघु-व्यायाम आदि लेख सभी बड़े कामके हैं। सूर्य-नमस्कारकी प्रसिद्ध व्यायाम-प्रणालीका पूरा-पूरा सचित्र वर्णन है तथा 'हर्निया', मोटापा आदि विशेष रोगोंके प्राकृतिक इलाजका पूरा विवरण है। अन्य महत्त्वपूर्ण लेखोंमें 'शरीरको सुडौल बनानेका एक अचूक उपाय', 'टहलनेका आनन्द', 'योग-क्रिया और आन्तरिक सफ़ाई', 'नृत्य और व्यायाम', '[illegible] कसरतें' आदि लेख सुपाठ्य और उपयोगी हैं। १२० पृष्ठका ऐसा सर्वांग-पूर्ण विशेषांक निकालनेपर सम्पादक महोदय बधाईके पात्र हैं।

**'नवचेतन'** ( [illegible] ); सम्पादक—श्री [illegible] विट्ठलदास [illegible]; [illegible] प्रेस, [illegible], [illegible] स्ट्रीट, कलकत्ता; वार्षिक मूल्य [illegible]; एक प्रतिका [illegible]।

गत १२ अप्रैल, १९४२ को [illegible]

सम्पादक श्री चाँपसी विट्ठलदास उद्देशीने अपने जीवनके ५० वर्ष पूरेकर ५१ वें में प्रवेश किया है। हिन्दू-धर्मके अनुसार जीवनको जिन आश्रमोंमें बाँटा गया है, उसके हिसाबसे आपको अब वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करना चाहिए। पर पिछले २० वर्षोंसे आपने जिस 'नवचेतन'को तन, मन और धन लगाकर गुजरातीका प्रथम श्रेणीका साहित्य एवं कला-प्रधान मासिक पत्र बनाया है, उसे छोड़कर क्या वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करना ठीक और बुद्धिमत्ता-पूर्ण होता? अतः आपने साहित्य-सेवाको ही अपने वान-प्रस्थ-आश्रमका आधार बनाया है और 'नवचेतन'के २१ वें वर्षका पहला अंक 'तन्त्री-वनप्रवेशांक'के नामसे निकाला है। इस सम्बन्धमें आपने लिखा है—"५१ वें वर्षसे मेरी साहित्य-सेवा शिथिल नहीं होगी, इसके प्रमाण-स्वरूप यह सारा अंक मैंने ही लिखा है। जुदा-जुदा विषयोंपर क़लम चलाई है। साहित्य-प्रवृत्तिमें ही सतत लगे रहनेवाले जीवके लिए वानप्रस्थ-आश्रम-प्रवेशका उत्सव मनानेका इससे अधिक अच्छा ढंग और क्या हो सकता है?" ऐसा करके उद्देशीजीने अन्य साहित्य-सेवियोंके सामने एक अनुकरणीय उदाहरण पेश किया है।

प्रस्तुत अंकके प्रकाशनकी सूझ एकदम नई और मौलिक है। उसमें प्रकाशित उद्देशीजीकी कविताएँ, लेख और कहानियाँ जहाँ उनकी योग्यता, प्रतिभा और अध्ययनशीलताकी द्योतक हैं, वहाँ उनकी अनूदित चीज़ें और अंककी सजावट आदि इस बातके प्रमाण भी कि वे कोरे लेखक ही नहीं, एक सुयोग्य सम्पादक एवं पत्रकार भी हैं। आपके तत्वावधान एवं सम्पादकत्वमें निक-लनेके कारण 'नवचेतन' ने न सिर्फ़ 'बीसवीं सदी'के रिक्त स्थानकी पूर्त्ति ही की है, बल्कि गुजरातीके मासिक साहित्यमें अपना सर्वोच्च स्थान बना लिया है। इसका श्रेय उद्देशीजीके अध्यवसायको ही है। हम उद्देशीजीके दीर्घ-जीवनकी मंगल-कामना करते हुए ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि वह आपको और 'नवचेतन' को गुजराती-साहित्यकी अधिकाधिक सेवा करनेका अवसर दे।

### प्राप्ति-स्वीकार

निम्नलिखित पुस्तकोंकी प्राप्ति हम सधन्यवाद स्वीकार करते हैं। चूँकि इनकी केवल एक-एक प्रति ही हमें प्राप्त हुई है, इनकी आलोचना नहीं दी जा सकी :—

( १ ) **वासवदत्ता** : रचयिता—श्री सोहनलाल द्विवेदी ; प्रकाशक—इंडियन प्रेस लि०, पृष्ठ-संख्या ७६, मूल्य लिखा नहीं। ( २ ) **राजस्थानमें हिन्दीके हस्त-लिखित ग्रन्थोंकी खोज** ( प्रथम भाग ) : संपादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए० ; प्रकाशक—हिन्दी-विद्यापीठ, उदयपुर ; पृष्ठ संख्या १८२, मूल्य ३।)। ( ३ ) **कामायनीका सरल अध्ययन** : लेखक—श्री सत्यपाल विद्यालंकार ; प्रकाशक—हिन्दी-भवन, लाहौर ; पृष्ठ-संख्या २८४, मूल्य २।), अजिल्द। (४) **नित्य व्यवहारमें उद्भिजका स्थान** : लेखक और प्रकाशक—डा० नोनीलाल पाल, लेक्चरर, ढाका-विश्वविद्यालय, ढाका ; पृष्ठ-संख्या २८, मूल्य लिखा नहीं।

### भूल-सुधार

गत मईके 'विशाल भारत' में पृष्ठ ५५९ पर 'दुर्गावती' की आलोचनाके अन्तर्गत कालम-पादसे ९वीं पंक्तिमें 'रचना छन्दमें है' के स्थानमें 'रचना छन्द-अछन्द दोनोंमें है' पढ़िए।

## चयन

### आदमी ज़िन्दा जला दिया गया!

न्यूयार्क ( संयुक्त-राष्ट्र अमरीका ) से प्रकाशित होने-वाले नीग्रो-जातिके मुखपत्र 'क्राइसिस' के मार्च, १९४२ के अंकमें एक नीग्रोके ज़िन्दा जलाए जानेका रोमांचकारी संवाद छपा है, जिसका सारांश इस प्रकार है :—

"गत रविवार २५ जनवरीको प्रातःकाल गिरजेकी प्रार्थनाके समय सिकेस्टन ( Sikestan, Mo., ) के ३०० गोरोंने १९४२ का सर्वप्रथम 'लिचिंग' ( मानव-प्रपीड़न ) किया। क्लियो राइट नामके एक घातक रूपसे घायल हुए बंदीको वे लोग सिकेस्टनसे ले गए और क़स्बेकी नीग्रो बस्तीमें ले जाकर उसे ज़िन्दा जला दिया!

"राइटपर एक गोरी स्त्रीकी अस्मतपर हमला करने तथा चोरी करनेका प्रयत्न करनेका आरोप था। गिर-फ़्तारीके समय एक अफ़सरने उसे तीन बार गोलियोंसे

घायल किया। भीड़ने ज़िन्दा जलानेसे पहले घायल अवस्थामें ही क्लियोको एक मोटरके पीछे बाँधकर क़स्बेके रास्तोंमें घसीटा। सरकारी सैनिकों और पुलिसवालोंने भीड़को ऐसा करनेसे रोकनेके बजाय नीग्रो लोगोंको चेतावनी दी कि वे भीड़के लिए रास्ता छोड़ दें।

"गवर्नर फोरेस्ट सी० डोनेलने तुरन्त इस मामलेकी भलीभाँति तफ़तीश करनेका आदेश दिया। जैफ़रसन सिटीमें राज्यके सभी नीग्रो लोगोंके प्रतिनिधियोंने गवर्नरसे भेंट की और प्रार्थना की कि इस सम्बन्धमें शीघ्र ही आवश्यक कार्यवाही की जाय। इसके विरोध-स्वरूप कई जगह नीग्रो लोगोंकी सभाएँ हुईं। नीग्रो-राष्ट्रीय सभाने प्रेसिडेंट रूज़वेल्टसे प्रार्थना की कि क़ानूनके विरुद्ध होनेवाले इस काण्डके सम्बन्धमें आवश्यक कार्यवाही करें। एटर्नी-जनरल फ्रांसिस बिडलके आदेशसे संयुक्त-राष्ट्रके न्याय-विभागके सदस्य यह देखनेके लिए सिकेस्टन गए कि आया वहाँके क़ानूनकी धारा ५२, टाइटिल १८ का उल्लंघन किया गया है या नहीं।

"सिकेस्टनके गोरे नागरिकोंने इस सरकारी हस्तक्षेपके विरुद्ध बड़ा क्षोभ प्रकट किया और सेंट लुईके उन अख़बारोंको ख़रीदना बन्द कर दिया, जिन्होंने 'लिंचिंग'की निन्दा की थी। उन्होंने कहा कि कोई भी आदमी क्लियोको ज़िन्दा जलानेवालोंके ख़िलाफ़ गवाही नहीं देगा। उन्होंने इस बातपर ज़ोर दिया कि 'नीग्रोको उसकी जगह रखनेके लिए' लिंचिंग ज़रूरी है।"

### ब्रिटेनकी नाविक स्थिति

इस महासमरको छिड़े आगामी अगस्त, १९४२ में तीन वर्ष पूरे हो जायँगे। जहाँ तक ब्रिटेनका सम्बन्ध है, उसके लिए यह थलसे अधिक जल और हवाई युद्ध रहा है। तीन वर्षोंके इस समयमें जल-युद्धमें यद्यपि उसे काफ़ी नुक़सान हुआ है, तथापि अब भी उसकी नौशक्ति इतनी है कि वह कहीं भी सफलतापूर्वक जापान और जर्मनीके जंगी-जहाज़ों तथा पनडुब्बियोंसे मोर्चा ले सकता है।

जब यह महासमर छिड़ा, तो ब्रिटेनके पास १५ बड़े जंगी-जहाज़ (बैटिलशिप और बैटिलक्रूज़र) तैयार थे, ९ तैयार हो रहे थे और कइयोंके निर्माणका कार्य आरम्भ हुआ था। इनमें से अब तक ५ नष्ट हो चुके हैं, जब कि पिछले महायुद्धमें ९ नष्ट हुए थे।

आक्रमणकारी और बमवर्षक यानोंको ले जानेवाले जहाज़ (एयरक्राफ़्ट-कैरियर) ब्रिटेनके पास ६ तैयार थे और ६ बन रहे थे। इनमें से ३ नष्ट हो चुके हैं। पिछले महायुद्धमें इनका नाम भी नहीं सुना गया था। इस महायुद्धमें इनके अधिकाधिक महत्वको देखते हुए ब्रिटेनने कई अन्य ऐसे जहाज़ बनाने आरम्भ किए हैं।

इस युद्धके आरम्भ होनेपर ब्रिटेनके पास ७४ 'डेस्ट्रायर' जहाज़ तैयार थे और ३३ बन रहे थे। इनके अलावा ५० 'डेस्ट्रायर' उसे अमरीकासे मिले। इस प्रकार कुल १५७ में से ५८ अब तक नष्ट हो चुके हैं, जब कि पिछले महायुद्धमें ६४ नष्ट हुए थे।

'क्रूज़र' इस युद्धके आरम्भ होनेपर ब्रिटेनके पास ५३ तैयार थे और १३ बन रहे थे। इनमें से १३ नष्ट हो चुके हैं, जिनमें आस्ट्रेलियाका 'सिडनी' भी शामिल है। पिछले महायुद्धमें ब्रिटेनके कुल २५ 'क्रूज़र' नष्ट हुए थे।

पनडुब्बियाँ (सबमेरीन) इस युद्धके आरम्भ होनेके समय ५६ ब्रिटेनके पास तैयार थीं और ५७ तैयार हो रही थीं। इनमें से ३३ नष्ट हो चुकी हैं, जब कि पिछले महायुद्धमें ५४ नष्ट हुई थीं। ये इधर कई और तैयार की जा रही हैं।

इनके अलावा उसके पास १४ सशस्त्र व्यापारी क्रूज़र जहाज़, १४० अन्य जहाज़, १८ सुरंगें बटोरनेवाले (माइन-स्वीपर) जहाज़, २ सुरंगें बिछानेवाले जहाज़ तथा १५ अन्य छोटे जहाज़ थे, जिनमें एक आस्ट्रेलियन 'परमट्टा' भी शामिल है।

नीचेकी तालिकासे पाठकोंको पिछले और इस महायुद्धमें हुए ब्रिटेनके नाविक नुक़सानका तुलनात्मक विवरण मालूम हो जायगा :—

| *पिछले महायुद्धमें* (अगस्त, '१४-दिसम्बर, '१६) | *इस महायुद्धमें* (सितम्बर, '३९-जनवरी '४२) |
|---|---|
| १० बैटिलशिप | ३ बैटिलशिप |
| आडेशस, फार्मिडेबल, इरेंज़िस्टिबल, ट्रायम्फ़, ओशन, रसेल, गोलिएथ, बुलवार्क मैजेस्टिक, किंग एडवर्ड सप्तम। | रायल ओक, प्रिंस आफ़ वेल्स, बरहाम। |
| ३ बैटिल क्रूज़र | २ बैटिल क्रूज़र |
| क्वीन मेरी, इनडिफेटीगेबल, इनविन्सिबल। | रिपल्स, हुड। |

एयरक्राफ्ट-कैरियर

( पिछले महायुद्धमें एयर-क्राफ्ट-कैरियर नहीं थे। )

१६ क्रूज़र

डिफेंस, होग, नाटाल, क्रेसी, वारियर, हाक, अरेथुसा, आरगिल, ब्लैक प्रिंस, एम्फ़ियोन, गुडहोप, पाथफाइण्डर, मनमाउथ, हरमीज़, आबूकिर, पेगासस, हैंपशायर, फालमाउथ, नाटिंघम।

२४ डेस्ट्रायर

टिपेरेरी, माओरी, नेस्टर, अर्न, नोमेड, सक्सेस, टरबूलेंट, कोक्वेट, मेदूसा, रिक्रूट, लुई, ईडन, फारच्यून, नं० १०, लिंक्स, नं० ११, आर्डेन्ट, नं० १२, शार्क, स्पारोहाक, नं० ९६, गोल्डफिंच, वेलोक्स, लाइटनिंग।

३ एयरक्राफ्ट-कैरियर

करेजस, ग्लोरियस, आर्क-रायल।

१३ क्रूज़र

साउदम्पटन, कैलकटा, एफिंघम, करल्यू, केलिप्सो, यार्क, बोनावेन्चर, ग्लाउसेस्टर, फ़ीज़ी, सिडनी, गेलेटिया, डूनेडिन, नेपच्यून।

५८ डेस्ट्रायर

अफरीदी, जिप्सी, फ्रेज़र, ग्रेनविले, डायमण्ड, गुरखा, ग्लोवर्क, आइवन हो, वेनेशिया, रिनक, इमोजेन, ग्रेहाउण्ड, ब्लांश, वेकफुल, जूनो, वेलेन्टाइन, एस्कोर्ट, बासीलिस्क, ह्वाइटले, एकास्टा, इवेण्ट, एस्क, ब्रेज़न, आर्डेण्ट, केली, हण्टर, एक्समाउथ, डेयरिंग, काश्मीर, होस्टाइल, डचेज़, क्रेस्टन, हेपरियो, हेरवार्ड, हार्डी, जैरेसी, आर्चेरेन, एक्समूर, इम्पीरियल, मोहाक, मारगेरी, रैन, डेंटी, व्हिर्लविंड, कोज़क, मेशोना, डिफेंडर, फीयरलेस, थानेट, स्टर्डी, ब्रोडवाटर,

वैसेक्स, स्टानले, किपलिंग, कीथ।

२४ पनडुब्बियाँ

एच०६, ई०२२, ई०१७, ई० १३, ई० १०, ई० ७, ई० ३, ए० ई० २, ए० ई० १, डी० ५, डी० २, बी० १०, ई०, ई०, सी० २९, सी० ३१, सी० ३३, ई० ५, ई०, ६, १८, ई० २४, ई० २६, एच०, ३।

१ मानीटर

एम० ३०।

३३ पनडुब्बियाँ

टारपन, थिसल, ट्राइण्ड, ग्रेम्पस, नरव्हाल, सील, टेम्ज़, रेनबो, रेगूलस, फीएनिक्स, ओस्वाल्ड, ओडिन, ओर्फियस, ओक्सली, स्टरलेट, शार्क, सामन, स्पीयरफिश, अंडाइन, ट्राइटन, केशेलाट, स्नैपर, अनडान्टेड, यूनियन, एच० ४९, डस्क, पी० ३३, पी० ३२, टेटराश, पर्सियस।

१ मानीटर

टैरर।

उपर्युक्त तालिका गत जनवरी मासमें तैयार की गई थी। इसके बाद भी ब्रिटेनके कई जंगी-जहाज़ नष्ट हुए हैं। इनमें से पिछले दिनों जावाके पास जापानके जंगी-बेड़ेसे हुई मुठभेड़में ब्रिटेनके ४ क्रूज़र—डोर्सेटशायर, कार्नवाल, एक्ज़ीटर और आस्ट्रेलियन क्रूज़र 'पर्थ'; ४ डेस्ट्रायर—एनकाउंटर, स्ट्रांगहोल्ड, एलेक्ट्रा और जूपीटर; एक एयरक्राफ़्ट-कैरियर 'इलस्ट्रियस' और एक अन्य आस्ट्रेलियन जहाज़ 'यारा' नष्ट हुए हैं।

ब्रिटेनकी इस नाविक हानिको आर्थिक रूपसे समझनेके लिए पाठकोंको उनके निम्नलिखित मूल्योंका भी ध्यान रखना चाहिए:—

| | |
|---|---|
| डेस्ट्रायर | ६०,००,००० रु० |
| क्रूज़र | २,५०,००,००० रु० |
| बैटिलशिप | १०,५०,०००,०० रु० |

# कविवर पं० घासीराम व्यास

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

गत १७ अप्रैलकी बात है। मेरे मित्र पं० लक्ष्मीचन्द्रजी श्रोत्रियने आकर भर्राई हुई आवाज़में कहा—"सुना आपने? कल प्रातःकाल व्यासजी गोलोकवासी हो गए।"

मेरे पैर-तलेसे ज़मीन खिसक गई। मैं कठिनतासे अपनेको सँभाल सका। जिस समाचारको सुननेकी स्वप्नमें भी

आशंका न थी, उसी दुखद समाचारसे मित्र-मण्डलीमें शोक और सन्नाटा छा गया।

श्री व्यासजी अभी पूरे उन्तालीस वर्षके भी न थे। सं० १९६० वि० की अनन्त चतुर्दशी ( ५ सितम्बर, १९०३ ) को मऊमें आपका जन्म हुआ था। आपके पिता पं० मदनमोहन लाल ( छिंगेलाल ) व्यास मऊके प्रतिष्ठित विद्वानोंमें से थे, और आपकी माता बड़ी विदुषी और राष्ट्रीय विचारोंकी हैं। व्यासजीकी शिक्षा मऊ और जबलपुरमें हुई थी। जबलपुरमें ज्ञानोपार्जन और सत्संगका अच्छा अवसर उन्हें प्राप्त हुआ था। यों तो उनकी योग्यताका परिचय बचपन ही में मिलने लगा था; किन्तु जबलपुरके सत्संगने उनकी प्रतिभाको और भी अधिक विकसित कर दिया। मऊकी राजनीतिक जागृतिका अधिकांश श्रेय आपको, आपकी माताको और आपके अनन्य मित्र पं० रामनाथ त्रिवेदीको है।

श्रीयुत व्यासजी तीन-चार बार जेल गए थे। सर्वप्रथम आपको १४ दिसम्बर १९२१ को राजद्रोहात्मक व्याख्यान देने और कांग्रेसके वालंटियर बनानेके अपराधमें छः मास साधारण क़ैदकी सज़ा मिली, और एक महीना झाँसी-जेलमें रहनेके पश्चात् आप आगरा-जेल भेज दिए गए। वहाँ आप प्रति सोमवारको हिन्दी-कवि-सम्मेलनमें और प्रति शुक्रवारको उर्दू-मुशायरामें भाग लेते थे, और आपकी रचनाओंकी तब ही से सराहना की जाने लगी थी। जेलसे मुक्त होनेपर आपने अपने मित्र पं० रामनाथ त्रिवेदीके साथ बिहार, बंगाल, रामेश्वरम्, गुजरात और महाराष्ट्र प्रदेशका लगभग तीन मास तक भ्रमण किया।

जातीय कार्योंमें सदैव तत्परता और लगनसे आपने सहयोग दिया। 'बुन्देलखण्ड प्रान्तीय सनाढ्य-मण्डल' की संस्थापनामें आपका विशेष हाथ था। दो वर्ष आप उसके मंत्री भी रहे। झाँसीमें 'तुलसी-जयन्ती'के अवसर पर होनेवाले कवि-सम्मेलनोंमें विगत कई वर्षोंसे व्यासजीकी कविताओंकी धूम रहा करती थी। उनकी कितनी ही कविताओंको उसके शिष्य सुनाया करते थे, और वे कविताएँ उखड़ते हुए कवि-सम्मेलनको सफल बनानेमें सहायक हुआ करती थीं। 'वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद्'के कवि-सम्मेलनोंमें भी प्रतिवर्ष आपकी कविताओंकी सराहना होती थी। विद्या-प्रेमी ओरछा-नरेश तथा पन्ना-नरेश भी आपकी रचनाओंको विशेष पसन्द करते थे।

झाँसी, देहली, शिमला, अबोहर आदि कितने ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों और असंख्य कवि-सम्मेलनोंमें आप सम्मिलित हुए और अपनी ललित रचनाओं तथा मधुर कण्ठसे जनताको आनन्द-विभोर किया तथा प्रशंसित हुए। रेडियोपर भी आपने कितनी ही बार कविताएँ सुनाईं।

'बुन्देलखण्ड-साहित्य-मण्डल' के पुनः संगठनपर विचार करनेके लिए गत जनवरीमें ओरछेमें श्रीयुत पं० अमरनाथ झाके सभापतित्वमें जो बैठक हुई थी, उसमें भी आप सम्मिलित हुए थे और अपना अत्यन्त आवश्यक कार्य छोड़कर सीधे नौगाँवसे ओरछा आए थे। उस अवसरपर उन्होंने अपने संग्रहमें से जो सुन्दर कविताएँ सुनाईं थीं, वे अब भी मेरे कानोंमें गूँज रही हैं। गोपियोंके प्रेमका वर्णन करते हुए उन्होंने सुनाया :—

हम योग - कुयोगको जाने कहा,<br>
रसना - रस - रास रसालिनी हैं;<br>
गुणहीन, गँवारिनी ग्वालिनी हैं,<br>
पर प्रीति प्रतीतिकी पालिनी हैं।<br>
द्विज 'व्यास' कहैं तुम ऊधौ सुनो,<br>
सदा सीधी सुचालु सुचालिनी हैं;<br>
भले भूखी रहैं कि चुगें मुकता,<br>
हम मानस राज मरालिनी हैं।<br>
द्विज 'व्यास' रुचै किहि नीरस योग,<br>
सनेह - सुधा - रस बोरनी हैं;<br>
तुम ऊधौ भ्रमौ भरमौ न इतै,<br>
चित चोर हू को चित चोरनी हैं।<br>
घनश्याम छटा अभिराम की त्यों,<br>
मदमाती सुमंजुल मोरनी हैं;<br>
पदपद्मकी प्रेमिका भौंरनी हैं,<br>
नख-चन्द्रकी चारु चकोरनी हैं।

व्यासजी प्राकृतिक कवि थे। उन्होंने प्रायः प्रत्येक विषयपर लिखा है; फिर भी प्रेम-विषयक और राष्ट्रीय रचनाएँ उनकी प्रिय और अपनी पसन्दकी रचनाएँ थीं, और उनमें उन्होंने कमाल हासिल कर लिया था। इतने उत्कृष्ट कवि होते हुए भी वे कितने विनम्र थे, इसे सब ही जानते हैं। 'वीर-ज्योति' की भूमिकामें उन्होंने लिखा है—"इसमें न तो कविता कल-कल्लोलिनीका कलित कलकल निनाद ही है और न सुधासागरकी सुखकर तरल

तरंगें। परन्तु है उथले शुष्क हृदय-सरके बरसाती निर्झरका कर्ण-कटु कोलाहलमय अल्हड़पन।"

प्रबल प्रताप-सा प्रताप हो पराक्रम हो,
विक्रम-सा विक्रम पृथ्वी-सा लक्ष सर दे;
साहस स्वदेश-व्रत-साधन शिवाजीका-सा
छत्रसाल-जैसी दिव्य दृढ़ता अमर दे।
'व्यास' गुण-गौरव गुमान गुरु गोविन्द-सा
लक्ष्मी महारानी-ऐसी वीरताका वर दे;
कर दे स्वतन्त्र भव्य भारत हमारा देवि,
भारती! हमें तू भारतीयतासे भर दे।
खोज कवि हारे मिली उपमा न सुखमा-सी,
वीर व्रतवाली पुण्य पुंज प्रणवाली-सी;
छाई शुभ सुयश प्रतापकी प्रभाती जग,
हिमकर माली अंशुमाली ज्योति जाली-सी।
बाईसाव एक ही शरीरमें प्रत्यक्ष 'व्यास'
त्रिगुणमयी थी त्रयी रूप शक्तिशाली-सी;
महलोंमें लक्ष्मी सभाओंमें सरस्वती थी,
शत्रुओंके सामने वही थी महाकाली-सी।

'सरसी', 'किसान', 'बुन्देलखण्ड', 'चन्द्रमा' आदि शीर्षक कविताएँ आपकी ऐसी हैं, जिन्हें बार-बार सुनकर भी तृप्ति नहीं होती। खेदकी बात है कि आपकी अधिकांश रचनाएँ अभी अप्रकाशित ही हैं। हम सब उस अवसरकी प्रतीक्षा ही करते रहे, जब उनकी रचनाओंका सुन्दर संग्रह हिन्दी-संसारके समक्ष उपस्थित होता।

उनके विचारोंमें कितनी गंभीरता, चरित्रमें कितनी उज्ज्वलता, सिद्धांत-पालनमें कितनी दृढ़ता और स्वभावमें क्षमा और दयाका भाव था, इसे उनके अधिकांश मित्र जानते हैं। उनकी कविताओंका संग्रह एक कवि-सम्मेलनमें खो गया था। अपनी उन कविताओंसे कवियोंको लाभ उठाते देखकर भी आपने किसीसे कुछ नहीं कहा। मऊके सभी क्षेत्रोंमें उनके व्यक्तित्वकी धाक थी। म्युनिसिपल बोर्डके वे सदस्य तथा शिक्षा-समितिके प्रधान थे।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम आघातपर आघात सहते चले जा रहे हैं। बाबू कृष्णबलदेव वर्मा और मुं० अजमेरीजीके अभावकी पूर्तिके लिए हम तरस ही रहे थे कि यह एक और प्रहार हम सबको सहना पड़ रहा है। इन दिवंगत आत्माओंकी शांतिके लिए हमने अब तक सामूहिक रूपमें कुछ भी यत्न नहीं किया। हमारा कर्तव्य प्रेरित करता है कि हम अपने इन अमूल्य रत्नोंकी कृतियोंको उचित रूपमें हिन्दी-संसारके समक्ष रखें। यदि विद्वान और समर्थ साहित्यिक इस दिशामें आगे बढ़ें, तो अत्युत्तम हो।

गणेश-मढैया, झाँसी ]

---

# सम्पादकीय विचार

### महायुद्धकी प्रगति

माल्टापर अँगरेज़ी झंडा बुलन्द रहनेपर भी जनरल रोमलकी सेनाने लीबियामें पूरबकी ओर बढ़ना शुरू कर दिया है, और इन पंक्तियोंके लिखते समय तक लीबियामें देवासुर-संग्राम हो रहा है। लीबियाकी भयंकर गरमीमें भी टैंक और मशीनगनें आग उगल रही हैं। तब्रुकके आसपासकी स्थिति बड़ी संक्रामक हो रही है। कैरोका एक समाचार है कि जिन दिनों माल्टापर भयंकर बमबाज़ी हो रही थी, उन्हीं दिनों जर्मनी और इटलीने रोमलके पास काफ़ी युद्ध-सामग्री भेज दी थी। साथ ही यह भी समाचार मिला है कि विस्तृत ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाके कारण भूमध्यसागर-स्थित ब्रिटिश जंगी-बेड़ा धुरी-राष्ट्रोंके विरुद्ध उतनी सरगर्मी नहीं दिखा सकता, जितनी उसे दिखानी चाहिए। फिर भी अँगरेज़ पहलेसे ही इस प्रकारके आक्रमणके बारेमें सतर्क थे। इसलिए वे अपनी सारी शक्ति लगाकर लीबियामें जर्मन-इटलियन आक्रमणका मुक़ाबला करेंगे। इस समय अँगरेज़ोंके पक्षमें लीबियाकी भयंकर गरमी है, जहाँपर जर्मन और इटलियन सेनाओंको बहुत दूरसे पानी लानेका प्रबन्ध करना पड़ेगा। जनरल रोमलकी चाल अगर स्वेज़-नहरको हथियानेकी नहीं है, तो फिर लीबियाका उसका आक्रमण इसलिए भी हो सकता है कि मिस्रमें अँगरेज़ी सेनाओंका जो टिड्डी-दल पड़ा हुआ है, उसे इस प्रकारके आक्रमणोंसे मिस्रके बाहर न जाने दिया जाय।

पूर्वी मोर्चेपर, हमारे अनुमानके अनुसार, जर्मन आक्र-

मण प्रारम्भ हो गया। कर्च-प्रायद्वीप और ख़ारकोवके आसपास ऐसी संगीन लड़ाई हुई, जिससे वहाँकी धरती भी काँप गई। जर्मनोंने कर्च प्रायद्वीप हथिया लिया और जनरल टिमोशैंकोने ख़ारकोवपर जो 'बेपनाह' हमला किया था, वह बेपनाह साबित नहीं हुआ। इस स्थानपर टैंकोंकी जो भीषण लड़ाई हुई, वैसी अब तक यूरोपमें किसी भी स्थानपर नहीं हुई। जर्मनोंका दावा है कि उन्होंने रूसी आक्रमण न केवल विफल ही कर दिया है, वरन रूसकी कई सेनाओंको नष्ट भी किया है। उधर मास्कोकी विज्ञप्ति है कि वीर रूसियोंने जर्मनोंका वह डटकर मुक़ाबिला किया कि जर्मनोंके दाँत खट्टे हो गए और वे इस मोर्चेपर आगे नहीं बढ़ पाए। असलमें इस क्षेत्रकी लड़ाईका पूरा पता कुछ दिनों बाद चलेगा। हमारे अनुमानसे तो जर्मनीका यह भीषण आक्रमण वह प्रस्तावित महत्वपूर्ण आक्रमण नहीं है, जिसका संकेत हिटलरने अपने भाषणमें किया था। एक बात तै है और वह यह कि वीर रूसी अपनी मातृ-भूमिकी रक्षाके लिए प्रत्येक इंच ज़मीनको अपने ख़ूनसे रँगेंगे और पिछले शीत-कालमें उन्होंने जर्मन आक्रमण रोकनेके लिए काफ़ी तैयारी भी की होगी।

### रूस-जर्मन युद्धकी रूपरेखा

आगामी दो मासोंमें यह स्पष्ट हो जायगा कि रूसकी सरज़मीनपर क्या होने जा रहा है। अगर अगले दो महीनोंमें रूसियोंने जर्मनोंको आगे नहीं बढ़ने दिया, तो फिर जर्मनोंके लिए यह असम्भव होगा कि वे रूसमें अधिक कुछ कर सकें। जर्मनी एस्ट्राखाँ तक पहुँचने और काकेशसके तेलको कुएँ हथियानेके लिए अपनी सारी शक्तिकी बाज़ी लगायगा, और अगर जर्मनी काकेशसपर अधिकार कर सका, तो फिर संसारके सामने लड़ाईका एक नया ही रूप आयगा।

### पश्चिमी मोर्चेकी बात

दुर्भाग्यसे सैनिक-शिक्षासे अनभिज्ञ होनेके कारण हम इस बातको स्पष्ट नहीं लिख सकते कि मित्र-राष्ट्र रूसको सहायता देने और जर्मन शक्तिकी कमर तोड़नेके ख़यालसे फ्रांस या नारवेमें अपनी सेनाएँ क्यों नहीं उतारते? अमेरिकाकी जनता और वहाँके ज़िम्मेदार व्यक्ति इस बातपर ज़ोर दे रहे हैं। पर फ्रांस या नारवेमें १०-२० डिवीज़न फ़ौजें उतारनेसे ही काम न चलेगा। जब तक यातायातके साधन सुदृढ़ नहीं होंगे और जब तक वायुयानों (बमवर्षक और फाइटर्स) का बाहुल्य नहीं होगा, तब तक मित्र-राष्ट्र ऐसा करनेका साहस नहीं कर सकते। कोरी बमबाज़ीसे जर्मनीको हराया भी नहीं जा सकता—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार जर्मनी अपनी अपार वायु-शक्तिसे इंग्लैण्डकी नैतिक कमर नहीं तोड़ सका। युद्धकी सफलताके लिए वायु-सेना, जल-सेना और थल-सेना तीनोंका समन्वय होना चाहिए। कदाचित् मित्र-राष्ट्र अभी यह कर नहीं सके। हाँ, जर्मनीपर वायुयानोंसे अंगरेज़ोंके भीषण आक्रमण होने लगे हैं।

### अंगरेज़ोंका मैडागास्करपर अधिकार

गत मास परिस्थितिसे यह पता चलता था कि जापान जर्मनसे सम्पर्क करनेके लिए सीलोन और मैडागास्करके टापुओंपर अधिकार करेगा। इन दिनों जब कि भूमध्यसागर द्वारा भारत और इराक़को युद्ध-सामग्री भेजनी जोखिमका काम है, तब दक्षिण-अफ्रिका और पूर्वी अफ्रिकाके किनारोंके निकटसे बिना किसी खटकेके सामान भेजा जा सकता है। जापान मैडागास्करके टापूपर किसी प्रकार क़ब्ज़ा कर लेता, तो इराक़, ईरान और भारतके लिए ब्रिटिश यातायातका मार्ग बन्द हो जाते, और फिर जापान वायुयानवाहक जहाज़ों और जंगी-जहाज़ोंके सहारे बग़दादपर भी क़ब्ज़ा करनेका प्रयत्न करता। अंगरेज़ोंने इसलिए पहलेसे ही जापानकी इस चालका काट कर दिया और अंगरेज़ोंके हिन्द महासागरके यातायात-मार्ग सुरक्षित हो गए—कम-से-कम इराक़, ईरान और पश्चिमी भारतीय समुद्र-तटके यातायात-मार्ग।

### बर्मापर जापानका अधिकार

जनरल एलेक्ज़ेण्डर अपनी अधिकांश सेनाओंको भारतवर्ष सुरक्षित ले आए, और सम्पूर्ण बर्मापर जापानियोंका अधिकार हो गया। जनरल एलेक्ज़ेण्डरने अपनी वापसीपर जो बयान दिया है, उसमें बर्माके युद्धकी कठिनाइयोंका वर्णन किया है कि उनकी सेनाएँ बर्मामें जिस प्रकारका युद्ध हुआ, उसके लिए भलीभाँति तैयार न थीं। उनके पास भारी टैंक, बड़ी-बड़ी तोपें और अन्य युद्ध-सामग्री प्रचुर मात्रामें थी; पर बर्माकी लड़ाईके लिए हलके हथियारों और जंगल-युद्ध-प्रवीण सैनिकोंकी आवश्यकता थी।

### दोष किसका ?

हमारा सम्बन्ध न तो अपने देशके सैनिक-विभागसे

है और न हम सैनिक समस्याके विशेषज्ञ ही हैं। पर साधारण बुद्धि यह कहती है कि जापानसे अंगरेजोंकी लड़ाई दिसम्बरके दूसरे सप्ताहमें हुई थी—मलाया चला गया, सिंगापुरका पतन हो गया और वहाँसे ब्रिटिश सरकारने यह सबक़ क्यों नहीं सीखा कि बर्मामें किस प्रकारकी लड़ाई लड़नी पड़ेगी और फिर रंगूनपर आक्रमण होनेसे पहले ब्रिटिश अधिकारियोंने लम्बी-चौड़ी डींगें क्यों हाँकीं? बर्मामें यातायातकी कठिनाइयाँ थीं। तो इसमें दोष किसका? असलमें एक बात तो यह है—जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं—कि बर्मामें रेल और सड़कें जितनी बनाई गईं, वे सब बर्माके दोहनके लिए ही बनाई गईं। कुछ भी हो, क्रियात्मक कल्पनाशक्तिका अभाव अवश्य रहा है। ब्रिटिश सरकारके साथ इसकी ज़िम्मेदारी ब्रिटिश पार्लमेंटपर हो या वहाँके सेना-विभागपर, सो हमें नहीं मालूम; पर अपने शत्रुकी शक्तिका पता न रखना किसी देश-विशेषके गुप्त-विभागकी नालायक़ी ज़रूर है।

## कौन ठीक है?

गत मास ब्रिटिश पार्लमेंटमें बर्माकी लड़ाईपर जो वाद-विवाद हुआ, उसपर होर बेलीशा साहबने कहा कि हमारे सिपाहियोंको मच्छड़ोंके आतंक और गर्दन तक पानीमें लड़ने और खाने-पीनेकी कमीकी हालतमें लड़ना पड़ा। जनरल वेवल साहबने इसका प्रतिवाद किया। हम इस प्रतिवादपर ही विश्वास करते हैं, वरना जनरल एलेक्ज़ेण्डर साहब जैसे वीर जनरल इतने सिपाही बर्मासे बचाकर कैसे ले आते? मुसीबतमें अपने आदमियोंको बचा ले जाना हँसी-ठट्ठा नहीं है। इस कलाके जनरल एलेक्ज़ेण्डर विशेषज्ञ हैं। शत्रुपर घोर आक्रमण करनेके वे पक्षपाती हैं। उनके जीवनका मक़ूला है 'आक्रमण करो' और 'शत्रुको चैन न लेने दो।' शायद इस मक़ूलेके कारण ही डंकर्कमें वे इतने आदमी बचा सके और बर्मामें भी अपनी असीम बहादुरीके कारण इतनी जानें बचा सके। पर बर्माके मामलेमें हमें एक बातके निर्णय करनेमें बड़ी कठिनाई है। बर्माके गवर्नर साहबने, जो भारतवर्ष तशरीफ ले आए हैं, अभी हालमें फरमाया था कि यह बात ग़लत है कि बर्माके लोगोंने जापानियोंका साथ दिया। पर सेनाके एक उच्चपदाधिकारीने हाल ही में कहा है कि बर्माके १० फी-सदी लोग जापानियोंके साथ थे, १० फी-सदी जापानियोंके विरोधमें थे और ८० फी-सदीको युद्धमें कोई रुचि न थी। यदि ऐसी बात है, तो सक्रिय दृष्टिसे बर्माके आधे आदमी ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध थे। पर क्या प्रोपेगेण्डाका यह ढंग ठीक है?

## जापानकी चाल

जापानने बर्मा जीतनेके बाद चीनपर दो ओरसे आक्रमण किया—बर्माकी सीमासे यूनान सूबेमें और पूरबकी ओरसे चीकियांगमें और चीकियांग सूबेकी राजधानी किन्हवा पर क़ब्ज़ा कर लिया। प्रतीत ऐसा होता है कि जापान भारत या रूसपर आक्रमण करनेसे पूर्व चीनको इतना बेदम कर देना चाहता है कि वह युद्धके योग्य न रहे। या फिर उसकी यह भी चाल हो सकती है कि चीकियांग सूबेको हथियाकर वह वहाँके हवाई-अड्डोंको अपने विरुद्ध प्रयोग होनेसे रोक दे। पिछली बार अमेरिकन वायुयान-वाहक जहाज़ोंसे अमेरिकन बमबार जहाज़ोंने टोकियोपर बम गिराए और वे चीकियांगके हवाई-अड्डोंमें आ उतरे। चीकियांगके जापानके अधिकारमें आनेसे फिर इस प्रकारकी घटनाकी आशंका नहीं रहेगी। तीसरी बात यह भी हो सकती है कि जापान चीनके पूर्वी किनारेसे बर्मा तक अपने ख़ुश्की मार्गको सुरक्षित रखना चाहता है। बर्माके अंगरेज़ोंके हाथोंसे निकल जानेसे और चीकियांग सूबेके निकलनेसे चीनकी जो संकटापन्न दशा हो सकती है, उसकी कल्पना की जा सकती है। एक आशा-किरण यह है कि चीनियोंने गत पाँच वर्षोंसे अपने देशकी रक्षाके लिए जो बलिदान किया है, उसका स्मरण-मात्र उन्हें देश-रक्षाके लिए प्रोत्साहन देगा।

## दीनबन्धु स्मारक-फंड

पाठकोंको, जैसा कि समाचारपत्रोंसे मालूम है, यह जानकर प्रसन्नता होगी कि देशके प्राण महात्मा गांधीने 'दीनबन्धु-स्मारक' के लिए पाँच लाखसे कुछ ज़्यादा रक़म इकट्ठी कर ली। पाँच लाखके लिए उन्होंने अपील निकाली थी। शायद उस अपीलसे साठ हज़ार रुपए आए थे। लेकिन गत मास महात्माजी सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री घनश्यामदास बिड़लाके कहनेसे आठ दिनके लिए बम्बई गए और छः लाखसे कुछ ज़्यादा रुपए इकट्ठे कर सके। इस चन्देकी रक़मके बारेमें स्वयं महात्माजी लिखते हैं—"जहाँ इस निधिमें धनाढ्य लोगोंकी बड़ी-बड़ी रक़में आई हैं, वहाँ सारे हिन्दुस्तानके अनेक अज्ञात लोगोंकी तरफ़से छोटी-छोटी रक़में भी मिली हैं। इन रक़मोंके भेजने

या देनेवालोंमें पारसी, ईसाई, यहूदी, मुसलमान, हिन्दू वग़ैरह सभी शामिल थे।"

महात्माजीने लिखा है कि 'दीनबन्धु-स्मारक-फंड'की रक़म मिल जानेसे उनके मनका एक बड़ा भारी बोझ उतर गया। ठीक है; पर साथ ही हमें लज्जा भी आती है कि दीनबन्धु-जैसे व्यक्तिके लिए देशकी वर्त्तमान परिस्थितिमें बापूजीको इतना कष्ट उठाना पड़ा। यह रक़म तो बहुत पहले—उनकी अपील करनेके बाद ही—इकट्ठी हो जानी चाहिए थी। बापूजीके वर्तमान प्रयत्नसे दो बातें और भी साफ़ हो गई और वे ये कि (१) बापूजीके हृदयमें एक सच्चे और ईमानदार अंगरेज़के प्रति कितनी श्रद्धा है, (२) आज हमारे देशमें ऐसा कोई दूसरा आदमी नहीं है, जो इतनी बड़ी रक़म इतनी जल्दी और स्नेहसे इकट्ठी कर सके।

### स्व० दीनबन्धुकी अन्तिम इच्छा

पाठकोंको मालूम होगा कि स्वर्गीय दीनबन्धुने अपने निधनसे पूर्व शान्तिनिकेतनके हिन्दी-भवनके सम्बन्धमें एक लेख लिखा था, जिसको देशके अनेक पत्रोंमें भेजनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। उस लेखमें दीनबन्धुने आग्रह किया था कि हिन्दी-भवनके लिए पुस्तकें, अल्मारियाँ और अन्य सामान लोगोंसे आने चाहिएँ और हिन्दी-भवनके निकट ही एक धर्मशाला भी बननी चाहिए, जिसका मूल्य शायद डेढ़-दो हज़ारके क़रीब होगा। हमें आशा है कि यह रक़म हिन्दी-पाठक शीघ्र ही पूरी कर देंगे।

### 'मेंढ़की भी चली मदारोंकी'

संसारमें कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो यह समझते हैं कि संसारकी तीन-चौथाई अक़्ल उनकी खोपड़ीमें है और शेष एक-चौथाईमें शेष दुनिया है। कामरेड एम० एन० राय भी ऐसे ही व्यक्तियोंमें प्रतीत होते हैं। जबसे उन्हें कांग्रेस छोड़नी पड़ी, तबसे कांग्रेसके विरुद्ध वे अपना बेसुरा राग अलाप रहे हैं। उसे हम बावलेकी बड़ कहें या विकृत मस्तिष्ककी उपज—यह हमारी समझमें नहीं आता। गत १० मईके अपने पत्र 'इंडिपेंडेंट इंडिया' में राय साहब लिखते हैं—"रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी (यानी मि० रायकी पार्टी) को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ब्रिटिश जनता इस बातको महसूस करना शुरू कर रही है कि कांग्रेस ही भारतवर्ष नहीं है और वह राजनीतिज्ञोंके एक बोलनेवाले दलके अतिरिक्त और किसीका प्रतिनिधित्व नहीं करती। यानी राजनीतिज्ञोंका परिस्थितिपर अधिकार इसीलिए है, क्योंकि उनका प्रेसपर क़ब्ज़ा है और ब्रिटिश सरकार उनको आवश्यकतासे अधिक महत्व देती है।" (The Redical Democratic Party is happy to know that British public opinion is beginning to realise that the Congress is not India, that it does not represent anything more than a vocal group of politicians, who have been dominating the situation because of their control of the press and the undue importance attached to them by the British Government.)

पाठकोंको यह भी मालूम होगा कि सर स्टैफ़र्डके भारत-आगमनपर राय-पार्टीने एक खुला पत्र सर स्टैफ़र्डको भेजा था, जिसमें एक स्थलपर कहा गया था—"क्रिप्स-प्रस्तावके अनुसार केन्द्रीय सरकारका पुनर्निर्माण तुरन्त हो जाना चाहिए। यह बड़े दुःखकी बात होगी, यदि शक्ति और अधिकार खुल्लमखुल्ला फ़ासिस्ट-विरोधी लोगोंको न देकर ऐसे नेताओंको दिए गए, जो आक्रमणकारीसे सन्धि कर लेंगे।" (The Central Government should be immediately reconstructed along the lines of the Cripps offer. It would indeed be irony to withhold from avowed anti-Fascists the authority and power offered to the leaders who would make peace with the invader.)

इसके साफ़ मानी यह हैं कि ब्रिटिश गवर्मेंटको कांग्रेससे कोई समझौता नहीं करना चाहिए, क्योंकि कांग्रेसके नेता तो आक्रमणकारियोंसे सुलह कर लेंगे। आख़िर राय साहबको यह बात कैसे मालूम हुई कि कांग्रेस या मुस्लिम-लीग जापानियोंसे समझौता कर लेगी? कांग्रेसकी जो स्पष्ट नीति है, उसपर काफ़ी प्रकाश डाला जा चुका है। कांग्रेसका कहना तो यह है कि जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं हो जाता, तब तक वह जापानियोंका सफल मुक़ाबला नहीं कर सकता। एक समय था, जब मन्त्रिमंडल बनाने की धुनमें राय साहबने आकाश-पातालके कुलाबे मिलाए थे और अब राय साहबके दिमाग़में इतनी सफ़ाई आई है कि उन्हें जाने क्यांसे क्या नहीं सूझ रहा। महात्मा

गांधीने तो अपनी नैतिक सहानुभूति चीन और रूसके साथ प्रकट की है। अंगरेज़ी सरकारके प्रति उनकी सहानुभूति नहीं रही। पर क्या स्टालिन और राय साहबमें दुबारा स्नेह क़ायम हो गया है? क्या वे बतायँगे कि वे रूससे क्यों निकाले गए और बोरोडीनके साथ चीनमें उन्होंने जो गड़बड़-घोटाला किया, उसकी ज़िम्मेदारी किस पर है? असलमें राय साहब अपने खिसियानपटमें बेसर-पैरकी हाँकने लगे हैं और उनके बारेमें इससे ज़्यादा और हम क्या कहें :—

"साथ ले-देके अपने यारोंको,
मेंढ़की भी चली मदारोंको।"

### देशी नरेश और भारतीय स्वतन्त्रता

भारतीय स्वतन्त्रतामें देशी नरेशोंकी समस्याका एक प्रश्न भी बड़ा जटिल है; पर हमारे ख़यालसे यह प्रश्न बुनियादी प्रश्न नहीं है। वह तो एक विस्तारका प्रश्न है। सूर्यके निकलते ही जैसे अन्धकार लोप हो जाता है, उसी प्रकार भारतके स्वतन्त्र होते ही हिन्दू-मुस्लिम-समस्या और देशी नरेशोंकी समस्या भी बड़ी आसानीसे सुलझ जायगी। देशी नरेशोंकी वर्त्तमान ग़ैर-ज़िम्मेदारीका स्रोत ब्रिटिश सत्ता है। देशी नरेश ब्रिटिश सरकारके राजनीतिक विभागके पुतल्ला-मात्र ही हैं। पिछले दिनों नरेन्द्र-मण्डलकी बैठकमें ड्यूक आफ़् कनाटके निधनपर एक शोक-सूचक प्रस्ताव पास किया गया; पर हिन्दुस्तानीके नाते नरेन्द्र-मण्डलके चांसलर तथा किसी और देशी नरेशने कवि-सम्राट् डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरके निधनपर कोई संवेदनाका प्रस्ताव पास नहीं किया। वे व्यक्ति जो राष्ट्रके ऐसे महापुरुषपर शोक प्रकट करनेका साहस नहीं करते, उनके बारेमें क्या कहा जाय? यदि यह कहा जाय कि व्यक्तिगत रूपसे नरेन्द्र-मण्डलके नरेश कवि ठाकुरके प्रति वही श्रद्धा रखते हैं, जो अन्य लोग, तो इसके मानी यह हुए कि नरेन्द्र-मण्डल देशी नरेशोंकी अपनी चीज़ नहीं है। संसारके प्रत्येक भागमें गुरुदेवके निधनपर शोक-प्रस्ताव पास हुए हैं। चीनमें एक कहावत है कि जो ऐसे व्यक्तिके निधनपर शोक प्रकट नहीं करता, वह देशका नागरिक होनेका भी अधिकारी नहीं है। भारतके स्वतन्त्र होनेपर देशी नरेश इसी भूमिमें रहेंगे और देशी रियासतोंकी समस्या बड़ी आसानीसे हल हो जायगी।

### 'आज़ादीका मूल्य'

महात्मा गांधीने अपनी बम्बईकी पिछली यात्रामें पत्रकारोंके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कि क्या आपने अहिंसक असहयोग द्वारा विदेशी आक्रमणसे हिन्दुस्तानकी रक्षा करनेके लिए कोई नई योजना तैयार की है, कहा—'आपको ग़लत ख़बर मिली है। मेरे मनमें कोई ख़ास योजना नहीं है। अगर होती, तो मैं आपके सामने ज़रूर रखता। परन्तु मुझे लगता है कि शुद्ध अहिंसक असहयोगके सम्बन्धमें जो सूचना मैं पहले कर चुका हूँ, उसके उपरान्त कुछ भी कहनेको नहीं रहता। अगर सारा हिन्दुस्तान उसे अपनाले और एक दिल होकर उसपर अमल करे, तो मैं यह साबित कर सकता हूँ कि रक्तकी एक बूँद भी गिराए बिना जापानी शस्त्रास्त्रोंकी या किसी भी संगठित शस्त्र-बलकी शक्तिको बेकार बनाया जा सकता है। इसके लिए शर्त्त यह है कि हिन्दुस्तान किसी भी हालतमें, रंचमात्र भी, अपनी बातसे न हटनेका दृढ़ निश्चय कर ले और करोड़ों मनुष्योंकी आहुति देनेको तैयार रहे। मेरे नज़दीक यह एक सस्ता सौदा होगा, और इतनी कम क़ीमतसे हासिल की हुई यह जीत एक शानदार जीत होगी। हो सकता है कि शायद हिन्दुस्तान आज इतनी क़ीमत देनेको तैयार न हो। मुझे आशा है कि यह सच नहीं है; लेकिन किसी भी देशको, जो अपनी आज़ादीको क़ायम रखना चाहता है, इस तरहकी कुछ-न-कुछ क़ीमत तो देनी ही होगी। रूसियों और चीनियोंने जो क़ुर्बानी अब तक की है, वह ज़बरदस्त है, और वे अपना सर्वस्व तक स्वाहा करनेको तैयार हैं। यही चीज़ दूसरे देशोंके बारेमें भी कही जा सकती है; फिर चाहे वे चढ़ाई करनेवाले हों या आत्म-रक्षा करनेवाले, उन्हें भारी क़ीमत देनी पड़ रही है। इसलिए हिन्दुस्तानके सामने एक अहिंसक तरीक़ा रखकर मैं उसे उससे बढ़कर कोई जोखिम उठानेको नहीं कह रहा, जो दूसरे देश आज उठा रहे हैं, और जो ख़ुद हिन्दुस्तानको उठानी पड़ती, बशर्त्ते कि वह सशस्त्र विरोध करता।'

### एमरी : राजनीतिक रिपवान विंकल

एमरी साहब उन कट्टरपंथी ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंमें से हैं, जिनके रोम-रोममें ब्रिटिश सत्ता और साम्राज्यवादके कीटाणु घर कर गए हैं। सर स्टैफ़र्डके भारतीय मिशनकी असफलताने तो उनके पैर और मज़बूत कर

दिए हैं। अपने साम्राज्यवादी चश्मेसे उन्हें दुनियाके क्रान्तिकारी परिवर्त्तन नज़र नहीं आ रहे। पिछले दिनों साम्राज्य-दिवसपर उन्होंने जो भाषण दिया, उसमें कुछ वाक्य उनकी मनोवृत्तिके द्योतक हैं। उन वाक्योंका अविकल अनुवाद है—(१) ब्रिटिश साम्राज्य चाहे कितना भी दोषपूर्ण क्यों न रहा हो; पर जगत्में स्वतंत्रता और न्यायका सर्वश्रेष्ठ एजेंट वह अवश्य रहा है। (२) आज हम जिस संकटमें पड़ गए हैं, उसका कारण यह है कि गत महायुद्धके बाद जो समय उपस्थित था, उसमें हमने साम्राज्यके प्रति वह आस्था और श्रद्धा नहीं रखी, जो रहनी चाहिए थी। (३) बर्मा, मलाया, हांगकांग, सिंगापुर आदि इसलिए हमारे हाथसे नहीं निकल गए कि वहाँके लोगोंके हृदयमें साम्राज्यके प्रति भक्ति कम हो गई थी, बल्कि इसलिए निकल गए कि न हमने उन्हें युद्धकी शिक्षा दी और न उनसे युद्धके लिए टैक्स ही वसूल किया।

ब्रिटिश साम्राज्य स्वतन्त्रता और न्यायका जैसा एजेन्ट है, उसको फ्रेंच, ज़ेक्स, पोल्स न जानते हों; पर भारत-वासी इस बातको ख़ूब जानते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यवादके मानी भारतवर्षमें क्या हैं। देशकी घोर ग़रीबी, बेबसी, निहत्थापन इस एजेन्सीके कुछ काले कारनामे हैं। संसारमें युद्धोंकी जननी यह साम्राज्यवादी राक्षसी है। यों कहनेके लिए तो ठगी-प्रथाके ज़मानेमें ठग लोग भी ठगीको एक धार्मिक संस्था मानते थे। एमरी साहबके दूसरे वाक्यके क्या यह मानी हैं कि गत महायुद्धके बाद ब्रिटिश साम्राज्यवादी फ़ौलादी शिकंजा ढीला कर दिया गया था? नीग्रो-दास-प्रथाको प्रोत्साहन किससे मिला? चीनमें अफ़ीमका ज़बरदस्ती व्यापार करके, टर्कीमें विशेषा-धिकार मनवाकर, बेल्जियन कांगोमें निहत्थोंका ख़ून बहाकर, रेलों और ट्रामोंमें गोरे-कालेका भेदकर साम्राज्य-वादी किस मुँहसे न्यायका ढोल पीटते हैं? हमारा तो ख़याल है कि अंगरेज़ोंके लिए संकटका कारण साम्राज्यकी लिप्सा ही है, और एमरी-जैसे लोग उस घृणित प्रथाके पोषक और आधुनिक दृष्टिसे राजनीतिक रिपवान विंकल हैं।

### 'सैनिक'पर प्रहार

उत्तर-भारतके राजनीतिक इतिहासमें आगरेके 'सैनिक' का संघर्ष अपना विशेष स्थान रखता है। जितनी बार उसपर नौकरशाहीके प्रहार हुए हैं, उतने पिछले बीस वर्षोंमें भारतके किसी अन्य पत्रपर नहीं हुए। सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित होनेके बाद एक हज़ारकी ज़मानत देकर 'सैनिक' निकाला गया था। फिर इलाहाबादकी कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें दो प्रतिबन्धित प्रस्तावोंको 'सैनिक'ने छाप दिया था। छापनेका कारण यह था कि एसोशिएटेड प्रेसने, जो एक प्रकारसे अर्द्ध-सरकारी समाचार-संस्था है, पहले एक समाचार भेजा कि सरकारने दो प्रस्तावोंपर प्रतिबन्ध लगा दिया है, और बादमें वे दोनों प्रस्ताव एसोशिएटेड प्रेस द्वारा 'सैनिक' को भेजे गए। इसी धारणासे कि एसोशिएटेड प्रेस प्रतिबन्धित प्रस्तावोंको क्यों भेजेगा और यदि भेजेगा, तो बादमें आवश्यकता होनेपर उनके छापनेका निषेध कर देगा। सवाल यह है कि आख़िर सरकार एसोशिएटेड प्रेसके साथ क्या व्यवहार करने जा रही है? वैसे 'सैनिक' प्रेससे शीघ्र ही 'अमर सैनिक' पत्र निकाल दिया गया और इस प्रकार 'सैनिक' मरकर भी अमर हो गया है। पर हमें देखना यह है कि नौकरशाही इस मामलेमें सहानुभूतिसे काम लेती है या उसका वही नासमझीका रुख़ रहेगा?

### 'नेशनल हेरल्ड'की जमानत ज़ब्त

लखनऊके कांग्रेसी अंगरेज़ी पत्र 'नेशनल हेरल्ड'की यू० पी० सरकारने छः हज़ारकी जमानत ज़ब्त कर ली और ज़ब्तीका कारण है उसमें छपे ६ लेख। क्या यू० पी० सरकारने समाचारपत्र-परामर्शदायिनी कमेटीसे कुछ परामर्श किया था अथवा ये परामर्शदायिनी समितियाँ अन्धोंकी आँखोंके समान और अमेरिकाके लोगोंको दिखानेके लिए विजूका ( Scare crow ) मात्र ही हैं?

### सिन्धमें अराजकता

सिन्धके पीर पगारोके अनुयायी हूर कहलाते हैं। वे अपने पीरको छोड़कर और किसीसे सीधे हाथसे सलाम नहीं करते हैं। बाएँ हाथसे करते हैं। आपसमें हूर लोग एक दूसरेसे भेंटकर मिलते हैं। जबसे पीर पगारोको गिरफ़्तार करके बाहर भेज दिया गया है, तबसे हूरोंके उपद्रव सिन्धमें इतने ज़्यादा बढ़ गए हैं कि हूरोंके आतंकसे सिन्धका एक प्रदेश तो थर्रा रहा है। उनका अपना निजी गुप्त विभाग है और एक सुदृढ़ संगठन। गत १३ मईको कराचीसे डेढ़ सौ मीलकी दूरीपर उन्होंने पंजाब-मेलको उलट दिया, जिसके कारण २४ व्यक्ति मर गए

और २७ घायल हुए। लूट-मारका काम वे दिन दहाड़े कर रहे हैं। सिन्ध-धारासभाके एक प्रसिद्ध सदस्य सेठ सीतलदासको भी उन्होंने अपने यहाँ बुलाकर मार डाला। हमें सिन्धकी वास्तविक परिस्थितिका तो पता नहीं है ; पर जो कुछ समाचार हमें मिल रहे हैं, उनसे इस बातपर आए हैं कि सिन्धकी स्थिति बड़ी गम्भीर है। इस स्थितिको सुधारनेके लिए सिन्ध-सरकार और कार्य-कर्त्ताओंको जी-जानसे प्रयत्न करना चाहिए। जहाँपर हूरोंका उत्पात है, वहाँपर सरकारने मार्शल-लॉ जारी कर दिया है।

### श्री रफ़ीअहमद क़िदवई साहबकी गिरफ्तारी

हमें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि युक्तप्रान्तके नेता श्री रफ़ीअहमद क़िदवई साहबको भारत-रक्षा-क़ानूनके अनुसार गिरफ़्तार कर लिया। पता नहीं, उनका दोष क्या था ? सरकारकी ओरसे कहा गया था कि उनसे युद्ध-कार्योंमें अड़चन पड़ती थी, अथवा अड़चन पड़नेकी आशंका थी। यों तो भारत-रक्षा-क़ानूनका जाल इतना विशाल है और उसके छिद्र इतने छोटे हैं कि कोई भी बात उसके अन्तर्गत आ सकती है। फिर क़िदवई साहब तो रूसके बड़े पक्षपाती हैं, और रूस-दिवसके लिए उन्होंने काफ़ी काम भी किया। उन्होंने आपत्तिजनक कोई भाषण भी नहीं दिया। उनकी गिरफ़्तारीसे यू० पी० सरकारके प्रति कटुता ही बढ़ेगी।

### श्री जगनप्रसाद रावतकी गिरफ्तारी

हमें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यू० पी० की सूबा कांग्रेस कमेटीके सेक्रेटरी श्री जगनप्रसाद रावत एम० एल० ए० गोरखपुरमें गिरफ़्तार कर लिए गए। यू० पी० नौकरशाहीकी तरफ़से दमन प्रारम्भ हो गया जान पड़ता है।

### पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल गिरफ्तार

इन पंक्तियोंके छपते-छपते हमें सूचना मिली है कि संयुक्त-प्रान्तीय कांग्रेसके प्रधान पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल भी गिरफ़्तारकर लिए गए हैं। सर्वश्री किदवई और रावतजी तथा अन्य कई कार्यकर्त्ताओंके बाद हुई पालीवालजीकी इस गिरफ़्तारीसे मजबूरन हमें इसी नतीजेपर पहुँचना पड़ रहा है कि ये गिरफ़्तारियाँ इक्की-दुक्की नहीं हैं, बल्कि इनके पीछे प्रमुख कांग्रेसी नेताओंकी सामूहिक गिरफ़्तारीकी कोई योजना मालूम होती है। यदि वास्तवमें ऐसा हो, तो यह बड़े ही दुःख एवं दुर्भाग्यकी बात है। शायद यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि पालीवालजी तथा जिन अन्य कांग्रेस-कर्मियोंको सरकारने गिरफ़्तार किया है, वे जनताको बराबर आत्म-रक्षा तथा जापानी आक्रमणकारियोंसे मुक़ाबला करनेके लिए तैयार रहनेकी सलाह दे रहे थे। ऐसी स्थितिमें इन नेताओंकी गिरफ़्तारियाँ आन्तरिक शान्ति-रक्षा और बाहरी ख़तरेका मुक़ाबला करनेमें कहाँ तक सहायक होंगी, इसपर सरकारको ज़रा गम्भीरता और दूरदर्शितासे विचार करना चाहिए।

### स्व० पं० घासीरामजी 'व्यास'

हमें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि बुन्देलखण्डके प्रतिभाशाली कवि पं० घासीरामजी 'व्यास' का निधन हो गया। स्व० व्यासजी कोई कोरे कवि ही नहीं थे, वरन् वे एक राष्ट्रकर्मी भी थे। स्वाभिमानी, विनम्र, प्रतिभाशाली और ग़रीबीसे संघर्ष करनेवाले वे जीवटदार प्राणी थे। 'विशाल भारत' के इसी अंकमें पं० गौरी-शंकर द्विवेदी-लिखित लेखसे उनकी प्रतिभाका पता पाठकोंको चलेगा। व्यासजीके निधनसे बुन्देलखण्डका एक उगता सितारा डूब गया !

### प्रेमीजीपर वज्रपात

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय ( बम्बई ) के संचालक श्री नाथूराम प्रेमीके एकमात्र पुत्र श्री हेमचन्द्र मोदीका निधन गत २० मईको टाइफ़ाइडसे हो गया। यह दुःखद समाचार हमें श्री भानुकुमार जैनसे मिला। इस दुर्घटनाके समाचारको पढ़कर हमें आन्तरिक वेदना हुई। प्रेमीजीके बुढ़ापेमें यह वज्रपात ऐसा है, जिसको सहना आसान नहीं है। दुःख बँटाया नहीं जा सकता, और हमें न तो उपदेश देनेकी आदत है और न ऐसी दुर्घटनामें कोई उपदेश दे भी सकता है। जिसने यह दुःख दिया है, वही सहनशक्ति भले दे दे। परमात्मासे यही प्रार्थना है कि वह प्रेमीजीको अपने दो छोटे-छोटे पौत्रों और विधवा पुत्रवधूकी ख़ातिर इतनी शक्ति दे कि वे अपने पुत्रकी थातीकी बहुत दिनों तक एक व्रतीकी भाँति सहायता और सेवा कर सकें।

**सूचना**—आगामी ३० जून तक हमारा पता होगा बल्काबस्ती, आगरा। इसी पतेसे डाक आनी चाहिए।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

# विशाल भारत

जुलाई, १९४२

संचालक
श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

सम्पादक
श्रीराम शर्मा

देशके लिए ६) वार्षिक
विदेशके लिए ९) ,,

इस अंकमें पढ़िये



— शेष भीतर सूचीमें देखिये —

छमाही मूल्य ३।) ] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता [ एक अंकका ।।-)
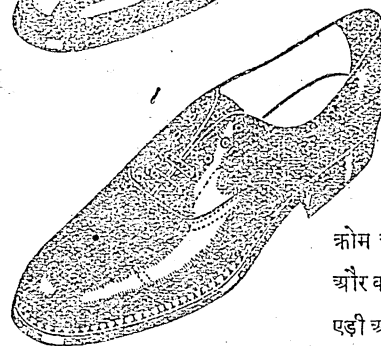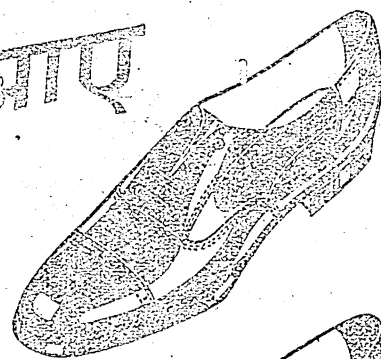
Reg. No. C—1645
जब वर्षा आए
बरसातमें टिकाऊ उम्दा आक्सफोर्ड वाटरप्रूफ जूता।
क्रोम चमड़ेके बादामी और काले एस्काइडकी एड़ी और तलेवाले जूते
नई काटके उम्दा चमकीले काले वाटरप्रूफ जूते।
Bata
सूर्य की तपत और गर्मी की बेचैनी को दूर करिये इस मौसम में ताज़ा बनाने वाली वस्तु, फलपेय
110
ग्रीष्म ऋतु में ह्रास शक्ति को पूरा करने व शरीर में स्फूर्ति लाने के लिये "जी० जी०" फल पेय अद्वितीय है।
"जी० जी०" फल पेय:—औरेंज, लैमन, लैमन बार्ली, फालसा, मैंगो व लैमन कौर्डियल।
जी. जी. फ्रूट प्रिज़र्विङ्ग फैक्टरी, आगरा.
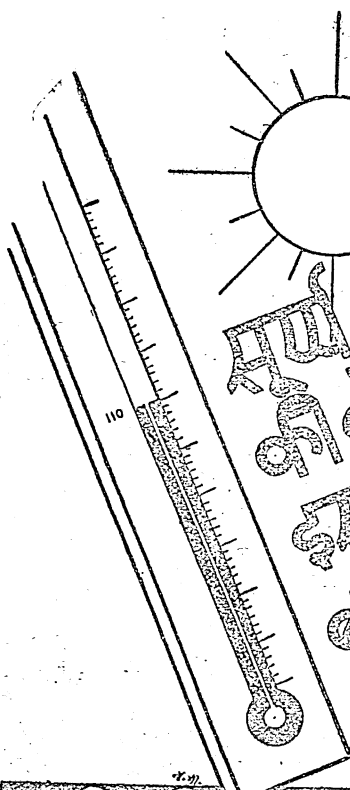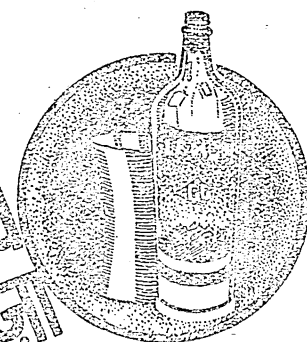
## विषय-सूची

[ जुलाई, १९४२ :: द्वितीय ज्येष्ठ, १९९९ ]

## विषय-सूची

Reg. No. C—1645

शिशु और जननी

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता ] [ श्री माणिकलाल बन्धोपाध्याय

विश ोखी सुबूत तारीख लेखक क सिकन्दरके । मैंने अपनी ौर किया है सुबूतोंसे हम स महानने द्वितीय में बनवाया करवाई हैं— ऽग

भाग ३०, अंक १ ]

# कोहक़ाफ़ : पच्छि

राष्ट्रपति मौलाना

पिछले दिनों आई हुई खबरोंसे मालूम होता है कि जर्मनीके जिस वसन्त-अभियानका बेसब्रीसे इन्तज़ार किया जा रहा था, वह शुरू हो गया है और जानकार-हल्क़ोंमें यह भी क़यास किया जा रहा है कि जर्मन फ़ौजें कोहक़ाफ़की तरफ़ बढ़ रही हैं। अगर जर्मन फ़ौजें कोहक़ाफ़की दीवार पार करनेमें कामयाब हुईं, तो उनके सामने ईरान पड़ेगा, दाईं तरफ़ तुर्की और इराक़ और बाईं तरफ़ हिन्दुस्तानका रास्ता। अगर वे अपने रास्तेकी सभी रुकावटोंको दूर करनेमें कामयाब हो सकीं, तो आसानीसे वे उत्तरी ईरानमें पहुँच जायँगी। और उनका यहाँ पहुँचना पच्छिमी एशियाके लिए एक बहुत बड़ा खतरा साबित होगा।

यह साफ़ ज़ाहिर है कि जर्मनी और जापानमें कोई शामलाती तजवीज़ तय हो चुकी है, और इसीलिए जापान शायद अपने जंगी बेड़ेसे अरब और लालसागरमें अपना दबदबा क़ायम करनेकी कोशिश करे।

जब मैंने कर्च पेनिन्सुलापर जर्मन फ़ौजोंके हमलेकी खबर पढ़ी, तो मुझे खयाल हुआ कि शायद तवारीख अपनी कई बार दोहराई हुई पुरानी दास्ताँ फिर दोहराने जा रही है। ईस्वी सन्‌से क़रीब ७०० साल पहले सीथियनोंके गिरोह इन्हीं कोहक़ाफ़की पहाड़ियोंको पारकर असीरियाकी सल्तनतपर टूट पड़े थे और उसे एकदम तहस-नहसकर डाला था। इस वाक़एका ज़िक्र हेरोडोटसने अपनी तवारीखमें किया है। एज़कीलके 'ओल्ड टैस्टामेण्ट'में भी इसका कई जगह ज़िक्र आता है। इसके कोई २०० साल बाद फिर साइरस महान्‌के ज़मानेमें इसका नाम सुननेमें आता है। स्तेसिया और पास हैं। बाकू इसीके दक्खिनमें बसा है। इसका असली नाम 'बादकूबा' है, जिसका मतलब है हवाका शहर। पुराने ज़मानेमें यहाँके ईरानी बाशिन्दे इसे 'अज़रपैग़ान' कहते थे। इसकी वजह यह है कि यहाँकी तेलसे गीली मिट्टी उतनी ही जल्दी आग पकड़ लेती है, जितनी जल्दी कि लकड़ीकी सलाइयाँ। 'अज़रपैग़ान'का मतलब है 'आगका पाक शहर'। अरबी लोगोंने इसका तलफ़्फ़ुस बदलकर 'अज़रबेज़ान' कर दिया।

दुनियामें जो इन्क़लाबी तब्दीलियाँ हुईं हैं, उनका असर दूसरी जगहोंकी तरह कोहक़ाफ़के इन दुश्वार रास्तोंपर भी पड़ा है। जो रास्ते किसी ज़मानेमें हमलावरोंको रोकनेके लिए लोहेकी दीवारोंसे बन्द कर दिए गए थे, आज उनमें रेलकी लाइनें बिछ गई हैं, जो दिन-रात [illegible] तरफ़से मुसाफिरोंको लेकर दूसरी तरफ़ जाती- इस पहाड़ोंसे नीचे पहुँचकर [illegible] आज खेल-कूद, थीं। इसके बादकी कई सदियोंकी तवारीख इस बारेमें चुप है। पर ईसाकी पहली सदीमें मशहूर हिब्रू इतिहासकार जोज़फ़सने फिर इसका 'पच्छिमी एशियाका उत्तरी द्वार' कहकर ज़िक्र किया है और इसकी फ़ौजी अहमियतपर खासी रोशनी डाली है। इसके कुछ सदियों बाद फ़ारसके ससानी शाहंशाहोंके ज़मानेमें इसके ज़रिये रोमनोंने बराबर चढ़ाइयाँ की हैं। ५२८ ई०में मशहूर रोमन जनरल बेलीसारियसने इसमें होकर चढ़ाई की थी। इस चढ़ाईके वक्त मशहूर रोमन तवारीख-लेखक प्रोकोपियस भी चढ़ाई करनेवाली फ़ौजोंके साथ था। उसने इनके कारनामोंका आँखों-देखा बयान बड़े ही लाजवाब ढंगसे किया है।

ये पहाड़ एक तरहकी दीवार हैं, जिन्हें क़ुदरतने उत्तरको दक्खिनसे अलहदा करनेके लिए खड़ा किया है। तक़रीबन सभी पुरानी तवारीखोंमें हम पढ़ते हैं कि पच्छिमी एशियाके मैदानोंकी तरफ़ बढ़नेका इरादा रखनेवाला कोई भी हमलावर इस दीवारके दरवाज़ेको पार नहीं कर सका है। शायद इसी खयालसे ईसासे पूर्व चौथी सदीमें इस दरवाज़ेको बन्द करनेके लिए इन्साननें अपना काफ़ी दिमाग़ लड़ाया, ताकि कोई हमलावर एशियाकी तरफ़ बढ़ने न पाय।

इन पहाड़ोंकी यह खुसूसियत नक्शा देखनेपर और भी आसानीसे समझमें आ जाती है। इनके मशरिकमें केस्पियन और मग़रिबमें कालासागर हैं। ये पहाड़ एक समुद्रके किनारेसे दूसरेके किनारे तक फैले हुए हैं—मानो क़ुदरतने

...ज़ानका मशहूर शहर दरबन्द इन्हीं दो ...में बसा था, जो आज भी क़ायम है। इस ... होनेके लिए पहली दीवारमें एक लोहेका ...शहरका दूसरा दरवाज़ा दूसरी दीवारमें है। ...रको उत्तरी दर्रेको बन्द करनेके लिए बसाया गया ...म 'दरबन्द' (दर=दरवाज़ा ; बन्द=बन्द करनेवाला) ...। यह शहर ग़ालिबन ससानी शाहंशाहोंके ...बसाया गया था। ईरानी लोग इन दीवारोंको ... कहते हैं, जिसका मतलब है दोहरी बन्दिश।

...ससानी शाहंशाहोंके ज़मानेमें इस शहर और सूबेने ...ासी अहमियत हासिल कर ली, क्योंकि उत्तरकी तरफ़से आनेवाले हमलावरोंको रोकनेका यह एक मरकज़ी क़िला था। तक़रीबन सभी अरबी तवारीख और जुग़राफ़िया लिखनेवालों—अलमक़दसी, अलमासूदी, अलहमादानी, अलइस्तकहारी, अलबेरूनी और अलयाक़त वग़ैरह—का कहना है कि ससानी शाहंशाह इस हिस्सेको अपनी सल्तनतकी कुंजी समझते थे। उनका खयाल था कि जिस किसीके हाथोंमें यह कुंजी पड़ गई, वह सल्तनतका ताला आसानीसे खोल सकता है।

...ा ...क तवारीखमें इस बात और वक्तका कोई यक़ीनी ज़िक्र नहीं है ; लेकिन इतना तो तय है कि ईसाके पैदा होनेसे बहुत पहले मज़बूत और न तोड़ी जा सकनेवाली दीवारें बनाकर इन दर्रोंका रास्ता बन्द करनेकी ज़बर्दस्त कोशिशें की गई हैं। इस वक्त जो दीवार वहाँ बनी है, वह चीनकी मशहूर दीवारसे कई सदियों पहले बनाई गई थी और चीनकी दीवारको छोड़कर दुनियाकी तवारीखमें कोई भी दूसरी दीवार इसका मुक़ाबला नहीं कर सकती। दारियाल दर्रेका रास्ता बन्द करनेके लिए बनी दीवार लोहेकी ईंटों और पिघले हुए तांबेके गारेसे बनाई गई थी। इसीलिए इसे 'लोहेका फाटक' कहते हैं। जार्जियाके तुर्क इसीलिए इसे आज भी 'दामार कापू' कहते हैं।

पूर्वी ढालके दर्रेका रास्ता बन्द करनेके लिए एक और भी लम्बी दीवार बनानी पड़ी। चूँकि यह ढाल कई मील लम्बा चला गया है, लिहाज़ा इसका रास्ता रोकनेके लिए केस्पियन सागरसे लेकर पहाड़के उस हिस्से तक लम्बी दीवार बनाई गई, जहाँसे कि उसे पार नहीं किया जा सकता। यह दीवार दो हिस्सोंमें बनी है। एक केस्पियन सागरके किनारेसे तक़रीबन दो मील लम्बी है और दूसरी वहाँसे पहाड़की बहुत ऊँचाई तक कोई ५० मील लम्बी है। समुद्रके किनारेसे जब ये दो दीवारें बननी शुरू हुईं, तो उनके बीचका फ़ासला ५०० गज़ था ; पर जैसे-जैसे वे आगे बढ़ती गईं, फ़ासला कम होता गया—यहाँ तक कि जहाँ उनके आखरी छोरपर क़िला बना है, वहाँ उनके बीचका फ़ासला १०० गज़से भी कम रह गया है।

ईसाकी सातवीं सदीमें इसी अहमियतकी वजहसे अरबियोंने इस सूबेपर क़ब्ज़ा किया था। वे इसे 'बाब-उल्-अबवाब' ( सब दरवाज़ोंका दरवाज़ा ) या 'अलबाब' ( सल्तनतका दरवाज़ा ) कहते थे। अलमासूदी और अलयाक़तने भी इन दरवाज़ोंको 'बाब-उल्-तुर्क' ( तुर्कोंका दरवाज़ा) और 'बाब-उल्-खिज़्र' ( केस्पियन लोगोंका दरवाज़ा ) कहा है, क्योंकि ये लोग इन्हीं दरवाज़ोंसे इस सूबेमें आया-जाया करते थे।

ये दीवारें कब और किसने बनवाईं, इस मुतल्लिक़ जो तवारीखी दस्तावेज़ मिलते हैं, उनमें खासा गोलमाल है। कुछ अरबी तवारीखोंमें इनके बनानेवालेका नाम खुसरू अनुशिरवान लिखा है। लेकिन ऐसा होना मुमकिन नहीं, क्योंकि जोज़ेफ़सने इनका अनुशिरवानके वक्तसे ५०० साल पहले होना बयान किया है और प्रोकोपियसने खुद जाकर उन्हें ५२८ ई० पू० में देखा था। तवारीखके अधिकारी लेखकोंने अनुशिरवानका वक्त ५३१ से ५७९ ई० पू० के बीचमें माना है। लिहाज़ा यह तय है कि उसने इन दीवारोंको नहीं बनवाया।

जोज़ेफ़स और प्रोकोपियसका खयाल है कि इन दीवारोंको

सिकन्दर महानने बनवाया था ; लेकिन तवारीखी सुबूत इसके भी खिलाफ़ हैं। मशहूर अमरीकन तवारीख लेखक ए० वी० विलियम्स जैक्सनने कुबूल किया है कि सिकन्दरके ज़मानेमें इनका बनाया जाना साबित नहीं होता। मैंने अपनी कई तस्नीफ़ोंमें तफ़सीलके साथ इस मसलेपर ग़ौर किया है और मुखतलिफ़ नतीजे निकाले हैं। तवारीखी सुबूतोंसे हम इसी नतीजेपर पहुँचते हैं कि इन दीवोरोंको साइरस महानने ईस्वी सन् से पहले ५४१ और ५२१ सालोंके बीचमें बनवाया था। ससानी शहंशाहोंने ग़ालिबन इनकी मरम्मत करवाई होगी और यह भी मुमकिन है कि खुसरू अनुशिरवानने इन्हें—या इनके कुछ टूटे-फूटे हिस्सोंको नए सिरेसे दोबारा बनवाया हो।

दरबन्दकी यह दोहरी दीवार १८वीं सदीके अखीर तक मौजूद थी। इशवाल्डने—जो १७९६ ई०में इन्हें देखने गया था—अपनी 'कोहक़ाफ़' किताबमें एक रूसी चित्रकार द्वारा बनाई गई इनकी एक तस्वीर भी दी है। पर १९०४ ई०में जब विलियम्स जैक्सन इन्हें देखने गया, तो ये दीवारें काफ़ी ढह चुकी थीं—सिर्फ़ उनके कुछ निशानात बाक़ी थे। एक दीवार ज़रूर अभी तक खड़ी है, जिसके बारेमें उसने अपनी किताब 'कुंस्तुन्तुनियासे उमरखय्यामके घर तक'में काफ़ी रोशनी डाली है। जैक्सनके कोई ५ साल बाद मैं भी उन्हें देखने गया ; लेकिन तब तक उनमें कोई ज़ाहिरा तब्दीली नज़र नहीं आती थी, हालाँ कि उस दोहरी दीवारके निशानात और मेहराबें वग़ैरह सब नेस्तनाबूद हो चुके थे।

अज़रबेज़ानके तेलके मशहूर कुँए इसी दरबन्दके पास हैं। बाकू इसीके दक्खिनमें बसा है। इसका असली नाम 'बादकूबा' है, जिसका मतलब है हवाका शहर। पुराने ज़मानेमें यहाँके ईरानी बाशिन्दे इसे 'अज़रपैग़ान' कहते थे। इसकी वजह यह है कि यहाँकी तेलसे गीली मिट्टी उतनी ही जल्दी आग पकड़ लेती है, जितनी जल्दी कि लकड़ीकी सलाइयाँ। 'अज़रपैग़ान'का मतलब है 'आगका पाक शहर'। अरबी लोगोंने इसका तलफ़्फ़ुस बदलकर 'अज़रबेज़ान' कर दिया।

दुनियामें जो इन्क़लाबी तब्दीलियाँ हुई हैं, उनका असर दूसरी जगहोंकी तरह कोहक़ाफ़के इन दुश्वार रास्तोंपर भी पड़ा है। जो रास्ते किसी ज़मानेमें हमलावरोंको रोकनेके लिए लोहेकी दीवारोंसे बन्द कर दिए गए थे, आज उनमें रेलकी लाइनें बिछ गई हैं, जो दिन-रात पहाड़ोंके एक तरफ़से मुसाफिरोंको लेकर दूसरी तरफ़ जाती-आती हैं। कोहक़ाफ़का भीतरी हिस्सा आज खेल-कूद, मनबहलाव, तन्दुरुस्ती सुधारनेके सेनेटोरियमों और कई धातुओं-मिले पानीके सोतों—जिनमें नहानेसे जिस्मकी कई बीमारियाँ दूर हो जाती हैं—का घर बन गया है। ज़ारके ज़मानेमें इस हिस्सेकी जो उपेक्षा हुई थी, उसकी कमी सोवियत् रूसकी पंचवर्षीय योजनाओंने पूरी कर दी है।

यह पेशीनगोई करना ज़रा मुश्किल है कि अगर जर्मन फ़ौजें इस हल्केकी तरफ़ बढ़ें, तो वे कोहाक़ाफ़ पार करनेके लिए कौन-सा रास्ता चुनेंगी ; मगर सबसे आसान रास्ता दरबन्दका ही है।

बालीगंज सरकूलर रोड, कलकत्ता ]

# स्वर्गीय चिन्तामणिजी

[ संस्मरण ]

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

स्वर्गीय मि० चिन्तामणि ( उपरान्त डा० सर सी० वाई० चिन्तामणि, के० सी० आई० ई० ) के सम्पर्कमें मैं अचानक आया था। बात यों हुई। सन् १९१९ के अन्तमें एक दिन उरईके रायबहादुर पं० गोपालदासने, जो उन दिनों संयुक्त-प्रान्तकी कौन्सिलके मेम्बर थे, मि० चिन्तमणिको लखनऊमें एक दिन झांसी ज़िलेसे मेम्बरीके लिए खड़े होनेको निमन्त्रित किया। उस समय उरई और झाँसी मेम्बरीका एक ही हलका था। सन् १९१९ के सुधार-विधानकी योजनामें झाँसी ज़िलेको एक जगह अलग मिली थी। मि० चिन्तामणिने स्वीकार कर लिया।

पं० गोपालदासको निमन्त्रण देनेके पश्चात् भविष्यकी काफ़ी चिन्ता हुई। पं० गोपालदास वयोवृद्ध थे, और हम लोग उनका इस नाते आदर करते थे। बा० बोधराज साहनी, बा० राजनारायण और मैं उन दिनों व्याख्यान देने और करतलध्वनि सुननेके इच्छुक रहते और

वैसे जनताकी कुछ-न-कुछ सेवामें थोड़ा-सा समय देते थे। बा० बोधराज और मैं कांग्रेसमें थे, बा० राजनारायण (अब स्वर्गीय) लिबरल-लीगमें। फिर भी हम तीनों प्रत्येक विषयमें जितने सहमत रहते थे, उतने एक कुटुम्बके लोग भी न रहते होंगे। हम तीनोंसे पं० गोपालदासने मि० चिन्तामणिकी सहायताका वचन लिया। उस समय तक ला० लाजपतरायके सभापतित्वमें सत्याग्रह और ख़िलाफ़तवाली कलकत्तेकी स्पेशल कांग्रेस न हुई थी, इसलिए हम दोनों कांग्रेसमैनोंके वचनका मि० चिन्तामणिने विश्वास कर लिया।

हम लोग मि० चिन्तामणिके लिए काम करने लगे। झाँसी ज़िलेके बाहर मि० चिन्तामणिके विरुद्ध जितनी आवाज़ उठाई जाने लगी, उतना ही हम लोगोंने अपने कान मूँदने और काम दृढ़तापूर्वक करनेका अभ्यास आरम्भ कर दिया। अभी तक मैंने मि० चिन्तामणिके दर्शन भी न किए थे, केवल 'लीडर' द्वारा उनको जानता था।

एक दिन मि० चिन्तामणि झाँसी आए। परन्तु उनके झाँसी आनेके पहले ही उनके कुछ विरोधी आ कूदे, और उन्होंने उनके विरुद्ध प्रचार शुरू कर दिया। मैंने उनके लिए एक मीटिंगका प्रबन्ध किया और लोगोंसे कहा कि उनकी बात तो सुनो, क्या कहते हैं। इस परस्थितिसे न तो मि० चिन्तामणि विचलित हुए और न इन पंक्तियोंका लेखक। उसी दिन उसी समय एक दूसरे स्थानपर मि० चिन्तामणिकी मीटिंग करवाई गई। मि० चिन्तामणिके व्यक्तित्व, उनके व्याख्यान और उनकी निर्मल देशभक्तिका मेरे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा। उस दिन मीटिंगकी जगहमें झाड़ू-बुहारू लगाने, फ़र्श बिछाने इत्यादिका कार्य मुझपर और मेरे दो-तीन सहयोगियोंपर पड़ा।

इसके पश्चात् मि० चिन्तामणि इलाहाबाद चले गए, और हम लोगोंमें पत्र-व्यवहार होता रहा। एक दिन मि० चिन्तामणिका एक कार्ड मुझे मिला। उसमें दो-एक बातोंके साथ यह भी लिखा था कि 'Let us drop Mr. from either side.' (अब न तुम मुझे मि० करके सम्बोधन किया करो और न मैं तुमको करूँगा।) उनके स्वर्गारोहण-पर्यन्त मेरा उनका ऐसा ही व्यवहार रहा।

अब कलकत्तेकी कांग्रेस हुई। कौन्सिलोंके बहिष्कारका प्रस्ताव पास हुआ। झाँसीमें भी उसकी आँधी आई। मि० चिन्तामणि और उनके इलहाबादी मित्रोंको सन्देह हुआ कि कहीं मैं कन्धा न डाल दूँ। बा० राजनारायण बड़े उत्साही और कर्मण्य थे; परन्तु उनको क्षय हो गया। बा० बोधराज और मैं केवल दो व्यक्तियोंपर मि० चिन्तामणिके चुनावका बोझ आ पड़ा। यहाँ तक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी हम लोगोंके साथ थे। उनको अलग होना पड़ा। 'प्रताप-परिवार'का एक अंग होनेके नाते मेरे सामने एक घोर समस्या आ खड़ी हुई। गणेशजीसे पूछा कि क्या करूँ? उन्होंने अपने अनुरूप ही उत्तर दिया—'भाई, जिसमें तुम्हारी आत्माको सन्तोष हो, वह करो। राजनीतिका निर्देश तो स्पष्ट है; परन्तु उससे स्पष्टतर है आदेश आत्माको विवश न करना।' मैं स्वतन्त्र हुआ, और प्रबलताके साथ मि० चिन्तामणिकी सहायतामें जुट गया। ६-७ महीनेके लिए अपना काम छोड़ दिया और उसी एक धुनमें मग्न होकर ज़िलेकी धूल छाननी शुरू कर दी।

एक दिन मैं इलाहाबाद पहुँचा। 'लीडर'-आफ़िसमें डा० सप्रू और मित्रों-सहित बैठे हुए थे। मि० चिन्तामणिने मेरा परिचय कराया और कहा—'यह कांग्रेसमैन मेरी बहुत सहायता कर रहे हैं।' डा० सप्रूने प्रसन्नता प्रकट की; परन्तु कनखियोंसे बहुत पैनी दृष्टिसे मुझे देखा। मैंने समझ लिया, कांग्रेसमैन मि० चिन्तामणिकी सहायता करे! पश्चात् मैंने मि० चिन्तामणिसे कहा—'आपके मित्र कदाचित् संसारमें बहुत धोके खा चुके हैं।'

मि० चिन्तामणि बोले—'उनका इसमें कोई दोष नहीं है। मैं आजकल कांग्रेसकी कुछ नीतिकी बहुत कड़ी आलोचना कर रहा हूँ। कांग्रेसवाले मुझसे बहुत रुष्ट हैं। ऐसी परस्थितिमें तुम्हारा मेरी सहायता करना क्या एक बड़ा आश्चर्य नहीं है?'

मैंने उत्तर दिया—'कांग्रेसके साथ आपका जो युद्ध चल रहा है, उसको मैं अपने सामने आने ही नहीं देता हूँ। मैं तो एकाग्र होकर केवल एक बातको ध्यानमें रखे हूँ कि आप कैसे कौन्सिलमें पहुँचें और वहाँ पहुँचकर हमारे प्रान्तको प्रकाश दें। आपके कौन्सिलमें पहुँच जानेके बाद फिर आपको समझूँगा।' वह बहुत हँसे।

इसके बाद मि० चिन्तामणि चुनाव-चर्चाके लिए कई बार झाँसी आए। उनकी बातोंमें सदा कुछ-न-कुछ

नवीनता मिलती थी। उनमें सदा ऐसी ओजस्विता रहती थी कि सुननेवाले फड़क उठते थे। उनका व्यक्तित्व महत् था, सघन था और उनमें अपनी धुनका अदम्य अनुराग था। इसीलिए एक बार श्रीप्रकाशजीने उनके विषयमें लिखा था -- 'He has definite opinions on everything under and above the Sun.' ( लौकिक और अलौकिक, हर विषयपर, वह एक अपनी निश्चित राय रखते हैं। ) मुझे उनके इस स्वभावका काफ़ी परिचय मिला।

मऊरानीपुर ( ज़िला झाँसी ) चुनावके सम्बन्धमें हम लोग गए। मेरा जन्मगृह इसी नगरमें है। मेरा घर ख़ाली था। ताला पड़ा था। मि० चिन्तामणिको केवल कुतूहलके लिए वहाँ ले गया। जैसे ही मैंने उनसे कहा—'यह मेरी और मेरे अगणित पूर्वपुरुषोंकी जन्म-भूमि है।'

मि० चिन्तामणिने हाथ जोड़कर उस तालेबन्द मकानको नमस्कार किया। बोले—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'

मैंने कहा—'आप संस्कृत भी जानते हैं?'

वह बोले—'क्यों? आचार्य घरानेका बालक हूँ, राजाओंके गुरुओंकी सन्तान हूँ, संस्कृत न जानूँगा?'

फिर तो १०-१२ मिनट तक ऋग्वेदकी ऋचाओंका उन्होंने ऐसा धारावाही पाठ किया कि मैं विह्वल हो उठा। मैंने प्रतिवाद किया—'अच्छा साहब, बहुत हुआ। मुझे तो इतनी संस्कृत दो-तीन जन्मोंमें भी नहीं आयगी। अब समाप्त करिए, किसी अन्य विषयपर बातचीत हो।'

बोले—'अभी नहीं।' और फिर कई मिनट तक वह क्रम जारी रखा। कोई साधन न देखकर मैंने उँगलियोंसे अपने कान मूँद लिए। मि० चिन्तामणिको बेतहाशा हँसी आई। बोले—'अब तेलुगूकी बारी आती है।'

मैंने उत्तर दिया—'मैं अब आत्म-घात कर लूँगा। आपकी संस्कृत पागल बनानेके लिए काफ़ी थी। तेलुगू भगवान शंकरके सिपुर्द करिए।'

मि० चिन्तामणि ज़रा गम्भीर हुए। बोले—'तुम ईश्वरमें विश्वास करते हो?'

मैंने प्रश्न किया—'और आप?'

'ऐसा ही कुछ-कुछ।'—उत्तर दिया।

एक दिन ललितपुर गए। मीटिंगका आयोजन किया गया। मि० चिन्तामणिसे मैंने कहा कि लोग कहते हैं कि ऐसे मनुष्यको कौन्सिलमें भेजनेसे क्या लाभ, जो हिन्दी नहीं जानता, न तो बोल सकता है और न लिख सकता है।'

चिन्तामणिजी बोले—'कौन्सिलमें भेजो या न भेजो, मैं हिन्दीमें न बोलूँगा। यदि ज़िद करोगे, तो तेलुगूमें बोलने लगूँगा।' मुझे चुप हो जाना पड़ा। चिन्तामणिजी अंगरेज़ीमें बोले। वह ऐसी अंगरेज़ी बोलते थे कि जिनकी मातृभाषा अंगरेज़ी है और जो उसके पंडित हैं, वे सुनकर दंग रह जाते थे। मीटिंगमें काफ़ी हो-हल्ला हुआ; क्योंकि ४-५ सहस्र श्रोताओंमें से केवल ५०-६० व्यक्ति अंगरेज़ी समझ सकते थे। मि० चिन्तामणि निराश हुए और बहुत उदास अपने डेरेपर लौटे। क्षुब्ध भी थे। कहने लगे—'आप लोगोंको मैंने नाहक़ झंझटमें फँसाया।'

मैंने कहा—'यह ग़लत है। हम लोगोंने आपको इस झंझटमें उलझाया। यदि आप इलाहाबाद-विश्व-विद्यालयकी ओरसे खड़े होते, तो आपको इतना कष्ट कदापि न होता।'

तत्कालीन तने हुए वायुमंडलको हलका करनेके लिए मि० चिन्तामणि आँखें तरेरकर मुझसे बोले—'तुमसे मैं बहुत डरता हूँ।'

'क्यों, मैंने क्या किया है?'

मि० चिन्तामणि—'देखो जी, राजनारायणको मैं प्यार करता हूँ, बोधराजका मैं आदर करता हूँ और'—हाथ जोड़कर—'तुमसे बहुत डरता हूँ। तुम भयंकर हो।'

मुझे हँसी आ गई, मैंने पूछा—'आख़िर क्यों?'

उत्तर दिया—'तुम इस सरकसके रिंगमास्टर हो। हम लोग सब पशुवत् हैं। जहाँ चाहे, हम लोगोंको पकड़कर घुमाते फिरते हो। कहीं हँसाते हो, कहीं रुलाते हो। आज ललितपुर पकड़ लाए। ईश्वर जाने, कल कहाँ ले चलोगे।'

(क्रमशः)

झाँसी ]

# 'कवि - व - चित्रकार'

[ पचास वर्ष पूर्व ]

श्री हरिशंकर शर्मा

आजसे पचास वर्ष पूर्व ( संवत् १९४८ वि० में ) पं० कुन्दनलाल शर्माके सम्पादकत्वमें फ़तेहगढ़से 'कवि - व - चित्रकार' नामका एक त्रैमासिक पत्र प्रकाशित किया गया था। इस पत्रका उद्देश्य, जैसा कि उसके नामसे ही प्रकट है, कविता और चित्रकलाकी उन्नति करना था। पं० कुन्दनलालजी फ़तेहगढ़ कलक्टरीमें हेडक्लार्क थे, और उस समय वहाँ कलक्टर थे श्री एफ़० एस० ग्राउस, एम० ए०, सी० आई० ई०। इन्हीं ग्राउस साहबके प्रोत्साहनसे 'कवि - व - चित्रकार'का जन्म हुआ था। ग्राउस साहबको हिन्दीसे बड़ा प्रेम था। उन्होंने तुलसी-कृत रामायणका अंगरेज़ीमें अनुवाद किया, जिससे हमारा यह महान काव्य विदेशों तकमें विख्यात हुआ। ग्राउस साहब पं० कुन्दनलालसे बड़े खुश थे—विशेषकर उनके साहित्य-सेवी होनेके कारण। ग्राउस साहबका जहाँ-जहाँ तबादला हुआ, वहाँ-वहाँ उन्होंने पं० कुन्दनलालका भी तबादला करवाया। बुलन्दशहरमें तो ग्राउस साहबके नामपर 'ग्राउसगंज' ही बसा हुआ है। कितनी ही जगह उन्होंने पक्के तालाब भी बनवाए, जो अब तक उनके नामसे प्रसिद्ध हैं।

पं० कुन्दनलाल मथुराके रहनेवाले थे। वे व्रजभाषा बोलते और जहाँ जाते, हिन्दी-प्रचारकी धूम मचा देते थे। अपने अभिभावक कलक्टर ग्राउस साहबके आश्रय और संकेतसे सरकारी नौकरी करते हुए पंडितजीने हिन्दीकी जो सेवा की, वह मुक्तकंठसे सराहनीय है। 'कवि-व-चित्रकार' लीथोमें छपकर निकलता था। उसका वार्षिक मूल्य १) मात्र था। पत्रमें चित्रकला और कविता-सम्बन्धी स्वतन्त्र लेख भी रहते थे और समस्या-पूर्तियाँ भी प्रकाशित की जाती थीं। उस समय 'कवि-व-चित्रकार' ही ऐसा पत्र था, जिसमें तत्कालीन बड़े-बड़े साहित्य-महारथी लिखते थे। उसके कुछ लेखकोंके नाम नीचे दिए जाते हैं—पं० अम्बिकादत्त व्यास, श्री गोपालराम गहमरी, पं० नकछेदी तिवारी, जानी बिहारीलाल, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० नाथूरामशंकर शर्मा, पं० रुद्रदत्तजी, गोस्वामी किशोरीलालजी, पं० गोपीनाथजी ( जयपुर ), ( भारत-मार्तण्ड ) पं० गट्टूलालजी, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ( विद्यावारिधि ), पं० श्रीधर पाठक, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, गोस्वामी सूर्यलालजी, श्रीमती सुभद्रादेवी ( मुरादाबाद ) इत्यादि इत्यादि।

संस्कृतके विद्वान हिन्दी और संस्कृत दोनोंमें अपनी-अपनी रचनाएँ प्रकाशित कराते थे। उपर्युक्त विद्वानोंमें से कितने ही तो सारे देशमें विख्यात थे। पं० गट्टूलालजी, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० गोपीनाथजी आदि संस्कृत-साहित्यके अक्षय भाण्डार समझे जाते थे। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीकी साहित्य-सेवाका वह प्रारम्भ-काल था। वे इस पत्रमें गद्य और पद्य दोनों लिखते थे। समस्याओंकी पूर्तियाँ भी करते थे। उस समय द्विवेदीजी झाँसीमें थे। नीचे आपके तीन पद्य दिए जाते हैं :—

सुपटा शुचि अभ्रचटा अति सौम्य
अटा चढ़ि बाल विलोचन शाली ;
वरषा बिच कानन कुण्डल पंकज
मालन धारि लये निज आली।
इनके अवलोकन को सब कोद
प्रमोद के हेतु पयोद प्रनाली ;
विरची बुधिवन्त अनन्त गुणागर
शिल्प उजागर ने जग जाली।

× × ×

कमनीय कठोर कुच स्थलिनी
नलिनी दल लोचनि सुभ्र सुचाली ;
रज की मुख हर्म्य चढ़े सजनी
बजनी पग नूपुर एक न घाली।
लखि प्रीतम ऐन कहें निज सैन ते
मैन भरी करि दीठि निराली ;
यह युक्ति निकारन कारन हैं
सिरजी जगमाहिं हजारन जाली।

× × ×

मलयागिरि पै गिरि मारुत मारुत
मण्डल त्याग कला इक घाली ;
रसलीन अनेक कलीनन को
बिरली बिरली करिकै प्रतिपाली।

उठि गात में होत प्रभात लगै
पिरथक प्रथकानिल फूलनवाली;
उपजाय अटामें घटान सोहैं
यहिं कारन जीवनके हित जाली।

उपर्युक्त पद्योंमें द्विवेदीजीने 'जाली' समस्याकी पूर्ति की है। पूर्ति करनेमें ब्रजभाषाका आश्रय लिया है। इन तीनों सवैयोंमें शृंगार-रसकी झलक दिखाई देती है। इससे स्पष्ट है कि उस समय द्विवेदीजीकी कविता-प्रवृत्ति किस ओर थी और वे ब्रजभाषामें कैसी कविता करते थे। उस समय अधिकतर शृंगार-रसकी ही कविताएँ की जाती थीं; परन्तु 'कवि-व-चित्रकार' ऐसी कविताओंके विरुद्ध बराबर चेतावनी देता रहता था। एक बार उसने अपने सम्पादकीय स्तम्भमें लिखा था—"कविता प्रायः शृंगार-रसमें सनी होनेसे देशोपकारक होनेके बदले हमारे सुशिक्षित नवयुवकोंको शृंगार-रसमें उन्मत्तकर देशकी हानिकारक हो रही है।" (चैत्र, १९४८)......"कविता ऐसी हो, पढ़नेमें आनन्द आवे और देशका हित भी हो। जो कूट न हो, समझनेमें तुरन्त आ जाय।"

खड़ी बोली और ब्रजभाषाका प्रश्न छिड़नेपर 'कवि-व-चित्रकार'के सम्पादक महाशयने एक बार लिखा था—"हम ब्रजवासी हैं। ब्रजभाषा हमको जैसी प्रिय लगती है, वैसी अन्य देशके रहनेवालोंको कम प्रिय लगती होगी। हम अपने घरमें रात-दिन ठेठ ब्रजभाषा बोलते हैं। इस प्रकार हम कब चाहेंगे कि हमारी प्राणप्यारी ब्रजभाषाकी किसी प्रकारकी न्यूनता हो। परन्तु ब्रजवासी होकर धर्म भी परित्याग नहीं करेंगे। यदि खड़ी बोलीमें उत्तम काव्य-रचना हो सकती है, तो हम उसको बड़े आनन्दके साथ स्वीकार करेंगे। हमारा अभिप्राय उस काव्य-रचनासे है, जिसका असर मनुष्यके हृदयपर होता है। जिसमें यह गुण है, हम उसके साथ हैं। जिसमें यह गुण नहीं है, उससे हम कुछ प्रयोजन नहीं रखते। हम खड़ी बोलीके शत्रु नहीं और न ब्रजभाषाके अन्धभक्त। हम काव्यरूपी आनन्दके प्रेमी हैं। जहाँ हमको वह मिलेगा, वहाँसे उसको प्राप्त करनेका उद्योग करेंगे।"

खड़ी बोली और ब्रजभाषाके प्रश्नका कैसा सुन्दर समाधान है। वास्तवमें भारतेन्दुजीने ठीक ही कहा है—'बात अनूठी चाहिए, भाषा कोई होय।' कवितामें अनूठापन होना चाहिए, भाषापर लड़नेकी आवश्यकता नहीं है। जिस बातको लेकर आज भी कभी कभी विवाद उठ खड़ा होता है, उसका निर्णय अबसे पचास वर्ष पहले पं० कुन्दनलालजी किस सुन्दरताके साथ कर गए हैं—किस निष्पक्ष-भावसे उन्होंने यह उलझन सुलझा दी है।

'कवि-व-चित्रकार'के एक अंकमें 'वर्षा-वर्णन' प्रकाशित हुआ था। इसके रचयिता थे रायनगर (चम्पारन) के पं० चन्द्रशेखरधार मिश्र। 'वर्षा-वर्णन'में प्रायः कवि लोग नायक-नायिकाओंकी विरह-व्यथाका वर्णन करके ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ लेते हैं। आज तक इस दिशामें कवियोंकी प्रायः ऐसी ही गति-मति चली आती है; परन्तु अबसे पचास वर्ष पूर्व, सं० १९४८ वि०में, कविवर चन्द्रशेखरधार मिश्र वर्षाका वर्णन और ही ढंगसे करते हैं। देखिए :—

अहो हाल उन दुखियोंका कोई क्या जानें,
निज बँगलोंमें बैठ-बैठकर जो सुख मानें।
× × ×
दिन-भर करके काम शामको जो घर आवे,
लगी भूख अति तेज़ न पर खानेको पावे।
नारि रही जो कुछ सुशील तो चुप रह जाती,
नहिं तो वचन-वाणसे जर-जर करती छाती।
छोटे लड़के जब आए हैं इनके आगे,
'खानेको कुछ देहु', लगे कह-कहकर माँगे।
नहिं पानेपर रो-रोकर कपड़े खेंचें हैं—
लटक टेंट गहि फेंट तथा नीचे ऐंचें हैं।
किसी भाँति समझाकर माका दूध पिलाकर,
भाँति-भाँति बहलाकर बहु कुछ टोंट-टटाकर,
बच्चेको सोलाकर आपन भोजन पाया,
किसी भाँति कुछ पानी पीकर प्राण बचाया।
धधक रही हैं आग भूखकी ज़ोर-ज़ोरसे,
चिन्ता-घृतसे और बढ़ी जो सभी ओरसे।
खाएँगे क्या मालगुज़ारी देंगे कैसे—
ऋणके बाक़ी देंगे क्यों पाकर हम पैसे।
इसी सोचमें नींद नहीं पल-भर आती है,
चिन्ता अवसर पाकर अति बढ़ती जाती है।
किसी भाँति दुख भूल जभी आँखोंको मूँदें,
तभी हाय! पड़ जायँ टपक छातीपर बूँदें।
होते ही कुछ प्रात समय प्यादे घर आए,
कहें चुका दे करजेके रुपए जो लाए।

नहीं आज तो जो कुछ तेरा होना होगा,
सभी भुगत जाएगा पीछे रोना होगा।
उधर आय लड़का फिर भी खानेको माँगा,
सूख रहा है, कटा धानका पौधा सागा।
कैसे देकर मज़दूरी अब खेत निरावें,
पके खेतका सूख रहा क्यों काम बनावें।
इसी सोचमें जलता हो बेहोश रहा है,
तब तक साहबका प्यादा भी आय कहा है।
चलबे चल ले बैल आज बितिया जाना है,
गाड़ीपर कुछ माल रेलसे ले आना है।
रोकर बोला कृषक हाय! हरि हाय-हाय! हम!
क्या खाएँ क्या वस्तु खिलाने कहाँ जायँ हम!

× × ×

देख-देख दुख हाय आज छाती फटती है,
मुझे पैठने हेतु क्यों न धरती फटती है।
अरे विधाता! क्या हम तेरा काम बिगाड़ा,
भूतल भरका जो मुझपर डाला दुख सारा।
इसी भाँति प्यादेको भी वह कुछ समझाता,
पर उस आफ़तसे काहेको छुट्टी पाता।
देर हुई जब बात - चीतके कुछ बतलाते,
डंडे खाकर जोड़ हाथ स्टेशन जाते।
घरके बाक़ी लोग नीलमें परे बिगारी,
गारी खा - खाकर भी घरकी चीज बिगारी।
भूख लगे तो खानेको डंडे खाते हैं।
प्यास लगे तो मुखसे गाली पी जाते हैं!
कहीं किसीको साग मिला तो बड़े भागसे,
नोन नहीं है, नोन मिला तो अलग सागसे!
अहो हज़ारों जन ऐसे भारतमें दुखिया—
जिन पर कृपा नहीं करते अपने जी सुखिया।

कविवर चन्द्रशेखर किसानोंकी दुर्दशापर आँसू बहाकर ही नहीं रह जाते, आगे चलकर वे इस संकट-सागरसे पार होनेका उपाय भी सोचते हैं और सरकारसे कहते हैं :—

क्यों न हमारी दयाशील सरकार सोचती,
इन दुखियोंकी दशा हाय क्यों नहीं मोचती।
हैं हज़ार ऐसे उपाय जिनसे दरिद्र नर,
हो सकते कुछ सुखी कृपा सरकार करे पर।
बंक कृषीके खोल सूदका कष्ट मिटावे,
पूँजी भरती भारतवासी क्यों दुख पावे।
खेतीकी विद्या बहुधा सबको सिखलावे,
शिल्प चमत्कारीसे भी इनको चमकावे।
विद्या दे स्वाधीन जीविका यत्न बतावे,
काम और ही देय दासता फन्द छुड़ावे।
देश सूखते हैं, जो उनमें नहर करावे,
बहते उनके पास पासमें बाँध बँधावे।

जिन लोगोंका यह ख़याल है कि पुराने कवि नायिका-वर्णनके अतिरिक्त और कुछ जानते ही न थे, उन्हें चन्द्रशेखर मिश्रकी उपर्युक्त पंक्तियाँ पढ़कर अपनी सम्मति बदलनी चाहिए। आजकल अपनेको 'प्रगतिशील' कहनेवाले कवि भी तो वही बात कहते हैं, जो अबसे ५० वर्ष पूर्व कही जा चुकी है।

'कवि-व-चित्रकार' देखनेसे यह भी पता चलता है कि उस समय उसमें जो समस्या-पूर्तियाँ छपती थीं, उनको प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि नम्बर भी दिए जाते थे। वे पुरस्कृत भी की जाती थीं, और इन पुरस्कारों तथा नम्बरोंका बड़ा महत्त्व होता था। अगर कभी किसीके साथ अन्याय या पक्षपात हो जाता था, तो एकदम आन्दोलन उठ खड़ा होता था। कभी-कभी तो स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंहजीको भी निर्णायक बनना पड़ता था। अभिप्राय यह कि 'कवि-व-चित्रकार' अपने समयका श्रेष्ठ तथा प्रगतिशील पत्र था, और उसमें लिखना तत्कालीन विद्वन्मण्डली अपना कर्त्तव्य-सा समझती थी।

'कवि-व-चित्रकार'को प्रकाशित हुए बहुत दिन न हुए थे कि इतने हीमें ग्राउस साहब और पं० कुन्दनलालजीका क्रमशः ५२ और ३६ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हो गया, जिससे विवश होकर उसे बन्द कर देना पड़ा और अब उसकी केवल स्मृति शेष रह गई है। कहीं-कहीं पत्रकी पुरानी फ़ाइलें भी पाई जाती हैं। आश्चर्य तो यह है कि हिन्दीके किसी इतिहासमें ऐसे महत्त्वपूर्ण पत्रका नाम तक नहीं दिया गया। अगर भूलसे कहीं नाम आ भी गया है, तो उसके सम्बन्धमें और कुछ लिखना मुनासिब नहीं समझा गया। इस उपेक्षाका भी कुछ ठिकाना है!

लोहामण्डी, आगरा ]

# सुदास

## श्री राहुल सांकृत्यायन

१६-१९५

*देश : कुरु-पंचाल ( पश्चिमी युक्त-प्रान्त )। जाति : वैदिक आर्य। काल : १५०० ई० पू०*

वसन्त समाप्त हो रहा था। चनाब ( चन्द्रभागा ) की कछारमें दूर तक पके गेहुओंके सुनहले पौधे खड़े हवाके झोंकेसे लहरा रहे थे, जिसमें जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष गीत गाते खेत काटनेमें लगे हुए थे। कटे खेतोंमें उगी हरी घास चरनेके लिए बहुत-सी बछेड़ोंवाली घोड़ियाँ छोड़ी हुई थीं। धूपमें एक पान्थ आगेकी ओर अपने भूरे केशोंके जूटको दिखलाते हुए सिरमें फटे कपड़ोंकी उष्णीष ( पगड़ी ) बाँधे, शरीरपर एक पुरानी चादर लपेटे, घुटनों तककी धोती ( अन्तरवासक ) पहने, हाथमें लाठी लिए मन्द गतिसे चल रहा था। प्यासके मारे उसका तालू सूख रहा था। पथिकने हिम्मत बाँधी थी अगले गाँवमें पहुँचनेकी ; किन्तु मार्गकी बगलमें एक कच्चे कुएँ तथा छोटे-से शमी-वृक्षको देखकर उसकी हिम्मत टूट गई। उसने पहले अपने उष्णीष-वस्त्र, फिर नंगे होकर धोती, तथा एक बार दोनोंको जोड़कर छोरको पानीमें डुबानेकी कोशिश की ; किन्तु वह सफल नहीं हुआ। अन्तमें निराश हो पासके वृक्षके सहारे बैठ रहा। उसे जान पड़ने लगा कि फिर इस जगहसे उठना नहीं होगा। उसी वक्त एक कन्धेपर मशक, दूसरे कन्धेपर रस्सी तथा हाथमें चमड़ेकी बाल्टी लिए एक कुमारी उधर आती दिखाई पड़ी। पान्थकी छूटी आशा लौटने लगी। तरुणीने कुएँ पर आकर मशकको रख दिया, और जिस वक्त वह बाल्टीको कुएँ में डालने जा रही थी, उसी वक्त उसकी नज़र यात्रीके चेहरेपर पड़ी। उसका चेहरा मुरझाया हुआ था, ओठ फटे, गाल पिचके, आँखें कोटरलीन, पैर नंगे धूल-भरे थे। किन्तु इन सबके पीछेसे उसकी तरुणाईकी झलक भी आ रही थी।

पथिकने स्वर्ण-केशोंपर कुमारियोंकी सजा, शरीरपर उत्तरासंग ( चादर ), कंचुक और अन्तरवासक ( लुंगी ) के साधारण, किन्तु विनीत वेशको देखा। धूपमें चलनेके कारण तरुणका मुख अधिक लाल हो गया था, और ललाट तथा ऊपरी ओठपर कितने ही श्रम-बिन्दु झलक रहे थे। कुमारीने थोड़ी देर उस अपरिचित पुरुषकी ओर निहारकर माद्रियोंकी सहज मुस्कराहटको अपने सुन्दर ओठोंपर ला तरुणकी आधी प्यासको बुझाते हुए मधुर स्वरमें कहा—'मैं समझती हूँ, तू प्यासा है भ्रातर !'

पथिकने साहसपूर्वक अपने गिरते कलेजेको दृढ़ करनेमें असफल होते हुए कहा—'हाँ, मैं बहुत प्यासा हूँ।'

'तो मैं पानी लाती हूँ।'

तरुणीने बाल्टीमें पानी भरा। तब तक तरुण भी उसके पास आकर खड़ा हो गया था। उसका दीर्घ गात्र

महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन

और मोटी हड्डियाँ बतला रही थीं कि अभी उनके भीतरसे असाधारण पौरुष लुप्त नहीं हुआ है। मशकसे लटकते चमड़ेके गिलासको पथिकके हाथमें दे तरुणीने उसमें बाल्टीसे पानी भर दिया। पथिकने बड़ी घूँट भरी और गलेसे उतारनेके बाद नीचे मुँहकर बैठ गया। फिर एक साँसमें गिलासके पानीको पी गया। गिलास उसके हाथसे छूट गया और सँभालते-सँभालते भी वह पीछेकी ओर गिर ही पड़ा। तरुणी ज़रा देरके लिए अवाक रह गई। फिर देखा, तरुणकी आँखें उलट गई हैं, वह बेहोश हो गया है। तरुणीने झटसे अपने सिरसे बँधे

रुमालको पानीमें डुबा तरुणके मुख और ललाटको पोंछना शुरू किया। कुछ क्षणमें उसने आँखें खोलीं, फिर कुछ लज्जित-सा हो क्षीण-स्वरमें बोला—'मुझे अफ़सोस है कुमारि, मैंने तुझे कष्ट दिया।'

'मुझे कष्ट नहीं है ; पर मैं तो डर गई थी कि ऐसा क्यों हुआ ?'

'कोई बात नहीं, खाली पेट था, प्यासमें बहुत पानी पी गया। किन्तु अब कोई हर्ज़ नहीं।'

'खाली पेट !'—कह पथिकको बोलनेका कुछ भी अवसर दिए बिना तरुणी वहाँसे दौड़ गई और थोड़ी देरमें एक कटोरेमें दही, सत्तू और मधु लेकर आ उपस्थित हुई। तरुणके चेहरेपर संकोच और लज्जाकी रेखा फिरी देखकर कुमारीने कहा—'तू संकोच न कर पथिक, मेरा भी एक भाई कई साल हुए घरसे निकल गया है। यह थोड़ी-सी तेरी सहायता करते वक्त मुझे अपना भाई याद आ रहा है।'

पथिकने कटोरेको ले लिया। तरुणीने बाल्टीसे जल दिया। तरुण सत्तू घोलकर धीरे-धीरे पी गया। पीनेके बाद उसके चेहरेकी आधी मुरझाहट जाती रही और अपने संयत मुखकी मूक मुद्रासे कृतज्ञता प्रकट करते हुए वह कुछ बोलनेकी सोच ही रहा था कि तरुणीने मानो उसके भावोंको समझकर कहा—'संकोच करनेकी ज़रूरत नहीं भ्रातर, तू दूरसे आया मालूम होता है !'

'हाँ, बहुत दूर पूरबसे—पंचालसे।'

'कहाँ जायगा ?'

'यहाँ, वहाँ, कहीं भी।'

'तो भी।'

'अभी तो कोई काम चाहता हूँ, जिसमें अपने तन और कपड़ोंकी व्यवस्था कर सकूँ।'

'खेतोंमें काम करेगा ?'

'क्यों नहीं ! मैं खेत काट-बो-जोत सकता हूँ। खलिहानका काम कर सकता हूँ। घोड़े-गायकी चरवाही कर सकता हूँ। मेरे शरीरमें बल है। अभी सूख गया है ; किन्तु थोड़े ही समयमें मैं भारी बलके कामको भी करने लगूँगा। कुमारि, मैंने कभी अपने किसी मालिकको नाराज़ नहीं किया।'

'तो मैं समझती हूँ, पिता तुझे कामपर रख लेंगे। पानी भरती हूँ, मेरे साथ चलना।'

तरुणने मशक ले चलनेकी बहुत कोशिश की ; किन्तु तरुणी राज़ी न हुई। खेतमें एक लाल तम्बू लगा था, जिसके बाहर चालीसके क़रीब स्त्री-पुरुष बैठे थे। तरुण पहचान नहीं सकता था कि इनमें कौन तरुणीका पिता है। सबके एक-से सादे वस्त्र, एक-से पीले केश, गोरा शरीर, अदीन मुख। तरुणीने मशक और बाल्टीको उतार बीचमें बिछे चमड़ेपर रखा, फिर साठ वर्षके एक बूढ़े किन्तु स्वस्थ बलिष्ट आदमीके पास जाकर कहा—'यह परदेसी तरुण काम करना चाहता है, पितर !'

'खेतोंमें दुहितर ?'

'हाँ, कहीं भी।'

'तो यहाँ काम करे। वेतन जो यहाँ दूसरे पुरुषोंको मिलेगा, वही इसे भी मिल जायगा।'

तरुण सुन रहा था। वृद्धने यही बात उसके सामने दुहराई, जिसे उसने स्वीकार किया। फिर वृद्धने कहा—'आ अरुण, तू भी खा जा। हम सब मध्याह्न-भोजन कर रहे हैं।'

'अभी मैंने सत्तू पिया है, तेरी दुहिताने दिया था, आर्य !'

'आर्य-वार्य नहीं, मैं जेता ऋभु-पुत्र माद्र हूँ। तो जो कुछ भी खा-पी सके, खा-पी। अपाला, मेरय (कच्ची शराब) देना, अश्विनी-क्षीरका ! धूपमें अच्छा होता है तरुण ! बात शामको करूँगा, इस वक्त नाम-भर जानना चाहता हूँ।'

'सुदास पांचाल।'

'सुदास नहीं, सुदाः—सुन्दर दान देनेवाला। तुम पूरबवाले भाषा भी ठीकसे बोलना नहीं जानते ! पंचाल जनपदसे ! अच्छा, अपाले, यह पूरबवाले लज्जालु होते हैं। इसे खिलाना, जिसमें शाम तक कुछ काम करने लायक़ हो जाय।'

सुदासने अपालाके आग्रहपर मेरयके दो-तीन प्याले पिए और एकाध टुकड़ा रोटीका गलेसे नीचे उतारा। दो दिनसे भूखे रहनेके कारण उसकी भूख मर-सी गई थी।

जैसे-जैसे सूर्यकी चण्डता मन्द होती जा रही थी, वैसे ही वैसे सुदास अपने भीतर नई स्फूर्ति आती देख रहा था, और शामको काम छोड़नेसे पहले गेहूँ काटनेमें वह किसीसे कम न था।

रातको लोग वहाँसे दूर खलिहान-घरोंके पास गए। जेताकी खेती बड़ी थी, यह खलिहानमें रातको जमा हुए दो सौसे ऊपर कमकर बतला रहे थे। खलिहानके घरोंमें

खाना बनानेवाले अपने काममें लगे हुए थे। एक भारी बैल मारा गया था, जिसकी हड्डियों, अँतड़ियों और कुछ मांसको बड़े-बड़े देगोंमें तीन घंटा दिन रहते ही चढ़ा दिया गया था। बाक़ी आध-आध सेरके टुकड़े अलग नमकके साथ उबाले जा रहे थे। घरोंके बाहर एक भारी चिकना मैदान खलिहानके लिए था, जिसकी एक ओर एक पक्का कुआँ तथा पानीसे भरा कुण्ड था। स्त्री-पुरुषोंने कुण्डपर जाकर हाथ-मुँह धोए। जिन्हें शरीर धोनेकी इच्छा थी, उन्होंने शरीर भी धोया। अँधेरा होतेके साथ पाँतीसे बैठे स्त्री-पुरुषोंके सामने रोटी, मांस-खंड और सुरा-भाँड़ रखे गए। सुदासकी लज्जाका ख़यालकर अपाला—पानी लानेवाली—ने उसे अपने पास बैठाया, यद्यपि इसमें उसे लज्जाका उतना ख़याल न था, जितना कि परदेश गए भाईकी स्मृतिका। भोजन-पानके बाद गान-नृत्य शुरू हुआ, जिसमें यद्यपि सुदास आज सम्मिलित नहीं हो सका; किन्तु आगे चलकर वह सर्वप्रिय गायक और नर्त्तक बना।

खेतकी कटाई, ढोलाई और दँवाई डेढ़ महीने तक चलती रही; किन्तु दो सप्ताह बीतते-बीतते ही सुदास पहचाना नहीं जा सकता था। उसकी बड़ी-बड़ी नीली आँखें उभर आई थीं। उसके गालोंपर स्वाभाविक लाली दौड़ चुकी थी। उसके शरीरकी नसें व हड्डियाँ पेशियोंसे ढँक गई थीं। जेताने सप्ताह बाद ही उसे नए कपड़े दे दिए थे।

खलिहान क़रीब-क़रीब उठ चुका था। छः-सात आदमियों—जिनमें बाप-बेटी और सुदास भी थे—को छोड़ बाक़ी लोग अपने अनाजको लेकर चले गए थे। इन लोगोंके पास खेत थोड़े थे, इसलिए अपने खेतोंको काटकर वह जेताके खेतोंमें काम करने आए थे। इन डेढ़ महीनोंमें जेता और उसकी लड़की अपने तरुण कमकरके सरल, हँसमुख स्वभावसे बहुत परिचित हो चुके थे। एक दिन सांध्यसुराके बाद जेताने सुदाससे पूरबवालोंकी बात छेड़ दी। अपाला भी पास बैठी सुन रही थी। जेताने कहा—'सुदाः, पूरबमें मैं बहुत दूर तक तो नहीं गया हूँ; किन्तु पंचालपुर (अहिच्छत्र) को मैंने देखा है। मैं अपने घोड़े लेकर जाड़ोंमें गया था।'

'पंचाल (रुहेलखंड) कैसा लगा आर्यवृद्ध?'

'जनपदमें कोई दोष नहीं। वह मद्र-जैसा ही स्वस्थ-समृद्ध है, बल्कि उसके खेत यहाँसे भी अधिक उपजाऊ मालूम हुए; किन्तु...'

'किन्तु क्या?'

'क्षमा करना सुदाः, वहाँ मानव नहीं बसते।'

'मानव नहीं बसते! तो क्या देव या दानव बसते हैं?'

'मैं इतना ही कहूँगा कि वहाँ मानव नहीं बसते।'

'मैं नाराज़ नहीं होऊँगा आर्यवृद्ध! तुझे क्यों ऐसा ख़याल हुआ?'

'सुदाः, तूने देखा मेरे खेतोंमें काम करनेवाले दो सौ नर-नारियोंको?'

'हाँ।'

'क्या मेरे खेतमें काम करते, मेरे हाथसे वेतन पानेके कारण उन्हें ज़रा भी मेरे सामने दैन्य प्रकट करते देखा?'

'नहीं, बल्कि मालूम होता था, सभी तेरे परिवारके आदमी हैं।'

'हाँ, इनको मानव कहते हैं। ये मेरे परिवारके हैं। सभी माद्र और आद्रियाँ हैं। पूरबमें ऐसी बातको देखनेको जी तरसता है। वहाँ दास या स्वामी मिलते हैं, मानव नहीं मिलते, बन्धु नहीं मिलते।'

'सत्य कहा, आर्यवृद्ध, मानवका मूल्य मैंने शतद्रु (सतलज) पारकर—ख़ासकर इस मद्रभूमिमें आकर देखा। मानवमें रहना आनन्द, अभिमान और भाग्यकी बात है।'

'मुझे ख़ुशी है पुत्र, तूने बुरा नहीं माना। अपनी-अपनी जन-भूमिका सबको प्रेम होता है।'

'किन्तु प्रेमका अर्थ दोषोंसे आँख मींचना नहीं होना चाहिए।'

'मैंने कुरु-पंचालकी यात्रा करते वक्त बहुत बार सोचा, यहाँसे भी पंडितोंसे चर्चा की। मुझे इस दोषके आनेका कारण तो मालूम हुआ; किन्तु प्रतिकार नहीं।'

'क्या कारण आर्यवृद्ध?'

'यद्यपि पंचाल जन-पद पंचालोंका कहा जाता है; किन्तु उसके निवासियोंमें आधे भी पंचाल-जन नहीं हैं।'

'हाँ, आगन्तुक बहुत हैं।'

'आगन्तुक नहीं पुत्र, मूलनिवासी बहुत हैं। वहाँकी शिल्पी जातियाँ, वहाँके व्यापारी, वहाँके दास पंचाल-जनोंके उस भूमिपर पग रखनेसे बहुत पहलेसे मौजूद थे। उनका रंग देखा है न?'

'हाँ, पंचाल-जनोंसे बिल्कुल भिन्न काला, साँवला या ताम्रवर्ण।'

'और पंचाल-जनोंका वर्ण मद्रों-जैसा गौर होता है।'

'बहुत-कुछ।'

'हाँ बहुत-कुछ ही, क्योंकि दूसरे वर्णवालोंके साथ मिश्रण होनेसे वर्ण ( रंग ) में विकार होता ही है। मैं समझता हूँ, यदि मद्रकी भाँति वहाँ भी आर्य—पिंगल-केश—ही बसते, तो शायद मानव वहाँ भी दिखलाई पड़ते। आर्य और आर्य-भिन्नोंके ऊँच-नीच भावमें तो भिन्न वर्ण होना कारण हो सकता है।'

'और शायद आर्यवृद्ध, तुझको मालूम होगा कि इन आर्य-भिन्नों—जिन्हें पूर्वज असुर कहते थे—में पहले ही से ऊँच-नीच और दास-स्वामी होते आते थे।'

'हाँ, किन्तु पंचाल तो आर्य-जन थे, एक ख़ून, एक शरीरसे उत्पन्न। फिर वहाँ उनमें भी ऊँच-नीचका भाव वैसा ही पाया जाता है। पंचाल-राज दिवोदासने मेरे कुछ घोड़े ख़रीदे थे, इसके लिए एक दिन मैं उसके सामने गया था। उसका पुष्ट गौर तरुण शरीर सुन्दर था; किन्तु उसके सिरपर लाल-पीली भारी-भरकम डलिया ( मुकुट ), फटे कानोंमें बड़े-बड़े छल्ले, हाथों और गलेमें भी क्या-क्या तमाशे थे। यह सब देखकर मुझे उसपर दया आने लगी। जान पड़ा, चन्द्रमाको राहु ग्रस रहा है। उसके साथ उसकी स्त्री भी थी, जो रूपमें मद्र-सुन्दरियोंसे कम न थी; किन्तु इन लाल-पीले बोझोंसे बेचारी झुकी जा रही थी।'

सुदासका हृदय वेगसे चलने लगा था। उसने अपने भावोंसे चेहरेको न प्रभावित होने देनेके लिए पूरा प्रयत्न किया; किन्तु असफल होते देख बातको बदलनेकी इच्छासे कहा—'पंचाल-राजने घोड़ोंको लिया न आर्यवृद्ध?'

'लिया और अच्छा दाम भी दिया। याद नहीं, कितने हिरण्य; किन्तु वहाँ यह देखकर ज्वर आ रहा था कि पंचाल-जन भी उसके सामने घुटने टेककर वन्दना करते, गिड़गिड़ाते हैं। मर जानेपर भी कोई मद्र ऐसा नहीं कर सकता, पुत्र!'

'तुझे तो ऐसा नहीं करना पड़ा आर्यवृद्ध?

'मैं तो लड़ पड़ता, यदि मुझे ऐसा करनेको कहा जाता। पूरबवाले राजा हमें वैसा करनेको नहीं कहते। यह सनातनसे चला आया है।'

'क्यों?'

'क्यों पूछता है पुत्र, इसकी बड़ी कहानी है। जब पश्चिमसे आगे बढ़ते-बढ़ते पंचाल-जन यमुना, गंगा, हिमवान्‌के बीच (उत्तर-दक्षिणके पंचालों)की इस भूमिमें गए, तो वह बिल्कुल मद्रोंकी ही भाँति एक परिवार—एक बिरादरी—की तरह रहते थे। असुरोंसे संसर्ग बढ़ा, उनकी देखादेखी इन आर्य-पंचालोंमें से कुछ सर्दार राजा और पुरोहित बननेके लिए लालायित होने लगे।'

'लालायित क्यों होने लगे?'

'लोभके लिए, बिना परिश्रमके दूसरेकी कमाई खानेके लिए। इन्हीं राजाओं और पुरोहितोंने पंचालोंमें भेद-भाव खड़ा किया, उन्हें मानव नहीं रहने दिया।'—कहते-कहते जेता किसी कामसे उठ गए।

- २ -

मद्रपुर (शाकला या स्यालकोट)में जेताके कुलमें रहते सुदासको चार वर्ष बीत गए थे। जेताकी स्त्री मर चुकी थी। उसकी विवाहिता बहनों और बेटियोंमें से दो-एक बराबर उसके घरमें रहती थीं; किन्तु घरके स्थायी निवासी थे जेता, सुदास और अपाला। अपाला अब बीस सालकी हो रही थी। उनके व्यवहारसे पता लगता था कि अपाला और सुदासका आपसमें प्रेम है। अपाला मद्रपुरकी सुन्दरियोंमें गिनी जाती थी और वहाँ सुन्दर तरुणोंकी कमी न थी। उसी तरह सुदास-जैसे सुन्दर तरुणके लिए भी वहाँ सुन्दरियोंकी कमी न थी; किन्तु लोगोंने सदा सुदासको अपाला और अपालाको सुदासके ही साथ नाचते देखा। जेताको भी इसका पता था, और वह इसे पसन्द करता, यदि सुदास मद्रपुरमें रहनेके लिए तैयार हो जाता। किन्तु सुदास कभी-कभी अपने माता-पिताके लिए उत्कंठित हो जाता था। जेता जानता था कि सुदास अपने माँ-बापका अकेला पुत्र है।

एक दिन अपाला और सुदास प्रेमियोंकी नदी चन्द्रभागा (चनाब)में नहाने गए थे। नहाते वक़्त कितनी ही बार उसने अपालाके नग्न अरुण शरीरको देखा था। किन्तु आज पचासों नग्न सुन्दरियोंके बीच उसके सौन्दर्यकी तुलनाकर उसे पता लगा, जैसे आज ही उसने अपालाके लावण्यकी पूरी परख पाई है। रास्तेमें लौटते वक़्त उसे मौन देखकर अपालाने कहा—'सुदास, आज तू बोलता नहीं, थक गया है क्या? चन्द्रभागाकी धारको दो बार पार करना कम मेहनतकी बात नहीं है।'

'तू भी तो अपाले, आर-पार तैर गई, और मैं तो दो क्या, समय हो तो दस बार चन्द्रभागाको पार कर सकता हूँ।'

'बाहर निकलनेपर मैंने देखा, तेरे वक्ष कितने फूले हुए थे? तेरी बाँहों और जाँघोंकी पेशियाँ तो दूनी मोटी हो गई थीं।'

'तैरना भारी व्यायाम है। यह शरीरको बलिष्ट और सुन्दर बनाता है। किन्तु तेरे सौन्दर्यमें क्या वृद्धि होगी, अपाले ? तू तो अभी भी तीनों लोकोंकी अनुपम सुन्दरी है।'

'अपनी आँखोंसे कहता है न सुदास ?'

'किन्तु मोहसे नहीं अपाले, तू यह जानती है।'

हाँ, तूने चुम्बन तक कभी मुझसे नहीं माँगा, यद्यपि मद्र-तरुणियाँ उसके वितरणमें बहुत उदार होती हैं।'

'बिना माँगे भी तो तूने उसे देनेकी उदारता की है।'

'किन्तु उस वक्त, जब कि मैं तुझमें भैया श्वेतश्रवाको देखा करती थी।'

'और अब क्या न देगी ?'

'माँगनेपर चुम्बन क्यों न दूँगी ?'

'और माँगनेपर तू मेरी—'

'यह मत कह, सुदास! इन्कार करके मुझे दुःख होगा।'

'किन्तु उस दुःखको न आने देना तेरे हाथमें है।'

'मेरे नहीं, तेरे हाथमें है।'

'कैसे ?'

'क्या तू सदाके लिए मेरे पिताके घरमें रहनेके लिए तैयार है ?

सुदासको कितनी ही बार उन कोमल ओठोंसे इन कठोर अक्षरोंके निकलनेका डर था, आज अशनि (बिजली) की भाँति एकाएक वह उसके कानोंसे होकर हृदयपर पड़े। कुछ देरके लिए उसका चित्त उद्विग्न हो गया; किन्तु वह नहीं चाहता था कि अपाला उसके नग्न हृदयको देखे। क्षण-भरके बाद उसने स्वरपर संयम करके कहा—'मैं तुझे कितना प्रेम करता हूँ अपाले ?'

'यह मैं जानती हूँ, और मेरी भी बात तुझे मालूम है। मैं सदाके लिए तेरी बनना चाहती हूँ। पिता भी इससे प्रसन्न होंगे; किन्तु फिर तुझे चालसे मुँह मोड़ना होगा।'

'पंचालसे मुँह मोड़ना कठिन नहीं है; किन्तु वहाँ मेरे वृद्ध माता-पिता हैं। मुझे छोड़ माँका दूसरा पुत्र नहीं है। माँने वचन लिया है कि मरनेके पहले मैं उसे एक बार ज़रूर देखूँ।'

'मैं माँके वचनको तुड़वाना नहीं चाहती। मैं तुझे सदा प्रेम करूँगी, सुदास, तेरे चले जानेपर भी। मुझे मालूम है, मैं तेरे लिए रोया करूँगी, जीवनके अन्त तक। किन्तु हमें दो वचनोंको नहीं तोड़ना चाहिए—तुझे अपनी माँके और मुझे अपने हृदयके वचनको।'

'तेरे हृदयका वचन क्या है, अपाले ?'

'कि मानव-भूमिसे अमानव-भूमिमें न जाऊँगी।'

'अमानव-भूमि, पंचाल-जनपद ?'

'हाँ, जहाँ मानवका मूल्य नहीं, स्त्रीको स्वातन्त्र्य नहीं।'

'मैं तुझसे सहमत हूँ।'

'और इसके लिए मैं तुझे चुम्बन देती हूँ।'—कह अश्रु-सिक्त कपोलोंको अपालाने सुदासके ओठोंपर कर दिया। सुदासके चुम्बन कर लेनेपर उसने फिर कहा—'तू जा, एक बार माँका दर्शन कर आ; मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।'

अपालाके भोले-भाले शब्दोंको सुनकर सुदासको अपने प्रति ऐसी अपार घृणा हो गई, जिसे वह फिर कभी अपने दिलसे नहीं निकाल सका। माँ-बापको देखकर लौट आनेकी बात कहकर ही सुदास जेतासे घर जानेके लिए आज्ञा माँग सकता था। जेता और अपाला दोनोंने इसे स्वीकार किया।

प्रस्थानके एक दिन पहले अपालाने अधिकसे अधिक समय सुदासके साथ बिताया। दोनोंके उत्पल-जैसे नीले नेत्र निरन्तर अश्रुपूर्ण रहते। उन्होंने इसे छिपानेकी भी कोशिश न की। दोनों घंटों अधरोंको चूसते, आत्म-विस्मृत हो आलिंगन करते अथवा नीरव अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे एक-दूसरेको देखते रहते।

चलते वक्त अपालाने फिर आलिंगनपूर्वक कहा—'सुदास, मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।'

अपालाके ये शब्द सारे जीवनके लिए सुदासके कलेजेमें गड़ गए।

- ३ -

सुदासका अपनी माँसे भारी स्नेह था। सुदासका पिता दिवोदास प्रतापी राजा था, जिसकी प्रशंसामें वशिष्ठ, विश्वामित्र और भरद्वाज * जैसे महान् ऋषियोंने मन्त्रपर मन्त्र बनाए; किन्तु ऋग्वेदमें जमाकर देने मात्रसे उनके भीतर भरी चापलूसी छिपाई नहीं जा सकती। सुदासका स्नेह केवल अपनी मातासे था। वह जानता था कि दिवोदासकी उस-जैसी कितनी ही पत्नियाँ, कितनी ही दासियाँ हैं, वह उसके ज्येष्ठ पुत्र—पंचाल-सिंहासनके उत्तराधिकारी—की माँ है, इसके लिए वह थोड़ा-सा

* ऋग्वेद ६।२६।२४, २५

ख़याल भले ही करे ; किन्तु दिवोदास कितनी ही तरुण सुन्दरियोंसे भरे रनिवासमें उस बुढ़ियाके दन्तहीन मुखके साथ प्रेम क्यों करने लगा ? माँका एक पुत्र होनेपर भी वह पिताका एकमात्र पुत्र न था। उसके न रहनेपर प्रतर्दन दिवोदासका उत्तराधिकारी होता।

वर्षों बीत जानेपर माँ पुत्रसे निराश हो गई थी, और रोते-रोते उसकी आँखोंकी ज्योति मन्द पड़ गई थी। सुदास एक दिन चुपचाप बिना किसीको ख़बर दिए, पितासे बिना मिले, माँके सामने जाकर खड़ा हो गया। निष्प्रभ आँखोंसे उसे अपनी ओर विलोकते देख सुदासने कहा—'माँ, म हूँ तेरा सुदास।'

उसकी आँखें प्रभायुक्त हो गईं, फिर भी मंचसे बिना हिले ही उसने कहा—'यदि तू सचमुच मेरा सुदास है, तो विलीन होनेके लिए वहाँ क्यों खड़ा है ? क्यों नहीं मेरे कण्ठसे लगता ? क्यों नहीं अपने सिरको मेरी गोदमें रखता ?'

सुदासने माँकी गोदमें अपने सिरको रख दिया। माँने हाथ लगाकर देखा, वह हवामें विलीन होनेवाला नहीं, बल्कि ठोस सिर था। उसने उसके मुँह, गाल, ललाट और केशोंको बार-बार चूम आँसुओंसे सींचा, अनेक बार कण्ठ लगाया। माँकी अश्रुधाराको बन्द न होते देख सुदासने कहा—'माँ, मैं तेरे पास आ गया हूँ, अब क्यों रोती है ?'

'आज ही के दिन भर वत्स ! आज ही घड़ी भर पुत्र ! यह अन्तिम आँसू हैं, सुदास ! मेरी आँखोंके तारे !'

अन्तःपुरसे सूचना राजा तक पहुँची। वह दौड़ा हुआ आया और सुदासको आलिंगनकर आनन्दाश्रु बहाने लगा।

दिन बीतते-बीतते महीने हो गए, फिर महीने दो सालमें परिणत हो गए। माँ-बापके सामने सुदास प्रसन्न-मुख बननेकी कोशिश करता ; किन्तु एकान्त मिलते उसके कानोंमें वह वज्रच्छेदिका ध्वनि आती—'मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी', और उसके सामने वही हिलते लाल अधर आ जाते और तब तक ठहरते, जब तक कि आँखोंके आँसू उसे ओझल नहीं कर देते। सुदासके सामने दो स्नेह थे—एक ओर अपालाका वह अकृत्रिम प्रेम और दूसरी ओर वृद्धा माँका वात्सल्यपूर्ण हृदय। माँके असहाय हृदयको विदीर्ण करना उसे अत्यन्त नीच स्वार्थान्धता जान पड़ी, इसीलिए उसने माँके जीवन भर पंचाल न छोड़नेका निश्चय किया। लेकिन राजपुत्रके आमोद-प्रमोदपूर्ण जीवनको स्वीकार करना, उसे अपनी सामर्थ्यसे बाहरकी बात मालूम होती थी। पिताके प्रति वह सदा सम्मान दिखलाता था और उसकी आज्ञाके पालनमें तत्परता भी।

वृद्ध दिवोदासने एक दिन पुत्रसे कहा—'वत्स सुदास, मैं जीवनके अन्तिम तटपर पहुँच गया हूँ, मेरे लिए पंचालका भार उठाना अब सम्भव नहीं है।'

'तो आर्य, क्यों न यह भार पंचालोंको ही दे दिया जाय ?'

'पंचालोंको ! पुत्र, तेरा अभिप्राय मैंने नहीं समझा।'

'आख़िर आर्य, यह राज्य पंचालोंका है। हमारे पूर्वज पंचाल-जनके साधारण पुरुष थे। उस समय पंचालका कोई राजा न था। पंचाल-जन ही सारा शासन चलाता था, जैसे आज भी मल्लमें, मद्रमें, गन्धारमें वहाँके जन चलाते हैं। फिर हमारे दादा वध्र्यश्वके किसी पूर्वजको लोभ—भोगका लोभ, दूसरोंके परिश्रमकी कमाईके अपहरणका लोभ—हुआ। वह जन-पति या सेनापतिके पदपर रहा होगा और जनके लिए किसी युद्धको जीतकर जनके प्रेम, विश्वास और सम्पत्तिको प्राप्त किया होगा, जिसके बलपर उसने जनसे विश्वासघात किया। जनका राज्य हटाकर उसने असुरोंकी भाँति राजाका राज्य स्थापित किया, असुरोंकी भाँति वशिष्ट, विश्वामित्रके किसी विस्मृत पूर्वजको पुरोहित-पदवी रिश्वतमें दी, जिसने जनकी आँखोंमें धूल झोंककर कहना शुरू किया—इन्द्र, अग्नि, सोम, वरुण, विश्वदेवने इस राजाको तुम्हारे ऊपर शासन करनेके लिए भेजा है, इसकी आज्ञा मानो, इसे बलि-शुल्क-कर दो। यह सरासर बेईमानी थी, चोरी थी, पिता ! जिससे अधिकार मिला, उसके नाम तकको भूल जाना, उसके लिए कृतज्ञताके एक शब्दको भी जीभपर न लाना !'

'नहीं पुत्र, विश्व (सारे) जनको हम अपना राजकृत् (राजा बनानेवाला) स्वीकार करते हैं। अभिषेककी प्रतिज्ञाके वक्त वही हमें राज-चिह्न पलाश-दंड देते हैं।'

'अभिषेक-प्रतिज्ञा अब समज्या ( तमाशा ) जैसी है। किन्तु क्या सचमुच जन राजाके स्वामी हैं ? नहीं, यह तो स्पष्ट हो जाता है, जब कि हम देखते हैं—राजा अपने

जनके बीच बराबरीमें बैठ नहीं सकता, उनसे सहभोज, सहयोग नहीं रखता। क्या मद्र या गन्धारका जन-पति ऐसा कर सकता है ?'

'यहाँ यदि हम वैसा करें, तो किसी दिन भी शत्रु मार देगा, या विष दे देगा।'

'यह भय भी चोर-अपहारकको ही हो सकता है। जन-पति चोर नहीं होते, अपहारक नहीं होते। वह वस्तुतः अपनेको जन-पुत्र समझते हैं, वैसा ही व्यवहार भी करते हैं, इसलिए उनको डर नहीं। राजा चोर हैं, जन-अधिकारके अपहारक हैं, इसलिए उनको हर वक्त डर बना रहता है। राजाओंका रनिवास, राजाओंका सोना-रूपा-रत्न, राजाओंकी दास-दासियाँ—राजाओंका सारा भोग—अपना कमाया नहीं होता, यह सब अपहरणसे आया है।'

'पुत्र, इसके लिए तू मुझे दोषी ठहराता है ?'

'बिल्कुल नहीं, आर्य! तेरी जगहपर आनेपर मुझे भी इच्छा या अनिच्छासे वही करना होगा। मैं अपने पिता दिवोदासको इसके लिए दोषी नहीं ठहराता।'

'तू राज्यको जनके पास लौटानेके लिए कहता है, क्या यह सम्भव है ? तुझे समझना चाहिए पुत्र, जनके भोगका अपहारक सिर्फ़ पंचालराज दिवोदास ही नहीं है। वह अनेक अपहारक-चोर सामन्तोंमें से एक है। वह बड़ा हो सकता है; किन्तु उनके सम्मिलित बलके सामने पंगु है। अनेक प्रदेश-पति, उग्र-राजपुत्र (राजवंशिक), सेनापतिके अतिरिक्त सबसे भारी सामन्त तो पुरोहित है।'

'हाँ, मैं जानता हूँ पुरोहितकी शक्तिको। राजाके छोटे पुत्र राजपद तो पा नहीं सकते, इसलिए वह पुरोहित (ब्राह्मण) बन जाते हैं। मैं समझता हूँ, मेरा छोटा भाई प्रतर्दन भी वैसा ही करेगा। अभी राजा और पुरोहितमें सिंहासन-वेदी और यज्ञ-वेदीका ही अन्तर है; किन्तु क्या जाने, आगे चलकर क्षत्र, ब्राह्मण दो अलग बल, दो अलग श्रेणियाँ बन जायँ। मन्द्र-गन्धारमें खड्ग और स्रुवा दोनोंको एक ही हाथ सँभाल सकता है; किन्तु पंचालपुरमें स्रुवा विश्वामित्रके हाथमें होगा और खड्ग वध्यूश्व-पुत्र दिवोदासके हाथमें। जनका बँटवारा तो अभी यहाँ तीन भागोंमें हो चुका है—सामन्तके नाते, जन-भोग-अपहारक होनेके नाते, आवाह-विवाह-सम्बन्धके नाते। माता-पिताके नाते भी चाहे राजा और पुरोहित एक हों; किन्तु दोनोंके नाम—क्षत्रिय, ब्राह्मण—अभी ही अलग-अलग गिने जाने लगे हैं, और दोनोंके स्वार्थोंमें टक्कर भी लगने लगी है, इसीलिए ब्रह्म-क्षत्र-बलमें मैत्री स्थापित करनेकी भारी कोशिश की जा रही है। एक कुलके इन दोनों वर्गोंके बाहर जनकी भारी संख्या है, यह तीसरा वर्ग है। आज इस महाजनका नाम बदलकर उसे विश् (विट्) या प्रजा रख दिया गया है। कैसी विडम्बना है, जो जन (पिता) था, उसे ही आज प्रजा (पुत्र) कहा जाता है। आर्य, यह क्या सरासर वंचना नहीं है ?'

'और पुत्र, तूने एक भारी संख्याको नहीं गिना।

'हाँ, आर्य-जनसे भिन्न प्रजा—शिल्पी, व्यापारी, दास-दासी। शायद इन्हींके कारण सामन्त जनको अधिकारसे वंचित करनेमें सफल हुए। अपने शासक जनको अपने ही समान किसीके द्वारा परतन्त्र हुआ देख आर्य-भिन्न प्रजाको सन्तोष हुआ। इसे ही राजाने अपना न्याय कहा।'

'शायद! पुत्र, तू ग़लती नहीं कर रहा है; किन्तु यह तो बताओ, राज्य किसको लौटाया जाय ? चोरों-अपहारकों—सामन्तों और व्यापारियोंको भी ले ले—को छोड़ देनेपर आर्य-जन और अनार्य-प्रजाकी सबसे भारी संख्या है, क्या वे राज्य सँभाल सकते हैं ? और इधर धर्म-सामन्त और राज-सामन्तके गिद्ध मेरे छोड़ते ही प्रजाको नोच खानेके लिए तैयार हैं। कुरु-पंचालमें जनके हाथसे राज्य छिने छै ही सात पीढ़ियाँ बीती हैं, इसलिए इस जनके दिनोंको भूले नहीं हैं। उस वक्त इस भूमिको दिवोदासका राज्य नहीं, पंचालाः (सारे पंचालवाले) कहते और समझते थे; किन्तु आज तो मुझे वहाँ लौटनेका रास्ता नहीं दीखता।'

'हाँ, रास्तेमें ये वशिष्ट, विश्वामित्र-जैसे ग्राह जो बैठे हुए हैं !

'इसे हमारी परवशता समझ, हम कालको पलट नहीं सकते, और कल कहाँ पहुँचेंगे, इसका भी हमें पता नहीं। मुझे इससे सन्तोष है कि मुझे सुदास-जैसा पुत्र मिला है। मैं भी किसी वक्त तरुण था। अभी उस वक्त तक वशिष्ट और विश्वामित्रकी कविताओं, उनके प्रजाकी मतिको हरनेवाले धर्मों-कर्मोंका मायाजाल इतना नहीं फैला था। मैं सोचता था, राजाकी इस दस्युवृत्तिको कम करूँ; किन्तु वैसा करनेमें अपनेको असमर्थ पाया। उस वक्त मेरे लिए तेरी माँ ही सब कुछ थी; किन्तु पीछे जब मैं भग्न-मनोरथ, निराश हो गया, तो इन पुरोहितोंने अपनी कविताओंके ही

नहीं, कन्याओंके फंदेमें मुझे फँसाया ; इन्द्राणीकी दासियोंकी उपमा दे सैकड़ों दासियोंसे रनिवास भर दिया। दिवोदासके पतनसे शिक्षा ले तू सजग रहना, प्रयत्न करना, शायद कोई रास्ता निकल आय और दस्युवृत्ति हट जाय। किन्तु सुदास-जैसे सहृदय दस्युको हटाकर प्रतर्दन-जैसे हृदयहीन वंचक दस्युके हाथमें पंचालको दे देना अच्छा न होगा। मैं पितृलोकसे देखता रहूँगा तेरे प्रयत्नको और बड़े सन्तोषके साथ, पुत्र !'

\- ४ -

दिवोदास देवलोकको चला गया। सुदास अब पंचालोंका राजा हुआ था। ऋषि-मंडली अब उसके गिर्द मँडराती थी। सुदासको अब पता लगा कि इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोमके नामसे इन सफ़ेद दाढ़ियोंने लोगोंको कितना अन्धा बनाया है। उनके कठोर फंदेमें सुदास अपनेको जकड़ा पाता था। जिनके लिए वह कुछ करना चाहता था, वह उसके भावको उलटा समझनेके लिए, उसे अधार्मिक राजा घोषित करनेके लिए तैयार थे। सुदासको वह दिन याद आ रहे थे, जब कि वह नंगे पैर फटे कपड़ोंके साथ अज्ञात देशोंमें घूमता था। उस वक्त वह अधिक मुक्त था। सुदासकी हार्दिक व्यथाको समझनेवाला, उससे सहानुभूति रखनेवाला वहाँ एक भी आदमी न था। पुरोहित—ऋषि—उसके पास अपनी तरुण पोतियों, परपोतियोंको भेजते थे और राजन्य—प्रादेशिक सामन्त—अपनी कुमारियोंको; किन्तु सुदास अपनेको आग लगे घरमें बैठा पाता था। वह चन्द्रभागाके तीर प्रतीक्षा करती उन नीली आँखोंको भूल नहीं सकता था।

सुदासने सारे जन—आर्य-अनार्य दोनों—की सेवा करनेकी ठानी थी; किन्तु इसके लिए देवताओंकी दलदलमें आपाद-निमग्न जनको पहले यह विश्वास दिलाना था कि सुदासपर देवताओंकी कृपा है। और कृपा है, इसका सबूत इसके सिवाय कोई न था कि ऋषि—ब्राह्मण—उसकी प्रशंसा करें। अन्तमें ऋषियोंकी प्रशंसा पानेके लिए उसे हिरण्य-सुवर्ण, पशु-धान्य, दास-दासी दान देनेके सिवाय कोई रास्ता नहीं सूझा। पीवर गोवत्सके मांस और मधुर सोमरससे तोंद फुलाए इन ऋषियोंने सुदासकी प्रशंसाके पुल बाँधने शुरू किए—ऋषियोंकी रायमें वह वस्तुतः अब सुदास (बहुत दान देनेवाला) हुआ। इन चाटुकार ऋषियोंकी बनाई सुदासकी 'दान-स्तुतियों'में कितनी ही अब भी ऋग्वेदमें मौजूद हैं; किन्तु यह किसको पता है कि सुदास इन दान-स्तुतियोंको सुनकर उनके बनानेवाले कवियोंको कितनी घृणाकी दृष्टिसे देखता था।

सुदासका यशोगान सारे उत्तर-पंचाल ( रुहेलखंड ) में ही नहीं, दूर-दूर तक होने लगा था। अपने भोग-शून्य जीवनसे वह जो कुछ हो सकता था, विश्व-जनका हित करता था।

पिताके कितने ही साल बाद सुदासकी माँ मरी। वर्षोंसे जो घाव साधारण तौरसे बहते रहनेके कारण अभ्यस्त-सा हो गया था, अब जान पड़ा, उसने भारी विस्फोटका रूप धारण कर लिया है। उसे मालूम होता था, अपाला हर क्षण उसके सामने खड़ी है और अश्रुपूर्ण नेत्रों, कम्पित अधरोंसे कह रही है—'मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।' उस व्यथाकी आगको सुदास आँसुओंसे बुझा नहीं सकता था।

हिमवान्‌में शिकार करनेका बहानाकर सुदास एक दिन पंचालपुर (अहिच्छत्र)से निकल पड़ा।

मद्रपुर ( स्यालकोट )में वह घर मौजूद था, जहाँ उसे अपालाका प्रेम प्राप्त हुआ था; किंतु न अब वहाँ जेता था, न उसकी प्रिया अपाला। दोनों मर चुके थे, अपाला एक ही साल पहले। उस घरमें अपालाका लुप्त-पुनः प्राप्त भाई और उसका परिवार रहता था। सुदासको साहस नहीं हुआ कि उस घरसे और स्नेह बढ़ाए। अपालाकी एक सखीसे वह मिला। उसने अपालाके उन रंगीन नए वस्त्रों—अन्तरवासक, उत्तरीय ( चादर ) कंचुक और उष्णीष—को सामने रख आँखोंमें आँसू भरकर कहा—"मेरी सखीने इन वस्त्रोंको अन्तिम समयमें पहना था और उसके ओठों पर अन्तिम शब्द थे: 'मैंने सुदासको वचन दिया है, बहन, कि मैं तेरे लिए मद्रपुरमें प्रतीक्षा करूँगी।'"

सुदासने उन कपड़ोंको उठाकर अपनी छाती और आँखोंसे लगाया। उनसे अपालाके शरीरकी सुगन्धि आ रही थी।†*

सेन्ट्रल जेल, हजारीबाग ]

† लेखककी 'वोलगासे गंगा' नामक कहानी-संग्रहकी सातवीं कहानी।

* यह आजसे १४४ पीढ़ी पहलेके आर्य-जनकी कहानी है। इसी समय पुरातनतम ऋषि वशिष्ट, विश्वामित्र, भरद्वाज ऋग्वेदके मन्त्रोंकी रचना कर रहे थे, इसी समय आर्य-पुरोहितोंकी सहायतासे कुरु-पंचालके आर्य-सामन्तोंने जनताके अधिकारपर अन्तिम और सबसे ज़बर्दस्त प्रहार किया। —लेखक

# कोहक़ाफ़
## —पच्छिमी एशियाका सिंहद्वार—

कोहक़ाफ़का मशहूर दर्रा—दारियाल।
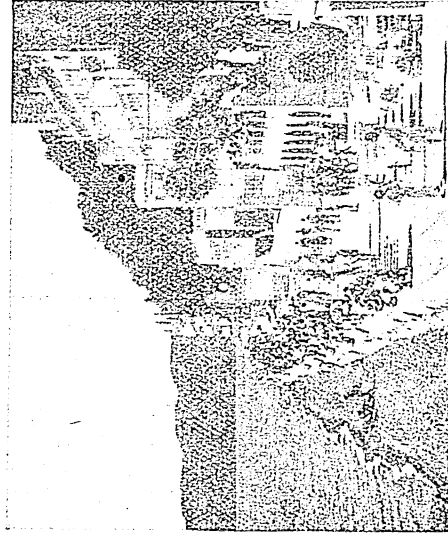
कालेसागरके तटपर बसा कोहक़ाफ़का एक सुन्दर नगर। समुद्र-तटपर स्नानार्थियोंकी भीड़ लगी है।
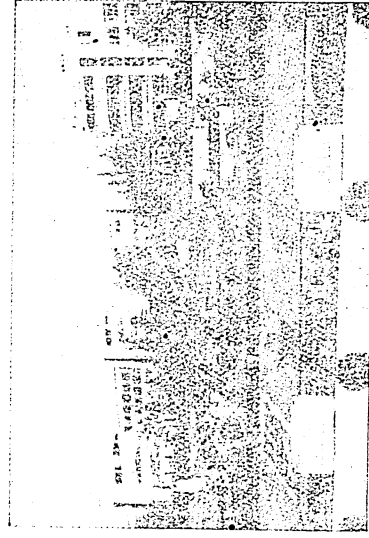
कालेसागरके तटपर बसे कोहक़ाफ़के एक दूसरे नगरका दृश्य।
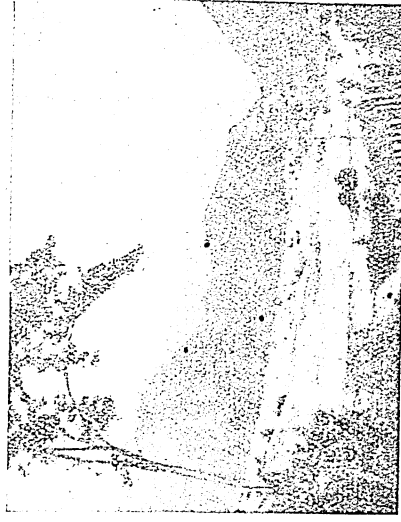
कोहक़ाफ़की स्वानेटा उपत्यका।

( देखिए पृष्ठ ६६१-६३ )
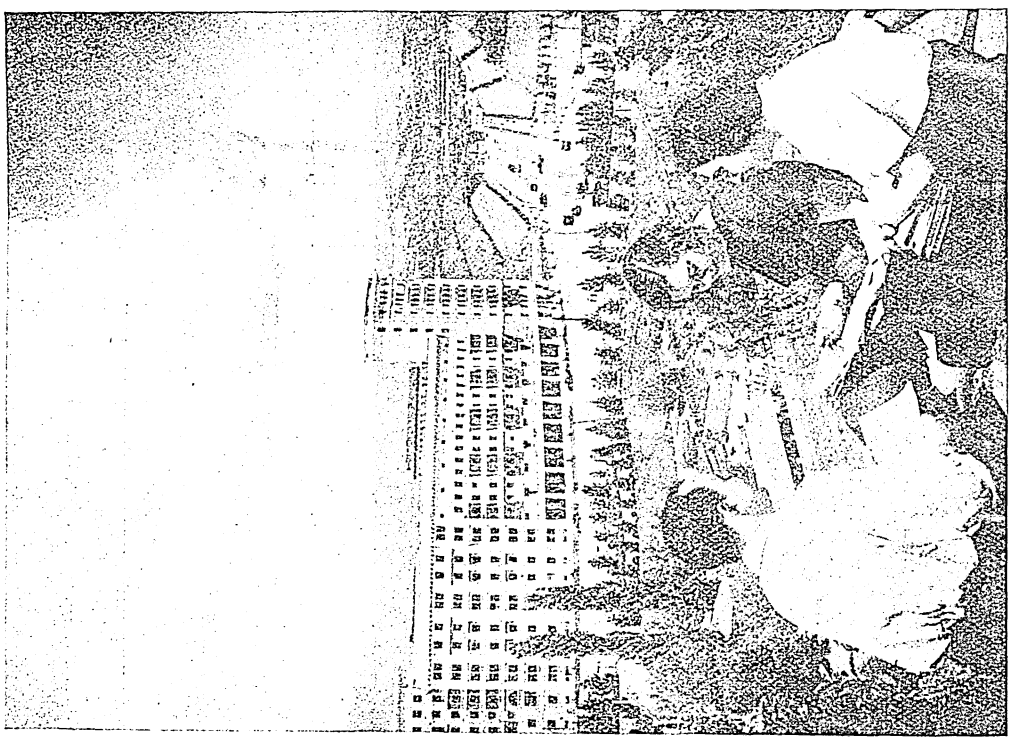
कोहक़ाफ़के दक्षिणमें बसे टिफ्लिस नगरका एक दृश्य ।
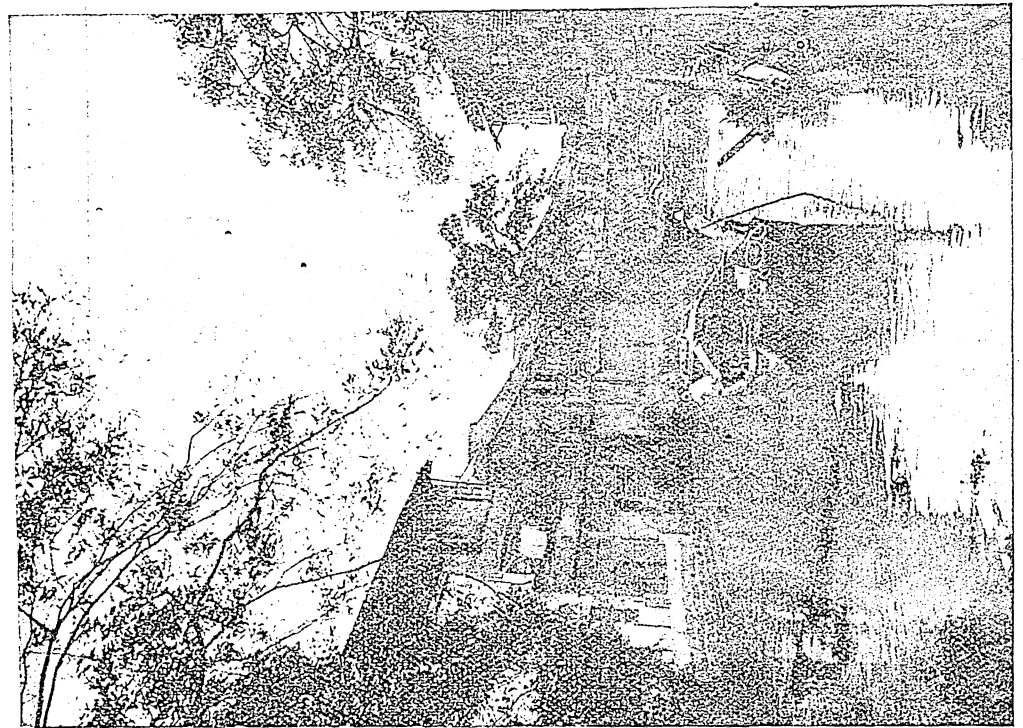
मनिलाका एक ग्राम ।

अहमद अपने स्वरको स्वाभाविक रीतिसे कुछ ऊँचा करके बोला—'तो क्या मालिक, आपका मतलब है कि यह सब मुसलमान ही करते हैं, हिन्दू कुछ नहीं करते ?

कैसे आपकी ... यदि यात्रा-कालमें,
... बिल्लियाँ, दो कुत्ते और मुर्गे परस्पर ..., उनको
... पड़ें, तो यात्रा अनिष्टकारी है। ... रसूलकी—
प्रात वाम दिस तीतर ब... वह उत्तेजित
पहर दुईतें दाहिन गाजे...
रख ... वचन मानि 'डाक' क... जोशका अनुभवकर
अनुसन्धान... गमन करी कुशल ...खा, उसका मुँह क्रोधसे
वह इसे प्रति... यदि वाम की आँखें चमक रही हैं।
करतूत बतलाता है ...दायक्युनो ! इसी बातको लेकर आज
है।...असल ... सम्बन्धमें आ... की है और ठीक उसी
कावत। ... ननेको तैयार
थे। ...-उपल... वाले नौकरों और चपरासियों... पने
किया ... हता हूँ। हमने कभी यह भी सोचा है ...
हमारे घरेलू नौकरोंकी क्या अवस्था है ? कुछ दिनों ...
बात है। मैं एक ईश्वर-भक्त मित्रके यहाँ ठहरा हुआ ... तके
नौकरके साथ किए जानेवाले उनके व्यवहारसे खि... भी
मैंने उनसे कहा—'ईश्वर-भक्तकी सबसे बड़ी पहचा... ोई दबे
है कि वह भगवान्‌के बन्दोंके साथ अच्छा व्यव... ी किताबें
आपको तो अपने पुत्र और नौकरके साथ एक-... है। फिर
करना चाहिए। जिस प्रकार आप अपने बाल...
स्वास्थ्य और खान-पानकी चिन्ता करते हैं ... ढ़ा अहमद
नौकरकी भी कीजिए। नौकरकी भी हा... लक ! आप
आपका कर्त्तव्य है। वैसे तो मैं किसी ... र चाहे जो
नौकर रखना उचित नहीं समझता ; लेकिन ... ी बुराई नहीं
आवश्यकतावश नौकर रखना ही पड़े, तो ... तक दूँगा।
समझना चाहिए।' ... भी आप मेरे

मेरे अनेक मित्र 'कम्युनिस्ट' भी हैं। ...छ नहीं कह
भी नौकरोंके साथ मैंने बुरा व्यवहार हो... ा।
जो अपने नौकरके साथ मनुष्यताका व्यवहार ... कहा—'कहाँ
वही सच्चे अर्थोंमें नागरिक कहलानेका अधिका... आओ न,
वही सामाजिक जीवनका महत्त्व समझता है।

...में अनेक अंगरेज़-परिवार भी ... पके लिए
चाय जो बनानी है। ... नौकरी ही बनाना
है।' और वह बिना कुछ कहे-सुने कमरेसे बाहर हो गया।

नदीम साहब उस समय विचारोंमें भरे थे, उठकर उसके सामने जा खड़े हुए और कहने लगे—'अहमद तुम बूढ़े हो गए, फिर भी बात नहीं समझते ; अपना अच्छा-बुरा भी नहीं सोचते। मैं तुम्हींसे पूछता हूँ, बताओ, ...लमान आख़िर हिन्दुओंसे ही क्यों लड़ते हैं, उन्हींसे उनकी ऐसी कौन-सी दुश्मनी है ? हिन्दोस्तानमें तो सभी जातियोंके लोग हैं—ईसाई, पारसी, जैन, बौद्ध, सिक्ख वग़ैरह। इनसे क्यों नहीं लड़ते ? यह रही यहाँकी बात और दुनियाके दूसरे विदेशी मुल्कोंमें जहाँ-जहाँ हिन्दू-मुसलमान बसे हैं, ख़ूब मिलकर रहते हैं। आपसमें खाते-पीते और उठते-बैठते हैं, फिर यहाँ ही यह क्यों ?'

वह चायकी पतीली स्टोवपर रख रहा था, उनके मुँहकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा ; फिर बोला—'मालिक, मानिए या न मानिए, आप उस हिन्दू लड़केके साथ रहकर पूरे हिन्दू बन गए हैं। उसीके साथ खाते-पीते हैं। उसने आपपर पूरा रंग चढ़ा दिया है। यही हाल रहा, तो कुछ दिनोंमें आप हिन्दू-मज़हब भी अख़्तियार कर लेंगे। पर मैं यह सब थोड़े ही होने दूँगा। आज ही मुल्लाजीको ख़बर करूँगा।'

नदीम साहबने कहा—'इसे छोड़ो अहमद, पहले मेरी बातका जवाब दो।' यह कहते हुए वे एक स्टूल खींचकर बैठ गए।

अहमद तनिक रुककर बोला—'सो मैं क्या जानूँ, मालिक ! आप पढ़े-लिखे हैं, इन बातोंको जानते हैं ; लेकिन इतना तो मैं भी देखता हूँ कि हिन्दू ही हमारे कामोंमें, हमारे त्योहारोंमें और हमारे जलसोंमें गड़बड़ी मचाते हैं। तभी हम लोग भी उनसे वैसे ही पेश आते हैं। इसमें हमारी क्या ख़ता है ?'

नदीम साहबने उत्तरमें कहा—'बस अहमद, तुम ठीक कहते हो। अगर किसी हिन्दूसे पूछा जाय, तो वह भी यही कहेगा ; लेकिन हम लोग यह बात दिल ही में सोच लेते हैं और बिना जाने-बूझे उसपर चलने लगते हैं। अगर इसी बातको हम लोग आपसमें बैठकर तै कर लें, तो कुछ भी गड़बड़ी न हो और न आजकलकी भाँति सैकड़ों जानें ही जायँ। हम लोगोंमें तालीमकी किस क़दर कमी है, इसे तुम नहीं जानते, मैं जानता हूँ। इसीलिए तो मुल्ला-पुजारियोंने हम लोगोंको लड़नेके लिए और भी तैयार कर दिया है। हम अपनेको कुछ न समझकर, मज़हबके अन्धे जोशमें पतंगोंकी भाँति लड़कर मर-कट जाते हैं। यह कैसी ज़बरदस्त नासमझी है।'

अहमद कुछ न बोला। अपनी सूखी दाढ़ीमें हाथ डाले वह कुछ सोचता रहा। नदीम साहब तब उठकर चले आए।

× × ×

दूसरे दिन सबेरे नदीम साहब अपने मित्र कृष्णचन्द्रके साथ कमरेमें बैठे चाय पी रहे थे, तभी बाहर अख़बार-वालेने पुकारा। अहमद अख़बार ले आया और देकर जाने ही वाला था कि उन्होंने कहा—'सुने जाओ अहमद, आज ख़बर आई है बम्बईमें तेरह आदमी मारे गए और सैंतीस घायल हुए। ढाका और अहमदाबादमें भी कुल मिलाकर पचीस मरे और तीस घायल हुए हैं। सच कहता हूँ, जब मैं पढ़ता हूँ, तो दिल रो उठता है। इतने आदमी बिना वजह ही लड़कर मर गए। ज़िन्दा रहते, तो उनसे मुल्कका काम चलता। बच्चे बड़े होकर न जाने क्या-क्या बनते और मुल्कके लिए न जाने क्या-क्या करते। अगर ये लोग ऐसे न लड़कर आज़ादीके जंगमें लड़ते, तो कोई उन्हें जानता भी। उनके नाम इज्ज़तसे लिए जाते।'—कहते हुए उन्होंने चायका प्याला मेज़पर रख दिया।

अहमद वैसा ही खड़ा चुपचाप सुन रहा था। कृष्णचन्द्रने कहा—'अहमद, तुम मुझसे उम्रमें बड़े हो, बूढ़े हो, ज़्यादा देख-सुन चुके हो और साथ ही कट्टर मुसलमान भी हो। आज तुमसे पूछता हूँ, सच कहना, तुम जब दंगेमें अपने एक मुसलमान भाईकी मौत सुनते हो, तो तुम्हारा दिल क्या कहता है?'

उसने किसी भाँति अपनेको रोककर कहा—'बस, जितने हिन्दू जहाँ भी मिलें, बोटी-बोटी काट डालूँ।'

'बिल्कुल ठीक, ऐसा ही चाहिए।'—कृष्णचन्द्रने गम्भीरतासे कहा—'तुमसे ऐसी ही उम्मीद की जानी चाहिए। तुम अपनी जातिके सच्चे ख़ैरख़्वाह हो; लेकिन यह तो बताओ कि हिन्दूकी मौत सुनकर एक हिन्दू क्या सोचेगा, या मैं ही क्या सोचूँगा?'

उसने रुककर निर्भीकतापूर्वक कहा—'वही, जो मैं सोचता हूँ।'

'अब समझो!'—कृष्णचन्द्रने मुस्कराते हुए कहा—'अगर सभी हिन्दू और सभी मुसलमान यही सोच लें और आपसमें लड़ मरें, तो क्या होगा? तब हमारे-तुम्हारे उस मज़हबको दूसरे लोग कैसा बतायँगे?'

इस बार उसके उत्तर देनेके पहले ही नदीम साहब बोल उठे—'अन्धा! जो मज़हब मेलसे रहना न सिखाकर लड़ाई लड़ना सिखाता है; आपसमें कट मरना सिखाता है, उसे और क्या कहा जायगा? पर देखो अहमद, यह बात नहीं है। जो असलमें बुराई है, वह सभी मज़हबोंमें बुराई ही है। उसे अच्छा कहनेका दावा कोई नहीं कर सकता, और जो अच्छा है, उसे बुरा नहीं कहा जा सकता। मज़हब हमें बुराईसे बचाता है, अच्छाई सिखाता है और ठीक रास्तेपर चलना सिखाता है। मज़हब सभी एक हैं, कोई ऊँचा नहीं।'

अहमदने कहा—'सो तो सब ठीक है, मालिक! लेकिन अपने मज़हबको गिरता कौन देखेगा? अपने लोगोंकी क़ुरबानी कौन सह सकेगा? आपके कहनेके मुताबिक़ हम लोग बदला लेना ही छोड़ दें। हमपर जो चाहे, सो ज़ुल्म करे और हम लोग उसे चुपचाप सहते रहें, यह कैसे होगा? यह तो उनका उसूल है, जिनमें ताक़त नहीं, जो कमज़ोर हैं और अपने ऊपर ज़ुल्म सहते हुए ख़ुदाके ऊपर उसका फ़ैसला छोड़ देते हैं। हमारा मज़हब इस्लाम है। मुल्लाजी कहते थे, इसकी तवारीख़में लिखा है कि यह किसीसे कभी नहीं दबा, किसीके सामने सर नहीं झुकाया और हमेशा दूसरोंपर हुकूमत ही की है। फिर हम उसी इस्लामको मानकर किसीसे कैसे दब जायँ? एकके बदले चारका ख़ून करेंगे।'

उत्तेजित स्वरमें उसका रोष प्रकट होने लगा। कृष्णचन्द्रने नदीम साहबकी ओर देखा और उन्होंने उनकी ओर। दोनोंके शरीर जैसे सिहर उठे। बूढ़े अहमदसे उन्हें ऐसी आशा न थी। अब जब उसके बाल सफ़ेद हो चुके हैं, खालमें सल पड़ चुके हैं और शरीरकी हड्डी-हड्डी दिखाई पड़ने लगी है, तब भी उसमें वही नौजवानोंका-सा धार्मिक जोश है, मदान्धता है, जिस कारण वह जो चाहे, कर सकता है। अवसर जानकर नदीम साहबने कहा—'अच्छा जाओ अहमद, काम देखो। तुम्हें तालीम ही ऐसी मिली है। इसमें तुम्हारी क्या ख़ता? ऐसे बूढ़े दिमाग़ोंने तो हिन्दुस्तानको और भी डुबो दिया है। मैं तुम्हारे लिए ही नहीं कहता, सभीके लिए कहता हूँ—चाहे वे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान।' कहते हुए वे अख़बारके पृष्ठ उलटने लगे।

वह कमरेसे बाहर चला गया। कृष्णचन्द्र बोले—

'यह तो पूरा कट्टर है। ख़ैर है कि यहाँ झगड़ा नहीं होता, नहीं तो यह ज़रूर ही बिना दो-चारको मारे नहीं मानता। बिल्कुल जवानोंका-सा जोश है।'

नदीम साहब एक स्थानपर दृष्टि गड़ाते हुए कहने लगे—'क्या करे बेचारा! बेपढ़ा-लिखा है। मुल्ला-मौलवियोंकी संगतमें बैठकर इतना ही तो सीख पाया है। फिर अपना कहनेको इसका कोई नहीं है, बिल्कुल अकेला है। सोचता है, अगर दंगेमें मज़हबके लिए मारा भी जायगा, तो ज़न्नत मिलेगी।'

कृष्णचन्द्र कुछ चिन्तित-से होकर बोले—'बस, यही तो सारी बात है। शुरूसे ही इसके दिमाग़में यह भर दिया गया है। यही हमारी एकता न होनेका कारण है। फिर मैं इकतरफ़ा बात क्यों कहूँ, हमारे हिन्दुओंमें भी तो ऐसे सैकड़ों लोग हैं, जो मरने-मारनेको उतारू रहते हैं। वे चाहा करते हैं कि दंगा हो और लोगोंको लूट-खसोटकर उनका सारा धन ले लें। न जाने कब ऐसे आदमियोंसे देश मुक्त हो सकेगा और कब हम कंधे-से-कंधा भिड़ाकर अपने देशकी आज़ादीके लिए आगे बढ़ सकेंगे।'

वे इसका कुछ उत्तर दें कि इसके पहले ही अहमद दरवाज़ेका पर्दा हटाकर भीतर घुस आया और कहने लगा—'माफ़ करें, मालिक! मैं ऐसी नौकरी नहीं चाहता, जहाँ लोग बैठ-बैठकर हमारे इस्लामकी, हमारे मज़हबकी बुराई करें और आप उसमें शरीक हों। बहुत दिनों तक आपकी रोटी खाई है, आपके रहमपर पला हूँ; लेकिन अब नहीं रहना चाहता। चाहे जहाँ बैठ जाऊँगा। अल्लाहके नामपर टुकड़े माँगकर खा लूँगा। इस तरह यहाँकी बातें सुन-सुनकर दोज़ख़ थोड़े ही जाऊँगा। मुझे अपना रास्ता नहीं बिगाड़ना है।'

नदीम साहब उसके अकस्मात् आ जानेपर उसका शब्द सुनकर चौंक पड़े। हाथका अख़बार मेज़पर रखकर उसकी ओर ध्यानसे देखने लगे। उसकी बातें सुन उन्होंने हँसकर कहा—'हाँ, अहमद, अब देखता हूँ, तुम रोज़-बरोज़ बढ़ते ही जाते हो। हमारी ही नहीं, हमारे दोस्तों और मिलने-वालोंकी भी बेइज़्ज़ती करते हो। तुम शायद वे दिन भूल गए, जब भूखके मारे इधर-उधर भीख माँगते फिरते थे। तब क्यों न किसी ऐसेके यहाँ नौकरी कर ली थी, जो तुम्हें इसी बातपर खिलाता-पिलाता कि तुम पड़े रहो और मौक़ा आनेपर दंगा मचाकर लूट-मार कर लो और मज़हबके नामपर दो-चारका ख़ून कर दो? तब तो बहुत सीधे बनकर आए थे। अब फिर वे ही दिन देखना चाहते हो? अब तक तुम्हारी बुज़ुर्गीका ख़याल करता रहा, वर्ना अपने उसूलके ख़िलाफ़ चलनेवालोंसे तो मैं बोलता भी नहीं।' फिर तनिक सँभलकर बैठते हुए कहा—'तुम इसीलिए तो बिगड़ गए कि इन्होंने कहा था, हिन्दू-मुस्लिम एक हो जायँ, लड़ना बन्द कर दें। ऐसा तुम नहीं चाहते? मैं पूछता हूँ, क्यों? क्या तुम अपने मज़हबको लेकर अकेले ही रहना चाहते हो और ख़ुदाके पैदा किए दूसरे इन्सानोंको नहीं रहने देना चाहते? यह सरासर बेइन्साफ़ी है। एक ही ख़ुदाने यह दुनिया बनाई है। उसीकी सारी औलादें हैं। हम लोगोंकी ही तरह और लोग भी हैं। एक जगह न रहनेसे हम लोगोंकी बोलचाल, रहन-सहन, खान-पान वग़ैरहमें भेद हो गया है, और कोई बात नहीं। फिर तुम भी तो यहीं पैदा हुए हो, यहाँकी मिट्टीमें खेले हो, यहाँका पानी पिया है, यहाँकी आबहवामें पले हो और यहींके रहनेवालोंसे बैर! तौबा करो, मियाँ अहमद! इस बातको सोचो कि वे तुम्हारे भाई हैं, तुम्हें हमेशा अब यहीं उन्हींके बीच रहना है, यही तुम्हारा मुल्क है। फिर यदि तुम यहीं दंगा-फ़साद करोगे, तो कितने दिन रहने पाओगे? यह हमेशासे हिन्दुओंका मुल्क रहा है और तुम लोग अब उन्हें ही मारना चाहते हो, यह कैसे हो सकेगा? लड़कर नहीं, मिलकर उन्हें जीत सकते हो।'

अहमद सन्न हो चुपचाप खड़ा रहा, फिर कमरेके बाहर हो गया। उसके जाते ही नदीम साहब बड़े ज़ोरसे हँस पड़े। उन्हें हँसते देखकर कृष्णचन्द्र भी हँस पड़े और बोले—'अभी बूढ़ा समझा नहीं है, एक बार फिर लड़ेगा, तैयार रहना।'

उन्होंने उत्तर दिया—'सो तो कल ही कहता था, मुल्लाजीको लायगा। तुम्हारे लिए कहता था कि तुम्हींने मुझे हिन्दू बना दिया है। तुम उससे ज़रा होशियार रहना।'

कृष्णचन्द्रने कहा—'होगा, मुझे रात-बिरात मार भी बैठेगा, तो क्या? उसे किसी भाँति समझ आ जानी चाहिए।'—कहकर वे कमरेसे बाहर हो गए।

किसी भाँति दो दिन बीते। तीसरी संध्याको जब कृष्णचन्द्र और नदीम साहब बैठे बातें कर रहे थे, तभी एकाएक अहमद अपनी ही उमरके एक बूढ़े मुल्लाजीको

साथ लेकर कमरेमें आ घुसा। दोनोंने उठकर मुल्लाजीसे आदाब-अर्ज़ की और सम्मानपूर्वक उन्हें कुर्सीपर बैठाया। अहमदने नदीम साहबकी ओर संकेतकर कहा—'मुल्लाजी, ये मेरे मालिक हैं', और कृष्णचन्द्रकी ओर देखकर कहा—'ये हमारे मालिकके हिन्दू दोस्त हैं। इन्होंने न जाने क्या-क्या कह-सुनकर मालिकका दिल इस्लामकी तरफ़से फेर दिया है, और अब ये मज़हबको कोई चीज़ ही नहीं समझते। आपका ही सहारा है, मुल्लाजी, जैसे बने, इन्हें बचाइए।'

ऐसा कहकर वह कमरेके बाहर हो गया। मुल्लाजी घरसे पहले ही ख़ूब दाँव-पेंच सोच-समझकर चले थे, जिससे जैसे भी हो, अपनी हार न होने दें और नदीम साहबको कट्टर मुसलमान बना लें। उन्होंने अपनी टोपी उतारकर मेज़पर रख दी और अपने सरके लम्बे सफ़ेद बालों और बेतुकी जमी दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए कहा—'नदीम साहब, क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि आपकी इस ग़लतफ़हमीके क्या मानी हैं और आप इस्लामसे क्यों फिरन्ट होते जाते हैं?' फिर कृष्णचन्द्रकी ओर मुड़कर कहा—'देखिए, आपको चुप रहना पड़ेगा। ये हमारी मज़हबी बातें हैं, आपको इसमें दख़ल देनेका कोई भी हक़ न होगा। मैं सभी तरहकी बातें कहूँगा। अगर वे आपको क़ाबिले-बर्दाश्त न हों, तो आप उठकर बाहर चले जायँ।' फिर वे उत्तरकी आशामें नदीम साहबके मुँहकी ओर देखने लगे।

उन्होंने उत्तर दिया—'देखिए मुल्लाजी, मैं मुसलमान हूँ और पक्का मुसलमान हूँ। इस्लाम मेरा मज़हब है, क़ुरान मेरी मज़हबी किताब है। ये सब बातें मैं मानता हूँ; लेकिन और मुसलमानोंकी तरह मैं दूसरे लोगोंको काफ़िर नहीं समझता और न उनकी मज़हबी किताबोंको झूठ ही समझता हूँ। अपने ही तरह उन्हें भी मानता हूँ, फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि वे और रास्ता चलना चाहते हैं और हम और। सो इसके लिए हम उन्हें मजबूर नहीं कर सकते और न अपनी बात उनसे ज़बरदस्ती मनवानेके लिए उनका ख़ून ही कर सकते हैं। हमारी ही तरह वे भी इन्सान हैं। बस मुल्लाजी, मेरी अब तककी पढ़ाईका, इतने छोटे तजुरबेका, यही निचोड़ है।'

मुल्लाजीने त्योरी चढ़ाकर कहा—'यह कैसे हो सकता है कि आप सबको एक बराबर समझें? आपने अभी कुछ नहीं पढ़ा है, सिर्फ़ अंगरेज़ी ही पढ़ी है, सो वही बू दिमाग़में भरी है। आपने मज़हबी किताब पाक क़ुरानशरीफ़ न तो पढ़ी ही है और न उसको पढ़ते ही सुना है। अब मैं यही राय दूँगा कि आप पहले उसे पढ़ लीजिए, तब अपनी राय क़ायम कीजिए।'

नदीम साहबने तुरत बड़ी सतर्कतासे उत्तर दिया—'सो उसकी फ़िक्र आप न कीजिए, मुल्लाजी! मैंने अंगरेज़ीका तरजुमा पढ़ लिया है। मुझे उसमें कहींपर भी कोई ऐसी बात नहीं मिली, जिससे मैं किसीसे लड़ाई मोल लेता फिरूँ।'

मुल्लाजी अपने सरको ज़ोरसे हिलाते हुए बोले—'बिलकुल ठीक है। आप अंगरेज़ी-तरजुमा पढ़कर कुछ भी नहीं जान सकते। आप जानते हैं, वह मुसलमानोंका किया हुआ नहीं है, दूसरे लोगोंका है। उन्होंने अपने मनसे मतलब लिख दिए। मैं उसे नहीं मानता। क़ुरानशरीफ़में साफ़ लिखा है कि वह ख़ुदाकी लिखी हुई है। उन्होंने सिर्फ़ मुसलमानोंको पैदा किया है कि वे दुनियापर हुकूमत करें और दूसरे मज़हबवालोंको मारकर भगा दें, नहीं तो उन्हें भी तलवारके ज़ोरसे इस्लाम क़ुबूल करवायँ। समझे आप? मैं ख़ुदापर और उसके लिखे पाक क़ुरानशरीफ़पर यक़ीन करूँगा, आपपर नहीं।'

इसपर नदीम साहब कुछ उत्तेजित हो उठे। उन्होंने कृष्णचन्द्रकी ओर देखा, जो बड़े ध्यानसे दोनोंकी बातचीत सुन रहे थे। दोनोंमें कुछ संकेत हो गया। तब उन्होंने मुल्लाजीकी ओर तीक्ष्ण नेत्रोंसे देखा और कहा—'माफ़ कीजिए, मुल्लाजी! यह सरासर आपकी ज़्यादती है। मुसलमानोंमें आप लोगोंने और हिन्दुओंमें आप ही जैसे पंडितोंने उलटे माने लगा-लगाकर सब चौपट कर दिया है। मज़हबपर ऐसा रंग चढ़ाया है कि बस, बात-बातमें ख़ूनके पनाले बहने लगें। आप लोगोंके पास सिवा उल्टा सिखानेके और कुछ काम ही नहीं। ज़रा यह भी तो सोचिए कि मुल्कका क्या हाल हो रहा है? दुनियामें कितना बड़ा जंग मचा है। लाखों आदमी मारे जा चुके हैं, और आपके यहाँ ख़बरें आती हैं बम्बईमें हिन्दू-मुस्लिम दंगा, ढाकामें बीस आदमी मारे गए, कानपुरमें लूट-मार मची है, अहमदबाद और सिन्धमें घर जलाए जा रहे हैं। आप तो मज़हबके पीर हैं, आपको तो मेलसे रहना सिखाना चाहिए।'

मुल्लाजी इसपर कुछ न बोले। ज़ोरसे अहमदको

पुकारा। वह तुरत भीतर घुस आया। उन्होंने कहा—'नदीम साहब, आपपर पूरा असर हो चुका है, जो आसानीसे नहीं उतारा जा सकता। इसके लिए मुझे कुछ और करना होगा।' फिर अहमदसे कहा—'चल, मुझे घर तक छोड़ आ।'

वह आज्ञाके लिए नदीम साहबकी ओर देखने लगा। उन्होंने कहा—'जाओ अहमद, खड़े क्यों हो?'

उनके चले जानेके बाद कृष्णचन्द्रने कहा—'वाह नदीम साहब! आपने तो कमाल कर दिया। मुल्लाजीको भागते ही बना।'

उन्होंने उत्तर दिया—'यह बात नहीं, दोस्त! बूढ़े-बूढ़े मिले हैं, जो न कर बैठें। मेरी समझमें तुम कुछ दिनोंके लिए यहाँ न आया करो। मैं ही तुम्हारे यहाँ आ जाया करूँगा। इस अहमदकी ओरसे मुझे शक हो रहा है, न जाने क्या कर बैठे।'

कृष्णचन्द्रने हँसते हुए कहा—'मैं आना नहीं बन्द कर सकता। क्या इसी बलपर हम लोग खड़े हुए हैं? हमें तो ऐसे सैकड़ों आदमियोंको समझाना होगा, उनकी मार खानी होगी, गाली सुननी पड़ेगी; तब कहीं हम अपने उद्देश्यपर पहुँच सकेंगे। मैं आगे बढ़कर पीछे हटना नहीं चाहता।' फिर कृष्णचन्द्र दूसरे दिन मिलनेका कहकर चले गए।

दूसरे दिन सारे शहरमें ख़बर फैल गई कि नदीम साहबने कृष्णचन्द्रको मुसलमान बना लिया है। गवाहीमें उनका नौकर अहमद और मुल्लाजी भी हैं, जिन्होंने मज़हब कुबूल करवाया है। कृष्णचन्द्र उसी क्षण अपने घरसे निकाल दिए गए। हिन्दू लोग नदीम साहब और मुल्लाजीके घोर दुश्मन बन गए। अहमद, जिसने यह झूठ समाचार शहरमें फैलाया था, लोगोंकी बातें सुन-सुनकर मन ही मन हँसता और कहता—'अब मज़ा मिला है। सड़ककी भीख माँगेगा। इस्लामके माननेवाले बदला लेना ख़ूब जानते हैं और साथ ही अपने एक भाईको काफ़िर होनेसे बचाना भी।'

कृष्णचन्द्रको घरसे निकलनेका कोई दुःख न था; किन्तु उन्हें यह भय था कि समय ख़राब है, जगह-जगहपर दंगे हो रहे हैं, कहीं उन्हींकी बातको लेकर हिन्दू झगड़ा न कर बैठें। नदीम साहबसे उन्होंने कुछ भी न कहा, और एक मकान लेकर अकेले ही रहने लगे। हिन्दू उनसे मिलने आते, उन्हें डाँटते-फटकारते। कोई-कोई तो कह देता—'तुमने तो हिन्दू-जातिको कलंकित कर दिया है। तुम तो मार डालनेके लायक़ हो।' कोई कहता—'जिसने तुम्हें मुसलमान बनाया, उसीके यहाँ क्यों नहीं रहते, यहाँ क्यों मड़े हो? यही तो है, मुसलमान बनाकर छोड़ दिया, अब उन्हें क्या मतलब, उनकी बलासे अब तुम चाहे भीख माँगो? हम लोग तो अब तुम्हें ले नहीं सकते।'

ऐसे ही जब नदीम साहब अहमदसे पूछते—'क्यों जी, तुमने बुढ़ापेमें यह क्या कर डाला? झूठ-मूठका यह जाल तुमने क्यों रचा? यही तुम्हारी सच्ची मुसलमानियत है? तुम धोखेबाज़ हो, मक्कार हो।'

तब वह भोला-सा बनकर कहता—'मैंने तो कुछ नहीं किया, मालिक! मुल्लाजी ही जानें। उन्होंने सब कहीं ख़बर कर दी है और मुझसे कह दिया है कि तुम मत बोलना। मज़हबका काम है, रोकनेसे दोज़ख मिलेगा। सो मालिक, इस्लामके काममें मैं रुकावट क्यों डालूँ? मुल्लाजीका अख़्तियार है, जो चाहें, सो करें।'

वे उसकी ओर दाँत पीसकर रह जाते।

× × ×

धीरे-धीरे बातने ज़ोर पकड़ा, और हिन्दू-मुसलमानोंके हृदय एक दूसरेकी ओरसे बिल्कुल फट गए। हिन्दू जब कृष्णचन्द्रको नदीम साहबके साथ देखते, तो जल उठते और मुसलमान देखकर बड़े प्रसन्न होते। नदीम साहब कहते—'भाई कृष्णचन्द्र, यह क्या माजरा है? तुम हिन्दुओंसे कहते क्यों नहीं कि यह सब सरासर ग़लत है। मैं तो कहकर हार चुका, कोई सुनता ही नहीं।'

कृष्णचन्द्र कहते—'होगा भाई, जाने भी दो। इस ज़रा-सी बातके लिए मैं किसीसे क्या कहता फिरूँ? मुझे कष्ट ही क्या है? समय आ जानेपर लोग अपनी ग़लती स्वयं समझ लेंगे।'

नदीम साहब उत्तरमें कहते—'तुम तो अजीब तरहके हो गए हो। घरसे अलग रहना तुम्हें खलता भी नहीं? मैंने तो अब सोचा है कि जल्द ही एक सभा की जाय, जिसमें सबको यह साफ़ तौरपर समझा दिया जाय कि तुम पूरे हिन्दू हो और यह अफ़वाह बिल्कुल ग़लत है। किसीने दुश्मनी निकालनेके लिए ऐसा कह दिया है, इसका मैं गवाह हूँ।'

कृष्णचन्द्र चकित-से होकर कहते—'आजकल वैसे ही

सब कहीं दंगे हो रहे हैं। यहीं बचा है, सो आप बुलाना चाहते हैं। हम लोग ही बदनाम होंगे। लोग कहेंगे, ये ही दंगा कराते फिरते हैं, बेकारमें लोगोंकी जानें लेते हैं। इसकी ज़िम्मेदारी हमारे ही सर आयगी, और सरकार भी तब इसमें हाथ डालेगी।'

नदीम साहब अपनी बात ज़ोरसे समझाते हुए कहते—'तो क्या तुम समझते हो कि मैंने इतने साल बेकार ही खोए हैं। इस तरीक़ेसे समझाऊँगा कि वे सुनकर दंग रह जायँगे और तुम्हारा भी मामला साफ़ हो जायगा। मैं झगड़ा नहीं होने दे सकता। इसके लिए तुम बेफ़िक्र रहो। मुसलमानोंको समझाना है और हिन्दुओंको बताना है, जिससे वे आगेके-लिए होशियार हो जायँ।'

कृष्णचन्द्र इसपर निरुत्तर होकर चुपचाप उठ जाते।

इसके तीसरे दिन हिन्दू-मुस्लिम-एकता-कमेटीकी ओरसे एक सार्वजनिक सभाकी घोषणा की गई। आज़ाद-पार्कमें सभा होनेका निश्चय हुआ। कृष्णचन्द्र सुनकर बहुत घबराए। नदीम साहबको आकर समझाया; किन्तु वे न माने। अन्तमें संध्याको सभामें नदीम साहबके साथ उन्हें भी जाना पड़ा। पार्कमें ख़ूब भीड़ थी और हिन्दू-मुसलमान सभी बड़ी उत्सुकतासे सभाकी कार्यवाही जाननेको उत्सुक थे। घोषणामें यह बात गुप्त रखी गई थी। शहरके कुछ प्रतिष्ठित हिन्दू-मुसलमान, जो एकताके समर्थक थे, ऊँचे आसनपर बिठाए गए, जिससे जनताको भ्रम न होने पाए और वह शान्त हो व्याख्यान सुन ले। पुलिस भी यथेष्ट संख्यामें उपस्थित थी।

नियत समयपर कार्यवाही आरम्भ हुई। सभापतिने खड़े होकर सभा बुलानेका कारण बताया। इसके बाद नदीम साहब बोलने खड़े हुए। उन्होंने पहले मौजूदा परिस्थिति बतलाई और फिर देशके लिए हिन्दू-मुसलमानोंका एक हो जाना क्यों आवश्यक है, समझाया। व्याख्यानके बीचमें उन्होंने कृष्णचन्द्रको बुलाकर अपने पास खड़ा कर लिया और जनताको सम्बोधन करके कहा—'भाइयो, इन्हींका नाम कृष्णचन्द्र है। इनके बारेमें आप लोगोंमें कुछ दिनोंसे ग़लतफ़हमी फैली है। मैं आज उसे दूर कर देना चाहता हूँ। मैं साफ़ और सच कह देना चाहता हूँ कि ये मेरे दोस्त हैं और पक्के हिन्दू हैं। ये मुसलमान कभी नहीं हुए और न इन्हें किसीने मुसलमान ही बनाया। यह बात सरासर झूठ है। यह हम लोगोंकी बदक़िस्मती है, जो इनके लिए ऐसी ख़बर उड़ाई गई है।'

तभी भीड़में एक ओर खलबली मच उठी और लोग उठ-उठकर खड़े हो गए। जब तक उन्हें शान्तिसे बैठाया जाय, तब तक उस ओरसे एक छुरा नदीम साहबके कंधेमें आ घुसा। भगदड़ मच गई। जब तक लोग सँभलें कि कृष्णचन्द्रकी पीठमें भी पीछेसे एक छुरा आ घुसा। दोनों वहीं तख़्तपर गिर पड़े। पुलिस भीड़को चीरती-फाड़ती आगे बढ़ आई। दंगा हो जानेकी आशंकासे लोग भागने लगे। जिसको जिधर रास्ता मिला, उधर ही भाग खड़ा हुआ। पुलिसका एक और जत्था वहाँ आ पहुँचा। इन दोनोंको अस्पताल ले जाया गया। घाव गहरे लगे थे, फिर भी मृत्युकी आशंका नहीं थी।

दूसरे दिन अख़बारोंमें पूर्ण वृत्तान्तके साथ यह समाचार छापा गया। कमेटीके कार्यकी सराहना करते हुए जनताकी मनोवृत्तिकी निन्दा की गई। हिन्दू-मुसलमान दोनोंको इस घटनाका उदाहरण देकर समझाया गया कि जो एकताके लिए मरना जानते हैं, उनसे सबक़ सीखो और अब भी आपसके झगड़े दूरकर एक होनेकी कोशिश करो। दूसरे शहरोंकी कमेटियोंने तार द्वारा कृष्णचन्द्र और नदीम साहबको बधाइयाँ दीं।

अस्पतालमें पास-पास चारपाइयोंपर दोनों पड़े थे। हिन्दू-मुसलमान सभी उन्हें देखने आते। अहमद दोनोंकी सेवाके लिए हरदम वहीं रहता। वह अब पहलेसे बहुत बदल गया था। कृष्णचन्द्र जब उससे पूछते—'कहो अहमद, यही तो तुम चाहते थे? अब तुम्हारा मज़हबी जोश ठण्डा पड़ा कि नहीं?'

तब वह उनके पैर छूकर कहता—'अब ज़्यादा न कहो, भइया! बुढ़ापेमें यही तकलीफ़ क्या थोड़ी है?'

नदीम साहब कहते—'कोई बात नहीं, अहमद! हम लोग तो अच्छे हो ही जायँगे; पर तुम आदमी बन गए, इसकी बड़ी ख़ुशी है। उम्मीद है, अब हम सब मिलकर ही रहेंगे और ऐसा मौक़ा न आयगा।'

खज़ांची टोला, हरदोई ]

# सौन्दर्यमय बंग-भूमि

श्री विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय

बंगालकी प्राकृतिक शोभा अतुलनीय है। समस्त संसारमें जो वस्तु दुष्प्राप्य है, बंगालके समतल क्षेत्रपर वही प्राप्य है। रौप्यमय पर्वतमालाकी गोदमें श्याम-तृणाच्छादित भूमि, ऊपर नीलाकाश और नीचे असीम समुद्रालिंगन—इस प्रदेशकी नैसर्गिक विभूति है।

यहाँकी हरी-भरी वनस्थलीमें जिस प्रकार एक ओर चिर-सुन्दर शान्तिप्रिय मृग-दल वास करते हैं, दूसरी ओर चिर-भयंकर हिंसक व्याघ्रराज तथा विषमय सर्प अपनी भयंकरताकी सानी नहीं रखते। कछारोंमें अलसाए हुए रक्त-पिपासु मगर जिस तरह अपनी विकरालताका प्रदर्शन करते हैं, मृणाल और जलज, शस्य-शोभित जलाशयोंमें ठीक उसी तरह नित्यानन्द मत्स्यवृन्द तथा शम्बुक जातीय जीव अपनी अठखेलियोंसे दर्शकोंके मन-प्राण हरे लेते हैं।

इस प्रान्तकी सभ्यता पृथ्वीके किसी भी प्रान्तसे किसी अंशमें न्यून नहीं कही जा सकती। विजयसिंहके समयसे ही आर्य-सभ्यताके स्पर्शसे बंगालकी प्राचीन सभ्यताका प्रथम-प्रथम परिवर्त्तन होना प्रारम्भ हुआ सही; परन्तु इसका पूर्व इतिहास स्वतन्त्र है। मुस्लिम-संस्कृति द्वारा अत्यन्त सुन्दर प्राकृतिक शोभाके बीच यहाँ असंख्य भव्य अट्टालिकाएँ निर्मित हुईं, आज जिनका ध्वंसावशेष जैसे हरित वन-भूमिके बीच लज्जावश मुखावनत किए हुए हैं।

तदनन्तर नवयुगका प्रारम्भ होता है। यूरोप-निवासी वणिक दलके दल यहाँ आते हैं। विस्मित बंगाल-निवासियों द्वारा उनकी अभ्यर्थना होती है और तभी उनकी मूल सभ्यतामें कुछ झोंके आ लगते हैं। फलतः प्राचीन जरा-जीर्ण नगरोंसे कुछ ही दूरीपर भव्य एवं मनोरंजक नगरोंका जन्म हुआ। अंगरेज़ोंके स्वर्णिम स्पर्शसे गोविन्दपुर-जैसे छोटे-छोटे ग्राम भी कलकत्ते-से शहरमें परिणत हुए। आज संसारके किसी भी श्रेष्ठ महानगरीसे इसकी तुलना सुगमतासे की जा सकती है।

इस प्रान्तकी महत्ता प्रत्यक्ष है। विस्तृत बंगालके वक्षस्थलपर जब प्रभु गौतम बुद्धने कल्याणकर जन्म-ग्रहणसे भव-बाधाओंपर आतंक जमाया, देश-देशान्तरोंके समस्त नर-नारियोंकी श्रद्धा आप-से-आप आकर उनके चरणोंपर नतमस्तक हो पड़ी। सबोंने एक स्वरसे गाया:—

बुद्धं शरणं गच्छामि।<br>
धर्मं शरणं गच्छामि।<br>
संघं शरणं गच्छामि।

यह दिव्य संगीत-लहरी इसी प्रान्त, इसी देश, तक सीमित नहीं रह सकी, वरन् सम्पूर्ण संसारके कोने-कोनेमें व्याप्त हो चली।

आजकी इसकी सीमा पहली अप्रैल सन् १९१२ को निर्धारित हुई। इसके पूर्व विभिन्न युगोंमें सम्भवतः इसकी वृद्धि हुई होगी, और यह क्षय प्राप्त भी हुई होगी; किन्तु इस समय तो इसका आयत ७७५२१ वर्गमील है। इसकी जनसंख्या ७२८१०१०० में पर्वत भागके बौद्ध अधिवासी ३१६००० हैं। यह एक कृषि-प्रधान प्रान्त है। सैकड़े ८७ भाग भूमिमें धानकी खेती होती है। सामन्त राज्य दो ही हैं त्रिपुरा और कुचबिहार, तथा कलकत्ता और ढाका ही दो प्रधान शहर हैं।

अब यदि हम ग़ौरकर देखें, तो हमें मालूम होगा कि प्रकृत बंगाल तो गंगा और ब्रह्मपुत्रका मध्यवर्ती भू-भाग ही है। उत्तर-बंगाल चिर-धवल हिमालयकी ऊँची-नीची भूमिसे आरम्भ होकर समतल क्षेत्रमें परिणत होता हुआ ऐसा मालूम पड़ता है, मानो मुक्त कुन्तला प्रकृतिदेवी परम-पुरुषकी साधना कर रही हो। मध्यवर्ती नदियाँ मानो अर्घोपहार हैं और उनके कल-कल निनाद ही वैदिक गान। सिंचित तथा शस्य-शोभित उर्वर भूमि ही प्रशादकी थाली है। इतना ही नहीं, जब हम दक्षिण भू-भागपर दृष्टि डालते हैं, तो हमारी आँखें जैसे खिल उठती हैं। प्रकृतिदेवीके प्रधान समुद्रदेवकी यह एक अनोखी रचना-सी मालूम पड़ती है। विस्मृत युगसे ही समुद्रदेव इसकी रचना करते आए हैं और इसे नित नूतन रूप दिया करते हैं। न मालूम कब तक इनका यह रचनात्मक व्यापार चलता है। हाँ, तो यह भू-भाग समुद्रमें क्रमशः छाड़न पड़नेसे ही बना है। लोगोंने आल बाँध-बाँधकर इसे वासोपयोगी बनाया। प्रायः इसी कारण इस प्रदेशका नाम (बँधन+आल) बंगाल पड़ा और इस कारण इस भू-भागकी विशेष महत्ता भी है।

अनेक रूप पर्वतोंसे भरे हुए बिहार-उड़ीसा, पहाड़ियोंसे घिरा हुआ सिक्किम और अपरूप सौन्दर्यवान अरण्योंसे आच्छादित आसाम प्रदेशोंसे जैसे अपनी आत्मीयता दिखाती हुई मातृ बंगेश्वरी योगासनमें बैठी हुई हैं। इस मातृ-मन्दिरमें छः ऋतुएँ समय-समयपर देव-दासियोंकी तरह विभिन्न ठाट-बाटसे अनेकानेक पूजोपचारकी सामग्रियाँ लिए उपस्थित रहा करती हैं। वर्षा-ऋतुमें जब कि खन्दक, नदी, नाला, ताल, तलैया तथा ग्रामके प्रान्त भाग जलमग्न रहते हैं, बच्चे उछल-कूद मचाते रहते हैं। फिर गुरु-गम्भीर गर्जन करती हुई रुद्र-रूपमें तीव्र वेगसे जब गंगा, पद्मा, धलेश्वरी और शीतलक्षा बहती हैं, तो मालूम पड़ता है जैसे उन सबोंमें होड़-सी लग रही है। जल-प्लावित भूमिमें छोटे-छोटे ग्राम द्वीप-समूह-से दिखलाई पड़ते हैं। बड़े-बड़े साहसियोंके भी होश गुम हो जाते हैं।

शरत्की सुहावनी शोभा कितनी सुन्दर प्रतीत होती है। जहाँ कहीं दृष्टि जाती है, कौतुकमयी प्रकृतिकी क्रीड़ाएँ जैसे नृत्य किया करती हैं। उभय कूल-स्थित कास वृक्षोंके शुभ्र हास्यके बीच जैसे नदी लजीली नायिकाकी तरह घूँघट डाले अपने प्रियतमसे मिलने जा रही है। वृक्षोंकी हरी-भरी डालियाँ जहाँ कहीं झुकी हैं, मालूम पड़ता है, जैसे उसके कानोंमें कुछ सीख दे रही हैं। उनपर बैठे विविध वेश-भूषाओंसे सुसज्जित पक्षियोंके समूह—बाल समूह-से—मालूम पड़ता है कि इस नववधूको देखकर कोलाहल मचा रहे हों। शरदकी सित यामिनीमें तो यहाँकी शोभा और अधिक निखर उठती है। नील गगनमें जब पूर्णचन्द्रका शुभागमन होता है, ग्रामश्री, वनश्री और जलश्री स्वर्गश्रीको भी जैसे नीचा दिखाने लगती हैं। फिर देवी भगवतीके शुभागमनकी भावनाओंसे ओतप्रोत जनश्री भी देवश्रीको मात करने लगती है।

शिशिरका आगमन होता है। ऐश्वर्यमय खेत-बाड़ी, घर-आँगन स्वर्ण-डंठिकाओंसे जैसे लद जाते हैं। ठीक इसी समय बंगालका 'सोनार-बांगला' नाम सार्थक होता दिखाई पड़ता है। इस समय नवान्नकी धूमधामसे बंगश्री जैसे घर-घरमें प्रकट दिखाई पड़ती है। वसन्तके आगमन होते-होते पत्र-पुष्प-युक्त तरु-पल्लव, पलाश, सेमल, सखुआ तथा कृष्णचूड़की रँगी डालियाँ जैसे आपसमें होलिकोत्सव मनाती दिखाई पड़ती हैं। कहाँ तक गिनाया जाय, सारा बंगाल ही एक पुष्पित फुलवारी-सा दिखाई पड़ता है। ग्रीष्म-कालमें जल-शून्य तालाब, गड्ढे इत्यादि जलाभावसे तरुणी विधवाके हृदयसे कटे-फटे दृष्टिगोचर होते हैं। शुष्क नदीके तटपर घरोई जैसे अपनी बाँसुरीमें तान भर-भरकर उसकी शुष्कताको सरसतामें परिणत करनेका प्रयत्न कर रहे हों। वृक्षोंसे निकली हुई गर्म हवा वियोगीके दीर्घोच्छ्वासका स्मरण करती है। ग्रामके पास किसी वट-वृक्षके तले एकत्रित ग्रामवासियोंकी भोली बातें और उनसे कुछ ही दूर किसी सघन वृक्षोंकी छायामें बचोंका गिल्ली-डंटा खेलना कितना आनन्द-प्रद मालूम पड़ता है! देखकर मन-मयूर नाच उठता है।

यों तो प्रत्येक देशके प्राण ग्राम ही हैं। जैसे एक-एक जीव-कोष (cell) परस्पर सम्मिलित होकर एक जीव-शरीरकी सृष्टि करता है; किन्तु बंगाल वह जीव-कोष है, जिससे अनेक देश-जीव-शरीरकी रचना मुख्यतया इसीके सेलपर होती है। इसकी बस्तियाँ जीव-कोषके सदृश्य नदी-तटपर एकके बाद दूसरी विचित्र सुन्दरताओंके साथ बसी हुई हैं। यहाँकी नदियाँ जैसे अपने-आपको इन ग्रामोंके बीच ही खो देना चाहती हैं। इस अमूल्य प्रेमका बदला इन ग्राम-निवासियों द्वारा इन्हें क्या मिलता है, यह तो नहीं कहा जा सकता; किन्तु देखा जाता है कि यहाँके ग्रामीण बचपनसे ही जलसे मित्रता करनेमें आनन्द प्राप्त करते हैं। इनकी तरंगोंके ऊपर जब वे उछालें मार-मारकर तैरा करते हैं, तो मालूम पड़ता है कि ये वरुणदेवके सैनिक हैं। मुख्यतया जब छोटे-छोटे बालक-बालिकाएँ कमल-शापला इत्यादि पुष्पोंको लानेके लिए होड़ लगाते हैं, तो कितने ही अपूर्व कमल-शापला आप-से-आप खिले दिखाई पड़ते हैं। केलेके थम्भोंपर, घड़ोंके झुंडोंपर किशोर-किशोरियोंके आनन्द-कलरव एक अपूर्व सुखप्रद प्रतीत होता है। घरोईके बच्चे जब अपने पशुओंको पानी पिलाने आते हैं, तो जलका मोह त्याग नहीं सकते और लुघड़ ही तो पड़ते हैं। कितनी अनुपमेय मित्रता है! कृषकोंकी छोटी-छोटी डेंगियोंपर सवार होकर एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना तथा मल्लाहोंके पतवारोंके छप-छप तालोंपर भाटियाली रागोंसे निर्जीव प्रान्तोंको सरस बनाना क्या कभी भूलने-भुलाने योग्य है?

# हिन्दीका इतिहास

श्रीराम शर्मा

वर्तमान युगमें हिन्दीके कई इतिहास देखनेमें आते हैं। इन इतिहासोंके लिखनेमें काफ़ी परिश्रम किया गया है, अतएव इनके लेखक साधुवादके अधिकारी हैं। परन्तु, फिर भी, जैसे निष्पक्ष इतिहास होने चाहिएँ, वैसे वे नहीं हैं। इन इतिहासोंको पढ़ जाइए, तो ऐसा मालूम होगा कि लेखकोंने आधुनिक साहित्यकारोंका विवेचन करनेमें अपनेपन और पराएपनकी भावनासे काम लिया है। कई बड़े-बड़े लेखकोंका तो नाममात्र लिखकर ही छोड़ दिया है और कई नवयुवकोंको प्रशंसाके पुल बाँधकर आसमानपर चढ़ा दिया है। जिन विद्वानोंने कठोर तपस्यापूर्वक जीवन-भर हिन्दीकी सेवा करना अपना लक्ष्य बनाया, उनके सम्बन्धमें उचित रूपसे न लिखा जाना या उनकी बिल्कुल उपेक्षा कर देना कैसे ठीक कहा जा सकता है? अनेक स्थानोंपर फ़ैक्टकी ग़लतियाँ भी रह गई हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि वास्तविकताका अन्वेषण करनेमें विशेष परिश्रमसे काम नहीं लिया गया। फिर एक बात और है इन इतिहासोंमें। जगह-जगह फ़तवे-से दिए गए हैं—"अमुककी भाषामें दुर्गन्ध आती है", "अमुककी भाषा गुट्ठल है", "अमुकको काव्यका ज्ञान नहीं था", "अमुककी भाषामें साम्प्रदायिकताका दोष है।" यदि ऐसे फ़तवे साधारण होते, तो कोई बात ही न थी; परन्तु निराधार बातोंको कोई कैसे मान सकता है? किसी किताबका कालेजों या स्कूलोंके कोर्समें आ जाना ही उसकी उत्कृष्टताका प्रमाण नहीं है। हम देखते हैं कि कोर्सोंमें तो ऐसी पुस्तकें भी आ जाती हैं, जो अधिक उपयोगी या उपादेय नहीं कही जा सकतीं। पुस्तकोंको कोर्समें दाख़िल करा देनेकी एक कला है। इस कलामें जो पटु होता है, वह सड़ी-से-सड़ी चीज़को भी कोर्समें करा सकता है। परन्तु हम तो चीज़ोंको उनके असली रूपमें ही देखना अधिक पसन्द करते हैं। अभी हालकी बात है। एम० ए० के एक विद्यार्थीने आकर कहा—"आप तो पं० पद्मसिंह शर्माकी बड़ी तारीफ़ किया करते थे, उनकी शैलीकी सराहना करते-करते नहीं थकते थे; परन्तु अमुक इतिहासमें तो लिखा है कि 'उनकी शैलीमें दुर्गन्ध आती थी। वे काव्यके पारखी न थे।' यह क्या बात है?" जिस इतिहासमें ये असम्बद्ध पंक्तियाँ लिखी गई थीं, उसे हमने अपनी आँखोंसे देखा, तो विद्यार्थीका कथन सत्य प्रतीत हुआ। साथ ही इतिहास-लेखककी बुद्धिपर तरस भी आया कि उसने छोटे मुँह ऐसी बड़ी बात कैसे लिख डाली? ख़ैर, तबीयतपर ज़ब्त करके हमने उस इतिहासके चालीस-पचास पृष्ठ पढ़े, तो जगह-जगह वैसी ही उटपटांग बातें पढ़नेको मिलीं। सबसे अधिक दुःख हमें इतिहासकी भाषापर हुआ। जो इतिहास पदे-पदे व्याकरणकी भ्रष्टतासे भरा हुआ हो—जिसमें शुद्ध वाक्य प्रयत्नपूर्वक खोजनेपर ही मिले तो मिले—उसके लेखक महाशय स्वर्गीय साहित्य-महारथियोंपर कीचड़ उछालते हैं, इससे अधिक दुःखकी बात और क्या होगी? जिन नवयुवक विद्यार्थियोंको इस प्रकारके निकम्मे इतिहास पढ़ने पड़ते हैं, उनके मस्तिष्कपर प्राचीन साहित्यकारोंका कैसा बुरा प्रभाव पड़ता होगा, इसका अनुमान भी बड़ा दुःखदायी है। एक नहीं, अवसर आनेपर हम पचासों ऐसे उदाहरण दे सकते हैं, जिनमें इतिहास-लेखकोंका स्पष्ट पक्षपात प्रकट होता है। फिर यह पक्षपात चाहे अज्ञतावश हुआ हो, चाहे जान-बूझकर।

जहाँ तक हमारा विचार है, इतिहास लिखना बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण काम है, वह किसी व्यक्ति-विशेषपर नहीं छोड़ा जा सकता; और न इतिहासके पात्र निराधार रूपसे किसीकी अंड-बंड सम्मतिके मोहताज ही बनाए जा सकते हैं। हिन्दीका एक परम प्रामाणिक इतिहास लिखे जानेकी आवश्यकता है—ऐसा इतिहास, जो बड़ी अन्वेषणाके पश्चात लिखा जाय। उसमें न तो किसी साहित्यकारकी उपेक्षा हो और न रियायत। अब तकके इतिहास इस प्रामाणिक इतिहासके लिए सामग्रीका काम दे सकते हैं।

अगर इतिहासोंका यही बेढंगा दौर जारी रहा, तो अनेक स्वर्गीय साहित्यकारोंके साथ घोर अन्याय होगा और आनेवाली पीढ़ी या तो उनको बिलकुल भूल जायगी या उन्हें आदरके साथ याद करना छोड़ देगी, क्योंकि उसे तो कालेज कोर्समें पढ़े इन अपूर्ण इतिहासोंके पक्षपातपूर्ण फ़तवोंपर ही निर्भर करना पड़ेगा, और प्राचीन साहित्यकारोंके सम्बन्धमें यही उनकी जानकारीके स्रोत होंगे।

# सन्तोंका मर्म

श्री सोमेश्वरसिंह

निर्गुणोपासक सन्तोंके विषयमें हिन्दीके पत्र-पत्रिकाओंमें प्रायः जो लेख देखनेमें आते हैं, उन्हें देखकर विचार हुआ कि सन्तोंके 'भेदिक साधन'पर—जो सन्त-वाणीका प्रधान विषय है और सन्त-मण्डलजीसे बाहर उसको बहुत कम लोग जानते हैं—मैं भी कुछ लिखूँ। सन्तोंकी 'वाणी'में कुछ शब्द बार-बार आते हैं, जिनका मर्म जानना उन्हें समझनेके लिए अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरणार्थ श्रीसद्गुरु कबीरके कुछ पदोंको लीजिए :—

मुसाफिर जैहो कौनी ओर।
उत्तर दिशि एक पुरुष विदेही तापै करो निहोर॥
चलु जहँ बसत पुरुष निर्वाना।
द्वादश चलै दशो पर ठहरै ऐसो निर्गुन नामा॥
द्वादश कोस बसत तेरा साहिब तहाँ सुरत ठहरावस रे।
गगन दुआरे मन गया करै अमी रस पान।
रूप सदा झलकत रहै गगन-मंडल गलतान॥
आकाशै औंधा कुआँ पातालै पनिहारि।
जल हंसा कोइ पीवई विरला आदि विचार॥
उजड़ राहको लीजै भाई।
कहैं 'कबीर' धका ना खाई॥
पायो सतनाम गरे कै हरवा।
साँकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे-दुबरे पाँच कहरवा॥

ऊपरकी पंक्तियोंमें 'उत्तर दिशि', 'द्वादश', 'गगन', 'गलतान', 'आकाशै', 'उजड़ राह', 'सतनाम', 'साँकर खटोलना' आदि बड़े महत्त्वके शब्द हैं। इनका यथार्थ भाव समझे बिना उनकी वाणीका समुचित रस नहीं लिया जा सकता। ये शब्द नानक, मलूक, दादू, भीखा, जगजीवन आदि अन्य सन्तोंके भजनों व साखियोंमें भी बराबर आते हैं। इन सभी शब्दोंका सम्बन्ध सन्तोंके प्रधान तथा परमप्रिय साधनसे है। इस साधनके ज्ञानसे सन्त-वाणी सहज ही बुद्धिगम्य हो जाती है; अन्यथा बड़े-बड़े विद्वान लोग सन्तोंके रहस्यमय शब्दोंको न समझ कर उनका भेद खोलनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं।

वह 'साधन' क्या है, यह बात बतानेके पूर्व उपासनाकी सभी युक्तियोंके आधारभूत सिद्धान्तका संक्षिप्त वर्णन कर देना अप्रासंगिक न होगा। आत्म-चेतना या जीव, संसार या नामरूपात्मक जगत् और आनन्द-स्वरूप एकरस परमात्मा—यही तीन सत्ताएँ अनुमानमें आती हैं। आत्म-चेतना (सन्तोंके शब्दमें 'सुरति') का परिवर्त्तनशील तथा नाशमान संसार या उसके पदार्थोंमें प्रेम होनेसे जीवको दुःख, अशान्ति और जन्म-मरणका क्रम मिलता है। आत्म-चेतनाके संसारसे विरक्त होनेपर उसके अन्दर उस आनन्दमयी तीसरी सत्ताका आविर्भाव होता है। हमारे विचार, वृत्तियाँ तथा आशाएँ निरन्तर इस इन्द्रिय-गोचर संसारसे बँधी हुई हैं। इसी कारण देश तथा कालके विस्तारसे परमात्माके अति निकट होते हुए भी हमें भगवानके अस्तित्वका ज्ञान नहीं होता। इस ज्ञानके अभावमें हमारे दुःख-समूह भी बने ही रहते हैं। इसीलिए उपासनाकी सभी युक्तियाँ निरन्तर संसार-मुख प्रवाहित चित्त-वृत्तियोंके निरोधको ही अपना लक्ष्य बनाती हैं। इसके लिए 'स्थान-विशेष'में चित्तको रोकना एक बड़ी सुन्दर युक्ति समझी गई है। सन्तोंने अपने प्रधान साधनमें जिस स्थानको चित्त-वृत्तियोंके निरोधके लिए चुना है, वह बड़ा विचित्र है। सन्तोंका कहना है कि उनकी यह संयम-भूमि रचनासे बाहर है। संसार तथा उसके विषयोंका वहाँ अभाव है, जिससे साधकका मन वहाँ जाकर सहज ही निर्विषय हो जाता है, और इस प्रकार क्षण-क्षण बदलनेवाले दुःखदायक वृत्तिज्ञानसे मुक्त हुआ पारब्रह्ममें स्थित होकर संसारकी किसी भी घटनासे चंचल नहीं होता।

उस स्थानका पता सन्तराज कबीरके शब्दोंमें ही देना अच्छा होगा। 'अखरावती'में श्रीसद्गुरुने कहा है—"काया ते आगे जो होई, तामे राखो सुरति समोई।" यहाँ 'आगे' शब्दका अर्थ करनेमें भूल न हो, इस कारण 'अमर-मूल' में कबीरने अपने परमप्रिय शिष्य धर्मदासको सम्बोधनकर लिखा है—"अब मैं भेद बतावऊँ निर्मल ठौर विचार। सर्व परे सब ऊपरे देखहु उहाँ 'अकार'।" इस प्रकार शरीरसे 'आगे'का भाव शरीरके ऊपरसे है, यानी

सिरसे ऊपरका स्थान सन्तोंकी संयम-भूमि है। वहीं बारह अंगुलके भीतर 'धारणा'का अभ्यास होता है, जिसका प्रथम लक्ष्य 'अकार'का साक्षात्कार है। इसी बारह अंगुल भूमिको सन्तोंने 'द्वादश' या 'द्वादश कोस' कहा है। 'अकार'को सन्त-साधनमें महत्त्व मिलनेके भी कई कारण हैं। पाँच तत्त्वोंमें 'आकाश' सबसे सूक्ष्म तथा महान है और 'शब्द' उसीका गुण है। सारे शब्द वर्णमालाके अक्षरोंके योगसे बनते हैं, और 'अकार' ही इन सारे अक्षरोंमें उनके प्राण व आत्माकी भाँति व्यापक है। 'अकार-रहित' अक्षरका अस्तित्व असम्भव है। इसी कारण सन्त इसे 'अक्षर', 'मूल अक्षर', 'आदिनाम', 'शब्द-ब्रह्म' आदि शब्दोंसे पुकारते हैं। यह 'अकार' सारी रचनाके अणु-अणुमें व्याप्त है और एक अखण्ड आलापके रूपमें सब स्थानोंमें सक्रिय है। यही पारब्रह्मकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली शक्ति है। इसीको उसके गुणोंका विचार करते हुए 'अविगत या अव्यक्त', 'अक्षर' और 'शब्द-ब्रह्म' कहा गया है। इसकी प्राप्तिके बाद ही मंगलमय 'अडिग्ग अडोल अब्बीरु समरथ धनी' शव-स्वरूप परम शिवकी प्राप्ति सम्भव है। 'अकार'के विषयमें 'अखरावती'में कहा गया है—"एक-अक्षरका नाम जो पावै। जोनी संकट बहुरि न आवै।" श्रीकृष्ण भगवानने भी गीतामें 'अक्षराणाम् अकारोस्मि' ( मैं अक्षरोंमें अकार हूँ ) ऐसा कहा है। सन्तोंने 'ओम्'को एकाक्षर ब्रह्म न मानकर उसके प्रथम अक्षर 'अकार' को ही माना है। यही अधिक युक्तिसंगत भी जान पड़ता है। 'ओम्'के 'अकार'से ही ब्रह्मका भाव ग्रहण होता है, 'उ' तथा 'म' से क्रमशः 'जीव' और 'माया'का अर्थ लिया जाता है। इसी 'अकार'के अन्दर 'निःअक्षर', 'निर्गुण ब्रह्म' या 'सत्यनाम'की प्राप्ति होती है। यही 'अक्षर' से परे 'निःअक्षर' या गीताके शब्दोंमें 'अव्यक्त'से परे 'सनातन अव्यक्त भाव' है, यही परमधाम है और सन्तोंका विश्राम-स्थल है, जैसा कि कबीरने 'स्वसंवेद'में कहा है—"है अनाम अक्षरके माहीं। निःअक्षर कोउ जानत नाहीं। धर्मदास तहँ बास हमारा। काल अकाल न पावै पारा।" 'अक्षर' या 'अव्यक्त'को ही गीतामें 'मूल' कहा है, क्योंकि इसका भी ठिकाना संसार-वृक्षके ऊपर बताया गया है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' वाले सिद्धान्तके अनुसार 'कायाते आगे'का भाव रचनासे बाहरका हो जाता है।

इस शरीर-रूपी गढ़के मध्य-भाग 'हृदय'में जीवात्मा बैठा है। इस गढ़के नव खुले द्वार हैं, जिनके द्वारा जीवात्मा संसारसे सम्बन्ध रखता है। सिरके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र या दसवाँ द्वार है, जो बन्द है। इस द्वारको खोलकर आगे जानेसे ही ब्रह्म-प्राप्ति-स्वरूप निर्विकल्प समाधि होती है। सिरके ऊपर द्वादश अंगुल भूमिमें सुरति ( ख़याल या वृत्ति ) के स्थिर होनेसे शरीरस्थ सारे चक्रों तथा ग्रन्थियोंका भेदन होता है। सारे प्राण अपने देशमें लयको प्राप्त होते हैं और प्राण-स्पन्दनका अपूर्व निरोध होता है। इस साधनकी प्राण निरोध करनेमें विशेष उपयोगिता योगवाशिष्ठकारने भी स्वीकार की है। सन्तोंका कहना है कि इस भूमिमें संयम करनेसे 'दसवाँ द्वार' खुल जाता है, सुष्मना नाड़ी हृदय स्थानसे सिरके ऊपर अमृत-समुद्रको बहने लगती है, फिर योगीको चौबीस घंटे आनन्दका भाव बना रहता है और शरीरस्थ प्राण या संसारके विचार चित्तको उद्विग्न नहीं कर पाते। इसी 'द्वादश भूमि'को सन्तोंने 'गगन', 'आकाश', 'सहजसुन्न', 'सुन्न', 'अधर', उजाड़ स्थान' आदि नामोंसे स्मरण किया है। इसी उजाड़ स्थानमें 'अमृतका औंधा कुआँ' है, जिसका अमृत सुष्मना-मार्गसे सुरतिकी डोर द्वारा हृदयस्थ आत्माको प्राप्त होता है।

साढ़े तीन बालिश्तवाली सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति शरीरके अन्दर सोई पड़ी है। इस सर्पिणीके दो मुख हैं; एक मुखसे यह श्वास-प्रश्वासके रूपमें निरन्तर फुफकार कर रही है और दूसरेसे ब्रह्मरन्ध्रके द्वारको रोके सोई पड़ी है, जिसके कारण 'आकाश' से गिरनेवाला अमृत हृदयमें रहनेवाली आत्माको नहीं मिलता। द्वादश भूमिमें संयम करनेसे सारे प्राण शरीरके ऊपर आकर्षित होते हैं और वेगसे आकर ब्रह्मरन्ध्रको रोकनेवाले मुखपर टक्कर मारते हैं, जिससे सर्पिणी जागकर अपना फन उस द्वारसे हटा लेती है। इसके बाद साधकका ब्रह्मके देशसे सीधा सम्बन्ध हो जाता है और उसे मृत्यु-भयसे छुड़ानेवाला अमृत मिल जाता है। ऐसे सिद्ध योगीकी चेतना हृदयसे अटूट तैल-धारकी भाँति निरन्तर ब्रह्मरन्ध्रकी ओर प्रवाहित होती रहती है। दक्षिणके वर्त्तमान सन्त, महर्षि रमणने भी यही बात कही है। उन्होंने इस प्रवाह-मार्गको 'अमृत-नदी' कहा है। यही सुष्मना है, जिसका आश्रय लेकर 'उत्तरायण' या 'देवयान-मार्ग' के साधक पथिक संसारमें फिर न आनेकी इच्छासे चलते हैं। जैसा

दीवारपर लटकते नक्शेमें होता है, उसी प्रकार सन्तोंने 'उत्तर दिशा'का 'ऊपर'के अर्थमें प्रयोग किया है। इसी कारण गीतामें इसको 'उत्तरायण-मार्ग' कहा है। यह मार्ग बहुत साँकर है। इसी कारण सुरति ( आत्म-चेतना ) जैसी अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु ही इसमें प्रवेश कर सकती है। कबीरने इसीको 'साँकर खटोलना' और 'मकर-तार' नाम दिए हैं। इस लेखके प्रारम्भिक भागमें दिए 'साँकर खटोलना रहनि हमारी' का भाव उपर्युक्त पंक्तियोंसे स्पष्ट हो जायगा। कबीर साहबका एक भजन है—"भजन करु निशु-दिन टूटै न तार। इंगला पिंगला करु निरुवार, गगन-महलियाके खोलि दे किंवार। हृदय-कमलसे चलाला एक तार, गगन-मण्डलमें करत झनकार। कहैं कबीर कोई सन्त हुसिआर, जागेला निशु दिन रहै खबरदार।"

सन्त रैदासकी वाणीमें एक स्थलपर आया है—"मन रैदास उदास ताहिते, 'कर्ता' क्या रे भाई। कर्ता केवल एक सही सिर सत्तराम तेहि ठाईं।" इसी प्रकार सभी सन्तोंने सिरके ऊपर ही भगवानका स्थान माना है। कबीरने एक स्थानपर भगवान्का पता बताते हुए कहा है—"मैं तो रहौं सहरके बाहर मोरी पुरी मवासमें।" दूसरे स्थानपर 'सत्यनाम' का भी परिचय इसी प्रकारके शब्दोंमें दिया है—"कहैं कबीर विचारके सुनो जगत यह ज्ञान। नीचे त्रयलोकी तरह ऊपर सद्गुरु नाम।" एक तीसरे स्थलपर भगवानको 'कायानगरी'से बाहर बसा हुआ जानकर मायाकी निन्दाके प्रसंगमें 'भगवान'को मेहतर कहा है—"ई माया है चूहड़ी औ चुहड़ेकी जोय।" भगवान तो कर्मफल-रूपी मलसे छुड़ानेवाले और 'पंचम वर्ण'की भाँति ग्रामसे बाहर रहनेवाले होनेके कारण 'मेहतर' हुए और उनकी घरवाली अपने फूहड़पनके कारण, जिसका फल भगवानके बच्चे अनादि कालसे भोग रहे हैं, 'मेहतरानी' हुई।

सिरसे ऊपर ही सन्तोंका कैवल्य-धाम है, जिसे कबीरने 'उजलवास' भी कहा है। यथा "अवधू अमल करै सो गावै। उजलवास निसि-बासर देखै सीस पदम झलकावै।" साक्षात्कारी सन्तोंको सदा श्वेत मणिके समान भगवानका सिरके ऊपर दर्शन होता रहता है। मण्डल-ब्राह्मण उपनिषदने भी इसी स्थानमें ज्योति-दर्शनका फल अमृतत्व बतलाया है—"शीर्षोपरिदेशे द्वादशांगुलभिमान ज्योतिः पश्यति तदामृतत्वमेति।" इसी भूमिमें उस विचित्र योगीकी नगरी है, जिसमें सभी रहनेवाले योगी हैं—"मैं देख्यो तोरी नगरी अजब जोगिया। जोगियाकी नगरी बसै जनि कोय, जो रे बसै सो जोगिया होय।" यहीं वह कमल है, जिसकी गन्ध मन-भ्रमरके लिए प्राणघातक है। इस कमलकी सुगन्धि लेकर मन-भ्रमर अपना चोला छोड़ देता है और फिर उसमें अन्य किसी प्रकारके पुष्पका रस लेनेकी शक्ति नहीं रह जाती। 'बीजक'के शब्दों "मैं कासे कहौं को सुनै पति-आय। फुलवाके छुअत भँवर मरि जाय। गगन-मन्दिल बिच फुल एक फूला।. तर भो डार उपर भो मूला।" आदिमें भी इन्हीं बातोंका संकेत है। सन्तोंकी अनेक अटपटी वाणियाँ इसी साधन-भेदसे सम्बन्ध रखती हैं। जैसे—"ओरिआ क पनिआँ बँड़ेरिआ जाय"; "जहाँ न चींटी चढ़ि सकै राई ना ठहराय, मनुआँ तहलै राखिया तहवैं पहुँचे जाय" और "कबीरका घर शिखरपर जहाँ सिलहिली गैल, पाँव न टिकै पिपीलिका पंडित लादै बैल।" आदि इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि वेदके 'पुरुषसूक्त'में वर्णित रहस्य ही सन्तोंके साधनका आधार है और निर्गुणोपासक सन्तोंकी योग-युक्ति पूर्णतया वैदिक है। 'सहस्र शीर्षा पुरुषः' वाले मन्त्रसे ही यह रहस्यमय प्रकरण वेदमें प्रारम्भ हुआ है। सब भूमियों और स्थानोंमें व्यापक परमात्मा इन सब देशोंका अतिक्रमण करके दस अंगुलमें स्थित है। उस परमात्माके एक 'पाद' में सारी रचना और 'तीन पाद' में विशुद्ध अमृत है। यह त्रिपाद रचनाके ऊपर है। ऐसा उन मन्त्रोंका भाव आता है। इस प्रकार सब स्थानोंसे आगेका 'दशांगुल' देश सिरसे ऊपर ही ठहरता है। कृष्ण भगवानने अपने शरीर ही में अर्जनको सारे ब्रह्माण्डका दर्शन कराया था।

आँख, कान, मुखादि जीवोंके प्रयोगके साधारण घाट हैं। इन्हीं घाटोंसे संसारका रस लिया जाता है और इन्हीं घाटोंसे दर्शन, कथा-श्रवण तथा कीर्त्तनादिके रूपमें पूजा करनेका भी रिवाज है। सन्तोंका मार्ग इससे भिन्न है। वे साधारण घाटोंसे रस-ग्रहण नहीं करते। वे औघट घाटके प्रेमी हैं—"घाटै पानी सब भरै, औघट भरै न कोय। औघट घाट कबीरका, भरै सो निर्मल होय।" इन्द्रिय-द्वारोंसे सन्तोंकी उपासना नहीं होती, वे सुरति-

द्वार या ब्रह्मरन्ध्रके प्रयोगी हैं। इन्द्रिय-द्वारोंके ज़रिए तो नाशमानका ही ज्ञान होता है—"सन्तों आवै जाय सो माया।" इस आने-जानेवाली मायाके व्यापारसे दूर सन्तोंका देश है, जहाँ अमृत-फल प्राप्त होता है—"हंसा लोक हमारे अइहौ, ताते अमृत-फल तुम पइहौ।" सिरसे ऊपर अमृत-भरा कलश है, जो दो अंगुल ऊँची ईंडुरीपर रखा है। कलश दस अंगुल ऊँचा है। इस कलशका अमृत प्राप्त हो जानेपर साधकको सब स्थानों व कालोंमें अमृत प्राप्त होने लगता है। द्वादश भूमिके 'प्रकाश'का दर्शन दृढ़ होनेपर भक्तको सभी स्थानोंमें उस 'परम-ज्योति' का दर्शन होता है। इस सिरपर रखे हुए कलशका निरन्तर ध्यान रखना ही भक्ति-मार्ग है :—

गगरिया मोरी चित सों उतारी न जाय ॥ टेक ॥
जो चित छूटै गागर फूटै घर मोरी सास रिसाय।
जग-जीवन अस भक्ती मारग कहत अहौं गोहराय।

इंगला, पिंगलाके शान्त होनेसे सुष्मना या ब्रह्म-नाड़ी प्रवाहित होती है। संसार-ज्ञानके अभावमें भी यह आनन्द-प्रदायिनी नाड़ी क्रियाशील रहती है। महात्माओंसे सुना है कि नितान्त अबोध छोटे बच्चोंके सिरमें ऊपर जो धुकधुकी चलती है, वह सुष्मना-प्रवाहकी ही द्योतक है। इसीसे नन्हें बच्चे बड़े मस्त तथा आनन्द-विभोर रहते हैं। आयुके साथ ज्यों-ज्यों उनका संसार-ज्ञान बढ़ने लगता है, त्यों-त्यों यह प्रवाह रुकता जाता है।

रसड़ा (बलिया) ]

---

# भिक्षुक गांधी

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल

गांधीजीका व्यक्तित्व अनोखा है। जीवनका शायद ही कोई ऐसा पहलू हो, जिसके सिलसिलेमें उन्होंने प्रयोग न किए हों। उनकी ज़िन्दगीके भी बहुत-से रूप हैं। कोई उन्हें केवल सन्त और महात्माके रूपमें देखता है और उन्हें अवतार भी मानता है। कोई उन्हें कुशल राजनीतिज्ञ समझता है। कोई उन्हें आदर्शवादी मानता है, तो कोई पक्का यथार्थवादी। महात्माजीके निकट रहनेवाले उन्हें 'बापू'के रूपमें ही देखते हैं और उनके गृहस्थ-जीवनको ही महत्व देते हैं। रोगी कार्यकर्त्ताओंके लिए वे पूरे डाक्टर बन गए हैं।

प्रायः लोग नहीं जानते कि गांधीजी एक सिद्धहस्त भिक्षुक भी हैं। भिक्षा माँगनेके उनके ढंग नए हैं; उनमें भी अनोखापन है। महामना मालवीयजीने भी करोड़ों रुपए जमा किए हैं। राजा-महाराजाओं और सेठ-साहूकारोंसे उन्होंने एक-एक बार लाखोंका दान लिया है। लेकिन गांधीजी साधारण लोगोंसे छोटी-छोटी रक़में ही लेना पसन्द करते हैं। वे दानकी रक़मको इतना महत्व नहीं देते, जितना दाताओंकी संख्याको। अगर उन्हें एक लाख रुपया जमा करना हो और वे चाहें तो किसी एक व्यक्तिसे ही पूरी रक़म माँग सकते हैं; लेकिन अगर एक लाख व्यक्ति एक-एक रुपया दें, तो उन्हें अधिक आनन्द और सन्तोष होगा। इसका कारण भी सीधा है। सार्वजनिक कार्यके लिए रुपया जमा करनेके साथ-साथ वे जनतामें राष्ट्रीय विचारोंका प्रचार भी करना चाहते हैं। हरिजन-सेवाके लिए वे अपना हाथ फैलाकर ग़रीब किसानोंसे एक-एक पैसा ख़ुशीसे लेते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि जो निर्धन किसान हरिजन कार्यके लिए एक पैसा देता है, उसके मनमें हरिजनोंकी सेवाका भाव तो जाग्रत हो ही जाता है। जनताके विचारों और भावोंमें परिवर्तन करना ही तो सार्वजनिक आन्दोलनोंका उद्देश्य है। अगर एक ही सेठसे एक लाख रुपया मिल गया, तो उससे आम लोगोंमें कोई प्रचार नहीं हुआ।

× × × ×

जब गांधीजी रेल-यात्रा करते हैं, तो भिक्षुकका पूरा रूप धारण कर लेते हैं। हरएक एक स्टेशनपर भीड़ तो लग ही जाती है। लोग गांधीजीके दर्शन करते रहें और गांधीजी बैठे-बैठे उनकी ओर देखते रहें, यह एक राष्ट्र-भिक्षुक कैसे सहन कर सकता है! दर्शन करनेकी दक्षिणा तो उसे वसूल कर ही लेनी चाहिए। महात्माजी झट अपना एक हाथ बढ़ा देते हैं, और जब वह पैसोंसे भर जाता है, तब दूसरा। जब बहुत भीड़ होती है, तो दोनों हाथ एक साथ भी फैलाने पड़ते हैं। बूँद-बूँदसे

घट भर जाता है। इसी तरह गांधीजी एक यात्रामें कई सौ रुपए जमा कर लेते हैं। यह सारी रक़म हरिजन-सेवाके लिए ख़र्च की जाती है।

रातमें भी लोग गांधीजीको शान्तिसे नहीं सोने देते। हरएक स्टेशनपर 'महात्मा गांधीकी जय' से डब्बेके सभी लोगोंकी नींद टूट जाती है। अगर कभी गांधीजी ज़्यादा थके होनेके कारण सोते रहे, तो लोग उनके दर्शन किए बिना और उन्हें दक्षिणा दिए बिना थोड़े ही मानते हैं। कुछ लोग तो डब्बेके अन्दर घुसकर उन्हें उठा देते हैं और हाथमें पैसे रखकर चले जाते हैं। साधारण भिखारीको जब लोग पैसे देते हैं, तो वह प्रसन्न हो जाता है; किन्तु भिक्षुक गांधीको पैसे देकर लोग प्रसन्न होते हैं। कभी-कभी तो कोई अत्यन्त ग़रीब बुढ़िया, जिसके तनपर फटे कपड़े और हाथमें टूटी लकड़ी ही होती है, भीड़को मुश्किलसे चीरकर गांधीजीके पास आती है और उनके हाथमें एक पैसा रखकर और एक पल भर उनकी ओर देखकर चली जाती है। ऐसे दृश्योंका तो काव्यमें ही वर्णन हो सकता है।

गांधीजी वैसे तो हिन्दुस्तानकी कई भाषाएँ जानते हैं; किन्तु जिन भाषाओंको नहीं जानते, उनके 'पैसे' के लिए प्रान्तीय शब्द सीख लिए हैं। जिस प्रान्तमें जाते हैं, वहाँ हाथ फैलाकर 'पैसे' का पर्यायवाची शब्द कहकर भिक्षा माँग लेते हैं। बेचारे ग़रीब किसान और मज़दूर राष्ट्रभाषा थोड़े ही समझते हैं। गांधीजी भी केवल एक शब्द सीखकर अपना काम निकाल लेते हैं।

कभी-कभी जब गांधीजी स्टेशनपर ट्रेन आनेके पहले पहुँच जाते हैं, तो दर्शकों और पत्रकारोंकी भीड़ लग जाती है। पत्रकारोंके प्रश्नोंका उत्तर देनेके पहले वे मुस्कराकर कहते हैं—'अरे भाई, मुझे भीख तो माँग लेने दो!' आजकलके माडर्न पत्रकारोंके सरपर अकसर टोप तो होता ही है। बस, एक टोप माँगकर उसे सबसे पहले पत्रकारोंके सामने ही बढ़ा देते हैं—'हरिजनोंके लिए भिक्षा दीजिए।' पत्रकार और दर्शक सभी थोड़ी देरमें टोपको काफ़ी भारी कर देते हैं, जिसे गांधीजीको दोनों हाथोंसे सँभालना पड़ता है। काफ़ी रक़म जमा हो जानेपर पत्रकारोंके प्रश्नोंका उत्तर भी मिल जाता है।

× × ×

गांधीजीने भिक्षा माँगनेके और भी कई तरीक़े निकाले हैं। आजकल 'आटोग्राफ़' लेनेका शौक ज़ोरोंपर है। नेताओंको हर जगह 'आटोग्राफ़'के शौकीन लोग घेर लेते हैं। कोई-कोई नेता तो हस्ताक्षर कर देते हैं और मन ही मन ख़ुश भी हो जाते हैं। कुछ नेता 'आटोग्राफ़' देनेसे साफ़ इन्कार कर देते हैं। गांधीजीने बीचका रास्ता निकाला है—'हरिजन-सेवाके लिए ५) रु० दो, तो हस्ताक्षर किए जायँगे।' वे जिस प्रान्तमें जाते हैं, वहींकी लिपिमें हस्ताक्षर करनेकी कोशिश करते हैं। अधिकतर नेताओंको अंगरेज़ीमें ही हस्ताक्षर करनेमें सन्तोष होता है; किन्तु गांधीजी विदेशी लोगोंके सिवाय किसीको रोमन लिपिमें अपने हस्ताक्षर नहीं देते। इस प्रकार 'आटोग्राफ़' देकर भी वे हरिजन-कार्यके लिए वर्षमें ख़ासी रक़म जमा कर लेते हैं।

वे डाक्टरोंको भी आसानीसे नहीं छोड़ते। जब उनकी सेहत अच्छी नहीं होती, तो कई डाक्टर उन्हें जाँचने आ जाते हैं। गांधीजी विनोदमें पूछते हैं—'मुझे जाँचनेकी आप फीस क्या देंगे?' सामान्य लोगोंको तो डाक्टरोंको फीस देनी पड़ती है; लेकिन गांधीजी उल्टी डाक्टरोंसे दक्षिणा माँग लेते हैं। विनोद भी हो जाता है और हरिजनोंकी सेवा भी हो जाती है।

× × ×

पिछले वर्ष गांधीजीने दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़के स्मारक-फंडके लिए पाँच लाख रुपएकी अपील की थी। उन्होंने फंडके लिए अपने सेवाग्राम-आश्रमसे ही धन इकट्ठा करना शुरू कर दिया। आश्रम-वासियोंसे सूतके रुपए दान लिए। खादी-विद्यालयके छात्रोंसे कहा कि एक बारका उपवास करके जो कुछ पैसे बचें, वे फंडमें दे दो। वर्धा शहरमें भी पैसेसे लेकर सौ रुपए तक जो जिसने दिया, वह स्वीकार किया। गांधीजीने इसी प्रकार और स्थानोंसे रुपए अदा करवाए। वे चाहते थे कि अधिक-से-अधिक लोग थोड़ा-थोड़ा चन्दा दें। इसीमें दीनबन्धु-फंडकी शोभा है, क्योंकि उन्होंने आम जनताकी सेवा की थी। उनके लिए चन्दा साधारण लोगों द्वारा ही जमा होना चाहिए। जब इस तरह पूरा चन्दा न हो सका, तभी वे बम्बई गए और पाँच-छः दिनोंमें करीब साढ़े चार लाख रुपयोंका फंड एकत्र कर डाला। बम्बईके धनिकोंसे चन्दा लेनेमें उन्हें पूरा आत्म-सन्तोष नहीं हुआ होगा; लेकिन अपने ऊपर ली हुई ज़िम्मेदारीको भी शीघ्र पूरा करना था।

× × ×

भिक्षुक गांधी लालची नहीं हैं और न अनावश्यक रक़म अपने पास जमा रखना चाहते हैं। जब उन्हें किसी राष्ट्रीय कामके लिए धनकी ज़रूरत होती है, तो लोगोंसे माँग लेते हैं। वे हमेशा कहा करते हैं कि राष्ट्रीय संस्थाओंके लिए ज़रूरतसे ज़्यादा धन जमा करना अनुचित है। अगर संस्था राष्ट्रीय और उपयोगी है, तो आवश्यकता पड़नेपर जनता ज़रूर सहायता देगी। अगर समयपर धन नहीं मिलता, तो समझना चाहिए कि संस्थाकी जनताको आवश्यकता नहीं है और उसे चलानेसे कोई लाभ नहीं।

कुछ सनातनी हिन्दू सेठ गांधीजीके पास आकर कहते हैं—'महात्माजी, मैं एक लाखका दान देना चाहता हूँ; लेकिन एक शर्त है कि यह रक़म हरिजनों या मुसलमानोंके लिए ख़र्च न की जाय।' उन्हें मुस्कराकर तुरन्त उत्तर मिल जाता है—'आप कृपया कोई दूसरा सुपात्र खोजिए!'

गांधीजी दानके एक-एक पैसेका हिसाब रखवाते हैं। यात्राके समय हरएक स्टेशनपर जो रक़म मिलती है, उसे गिनवाकर नोट कराते हैं। हिसाबमें एक पैसेका अन्तर भी उनको अखरता है। जो लोग उनके साथ सफ़र करते हैं, उन्हें पैसे गिननेकी भारी ज़िम्मेदारी उठानी पड़ती है। जो रक़म जमा होती है, वह वर्धा आते ही हरिजन-सेवक-संघको भेज दी जाती है। वह अलग-अलग खातोंमें जमा रहती है। महात्माजीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति तो है ही नहीं।

हिन्दुस्तानमें आज भिखारियोंकी समस्याने लोगोंको तंग कर दिया है। जनता चाहती है कि भिक्षा माँगनेके ख़िलाफ़ नियम बन जाने चाहिएँ और भिखारियोंको दण्ड देना चाहिए। लेकिन भिक्षुक गांधीका भीख माँगना बन्द नहीं हो सकता। और उन्हें भिक्षा देकर कौन आनन्दित नहीं होता? गांधीजीने जीवनके जिस पहलूकी ओर ध्यान दिया है, उसे पूर्ण करके ही छोड़ा है। भिक्षाकी कलाको भी उन्होंने कितना वैज्ञानिक बना दिया है।

सेकसरिया-कालेज, वर्धा ]

---

# अंगार हैं शृंगार मेरे !

श्री सुधीन्द्र

फूल मेरे हार हैं, अंगार हैं शृंगार मेरे।

- १ -

फूलसे उत्पन्न हूँ मैं, आगसे है खेल मेरा;
जी रहा हूँ मैं गरल पी, है अमियसे मेल मेरा।
हैं मुझे तो एक सुख-दुख, मैं प्रलयकी ओर उन्मुख।
फिर कृपाका भार कोई क्या सकेगा झेल मेरा?
स्पर्श हैं निर्माण मेरे, ध्वंस किन्तु प्रहार मेरे।
फूल मेरे हार हैं, अंगार हैं शृंगार मेरे।

- २ -

बिजलियाँ चिनगारियाँ हैं, प्राणके संघर्ष-पथकी;
गर्जना हैं बादलोंका घोष मेरे क्रान्ति-रथकी।
है अजर तन, है अमर मन, है चिरन्तन और जीवन;
देखना है अंत, देखी रंगशाला सृष्टि अथकी।
तोड़ अपने कंठसे नक्षत्र हैं मैंने बिखेरे।
फूल मेरे हार हैं, अंगार हैं शृंगार मेरे।

- ३ -

बाँध लेंगी क्या मुझे ये क्रोड़-बीच मृणाल-बाहें?
रोक लेंगी पुतलियोंसे झाँकती क्या मूक चाहें?
रुक सकेगा क्या यहाँ तन, जब बना ब्रह्माण्ड आँगन?
क्या गला लेंगी मुझे ये मृत्तिकाकी क्षीण आहें?
हो सकेंगे क्या भला ये देह कारागार मेरे?
फूल मेरे हार हैं, अंगार हैं शृंगार मेरे।

- ४ -

दे रहे मुझको विजय क्या, मैं विजयका तो प्रदाता;
चाहिए मुझको विभव क्या, मैं विभवका भी विधाता।
शूल जगके फूल मुझको, रत्न जगके धूल मुझको;
मृत्यु मेरी सहचरी है, जन्मसे है नित्य नाता।
भाग्य-लेखक सृष्टिके तो हैं रहे उद्गार मेरे।
फूल मेरे हार हैं, अंगार हैं शृंगार मेरे॥

सब कहीं दंगे
चाहते हैं।
ही दंगा करा
इसकी ज़िम्मेद
तब इसमें हा
नदीम
कहते—'तो
बेकार ही ख
सुनकर दंग
जायगा। मैं
बेफ़िक्र रहो।
बताना है, वि
कृष्णच
इसके
ओरसे एक
पार्कमें सभा
बहुत घबराए
वे न माने
साथ उन्हें
हिन्दू-मुसलम
जाननेको
गई थी।
एकताके सम
जनताको भ
सुन ले।
नियत
खड़े होकर
नदीम साहब
स्थिति बत
एक हो जा
बीचमें उ
लिया और

# क्षयके कारण

वैद्य श्री रणजित्राय आयुर्वेदालंकार

नवीन चिकित्सा-शास्त्रके अनुसार, अधिकांश रोगोंके कारण जीवाणु हैं। आयुर्वेदके प्राचीन आचार्योंको जीवाणुओंका ज्ञान था वा नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु आयुर्वेद, वेद, ब्राह्मण, पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें ऐसे प्रकरण बहुधा आते हैं, जिनका सन्तोषप्रद अर्थ तभी किया जा सकता है, जब हम स्वीकार करें कि उनके लेखकोंको जीवाणुओंका ज्ञान था तथा इन प्रकरणोंमें आए तत्-तत् शब्द जीवाणुओंके वाचक हैं। कई विद्वान् तो इन प्रकरणोंके आधारपर प्राचीन भारतीयोंको जीवाणुओंका ज्ञान होना मानते भी हैं। उनका यह कहना है कि भारतीयोंने जीवाणुओंका ज्ञान होते हुए भी उन्हें रोगोत्पत्तिका प्रधान कारण नहीं माना। उनके मन, अयोग्य आहार-विहारसे दोषाक्रान्त होकर, जीवाणुओंसे परास्त होने योग्य दशाको प्राप्त होनेवाला शरीर ही मुख्यतया विचारणीय था। जो हो, भारतीयोंको जीवाणुओंका ज्ञान रहा हो या न रहा हो; परन्तु यह बात तो वे निःसन्देह जानते थे कि क्षय आदि रोग संक्रामक हैं और स्पर्श आदि द्वारा रोगीसे रोगाणु स्वस्थ पुरुषमें जाते हैं। सुश्रुतमें कहा है :—

प्रसंगाद् गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात् सहभोजनात्।
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥
—सु० नि० ५. ३३-३४

इन पद्योंका अर्थ यह है पुनः-पुनः शरीरके स्पर्शसे, निःश्वाससे, साथ बैठकर भोजन करनेसे, एक बिस्तरपर शयन करने तथा एक आसन (कुर्सी आदि) पर बैठनेसे, एकके व्यवहार किए कपड़े, फूल-माला और चन्दन आदि लेपनसे कुष्ठ (त्वचाके रोग), ज्वर, क्षय, आँख दुखना तथा चेचक, प्लेग, हैज़ा आदि जनपद-व्यापी रोग एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें प्रविष्ट होते हैं।

आधुनिक विद्वानोंने क्षयके संक्रमणके दो प्रकार निश्चित किए हैं: कणिका-संक्रमण[1] तथा धूली-संक्रमण[2]। इनमें प्रथमकी ओर निष्णातोंका अधिक झुकाव है। रोगीके मुख, नासिका तथा श्वास-मार्गमें असंख्यात जीवाणु रहते हैं। खाँसी या छींकके वेगके समय रोगी मुख या नाकको हाथ या रूमालसे ढँक न रखे, तो कफ़की सुसूक्ष्म कणिकाएँ, जो जीवाणुओंसे व्याप्त होती हैं, आसपास स्थित लोगोंके मुख आदिमें जाती हैं, एवं क्षयके जीवाणुओंको फूलने-फलने और रोग उत्पन्न करनेका नया क्षेत्र प्राप्त हो जाता है। बिस्तरपर पड़े या मकानमें घूमते हुए अथवा गाड़ी, मोटर, सड़क आदिसे यात्रा करते समय भी रोगी सहस्रधा रोगका प्रसार करते हैं।

रुग्ण पुरुषोंके सिवा अनेक पुरुष ऐसे भी होते हैं, जो स्वयं क्षयरोगी नहीं होते; पर जिनके मुख, नासिका आदिमें क्षयके सहस्रों जीवाणु बसते हैं। ये लोग भी असंयत खाँसी, छींक आदि द्वारा रोगका प्रसार करते हैं।

क्षयके संक्रमणका दूसरा, पर गौण, प्रकार धूली-संक्रमण है। रोगी अथवा पूर्वोक्त जीवाणु-वाहक अरोगी यदि जहाँ-तहाँ थूके, तो उसके कफ़में मिले जीवाणु कफ़के सूखनेके पश्चात् धूलीके साथ वायुमण्डलमें मिल इतर पुरुषोंके मुख आदिमें जाकर रोग उत्पन्न करते हैं।

आयुर्वेदके स्वस्थ वृत्ताधिकारमें स्वस्थ पुरुषके लिए भी यह नियम किया गया है कि वह खाँसी या छींक आदिके आते समय मुख और नाकको ढाँप ले। इसका कारण रोगी और अरोगी जीवाणुवाहक मनुष्यों द्वारा क्षयके कणिका-संक्रमणका रोकना ही प्रतीत होता है। कारण, जैसा कि ऊपर कहा गया है, क्षय निश्वास द्वारा एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें प्रविष्ट होता है। इस विषयके मूल वाक्य निम्न-लिखित हैं :—

नासंवृतमुखः सदसि जृम्भोद्गारकासश्वासक्षवथूनुत्सृजेत्॥
—सु० चि० २४.९४

नानावृतमुखो जृम्भां क्षवथुं हास्यं वा प्रवर्तयेत्॥
—च० सू० ८.१९

जन-समाजमें तथा अन्यत्र भी हाथ या वस्त्रसे मुँह ढाँपकर ही जमुहाई या डकार ले। खाँसते, छींकते, हँसते अथवा गहरी साँस लेते समय भी मुँहको ढाँपे रहे। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदमें सार्वजनिक स्थलोंपर थूकने तथा अन्य मलोंके त्यागका भी निषेध किया गया है। आयुर्वेदमें इस प्रकारके आदेशका कारण आयुर्वेदोचित

1. Droplet-infection—ड्रापलेट-इन्फेक्शन।
2. Dust-infection—डस्ट-इन्फेक्शन।

रमें धीमी-सी आवाज़
जायँगे ? अपराधीके
ना स्पष्ट हो उठी।
वह सारा धन उस
ठा। चाल दौड़में

[illegible]दनपर पूरी बाँहोंका मैला कुर्त्ता, घुवाज़ लगाता हुआ
सिरपर दो बराबर भागोंमें जुड़ी हुई ट वह राहगीरोंसे
जीवित जूता, आँखें जैसे बरबस किसीको न समझते और
हों, हाथमें मोटा डंडा, चलते समय जैसे कमौदागर कहीं
भाग पैरोंसे आगे जानेको व्याकुल हो, माथेपर [illegible]
ख़याल किए पड़ी झुर्रियाँ, अपनी इस भारी सम्प[illegible]
बिना इधर-उधर दृष्टि किए वह चला जा रहा था। नोगोंको
थकावट, शरीर गठनसे मज़बूत, पर परिश्रमसे थका हुन न
राहमें मिलते राहगीरोंसे वह अपनी आँखों द्वारा ही मानो
पूछता—'क्या आगे कोई गाँव भी आवेगा ?' पर अपने
मौन प्रश्नका उत्तर न पाकर खिन्न और खीझा हुआ वह
फिर अपनी शक्तिको बटोर आगे बढ़ रहा था। उसका पेट
बार-बार उससे कर माँगता; पर जैसे वह [illegible]
कहकर उसे समझा देता। राहमें [illegible]ता। नायकम्को
मिलीं, उसने सबकी ओर देखा—जैसे [illegible] सिर्फ़ मज़दूर हैं।
वे अपनी सवारीपर उसे जगह दे दें। पूर्ण था। मज़दूरोंके
लिए शानके ख़िलाफ़ था। वह उन[illegible]का प्रबन्ध नायकम्ने
नज़रसे ताकता हुआ अकड़कर अपनी सारे व्यवहारके पीछे
चलता। इस सद्व्यवहारने

एक छोटा-सा शहर आया औ[illegible] वातावरण पैदा कर
रात्रिकी भूमिकाने दुनियाको छिपाना [illegible] और उदारताको
उसे चलते-चलते दस घंटे हो चुके थे [illegible] लगे। नायकम्की
उसने कुर्त्तेके नीचे अपनी बंडीकी [illegible]थ पूर्णरूपसे मिल
विश्वास कर लिया कि उसे किसीकी कृ[illegible] तो किसी पक्षके
[illegible]ाँगनी पड़ेगी। उन सफ़ेद सिक्कोंको उस[illegible]ा बहुत बड़ा भाग
[illegible] बड़ी सावधानीसे उन्हें जेबमें रखते [illegible] जाता। किसीको
[illegible] बढ़ाने लगा। जैसे मिलनेवालोंक[illegible] आत्मा व्याकुल हो
हो कि वह थका नहीं है—उसके [illegible] प्रत्येक दुखीके
शहरपनाहके अन्दर घुसते ह[illegible]
। उत्तर मिला—'आगे'। [illegible] पर यह विचार
रोर लगाकर हारी हुई बा[illegible] न था। उसके
नवाईकी दूकान थी। [illegible]ण मज़दूरसे ऊपर
फ़िर पड़े क़हक़हा त[illegible]। एक बुढ़िया

उसका भोजन बनाती। नायकम्की कार्यदक्षता और उदारतासे अधिकारीवर्ग अनभिज्ञ न रहे। वे भी उसे महान् समझने लगे। शहरके 'श्रेष्ठ' पदके लिए उससे आग्रह किया जाने लगा। वह उसे टाल न सका। यह पद पाकर भी आत्माभिमान उसे छू तक न गया था। 'धर्मपिता'के अधिकारको पाकर वह और अधिक नम्र हो उठा। अब उसकी सेवाके लिए दो क्षेत्र थे। फ़ैक्टरी और नगर। दुखियोंका वह मसीहा था। दलितोंका लिंकन और पीड़ितोंका बुद्ध। उसके रोम-रोमसे आत्म-बलिदान झलकता था। नगर कोतवाल मि० त्रिपाठीको छोड़कर शेष सभी व्यक्तियोंके लिए वह श्रद्धाका पात्र था। आत्म-बलिदानकी घटनाओंने उससे ईर्ष्या रखनेवाले व्यक्तियों तकको उसका भक्त बना दिया; पर उसका उत्सर्ग मि० त्रिपाठीके हृदयको न छू सका। मि० [illegible] कह रही थीं—'अपराधी है।' उसकी वाणीकी रूक्षता बतला रही थी—'असभ्य है। समाजमें नहीं रहा।' उसने फिर आग्रह और अधिकारके साथ दुहराया—'[illegible] चाहिएँ।' [illegible] उपेक्षा-भरी आँखोंसे अपनेसे ऊपरवाले अफ़सरोंके प्रति वे सदा नम्र रहते। व्यवहार-पालनके लिए मि० त्रिपाठी नित्य उसके दर्शन भी कर जाते; पर श्रद्धासे नहीं, कर्त्तव्यसे।

एक दिन नायकम् बैठा कुछ पढ़ रहा था। अचानक मि० त्रिपाठीके आनेकी सूचना मिली। आज मि० त्रिपाठीकी आँखोंसे उस सामने बैठे हुए व्यक्तिके लिए श्रद्धा उमड़ रही थी। वे नम्रतापूर्वक आकर उसके पास पड़ी हुई एक कुर्सीपर बैठते हुए बोले—'मुझे कल एक क़ैदीकी शनाख़्त करने नरेन्द्रनगर जाना है।'

'कौन क़ैदी ?'

'एक पुराना अपराधी, जिसने जेलसे छूटकर भी दो बार चोरी की। वह बहुत दिनों तक लापता रहा। पुलिसने उसकी वर्षों खोज की, पर पता न पा सकी। अभी हाल ही में वह पकड़ा गया है।'

'शनाख़्तकी आख़िर क्या ज़रूरत हुई ?'—श्रेष्ठने उत्सुकतापूर्वक फिर पूछा।

'अपराधी अपना पुराना नाम माधो स्वीकार नहीं करता।'—मि० त्रिपाठीने उत्तर दिया।

'क्यों ?'—अपनी वेदना और जिज्ञासाको दबाते हुए नायकम्ने पूछा।

सब कहीं दंगे
चाहते हैं।
ही दंगा करा
इसकी ज़िम्मेद
तब इसमें हा
नदीम
कहते—'तो
बेकार ही ख
सुनकर दंग
जायगा। मैं
बेफ़िक्र रहो।
बताना है, वि
कृष्णच
इसके
ओरसे एक
पार्कमें सभा
बहुत घबराए
न मा
उन्हें

# क्षयके कारण

वैद्य श्री रणजित्‌राय आयुर्वेदालंकार

नवीन चिकित्सा-शास्त्रके अनुसार, अधिकांश रोगोंके कारण जीवाणु हैं। आयुर्वेदके प्राचीन आचार्योंको जीवाणुओंका ज्ञान था वा नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु आयुर्वेद, वेद, ब्राह्मण, पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें ऐसे प्रकरण बहुधा आते हैं, जिनका सन्तोषप्रद अर्थ तभी किया जा सकता है, जब हम स्वीकार करें कि उनके लेखकोंको जीवाणुओंका ज्ञान था तथा इन प्रकरणोंमें आए तत्-तत् शब्द जीवाणुओंके वाचक हैं। कई विद्वान् तो इन प्रकरणोंके आधारपर प्राचीन भारतीयोंको जीवाणुओंका ज्ञान होना मानते भी हैं। उनका यह कहना है कि भारतीयोंने जीवाणुओंका ज्ञान होते हुए भी उन्हें रोगोत्पत्तिका प्रधान कारण नहीं माना। उनके [illegible] आहार-विहारसे दोषाक्रान्त [illegible]

[illegible]

[illegible] जानते थे कि क्षय आदि रोग संक्रामक हैं और स्पर्श आदि द्वारा रोगीसे रोगाणु स्वस्थ पुरुषमें जाते हैं। सुश्रुतमें कहा है :—

> प्रसंगाद् गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात् सहभोजनात्।
> सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्॥
> कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
> औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥
>
> —सु० नि० ५. ३३-३४

इन पद्योंका अर्थ यह है पुनः-पुनः शरीरके स्पर्शसे, निश्वाससे, साथ बैठकर भोजन करनेसे, एक बिस्तरपर [सो]ने तथा एक आसन (कुर्सी आदि) पर बैठनेसे, [व्य]वहार किए कपड़े, फूल-माला और चन्दन आदि [से कुष्ठ] (त्वचाके रोग), ज्वर, क्षय, आँख दुखना [तथा प्]लेग, हैज़ा आदि जनपद-व्यापी रोग एक [मनुष्यसे दूसरे म]नुष्यमें प्रविष्ट होते हैं।

[वि]द्वानोंने क्षयके संक्रमणके दो प्रकार निश्चित [किए हैं—बिन्दु]-संक्रमण[1] तथा धूली-संक्रमण[2]। इनमें [...] [वि]ख्यातोंका अधिक झुकाव है। रोगीके

मुख, नासिका तथा [...]
रहते हैं। खाँसी [...]
नाकको हाथ या रूमाल [...]
कणिकाएँ, जो जीवाणु [...]
लोगोंके मुख आदि [...]
फूलने-फलने और [...]
जाता है। बि[...]
गाड़ी, मोटर [...]
सहस्रश रोग[...]

रुग्ण [...]
स्वयं [...]
क्षय[...]

[illegible]

सूखनेके पश्चात् धू[...]
पुरुषोंके मुख आदिमें [...]

आयुर्वेदके स्वस्थ[...]
यह नियम किया गया [...]
आते समय मुख और [...]
रोगी और अरोगी [...]
कणिका-संक्रमणका रो[...]
जैसा कि ऊपर कहा ग[या ...]
मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें [...]
वाक्य निम्न-लिखित हैं [...]

नासंवृतमुखः सदसि [...]

नानावृतमुखो जृम्भां [...]

जन-समाजमें त[...]
मुँह ढाँपकर ही जमुहाई [...]
हँसते अथवा गहरी स[ाँस ...]
इसके अतिरिक्त आयु[र्वेद ...]
तथा अन्य मलोंके त्याग [...]
आयुर्वेदमें इस प्रकारके [...]

---

[1] [Droplet Infe]ction—ड्रापलेट-इन्फेक्शन।

[2] [Dust Infecti]on—डस्ट-इन्फेक्शन।

न सुना। विचार फिर उठे। उसके कानमें धीमी-सी आवाज़ पड़ी—'मेरे बाल-बच्चे बरबाद हो जायँगे !' अपराधीके मस्तिष्कमें २० वर्ष पहलेकी एक घटना स्पष्ट हो उठी। उसके विचार कोमल हो उठे। वह सारा धन उस सौदागरको लौटा देनेको व्याकुल हो उठा। चाल दौड़में बदल गई। 'सौदागर, सौदागर'की आवाज़ लगाता हुआ वह दौड़ा; पर सौदागर न मिला। वह राहगीरोंसे पूछता, तो वे उसे ग़ौरसे देखते, पागल समझते और चुपचाप अपना मुँह उधरसे फेर लेते। सौदागर कहीं भी न मिला।

- २ -

रामपुरकी इतनी आकस्मिक उन्नतिने लोगोंको अचम्भेमें डाल दिया। जहाँ लोगोंको भरपेट भोजन न मिलता था, वहाँ आज सभी सुखपूर्वक ज़िन्दगी बिताने लगे। जबसे काँचकी फ़ैक्टरी खुली है, तबसे दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति यहाँ हो रही है। काम करनेवाले मज़दूरोंके चेहरोंपर सन्तोष और तृप्तिके चिह्न झलक रहे थे। काँचके कामकी उन्नति इतनी शीघ्र हुई कि सस्तेसे सस्ते दामोंमें वहाँका सामान दूर-दूर जाता। नायकम्को स्वप्नमें भी ख़याल न होता था कि वे सिर्फ़ मज़दूर हैं। उसका व्यवहार बड़ा उदार और स्नेहपूर्ण था। मज़दूरोंके रहनेका प्रबन्ध, बीमारीमें उनके इलाजका प्रबन्ध नायकम्ने इतना अच्छा किया था, जैसे उस सारे व्यवहारके पीछे एक दयालु पिताका हाथ हो। उसके इस सद्व्यवहारने उसके चारों ओर एक उच्चताका वातावरण पैदा कर दिया था। उसके हृदयकी विशालता और उदारताको देख लोग उसे 'धर्मपिता' कहने लगे। नायकम्की आत्मा उन काम करनेवाले लोगोंके साथ पूर्णरूपसे मिल चुकी थी। स्वामी और सेवकका भाव तो किसी पक्षके हृदयमें रहा ही न था। आमदनीका बहुत बड़ा भाग काम करनेवाले व्यक्तियोंको ही दे दिया जाता। किसीको दुखी और कष्टमें देख नायकम्की आत्मा व्याकुल हो उठती। उस फ़ैक्टरीके द्वार सदा-सर्वदा प्रत्येक दुखीके लिए खुले थे।

नायकम् एक फ़ैक्टरीका स्वामी था; पर यह विचार उसके दिमागमें शायद कभी आया भी न था। [illegible] [illegible] उसे किसी भी साधारण मज़दूरसे [illegible] नहीं [illegible] थे। वह अकेला था। [illegible] बुढ़िया उसका भोजन बनाती। नायकम्की कार्यदक्षता और उदारतासे अधिकारीवर्ग अनभिज्ञ न रहे। वे भी उसे महान् समझने लगे। शहरके 'मेयर' पदके लिए उससे आग्रह किया जाने लगा। वह उसे टाल न सका। वह पद पाकर भी आत्माभिमान उसे छू तक न गया था। 'धर्मपिता'के अधिकारको पाकर वह और अधिक नम्र हो उठा। अब उसकी सेवाके लिए दो क्षेत्र थे। फ़ैक्टरी और नगर। दुखियोंका वह मसीहा था। दलितोंका लिंकन और पीड़ितोंका बुद्ध। उसके रोम-रोमसे आत्म-बलिदान झलकता था। नगर कोतवाल मि० त्रिपाठीको छोड़कर शेष सभी व्यक्तियोंके लिए वह श्रद्धाका पात्र था। आत्म-बलिदानकी घटनाओंने उससे ईर्ष्या रखनेवाले व्यक्तियों तकको उसका भक्त बना दिया; पर उसका अनुराग मि० त्रिपाठीके हृदयको न छू सका। मि० त्रिपाठी सदा नायकम्की आँखोंमें कुछ खोजा करते। 'धर्मपिता'को वे श्रद्धासे न देख सके; पर उनकी कर्तव्यपरायणता 'मेयर'के प्रति होनेवाले व्यवहारमें किसी प्रकार की कमी न आने देती थी। वे श्रद्धालु न होकर भी सच्चे अफ़सर थे, और इसलिए अपनेसे ऊपरवाले अफ़सरोंके प्रति वे सदा नम्र रहते। व्यवहार-पालनके लिए मि० त्रिपाठी नित्य उसके दर्शन भी कर जाते; पर श्रद्धासे नहीं, कर्तव्यसे।

एक दिन नायकम् बैठा कुछ पढ़ रहा था। अचानक मि० त्रिपाठीके आनेकी सूचना मिली। आज मि० त्रिपाठीकी आँखोंसे उस सामने बैठे हुए व्यक्तिके लिए श्रद्धा उमड़ रही थी। वे नम्रतापूर्वक आकर उसके पास पड़ी हुई एक कुर्सीपर बैठते हुए बोले—'मुझे कल एक क़ैदीकी शिनाख़्त करने [illegible] जाना है।'

'कौन क़ैदी ?'

'एक पुराना अपराधी, जिसने जेलसे छूटकर भी दो बार चोरी की। वह बहुत दिनों तक लापता रहा। पुलिसने उसकी खोज की, पर पता न चल सका। अभी हाल ही में वह पकड़ा गया है।'

'शिनाख़्तकी आख़िर क्या ज़रूरत हुई ?' [illegible] उत्सुकतापूर्वक फिर पूछा।

'अपराधी अपना पुराना नाम [illegible] नहीं [illegible]' मि० त्रिपाठीने उत्तर दिया।

'कौन ? [illegible] और [illegible] हुए नायकम्ने पूछा।

'वह अपना नाम दूसरा बताता है और कहता है कि उसने कभी कोई चोरी नहीं की और उसका यह भी कहना है कि उसने कभी जेलका दरवाज़ा भी नहीं देखा। पर वह झूठ बोलता है। उसकी शक़्ल बिलकुल माधो जैसी ही है। वह माधो ही है। उसके तीन साथी क़ैदियोंने उसकी शनाख़्त भी कर ली है। मैं भी उस जेलका अफ़सर रहा हूँ, इसलिए मुझे भी उसकी शनाख़्त करने जाना है। वह बड़ा भयानक आदमी है। उसके बाजुओंमें फौलादी ताक़त है। तीन बार उसने जेल तोड़कर भागनेकी कोशिश की, जिसके परिणाम-स्वरूप उसकी मूल ५ वर्षकी सज़ा २० वर्षमें बदल गई। अबकी बार निश्चय ही उसे फाँसी होगी।'

नायकम् अपनी अचेतनावस्थामें यह सब कुछ सुन गया। मि० त्रिपाठीने देखा, नायकम्का चेहरा लाल था। अपने अन्दरके संघर्षको दबाते हुए नायकम्के मुखसे केवल 'अच्छा' निकला। मि० त्रिपाठी श्रेष्ठको विचारमग्न छोड़ आज्ञा लेकर चल दिए।

रात्रिके एकान्त अन्धकारमें दाहिने हाथकी हथेलीपर अपना सिर रखे नायकम् कुछ सोच रहा है। सोच-विचार उसे किसी निश्चयपर नहीं लाता, ऐसा उसके भावोंसे स्पष्ट है। कभी चिन्ताकी और कभी प्रकाशकी रेखा उसके चेहरेपर अंकित हो जाती है। इसी चिन्ताकी अवस्थाने उसे नींदको सौंप दिया। अर्ध-निद्रामें उसने देखा, एक भव्य चेहरा उसकी ओर हाथ बढ़ाकर कह रहा है—मित्र, यह अँगूठी भी तुम्हारी भेंट है। उसका चेहरा आनन्दसे खिल उठा। पर स्वप्नका ताँता टूटा नहीं। उसने देखा अपना बचपन, युवावस्था, पिताकी मृत्यु, बहन, भाई, माता, बुआ और उनकी लड़की कुल ९ प्राणियोंकी रोटीका प्रश्न! मिलके दरवाज़े उसने खट-खटाए। उत्तर मिला—'नहीं।' दूकानोंकी धूल उसने छानी। जवाब मिला—'नहीं'।' उसने अपने कुटुम्बी-जनोंको देखा। उसकी आँखोंमें आँसू भरे। वह फिर छटपटा उठा। उनके लिए रोटियाँ? एक दूकानमें सेंध लगाई, कुछ सामान लेकर निकला; पर निकलते ही उसके हाथ मालिकके हाथमें थे। सज़ा सुना दी गई, ५ वर्षकी सख़्त क़ैद। उसने रोते दिलसे सब कुछ सुना। व्याकुल हो वह रोने लगा।

निद्रा चैतन्यमें बदल गई। उसने अपनी आँखें धीरेसे पोंछ डालीं। स्वप्नने अतीतको उसके रोम-रोममें सजग कर दिया। उसे अपने सामने, उस अँधियारीमें, दिखलाई दिए ९ रोते चेहरे, जो मुँह खोले उससे रोटी माँग रहे थे। पर वह असमर्थ था। उसका अन्तस रो उठा। वह घरसे निकल पड़ा और निरुद्देश्य आगे बढ़ा। पागलकी तरह दिन भर चलता रहा। भूख-प्यास सभी उसे सताने लगे। उसके चेहरेपर विचार करते-करते कठोरता झलकने लगी। उसने अपने मनमें कठोरतासे दुहराया—'नगरने मुझ भूखेको रोटी भी न दी।' उसके अन्तसका कोमल और सेवा-प्रधान भाव मानो छिप गया। वह अपने विचारमें उग्र हो उठा। पर फिर उसने देखा, वही भव्य चेहरा। उसके विचार जैसे रफ़ू हो गए।

घड़ीमें टन्-टन् करके चार बजे। वह उठ बैठा। बाहर आवाज़ दी। एक घोड़ागाड़ी आ खड़ी हुई। उसकी दुर्बलताने फिर ज़ोर मारा—'वह क्यों अपनेको फँसे? वह अब सदाके लिए सुरक्षित है। लोग उसका आदर करते हैं। आज वह धन और जन दोनोंका स्वामी है। उसकी खाई सदाको भर रही है।' उसने बाहर झाँका, जैसे वह सवारीको वापस जानेको कहने जा रहा हो; पर फिर उसे ख़याल आया—'वहाँ चलनेमें हर्ज ही क्या है?' और वह घोड़ागाड़ीमें आ बैठा।

नायकम् जब नरेन्द्रनगर पहुँचा, तो मामला जजके सामने पेश होने ही वाला था। उसने आँखें दौड़ाकर चारों ओर देखा, अपराधी जजकी कुर्सीके पीछे जँगलोंमें बन्द है—उदास, भौंचक्का, जैसे वह कुछ समझ ही न पा रहा था कि आख़िर वह क्यों पकड़ लाया गया। नायकम्ने उसकी ओर देखा, फिर अपनी ओर। उसने एक दीर्घ साँस खींची और दाहिनी ओर दर्शकोंके बीच जाकर बैठ गया। शनाख़्त शुरू हुई। क़ैदीके साथियोंने एकके बाद एकने उसकी शनाख़्त कर दी कि यह वही माधो है। नायकम्के अन्दर एक तूफ़ान उठ रहा था। वह कभी सरकारी गवाहोंकी ओर देखता, कभी कठघरेमें बन्द अपराधीकी ओर। अब अपराधीका समय था अपनी सफ़ाई देनेका। पर जैसे वह कुछ कहना ही न चाहता हो। जजके पूछनेपर उसने कहा—'मैं निरपराध हूँ। मेरा नाम माधो नहीं है।' निरपराध शब्द सुनते ही नायकम्की देहमें बिजली-सी दौड़ गई। उसका चेहरा लाल हो गया। वह अपने अन्दर ही जैसे किसीसे युद्ध

कर रहा था। उसने फिर सुना—'मैंने किसी सौदागरको रास्तेमें नहीं लूटा। मैंने जेलसे भागनेकी कभी कोशिश नहीं की। मैं इन तीनों क़ैदी-गवाहोंको भी बिल्कुल नहीं जानता।'

इसी समय सरकारी वकीलने खड़े होकर कहा—'जज महोदय, अपराधीकी शनाख़्त पूरी हो चुकी। वह केवल अपनी बचतके लिए यह सब कह रहा है। उसके कथनका एक-एक शब्द झूठ है। पुलिसने काफ़ी छान-बीन करके ही मुक़दमा चलाया है।'

सरकारी वकीलके बैठते ही जज महोदयके हाथमें एक काग़ज़का टुकड़ा—'मैं अपराधीकी तरफ़से कुछ बोलना चाहता हूँ' पहुँचा। आज्ञा मिल गई। शान्त वातावरणमें फिर उत्सुकताकी लहर दौड़ गई। लोगोंने देखा, 'धर्मपिता' खड़े हुए। दर्शकोंने देखा, वे व्याकुल-से हैं। क्रोध उनके चेहरेपर है। नायकमूने सरकारी गवाहोंसे पूछना शुरू किया—'क्या वे २० वर्षों तक बराबर अपराधीके साथ रहे हैं?'

उत्तर मिला—'हाँ।'

फिर प्रश्न हुआ—'क्या माधोकी दाहिनी भुजामें कोई चोटका चिह्न था?'

क़ैदियोंने कहा—'हाँ, जब उसने पहली जेलसे भागनेकी कोशिश की थी, तब उसके हाथमें यह चोट आई थी।'

'तुमने अपराधीके हाथमें उस चोटका निशान देखा है?'

'निशान देखनेकी ज़रूरत नहीं। हम २० वर्षोंसे उसके साथ रहे हैं, हम उसके रोम-रोमसे परिचित हैं।'

गवाहोंका वाक्य अभी पूरा भी न हुआ था कि नायकमूने अपने सिरपर से पगड़ी उतारकर फेंक दी। फिर उसने अपनी भुजा खोली और पूछा—'क्या तुमने माधोके हाथपर चोटका ऐसा निशान देखा था?'

गवाह स्तब्ध थे। जज शान्त। सबने देखा, वास्तविक माधो—अपराधी माधो—नायकमू ही है। उनकी आँखें श्रद्धासे झुकीं, फिर सहसा उनमें घृणाकी बाढ़ आ गई। दूसरे ही क्षण बन्दी मुक्त था। नायकमूके हाथोंमें हथकड़ियाँ पहना दी गईं और उन हथकड़ियोंके ऊपरसे 'धर्मपिता'की मनुष्यता हँस रही थी। *

बनस्थली (जयपुर) ]

* एक फ्रेंच उपन्यासके आधारपर। —लेखक

---

# मीर तक़ी 'मीर'

**श्री बनखंडीदीन सेठ**

नादिरशाहके आक्रमण और उत्तर-भारतके उपद्रवसे बहुत पहले अकबराबादके मीर अब्दुल्लाके यहाँ एक बालक पैदा होता है, जिसका जीवन-काल देहली साम्राज्यको किसी खुली हुई पुस्तकके पृष्ठोंकी तरह हवामें उड़ते, या किसी प्रियतमाकी ज़ुल्फ़ोंकी तरह उलझते और बिखरते देखता है। मोहम्मदशाह, अहमदशाह, आलमगीर द्वितीय और शाहआलमकी बादशाहतोंकी उसके जीवन-कालमें ही उन्नति और अवनति होती है। अहमदशाह दुर्रानी और मराठों, सिक्खों और अंगरेज़ोंकी आपसकी तनातनी उसके लिए क़िस्सा-कहानी न थी और मिर्ज़ा [illegible] ख्वाजा मीरदर्द, हज़रत मिर्जामज़हर [illegible] उसके लिए पुराने [illegible]।

थी। कविताका स्वरूप शृंगारी था। सूफ़ियोंका तत्त्व-ज्ञान भक्तिकी लहरोंसे मिलकर साहित्यको सींचता और कविता-कामिनीको नवीन विचारोंके गहनोंसे सजाता था। कविता दरबारी हो चुकी थी। कवि दरबारोंमें पलते थे और दरबारी वायुमण्डलका अच्छा ख़ासा चित्रण उनकी कवितामें मिलता था।

मीर तक़ीके पिता मीर अब्दुल्ला भक्त थे। उन्हें सारे दिन पूजा-पाठसे काम था। वे संसार और उसकी असारताको पूरी तरह जानते थे। दुनियाका कारबार कैसे चलता है और प्राकृतिक वस्तुएँ किस प्रकार टिकी हुई हैं, आदि विषयोंपर उनके विचार मनन करने योग्य हैं। उनका कहना है कि 'प्रेम ही सारे संसारपर छाया हुआ है। यदि प्रेम न होता, तो संसार स्थिर न रह सकता। [illegible] प्राकृतिक वस्तुएँ आपसके आकर्षणके कारण ही

नष्ट किए जानेसे पूर्व बलिकपापान ( बोर्नियो ) के त[illegible]

( जो प्रेमके सिवा और कुछ नहीं ) स्थिर हैं। मनुष्यका आदर्श प्रेम है। उसको प्रेमके हाथों बिक जाना चाहिए। मानव-जीवनका सौन्दर्य प्रेम है। इस संसारमें जो कुछ भी है, उसमें प्रेम ही प्रतिबिम्बित है। प्रेमके बिना जीवन असम्भव है।'

अपने पिताकी इस शिक्षाका बालक मीर तक़ीपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। मीर तक़ीने जिस प्रेमका पाठ पढ़ा था, वह न तो बाज़ारी था और न मानवीय। यह वह प्रेम था, जिसने मंसूरसे 'अहं ब्रह्मास्मि' (अनलहक़) कहलाया, नानकसे 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' कहलवाया और फरहादको फावड़ा मारकर अपनी जीवन-लीला समाप्त करनेपर मजबूर किया। यह वह प्रेम था, जिसने मानवको, उसके अस्तित्वका बोध कराकर, अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए सब कुछ निछावर करनेकी शिक्षा दी। प्रेम और उसके तत्त्वोंका बोध होते ही मनुष्य सांसारिक मायाजालसे सदैव अपना सर ऊँचा उठाए रखता है। मीर तक़ीका शिक्षण-कार्य भी एक भक्तको ही सौंपा गया। सैयद अमानउल्ला भक्तप्रवर थे, इसलिए मीर तक़ीमें प्रारम्भसे ही फ़क़ीरीकी भावना पैदा हो गई। सैयद साहबकी बदौलत मीर साहबको बहुत-से पहुँचे हुए फ़क़ीरोंसे मिलने और उनकी बातें सुननेका मौक़ा मिला।

दस वर्षकी अवस्थामें मीर तक़ीके पिताका देहान्त हो गया, अतएव उन्हें नौकरीकी खोजमें बाहर निकलकर बड़ी मुसीबत भोगनी पड़ी। मीर तक़ी इस हालतका ज़िक्र इस तरह करते हैं :—

> ज़माने ने रक्खा मुझे मुत्तसिल ;
> परागन्दा रोज़ी परागन्दा दिल।
> चला अकबराबाद से जिस घड़ी ;
> दरोबाम पर चश्मे हसरत पड़ी।
> ज़िगर जौरे गर्दूं से ख़ूँ हो गया ;
> मुझे रुकते - रुकते जुनूँ हो गया।

वे दिल्लीमें जब तक रहे, जीविकाका कोई स्थायी प्रबन्ध न हो पाया। आज घरमें क़ाफ़ी अनाज है, तो कल रोटियोंके लाले पड़े हुए हैं। कभी-कभी तो फ़ाक़ेकी भी नौबत आ गई। ऐसी कठिनाईसे दिन कटे कि शत्रुके भी न कटें। संसारसे ऊबकर वे लिखते हैं :—

> न मिल मीर अबके अमीरों से तू ;
> हुए हैं फ़क़ीर इनकी दौलत से हम।

दिल्लीकी बरबादी, सगे-सम्बन्धियों और कुटुम्बोंका विनाश, विप्लव और क्रान्ति तथा जाटों और दुर्रानियोंकी लूट-मार उन्होंने अपनी आँखोंसे देखी और लेखनीसे लिखी :—

> दिल्लीमें आज भीख भी मिलती नहीं उन्हें ;
> था कल तलक दिमाग़ जिन्हें तख़्तो-ताजका।

मीर तक़ी साठ वर्षकी अवस्थामें दिल्ली छोड़कर लखनऊ आए। यह नवाब आसफ़ुद्दौलाका ज़माना था। उन्होंने नवाब साहबकी तारीफ़में 'क़सीदा' लिखकर पेश किया, जिसमें अपनी मुसीबत और दिल्ली छोड़नेका भी पूरा हाल था। नवाबने उसी दिन उन्हें एक चड़कीली-भड़कीली पोशाक ( ख़िलअत ) दी और मासिक वेतन भी नियत कर दिया। मौलाना आज़ादने अपनी पुस्तक 'आबेहयात'में मीर साहबके लखनऊ रहनेका विस्तृत वर्णन किया है और यह भी लिखा है कि वे बड़े बददिमाग़ थे। परन्तु यह बात ठीक नहीं जँचती। मीर तक़ीमें स्वाभिमान बहुत था, और इसीलिए वे अमीरों और रईसोंकी परवाह न करते थे। रुपयोंको तो वे हाथका मैल समझते थे :—

> हो कोई बादशाह कोई याँ वज़ीर हो ;
> अपनी बलासे बैठ रहें जब फ़क़ीर हो।
> आगे किसूके क्या करें दस्ते तमादराज़ ;
> वह हाथ सो गया है सरहाने धरे-धरे।

उपर्युक्त पंक्तियाँ मीर साहबकी प्रकृतिकी पूरी परिचायिका हैं। उन्होंने आजीवन किसी रईसके सामने हाथ नहीं फैलाया। मुसीबतसे ज़िन्दगी काटी, फ़ाके किए ; पर किसीसे याचना नहीं की। हाँ, वे नाज़ुक-मिज़ाज़ ज़रूर थे। ज़रा-सी बातसे ही उनके कवि-हृदयको ठेस लग जाती थी। फिर वे इस बातकी चिन्ता न करते कि कल क्या खायँगे।

मीर साहबने उर्दू-साहित्यकी बड़ी सेवा की। उन्होंने फ़ारसी मुहाविरोंको या उनके तर्जुमोंको उर्दूमें स्थान दिया। यों तो और लोगोंने भी फ़ारसी मुहाविरे लिखे हैं ; परन्तु मीर साहबने उन मुहाविरोंके आगे या पीछे एक-आध ऐसा शब्द प्रयोग कर दिया है, जिससे [illegible] निरपराध [illegible] चार चाँद लग [illegible] है।' निरपराध शब्द सुनते [illegible] [illegible] देहमें बिजली-सी दौड़ गई। उसका चेहरा लाल हो गया। वह अपने अन्दर ही जैसे किसीसे युद्ध
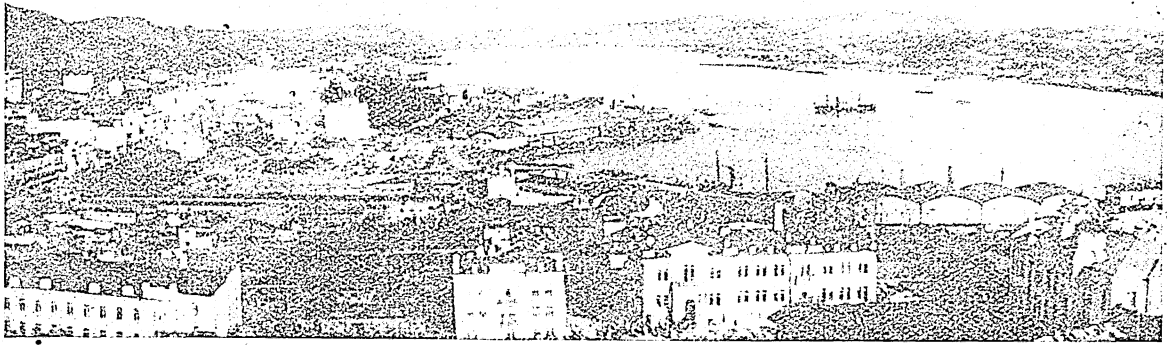
रूसके उत्तर-पूर्वका प्रसिद्ध बन्दरगाह व्लाडीवास्टक, जिसपर जापानियोंकी आँख लगी है।
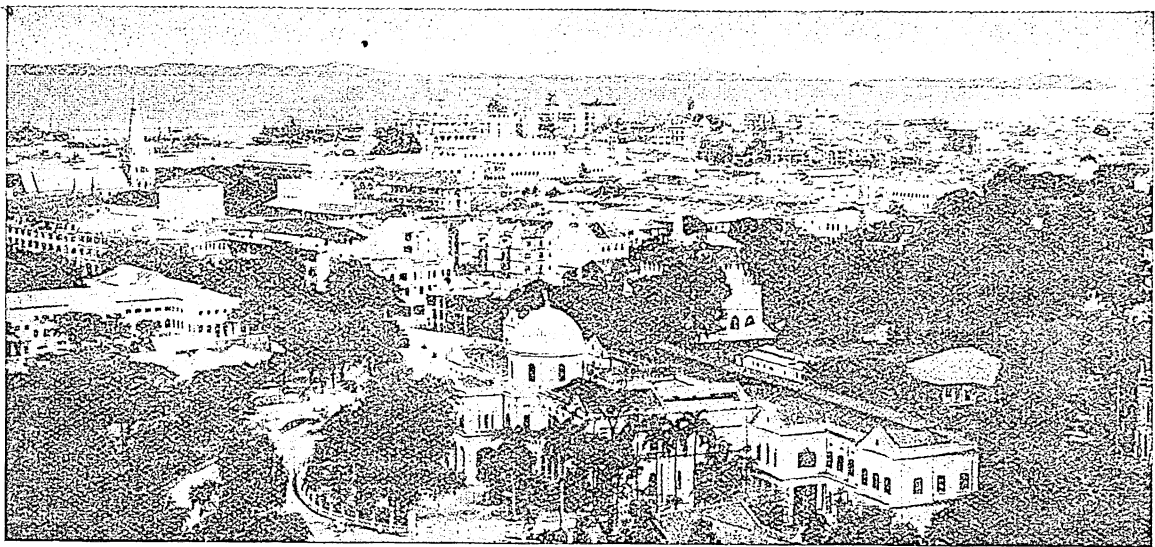
जापानी बमोंसे नष्ट-भ्रष्ट होनेसे पूर्व सिंगापुर नगरका एक दृश्य।
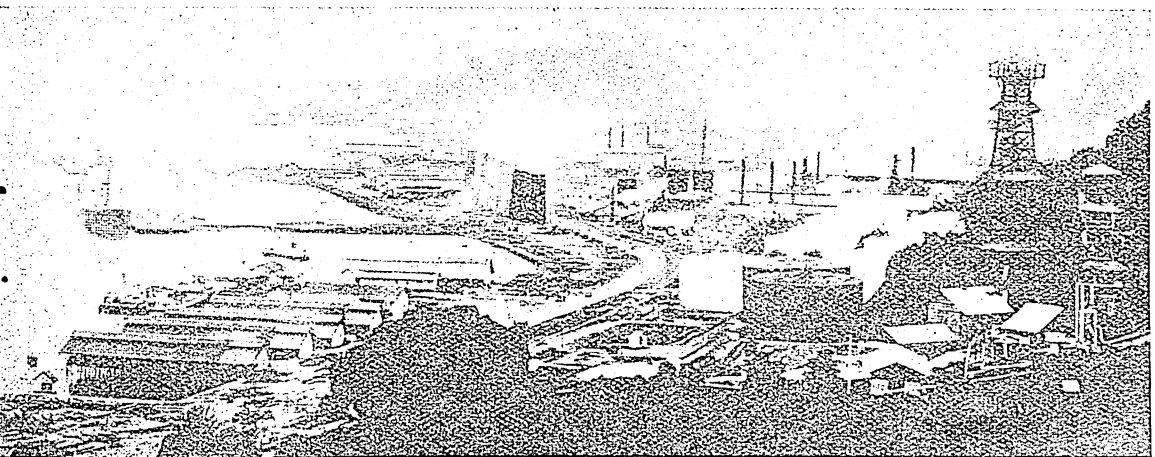
नष्ट किए जानेसे पूर्व बलिकपापान ( बोर्नियो ) के तेल-क्षेत्रका एक दृश्य।
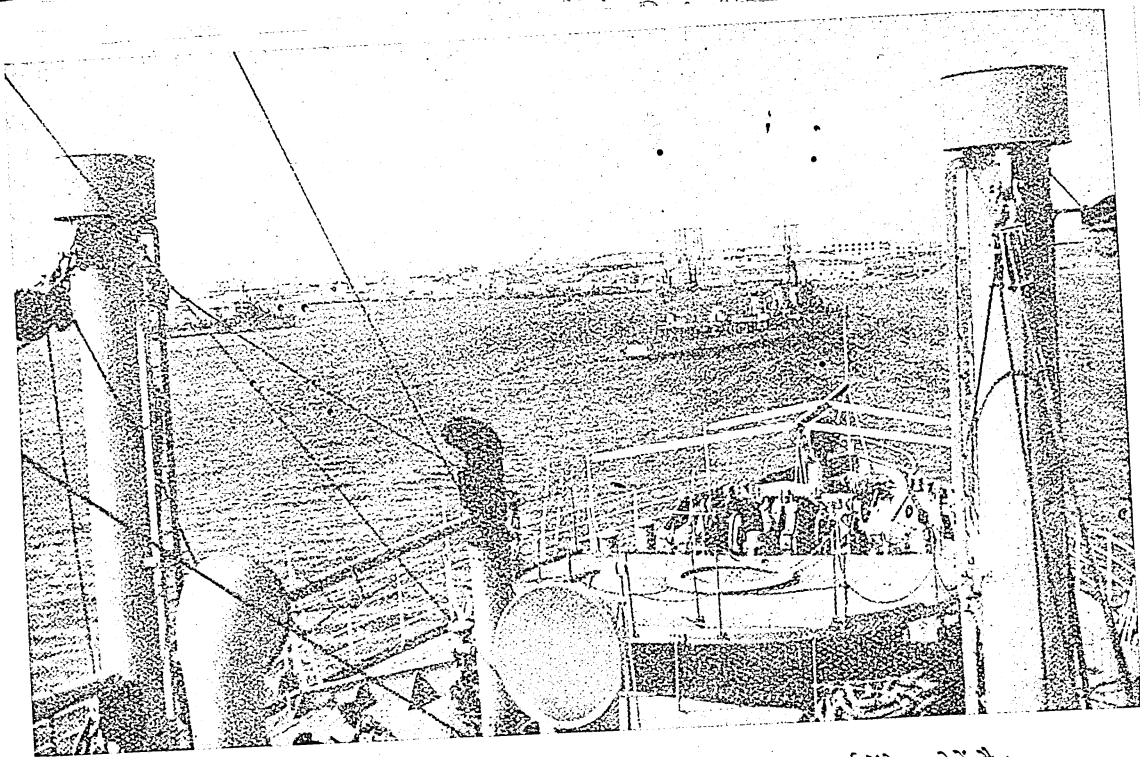
रूम-सागरके तटपर बसा उत्तरी अफ्रिकाका प्रसिद्ध बन्दरगाह तोब्रुक, जो अब जर्मनोंके कब्जेमें है ।
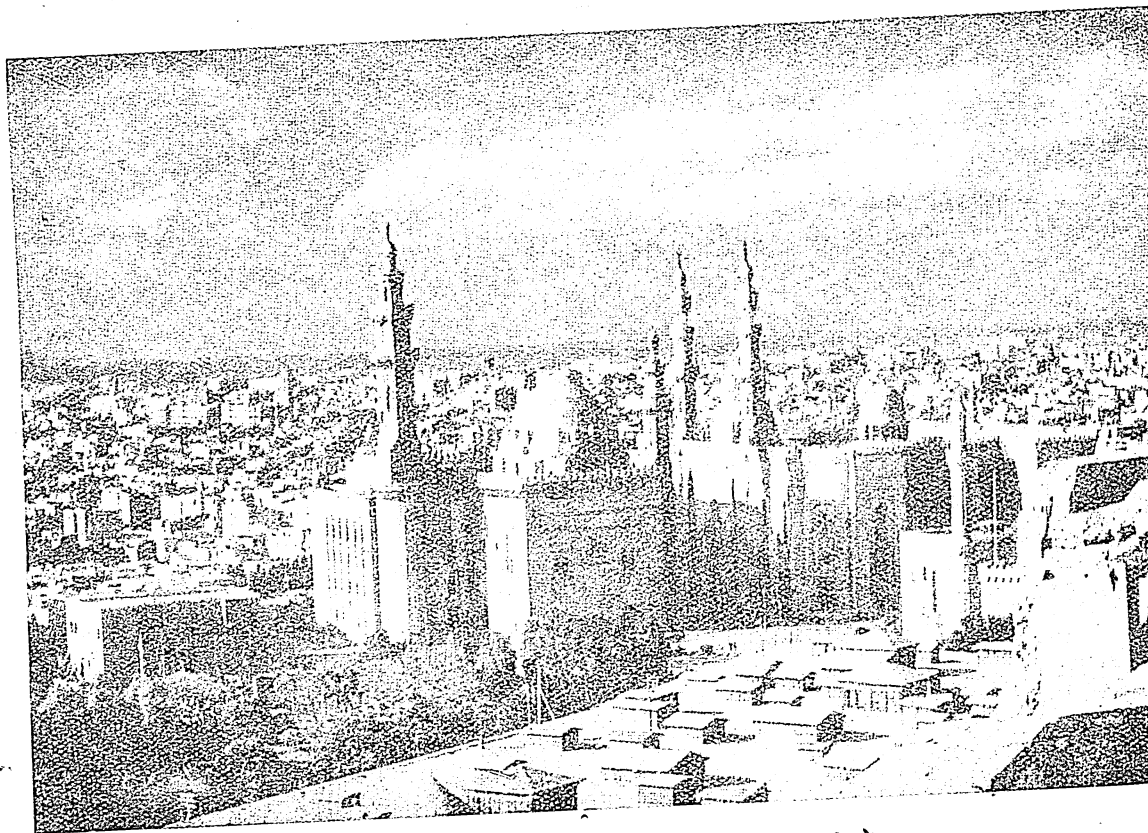
मिस्रकी राजधानी काहिरो, जहाँ युद्धके बादल मँडराने लगे हैं ।

'ख़ुदाके घरसे' या 'ख़ुदाके यहाँसे फिरके आना' मुहाविरा है ; परन्तु 'काबे' शब्दके प्रयोगने शेरके सौन्दर्यको बहुत कुछ बढ़ा दिया है। मीर साहब शब्दोंका चुनाव बड़ी योग्यतासे करते थे। कहीं-कहीं उनके एक-दो शब्द बड़ी लम्बी-चौड़ी इबारतोंका मतलब अदा कर जाते हैं :—

रफ़ीक़ों से देखी बहुत कोतही ;
ग़रीबी ने एक उम्रकी हमरही।

उपर्युक्त शेरमें 'एक उम्र'ने मीर साहबके जीवन भरके संकटोंका चित्र खींच दिया है। उनकी शायरीमें छोटे छोटे शब्द प्रयुक्त हुए हैं ; परन्तु वे गम्भीर अर्थोंके बोधक हैं :—

कहा मैंने कितना है गुलका सवात ;
यह सुनकर कलीने तबस्सुम किया।

—मैंने पूछा कि फूलका जीवन या उसकी स्थिरता कितनी देर तक है ? मेरा यह सवाल सुनकर कली केवल मुस्करा दी। कलीके ओठोंपर नाचनेवाली इस मुस्कराहटमें फूलके जीवन-कालका सम्मिलित होना कितने गूढ़ भावका व्यंजक है।

कुछ कवियोंने लिखा है कि ईश्वरकी दया असीम है और मनुष्यके पाप ससीम हैं। इसी बातको मीर साहबसे सुनिए। देखिए, वे किस अनोखे ढंगसे इसे कहते हैं :—

बिन पूछे करमसे वह जो बख़्श न देता-तो ;
पुरशिश में हमारी ही दिन हश्रका ढल जाता।

—मुसलमानोंके धार्मिक विचारके अनुसार जब क़यामत होगी, तब सब आत्माएँ न्यायकारी परमात्माके सामने आयँगी और सबको कर्मानुसार फल मिलेगा। मीर साहब कहते हैं कि उस क़यामतके दिन ईश्वर मेरी आत्मासे कुछ भी नहीं पूछेगा और बिना पूछे ही मुझे मुक्त कर देगा। अगर वह ऐसा न करेगा, तो मेरे पास इतने अधिक हैं कि उन्हींकी पूछ-ताछमें क़यामतका सारा दिन समाप्त हो जायगा और दूसरी आत्माओंका नम्बर ही न आ पायगा।

जहाँ तक मानव-प्रकृतिका प्रश्न है, उर्दू-कवियोंमें मीर अनीस और मीर तक़ीके समान कोई नहीं हुआ। कविताके तीनों अंगों—प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन, हृद्गत अनुभूतियोंका चित्रण और कल्पना-जगत्में विचरण—में ही मीर बेजोड़ हैं। मीर साहबने सौ बरसकी उम्र पाई थी, इसलिए उनकी रचनाएँ भी अधिक हैं। उनकी रचनाओंमें छः बड़े-बड़े दीवान (ग़ज़लोंके), एक फ़ारसीका दीवान, कई मसनवियाँ, उर्दू कवियोंके जीवन-वृत्तान्त आदि हैं। मीर साहबकी प्रसिद्धि अधिकतर उनकी ग़ज़लोंके कारण है। ग़ज़ल वह पद्य है, जिसमें जवानीकी उमंगों, सौन्दर्य और प्रेमका वर्णन होता है। प्रकृतिने स्त्री और पुरुषके बीच प्रेमका नाता स्थिर किया है। इसलिए प्रेम-सम्बन्धी उद्गारोंको व्यक्त करनेका ग़ज़लसे अच्छा कोई और साधन नहीं है। प्रेम ही संसारमें टिकाऊ वस्तु है। इसलिए उर्दू-कवियोंने प्रेमके पर्देमें अपनी उमंगोंको उभारकर संसार सम्बन्धी दूषित वायुमंडलसे बचने और उससे निर्लिप्त रहनेकी शिक्षा दी है।

अच्छी ग़ज़लें लिखनेके लिए आवश्यक है कि लेखकके दिलपर विरक्तिकी घटाएँ छाई रहें, उसकी भावनाएँ जन-साधारणकी अपेक्षा अधिक और जल्दी उमड़नेवाली हों, उसकी सहानुभूति संसारके समस्त प्राणियोंके साथ हो, उसमें चापलूसी और ख़ुशामद बिल्कुल न हो और वह संकुचित धार्मिक बन्धनोंसे मुक्त हो। मीर साहबमें ये सारी बातें मौजूद थीं। उनका हृदय विशाल और मानव-संवेदनासे ओतप्रोत था। उनकी कल्पना-शक्ति असीमको भी पार करनेका प्रयत्न करती थी और उसको ससीम बनाकर शब्दोंकी पोशाक पहनाती थी, इसलिए उनकी ग़ज़लोंमें सच्चे प्रेमकी झाँकी मिलती है। वे संसारमें एक चेतन परब्रह्म परमात्माकी व्याप्ति पाते हैं। उसकी झलक उनके जीवनको आगे बढ़ाने और कविताको सफल बनानेमें सहायक होती है। उन्होंने कविता-कामिनीकी अलकोंको तरह तरहसे सँवारा और उसको वह वेश-भूषा प्रदान की, जिससे उसकी आभा और शोभा दर्शनीय एवं मनोमोहक बन गई। संक्षेपमें मीर साहब उर्दू-भाषाके सर्वश्रेष्ठ कवि और आचार्य थे। उनके पद्य साफ़, सादे, तीर और नश्तरका काम देनेवाले तथा दर्द और असरसे भरे हुए हैं। उनमें वह प्रभाव है, जो जादू या चमत्कारमें होता है। वे उर्दूके शेख़सादी हैं। लोगोंने उनके जीवनमें ही उन्हें उस्ताद मान लिया था। बड़े-बड़े कवियोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ग़ालिब लिखते हैं :—

रेख़तेके तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब ;
सुनते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था।

२३-ए, चुन्नीगंज, कानपुर ]

# अर्थका अनर्थ

श्री हरिशंकर शर्मा

ब्रजभाषामें हमारा काव्य-साहित्य भरा पड़ा है। ब्रज-माधुरीसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। जो लोग ब्रजभाषाके विशेष समर्थक नहीं, वे भी उसमें एक विशेष प्रकारका माधुर्य मानते हैं। भारतीय ही नहीं, विदेशी विद्वानों तकने ब्रजभाषाकी महत्ता और श्रेष्ठता स्वीकार की है। यह ठीक है कि ब्रजभाषा गद्यकी भाषा नहीं रही और न इस दिशामें उसका उपयोग ही किया जा सकता है। परन्तु उसमें कविता अब भी बड़ी सफलतासे लिखी जा रही और बराबर लिखी जाती रहेगी। कुछ लोग ब्रजभाषासे बुरी तरह नाराज़ हैं, वे उसे एक आँख भी नहीं देख सकते। परन्तु जिन लाखों लोगोंको यह भाषा घुटीके साथ पिलाई जाती है, वे उसकी अवमानना कैसे कर सकते हैं ? जाननेवाले जानते हैं कि अलीगढ़से लेकर इटावा तक घर-घरमें ब्रजभाषाकी विमल धारा आज भी उसी स्वाभाविकता और सुन्दरतासे प्रवाहित हो रही है। ऐसे भी लाखों लोग हैं, जो ब्रजभाषी न होकर भी ब्रजभाषा-साहित्यसे अनन्य अनुराग रखते हैं और उसे बड़े चावसे पढ़ते हैं। अभिप्राय यह है कि ब्रजभाषा वह भाषा है, जिसमें साहित्य है और जो अपनी उत्कृष्टताके कारण सदैव बड़ी रुचिसे पढ़ी जाती रहेगी। हमें हर्ष है कि मथुराका ब्रज-साहित्य-मंडल ब्रजभाषा-विस्तारके लिए प्रशंसनीय प्रयत्न कर रहा है। साथ ही हमें दुःख है कि कुछ कोष-कारोंने अपने कोषोंमें ब्रजभाषाके शब्दोंका अर्थ तो नहीं किया ; परन्तु उनका 'अनर्थ' अवश्य कर डाला है। विश्वनाथपुरी काशीमें निर्मित एक विशाल हिन्दी-कोषमें ब्रजभाषाके साधारण शब्दोंका भी अनर्थ देखकर हमारे खेदकी सीमा नहीं रही। हम इस कोषके कुछ ही पन्ने पलट पाए थे कि उसमें ब्रजभाषाके नीचे लिखे शब्द दिखाई दिए। आप ज़रा गौरसे पढ़िए और बताइए कि इस सम्बन्धमें हमारी शिकायत कहाँ तक उचित है :—

सिहाना=ईर्ष्या करना, डाह करना, मुग्ध होना। [ब्रजमें सिहाना मन ही मन प्रसन्न होनेको कहते हैं।]

सिरकटा=जिसका सिर कटा हो, अनिष्ट चाहनेवाला। [ब्रजमें सिरकटाका अर्थ गीदड़, स्यार या शृगाल होता है।]

बगदना=बिगड़ना, ख़राब होना, भ्रम पड़ना। [ब्रज-भाषामें बगदना वापस आने या लौट आनेको कहते हैं।]

पाँसना=खेतमें खाद देना। [ब्रजमें पाँसना गाय, भैंस, बकरी आदिकी उस अवस्थाको कहते हैं, जब दुहनेके समय उनको थनोंमें दूध आ जाता है।]

नदना=पशुओंका शब्द करना—रँभाना। [ब्रजमें नदना शब्द निभनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है।]

कलिहारी=एक पौधा, जिसकी जड़में विष होता है। [ब्रजमें कलिहारी कलह करनेवाली—लड़नेवाली—स्त्रीको कहते हैं।]

लौनी=मक्खन। [मक्खन कच्चे दूधसे निकाला जाता है और लौनी दहीसे तैयार होती है।]

खोर=सँकरी गली, कूचा, नाद। [ब्रजमें खोर उस दुहरे कपड़ेको कहते हैं, जिसमें गोट नहीं लगाई जाती। भूत-प्रेतके आक्रमणको भी ख़ोरके नामसे पुकारते हैं।]

चाँटा=बड़ी च्यूँटी, चिउँटा। [ब्रजमें चाँटा थप्पड़को कहते हैं, जो तड़ाकसे चेहरेपर लगाया जाता है।]

ऊपर ब्रजभाषाके पाँच-सात शब्द हैं, जो घर-घरमें आम तौरसे बोले जाते हैं। अगर कोषकार महाशय ब्रजके किसी बेपढ़े गँवारसे भी उनके अर्थ पूछ लेते, तो वे इस 'अनर्थ'से बच जाते। हमने केवल नमूनेके तौरपर कुछ शब्द दिए हैं। आवश्यकता होनेपर उस 'परम प्रामाणिक' बृहत् कोषसे ब्रजभाषाके ऐसे सैकड़ों शब्द पेश किए जा सकते हैं, जिनके साथ घोर अन्याय हुआ है और जो ब्रज-साहित्यके समझने-समझानेमें सदैव भयंकर भ्रान्ति पैदा करते रहेंगे। इससे तो यह अच्छा होता कि उपर्युक्त 'परम प्रामाणिक' बृहत् कोषमें ब्रजभाषाका कोई शब्द दिया ही न जाता। ग़लत अर्थ देनेकी अपेक्षा किसी शब्दको यों ही छोड़ देना अधिक अच्छा है। क्या कोषके निर्माता या विधाता महोदय इस प्रकारकी भद्दी भूलोंके लिए कोई समाधान पेश कर सकते हैं ? हमें भय है कि ब्रजभाषा शब्दोंके साथ जिस कोषकी पदे-पदे अज्ञता अथवा अल्पज्ञता प्रकट हो रही हो, वह विद्वानोंमें कैसे आदरणीय हो सकेगा ?

लोहामंडी, आगरा ]

# भारतीय धनिकोंसे

श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी

'हमेशा आगे बढ़ते रहने और विश्वास करनेसे कठिनाई दूर हो जाती है और दिखाई देनेवाली असम्भवता नष्ट हो जाती है।' —जैरमी कोलियर

कुछ दिन हुए सेवाग्राममें एक ज़मींदार साहब आए थे। टहलते समय उन्होंने गांधीजीसे पूछा—'बापूजी, यह तूफ़ान जो आया है, बड़ी भयानक तेज़ीसे बढ़ रहा है। इससे दुनियाका जो संहार हो रहा है, उससे कैसे बचा जा सकता है? यह भी देखा जा रहा है कि पूँजीपतियोंपर आपत्ति आ रही है। ऐसे मौक़ेपर हम सबका क्या फ़र्ज़ है?'

गांधीजीने मुस्कराते हुए कहा—'दुनियामें जो इतना पाप बढ़ गया था, उसीका नतीजा तो यह सामने आया है।' फिर गम्भीर होकर कहने लगे—'मैं तो जानता था कि यह प्रलयंकारी तूफ़ान आनेवाला है। तभी तो मैं अपने देशवासी पूँजीपतियोंसे बार-बार कहता आया हूँ कि अपनी दौलतका त्याग करके तुम उसका भोग करो। मैं तो यह नहीं कह सकता कि करोड़ों कमाना बन्द कर दो। हाँ, ख़ुशीसे कमाओ; लेकिन यह समझ लो कि वह करोड़ों तुम्हारा नहीं, बल्कि आम जनताका है। उस धनपर सारी दुनियाका अधिकार है। हमें तो अपनी सच्ची ज़रूरतों-भरके लिए ही उसमें से थोड़ा-सा ख़र्च करनेका अधिकार है। बाक़ी सारे धनका उपयोग समाजके लिए ही करना है। मैं वर्षोंसे यह कहता आया हूँ; लेकिन मेरी कौन सुनता है? शान्तिके समय तो किसीने मेरी बातोंपर अमल नहीं किया; पर आज भी उनपर अमल करके वे चाहें, तो अपनी ज़िन्दगी बचा सकते हैं और अपने धनका अनुकरणीय आदर्श दुनियाके सामने रख सकते हैं। पर मालूम होता है, इस अन्तिम मौक़ेको भी लोग भूल जानेकी कोशिश कर रहे हैं। यदि आज संकटके समय भी धनिकोंने वही पुराना रवैया अख़्तियार किया, तो वे दुनियामें, अपने धनके लालचके कारण, गुलाम बनकर नष्ट हो जायँगे। उन्हें कोई शक्ति बचा नहीं सकती।

'मैं यह मानता हूँ कि जो करोड़ों भूखे नंगे हैं, वे मौक़ा पाते ही भयंकर उपद्रव मचा देंगे। पर इस सबके प्रतिकारके लिए सबसे अच्छा तरीक़ा तो यही है कि धनिक जनताके सच्चे ट्रस्टी बन जायँ। लेकिन मेरे ट्रस्टीशिपमें एक व्यक्तिको २५-३० रुपएसे अधिक ख़र्च करनेका अधिकार नहीं होगा और सबको समान मेहनतका काम करना होगा। आज तो मैं देखता हूँ कि वे लोग २५-३० रुपएकी कौन कहे, सैकड़ों रुपया कुत्ते पालने आदिमें ख़र्च करते हैं। यह मुझसे सहन नहीं होता। लेकिन मैं करूँ भी तो क्या? मेरी शक्ति तो बहुत परिमित है। उसीका नतीजा हमारे सामने प्रलयके रूपमें आया है। आज भी मौक़ा है, सारी चीज़ें जनताकी बना दी जायँ। वह अपनी चीज़ोंकी रक्षा कर लेगी। असली चीज़ है आगे बढ़नेकी। यदि सब साथ मिलकर नहीं करते हैं, तो एकको ही आगे बढ़कर उदाहरण रखना चाहिए। फिर तो उसीकी राहपर सब चलनेकी कोशिश करेंगे। आत्म-विश्वाससे काम करना होगा। सुखको छोड़ देना होगा। जो आप आजकी सब चीज़ोंमें सुख मानते हैं, वही दुःखका कारण बन रहा है। असली सुख तो जनताकी सेवामें सब कुछ कृष्णार्पण कर देना है। ऐसा करनेसे आप भी सुखी रहेंगे, आपके बच्चे भी और पास-पड़ोसकी जनता भी अमन चैनसे रहेगी।'

आजकल समाचारपत्रोंको पढ़नेसे विदित होता है कि मलाया, सिंगापुर और रंगूनमें पूँजीपतियोंको भयानक विपत्तिमें पड़ना पड़ा है। वहाँकी हालत सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जो कल करोड़पति थे, वे आज भिखारी बने घूम रहे हैं। उनके कहीं रहने और खाने-पीने तककी व्यवस्था नहीं है। कल जो गुलछर्रे उड़ाते थे, वे ही आज दाना-पानीके लिए भी मुहताज हैं। ऐसा क्यों? क्या कभी उन लोगोंने ऐसे भविष्यकी कल्पना की थी? ग़रीब जनता उनके दुःखोंको आज उतना महसूस नहीं कर रही है, जितना अपने सहयोगियोंके दुःखोंको। आज उन लाखों-करोड़ोंकी सच्ची सहानुभूति उनके साथ नहीं। कल तक उनके पास बड़ी-बड़ी मिलें

थीं; पर वे आज ख़ाकमें मिल गई हैं। आख़िर क्या कभी उन्होंने इस सम्बन्धमें कुछ सोचा था? असलमें जनताकी छीनी हुई रोटियोंका यह पाप भुगतना पड़ा है। यदि ये चीज़ें जनताकी होतीं, तो ऐसी मुसीबतोंका मौक़ा ही नहीं आता। यदि गांधीजीकी बातोंपर अमल किया गया होता, तो उन्हें आज ये मुसीबतोंके दिन न देखने पड़ते। जो घटनाएँ सिंगापुर, रंगून और बर्मामें देखी गई हैं, वे ही शायद कुछ दिनोंके बाद हमारे देशमें भी घटें, तो कुछ आश्चर्य नहीं। फिर क्या उन भूलोंसे यहाँके धनिक कुछ नसीहत नहीं लेंगे? क्या वे गांधीजीकी सलाह मानकर अपनी ज़िन्दगीकी रक्षा नहीं करना चाहते? उनके लिए आज भी मौक़ा है कि वे अपनी तिजोरियोंकोज नताके सच्चे प्रतिनिधियोंके हाथोंमें सौंपकर मज़ेकी नींद सो सकते हैं। यदि समय रहते गांधीजीकी अमूल्य सलाहपर अमल नहीं किया गया, तो सम्भव है कि आनेवाले भयानक उपद्रवमें उनका कोई नामलेवा भी न रहे। अकेले धनके बलपर कुछ होनेका नहीं। असली धन तो है जनताकी सहानुभूतिको हासिल करना। जिसे आप-हम सुनकर अनसुनी कर देते हैं, उसे सुनकर गांधीजी कहते हैं—'मैं एक आवाज़ सुन रहा हूँ, और वह मुझसे कह रही है, ठहरो मत, जो कुछ करना है, जल्दी कर लो। समय अमूल्य है।'

भारतीय धनिक वर्गके लिए अपनी सम्पत्तिके सदुपयोगका शायद यह बहुत ही अलभ्य और सुवर्ण अवसर है। यह समय उसके लिए मुनाफ़ेके मायाजालमें फँसकर अपने ही देशके पीड़ित और त्रस्त लोगोंको चूसनेका नहीं है; बल्कि आज तो वह अपने धनका सबसे श्रेष्ठ सदुपयोग कर सकता है ज़रूरतमन्द लोगोंको उनकी आवश्यकताकी चीज़ें सुलभ्याकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करके और उन्हें देशकी रक्षाके लिए तत्पर रखकर। यदि अपने इस आवश्यक कर्त्तव्य पालनसे वह चूक गया, तो उसकी स्थिति भी उस लालची कुत्तेकी-सी ही होगी, जिसने पानीमें अपने मुँहकी रोटीकी छाया देखकर उसे प्राप्त करनेके लिए पानीमें छलाँग लगाई और इस प्रकार न केवल अपने मुँहकी रोटी ही खोई, बल्कि अपनी जान भी गँवाई। क्या हम आशा करें कि भारतका धनिक व्यापारी-वर्ग समयकी पुकारको सुनेगा और देश तथा देशवासियोंके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करेगा?

सेवाग्राम, वर्धा ]

---

# फ़िन्नी सैनिक इतने सहिष्णु क्यों हैं?

**सर वाल्टर सिट्राइन**

[ जनवरी सन् १९४० में ब्रिटिश मज़दूर-दलकी ओरसे एक मिशन फ़िनलैण्ड इसलिए गया था कि वह वहाँ जाकर देखे कि रूसी बम-वर्षक वायुयानोंसे कितनी हानि हुई है। मिशनने फ़िनलैण्डमें जाकर देखा कि रूसियोंने अन्तर्राष्ट्रीय समझौतेके खिलाफ़ फ़िन्नी लोगोंपर फटनेवाली गोलियाँ चलाईं और निहत्थे शहरियोंको भी नहीं बख्शा। सर वाल्टर मिशनके एक प्रसिद्ध सदस्य थे। उन्होंने वहाँ अपनी दैनिक डायरी लिखी थी, जो पैंगुइन-पुस्तकमालामें 'मेरी फिनिश डायरी' ('My Finnish Diary') नामसे छपी है। मिशनको जो मोटर मिली थी, उसके ड्राइवर एक कालेजके प्रोफ़ेसर थे, जो एक यूनियनके प्रधान भी थे। २४ जनवरीकी डायरीका एक अवतरण यहाँ दिया जाता है। —सं० ]

प्रोफ़ेसरने कहा—'फ़िन्नी लोग सब प्रकारके खेलोंके बड़े शौक़ीन हैं—विशेषकर बर्फ़के खेलोंके। कठिन काम करनेके वे अभ्यस्त हैं और बड़े सहिष्णु हैं। पर सबसे अधिक फ़िनलैण्डमें जादूका-सा काम किया है दूधने, [ स्मरण रहे, फ़िनलैण्डमें गायका दूध होता है। —सं० ] जिसके कारण रूसी सेनाओंके आक्रमणोंको सहनेकी शक्ति उनमें है। मैं सैनिकोंकी ख़ुराकके बारेमें ज़िम्मेदार हूँ, और प्रत्येक फ़िन्नी सिपाहीको एक लिटर (लगभग तीन पाव) दूध प्रतिदिन दिया जाता है।'

प्रोफ़ेसर फान वेन्तको इस बातका विश्वास है कि बिना दूधके फ़िनलैण्डमें अपेक्षाकृत बहुत बीमारियाँ फैलेंगी—विशेषकर जाड़ेके दिनोंमें।

# प्रत्यावर्त्तन

श्री कुमारलाल दासगुप्त

आधे फागुनमें आमके पेड़ोंमें मंजरी खिली है। उसकी मृदु गन्धसे वातास भर गया है। पलाशके फूलोंने खिलकर वनको लाल कर दिया है। दृष्टिके अन्तरालमें जैसे किसीके लिए एक अपूर्व आयोजन चल रहा है। नूतन पत्तोंमें, फूलकी गन्धमें, कोकिलकी कुहुकमें और हवाकी तेज़ीमें उसीका कुछ-कुछ आभास मिल रहा है। ऐसे ही समयमें एक दिन बाँधके ऊपर चरते-चरते सरयू धोबीके गधेका मन हठात् अत्यन्त खिन्न हो उठा। घासपर से मुँह उठाकर वह सोचने लगा कि रहस्य और आनन्दमय यह पृथिवी कितनी बड़ी और कितनी मुक्त है! वह भी तो इस आनन्द, इस मुक्तिके अंशका दावा कर सकता है। तब फिर क्यों वह बिलकुल बन्दी-जीवन यापन कर रहा है? छोटा-सा गाँव और उससे भी छोटे धोबीके इस आँगनमें ही क्या उसके जीवनका सारा बहुमूल्य समय बीत जायगा? यह सोचते-सोचते गधेका मन विद्रोही हो उठा।

सरयू धोबीका गधा चिर-दिन ही भाव-प्रवण रहा है। एक ग्रास खाद्य और ज़रा-से आश्रयके लिए अत्यन्त हीन तरीक़ेसे दैहिक परिश्रम उसे किसी दिन भी अच्छा नहीं लगा। उसके चारों ओरके जीव भी हृदयहीन और बेदर्दी हैं, इसे भी वह अच्छी तरह जानता है। यदि पेड़पर कोयल कुहुक रही थी। गधा उसे मुग्ध होकर सुनने लगा। किसी दिन हृदयकी अपूर्व भाव-राशि संगीत बनकर उसके कण्ठसे निर्गत हुई है, तो उसके लिए उसे जो लांछना भोगनी पड़ी है, वह कल्पनातीत है। उसका विश्वास है कि उसका वास्तविक स्थान इस नीरस वातावरणमें न होकर कहीं और है।

- २ -

पेड़पर कोयल कुहुक रही थी, उसे गधा मुग्ध होकर सुनने लगा। सुनते-सुनते वह आनन्द-विभोर हो गया। एकाएक किसीकी कर्कश आवाज़से उसका ध्यान भंग हुआ और देखा कि स्वयं सरयू माथेपर कपड़ोंकी एक बड़ी गठरी रखे गन्दी भाषामें उसे सम्बोधन करते हुए बाँधपर

से चला आ रहा है। गधेने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। सरयूने आकर कपड़ोंकी गठरी उसकी पीठपर लाद दी और पेटमें डण्डेसे आघात करते हुए कहा—'चल हरामज़ादे!' गधा चल पड़ा, किन्तु आत्म-ग्लानिवश उसकी आँखोंसे क्षोभके आँसू निकल पड़े। आधे फागुनमें आमके पेड़ोंमें इतनी मंजरियाँ लगी हैं, वनमें पलाशके इतने फूल प्रस्फुटित हुए हैं, कोकिल इतनी कुहुक रही है, इन सबके बीच यह कैसा असुन्दर व्यापार, यह कैसी भयानक गद्यमय घटना!

चलते-चलते एक छोटी-सी पहाड़ी नदी आई। उसमें आधा पानी था और आधी बालू। उसके तटपर आकर सरयूने गधेकी पीठपर से कपड़ोंकी गठरी उतारी। इसी स्थानपर वह रोज़ कपड़े धोता है। छुट्टी पाकर गधा धीरे-धीरे पाँव बढ़ाता हुआ आगे चला। नदीकी धार उसे बड़ी अच्छी लगी। प्रतिदिन कितने ही क्षण उसे यहाँ एकाकी काटने पड़ते हैं। नदीके कँकरीले किनारेपर घासका कहीं नामोनिशान तक नहीं है। खोज-ढूँढ़कर घासके जो दो-चार कल्ले मिल जाते हैं, उन्हें ही चबा-चबाकर गधा कितनी ही देर तक परमानन्दसे भोजन करता रहता है। आज घास चरनेमें भी उसकी रुचि नहीं है। इसीसे पासके एक महुएके पेड़के नीचे जाकर वह चुपचाप खड़ा रहा। प्रतिदिन गर्दन नीची करके वह घास चरता और उसकी दृष्टि ज़मीनपर ही जमी रहती; किन्तु आज गर्दन ऊँची करके खड़ा होनेसे देखते-देखते उसकी दृष्टि नदीके उस पार गई। गधा मन ही मन विस्मयसे कहने लगा—'अहा, कैसा सुन्दर दृश्य है!' नदीके उस पार कँकरीला मैदान बहुत दूर तक टेढ़ा-मेढ़ा होता हुआ चला गया है। उसके बाद हरा-भरा शालवन है और शालवनके पीछे धूसर पहाड़। उस दृश्यको देखकर गधा मुग्ध हो गया। सुदूरके उस धूसर पहाड़ने उसके हृदयको आकर्षित कर लिया। गधेने कल्पना-नेत्रोंसे देखा कि पहाड़पर का ढलवाँ मैदान हरी-भरी घाससे भरा है। पहाड़की तराईमें एक छोटी-सी टेढ़ी-मेढ़ी नदी है और पहाड़के सिरेपर घने वनकी गहरी छाया है। अहा, यही तो उसके रहनेका वास्तविक स्थान है! छोटे, धूलिमय, कुत्सित मानव-ग्राममें स्वाधीनता कहाँ! आनन्द कहाँ? उस दूरके पहाड़के उदार हृदयमें ही सच्ची स्वाधीनताका आसन है। वहीं आनंन्दका झरना बह रहा है। सोचते-सोचते गधेकी दुम तक सन्न हो गई।

उस दिन संध्या समय हृदयमें एक कसक लिए गधा कपड़ोंकी गठरी पीठपर लादे सरयूके छोटे आँगनमें वापस लौटा। सरयूकी स्त्रीने उसे आदरके साथ पुकारा; किन्तु वह पुकार उसके कानों तक नहीं पहुँची। सरयूके लड़के घनीरामने अपनी आदतके अनुसार उसका कान पकड़कर खींचा; किन्तु उससे आज गधेने अपने-आपको बहुत अपमानित महसूस किया। रात बीतने लगी; पर उसकी आँखोंमें नींद नहीं। सरयूका छोटा-सा आँगन उसे और भी छोटा जान पड़ा। टूटी-फूटी दीवारें अन्धकारमें कंकाल-मूर्ति-सी जान पड़ीं। उसे ऐसा मालूम पड़ा कि वे उसे ज़ोरसे पकड़नेके लिए क्रमशः सरकती चली आ रही हैं। उसे ख़याल आया नदीका उस पारवाला धूसर पहाड़। गधेका मन मुक्तिके लिए व्याकुल हो उठा। यह नीचा, टूटा फूटा प्राचीर अब और अधिक उसको बाँधकर नहीं रख सकता। वह अपने सुदूर स्वप्न-लोककी ओर यात्रा करेगा ही। सरयूका निरीह दुर्बल गधा गिरी-पड़ी दीवार लाँघकर रास्तेपर आ पहुँचा। रास्ता पारकर मैदानमें आया और मैदान पारकर नदी-तटपर। उसके बाद नदी पारवाले रास्तेपर चलता हुआ वह अन्धकारमें विलीन हो गया।

- ३ -

पहाड़पर, वनके अन्तरालमें, एक छोटा-सा खुला मैदान है। उस मैदानमें प्रभातके आलोकमें जो चतुष्पाद प्राणी चर रहा है, वह मानो अभिजात-वंशीय है। इसके प्रमाण उसके लम्बे-लम्बे कान हैं। वह कोई दूसरा नहीं, सरयू धोबीका गधा ही है। गाँवके असुन्दर, गन्दे, गद्यमय वातावरणके बदले आज उसके चारों ओर अपूर्व काव्यालोक फैला हुआ है। वह भी आज उसी काव्यालोकका एक प्राणी है। गधा कभी घास चरता और कभी प्राकृतिक शोभाका उपभोग करता। उसके मनमें आज कैसा अनिर्वचनीय आनन्द है? दरवाज़े-दरवाज़े कपड़ोंकी गठरी ढोकर ले जानेके लिए उसके समान इतने सुन्दर, इतने भावुक गधेकी सृष्टि नहीं हुई है, इसे वह धीरे-धीरे अनुभव करने लगा।

हरी घास चरते-चरते जब उसका पेट भर गया, तो वह पहाड़ीके ढलुवाँ मैदानसे होता हुआ धीरे-धीरे नदीकी ओर चल पड़ा। नदीकी क्षीण धारा स्फटिकके

समान स्वच्छ थी। गधेने पूर्ण तृप्तिके साथ पेट भरकर पानी पिया। उसके बाद बहुत देर तक पानीमें वह अपनी मुख-श्रीकी परछाईं देखता रहा। दिन चढ़ आनेपर वह फिर पहाड़पर के एक ऊँचे स्थानपर जा खड़ा हुआ। वहाँसे नीचेकी ज़मीन बड़ी मनोरम दीख पड़ती थी। उसने देखा, नीचेके पेड़-पौधोंने जैसे कुंजका रूप धारण कर लिया है और ढलुवाँ मैदान जैसे समतल हो गया है। गाँव तो खोजे भी दिखाई नहीं देते थे, फिर भी धुएँसे उनका अनुमान किया जा सकता था। उस गन्दे जगत्से आज वह कितनी ऊँचाईपर है!

रात हो आई और चारों ओर गहरी निस्तब्धता छा गई। नीचेकी ज़मीन अदृश्य हो गई। अन्धकार बढ़ता ही गया। इससे गधा भयभीत हो उठा। ऐसे निर्जन स्थानमें रातके समय वह और कभी नहीं रहा था। उसके मनकी भावमय अवस्था बहुत-कुछ कम हो गई। रात ज्यों-ज्यों गम्भीर होती गई, उसकी मानसिक अवस्था भी त्यों-त्यों परिवर्तित होती गई। उसे सरयूके आँगनकी बात याद आ गई। गन्दा और छोटा होनेपर भी रातमें रहनेके लिए तो वह पहाड़के घने वनोंसे कहीं अच्छा था। इतने दिनों तक वह सोचता, सरयूका गन्दा घर और टूटी-फूटी दीवारोंसे घिरा छोटा आँगन केवल उसके कवि-हृदयको दुखानेके लिए ही बने हैं; किन्तु आज उसकी यह धारणा अनायास बदल गई।

- ४ -

सवेरा होनेपर गधेने सन्तोषकी साँस ली कि चलो, जान बची। प्रातःकालकी धूप और पक्षियोंके मधुर गानसे उसका मन फिर चंगा हो उठा। मैदानमें जाकर उसने ख़ूब घास खाई, नदीमें जाकर पेट भरकर पानी पिया और बहुत देर तक वनमें घूमता रहा। उसके बाद पलाशके एक पेड़के नीचे खड़ा होकर वह सोचने लगा—'अब क्या किया जाय? समय बहुत है और काम कुछ नहीं। कुछ न करनेसे तबीयत नहीं लगती।' गधेके मनमें प्रश्न उठा कि इस तबीयत न लगनेका कारण क्या है? यह क्या बहुत दिनोंके अभ्यासका कुफल है? बचपनसे ही काम करनेसे ऐसा कुछ ख़राब अभ्यास हो गया है कि काम न करनेपर मनमें अपनेको अपराधी समझनेकी एक भावना सी उठती है। यह क्या ग़ुलामीकी भावना है? बहुत कुछ सोचने-विचारनेपर भी वह किसी निर्णयपर न पहुँच सका।

अनुतप्त गधेने सुदूर ग्रामकी ओर देखा।

आख़िर उसने थोड़ा दौड़नेका निश्चय किया। उसने सोचा, इससे कुछ समय भी कट जायगा और स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा।

गधेने पूँछ ऊँची करके दौड़ना शुरू किया। जिसने उसकी इस गति-भंगीको अपनी आँखोंसे नहीं देखा, वह उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। कुछ दूर जानेपर गधा एकाएक रुक गया और उसके मनमें एक और सवाल उठ खड़ा हुआ। उसके इस प्रकार दौड़नेमें आज सरयू धोबीके बाँसके डण्डेकी प्रेरणा कहाँ है? सरयूकी लाठीके आघातके बिना भी वह दौड़ सकता है, अर्थात् यदि वह इच्छापूर्वक दौड़ता, तो सरयूकी लाठीके बेकार हो जानेकी समस्या उपस्थित होती। तब फिर क्यों सरयूको अत्याचारी समझकर वह इतने दिनों तक घृणा करता रहा? ओह, बेचारे सरयूपर उसने बड़ा अत्याचार किया है! अनुतप्त गधेने सुदूर ग्रामकी ओर देखा। देखा कि छोटी नदी क्षीण रेखाके समान टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई चली गई है। उसीके पानीमें सरयू धोबी प्रतिदिन कपड़े धोने आता है। उसके अभावमें उसे स्वयं ही कपड़ेकी गठरी ढोकर लानी और ले जानी पड़ती होगी। उसके हृदयमें चिन्ताकी लहरें एक-पर-एक उठकर आघात करने लगीं। किसलिए जाड़ा, गरमी, बरसात, धूपकी परवा न कर सरयू दरवाज़े-दरवाज़ेसे मैले कपड़े इकट्ठे करके लाता है और एड़ी-चोटीका पसीना एक करके कपड़ोंको धो-धाकर फिर

दरवाज़े-दरवाज़े पहुँचाता है ? वह भी अनायास अपने गन्दे ग्राम और हृदयहीन ग्रामीण समाजको त्याग इस पहाड़की गोदमें आकर आश्रय ले सकता था ? फिर भी क्यों उसने ऐसा नहीं किया ? इसका क्या रहस्य है ?

- ५ -

चिन्ता एक प्रकारकी व्याधि है, इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण चिन्ताग्रस्त गधेको उस दिन बिलकुल भूख नहीं लगी। दो-चार बार उसने घासपर मुँह ज़रूर दिया ; पर खाया नहीं और एक प्रकारके अन्यमनस्क भावसे इधर-उधर घूमने लगा। अखण्ड अवसर है, चारों ओर अपूर्व शोभा है, फिर भी गधेके ललाटपर चिन्ताकी रेखा है। इतनी निर्जनता जैसे अब उसे अच्छी नहीं लगती। उसे याद आई जानकी धोबीकी गधी। रास्तेपर दिखाई पड़ते ही वह गर्दन ऊँची और टेढ़ी करके उसकी ओर देखा करता था। वह दृश्य सचमुच कितना मधुर था ! एक दिन एकान्तमें उससे मुलाकात हुई थी। न जाने कौन सी एक बात उससे कहनेको दिलमें होता था, फिर भी वह कह नहीं सका था। और यहाँ चले आनेसे पहले उससे तो उसने कुछ भी नहीं कहा। ग्रामके निरानन्द वातावरणमें जानकीकी तरुणी गधीको अकेली छोड़कर वह अकेला भाग आया है, यह क्या उचित है ? वह कैसा कापुरुष, कैसा निष्ठुर और कितना बड़ा स्वार्थी है ! ओह, वह बेचारी कितना अकेलापन महसूस कर रही होगी ! गधेने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। उसकी दोनों आँखें भी सजल हो उठीं। नज़दीक रहकर भी वह जिस बातको स्पष्ट रूपसे नहीं समझ सका था, दूर आकर आज उसने एकाएक उसी बातको स्पष्ट रूपसे समझा—जानकीकी तरुणी गधीको वह प्यार करता है।

प्राकृतिक शोभा गधेकी सजल आँखोंको और आनन्द दान न कर सकी। वासन्ती हवा उसके दग्ध हृदयको शीतल न कर सकी। निस्तब्ध संध्यामें सुदूर ग्रामसे जो सूक्ष्म धूम्ररेखा धीरे-धीरे ऊपर उठ रही थी, गधा अपलक नेत्रोंसे उसी ओर देखता रहा। उसकी आत्मा उसकी देहमें ही रही या उस सुदूर ग्रामकी किसी एक विरहिणी गधीके नज़दीक चली गई, इसे कोई कह नहीं सकता।

- ६ -

फिर रात आई। गधेने एक पेड़के नीचे आश्रय लिया। रातके गहन अन्धकारमें पृथिवीके वन-पहाड़ ढँक गए ; किन्तु उसके मनकी कितनी ही समस्याएँ ज्यों-की-त्यों बनी रहीं। आँखें मूँदकर वह ध्यानमग्न हुआ। इस प्रकार एक पहर कट गई। रातकी निस्तब्धता, दक्षिणकी शीतल हवा और मच्छरोंके अभावमें उसको नींद आ गई। सोते ही गधेने स्वप्नमें देखा; धूलसे भरे रास्तेपर एक बहुत बड़ी गठरी पीठपर लादे वह धीरे-धीरे चला जा रहा है।
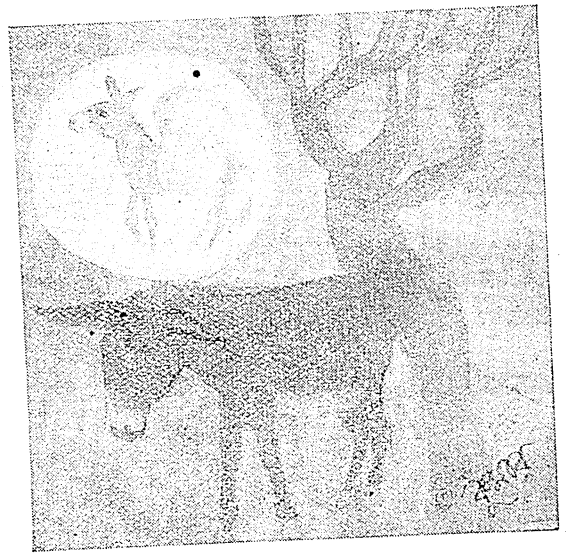
आँखें मूँदकर वह ध्यानमग्न हुआ।

वह गठरी मैले कपड़ोंकी नहीं, दुनियाके जितने दुःख-शोक, भय-भावना, अभाव हैं, उनकी है। गठरीके विषम भारसे उसकी पीठ टेढ़ी हो गई है, पैर लड़खड़ा रहे हैं ; फिर भी उसके मनमें कैसा निर्मल आनन्द है ! मानो उसने सारी दुनियाके दुःखोंको अपनी पीठपर उठा लिया है ! हृदयमें एक परम शान्ति लेकर गधेकी नींद टूटी। स्वप्नमें उसकी सारी समस्याएँ हल हो गई हैं। समाजसे दूर भागनेसे काम नहीं चल सकता। समाजके धूलिमय पथमें उसे सभीके दुःख-शोकका बोझ ढोते हुए चलना होगा।

सबेरा होते ही सरयूके लड़के-बालोंने ज्यों ही घरका दरवाज़ा खोला और आँगनमें आए, ज़ोरसे चिल्ला उठे—'हमारा गधा वापस आ गया !'

# भोजन-सम्बन्धी दो भूलें

डा० सुरेन्द्रप्रसाद

भोजन-विषयक बहुत-सी बातें—जैसे क्या, कब और कैसे खाना चाहिए आदि—जान लेनेपर भी कुछ ऐसे और नियम रह जाते हैं, जिनका जानना और अमलमें लाना स्वास्थ्यकी दृष्टिसे परमावश्यक है। यहाँपर हम केवल दो बातोंपर ही विचार करेंगे। प्रथम तो प्रातःकालके कलेवेका प्रश्न है। आधुनिक आहार-शास्त्रियोंने बड़ी जाँच-पड़तालके बाद जान पाया है कि प्रातःकालका कलेवा अवांछनीय और अस्वाभाविक भोजन है। हमें सवेरे-सवेरे कुछ न खाना चाहिए।

सवेरे नाश्ते या भोजनके रूपमें कुछ खाया जाय या नहीं, इस विषयमें दो मत हैं। पहला मत लुईकूनेका है। उनका कहना है कि मनुष्यको उठते ही भूख लगती है और उसे सवेरे ही कुछ खा लेना चाहिए। इस समयका आहार शक्तिवर्द्धक और लाभकारी होगा; क्योंकि ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता जाता है, मनुष्यकी शक्ति भी क्षीण होती है, और शक्तिकी क्षीणावस्थामें भोजन करनेसे वह अंग नहीं लगता। प्रकृतिमें तमाम जीव-जन्तु सवेरे ही भोजन तलाश करते हैं, इसलिए हमें भी उन्हींके अनुसार चलना चाहिए। दूसरा मत बतलाता है कि प्रातःकाल हम रात्रिकी पूर्ण निद्रा लेकर एक नई स्फूर्ति और शक्तिके साथ उठते हैं। उस शक्तिका उपयोग हमें अच्छे कार्योंमें करना चाहिए। गरमीमें कमसे कम ९ बजे तक और सर्दीमें १० बजे तक हमें पेटमें कुछ न डालना चाहिए। इस समय हमें स्वाभाविक भूख नहीं लगती।

इस मतके प्रवर्त्तक अमेरिकाके डा० ड्यूई हैं, जो उपवास-चिकित्साके विशेषज्ञ हैं। उन्होंने अपनी 'नो ब्रेकफास्ट प्लान' नामक पुस्तकमें तरह-तरहके तर्क और प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि कलेवाके कारण ही हमें विभिन्न रोगोंका शिकार होना पड़ता है। ख़ासकर जीर्ण रोगियोंके लिए तो भोरका कलेवा छोड़ना बहुत ज़रूरी है, अन्यथा उन्हें रोग-मुक्तिमें सफलता कठिनाईसे ही मिल सकेगी। हमारा अनुभव है कि जो रोगी मालदार होते हैं और जिन्हें सवेरे नाश्तेके रूपमें मेवे या फल खानेको मिल जाते हैं, वे उन ग़रीब या सवेरेका कलेवा छोड़नेवाले रोगियोंकी अपेक्षा चंगा होनेमें अधिक समय लेते हैं।

उपर्युक्त दोनों मतोंमें से हमें दूसरा मत अधिक वैज्ञानिक और सही जँचता है। यह प्रायः सभी लोग जानते हैं कि शरीरमें बहुत कुछ विजातीय द्रव्य रहता है और रातमें तथा प्रातःकालके दस-ग्यारह बजे तक उसका दहन होता रहता है। स्वस्थ मनुष्यको सवेरे थोड़ी-सी भूख तो अवश्य लगती है; पर यह भूख शरीरके विष और रोगको दूर करनेके लिए होती है। इसलिए यदि ऐसे समयमें कुछ खा लिया जाय, तो शरीरके विजातीय द्रव्यका नाश न हो सकेगा—अर्थात् प्रकृतिके शरीरकी सफ़ाईके काममें बाधा पहुँचेगी और हम पूर्ण स्वस्थ तथा रोगमुक्त न हो सकेंगे।

साथ ही पेटको विश्राम देना भी अत्यन्त आवश्यक है। रात्रि भर वह दिनमें खाए गए भोजनको पचानेमें लगा रहता है, इसलिए सवेरेके पाँच-छः घंटे पेटके विश्रामके लिए मिलने चाहिएँ। यदि हम ऐसा नहीं करते, तो हमारा स्नायु-संस्थान और पाचक-संस्थान बेकार होकर अनेक रोगोंको स्थान देंगे और हम दीर्घजीवी न हो सकेंगे। अतः यह परमावश्यक है कि हम प्रातःकाल कम-से-कम १०-११ बजे तक कुछ न खायँ। हमें धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा कलेवाकी आदत छोड़नी चाहिए। बच्चोंके लिए भी यही नियम लागू है। यदि वे न रह सकें, तो उन्हें कोई हलका फल या मेवा दिया जा सकता है। माताओंको भी चाहिए कि वे अपने बच्चोंको कुछ देरमें ही दूध पिलायँ।

वास्तवमें हमें दिनमें एक ही बार भोजन करना चाहिए। हाँ, एक-दो बार हलका नाश्ता—जैसे, कोई फल, शाक, कच्चा दूध, मट्ठा आदि—किया जा सकता है। दिनका ख़ास भोजन, जिसमें अन्न भी शामिल हो, सायंकालके ३ से ५ बजेके बीच करना स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत ठीक है और दीर्घ जीवन देता है। डा० कैलाग, मैकफैडन तथा अन्य स्वास्थ्य-विज्ञान-विशेषज्ञोंका मत यही है कि प्रधान भोजन शामको ही खाया जाय।

यदि हम अपने प्राचीन शास्त्रों तथा आर्य-जातिके दैनिक जीवनपर दृष्टि डालें, तो मालूम होगा कि आर्य लोग दिनमें केवल एक ही बार, दिन भरके कार्य और परिश्रमसे

निवृत्त होकर, शामको नदियों तथा तालाबोंके किनारे भोजन किया करते थे। शास्त्रकारोंने भी ग्यारह बजेके बाद ही भोजन करनेकी आज्ञा दी है। आयुर्वेदानुसार एक सूर्यमें दो बार भोजन नहीं करना चाहिए। जब दिनमें एक ही बार भोजन किया जाता है, तो अक्सर भोजनकी मात्रा अधिक हो जाती है; पर इसमें कोई हानि नहीं है। विदेशियोंका अन्धानुकरण करके दिनमें कई बार खाना भयंकर भूल है।

कुछ लोगोंमें बहुत समयसे यह भ्रम चला आ रहा है कि सबेरे बिना कुछ खाए जल पी लेनेसे ज़ुकाम तथा अन्य रोग हो जाते हैं, या १०-११ बजे तक भूखा रहनेसे सिरमें दर्द होने लगता है। ये दोनों ही धारणाएँ ग़लत हैं। वास्तवमें खाली पेट जल पीनेसे मल घुलता है, शरीरकी सफ़ाई होती है और रोग नहीं होने पाता। अतः सबेरे कई बार जल पीना चाहिए। यदि इससे कुछ अधिक पेशाब हो, तो डरना नहीं चाहिए। यह रक्त-शुद्धि होने लगनेका द्योतक है। ज़ुकाम या सिरदर्द भी यही सूचित करता है कि शरीरमें दो-चार घंटेका उपवास होनेसे सफ़ाई हो रही है। यदि दस-पन्द्रह दिनों तक ऐसा अभ्यास डाला जाय, तो फिर किसी प्रकारकी शिकायत नहीं रह जाती और पहलेसे अधिक उत्तम स्वास्थ्यका अनुभव होने लगता है। तात्पर्य यह कि हमें अस्थायी प्रभावसे डरकर स्थायी लाभको नहीं छोड़ देना चाहिए।

हम शरीरकी रासायनिक क्रियासे अनभिज्ञ रहनेके कारण भोजनके पहले या पीछे शारीरिक या मानसिक परिश्रम करते हैं। इससे पाचन-क्रियापर आघात पहुँचता है और हमारा स्वास्थ्य गिरता चला जाता है। मानसिक श्रमके समय तमाम रक्त मस्तिष्ककी ओर दौड़ता है और शारीरिक परिश्रमके समय मांस-पेशियों और स्नायुओंकी ओर। पर भोजनको पचानेके लिए रक्त तथा शरीरकी शक्तिको पेड़ूकी ओर लानेकी आवश्यकता होती है। अतः यदि हम भोजनके ठीक बाद शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने लगें, तो रक्त तथा शरीरकी शक्ति पचानेके कामको छोड़कर शीघ्र दूसरी ओर झपटती है, जिससे भोजन बिना पचे ही पड़ा सड़ा करता है। इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि भोजन करनेके बाद दो-एक घंटे विश्राम लेकर ही कोई काम किया जाय। हाँ, साधारण काम, जिसमें शरीरपर विशेष श्रम न पड़े, किया जा सकता है। इस दृष्टिसे हम देखते हैं कि विद्यार्थियों तथा दूसरे लोगोंका ९-१० बजे रोटी, चावल, दाल आदि खाकर स्कूल या कामपर जाना बड़ा ही घातक है। अक्सर भोजन करते ही कामपर दौड़ना पड़ता है। भरे पेट दौड़नेसे मृत्यु हमारे पीछे दौड़ती है।

कम-से कम जीर्ण रोगियों और गर्भवती स्त्रियोंके लिए इस नियमपर चलना परमावश्यक है। कई बार अनुभव किया जा चुका है कि भोजनके पश्चात् किसी तरहका भी परिश्रम करना छोड़ देनेसे अनेक रोग स्वतः चले जाते हैं; पर ज्यों ही इस नियमको तोड़ा जाता है, रोगकी पुनरावृत्ति होती है। भरे पेट किया गया काम ठीक नहीं होता। इसके प्रतिकूल खाली पेट काम अच्छा और अधिक होता है। यह हर कोई अनुभव करके देख सकता है। सम्भव है, प्रारम्भमें भूखे पेट काम करना कठिन मालूम दे, सिरमें चक्कर आय और कमज़ोरी मालूम हो; पर ये सब उपद्रव अस्थायी होते हैं।

शारीरिक या मानसिक थकावटमें कभी भोजन नहीं करना चाहिए। ऐसे समयमें शरीरकी शक्ति थकावट दूर करनेमें लगी रहती है। फिर ऐसे समयमें कोई चीज़ खानेसे वह पेटमें पहुँचकर यों ही पड़ी रहती है। थकावटमें किया गया भोजन अंग भी नहीं लग सकता। इसलिए व्यायाम, टहलने, पढ़ने आदिके २०-३० मिनट बाद भोजन करना चाहिए। बहुत-से लोग व्यायाम करके तुरन्त ही दूध पीते हैं, यह भी अनुचित है।

इस प्रकार सारी कठिनाइयोंसे बचनेके लिए यही अच्छा उपाय है कि हम दिनका प्रधान भोजन शामको, दिन भरके कामसे निवृत्त हो, ग्रहण करें। दोपहर तथा सबेरे हलका-सा नाश्ता किया जाय। इससे सैकड़ों रोग स्वतः चले जायँगे। हमें फल, शाक-पात आदिको ही अपना प्रधान आहार समझना चाहिए। इनमें मनुष्यको जीवित रखनेकी अन्नसे भी अधिक शक्ति है। यदि सदाके लिए अन्न छोड़ दिया जाय और उसके स्थानपर फल, शाक, मेवा आदिको ही अपना लिया जाय, तो भी शरीरकी कोई क्षति न होगी।

जाटका कुआँ, जयपुर ]

# हिन्दी-साहित्यमें कुछ उल्लेखनीय अभाव

श्री गौरीशंकर ओझा

वर्तमान हिन्दी-साहित्यकी प्रगतिको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि जहाँ इसके सरस साहित्यकी इतनी उन्नति हुई है, वहाँ जीवनसे सम्बन्धित ऐसे विषयोंकी पुस्तकोंका नितान्त अभाव रहा है, जो किसी भी राष्ट्रकी उन्नतिके लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। आज तक हिन्दी-साहित्यमें उपन्यास, कहानी-संग्रह, काव्य, नाटक आदिको ही अधिक महत्व दिया जाता रहा है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि इनकी आवश्यकता नहीं है ; किन्तु हमें ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, भौगोलिक, जीवन-चरित्र, साधारण ज्ञान (General knowledge) सम्बन्धी पुस्तकोंको भी अपने जीवनके लिए आवश्यक समझना चाहिए। हिन्दी-साहित्यकी विशालताको देखते हुए इन विषयोंकी पुस्तकें इतनी कम संख्यामें प्रकाशित हुई हैं, जो राष्ट्रभाषा कही जानेवाली भाषाके लिए खेदजनक है। इसकी अपेक्षा दूसरी प्रान्तीय भाषाओंमें इन विषयोंकी पुस्तकें यथेष्ट मात्रामें प्रकाशित हुई हैं। इस अभावकी ओर हमारी साहित्यिक संस्थाओं, नेताओं, प्रकाशकों और लेखकोंको अवश्य ध्यान देना चाहिए। यहाँ हम ऐसे विषयोंका उल्लेख करेंगे, जिनपर प्रकाशकोंको पुस्तकें लिखनेके लिए लेखकोंको प्रोत्साहन देना चाहिए। इससे जनताके हाथमें ऐसा साहित्य पहुँच सकेगा, जो उसके लिए वर्तमान समयमें ज्ञान-वृद्धिके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

### वैज्ञानिक साहित्य

इस विषयकी उल्लेखनीय पुस्तकें हिन्दीमें कठिनतासे तीन-चार मिल सकेंगी। इस विषयका प्रयागसे निकलनेवाला 'विज्ञान' मासिक पत्र अच्छा कार्य कर रहा है ; किन्तु उसकी ग्राहक-संख्या इतनी न्यून और प्रचार इतना कम है कि यदि उसके संचालक उत्साही न होते, तो वह कभीका बन्द हो गया होता। वैज्ञानिक साहित्यके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रमुख विषय हैं :—

| | |
|---|---|
| शिल्प-विज्ञान | कृषि-विज्ञान |
| ज्योतिष-विज्ञान | भाषा-विज्ञान |
| रसायन-विज्ञान | जाति-विज्ञान |
| भौतिक-विज्ञान | भूगर्भ-विज्ञान |
| वनस्पति-विज्ञान | चिकित्सा-विज्ञान |
| नीति-विज्ञान | शरीर-विज्ञान |
| विद्युत-विज्ञान | यंत्र-विज्ञान |
| मनो-विज्ञान | प्राणि-विज्ञान |

विज्ञानका विषय आजकल जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना हमारे जीवनमें दूसरा कोई विषय नहीं है। वैज्ञानिक साहित्यका प्रकाशन जितना ख़र्चीला सिद्ध होगा, उतना ही लाभदायक भी। इस विषयपर हमारे नेताओं और संस्थाओंका ध्यान दिलाना आवश्यक है। इसकी आवश्यकताको हमें समझना चाहिए।

### ऐतिहासिक साहित्य

इस विषयकी कुछ पुस्तकें हमारे साहित्यमें प्रामाणिक और उच्चश्रेणीकी हैं। रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने इस क्षेत्रमें प्रशंसनीय कार्य किया है। जयचन्द्र विद्यालंकार, विश्वेश्वरनाथ रेउ आदि इतिहास-लेखकोंने भी उल्लेखनीय पुस्तकें लिखी हैं। फिर भी ऐतिहासिक पुस्तकोंका अभाव ही माना जायगा। भारतवर्षके एक अप-टू-डेट इतिहासकी आवश्यकता बहुत दिनोंसे अनुभव की जा रही है। ओझाजीका राजपूतानेका वृहद् इतिहास ऐतिहासिक साहित्यकी एक अमर और प्रामाणिक रचना है। जवाहरलाल नेहरूकी पुस्तक 'विश्व-इतिहासकी झलक' हमें संसारकी प्रगतिसे अच्छा परिचय कराती है। भारतके प्राचीन इतिहासका एक बड़ा काल आज भी अन्धकारमें है। उसे प्रकाशमें लानेका प्रयत्न वांछनीय है। पं० सुन्दरलालजीका 'भारतमें अंगरेज़ी राज्य' नामक ग्रन्थ प्रशंसनीय और प्रामाणिक उद्योग है। हिन्दीमें संसारके दूसरे उन्नत देशोंके इतिहास भी लिखे जाने चाहिएँ। इस ओर हमारे लेखकोंका बहुत कम ध्यान गया है।

पुरातत्त्व-विषय भी इतिहासके अन्तर्गत है, जो इतिहासकी रचनाके लिए आवश्यक है। इस विषयकी पुस्तकोंका हिन्दीमें नितान्त अभाव है। भारतमें पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजपर सर जान मार्शलके अंगरेज़ी ग्रन्थोंका भी अभी तक हिन्दीमें अनुवाद नहीं हुआ।

भौगोलिक साहित्य

भूगोल-सम्बन्धी पुस्तकें भी हिन्दीमें बहुत थोड़ी हैं। इस क्षेत्रमें पं० रामनारायण मिश्रका उद्योग और कार्य सराहनीय है। किन्तु अभी भौगोलिक तथा भ्रमण-सम्बन्धी साहित्यकी बड़ी कमी है। संसारके एक सचित्र और विस्तृत भूगोलकी बड़ी आवश्यकता है। आजकल प्रत्येक व्यक्तिको भौगोलिक ज्ञान कितना आवश्यक है, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। विद्यार्थियोंको भूगोल-सम्बन्धी जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, वे अपूर्ण तो होती ही हैं, साथ ही उनमें रोचकताकी भी अत्यन्त कमी होती है।

राजनीति और अर्थशास्त्र

हिन्दीमें राजनीतिपर कुछ अच्छी पुस्तकें निकली हैं। इस क्षेत्रमें महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सम्पूर्णानन्द आदि प्रसिद्ध लेखक हैं; परन्तु इस विषयकी पुस्तकें अधिक मात्रामें निकलनी चाहिएँ। उनकी भाषा जितनी ही सरल होगी, उतना ही जनतामें इस विषयका अधिक प्रचार होगा। अर्थशास्त्र-विषयक हिन्दी पुस्तकोंके प्रकाशन और लेखनमें श्री भगवानदास केलाका प्रयत्न सराहनीय है; परन्तु फिर भी इस दिशामें अभी उन्नतिकी बहुत गुंजायश है।

कला-सम्बन्धी साहित्य

कलाके अन्तर्गत जहाँ एक ओर साहित्य महत्त्वका अंग है, वहाँ इसके अंग, संगीत, चित्रकला, नृत्य, मूर्त्तिकला आदि भी कम महत्त्व नहीं रखते। हिन्दीमें इन विषयोंकी पुस्तकोंका नितान्त अभाव है। इधर चित्रकलापर दो-एक पुस्तकें अच्छी निकली हैं; किन्तु इस क्षेत्रमें उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ है। अंगरेज़ीमें इन विषयोंकी बहुत सुन्दर और उपयोगी पुस्तकें हैं। जब इन कलाओंका उत्थान होना भारतमें अत्यन्त आवश्यक है और इस ओर कार्य भी प्रारम्भ हो चुका है, तब इन विषयोंका साहित्य भी उतना ही आवश्यक समझना चाहिए। इस ओर ध्यान देनेसे एक बड़ी कमीकी पूर्त्ति हो सकेगी।

विश्व-साहित्य

विश्व-साहित्यकी प्रमुख कृतियोंके अनुवादकी ओर हिन्दीके प्रकाशकों और लेखकोंका कार्य कुछ दिनोंसे प्रगतिपर है; किन्तु अभी इस क्षेत्रमें यथेष्ट अभाव है। जहाँ टालस्टाय, मेक्सिम गोर्की, मोपासाँ, तुर्गनेव, गाल्सवर्दी, ड्यूमा आदि विदेशी लेखकोंकी कृतियोंके अनुवादकी ओर जितना ध्यान गया है, उतना इसी श्रेणीके महान् साहित्यकार बर्नार्ड शा, एच० जी० वेल्स, रोमाँ रोलाँ, अप्टन सिंक्लेयर आदि तथा नोबुल-प्राइज़-विजेता साहित्यकारोंकी कृतियोंपर नहीं दिया गया है। विदेशी सरस साहित्यके अतिरिक्त विदेशी भाषाओंमें प्रकाशित महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकोंका भी हिन्दीमें अनुवाद होना अत्यन्त आवश्यक है। जीवन-साहित्यके इन आवश्यक अंगोंकी उपेक्षा करना हमारी उन्नतिमें बाधक है। एशियाकी प्रमुख भाषाओं, जापानी, चीनी, अरबी, फ़ारसी आदिके साहित्योंकी श्रेष्ठ कृतियोंके अनुवाद भी हिन्दीमें अवश्य होने चाहिएँ।

जीवन-चरित्र

हिन्दीमें उल्लेखनीय जीवन-चरित्रोंकी बड़ी कमी है। जीवन-चरित्र लिखना कठिन कार्य है; क्योंकि उसका उद्देश्य मनुष्य-समाजके सामने चरित-नायकका ऐसा आदर्श उपस्थित करना है, जो प्रत्येक मनुष्यके लिए अनुकरणीय हो। हिन्दीके विद्वानोंका इस ओर विशेष रूपसे ध्यान होना चाहिए। 'आत्म-कथा' भी जीवन-चरित्रका एक अंग है। हिन्दीमें महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस द्वारा लिखित आत्म-कथाएँ उच्चकोटि की हैं।

दर्शनशास्त्र

हिन्दीमें दर्शन और आध्यात्मिक विषयकी कुछ पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। यद्यपि संसारने भारतवर्षसे इस विषयको अपनाया है, फिर भी यूरोपके दर्शनशास्त्रका अनुवाद हिन्दीमें होना आवश्यक है। भारतीय उपनिषदोंके भाष्योंके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्यमें लोकमान्य तिलकका 'गीता-रहस्य' और महात्मा गांधीके अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ हैं। स्वामी विवेकानन्दके ग्रन्थोंका भी हिन्दीमें सुन्दर अनुवाद हुआ है।

साधारण-ज्ञान

अंगरेज़ी तथा यूरोपीय भाषाओंमें इस विषयकी पुस्तकोंकी भरमार है, और नित्य और नवीन ग्रन्थमालाएँ निकलती रहती हैं। हिन्दीमें सबसे प्रथम 'Encyclopedia Britanica' की भाँति 'विश्वकोष' प्रकाशित हुआ था; किन्तु विज्ञापन और प्रचारके अभावके

कारण वह अधिक प्रकाशमें न आ सका। इधर दो-तीन साल हुए लखनऊसे 'विश्व-भारती' सीरीज़ (सचित्र) मासिक पुस्तकके रूपमें प्रकाशित हो रही है, जिससे साधारण ज्ञान-सम्बन्धी हिन्दीकी एक बड़ी पूर्त्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु हिन्दीमें इस विषयकी पुस्तकें तथा ग्रन्थमालाएँ जितनी भी निकलें, उतना ही जनताका लाभ हो। ज्ञान-वृद्धिके लिए ऐसी योजनाएँ अत्यन्त आवश्यक हैं। हिन्दीमें इसका अत्यधिक प्रसार और प्रचार होना चाहिए और जनताको ऐसे साहित्यकी रचनाओंका आदर करके सहयोग देना चाहिए।

बालकोंके लिए 'Book of Knowledge' के ढंगकी हिन्दीमें कोई ग्रन्थमाला नहीं निकली। इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। अंगरेज़ी और बँगलामें ऐसी कितनी ही ग्रन्थमालाएँ निकल रही हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि हिन्दीमें भी ऐसी पुस्तकें निकालें। ऐसे साहित्यका यदि यथेष्ट विज्ञापन और प्रचार किया जाय, तो उसमें सफलता मिले बिना नहीं रह सकती।

आशा है, उपर्युक्त विषयोंकी आवश्यकताओंपर और विद्वान् लेखक भी प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे, जिससे हमारी प्रकाशन-संस्थाओं और लेखकोंका ध्यान इन अभावोंकी ओर आकर्षित हो सके।

गुना (ग्वालियर) ]

---

# बौद्ध संस्कृतिमें नारी

श्री बैजनाथसिंह 'विनोद'

किसी भी कालकी सांस्कृतिक दशाकी जानकारीके लिए उस कालकी स्त्रियोंकी अवस्थाका ज्ञान बहुत ज़रूरी है। जबसे संगठित रूपसे खेतीका आविष्कार हुआ, तबसे धीरे-धीरे स्त्रीकी स्थिति गिरती गई। ऋग्वेदमें हमें स्त्रीकी स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी लगती है। सम्भवतः वह सारी अवस्था अम्बाला और उससे पच्छिमकी है। और यह सब अवस्था आर्योंके तीव्र संघर्ष-कालकी है।

आर्योंको गंगा-यमुनाके काँठेसे एक ऐसी जातिका सामना पड़ा, जिसने उनको अपने अन्दर आत्मसात् कर लिया। यह प्रदेश कृषि-प्रधान था। इसीलिए यहाँ अहिंसाका महत्त्व था, और शायद यही कारण था कि इसी प्रदेशमें अहिंसा-प्रधान जैन और बौद्ध-धर्म पैदा हुए और विकसित हुए। शायद इसीलिए इसी प्रदेशमें यज्ञ-प्रधान संस्कृतिका विरोध और एक तरहसे उसका नाश भी हुआ।

कुछ जैन विद्वानोंका मत है कि इस प्रदेशमें महावीरसे शताब्दियों पहले भाई-बहनमें भी शादी होती थी। इस प्रथाके सुधारनेमें पुराने जैन वीरोंका ही हाथ था। मामा और फुआके रिश्तेके भाई-बहनोंकी शादियाँ तो महावीरके काल तक होती थीं। भगवान् बुद्धके जन्मस्थान कपिल-वस्तु नगरके निर्माणके मूलमें भी भाई-बहनकी शादीकी कथा है। प्राचीन साहित्यके देखनेसे मालूम होता है कि इसी प्रदेशमें ज़्यादातर बहुविवाहकी भी प्रथा थी। इसी प्रदेशमें बहुविवाहका विधान तक बनाया गया था। हमारी रायमें ऐसा होनेका कारण यहाँकी उर्वरा ज़मीनमें निहित है। कुलके बढ़ानेका अच्छा ज़रिया है सन्तानका बढ़ाना। इससे सैनिक शक्ति भी बढ़ती है और जीती हुई ज़मीनपर कुलका अधिकार भी बना रहता है। कुलको पवित्र रखनेकी भावना भी मामा-फुफू-जात भाई-बहनोंकी शादियोंमें निहित है। कुलाभिमान भी स्त्रीकी सामाजिक मर्यादाको जकड़नेका एक कारण है। उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रखकर बौद्ध-धर्मके अन्तर्गत स्त्रीका क्या स्थान था, देखना उचित होगा। ऐसा न करनेसे जनसाधारण यही समझ लेंगे कि बुद्धने नारी-जातिका अपमान किया या उसका स्थान नीचे रखा। कोई भी महापुरुष अपने आदर्शको अपने समयकी ज़मीनपर उतारना चाहता है। इसलिए वह जो कुछ करता है, उसपर पूरा विचार करनेके लिए समसामयिक सामाजिक धरातलकी जानकारी ज़रूरी है।

एक समय भगवान बुद्ध कपिलवस्तुमें विश्राम कर रहे थे। उसी समय महाप्रजापतीने वहाँ जाकर प्रणामपूर्वक निवेदन किया—'भगवान, स्त्रियोंको भी गृह-त्याग करके अपने प्रचारित धर्म-अनुशासनमें रहने और भिक्षुणी

होनेकी अनुमति प्रदान करें, तो बड़ा कल्याण हो।' इसपर भगवानने कहा—'गौतमी, तुम ठीक कहती हो; पर स्त्रियोंके इस प्रकारकी अनुमति पानेसे तुम्हारा आनन्दित होना उचित नहीं।' महाप्रजापतीके तीन बार निवेदन करनेपर भी भगवानने यह एक ही उत्तर दिया। इसपर वह दुखी और रुआँसी होकर चली गई।

कुछ दिनों बाद एक दिन महाप्रजापतीने सिर मुँड़ा, गेरुआ रंगका वस्त्र पहन, कुछ शाक्य स्त्रियोंको साथ ले वैशालीकी ओर, जहाँ उस समय भगवान बुद्ध थे, प्रस्थान किया। महाप्रजापतीके साथ शाक्य स्त्रियोंका यह सत्याग्रही-दल जिस संघाराममें भगवान निवास करते थे, उसके दरवाज़ेपर आ डटा। बुद्धके प्रधान शिष्य आनन्दको ख़बर हुई। उन्होंने महाप्रजापतीसे पूछा। उत्तर मिला—'आनन्द, भगवान तथागत स्त्रियोंके गृह-त्याग और अपने धर्मानुशासनके अनुकूल भिक्षुणी होनेकी अनुमति नहीं देते, इसीलिए हम यहाँ खड़ी हैं।' आनन्दने महाप्रजापतीके आनेका उद्देश्य भगवानको बताकर निवेदन किया कि महाप्रजापतीकी कामना पूर्ण करें। इसपर भगवानने कहा—'आनन्द, तुम ठीक कहते हो; पर स्त्रियोंको इस प्रकारकी अनुमति देना उचित नहीं है।' इसपर युक्तिके साथ आनन्दने पूछा—'प्रभु, संसार त्याग करके भगवानके प्रचारित नियम और अनुशासनका पालन करती हुई स्त्रियाँ यदि भिक्षुणी हों, तो क्या उपदेश ग्रहण करनेसे वे धर्मको न पा सकेंगी, या निर्वाणके दूसरे अथवा तीसरे सोपानपर न चल सकेंगी, या अर्हत् पदको पा सकनेमें समर्थ न होंगी?' उत्तर मिला—'यह सब शक्ति उनमें है।' इसपर अनेक प्रकारसे आनन्दके समझानेपर बुद्धने आठ सख़्त अनुशासनोंके पालनका वचन लेकर महाप्रजापतीको अपनी साथिनोंके साथ भिक्षुणी होनेकी अनुज्ञा दी। पर साथ ही भगवानने यह भी बता दिया—'आनन्द, स्त्रियाँ यदि गृहस्थाश्रम-धर्मका त्याग करके तथागतके नियम और अनुशासनके अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण करनेकी अनुमति न पातीं, तो यह पवित्र धर्म बहुत दिनों तक टिकता; यह श्रेष्ठ अनुशासन हज़ार वर्ष तक चलता। पर आनन्द, चूँकि स्त्रियोंने अनुज्ञा प्राप्त कर ली, इसलिए यह पवित्र धर्म बहुत दिनों तक स्थायी नहीं रह सकेगा और यह उत्कृष्ट अनुशासन पाँच सौ वर्ष मात्र चलेगा...।'

उपर्युक्त कथनका अर्थ यह कदापि नहीं कि बुद्ध स्त्रियोंको हीन समझते थे। बुद्धके जीवनमें अम्बपाली वेश्यासे लेकर सम्भ्रान्त-से-सम्भ्रान्त महिलाके लिए कहीं भी अवमानना नहीं है। बुद्ध 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' सर्वत्यागियों और अपरिग्राहियोंकी एक विराट् सेना जुटाना चाहते थे। वे क्रोधको क्षमासे, कुचरित्रताको सच्छीलसे, (दुनियाके, स्वर्गके या मुक्तिके) लोभको दानसे और झूठको सत्यसे जीतनेवालोंका संघ क़ायम करना चाहते थे। इसके लिए अपरिग्रहकी सख़्त ज़रूरत थी, और तत्कालीन समाजमें परिग्रहोंमें स्त्री-परिग्रह पहला था। यही कारण था कि स्त्रियोंके प्रव्रजित होनेसे वे सुखी नहीं हुए। उनका वैसा सोचना सही भी था। बीस पुरुषोंके एक साथ रहनेसे भी उनका संसार एक क़दम आगे नहीं बढ़ता; पर यदि वहाँ एक भी स्त्री आ गई, तो उनकी दुनिया कहाँसे कहाँ चली जाती है। कारण स्पष्ट है। प्रकृति स्त्रीके द्वारा विकास पाती है, अथवा यों कहें कि प्रकृतिके विकासका साधन स्त्री है। इसलिए अपने अहिंसाके सैनिकोंको उस कालमें स्त्री-परिग्रहसे बचाना बुद्धके लिए ज़रूरी था। पर जब उन्होंने स्त्रियोंको प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा दे दी, तब सम्भावित दोषोंके मार्जनके लिए आठ अनुशासन भी लगा दिए। संघमें दाख़िल हो जानेपर भिक्षुणियोंके लिए भी नियम बने। कुछ विद्वानोंके अनुसार इन नियमोंकी संख्या छियालीस है। इन नियमोंमें यौन-सम्बन्धके प्रति तीव्र सजगता है। साथ ही एक नियम यह भी है कि—'भिक्षु भिक्षुणीको नमस्कार नहीं करेगा, अथवा सम्मान नहीं प्रदर्शित करेगा।' ऐसे नियम किस अभिप्रायसे बनाए गए, यह बताना कठिन है; पर इसमें शक नहीं कि इनसे स्त्रियोंकी सामाजिक मर्यादा संकुचित हुई। मनु-कालमें तो ये नियम और भी कड़े थे।

विद्वानोंका मत है कि 'मानसिक, नैतिक, पारिवारिक एवं सामाजिक दुःखोंसे छुटकारा पाने अथवा किसी असह्य अवस्थासे मुक्त होनेके लिए स्त्रियाँ अपने पति, पुत्र और पिताको छोड़कर संघकी शरण लेती थीं।' पं० हरप्रसाद शास्त्रीका मत है कि '...बहुत-सी युवतियाँ ज़्यादा रुपयोंमें बिकनेके अपमानसे बचनेके लिए और बहुत-सी चिन्ताशीला स्त्रियाँ युग-युगान्तरके संस्कारोंसे अपनेको मुक्त करने तथा मुक्ति-पथकी बाधाओंसे बचनेके लिए प्रव्रज्या ग्रहण करती थीं।' संघकी शरणमें जाकर स्त्रियोंको अपनी मुक्तिकी साधनामें सभी सुविधाएँ थीं।

श्रमण-संस्कृतिमें—ख़ासकर बौद्ध संस्कृतिमें—ध्यानको बहुत बहुत महत्त्व दिया गया है। ध्यानके लिए जंगल ही पहले उपयुक्त स्थान समझा जाता था। संघमें शामिल होनेपर भिक्षुणियोंको भी ध्यानके लिए अरण्यवास करना होता था। ऐसे ही अवसरपर बौद्ध भिक्षुणियोंमें सर्वश्रेष्ठ उत्पल वर्णापर आसक्त उसके मामाके लड़के नन्दने उसपर धोखेसे अत्याचार किया। उत्पल वर्णाने जब इस अत्याचारकी कथा भगवानसे कही, तब बुद्धने भिक्षुणियोंके लिए अरण्यवास निषिद्ध कर दिया। भिक्षुणी शुभापर जीवकके आम्रकुंजमें भ्रमण करते समय एक लम्पटने बुरी नीयतसे आक्रमण किया। जब समझानेपर भी वह नहीं माना, तो शुभाने क्रोधसे उसका हाथ पकड़कर झटक दिया। इस तरहकी और भी कितनी ही घटनाएँ उस समयकी भिक्षुणियोंके चरित्र-बलपर प्रकाश डालती हैं।

बौद्ध संघमें बहुत-सी चिन्ताशीला स्त्रियाँ बौद्धिक और आध्यात्मिक आकर्षणसे प्रविष्ट हुई थीं। निश्चय ही संघमें दाख़िल होनेके पहले उनकी जिज्ञासा बलवती थी। पर उस कालमें स्त्री-शिक्षाके लिए किसी विद्यालयका ज़िक्र नहीं मिलता। घरोंमें ही लड़कियोंकी शिक्षा होती थी और घरोंके अन्दर ही उनकी धार्मिक जिज्ञासा भी जगती थी। बादमें जब भिक्षुणियोंका संघ बन गया, तो उनकी शिक्षाकी ठीक व्यवस्था मठोंमें हुई। मठोंमें भिक्षुणियोंको विधिवत् बौद्ध शास्त्रों तथा और भी सामाजिक चिन्ताधाराओंका ज्ञान कराया जाता था। विद्वानोंका मत है कि थेरीगाथा बौद्ध भिक्षुणियोंकी रचना है। प्राचीन पालि-साहित्यमें दर्जनों धुरन्धर दार्शनिक भिक्षुणियोंका ज़िक्र मिलता है। संयुक्तनिकायमें सुक्का नामक एक भिक्षुणी द्वारा राजगृहमें धर्मोपदेशका उल्लेख है। भिक्षुणी क्षेमाका विनयपिटकपर पूरा अधिकार था। वह वक्तृत्व-कलामें निपुण थी। कहा जाता है कि एक बार प्रसेनजितने उसके पास जाकर पूछा—'मृत्युके बाद जीवका पुनर्जन्म होता है या नहीं?'

क्षेमा—'भगवान बुद्धने इसका कोई उत्तर नहीं दिया है।'

राजा—'भगवानने इस प्रश्नका उत्तर क्यों नहीं दिया?'

क्षेमा—'आप ऐसे किसीको जानते हैं, जो गंगाकी बालुका और समुद्रके जल-बिन्दुओंकी गिनती कर सके?'

राजा—'नहीं।'

क्षेमा—'यदि कोई पंचस्कन्धोंके आकर्षणसे अपनेको मुक्त कर सकेगा, तो वह असीम अतलस्पर्शी समुद्रका आकार धारण कर सकेगा; अतः मृत्युके बाद जीवके पुनर्जन्मकी धारणा अतीतकी बात है।' इस उत्तरसे राजा ख़ुश हो गया। उसी कालमें भद्रा कुण्डलकेशा सारिपुत्रके समकक्ष पंडिता थी।

बौद्ध-धर्मका प्रधान सुर था—'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय', इसीलिए उसमें प्रचारकी भावना बहुत बलवती थी। यह बहुत आसानीसे कहा जा सकता है कि सेवा और नम्रतासे अपने सिद्धान्तके प्रचारका उदाहरण बौद्ध धर्मके अलावा और कहीं नहीं है। सम्राट अशोकके प्रोत्साहनसे बौद्ध संघके अन्दर प्रचारकी भावना और भी बलवती हुई। सम्राट अशोककी पुत्रीने प्रव्रज्या ग्रहण किया और सिंहलमें बौद्ध-धर्मके प्रचारका ज़िम्मा लिया। उसके साथ बहुत-सी पंडिता भिक्षुणियाँ सिंहलमें धर्म-प्रचारके लिए गईं। संघमित्रा त्रिविध विज्ञानमें पारदर्शिनी थी। विनयपिटकपर उसका पूरा अधिकार था। अनुराधापुरके बौद्ध-विहारमें सुत्तपिटकके पाँच और अभिधर्मके सात ग्रन्थकी वह शिक्षा देती थी। इसके अलावा अंजलि, उत्तरा, सपत्ता, छन्ना, उपालि, रेवती इत्यादि क़रीब तीस सर्वशास्त्र-पारंगता भिक्षुणियोंका ज़िक्र सिंहलके साहित्यमें मिलता है।

बौद्ध-धर्म सदाचारपरायणता, बुद्धिकी प्रधानता और लोक-जीवनके मेलके साथ ज़ोरोंसे फैल रहा था। पर जैसे-जैसे बौद्ध-धर्म बढ़ता रहा, वैसे-वैसे ही क्रमशः उसमें नाना प्रकृतियोंके लोग भी आते गए। बुद्ध-निर्वाणके सौ वर्ष बाद, अर्थात् वैशालीकी संगीतिके पश्चात्, उसमें दो सम्प्रदाय हो गए थे। अशोकके समयमें बौद्ध-संघमें कुछ अवांछनीय व्यक्ति आ गए थे, जिन्हें निकाला गया था। अशोक द्वारा प्रोत्साहन मिलनेसे बौद्ध-धर्म पूरी बाढ़पर था। इस कालमें हज़ारों मठ बने। मठोंमें दानकी विपुल सम्पत्ति जमा होने लगी। संघमें भिक्षुणियोंका प्रवेश पहले ही हो चुका था। इस प्रकार जिस धर्ममें परिग्रहका कोई स्थान नहीं था; भिक्षुके लिए जहाँ सिर्फ़ तीन चीवर और एक पात्र रखनेकी आज्ञा थी, वहाँ (स्त्री और सम्पत्ति) दोनों प्रधान परिग्रह जमा हो गए। इसका जो परिणाम होना था, वही हुआ। महापंडित राहुल सांकृत्यायनके अनुसार ईसाकी पहली शताब्दीमें बौद्ध-धर्मके अन्दर एक वैपुल्यवादी सम्प्रदाय पैदा हो गया। यह

सम्प्रदाय बुद्धके मूल उपदेशोंसे अलग जा पड़ा। 'इनका कहना था—(१) संघ न दान ग्रहण करता है, न उसे परिशुद्ध या उसका उपभोग करता है, न संघको देनेमें महाफल है; (२) बुद्धको दान देनेमें न महाफल है, न बुद्ध लोकमें आकर ठहरे और न बुद्धने धर्मोपदेश किया; (३) ख़ास मतलबसे ( एकाभिप्रायेण ) ब्रह्मचर्यका नियम तोड़ा जा सकता है।' यहाँ ऐतिहासिक बुद्धके अस्तित्वसे इन्कार किया गया है; संघके प्रति ग़लत धारणाका प्रचार किया गया है और ब्रह्मचर्यकी अनिवार्यता हटा ली गई है। इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि दूषित मनोवृत्तिके भिक्षुओंने अपनी सुविधाके लिए इस सिद्धान्तको गढ़ा। राहुलजी इन्हीं तीनों बातोंके अन्दर महायान और वज्रयानके बीज पाते हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि बौद्ध-मठोंमें अनाचार फैल गया। भिक्षु और भिक्षुणियाँ दोनोंका चरित्र भ्रष्ट हो गया और लोक-दृष्टिमें उनका मूल्य गिर गया। इन्हीं तथा कुछ और कारणोंसे बौद्ध-धर्मका नाश हो चला। इस तरह भगवान बुद्धकी भविष्यवाणीके अनुसार पाँच सौ साल बाद उसके अनुशासित धर्मका अन्त हो गया।

बुद्धके समयमें कोई सार्वभौम सत्ता नहीं थी, इसलिए किसी सार्वभौम सामाजिक क़ानूनका पता नहीं लगता। पर बुद्ध-निर्वाणके १५८ वर्ष बाद—सन् ईस्वीसे ३२५ वर्ष पूर्व—चन्द्रगुप्त मौर्यने सार्वभौम सत्ता क़ायम की। उसीके समयमें उसके प्रधान-मन्त्री कौटिल्यने 'अर्थशास्त्र' नामक विधान-ग्रन्थ बनाया। कौटिल्यके पहले भी कुछ विधान-ग्रन्थ थे, जिनका अब पता नहीं चलता। इसमें शक नहीं कि वे सब विधान छोटे-छोटे गणतन्त्रोंके रहे होंगे। जो हो, पर इतना सही है कि कुछ प्राचीन पालि-साहित्य और कौटिल्य-अर्थशास्त्रसे उस कालकी सामाजिक स्थितिपर प्रकाश पड़ता है, जिसके अन्दरसे हमें स्त्रियोंकी सामाजिक मर्यादाका पता लग सकता है।

धम्मप अट्ठकथाके दूसरे खण्डमें उल्लेख है कि १५ सालकी उम्रमें लड़कियोंके मनमें पुरुष-संग-लाभकी इच्छा बलवती हो उठती है। विद्वानोंका मत है कि साधारणतः लड़कियोंकी शादी १५ सालकी उम्रमें कर दी जाती थी। कौटिल्य-अर्थशास्त्र (प्रकरण ८७ कन्याकर्म ११, १२, १३) के अनुसार—'यदि तीन वर्ष तक मासिक धर्म होनेपर भी कन्या न ब्याही जाय, तो उसकी जातिका कोई भी पुरुष उसके साथ संग कर सकता था, और यदि तीन सालसे अधिक वक़्त गुजर जाय, तो किसी भी जातिका पुरुष उसको अपनी स्त्री बना सकता था। पर लड़कीके माता-पिताका आभूषण लेनेपर उसे चोरीका दंड दिया जा सकता था।' इससे साबित होता है कि उस कालमें लड़कियोंकी रक्षा और उनकी शादीकी समस्या थी।

साधारणतः तीन तरहके विवाह उस समय प्रचलित थे—(१) उभय पक्षके माता-पिता द्वारा स्वीकृत, (२) स्वयंम्बर और (३) गन्धर्व-विवाह। पर कौटिल्य-अर्थशास्त्रमें आठ प्रकारके विवाहका विधान मिलता है। कौटिल्य गन्धर्व-विवाहको अच्छी दृष्टिसे नहीं देखता था। इससे मालूम होता है कि सामाजिक विश्रृंखलताको दूर करनेके लिए गन्धर्व-विवाहपर हल्के नियन्त्रणकी ज़रूरत थी। शादीके समय मुहूर्त्त देखने और नक्षत्रोंकी गति-विधिपर चलनेकी प्रथा उन दिनों थी। नक्खत्त-जातकसे मालूम होता है कि ठीक मुहूर्त्तपर बारात न आनेपर एक ग्राम-वासीने उसी मुहूर्त्तपर अपनी लड़कीकी शादी दूसरेके साथ कर दी। जब पूर्व निश्चित बाराती आए, तब उन्हें वापस जाना पड़ा। विवाहके समय दहेज देनेकी प्रथा थी। माता-पिता अपनी शक्तिके अनुसार कन्याको सम्पत्ति, ग्राम, दास और दासी भी देते थे। शायद इस दहेजके अधिकांशपर स्त्रीका ही अधिकार होता था, और वह स्त्री-धन समझा जाता था। कौटिल्य कहता है—'स्त्री-धन दो प्रकारका होता है: एक वृत्ति, दूसरा आबध्य ( गहना आभूषण आदि )। वृत्ति वह स्त्री-धन कहलाता है, जो स्त्रीके नामसे कहीं जमा किया हुआ हो। उसकी तादाद कमसे कम दो हज़ार होनी आवश्यक है।' इस स्त्री-धनको पतिके विदेश चले जानेपर लाचारी अवस्थामें, परिवारपर विपत्तिके समय या पतिके बिना किसी प्रकारकी सम्पत्ति छोड़े मर जानेपर स्त्रीको ख़र्च करनेका अधिकार रहता था। पर वहीं कौटिल्य यह भी कहता है कि पतिके मर जानेके बाद यदि स्त्री अपने ससुरकी इच्छाके विरुद्ध दूसरा विवाह करना चाहे, तो वह उस धनकी अधिकारिणी नहीं होगी।

विवाहके बाद ससुराल जानेके समय लड़कीको कुछ उपदेश दिए जाते थे। उन उपदेशोंसे भी स्त्रियोंकी दशापर रोशनी पड़ती है। उपदेश इस प्रकार हैं—घरकी अग्नि बाहर न ले जाना; बाहरकी अग्नि घरके अन्दर न लाना; जो देने लायक हो, उसीको देना; जो

देने लायक न हो, उसको न देना; जो देने लायक और न देने लायक हो, उन दोनोंको देना; सुखसे बैठना, सुखसे भोजन करना, सुखसे सोना, अग्नि-परिचर्या करना और गृह-देवताकी भक्ति करना।

इन दस मूल उपदेशोंकी व्याख्या इस प्रकार की जाती थी:—

(१) यदि सास या परिवारकी दूसरी स्त्रियाँ घरमें किसी बातकी चर्चा करें, तो उसे किसी दास-दासीसे न कहना। कारण, इससे उक्त चर्चाको लेकर तरह-तरहकी जल्पना-कल्पना और गृह-कलहकी सम्भावना होती है।

(२) दास-दासी जो कुछ चर्चा करें, उसे परिवारके लोगोंपर न ज़ाहिर करना। कारण, इससे नाना तरहकी बातें पैदा होती हैं और झगड़ा पैदा होता है।

(३) सिर्फ़ उसीको उधार देना, जो वापस दे सके।

(४) उसे उधार न देना, जो वापस न कर सके।

(५) यदि ग़रीब कुटुम्बी, रिश्तेदार और बन्धु-बान्धव माँगें, तो उनसे वापस मिलने और न मिलनेकी बातका ख़याल किए बिना ही देना।

(६) सास, ससुरको देखकर शिष्टतापूर्वक बैठना, अन्यथा खड़े रहना।

(७) सास, ससुर, पति और अपनेसे बड़ी स्त्रियोंको ख़ुद परोसकर, सुखसे खिला देनेके बाद, आरामके साथ खाना।

(८) सास, ससुर, पति और अपनेसे बड़ी स्त्रियोंके सोनेकी व्यवस्था करनेके बाद सोना।

(९) सास, ससुर और पतिके प्रति आदर और श्रद्धाका भाव रखना।

(१०) यदि कभी कोई श्रमण दरवाज़ेपर आ जाय, तो आदरपूर्वक उसको भोजनसे तृप्त करना। ( धम्मपदट्ठ कथा, प्रथम खंड )

बौद्ध गृहिणियोंमें उपर्युक्त सेवा-भावके साथ ही स्वाभिमानका गौरव भी उचित मात्रामें था। अंगराष्ट्र-निवासी धनंजय सेठकी पुत्री विशाखाने अपने बहुत बड़े धनशाली ससुर श्रावस्तीके मिगार सेठीके कोपकी कुछ भी परवाह नहीं की। विशाखा अपने ससुरको भोजन करा रही थी, इसी समय एक श्रमण दरवाज़ेपर आया। श्रमणको देखकर भी मिगार सेठी नीची गर्दन किए खाना खाता रहा था। इसपर विशाखाने कहा—'माफ़ करें भन्ते! मेरा ससुर पुराना खाना खाता है।' इसपर मिगार सेठीने क्रुद्ध होकर खाना हटा दिया और दासियोंसे कहा कि विशाखाको इस घरसे निकाल दो। पर विशाखा ऐसी-वैसी न थी। उसने कहा—'तात! वचन मात्रसे मैं नहीं निकलती। मैं कुम्भदासीकी तरह पनघटसे तुम्हारे द्वारा नहीं लाई गई हूँ।...आठों कुटुम्बियोंको बुलाकर मेरे दोषोंपर विचार करो।' आठों कुटुम्बी जुटे और उन्होंने विशाखाके पक्षमें फैसला दिया। इसपर विशाखाने कहा—'पहले मेरे ससुरके वचनसे मेरा जाना ठीक न था। मेरे आनेके दिन मेरे पिताने दोष-शोधनके लिए तुम्हारे ( आठ कुटुम्बियोंके ) हाथमें रखकर मुझे दिया था। अब मेरा जाना ठीक है।' यह कहकर उसने दास-दासियोंको यान तैयार करनेकी आज्ञा दी। तब उन कुटुम्बियोंको लेकर सेठीने विशाखासे क्षमा-याचना की।

दासी-प्रथा उस कालमें थी। दास-दासियोंका क्रय-विक्रय भी होता था। किसी-किसी परिवारमें सैकड़ों दास-दासियाँ रहते थे। अपनी योग्यतासे मालिकको ख़ुश करके दासियाँ मुक्त भी हो जाती थीं। अनाथपिंडकने अपनी क्रीतदासी पुन्नाको तर्कमें होशियार होनेके कारण मुक्त कर दिया था। थेरीगाथाके अनुसार दासोंके ऊपर मालिकका ही पूर्ण अधिकार था। मालिक जब तक उसे मुक्त न करे, उसका छुटकारा नहीं था। कभी-कभी गुस्सेमें मालिक दासोंको मार भी डालते थे। दास-दासियोंमें चोरी-जारीकी [illegible] थी। बुद्धके प्रचारसे जनचित्त दासोंके प्रति कुछ करुणाप्लावित हुआ था। यही कारण था, दासोंको मुक्त करनेका कौटिल्यने यह रास्ता निकाला कि दासकी सन्तानपर उसके मालिकका अधिकार न होगा।

उस कालमें वेश्यावृत्तिकी प्रथा थी। 'वैशालीमें कानून था कि कोई भी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी विवाह नहीं कर सकेगी। वह जनसाधारणके आनन्द-उपभोगके लिए रहेगी।' मगधराज बिम्बिसार तथा उस कालके प्रायः सभी राजे और वणिक् वेश्याके यहाँ जानेमें अपना गौरव समझते थे। बुद्धकी शिक्षा सार्वजनिक थी। उनकी शिक्षामें पतितसे भी प्रेमका आदेश था। नतीजा यह हुआ कि उस कालकी वारवनिताओंपर भी बुद्धकी शिक्षाका असर हुआ। अम्बपाली आदि अनेक प्रसिद्ध वेश्याओंने अपने पतित जीवनसे ऊबकर बुद्धकी शरण ली। वही वेश्याएँ बुद्धकी शिक्षासे आत्म-पंडिता होकर उस जीवनसे मुक्त हो

सकी। जीवक सरीखा रास्तेपर पड़ा वेश्या-पुत्र बुद्धकी शिक्षाके प्रभावसे ही अपने समयका महान् वैद्य बन सका।

बुद्ध-कालमें तलाक़की प्रथा भी थी ; पर इस सम्बन्धमें क़ानून भी था या नहीं, इसका पता नहीं चलता। थेरी-गाथामें इसिदासीकी एक कथाका उल्लेख है। उससे साबित होता है कि शादी करनेपर उसकी पतिसे न पटी, इसलिए उसने दूसरा पति चुना ; पर दुर्भाग्यवश उससे भी उसकी न पट सकी। उच्छंग-जातकमें एक स्त्रीका पति, भाई और पुत्र राज-कर्मचारी द्वारा गिरफ़्तार हुए। स्त्रीने राजासे फ़रियाद की। पर जब राजाने कहा कि तीनोंको नहीं छोड़ा जा सकता, तब स्त्रीने भाईको छोड़नेकी प्रार्थना की। इसपर राजाने कहा—'पुत्र या स्वामीको ले, तुझे भाईसे क्या ?' इसपर उसने एक गाथा कही, जिसका अर्थ है—'देव, पुत्र तो गोदमें है और पति रास्ता चलतीको भी मिल सकता है ; लेकिन वह देश नहीं दिखाई देता, जहाँसे भाई ( सहोदर ) लाया जा सके।' कौटिल्य-अर्थशास्त्रमें भी क़ानून है कि—'नीच, प्रवासी, राजद्रोही, घातक, जाति और धर्मसे पतित तथा नपुंसकको स्त्री छोड़ सकती है।' इसके अलावा कौटिल्य-अर्थशास्त्रके चौथे अध्यायके ५९ वें प्रकरणमें कम-से-कम एक दर्जनसे ऊपर ऐसी परिस्थितियोंका उल्लेख है, जिनमें स्त्रीको दूसरा पति चुन लेनेका अधिकार है।

बहुविवाहकी प्रथा उस कालमें थी। बहुपत्नीत्वके कारण सपत्नी-समस्या भी उस कालमें थी। इस प्रथासे अनेक परिवार दुखी थे। बुद्धकी शिक्षाका इस प्रथापर भी प्रभाव पड़ा। बहुत-सी शादियाँ करनेवालोंके प्रति जन-समूहकी दृष्टि अच्छी नहीं रहती थी। लोग इससे दुखी भी थे, इसीलिए कौटिल्यको इस प्रथाका नियन्त्रण करना पड़ा। कौटिल्य-अर्थशास्त्रके द्वितीय अध्यायके विवाह-प्रकरणमें क़ानून है कि—'यदि किसी स्त्रीके सन्तान न हो, या वह इस कार्यके लिए शरीरसे असमर्थ हो, तो उसका पति आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करे। यदि सन्तान मरी हुई होती हो, तो दस वर्ष और यदि कन्या ही पैदा हो, तो बारह वर्ष तक इन्तज़ार करे। इसके बाद पुत्रकी कामना रखनेवाला पुरुष दूसरा विवाह कर ले। जो पुरुष उपर्युक्त नियमका उल्लंघन करे ( अर्थात् निर्धारित समयसे पहले दूसरा विवाह करना चाहे ), उसके लिए आवश्यक था कि वह शुल्क ( विवाहमें प्राप्त हुआ धन-दहेजादि ) तथा इसके अतिरिक्त और धन अपनी पहली स्त्रीको दे और चौबीस पण तक जुर्माना सरकारको दे। पर मौर्य-साम्राज्यके पतनके बाद जब बौद्ध-धर्मके अन्दर भी पतनके सारे रोग इकट्ठे हो गए थे, तब जातक सं० ५१४ में एक राजाके सोलह हज़ार स्त्रियों तकका ज़िक्र है।

---

# गो-रक्षापर एक दृष्टि

श्री लक्ष्मणसिंह यादव

भारतवासियोंके लिए गो-रक्षाका प्रश्न नया नहीं है। हिन्दुओंके लिए तो यह समस्या उनके हृदयकी समस्या है। सही हो या ग़लत, हिन्दुओंके लिए गौकी रक्षा उनके इहलोक तथा परलोक-सम्बन्धी कल्पनाका केन्द्र-बिन्दु है। उनके लिए गौका स्थान सदा महत्त्वपूर्ण रहा है। उनके धर्म और उनकी संस्कृतिने इस विषयको अपना आधार माना है। देशमें जबसे आर्य-संस्कृति प्रारम्भ हुई और उसका प्रसार हुआ, तबसे ही समाजकी दीवार गो-पालन और गो-वृद्धिपर स्थापित हुई। यदि ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार किया जाय, तो प्राचीन आर्य-संस्कृति ग्रामीण संस्कृति है।* जो संस्कृति ग्रामोंसे पैदा हुई और फैली, उसमें कृषि और गो-पालनका महत्त्व होना स्वाभाविक है।

फलतः जिस देशके अधिकतर निवासी हिन्दू हों, वहाँ यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण होना स्वाभाविक ही है। हमारे वेद, ग्रन्थ, पुराण, इतिहास आदि जितने भी हिन्दू-शास्त्र हैं, सब गो-जातिकी भूरि-भूरि प्रशंसासे भरे पड़े हैं। परन्तु आज हिन्दू-जातिके सामाजिक संगठनका प्रायः ह्रास हो

* ग्रामीण ही नहीं, वरन् अच्छे अर्थोंमें जंगली भी। उपनिषदोंको 'आरण्यक' इसीलिए कहते हैं, क्योंकि वे अरण्योंमें लिखे गए। —सम्पादक

# बुकसेलरकी डायरी

एक बुकसेलर

२६-८-४१

मिस्टर देवीप्रसाद नेशनल बैंकमें काम करते हैं। आज उन्होंने मुझे अपने दफ़्तरमें किताबें बेचनेके लिए बुलाया था—बुलाया क्या था, उन्हें बुलाना पड़ा था—कुछ संकोचवश, एक दूसरे मित्रके अनुरोधसे। वहाँ किताबें बिकनेकी मुझे आशा नहीं थी। शायद उन्हें भी नहीं थी। फिर भी जाना मेरा काम था और बुलाना उनका कर्त्तव्य था। उन्होंने अपने मित्रोंसे पुस्तकें देखनेको कहा। उन्होंने देखीं; मगर न उन्हें कोई पुस्तक ख़रीदनी थी और न किसी पुस्तकको उनके हाथ बिकना था। देवीप्रसादजी मेरे पूर्व परिचित मित्र हैं। इन्श्योरेन्सके कनवेसर भी हैं। उनके भीतर मैंने अपने बुकसेलरसे मिलता-जुलता मानो उसीका एक प्रतिरूप देखा, जो व्यवसायकी बात करते-करते थक-सा जाता है। जितनी बड़ी बात कहता है, उसका आधा भी रोब उसके लहजेमें नहीं आता; अपने सौदेमें जितना लाभ गाहकका बतलाता है, उससे दूनी ग़रज़मन्दी अपनी दिखा बैठता है। ठीक यही कसरें मुझमें भी हैं। व्यापारी अपनेको गाहकसे छोटा और उसका एहसानमन्द समझने लगता है, यह भूल है। दर-असल वह गाहकको उसके लाभकी एक वस्तु देता है, जिसका मूल्य गाहकको सहर्ष पैसोंमें अदा करना चाहिए, और वह चीज़ यदि उसके पास विज्ञापन और सुविधाके साथ पहुँचाई गई है, तो उसे व्यापारीका आभारी भी होना चाहिए।

मिस्टर कालकाप्रसाद पंचाल भी मेरे स्नेही प्रियजन हैं। उनकी गिनती विशेष ज़िन्दादिल नवयुवकोंमें की जा सकती है। एक प्रतिष्ठित धार्मिक संस्थाके स्थानीय सेक्रेटरी हैं। किताबें ख़रीदने और बिकवानेके लिए आज मुझे अपने आफ़िसमें बुलाया था। उन्होंने और उनके मित्रोंने कुछ पुस्तकें ख़रीदीं। अपने दफ्तरके छोटे-बड़े और बराबरके सहकारियोंमें उनका सजीव सम मैत्री-भाव मुझे पसन्द आया।

२७-८-४१

आज आर्यनगरकी फेरीका प्रोग्राम था; लेकिन सबेरे ही सबेरे कानपुरके इनकम टैक्स-अफ़सर कुँवर यमुनाप्रसाद सिंहसे मिलने जानेका फ़ैसला हो गया। फेरी लगती है, तो किताबें बिकती हैं। किताबें बिकती हैं, तो मेरे लिए भी पैसे बचते हैं। फेरीमें अक्सर ऐसी तस्वीरें—जीती-जागती मानव-मूर्तियाँ—सामने आ जाती हैं, जिनसे कभी कुछ सीखा जा सकता है, जिन्हें कभी कुछ सिखाया जा सकता है और जिनपर कभी-कभी कुछ मुग्ध भी हुआ जा सकता है। लेकिन इस 'मिलने जाने'में ? इसमें मैंने देखा, मेरे बुकसेलरीके जीवनके लिए एक नए ही ढंगका अनुभव था।

कुँवर साहबके बँगलेका फाटक पार करते ही मैंने पहली बार अनुभव किया कि मैं आज किसीको पढ़ने नहीं, उसके सामने स्वयं अपनी परीक्षा देने जा रहा हूँ। कुँवर साहब एक सहृदय साहित्य-प्रेमी हैं, यह मुझे बतलाया गया था। उनके ड्राइंग-रूममें मुझे सत्कारपूर्वक आने दिया गया। उस गोल मेज़के किनारे एक कुर्सीपर बैठते ही वहाँके वातावरणमें मैंने पहली बार अनुभव किया, मानो मैं बहुत कुछ साहित्यिक सेवा-साधना कर चुका हूँ और इस क्षण उसका मुझे पुरस्कार मिल रहा है। कुँवर साहब मेरे सामने ही बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण झा वहाँ पहलेसे ही मौजूद थे। उन्होंने कुँवर साहबको मेरा परिचय दिया। मैंने भी उस समय सोचा, मैं कोई साधारण बुकसेलर नहीं, एक सहृदय और होनहार साहित्यिक हूँ। श्रीकृष्णजीके द्वारा उन्हें मेरा परिचय मिला था। 'इसके लिए तो मुझे आपका ही कृतज्ञ होना चाहिए।'—उन्होंने अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए झाजीसे कहा, और मैंने इस पुराने-से शिष्टाचारके वाक्यमें एक नया ही अर्थ देखा, जिसने मुझे गौरव तो नहीं, प्रोत्साहन बहुत-कुछ प्रदान किया। वाक्योंके अर्थ सम्भवतः उनके शब्दोंमें नहीं, उनके बोलनेवालोंमें ही अधिक हुआ करते हैं। मैंने भगवानको मनमें धन्यवाद दिया कि मैं अपने

लिए इनकम-टैक्सकी अदायगीमें उनसे रियायतकी कोई प्रार्थना करने नहीं आया था और न ही अपने बक्सकी किताबोंका कुछ बोझ हलका करनेकी मेरी उस समय उनसे ग़रज़ थी, नहीं तो शायद मैं उनके इतने स्नेह-सत्कारका अधिकारी न हो पाता।

नाहक़ ही मेरी आँखें अब तक कमरेकी दीवारोंपर टँगी हुई तस्वीरोंमें आश्रय खोज रही थीं। वे जैसे किसी कुशल परीक्षकके परीक्षा-भयसे भागती हुई कोई पनाह ढूँढ़ रही थीं और वहाँके साधारण-से चित्र-संग्रहमें उन्हें अटकने लायक़ कोई चीज़ नहीं मिल रही थी। आख़िर उन्होंने स्वस्थ होकर देखा, कुँवर साहबका सौम्य सुगठित चेहरा सामने मुस्करा रहा था। मेरे सामने मेरे अध्ययनकी सर्वोत्तम वस्तुओंमें से एक उपस्थित थी। मेरी परीक्षा कैसी? मैंने अब उत्सुकतापूर्वक उसका अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

मैंने देखा, कुँवर साहब साहित्यके ही नहीं, साहित्यिकोंके भी पारखी प्रेमी हैं। वे धन और मानके ही नहीं, सुरुचिके भी सम्पन्न हैं। 'पूजा', 'शुभ्रा' और 'बुकसेलरकी डायरी'—इन्हीं पहलुओंसे उन्हें मेरा परिचय दिया गया था। 'पूजा' और 'शुभ्रा' मैंने उनके हाथमें दीं। इनके लगभग सभी पृष्ठोंपर उन्होंने नज़र डाली। मैंने देखा, प्रत्येक लेखके एक-एक वाक्यसे उन्होंने इन पुस्तकोंकी भावनाएँ उतनी ही देरमें पढ़ लीं, जितनीमें उनका लेखक उन्हें पढ़ सकता था। इसमें मैंने उनकी प्रखर अध्ययन-क्षमता देखी। 'बुकसेलरकी डायरी'के कुछ अंश भी उन्हें सुनाए गए। सभी चीज़ें उन्हें पसन्द आईं। डायरीसे उनका काफ़ी मनोरंजन भी हुआ। 'आप ज़रा सम्हलकर रहिएगा, यह ( डायरी ) बड़ी ख़तरनाक चीज़ है।'—उनके एक उपस्थित प्रियजनने उनसे कहा।

मैंने कहा—'आपके लिए कोई फ़िक्रकी बात नहीं। यह डायरी तो सिर्फ़ मेरे गाहकोंके लिए है।' यह प्रसन्न मण्डली मुझ-जैसे कम-हैसियत बुकसेलरके लिए बड़े लोगोंकी मंडली थी; लेकिन इसने मुझे अपने साथ सरस सम-व्यवहारके लिए मानो ऊपर उठाया हुआ था। इसका कारण वहाँकी साहित्यिक सहृदयता थी, और इस सहृदयताका स्रोत था मेरा उस घरका आतिथ्यकार।

१० बजनेको थे। कुँवर साहबके इनकम-टैक्स आफ़िसका समय हो रहा था। मेरे सिरपर पाँच बजे शामकी डाकसे निकालनेके लिए एक पोस्टकार्ड लिखनेका बोझ सवार था। उनके और अपने बीच कार्यक्षमताका अन्तर मैं देख रहा था। मैंने पिछले अनेक अवसरोंकी तरह आज कुँवर साहबके सामने भी साश्चर्य सोचा, किस तरह मैं अधिक काम करनेकी समाई बढ़ाकर, अधिक अवकाश और मनोरंजनका उपभोग अधिक निश्चिन्तताके साथ कभी कर सकूँगा।

'पूजा' और 'शुभ्रा' कुँवर साहबको पसन्द आई थीं। अब ये पुस्तकें मुझे उनकी भेंट करनी चाहिए थीं; लेकिन मेरा न्याय कह रहा था, अधिक अच्छा हो, अगर कुँवर साहब इन्हें ख़रीद ही लें। मुझे प्रसन्नता ही हुई, जब मैंने देखा कि उन्होंने अपने नौकरसे डेढ़ रुपए—दोनों पुस्तकोंके दाम—मँगाकर मेरे हाथमें रख दिए। 'इतना ही इनका दाम है न? मैंने किताबोंपर छपे हुए दाम देखकर दिए हैं। अगर काग़ज़ और छपाईकी मँहगीके इन दिनोंमें इनका दाम बढ़ गए हों, तो बतला दीजिए।'—उन्होंने विनोदपूर्वक कहा। लेकिन मेरे पिछले, कमीशन और किफ़ायतके लिए उलझनेवाले, गाहकोंमें से कोई भी उत्तर देने नहीं आया।

अगले दिन कुँवर साहबको और भी पुस्तकें दिखाईं। जो उन्हें पसन्द आ सकती थीं, उन्होंने ले लीं। दाम जोड़कर मैंने बतला दिए। 'बस, इतने ही?'—उन्होंने सम्भवतः समझा, दाम बहुत कम हैं। मुझे कहना पड़ा—'जी हाँ, इतने ही। मैंने आपके लिए स्पेशल रेट लगा दिया है।' 'नहीं, ऐसा मत कीजिए, आप पूरे दाम लीजिए।'—उन्होंने आग्रह किया। मैंने उन्हें बताया कि मैंने उनसे बिना डिस्काउंट और कमीशनका स्पेशल रेट चार्ज किया है। सचमुच कुँवर साहब मेरे स्पेशल गाहक हैं, और मैं उनसे किसी विशेषताकी ही आशा कर सकता हूँ।

२-९-४१

३० अगस्तको कानपुरसे चलकर इटावामें डेरा डाला गया है। किताबोंका स्टाक यहाँ काफ़ी नहीं है, और अब आगरा पहुँचनेकी भी जल्दी है, इसलिए यहाँ कोई विशेष काम नहीं किया गया। कल-परसों शहरमें दो-एक जगह परिचय किया और आज एक फेरी लगा ली। श्री सूर्यनारायण अग्रवाल ( बी० ए० ) स्थानीय पब्लिक लाइब्रेरीके सेक्रेटरी हैं। आजकी फेरीमें पहली भेंट उन्हींसे की। ख़ातिरसे पेश आए। दो पुस्तकें

ख़रीदीं, एक पत्रके ग्राहक बने। आर्डरके लिए और पुस्तकोंकी सूची उनके पुस्तकाध्यक्ष बनाकर देंगे। मेरे परिचयकी भी कुछ बातें उन्होंने पूछीं। ऐसी पूछ-ताछमें अक्सर अहृदय कौतूहल और पूछे जानेवालेके सम्मानके प्रति उपेक्षाका भाव रहा करता है ; लेकिन इनके शब्दोंमें मैंने आदर और मिठास तथा स्वरमें अपनेपनकी तरलता देखी। इनसे मिलकर प्रसन्नता हुई। बड़े सज्जन और मिलनसार हैं।

सनातनधर्म हाई स्कूलमें पहली भेंट वहाँके क्लर्क या हेडक्लर्क महोदयसे हुई। उन्हें मैंने वयोवृद्ध सनातन-धर्मका ही मूर्त्त रूप पाया। मुझसे दया-ममतापूर्वक बातें कीं। हेडमास्टर साहबसे भी बात हुई। सज्जन और उदारचेता जान पड़े। हिन्दी-अध्यापकको एक पुस्तक मैंने देखनेके लिए दी। उनके कुछ विद्यार्थी पुस्तक ख़रीदना चाहेंगे, तो वे कल मुझे बतलायँगे। सनातनधर्म हाई स्कूल मुझे सुगम और सुविधापूर्ण जान पड़ा।

डाक्टर शम्भूशरन अग्रवाल हँसमुख और सुस्वभाव नवयुवक हैं। उन्हें देखकर भी मुझे प्रसन्नता हुई। उनके मतलबकी कोई पुस्तक मेरे पास नहीं निकली। और आगे वह छोटा-सा आर्यकन्या-पाठशाला। छोड़ते-छोड़ते सोचा, लाओ यहाँ भी थोड़ी-सी आज़माइश करते चलें, शायद कुछ बिक ही जाय। मैं तो नहीं, मेरी किताबें ज़रूर स्कूलके अन्दर जा सकती थीं, एक नौकरानीसे मुझे मालूम हुआ। कुछ किताबें मैंने भीतर भेज दीं। क्लर्क बाबूका जवाब आया कि मैं तीन बजे हेडमिस्ट्रेससे मिल सकूँगा। मिलना-जुलना बेकार ही रहेगा, मैंने सोचा ; लेकिन फिर भी हर्ज़ क्या है ? किताबें दफ़्तरमें छोड़कर मैं घर वापस आया और तीन बजे फिर वहाँ जा पहुँचा। क्लर्क बाबूके दफ़्तरमें इन्तज़ार करते हुए बैठे-बैठे मैंने सुना, हेडमिस्ट्रेस अपने पार्टीशनमें बैठी स्कूल-मैनेजरसे बात कर रही थीं। मुझे सुनकर कौतूहल हो रहा था, क्योंकि उनकी आवाज़ मसूरी सनातनधर्म गर्ल्स स्कूलकी हेडमिस्ट्रेस मिस एस० मुकर्जीसे बहुत अधिक मिलती-जुलती थी। थोड़ी देर बाद मुझे पार्टीशनके पर्देके भीतर उनकी मेज़के पास बुलाया गया। मेरे वहाँ जा बैठनेपर भी मैनेजरके साथ उनकी बातचीत दो-डेढ़ मिनट और चलती रही। 'माफ़ कीजिएगा',—उन्होंने बीचमें एक बार मुझसे कहा। मैंने उनके इस एटीकेटपर मन ही मन उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें बात समाप्त कर लेनेकी अनुमति दे दी।' उनके स्वरकी ही नहीं, उनके रूपका भी सादृश्य देखकर मुझे अपनी मसूरीकी पुरानी ग्राहिकाकी याद आ रही थी। यह प्रसन्नताकी बात जान पड़ती है कि आजकलकी कोई-कोई शिक्षित लड़कियाँ आजके पढ़े-लिखे लड़कोंसे अक्सर विनय और मधुर व्यवहारमें भी आगे बढ़ जानेकी स्पर्द्धा रखती हैं। अक्सर वे नवयुवकोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानती हैं कि नवागत अपरिचितोंको अनुगृहीत करनेके लिए कमसे कम कितना अवश्य करना चाहिए। 'किताबें तो उनका बजट मंज़ूर होनेपर ख़रीदी जा सकेंगी, फिर भी मैं ये दो किताबें अभी अपनी जेबसे ख़रीदे ले रही हूँ ; क्योंकि आप सिर्फ़ कल तक यहाँ ठहरेंगे।'—कहकर उन्होंने दो पुस्तकें निकाल लीं और मेरी लिस्टमें से कुछ और किताबोंके नाम आयन्दा मँगानेके लिए नोट कर लिए। मुझे भय है, इन जैसी भारतीय तरुणियोंकी विनम्रता और मधुर व्यवहार अपने परिवार तथा दैनिक सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंके साथ शायद ही ऐसा रह पाता हो, फिर भी जब, जितने समयके लिए, ऐसे नमूने देखनेमें आते हैं, ख़ुशी होती ही है।

घियागंजवाले घीके व्यापारी उन गुजराती सेठजीको उस दिन दूकानपर विश्राम करते देखा था, और तबसे उनके दरवाज़ेपर एक बार आवाज़ दे लेनेको जी चाह रहा था। आख़िर आज उनके दर्शन हुए ही। 'किताबोंका सौख नहीं भइया, हमें तो अब वहाँ जानेका सौख है। भगवान यहाँकी झंझटोंसे छुड़ाकर बुला ले।'—अपने व्यापारियोंके बीच काममें व्यस्त, उन्होंने आकाशमें रहनेवाले अपने भगवानकी ओर संकेत करके मेरे प्रश्नके उत्तरमें कहा। विस्मयपूर्वक मैंने देखा, उनकी मेरी रुचि शायद थोड़ी-बहुत मिलती-जुलती थी, यही उनके प्रति मेरी प्रवृत्तिका कारण हो सकता है। मेरे पास भाई परमानन्दकी पुस्तक 'मेरे अन्त समयके विचार' उस समय मौजूद थी। उन्हींके-से मनोरंजक स्वरमें, मैंने सोचा, इस बातकी सूचना उन्हें दे दूँ ; लेकिन उनके पास भीड़-भाड़ और उसका शोर-गुल बहुत था, इसलिए मुझे बिना कोई विशेष उत्तर दिए वापस चला आना ही उस समय सुविधाजनक हुआ।

९-९-४१

४ तारीख़को आगरा आ गया हूँ, दो दिन कम दो

महीनेका दौरा पूरा करके। आगरा अब भी घर-सा लगता है। यह और जगहोंसे, जिनमें मैं आगरेके मुक़ाबले अधिक समय तक रहा हूँ, अधिक अपना-सा जान पड़ता है। ४ से ७ तक, लगभग तीन दिन, मैंने कमानेके लिए कोई काम नहीं किया। यह तीन दिनका आराम अनुचित तो नहीं; लेकिन आवश्यकतासे अधिक था। ख़ैर, कलसे कुछ काम शुरू कर दिया है। इरादा हुआ था, अबकी बार कलकत्ते जाया जाय। लेकिन प्रबन्ध? प्रबन्ध तो हो ही जायगा, सोच लिया था और हो भी गया। प्रकाश ब्रदर्सकी ओरसे स्वयं ही मेरे कलकत्ते जानेका प्रस्ताव कर दिया गया। किराया वे देंगे। उनके मासिक 'नोंकझोंक'के ग्राहक बिहार और कलकत्तेमें बनाने होंगे। बहुत अच्छा है। कलसे इसी पत्रके स्थानीय ग्राहक बनानेके लिए कुछ दौड़-धूप शुरू की है, और आज एक पहला ग्राहक बनाया भी है। पिछले दौरेमें सफलता कुछ बड़ी हुई कही जा सकती है। बिकी हुई पुस्तकोंके ११०) प्रकाशकोंके देने थे, उनमें से ९५) दे दिए हैं, यह भी सन्तोषजनक है। अबकी ख़र्च दोहरा, दो मुसाफ़िरोंका था। अकेले जानेपर यह कमी अबकी बार सहज ही पूरी हो जायगी, ऐसी आशा है।

और आजकी कोई तस्वीर? एक है। आगरेकी एक गलीमें 'नोंकझोंक'के पुराने गाहकोंके दरवाज़े खोजते हुए मैंने उन्हें देखा। वह एक अच्छे साप्ताहिक पत्रके सम्पादक और इस तरह एक हैसियतदार व्यक्ति रहे हैं। मेरे परिचित हैं। अपने उस सम्पादन-कालमें अक्सर मुझपर उन्होंने कृपा भी की है। आज अचानक भेंट हो गई। बातचीत हुई। मालूम हुआ कि अब तक वे एक स्थानीय दैनिक पत्रमें ४०) मासिक वेतनपर पूरे समय काम करते थे, अब वहाँ कम रुपयोंपर कम देर तक काम करते हैं; क्योंकि हिन्दीमें उन्होंने एम० ए०के लिए कालेजमें नाम लिखाया हुआ है। एक ट्यूशन भी है, इसी तरह काम चलता है। लेकिन ४०) रुपएमें—बिना यह हिसाब लगाए कि अब शायद उन्हें ४०) से कम मिलते होंगे—मैं सोच रहा था, इनका गुज़र कैसे, कितने कष्टसे चलता होगा। मेरे मनमें एक करुण-सी सहानुभूति उनके लिए उमड़ रही थी, जैसे मैं उनके वास्ते कहीं ६०-७०) के लिए सिफ़ारिश करने जा रहा था। और मेरे पास? उस समय तक मैंने कई जगह बारह-बारह पैसेके दो-तीन सिक्के कमानेके लिए असफल टक्करें लगाई थीं। उस दिनकी कमाई—वही बारह पैसे—मेरी जेबमें आनेमें अभी तीन घंटेकी देर थी और उसका भी कुछ ठीक न था। फिर भी अपने ऊपर तरस खानेके लिए मेरे पास कोई बात न थी; क्योंकि मेरी तंगी और ग़रीबी मेरा एक रुचिकर और उद्देश्यपूर्ण प्रयोग था और मैं एक नवयुवक था। अपने उन मित्रकी संकीर्ण परिस्थितिकी मुझे चिन्ता हुई थी; क्योंकि वह उनकी एक नीरस-सी परिस्थिति थी, और वे उस परिस्थितिके जैसे-तैसे पार पहुँचनेके इच्छुक अब एक युवक मात्र थे। उनके बन्दगलेके कोटपर उनकी उदासीकी कालिमा रेखांकित थी, और मेरी आधी बाँह कमीज़की फटी जेबसे मेरी अलमस्ती उझक रही थी।

१२-९-४१

१० को फेरी लगी। ११ को छुट्टी मनाई, मकान बदलना था, और आज १२ को फिर फेरी लगी। १०को 'नोंकझोंक'के ग्राहक बने श्री विश्वेश्वरनाथ, पिक्चर मर्चेंट और श्री मुरलीधर पन्नालाल बेलनगंज - निवासी। विश्वेश्वरनाथजीने १२ को चन्दा दफ़्तरमें भेज देनेका वादा किया और सितम्बरका अंक मैंने उसी समय उन्हें अदा कर दिया। मेसर्स मुरलीधर पन्नालालने खन्नसे चन्देकी ६ चवन्नियाँ मेरी रसीद-बुकसे ऊपर उँड़ेल दीं। मैंने उनका पहला सितम्बरका अंक अगले दिन उनके पास भिजवा देनेका वादा कर लिया। दुनियामें किसीके लिए कोई ज़मानत काफ़ी होती है और किसीके लिए कोई।

उस दिन अपने पुकारे हुए गाहकोंमें भी यथानियम मैंने अपनी सगी दुनियाकी कुछ नैरंगियाँ देखीं। 'हमें अख़बार देखनेकी फ़ुर्सत नहीं', एकने कहा; 'हमें माफ़ कीजिए', दूसरेने अपनी भारतीय विनम्रता प्रकट की; 'हम तो हाकरको एक पैसा देकर अख़बार पढ़ लेते हैं', तीसरेने अपना कौशल जतलाया (चाहता हूँ, मैं यह ख़बर किसी हिन्दुस्तानी पत्र-प्रकाशकको कुछ पैसोंमें बेच सकता) और चौथे सज्जनने मुझे समझा दिया कि काम-धन्धेमें लगे लोगोंके वास्ते कुछ पढ़ना-लिखना फिज़ूल है। शर्मा रेडियो कम्पनीके नौजवान मालिक (?) ने पहुँचते समय मुझे कुर्सी दी और चलते वक्त हाथ मिलाया। कपड़ेके दूकानदार एक कमउम्र सज्जनको इनकार करनेमें बहुत-कुछ संकोचका सामना और कईएक बहानोंका सहारा लेना पड़ा।

# हिन्दीमें वैज्ञानिक शब्दोंकी रचना

श्री कृष्णानन्द गुप्त

[ हिन्दी-लेखकोंको एक-दूसरेसे मिलने और परस्पर विचार-विनिमय करनेका बहुत कम अवसर मिलता है। इसी विचारसे प्रेरित होकर श्रीयुत पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीने गत वर्ष जूनके महीनेमें टीकमगढ़में एक स्वाध्याय-मंडलकी योजना की थी। इस अवसरपर सर्वश्री कृष्णानन्दजी गुप्त, जगदीशप्रसादजी चतुर्वेदी और यशपालजी जैन तो वहाँ उपस्थित थे ही, दिल्लीसे श्री जैनेन्द्रजी तथा महात्मा भगवानदीनजी भी आ गए थे। मंडलकी बैठकमें एक दिन हिन्दी और उर्दूकी समस्यापर विचार हुआ, और यह प्रश्न सामने आया कि वैज्ञानिक ग्रन्थोंका निर्माण करते समय किस प्रकारकी भाषा काममें लाई जाय। श्री जैनेन्द्रजी तथा महात्मा भगवानदीनजी इस पक्षमें थे कि वैज्ञानिक ग्रन्थोंके लिए जहाँ तक सम्भव हो, देशज और बोलचालके शब्दोंसे हमें अपना काम चलाना चाहिए—जलकी जगह हम पानी कहें और वायुकी जगह हवा। किन्तु श्री कृष्णानन्दजीका कहना यह था कि प्रचारके ग्रन्थोंके लिए हम भले ही बोलचालकी भाषाका व्यवहार करें ; परन्तु शास्त्रीय ग्रन्थोंकी रचनाका जहाँ तक सम्बन्ध है, संस्कृत शब्दोंके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। अनेक स्थलोंपर उनका प्रयोग हमारे लिए आवश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य है। इसलिए हमें बोलचालकी हिन्दुस्तानी भाषाके मोहमें न पड़कर संस्कृतके आधारपर ही वैज्ञानिक शब्दोंकी रचना करनी चाहिए। अपने इसी दृष्टिकोणको स्पष्ट करनेके लिए श्री कृष्णानन्दजीने मंडलके सदस्योंके समक्ष यह लेख पढ़ा था, जिसे हम उपयोगी समझकर यहाँ सहर्ष प्रकाशित कर रहे हैं। —सं० ]

हिन्दी और उर्दूकी समस्यापर विचार करते समय हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ है कि वैज्ञानिक ग्रन्थोंकी रचना किस तरहकी भाषामें की जाय ? वैज्ञानिक शब्द हम कहाँसे लायँ ?

मेरे कुछ मित्रोंकी धारणा है कि संस्कृत या अरबी-फ़ारसीके शब्दोंके प्रयोगके बिना भी हमारा काम चल सकता है। अगर हम जलको पानी, वायुको हवा और विद्युत्को बिजली कहने लगें, तो उर्दू-हिन्दीका झगड़ा बहुत कुछ निपट जाय। हमारे एक मान्य मित्रने तो जेम्स जीनकी एक पुस्तकके कुछ अंशको बोलचालकी भाषामें अनुवाद करनेका प्रयत्न भी किया। इस सम्बन्धमें वे कितने सफल हुए, मैं कह नहीं सकता। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि संस्कृत या अरबी-फ़ारसीके शब्दोंका आश्रय ग्रहण किए बिना वैज्ञानिक ग्रन्थोंकी रचना एक असम्भव-सा कार्य है। हिन्दीमें विज्ञानकी एक साधारण-सी पोथी लिखनेमें भी कितनी कठिनाईका सामना करना पड़ता है, इसका अनुभव आपमें से बहुत कम लोगोंको होगा। अंगरेज़ीमें नित्य नए-नए शब्दोंका प्रचार हो रहा है। बोलचालकी भाषामें वे शब्द आपको कहाँसे मिलेंगे ? इन शब्दोंको आप अन्तर्राष्ट्रीय सिक्कोंकी तरह या तो ज्योंका त्यों अपनाइए, या फिर उनके नए रूप गढ़िए। इतना ही नहीं, मैं तो आपसे यह कहना चाहता हूँ कि विज्ञानकी भाषामें पानीको जल, हवाको वायु और बिजलीको विद्युत् कहनेमें अधिक सुविधा होती है। उर्दूवाले इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि देशी शब्दोंके बजाय फ़ारसी अथवा अरबी लफ़्ज़ोंमें शब्द-निर्माणकी अधिक क्षमता मौजूद है। इसलिए वे Electricity को बिजली न कहकर बर्क़ कहते हैं।* आवश्यकता पड़नेपर हम अरबी-फ़ारसीसे शब्द ले सकते हैं ; परन्तु संस्कृतसे हम अधिक परिचित हैं। मूल संस्कृत शब्दोंको छोड़कर देशी शब्दोंके आधारपर वैज्ञानिक शब्दोंकी रचनाका प्रयत्न करें, तो यह वास्तवमें एक उपहासास्पद बात होगी।

हम सरल-से-सरल भाषाका प्रयोग करें, यह तो ठीक है ; परन्तु मेरा विश्वास है कि शब्दोंके प्रयोगपर ही भाषाकी कठिनता या सरलता निर्भर नहीं करती। लेखकको यदि अपने विषयका पूरा ज्ञान है, तो वह उचित पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग करके—जिनका उपयोग मैं हर हालतमें आवश्यक मानता हूँ—सरल और सुबोध ढंगसे अपनी बात पाठक तक पहुँचा सकता है। सरल होनेके साथ ही हमारे लिए सुबोध होना भी आवश्यक है। वैज्ञानिक

* देखिए अंजुमन-ए-तरक्क़ी-ए-उर्दू द्वारा प्रकाशित A Glossary Technical Terms, Part III.

ग्रन्थोंमें ज़रूरतसे ज़्यादा सरल बननेके मानी 'कभी-कभी यह होते हैं कि लेखक या तो बहुत दुरूह बन जाता है या फिर नितान्त अवैज्ञानिक और भोंड़े ढंगसे अपनी बात कहने लगता है।

विज्ञान साहित्य नहीं है, यद्यपि साहित्यकी छटा उसे मिल चुकी है। जेम्स जीन, एडिंगटन, जूलियन हक्सले, जे० आर्थर टामसन, हाल्डेन, एच० जी० वेल्स आदि लेखकों और वैज्ञानिकोंने विज्ञानकी भाषाको एक नया ही रूप प्रदान किया है, जो बड़ा ही मनोहर और हृदयग्राही है। प्रोफ़ेसर एण्डरेड ( E. N. da C. Andrade) की 'परमाणु' (The Atom) नामक पुस्तक यदि आप पढ़ें, तो आपको पता चलेगा कि विज्ञानके गम्भीर-से-गम्भीर विषयको कितना सरल बनाकर लिखा जा सकता है। यदि इन लेखकोंका वश चले, तो पारिभाषिक शब्दोंका वे बिलकुल उपयोग ही न करें। परन्तु अंगरेज़ीमें आधेसे अधिक शब्द तो साधारण-से हो गए हैं। कहना चाहिए कि रोज़मर्रा उनका उपयोग होता है, इसलिए पाठकोंके लिए उनमें कोई अजनबीपन नहीं रहा। बाक़ी शब्द ऐसे हैं कि उनके प्रयोगके बिना वैज्ञानिकोंका काम नहीं चल सकता। विषयकी गम्भीरताके साथ भाषाके सम्बन्धमें भी उन्हें अन्वेषककी सूक्ष्म दृष्टिसे काम लेनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। इसलिए किसी वैज्ञानिक पुस्तकको, जिसमें पारिभाषिक शब्दोंका अधिक प्रयोग किया गया हो, यदि आप ग़ुस्सेसे उठाकर अलग फेंक दें और उसे पढ़ना पसन्द न करें, तो यह बड़ा अन्याय होगा। विज्ञानने अनेक नए पदार्थों और जीवधारियोंका अनुसन्धान किया है। साधारण व्यक्ति उनसे परिचित नहीं हैं। अपनी सुविधाके लिए वैज्ञानिकोंने एक विशेष पद्धतिके अनुसार उनका नामकरण किया है। अंगरेज़ीमें सिंहका वैज्ञानिक नाम Felis Leo है। इसके स्थानपर प्रचलित शब्द Lion (लायन) का प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु Amaeba Proteus एक ऐसा जीव है, जिसके विषयमें साधारण पाठक कुछ भी नहीं जानते, और न बोलचालकी भाषामें उसका कोई नाम ही मौजूद है। अतएव वैज्ञानिकोंको जब 'अमीबा'के बारेमें कुछ लिखना होता है, तो उनको मजबूर होकर इस अपरिचित और वैज्ञानिक शब्दका ही प्रयोग करना पड़ता है। इसमें कोई सन्देह नहीं, और यह वास्तवमें खेदकी बात है कि अधिकांश वैज्ञानिक शब्द बड़े बेतुके और भारी-भरकम होते हैं। परन्तु किया क्या जाय? विज्ञानका अध्ययन करनेके लिए इनके साथ हमें अपनी मैत्री स्थापित करनी पड़ेगी। अब मैं आपसे पूछता हूँ कि 'अमीबा'को आप हिन्दीमें क्या कहेंगे? क्या आप समझते हैं कि इस कठिन शब्दका प्रयोग किए बिन आपका काम चल जायगा? उदाहरण देकर मैं अपने कथनको और भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

लोहा नामकी धातु है, उसे अंगरेज़ीमें साधारण तौरसे आयरन (Iron) कहते हैं; परन्तु रसायन-शास्त्रीका काम इस शब्दसे नहीं निभता। उसे आयरनको Ferrum (फ़ैरम) ही कहना पड़ता है। फ़ैरम सल्फेट और आयरन सल्फेटमें कोई अन्तर नहीं है। परन्तु फिर भी लैटिनके फ़ैरूजीनस आदि शब्दोंका निर्माण जिस सुगमतासे हो सकता है, वह 'आयरन'से सम्भव नहीं। हिन्दीमें भी आप 'आयरन'की जगह लोहेका प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु आवश्यकता पड़नेपर मैं उसे लौह कहना अधिक पसन्द करूँगा; क्योंकि उससे तुरन्त ही फ़ैरिक या फ़ैरीफोरस शब्दोंका निर्माण कर सकते हैं। लोहेका बना हुआ, अथवा लोहा पैदा करनेवाली चीज़की जगह लौह-निर्मित और लौह-दायक शब्द अधिक चुस्त हैं।

रसायन-शास्त्रमें तेज़ाबके साथ धातुओंका संयोग होनेसे जो एक ख़ास तरहके पदार्थ प्राप्त होते हैं, वे सभी साल्ट या नमक कहलाते हैं। कसीस एक नमक है। अंगरेज़ीमें उसे आयरन सल्फेट (Iron Sulphate) कहते हैं; क्योंकि वह लोहा और गन्धकके संयोगसे बनता है। कौन-सा नमक किस परिवारका है, इस बातको स्पष्ट करनेके लिए नामकरणकी एक ख़ास पद्धतिका अनुसरण करना पड़ता है। सोडियम क्लोराइडको हम खानेका नमक भले ही कहें; परन्तु सोडियमसे और भी कई नमक बनते हैं। उनका जहाँ हम उल्लेख करेंगे, वहाँ तो उसे सोडियम क्लोराइडका ही नाम देना पड़ेगा। आपको यह जानकर शायद बड़ा असन्तोष होगा कि पानीको पानी ( Water—वाटर ) न कहकर कभी-कभी हाइड्रोजन आक्साइडके कठिन नामसे पुकारनेकी ज़रूरत पड़ती है। सम्भव है, इस शब्दकी जगह पानीसे आपका काम चल जाय; परन्तु हाइड्रोजनके साथ आक्सीजनके एक और परमाणुका संयोग होनेसे हाइड्रोजन-पर-आक्साइड नामकी जो चीज़ बनती है उसे आप क्या कहेंगे? कठिन होनेकी

वजहसे क्या आप इस शब्दका प्रयोग नहीं करेंगे ?

दो पदार्थोंके मिलनेसे जब एक नया पदार्थ बनता है, तो उसे 'रासायनिक परिवर्त्तन' कहते हैं। हाइड्रोजन और आक्सीजनके मिलनेसे पानी बनता है। यह रासायनिक परिवर्त्तन है। परन्तु एक भौतिक परिवर्त्तन भी है, जिसमें चीज़ोंके आन्तरिक गुण और धर्ममें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। जैसे पानीसे बर्फ़, बर्फ़से पानी, और पानीसे भाप और भापसे बादल। यदि हम इससे आगे बढ़ें, तो कह सकते हैं—जैसे शब्दसे गति, गतिसे गर्मी, गर्मीसे विद्युत और विद्युतसे शब्द। ये सब भौतिक परिवर्त्तन हैं। इन सब परिवर्त्तनोंका आश्रय ग्रहण करके तरह-तरहके जो नवीन पदार्थ बनते हैं और शक्तिके जो अनेक रूप प्रकट होते हैं, उन सब पदार्थों और रूपोंके गुण, धर्म और नाम तथा क्रियाओंको व्यक्त करनेके लिए हमें यथार्थ और उपयुक्त शब्द चाहिएँ। इन शब्दोंके बारेमें यह चेतना ठीक नहीं कि वे कठिन हैं, या सहल; हिन्दीके हैं या उर्दूके; अंगरेज़ीके हैं या फ़ारसीके। यदि शब्द सरल हों, तो कहना ही क्या; परन्तु सहल बनानेकी फ़िक्र करके वैज्ञानिक यथार्थताको ठेस पहुँचाना उचित नहीं। हम जो कुछ कहना चाहते हैं, वह संक्षिप्त और यथार्थ हो। विज्ञानकी भाषाका यह प्रथम गुण है। अगर मुश्किल लफ़्ज़ोंसे हमारा काम चलता है, तो उनका व्यवहार हमें करना ही पड़ेगा। सोडियमके साथ जिस प्रकार क्लोरीनके मिलनेसे खानेका नमक बनता है, उसी तरह सोडियम, कारबन और आक्सीजनके मिलनेसे कपड़ा धोनेका सोडा बनता है। खानेका सोडा एक अलग पदार्थ है, इसलिए कपड़ा धोनेके सोडेको साधारण तौरसे Washing Soda (वाशिंग सोडा) कहते हैं। परन्तु रसायन-शास्त्रकी भाषामें हमें मजबूर होकर सोडियम कारबोनेट कहना पड़ता है। अब मैं आपसे पूछता हूँ कि सोडियम क्लोराइड और सोडियम कारबोनेटको आप शास्त्रीय दृष्टिसे हिन्दीमें क्या कहेंगे ? क्या आप समझते हैं कि खानेका नमक और सोडा कहनेसे आपका कार्य चल जायगा ? मैं मान लेता हूँ कि शायद चल जाय, परन्तु सोडियमके साथ शोरेका तेज़ाब जब मिलता है और उससे सोडियम नाइट्रेट नामकी जो वस्तु बनती है, उसे क्या कहेंगे ? उसे तो सोडियम सलफेट, सोडियम बाई क्लोराइड, सोडियम टेट्रा क्लोराइड वग़ैरह-वग़ैरह आपको हैरान करनेके लिए मौजूद हैं। इनमें से अधिकांश चीज़ें नई हैं। सर्वसाधारण उनसे परिचित नहीं हैं और न उनके कोई नाम ही हमारी भाषामें मौजूद हैं।

मुझे विज्ञानसे थोड़ा प्रेम है। बालकोंके लिए सुगम और सुबोध भाषामें वैज्ञानिक पुस्तकोंका निर्माण करना मेरा एक ध्येय है। इसलिए मुझे यदि सरल शब्द मिल जायँ और उनसे मेरा मतलब हल हो सके; तो मैं तो प्रसन्नतापूर्वक उनका प्रयोग करनेके लिए तैयार हूँ। मैं तो पानीको पानी ही कहना चाहता हूँ; परन्तु कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जलकी जो जलीय अवस्था है, वह समझनेमें ज़्यादा आसान है। पानीय कहनेसे दूध, शर्बत अथवा किसी ऐसे ही पेय पदार्थका भ्रम पाठकोंको हो सकता है। इसी प्रकार भापको मैं भाप ही कहूँगा। परन्तु मैं चाहता हूँ कि जहाँ आप विज्ञान (विशेष ज्ञान) की चर्चा कर रहे हैं, वहाँ हमारे बालक वाष्पसे भी अपना परिचय स्थापित करें; क्योंकि अंगरेज़ीके Vapourisation शब्दको यदि आप हिन्दीमें लिखना चाहते हैं, तो भापीकरण बड़ा अजीब हो जाता है। वाष्पीकरण मुश्किल है, तो क्या हुआ ? पाठकको एक नया शब्द तो आप देते हैं। भाषा सरल हो, यह ठीक है; परन्तु सही शब्दका प्रयोग हो, यह भी तो ज़रूरी है।

मुझसे कहा गया कि Gravitation के लिए मैंने जो गुरुत्वाकर्षण शब्दका व्यवहार किया है, वह कुछ भारी है, और उसकी जगह मैं खिंचाव या आकर्षण शब्दका प्रयोग कर सकता था। मुझे तो ख़ुशी होती, यदि मैं ऐसा कर सकता, परन्तु आकर्षणसे मेरा काम नहीं चलता। सुनिए, कैसे ? आकर्षण तो एक व्यापक शब्द है, जिसका अर्थ है खिंचाव। वह फिर बिजलीका खिंचाव हो सकता है, चुम्बकका भी और दो पिंडोंके बीचका भी। अंगरेज़ीमें आकर्षणको Attraction (अट्रैक्शन) कहेंगे—जैसे Magnetic attraction अर्थात् चुम्बकीय आकर्षण। पृथ्वीमें भी आकर्षण-शक्ति है, यह कहना तो ठीक है; परन्तु पृथ्वीकी Gravity या गुरुत्वसे जब इस आकर्षणका विशेष सम्बन्ध है, तब इसे पृथ्वीकी आकर्षण-शक्ति या खिंचाव न कहकर गुरुत्वाकर्षण कहना ही मैं अधिक उचित समझता हूँ। पृथ्वीके आकर्षणके लिए यदि आप सीधे-सादे शब्द खिंचावका व्यवहार करें, तो Gravity या गुरुत्व शब्द

स्थान-भ्रष्ट-सा हो जाता है। खिंचावमें उसका आभास नहीं मिलता।

बालकोंके लिए सरल भाषामें किताब लिखी जा स है ; परन्तु वह काम आसान नहीं। और फिर आप क्यों मानते हैं कि एक कठिन शब्दके प्रयोगसे सारा वि ही दुर्बोध हो सकता है ? आपको यह बात तो मान ही पड़ेगी कि शब्द आपके पास उपयोग करनेके लिए हों फिर उनका प्रयोग आप करें या न करें। किसी एक भ अथवा पदार्थको व्यक्त करनेके लिए शब्द चाहिए, जब शब्द मौजूद है, तो यह भी ज़रूरी है कि पाठक उ परिचित हो। मैं पारिभाषिक शब्दोंसे बचनेकी फ़िक्र न करता ; बल्कि उनके प्रयोगकी कोशिश करता हूँ, और मान लेता हूँ कि हिन्दी-पाठकके लिए वे बिलकुल न हैं। इसलिए इस ढंगसे उसे समझा भी देता हूँ कि पाठ जान जाय कि ज्ञान यदि उसे प्राप्त करना है, तो इ शब्दोंका परिचय भी उसके लिए ज़रूरी है। बालकोंके लिए मैंने जो तीन-चार वैज्ञानिक पुस्तकें लिखी हैं, उनमें इसी पद्धतिका अनुसरण किया गया है।

बालकों अथवा साधारण पाठकोंके लिए जो वैज्ञानि पुस्तकें लिखी जायँ, उनमें यथावश्यक उचित पारिभा शब्दोंका प्रयोग तो अवश्य किया जाय ; परन्तु श प्रयोग यदि पुस्तकमें पहले-पहल हुआ है, तो उ व्याख्या ज़रूरी है। साथ ही पुस्तकके अन्तमें भाषिक शब्दोंकी सूची और उनकी व्याख्या दे दी तो उससे उसके पाठकको बड़ी सुविधा हो सकती पुस्तक पढ़ते-पढ़ते यदि कोई शब्द दुबारा आ और उसका मतलब ध्यानसे उचट गया हो, तो सूचीमें उसे तुरन्त देखा जा सकता है।

परन्तु ऐसे भी अवसर आ सकते हैं, जब यह मान कि पाठक उस शब्दसे परिचित हैं, आप उसकी उपेक्ष करके पारिभाषिक शब्दका प्रयोग करें और आगे बढ़ जायँ। आप सदैव पाठककी सुविधाका ध्यान रखकर नहीं चल सकते। ऐसी कोई किताब आज तक नहीं लिखी गई, जिसे सब पाठक समान रूपसे समझ सकें। ऐसे अनेक विषय हैं, जिन्हें समझनेके लिए पाठकको उनका पहलेसे कुछ ज्ञान होना आवश्यक है। भेषज-विज्ञानपर यदि आप एक किताब पढ़ रहे हैं, तो यह आवश्यक है कि रसायन-शास्त्रके कुछ पारिभाषिक शब्दोंसे

## लोचना और प्राप्ति-स्वीकार

जिस प्रकार मित्र-राष्ट्र 'युद्ध-पश्चात्' की विश्व-रचना और उसके विधानकी रूपरेखाएँ यह मानकर खींच रहे हैं कि "युद्धमें हमारी ही जीत होगी, इसमें सन्देह कैसा ?" पर सोहनलालजी और मित्र-राष्ट्रोंके भावी चिन्तनमें अन्तर यह है कि जहाँ मित्र-राष्ट्र वर्तमान संघर्षमें जूझनेको तैयार हैं, लोहा लेनेको आमादा हैं, वहाँ हमारे कविके संघर्षका दौर समाप्त हो गया है। वह वर्तमानसे बेख़बर हो गए हैं। कवि यदि अपना कर्तव्य जाति तथा देशका उद्धार समझते हैं, तो उनकी 'भैरवी'की रचनाओंका युग आज समाप्त नहीं हो सकता। यदि हम कविके 'वासवदत्ता'के नवीन युगारम्भके तर्कोंको मान लें, तो हमें यह भी मानना होगा कि उनकी 'भैरवी'की रचनाओंमें समयका फैशन हैं, हृदयकी सचाई नहीं।

कविने अपने दृष्टिकोणको समझनेके लिए जिस तरह पाठककी बुद्धिपर विश्वास नहीं किया, उसी तरह उन्होंने 'वासवदत्ता'की रचनाओंका वैशिष्ट्य भी स्वयं कह दिया है। वे लिखते हैं—" 'वासवदत्ता' मुझे उत्कृष्ट रचना इसलिए जान पड़ती है कि इसके पढ़नेके पश्चात् हमारी वासना नीचे दबती है और आत्मा ऊपर उठती है।" बारम्बार इस रचनाको पढ़नेका आपका उपदेश है, क्योंकि उसका "अर्थ यह होगा कि कभी जीवनमें कोई वासवदत्ता हमारे सामने उसी हाव-भाव और कटाक्षसे यौवन समर्पित करेगी, हम एक बार सजग हो जायँगे।" अन्य रचनाओंके विषयमें भी कविका मत है कि "इसी प्रकारकी उदात्त भावनाएँ उर्वशी, कर्ण कुन्ती, एक बूँद आदि रचनाओंमें अपने ढंगसे अलग-अलग है।" कवि अपनी रचनाओंके गुणोंका वर्णन स्वयं न कर यह कार्य भूमिका-लेखक श्री मैथिलीशरण गुप्त या प्रकाशकपर छोड़ देते, तो अधिक संस्कारी बात होती।

'वासवदत्ता'में वासवदत्ता, उर्वशी, सरदार ... कर्ण-कुन्ती, एक बूँद, कुणाल, भिक्षा-प्राप्ति, ... शीर्षक आठ रचनाएँ संग्रहीत हैं, जिनमें ... कुणाल और महाभिनिष्क्रमणमें—विशेषकर ... नारीकी कामलोलुपताका उद्घाटन और ... दमन खिलकर अभिव्यंजित होता है।

. वजहसे क्या आप इस शब्दका प्रयोग नहीं करेंगे ?

दो पदार्थोंके मिलनेसे जब एक नया पदार्थ बनता है, तो उसे 'रासायनिक परिवर्त्तन' कहते हैं। हाइड्रोजन और आक्सीजनके मिलनेसे पानी बनता है। यह रासायनिक परिवर्त्तन है। परन्तु एक भौतिक परिवर्त्तन भी है, जिसमें चीज़ोंके आन्तरिक गुण और धर्ममें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। जैसे पानीसे बर्फ़, बर्फ़से पानी, और पानीसे भाप और भापसे बादल। यदि हम इससे आगे बढ़ें, तो कह सकते हैं—जैसे शब्दसे गति, गतिसे गर्मी, गर्मीसे विद्युत और विद्युतसे शब्द। ये सब भौतिक परिवर्त्तन हैं। इन सब परिवर्त्तनोंका आश्रय ग्रहण करके तरह-तरहके जो नवीन पदार्थ बनते हैं और शक्तिके जो अनेक रूप प्रकट होते हैं, उन सब पदार्थों और रूपोंके गुण, धर्म और नाम तथा क्रियाओंको व्यक्त करनेके लिए हमें यथार्थ और उपयुक्त शब्द चाहिएँ। इन शब्दोंके बारेमें यह चेतना ठीक नहीं कि वे कठिन हैं, या सहल ; हिन्दीके हैं या उर्दूके ; अंगरेज़ीके हैं या फ़ारसीके। यदि शब्द सरल हों, तो कहना ही क्या ; परन्तु सहल बनानेकी फ़िक्र करके वैज्ञानिक यथार्थताको ठेस पहुँचाना उचित नहीं। हम जो कुछ कहना चाहते हैं, वह संक्षिप्त और यथार्थ हो। विज्ञानकी भाषाका यह प्रथम गुण है। अगर मुश्किल लफ्ज़ोंसे हमारा काम चलता है, तो उनका व्यवहार हमें करना ही पड़ेगा। सोडियमके साथ जिस प्रकार क्लोरीनके मिलनेसे खानेका नमक बनता है, उसी तरह सोडियम, कारबन और आक्सीजनके मिलनेसे कपड़ा धोनेका सोडा बनता है। खानेका सोडा एक अलग पदार्थ है, इसलिए कपड़ा धोनेके सोडेको साधारण तौरसे Washing Soda (वाशिंग सोडा) कहते हैं। परन्तु रसायन-शास्त्रकी भाषामें हमें मजबूर होकर सोडियम कारबोनेट कहना पड़ता है। अब मैं आपसे पूछता हूँ कि सोडियम क्लोराइड और सोडियम कारबोनेटको आप शास्त्रीय दृष्टिसे हिन्दीमें क्या कहेंगे ? क्या आप सम... खानेका नमक और सोडा कहनेर आप... ? मैं मान लेता हूँ कि श... ...थ शोरेका तेज़ा... ...ट्रेट नाम... ...से तो ...यम टे... ...के लिए...

...का प्रयोग हो। यदि ऐसा हो सके, तो उससे ...नमें हमारी बड़ी कठिनाई दूर हो जायगी। शब्द-...के साथ ही आदान-प्रदानका भाव भी इन ...ओंमें बढ़ेगा।

मैंने भाषाके इस प्रश्नपर व्यावहारिक दृष्टिसे ही विचार किया है। इसलिए स्वाभाविक रूपसे आपको इस ...का कोई जवाब मैं नहीं दे सका कि उर्दूके साथ हिन्दी ...हिन्दुस्तानीका मेल कैसे हो ? उत्तर-भारतके लोग ...से भाषा बोलते और समझते हैं, राष्ट्रके कामके लिए ...रे देशमें उसका प्रचार होनेकी आवश्यकता है—फिर ...भाषा चाहे उर्दू हो, चाहे हिन्दी और चाहे हिन्दु-...नी। इसे आप कुछ भी नाम दीजिए, उससे ...सीकी कोई हानि नहीं होती। परन्तु जहाँ तक ...हित्य-सृष्टि और वैज्ञानिक ग्रन्थोंके निर्माणका सम्बन्ध है, किसी प्रकारकी नई भाषाका गढ़ना उतना ही कठिन है, जितना कि किसी नदीकी धाराको बदल ...ना।

उर्दूवाले स्वयं ही फ़ारसीके आधारपर वैज्ञानिक ...ब्दोंका निर्माण करनेमें लगे हुए हैं। इसलिए संस्कृतको ...कर या तो हम उनके शब्द-भण्डारको अपनालें, ...ह बँगला, गुजराती और मराठीके सहयोगसे अपना ...ा वैज्ञानिक कोष तैयार करें। मुझे यह दूसरी बात ...जो ...धिक व्यावहारिक जान पड़ती है।

...पारिभाषिक शब्दोंके निर्माणके साथ उर्दू-हिन्दीके ...का कोई सम्बन्ध नहीं। यह झगड़ा जब नहीं था, ...यहाँ पारिभाषिक शब्दोंके निर्माणका प्रयत्न हमारे यहाँ ...म हो गया था ; परन्तु वर्त्तमान समयमें इस प्रश्नने ऐसा रूप धारण कर लिया है कि उससे हिन्दी-उर्दूके ...नों किनारोंको एक करनेमें निस्सन्देह बड़ी बाधा ...ड़ेगी। इसलिए भाषाके प्रश्नपर जब हम विचार करें, तो आगे चलकर शास्त्रीय ग्रन्थोंका निर्माण करते समय हम अपने शब्द कहाँसे लायँगे, इसपर अभीसे स्पष्ट रूपसे विचार करनेकी आवश्यकता है।

टीकमगढ़ ]

# समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

**वासवदत्ता** ( कविता ) : रचयिता—श्री सोहनलाल द्विवेदी ; प्रकाशक—इन्डियन प्रेस, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ७६ ; मूल्य छपा नहीं ; छपाई, गेट-अप आकर्षक ; सजिल्द, सचित्र ।

श्री सोहनलाल द्विवेदी कीर्तिलब्ध कवि हैं। उन्हें प्रत्येक विषयपर रचनाएँ लिखनेका अभ्यास है। वे बच्चोंके उपयुक्त सरल तुकबन्दियाँ लिख सकते हैं, यौवनकी ख़ुमारी-भरे गीत गा सकते हैं और गम्भीर चिन्तन तथा उपदेश-प्रेरक रेखाचित्र भी खींच सकते हैं। 'वासवदत्ता' इनकी 'भैरवी'के पश्चात्का प्रकाशन है। कवि अपने 'आमुख'में कहते हैं—" 'भैरवी'के साथ मेरी रचनाओंका एक युग समाप्त होता है। 'वासवदत्ता'में मेरी कविताका नवीन युगारम्भ है। 'भैरवी'में जहाँ इस युगकी गति-विधि एवं प्रगतिका चित्रण है, 'वासवदत्ता'में वहाँ युग-युगकी भारतीय संस्कृतिके अंकित करनेका प्रयत्न है। 'भैरवी'के कविका पक्ष यह है कि इस समय हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न बन्धनसे मुक्त होनेका है। उसके पश्चात् चाहे कुछ भी हो। सभी देशोंमें जब आज़ादीकी लड़ाइयाँ छिड़ी हैं, तब वहाँके कलाकारोंने, साहित्यकारोंने जाति तथा देशके उद्धारमें अपना स्वर मिलाया है।" आगे चलकर कविका कथन है—" 'वासवदत्ता'के कविका पक्ष है कि देश स्वतन्त्र तो होगा ही, इसमें सन्देह कैसा ? कविसे आशा की जाती है कि वह देशको आज़ादीके ही गीत न दे ; किन्तु वे रचनाएँ भी दे, जो उसके समाज, जाति, राष्ट्रके मेरुदंडको भी सीधा रख सकें।"

'भैरवी' और 'वासवदत्ता'के कविके 'पक्षों'को पढ़कर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कविके सामने कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं। उन्होंने एक ओर तो देशको बन्धनमुक्त करनेके लिए साहित्यकारका कर्त्तव्य जाति तथा देशके उद्धारमें अपना स्वर मिलाना बताया है और दूसरी ओर कविसे यह आशा की है कि वह ऐसी रचनाएँ भी दे, जो समाज, जाति और राष्ट्रकी रीढ़ सीधी रख सकें। 'वासवदत्ता'के युगमें अपने प्रवेशकी घोषणा करते हुए यह कहा गया है कि "देश स्वतन्त्र तो होगा ही, इसमें सन्देह कैसा ?" वह ठीक उसी प्रकार मालूम होता है, जिस प्रकार मित्र-राष्ट्र 'युद्ध-पश्चात्' की विश्व-रचना और उसके विधानकी रूपरेखाएँ यह मानकर खींच रहे हैं कि "युद्धमें हमारी ही जीत होगी, इसमें सन्देह कैसा !" पर सोहनलालजी और मित्र-राष्ट्रोंके भावी चिन्तनमें अन्तर यह है कि जहाँ मित्र-राष्ट्र वर्तमान संघर्षमें जूझनेको तैयार हैं, लोहा लेनेको आमादा हैं, वहाँ हमारे कविके संघर्षका दौर समाप्त हो गया है। वह वर्तमानसे बेख़बर हो गए हैं। कवि यदि अपना कर्तव्य जाति तथा देशका उद्धार समझते हैं, तो उनकी 'भैरवी'की रचनाओंका युग आज समाप्त नहीं हो सकता। यदि हम कविके 'वासवदत्ता'के नवीन युगारम्भके तर्कोंको मान लें, तो हमें यह भी मानना होगा कि उनकी 'भैरवी'की रचनाओंमें समयका फैशन है, हृदयकी सचाई नहीं।

कविने अपने दृष्टिकोणको समझनेके लिए जिस तरह पाठककी बुद्धिपर विश्वास नहीं किया, उसी तरह उन्होंने 'वासवदत्ता'की रचनाओंका वैशिष्ट्य भी स्वयं कह दिया है। वे लिखते हैं—" 'वासवदत्ता' मुझे उत्कृष्ट रचना इसलिए जान पड़ती है कि इसके पढ़नेके पश्चात् हमारी वासना नीचे दबती है और आत्मा ऊपर उठती है।" बारम्बार इस रचनाको पढ़नेका आपका उपदेश है, क्योंकि उसका "अर्थ यह होगा कि कभी जीवनमें कोई वासवदत्ता हमारे सामने उसी हाव-भाव और कटाक्षसे यौवन समर्पित करेगी, हम एक बार सजग हो जाएँगे।" अन्य रचनाओंके विषयमें भी कविका मत है कि "इसी प्रकारकी उदात्त भावनाएँ उर्वशी, कर्ण कुन्ती, एक बूँद आदि रचनाओंमें अपने ढंगसे अलग-अलग है।" कवि अपनी रचनाओंके गुणोंका वर्णन स्वयं न कर यह कार्य भूमिका-लेखक श्री मैथिलीशरण गुप्त या प्रकाशकपर छोड़ देते, तो अधिक संस्कारी बात होती।

'वासवदत्ता'में वासवदत्ता, उर्वशी, सरदार चूड़ावत, कर्ण-कुन्ती, एक बूँद, कुणाल, भिक्षा-प्राप्ति, महाभिनिष्क्रमण शीर्षक आठ रचनाएँ संग्रहीत हैं, जिनमें वासवदत्ता, उर्वशी, कुणाल और महाभिनिष्क्रमणमें—विशेषकर प्रथम तीनमें—नारीकी कामलोलुपताका उद्घाटन और उसपर पुरुषका आत्म-दमन् खिलकर अभिव्यंजित होता है।

'कुणाल'की नारी आधुनिक 'फ्रायडवादी' प्रतीत होती है, जो जननी होकर भी पुत्रपर अपने यौवन-उभारको रह-रह अँगड़ाइयाँ लेकर अर्पित करनेको तड़फड़ा उठी है; परन्तु कुणालमें भारतीय संस्कार प्रबल हैं। वह अपनी माँके प्रति पुत्र ही बना रहता है। इसी प्रकार उर्वशीके यौवन-दानको अर्जुन सहर्ष ठुकरा देता है। वासवदत्ताकी आँखोंका जादू बुद्धके सामने निष्क्रिय हो जाता है। 'वासवदत्ता'के रेखाचित्रको खींचते समय कवि उसकी उत्कट कामाभिलाषाको प्रकट करनेकी दृष्टिसे रीतिकालीन लहजेमें 'उन्नत कुच-कलशोंको अंचलसे ढकती' भी लिख गए हैं। इसमें सन्देह नहीं, कविने मूल कथानकोंमें अपनी भाषा और स्थल-स्थलपर कल्पनाका मोहक रंग भरा है। जहाँ वासवदत्ता, उर्वशी और कुणालमें कविने नारीको पुरुषके प्रति अधीर होते हुए बतलाया है, वहाँ सरदार चूड़ावतमें पुरुषको स्त्रीके प्रति विवश होते दिखलाया गया है। साथ ही स्त्रीके चरम त्यागका आदर्श भी प्रस्तुत किया गया है। 'वासवदत्ता'की रचनाओंमें चित्रात्मकता, ओजस्विता, गतिशीलता और प्रौढ़ता है। हमारा विश्वास है, उसका काव्य-जगत्‌में समुचित सम्मान होगा।

**श्रीरामकृष्ण-वचनामृत** ( प्रथम भाग ) : अनुवादक—पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; प्रकाशक—स्वामी भास्करेश्वरानन्द, अध्यक्ष श्रीरामकृष्ण-आश्रम धंतोली, नागपुर, सी० पी०; पृष्ठ-संख्या ४९५; मूल्य २); सजिल्द, सचित्र।

एक जर्मन साधकने लिखा है कि "यदि आध्यात्मिकताके उच्चतम स्तरपर पहुँचना हो, तो श्रीरामकृष्ण परमहंसके वचनोंका पुनः-पुनः अध्ययन और मनन आवश्यक है।" परमहंसके सम्भाषण तथा उनके उपदेशोंका संकलन उनके गृहस्थ भक्त श्री महेन्द्रनाथ गुप्तने 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत'के नामसे प्रकाशित किया था। उसका अनुवाद अस्तंगत हिन्दी-पत्रिका 'समन्वय'में क्रमशः प्रकाशित हुआ था। अनुवादक थे हिन्दीके प्रसिद्ध कलाकार पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। 'समन्वय'के बिखरे हुए उपदेशोंको पुस्तकके रूपमें प्रस्तुत करनेका श्रेय श्रीरामकृष्ण-आश्रम, नागपुरके तपःमूर्ति अध्यक्ष स्वामी भास्करेश्वरानन्दजी तथा उनके सहयोगियोंको है। दर्शनकी क्लिष्ट-से-क्लिष्ट उलझनोंको परमहंसने बोलचालकी भाषामें बड़ी स्पष्टतासे सुलझा दिया है, जिससे सन्तोंकी सहज साधनाका मर्म साधारण पाठकके हृदयगत हो सकता है। कहानियों और उदाहरणोंसे शुष्क आध्यात्मिक विषय भी रोचक हो उठे हैं। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते ही पाठककी वृत्ति अन्तर्मुखी होने लगती है। अध्यात्म-पिपासुओंका ताप, हमारा विश्वास है, 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत'से अवश्य शमित होगा।

—विनयमोहन शर्मा

**सूक्ति-रत्नावलि** : प्रकाशक—श्री वल्लभदास ईश्वरदास, १२, कल्लन लेन, हावड़ा; पृष्ठ-संख्या ४०; मूल्य लिखा नहीं।

यह इंग्लिशके स्टैंडर्ड दैनिक समाचारपत्रोंमें किन्हीं-किन्हींकी रीति है कि वे अग्रलेखसे पूर्व एक सुभाषित दिया करते हैं, उन सुभाषितोंके सुन्दर भावोंको लेकर इस पुस्तकके लेखकने उनको पद्य-रूप दिया है। किन्हीं-किन्हीं पद्योंमें तो लेखकने अपना भाव मूलके भावसे बहुत ही दूर भगा दिया है—जैसे १ले, १४वें व ३४वें पद्योंमें। पुस्तक जैसी शुद्ध छपनी चाहिए थी, वैसी शुद्ध नहीं छपी। छापेकी अनेक भाव नष्ट करनेवाली भयंकर भूलें हैं। १५,१६,२३,३०,५१ प्रभृति पद्य बड़े ही हृद्य हैं। लेखकने संस्कृत-काव्य-रचना-प्रेमियोंके लिए एक नया मार्ग प्रदर्शित किया है। इसका नाम यथार्थ है। ऐसे सुन्दर संग्रहके लिए पं० वासुदेव सदाशिव जोशी सहस्रमुखसे धन्यवादके भाजन हैं।

**छलक** : लेखक—श्री सवदयाल सूरी; प्रकाशक—सूरी ब्रदर्स गणपत रोड, लाहौर; पृष्ठ-संख्या १०४; मूल्य १)।

यह रचना हिन्दी-पद्यमय है। इसमें समय-समयपर कवि-हृदयमें उठनेवाले भावोंको काव्यका रूप भिन्न-भिन्न शीर्षक देकर दिया गया है। छन्द सब रचनाओंमें एक ही है, जैसे :—

> कभी मधुपका साथी बनकर
> कली - कलीपर मैं इतराता;
> मय-सी मस्तीमें बेसुध हो
> सारा उपवन गूँज गुँजाता।

बस, सब जगह ऐसा ही छन्द है। इस छन्दका नाम पाठक ढूँढ़ लें। कोई-कोई भाव तो बड़ा प्यारा है, जैसे 'नीचे निहार'में :—

> ऊपरवालों को चिन्ता क्या,
> नीचेवालों के पिसने की?
> मस्तक क्या पीड़ा समझेगा,
> दुखिया चन्दन के घिसने की?

इसी प्रकार 'धीरे-धीरे' आदि शीर्षक रचनाएँ बड़ी आकर्षक हैं। भाषा हिन्दी-उर्दू के शब्दोंसे मिश्रित है। हृदयके भावोंका प्रस्फुरण अच्छी तरह किया गया है। सूरीजीका यह छोटा-सा काव्य अभिनन्दनीय है, संग्राह्य है।

**वैदिक लोरियाँ** : लेखक—श्री चिरंजीविलालजी वानप्रस्थ ; प्रकाशक—श्री जयदेवजी, श्रीनगर ; पृष्ठ-संख्या १६३ ; मूल्य ॥।)।

संस्कार-विधि, जिसके महर्षि दयानन्द सरस्वती रचयिता हैं, के शान्ति-प्रकरणके शिव-संकल्प-सूक्तके पाँच मन्त्रोंको लेकर लेखकने प्रकृत ग्रन्थमें पाँच लोरियाँ लिखी हैं। मनको अनेक प्रकारसे शान्त करनेके उपायोंको अनेक कथोपकथनों व प्रश्नोत्तरके रूपमें समझाया गया है। लेखक भावावेशमें आकर कहीं-कहीं आर्यसमाजी व्याख्याताओंके रूपमें नज़र आते हैं। लेखकने किन्हीं शास्त्रीय समस्याओंपर भी प्रकाश डाला है ; पर वह सब अपने ही भावोंका विस्तारमात्र है, शास्त्र-मूलक नहीं। पुस्तक अध्यात्म-प्रेमियोंके कामकी है। स्वाध्याय करने योग्य है। चरित्र-गठनके लिए पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

—हरिदत्त शर्मा

**सयानी कन्यासे** : लेखक—श्री नरहरि पारख तथा श्री महादेव देसाई ; अनुवादक—श्री काशीनाथ त्रिवेदी ; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद ; पृष्ठ-संख्या १२० ; मूल्य ॥) ; छपाई, सफ़ाई बढ़िया।

हिन्दीमें इस विषयकी यह पहली ही पुस्तक है। पं० जवाहरलाल नेहरूकी पुस्तक 'पिताके पत्र पुत्रीको' ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे लिखी गई है। आलोच्य पुस्तकमें एक प्रकारसे काम-शास्त्रपर—उसे आप योनि-ज्ञान भी कह सकते हैं—वैज्ञानिक ढंगसे पिताकी ओरसे पुत्रीको पत्र लिखे गए हैं। स्मरण रहे, इस गम्भीर विषयपर लिखना और चर्चा करना आसान काम नहीं है। इस विषयपर जो गन्दा साहित्य निकल रहा है, उससे हमारे अनेक नवयुवकों और नवयुवतियोंको बड़ी हानि पहुँचती है। अनेक तो उससे पथभ्रष्ट होकर अपने जीवनको ही नष्ट कर बैठते हैं। ऐसी दशामें इस विषयपर लिखनेके वे ही अधिकारी हैं, जिनका ध्येय चढ़ती उमरके व्यक्तियोंको कुछ उचित शिक्षा देना हो, ताकि वे उस शक्तिसे, जो परमात्माने उन्हें दी है, अपना, अपने कुटुम्बीजनोंका तथा देशका हित कर सकें। माता-पिताके लिए अपनी सयानी सन्तानसे इस विषयपर कुछ वार्तालाप करना संकोच-पूर्ण कार्य होता है ; पर जिस प्रकार माता-पिताका यह कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चोंको भले और बुरेकी पहचान् करायँ और उन्हें यह समझायँ कि विषय-वासनाकी चर्चामें रत होना अथवा विषय-वासनाको ही जीवनका मूल-मन्त्र समझना सयाने बच्चोंके लिए उतना ही घातक है, जितना कि देशके लिए। काम वासना एक शक्ति है—बिजलीके समान—जिसके उचित प्रयोगसे हम अपने मन और बुद्धिको विकसित करके उपयोगी बना सकते हैं; उसके दुरुपयोगसे हम उसी तरह मर सकते हैं, जिस प्रकार बिजलीके तारको पकड़नेसे।

पुस्तकको हमने बड़े ध्यानसे पढ़ा। पुस्तक दो खंडोंमें विभाजित है। पहले खंडमें तो जननशक्ति-सम्बन्धी विचारोंका वैज्ञानिक विश्लेषण है। पहले खंडमें 'विवेक और संयम' लेख हमें ख़ासकर पसन्द आया। दूसरे खंडमें विशेषकर 'कुमारोंसे', 'विवाहकी उचित वय' तथा 'महादेव काकाके दो शब्द' हमें बहुत ही पसन्द आए। सयाने बालकों और बालिकाओंके लिए अर्थात् सोलह वर्षके ऊपरके क्वारोंके लिए और विशेषकर उनके लिए, जिन्हें कुछ शंकाएँ हों, यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। अपने गुरुजनोंसे—वर्त्तमान स्कूल और कालेजके अध्यापक नहीं—पूछनेमें जिन बातोंका उन्हें संकोच हो सकता है, वे बातें इस पुस्तकमें देशके नौनिहालोंको मिलेंगी।

—श्रीराम शर्मा

## हमारे सहयोगी

**'जीवन-साहित्य'** (स्मृति-अंक) : सम्पादक—श्री हरिभाऊ उपाध्याय ; प्रकाशक—सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली ; वार्षिक मूल्य १॥), इस विशेषांकका मूल्य ॥)।

'जीवन-साहित्य'के इस विशेषांकको हमने बड़े ध्यानसे पढ़ा। पत्रकार-कलाकी दृष्टिसे इस अंकका सम्पादन बड़ा अच्छा हुआ है। जितने भी लेख हैं, वे सब अच्छी तरह देख-भालकर दिए गए हैं। छोटे-छोटे लेखोंसे इस अंककी उपयोगिता बढ़ गई है। उदाहरणके लिए राजकुमारी अमृतकुँवरका नौ पंक्तियोंका लेख और श्री किशोरलाल मश्रूवालाका सोलह पंक्तियोंका लेख बहुत ही सुन्दर हैं। इन थोड़ी-सी पंक्तियोंमें ही जमनालालजीके चरित्रका इतना सुन्दर और विशद चित्रण सिद्धहस्त

लेखनी द्वारा ही अंकित हो सकता है। श्रद्धेय राजेन्द्र बाबूका 'गांधीजीका दाहिना हाथ'-शीर्षक लेख स्व० जमनालालजीके स्वभावपर सीधे-सादे शब्दोंमें प्रकाश डालता है। श्री महादेवभाई देसाईका 'सच्चा सौदागर : जमनालालजी'-शीर्षक लेख एक बहुत ही सुन्दर रेखा-चित्र है।

और भी लेख अच्छे हैं; पर फिर भी 'जीवन-साहित्य' के इतने कलेवरमें स्व० सेठ जमनालालजीके जीवनके अनेक पहलुओंपर प्रकाश डालना असम्भव-सा ही था। इस अंकमें हम उनके उस बयानको ज़रूर देखना चाहते थे, जो उन्होंने अपनी पिछली जेल-यात्राके समय मैजिस्ट्रेटके सामने दिया था। हमें आशा है, श्री हरिभाऊ उपाध्याय 'जीवन-साहित्य'के अंकोंमें स्व० सेठजीके बारेमें लगातार लेख देते रहेंगे। अच्छा तो यह रहे कि उपाध्यायजी स्व० सेठजीकी जो प्रामाणिक जीवनी लिख रहे हैं, वह धारावाहिक रूपसे 'जीवन-साहित्य' में निकले। आशा है, स्व० सेठजीकी जीवन-झाँकीके ख़ातिर पाठक इस अंकको पढ़ेंगे। चित्रोंने इस अंककी शोभाको और भी बढ़ा दिया है।

'सारथी' : सम्पादक—श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र; प्रकाशक—श्री बलभप्रसाद मिश्र, स्वस्तिक प्रेस जबलपुर; वार्षिक मूल्य छः रुपया, एक अंकका दो आना।

पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र हिन्दी-साहित्य तथा हिन्दी-पत्रकार-कलाके लिए कोई नए व्यक्ति नहीं हैं। 'श्री शारदा' तथा दैनिक 'लोकमत' का सम्पादन करके उन्होंने ख़ासी ख्याति प्राप्त की थी। 'सारथी' में क्राउन चौपेजीके बीस पृष्ठ रहते हैं। हिन्दीमें अनेक पत्र बरसाती मेंढकोंकी भाँति वर्षाकालमें ही टर्राया करते हैं अथवा जोश-ख़रोशमें निकलकर वे अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं। हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मध्य-प्रदेशके मन्त्री-पद छोड़नेके बाद मिश्रजी अपनी पत्रकारोंकी बिरादरीमें फिर आ मिले। 'सारथी' का दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं है और न उसके लेखों और टिप्पणियोंमें क्षणिक उबाल ही है। विचार-गाम्भीर्य तथा विचारोंकी स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण 'सारथी'के इस कोटिके हैं कि उसका मुक़ाबला देशके किसी भी अच्छे साप्ताहिकसे किया जा सकता है। राजनीतिक दल-विशेषसे सम्बन्धित रहनेपर भी पत्रकारका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह अपने भाव स्पष्ट रूपसे लोगोंके सामने रखे। 'सारथी' इस नीतिका समर्थक है। और जवाहरलालजीकी जो थोड़ी-सी आलोचना उसने की है, वह 'सारथी' के गौरवको ही बढ़ाती है। हमें आशा है कि विचारोंकी प्रखरता, शैलीका गाम्भीर्य तथा निष्पक्ष लेखों द्वारा 'सारथी' मध्य-प्रदेशका ही नहीं, वरन अन्य सूबोंका सारथी बनकर जनता और नेताओंका पथ-प्रदर्शन करेगा। छपाई-सफ़ाई 'सारथी' की बहुत अच्छी है। सहयोगीके नाते हमारी यह भी प्रार्थना है कि 'सारथी' अपने साहित्यिक और राजनैतिक लेखोंमें किसीकी रू-रियायत नहीं करेगा और देशमें बढ़ते हुए साहित्यिक और राजनीतिक अनाचारका मुक़ाबला करनेके लिए सर्वथा खड्गहस्त रहेगा। मिश्रजीको इस सुन्दर पत्रके निकालनेपर बधाई।

## प्राप्ति-स्वीकार

(१) बँगला - साहित्यकी कथा : अनुवादक—श्री भोलानाथ शर्मा; प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या १९७, मूल्य १।), अजिल्द।

(२) मीराँबाईकी पदावली : सम्पादक—श्री परशुराम चतुर्वेदी; प्रकाशक—उपर्युक्त; पृष्ठ-संख्या १२०; मूल्य १॥)।

(३) ऐतिहासिक कहानियाँ : प्रकाशक—दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास; पृष्ठ-संख्या ९७; मूल्य ||=)।

(४) अर्जुन : प्रकाशक—उपर्युक्त; पृष्ठ-संख्या ११५; मूल्य |≠)।

(५) Village Education : By E. V. S. Maniam, Published by Patt & Co., Parmat, Cawnpore, Pp. 80.

(६) श्री काशी ज्ञानमंडल-सौर पंचाग (सूर्य-सिद्धान्तानुसार), श्री संवत् १९९९ वि०, सम्पादक—पं० रामव्यास पाण्डेय; प्रकाशक—ज्ञानमंडल-कार्यालय, काशी; मूल्य।)।

(७) श्री वैद्यनाथ पंचाग, १९९९ वि०, प्रकाशक—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद-भवन, कलकत्ता।

(८) Agriculture and Animal Husbandry in India (1938-39): Issued under the authority of The Imperial Council of Agricultural Research, New Delhi. Pp. 4[illegible] Price Rs. 6/-

# चिट्ठी-पत्री

## नागरी-प्रचारिणी सभाका आयोजन

नागरी-प्रचारिणी सभा, काशीने अपने विगत ५० वर्षोंके जीवन-कालमें हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपिकी जो ठोस सेवा की है, वह हिन्दी-जगत्‌को अविदित नहीं है। सौभाग्यवश सभाकी आयुके ५० वर्ष विक्रमीय संवत् २००० के साथ ही पूरे हो रहे हैं। इसलिए सभाने अपनी अर्द्ध-शताब्दी और महाराज विक्रमकी द्विसहस्राब्दी एक साथ ही मनानेका निश्चय किया है। इस अवसरपर हिन्दी-साहित्य और भाषाकी उन्नति एवं प्रचारके हेतु कई नवीन महत्त्वपूर्ण योजनाओंकी व्यवस्था की गई है :—

(१) सभाकी ओरसे एक विस्तृत रिपोर्ट इस अवसरपर प्रकाशित की जायगी, जो एक ही आकारकी चार जिल्दोंमें होगी। पहली जिल्दमें आवश्यक परिशिष्ट-सहित सभाका ५० वर्षोंका कार्य-विवरण रहेगा। दूसरी, तीसरी और चौथी जिल्दोंमें क्रमशः हस्त-लिखित पुस्तकोंका संक्षिप्त विवरण, पुस्तकालयकी सूची और कला-भवनकी पूरी सूची रहेगी।

(२) हिन्दी-साहित्यका गत ५० वर्षोंका इतिहास भी प्रकाशित किया जायगा। इसमें प्रत्येक प्रान्तकी हिन्दीकी प्रगतिका इतिहास रहेगा। यह इतिहास अधिकारी विद्वानों द्वारा ही तैयार कराया जा रहा है और हिन्दी-साहित्यके प्रत्येक अंगपर इसमें प्रकाश डालनेका प्रयत्न हो रहा है।

(३) हिन्दीके कवियों और लेखकोंका विवरण भी उनकी कृतियोंके संक्षिप्त परिचय-सहित तैयार किया जा रहा है। इसमें यथासम्भव चित्र भी रहेंगे।

(४) हिन्दी-साहित्यके इतिहासके साथ-साथ प्रान्तीय भाषाओंका गत ५० वर्षोंका संक्षिप्त इतिहास भी तैयार किया जा रहा है।

(५) हिन्दी तथा भारतकी अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें, जिनमें उर्दू भी सम्मिलित है, व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा जो विभिन्न पारिभाषिक शब्दावलियाँ बनाई गई हैं, उनका एक संग्रह तैयार हो रहा है। यह पारिभाषिक शब्द-कोश अर्द्ध-शताब्दीके अवसरपर विभिन्न प्रान्तोंसे आमन्त्रित विद्वानोंकी परिषदमें निर्णयार्थ उपस्थित किया जायगा।

(६) महाराज विक्रमकी द्विसहस्राब्दीके अवसरपर सभाने इस विषयके दो महत्त्वपूर्ण कार्य करनेका निश्चय किया है। एक तो ऐतिहासिक और दूसरा ज्योतिष-सम्बन्धी। महाराज विक्रमके काल-निर्णयके लिए तथा भारतीय काल-गणनाके सिद्धान्तोंमें एकता स्थापित करनेके लिए विद्वानोंकी सभा भी की जायगी।

(क) हमारे देश और हमारी जातिमें विक्रम संवत्‌का जो महत्व है, उसे ध्यानमें रखते हुए उसके मूल और वास्तविक इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाले जितने लेख और निबन्ध आदि अब तक प्रकाशित हुए हैं, उनका समन्वय करके उनका निष्कर्ष प्रकाशित किया जायगा और इस विषयके निर्णयार्थ इतिहासज्ञोंकी नई स्थापनाओंको भी एकत्र करके प्रकाशित किया जायगा।

(ख) प्रचलित पंचांगोंकी तिथियों और दृश्य गणितकी तिथियोंमें कभी-कभी अन्तर पड़ जाता है और पुराने ज्योतिष-ग्रन्थोंमें ग्रहोंकी गति-विधिके सम्बन्धमें दिए गए अंकोंके अनुसार ग्रहोंके जो स्थान आते हैं, वे उन स्थानोंसे भिन्न होते हैं, जहाँपर ग्रहोंकी सचमुच वास्तविक स्थिति होती है। इस प्रकारके अन्तरोंको दूर करने अर्थात् काल-गणनाके सिद्धान्तों तथा वस्तुस्थितिमें समन्वय स्थापित करनेका प्रयत्न किया जायगा। इसके लिए विद्वानोंकी जो सभा द्विसहस्राब्दीके अवसरपर होगी, उसका निर्णय प्रमाण-सहित प्रकाशित किया जायगा।

उक्त विवरणको पढ़नेके पश्चात् हिन्दी-प्रेमी विद्वान् स्वयं यह निश्चय करें कि वे अपने लिए कौन-सा कार्य चुनते हैं और तद्विषयक क्या सहयोग वे सभाको दे सकते हैं। अपने इस निश्चयकी सूचना सभाके अर्द्ध-शताब्दी-विभागको देनेकी कृपा करें, और जो सहयोग दें उसे तुरन्त कार्यान्वित करना आरम्भ कर दें, क्योंकि समय थोड़ा है और कार्य महान् है।

अर्द्ध-शताब्दीके कार्यकी सफलताके लिए धनकी भी आवश्यकता है। हिन्दी-प्रेमी उदार श्रीमानोंको पर्याप्त सहायता करनी चाहिए। अब तक जिन श्रीमानोंने इस ओर ध्यान देनेकी कृपा की है, उनमें श्रीमान् सेठ जुगुलकिशोरजी बिड़ला, राजाबहादुर ब्रजनारायणसिंहजी, श्री रत्नचन्दजी कालिया और श्रीमती रमादेवी जैनके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

—प्रधान-मंत्री

# सम्पादकीय विचार

## 'रासास्वादन'का साधारणीकरण

हाल ही में आगरा-यूनिवर्सिटीकी ओरसे एम० ए० (हिन्दी) फाइनल परीक्षा लेते हुए निबन्धके पर्चेमें विद्यार्थियोंसे 'रासास्वादन'का साधारणीकरण कराया गया था। यह 'रासास्वादन' क्या बला है, कुछ समझमें नहीं आया। ख़याल हुआ कि जो विश्वविद्यालय परीक्षा-पत्र बनवाने, उन्हें ठीक (moderate) कराने और छपवानेमें काफ़ी ख़र्च करता और सविशेष सावधानीसे काम लेता है, उसकी तो ग़लती हो नहीं सकती। मुमकिन है, हम ही 'रासास्वादन'का अर्थ न समझते हों। 'रासआस्वादन' शब्द बनाया जा सकता है; पर परीक्षक और विद्यार्थियोंको रासभोंसे क्या काम? अस्तु, बड़े-बड़े कोषोंके पन्ने पलटे। शब्द-कल्पद्रुमकी शरण ली। हिन्दी-विश्वकोषको छाना। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाका बृहद् कोष भी पढ़ डाला; परन्तु कहीं भी 'रासास्वादन'का पता न चला। वैयाकरणोंकी सूत्रावली भी इस विषयमें कुछ सहायता न कर सकी। अन्तमें यही प्रतीत हुआ कि बेचारे 'रस'के रकारपर दीर्घाकारका डंडा लगाकर उसे व्याकरणानभिज्ञताका रसास्वादन कराया गया है—अर्थात् रसास्वादनका स्थान 'रासास्वादन'को दिया गया है। यूनिवर्सिटीके लिए कितने खेदकी बात है, जो ऐसी-ऐसी भयंकर भूलें उसके परीक्षा-पत्रोंमें—फिर साधारण पर्चोंमें नहीं, एम० ए० के पर्चोंमें—चली जाती हैं और कोई देखता-भालता नहीं। जिन विषयोंपर अबकी बार एम० ए०में निबन्ध लिखाए गए हैं, वे भी ऐसे टेकनीकल हैं कि उनपर निबन्धकी अपेक्षा थीसिस ही अधिक सफलतासे लिखाए जा सकते हैं।

## शब्दोंका चमत्कार

भाषामें उचित शब्दोंका प्रयोग आसान काम नहीं है। चुस्त और सजीव शब्दोंको वाक्योंमें मोतियोंकी तरह पिरो देना कलाविदोंका ही काम है। किसी शब्दका कहाँपर किस अर्थ-विशेषमें प्रयोग करना बड़ी योग्यताका काम है।

घन घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा।

में 'घन', 'घमंड' और 'गरजत' शब्दोंके प्रयोगसे एक आतंककी दबार-सी सामने खड़ी हो जाती है। अगर घनके स्थानमें 'बदरिया' शब्दका प्रयोग किया जाय, तो सारा गुड़ गोबर हो जायगा। भाषा शास्त्रकी दृष्टिसे प्रत्येक शब्द अपने-अपने स्थानमें ख़ास मानी रखता है, और जिनको शब्दोंके उचित प्रयोगपर अधिकार है, उनकी भाषा बड़ी सजीव होती है।

## स्वतन्त्र भारत और देशी नरेश

गत मासके 'विशाल भारत'में देशी नरेशोंकी आलोचना करते हुए हमने लिखा था कि नरेन्द्र-मण्डलकी एक बैठकमें ड्यूक आफ़् कनाटके निधनपर तो एक शोक-सूचक प्रस्ताव पास किया गया; पर देशकी एक विभूति विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके निधनपर कोई शोकसूचक प्रस्ताव पास नहीं किया गया। हमने उस नोटमें यह भी लिखा था कि भारतके स्वतन्त्र होते ही देशी रियासतोंकी समस्या बड़ी आसानीसे सुलझ जायगी; क्योंकि देशी नरेशोंको जो विशेषाधिकार प्राप्त हैं, उनका स्रोत ब्रिटिश शासनमें है। इसी सिलसिलेमें गत १४ जूनके 'हरिजन'में 'राजाओंका निश्चय'-शीर्षकके अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न महात्माजीसे पूछा गया और उसका उत्तर भी उन्होंने दिया है। पाठकोंके लाभार्थ उस प्रश्नको हम उसके उत्तर-सहित अविकल रूपसे यहाँ देते हैं:—

प्रश्न—हमारे राजाओंने यह निश्चय कर लिया है कि अंगरेज़ोंके यहाँसे विदा होनेके बाद भी वे अपने विशेषाधिकारोंको ज्योंका त्यों क़ायम रखेंगे। इसलिए एक खुला और साफ़-साफ़ एलान कर देनेकी ज़रूरत है कि आज़ाद हिन्दुस्तानमें उनके इन अधिकारोंके लिए कोई स्थान न होगा। मुझे लगता है कि आप उनके प्रति ज़्यादा उदार रहे हैं, जिसके वे अधिकारी नहीं।

उत्तर—अगर आपका अनुमान ठीक है, तो राजाओंके विशेषाधिकार ही उनको नष्ट कर देंगे। परन्तु जनताकी सेवासे जो विशेष अधिकार मिलते हैं, वे तो हमेशा रहेंगे ही। लेकिन उनके ठाट-बाटका जो इतना आडम्बर आज देखनेमें आता है, उसका अन्त ज़रूर होगा। परन्तु आप जो ऐलान मुझसे करवाना चाहते हैं, वह मैं नहीं कर सकता; क्योंकि वह अहिंसाके तत्वके विरुद्ध है। अहिंसाका ध्येय विरोधीका नाश नहीं, उसकी शुद्धि ही होता है। जो चीज़ शुद्धिके योग्य ही नहीं रह गई है, वह पूरी तरह रोगग्रस्त शरीरकी भाँति अपने-आप बिना किसी बाह्य प्रयत्नके खतम हो जायगी।

अगर अंगरेज़ी सत्ताके यहाँसे बिल्कुल हट जानेपर भी हिन्दुस्तानमें लोक जागृति न हुई, तो हिन्दुस्तान बहुत सी

ऐसी जागीरदारी सत्ताओंमें बँट जायगा, जो एक-दूसरेको निगल जानेका वैसा ही प्रयत्न करेंगी, जैसा बड़ी मछली छोटी मछलीको निगलनेका करती है, और उनमें से कुछ सर्वोपरि बननेकी कोशिश भी करेंगी। मेरी आशा और प्रयत्न तो यह है कि एक ओर तो जनतामें ऐसी जागृतिकी लहर पैदा हो जाय कि जिसे कोई दबा ही न सके और दूसरी ओर विशेषाधिकारी-वर्गमें जनताकी माँगोंको बुद्धिपूर्वक स्वीकार करनेकी वृत्ति आ जाय। परन्तु मैं जानता हूँ कि आज तो मेरा यह कल्पना-चित्र ही है, इसलिए मैं बुरी-से-बुरी हालतके लिए भी पूरी तरह तैयारी करके बैठा हूँ। इसीलिए तो मैंने कहा है न कि मैं सारे देशमें अराजकताकी जोखिम उठाकर भी यहाँकी मौजूदा स्थितिका अंत लाना चाहूँगा।

## हवाका रुख

गत २० जूनको 'लन्दन-टाइम्स'ने अपने अग्रलेखमें लिखा है :—

इस क्षणमें महात्मा गांधीने कांग्रेसके संगठनमें अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और नीतिको पुनः स्थापित करनेका प्रयत्न शुरू किया है। महात्मा गांधीकी यह कोशिश अन्तमें सफल नहीं होगी। उनकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा उनकी राजनीतिक नीतिकी प्रतिक्रियात्मकताको अधिक दिन तक छिपाकर नहीं रख सकती। औद्योगिक और सैनिक दुनियामें अराजकतापूर्ण रोमांचवाद राजनीतिक कार्रवाईका आधार नहीं हो सकता। महात्मा गांधीका अनुकरण करनेके अर्थ न केवल भारतको पूर्व और पश्चिमकी उन आज़ाद जातियोंसे अलग करनेके होंगे, जो कि आज आक्रमण और ज़ुल्मका मुक़ाबिला कर रही हैं, बल्कि उसे आधुनिक युगके विश्वव्यापी आर्थिक विकाससे अलग रखनेके भी होंगे।

फिर भी महात्मा गांधीकी नीति चाहे कितनी ही खोखली क्यों न हो, गड़बड़ करनेकी काफ़ी सामर्थ्य रखती है। अभी भी उसने कांग्रेसकी नीतिको अनिश्चित और विभाजित कर दिया है, जिसके कारण कांग्रेस कोई रचनात्मक कार्य नहीं कर सकती और पुनः नकारात्मक विरोधके मार्गको अपना रही है। महात्मा गांधीके प्रस्ताव यदि कार्य-रूपमें परिणत किए गए, तो भारतमें न केवल आन्तरिक अशान्ति बढ़नेका भय है, बल्कि एक महाभयानक बाह्य आक्रमणके लिए भी रास्ता खुल जाता है। भारतकी रक्षाके तरीक़ोंपर भारतीय और अंगरेज़ोंमें परामर्शकी काफ़ी गुंजायश है। परन्तु ऐसे लोगोंके साथ परामर्शकी कोई आवश्यकता नहीं है, जो कि यह तर्क पेश कर रहे हैं कि भारतकी रक्षाकी आवश्यकता ही नहीं है; अथवा जो यह कल्पना करते हैं कि बहिष्कार और अहिंसात्मक मुक़ाबिलेके वह तरीक़े जो कि शान्ति-कालमें सफल हो चुके हैं और एक उदार तथा मानवीयतामें विश्वास रखनेवाली सरकारपर प्रभाव डाल चुके हैं, जापानकी विजयके गर्वसे फूली हुई उन सेनाओंके विरुद्ध भी सफल हो सकते हैं, जो कि ज़ुल्म कर रही हैं और साम्राज्यवादसे ओतप्रोत हैं।

ब्रिटेन क्रिप्स-प्रस्तावोंपर जमा हुआ है और उनसे एक इंच भी नहीं हटेगा। क्रिप्स-प्रस्ताव इस समय भी ब्रिटिश सचाईका एक प्रबल प्रमाण हैं। जो लोग भारतकी आज़ादी चाहते हैं, वे जानते हैं कि महात्मा गांधीकी नीतिके अर्थ आज़ादीके नहीं, बल्कि जापानकी गुलामीके हैं। ब्रिटिश योजनाके अर्थ फ़िलहाल भारतके दैनिक शासनको भारतीयोंके हाथोंमें ही सौंपने और आक्रमणकारीके परास्त होनेके साथ ही भारतीयोंको उसी मात्रामें पूर्ण आज़ादी देनेके हैं, जिस मात्रामें कि वे उसकी माँग करें।

'लन्दन टाइम्स'का यह अनर्गल प्रलाप ब्रिटिश साम्राज्यवादकी दूषित मनोवृत्तिका प्रतीक है। 'लन्दन-टाइम्स' और उसके हिमायती भारतीय समस्याके ठेकेदार क्यों बनते हैं और वे यह दावा क्यों करते हैं कि वे भारत-वासियोंकी अपेक्षा महात्मा गांधी या भारतको अधिक समझते हैं? 'लन्दन-टाइम्स' और ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल क्रिप्स-प्रस्तावोंपर बड़ी ख़ुशीसे डटा रहे; पर हमारे देशके बच्चे-बच्चेने सर स्टैफ़र्डके प्रस्तावोंको ठुकरा ही नहीं दिया, वरन उस योजनाकी कपालक्रिया तक कर दी है। जहाँ तक भारतकी रक्षाका सवाल है, वहाँ तक लोकशाहीका ढोल पीटनेवालोंको शर्म आनी चाहिए कि लगभग चालीस करोड़ भारतवासी ब्रिटिश शासनके कारण अपने देशकी रक्षा नहीं कर सकते। न्यायका तक़ाजा था कि महायुद्धके प्रारम्भ होते ही रक्षा-विभाग हिन्दुस्तानियोंके सुपुर्द करके लाखों भारतीय वायुयान-चालक तैयार किए जाते। बड़े-बड़े कारख़ाने खोलकर गोला-बारूदका सामान तैयार किया जाता, ताकि भारतवर्षको सैनिक सामग्रीके लिए विदेशियोंका मुँह न ताकना पड़ता। और फिर जापानियोंको हिन्दुस्तानमें कौन चाहता है? पर सवाल तो यह है कि भारतवासी चीनकी सहायता कैसे करें और जापानका मुक़ाबिला कैसे करें? भारतवासियोंपर यह लांछन लगाना कि वे जापानको चाहते हैं, उनका

घोर अपमान करना है। पर जब हम जापानियोंके आक्रमण और भारतमें जापानी शासनका घोर विरोध करते हैं, तब इसके मानी यह नहीं कि हम स्वतन्त्र नहीं होना चाहते, या हम ब्रिटिश शासनकी भारतमें समाप्ति नहीं चाहते। जापानियोंसे डटकर मुकाबिला करनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र हों और 'लन्दन-टाइम्स' हमें किसी प्रकारकी धमकी न दे।

### सम्राटका सन्देश

सम्राट जार्जके भाई साहब ड्यूक आफ् ग्लाऊसेस्टर आजकल भारतका भ्रमण कर रहे हैं। गत मास दिल्ली-रेडियोसे ड्यूक साहबने सम्राटका एक सन्देश सुनाया था। सन्देशमें सम्राटने भारतीय सैनिकोंकी वीरता और राज-भक्तिकी चर्चा की ; पर हमें दुःख है कि भारतीयोंके लिए सम्राटका सन्देश दकियानूसी सन्देश था, मानो वह अबसे पचीस वर्ष पहलेकी परिस्थितिमें लिखा गया हो। बस, यों समझ लीजिए, मानो किसी पुराने ढंगके व्यापारीने अपनी चिट्ठीको इस प्रकार शुरू किया हो—सिद्धि श्री सर्वोपमा, सकलगुणनिधान जोग्य लिखी...। ड्यूक साहब भारतकी गरमीमें काफ़ी भ्रमण कर रहे हैं और उनका इरादा इस देशकी रक्षा-सम्बन्धी स्थितिको भी देखनेका है। अच्छा होता, यदि ड्यूक साहब भारतवर्षमें यह बात जाननेका कष्ट करते कि आख़िर इतने लम्बे-चौड़े मुल्कके करोड़ों आदमियोंमें से अधिकांशोंको सैनिक शिक्षा क्यों नहीं दी जाती और अब तक भारतवर्षकी जनतामें अपने देशकी रक्षाके लिए उतनी लगन क्यों नहीं है, जितनी कि चीन और रूसके लोगोंमें है ?

### संयुक्त-प्रान्तमें दमनका सूत्रपात

महात्मा गांधीका नवीन आन्दोलन पता नहीं कब प्रारम्भ होगा ; पर युक्त-प्रान्तकी सरकारने तो अपना दमन-चक्र चला ही दिया है। श्री रफ़ीअहमद क़िदवई, प्रान्त-पति श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवालको भारत-रक्षा-क़ानूनकी १२९ वीं धारामें क़ैद करके तथा अन्य प्रतिष्ठित कांग्रेस-मैनोंपर मुकदमा चलाकर और 'नेशनल हेरल्ड'की जमानत ज़ब्तकर और नई १२०००) की जमानत माँगकर हैलट साहबकी यू० पी० सरकारने दमनके अपने सब हथियार लैस कर लिए हैं।

### ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और पाकिस्तान

गत २० जूनकी एबटाबादकी ख़बर है कि चौधरी ख़लीकुज़्ज़माने एबटाबादकी एक सार्वजनिक सभामें कहा—"कांग्रेसके नेता इस बातको भूल जाते हैं कि सर स्टैफ़र्डकी सूबोंको दी जानेवाली आत्म-निर्णयकी नीतिसे परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। पाकिस्तान मुसलमानोंकी केवल माँग ही नहीं है, वरन् ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने उसे स्वीकार भी कर लिया है।"

इसके मानी यह हुए कि मुस्लिम-लीगकी शक्तिका स्रोत ब्रिटिश सरकार है और ब्रिटिश सरकारके बिना फिर पाकिस्तानकी कोई हस्ती नहीं। बिना पाकिस्तानके मुस्लिम-लीगमें कोई दम नहीं रह जाता, इसलिए मुस्लिम-लीगकी हस्ती एक प्रकारसे ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके सहारे ही माननी चाहिए। अगर ऐसी बात न होती, तो ख़लीकुज़्ज़मा साहब पाकिस्तानके लिए ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी स्वीकृतिकी बात क्यों पेश करते ?

### अखिल भारतीय प्रगतिशील मुस्लिम-लीग

बंगालके प्रधान-मंत्री फ़ज़लुलहक़ साहबने एक लम्बा-चौड़ा बयान देते हुए अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने उन आरोपोंका उस बयानमें उत्तर दिया है, जो मुस्लिम-लीगियोंने उनपर लगाए हैं। अपने बयानमें एक स्थानपर उन्होंने कहा है—"मैं अब अधिक दिन चुपचाप नहीं बैठ सकता। मेरे राजनीतिक शत्रुओंने मुझे मानवी इतिहासका सबसे निकृष्ट व्यक्ति बताया है और यह कहा है कि प्रस्तुत मंत्रिमण्डल बनाकर मैंने मुसलमानी हितोंके साथ उसी प्रकार विश्वासघात किया है, जैसा कि मीर ज़ाफ़रने प्लासीमें किया था।"

जिन्ना साहबके साथ पैदा हुए अपने मतभेदोंके विषयमें और अन्तमें मि० जिन्ना द्वारा उनको लीगसे निकालनेके विषयमें हक़ साहबने कहा है—"मैं अब आपसे अपील कर रहा हूँ कि देशके मुसलमानोंको इन इस्लाम-विरोधी मुसल-मान नेताओंसे छुड़ाओ। इसका सबसे सरल तरीका यह है कि प्रगतिशील दल क़ायम किया जाय और उसमें हर विचारके मुसलमान रहें।"

हमारे ख़यालसे हक़ साहबकी यह कमज़ोरी है, जो मुस्लिम-लीगियों और अपने उन पुराने दोस्तोंका, जिन्होंने उनके साथ विश्वासघात किया, वे इतना ख़याल करते हैं। मुस्लिम-लीग या प्रगतिशील मुस्लिम-लीग अथवा हिन्दू-सभा राजनीतिक संस्थाके रूपमें कभी सफल नहीं हो सकती। कौन जाने कि प्रस्तावित प्रगतिशील मुस्लिम-लीगमें

स्वार्थवश वैसे ही कीटाणु घर कर बैठें, जैसे बंगालकी मुस्लिम-लीगमें हो गए थे। हाँ, मि० जिन्नाके नेतृत्वको यदि ख़त्म करनेका विचार हक़ साहबका है, तो दूसरी बात है। पर साम्प्रदायिक संस्थाओंको राजनीतिक संस्था बनाना देशके लिए बड़े ख़तरेकी बात है।

### हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यकी आशा

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यके विषयमें मद्रासके 'हिन्दू'के नागपुरके संवाददातोंको उत्तर देते हुए महात्माजीने गत २१ जूनको कहा—"मैं सोचता हूँ कि क्या कारण है कि एकताके लिए किए गए मेरे और दूसरोंके तमाम हार्दिक प्रयत्न निष्फल हुए और इस बुरी तरह निष्फल हुए कि मेरा अच्छी सूचीमें से बिल्कुल नाम काट दिया गया और कुछ मुस्लिम-अख़बार मुझे हिन्दुस्तानमें इस्लामका सबसे बड़ा शत्रु समझते हैं। यह एक ऐसी बात है, जिसका मैं इसके सिवा और कोई कारण नहीं देखता कि तीसरी ताक़त, जान-बूझकर न सही, सच्ची एकता क़ायम होने नहीं देती। इसलिए मुझे खेदपूर्वक इस नतीजेपर पहुँचना पड़ा है कि ज्यों ही भारतमें अंगरेज़ी सत्ताका अन्तिम रूपमें ख़ात्मा होगा कि दोनों जातियाँ फौरन एक हो जायँगी।"

यह बात महात्माजीकी सोलहो आने ठीक है। जब वह बाँस, जिससे मुस्लिम-लीगकी बाँसुरी बज रही है, टूट जायगा, तब फिर वह बाँसुरी बजेगी नहीं। ख़लीक़ुज़्ज़मा साहबने जो बात कही है, वह एक सच्चा जादू है, जो उनके सिरपर चढ़कर बोला है—यानी यह कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने पाकिस्तानी बातको स्वीकार कर लिया है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ तो अब भी क्रिप्स-योजनापर डटे हुए हैं, जिस प्रकार कि बन्दरिया मोहवश अपने मरे बच्चेको भी चिपटाए फिरती है।

### लोगोंका भारी भ्रम

बड़े दुःखकी बात है कि भारतकी स्वतन्त्रताके शत्रु और कुछ नासमझ भारतवासियों विशेषकर हमारे कमुन्ने भाइयों—को यह भ्रम है कि महात्माजी भारतकी आज़ादीके लिए धुरी-राष्ट्रोंकी सहायताके पक्षमें हैं। पाश्चात्य दृष्टिकोणसे एक विजित देशके लिए दूसरे किसी देशसे सहायता लेना कोई बेजा बात नहीं है; पर महात्मा गान्धीने 'हरिजन'में यह स्पष्ट कर दिया है कि वे वर्त्तमान विदेशी जुएसे भारतको आज़ाद करानेके लिए किसी विदेशी ताक़तकी मदद लेनेकी इच्छा नहीं करते और न अंगरेज़ी राज्यके बजाय किसी विदेशीका शासन स्वीकार करनेके लिए वे तैयार हैं। महात्माजी तो भारतवर्षको पूर्ण स्वतन्त्र देखना चाहते हैं, और पूर्ण स्वतन्त्रताके मानी यह नहीं हैं कि यहाँपर जापानियोंका शासन हो।

### महात्मा गांधी और पं० नेहरू

महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरूके बीच कांग्रेस-कार्यक्रमके विषयमें काफ़ी मतभेद था, और उसी मतभेदके कारण कांग्रेस-महासमितिकी इलाहाबादकी बैठकमें महात्माजी द्वारा भेजा गया प्रस्ताव अपने असली रूपमें पास न हो सका, ऐसी अफ़वाहें भी देशके एक कोनेसे दूसरे कोने तक उठ रही थीं। हमारा स्वयं यह ख़याल था कि नेहरूजी और महात्माजीके विचारोंमें काफ़ी मतभेद है। यू० पी० की सूबा-कमेटीके प्रस्तावोंसे यह और भी स्पष्ट हो गया था कि सूबेकी राजनीतिमें सूबा पंडितजीसे सहमत नहीं और वह महात्मा गांधीके साथ है। हमें यह जानकर बड़ी ख़ुशी हुई कि नेहरूजीने स्वयं इस तरहकी अफ़वाहोंको निराधार बताया है। इस प्रकार यह तो निश्चित ही है कि महात्माजी और नेहरूजीमें कोई बुनियादी मतभेद नहीं है। दृष्टिकोणका भेद तो साधारण-सी बात है। असलमें बात यह है कि नेहरूजी खूँटीके इतने सच्चे हैं कि वे चाहे कितनी ही इधर-उधरकी बातें करें; पर महात्मा गांधीसे मिलनेके बाद वे उनसे सहमत हो ही जाते हैं। खूँटीका सच्चा होना इसीको कहते हैं।

### नवीन त्रिराष्ट्र-सन्धि

गत मास रूस, इंग्लैण्ड और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकाके बीच एक नई सन्धि हुई है। सन्धिकी शर्तें आगामी २० वर्षों तक लागू रहेंगी। सन्धिका मुख्य उद्देश्य है—
(१) यूरोपमें जर्मनीके विरुद्ध एक नया मोर्चा क़ायम करना।
(२) रूसको अधिक-से-अधिक युद्ध-सामग्री पहुँचाना और हिटलरी जर्मनीको परास्त करना। बड़े मज़ेकी बात तो यह है कि रूसने यूरोपकी राजनीतिमें इंग्लैण्डको हस्तक्षेप करनेका अवसर दिया है और साथ ही उसने ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाका भार भी ले लिया है। सर स्टैफ़र्डके कथनानुसार स्टालिन-गवर्मेंट किसी दूसरी गवर्मेंटकी पद्धति और उसके अन्दरूनी मामलोंमें हस्तक्षेप करना नहीं चाहती और न किसी देशके मज़दूरोंको प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे सहायता देना ही। इसके मानी यह हुए कि स्टालिन साहबने लैनिन-मार्गको तिलांजलि दे दी है, और चूँकि

रूसने अटलांटिक-घोषणा-पत्रमें निहित सिद्धान्तोंको मान लिया है, इसलिए उसने साफ़ शब्दोंमें ब्रिटिश साम्राज्यके अधीनस्थ देशोंकी गुलामी क़ायम रखनेपर अपनी छाप लगा दी है। यह ठीक है कि रूस ब्रिटिश साम्राज्यकी लड़ाई लड़ रहा है, और युद्धके बाद जीत होनेपर वह ब्रिटिश साम्राज्यका रक्षक बना रहेगा। यहाँपर यह दुहरानेकी आवश्यकता नहीं कि अटलांटिक-घोषणा-पत्र यूरोपियन देशों और जर्मनी द्वारा अधिकृत देशोंपर ही लागू होता है। चर्चिल साहबने यह बात काफ़ी तौरपर स्पष्ट कर दी थी। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकाकी तरह रूसने इस बातपर मुहर लगा दी कि भारतीय समस्या इंग्लैण्डकी अपनी निजी समस्या है। फलस्वरूप मित्र-राष्ट्रोंकी विजयके बाद रूसकी दृष्टिसे भारतवर्षको पराधीन रहना होगा; क्योंकि कच्चे मालका बँटवारा अटलांटिक-घोषणा-पत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले लोग ही करेंगे। ऐसी दशामें प्रतिक्रिया-वादी अटलांटिक-घोषणामें रूस भी शामिल हो गया है। पर विश्वके नवनिर्माणमें एशियाको भुलाया नहीं जा सकता। हिन्दुस्तानकी बात दूर रही, इस नवीन सन्धिमें चीनको भी कोई स्थान नहीं है। स्टालिन साहब हिन्दुस्तानके बारेमें तो चुप हैं ही, चीनके मामलेमें भी इस सन्धिमें उन्होंने कुछ नहीं कहा। रूसकी क़सम खानेवाले हमारे कम्युनिस्ट भाई आँखें खोलकर देखें और ठंडे दिमाग़से विचार करें कि अटलांटिक-घोषणा-पत्रपर हस्ताक्षर करनेवाला राष्ट्र मज़दूरों और ग़रीबोंके लिए क्या शुभ सन्देश लाया है। स्टालिनने कम्युनिज़्मके साथ वह सौदा किया है कि जिसका उदाहरण इतिहासके पन्नोंमें हमें नहीं दिखाई पड़ता। साधारण जुर्मोंमें मुल्ज़िमको सहायता देनेवाला दोषी समझा जाता है। हम नहीं समझते कि साम्राज्यवादियोंके इस अन्तर्राष्ट्रीय अंधेरमें अटलांटिक-घोषणामें साथ देनेवाले रूसपर क्या दोष लगाया जाय।

### जोधपुरमें दमन

जोधपुर रियासतके बारेमें जब हमारे कई मित्रोंने कहा कि वहाँपर लोक-परिषदको कार्य करनेकी पूरी सुविधा है तथा वहाँसे कोई भी निर्भीक समाचारपत्र निकाला जा सकता है, तब हमें अपने मित्रोंकी समझपर दया आई। देशी रियासतके कर्मचारी तो निरंकुशतामें ब्रिटिश भारतके कर्मचारियोंसे बढ़कर रहना चाहते हैं। आख़िर लोक-परिषद और जोधपुर-दरबारमें ठन ही गई। जोधपुर एक प्रकारसे भारत-सरकारके पोलिटिकल डिपार्टमेंटका एक तितिम्मा-सा है। शायद किसी दूसरी रियासतमें बड़ी-बड़ी जगहोंपर इतने अंगरेज़ न हों, जितने कि जोधपुरमें। गत चार वर्षोंके भीतर जोधपुर-लोक-परिषद एक प्रचंड शक्ति बन गई है। राजपूतानेमें लोक-परिषद-जन्य जाग्रतिसे भारत-सरकारका पोलिटिकल डिपार्टमेंट काफ़ी घबरा रहा है। हमें पता नहीं कि जोधपुर-सरकारने किसके आदेशसे लोक-परिषदको ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया। यह ठीक है कि जोधपुर-दरबारकी सीधी हुकूमत रियासतके क्षेत्रफलके १७ फी-सदीपर ही चलती है, शेष ३ फी-सदीपर जागीरदारोंकी सत्ता है। अपनी भीतरी व्यवस्थामें वे एक प्रकारसे स्वतन्त्र हैं। वहाँके लोग चाहते थे कि जागीरदार ग़ैर-क़ानूनी वसूलयाबी न करें और जागीरदारों और उनके आसामियोंके बीच एक ऐसा समझौता हो जाय, जिससे उन्हें नियमित 'लटाई' मिले। श्री जयनारायण व्यास आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति गिरफ़्तार कर लिए गए और बाध्य होकर गिरफ़्तार-शुदा लोगोंने भूख-हड़ताल शुरू कर दी। श्री बालमुकुन्द बिस्साकी तो गत १९ जूनको अस्पतालमें मौत भी हो गई। ख़बर है कि जेलमें उनपर मार पड़ी थी। जोधपुरमें असन्तोषकी ज्वाला प्रज्वलित हो गई। आज तारीख़ २४ जूनको, जब ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं, तब समाचार आया है कि व्यासजीने भूख-हड़ताल बन्द कर दी है। नेहरूजीने श्री कचरूको जाँच-पड़तालके लिए भेजा है। महात्मा गांधीने भी श्री श्रीप्रकाशको जोधपुरकी परिस्थिति जाननेके लिए भेजा है। स्वयं महात्मा गांधीने 'जोधपुरमें दुःखद दमन' शीर्षक एक लेख 'हरिजन'में लिखा है। क्या हम आशा करें कि जोधपुर-दरबार श्री बालमुकुन्द बिस्साकी मौतकी तहक़ीक़ात करायगा और प्रायश्चित्त-स्वरूप भारतीयताके नाते लोक-परिषदसे अब भी न्यायोचित समझौता करनेको तैयार होगा?

### प्रशान्त महासागरकी लड़ाई

जापानी और अमेरिकन जंगी-बेड़ोंकी मुठभेड़ें प्रशान्त महासागरमें कई बार हुईं। कोरल समुद्रकी लड़ाईके बाद जापानियोंने मिडवे टापूपर आकस्मिक आक्रमण किया। अमेरिकनोंका दावा है कि उन्होंने इस सामुद्रिक लड़ाईमें जापानियोंको हरा दिया, और जापानी कहते हैं कि उन्होंने अमेरिकनोंको हरा दिया। पर एक बातमें दोनों सहमत हैं,

वह यह कि अमेरिकाका एक बत्तीस हज़ार टनका वायुयान-वाहक जहाज़ डुबा दिया गया और जापानका भी एक वायुयान-वाहक जहाज़ डुबा दिया गया तथा एक दूसरा बुरी तरह क्षतिग्रस्त किया गया। अन्य जापानी जलयानोंका भी पलस्तर बनाया गया। मिडवेकी लड़ाईके बाद शीघ्र ही जापानियोंने अलास्काके निकटवाले अल्यूशियन टापुओंपर धावा बोल दिया। इन टापुओंमें से कईपर जापानने अधिकार भी कर लिया है। अल्यूशियन टापू जापानसे तेरह सौ मीलकी दूरीपर हैं। ऐसी दशामें वहाँसे जापानपर सफल हवाई हमला नहीं हो सकता; पर जापानकी मंशा यह है कि उसके चारों ओर जितने भी खतरेके स्थान हैं, उनको या तो बेकार कर दिया जाय या उनपर अधिकार कर लिया जाय। अल्यूशियन टापुओं—विशेषकर डच हार्बर—पर अधिकार करनेसे जापान अपने-आपको उस आक्रमणसे सुरक्षित रखना चाहता है, जो जापान और रूसकी लड़ाईसे उसपर हो सकता है।

### चीनकी परिस्थिति

वीरवर चीनी अपने देश तथा स्वाभिमानकी खातिर अपने आपको एक प्रकारसे होम रहे हैं। चीनके पास युद्ध-सामग्रीकी कमी है, इसलिए चीनने याचना की है कि उसे जल्दीसे जल्दी सहायता पहुँचाई जाय; क्योंकि केवल लात और मुक्कोंसे आधुनिक लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। जापानी सेनाओंने बड़ी तेज़ीके साथ चीक्यांग सूबेके अन्य शहरोंपर भी अधिकार किया है। इन सब बातोंके होनेपर भी चीनी अपने मोर्चोंपर डटे हुए हैं और एक-एक इंच ज़मीनको अपने गरम खूनसे रँग रहे हैं, ताकि उनकी भावी सन्तान स्वतन्त्रतासे अपने देशमें रह सके।

### यूरोपका प्रस्तावित नया मोर्चा

हमारी समझमें यह नहीं आता कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ दूसरे मोर्चेके बारेमें ढपोलशंखी बातें क्यों कहते हैं? हमने कई बार समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि इंग्लैण्ड और अमेरिका फ्रांसमें नया मोर्चा बनायँगे। लड़ाईके यह ढंग तो महात्मा गांधीके-से ढंग हैं, जिनके अनुसार यह बता दिया जाता है कि अमुक स्थानपर कार्य किया जायगा। दूसरे मोर्चेका स्थान बताकर क्या वे हिटलरको सचेत नहीं कर रहे, अथवा उनकी मंशा हिटलरको कोई झाँसा देनेकी है। अच्छा तो यह रहता कि बजाय दूसरे मोर्चेकी बात कहनेके कोई नया मोर्चा बनाकर दिखाया जाता।

### चर्चिलकी अमेरिका-यात्रा

इस बार चर्चिल साहब तीसरी बार रूज़वेल्ट साहबसे परामर्श करने अमेरिका गए। पता नहीं, परामर्श-विषय क्या था; पर यह तो तय ही है कि हिटलरको हरानेके लिए कोई मंत्रणा हुई होगी और रूसी, ब्रिटिश और अमेरिकन सैनिक शक्तियोंके समन्वयकी भी कोई बात होगी। चर्चिल साहबने यह भी शायद प्रार्थना की होगी कि मिस्रकी रक्षाके लिए अमेरिकाको और भी सहायता करनी चाहिए, और कौन जाने कि भारतवर्षके विषयमें भी चर्चिल साहबने अपने साहूकार रूज़वेल्ट साहबसे कुछ परामर्श किया हो। महात्मा गांधीने दो अमेरिकन पत्रकारोंसे अभी हालमें यह बात कही थी कि अमेरिका भारतवर्षकी स्वतन्त्रताके लिए यह काम कर सकता है कि जब तक इंग्लैण्ड भारतको स्वतन्त्र न कर दे, तब तक अमेरिका इंग्लैण्डको किसी प्रकारकी मदद न दे। पर रूज़वेल्ट और चर्चिल मौसेरे भाई हैं, और दोनोंका आदर्श भी एक है। पर भारतसे किसी समझौतेके समर्थक अमेरिकन लोग भी हैं।

### महायुद्धकी प्रगतिका विहंगावलोकन

गत माससे इन पंक्तियोंके लिखते समय तक, यानी २३ जून तक, युद्धकी परिस्थितिमें कई मार्केकी बातें हुईं। हमारे अनुमानके अनुसार कथित तथा प्रस्तावित जर्मन ग्रीष्म-आक्रमण अभी प्रारम्भ नहीं हुआ, और उसका मुख्य कारण यह है कि रूसमें जर्मनीका ऐसा फँसाव पड़ा है कि २००० मील लम्बे मोर्चेपर गत वर्षका-सा आक्रमण करना कोई सहज काम नहीं है। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि क्रीमिया और खारकोवके मोर्चोंपर जर्मनीको सफलता मिली है। रूसने खारकोवपर जो विषम आक्रमण किया था, उसमें सफलता नहीं मिली। यह ठीक है कि रूसियोंका उद्देश्य खारकोव लेनेका नहीं था। हमारे खयालसे अगर रूसी खारकोवको ले सकते, तो वे उसे ज़रूर ले लेते। क्रीमियामें सेबास्टोपोलके बन्दरगाहपर जो देवासुर-संग्राम चल रहा था, उसका अन्त सेबास्टोपोलके पतनके रूपमें हो चुका है।

### सेबास्टोपोलकी जीतका अर्थ

जर्मनोंके सेबास्टोपोल लेनेसे क्रीमियामें जर्मनोंका प्राधान्य हो गया और कालेसागर-स्थित रूसी बेड़ेको जर्मनोंसे क्षति पहुँचनेकी आशंका है। सेबास्टोपोलके आसपास धुरी-राष्ट्रोंकी जो सेनाएँ लड़ रही हैं, उनमें से आधीसे ज़्यादा यदि काकेशियाकी ओर भेज दी गईं, तब सम्भव है, जर्मनी काकेशियाको हथियानेका प्रयत्न करे।

### रूसके अन्य मोर्चे

रूसके अन्य मोर्चोंपर स्थानीय झड़पें होती रहती हैं और हमारे खयालसे उनका कोई विशेष महत्व नहीं है।

### तबरुकके पतनकी प्रतिक्रिया

तबरुकके पतनसे इंग्लैण्डके अखबारोंमें काफ़ी बेचैनी और नाराज़गी प्रकट की जा रही है। एक अखबारने तो यहाँ तक कह डाला है कि यूरोपमें प्रस्तावित दूसरा मोर्चा तबरुकके पतनसे कुछ दिनोंके लिए स्थगित हो गया। युद्धके केन्द्रीय संचालनके विरुद्ध अविश्वासका प्रस्ताव भी पेश किया गया है। पर तबरुकके पतनसे धुरी-राष्ट्रोंको एक ऐसा बन्दरगाह मिल गया, जिसे वे एक ज़बरदस्त अड्डा बना सकेंगे, जहाँसे वे मिस्रपर हुए जर्मन-आक्रमणके लिए पूरी मदद भेज सकेंगे।

### धुरी-राष्ट्रोंकी योजना

हम गत दो-तीन मासोंसे लिख रहे हैं कि अनुमानतः हिटलर एक ओरसे स्वेज़पर और दूसरी ओरसे काकेशियापर अधिकार जमाना चाहता है, ताकि जापानी, जर्मन और अतालियन सेनाओंका समन्वय हो सके। इसीलिए रोमल मिस्रकी ओर बढ़ रहा है। हमें आशा है, ब्रिटिश सरकार जी-जानसे धुरी-राष्ट्रोंकी इस चालको विफल करनेका प्रयत्न करेगी।

### अग्रगामी-दल ग़ैर-क़ानूनी

गत २२ तारीखको भारत-सरकारने एक घोषणा द्वारा अग्रगामी-दलको ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया, जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति अग्रगामी-दलकी सहायता अथवा उससे सम्बन्ध नहीं रख सकेगा और न उसकी किसी मीटिंगके प्रबन्ध या सहायतामें भाग ले सकेगा और न अग्रगामी-दल सम्बन्धी किसी मीटिंगका विज्ञापन ही छप सकेगा। सारांश यह कि किसी प्रकार भी उसकी सहायता नहीं हो सकेगी।

### महामना मालवीयका उपदेश

गत २४ जूनको इलाहाबादकी जार्ज टाउन-समितिके तत्वावधानमें लाठी चलानेके प्रदर्शनके अवसरपर महामना मालवीयने कहा—"इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक शक्तिकी उन्नति करे। लड़कियोंमें भी शक्ति, साहस और उन लोगोंसे लड़ने और मुक़ाबिला करनेकी भावना जाग्रत होनी चाहिए, जो उनसे छेड़खानी करने या उन्हें परेशान करनेका दुःसाहस करें। मज़बूत बननेके लिए काफ़ी शक्तिवर्धक भोजन खाओ। देशके सभी पुरुषों और स्त्रियोंके लिए मेरा यही उपदेश है।" महामना मालवीयका जीवन बड़ा संयमी रहा है। लड़कपन और जवानीमें सुना है कि वे कुश्ती भी लड़ते रहे हैं। अच्छे शारीरिक स्वास्थ्यके लिए मानसिक स्वास्थ्यकी भी ज़रूरत है। देशके लिए यह बड़े अभिशापकी बात है कि जवानीमें ही लोग गलपिच्चू हो जायँ, आँखें उनकी गड्ढोंमें धँस जायँ और चेहरा उनका खूसट-सा हो जाय। जिन्हें खानेको मिलता है, उन्हें व्यायाम नियमित रूपसे करना चाहिए। व्यायाम करना उतना ही आवश्यक है, जितना कि भोजन करना।

### डा० राघवेन्द्ररावका निधन

हमें यह जानकर अत्यन्त खेद हुआ कि वाइसरायकी कार्य-कारिणीके सदस्य डा० राघवेन्द्ररावका निधन गत १५ जूनको हो गया। यों तो वाइसरायकी वर्त्तमान कार्यकारिणी सभामें देशका विश्वास नहीं है; पर व्यक्तिगत रूपसे डा० राघवेन्द्रराव उन व्यक्तियोंमें से थे, जिनके हृदयमें देश-प्रेमकी ज्वाला निरन्तर जाग्रत रहती है। उनकी साफ़गोईका हर कोई क़ायल था। रुपएकी खातिर या किसी पदकी खातिर उन्होंने अपनी दृढ़ तथा स्पष्ट नीतिको नहीं छोड़ा। कांग्रेससे सम्बन्ध-विच्छेद करनेपर भी खद्दर और देशकी स्वतन्त्रताके प्रति उनका प्रेम वैसा ही बना रहा। वाइसरायकी कार्यकारिणीके सदस्योंमें अगर कोई सबसे तेज़ हिन्दुस्तानी था, तो वे डा० राघवेन्द्रराव ही थे। स्वर्गीय आत्माकी शान्तिके लिए हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं और उनके कुटुम्बीजनोंके प्रति हार्दिक समवेदना तथा सहानुभूति प्रकट करते हैं।

### कमला नेहरू स्मारक अस्पताल

कमला नेहरू स्मारक अस्पताल, इलाहाबादकी स्थानीय प्रबन्ध-समितिके अध्यक्ष पं० हृदयनाथ कुँजरूने हमारे पास एक सूचना भेजी है, जिसमें वहाँके रोगियोंके लिए हिन्दी-उर्दूकी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंकी माँग की गई है। गत १४ महीनोंसे यह अस्पताल जो काम कर रहा है, उससे सर्वसाधारण सुपरिचित हैं। यह अस्पताल इलाहाबाद ही नहीं, समस्त भारतके लिए एक पतिभक्ता राष्ट्रकर्मिणीकी एक ऐसी स्मृति है, जो कि प्रत्येक देशवासीके लिए गौरवकी चीज़ है। इसकी सुव्यवस्थामें हाथ बँटाना हममें से प्रत्येकका कर्त्तव्य है। अतः हिन्दीके पुस्तक-प्रकाशकों, पत्र-संचालकों तथा उन महानुभावोंसे जो पत्र या पुस्तकें दे सकते हैं, हमारा अनुरोध है कि वे इस अस्पतालकी यथाशक्ति पूरी-पूरी सहायता करें। जो सज्जन रुपए-पैसेसे अस्पतालकी सहायता कर सकें, वे उससे सहायता करें।

### सूचना

आगामी १८ जुलाई तक हमारा पता होगा बल्का बस्ती, आगरा और उसके बाद ३१ जुलाई तक सेवाग्राम (वर्धा)।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

संचालक :—श्री राम...

सम्पादक :—श्रीराम शर्मा

भाग २९

जनवरी—जून १९४२

"विशाल भारत" कार्यालय

१२०।२, अपर सर्कूलर रोड, कलकत्ता।

वार्षिक मूल्य
६) छः रुपया

विदेशोंके लिए
९) या १४ शिलिंग

## तबरुकके पतनकी प्रतिक्रिया

तबरुकके पतनसे इंग्लैण्डके अखबारोंमें काफ़ी बेचैनी और नाराज़गी प्रकट की जा रही है। एक अखबारने तो यहाँ तक कह डाला है कि यूरोपमें प्रस्तावित दूसरा मोर्चा तबरुकके पतनसे कुछ दिनोंके लिए स्थगित हो गया। युद्धके केन्द्रीय संचालनके विरुद्ध अविश्वासका प्रस्ताव भी पेश किया गया है। पर तबरुकके पतनसे धुरी-राष्ट्रोंको एक ऐसा बन्दरगाह मिल गया, जिसे वे एक ज़बरदस्त अड्डा बना सकेंगे, जहांसे वे मिस्रपर हुए जर्मन-आक्रमणके लिए पूरी मदद भेज सकेंगे।

## धुरी-राष्ट्रोंकी योजना

हम गत दो-तीन मासोंसे लिख रहे हैं कि अनुमानतः हिटलर एक ओरसे स्वेज़पर और दूसरी ओरसे काकेशियाप... अधिकार जमाना चाहता है, ताकि जापानी, जर्मन और... सेनाओंका समन्वय हो सके। इसीलि-

## लेखक-सूची

## चित्र-सूची